हिन्दी समिति ग्रन्थमाला—२३३

भारतीय इतिहास कोश

('ए डिक्शनरी आफ इण्डियन हिस्ट्री' का हिन्दी रूपान्तर)

मूल लेखक
सच्चिदानन्द भट्टाचार्य
भू० पू० प्राध्यापक, इतिहास, प्रेसीडेंसी कालेज, कलकत्ता
अवै० प्रवक्ता, स्नातकोत्तर विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय
रीडर, इतिहास विभाग, गौहाटी एवं जादवपुर

उ० प्र० शासन
राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन
महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ, २२६००१

भारतीय इतिहास कोश

(ए डिक्शनरी आफ इण्डियन हिस्ट्री)

मूल्य : १८ रुपये

प्रकाशक : हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ
मुद्रक : ज्ञानमण्डल लिमिटेड, ७२७३—३१
कबीरचौरा, वाराणसी, २२१००१

समर्पण

पूर्व और पश्चिमके उन सभी प्राच्यविदोंको जिन्होंने
अपने विद्वत्तापूर्ण अध्यवसायसे हमारे इस
प्राचीन देशके ज्ञानके विकासमें
योगदान किया है।

भारतीय इतिहास कोश

•

[यह पृष्ठ आपके विचारोंके लिए है]

आमुख

प्रस्तुत ग्रन्थ हमारे देशके इतिहासके एक लब्धप्रतिष्ठ प्राध्यापकके सम्पूर्ण जीवनका श्रम-फल है, जिसमें छात्रों तथा सामान्य पाठकोंके ज्ञानार्जनके लिए, भारतके इतिहासके आदिकालसे अर्थात् ईसा पूर्वके दस हजार वर्ष पहलेसे लेकर अब तकके प्रमुख व्यक्तियों और स्थानोंकी चर्चा है। प्रोफेसर सच्चिदानन्द भट्टाचार्यने मेरे विचारसे अपने ध्येयमें सफलता प्राप्त की है। उन्होंने अधिक विस्तारमें न जाकर, और रुक्षतासे बचते हुए वर्णानुक्रमसे, भारतीय इतिहासमें आदरास्पद विशिष्ट महानुभावोंके जीवनके प्रमुख तथ्य अंकित करनेकी चेष्टा की है और साथ ही सभी महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों, संस्थानों तथा प्रमुख स्थानोंका उल्लेख किया है।

इस प्रकारके ग्रन्थकी आवश्यकता थी और जहाँ तक मेरी जानकारी है इस स्तरका दूसरा ग्रन्थ नहीं है, जो भारतीय इतिहासमें रुचि रखनेवाले अध्येताओं तथा सुसंस्कृत व्यक्तियोंकी जिज्ञासा-पूर्तिमें सहायक हो सके। प्रोफेसर भट्टाचार्यने प्रस्तुत सामग्रीको वर्णानुक्रमसे संजोया है। उनके इस ग्रन्थकी तुलना बहुत पहले डाउसनकी 'ट्रबनर्स ओरियण्टल सीरीज के अन्तर्गत प्रकाशित 'हिन्दू माइथालोजी' नामक कृतिसे की जा सकती है। प्रोफेसर भट्टाचार्यने अपने विद्वत्तापूर्ण प्रयाससे भारतके युवकों और युवतियोंको अपने देशके इतिहासके सम्यक् परिज्ञानार्जनकी ओर प्रेरित किया है। अपना समस्त जीवन उन्होंने इस कार्यको समर्पित कर हमें एक ऐसा प्रामाणिक इतिहास दिया है जिसके तथ्य-कथ्यपर हम विश्वास कर सकते हैं। उन्होंने बड़ी सावधानीसे विवादास्पद विषयोंसे अपनेको बचाया है, किन्तु साथ ही जहाँ आवश्यकता रही है उन्होंने विभिन्न मत-मतान्तरोंका भी उल्लेख किया है।

ग्रन्थ रोचक है, यह कहनेमें मुझे संकोच नहीं। यद्यपि मैं इतिहासका विद्यार्थी नहीं रहा हूँ, तथापि समाज-विज्ञानके अन्तर्गत भाषा-विज्ञानसे भी इतिहासका निकट सम्बन्ध है, अतः इतिहासमें भी मेरी स्वाभाविक रुचि रही है। मुझे विश्वास है, इस ग्रन्थके अध्ययनसे पर्याप्त नयी जानकारी मिलेगी और ऐसे तथ्योंका भी परिज्ञान होगा जिसके सम्बन्धमें हम ठीक-ठीक नहीं जानते। इस ग्रन्थमें कुल मिलाकर लगभग ३००० प्रविष्टियाँ हैं। अतः सामान्य ज्ञानार्जनकी दृष्टिसे यह पुस्तक लोकप्रिय होगी। प्रोफेसर भट्टाचार्यकी यह कृति अपनेमें संक्षिप्त किन्तु विशद है। यह विद्यार्थियों तथा सामान्य पाठकों, दोनोंके लिए ही उपयोगी है, ऐसी मेरी संस्तुति है।

सुनीतिकुमार चटर्जी
अवकाश-प्राप्त प्रोफेसर तुलनात्मक भाषा-विज्ञान
कलकत्ता विश्वविद्यालय
भूतपूर्व अध्यक्ष, विधान परिषद् पश्चिम बंगाल
भारतीय राष्ट्रीय प्रोफेसर—मानवशास्त्र

कलकत्ता
७-२-१९६७

प्रस्तावना

भारतीय इतिहास, यूरोपीय अध्ययनकी भाँति परिपक्व और उच्च स्तर तक नहीं पहुँच पाया है, लेकिन यह वास्तविक तथ्योंपर आधारित है। श्री सच्चिदानन्द भट्टाचार्यके मस्तिष्कमें भारतीय इतिहासका एक कोश तैयार करनेका विचार स्वभावत. उठा था, बहुतसे व्यक्तियोंने उनसे कहा था कि किसी अकेले विद्वानके लिए यह काम बहुत कठिन है, तथा भारतके युगों पूर्वके इतिहासका अंकन बिना किसीकी सहायताके अकेले व्यक्तिके लिए साहसिक कार्य है। धनाभावकी भी कठिनाई थी। लेकिन श्री भट्टाचार्यने अपनी योजनाके कार्यान्वयनका विचार नहीं छोडा और वह अपने काममें लगनके साथ जुट गये। बातचीतके दौरान एक बार उन्होंने इस सुनियोजित भारतीय इतिहास कोशके प्रकाशनके लिए धनाभावकी कठिनाईकी भी मुझसे चर्चा की। मैंने उनका कार्य देखा, और यह परिज्ञात हुआ कि यदि यह कार्य पूर्ण हो गया तो यह कोश वस्तुत. उपयोगी होगा। कलकत्ता विश्वविद्यालय तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोगसे सम्पर्क स्थापित किया गया। इन संस्थाओंने इस योजनाको सम्बल देनेकी इच्छा और प्रकाशनमें योगदान करनेकी सहमति दी। शीघ्र ही श्री भट्टाचार्यकी समस्त सामग्रीका सयोजन किया गया। उनके इस कोशमें भारतके प्राचीन, मध्यकालीन तथा अर्वाचीन इतिहाससे सम्बद्ध व्यक्तियों, स्थानों, घटनाओं, साहित्यिक और ऐतिहासिक सभी विषयोंको मिलाकर लगभग २७८५ प्रविष्टियोंपर प्रकाश डाला गया है।

श्री भट्टाचार्य सत्तर वर्षकी आयु पार कर चुके हैं। जब हम उनका कठिन परिश्रम देखते हैं जो उन्होंने इस जटिल कामको पूरा करनेमें किया है, तो हमें अनुभव होता है कि कुछ पानेकी लालसा, प्रतिदिन कुछ कर लेनेकी कामना, कुछ प्राप्त करने की भावना ही सम्भवत. उनको सम्बल प्रदान करती रही। पारम्परिक इतिहासका पाण्डित्य—विशद अध्ययन, अगाध ज्ञान और सामान्य ज्ञानकी सहज धारणा ही उनके कार्यान्वयनके लिए साधन थे। प्रस्तुत कार्य प्रामाणिक और उपयोगी है। कुछ गलतियाँ और अपवाद हो सकते हैं। भारतीय इतिहास-कोशके रचनाकारके रूपमें लेखक यो भी सर्वज्ञ होनेका दावा नहीं करता।

—एन० के० सिनहा
आशुतोष प्रोफेसर—मध्यकालीन तथा
आधुनिक भारतीय इतिहास
कलकत्ता विश्वविद्यालय

कलकत्ता
५—२—१९६७

निवेदन

'भारतीय इतिहास कोश' विद्यार्थी अध्यापक, पत्रकार और सामान्य पाठक तथा उन सबके लिए जो भारतीय इतिहासके अध्ययनमें रुचि रखते हों, एक उपयोगी सन्दर्भ ग्रन्थके रूपमें प्रस्तुत है। इस ग्रन्थमें भारतीय इतिहासके सभी युगों प्राचीन, मध्य तथा आधुनिकका स्पर्श किया गया है।

भारतीय इतिहासके आरम्भ और विकाससे सम्बद्ध व्यक्तियों, स्थानों, कार्यों तथा संस्थाओंके सम्बन्धमें २७८५ प्रविष्टियाँ इस ग्रन्थमें वर्णानुक्रमसे संजोयी गयी हैं। परिशिष्टमें कालक्रमानुसार महत्त्वपूर्ण तिथियोंका उल्लेख किया गया है। इसमें विस्तृत विवेचनका दावा तो मैं नहीं करता, लेकिन इनकी उपयोगितामें सन्देह नहीं है।

व्यक्ति-नामोंकी वर्तनीमें ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेसके प्रकाशनोंकी परम्पराका ही प्राय अनुसरण किया गया है, लेकिन प्रभेदक-चिह्नोंको छोड दिया गया है।

तिलिंघास्ट द्वारा लिखे गये प्लोएट्ज़के 'मैनुअल ऑफ यूनीवर्सल हिस्ट्री' तथा हार्वर्ड विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित डब्ल्यू० एल० लैंगरके एनसाइक्लोपीडिया, वर्ल्ड हिस्ट्री इत्यादिसे मुझे अपने ढंगके मुख्य ऐतिहासिक व्यक्तियों तथा घटनाओंका एक कोश तैयार करनेकी प्रेरणा मिली। यह बात और है कि मेरा काम करनेका ढंग तथा कोशकी व्यवस्था पूर्णत भिन्न है। उपरोक्त दोनों ग्रन्थोंमें कालक्रमानुगत पद्धतियाँ अपनायी गयी हैं, लेकिन मैंने यहाँ प्रासंगिक पद्धतिसे कार्य किया है। वास्तविकता यह है कि उपरोक्त ग्रन्थों—मैनुअल तथा एनसाइक्लोपीडिया—दोनोंमें ही भारतको बहुत कम महत्त्व दिया गया है, जबकि मेरा यह कार्य पूर्णत भारतीय इतिहासको ही समर्पित है और भारतीय इतिहासमें भी इस प्रकारके कार्यका अभाव रहा है। इस रूपमें यह कार्य भारतीय इतिहासमें पुरावृत्त-रचनाके एक बहुत बडे अभावकी पूर्ति करनेका प्रयास है।

सन् १९६१ में बडे मनोयोगसे मैंने यह कार्य आरम्भ किया था। लेकिन विश्वविद्यालयसे अध्यापन कार्यसे अवकाश ग्रहण करनेके कुछ ही दिन पूर्व मेरे इस उद्देश्यकी ओर डाक्टर एन० के० सिनहा (आशुतोष प्रोफेसर तथा अध्यक्ष भारतीय इतिहास विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय) का ध्यान आकृष्ट हुआ। वह इस बातसे प्रसन्न हुए कि कलकत्ता विश्वविद्यालय इस ग्रन्थके प्रकाशनमें रुचि ले रहा है। इस कार्यका प्रवर्तन कलकत्ता विश्वविद्यालय तथा 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' द्वारा किया गया है। प्रस्तुत दोनों संस्थाओंको जिन्होंने ग्रन्थके प्रकाशनका समस्त भार वहन किया तथा डॉ० एन० के० सिनहाको जिन्होंने प्रसन्नतापूर्वक इस ग्रन्थकी प्रस्तावना लिखी, मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

मानव-शास्त्र विषयोंमें भारतके राष्ट्रीय प्रोफेसर डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्याने पुस्तकका आमुख लिखकर मुझपर महती कृपा की है। मैं उनके प्रति श्रद्धावनत हूँ।

डॉ० सुकुमार भट्टाचार्य (विश्व भारतीमे इतिहासके प्रोफेसर) के प्रति जिन्होने समय-समयपर अपने मूल्यवान् सुझाव दिये तथा अपने शिष्य नदिया (पश्चिमी बंगाल) के महाराजकुमार सौरीषचन्द्र रायका जिन्होने बडी उदारतासे नदिया राजके पुस्तकालयमे महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध करायी, मै कृतज्ञ हूँ। कलकत्ताके राष्ट्रीय पुस्तकालय (नेशनल लाइब्रेरी) तथा कलकत्ता विश्वविद्यालयकी सेण्ट्रल लाइब्रेरीके अधिकारियोको धन्यवाद देता हूँ, जिन्होने समय-समयपर आवश्यक सामग्री-संकलन तथा पुस्तकोकी सुविधा प्रदान की। ईस्टेण्ड प्रिण्टर्स (कलकत्ता) के श्री पी० के० घोषके प्रति मैं विशेष आभारी हूँ, जिन्होने रचनात्मक सुझाव प्रदान किये।

इस ग्रन्थके लेखनमे भारतीय इतिहासपर उपलब्ध प्रामाणिक ग्रन्थोसे सहायता ली गयी है। कोई विशेष ग्रन्थ-सूची यहाँ नहीं दी जा रही है। विवादास्पद विषयोको स्पष्ट करनेके लिए मैंने प्रामाणिक लेखकोका सन्दर्भ दिया है। जिन पुस्तकोके शीर्षक बडे है, परिशिष्टमे उनके संकेत दिये हैं। ग्रन्थमे सर्वत्र उन्हीं सकेतोका प्रयोग किया गया है।

मेरी वयके व्यक्तिके लिए, बिना किसी सहायकके यह कार्य अत्यधिक श्रमसाध्य रहा। इसके अतिरिक्त यह कार्य किसी भी तरह एक निश्चित अवधिमे सम्पन्न किया गया है। सम्भव है, कुछ भूलें रह गयी हो। पुस्तकमे संशोधनके लिए पाठकोके कुछ सुझाव हों तो उनका स्वागत है तथा पुस्तकका द्वितीय संस्करण सम्भव हुआ तो उसमे उनका उपयोग भी किया जा सकेगा।

यह ग्रन्थ साधारणतया वस्तुपरक शैलीमे लिखा गया है। अत व्यक्तिपरक सारे तथ्योको एकत्र करना सम्भव न होगा। इस प्रकारके अत्यल्प अवसरोपर प्रकट किये गये विचार मेरे अपने है। मुझे विश्वास है, मेरे ये विचार इतिहासके स्थापित तथ्योपर आधारित पाये जायेंगे।

कालेज तथा विश्वविद्यालय जीवनके अध्यापनके पचास वर्षोंके परिश्रमका ही यह फल है, जो मै 'भारतीय इतिहास कोश'के रूपमे प्रस्तुत कर रहा हूँ। भारतीय इतिहासमें रुचि रखनेवाले व्यक्तियोके लिए यदि यह ग्रन्थ उपयोगी होगा तो मै अपना श्रम सार्थक समझूँगा।*

—सच्चिदानन्द भट्टाचार्य

६२, बालीगज प्लेस
कलकत्ता (भारत)
१५ फरवरी, १९६७

---

* अंग्रेजीमें प्रस्तुत 'ए डिक्शनरी आफ इण्डियन हिस्ट्री' ग्रन्थकी भूमिकासे।

प्रकाशककी ओरसे

इस 'भारतीय इतिहास कोश'का भी एक संक्षिप्त इतिहास है। हिन्दी समितिने जब भारतीय इतिहास कोशके प्रकाशनका निर्णय लिया, तब सहज भावसे कलकत्ता विश्वविद्यालयके सुविख्यात प्राध्यापक श्री सच्चिदानन्द भट्टाचार्य द्वारा प्रणीत "ए डिक्शनरी आफ इण्डियन हिस्ट्री" की चर्चा हुई। इस कृति और लेखकके श्रमको देखकर निश्चय हुआ कि इसीका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत कर देना समीचीन होगा। इस निश्चयके दो कारण थे—एक, योग्य कृतिका समादर और दूसरे, श्रम और समयकी बचत।

उक्त ग्रंथके हिन्दी-अनुवादकी स्वीकृति देनेके लिए हमने भट्टाचार्यजीसे सम्पर्क किया। उन्होंने बडी प्रसन्नता और उदात्त भावनासे हिन्दी-अनुवादके लिए सहमति दे दी और साथ ही राष्ट्रभाषा हिन्दीमें इसे प्रकाशित देखनेकी अभिलाषा व्यक्त की। किन्तु क्या कहें, प्रकाशनके अनुबन्धन और अन्य औपचारिकताओंमें इतना समय लग गया कि प्रोफेसर भट्टाचार्यके जीवनकालमें यह अनुवाद प्रकाशित न हो सका। लगभग २-२॥ वर्ष बाद यह कृति प्रकाशमें आ रही है। हमें विश्वास है, उनकी दिवंगतात्मा इसे प्रकाशित देखकर सुख और सन्तोषका अनुभव करेगी।

श्री भट्टाचार्यके श्रम और संकल्पकी झलक इस ग्रन्थमें मिलती है। इसका हिन्दी अनुवाद पाठकोंके सामने रखते हुए हमें प्रसन्नताका अनुभव हो रहा है, क्योंकि ऐसे कोश-ग्रन्थकी हिन्दीमें आवश्यकता थी।

ग्रन्थके अनुवाद कार्यमें समितिके सदस्य श्री अशोकजीने विशेष अभिरुचि ली और तीन प्रसिद्ध पत्रकारों—सर्वश्री ज्ञानचन्द जैन, चन्द्रोदय दीक्षित और कमलेशबिहारी माथुर तथा प्राध्यापक-द्वय डाक्टर रामाश्रय अवस्थी (लखनऊ) और डाक्टर राजेन्द्र पाण्डेय (हरदोई) ने इस ग्रन्थका हिन्दी रूपान्तरण प्रस्तुत किया है। इन सभी व्यक्तियोंका प्रिय विषय इतिहास रहा है। इन लोगोंने मनोयोगसे इसका अनुवाद करनेका यत्न किया है और यथासाध्य लेखककी भाषा और भावनाका पूर्ण ध्यान रखा है। अनुवादोंको सँजोने और सम्पादन कार्यमें श्री ज्ञानचन्द जैन तथा श्री श्रीकृष्ण दत्त भट्टने विशेष श्रम किया है। हम इनके कृतज्ञ हैं। इसके प्रस्तुतीकरणमें समितिके सहायक सम्पादक श्री चिरंजीव शर्माकी निष्ठाकी प्रशंसा करते हैं।

जैसा स्पष्ट है, 'भारतीय इतिहास कोश' हिन्दी समितिका श्रेष्ठ प्रकाशन है और अपने विषय-वस्तु, सम्पादन, साज-सज्जा, मुद्रण आदिकी दृष्टिसे भी लोकप्रिय होगा, यह कहनेमें हमें संकोच नहीं। मूल्य भी उचित है।

इस कोशमें, जैसा पूर्व पृष्ठोंपर आमुख एवं प्रस्तावनासे स्पष्ट है, आदिकालसे लेकर सन् १९६५ तकके इतिहासका स्पर्श किया गया है, और इस

दृष्टिसे लेखकके वक्तव्यके अनुसार २७८५ प्रमुख व्यक्तियों, स्थानों और घटनाओंकी चर्चा की गयी है। हो सकता है, कुछ व्यक्तियों, घटनाओं और स्थानोंके नाम छूट गये हों। भ्रम या भूलका हो जाना अस्वाभाविक नहीं। लेखकसे यत्र-तत्र मतभेद हो सकता है, किन्तु उसके श्रम और निष्ठाकी प्रशंसा तो करनी ही होगी।

हम इस ग्रन्थको एक परिशिष्ट द्वारा सम्पूर्ण करनेका उपक्रम कर रहे हैं। सन् १९६५ के बादकी घटनाओं और महत्त्वपूर्ण व्यक्तियोंके योगदानकी चर्चा अपेक्षित है। संभवतः इस परिशिष्टसे इसे अद्यतन करनेकी दिशामें हमारा प्रयास श्लाघ्य हो। हम चाहेंगे, सुधी पाठक और अधिकारी विद्वान् इस ग्रन्थ-की कमियों और त्रुटियोंकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करें और साथ ही ठोस सुझाव देनेकी भी अनुकम्पा करेंगे।

हमें विश्वास है, भारतीय इतिहास कोशका यथेष्ट समादर होगा और यह न केवल विद्वानों, पत्रकारों तथा इतिहासके अध्यापकों और छात्रोंके लिए उपयोगी और आवश्यक सिद्ध होगा, अपितु भारतीय इतिहासके अध्ययनमें रुचि रखनेवाले व्यक्ति और सुपठित परिवारके सदस्य भी इसे सन्दर्भ और सहायक ग्रन्थके रूपमें सम्मान प्रदान करेंगे।

काशीनाथ उपाध्याय 'भ्रमर'
सचिव,
हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश शासन

हिन्दी भवन,
लखनऊ
महाशिवरात्रि, १९७६ ई०

भारतीय इतिहास कोश

हिन्दी समिति

भारतीय इतिहास कोश

अ

अकोरवट—कम्बोडिया, जिसे पुराने लेखोमे कम्बुज कहा गया है और भारतके प्राचीन सम्बन्धोका शानदार स्मारक। यह मदिर अकोरथोम नामक नगरमे स्थित है जिसे प्राचीन कालमे यशोधरपुर कहा जाता था और जो जयवर्मा द्वितीयके शासनकाल (११८१–१२०५ ई०) मे कम्बोडियाकी राजधानी था। यह अपने समयमे ससारके महान् नगरोमे गिना जाता था और इसका विशाल भव्य मदिर अकोरवटके नामसे आज भी विख्यात है। इसका निर्माण कम्बुजके राजा सूर्यवर्मा द्वितीय (१०४९–६६ ई०) ने कराया था और यह विष्णुको समर्पित है। यह मदिर एक ऊँचे चबूतरेपर स्थित है। इसमे तीन खड है जिनमेसे प्रत्येकमे सुन्दर मूर्तियाँ हैं और प्रत्येक खडसे ऊपरके खडतक पहुँचनेके लिए सीढियाँ है। प्रत्येक खड पटी हुई दीर्घिकाके रूपमे है। मदिरके चार कोणोमे आठ गुम्बजे हैं जिनमेसे प्रत्येक १८० फुट ऊँची है। मुख्य मदिर तीसरे खडकी चौडी छतपर है। उसका शिखर २१३ फुट ऊँचा है और पूरे क्षेत्रको गरिमा-मडित किये हुए है। मदिरके चारो ओर पत्थरकी दीवारका घेरा है जो पूर्वसे पश्चिमकी ओर दो-तिहाई मील और उत्तरसे दक्षिणकी ओर आधे मील लम्बा है। इस दीवारके बाद ७०० फुट चौडी खाई है जिसपर एक स्थानपर ३६ फुट चौडा पुल है। इस पुलसे पक्की सडक मदिरके पहले खडके द्वारतक चली गयी है। इस प्रकारकी भव्य इमारत ससारके किसी अन्य स्थानपर नही मिलती है। भारतसे सम्पर्कके बाद दक्षिण-पूर्वी एशियामे कला, वास्तुकला तथा स्थापत्यकलाका जो विकास हुआ, उसका यह मदिर चरमोत्कृष्ट उदाहरण है। (आर० सी० मजूमदार—कम्बुज देश, पृष्ठ १३५–३७)

अंग—पूर्वी विहारका प्राचीन नाम। इसकी राजधानी गगाके किनारे आधुनिक भागलपुर नगरके निकट चम्पा थी। ईसा पूर्व पाँचवी शताब्दीमे यह मगध राज्यमे शामिल कर लिया गया, जिसमे उस समयतक पटना, गया और दक्षिणी बिहारके क्षेत्र शामिल थे। बादमे यह क्षेत्र निरन्तर मगधका भाग बना रहा और इसीका नाम बादमे बिहार पडा।

अंगद—सिखोके दूसरे गुरु। इनको गुरु नानक (दे०) ने ही इस पदके लिए मनोनीत किया था। नानक इनको अपने शिष्योमे सबसे अधिक मानते थे और अपने दोनो पुत्रोको छोडकर उन्होने अगदको ही अपना उत्तराधिकारी चुना। गुरु अगद श्रेष्ठ चरित्रवान् व्यक्ति और सिखोके उच्चकोटिके नेता थे जिन्होने अनुयायियोका १४ वर्ष (१५३८–५२ ई०) तक नेतृत्व किया।

अन्तिकिनि—एक यवन राजा, जिसका उल्लेख अशोकके शिलालेख (सख्या तेरह) मे किया गया है। उसकी पहचान मैसिडोनियाके राजा एटिगोनस गोटस (ई० पू० २७७–ई० पू० २३९) से की जाती है।

अंसारी, डाक्टर (१८८०–१९३६ ई०)—एक प्रमुख मुसलमान राष्ट्रीयतावादी नेता। उनका जन्म बिहारमे हुआ, एडिनबरा (ब्रिटेन) से उन्होने डाक्टरीकी पदवी प्राप्त की और दिल्लीमे रहकर वे डाक्टरी करने लगे। १९१२–१३ ई० मे उन्होने भारतमे एक चिकित्सक दल सगठित करके उसे तुर्कीके युद्धमे सहायता कार्यके लिए भेजा। उन्होने मुस्लिम लीगका सगठन करनेमे प्रमुख भाग लिया और १९२०ई० के उसके अधिवेशनकी अध्यक्षता की। वे साम्प्रदायिक विचारधाराके पोषक नही थे और १९२७ ई० मे उन्होने भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके मद्रास अधिवेशनकी अध्यक्षता की। उन्होने महात्मा गाधी द्वारा सचालित असहयोग आन्दोलनमे भाग लिया तथा १९३० ई० और १९३२ ई० मे ब्रिटिश शासन कालमे जेल यात्राएँ की।

अकबर—मुगलवशका तीसरा बादशाह, भारतमे मुगल साम्राज्य और राजवशका वास्तविक सस्थापक। अपने पिता हुमायूकी मृत्युके बाद वह १५५६ ई० मे सिहासन पर बैठा। उस समय उसके अधीन कोई खास इलाका नही था। उसी वर्ष पानीपतकी दूसरी लडाईमे उसने हेमूपर विजय पायी जो अफगानोके सूर राजवशका समर्थक था। अब वह पजाब, दिल्ली, आगरा और पास-पडोसके क्षेत्रका स्वामी बन गया। अगले पाँच वर्षोमे अकबरने इस क्षेत्रमे अपने राज्यको मजबूत बनाया और पूर्वमे गगा-यमुनाके सगम—इलाहाबादतक और

मध्य भारतमे ग्वालियर और राजस्थानमे अजमेरतक अपना राज्य फैलाया। अगले २० वर्षोमे अकबरने कश्मीर, सिध और उडीसाको छोड़कर पूरे उत्तर भारतको जीत लिया। १५९२ ई० तक उसने इन तीनो राज्योको भी अपने राज्यमे मिला लिया। इसके पहले १५८१ ई० मे उसने अपने छोटे भाई हकीमकी बगावतका दमन किया जिसने अपनेको काबुलका स्वतन्त्र सुल्तान घोषित कर दिया था और १५८५ मे उसकी मृत्यु होनेपर काबुलको अपने राज्यमे मिला लिया। दस वर्ष बाद उसने कधार जीत लिया और बलूचिस्तानपर कब्जा कर लिया। उत्तर भारतको जीतनेके बाद उसने दक्षिण भारतको जीतनेकी कोशिश की। १६०० ई० मे उसने अहमदनगर-पर हमला किया और १६०१ ई० मे खान देशके असीरगढ-को जीता। यह उसके जीवनकी अन्तिम विजय थी। चार वर्ष बाद जब उसकी मृत्यु हुई उस समय उसका साम्राज्य पश्चिममे काबुलसे पूर्वमे बगालतक और उत्तरमे हिमालयकी तराईसे दक्षिणमे नर्मदा नदीके किनारेतक फैला था।

अकबरने अपने साम्राज्यको १५ सूबोमे बाँटा था (१) काबुल, (२) लाहौर (पजाब) जिसमे कश्मीर भी शामिल था, (३) मुल्तान–सिध, (४) दिल्ली, (५) आगरा, (६) अवध, (७) इलाहाबाद, (८) अजमेर, (९) अहमदाबाद, (१०) मालवा, (११) बिहार, (१२) बगाल-उडीसा, (१३) खानदेश, (१४) बरार और (१५) अहमदनगर।

अकबर केवल महान् विजेता ही नही था वरन् कुशल प्रशासक और साम्राज्यका सस्थापक भी था। उसने ऐसी प्रशासन व्यवस्था की जो उसके पहलेके राज्यो-की व्यवस्थासे उच्चकोटिकी थी। उसका राजतन्त्र उसके व्यक्तिगत स्वेच्छाचारी शासन और नौकरशाही-पर आश्रित था। उसका उद्देश्य बादशाहके व्यक्तिगत अधिकार और राजकोषको बढाना था। बादशाहके हुक्मको उसके मनसबदार पूरा करते थे। मनसबदारोकी ३–३ श्रेणियाँ थी, जिनके मनसब १० से लेकर पाँच हजार तकके होते थे। इन मनसबदारोको वेतन नकद दिया जाता था। उनके ऊपर अकुश रखनेके लिए अनेक नियम बनाये गये थे, विशेष रूपसे सवारोकी फर्जी सूची रखने-पर। हर एक सूबे मे एक सूबेदार रहता था जिसको नवाब नाजिम भी कहा जाता था। उसे काफी अख्तियार रहते थे। वह भी अपना छोटा दरबार करता था जैसा कि तुर्क व अफगान सुल्तानोके राजमे होता था। लेकिन अकबरने सूबेदारोपर अकुश लगाया और सूबेके वित्तीय मामलोकी देखभाल करनेके लिए 'दीवान' नामक नया अधिकारी नियुक्त किया।

राजस्व बढानेके लिए राजा टोडरमलकी सहायतासे अकबरने भूमिकी नाप जोख और पैमाइश कराकर माल-गुजारीकी नयी व्यवस्था की। रैयत और काश्तकारोसे लगानकी वसूलीकी सीधी व्यवस्था चलायी गयी। उपजका तिहाई हिस्सा लगानके रूपमे नकद अथवा अनाज-के रूपमे लिया जाता था और उसकी वसूली सरकारी अफसर करते थे।

भारतके मुसलमान शासकोमे अकबरका स्थान सबसे ऊपर रखा जाता है। उसके पहलेके शासको-ने यहाँकी हिन्दू प्रजाका ख्याल नही रखा और उनमें और बहुसख्यक हिन्दू प्रजामे लगातार सघर्ष और शत्रुताका व्यवहार चलता रहता था। अकबर-ने अपने शासनके आरम्भिक वर्षोमे यह अनुभव किया कि हिन्दुस्तानका बादशाह केवल मुसलमानोका ही शासक नही होना चाहिये। यहाँके सम्राटको यदि अपने राज्यको मजबूत बनाना है तो उसे हिंदुओकी राजभक्ति भी प्राप्त करनी चाहिये। उसे हिन्दू-मुसलमान, यह भेदभाव नही करना चाहिये। इसलिए उसने उदार नीति अपनायी। उसने पराजित राजाओके परिवारोको गुलाम बनानेकी प्रथा छोड दी, उनकी स्त्रियोकी इज्जत नही ली और उनको अपने यहाँ सम्मानपूर्ण पद दिये। उसने तीर्थ-यात्रियोके ऊपर लगनेवाले जजिया नामक करको समाप्त कर दिया जो केवल हिन्दुओपर लगाया जाता था। उसने हिन्दुओको भी उनकी प्रतिभाके अनुसार ऊँचे पदो-पर नियुक्त किया। उसने हिन्दू राजाओसे विवाह सम्बन्ध स्थापित किया और उनको धर्म बदलनेको बाध्य नही किया। उसकी इस उदार नीतिके कारण उसे राजपूतोका समर्थन मिला और उनकी वीरताके आधार-पर अकबरने अपना साम्राज्य काबुलसे बगाल तक फैलाया। अकबरने हिन्दू और मुसलमानोके आपसी सघर्षको खत्म कर एक भारतीय राष्ट्र बनानेका स्वप्न देखा। उसने हिन्दू और इस्लाम दोनो धर्मोकी अच्छी बातोको लेकर नया मत चलानेका प्रयत्न किया। इसी उद्देश्यसे उसने १५८१ ई० मे 'दीन इलाही'का प्रचलन किया। उसमे कुरान, हिन्दू धर्मशास्त्रो और बाइबिलके सिद्धान्तोका समन्वय किया गया था। अकबर सभी धर्मोके प्रति सहिष्णुताके सिद्धान्तको मानता था। उसने अपने नये धर्म-को दूसरोपर लादनेका प्रयास नही किया। बहुत थोडे

लोगोने 'दीन इलाही' को कबूल किया और उसका उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। परन्तु, अपने इस प्रयासके कारण, "सभी धर्मोंके प्रति सहिष्णुता तथा उदारता दिखानेके कारण मानव-जातिके सच्चे उपकारकोंमे उसने अपना प्रमुख स्थान बना लिया है।" (वी० ए० स्मिथ–अकबर दि ग्रेट मुगल; वान नोएर–इम्परर अकबर)

अकबर द्वितीय–मुगल वंशका १८वां बादशाह। वह शाह आलम द्वितीयका पुत्र था और उसने १८०६–३७ ई० तक राज किया। उसके समयतक, भारतका अधिकांश राज अंग्रेजोंके हाथमे चला गया था और १८०३ ई० मे दिल्लीपर भी उनका कब्जा हो गया था। बादशाह शाह आलम द्वितीय (१७६९–१८०६ ई०) अपने जीवनके अन्तिम दिनोंमे ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी पेंशनपर जीवन यापन करता था। उसका पुत्र बादशाह अकबर द्वितीय ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी कृपाके सहारे नाम मात्रका बादशाह था। उससे गवर्नर जनरल लार्ड हेस्टिंग्स (१८१३–२३) की ओरसे कहा गया कि वह कम्पनीके क्षेत्रपर अपनी बादशाहतका दावा छोड दे। लार्ड हेस्टिंग्सने ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी ओरसे मुगल बादशाहको दी जाने वाली नजर बन्द कर दी। उसका लडका और उत्तराधिकारी बादशाह बहादुरशाह द्वितीय (१८३७–५८ ई०) भारतका अन्तिम मुगल बादशाह था।

अकबर खा–अफगानिस्तानके अमीर दोस्त मुहम्मदका पुत्र। उसने प्रथम आंग्ल-अफगान युद्ध (१८४१–४३ ई०) के दौरान अफगानोंको संगठित कर अंग्रेजोंके हमलेका मुकाबला करनेमे खास हिस्सा लिया था।

अकबर नामा–बादशाह अकबरके शासनकालका इतिहास, जिसे अकबरके दोस्त और दरबारी अबुल फजलने लिखा था। यह अकबरके शासनकालमे लिखा गया प्रामाणिक इतिहास है, क्योंकि लेखकको इसकी बहुत सी बातोंकी निजी जानकारी थी, और सरकारी कागजोंतक उसकी पहुँच थी। यद्यपि इसमे अकबरके साथ कुछ पक्षपात किया गया है तथापि तिथियों और भौगोलिक जानकारीके लिए यह विश्वसनीय है।

अकबर, शाहजादा–औरंगजेब और उसकी दिलरस बानो बेगमका पुत्र। वह बादशाह औरंगजेबका तीसरा और प्यारा बेटा था और १६७९ ई० मे उसने राजपूतोंके विरुद्ध लडाईमे मुगल सेनाका नेतृत्व किया था। जब उसकी सेना चित्तौडमे थी, तो राजपूतोंने उसपर अचानक हमला बोलकर उसे हरा दिया। उसके बाद औरंगजेबने उसका तबादला मारवाड कर दिया। शाहजादा अकबरने इसे अपनी बेइज्जती समझा और सोचा कि मैं स्वय भी राजपूतोंकी सहायतासे अपने बापकी जगह बादशाह बन सकता हूँ, जैसा कि औरंगजेबने किया था। राजपूत सरदारोंने भी उसका हौसला बढाया और उसे समझाया कि राजपूतोंकी मददसे वह हिन्दुस्तानका सच्चा बादशाह बन सकता है। शाहजादा अकबरने अपने पिताको एक कडा पत्र लिखा जिसमे उसने असहिष्णुताकी नीतिको छोडने तथा शासनकी दुर्व्यवस्थाकी ओर उसका ध्यान आकर्षित किया।

अन्त मे ७० हजार सैनिकोंके साथ, जिनमे बहुतसे राजपूत भी थे, शाहजादा अकबर अजमेरके निकट १५ जनवरी १६८१ ई० को पहुँच गया। उस समय औरंगजेबकी सेना चित्तौड और दूसरे स्थानोंमे बिखरी हुई थी। अकबरने उस समय हमला कर दिया होता तो बादशाह मुश्किलमे पड जाता, लेकिन शाहजादेने ऐयाशी और नाचरगमे समय गवां दिया। इस बीच औरंगजेबको अकबर और उसके राजपूत साथियोंमे फूट पैदा करनेका मौका मिल गया। राजपूतोंने उसका साथ छोड दिया। शाहजादा अकबर राजपूतानेमे दक्षिणकी ओर भागा जहाँ उसने शिवाजीके पुत्र शम्भा जीके यहाँ शरण ली। इससे शाहजादा और मराठोंके सयुक्त मोर्चेका खतरा पैदा हो गया। औरंगजेब खुद दक्षिण गया। लेकिन इस बीच शाहजादा अकबरने अपने पिताको हरानेकी आशा छोड दी और वह हिन्दुस्तान छोडकर फारस चला गया। १६९५ ई० मे अकबरने फारसकी सहायतासे हिन्दुस्तानपर हमला करनेकी कोशिश की। पर मुल्तानके पास उसके सबसे बडे भाई शाहजादा मुअज्जमके नेतृत्वमे मुगल सेनाने उसे पराजित कर दिया। इस पराजयके बाद निराश शहजादा अकबर फिर फारस लौट गया, जहाँ १७०४ ई० मे उसकी मृत्यु हो गयी।

अकबर हैदरी, सर–(१८६९–१९४१ ई०), भारत सरकारके वित्त विभागमे एक छोटे अफसरके रूपमे नियुक्त और बादमे भारतका सर्वप्रथम कन्ट्रोलर आफ ट्रेजरी। १९३७ मे वह निजामका प्रधान सचिव बनाया गया, जहाँ कुछ शासन सुधार किये गये। बादमे वह वाइसरायकी एक्जीक्यूटिव कौंसिलका सदस्य बनाया गया।

अकमल खा–अफरीदी कबाइली सरदार जिसने १६७२ ई० मे मुगल बादशाह औरंगजेबके विरुद्ध विद्रोहका नेतृत्व किया और अपनेको सुल्तान घोषित किया। उसने अली मस्जिदकी लडाईमे मुगल सेनाको हरा दिया और कुछ समय तक पठानोंके पूरे क्षेत्रपर अटकसे कधार-

तक अपना राज्य स्थापित कर लिया था। १६७४ई० मे औरगजेब खुद पेशावर गया तथा कूटनीति और शस्त्र-बल-से उसने अकमल खाँ तथा पठानोको हरा दिया।

अकाल—भारतके आर्थिक जीवनकी एक दुखद विशेषता। मेगस्थनीज (दे०) ने लिखा है कि भारतमे अकाल नही पडता, लेकिन यह कथन बादके इतिहासमे सही नही सिद्ध होता। सच तो यह है कि भारत जैसे देशमे मुख्यत खेती ही जीवन-यापनका साधन है और वह मुख्यत अनिश्चित मानसूनी वर्षापर निर्भर रहती है। अत यहाँ अकाल प्राय पडता रहता है। ब्रिटिश राज्यकालके पहलेके अकालोका विश्वस्त विवरण नही प्राप्त होता। लेकिन १७५७ ई० की पलासीकी लडाई और १९४७ ई० मे भारतकी स्वाधीनता मिलनेके समयके बीच, अर्थात् १९० वर्षकी छोटी अवधिके दौरान देशमे बडे-बडे नौ अकाल पडे। यथा,

(१) १७६९-७० ई०, जिसमे बगाल, बिहार और उड़ीसाकी एक तिहाई आबादी नष्ट हो गयी। (२) १८३७-३८ ई० मे समस्त उत्तरी भारत अकालग्रस्त हुआ, जिसमे ८ लाख व्यक्ति मौतके शिकार हुए। (३) १८६१ ई० मे पुन भारी अकाल पडा, जिसमे उत्तर भारतमे असख्य व्यक्ति मरे। (४) १८६६ ई० मे उडीसामे अकाल पडा, जिसमे १० लाख लोगोकी जाने गयी। (५) १८६८-६९ ई० मे राजपूताना और बुदेलखड अकालके शिकार हुए। इसमे कम आदमी मरे, फिर भी यह सख्या एक लाखसे कम नही थी। (६) १८७३-७४ ई० मे बगाल और बिहार-मे पुन अकाल पडा, जिसमे लोग भारी सख्यामे मरे। (७) १८७६-७८ ई० का अकाल तो समस्त भारतमे पडा, जिसके फलस्वरूप अकेले ब्रिटिश भारतमे ५० लाख व्यक्ति मरे। (८) १८९६-१९०० ई० मे दक्षिणी, मध्य और उत्तरी भारतमे अकाल पडा जिसमे साढे सात लाख व्यक्ति मरे। (९) १९४३ ई० मे ब्रिटिश सरकारकी 'सर्वक्षार' नीति, व्यापारियोकी धनलिप्सात्मक जमाखोरी तथा प्रशासनिक भ्रष्टाचारके कारण बगालमे अकाल पडा, जिसमे लगभग १५ लाख व्यक्ति मरे।

अकाल आयोग—१८८० ई० मे वाइसराय लार्ड लिटन द्वारा सर रिचर्ड स्ट्रैचीकी अध्यक्षतामे स्थापित। इसी आयोग-की सिफारिशपर 'अकाल सहिता'की रचना की गयी थी। १८९७ ई० मे वाइसराय लार्ड एलगिनने सर जेम्स लायल-की अध्यक्षतामे पुन एक अकाल आयोगकी स्थापना की। द्वितीय आयोगने प्रथम आयोग द्वारा निर्धारित सिद्धान्तो-का समर्थन किया और अकाल सहायता योजनाके विस्तृत कार्यान्वयनमे परिवर्तन कर दिया। १९०० ई० मे वाइस-राय लार्ड कर्जनने सर ऐण्टोनी मैकडानलका अध्यक्षतामे तृतीय अकाल आयोगकी स्थापना की। इसने भी प्रथम आयोगके सिद्धान्तोका समर्थन किया और यह सिफारिश की कि सहायता कार्यवाले क्षेत्रके लिए सहायता-आयुक्त नियुक्त किया जाय तथा दूरस्थ क्षेत्रोमे केन्द्रकी ओरसे कामकी व्यवस्था करनेकी अपेक्षा सार्वजनिक हितके स्थानीय कार्योंमे अकालपीडितोको लगाकर वस्तु-वितरण किया जाय। यह भी सिफारिश की गयी कि अकाल सहायता कार्यमे गैर-सरकारी सस्थाओका अधिकाधिक सहयोग लिया जाय, कृषि बैंक खोले जायँ, खेतीके विक-सित तरीके अपनाये जायँ और सिचाई सुविधाओका विस्तार किया जाय। इन सिफारिशोको स्वीकार किया गया और सरकारने उनपर अमल किया।

अकाल प्रतिवेदन (१८८०ई०)—सर रिचर्ड स्ट्रैचीकी अध्य-क्षतामे नियुक्त अकाल आयोगद्वारा प्रस्तुत। प्रतिवेदनमे सर्वप्रथम यह मौलिक सिद्धान्त निर्धारित किया गया कि अकालके समय पीडितोको सहायता देना सरकारका कर्तव्य है। इस सिद्धान्तके अनुसार काम करने योग्य व्यक्तियोको काम देकर सहायता पहुँचाना तथा कमजोर और बूढे लोगोको अन्न एव धनसे सहायता देना उचित बताया गया। यह भी कहा गया कि सहायताके रूपमे जो काम कराया जाय, वह स्थायी हो और इतना बडा हो कि उक्त क्षेत्रके सभी जरूरतमद लोगोकी आवश्यकताकी पूर्ति हो सके। बडी योजनाओपर काम करने हेतु दूर भेजनेके लिए जो लोग योग्य न हो, उन्हे तालाबोकी खुदाई अथवा पुलिया आदि बनानेके स्थानीय काममे लगाया जाय। सहायताके रूपमे दिया जानेवाला काम तत्काल आयोजित किया जाय और भुखमरीसे शक्ति घटने-के पहले ही अकालपीडितोको काम और अन्न प्राप्त हो जाय। लगान स्थगित अथवा माफ करके बीज एव कृषि-यन्त्र खरीदनेके लिए अग्रिम धन देकर अकालपीडितोकी अतिरिक्त एव सामान्य सहायता की जाय। सहायता-वस्तुकी छीजन तथा फिजूल-खर्ची रोकनेके लिए सहायता-व्ययका मुख्य भार अकाल पीडित क्षेत्रकी स्थानीय सरकार-को उठाना चाहिए और केन्द्रीय सरकार केवल स्थानीय स्रोतोमे योगदान देनेका काम करे। सहायताका वितरण गैर-सरकारी प्रतिनिधि सस्थाओके माध्यमसे हो। प्रति-वेदनमे यह भी सिफारिश की गयी कि अकाल सहायता एव बीमाकोषकी स्थापनाके लिए प्रतिवर्ष डेढ करोड रुपया अलग कर दिया जाया करे जिससे अकालके समय आवश्यकता पडनेपर धन लिया जा सके।

अकाल सहिता—अकाल आयोग (१८८० ई०)की सिफारिशोंके आधारपर १८८३ ई० मे तैयार की गयी। इस सहितामे खाद्याभावका पता लगानेके लिए प्रक्रिया निर्धारित की गयी थी, जिनके द्वारा पहले अभावकी स्थिति और बादमे अकालकी स्थिति घोषित की जा सके। सिद्धान्त यह माना गया कि जैसे ही अभावकी स्थिति घोषित हो, वैसे ही रेलवे और जहाजोंद्वारा तत्काल अधिक अन्नवाले क्षेत्रोसे अकालग्रस्त क्षेत्रोको अनाज भेजा जाय, जिससे अकालपीडित लोगोको अविराम खाद्यान्न मिलता रहे। साथ ही काम करने लायक लोगोको काम दिया जाय। ऐसा कहा गया है कि अकाल सहिता भी अकालको रोकनेमे विफल सिद्ध हुई। किन्तु इसमे सदेह नही कि विज्ञानके नये स्रोतो और आयोजनाओंमे अकालकी विभीषिकाको कम करनेमे सहायता मिली।

अकाल सहायता और बीमा कोष—१८८० ई० के अकाल आयोगकी सिफारिशोके अनुसार स्थापित।

अकविवा, फादर रिदाल्फो—गोआमे धर्मप्रचार करनेवाला जेसुइट सम्प्रदायका पादरी। सितम्बर १५७९ ई० मे बादशाह अकबरकी प्रार्थनापर उसको और पादरी मोसेरेतको गोआकी पुर्तगाली सरकारने अकबरके दरबार-मे फतेहपुर सीकरी भेजा था। ये दोनो पादरी फरवरी १५८० ई० मे फतेहपुर सीकरी पहुँचे जहाँ बादशाहने उनका सम्मानपूर्वक स्वागत किया। अकविवा बडा विद्वान् था और बादशाह अकबर उसका बडा सम्मान करता था। वह अकबरके दरबारमे काफी समयतक रहा।

अगलस्सोई—सिकदरके आक्रमणके समय सिन्ध नदीकी घाटीके निचले भागमे शिविगणके पडोसमे रहनेवाला एक गण। सिकदर जब सिन्धु नदीके मार्गमे भारतसे वापस लौट रहा था तो इस गणके लोगोसे उसका मुकाबला हुआ। अगलस्सोई गणकी सेनामे ४० हजार पैदल और तीन हजार घुडसवार सैनिक थे। उन्होंने सिकदरके छक्के छुडा दिये लेकिन अन्तमे वे पराजित हो गये। यूनानी इतिहासकारोके अनुसार अगलस्सोई गणके २० हजार आबादीवाले एक नगरके लोगोंने स्वय अपने नगरमे आग लगा दी और अपनी स्त्रियो और बच्चोके साथ जलकर मर गये, ताकि उन्हे यूनानियोकी दासता न भोगनी पडे। **(अगलस्सोईकी पहचान पाणिनिके व्याकरणमे उल्लिखित अग्रश्रेणय से की जाती है।—स०)**

अगाथोक्लिस—भारतका एक यवन राजा जो तक्षशिलाके क्षेत्रमे (१९०–१८० ई० पू०) राज्य करता था। उस क्षेत्रमे उसके कुछ सिक्के भी पाये गये हैं जिनमे उसका नाम यूनानी और प्राकृत दोनो भाषाओमे अकित है।

अगेसिलोस्—एक यवन अधिकारी, जो कुषाण राजा कनिष्क-के निर्माण कार्योका निरीक्षक अभियता था। पेशावरमे कनिष्कके आदेशसे निर्मित स्तूपके ध्वसावशेषोमे प्राप्त धातु पात्रसे उसके नामका पता चलता है। **(जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी, १९०८, पृ० ११०९)**

अग्निकुल—राजपूतोकी चार जातियो, पवार (परमार), परिहार (प्रतिहार), चोहान (चाहमान) और सोलकी अथवा चालुक्यकी गणना अग्निकुलके क्षत्रियोमे होती हैं। चन्दबरदाईके रासोके अनुसार अग्निकुलके इन चार राजपूतोके पूर्व पुरुष दक्षिणी राजपूतानेके आबू पहाडमे यज्ञके अग्निकुडमे प्रकट हुए थे। इससे इनके दक्षिण राजस्थानसे सम्बन्धित होनेका पता चलता है। कुछ लोगोका मत है कि यह यज्ञ विदेशी जातियोको वर्णाश्रम व्यवस्थामे लेनेके लिए किया गया था और इस प्रकार इन जातियोको उच्च क्षत्रिय वर्णमे स्थान दिया गया था। **(जर्नल आफ दि रायल एन्थ्रोपालिजिकल इस्टीट्यूट, पृ० ४२)**

अग्निपुराण—१८ पुराणोमेसे एक। उसमे भारतीय ऐति-हासिक जनुश्रुतियोका सबसे क्रमबद्ध उल्लेख है।

अग्निमित्र—शुगवश (दे०) के सस्थापक पुष्यमित्रका पुत्र और उत्तराधिकारी। अपने पिताके राज्यकालमे वह नर्मदा प्रदेशका उपराजा था और उसने अपनी राजधानी विदिशामे रखी थी। विदिशा को आजकल भिलसा कहा जाता है। उसने अपने दक्षिणी पडोसी विदर्भ (बरार) के राजाको पराजित किया और शुग राज्यको वर्धानदीके तटतक फैला दिया। १४९ ई० पू० मे वह अपने पिताका उत्तराधिकारी बना और पुराणोंके अनुसार उसने आठ वर्ष राज्य किया। कालिदासके प्रसिद्ध नाटक 'मालविकाग्निमित्र'मे इसी अग्निमित्रकी प्रेम कथाका वर्णन है। इसके नामके अनेक सिक्के भी मिले हैं। **(पर्जीटर-डायनेस्टीज आफ दि कलि एज, पृष्ठ स० ३०-७०)**

अग्रमस—कर्टियस आदि यूनानी इतिहासकारोने सिकदरके आक्रमणके समय मगधके राजाका नाम अग्रमस अथवा क्सैन्द्रमस लिखा है। सिकदरको उसके राज्यपर आक्रमण करनेका साहस नही हुआ। वह एक नाईका पुत्र था। उसके पिताने मगधके सिंहासनपर बलात् अधिकार करके अपनेको 'प्रेस्सिआई' (प्राच्य देश) का राजा घोषित कर दिया था। अग्रमस नाम सस्कृत औग्रसैन्यका यूनानी अपभ्रंश मालूम होता है। औग्रसैन्यका अर्थ है उग्रसेनका

पुत्र। 'महाबोधिवंश'के अनुसार उग्रसेन नन्दवंशका संस्थापक था। (पी० एच० ए० आई०, पृष्ठ २३२, रैक् क्रिंडिल–दि इन्वेजन आफ इण्डिया बाइ एलेक्जेंडर, पृष्ठ २२२)

अग्रमहिषी–शक राजाओंके समयमे पट रानीको अग्रमहिषी-की उपाधिसे विभूषित किया जाता था, उदाहरणके लिए 'नागनिको'। (पी० एच० ए० आई०, पृष्ठ ५१७)

अग्नोनोमोइ–यूनानी लेखक स्त्राबोके अनुसार, चन्द्रगुप्त मौर्यके समयमे अग्रोनोमोइ नामक अधिकारी नदियोकी देखभाल, भूमिकी नापजोख, जलाशयोका निरीक्षण और नहरोकी देखभाल करते थे, ताकि सभी लोगोको पानी ठीकसे मिल सके। यह अधिकारी शिकारियोपर भी नियत्रण रखता था और उसको लोगोको पुरस्कृत और दड देनेका अधिकार था। वह-कर वसूलता था और भूमिके स्वामित्व सम्बन्धी मामलोंका भी निरीक्षण करता था। सार्वजनिक सडकोका निर्माण और दस-दस स्टैडियाकी दूरीपर स्तंभ लगानेके कामका निरीक्षण भी यही अधिकारी करता था। वह ग्रामोका शासन भी करता था। इसकी पहचान कौटिल्य अर्थशास्त्रमे वर्णित 'अध्यक्ष' और अशोकके शिलालेखोमे वर्णित 'राजुक'से की जाती है। (स्त्राबो, खंड ३, पृष्ठ १०३ और पी० एच० ए० आई०, पृष्ठ संख्या २८४ और ३१८)

अच्युत–आर्यावर्तके राजाओमे से एक। प्रयाग-स्तम्भ लेख के अनुसार समुद्रगुप्त (३३०–३७५ ई०) ने उसको पराजित कर उसका राज्य छीन लिया। अच्युत सम्भवत अहिच्छत्रा (उत्तर प्रदेशके बरेली जिलेमे आधुनिक रामनगर) का राजा था।

अच्युतराय–१५२९ से १५४२ ई० तक विजय नगरका शासक। वह कृष्णदेवराय (१५०९ से १५२९ ई० तक) का भाई और उत्तराधिकारी था। वह बलहीन और अत्याचारी स्वभावका था। उसमे शौर्यका अभाव था। बीजापुरके सुल्तान इस्माइल आदिल शाहने उसे हराकर मुदगल और रायचुर दुर्गपर कब्जा कर लिया था।

अजन्ता गुफाएँ और भित्ति चित्र–भारतमे भित्तिचित्रकला-के चरम विकासके उदाहरण। बम्बई (महाराष्ट्र) राज्यकी अजन्ता घाटीमे अनेक गुफाएँ है जिनमे मानव जीवन, पशु-पक्षी जगत् और प्रकृतिका बहुरगी चित्रण मिलता है। इन चित्रोकी रचना पाँचवी शताब्दी ई० से शुरू हुई और सातवी शताब्दी ई० तक होती रही। इन चित्रोकी रेखाएँ बड़ी जीवत है और इनमे रगोके सम्मिश्रणमे ऊँचे दर्जेका कौशल प्रदर्शित किया गया है। इन चित्रोमे मुख्यत अलकरण कलाका प्रदर्शन किया गया है और उसका स्तर समकालीन इतालवी और दक्षिण यूरोपीय कलासे उच्चकोटिका है। अजन्ताके भित्तिचित्रोमे जो मानवीय आकृतियाँ और प्राकृतिक दृश्य अकित है वे दाक्षिणात्य शैलीके है। वहाकी वास्तुकला भी दक्षिणकी है और उसका सम्बन्ध उत्तर भारतकी वास्तुकला और भित्तिचित्र-कलासे नगण्य है। (फर्गूसन एड बर्जेज–'दि केव टेम्पिल आफ इंडिया; हवेल'–इडियन स्कल्पचर एंड पेंटिंग; स्मिथ–हिस्ट्री आफ फाईन आर्ट्स इन इंडिया एड सीलोन; अजन्ता फ्रेस्कोज)

अजमेर–नगरकी स्थापना ११०० ई० मे चौहान राजा अजयदेवने की। ११९२ ई० मे तरावडीकी दूसरी लडाई-मे शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीके द्वारा पृथ्वीराजके पराजित होनेपर इस नगरपर मुसलमानोका अधिकार हो गया और तबसे यह बराबर मुसलमानी शासनमे रहा। अकबर-ने इसे अपने राज्यका एक सूबा बना दिया।

अजयदेव–गुजरातका शासक (११७४–७६ ई०)। उसने जैन मतावलम्बियोपर क्रूर अत्याचार किये और उनके नेताको मरवा डाला।

अजयदेव–एक चौहान राजा, जिसने ११०० ई० मे अजमेर नगरकी स्थापना की। उसने और उसकी रानी सोमलादेवी-ने अपने सिक्के चलाये, जिनमे से कुछ पाये गये हैं।

अजातशत्रु–(जिसे कूणिक भी कहते है) मगधके राजा बिम्बिसारका पुत्र और उत्तराधिकारी। वह गौतम बुद्ध-का समकालीन था। जनश्रुतियोके अनुसार अजातशत्रु अपने पिताकी हत्या करके राजगद्दीपर बैठा था। वह शक्तिशाली राजा था और उसने वैशालीपर विजय प्राप्त करके तथा कोसलके राजा प्रसेनजितको पराजित करके काशी प्रदेश अपने राज्यमे मिला लिया और कोसल-की एक राजकन्यासे विवाह करके मगध राज्यका विस्तार किया। उसने गगा और सोनके सगमपर पाटलि ग्राममे किला बनवाया और पाटलीपुत्र नगरकी नींव डाली। उसके राज्यकालमे ही जैन तीर्थंकर महावीर और बौद्ध धर्मके प्रवर्तक भगवान गौतम बुद्धका निर्वाण हुआ। अजातशत्रु जैन और बौद्ध दोनोका आदर करता था। भगवान बुद्धके भिक्षुसघमे फूट डालनेवाले उनके चचेरे भाई देवदत्तको भी उसका सरक्षण प्राप्त था। जन-श्रुतियोके अनुसार गौतम बुद्धके निर्वाणके बाद ही, राज-ग्रहमे उसके राज्यकालमे बौद्धोकी प्रथम सगीति हुई थी। उसका राज्यकाल ई० पू० ५१९ से ई० पू० ४८९ के आस-पास माना जाता है।

अज़ारी, शेख–एक शायर, जो खुरासानसे नवें बहमनी सुल्तान अहमद (१४२२–३३ ई०) के दरबारमें आया और जिसे सुल्तानने अपनी नयी राजधानी बीदरके महलकी तारीफमें दो कसीदे लिखनेके लिए बहुत-सा धन दिया ।

अज़ीजउद्दीन–१६वें मुगल बादशाह आलमगीर द्वितीय (१७५४–५९ ई०) (दे०) का मूल नाम ।

अजीत सिंह–मारवाड़के राजा जसवन्त सिंहका पुत्र । उसका जन्म १६७९ ई० में लाहौरमें पिताकी मृत्युके बाद हुआ । अजीत सिंहको दिल्ली लाया गया जहाँ औरंगजेब उसे मुसलमान बना लेना चाहता था । राठौर सरदार दुर्गादास बड़े साहसके साथ अजीत सिंहको दिल्लीसे निकाल कर मारवाड़ ले गया । अजीतसिंहके मामलेको लेकर मारवाड़के राठौर सरदारों और मेवाड़के राणा तथा औरंगजेबमें लम्बा युद्ध छिड़ गया जो १७०९ ई० तक चला, जब औरंगजेबकी मृत्युके बाद उसके लड़के और उत्तराधिकारी बादशाह बहादुर शाह प्रथमने राजपूतोंसे सुलह कर ली । अजीतसिंहने अपनी कन्याका विवाह बादशाह फर्रुखसियरसे किया और उससे सुलह कर ली, जिससे मुगल दरबारमें उसका प्रभाव बढ़ गया । सैयद बन्धुओंने उसकी सहायता माँगी और उसको अजमेर-गुजरातका सूबेदार नियुक्त कर दिया । इस प्रकार अजमेरसे पश्चिमी समुद्र तटतकका प्रदेश उसके अधीन हो गया । उसे हिन्दुओंको संगठित करके मुगल सल्तनतका तख्ता पलट देनेका एक अच्छा अवसर मिला था, किन्तु उसने कोई लाभ नहीं उठाया । उसके लड़के भक्तसिंहने रहस्यमय रीतिसे उसकी हत्या कर दी ।

अज़ीमुद्दौला–१८०१ ई० में गवर्नर जनरल लार्ड वेलेजली (१७९८–१८०५ ई०) द्वारा कर्नाटकका नाम मात्रके लिए नवाब बनाया गया और उसे पेंशन दी । कर्नाटकका पूरा नागरिक और सैनिक प्रशासन ईस्ट इंडिया कम्पनीने अपने हाथमें ले लिया था और बादमें पूरे क्षेत्रको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया गया ।

अजीम-उल्लाह खाँ–पेशवा बाजीराव द्वितीय (१७९६-१८१८) के पुत्र नाना साहब (दे०) का वेतन-भोगी कर्मचारी । उसने १८५७ ई० का सिपाही विद्रोह करानेमें गुप्तरूपसे भाग लिया । उसने भारतीयोंमें अंग्रेज-विरोधी भावनाएँ उभाड़ीं । ऐसा समझा जाता है कि जब यूरोपमें क्रीमियाकी लड़ाई चल रही थी तो वह यूरोप गया और उसने नाना साहब और रूसियोंमें सन्धि करानेका प्रयास किया । वह इस प्रयासमें सफल नहीं हुआ, लेकिन उसने वापस लौटकर अनेक ऐसे वृत्तान्त प्रचारित किये, जिनसे भारतीयोंके मनमें बैठी अंग्रेजोंके अजेय होनेकी भावना नष्ट हो गयी । अजीम-उल्लाहके विवरणसे भारतीय सिपाहियोंके मनमें भी कुछ सीमातक अंग्रेजोंके विरुद्ध सफलता प्राप्त करनेका उत्साह जाग्रत हुआ ।

अज़ीमुश्शान, शाहज़ादा–सातवें मुगल बादशाह बहादुरशाह प्रथम (१७०७–१७१२ ई०) का दूसरा पुत्र, जो अपने पिताकी मृत्युके बाद १७१२ ई० में उत्तराधिकारके युद्धमें मारा गया । एक वर्ष बाद उसका पुत्र फर्रुखसियर (१७१३–१७१९ ई०) बादशाह बना ।

अटाला मसजिद–जौनपुरमें शर्की राजवंशके इब्राहीमशाह (१४०२–३८ ई०) ने १४०८ ई० में बनवायी । यह इमारत जौनपुर वास्तुकलाका उत्तम नमूना है । इसमें मीनारें नहीं हैं जो सामान्य रूप से मसजिदों में होती हैं । (ए० फुहरर–शर्की आर्किटेक्चर आफ जौनपुर)

अतिशा–प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु और धर्म-प्रचारक । उसका जन्म ९८१ ई० में पूर्वी भारतके एक सम्पन्न जमींदार परिवारमें साहोर अथवा जाहोर नामक स्थानपर हुआ जिसे कुछ लोग बंगालमें बताते हैं । उसके पिताका नाम कल्याण श्री और माताका नाम पद्मप्रभा था । माता पिताने उसका नाम चन्द्रगर्भ रखा था । प्रारम्भिक जीवनमें वह साधारण गृहस्थ और तारादेवीका उपासक था । युवा होनेके बाद उसने बौद्ध सिद्धान्तोंका अध्ययन किया और शीघ्र ही बौद्ध धर्मका प्रचुर ज्ञान अर्जित कर लिया । उड्यन्तपुर-विहारके आचार्य शीलभद्रने जहाँ अतिशा अध्ययन कर रहा था, उसे 'दीपकर श्रीज्ञान' उपाधिसे विभूषित किया । बादमें तिब्बती लोगोंने उसे अतिशा नामसे पुकारना शुरू कर दिया । शीघ्र ही लोग उसके असली नाम चन्द्रगर्भ को भूल गये और वह अतिशा दीपकर श्रीज्ञानके नामसे अमर हो गया । वह ३१ वर्षकी आयुमें भिक्षु हो गया और अगले १२ वर्ष उसने भारत और भारतके बाहर अध्ययन और योगाभ्यासमें बिताये । वह पेगू (बरमा) और श्रीलंका गया । विदेशोंमें अध्ययन करनेके बाद जब वह लौटा तो पालवंशके राजा न्यायपालने उसे विक्रमशिला विहारका कुलपति बना दिया । उसकी विद्वत्ता और धर्म्मशीलताकी ख्याति देश-देशान्तरमें फैली और तिब्बतके राजाने तिब्बत आकर वहाँ फिरसे बौद्ध धर्मका प्रचार करनेके लिए उसे निमंत्रित किया । उस समय अतिशाकी अवस्था ६० वर्षकी थी लेकिन तिब्बतके राजाका अनवरत आग्रह वह अस्वीकार नहीं कर सका । दो तिब्बती भिक्षुओंके साथ अतिशाने विक्रम-शिलासे तिब्बतकी कठिन यात्रा नेपाल होकर पूरी की ।

पुत्र। 'महाबोधिवंश'के अनुसार उग्रसेन नन्दवंशका संस्थापक था। (पी० एच० ए० आई०, पृष्ठ २३२, मैक् क्रिंडिल—दि इन्वेजन आफ इण्डिया बाइ एलेक्जेंडर, पृष्ठ २२९)

अग्रमहिषी—शक राजाओंके समयमें पट रानीको अग्रमहिषी-की उपाधिसे विभूषित किया जाता था, उदाहरणके लिए 'नागनिका'। (पी० एच० ए० आई०, पृष्ठ ५१७)

अग्रोनोमोइ—यूनानी लेखक स्त्राबोके अनुसार, चन्द्रगुप्त मौर्यके समयसे अग्रोनोमोइ नामक अधिकारी नदियोंकी देखभाल, भूमिकी नापजोख, जलाशयोंका निरीक्षण और नहरोंकी देखभाल करते थे, ताकि सभी लोगोंको पानी ठीकसे मिल सके। यह अधिकारी शिकारियोंपर भी नियंत्रण रखता था और उसको लोगोंको पुरस्कृत और दंड देनेका अधिकार था। वह-कर वसूलता था और भूमिके स्वामित्व सम्बन्धी मामलोंका भी निरीक्षण करता था। सार्वजनिक सडकोंका निर्माण और दस-दस स्टैडियाकी दूरीपर स्तंभ लगानेके कामका निरीक्षण भी यही अधिकारी करता था। वह ग्रामोंका शासन भी करता था। इसकी पहचान कौटिल्य अर्थशास्त्रमें वर्णित 'अध्यक्ष' और अशोकके शिलालेखोंमें वर्णित 'राजुक'से की जाती है। (स्त्राबो, खंड ३, पृष्ठ १०३ और पी० एच० ए० आई०, पृष्ठ संख्या २८४ और ३१८)

अच्युत—आर्यावर्तके राजाओंमें से एक। प्रयाग-स्तम्भ लेख के अनुसार समुद्रगुप्त (३३०–३७५ ई०) ने उसको पराजित कर उसका राज्य छीन लिया। अच्युत सम्भवत अहिच्छत्रा (उत्तर प्रदेशके बरेली जिलेमें आधुनिक रामनगर) का राजा था।

अच्युतराय—१५२९ से १५४२ ई० तक विजय नगरका शासक। वह कृष्णदेवराय (१५०९ से १५२९ ई० तक) का भाई और उत्तराधिकारी था। वह बलहीन और अत्या-चारी स्वभावका था। उसमें शौर्यका अभाव था। बीजापुरके सुल्तान इस्माइल आदिल शाहने उसे हराकर मुदगल और रायचुर दुर्गपर कब्जा कर लिया था।

अजन्ता गुफाएँ और भित्ति चित्र—भारतमें भित्तिचित्रकला-के चरम विकासके उदाहरण। बम्बई (महाराष्ट्र) राज्यकी अजन्ता घाटीमें अनेक गुफाएँ हैं जिनमें मानव जीवन, पशु-पक्षी जगत् और प्रकृतिका बहुरंगी चित्रण मिलता है। इन चित्रोंकी रचना पाँचवीं शताब्दी ई० में शुरू हुई और सातवीं शताब्दी ई० तक होती रही। इन चित्रोंकी रेखाएँ बडी जीवंत हैं और इनमें रंगोंके सम्मि-श्रणमें ऊँचे दर्जेका कौशल प्रदर्शित किया गया है। इन चित्रोंमें मुख्यत अलंकरण कलाका प्रदर्शन किया गया है और उसका स्तर रामकालीन इतालवी और दक्षिण यूरोपीय कलासे उच्चकोटिका है। अजन्ताके भित्तिचित्रोंमें जो मानवीय आकृतियाँ और प्राकृतिक दृश्य अंकित हैं वे दाक्षिणात्य शैलीके हैं। वहाँकी वास्तुकला भी दक्षिणकी है और उसका सम्बन्ध उत्तर भारतकी वास्तुकला और भित्तिचित्र-कलासे नगण्य है। (**फर्गूसन एंड बर्जेज—'दि केव टेम्पिल्स आफ इंडिया; हरवेल'—इंडियन स्कल्पचर एंड पेंटिंग; स्मिथ—हिस्ट्री आफ फाईन आर्ट्स इन इंडिया एंड सीलोन; अजन्ता फ्रेस्कोस**)

अजमेर—नगरकी स्थापना ११०० ई० में चौहान राजा अजयदेवने की। ११९२ ई० में तरावडीकी दूसरी लडाई-में शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीके द्वारा पृथ्वीराजके पराजित होनेपर इस नगरपर मुसलमानोंका अधिकार हो गया और तबसे यह बराबर मुसलमानी शासनमें रहा। अकबर-ने इसे अपने राज्यका एक सूबा बना दिया।

अजयदेव—गुजरातका शासक (११७४–७६ ई०)। उसने जैन मतावलम्बियोंपर क्रूर अत्याचार किये और उनके नेताको मरवा डाला।

अजयदेव—एक चौहान राजा, जिसने ११०० ई० में अजमेर नगरकी स्थापना की। उसने और उसकी रानी सोमलादेवी-ने अपने सिक्के चलाये, जिनमें से कुछ पाये गये हैं।

अजातशत्रु—(जिसे कूणिक भी कहते हैं) मगधके राजा बिम्बिसारका पुत्र और उत्तराधिकारी। वह गौतम बुद्ध-का समकालीन था। जनश्रुतियोंके अनुसार अजातशत्रु अपने पिताकी हत्या करके राजगद्दीपर बैठा था। वह शक्तिशाली राजा था और उसने वैशालीपर विजय प्राप्त करके तथा कोसलके राजा प्रसेनजितको पराजित करके काशी प्रदेश अपने राज्यमें मिला लिया और कोसल-की एक राजकन्यासे विवाह करके मगध राज्यका विस्तार किया। उसने गंगा और सोनके संगमपर पाटलि ग्राममें किला बनवाया और पाटलीपुत्र नगरकी नींव डाली। उसके राज्यकालमें ही जैन तीर्थंकर महावीर और बौद्ध धर्मके प्रवर्तक भगवान गौतम बुद्धका निर्वाण हुआ। अजातशत्रु जैन और बौद्ध दोनोंका आदर करता था। भगवान बुद्धके भिक्षुसंघमें फूट डालनेवाले उनके चचेरे भाई देवदत्तको भी उसका संरक्षण प्राप्त था। जन-श्रुतियोंके अनुसार गौतम बुद्धके निर्वाणके बाद ही, राज-गृहमें उसके राज्यकालमें बौद्धोंकी प्रथम संगीति हुई थी। उसका राज्यकाल ई० पू० ५१६ से ई० पू० ४८९ के आस-पास माना जाता है।

अन्सारी, शेख—एक शायर, जो खुरासानसे नवें बहमनी सुल्तान अहमद (१४२२–३३ ई०) के दरबारमें आया और जिसे सुल्तानने अपनी नयी राजधानी बीदरके महलकी तारीफमें दो कसीदे लिखनेके लिए बहुत-सा धन दिया।

अजीजउद्दीन—१६वें मुगल बादशाह आलमगीर द्वितीय (१७५४–५९ ई०) (दे०) का मूल नाम।

अजीत सिंह—मारवाड़के राजा जसवन्त सिंहका पुत्र। उसका जन्म १६७९ ई० में लाहौरमें पिताकी मृत्युके बाद हुआ। अजीत सिंहको दिल्ली लाया गया जहाँ औरंगजेब उसे मुसलमान बना लेना चाहता था। राठौर सरदार दुर्गादास बड़े साहसके साथ अजीत सिंहको दिल्लीसे निकाल कर मारवाड़ ले गया। अजीतसिंहके मामलेको लेकर मारवाड़के राठौर सरदारों और मेवाड़के राणा तथा औरंगजेबमें लम्बा युद्ध छिड़ गया जो १७०९ ई० तक चला, जब औरंगजेबकी मृत्युके बाद उसके लड़के और उत्तराधिकारी बादशाह बहादुर शाह प्रथमने राजपूतोंसे सुलह कर ली। अजीतसिंहने अपनी कन्याका विवाह बादशाह फर्रुखसियरसे किया और उससे सुलह कर ली, जिससे मुगल दरबारमें उसका प्रभाव बढ़ गया। सैयद बन्धुओंने उसकी सहायता माँगी और उसको अजमेर-गुजरातका सूबेदार नियुक्त कर दिया। इस प्रकार अजमेरसे पश्चिमी समुद्र तटतकका प्रदेश उसके अधीन हो गया। उसे हिन्दुओंको संगठित करके मुगल सल्तनतका तख्ता पलट देनेका एक अच्छा अवसर मिला था, किन्तु उसने कोई लाभ नहीं उठाया। उसके लड़के भक्तसिंहने रहस्यमय रीतिसे उसकी हत्या कर दी।

अजीमुद्दौला—१८०१ ई० में गवर्नर जनरल लार्ड वेलेजली (१७९८–१८०५ ई०) द्वारा कर्नाटकका नाम मात्रके लिए नवाब बनाया गया और उसे पेंशन दी। कर्नाटकका पूरा नागरिक और सैनिक प्रशासन ईस्ट इंडिया कम्पनीने अपने हाथमें ले लिया था और बादमें पूरे क्षेत्रको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया गया।

अजीम-उल्लाह खां—पेशवा बाजीराव द्वितीय (१७९६-१८१८) के पुत्र नाना साहब (दे०) का वेतन-भोगी कर्मचारी। उसने १८५७ ई० का सिपाही विद्रोह करानेमें गुप्तरूपसे भाग लिया। उसने भारतीयोंमें अंग्रेज-विरोधी भावनाएँ उभाड़ीं। ऐसा समझा जाता है कि जब यूरोपमें क्रीमियाकी लड़ाई चल रही थी तो वह यूरोप गया और उसने नाना साहब और रूसियोंमें सन्धि करानेका प्रयास किया। वह इस प्रयासमें सफल नहीं हुआ, लेकिन उसने वापस लौटकर अनेक ऐसे वृत्तान्त प्रचारित किये, जिनसे भारतीयोंके मनमें बैठी अंग्रेजोंके अजेय होनेकी भावना नष्ट हो गयी। अजीम-उल्लाहके विवरणसे भारतीय सिपाहियोंके मनमें भी कुछ सीमातक अंग्रेजोंके विरुद्ध सफलता प्राप्त करनेका उत्साह जाग्रत हुआ।

अजीमुश्शान, शाहजादा—सातवें मुगल बादशाह बहादुरशाह प्रथम (१७०७–१७१२ ई०) का दूसरा पुत्र, जो अपने पिताकी मृत्युके बाद १७१२ ई० में उत्तराधिकारके युद्धमें मारा गया। एक वर्ष बाद उसका पुत्र फर्रुखसियर (१७१३–१७१९ ई०) बादशाह बना।

अटाला मसजिद—जौनपुरमें शर्की राजवंशके इब्राहीमशाह (१४०२–३८ ई०) ने १४०८ ई० में बनवायी। यह इमारत जौनपुर वास्तुकलाका उत्तम नमूना है। इसमें मीनारें नहीं हैं जो सामान्य रूप से मसजिदों में होती हैं। (ए० फुहरर—शर्की आर्कीटेक्चर आफ जौनपुर)

अतिशा—प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु और धर्म-प्रचारक। उसका जन्म ९८१ ई० में पूर्वी भारतके एक सम्पन्न जमींदार परिवारमें साहोर अथवा जाहोर नामक स्थानपर हुआ जिसे कुछ लोग बंगालमें बताते हैं। उसके पिताका नाम कल्याण श्री और माताका नाम पद्मप्रभा था। माता पिताने उसका नाम चन्द्रगर्भ रखा था। प्रारम्भिक जीवनमें वह साधारण गृहस्थ और तारादेवीका उपासक था। युवा होनेके बाद उसने बौद्ध सिद्धान्तोंका अध्ययन किया और शीघ्र ही बौद्ध धर्मका प्रचुर ज्ञान अर्जित कर लिया। उड्डन्तपुर-विहारके आचार्य शीलभद्रने जहाँ अतिशा अध्ययन कर रहा था, उसे 'दीपकर श्रीज्ञान' उपाधिसे विभूषित किया। बादमें तिब्बती लोगोंने उसे अतिशा नामसे पुकारना शुरू कर दिया। शीघ्र ही लोग उसके असली नाम चन्द्रगर्भ को भूल गये और वह अतिशा दीपकर श्रीज्ञानके नामसे अमर हो गया। वह ३१ वर्षकी आयुमें भिक्षु हो गया और अगले १२ वर्ष उसने भारत और भारतके बाहर अध्ययन और योगाभ्यासमें बिताये। वह पेगू (बरमा) और श्रीलंका गया। विदेशोंसे अध्ययन करनेके बाद जब वह लौटा तो पालवंशके राजा न्यायपालने उसे विक्रमशिला विहारका कुलपति बना दिया। उसकी विद्वत्ता और धर्म्मशीलताकी ख्याति देश-देशान्तरमें फैली और तिब्बतके राजाने तिब्बत आकर वहाँ फिरसे बौद्ध धर्मका प्रचार करनेके लिए उसे निमंत्रित किया। उस समय अतिशाकी अवस्था ६० वर्षकी थी, लेकिन तिब्बतके राजाका अनवरत आग्रह वह अस्वीकार नहीं कर सका। दो तिब्बती भिक्षुओंके साथ अतिशाने विक्रम-शिलासे तिब्बतकी कठिन यात्रा नेपाल होकर पूरी की।

पुत्र। 'महाबोधिवंश'के अनुसार उग्रसेन नन्दवंशका संस्थापक था। (पी० एच० ए० आई०, पृष्ठ २३२, मैक् क्रिंडिल—दि इन्वेजन आफ इण्डिया बाइ एलेक्जेंडर, पृष्ठ २२२)

अग्रमहिषी—शक राजाओंके समयमें पट रानीको अग्रमहिषी-की उपाधिसे विभूषित किया जाता था, उदाहरणके लिए 'नागनिको'। (पी० एच० ए० आई०, पृष्ठ ५१७)

अग्रोनोमोइ—यूनानी लेखक स्त्राबोके अनुसार, चन्द्रगुप्त मौर्यके समयसे अग्रोनोमोइ नामक अधिकारी नदियोंकी देखभाल, भूमिकी नापजोख, जलाशयोंका निरीक्षण और नहरोंकी देखभाल करते थे, ताकि सभी लोगोंको पानी ठीकसे मिल सके। यह अधिकारी शिकारियोंपर भी नियंत्रण रखता था और उसको लोगोंको पुरस्कृत और दंड देनेका अधिकार था। वह कर वसूलता था और भूमिके स्वामित्व सम्बन्धी मामलोंका भी निरीक्षण करता था। सार्वजनिक सड़कोंका निर्माण और दस-दस स्टैडियाकी दूरीपर स्तंभ लगानेके कामका निरीक्षण भी यही अधिकारी करता था। वह ग्रामोंका शासन भी करता था। इसकी पहचान कौटिल्य अर्थशास्त्रमें वर्णित 'अध्यक्ष' और अशोकके शिलालेखोंमें वर्णित 'राजुक'से की जाती है। (**स्त्राबो, खंड ३, पृष्ठ १०३ और पी० एच० ए० आई०, पृष्ठ संख्या २८४ और ३१८**)

अच्युत—आर्यावर्तके राजाओंमें से एक। प्रयाग-स्तम्भ लेख के अनुसार समुद्रगुप्त (३३०—३७५ ई०) ने उसको पराजित कर उसका राज्य छीन लिया। अच्युत सम्भवतः अहिच्छत्रा (उत्तर प्रदेशके बरेली जिलेमें आधुनिक रामनगर) का राजा था।

अच्युतराय—१५२९ से १५४२ ई० तक विजय नगरका शासक। वह कृष्णदेवराय (१५०९ से १५२९ ई० तक) का भाई और उत्तराधिकारी था। वह बलहीन और अत्याचारी स्वभावका था। उसमें शौर्यका अभाव था। बीजापुरके सुल्तान इस्माइल आदिल शाहने उसे हराकर मुदगल और रायचुर दुर्गपर कब्जा कर लिया था।

अजन्ता गुफाएँ और भित्ति चित्र—भारतमें भित्तिचित्रकलाके चरम विकासके उदाहरण। बम्बई (महाराष्ट्र) राज्यकी अजन्ता घाटीमें अनेक गुफाएँ हैं जिनमें मानव जीवन, पशु-पक्षी जगत् और प्रकृतिका बहुरंगी चित्रण मिलता है। इन चित्रोंकी रचना पाँचवी शताब्दी ई० में शुरू हुई और सातवीं शताब्दी ई० तक होती रही। इन चित्रोंकी रेखाएँ बड़ी जीवंत हैं और इनमें रंगोंके सम्मिश्रणमें ऊँचे दर्जेका कौशल प्रदर्शित किया गया है। इन चित्रोंमें मुख्यतः अलंकरण कलाका प्रदर्शन किया गया है और उसका स्तर समकालीन इतालवी और दक्षिण यूरोपीय कलासे उच्चकोटिका है। अजन्ताके भित्तिचित्रोंमें जो मानवीय आकृतियाँ और प्राकृतिक दृश्य अंकित हैं वे दाक्षिणात्य शैलीके हैं। वहाँकी वास्तुकला भी दक्षिणकी है और उसका सम्बन्ध उत्तर भारतकी वास्तुकला और भित्तिचित्र-कलासे नगण्य है। (**फर्गूसन एंड बर्जेस—'दि केव टेम्पिल आफ इंडिया'; हैवेल'—इंडियन स्कल्पचर एंड पेंटिंग; स्मिथ—हिस्ट्री आफ फाईन आर्ट्स इन इंडिया एंड सीलोन' अजन्ता फ्रेस्कोस**)

अजमेर—नगरकी स्थापना ११०० ई० में चौहान राजा अजयदेवने की। ११९२ ई० में तरावड़ीकी दूसरी लड़ाईमें शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीके द्वारा पृथ्वीराजके पराजित होनेपर इस नगरपर मुसलमानोंका अधिकार हो गया और तबसे यह बराबर मुसलमानी शासनमें रहा। अकबरने इसे अपने राज्यका एक सूबा बना दिया।

अजयदेव—गुजरातका शासक (११७४—७६ ई०)। उसने जैन मतावलम्बियोंपर क्रूर अत्याचार किये और उनके नेताको मरवा डाला।

अजयदेव—एक चौहान राजा, जिसने ११०० ई० में अजमेर नगरकी स्थापना की। उसने और उसकी रानी सोमलादेवीने अपने सिक्के चलाये, जिनमें से कुछ पाये गये हैं।

अजातशत्रु—(जिसे कूणिक भी कहते हैं) मगधके राजा बिम्बिसारका पुत्र और उत्तराधिकारी। वह गौतम बुद्धका समकालीन था। जनश्रुतियोंके अनुसार अजातशत्रु अपने पिताकी हत्या करके राजगद्दीपर बैठा था। वह शक्तिशाली राजा था और उसने वैशालीपर विजय प्राप्त करके तथा कोसलके राजा प्रसेनजितको पराजित करके काशी प्रदेश अपने राज्यमें मिला लिया और कोसलकी एक राजकन्यासे विवाह करके मगध राज्यका विस्तार किया। उसने गंगा और सोनके संगमपर पाटलि ग्राममें किला बनवाया और पाटलीपुत्र नगरकी नींव डाली। उसके राज्यकालमें ही जैन तीर्थंकर महावीर और बौद्ध धर्मके प्रवर्तक भगवान गौतम बुद्धका निर्वाण हुआ। अजातशत्रु जैन और बौद्ध दोनोंका आदर करता था। भगवान बुद्धके भिक्षुसंघमें फूट डालनेवाले उनके चचेरे भाई देवदत्तको भी उसका संरक्षण प्राप्त था। जनश्रुतियोंके अनुसार गौतम बुद्धके निर्वाणके बाद ही, राजगृहमें उसके राज्यकालमें बौद्धोंकी प्रथम संगीति हुई थी। उसका राज्यकाल ई० पू० ५१६ से ई० पू० ४८९ के आसपास माना जाता है।

अज़ारी, शेख–एक शायर, जो खुरासानसे नवें बहमनी सुल्तान अहमद (१४२२–३३ ई०) के दरबारमें आया और जिसे सुल्तानने अपनी नयी राजधानी बीदरके महलकी तारीफमें दो कसीदे लिखनेके लिए बहुत-सा धन दिया।

अज़ीज़उद्दीन–१९वें मुगल बादशाह आलमगीर द्वितीय (१७५४–५९ ई०) (दे०) का मूल नाम।

अजीत सिंह–मारवाड़के राजा जसवन्त सिंहका पुत्र। उसका जन्म १६७९ ई० में लाहौरमें पिताकी मृत्युके बाद हुआ। अजीत सिंहको दिल्ली लाया गया जहाँ औरंगजेब उसे मुसलमान बना लेना चाहता था। राठौर सरदार दुर्गादास बड़े साहसके साथ अजीत सिंहको दिल्लीसे निकाल कर मारवाड़ ले गया। अजीतसिंहके मामलेको लेकर मारवाड़के राठौर सरदारों और मेवाड़के राणा तथा औरंगजेबमें लम्बा युद्ध छिड़ गया जो १७०९ ई० तक चला, जब औरंगजेबकी मृत्युके बाद उसके लड़के और उत्तराधिकारी बादशाह बहादुर शाह प्रथमने राजपूतोंसे सुलह कर ली। अजीतसिंहने अपनी कन्याका विवाह बादशाह फर्रुखसियरसे किया और उससे सुलह कर ली, जिससे मुगल दरबारमें उसका प्रभाव बढ़ गया। सैयद बन्धुओंने उसकी सहायता माँगी और उसको अजमेर-गुजरातका सूबेदार नियुक्त कर दिया। इस प्रकार अजमेरसे पश्चिमी समुद्र तटतकका प्रदेश उसके अधीन हो गया। उसे हिन्दुओंको संगठित करके मुगल सल्तनतका तख्ता पलट देनेका एक अच्छा अवसर मिला था, किन्तु उसने कोई लाभ नहीं उठाया। उसके लड़के भक्तसिंहने रहस्यमय रीतिसे उसकी हत्या कर दी।

अज़ीमुद्दौला–१८०१ ई० में गवर्नर जनरल लार्ड वेलेजली (१७९८–१८०५ ई०) द्वारा कर्नाटकका नाम मात्रके लिए नवाब बनाया गया और उसे पेंशन दी। कर्नाटकका पूरा नागरिक और सैनिक प्रशासन ईस्ट इंडिया कम्पनीने अपने हाथमें ले लिया था और बादमें पूरे क्षेत्रको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया गया।

अज़ीम-उल्लाह खाँ–पेशवा बाजीराव द्वितीय (१७९६-१८१८) के पुत्र नाना साहब (दे०) का वेतन-भोगी कर्मचारी। उसने १८५७ ई० का सिपाही विद्रोह करानेमें गुप्तरूपसे भाग लिया। उसने भारतीयोंमें अंग्रेज-विरोधी भावनाएँ उभाड़ीं। ऐसा समझा जाता है कि जब यूरोपमें क्रीमियाकी लड़ाई चल रही थी तो वह यूरोप गया और उसने नाना साहब और रूसियोंमें सन्धि करानेका प्रयास किया। वह इस प्रयासमें सफल नहीं हुआ, लेकिन उसने वापस लौटकर अनेक ऐसे वृत्तान्त प्रचारित किये, जिनसे भारतीयोंके मनमें बैठी अंग्रेजोंके अजेय होनेकी भावना नष्ट हो गयी। अजीम-उल्लाहके विवरणसे भारतीय सिपाहियोंके मनमें भी कुछ सीमातक अंग्रेजोंके विरुद्ध सफलता प्राप्त करनेका उत्साह जाग्रत हुआ।

अज़ीमुश्शान, शाहज़ादा–सातवें मुगल बादशाह बहादुरशाह प्रथम (१७०७–१७१२ ई०) का दूसरा पुत्र, जो अपने पिताकी मृत्युके बाद १७१२ ई० में उत्तराधिकारके युद्धमें मारा गया। एक वर्ष बाद उसका पुत्र फर्रुखसियर (१७१३–१७१९ ई०) बादशाह बना।

अटाला मसजिद–जौनपुरमें शर्की राजवंशके इब्राहीमशाह (१४०२–३८ ई०) ने १४०८ ई० में बनवायी। यह इमारत जौनपुर वास्तुकलाका उत्तम नमूना है। इसमें मीनारें नहीं हैं जो सामान्य रूप से मसजिदों में होती हैं। (ए० फुहरर–सर्की आर्कीटेक्चर आफ़ जौनपुर)

अतिशा–प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु और धर्म-प्रचारक। उसका जन्म ९८१ ई० में पूर्वी भारतके एक सम्पन्न जमींदार परिवारमें साहोर अथवा जाहोर नामक स्थानपर हुआ जिसे कुछ लोग बंगालमें बताते हैं। उसके पिताका नाम कल्याण श्री और माताका नाम पद्मप्रभा था। माता पिताने उसका नाम चन्द्रगर्भ रखा था। प्रारम्भिक जीवनमें वह साधारण गृहस्थ और तारादेवीका उपासक था। युवा होनेके बाद उसने बौद्ध सिद्धान्तोंका अध्ययन किया और शीघ्र ही बौद्ध धर्मका प्रचुर ज्ञान अर्जित कर लिया। उड्यन्तपुर-बिहारके आचार्य शीलभद्रने जहाँ अतिशा अध्ययन कर रहा था, उसे 'दीपकर श्रीज्ञान' उपाधिसे विभूषित किया। बादमें तिब्बती लोगोंने उसे अतिशा नामसे पुकारना शुरू कर दिया। शीघ्र ही लोग उसके असली नाम चन्द्रगर्भ को भूल गये और वह अतिशा दीपकर श्रीज्ञानके नामसे अमर हो गया। वह ३१ वर्षकी आयुमें भिक्षु हो गया और अगले १२ वर्ष उसने भारत और भारतके बाहर अध्ययन और योगाभ्यासमें बिताये। वह पेगू (बरमा) और श्रीलंका गया। विदेशोंमें अध्ययन करनेके बाद जब वह लौटा तो पालवंशके राजा न्यायपालने उसे विक्रमशिला विहारका कुलपति बना दिया। उसकी विद्वत्ता और धर्मशीलताकी ख्याति देश-देशान्तरमें फैली और तिब्बतके राजाने तिब्बत आकर वहाँ फिरसे बौद्ध धर्मका प्रचार करनेके लिए उसे निमंत्रित किया। उस समय अतिशाकी अवस्था ६० वर्षकी थी, लेकिन तिब्बतके राजाका अनवरत आग्रह वह अस्वीकार नहीं कर सका। दो तिब्बती भिक्षुओंके साथ अतिशाने विक्रम-शिलासे तिब्बतकी कठिन यात्रा नेपाल होकर पूरी की।

तिब्वतमे उसका राजकीय स्वागत किया गया। थालोगका मठ उसको सौप दिया गया, जहाँ भारी सख्यामे तिब्वती भिक्षु जमा हुए। अतिशाने १२ वर्ष तक तिब्वतमे रहकर धर्मका प्रचार किया। उसने स्वय तिब्वती भाषा सीखी और तिब्वती और सस्कृतमे एक सौसे अधिक ग्रन्थ लिखे। उसकी शिक्षाओसे तिब्वतमे बौद्ध धर्ममे प्रविष्ट अनेक बुराइयाँ दूर हो गयी। उसके प्रभावसे तिब्वतमे अनेक बौद्ध भिक्षु हुए जिन्होने उसके बाद भी वहुत वर्षोतक धर्मका प्रचार किया। अतिशाने तिब्वतके अनेक भागोकी यात्राएँ की और १०५४ ई० मे उसने ७३ वर्षकी आयुमे शरीर त्याग दिया। तिब्वती लोगोने उसकी समाधि ने-थाग मठमे राजकीय सम्मानके साथ वनायी। तिब्वती लोग अव भी अतिशाका स्मरण वडे सम्मानके साथ करते है और उसकी मूर्तिकी पूजा वोधिसत्त्वकी मूर्तिकी भाँति करते है। **(एस० सी० दास—इडियन पडित्स इन दि लैण्ड आफ स्नो; सुम्पा खान-पाग—सामजोन जेक पृष्ठ १८५-८७, जी० एम० रोरिक—दि ब्लू एनल्स, पृष्ठ २४०-२६०; निहाररंजन राय-वगलार इतिहास, पृष्ठ ७१६-७१७)**।

अदली—शेरशाह का भतीजा, जो शेरशाह के पुत्र और उत्तराधिकारी इस्लामशाहके बाद १५५४ ई० मे गद्दीपर बैठा। उसने अपना नाम मुहम्मद आदिल शाह रखा। १५५७ ई० मे पानीपतकी दूसरी लडाईके बाद वह पूर्वाचलमे चला गया, जहाँ वगालके राजासे उसकी लडाई हुई जिसमे वह मारा गया।

अदहम खा—बादशाह अकवरकी दूधमा माहम अनगाका लडका था। उसने अकवरको बैरम खाँके विरुद्ध करनेके षड्यत्रमे भाग लिया और अकबरने १५६० ई० मे बैरम खाँको बर्खास्त कर दिया। इसके बाद दो वर्षतक अकवरपर अदहम खाँका भारी प्रभाव रहा। अकवरने मालवा जीतनेके लिए जो सेना भेजी, उसका प्रधान सेनापति अदहम खाँको बनाया। १५६२ ई० मे उसने शम्शुद्दीन अतगा खाँको, जिसे अकबरने अपना मत्री बनाया था, महलके अदर कत्ल कर दिया। इससे वादशाह इतना नाराज हुआ कि उसने उसे किलेकी दीवालसे नीचे फेंककर मार डालनेका हुक्म दिया।

अधिराजेन्द्र—चोलवशका अन्तिम राजा। वह परातक (दे०) का वशधर था। उसने केवल तीन वर्ष (१०७२-७४ ई०) तक राज्य किया और उसकी हत्या कर दी गयी। वह शैव धर्मावलम्बी था और प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य रामानुजसे इतना द्वेष करता था कि उन्हे उसके राज्यकालमे श्रीरगम् छोडकर अन्यत्र चला जाना पडा।

अधिसीम कृष्ण—पौराणिक कालमे हस्तिनापुरका राजा। इसका उल्लेख वायु और मत्स्यपुराणमे आया है। वह कुरुवशी राजा परीक्षितकी चौथी पीढीमे था। परीक्षित महाभारत युद्धके बाद सिहासनपर बैठा था।

अध्यक्ष—कौटिल्यके अर्थशास्त्रके अनुसार विभागोके अधिकारीका पदनाम। जैसे नगराध्यक्ष (नगर-अधिकारी) और वलाध्यक्ष (सेनाका अधिकारी)।

अनंगपाल—तोमर राजवशका एक राजा, जो ११वी शताब्दी ई० के मध्य हुआ। उसने दिल्लीमे उस स्थानपर किला बनवाया जहाँ इस समय कुतुबमीनार है। उसने दिल्ली नगरको राजधानीके रूपमे स्थायित्व प्रदान किया।

अनन्तवर्मा चोडगंग—पूर्वी गग-वशका प्रमुख राजा, जिसने कलिगपर ७१ वर्ष (१०७६—११४७ ई०) राज्य किया। एक समयमे उसका राज्य उत्तरमे गगासे लेकर दक्षिणमे गोदावरीतक फैला हुआ था। उसने पुरीके जगन्नाथ मदिर और पुरी जिलेमे कोणार्कके सूर्य-मदिरका निर्माण कराया। वह हिन्दू धर्म और सस्कृत तथा तेलुगु साहित्यका महान् सरक्षक था।

अनन्द विक्रम सवत्—भारतमे प्रचलित अनेक सवतोमेसे एक। इसका प्रयोग पृथ्वीराज रासोके कवि चदबरदाईने, जो मुसलमानोके आक्रमण (११९२ ई०) के समय दिल्ली नरेश पृथ्वीराजका राज-कवि था, किया है। अनन्दका अर्थ है नो (नौ नन्दो) रहित १०० मेसे ९ घटाने पर ९१ वचते हैं। अर्थात् ईसवी पूर्व ५८—५७ मे आरम्भ होनेवाले सानन्द विक्रम सवत् के ९० या ९१ वर्ष बाद। अतएव अनन्द विक्रम सवत्का आरम्भ ईसवी सन् ३३ मानना चाहिए। **(ज० रा० १९०६, पृ० ५००)**

अनवरुद्दीन (१७४३—४९ ई०)—आरम्भमे निजामुल्मुल्क आसफजाहका कर्मचारी। निजामने प्रसन्न होकर उसको १७४३ ई० मे कर्नाटकका नवाव नियुक्त कर दिया। उसकी राजधानी अर्काट थी। निजामने पहले नवाव दोस्तअलीके लडको और रिश्तेदारो को नवाब नही बनाया। उस समय कर्नाटकमे अशाति फैली हुई थी। मराठे लगातार हमले कर रहे थे और पुराने नवाब मरहूम दोस्तअलीके रिश्तेदार नये नवाबके लिए मुश्किले पैदा कर रहे थे। उस समय अशाति और बढी जब आस्ट्रियाके उत्तराधिकारका युद्ध (१७४०—४८ ई०) शुरू हो गया और कर्नाटकके क्षेत्रमे पाडिचेरी और मद्रासमे स्थित फ्रासीसी और अग्रेज व्यापारी भी आपसमे लडने लगे।

अनवरुद्दीन कर्नाटकके नवावके रूपमे फ्रासीसी और अग्रेज दोनोका सरक्षक था, इसलिए आशा की जाती थी

कि वह अपने राज्यमे उन दोनोको लडनेसे रोकेगा। अंग्रेज और फ्रासीसी दोनो सकटकालमे उसको अपना सरक्षक स्वीकार कर लेते थे। इस तरह युद्धके आरम्भमे जव अधिक नौसैनिक शक्तिके वलपर अंग्रेजोंने फ्रासीसी जहाजोको लूटना शुरू किया तो पाडिचेरीके फ्रासीसी गवर्नर डूप्लेने नवावसे फ्रासीसी जहाजोकी रक्षा करनेकी प्रार्थना की। लेकिन नवावके पास जहाज नही थे, इसलिए अंग्रेजोने उसके विरोधकी धृष्टतापूर्वक उपेक्षा कर दी और अपनी लडाई जारी रखी। लेकिन जव १७४६ ई० मे फ्रासीसियोंने मद्रासपर घेरा डाला तो अंग्रेजोने भी जो अवतक नवावके अधिकारकी उपेक्षा कर रहे थे, नवाव अनवरुद्दीनसे सुरक्षाकी प्रार्थना की। अनवरुद्दीनने सरक्षककी हैसियतसे डूप्लेसे मद्रासका घेरा उठा लेने और शान्ति कायम रखनेके लिए कहा, लेकिन फ्रासीसियोने उसकी एक न सुनी। चूकि अंग्रेजो और फ्रासीसियोकी लडाई यहाँ जमीनपर चल रही थी और अनवरुद्दीनके पास वडी फौज थी, इसीलिए उसने फ्रासीसियोद्वारा डाले गये मद्रासके घेरेको तोडनेके लिए अपनी सेना भेजी। लेकिन नवावकी सेनाके पहुँचनेके पहले ही फ्रासीसियोंने मद्रासपर कब्जा कर लिया। नवावकी सेनाने फ्रासीसियोको मद्रासमे घेर लिया। इसपर छोटी-सी फ्रासीसी सेनाने, जो मद्रासके किलेमे सुरक्षित थी, टिड्डी दल जैसी नवावकी वडी सेनापर छापा मारा और उसे विखरा दिया। नवावकी सेना पीछे हटकर सेट टाम नामक स्थानपर चली आयी, जहाँ एक छोटी-सी फ्रासीसी कुमुकने, जो मद्रासमे घिरी फ्रासीसी सेनाकी सहायताके लिए जा रही थी, उसे पुन हरा दिया। इन पराजयोंके परिणामस्वरूप नवाव अनवरुद्दीनकी हालत अंग्रेजो और फ्रासीसियोके वीच चलनेवाले युद्धके दौरान असहाय दर्शककी वनी रही। इन पराजयोका दूरगामी परिणाम भी निकला। डूप्लेको यह विश्वास हो गया कि छोटी-सी सुशिक्षित फ्रासीसी सेना अपनेसे वहुत वडी भारतीय सेनाको आसानीसे पराजित कर सकती है। डूप्लेने निश्चय कर लिया कि उसकी श्रेष्ठ सैनिक-शक्ति भारतके देशी राजाओके आतरिक मामलोमे निर्भय होकर हस्तक्षेप कर सकती है। इसलिए जव अंग्रेजो और फ्रासीसियोका युद्ध समाप्त हो गया तो डूप्लेने कर्नाटकके पुराने नवावके दामाद चन्दा साहवसे गुप्त सन्धि कर ली जिसमे उसको कर्नाटकका नवाव वनवानेका वादा किया गया था। इस सन्धिके आधारपर चन्दा साहव और फ्रासीसी सेनाओंने अनवरुद्दीनको वेलोरके दक्षिण-पश्चिममे स्थित आम्बूरकी लडाईमे अगस्त १७४९ ई० मे पराजित कर दिया और वह मारा गया।

अनारकली—शाहजादा सलीमकी, जो वादमे वादशाह जहाँगीर (१६०५–२७ ई०) वना, प्रेयसी। वादशाहने १६१५ ई०मे लाहौरमे उसकी कब्रपर सगमरमरका मकवरा तैयार कराया और उसपर एक शेर नक्श कराया जिससे अनारकलीके प्रति उसका गहनप्रेम प्रकट होता है।

अनुरुद्ध—सिंहली ऐतिहासिक अनुश्रुतियोके अनुसार उदायीके तत्काल वाद, राजा अजातशत्रु (५५४–५२७ ई० पू०)का पुत्र, जो मगधकी गद्दीपर वैठा। पुराणोंमे उसका उल्लेख नही मिलता है। सिंहली इतिहासमे भी उसका अधिक विवरण नही मिलता है, सिवा इसके कि वह पितृघातक था।

अन्हिलवाड—आठवी शताब्दीसे १५वी ईसवी शताब्दीतक गुजरातका प्रमुख नगर (अव यहाँपर पाटन नामक नगर है)। अन्हिलवाडके राजा मूलराजने ११७८ ई०मे शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीका आक्रमण विफल कर दिया। मूलराजकी इस विजयसे गुजरात मुसलमानी आधिपत्यसे एक शताब्दीतक वचा रहा।

अपराजित पल्लव—काचीका अन्तिम पल्लव राजा। उसने नवी शताब्दी ई०के उत्तरार्धमे राज्य किया। ८६२-६३ ई०मे उसने पाडय राजा वरगुण वर्माको श्री पुरम्बियाके युद्धमे पराजित किया था, लेकिन वादमे नवी शताब्दीके अन्तिम वर्षोमे वह स्वय चोल राजा आदित्य प्रथम (८८०–९०७ ई०)से पराजित हुआ और मारा गया। अपराजितकी मृत्युके वाद पल्लव राजवशका अन्त हो गया।

अपोलोडोटस—युक्रेटी दसका पुत्र और भारतका एक यवन राजा (१७५–१५६ ई० पू०)। उसने अपने पिताकी हत्या करके उसके रक्तपर अपना रथ चलाया और उसके शवका अतिम सस्कार भी नही करने दिया। उसने अपने नामके सिक्के चलाये। कुछ लोगोका कहना है कि अपोलोडोटस युक्रेटी दसका पुत्र नही वरन् उसका प्रतिद्वन्द्वी था। **(पी० एच० ए० आई०, पृष्ठ ३८६)**

अप्पा साहव—भोसला राजा रघुजी द्वितीय (१७८८–१८१६ ई०)के छोटे भाई व्याकोजीका पुत्र। रघुजी द्वितीयकी १८१६ ई०मे मृत्यु होनेपर उसका नावालिग लडका परसोजी, जो भोंदू किस्मका था, गद्दीपर वैठा। अप्पा साहव उसका सरक्षक नियुक्त किया गया। अप्पासाहवने अपनी शक्ति दृढ करनेके लिए मई १८१६ ई०मे अंग्रेजोसे आश्रित सन्धि कर ली। इस प्रकार नागपुर

राज्य, जिसने रघुजी भोंसला द्वितीयके राज्यकालमे अंग्रेजोंसे इस प्रकारकी सन्धि करनेसे इन्कार कर दिया था, उसकी स्वतत्रता अप्पासाहबके शासनकालमे समाप्त हो गयी। लेकिन जब पेशवा बाजीराव द्वितीयने १८१७ ई०-मे अंग्रेजोके विरुद्ध शस्त्र उठाया तो अप्पासाहबने भी उसका साथ दिया। अंग्रेजोने नवम्बर १८१७ ई०मे उसकी सेनाको सीताबल्डीकी लडाईमे पराजित कर दिया। अप्पा साहब पहले पजाब भाग गया और बादमे जोधपुर चला गया जहाँ १८४० ई०मे उसकी मृत्यु हो गयी।

अफगान—उन पर्वतीय जन-जातियोके लिए प्रचलित शब्द जो न केवल अफगानिस्तानमे बसती है, बल्कि पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्तमे भी रहती है। इतिहासके आरम्भ काल-से भारतके साथ इस दुर्धर्ष जातिके सम्बन्ध मित्रताके भी रहे, और शत्रुताके भी। भारतकी सम्पदापर लुब्ध होकर ये लोग व्यापारियो और लुटेरो दोनो रूपोमे भारत आते रहे। सुल्तान महमूद (गजनवी) पहला अफगान सुल्तान था, जिसने भारतपर आक्रमण किया। शहा-बुद्दीन मुहम्मद गोरी पहला अफगान सुल्तान था जिसने भारतमे मुसलमानी शासनकी नीव डाली। दिल्लीके जिन सुल्तानोने १२००से १५२६ ई०तक यहाँ राज्य किया वे सभी अफगान अथवा पठान पुकारे जाते थे। लेकिन उनमेसे अधिकाश तुर्क थे। केवल लोदी राजवश-के सुल्तान (१४५०—१५२६ ई०) ही असल पठान थे। प्रथम मुगल बादशाह बाबरने पानीपतकी पहली लडाईमे भारतमे पठान शासनका अन्त कर दिया। शेरशाहने दुबारा पठान राज्य (१५३९—४२ ई०) स्थापित किया और पानीपतकी दूसरी लडाई (१५५६ ई०)को जीतकर अकबरने उसे समाप्त कर दिया।

अफगानिस्तान—पाकिस्तानकी पश्चिमोत्तर सीमापर स्थित देश। पेशावरके आगे डूरड रेखासे इसकी सीमा शुरू होकर हिन्दूकुशतक जाती है। अफगानिस्तानका सदियोसे भारतसे सम्बन्ध रहा है। महाभारतके अनुसार कुरु नरेश धृतराष्ट्रने गधारकी राजकुमारीसे विवाह किया था। गधारको आजकल कधार कहते है। सिकदर-के हमलेके पहले यह क्षेत्र तीन प्रान्तोमे विभाजित था—परोपनिसदै, प्रादिया और आर्कोसिया जो आजके काबुल, हिरात और कधार प्रान्त हैं। सिकदरने इस प्रदेशको जीता था। उसकी मृत्युके बाद यह प्रदेश उसके सेनापति सेल्युकस निकेटरको मिला और सेल्यूकस निकेटरको यह प्रदेश चन्द्रगुप्त मौर्यको समर्पण कर देना पडा। इस प्रकार अफगानिस्तान भारतका अभिन्न अग बन गया। अभी हालमे जलालाबाद और कधारके पास जो अशोक स्तम्भ मिले है उनसे प्रकट होता है कि अफगानिस्तानमे भारतीय सस्कृतिका कितना प्रभाव था। यह एशिया जानेवाले बौद्धधर्म-प्रचारकोके मार्गपर पडता था और बौद्धधर्मका केन्द्र था। यह प्रदेश कुषाण साम्राज्यका अग था। कुषाणोके पतनके बाद ईसाकी तीसरी शताब्दी-मे यहाँ पारसियोका शासन हो गया। गुप्त शासन कालमे इसको गुप्त साम्राज्यमे नही मिलाया जा सका और ईसाकी आठवी शताब्दीमे पडोसी पश्चिमी और उत्तरी राज्योकी भाँति अफगानिस्तानमे मुसलमानी शासन स्थापित हो गया। इस्लामने इस देशके लडाकू पर्वतीय लोगोमे धर्मोन्माद पैदा कर दिया और भारतकी सम्पदा-ने उनके मनमे लोभ भर दिया। इसके फलस्वरूप गजनी और गोरके मुसलमान शासकोने भारतपर बार-बार आक्रमण किये। अन्तमे शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी-ने ११९३ ई०मे दिल्ली को जीत लिया और भारतमे मुसलमानी शासनकी नीव डाली।

दिल्लीके सुल्तानोको 'पठान' कहा जाता है, यद्यपि वे ज्यादातर तुर्क थे। ये लोग अफगानिस्तानपर अधिक समयतक अपना अधिकार नही रख सके। अफगानिस्तान-पर क्रूर और दुर्धर्ष मगोलोका अधिकार हो गया और वहाँसे उन्होने भारतपर आक्रमण किये। १५०४ ई० मे बाबरने इस देशपर अधिकार कर लिया और काबुल-को अपनी राजधानी बनाया। काबुलसे उसने भारतपर आक्रमण किया और १५२६ ई०मे पानीपतकी पहली लडाई जीतकर भारतमे मुगल-साम्राज्यकी स्थापना की। १५९५ ई०मे अकबरने कधारको जीता और अफगानिस्तान-को फिरसे मुगल-साम्राज्यका हिस्सा बना लिया। १६२२ ई०मे कधार जहाँगीरके हाथसे निकल गया। १६३८ ई०मे शाहजहाँने उसपर पुन अधिकार कर लिया, लेकिन १६४८ ई०मे वह पुन उसके हाथसे निकल गया। इसके बाद कधारपर फिरसे अधिकार करनेके प्रयास विफल रहे, लेकिन काबुल १७३९ ई०तक मुगल साम्राज्यका हिस्सा बना रहा। उस वर्ष नादिरशाहने, जो १७३६ ई०मे फारसका शाह बना था, काबुलको जीत लिया और दिल्लीको लूटा। इस प्रकार अफगानि-स्तान भारतीय शासकोके हाथमे निकल गया लेकिन सबध बिल्कुल टूट नही गये। १७४७ ई०मे नादिरशाह-की हत्याके बाद अफगान सरदार अहमद शाह अब्दाली या दुर्रानी,ने अफगानिस्तानमे अपना राज्य स्थापित किया। अहमद शाह दिल्लीके मुगल बादशाहोके लिए सिरदर्द

बन गया। उसने पंजाबपर आक्रमण करके उसे अपने राज्यमें मिला लिया। १७६१ ई० में पानीपतकी तीसरी लड़ाईको जीतकर उसने मुगल-साम्राज्यकी जड़ खोद डाली। अहमदशाहका, दिल्लीका बादशाह बननेका सपना पूरा नहीं हुआ और उसके बाद अफगानिस्तान कभी भारतीय राज्यका भाग नहीं बना। वहाँ अफगान बादशाहोंका राज्य रहा और भारतको उस तरफसे खतरा बना रहा। जमानशाह (१७९३–१८०० ई०) ने १७९८ ई० में लाहौरपर कब्जा कर लिया और भारतपर आक्रमण करनेका इरादा किया। लेकिन १८०० ई० में वह गद्दीसे हटा दिया गया। इसके बाद अफगानिस्तानमें अराजकताका दौर शुरू हो गया जो दोस्त मोहम्मद (१८२६–६३ ई०) के शासक बननेपर खत्म हुआ। उसने अफगानिस्तानमें शान्ति-व्यवस्था स्थापित की। लेकिन उसी समयसे अफगानिस्तान मध्य एशियामें बढ़ते हुए रूस और भारतके ब्रिटिश साम्राज्यके बीच प्रतिद्वन्द्विताका मोहरा बन गया। दोनों शक्तियाँ अफगानिस्तानमें अपना प्रभुत्व जमाना चाहती थीं। अफगानिस्तान इस प्रभुत्वसे बचनेके लिए दोनोंको एक दूसरेसे लड़ाता रहता था। इस प्रतिद्वन्द्विताके कारण १९वीं शताब्दीमें अफगानिस्तान और भारतकी ब्रिटिश सरकारमें दो युद्ध हुए (युद्धोंका विवरण, 'आंग्ल–अफगान युद्ध' शीर्षकमें देखें)। दूसरे अफगान युद्धके परिणामस्वरूप अफगानिस्तान अपने वैदेशिक मामलोंमें एक प्रकारसे भारतकी ब्रिटिश सरकारके अधीन हो गया। १८९३ ई० में अफगानिस्तान और ब्रिटिश भारतकी जो सीमा निश्चित की गयी उसे 'डूरंड रेखा' कहा जाता है। १९०४ ई० में अमीर हबीबुल्लाहको अंग्रेजोंने 'हिज मैजेस्टी' का खिताब दिया और उसको स्वतंत्र शासकके रूपमें मान्यता दी। पहले महायुद्धमें अफगानिस्तानने तटस्थताकी नीति बरती जो ब्रिटिश शासकोंके अनुकूल थी। हबीबुल्लाहके उत्तराधिकारी अमीर अमानुल्लाहसे तीसरा आंग्ल-अफगान युद्ध (अप्रैल–मई १९१९ ई०) में हुआ जिसमें अफगानिस्तान हार गया। अफगानिस्तानको भारतके मार्गसे विदेशी शस्त्रास्त्रोंको आयात करनेका अधिकार नहीं रहा और भारतकी ब्रिटिश सरकारने उसे सहायता देना भी बन्द कर दिया लेकिन उसको अपने वैदेशिक सम्बन्धोंमें आजादी मिल गयी और दोनों सरकारोंने एक दूसरेकी स्वतंत्रताका सम्मान करनेका वचन दिया। अमानुल्लाहने उसके बाद यूरोपकी यात्रा की और वहाँसे लौटकर उसने अफगानिस्तानमें सामाजिक, शैक्षणिक और वैधानिक सुधारोंकी नीति अपनायी। इन सुधारोंका कट्टरपंथी अफगानोंने विरोध किया और मई १९२९ में वहाँ गृहयुद्ध शुरू हो गया। अमानुल्लाहको गद्दी छोड़नी पड़ी। कुछ समयके लिए अफगानिस्तानपर बच्चा-सक्काका अधिकार हो गया। अंग्रेजोंने वहाँ हस्तक्षेप नहीं किया। अन्तमें बच्चा-सक्का पराजित हुआ और मुहम्मद नादिरशाहने जो पुराने राजपरिवारका था और अमानुल्लाहका एक योग्य सरदार था, उसका वध कर दिया। वह नादिरशाहके नामसे अफगानिस्तानका शासक बना और १९३३ ई० तक योग्यताके साथ राज्य किया। उस वर्ष उसकी हत्या कर दी गयी। उसका पुत्र महमूद जहीरशाह उसका उत्तराधिकारी बना। नादिरशाह और जहीरशाहके शासनमें अफगानिस्तान और भारतके सम्बन्ध संतोषजनक रहे। पाकिस्तानके बननेके बाद भारतसे अफगानिस्तानका भौगोलिक सम्बन्ध कट गया, किन्तु दोनोंके बीच मित्रताके सम्बन्ध बने रहे।

अफजल खाँ—बीजापुरके सुल्तानका सेनापति, जिसे १०,००० सैनिकोंके साथ शिवाजीका दमन करनेके लिए भेजा गया था जो उस समय विद्रोही शक्तिके रूपमें उभर रहे थे। प्रारम्भमें अफजल खाँ सफलता प्राप्त करता हुआ १५ दिनोंके भीतर सतारासे २० मील दूर वाई नामक स्थानतक पहुँच गया। लेकिन शिवाजी प्रतापगढ किलेमें सुरक्षित थे। जब अफजल खाँ शिवाजीको उस किलेसे बाहर निकालनेमें सफल नहीं हुआ तो उसने सुलहकी बात चलायी और दोनोंके एक खेमेमें मिलनेकी बात तय हुई। शिवाजीको अफजल खाँकी ओरसे धोखेबाजीका संदेह था, इसलिए उन्होंने कपड़ोंके नीचे बख्तर पहन लिया और अपने हाथमें बघनखा लगा लिया था ताकि अफजल खाँकी ओरसे घात होनेपर उसका प्रतिकार कर सकें। जब शिवाजी अफजल खाँसे मिले तो उसने शिवाजीको अपनी बाहोंमें भर लिया और इतना कसकर दबाया जिससे शिवाजीका दम घुट जाय। शिवाजीने अपने पंजेमें लगे बघनखसे अफजल खाँका पेट फाड़ दिया और उसे मार डाला। उसके बाद मराठोंने खुले युद्धमें बीजापुरकी फौजको पराजित कर दिया।

अफ्रीदी—सीमा प्रान्तका एक लड़ाकू कबीला, जो खैबर क्षेत्रमें निवास करता है। ये लोग भारतीय प्रशासनके लिए बराबर सिरदर्द बने रहते थे। १८९७ ई० में इन लोगोंने औरंगजेबके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और लम्बे संघर्षके

बाद उनका दमन किया जा सका। १८९३ ई० के बाद जब अफगानिस्तान और भारतकी सीमा डूरड रेखा तय की गयी तो अफ्रीदी क्षेत्र भारतकी ब्रिटिश सरकारके अधीन आ गया। ब्रिटिश शासकोको इस क्षेत्रपर नियत्रण करनेके लिए अनेक फौजी अभियान चलाने पडे और अफ्रीदी सरदारोको अपनी ओर मिलानेके लिए उन्हे आर्थिक सहायता भी देनी पडी।

अबुल फज़ल–शेख मुबारकका पुत्र। वह बहुत पढा-लिखा और विद्वान् था और उसकी विद्वत्ताका लोग आदर करते थे। वह बहुत वर्षो तक अकबरका विश्वास-पात्र वजीर और सलाहकार रहा। वह केवल दरबारी और आला अफसर ही नही था, वरन् बडा विद्वान् था और उसने अनेक पुस्तके लिखी थी। उसकी 'आईन-ए-अकबरी' मे अकबरके साम्राज्यका विवरण मिलता है और 'अकबर-नामा'मे उसने अकबरके समयका इतिहास लिखा है। उसका भाई फैजी भी अकबरका दरबारी शायर था। १६०२ ई० मे बुदेला राजा वीर सिंहने शाहजादा सलीमके उकसानेसे अबुल फजलकी हत्या कर डाली।

अबुल हसन–गोलकुडा राज्यके कुतुबशाही सुल्तानोमे अन्तिम सुल्तान। मुगल सम्राट् औरगजेब उससे नाराज हो गया और १६८७ ई० मे उसने उसे पराजित कर दिया और गद्दीसे हटा कर दौलताबादके किलेमे कैद रखा जहाँ कुछ वर्षोके बाद उसकी मौत हो गयी।

अब्दाली, अहमद शाह–दुर्रानी कबीलेका एक अफगान सरदार, जिसने १७४७ ई० मे नादिरशाह (दे०) की हत्याके बाद अफगान सिहासनपर अपना अधिकार जमा लिया। उसने १७४७ से १७७३ ई० तक शासन किया। अपने शासन कालमे उसने आठ बार भारतपर हमले किये। उसने पजाबपर अधिकार कर लिया और १७६१ ई० मे पानीपतके तीसरे युद्धमे मराठोको पराजित किया। अफगान सैनिकोने उस युद्धके बाद मथुराकी ओर बढने-से इन्कार कर दिया क्योकि चार साल पहले वहाँपर अफगान सैनिकोमे हैजा फैल गया था जिसमे बहुतोकी मृत्यु हो गयी थी। इससे मजबूर होकर अब्दाली अफ-गानिस्तान लौट गया और पानीपतमे मिली विजयके बाद पूरे हिन्दुस्तानमे अपना साम्राज्य स्थापित करनेका उसका स्वप्न टूट गया। अब्दालीके आक्रमणका सकट १७६७ ई० तक बना रहा और उसका प्रभाव भारतमे अग्रेजोकी नीतिपर कई वर्षोतक पडा। अहमद शाह अब्दालीका देहान्त १७७३ ई० मे हुआ। (**यदुनाथ सरकार–फाल आफ मुगल इम्पायर, भाग दो, पृ० ३७६**)

अब्दुर्रज्जाक लारी–गोलकुडाके आखिरी सुल्तानका दरबारी और सिपहसालार। १६८७ ई० मे जब औरगजेबने गोलकुडापर अन्तिम आक्रमण किया तो उसने अब्दुर्रज्जाक-को अनेक लालच दिये, पर वह न डिगा और बहादुरीसे गोलकुडाकी रक्षा करते हुए उसके ७० घाव लगे। बादमे औरगजेबने उसका इलाज कराया और उसे मुगल दरबारमे ऊँचा पद प्रदान किया।

अब्दुर्रज्जाक, हेरात–१४४८ ई० मे फारसके सुलतान शाह रुखका राजदूत होकर भारत आया। पहले वह कालीकट पहुँचा और वहाँसे विजय नगर गया जहाँका दिलचस्प वर्णन उसने किया है।

अब्दुर्रहमान, अमीर–१८८० ई० मे दूसरे अफगान युद्धके बाद अग्रेजोकी मददसे अफगानिस्तानके सिहासनपर बैठाया गया। वह चतुर राजनीतिज्ञ था, और उसने १९०१ ई० मे अपनी मृत्यु पर्यन्त राज्य किया। उसने इग्लैण्ड और रूस दोनोसे मित्रता रखी। उसने अफ-गानिस्तानका आन्तरिक शासन बडी कुशलतासे चलाया और उसकी अखडता कायम रखी। उसके शासन कालमे भारत-अफगानिस्तान सीमा निर्धारण डूरड रेखाके आधार-पर १८९३ ई० मे किया गया।

अब्दुर्रहीम, खानखाना–बैरम खाँका लडका। १५६१ ई० मे पिताकी मृत्युके समय अब्दुर्रहीम नाबालिग था। अकबरके शासनमे उसने तरक्की की और 'खानखाना'की उपाधिसे सम्मानित किया गया। अनेक युद्धोमे उसने भाग लिया। वह प्रसिद्ध कवि भी था। उसके दोहे हिंदीमे प्रसिद्ध है। उसने बाबरकी आत्मकथाका तुर्कीसे फारसीमे अनुवाद किया। उसके आश्रित अब्दुल बाकीने मआसिर-ए-रहीमी नामक पुस्तकमे उसकी प्रशसा की है। वह लम्बी अवस्थातक जीवित रहा और जहाँगीरके शासन कालमे उसकी मृत्यु हुई।

अब्दुल गफ्फार खा–बादशाह खान और सीमात गाधी के नामसे भी प्रसिद्ध पठानोके नेता। वे पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्तके राष्ट्रीयतावादी मुस्लिम नेताओमे मुख्य रहे है। उन्होने अपने प्रान्तमे पहले 'खुदाई खिदमतगार' सगठन बनाया और बादमे गाधीजीके अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलनमे शामिल हो गये। १९३७ ई० के आमचुनावमे उनके नेतृत्वमे काग्रेस को बडी सफलता मिली और पश्चिमोत्तर प्रान्तमे काग्रेस मत्रिमडल बनाया गया जिसके मुख्य-मत्री अब्दुल गफ्फार खाँके छोटे भाई, डाक्टर खान साहब हुए। स्वतत्रताके समय भारतके विभाजनके बाद पश्चिमोत्तर प्रान्त पाकिस्तानका एक

हिस्सा बन गया। अब्दुल गफ्फार खाँने वहाँ पख्तून आन्दोलन चलाया जिससे पाकिस्तान सरकारने उन्हें लम्बे समय तक जेलमे रखा। जेलसे रिहा होनेपर वे चिकित्साके लिए काबुलमे रहने लगे। १९७० ई० मे दिसम्बरके चुनावमे नेशनल आवामी पार्टीको पश्चिमोत्तर प्रान्तमे सफलता मिली। १९७१ ई० के अन्तमे पाकिस्तानके राष्ट्रपति श्री जुल्फिकार अली भुट्टो बने। उन्होंने १९७२ ई० मे अब्दुल गफ्फार खाँको पाकिस्तान लौटनेकी अनुमति दे दी।

अब्दुल हमीद लाहौरी–शाहजहाँ (दे०) का सरकारी इतिहासकार। उसकी रचनाका नाम 'पादशाह नामा' है जो शाहजहाँके शासनका प्रामाणिक इतिहास माना जाता है।

अब्दुल्ला, बड़ा सैयद–सैयद बधुओ (दे०) मे बड़ा भाई। सैयद अब्दुल्ला और उसके छोटे भाई हुसैनने १७१३ से १७१९ ई० तक मुगल सल्तनतका सचालन किया। इन लोगोने फर्रुखसियर को १७१३ ई० मे सिंहासनपर बैठाया। १७१९ ई० मे उसे गद्दीसे हटा दिया और उसकी हत्या करवा दी। उसी एक वर्षके भीतर उन्होंने चार मुगल बादशाहोको गद्दी पर बैठाया और हटाया। जब उन लोगोने पाँचवे बादशाह मुहम्मद शाह को १७१९ ई० मे गद्दी पर बैठाया तो उसने हुसैनका कत्ल करवा दिया और अब्दुल्ला को कैद करा दिया, जहाँ उसे जहर देकर १७२२ ई० मे मार डाला गया।

अब्दुस्समद–अकबरका चित्रकलाका उस्ताद, जिसे बादमे अकबरने टकसालका अधिकारी बनाया। वह अपने समयका नामी कलाकार माना जाता था।

अभिषेक–का अर्थ है जल छिड़कना। राजपदपर निर्वाचित होनेपर राजाका अभिषेक आवश्यक माना जाता था। इस अवसरपर ब्राह्मण पुरोहित, निर्वाचित राजाका कोई निकट सम्बन्धी या भाई, एक मित्र नरेश और एक वैश्य उसपर १७ तीर्थोका पवित्र जल छिड़कते थे।

अभिसार–एक जन-जाति, जो सिकदरके आक्रमणके समय कश्मीरके पुछ तथा पड़ोसके कुछ जिलोमे तथा उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रातके हजारा जिलेमे निवास करती थी।

अभिसारेश–सिकदरके आक्रमणके समय अभिसार जनपदका राजा। वह बड़ा चतुर राजनीतिज्ञ था। जब सिकदर तक्षशिला पहुँचा तो उसने कहलाया कि मैं यवन आक्रमणकारियोके सामने आत्मसमर्पण करने को तैयार हूँ। इसके साथ ही वह पोरससे मिलकर सिकदरसे लड़नेके लिए भी सधि-वार्ता चलाता रहा। यह वार्ता सफल नही हो सकी और अतमे अभिसार जनपदके राजाको सिकदरके सामने आत्मसमर्पण करनेके लिए बाध्य होना पड़ा।

अमरकोट–सिन्धका एक नगर और राज्य, जहाँ २३ नवम्बर १५४२ ई० को अकबरका जन्म हिन्दू राजा राणा प्रसादकी शरणमे हुआ। मार्च १८४३ ई० मे सर चार्ल्सने पियरके नेतृत्वमे भारतकी अग्रेजी सेनाने उसपर कब्जा कर लिया और उसके साथ ही पूरे सिन्धपर अग्रेजोका अधिकार हो गया। अब यह पाकिस्तानी क्षेत्रमे है।

अमरदास–सिखो के तीसरे गुरु (१५५२–७४ ई०)। वे चरित्रवान् और सदाचारी थे। उन्होने सिख धर्मका काफी प्रचार किया।

अमर सिंह–मेवाड़का राणा (१५९६–१६२० ई०)। वह प्रसिद्ध राणाप्रताप सिंहका पुत्र और उत्तराधिकारी था। उसने अपनी स्वतत्रताके लिए बादशाह अकबरसे बहादुरीसे युद्ध किया, लेकिन १५९९ ई० मे वह पराजित हो गया। वह अकबरकी परतत्रतासे अपनी मातृभूमिको बचानेमे तो सफल नही हुआ, लेकिन उसने १६१४ ई० तक मुगलोके विरुद्ध अपनी लड़ाई जारी रखी। लगातार विफलता और मुगल साम्राज्यके बढते हुए दबावके कारण, उसने बादशाह जहाँगीरसे सम्मानपूर्वक सन्धि कर ली। जहाँगीरने मेवाड़के राणा को मुगल दरबारमे हाजिर होने और किसी राजकुमारी को मुगल हरममे भेजनेकी अपमानजनक शर्त नही रखी। मेवाड़ और मुगलोके बीच मित्रताके जो सम्बन्ध स्थापित हो गये थे वे औरंगजेबके समयमे उसकी धार्मिक असहिष्णुताकी नीतिके कारण समाप्त हो गये।

अमरसिंह थापा–सन् १८१४–१६ ई० के आग्ल-नेपाल युद्धके समय नेपाली सेनाका सेनापति, जिसने बड़ी वीरतासे जनरल आक्टरलोनीके नेतृत्वमें लड़नेवाली अग्रेज सेनासे मालौनके किलेकी रक्षा १५ मई १८१५ ई० तक की, जब उसे बाध्य होकर किला छोड़ना पड़ा। इसके कुछ महीने बाद १८१५ ई० की सुगौलीकी सन्धिके द्वारा यह युद्ध समाप्त हो गया।

अमात्य–गुप्त-शासन काल मे उच्च प्रशासकीय अधिकारी का पद, जो मत्री के समकक्ष माना जाता था। मराठा छत्रपति शिवाजी ने भी इस पदको प्रचलित किया था। शिवाजीके समयमे अमात्यका अर्थ वित्तमत्री था जिसको सरकारी हिसाब-किताबकी जाँच करके उसपर हस्ताक्षर करने पड़ते थे।

अमानुल्लाह–अफगानिस्तानका बादशाह (१९१९–१९२९ ई०)। वह अपने पिता अमीर हबीबुल्ला (१९०१-१९१९)

के उत्तराधिकारीके रूपमे गद्दीपर बैठा था। गद्दीपर बैठनेके कुछ समय बाद ही उसने भारतके ब्रिटिश शासकोसे लडाई छेड दी जो तीसरे आग्ल-अफगान युद्धके नामसे प्रसिद्ध है। अग्रेजोकी भारतीय सेना अफगान सेनाके मुकाबलेमे कही श्रेष्ठ थी। उसके पास विमान, बेतारसे खबर भेजनेकी व्यवस्था और शक्तिशाली विस्फोटक पदार्थ थे। अग्रेजोने अमानुल्लाहकी सेना को आसानीसे पराजित कर दिया। अमानुल्लाहने अगस्त १९१९ ई० मे सन्धिका प्रस्ताव किया जिसकी पुष्टि १९२१ ई० मे हुई। इस सन्धिके बाद अमानुल्लाहको अग्रेजोसे आर्थिक सहायता मिलनी बन्द हो गयी लेकिन उसे अपनी वैदेशिक नीतिमे आजादी मिल गयी। अफगानिस्तान और इग्लैण्डमे राजनयिक सम्बन्ध स्थापित हो गये और एक दूसरेकी राजधानियोमे राजदूत भेजे गये। इसके बाद अग्रेजो और अफगानोके सम्बन्धोमे सुधार हो गया। अमानुल्लाह शाहने उसके बाद यूरोपकी यात्रा की और वहाँसे लौटनेपर अपने देशमे यूरोपीय ढगके सुधार किये। इन सुधारोसे पुरातन-पथी अफगान नाराज हो गये और अफगानिस्तानमे गृह-युद्ध छिड गया जिससे मजबूर होकर अमानुल्लाहने १९२९ मे गद्दी छोड दी। उसके बाद वह अपनी मलका सुरैयाके साथ यूरोप चला गया जहाँ वह मृत्युपर्यंत प्रवासमे रहा।

अमरावती–आन्ध्र प्रदेशके गुटूर जिलेका एक नगर, जो सातवाहन राजाओके शासन कालमे हिन्दू सस्कृतिका केन्द्र था। अशोककी मृत्युके बाद करीब चार शताब्दीतक दक्षिण भारतमे सातवाहन शासन रहा। अमरावतीमे कला, वास्तुकला और मूर्तिकलाकी स्थानीय मौलिक शैली विकसित हुई थी। अमरावतीमे मिली मूर्तियोकी कोमलता और भाव-भगिमा दर्शनीय है। प्रत्येक मूर्तिका अपना आकर्षण है और पेड-पौधो, फूलो, विशेषरूपसे कमलके फूलो को बडे सुन्दर ढगसे बनाया गया है। बुद्ध मूर्तियोको मानव आकृतिके बजाय प्रतीकोके द्वारा गढा गया है जिससे पता चलता है कि अमरावती-शैली मथुरा और गाधार शैलियोसे पहलेकी है। वह यूनानी प्रभावसे सर्वथा मुक्त है।

अमित्रघात–का शाब्दिक अर्थ शत्रु-हन्ता है। यूनानी इतिहासकारोने इस शब्दका अमित्रकाट्स रूप लिखा है और चन्द्रगुप्त मौर्यके पुत्र बिन्दुसार को इस नामसे सम्बोधित किया है।

अमीचन्द–एक धनी किन्तु धूर्त सेठ, जो १८वी शताब्दीके मध्यमे कलकत्तेमे रहता था। उसने नवाब सिराजुद्दौला को अपदस्थ कर मीर जाफर को बगालका नवाब बनानेके लिए कलकत्तेमे अग्रेजो और मुर्शिदाबादमे नवाबके विरोधियोके बीच गुप्त वार्ताएँ चलायी। जब यह गुप्त-वार्ता काफी आगे बढ चुकी और नवाब सिराजुद्दौलाके विरुद्ध षड्यत्रमे अग्रेजोकी पूर्ण भागीदारी स्पष्ट हो चुकी, अमीचन्दने मुर्शिदाबादमे नवाबके खजानेकी लूटसे प्राप्त होनेवाले धनमेसे लम्बे कमीशनकी माँग की तथा यह धमकी दी कि यदि उसे वाछित धनराशि न दी गयी तो वह नवाबको सारे षड्यत्रकी सूचना दे देगा। राबर्ट क्लाइवके सुझावपर मीर जाफरके साथ होनेवाली सधिके दो प्रारूप तैयार किये गये। एकमे उक्त कमीशन दिये जानेकी बात थी और दूसरेमे नही। जाली सधि-पत्रपर क्लाइवके तथा एडमिरल वाटसनको छोडकर कलकत्ता कौसिलके अन्य सभी सदस्योके हस्ताक्षर थे। क्लाइवने उस जाली सधि-पत्रपर वाट्सनके भी जाली हस्ताक्षर कर लिये। किन्तु अमीचन्दको इस चाल बट्टेकी जानकारी पलासीके युद्धके उपरात हुई और कहा जाता है कि अतत वह निराश और पागल होकर मर गया।

अमीन खा–१६७२ ई० मे अफगानिस्तानका मुगल सूबेदार। औरगजेबके समयमे जब अफरीदियोने बादशाहके विरुद्ध विद्रोह किया उस समय अली मस्जिदकी लडाईमे अमीन खाँ बुरी तरह हारा।

अमीन खा–मुगल बादशाह मुहम्मद शाहके शासन-काल (१७१९–१७४८ ई०) मे जब सैयद बधुओका पतन हो गया उस समय अमीन खाँको दिल्लीका वजीर बनाया गया। उसकी मृत्यु १७२१ ई० मे हुई।

अमीर अली, सैयद–(१८४९–१९२९ ई०) पहला भारतीय जिसको प्रिवी कौसिलमे न्यायाधीश नियुक्त किया गया। उसने अपना जीवन ऐडवोकेटके रूपमे शुरू किया और १८९० ई०मे कलकत्ता हाई कोर्टका जज बनाया गया। इस पदपर वह १९०४ ई० तक रहा। १९०९ ई० मे उसको इग्लैण्डमे प्रिवी कौसिलकी जुडीशियल कमेटीमे नियुक्त किया गया। उसकी मृत्यु इग्लैण्डमे हुई। उसने 'हिस्ट्री आफ सराकेन्स' और कई कानून-सम्बन्धी पुस्तके लिखी है।

अमीर उमर–सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीका भाजा, जिसने बदायूमे सुल्तानके विरुद्ध विद्रोह किया, जिसका आसानीसे दमन कर दिया गया और अमीर उमरको मौतके घाट उतार दिया गया।

अमीर खा–बादशाह औरगजेबका एक सेनापति, जो २१ वर्ष (१६७७–९८ ई०) काबुलमे मुगल सूबेदार रहा और उसने बडी योग्यतासे प्रशासन चलाया।

अमीर खाँ—पिंडारियोंका सरदार और भाडेपर लडनेवाले पठानों और लुटेरोंका नेता। १९वीं शताब्दीके आरम्भमे मध्य-भारतमे जब तीसरा आग्ल-मराठा युद्ध हुआ तो अमीर खाँ पहले होलकरके सरक्षण मे रहकर लडा। लेकिन बादमे अग्रेजोने उसे अपने पक्षमे मिला लिया और उसे टोंक रियासतका नवाब मान लिया जहाँ उसके परिवारके लोग १९४८ ई० तक नवाब रहे। १९४८ ई० मे टोंक रियासतका भारतमे विलयन हो गया।

अमीर खुसरो—'तोतए-हिन्द' उपनामसे प्रसिद्ध एक विद्वान् कवि और लेखक, जिसने फारसी, उर्दू और हिन्दीमे अपनी रचनाएँ की। उसने प्रचुर मात्रामे पद्य और गद्य दोनो लिखा है और सगीतकी भी रचना की है। उसने लम्बी उम्र पायी और उसे दिल्लीके कई सुल्तानों—बलबनसे गयासुद्दीन तुगलक तकका सरक्षण मिला। उसकी मृत्यु १३२४—२५ ई० मे हुई। उसकी कृतियोमे बहुत-सी कविताएँ, ऐतिहासिक मसनवी, 'तुगलक नामा' और 'तारीख-ए-अलाइ' नामक दो इतिहास ग्रथ है।

अमृतराव—रघुनाथ राव (राघोबा) का दत्तक पुत्र, जो पेशवा बाजीराव प्रथमका दूसरा पुत्र था। उसने पेशवाके रूपमे केवल एक वर्ष (१७७३ ई०) राज्य किया। पूनाकी लडाईके बाद जब पेशवा बाजीराव द्वितीय (१७९६—१८१८) अक्तूबर १८०२ ई० मे बसई भाग गया था तब अमृतरावको पेशवा बनाया गया। अमृतरावने पेशवा बाजीराव द्वितीयको १८०३ ई० के आरम्भमे अग्रेजो द्वारा दुबारा पेशवा बनानेका विरोध नही किया और वह पेंशन पाकर बनारसमे रहने लगा।

अमृतसर—पजाबमे सिखोंका तीर्थस्थान। सिखोंके चौथे गुरु रामदासको १५७७ ई० मे बादशाह अकबर (१५५६—१६०५ ई०) ने यह स्थान दिया था। बादमे इस नगरका विकास हुआ और सिखोके दानसे स्वर्ण मदिरका निर्माण किया गया।

अमृतसरकी सन्धि—२५ अप्रैल, १८०९ ई० को रणजीत सिंह और ईस्ट इडिया कम्पनीके बीच हुई। उस समय लार्ड मिन्टो (१८०७—१३ ई०) भारतके गवर्नर-जनरल थे। इस सन्धिके द्वारा सतलज पारकी पजाबकी रियासते अग्रेजोके सरक्षणमे आ गयी और सतलजके पश्चिममे पजाब राज्यका शासक रणजीत सिंहको मान लिया गया।

अमृतसरकी सन्धि—१६ मार्च १८४६ ई० को प्रथम आग्ल-सिख युद्ध (१८४५—४६ ई०) के समाप्त होनेपर अमृतसरमे की गयी। इस सन्धिके द्वारा कश्मीर जो रणजीत सिंहके राज्यका हिस्सा था उसे राजा दलीप सिंहसे ले लिया गया और अग्रेजोने उसे गुलाब सिंहको दे दिया। गुलाब सिंह लाहौर दरबारका एक सरदार था। इसके बदलेमे उसने अग्रेजोको दस लाख रुपये दिये।

अमोघ वर्ष—दक्षिणके राष्ट्रकूट राजवशमे इस नामके तीन राजा हुए। अमोघ वर्ष प्रथमने सबसे लम्बे समय तक (८१४—८७७ ई०) राज्य किया। उसे अपने पूर्वी पडोसी वेंगिके चालुक्य राजाओसे अनेक युद्ध करने पडे। वह अपनी राजधानी नासिकसे हटाकर मान्यखेट (आधुनिक मालखेड) ले गया। अरब सौदागर सुलेमानने ८५१ ई० मे उसका उल्लेख 'बलहरा' के नामसे किया है और उसे ससारका चौथा सबसे बडा राजा बतलाया है। वृद्ध होनेपर अमोघ वर्ष प्रथमने राज-पाट छोडकर सन्यास ले लिया और अपने पुत्र कृष्ण द्वितीयको राजा बनाया। वह जैन धर्मका सरक्षक था।

अमोघवर्ष द्वितीय—अमोघवर्ष प्रथमका पौत्र। उसने केवल एक वर्ष (९१७—९१८ ई०) राज्य किया। उसके भाई गोविन्द चतुर्थने उसे गद्दीसे हटा दिया और स्वय राजा बन गया। गोविन्द चतुर्थने ९१८ से ९३४ ई० तक राज्य किया।

अमोघवर्ष तृतीय अथवा बड्डिग—अमोघवर्ष द्वितीयके पौत्रका दूसरा पुत्र। वह गोविन्द चतुर्थके बाद ९३४ ई० मे राजा बना और पाँच वर्ष (९३४—९३९ ई०) राज्य किया। उसके शासन कालमे दक्षिणके राष्ट्रकूटो और सुदूर दक्षिणके चोल राजाओके मध्य शत्रुता आरम्भ हो गयी।

अम्बर, मलिक—एक हब्शी गुलाम, जो अहमद नगरमे बस गया था। चाँद सुलताना (दे०) की मृत्युके बाद वह तरक्की करके वजीरके पदपर पहुँच गया। उसने अहमदनगरको बादशाह जहाँगीरके पजेसे बचानेका जी-तोड प्रयास किया। उसमे नेतृत्वके सहज गुण थे और मध्ययुगीन भारतके सबसे बडे राजनीतिज्ञोमे उसकी गणना की जाती है। उसने अहमदनगर राज्यकी राजस्व व्यवस्था सुधारी और सेनाको छापा-मार युद्धकी शिक्षा दी। इस प्रकार अहमद नगरको मुगलोके आक्रमणसे बचाया। लेकिन १६१६ ई०मे जब बहुत बडी मुगल सेनाने अहमद नगरपर चढाई कर दी तो मलिक अम्बरको आत्मसमर्पण करना पडा। उस समय शाहजादा खुर्रम मुगल सेनाका नेतृत्व कर रहा था। मलिक अम्बरने बडे सम्मानके साथ जीवन बिताया और १६२६ ई०मे बहुत वृद्ध हो जानेपर उसकी मृत्यु हुई।

अम्बष्ठ—गणके लोग सिकन्दरके आक्रमणके समय भारतके पश्चिमोत्तर क्षेत्रमे चनाब और सिन्धुके सगम स्थलके

उत्तरी हिस्सेमे रहते थे। यूनानी इतिहासकारो ने इनका उल्लेख 'अम्बष्टनोई' नामसे किया है, जो सस्कृत भाषाके अम्वष्ठ शव्दका रूपान्तर है। ऐतरेय ब्राह्मण, महाभारत और बार्हस्पत्य अर्थशास्त्रमे अम्बष्ठ गणका उल्लेख मिलता है। यह प्रारम्भमे एक युद्धोपजीवी गण था, लेकिन बादमे इस गणके लोग पुरोहित, कृषक और वैद्य भी होने लगे थे।

अम्बाजी–एक मराठा सरदार, जो राजपूतानातक धावे मारता था। आठ वर्षों (१८०६–१८१७ ई०)मे उसने अकेले मेवाडसे करीब दो करोड रुपये वसूले।

अम्बेडकर, डा० भीमराव रामजी–भारतकी परिगणित जातियोके प्रमुख नेता। उनकी शिक्षा अमेरिका और इग्लैण्डमे हुई थी। उन्होने अपना जीवन सरकारी कार्यालयमे एक लिपिकके रूपमे शुरू किया, लेकिन शीघ्र ही सवर्ण हिन्दुओके विरोधके कारण उन्हे नौकरी छोडनी पडी। सवर्णोके व्यवहारसे रुष्ट होकर उन्होने अछूतोको सगठित किया और उनका राजनीतिक दल बनाया। सविधान निर्मात्री सभाके सदस्य होनेके साथ ही वे भारतके कानून-मत्री भी बनाये गये और उन्होने भारतीय सविधानका प्रारूप तैयार करके उसे सविधान निर्मात्री सभासे पास कराया। इस सविधानके द्वारा भारतको सार्वभौमसत्ता-सम्पन्न गणतत्र घोषित किया गया है। डाक्टर अम्बेडकरने भारतीय ससदमे हिन्दू कोड बिल भी पेश किया और उसे पास कराया।

अम्बोयना का कत्लेआम–१६२३ ई०मे डच लोगोने किया। जब डचोने देखा कि अग्रेजोकी ईस्ट इडिया कम्पनी शक्तिशाली प्रतिद्वद्वी सस्था बनती जा रही है तो उन्होने अम्बोयनामे अग्रेजोकी छोटी-सी बस्तीपर अचानक हमला बोल दिया और वहाँके सभी अग्रेज प्रवासियोको भयकर यातनाएँ देकर मार डाला। इस कत्लेआमके बाद अग्रेज जावा तथा मसाले वाले द्वीपोमे जानेसे डरने लगे और उन्होने अपना ध्यान भारतमे ही अपने पैर जमानेकी ओर केन्द्रित किया, जहाँसे उन्होने डच लोगोको उखाड फेका।

अयूब खा–अफगानिस्तानके अमीर शेर अली (दे०)का पुत्र। दूसरे आग्ल-अफगान युद्धके दौरान अयूब खाँने जुलाई १८८० ई०मे भाई बदकी लडाईमे एक बडी अग्रेजी सेनाको हरा दिया। लेकिन बादमे कन्दहारके निकट उसे लार्ड राबर्ट्सने पराजित कर दिया। उसने कुछ समयके लिए कन्दहारपर फिर कब्जा कर लिया। लेकिन अन्तमे नये अमीर अब्दुर्रहमानने उसे हरा दिया और कन्दहार तथा अफगानिस्तानके बाहर खदेड दिया।

अयूब खा–पाकिस्तानी सेनामे एक जनरल, जिसने अक्तूबर १९५८ ई०मे पाकिस्तान सरकारका तख्ता पलट कर स्वय सत्ता हथिया ली और वहाँ फौजी तानाशाहीकी स्थापना कर दी। जून १९६२मे उसने पाकिस्तानमे नया सविधान लागू किया और जनवरी १९६५ ई०मे वह पाँच वर्षकी अवधिके लिए पाकिस्तानका दुबारा राष्ट्रपति चुन गया। उसी वर्ष उसने भारतसे युद्ध छेड दिया जो सयुक्त राष्ट्र-सघके युद्ध-विराम प्रस्तावके आधारपर रुका और ताशकदमे दोनो देशोमे सन्धि हुई। मार्च १९७० ई०मे पाकिस्तानमे उसके स्थानपर जनरल मोहम्मद यहिया खाँ सत्तासीन हो गया।

अयोध्या—भारतकी एक प्राचीन नगरी, जो सरयू नदीके किनारे, आधुनिक नगर फैजाबादके निकट स्थित है। अयोध्या कोसल (अवध) राज्यकी राजधानी थी। रामायणके अनुसार वह श्रीरामचन्द्रके पिता राजा दशरथकी राजधानी थी। वह देशकी सात पवित्र नगरियोमे एक मानी जाती है। ऐतिहासिक युगमे गुप्त सम्राटोकी वह सम्भवत दूसरी राजधानी सम्राट् समुद्रगुप्तके समयसे पुरुगुप्तके समय तक (३३०–४७२ ई०) थी।

अरब–इस्लामका उदय होनेके वाद सगठित और शक्तिशाली हो गये। वे लोग दूर-दूरतक समुद्र यात्राएँ और व्यापार करते थे। पश्चिमी भारतके समृद्ध बन्दरगाहो तथा पश्चिमोत्तर सीमावर्ती क्षेत्रकी ओर उनकी आरम्भसे निगाह थी। सबसे पहले ६३७ ई०मे अरबोने वम्बईके निकट थानापर हमला किया, जिसको विफल कर दिया गया। लेकिन उसके बाद भडौच, सिन्धमे देबलकी खाडी और कलातपर उनके हमले हुए। सातवी शताब्दीके अन्तमे अरबोने वलूचिस्तानके मकरान क्षेत्रको जीत लिया जिससे सिन्धको जीतनेके लिए रास्ता साफ हो गया। सिन्धके समुद्र तटपर कुछ समुद्री लुटेरोने अरब सौदागरोके जहाज लूट लिये। लुटेरोने सिन्धके देवलमे शरण ली। पीडित अरब सौदागरोने अरब सूबेदार अल-हज्जामसे इसकी शिकायत की, जिसने सिन्धपर कई बार हमले किये। उस समय सिन्धमे राजा दाहिर (दे०)का राज्य था। प्रारम्भमे कुछ हमलोको विफल कर दिया गया, लेकिन ७११ ई०मे अल-हज्जाजके दामाद मुहम्मद-इब्न-कासिमके नेतृत्वमे हमला हुआ। मुहम्मद-इब्न-कासिमने ७१२ ई०मे राओरके युद्धमे राजा दाहिरको पराजित किया, जिसमे वह मारा गया। उसकी राजधानी आलोरपर अरबोका कब्जा हो गया। इसके

वाद अरबोंने मुल्तान जीत लिया और सिन्धमें अरब राज्य स्थापित हो गया। अरबोंने भारतमें अपने राज्य का प्रसार करनेके लिए बहुत कोशिशें की। उन्होंने कच्छ, सौराष्ट्र अथवा काठियावाड और पश्चिमी गुजरातपर हमले किये। लेकिन उनका प्रसार सिन्धके आगे नहीं हो सका। दक्षिणमें चालुक्यों और पूर्वमें प्रतिहारों ओर उत्तर-में कर्कोटक राजाओंने उनके बढावको रोका। इस प्रकार भारतमें अरब राज्य सिन्धतक ही सीमित रहा जिसे शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीने ११७५ ई०मे सिन्धपर कब्जा करके खत्म कर दिया और सिन्ध दिल्लीकी सल्तनतके अधीन हो गया। सिन्धमें अरबोंकी विजय को 'निष्फल विजय'की संज्ञा दी जाती है क्योंकि उसके बाद भारतपर इन लोगोंकी सत्ता स्थापित नहीं हुई।

अरविन्द घोष (१८७२-१९५०)–एक महान् देशभक्त और क्रान्तिकारी जो बादमें उच्च ज्ञानी या योगी हो गये। उनकी शिक्षा इंग्लैंडमें हुई। वे इंडियन सिविल सर्विस-की परीक्षामें बैठे लेकिन घुडसवारीकी परीक्षामें अनुत्तीर्ण हो जानेसे आई० सी० एस० न हो सके। बादमें वे बडौदा कालेजके उपप्रधानाचार्य नियुक्त हुए। शीघ्र ही उन्होंने भारतीय राजनीतिमें रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया और 'इन्दुप्रकाश' पत्रिकामें उनके अनेक लेख प्रकाशित हुए। ७ अगस्त १८९३ ई०को प्रकाशित उनके प्रथम लेखसे प्रकट होता है कि वे राजनीतिके प्रति भारतीयोंके रखने आमूल परिवर्तनके पक्षपाती थे। इन लेखोंमें उन्होंने प्रतिपादित किया कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अपनी नरम नीतियोंके कारण देशको उपयुक्त नेतृत्व प्रदान करनेमें असफल रही है। उन्होंने जोर दिया कि राष्ट्रमें देशभक्ति और बलिदान-की उत्कट भावना भरकर कांग्रेसको वास्तविक जनवादी संस्था बनानेकी आवश्यकता है। उनके विचारोंको पंजाबके लाला लाजपतराय तथा महाराष्ट्रके लोकमान्य तिलकने बहुत पसंद किया। फलत कांग्रेसके अंदर एक गरम दल बन गया जो अपने राजनीतिक उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए सशस्त्र मार्ग ग्रहण करनेको बुरा नहीं मानता था। १९०२ ई० मे अरविन्दने बडौदामें अपना एक आदमी बंगालमें गुप्त क्रांतिकारी संगठन बनानेके उद्देश्यसे भेजा। इसके बाद वे स्वयं बंगाल चले आये और नेशनल कालेजके प्रिंसिपल बनकर 'वंदेमातरम्' तथा 'कर्मयोगी'के माध्यमसे अपने विचारोंका प्रचार करने लगे। इन पत्रोंका संपादन वे स्वयं बडी योग्यताके साथ करते थे। इस प्रचारका फल यह हुआ कि बंगालमें अनेक आतंकवादी घटनाएँ घटीं और अलीपुर बम-कांडमें तो स्वयं अरविन्दपर अनेक बंगालियोंके साथ मुकदमा चला। एक लम्बे मुकदमेके बाद श्री अरविन्द बरी हो गये, लेकिन ब्रिटिश सरकार उन्हें भारतमें ब्रिटिश शासनका परम विरोधी मानकर पुन नजरबंद कर देनेका विचार कर रही थी। इस बीच श्री अरविन्दके विचारोंमें बहुत परिवर्तन हो गया था। उन्होंने सक्रिय राजनीतिको त्याग देनेका निश्चय किया और १९०९ ई० में पांडिचेरी चले गये जो उन दिनों फ्रांसके अधिकारमें था। वहाँ उन्होंने एक आश्रमकी स्थापना की जिसका उद्देश्य लोगोंको उच्च आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करनेके लिए प्रेरित करना था। उन्होंने अपने विचार अपनी 'डिवाइन लाइफ' नामक पुस्तकमें व्यक्त किये हैं। उनका देहान्त १९५० ई० में हुआ। उन्हें देशभक्तिका कवि, राष्ट्रवादका देवदूत तथा मानवताका प्रेमी कहा गया है। श्रद्धासे लोग उन्हें 'श्री अरविन्द' कहते हैं। (पुराणी लिखित 'लाइफ आफ श्री अरविन्द')

अराकान–की पट्टी बंगालकी खाडीके पूर्वी तटपर स्थित है। यहाँ १७८४ ई० तक एक स्वतन्त्र राज्य रहा जिसे बर्मी लोगोंने जीत लिया। बर्माकी सीमाके विस्तारसे भारतकी ब्रिटिश सरकारने बंगालके लिए खतरा महसूस किया। प्रथम बर्मा युद्ध (१८२४–२६) का एक कारण यह भी था। युद्धके बाद अराकानका क्षेत्र यन्दबू (दे०)की सन्धिके अनुसार भारतकी अंग्रेजी सरकारको मिल गया।

अराविडु (कर्णाट) राजवंश–की स्थापना विजय नगर (दे०) के विनाशके बाद तिरुमलने की। वह रामे राजाका भाई था जिसके नेतृत्वमें तालीकोटके युद्ध (१५६५ ई०) में विजय नगरकी सेना पराजित हुई थी और विजय-नगर नष्ट कर दिया गया था। तिरुमलने अपनी राज-धानी पेनुकोंडामें स्थापित की और एक सीमा तक पुराने विजयनगरके हिन्दू राज्यका दबदबा फिरसे स्थापित कर दिया। इसके द्वारा स्थापित राजवंशने १६८४ ई०तक दक्षिणमें राज्य किया। इस वंशके अनेक राजा हुए जिनमें वेंकट द्वितीय उल्लेखनीय था। वह अपनी राजधानी चन्द्रगिरि ले गया और उसने तेलुगु कवियों और वैष्णव आचार्योंको संरक्षण प्रदान किया। बादमें वेंकट नामका एक अन्य राजा हुआ, उसने १६३९–४० ई० में मद्रासका क्षेत्र ईस्ट इंडिया कम्पनीको मिस्टर डेको दे दिया। इस भूमिदानकी पुष्टि राजा रंग तृतीयने की जो अराविडु राजवंशका एक प्रकारसे अन्तिम राजा था।

अर्काट–कर्नाटकका एक नगर, जिसे कर्नाटकके नवाब अनवरुद्दीन (दे०) (१७४३–४९ ई०) ने अपनी राजधानी बनाया। दूसरे कर्नाटक युद्ध (१७५१–५४ ई०) में इस

नगरका महत्त्वपूर्ण स्थान था। यहाँ एक मजबूत किला था जो आम्बूरकी १७४९ ई० की लडाईमे अनवरुद्दीनकी हार और मौतके बाद चन्दा साहबके नियन्त्रणमे चला गया। चन्दा साहबने फ्रांसीसियोकी मददसे त्रिचिनापल्लीका घेरा डाला, जहाँ अनवरुद्दीनके पुत्र मुहम्मदअलीने शरण ली थी। त्रिचिनापल्लीको राहत देनेके लिए रावर्ट क्लाइवने दो सौ अग्रेज और तीन सौ देशी सिपाहियोकी मददसे अर्काटपर अचानक कब्जा कर लिया। इसके बाद चन्दा साहबने बहुत बडी सेनाके साथ अर्काटका घेरा डाला और क्लाइवकी सेना ५६ दिन (२३ सितम्बरसे १४ नवम्बर तक) किलेमे घिरी रही। अन्तमे क्लाइवने चन्दा साहबकी सेनाका घेरा तोडकर उसे पीछे ढकेल दिया। अर्काटके घेरेको तोडनेमे सफल होनेके बाद रावर्ट क्लाइवकी प्रतिष्ठा एक अच्छे सेनापतिके रूपमे हो गयी और कर्नाटक अग्रेजोके कब्जेमे आ गया।

अर्जुन–सिखोके पाँचवे गुरु (१५८१–१६०६)। वे चौथे गुरु रामदासके पुत्र और उत्तराधिकारी थे। उन्होने 'आदि ग्रथ'का सकलन किया जिसमे पहलेके चार गुरुओ और बहुतसे हिन्दू और मुसलमान सन्तोकी वाणियोका सग्रह है। उन्होने सिखोको एक प्रकारका आध्यात्मिक-कर अर्थात् धार्मिक-कर देनेका आदेश दिया जिससे सिख गुरुओ-के धर्मकोषकी स्थापना हुई। अर्जुन देवने शाहजादा खुसरोपर दया करके उसकी सहायता की, जिसने अपने पिता जहाँगीरके विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। इसके कारण जहाँगीरने उन्हे राजद्रोहके अपराधमे मौतकी सजा दी।

अर्थशास्त्र–देखो 'कौटिल्य'।

अर्हत्–उन बौद्ध और जैन श्रमणोकी पदवी, जिन्होने आध्यात्मिक दृष्टिसे बहुत उच्च स्तर प्राप्त कर लिया था। जो बौद्ध या जैन भिक्षु अपने जीवन-कालमे निर्वाण प्राप्त कर लेता था उसे अर्हत् कहा जाता था।

अल-जुर्ज–भिन्नमाल अथवा भडौचके चारो ओरके गुर्जर क्षेत्रका पुराना अरबी नाम।

अलबुकर्क, अलफोंसो द–पुर्तगाली अधिकारमे आये भारतीय क्षेत्रका दूसरा गवर्नर (१५०९–१५१५ ई०)। उसने पूर्वमे पुर्तगाली साम्राज्यकी स्थापनाके उद्देश्यसे कई महत्त्वपूर्ण ठिकानोमे पुर्तगाली शासन और व्यापारी कोठियाँ स्थापित की, और कुछ स्थानोमे पुर्तगाली बस्तियाँ बसायी, भारतीयो और पुर्तगालियोमे विवाह सम्बन्धोको प्रोत्साहित किया। उसने ऐसे स्थानोमे किले बनवाये जहाँ न तो पुर्तगाली बस्तियाँ बसायी जा सकती थी और जो न तो जीते जा सकते थे। जहाँ यह भी सभव न था उसने स्थानीय राजाओको पुर्तगालके राजाकी प्रभुता स्वीकार करने और उसे भेट देनेको प्रेरित किया। उसने बीजापुरके सुल्तानसे १५१० ई० मे गोआ छीन लिया, १५११ ई० मे मलक्कापर और १५१५ ई० मे ओर्मुजपर अधिकार कर लिया। अलबुकर्क अपने उद्देश्य-को पूरा करनेमे गलत-सही तरीकोका ख्याल नही रखता था। उसने कालीकटके जमोरिनकी हत्या जहर देकर करवा दी, जिसने पुर्तगालियोके आगमनपर उनसे मित्रताका व्यवहार किया था। पुर्तगालियोके हिन्दुस्तानी औरतोसे शादी कर यहाँ बसानेकी नीति भी सफल नही हुई और इसके परिणाम-स्वरूप पुर्तगाली-भारतीयोकी मिश्रित जाति बन गयी जिससे पूर्वमे पुर्तगाली साम्राज्यकी स्थापनामे कोई खास मदद नही मिली। उसने मुसलमानोके नर-सहारकी नीति अपनायी जिससे पुर्तगालियोके साथ हिन्दुस्तानियोकी हमदर्दी खत्म हो गयी और अलबुकर्कने जिस पुर्तगाली साम्राज्यकी स्थापनाका स्वप्न देखा था वह उसकी मृत्युके बाद बिखर गया।

अल्प खाँ–को अलाउद्दीन खिलजीने १२९७ ई० मे गुजरात जीतनेके बाद वहाँका सूबेदार बनाया। १३०७ ई० मे अल्प खाँने मलिक काफूर और ख्वाजा हाजीके नेतृत्वमे मुसलमानी सेनाके साथ देवगिरि राज्यके विरुद्ध दूसरे अभियानमे हिस्सा लिया, जिसमे गुजरातकी राजकुमारी देवल देवी पकडी गयी। राजकुमारी देवल देवीने गुजरात विजयके बाद अपने पिता कर्णदेवके साथ देव-गिरिके राजा रामचन्द्र देवके दरबारमे जाकर शरण ली थी। अल्प खाँने देवल देवीको अलाउद्दीनके दरबारमे भेजा, जहाँ उसकी शादी सुल्तानके बडे बेटे खिजिर खाँ-के साथ कर दी गयी।

अल्प खाँ–मालवाके सुल्तान दिलावर खाँ गोरीका बेटा और उत्तराधिकारी। दिलावर खाँने १४०१ ई० मे मालवामे अपना राज्य स्थापित किया था। गद्दीपर बैठनेके बाद अल्प खाँने हुशगशाहकी उपाधि धारण की और १४३५ ई० मे अपनी मृत्युतक मालवामे राज्य किया। उसे जोखिम उठाने और युद्ध करनेमे आनन्द मिलता था। उसने दिल्ली, जौनपुर, गुजरातके सुल्तानो और बहमनी सुल्तान अहमद शाहसे युद्ध किये, लेकिन अधिकाश युद्धोमे उसे विफलता ही मिली।

अलप्तगीन–मध्य एशियाके सामानी शासकोका भूतपूर्व गुलाम, जो ९६२ ई० मे गजनीका शासक बन बैठा। उसने काबुलके राज्यका कुछ भाग जीतकर भारतकी उत्तर पश्चिमी सीमापर मुसलमानी राज्य कायम किया। उसकी मौत ९६२ ई० मे हुई।

अलप्तगीन–सुल्तान बलबन (१२६६–८६ ई०) का एक सेनापति। उसको अमीर खाँका खिताब दिया गया था। सुल्तान बलबनने उसे बंगालमे तोगरल खाँके विद्रोहका दमन करनेके लिए भेजा था। अलप्तगीनको तोगरलखाँने पराजित कर दिया और उसके बहुत-से सैनिको और सामानको अपने कब्जेमे कर लिया। अपने सेनापतिकी पराजयसे बलबनको इतना क्रोध आया कि उसने अलप्तगीनको दिल्लीके फाटकपर फासीपर लटकवा दिया। अलप्तगीन योग्य सेनापति और अमीरोमे लोकप्रिय था। उसको फासी दिये जानेसे अमीरोमे काफी रोष पैदा हो गया था।

अलबेरुनी–(९७३–१०४८ ई०) खीवाका रहनेवाला। सुल्तान महमूदके समय (९९७–१०३० ई०) मे उसे कैदी अथवा बन्धकके रूपमे गजनी लाया गया था। वह सुल्तान महमूदकी सेनाके साथ भारत आया और कई वर्षोतक पंजाबमे रहा। उसका असली नाम अबु-रैहान मुहम्मद था, लेकिन वह 'अलबेरुनी'के नामसे ही प्रसिद्ध है जिसका अर्थ 'उस्ताद' होता है। वह बडा विद्वान था। भारतमे रह कर उसने सस्कृत पढी और हिन्दू दर्शन और दूसरे शास्त्रोका अध्ययन किया। इसी अध्ययनके आधारपर उसने 'तहकीक-ए-हिन्द' (भारतकी खोज) नामक पुस्तक रची इसमे हिन्दुओ के इतिहास, चरित्र, आचार-व्यवहार, परम्पराओ और वैज्ञानिक ज्ञानका विशद वर्णन किया गया है। इसमे मुसलमानोके आक्रमणके पहलेके भारतीय इतिहास और सस्कृतिका प्रामाणिक और अमूल्य विवरण मिलता है। उसकी अनेक पुस्तके अप्राप्य है, लेकिन जो मिलता है उसमे सचाऊ द्वारा अग्रेजी भाषामे अनूदित 'दि क्रानोलाजी आफ एसेण्ट नेशन्स' (पुरानी कौमोका इतिहास) उसकी विद्वत्ताको सिद्ध करनेके लिए पर्याप्त है।

अलमसूदी–एक अरब यात्री, जिसने ९१५ई० मे प्रतिहार राजा महिपाल प्रथमके राज्यकालमे उसके राज्यकी यात्रा की। अलमसूदीने उसके घोडो और ऊँटोका विवरण दिया है।

अलहज्जाज–खलीफा वालिदके समय ईराकका मुसलमान सूबेदार। उस समय सिन्धमे राजा दाहिरका शासन था। सिन्धके कुछ लुटेरोकी लूटमारसे क्रुद्ध होकर अलहज्जाजने उन्हे दडित करनेके लिए कई बार चढाई की किन्तु, राजा दाहिरने उसकी फौजोको पराजित कर दिया। बादमे अलहज्जाजने अपने भतीजे और दामाद मुहम्मद इब्नकासिदके साथ बडी फौज भेजी, जिसने राउरकी लडाई (७१२ ई०) मे राजा दाहिरको पराजित कर उसको कत्ल कर दिया और सिन्धमे मुसलमानी राज्यकी स्थापना की।

अलाउद्दीन प्रथम–दक्षिणके बहमनी वंशका पहला सुल्तान। उसका पूरा खिताब था–सुल्तान अलाउद्दीन हसन शाह अल-वली-अलबहमनी। इसके पहले वह हसनके नामसे विख्यात था। वह दिल्लीके सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलकके दरबारमे एक अफगान अथवा तुर्क सरदार था। उसे जफर खाँका खिताब मिला था। सुल्तान मुहम्मद-बिन तुगलककी सनकोसे तंग आकर दक्षिणके मुसलमान अमीरोने विद्रोह करके दौलताबादके किलेपर अधिकार कर लिया और हसन उर्फ जफरखाँको अपना सुल्तान बनाया। उसने सुल्तान अलाउद्दीन बहमन शाहकी उपाधि धारण की और १३४७ ई० मे कुलबर्ग (गुलबर्गा) को अपनी राजधानी बना कर नये राजवंशकी नींव डाली। इतिहासकार फरिश्ताने हसनके सम्बन्धमे लिखा है कि वह दिल्लीके ब्राह्मण ज्योतिषी गगूके यहाँ नौकर था, जिसे मुहम्मद बिन तुगलक बहुत मानता था। अपने ब्राह्मण मालिकका कृपापात्र होनेके कारण वह तुगलककी नजरमे चढा। इसीलिए अपने सरक्षक गगू ब्राह्मणके प्रति आदर भावसे उसने बहमनी उपाधि धारण की। फरिश्ताकी यह कहानी सही नही है, क्योकि इसका समर्थन सिक्को अथवा अन्य लेखोसे नही होता है। उसके पहलेकी मुसलमानी तवारीख 'बुरहान-ए-मासिर'के अनुसार हसन बहमन वंशका था इसीलिए, उसका वंश बहमनी कहलाया। वास्तवमे हसन अपनेको फारसके प्रसिद्ध वीर योद्धा बहमनका वंशज मानता था। हसन भी एक सफल योद्धा था। उसने अपनी मृत्यु (फरवरी १३५८ ई०) से पूर्व अपना राज्य उत्तरमे बैन-गंगासे लेकर दक्षिणमे कृष्णा नदीतक फैला लिया था। उसने अपने राज्यको चार सूबों—कुलबर्ग, दौलताबाद, बराड और बिदरमे बाँट दिया था और शासनका उत्तम प्रबन्ध किया था। बुरहान-ए-मासिर' के अनुसार वह इंसाफपसंद सुल्तान था जिसने इस्लामके प्रचारके लिए बहुत कार्य किया।

अलाउद्दीन द्वितीय–दक्षिणके बहमनी वंशका दसवाँ सुल्तान। उसने १४३५ से १४५७ ई० तक राज्य किया और अपने पडोसी विजयनगर राज्यके राजा देवराय द्वितीयसे युद्ध ठानकर उसे सन्धि करनेको बाध्य किया। अलाउद्दीन द्वितीय इस्लामका उत्साही प्रचारक था और अपने सहधर्मी मुसलमानोके प्रति कृपालु था। उसने बहुतसे मदरसे, मस्जिदे और वक्फ कायम किये। उसने अपनी राजधानी बीदरमे एक अच्छा शफाखाना बनवाया।

उसके शासनकालमे दक्खिनी मुसलमानो, जिन्हे हब्शियोका समर्थन प्राप्त था, और जो ज्यादातर सुन्नी थे, और विलायती मुसलमानोमे, जो शिया थे, भयकर प्रतिद्वन्द्विता पैदा हो गयी, जिसके कारण सुल्तानके समर्थनसे बहुतसे विलायती मुसलमानो—सैयदो और मुगलोको पूनाके निकट चकनके किलेमे मौतके घाट उतार दिया गया।

अलाउद्दीन ख़िलजी–दिल्लीका सुल्तान (१२९६ से १३१६ ई० तक)। वह खिलजी वशके सस्थापक जलालुद्दीन खिलजीका भतीजा और दामाद था। सुल्तान बननेके पहले उसे इलाहाबादके निकट कडाकी जागीर दी गयी थी। तभी उसने बिना सुल्तानको बताये १२९५ ई० मे दक्षिणपर पहला मुसलमानी हमला किया। उसने देवगिरिके यादववशी राजा रामचन्द्रदेवपर चढाई बोल दी। रामचन्द्रदेवने दक्षिणके अन्य हिन्दू राजाओसे सहायता मागी जो उसे नही मिली। अन्तमे उसने सोना, चाँदी और जवाहरात देकर अलाउद्दीनके सामने आत्मसमर्पण कर दिया। बहुत-सा धन लेकर वह १२९६ ई० मे दिल्ली लौटा जहाँ उसने सुल्तान जलालुद्दीन खिलजीकी हत्या कर दी और खुद सुल्तान बन बैठा। उसने सुल्तान जलालुद्दीनके बेटोको भी मौतके घाट उतार दिया और उसके समर्थक अमीरोको घूस देकर चुप कर दिया। इसके बावजूद अलाउद्दीनको बहुत कठिनाइयोका सामना करना पडा। मगोलोने उसके राज्यपर बार-बार हमले किये और १२९९ ई० मे तो वे दिल्लीके नजदीकतक पहुँच गये। अलाउद्दीनने उनको हर बार खदेड दिया और १३०८ ई० मे उनको ऐसा हराया कि उसके बाद उन्होने हमला करना बन्द कर दिया।

जलालुद्दीन खिलजीके समयमे जिन मुगलोने हमला किया था उनमेसे जो मुसलमान बन गये थे उनको दिल्लीके पासके इलाकोमे बस जाने दिया गया। उनको नौमुस्लिम कहा जाता था, किन्तु उन्होने सुल्तानके खिलाफ षड्यत्र रचा जिसकी जानकारी मिलनेपर सुल्तानने एक दिनमे उनका कत्लेआम करा दिया। इसके बाद सुल्तानके कुछ रिश्तेदारोने विद्रोह करनेकी कोशिश की। उनका भी निर्दयतासे दमन करके मौतके घाट उतार दिया गया।

यह माना जाता है कि अलाउद्दीन खिलजीके गद्दीपर बैठनेके बाद दिल्लीकी सल्तनतका प्रसार आरम्भ हुआ। उसके गद्दीपर बैठनेके साल भर बाद उसके भाई उलूगखाँ और वजीर नसरतखाँके नेतृत्वमे उसकी सेनाने गुजरातके हिन्दू राजा कर्णदेवपर हमला किया। कर्णदेवने अपनी लडकी देवलदेवीके साथ भागकर देवगिरिके यादव राजा रामचन्द्रदेवके दरबारमे शरण ली। मुसलमानी सेना गुजरातसे बेशुमार दौलत लूटकर लायी। साथमे दो कैदियोको भी लायी। उनमेसे एक रानी कमलादेवी थी, जिससे अलाउद्दीनने विवाह करके उसे अपनी मलका बनाया और दूसरा काफूर नामक गुलाम था जो शीघ्र सुल्तानकी निगाहमे चढ गया। उसको मलिक नायबका पद दिया गया। इसके बाद अलाउद्दीनने अनेक राज्योको जीता। रणथम्भौर १३०३ ई० मे, मालवा १३०५ ई० मे और उसके बाद क्रमिक रीतिसे उज्जैन, धार, माडू और चन्देरीको जीत लिया गया। मलिक काफूर और ख्वाजा हाजीके नेतृत्वमे मुसलमानी सेनाने पुन दक्षिणकी ओर अभियान किया। १३०७ ई० मे देवगिरिको दुबारा जीता गया और १३१० ई० मे ओरगलके काकतीय राज्यको ध्वस्त कर दिया गया। इसके बाद द्वार समुद्रके होयसल राज्यको भी नष्ट कर दिया गया और मुसलमानी राज्य कन्याकुमारीतक दोनो ओरके समुद्र तटोपर पहुँच गया। मुसलमानी सेना १३११ ई० मे बहुत-सी लूटकी दौलतके साथ दिल्ली लौटी। उस समय उसके पास ६१२ हाथी, २०,००० घोडे और ९६,००० मन सोना और जवाहरातकी अनेक पेटियाँ थी। इसके पहले दिल्लीका कोई सुल्तान इतना अमीर और शक्तिशाली नही हुआ। इन विजयोके बाद अलाउद्दीन हिमालयसे कन्याकुमारीतक पूरे हिन्दुस्तानका शासक बन गया।

अलाउद्दीन केवल सैनिक ही नही था। वह सम्भवत पढा-लिखा न था लेकिन उसकी बुद्धि पैनी थी। वह जानता था कि उसका लक्ष्य क्या है और उसे कैसे पा सकता है। मुसलमान इतिहासकार बरनीके अनुसार सुल्तानने अनुभव किया कि उसके शासनके आरम्भमे कई विद्रोह हुए जिनसे उसके राज्यकी शान्ति भग हो गयी। उसने इन विद्रोहोके चार कारण ढूढ निकाले (१) सुल्तानका राजकाजमे दिलचस्पी न लेना, (२) शराबखोरी, (३) अमीरोके आपसी गठबधन जिसके कारण वे षड्यत्र करने लगते थे और (४) बेशुमार धन दौलत जिसके कारण लोगोमे घमड और राजद्रोह पैदा होता था। उसने गुप्तचर सगठन बनाया और सुल्तानकी इजाजत बगैर अमीरोमे परस्पर शादी-विवाहकी मुमानियत कर दी। शराब पीना, बेचना और बनाना बन्द कर दिया गया। अन्तमे उसने सभी निजी सम्पत्तिको अपने अधिकारमे कर लिया। दान और वक्फ सभी

सम्पत्तिपर राज्यका अधिकार हो गया। लोगोंपर भारी कर लगाये गये और करोंको इतनी सख्तीसे वसूल किया जाने लगा कि कर वसूलनेवाले अधिकारियोंसे लोग घृणा करने लगे और उनके साथ कोई अपनी बेटी व्याहना पसद नहीं करता था। लेकिन अलाउद्दीनका लक्ष्य पूरा हो गया। षड्यन्त्र और विद्रोह दबा दिये गये। अलाउद्दीनने तलवारके बलपर अपना राज्य चलाया। उसने मुसलमानों अथवा मुल्लाओंको प्रशासनमें हस्तक्षेप करनेसे रोक दिया और उसे अपने इच्छानुसार चलाया। उसके पास एक भारी बड़ी सेना थी जिसकी तनख्वाह सरकारी खजानेसे दी जाती थी। उसकी सेनाके पैदल सिपाहीको २३४ रुपये वार्षिक तनख्वाह मिलती थी। अपने दो घोड़े रखनेपर उसे ७८ रुपये वार्षिक और दिये जाते थे। सिपाही अपनी छोटी तनख्वाहपर गुजर बसर कर सके, इसलिए उसने अनाज जैसी आवश्यक वस्तुओंसे लेकर ऐशके साधनों—गुलामों और रखैल औरतोंके निर्ख भी निश्चित कर दिये। सरकारकी ओरसे निश्चित मूल्यों-पर सामान बिकवानेका इन्तजाम किया जाता था और किसीकी हिम्मत सरकारी हुक्मको तोड़नेकी नहीं पड़ती थी।

अलाउद्दीनने कवियोंको आश्रय दिया। अमीर खुसरू और हसनको उसका सरक्षण प्राप्त था। वह इमारतें बनवानेका भी शौकीन था। उसने अनेक किले और मस्जिदें बनवायीं।

उसका बुढ़ापा दुःखमें बीता। १३१२ ई० के बाद उसे कोई सफलता नहीं मिली। उसकी तन्दुरुस्ती खराब हो गयी और उसे जलोदर हो गया। उसकी बुद्धि और निर्णय लेनेकी क्षमता नष्ट हो गयी। उसे अपनी बीबियों और लड़कोंपर भरोसा नहीं रह गया था। मलिक काफूर, जिसे उसने गुलामसे सेनापति बनाया, सुल्तानके नाम-पर शासन चलाता था। २ जनवरी १३१६ ई० को अला-उद्दीनकी मृत्युके साथ उसका शासन समाप्त हो गया।

अलाउद्दीन मसूद—गुलाम वंशका सातवाँ सुल्तान (१२४२–४६ ई०)। वह सुल्तान रुक्नुद्दीनका बेटा था, जो सुल्तान इल्तुतमिश (१२११–१२३६ ई०) का दूसरा बेटा और उत्तराधिकारी था। वह सुल्ताना रजिया (१२३६–१२४० ई०) के गद्दीसे हटाये जानेके बाद सुल्तान बना। अलाउद्दीन मसूद अयोग्य शासक था जिसे १२४६ ई० में अमीरोंने तख्तसे उतार दिया और नासिरुद्दीनको सुल्तान बनाया।

अलाउद्दीन हुसेनशाह—१४९३ ई० से १५१८ ई० तक बंगालका सुल्तान। उसने बंगालमें हुसेनशाही वंशकी नींव डाली। वह अरबके सैयद वंशका था। बंगालमें वह सफल और लोकप्रिय शासक सिद्ध हुआ। उसने अपने राज्यमें आन्तरिक शांति स्थापित की, राजमहलके रक्षक सैनिकोंकी शक्ति घटायी, हब्शी सैनिकोंको निकाल बाहर किया और अपने राज्यकी सीमाएँ उड़ीसातक बढ़ायीं। उसने बिहारको जौनपुरके शासकोंसे छीन लिया और कूचबिहारके कामतापुरपर भी कब्जा कर लिया। उसने अपने राज्यमें, विशेष रूपसे गौड़में बहुत-सी मस्जिदें और खैरातखाने बनवाये। उसने धार्मिक सहिष्णुताका परिचय दिया और अपने राज्यमें बहुतसे हिन्दुओंको जैसे पुरन्दर खाँ, रूप और सनातनको उच्च पदोंपर नियुक्त किया। उसके २४ वर्षके शासनमें कहीं विप्लव अथवा विद्रोह नहीं हुआ। उसकी मृत्यु गौड़में हुई। उसकी प्रजा और उसके पड़ोसी राजा उसका सम्मान करते थे। उसकी मृत्युके बाद उसका बेटा नसरतशाह गद्दीपर बैठा।

अलार, जनरल—एक फ्रांसीसी, जो नेपोलियनके नेतृत्वमें लड़ चुका था। बादमें उसे महाराज रणजीतसिंह (१७९८–१८३९ ई०) ने अपनी सिख सेनाको सगठित तथा प्रशिक्षित करनेके लिए रख लिया।

अली आदिलशाह प्रथम—बीजापुरके आदिलशाही वंशका पाँचवा सुल्तान (१५५७–१५८० ई०)। उसने शिया मजहब स्वीकार कर लिया था और सुन्नियोंके प्रति असहिष्णु हो गया था। १५५८ ई० में उसने विजय नगरके हिन्दू-राज्यसे समझौता करके अहमद नगरपर चढ़ाई की। इन दोनों राज्योंकी सम्मिलित सेनाने अहमद नगरको तबाह कर दिया। अहमदनगरके मुसलमानों-पर हिन्दुओंने जो ज्यादतियाँ कीं उनके कारण शीघ्र ही सुल्तान अली आदिलशाह प्रथम और विजयनगरके राम राजाके सम्बन्ध बिगड़ गये। अतमें बीजापुर, अहमद-नगर, बीदर और गोलकुडाके चारों मुसलमान सुल्तानोंने मिलकर विजयनगरको तालीकोटके युद्ध (१५६५ ई०) में हरा दिया। विजेता अली आदिल शाह विजय नगर-को लूटने और सदाके लिए नष्ट करनेमें शामिल हो गया। इसके बाद सुल्तान अली आदिलशाह प्रथमने १५७० ई० में अहमदनगरसे समझौता करके भारतके पश्चिमी समुद्र-तटसे पुर्तगालियोंको निकाल बाहर करनेके प्रयासमें एक बड़ी सेना लेकर गोआको घेर लिया, लेकिन पुर्तगालियोंने हमला विफल कर दिया। अली आदिलशाहकी शादी अहमदनगरकी शाहजादी प्रसिद्ध चाँदबीबीसे हुई थी जिसने अकबरके आक्रमणके समय अहमदनगरकी रक्षा करनेमें

बडी वीरता दिखायी। वह अपने पतिकी मृत्युके बाद अहमदनगरमे आकर रहने लगी थी।

अली आदिलशाह द्वितीय–बीजापुरके आदिलशाही वशका आठवाँ सुल्तान (१६५६–७३ ई०)। जब वह तख्तपर बैठा उसकी उम्र केवल १८ वर्षकी थी। उसकी छोटी उम्र देखकर मुगल बादशाह शाहजहाँने दक्षिणके सूबेदार अपने पुत्र औरगजेबको उसपर आक्रमण करनेका आदेश दिया। मुगलोने बीजापुरपर हल्ला बोल दिया और युवा सुल्तानकी फौजोको कई जगह पराजित कर उसे १६५७ ई० मे राज्यके बीदर, कल्याणी और परेन्दा आदि क्षेत्रोको सौप सुलह कर लेनेके लिए मजबूर किया।

मुगलोसे सन्धि करनेके बाद सुल्तान अली आदिलशाह द्वितीयने मराठा नेता शिवाजीका दमन करनेका निश्चय किया, जिसने उसके कई किलोपर अधिकार कर लिया था। १६५९ ई० मे उसने अफजलखाँके नेतृत्वमे एक बडी फौज शिवाजीके खिलाफ भेजी। शिवाजीने अफजलखाँको मार डाला और बीजापुरकी सेनाको पराजित कर दिया। इस प्रकार अली आदिलशाह द्वितीयको शिवाजीका दमन करने अथवा उसकी बढती हुई शक्तिको रोकनेमे सफलता नही मिली और वह मुगल और मराठा शक्तियोके बीचमे चक्कीके दो पाटोकी भाँति दब गया। वह किसी प्रकार १६७३ ई० मे अपनी मृत्युतक अपनी गद्दी बचाये रहा।

अलीगढ–उत्तर प्रदेशका एक शहर जिसका आधुनिक भारतीय इतिहासमे महत्त्वपूर्ण योग है। अलीगढमे एक मजबूत किला था जिसे दूसरे आग्ल-मराठा युद्धमे अग्रेजोने १८०३ ई० मे मराठोसे छीन लिया और इससे दिल्लीको जीतनेमे उन्हे बडी मदद मिली। सन् १८५७ के सिपाही-विद्रोहका यह मुख्य केन्द्र रहा। नगरमे मुसलमानोकी आबादी अधिक है। १८५७ ई० से यह नगर भारतीय मुसलमानोका सास्कृतिक केन्द्र बन गया है जब सर सैयद अहमद खाँके प्रयाससे यहाँ एग्लो-ओरिएटल कालेजकी स्थापना की गयी। शीघ्र ही यह कालेज भारतीय मुसलमानोको अग्रेजी शिक्षा देनेवाला प्रमुख केन्द्र बन गया। १९२० ई० मे अलीगढ कालेजको विश्वविद्यालय बना दिया गया। अलीगढ आन्दोलन, जिसका उद्देश्य इस्लामकी उन्नति करना, भारतीय मुसलमानोको पश्चिमी शिक्षा देना, सामाजिक कुरीतियाँ दूर करना और उन्हे १८८५ ई० से आरम्भ होनेवाली भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके प्रभावसे दूर रखना था, उसका केन्द्रबिन्दु अलीगढ ही था। अलीगढ कालेजके सस्थापको और वहाँसे निकले छात्रोके राष्ट्रीयता-विरोधी रवैयेसे अलीगढ प्रतिक्रियावादियोका गढ समझा जाने लगा। १९०६ ई० मे अलीगढके कुछ स्नातकोने मुसलमानोकी आकाक्षाओको व्यक्त करनेके लिए मुस्लिम लीगकी स्थापना की। कुछ वर्षोतक मुस्लिम लीगने भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके साथ मिलकर भारतके लिए शासन-सुधारकी माँग की, लेकिन अन्तमे, वह घोर साम्प्रदायिक सस्था बन गयी और उसने पाकिस्तानकी माँग की। १९४७ मे उसी माँगके आधार पर भारतका विभाजन हो गया।

अली गौहर, शाहजादा–देखो 'आलम शाह द्वितीय'।

अली नकी–गुजरातका दीवान, जबकि बादशाह शाहजहाँका चौथा बेटा शाहजादा मुराद वहाँका सूबेदार था। अली नकीकी हत्याके झूठे अभियोगमे मुरादको १६६१ ई० मे मौतकी सजा दी गयी।

अलीनगरकी सन्धि–९ फरवरी १७५७ ई० को बगालके नवाब सिराजुद्दौला और ईस्ट इडिया कम्पनीके बीच हुई, जिसमे अग्रेजोका प्रतिनिधित्व क्लाइव और वाटसनने किया था। अग्रेजो द्वारा कलकत्तेपर दुबारा अधिकार कर लेनेके बाद यह सन्धि की गयी। इस सन्धिके द्वारा नवाब और ईस्ट इडिया कम्पनीमे निम्नलिखित शर्तोपर फिरसे सुलह हो गयी —ईस्ट इडिया कम्पनीको मुगल बादशाहके फरमानके आधारपर व्यापारकी समस्त सुविधाएँ फिरसे दे दी गयी, कलकत्तेके किलेकी मरम्मतकी इजाजत भी दे दी गयी, कलकत्तेमे सिक्के ढालनेका अधिकार भी उन्हे दे दिया गया तथा नवाब द्वारा कलकत्तेपर अधिकार करनेसे अग्रेजोको जो क्षति हुई थी उसका हरजाना देना स्वीकार किया गया और दोनो पक्षोने शान्ति बनाये रखनेका वादा किया। इस सन्धिपर हस्ताक्षर करनेके एक महीने बाद अग्रेजोने उसका उल्लघन कर, कलकत्तासे कुछ मील दूर गगाके किनारेकी फ्रासीसी बस्ती चन्द्रनगरपर आक्रमण करके उसपर अधिकार कर लिया। उसके दूसरे महीने जूनमे अग्रेजोने मीरजाफर और नवाबके अन्य विरोधी अफसरोसे मिलकर सिराजुद्दौलाके विरुद्ध षड्यन्त्र रचा। इस षड्यन्त्रके परिणामस्वरूप २३ जून १७५७ ई० को पलासीकी लडाई हुई जिसमे सिराजुद्दौला हारा और मारा गया।

अली बरीद–बहमनी राज्यकी एक शाखा बिदरके बरीदशाही वशका तीसरा सुल्तान। वह कासिम बरीदका पौत्र था, जिसने १४९२ ई० मे बरीदशाही राजवशकी स्थापना की। उसका पिता सुल्तान अमीर बरीद अपने राजवशका दूसरा सुल्तान था। अली बरीद १५३९ ई० मे गद्दीपर बैठा। बरीदशाही वशका वह पहला शासक था जिसने अपनेको सुल्तान घोषित किया।

अली मर्दान खिलजी–को सुल्तान कुतुबुद्दीन (दे०) ने १२०६ ई० मे बंगालका सूबेदार बनाकर भेजा। १२१० ई० मे कुतुबुद्दीनकी मृत्युके बाद उसने अपनेको बंगालका स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया और अलाउद्दीनका खिताब रखा। सुल्तान इल्तुतमिश (दे०) ने १२३० ई० मे उसको पराजित कर दिया।

अली मुहम्मद रुहेला–ने अवधके पश्चिमोत्तर भाग, हिमालयके तराई क्षेत्रमे स्थित रुहेलखंडमे रुहेलोकी सत्ता स्थापित की। १७७४ ई० मे रुहेलायुद्ध समाप्त होनेपर और उनके नेता हाफिज रहमत खांके मरनेपर ईस्ट - इंडिया कम्पनीने उसके लडके फैजुल्ला खांको रुहेल खंडके एक हिस्सेका, जिसमे रामपुर भी शामिल था, शासक बना दिया। इस प्रकार रामपुरके नवाबोके परिवारकी शुरुआत हुई।

अली वर्दी खां–का मूल नाम मिर्जा मुहम्मद खाँ। उसको बंगालके नवाब शुजाउद्दीन (१७२५-३९ ई०) ने मिट्टीसे उठाकर आदमी बना दिया और वह अलीवर्दी या अलहवर्दी खांके नामसे मशहूर हुआ। नवाब शुजाउद्दौलाकी मृत्युके समय अलीवर्दी खाँ बिहारमे नायब नाजिम (वित्त विभागका मुख्य अधिकारी) था, जो उस समय बंगालका हिस्सा था। शुजाउद्दीनके बाद उसका बेटा सरफराज खाँ बंगालका नवाब बना। इससे कुछ ही पहले नादिरशाह (दे०) की चढाई हुई थी और उसने दिल्लीको लूटा था जिसके कारण पूरा मुगल प्रशासन हिल गया था। इस गडबडीसे लाभ उठाकर अली वर्दी खांने घूस देकर दिल्लीसे एक फरमान प्राप्त कर लिया जिसके द्वारा सरफराज खांको हटाकर उसकी जगह अलीवर्दी खाँको बंगालका नवाब बनाया गया था। अपने भाई हाजी अहमद और जगत सेठकी सहायतासे अलीवर्दी खांने नवाब सरफराज खांके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और १७४० ई० मे राजमहलके निकट गिरियाकी लडाईमे उसे हराकर मार डाला और बंगालके नवाबकी मसनद (गद्दी) पर काबिज हो गया। बादशाहको नजरानेमे कीमती चीजे भेजकर उसने दिल्ली दरबारसे नवाब बंगालके रूपमे फिरसे सनद प्राप्त कर ली। इसके बाद उसने बंगालपर १६ वर्ष (१७४०–५६ ई०) तक लगभग एक स्वतंत्र शासकके रूपमे राज्य किया और कभी दिल्लीको मालगुजारी नही भेजी। यद्यपि उसने नवाबी बेईमानीसे प्राप्त की थी तथापि उसमे कुछ अच्छे गुण भी थे। अपने प्रारम्भिक जीवनमे वह योग्य प्रशासक और वीर योद्धा था। बंगालमे जो यूरोपीय कम्पनियाँ व्यापार करती थी उनके साथ उसका व्यवहार पक्षपातहीन था। उसने उनको आपसमे लडकर राज्यकी शान्ति भंग करनेकी इजाजत नही दी। लेकिन मराठे उसे बराबर परेशान करते रहे। वे प्राय प्रतिवर्ष बंगालपर आक्रमण करते थे। वह मराठा आक्रमण रोकनेमे असमर्थ रहा, हालाकि उसने मराठा सरदार भास्कर पंडितकी दगाबाजीमे हत्या कर दी। अतमे अलीवर्दी खांने मराठोसे १७५१ ई० मे सुलह करके उन्हें उडीसाके राजस्वका एक हिस्सा और १२ लाख रुपया सालाना चौथ देना मंजूर कर लिया। उसके बाद उसने ६ वर्ष शान्तिसे राज्य किया और १७५६ ई० मे ८० वर्षकी आयुमे उसकी मृत्यु हुई। उसकी मृत्युके बाद उसका नाती सिराजुद्दौला नवाब बना।

अलीवालकी लड़ाई–२८ जनवरी १८४८ ई० को प्रथम आंग्ल-सिख युद्धमे हुई। इस लडाईमे सिखोकी हार हुई और उन्हे अपनी तोपोको छोडकर सतलज नदीके उस पार भाग जाना पडा।

अली शाह–कश्मीरका सातवाँ सुल्तान (१४१६–२० ई०)। उसके बाद उसका भाई सुल्तान जैनुल आब्दीन (१४२०–७० ई०) गद्दीपर बैठा जो कश्मीरका अकबर माना जाता है।

अलीबंधु–देखो मुहम्मद अली तथा शौकत अली।

अलेक्जेंड्रिया–नामकी दो बस्तियाँ सिकंदरने भारतपर अपने हमलेके दौरान स्थापित की, जिनमे एक अफगानिस्तानमे काबुलके निकट थी और दूसरी सिन्धमे चनाब और सिन्धुके संगमके निकट। बादमे दोनो बस्तियाँ समाप्त हो गयी।

अलेक्जेंडर, ए० वी० (बादमे वाइकाउंट)–अप्रैल १९४६ ई० मे लार्ड पैथिक लारेंसके नेतृत्वमे भारत आनेवाले ब्रिटिश मंत्रिमंडलके प्रतिनिधि दलका सदस्य।

अलेक्जेंडर (एपिरसका)–(२७२–२५५ ई० पू०) सम्भवत अशोकके शिलालेख–सख्या १३ मे अलिक सुन्दर नामसे इसीका उल्लेख किया गया है। यह भी सम्भव है कि शिलालेखमे वर्णित अलिक सुन्दर कोरिंथका अलेक्जेंडर (२५२–२४४ ई० पू०) हो। जो भी हो, इससे अशोकके समयको निश्चित करनेमे मदद मिलती है।

अलेक्जेंडर महान–देखो, सिकंदर महान्।

अलोर–सिन्धके अन्तिम हिन्दू राजा दाहिरके समय सिन्धकी राजधानी। अरबोने मुहम्मद बिन कासिमके नेतृत्वमे उसे ७१२ ई० मे जीतकर अपने कब्जेमे कर लिया। इसके बाद सिन्धपर मुसलमानोका अधिकार हो गया।

अल्मीदा, डॉन फ्रांसिसको द–पूर्वमे पुर्तगाली उपनिवेशोका पहला वायसराय (१५०५–०९ ई०)। उसका विश्वास

था कि पूर्वमे पुर्तगालियोकी सफलता उनकी नौसेनाकी शक्तिपर निर्भर है और पूर्वमे पुर्तगाली साम्राज्यकी स्थापनाको वह कल्पना मात्र मानता था।

अल्लामी सादुल्ला खा–बादशाह शाहजहॉका खास वजीर। वह कुशल प्रशासक और योग्य सेनापति था जिसने अनेक अवसरोपर मुगल सेनाका नेतृत्व किया था। वह अपने पदपर काम करते हुए १६५६ ई० मे मरा।

अवध–प्राचीन कोसल (दे०) राज्यका आधुनिक नाम। यह इलाहाबादके उत्तर-पश्चिममे है। इस राज्यसे होकर सरयू नदी बहती है जो गगामे मिल जाती है। रामायणके अनुसार रामचद्रजीके पिता राजा दशरथ कोसलके राजा थे और अयोध्या उनकी राजधानी थी। ऐतिहासिक कालमे कोसल उत्तरी भारतके सोलह महाजनपदो (राज्यो) मे से था और उसकी राजधानी श्रावस्ती थी। छठी शताब्दी ई० पू० मे उसका राजा प्रसेनजित मगधराजा बिम्बसार तथा अजातशत्रुका सम-सामयिक और प्रतिद्वन्द्वी था। कोसलको बादमे मगधने जीत लिया और नदो तथा मौर्योके मगध साम्राज्यमे सम्मिलित कर लिया गया। यह निश्चित रूपसे ज्ञात नही है कि कब सारा कोसल राज्य अयोध्याके नामसे विख्यात हो गया। उसका आधुनिक अवध नाम अयोध्या-का ही विकृत रूप है।

लगभग १५६ ई० पू० मे अवध तथा उसकी राजधानी साकेत पर एक 'दुरात्मा वीर' यवनने आक्रमण किया। इस यवनकी पहचान मेनान्डर (दे०) तथा उसकी यवन (यूनानी) सेनाओमे की जाती है। ईसवी सन्की चौथी शताब्दीमे अवध गुप्त साम्राज्यका एक भाग था और अयोध्या सभवत पॉचवी शताब्दीमे गुप्त राजाओकी दूसरी राजधानी थी। सातवी शताब्दीमे यह हर्षवर्धन (दे०) के साम्राज्यमे सम्मिलित था और नौवी शताब्दी-मे यह गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्यका भाग रहा।

तरावडी (दे०) (११९२ ई०) की दूसरी लडाईके बाद ही शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी (दे०) के एक सहायक मलिक हिसमुद्दीन अागुल बकने अवधको जीत लिया। इसकी उर्वरा भूमि तथा स्वास्थ्यप्रद जलवायुसे आकर्पित होकर बहुत-से मुसलमान अमीर क्रमिक रीतिसे अवध चले आये और वही बस गये। विशेष रूपसे सुल्तान मुहम्मद तुगलकके राज्यकालमे बहुत-से मुसलमान अमीर यहॉ आकर बस गये। १३४० ई० मे ऐनुल-मुल्कने, जो अवधका हाकिम था, और बडी योग्यताके साथ सूबेका शासन कर रहा था, सुल्तान मुहम्मद तुगलकके खिलाफ बगावत कर दी। उसकी बगावत कुचल दी गयी तथा उसे कैदखानेमे डाल दिया गया। इसके बाद अवध दिल्लीकी सल्तनतका एक भाग बना रहा, हालाकि उसका एक बडा हिस्सा जौनपुर राज्य (१३९९–१४७९ ई०) मे मिला लिया गया था।

जौनपुर राज्यके पतनपर अवध फिर पूरी तौरसे दिल्लीकी सल्तनतका एक भाग बन गया। १५२६ ई० मे इब्राहीम लोदीपर बाबरकी विजयके बाद अवधपर मुगलोका शासन स्थापित हो गया। अकबरने अपने साम्राज्यको जिन १५ सूबोमे बॉटा था, उनमे अवध भी था। १७२४ ई० तक अवध मुगल साम्राज्यका एक महत्त्वपूर्ण सूबा रहा।

१७२४ ई० मे अवधके मुगल सूबेदार सआदत खॉने अपनेको लगभग स्वतत्र कर लिया और अवधके नवाब वशकी स्थापना की। वह अपनेको नवाब वजीर अर्थात् मुगल साम्राज्यका बडा वजीर कहता था। इन नवाब वजीरोकी तीन पीढियोने अवधपर स्वतत्र रीतिसे शासन किया। इनके नाम थे (१) सआदत खॉ (१७२४–३९ ई०), (२) सफदरजग (१७३९–५४ ई०) तथा शुजाउद्दौला (१७५४–७५ ई०)।

तीसरा नवाब वजीर शुजाउद्दौला (दे०) १७६४ ई० मे बक्सरकी लडाईमे अग्रेजोसे हार गया। इसके बाद अवधकी शक्तिका ह्रास होने लगा। फिर भी १७७४ ई० मे अवधने अग्रेजोकी सहायतासे रुहेलखडको जीत लिया और इसके बाद उस क्षेत्रमे भी कुशासन फैल गया। शुजाउद्दौलाके बेटे तथा उत्तराधिकारी आसफुद्दौला (१७७५–९७ ई०) के राज्यकालमे अवधको भारतमे ब्रिटिश साम्राज्य तथा मराठा साम्राज्यके बीचका मध्य-वर्ती राज्य माना जाने लगा। १७९७ ई० मे आसफुद्दौला-की मृत्युके बाद उसकी गद्दीपर कुछ समयके लिए उसका जारज बेटा वजीर अली (१७९७–९८ ई०) बैठा। इसके बाद अग्रेजोने उसे हटा दिया और अवधकी गद्दी-पर आसफुद्दौलाके भाई सआदत खॉंको बैठाया। नये नवाबने १७९८ से १८१४ ई० तक शासन किया और कम्पनीसे एक सधि कर ली। इस सधिके द्वारा कम्पनीने अवधकी रक्षाका भार अपने ऊपर ले लिया। इसके बदलेमे नवाबने इलाहाबादका किला कम्पनीको सौंप दिया और ७६ लाख रुपये वार्षिक खिराज देनेका वादा किया। इस प्रकार अवध एक प्रकारसे कम्पनीका रक्षित अधीनस्थ राज्य बन गया। यह बात १८०१ ई० की सधिसे और अच्छी तरह स्पष्ट हो गयी, जब अवधका नवाब

रुहेलखंड तथा गंगा और यमुनाका सारा इलाका अर्थात् अपना लगभग आधा इलाका कम्पनीको सौंप देनेके लिए विवश हुआ। शेष आधा इलाका नवाबके शासनमें रहा।

सआदत खाके बेटे तथा उत्तराधिकारी गाजीउद्दीन हैदर (१८१४-२७ ई०) को गवर्नर-जनरल लार्ड हेस्टिंग्स (दे०) ने १८१९ ई० में शाहकी उपाधि प्रदान की। किंतु शाह गाजीउद्दीन हैदर तथा उसके उत्तराधिकारियों—नसीरुद्दीन हैदर (१८२७-३७ ई०), मुहम्मद अलीशाह (१८३७-४२ ई०), अमजद अली शाह (१८४२-४७ ई०) तथा वाजिदअली शाह (१८४७-५६ ई०) के शासन कालमें अवधका कुशासन कायम रहा। १८५६ ई० में कुशासनके अभियोगमें वाजिद अली शाहको गद्दीसे उतार दिया गया और अवध ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया गया।

अवधके नवाबोंने राजधानी लखनऊमें कई खूबसूरत मसजिदें और इमारतें बनवायीं। उन्होंने लखनऊको मुस्लिम संस्कृति, संगीत और विलासिताका केन्द्र बना दिया। अवधके अंग्रेजोंके भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया जानेपर नवाबकी फौजें बर्खास्त कर दी गयीं। इसके फलस्वरूप नवाबोंके आश्रित हजारों व्यक्ति बेकार हो गये और उनमें असंतोष फैल गया। गदर (दे०) के अनेक कारणोंमें एक कारण यह भी था।

अवध काश्तकारी कानून—अधिकांशत गवर्नर-जनरल सर जान लारेंसके समर्थनसे १८६८ ई० में पास हुआ। अवधमें नवाबोंके शासनकालमें बहुतसे प्रभावशाली ताल्लुकेदार नियुक्त हो गये थे जिनमें अधिकांशत राजपूत थे। वे काश्तकारोंका बुरी तरह शोषण करते थे। अधिकांश काश्तकार शिकमी थे जिन्हें जब चाहे तब बेदखल किया जा सकता था। अवध काश्तकारी कानूनके द्वारा अवधके काश्तकारोंकी अवस्था, कुछ हदतक सुधारनेकी कोशिश की गयी। उन्हें कुछ विशेष शर्तोंपर जमीनपर दखल रखनेके अधिकार दे दिये गये। यह व्यवस्था की गयी कि लगान बढ़ानेपर किसानोंने भूमिमें जो स्थायी सुधार किये होंगे उनके लिए उन्हें मुआवजा दिया जायगा और न्यायालयमें दर्खास्त देनेके बाद ही न्यायोचित आधारपर लगान बढ़ाया जा सकेगा। यह उपयोगी और किसानोंके लिए हितकारी कानून था।

अवमुक्त—नामक राज्यका उल्लेख समुद्रगुप्तके प्रयाग-स्तम्भ लेखमें आया है। उसका राजा नीलराज बताया गया है जिसे समुद्रगुप्तने पराजित किया था, परन्तु बादमें उसे उसका राज्य लौटा दिया था। अवमुक्त दक्षिणमें था लेकिन उसकी ठीक स्थितिका पता नहीं चलता है।

अवन्ती—प्राचीन भारतका महत्त्वपूर्ण राज्य। उसकी राजधानी उज्जयिनी आधुनिक मालवामें थी। उसकी गणना १६ राज्यों (षोडश जनपदों) में की जाती थी। प्राचीन बौद्ध ग्रंथोंके अनुसार ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दीमें बौद्ध धर्मके उदयसे कुछ पहले भारत १६ जनपदोंमें विभाजित था। इनमें अवन्ती भी था। बादमें अवन्तीने पड़ोसके छोटे राज्योंको आत्मसात् कर लिया और उसकी गणना भारतके चार बड़े राज्योंमें की जाने लगी। तीन अन्य वत्स (इलाहाबाद क्षेत्र), कोशल (अवध) और मगध (दक्षिणी बिहार) के राज्य थे। अवन्तीका राजा प्रद्योत मगधके बिंबसार और अजातशत्रुका समसामयिक था। चन्द्रगुप्त मौर्यने चौथी शताब्दी ईसा पूर्वमें अवन्तीको जीतकर अपने साम्राज्यमें मिला लिया।

अवन्ति वर्मा—कन्नौजके मौखरि वंशका राजा, जो स्थानेश्वरके पुष्यभूति वंशके राजा प्रभाकरवर्द्धनका समसामयिक था। उसके पुत्र गृहवर्माने प्रभाकरवर्द्धनकी पुत्री राज्यश्रीसे विवाह किया था।

अवन्ती वर्मा (कश्मीरका)—ने ८५५ ई० में कश्मीरमें उत्पल राजवंशकी स्थापना की और कर्कोटक राजवंशको उखाड़ फेंका। उसके आदेशसे कश्मीरमें सिंचाईके लिए नहरोंका निर्माण किया गया, जिससे उसे बहुत कीर्ति मिली।

अवतार—सर्वशक्तिमान् परमात्माके पृथ्वीपर जीवधारी बनकर आनेपर उन्हें 'अवतार' कहा जाता है। सनातनी हिन्दुओंका विश्वास है कि जब धर्म क्षीण हो जाता है और अधर्म बढ़ता है तो सर्वशक्तिमान् परमात्मा पृथ्वीपर जीवधारीके रूपमें प्रकट होकर धर्मकी रक्षा करता है और अधर्मका नाश कर धर्मकी पुनर्स्थापना करता है। सर्वशक्तिमान् परमात्माके इन जीवधारी रूपोंको सनातनी हिन्दू 'अवतार' मानते हैं। उनके अनुसार अबतक ऐसे नौ अवतार हो चुके हैं और दसवाँ कल्कि-अवतार होना बाकी है। पिछले नौ अवतारोंमें मत्स्य, कच्छप वराह, नृसिंह वामन, परशुराम, श्रीरामचन्द्र, बलराम और बुद्ध हैं। **(भागवत—४, ७-८)**

अविता बिले, जनरल—नेपोलियनकी सेनाका एक अफसर, जो अपना भाग्य आजमानेके लिए भारत आया। उसे पंजाबके राजा रणजीत सिंहने सिख सेनाको यूरोपीय ढंगसे संगठित करनेके लिए नौकर रख लिया।

अव्यवस्थित प्रान्त—अंग्रेजोंके भारतीय साम्राज्यके अन्तर्गत उन प्रान्तोंको कहा जाता था, जिनमें सन् १७९३ ई० में जारी लार्ड कार्नवालिसका विधि-विधान व्यवहृत नहीं होता था। ऐसे प्रान्त दिल्ली, असम, अराकान और तेना-

सुंदर पालिश है कि शताब्दियो बीत जानेपर भी खराब नही हुई है और ललित-कला और स्थापत्य-कलाके पारखी उनकी बडी प्रशसा करते है। दूर-दूरतक फैले हुए ये प्रस्तर-स्तम्भ एक ही चट्टानसे काटकर बनाये गये थे और भारतीय शिल्पके अनुपम उदाहरण है। "उनको देखनेसे मालूम होता है कि उस समय पत्थरपर पालिश करनेकी कला अत्यन्त उन्नत थी और आधुनिक युगमे यह कला विलुप्त हो गयी है।" बडी चट्टानोको काटने और उन्हे उनकी खदानोसे सैकडो मील दूर ले जाने और कभी-कभी तो पहाडी चोटियोतक पहुँचानेकी इजीनियरिगकी कलाने भी उस युगमे बहुत उन्नति कर ली थी। प्रत्येक प्रस्तर-स्तम्भके शीर्षभागपर एक अथवा अनेक पशुओकी मूर्तियाँ उत्कीर्ण मिलती है। इन मूर्तियोके आसनको उलटे हुए कमलकी आकृति प्रदान की गयी है। कला-पारखियोने इन प्रस्तर-स्तम्भो, विशेष रूपसे सारनाथ स्तम्भके कलात्मक शीर्षभागकी मुक्तकठसे प्रशसा की है और सर जान मार्शलके अनुसार "प्राचीन कालमे इसके जोडकी कोई कलाकृति अन्यत्र उपलब्ध नही है।"

अशोकके पारिवारिक जीवनके बारेमे हमे बहुत कम जानकारी है। बादके साहित्यमे सुरक्षित जनश्रुतियोके अनुसार उसके कई रानियाँ थी। उसके शिलालेखोमे केवल दो रानियोका उल्लेख मिलता है जिनमेसे दूसरी रानीका नाम कारुवाकी अथवा चारुवाकी था जो तीवरकी माता थी। इसी प्रकार अशोकके पुत्रोके सम्बन्धमे हमे बहुत कम जानकारी मिलती है। तीवर उसका एक पुत्र था, लेकिन और दूसरे कौन और कितने पुत्र थे, यह सब अज्ञात है। सिहली इतिहास-ग्रथोके अनुसार महेन्द्र, जिसने श्रीलकामे बुद्धधर्मका प्रचार किया अशोकका पुत्र था जिसे उसने धर्मप्रचारके लिए वहाँ भेजा था। यदि ऐसा था तो महेन्द्रकी बहिन और सहायिका सघमित्रा अशोककी पुत्री थी, लेकिन शिलालेखोमे इसका कुछ भी उल्लेख नही मिलता है। साहित्यिक अनुश्रुतियोमे अशोकके दो पुत्रोका नाम मिलता है, वे कुणाल और जालौक थे। लेकिन अशोकके उत्तराधिकारीके रूपमे उसका कोई लडका सिहासनपर नही बैठा। उसका राज्य उसके दो पौत्रो दशरथ और सम्प्रतिको मिला जिन्होने उसे आपसमे बाँट लिया।

इस बातका भी विवरण नही मिलता है कि अशोकके कर्मठ जीवनका अन्त कब, कैसे और कहाँ हुआ। तिब्बती परम्पराके अनुसार उसका देहावसान तक्षशिलामे हुआ। उसके एक शिलालेखके अनुसार अशोकका अन्तिम कार्य भिक्षुसघमे फूट डालनेकी निन्दा करना था। सम्भवत यह घटना बौद्धोकी तीसरी सगीतिके बाद-की है। सिहली इतिहास-ग्रथोके अनुसार तीसरी सगीति अशोकके राज्यकालमे पाटलीपुत्रमे हुई थी।

कलिग-विजयके बाद अशोक व्यक्तिगत रूपसे बौद्ध मतावलम्बी हो गया था। यह बात इससे सिद्ध होती है कि उसने अपनेको मास्कीके लघु शिलालेख सख्या १ मे बौद्ध-शाक्य बतलाया है और भाब्रूके शिलालेखमे भी तीन रत्नो (बुद्ध, धर्म और सघ) मे अपनी आस्था व्यक्त की है। सारनाथके शिलालेखसे स्पष्ट है कि उसने केवल बौद्ध तीर्थस्थलोकी यात्राएँ की और बौद्ध भिक्षु सघकी एकता बनाये रखनेका प्रयत्न किया। इससे भी यही प्रकट होता है कि वह बौद्ध मतावलम्बी था।

लेकिन उसके किसी भी शिलालेखमे बौद्धधर्मके मूलभूत सिद्धान्तो—चार आर्य सत्य, अष्टागिक-मार्ग तथा निर्वाणका उल्लेख नही है। इसके विपरीत उसके शिलालेखोमे बौद्धधर्मकी शिक्षाओके विरुद्ध लिखा है कि धर्मके मगलाचारसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। इन बातोसे कुछ विद्वानोने यह निष्कर्ष निकाला है कि अशोकने जिस 'धम्म'का उपदेश दिया वह बौद्धधर्म नही, विश्वधर्म था। यह निष्कर्ष सही नही मालूम होता है। अशोकके शिला-लेखोमे 'धम्म' शब्दका प्रयोग उसी धर्मके लिए किया गया है जिसे वह व्यक्तिगत रूपसे मानता था और जिसका उसने अपनी प्रजामे प्रचार किया। इसलिए यदि वह व्यक्तिगत रूपसे बौद्ध मतावलम्बी था तो उसके द्वारा प्रचारित धर्म भी बौद्धधर्म था। उसके शिला-लेखोमे बार-बार यही दोहराया गया है कि पशुओपर दया करनी चाहिये, माता-पिता और गुरुजनकी आज्ञा माननी चाहिये, सच बोलना चाहिये तथा सभीके साथ नम्रताका व्यवहार करना चाहिये। ये शिक्षाएँ निस्सदेह सभी धर्मोमे पायी जाती है, लेकिन किसी भी धर्ममे उनपर इतना जोर नही दिया गया जितना बौद्ध धर्ममे। बौद्धधर्मकी पुस्तकोमे निर्देश है कि बौद्ध मतावलम्बी गृहस्थोको इनका पालन करना चाहिये। अशोकने अपने शिलालेखोमे जिस धर्मका प्रचार किया वह साधारण गृहस्थोके लिए था अत उसे बौद्ध धर्म मानना ही सही है। (**हलजब, सी० आई० आई०, १, भडारकर–अशोक, मुखर्जी—अशोक, स्मिथ, ई० एच० आई०, वेल्स–हिस्ट्री आफ दि वर्ल्ड, भट्टाचार्य–सेलेक्ट अशोकन एपीग्राफ्स**)।

अश्वघोष–बौद्धभिक्षु और आचार्य जो ईसाकी दूसरी शताब्दी-मे हुआ। उसका जन्म मगधमे हुआ था, लेकिन बादमे

वह उत्तरी भारतके महान कुषाण राजा कनिष्कका सभापंडित हो गया और पेशावरमें रहने लगा। वह कवि, संगीतज्ञ, विद्वान्, दार्शनिक, नाटककार एवं धार्मिक शास्त्रार्थमें कुशल बौद्धाचार्य था। धर्म एवं आचारनिष्ठ बौद्धभिक्षुओंमें उसका बड़ा आदर था। उसके नाटकोंमें 'राष्ट्रपाल' और 'सारिपुत्र प्रकरण' विख्यात हैं। उसने 'सूत्र-अलंकार' नामक काव्य भी लिखा था। उसका 'बुद्ध चरित' रामायणकी भाँति एक धार्मिक महाकाव्य है जिसमें गौतमबुद्धके जीवन और शिक्षाओंका वर्णन है। उसने कनिष्क द्वारा पेशावरमें आयोजित चौथी 'बौद्ध संगीति' में प्रमुख भाग लिया। उसने अपने 'महायान श्रद्धोत्पाद संग्रह' नामक ग्रंथमें शून्यवादका प्रतिपादन किया है और त्रिकायवाद (धर्मकाय, सम्भोगकाय, निर्माणकाय) के सिद्धांतका विकास किया है। उसके मतानुसार बुद्धत्वकी प्राप्तिके हेतु एक बौद्धके लिए बुद्धके इस त्रिविध रूपमेंसे किसी एक रूपमें भक्ति रखना आवश्यक है। महायानी सम्प्रदायके विकासमें उसके विचारोंका काफी योगदान है। (इन०)

अश्वमेध—का विधान ऋग्वेदमें मिलता है। जब कोई विजयी राजा अपनेको सार्वभौम राजा घोषित करना चाहता था तो वह अश्वमेध करता था। इस यज्ञमें एक घोड़ा छोड़ा जाता था जो साल भर इच्छानुसार विचरण करता था। इस घोड़ेके पीछे-पीछे सेना चलती थी जिसका नायकत्व अश्वमेध करनेवाला राजा अथवा उसकी ओरसे नियुक्त कोई राजकुमार करता था। जब अश्वमेधका घोड़ा किसी दूसरे राजाके राज्यमें प्रवेश करता था तो वह या तो युद्ध करता था या बिना लड़े अधीनता स्वीकार कर लेता था। यदि अश्वमेध करनेवाला राजा उन सभी राजाओंको, जिनके राज्यमें होकर घोड़ा गुजरता था, परास्त करने अथवा अपने अधीन बनानेमें सफल हो जाता था तो वह सर्वविजयी बनकर अधीनस्थ राजाओंके साथ अपनी राजधानी लौटकर एक महोत्सव करता था, जिसमें उस घोड़ेकी बलि दी जाती थी। इस यज्ञमें ऋत्विक् (यज्ञ करानेवाला पुरोहित) पारिप्लव नामक आख्यान तथा प्राचीन राजाओंके आख्यानोंको सुनाता था और एक वीणावादक क्षत्रिय वीणापर यज्ञकर्ता राजाकी विजययात्राओंपर स्वरचित प्रशस्तिका गायन करता था। बुद्धने युद्धकथा, भयकथा आदि निरर्थक कथाएँ कहनेकी प्रथाके साथ-साथ अश्वमेधकी भी तीव्र भर्त्सना की और कुछ समय तक इसकी परिपाटी बंद रही। परंतु पुष्यमित्र शुंग (लगभग १८५ ई० पू०–१५० ई० पू०) ने यह परिपाटी फिरसे चला दी। कालिदासके मालविकाग्निमित्र नाटकके अनुसार उसने यवनोंपर विजय प्राप्त करनेके उपलक्ष्यमें, जो सिंधु नदीके तटतक आ गये थे, अश्वमेध किया। चौथी शताब्दी ईसवीमें द्वितीय गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त (दे०) ने भी अपनी विजययात्राओंके उपलक्ष्यमें अश्वमेध किया। पाँचवीं शताब्दीमें कामरूपके पुष्यवर्मा वंशके छठे राजा महेन्द्रवर्माने भी अश्वमेध किया। सातवीं शताब्दीमें बादके गुप्त राजा आदित्यसेनने भी अश्वमेधका अनुष्ठान किया। दक्षिण भारतमें कई चालुक्य राजाओंने भी इस यज्ञका अनुष्ठान किया।

अष्टप्रधान—मराठा राज्यके संस्थापक शिवाजीके आठ मंत्रियोंकी परिषद थी जो प्रशासनको चलानेमें उनकी सहायता करती थी। परिषदका कार्य केवल सलाह देना था और उसे उत्तरदायी मंत्रिपरिषद नहीं कहा जा सकता। अष्टप्रधानमें निम्नलिखितकी गणना की जाती थी (१) पेशवा अथवा प्रधानमंत्री, जो सामान्य रीतिसे राज्यके हितोंपर दृष्टि रखता था, (२) अमात्य, वित्त-विभागका प्रधान होता था, (३) मंत्री, राजाके सैनिक कार्यों और दरबारकी कारखाइयोंका लेखा रखता था, (४) सचिव, राजकीय पत्र-व्यवहारका अधीक्षक था, (५) सामन्त, वैदेशिक मामलोंकी देखरेख करता था, (६) सेनापति, (७) पंडितराव और दानाध्यक्ष राजाका पुरोहित होता था जो दानकी व्यवस्था करता था, (८) न्यायाधीश अथवा शास्त्री जो हिन्दू न्यायकी व्याख्या करता था। पंडितराव और शास्त्रीको छोड़कर अष्टप्रधानमें शामिल सभी मंत्री भी होते थे और उनके विभागोंसे सम्बन्धित मुल्की प्रशासनका कार्य राजधानीमें रहनेवाले उनके सहायक करते थे।

असंग—प्रसिद्ध बौद्ध पंडित भिक्षु और आचार्य जो गुप्त कालमें ईसाकी चौथी शताब्दीमें हुआ। वह प्रसिद्ध आचार्य वसुबन्धुका भाई था जो दूसरे गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त (लगभग ३३०–३८० ई०) का अमात्य था। उसने योगाचार्य भूमिशास्त्रकी रचना की जो महायान सम्प्रदायका आधारभूत ग्रंथ माना जाता है।

असद खाँ—बीजापुरके सुल्तान इब्राहीम आदिलशाह प्रथम (१५३५–५७ ई०) का वजीर था। वह योग्य प्रशासक और कूटनीतिज्ञ था। उसने १५४३ ई० में अपने कूटनीतिक चातुर्यका अच्छा परिचय दिया। उस वर्ष अहमदनगर और गोलकुंडाके सुल्तानोंने संयुक्त रूपसे बीजापुरपर हमला करनेके लिए विजयनगरके हिन्दू राज्यसे सुलह कर ली। असद खाँ ने अहमदनगर और विजयनगर-

से अलग अलग सधियाँ करके उस सयुक्त मोर्चेको तोड दिया और इस प्रकार बीजापुरकी रक्षा हो गयी।

असद खा—बादशाह औरगजेब (१६५९–१७०७ ई०) के शासनकालके उत्तरार्द्धमे वजीर आजम था। उसका बेटा जुल्फखार खॉ औरगजेबका सबसे अच्छा सेनापति था।

असवाल—अहमदाबादकी स्थापनाके पूर्व पुराने नगरका नाम था। इसी नगरको केन्द्र बनाकर १५वी शताब्दीमे गुजरात (दे०) मे मुसलमानी सल्तनतका विकास हुआ।

असहयोग आन्दोलन—महात्मा गाधी (दे०) ने १९१९–२० ई० मे आरम्भ किया था। इसका उद्देश्य ब्रिटिश सरकारको उन सवैधानिक सुधारोको स्वीकार करनेपर विवश करना था, जिनकी मॉग भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस कर रही थी। उन दिनो काग्रेसका ध्येय भारतको औपनिवेशिक स्वराज्य दिलाना मात्र था। प्रथम महायुद्धके उपरात यूरोपमे तुर्की साम्राज्य छिन्न-भिन्न कर दिये जानेके कारण भारतीय मुसलमानोमे असतोष व्याप्त था। अत इस असहयोग आन्दोलनको केवल हिन्दुओका ही नही बल्कि भारतीय मुसलमानोका भी समर्थन प्राप्त हुआ। इस आन्दोलनका ध्येय अग्रेज सरकारको किसी भी प्रकारका सहयोग न देना था। प्रारम्भमे इसे अत्यधिक समर्थन मिला और सैकडो तथा हजारोकी सख्यामे लोगोने सरकारसे असहयोग आरम्भ कर दिया। लोगोने सरकारी सेवाओसे त्यागपत्र दे दिया, न्यायालयोका बहिष्कार कर दिया, विद्यार्थियोने विद्यालयोमे जाना बद कर दिया और १९१९ के गवर्नमेण्ट आफ इडिया ऐक्टके अतर्गत होनेवाले चुनावोका बहिष्कार किया। महात्मा गाधी इस आदोलनको पूर्ण रूपसे अहिसात्मक रखना चाहते थे, परन्तु सरकारके विरुद्ध ऐसे देशव्यापी आदोलनमे एकाध हिसात्मक घटनाका घट जाना स्वाभाविक था। सरकारने इसे बलपूर्वक दबानेका प्रयत्न किया और कानूनके अतर्गत दण्ड देना प्रारम्भ कर दिया। सहस्त्रोकी सख्यामे लोगोने जेलोको भर दिया और इससे सरकारके लिए एक गभीर समस्या उत्पन्न हो गयी। यह असहयोग आदोलन १९२४ ई० तक तेजीसे चला, परन्तु धीरे-धीरे भारतीय मुसलमानोके उदासीन हो जाने तथा काग्रेसके वरिष्ठ नेताओमे मतभेद उत्पन्न हो जानेके कारण, यह समाप्तप्राय हो गया। कुछ काग्रेसी लोगोने पडित मोतीलाल नेहरू (दे०) तथा देशबधु चितरजन दास (दे०) के नेतृत्वमे अलग स्वराज्य पार्टी बना ली। इसके नेता चुनावमे भाग लेकर १९१९ ई० के गवर्नमेण्ट आफ इडिया ऐक्टके अतर्गत बनायी गयी केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान सभाओमे इस अभिप्रायसे जाना चाहते थे कि वे कौसिलोमे लड सके और उनमे या तो सुधार कराये या उन्हे समाप्त करवा दे।

असहयोग आन्दोलन व्यर्थ नही गया। समाजके सभी वर्गोंके सहस्रो भारतीयोकी सामूहिक जेलयात्राके फलस्वरूप लोगोके हृदयसे जेलका भय निकल गया। साथ ही लाखो भारतीयोके हृदयसे अग्रेजी सरकारका भय भी समाप्त हो गया। एक जन-आन्दोलनके लिए यह छोटी उपलब्धि नही थी।

असाईकी लडाई—दूसरे आग्ल-मराठा युद्ध (१८०३–०५ ई०) के दौरान हुई। इस लडाईमे अग्रेजी सेनाने सर आर्थर वेल्जलीके नेतृत्वमे शिन्दे और भोसलेकी विशाल सेनाको २३ सितम्बर १८०३ ई० को पराजित कर दिया। शिन्देकी जिस सेनाने लडाईमे भाग लिया उसको यूरोपीय अफसरोसे यूरोपीय ढगसे ट्रेनिग दिलायी गयी थी लेकिन वह छोटी-सी अग्रेजी सेनासे बुरी तरह पराजित हो गयी।

असिक्नी—नामक पजाबकी नदी, जिसका उल्लेख ऋग्वेदके नदी-सूक्तमे है। यूनानी इतिहासकारोने उसे 'अकेसिनीज' लिखा है। इसका आधुनिक नाम चिनाब है। पोरस, जिसने सिकदरका रास्ता रोका था, चिनाब और झेलम नदियोके बीचके क्षेत्रमे राज्य करता था।

असीरगढ़—खानदेशमे ताप्ती नदीके तटपर स्थित एक दुर्जेय गढ समझा जाता है जो अनेक राजाओके अधिकारमे रह चुका है। प्रारम्भमे वह मालवाके हिन्दू राजाओके अधीन था उसके बाद उसपर दिल्लीके मुसलमान सुल्तानोका अधिकार हो गया। मुहम्मद तुगलककी मृत्युके बाद इस किलेपर खानदेशके फारुखी राजवशका अधिकार हो गया जिनसे १६०१ ई० मे अकबरने छीन लिया। मराठा शक्तिका उदय होनेपर यह मराठोके अधिकारमे आ गया और उसपर शिन्देका कब्जा रहा। अन्तमे १८०३ ई० मे ईस्ट इडिया कम्पनीकी सेनाने शिन्दे और भोसलेकी सयुक्त सेनाओको असाईकी लडाईमे पराजित करके इस किलेपर कब्जा कर लिया। उसके बाद वह भारतके अग्रेजी राज्यका हिस्सा हो गया। आधुनिक समयमे इस किलेका सामरिक महत्त्व समाप्त हो गया है।

अस्करी—प्रथम मुगल सम्राट् बाबर (१५२६–३० ई०) का चौथा और सबसे छोटा बेटा था। अस्करीको उसके सबसे बडे भाई हुमायू (दे०) (१५३०–५६ ई०) ने सम्भलकी जागीर दी थी। बादमे अस्करी १५३४ ई० मे हुमायूके गुजरात अभियानमे उसके साथ रहा जहाँ आसानीसे विजय मिलनेके बाद वह ऐश-आराममे पड

गया। वह हुमायूके साथ दिल्ली लौट आया। जब हुमायू १५३९ ई० मे बगालके अभियानपर गया तो अस्करी उसके साथ नही गया और इस प्रकार बक्सरकी लडाईमे हुमायूकी पराजयमे वह हिस्सेदार नहीं बना। जब हुमायू बगाल गया था तो दिल्लीमे उसकी अनुपस्थितिमे अस्करीने गद्दीपर कब्जा करनेकी कोशिश की लेकिन पराजित हुमायूके दिल्ली लौटनेमे उसकी योजना विफल हो गयी। १५४०-५४ ई० के बीच जब हुमायूको कन्नोजकी लडाईमे पराजित होनेके बाद दर-दर भटकना पडा और भारत छोडकर भागना पडा तो अस्करीने उसकी कोई मदद नही की। अस्करीने शेरशाहके सामने आत्मसमर्पण करके अपने प्राण बचाये। हुमायूने जब दिल्लीपर फिरसे कब्जा किया तो उसने अस्करीको क्षमा कर दिया लेकिन उसे मक्का चला जाना पडा जहाँ वह मर गया।

अस्सकेनोई गण—भारतपर सिकदर महान्के आक्रमणके समय मलकद दर्रेके निकट स्वातघाटीके एक हिस्सेमे रहता था। उनके पास एक बडी सेना थी और मस्सग दुर्ग उनकी राजधानी थी। यह दुर्ग प्राकृतिक दृष्टिसे दुर्भेद्य था और उसकी रक्षाके लिए एक ऊँची प्राचीर और गहरी परिखाका निर्माण किया गया था। अस्सके-नोई लोगोने सिकदरसे जमकर लोहा लिया और उनके एक तीरसे सिकदर घायल भी हो गया। लेकिन अन्तमे सिकदरकी विजय हुई। उसने मस्सग दुर्गपर अधिकार कर लिया और भयकर नरसहारके बाद अस्सकेनोई लोगोका दमन कर दिया। (सस्कृतमे इस गणका नाम आश्वकायन अथवा अश्वक है। होगा। —सपादक)

अस्सपेसिओई गण—भारतपर सिकदर महान्के आक्रमणके समय पश्चिमोत्तर सीमापर कुनड अथवा चिवाल नदीकी घाटीमे रहता था। इस गणने यवन आक्रमणकारियोसे डट कर मोर्चा लिया था। सिकदरको इन लोगोसे दो लडाइयाँ लडनी पडी और उसके बाद ही वह इनका दमन कर सका।

अहमदनगर—निजामशाही सुल्तानोकी राजधानी थी जिन्होने १४९० ई० मे दक्खिन मे बहमनी सल्तनतकी एक नयी शाखाकी स्थापना की। अहमदनगर की स्थापना इस वशके पहले सुल्तान अहमद निजामशाहने की। अकबरने जब इसपर हमला किया तो चाँदबीबीने उसकी सेनाओका डट कर मुकाबिला किया, परन्तु अतमे अकबरकी विजय हुई। १६३७ ई० मे बादशाह शाहजहाँने अहमदनगरको मुगल साम्राज्यमे मिला लिया और उसके बाद इस नगरका महत्त्व घट गया। यह अब भी एक बडा नगर है और इसी नामके जिलेका मुख्यालय है।

अहमद निजामशाह—का असली नाम मलिक अहमद था। वह बिदरके दक्खिनी मुसलमानोके दलके नेता निजा-मुल मुल्क बहरीका बेटा था जिसने बहमनी सुल्तानके वजीरमुहम्मद गवाको १४८१ ई० मे कत्ल करवा दिया। अपने पिताकी मृत्युके बाद मलिक अहमदने बहमनी राज्यके आखिरी सुल्तान महमूद (१४८२-१५१८ ई०) को हराकर अपने स्वतत्र राज्यकी स्थापना की और अपनी राजधानीका नाम अहमदनगर रखा। उसने अपना नाम अहमद निजामशाह और अपने राजवशका नाम निजाम-शाही रखा। १४९९ ई० मे उसने देवगिरि अथवा दौलता-बाद किले को जीतकर उसपर अपना अधिकार कर लिया और इस प्रकार अपने राज्यको मजबूत बनाया। उसने १५०६ ई० तक राज्य किया।

अहमदशाह बहमनी—बहमनी सल्तनतका नवाँ सुल्तान था जो १४२२ ई० मे अपने भाई, आठवे सुल्तान फीरोज की हत्या करके तख्तपर बैठा था। उसने १४३५ ई० तक राज्य किया। उसने विजयनगर राज्यसे लम्बी लडाई लडी, उस राज्यको बुरी तरह नष्ट किया और हजारो स्त्री-पुरुषो और बच्चोका कत्ल कर दिया। उसने वारगलके हिन्दू राज्यको भी जीत लिया और मालवा तथा गुजरातके सुल्तानो तथा कोकणके हिन्दू राजाओसे युद्ध किये। वह अपनी राजधानी गुलबर्गासे बिदर ले गया।

अहमदशाह, बादशाह—दिल्लीका १५वाँ मुगल बादशाह (१७४८-५४ ई०) था। अपने पिता बादशाह मुहम्मद-शाहके समयमे जब वह शाहजादा था तो उसने अहमद-शाह अब्दालीके पहले हमलेको विफल कर दिया था। इसके महीने भर बाद ही मुहम्मदशाहकी मृत्यु होनेपर वह तख्तपर बैठा। अब्दालीने १७५० ई० और उसके बाद १७५१ ई० मे पुन हमला किया और अहमदशाहको बाध्य होकर पजाब उसे सौप देना पडा। अहमदशाहका राज्यकाल गौरवपूर्ण नही कहा जा सकता। १७५४ ई० मे उसके वजीर गाजीउद्दीनने उसे अधा करके गद्दीमे उतार दिया।

अहमदशाह दुर्रानी—देखो अहमदशाह अब्दाली।

अहमदशाह, सुल्तान—गुजरातका तीसरा सुल्तान (१४११-४१ ई०) था। उसके बाप और बाबाका राज्य तो अहमदा-बादके आसपास ही सीमित था, सुल्तान अहमदशाहने उसका प्रसार पूरे गुजरातमे किया और गुजरातकी सल्तनतकी नीव डाली। उसने मालवाके सुल्तानो और राजपूतानाके

राजाओंसे अनेक युद्ध किये और किसी भी युद्धमें उसकी हार नहीं हुई। उसने पुराने हिन्दू नगर असवालके निकट अहमदाबादका निर्माण कराया और उसे एक सुन्दर भव्य नगरका रूप दिया।

अहमदाबाद–नामके दो नगर है, एक गुजरातमे और दूसरा दक्षिणमे। दोनोकी स्थापना अहमद नामक सुल्तानोने की थी। दक्षिणके अहमदाबादकी स्थापना नवें बहमनी सुल्तान अहमदशाह (दे०) (१४२२–३५ ई०) ने की जो अपनी राजधानी गुलबर्गसे हटाकर बिदर ले आया और अपने नामपर उसका नामकरण अहमदनगर किया। गुजरातके अहमदाबादकी स्थापना पुराने हिन्दू नगर असवालके निकट गुजरातके सुल्तान अहमदशाह (दे०) (१४११–४१ ई०) ने की। १५वी शताब्दीमे अपनी स्थापनाके बादमे अहमदाबाद लगातार गुजरात राज्यकी राजधानी तबतक बना रहा जबतक वह बम्बई प्रदेशमे शामिल नही कर दिया गया। सुल्तानोके बाद वह मुगलोके अधिकारमे चला गया, अकबरने १५७२ ई० में गुजरात-को जीता और अपने राज्यमे मिला लिया। १७५८ ई० मे गुजरात और अहमदाबादपर मराठोका अधिकार हो गया और अन्तमे वह भारतके ब्रिटिश साम्राज्यका हिस्सा बना लिया गया। अहमदाबाद अपनी भव्य इमारतोके लिए प्रसिद्ध है और एक समय इसकी गणना ससारके मुख्य नगरोमे होती थी। इसकी आबादी ९ लाख थी। यहाँ बहुतसे करोडपती रहते है। इस नगरकी समृद्धि रेशम, सुनहरे तार और सूतके कारण है। इस समय यह नगर गुजरात राज्यकी राजधानी है और सूती वस्त्र उद्योगका यह मुख्य केन्द्र है।

अहल्याबाई, रानी–इन्दौरके महाराजा मल्हार राव होल्कर (१७२८–१७६४ ई०) की विधवा पुत्रवधू थी। मल्हार रावके जीवन कालमे ही उसके पुत्र खडेरावका निधन १७५४ ई० मे हो गया था। अत मल्हार रावके निधनके बाद रानी अहिल्याबाईने राज्यका शासन-भार सम्हाला। रानी अहल्याबाईने १७९५ ई० मे अपनी मृत्यु पर्यन्त बडी कुशलतासे राज्यका शासन चलाया। उनकी गणना आदर्श शासकोमे की जाती है। वे अपनी उदारता और प्रजावत्सलताके लिए प्रसिद्ध है। उन्होने भारतके भिन्न-भिन्न भागोमे अनेक मदिरो, धर्मशालाओ, और अन्नसत्रोका निर्माण कराया। कलकत्तासे बनारस तककी सडक, बनारसमे अन्नपूर्णाका मदिर, गयामे विष्णु मदिर उनके बनवाये हुए है। उन्होने अपने समयकी हलचलमे प्रमुख भाग लिया। उनके एक ही पुत्र मल्लेराव था जो १७६६ ई० मे दिवगत हो गया। १७६७ ई० मे अहिल्या-बाईने तुकोजी होलकरको सेनापति नियुक्त किया। अहिल्याबाईके निधनके बाद तुकोजी इन्दौरकी गद्दीपर बैठा।

अहसानशाह, जलालुद्दीन–मअबरका सूबेदार था, जिसने १३३५ ई० मे सुल्तान मुहम्मद तुगलक (दे०) के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और अपनेको सुल्तान घोषित कर दिया। उसने मदुरामे अपना स्वतत्र मुसलमानी राज्य स्थापित किया जिसको बादमे विजयनगरके हिन्दू राजा (१३७७–७८ ई०) ने जीत लिया।

अहसानाबाद–देखो गुलबर्ग अथवा, कुलबर्ग।

अहिच्छत्र–एक प्राचीन नगर था जहाँ अब रामनगर (जिला बरेली) स्थित है। महाभारतके अनुसार यह नगर उत्तर पचाल राज्यकी राजधानी था, जिसको द्रोणाचार्यने जीत लिया था। ईसाकी सातवी शताब्दीमे जब ह्युएन-त्साग भारत आया तो यह नगर काफी विस्तृत क्षेत्रमे फैला था।

अहोम–उत्तरी बर्माके रहनेवाली शान जातिके थे। सुकफके नेतृत्वमे उन लोगोने आसामके पूर्वोत्तर क्षेत्रपर १२२८ ई० मे आक्रमण किया और इसपर अधिकार कर लिया। यह वही समय था जब आसामपर मुसलमानी आक्रमण पश्चिमोत्तर दिशासे हो रहे थे। धीरे-धीरे अहोम लोगोने आसामके लखीमपुर, शिवसागर, दारग, नवगाँव और कामरूप जिलोमे अपना राज्य स्थापित कर लिया। ग्वालपाडा जिला जो आसामका हिस्सा है अथवा कन्धार और सिलहटके जिले कभी अहोम राज्यमे शामिल नही थे। ब्रिटिश शासकोने १८२४ ई० मे इस क्षेत्रको जीतनेके बाद इसे आसाममे शामिल कर दिया। अहोम लोगोकी यह विशेषता थी कि उन्होने भारतके पूर्वोत्तर भागमे पठान या मुगल आक्रमणकारियोको घुसने नही दिया, हालाकि मुगलोने पूरे भारतपर अपना अधिकार जमा लिया था। आसाममे अहोम राज्य छह शताब्दी (१२२८–१८३५ ई०) तक कायम रहा। इस अवधिमे ३९ राजा गद्दीपर बैठे। यहाँके राजाओकी उपाधि 'स्वर्ग देव' थी। अहोम लोगोका १७वा राजा प्रतापसिह (१६०३–४१) और २९वाँ राजा गदाधर सिंह (१६८१–८६ ई०) बड़ा प्रतापी था। प्रताप सिहसे पहलेके अहोम राजा अपना नामकरण अहोम भाषामे करते थे लेकिन प्रताप सिहने सस्कृत नाम अपनाया और उसके बादके राजा लोग दो नाम रखने लगे–एक अहोम और दूसरा सस्कृत भाषामे। अहोम लोगोका पहले अपना अलग

जातीय धर्म था, लेकिन बादमें उन्होंने हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया। वे अपने साथ अपनी भाषा और लिपि भी लाये थे, लेकिन बादमें धीरे-धीरे उन्होंने असमिया भाषा और लिपि स्वीकार कर ली जो मस्कृत-बंगला लिपिसे मिलती जुलती है। अहोम राजाओंने आसाममें अच्छा शासन-प्रबंध किया। उनका शासन-प्रबंध सामंतवादी ढंगका था और उसमें सामंतवादकी सभी अच्छाइयाँ और बुराइयाँ थीं। अहोम राजा अपने शासनका पूरा लेखा रखते थे जिन्हें 'बुरंजी' कहा जाता था। इसके फलस्वरूप अहोम और असमिया दोनों भाषाओंमें काफी ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध है। अहोम राजाओंकी राजधानी शिवसागर जिलेमें वर्तमान जोरहाटके निकट गढ़ गाँवमें थी। अन्तिम अहोम राजा जोगेश्वरसिंह अपने वंशके ३९वें शासक थे जिसका आरम्भ सुकफने १२२८ ई० में किया था। जोगेश्वरने केवल एक वर्ष (१८१९ ई०) राज्य किया। बर्मी लोगोंने उसकी गद्दी छीन ली, लेकिन आसाममें बर्मी शासन केवल पाँच वर्ष (१८१९–१८२४ ई०) रहा और प्रथम आंग्ल-बर्मी युद्धके बाद यन्दबकी सन्धिके अन्तर्गत आसाम भारतके ब्रिटिश साम्राज्यमें मिला लिया गया। १८३२ ई० में ब्रिटिश शासकोंने अपने संरक्षणमें पुराने अहोम राजवंशके राजकुमार पुरन्दरसिंहको उत्तरी आसामका राजा बनाया लेकिन १८३८ ई० में कुशासनके आधारपर उसे गद्दीसे हटा दिया। इसके बाद आसाममें अहोम राज्य पूरी तरह समाप्त हो गया। अहोम लोग अब आसामके अन्य निवासियोंमें घुल मिल गये हैं और उनकी संख्या बहुत कम रह गयी है। (देखो, आसाम)

आ

आगियर, जेराल्ड—बम्बईका गवर्नर (१६६९–१६७७ ई०)। वह सही अर्थोंमें बम्बई नगरका संस्थापक था जिसने बम्बईके महानगरी बननेकी कल्पना कर ली थी। उसे भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यके प्रारम्भिक संस्थापकोंमें गिना जा सकता है। उसकी गुमनाम कब्र सूरतमें है। **(मालबारी बम्बे इन दि मेकिंग)**

आंग्ल-अफगान युद्ध—तीन हुए। **पहला आंग्ल-अफगान युद्ध** (१८३८–४२ ई०)—ईस्ट इंडिया कम्पनीके शासन-कालमें गवर्नर-जनरल लार्ड आकलैण्डके समयमें शुरू हुआ और उसके उत्तराधिकारी लार्ड एलिनबरोके समय तक चलता रहा। १८३८ ई० में अफगानिस्तानका भूतपूर्व अमीर शाह शुजा अंग्रेजोंका पेंशनयाफ्ता होकर पंजाबके लुधियाना नगरमें रहता था। उस समय रूसके गुप्त समर्थनसे फारसकी सेनाने अफगानिस्तानके सीमावर्ती नगर हेरातको घेर लिया। हेरात बहुत सामरिक महत्त्वका नगर माना जाता था और उसे भारतका द्वार समझा जाता था। जब उसपर रूसकी सहायतासे फारसने कब्जा कर लिया तो इंग्लैण्डकी सरकारने उसे भारतके ब्रिटिश साम्राज्यके लिए खतरा माना, हालाँकि उस समय फारस और भारतके ब्रिटिश साम्राज्यके बीचमें पंजाबमें रणजीत सिंह और अफगानिस्तानमें अमीर दोस्त मुहम्मदका स्वतंत्र राज्य था। अमीर दोस्त मुहम्मद भी हेरातपर फारसके हमलेसे रूसी आक्रमणका खतरा महसूस कर रहा था। वह अपनी सुरक्षाके लिए भारतकी ब्रिटिश सरकारसे समझौता करना चाहता था। किन्तु वह अपने पूरबके पड़ोसी महाराजा रणजीत सिंहसे भी अपनी सुरक्षाकी गारंटी चाहता था जिसने हालमें पेशावरपर कब्जा कर लिया था। अतएव उसने इस शर्तपर आंग्ल-अफगान गठबंधनका प्रस्ताव रखा कि अंग्रेज उसे रणजीत सिंहसे पेशावर वापस दिलानेमें मदद देंगे और इसके बदलेमें अमीर अपने दरबार तथा देशको रूसियोंके प्रभावसे मुक्त रखेगा। लार्ड आकलैण्डकी सरकार महाराजा रणजीत सिंहकी शक्तिसे भय खाती थी और उसने उसपर किसी प्रकारका दबाव डालनेसे इन्कार कर दिया। बर्न्स, जिसे आकलैण्डने अमीरसे बातचीतके लिए काबुल भेजा था, अप्रैल १८३८ ई० में काबुलसे खाली हाथ लौट आया। उसके लौटनेके बाद अमीरने एक रूसी एजेण्टकी आवभगत की, जो कुछ समयसे उसके दरबारमें रहता था और अबतक उपेक्षाका पात्र बना हुआ था। इस बातको आकलैण्डकी सरकारने अमीरका शत्रुतापूर्ण कार्य समझा और जुलाई १८३८ ई० में उसने पंजाबके महाराजा रणजीत सिंह और निष्कासित अमीर शाह शुजासे जो लुधियानामें रहता था, एक त्रिपक्षीय सन्धि कर ली जिसका उद्देश्य शाह शुजाको फिरसे अफगानिस्तानकी गद्दीपर बिठाना था। यह अनुमान था कि शाहशुजा काबुलमें अमीर बननेके बाद अपने विदेशी सम्बन्धोंमें, खासतौरसे रूसके सम्बन्धमें भारतकी ब्रिटिश सरकारसे नियंत्रित होगा। इस आक्रामक और अन्यायपूर्ण त्रिपक्षीय सन्धिके बाद आंग्ल-अफगान युद्ध अनिवार्य हो गया। इस त्रिपक्षीय सन्धिका यदि जुलाई १८३८ में कुछ औचित्य भी था तो वह सितम्बरमें फारसकी सेना द्वारा हेरातका घेरा उठा लिये जाने और अफगान क्षेत्रसे हट आनेके बाद समाप्त हो गया। लेकिन लार्ड आकलैण्डको

इससे सन्तोप नही हुआ और अक्तूबरमे उसने अफगानिस्तानपर चढाई कर दी। इस आक्रमणका कोई औचित्य नही था और इसके द्वारा १८३२ ई० मे सिन्धके अमीरोसे की गयी सन्धिका भी उल्लघन होता था, क्योकि अग्रेजी सेना उनके क्षेत्रसे होकर अफगानिस्तान गयी थी। इस युद्धका सचालन भी बहुत गलत ढगसे किया गया। आरम्भमे अग्रेजी सेनाको कुछ सफलता मिली। अप्रैल १८३९ ई० मे कधारपर कब्जा कर लिया गया। जुलाईमे अग्रेजी सेनाने गजनी ले लिया और अगस्तमे काबुल। दोस्त मोहम्मदने काबुल खाली कर दिया और अतमे अग्रेजी सेनाके आगे आत्म-समर्पण कर दिया। उसको बदी बनाकर कलकत्ता भेज दिया गया और शाहशुजाको फिरसे अफगानिस्तानका अमीर बना दिया गया। किन्तु इसके बाद ही स्थिति और विषम हो गयी। शाहशुजाको अमीर बनानेके बाद अग्रेजी सेना वहाँसे वापस बुला लेनी चाहिए थी लेकिन ऐसा नही किया गया। शाहशुजा केवल कठपुतली शासक था और देशका प्रशासन वास्तवमे सर विलियम मैकनाटनके हाथमे था जिसको लार्ड आक्लैण्डने राजनीतिक अधिकारीके रूपमे वहाँ भेजा था। अफगान लोग शाहशुजाको पहले भी पसद नही करते थे और इस बातसे बहुत नाराज थे कि अग्रेजी सेनाकी बन्दूकोके जोरसे उसे पुन अमीर बना दिया गया है। इसीलिए काबुलमे अग्रेजी आधिपत्य सेनाको रखना जरूरी हो गया था। युद्धके कारण चीजोके दाम बेतहाशा बढ गये थे जिससे जनताका हर वर्ग पीडित था। अग्रेजी सेनाकी कुछ हरकतोसे भी जनरोष प्रबल हो गया था। इस मौकेका दोस्त मुहम्मदके लडके अकबर खाँने चालाकीसे फायदा उठाया और १८४१ ई० मे पूरे देशमे शाहशुजा और उसकी सरक्षक अग्रेजी सेनाके विरुद्ध बडे पैमानेपर बलवे शुरू हो गये। सर विलियम मैकनाटनके खास सलाहकार एलेक्जेण्डर बर्न्सकी अनीतिसे अफगान लोग चिढे हुए थे। नवम्बर १८४१ मे एक क्रुद्ध अफगान भीड बर्न्स और उसके भाईको घरसे घसीट कर ले गयी और दोनोको मार डाला। मैकनाटन और काबुल स्थित अग्रेजी सेनाके कमाडर-जनरल एलफिस्टनने उस समय ढुलमुलपन और कमजोरीका प्रदर्शन किया और दिसम्बरमे अकबर खाँसे सन्धि कर ली जिसके द्वारा अफगानिस्तानसे अग्रेजी सेनाको वापस बुला लेने और दोस्त मुहम्मदको दुबारा अमीर बना देनेका आश्वासन दिया गया। शीघ्र ही यह बात साफ हो गयी कि इस सधिके पीछे मैकनाटनकी नीयत साफ नही है। इसपर अकबर खाँके आदेशसे मैकनाटन और उसके तीन साथियोको मौतके घाट उतार दिया गया। काबुलपर अधिकार करनेवाली अग्रेजी सेनाके १६,५०० सैनिक ६ जनवरी १८४१ ई० को काबुलसे जलालाबादकी ओर रवाना हुए, जहाँ जनरल सेलके नेतृत्वमे एक दूसरी अग्रेजी सेना डटी हुई थी। अग्रेजी सेनाकी वापसी विनाशकारी सिद्ध हुई। अफगानोने सभी ओरसे उसपर आक्रमण कर दिया और पूरी सेना नष्ट कर दी। केवल एक व्यक्ति, डाक्टर ब्राइडन गम्भीर रूपसे जख्मी और थका माँदा १३ जनवरीको जलालाबाद पहुँचा। इस दुर्घटनासे गवर्नर-जनरल आक्लैण्ड और इग्लैण्डकी सरकारको गहरा धक्का लगा। आक्लैण्डको इगलैण्ड वापस बुला लिया गया और लार्ड एलिनबरोको उसके स्थानपर गवर्नर-जनरल (१८४२–१८४४ ई०) बनाया गया। एलिनबरोके कार्यकालमे जनरल पोलकने अप्रैल १८४२ ई० मे जलालाबादपर फिरसे नियत्रण कर लिया और मईमे जनरल नॉटने कधारको फिरसे अग्रेजोके आधिपत्यमे ले लिया। इसके बाद दोनो अग्रेजी-सेनाएं रास्तेमे सभी विरोधियोको कुचलती हुई आगे बढी और सितम्बर १८४२ ई० मे काबुलपर अधिकार कर लिया। इन सेनाओने बचे हुए बदी अग्रेज सिपाहियोको छुडाया और अग्रेजोकी विजयके उपलक्ष्यमे काबुलके बाजारको बारूदसे उडा दिया। अग्रेजोने काबुल शहरको निर्दयताके साथ ध्वस्त कर डाला, बडे पैमानेपर लूटमार की और हजारो बेगुनाह अफगानोको मौतके घाट उतार दिया। इन बर्बरतापूर्ण कृत्योके साथ इस अन्यायपूर्ण और अलाभप्रद युद्धका अन्त हुआ। शीघ्र ही अफगानिस्तानसे अग्रेजी सेनाको वापस बुला लिया गया और दोस्त मुहम्मद, जिसे कलकत्तेमे नजरबन्दीसे रिहा कर दिया गया था, अफगानिस्तान वापस लौट गया व १८४२ ई० मे दुबारा गद्दीपर बैठा जिससे उसे अनावश्यक और अनुचित तरीकेसे हटा दिया गया था। वह १८६३ ई० तक अफगानिस्तानका शासक रहा। उस वर्ष ८० सालकी उम्रमे उसका देहात हुआ। इसमे कोई सन्देह नही कि पहला अफगान युद्ध भारतकी ब्रिटिश सरकारकी ओरसे नितात अनुचित रीतिसे अकारण ही छेड दिया गया था और लार्ड आक्लैण्डकी सरकारने उसका सचालन बडी अयोग्यताके साथ किया। इस युद्धसे कोई लाभ नही हुआ और उसमे २०,००० भारतीय तथा अग्रेज सैनिक मारे गये और डेढ करोड रुपया बर्बाद हुआ जिसको भारतकी गरीब जनतामे वसूला गया।

दूसरा आग्ल-अफगान युद्ध (१८७८–८० ई०)—वाइसराय लार्ड लिटन प्रथम (१८७६–१८८० ई०) के शासन-

कालमें आरम्भ हुआ और उसके उत्तराधिकारी लार्ड रिपन (१८८०–८४ ई०) के शासनकालमें समाप्त हुआ। अमीर दोस्त मुहम्मदकी मृत्यु १८६३ ई० में हो गयी और उसके बेटोंमें उत्तराधिकारके लिए युद्ध शुरू हो गया। उत्तराधिकारका यह युद्ध (१८६३–६८ ई०) पाँच वर्ष चला। इस बीच भारत सरकारने पूर्ण निष्क्रियताकी नीतिका पालन किया और काबुलकी गद्दीके प्रतिद्वन्द्वियोंमें किसीका पक्ष नहीं लिया। अन्तमें १८६८ ई० में जब दोस्त मुहम्मदके तीसरे बेटे शेर अलीने काबुलकी गद्दी प्राप्त कर ली तो भारत सरकारने उसको अफ़गानिस्तानका अमीर मान लिया और उसे शस्त्रास्त्र तथा धनकी सहायता देना स्वीकार कर लिया। लेकिन इसी बीच मध्य एशियामें रूसका प्रभाव बहुत बढ़ गया। रूसने बुखारापर १८६६ में, ताशकन्दपर १८६७ में और समरकन्दपर १८६८ ई० में कब्जा कर लिया। मध्य एशियामें रूसके प्रभावके बढ़नेसे अफ़गानिस्तान और भारतकी अंग्रेज सरकारको चिन्ता हो गयी। अमीर शेरअली मध्य एशियामें रूसके प्रभावको रोकना चाहता था और भारतकी अंग्रेज सरकार अफ़गानिस्तानको रूसी प्रभावसे मुक्त रखना चाहती थी। इन परिस्थितियोंमें १८६९ ई० में पंजाबके अम्बाला नगरमें अमीर शेरअली और भारतके वायसराय लार्ड मेयो (१८६९–७२ ई०) की भेंट हुई। उस समय अमीर अंग्रेजोंकी यह माँग मान लेनेके लिए तैयार हो सकता था कि वह अपने वैदेशिक सम्बन्धमें अंग्रेजोंका नियन्त्रण स्वीकार कर ले और अंग्रेज उसके विरुद्ध उसकी सुरक्षाकी जिम्मेदारी ले लें और सहायता करें और उसको अथवा उसके नामजद व्यक्तियोंको ही अफ़गानिस्तानका अमीर मानें। इंग्लैण्डके निर्देशपर ब्रिटिश सरकारने सुरक्षाकी जिम्मेदारी लेनेकी बात नहीं मानी, यद्यपि शस्त्रास्त्र और धनकी सहायता देनेका वचन दिया। स्वाभाविक रूपसे अमीर शेरअलीको भारत सरकारसे समझौतेकी शर्तें सतोषजनक नहीं लगीं। लेकिन १८७३ ई० में रूसियोंने खीवापर अधिकार कर लिया और इस प्रकार उनका बढ़ाव अफ़गानिस्तानकी ओर होने लगा। इस हालतमें चिन्तित होकर अमीर शेरअलीने १८७३ में वाइसराय लार्ड नार्थब्रुक (१८७२–७६ ई०) के सामने आंग्ल-अफ़गानिस्तान सन्धिका प्रस्ताव रखा जिसमें अफ़गानिस्तानको यह आश्वासन देना था कि यदि रूस अथवा उसके सरक्षणमें कोई राज्य अफ़गानिस्तानपर आक्रमण करे तो ब्रिटिश सरकार अफ़गानिस्तानकी सहायता केवल शस्त्रास्त्र और धन देकर ही नहीं करेगी वरन् अपनी सेना भी वहाँ भेजेगी। उस समय इंग्लैण्डमें ग्लैडस्टोनका मन्त्रिमडल था। उसकी सलाहके अनुसार लार्ड नार्थब्रुक इस प्रस्तावपर राजी नहीं हुआ। नार्थब्रुक इस बातके लिए भी राजी नहीं हुआ कि वह अमीर शेरअलीके पुत्र अब्दुल्लाजानको उसका वारिस मानकर उसे भावी अमीर मान ले। इन बातोंसे शेरअली अंग्रेजोंसे नाराज हो गया और उसने रूससे अपने सम्बन्ध सुधारनेके लिए लिखा पढ़ी शुरू कर दी। रूसी एजेण्ट जल्दी-जल्दी काबुल आने लगे। १८७४ ई० में डिज़रेली ब्रिटेनका प्रधान मन्त्री बना और १८७७ ई० में रूस-तुर्की युद्ध शुरू हो गया जिससे इंग्लैण्ड और रूसके सम्बन्धोंमें कटुता उत्पन्न हो गयी और दोनोंमें किसी समय भी युद्ध छिड़नेकी आशका उत्पन्न हो गयी। इस हालतमें अंग्रेजोंने अफ़गानिस्तानपर अपना मजबूत नियन्त्रण रखनेका निश्चय किया जिससे अफ़गानिस्तानसे होकर भारतमें अंग्रेजी राज्यके लिए कोई खतरा न उत्पन्न हो। इस नीतिके परिणामस्वरूप अंग्रेजोंने क्वेटापर १८७७ ई० में अधिकार कर लिया क्योंकि कधारके रास्तेकी सुरक्षाके लिए उसपर नियन्त्रण रखना जरूरी था। लार्ड नार्थब्रुकके उत्तराधिकारी लार्ड लिटन प्रथम (१८७६–८० ई०) ने डिज़रेली मन्त्रिमडलकी सलाहसे काबुल दरबारमें एक ब्रिटिश प्रतिनिधिमडल भेजनेका निश्चय किया जिसे १८७३ ई० में अफ़गानिस्तानके अमीर द्वारा प्रस्तावित शर्तोंके आधारपर सन्धिकी बातचीत शुरू करनी थी। उन शर्तोंके अलावा यह शर्त भी रखी गयी कि हेरातमें भी ब्रिटिश रेजीडेण्ट रखा जाय। लेकिन अमीरने ब्रिटिश प्रतिनिधिमडल काबुल भेजनेका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। उसकी ओरसे कहा गया कि यदि अफ़गानिस्तानमें ब्रिटिश प्रतिनिधिमडल आयेगा तो रूसके प्रतिनिधिमडलको भी आनेकी इजाजत देनी पड़ेगी। इस प्रकार इस मामलेमें एक गतिरोध-सा उत्पन्न हो गया लेकिन अमीरके प्रतिबन्धके बावजूद एक रूसी प्रतिनिधिमडल जनरल स्टोलीटाफके नेतृत्वमें १८७८ ई० में अफ़गानिस्तान पहुँचा और उसने अमीर शेरअलीसे २२ जुलाई १८७८ को सन्धिकी बातचीत शुरू कर दी। उसने अफ़गानिस्तानपर विदेशी हमला होनेपर रूसकी ओरसे सुरक्षाकी गारण्टी देनेका प्रस्ताव रखा। रूसी प्रतिनिधिमण्डलके काबुलमें हुए स्वागतसे लार्ड लिटन (प्रथम) भयकर रूपसे क्रुद्ध हो गया और उसने इंग्लैण्डकी ब्रिटिश सरकारके परामर्शसे अफ़गानिस्तानके अमीरपर इस बातका दबाव डाला कि वह काबुलमें ब्रिटिश प्रतिनिधिमण्डलका

भी स्वागत एक निश्चित तारीख २० नवम्बर १८७८ को करे। अमीरने तब नयी सन्धिके अतर्गत रूससे मदद माँगी लेकिन इस बीच रूस-तुर्की युद्ध समाप्त हो गया था और यूरोपमे शान्ति स्थापित हो गयी थी और इग्लैण्ड और रूसके बीच १८७८ की बर्लिनकी सन्धि हो गयी थी। रूस अब इग्लैण्डमे युद्ध नही करना चाहता था। इसलिए उसने शेर अलीको अग्रेजोसे सुलह करनेकी सलाह दी, लेकिन शेरअलीने अब सुलहमे काफी देरी कर दी थी, क्योकि अग्रेज सेनाने २० नवम्बरको अफगानिस्तानपर हमला बोल दिया था और इस प्रकार दूसरा आग्ल-अफगान युद्ध शुरू हो गया था।

जिस प्रकार पहले आग्ल-अफगान युद्ध (१८३८-४२ ई०) मे ब्रिटिश भारतीय सेनाको आरम्भमे सफलताएँ मिली थी, उसी प्रकार इस बार भी मिली। रूसके साथ न देनेके कारण शेरअली अग्रेजी आक्रमणका अधिक प्रतिरोध नही कर सका। तीन अग्रेजी सेनाओने तीन ओरमे काबुलपर चढाई कर दी—जनरल ब्राउनके नेतृत्वमे एक सेना खैबरके दर्रेसे, दूसरी सेना जनरल (बादमे लार्ड) राबर्ट्सके नेतृत्वमे कुर्रमकी घाटीसे और तीसरी सेना जनरल बीडल्फके नेतृत्वमे क्वेटासे आगे बढी। चौथी ब्रिटिश सेनाने जेनरल स्टुअर्टके नेतृत्वमे कधारपर कब्जा कर लिया। शेरअलीकी हालत एक महीनेमे ही इतनी पतली हो गयी कि वह अफगानिस्तान छोडकर तुर्किस्तान भाग गया जहाँ शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गयी। शेरअलीकी मृत्युके बाद उसके बेटे याकूबखाँने अग्रेजोसे सुलहकी बातचीत चलायी और मई १८७९ ई० मे गन्दमककी सन्धि कर ली। इस सन्धिमे अग्रेजोकी सभी शर्ते मजूर कर ली गयी। इसके अलावा काबुलमे ब्रिटिश राजदूतोको रखना तय हुआ और अफगानिस्तानकी वैदेशिक नीति भारतके वाइसरायकी रायमे तय करनेकी बात भी मान ली गयी। कुर्रम, पिशीन और सिबीके जिले भी अग्रेजोको सौप दिये गये। इस सन्धिके अनुसार प्रथम ब्रिटिश राजदूत कैवगनरी जुलाई १८७९ ई० मे काबुल पहुँच गया। उस समय ऐसा मालूम होता था कि इस युद्धमे अग्रेजोको पूरी सफलता मिली है। लेकिन ३ सितम्बरको काबुलकी अफगान सेनामे सैनिक विद्रोह हो गया, कैवगनरीकी हत्या कर दी गयी और फिरसे लडाई शुरू हो गयी। अग्रेजोने इस बार तत्काल प्रभावशाली ढगसे काररवाई की। राबर्ट्सने अक्तूबर १८७९ ई० मे काबुलपर अधिकार कर लिया और अमीर याकूबखाँकी हालत कैदी जैसी हो गयी। उसके भाई अयूबखाँने अपनेको अमीर घोषित कर दिया और उसने जुलाई १८८० ई० मे ब्रिटिश सेनाको कधारके निकट माईवन्दके युद्धमे पराजित कर दिया। लेकिन राबर्ट्स एक बडी सेनाके साथ काबुलसे कधार पहुँचा, शेरअलीके भतीजे अब्दुर्रहमानने भी अग्रेजोकी काफी मदद की और ब्रिटिश सेनाने अयूबखाँको पूरी तौरसे हरा दिया। इसी बीच इग्लैण्डमे डिजरेलीके स्थानपर ग्लैडस्टोन प्रधान मत्री बन गया जिसने भारतके वाइसराय लार्ड लिटनको वापस बुलाकर लार्ड रिपनको भारतका वाइसराय (१८८०–८४) बनाया। नये वाइसरायने अब्दुर्रहमानके साथ सन्धि करके दूसरा आग्ल-अफगान युद्ध समाप्त कर दिया। इस सन्धिमे अब्दुर्रहमानखाँको अफगानिस्तानका अमीर मान लिया गया। अमीरने अग्रेजोसे वार्षिक सहायता पानेके बदलेमे अपनी वैदेशिक नीतिपर भारत सरकारका नियत्रण स्वीकार कर लिया। गन्दमककी सन्धिमे जो जिले अग्रेजोको मिले थे वे उनके पास ही बने रहे।

दूसरा अफगान युद्ध दो नीतियोकी पारस्परिक प्रतिक्रियाका परिणाम था। एक नीति जिसे अग्रसर नीति (फारवर्ड पालिसी) कहा जाता था, उसके अनुसार भारतकी, पश्चिमोत्तरमे, प्राकृतिक सीमा हिन्दूकुश होनी चाहिए। इस नीतिके अनुसार भारतके ब्रिटिश साम्राज्यमे कधार और काबुलको जो भारतके दो फाटक माने जाते थे, सम्मिलित करना आवश्यक समझा जाता था। दूसरी नीतिके अनुसार रूस और इग्लैण्ड, जो पूर्वमे अपने साम्राज्यका विस्तार करनेके कारण एक दूसरेके प्रतिद्वद्वी थे, दोनो अफगानिस्तानको अपने प्रभावके अतर्गत रखना चाहते थे। इग्लैण्डमे विशेष रूपसे कजरवेटिव पार्टीको अफगानिस्तान होकर भारतकी ओर रूसी प्रसारका तीव्र भय था। यद्यपि यह भय कभी साकार नहीं हुआ तथापि इसने अफगानिस्तानके प्रति ब्रिटिश नीतिको समूची १९वी शताब्दी भर प्रभावित किया।

तीसरा आग्ल-अफगान युद्ध (अप्रैल-मई १९१९)–बहुत थोडे दिन चला। अमीर अब्दुर्रहमानने जिसे लार्ड रिपनने अफगानिस्तानका अमीर मान लिया था, उसने १९०१ ई० मे मृत्युपर्यन्त शासन किया। उसके उत्तराधिकारी अमीर हबीबुल्लाह (१९०१–१९ ई०) ने अपनेको अफगानिस्तानका शाह घोषित किया और उसने भारतकी अग्रेजी सरकारसे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखा। लेकिन उसके बेटे और उत्तराधिकारी शाह अमानुल्लाह (१९१९–२९ ई०) ने आतरिक झगडो और अफगानिस्तानमे व्याप्त अग्रेज-विरोधी भावनाओके कारण, गद्दीपर बैठनेके बाद

ही भारतकी ब्रिटिश सरकारके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी। इस तरह तीसरा आग्ल-अफगान युद्ध शुरू हो गया। यह युद्ध केवल दो महीने (अप्रैल-मई १९१९ ई०) चला। भारतकी ब्रिटिश सेनाने बमों, विमानों, बेतारके तारकी सचार व्यवस्था और आधुनिक शस्त्रास्त्रोंका प्रयोग करके अफगानोंको हरा दिया। अफगानोंके पास आधुनिक शस्त्रास्त्र नही थे। उन्हे मजबूर होकर शान्ति-सन्धिके लिए झुकना पड़ा। परिणामस्वरूप रावलपिंडीकी सन्धि (अगस्त १९१९) हुई। इस सन्धिके द्वारा तय हुआ कि अफगानिस्तान भारतके मार्गसे शस्त्रास्त्रोंका आयात नहीं करेगा। अफगानिस्तानके शाहको भारतसे दी जानेवाली आर्थिक सहायता भी बद कर दी गयी और अफगानिस्तानको अपने वैदेशिक सबधोंकी पूरी आजादी दे दी गयी। भारत और अफगानिस्तान, दोनोंने एक दूसरेकी स्वतत्रताका सम्मान करनेका निश्चय किया। अन्तमे यह भी तय हुआ कि अफगानिस्तान अपना राजदूत लन्दनमे रखेगा और इग्लैण्डका राजदूत काबुलमे रखा जायगा। इसके बादसे आग्ल-अफगान सम्बन्ध प्राय मैत्रीपूर्ण रहा।

आग्ल-फ्रासीसी युद्ध—देखो कर्नाटक युद्ध।

आईन-ए-अकबरी—फारसीका एक प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ जिसे अकबर बादशाहके विश्वासपात्र और मीरमुन्शी (प्रधान सचिव) अबुलफजलने लिखा था। इसमे अकबरकी सल्तनत, उसके सैनिक प्रबन्ध तथा शासन-प्रबधके बारेमे सूचनाएँ मिलती हैं। फारसीके अन्य इतिहास ग्रन्थोंमे इसकी एक विशेषता यह है कि इसमे मुगल सल्तनतके हर-एक सूबे, जिले, और परगनोंके आकडे दिये गये हैं। इस ग्रन्थमे हमे मुगलोंके कालकी आर्थिक स्थिति तथा मुगल शासन-व्यवस्थाके सम्बन्धमे विस्तृत जानकारी मिलती है। इस ग्रन्थका अग्रेजीमे टिप्पणी सहित अनुवाद ब्लाकमेन और जैरटने १८७३ ई० मे किया था। इस ग्रन्थमे अकबरकालीन भारतके बारेमे सबसे प्रामाणिक जानकारी मिलती है।

आउटरम, सर जेम्स (१८०३–६३ ई०)—गदरके समय अग्रेजोंका एक वीर नायक था। वह १८१९ ई० मे एक कैडेट (शिक्षार्थी सैनिक अधिकारी) के रूपमे भारत आया। अगले साल अपनी चुस्तीके कारण वह पूनामे एडजुटेंट बना दिया गया। १८२५ ई० मे उसे खानदेश भेजा गया। वहाँके भील उससे बहुत प्रभावित हुए। उसने भीलोंको पैदल फौजमे भरती किया। उनको हलके हथियार दिये गये। यह पलटन स्थानीय चोरोंकी लूटमार रोकनेमे बहुत सफल हुई। १८३५ से १८३८ ई० तक वह गुजरातमे पोलिटिकल एजेंट रहा। १८३८ ई० मे उसने अफगान युद्धमे भाग लिया। उसने गजनीके किलेके सामने शत्रुओंके झडे छीन लेनेमे व्यक्तिगत रीतिसे बडी वीरता प्रदर्शित की, जिसके कारण उसका बहुत नाम हुआ। १८३९ ई० मे वह सिधमे पोलिटिकल एजेंट नियुक्त हुआ। उसने अपने उच्च अधिकारी सर चार्ल्स नेपियरकी नीतिका विरोध करके, जिसके फलस्वरूप सिधके अमीरोंसे युद्ध हुआ, अपने सबल व्यक्तित्व तथा अपनी न्यायप्रियताका परिचय दिया। परन्तु जब युद्ध छिड गया तो उसने ८०० बलूचियोंके हमलेसे हैदराबाद रेजिडेसीकी वीरतापूर्वक रक्षा की। इसके फलस्वरूप सर चार्ल्स नेपियरने उसकी तुलना प्रसिद्ध फ्रासीसी वीर बेयार्डसे की।

१८५४ ई० मे वह लखनऊमे रेजिडेंट नियुक्त हुआ। १८५६ ई० मे उसने अवधका राज्य नवाबोंसे ले लिया और उसके अग्रेजी साम्राज्यमे मिला लिये जानेके बाद प्रातका पहला चीफ कमिश्नर नियुक्त हुआ। जिस समय गदर हुआ वह फारसमे था। उसे शीघ्रतासे फारससे बुला लिया गया और कलकत्तासे कानपुरतककी रक्षा करनेवाली बगाल आर्मीका कमाडर नियुक्त किया गया। उसने लखनऊ रेजिडेसीका मोहासरा उठानेमे हैवलाककी भारी मदद की और विद्रोहियोंको चकमा देकर रेजिडेंसीमे फँसी फौजको निकाल ले आया। इसके बाद उसने लखनऊपर पुन अधिकार करनेमे सर कालिन कैम्पबेलको मदद दी। गदरके समय उसने लोमडी जैसी चालाकी तथा सिंह जैसे पराक्रमका परिचय दिया। ब्रिटिश पार्लियामेण्टने इसके उपलक्ष्यमे उसे 'बैरन' की पदवी प्रदान की और उसकी आजीवन पेंशन नियत कर दी। कलकत्तामे स्थापित उसकी घोडेपर सवार मूर्ति मूर्तिकलाका उत्तम उदाहरण थी। उसने १८६० ई० मे अवकाश ग्रहण किया और १८६३ ई० मे इग्लैण्डमे उसकी मृत्यु हुई।

आकमटी, सर सैम्युअल—को लार्ड मिंटो प्रथम (१८०७–१७) ने मद्रासमे ईस्ट इडिया कम्पनीके सैनिक अधिकारियोंके विद्रोह कर देनेपर मद्रासकी सेनाका सेनापति नियुक्त किया था। आकमटीने शीघ्र ही विद्रोह शात कर दिया। इसके पुरस्कारस्वरूप जावापर आक्रमण करनेके लिए (१८१०–११ ई०) जो ब्रिटिश सैन्यदल भेजा गया उसका नेतृत्व उसे सौंपा गया। परिणामस्वरूप १८११ ई० मे जावापर अधिकार कर लिया गया।

आक्लैण्ड, लार्ड—१८३६ से ’४२ ई० तक ६ वर्ष भारतका गवर्नर-जनरल रहा। उसके प्रशासनमे कोई उल्लेखनीय

कार्य नही हुआ। यह सही है कि उसने भारतीयोके लिए शिक्षाप्रसार और भारतमे पश्चिमी चिकित्सा-पद्धतिकी शिक्षाको प्रोत्साहन दिया। उसने कम्पनीके डायरेक्टरोके उस आदेशको कार्यरूपमे परिणत किया जिसके अधीन तीर्थयात्रियो और धार्मिक सस्थाओसे कर लेना बन्द कर दिया गया। लेकिन १८३७–३८ ई० मे उत्तर भारतमे पडे विकराल अकालके समय लोगोके कष्टोको दूर करनेके लिए पर्याप्त कदम उठानेमे वह विफल रहा। उसने १८३७ ई० मे पादशाह बेगमके विद्रोहका दमन किया और अवधके नये नवाव (बादशाह) नसीरुद्दीन हैदरको वाध्य करके नयी सन्धिके लिए राजी किया जिसके द्वारा उससे अधिक वार्षिक धनराशि वसूल की जाने लगी। उस सन्धिको कम्पनीके डायरेक्टरोने नामजूर कर दिया, लेकिन आक्लैण्डने इस वातकी सूचना अवधके वादशाहको नही दी। उसने सताराके राजाको गद्दीसे उतार दिया क्योकि उसने पुर्तगालियोसे मिलकर राजद्रोहका प्रयत्न किया था। अपदस्थ राजाके भाईको उसने गद्दीपर बैठाया। उसने करनूलके नवावको भी कम्पनीके विरुद्ध युद्ध करनेका प्रयास करनेके आरोपमे गद्दीसे हटा दिया और उसके राज्यको अग्रेजी राज्यमे मिला लिया। लार्ड आक्लैण्डका सबसे वदनामीवाला काम उसका प्रथम आग्ल-अफगान युद्ध (१८३८–४२) शुरू करना था जिसका लक्ष्य दोस्त मुहम्मदको अफगानिस्तानकी गद्दीसे हटाना था क्योकि वह रूसका समर्थक था और उसके स्थानपर शाहशुजाको वहाँका अमीर बनाना था जिसे अग्रेजोका समर्थक समझा जाता था। यह युद्ध अनुचित था और इसके द्वारा सिन्धके अमीरोसे की गयी सन्धिको उसे तोडना पडा था। इस युद्धका सचालन इतने गलत ढगसे हुआ कि वह एक दुखान्त घटना बन गयी और लार्ड आक्लैण्डको इग्लैण्ड वापस वुला लिया गया और उनके स्थानपर लार्ड एलेनवरोको भारतका गवर्नर-जनरल बनाकर भेजा गया।

ऑक्टरलोनी, सर डेविड (१७५८–१८२५ ई०)–ईस्ट इडिया कम्पनीकी सेवामे एक सुविख्यात सेनानायक। उसने १८०४ ई० मे होल्करके आक्रमणके समय दिल्लीकी अत्यत कुशलतासे रक्षा की थी। उपरात १८१४–१५ ई० के गोरखा युद्ध (दे०) मे, वह उन तीन आग्ल भारतीय सेनाओमेसे एकका कमाडर था, जिसने नेपालपर आक्रमण किया था। अन्य दो सेनाओके कमाडर तो भाग आये, किन्तु आक्टरलोनी पश्चिमकी ओरसे नेपालपर आक्रमण करके मोर्चेपर डटा रहा। इस सफलताके पुरस्कारस्वरूप उसकी पदोन्नति की गयी और उसे उन समस्त अग्रेज और भारतीय सेनाओका सर्वोच्च कमाडर नियुक्त कर दिया गया जिन्होने नेपालपर आक्रमण किया था। उसने अपनी पदोन्नतिको सार्थक सिद्ध कर दिया तथा कठिन युद्धके उपरात नेपालमे दूरतक घुसता चला गया, यहाँतक कि उसकी राजधानी काठमाडू केवल ५० मील दूर रह गयी। परिणामस्वरूप १८१६ ई०मे नेपालको सगौलीकी सधि (दे०) करनी पडी। १८१७–१८ ई० के पेढारी युद्ध (१८१७–१८ ई०) मे वह राजपूतानेकी पलटनका कमाडर था और उसने अमीरखाँको पेढारियोसे फोडकर अग्रेजोको शीघ्र विजय दिलानेमे मदद दी। १८२४–२६ ई० मे प्रथम बर्मा युद्ध छिडनेपर उसने भरतपुर (दे०) पर चढाई वोली, जहाँ दुर्जन सालने अल्पवयस्क राजा बलवन्तसिहके विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। किन्तु गवर्नर-जनरलने उसे तत्क्षण वापस बुला लिया। इसके थोडे ही समय वाद उसकी मृत्यु हो गयी। चौरगीके समीप कलकत्ताके मैदानमे ऑक्टरलोनीका एक स्मारक आज दिन भी वर्तमान है और उसे साधारणत मनियारमठ कहा जाता है।

आक्सेनडेन, सर जार्ज–सूरतमे ईस्ट इडिया कम्पनीकी फैक्टरीका अध्यक्ष था और १६६२ से १६६९ ई० तक बम्बईका गवर्नर रहा। उसने १६६४ ई० मे शिवाजीके हमलेके विरुद्ध सूरतकी वीरतापूर्वक रक्षा की और वादशाह औरगजेबने भी उसकी प्रशसा की।

आगा खाँ–भारतीय मुसलमानोके वोहरा इस्माइली समुदायके धार्मिक नेताकी उपाधि। वर्तमान आगा खाँ अली खाँ है जो इस पदके चौथे उत्तराधिकारी है। प्रथम आगा खाँ हसन अली खाँ थे, जो अपनेको हजरत मुहम्मदकी पुत्री के वशज वताते थे। उनके बेटे आगा अलीशाह तीन वर्ष (१८८१–१८८४ ई०) इस पद पर रहे और उनके पुत्र सुल्तान मुहम्मद आगा खाँ तृतीयको 'हिज हाई-नेस'की उपाधि ब्रिटिश शासकोने प्रदान की। (**नौरोजी डुभसिया–दि आगा खाँ एण्ड हिज एन्सेस्टर्स**)

आजम, शाहजादा–छठे मुगल वादशाह औरगजेब (१६५८–१७०७ ई०) का तीसरा बेटा था जिसने अपने वापके मरनेके वाद तख्तके लिए अपने वडे भाई शाहजादा मुअज्जमसे युद्ध किया और आगराके निकट जाजऊकी लडाईमे १० जून १७०७ ई० को हारा और मारा गया।

आजीवक–सम्प्रदायकी स्थापना गोशालाने की थी जो गौतम बुद्धका समकालीन था। उनके विचार 'सामञ्-

फल सुत्त' तथा 'भगवतीसूत्र'में मिलते है। आजीवक पुरुषार्थमें विश्वास नहीं करते थे। वे नियतिको मनुष्यकी सभी अवस्थाओंके लिए उत्तरदायी ठहराते थे। उनके नियतिवादमें पुरुषके बल या वीर्य (पराक्रम) का कोई स्थान नहीं था। वे पाप या पुण्यका कोई हेतु या कारण नहीं मानते थे। आजीवकोंका सम्प्रदाय कभी इतना विशाल नहीं हुआ कि राजनीतिपर उसका कोई प्रभाव पडता, हालाँकि अशोकके कालमें उनका समुदाय महत्त्व-पूर्ण माना जाता था। अशोकके पोतेने गयाके निकट बराबर पहाडियोंमें निर्मित तीन गुफा-मंदिर आजीवकोंको दान कर दिये थे।

आदम, जान–गवर्नर-जनरलकी कौंसिलका वरिष्ठ सदस्य था। १८२३ ई० में जनवरीसे जुलाईतक उसने स्थानापन्न गवर्नर-जनरलके रूपमें कार्य किया। उसके अल्प शासनमें 'कलकत्ता जर्नल'के सम्पादक जान सिल्क बकिंघमको सार्वजनिक मामलोंकी आलोचना करनेके कारण देशसे निकाल दिया गया। इस घटनाके बाद भारतके सार्वजनिक जीवनमें समाचारपत्रोंने भी अपना स्थान बना लिया।

आदि ग्रंथ–सिखोंका धर्मग्रंथ। उसका संकलन पाँचवें गुरु अर्जुन (१५८१–१६०६ ई०) ने १६०४ ई० में किया था। उसमें गुरु नानक, उनके तीन उत्तराधिकारियों तथा अन्य मतोंकी वाणियाँ संकलित हैं।

आदित्य (८८०–९०७ ई०)–चोलवंशके प्रारम्भिक राजाओंमें था। उसने पल्लव राजा अपराजितको हराकर पल्लवोंकी राज्यशक्ति समाप्त कर दी और इस प्रकार अपने पुत्र तथा उत्तराधिकारीके राज्यकालमें चोल राज्यके उत्कर्षका पथ प्रशस्त कर दिया।

आदित्यवंश–कम्बुज (कम्बोडिया) की जनश्रुतियोंके अनुसार इन्द्रप्रस्थका एक राजा था जिसके पुत्र कौण्डिन्यने कम्बुजके राजवंशकी स्थापना की। इस सम्बन्धमें भारतमें कोई ऐतिहासिक सामग्री नहीं मिलती है।

आदित्यसेन–माधवगुप्त का पुत्र था और ६७२ ई०में मध्य-देशमें राज्य करता था। उसने अश्वमेध यज्ञ किया और अपनी पुत्रीका विवाह मौखरि भोगवर्द्धनसे किया। उसकी दौहित्रीका विवाह नेपाल-नरेश शिवदेवसे हुआ था और उनके पुत्र जयदेवका विवाह कामरूप-नरेश हर्षदेवकी पुत्री राज्यमतीसे हुआ था।

आदिलशाही राजवंश–की स्थापना बीजापुरमें १४८९ ई० में यूसुफ आदिल खाँने की थी। वह जार्जिया-निवासी गुलाम था जो अपनी योग्यताके कारण बहमनी सुल्तान महमूद (१४८२–१५१८ ई०) के यहाँ ऊँचे पदपर पहुँचा था और उसको बीजापुरका सूबेदार बनाया गया था। बादमें उसने बीजापुरको राजधानी बनाकर स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। उसके राजवंशने बीजापुरमें १४८९ से १६८५ ई० तक राज्य किया। अन्तिम आदिल शाही सुल्तान सिकंदरको औरंगजेबने पराजित करके गिरफ्तार कर लिया। इस राजवंशमें–यूसुफ, इस्माइल, मल्लू, इब्राहीम प्रथम, अली इब्राहीम द्वितीय, मुहम्मद अली द्वितीय और सिकंदर नामक सुल्तान हुए। इस वंशके सुल्तानोंने दक्षिणमें अनेक लडाइयाँ लडीं। १५६५ ई० में जब मुसलमानोंने संयुक्त रूपसे विजयनगरपर हमला किया और तालीकोटका युद्ध जीत कर विजयनगर राज्यको नष्ट कर दिया तो उसमें आदिलशाही सुल्तान भी शामिल थे। आदिलशाही सुल्तानोंको इमारतें बनवानेका शौक था। बीजापुर शहरके चारों ओर शहरपनाह, बीजापुरकी खास मस्जिद, गगन महल, इब्राहीम द्वितीय (१५८०–१६२६ ई०) का मकबरा और उसके उत्तराधिकारी मुहम्मद (१६२६–५६ ई०) का मकबरा भव्य इमारतें हैं जिन्हें कुशल कारीगरोंसे बनवाया गया था। कुछ सुल्तान, खासतौरसे छठा सुल्तान इब्राहीम द्वितीय योग्य और उदार शासक था। वह साहित्यप्रेमी था। प्रसिद्ध इतिहासकार मुहम्मद कासिम उर्फ फरिश्ताने आदिलशाही संरक्षणमें रहकर अपना प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ 'तारीख-ए-फरिश्ता' लिखा था।

आदिवराह–कन्नौजके गुर्जर-प्रतिहार राजा मिहिर भोज (८४०–९० ई०) की उपाधि थी। उसके चाँदीके सिक्कोंमें यह नाम अंकित मिलता है जो उत्तरी भारतमें बहुतायतसे मिले है।

आदिसूर–बंगालकी साहित्यिक अनुश्रुतियोंके अनुसार गौड अथवा लक्षणावतीका राजा था। उसने बंगालमें ब्राह्मण धर्मको पुनरुज्जीवित करनेका प्रयास किया, जहाँपर बौद्ध धर्म छाया हुआ था। उसने कान्यकुब्जसे पाँच श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको अपने राज्यमें बुलाकर बसाया जिन्होंने सनातन हिन्दू धर्मकी प्रतिष्ठा की। ये ब्राह्मण ही बंगालके राढी और वारेन्द्र ब्राह्मणोंके पूर्वज थे। आदिसूरका समय ७०० ईसवीके बादका माना जाता है। लेकिन समकालीन प्रमाणोंके अभावमें आदिसूरकी ऐतिहासिकतामें संदेह किया जाता है।

आनन्द अथवा अनन्त देवी–कुमारगुप्त प्रथम (दे०) (४१५–५५ ई०) की रानी थी और पुरुगुप्त (दे०) की माता थी।

आनन्दपाल–सिन्धु नदीके तटपर स्थित उद्भाण्डपुर अथवा ओहिन्दके हिन्दू शाही राजवंशके राजा जयपालका पुत्र

और उत्तराधिकारी था। वह १००२ ई० के करीब गद्दीपर बैठा। सुल्तान महमूद गजनवीने उसके पिता जयपालको १००१ ई० मे परास्त किया था। इसलिए गद्दीपर बैठनेके बाद आनन्दपालका पहला कर्तव्य यही था कि वह सुल्तान महमूदसे इस हारका बदला लेता। सुल्तान महमूदने १००६ ई० मे उसके प्रतिरोधके बावजूद मुल्तानपर कब्जा कर लिया और १००८ ई० मे आनन्दपालके राज्यपर फिरसे हमला किया। आनन्दपालने उज्जैन, ग्वालियर, कन्नौज, दिल्ली और अजमेरके हिन्दू राजाओका सघ बनाकर सुल्तानकी सेनाका पेशावरके मैदानमे सामना किया। दोनो ओरकी सेनाएँ ४० दिन तक एक दूसरेके सामने डटी रही। अतमे भारतीय सेनाने सुल्तानकी सेनापर हमला बोल दिया और जिस समय हिन्दुओकी विजय निकट मालूम होती थी उसी समय एक दुर्घटना घट गयी। जिस हाथीपर आनन्दपाल अथवा उसका पुत्र ब्राह्मणपाल बैठा था वह पीछे मुडकर भागने लगा। यह देखते ही भारतीय सेना छिन्न-भिन्न होकर भागने लगी। इस युद्धमे युवराज ब्राह्मणपाल मारा गया। सुल्तानकी विजयी सेना आनन्दपालके राज्यमे घुस गयी और कागडा और भीमनगरके किलो और मदिरोपर हमला करके उन्हे लूटा। आनन्दपालने इसपर भी पराजय स्वीकार नही की और नमककी पहाडियोसे मुसलमानोका लगातार प्रतिरोध करता रहा। कुछ वर्ष बाद उसकी मृत्यु हो गयी।

आनन्द रग पिल्लई–डूप्लेका दुभापिया था। उसने पाडेचेरीकी घटनाओका विवरण लिखा है और साथ ही उन घटनाओका भी उल्लेख किया है जिनकी प्रतिक्रिया फासीसी राजधानीमे हुई। उसकी तमिलभापामे लिखी दैनिन्दिनीके बारह खडोका अनुवाद अग्रेजीमे हुआ है। उसने कभी-कभी तो बाजारू अफवाहो और मामूली घटनाओको भी बहुत बढा चढा कर लिखा है।

आन्ध्र–भारतके पूर्वी समुद्रतटपर गोदावरीके मुहानेसे लेकर कृष्णाके मुहानेतक विस्तृत प्रदेशको कहते है। यहाँके निवासी ज्यादातर तेलुगु भाषी है और इस क्षेत्रमे प्राचीनकालसे बसे हुए है। ब्रिटिश शासन-कालमे इस क्षेत्रको तमिल-भापी क्षेत्रसे मिलाकर मद्रास प्रेसीडेन्सी बना दिया गया था। स्वतत्रता-प्राप्तिके बाद यहाँके निवासियोने भापायी आधारपर उनका क्षेत्र मद्राससे अलग करके पृथक् राज्य बनानेकी माँग की। हिसा और उपद्रवकी अनेक घटनाएँ घटनेके बाद यह माँग स्वीकार कर ली गयी और हैदराबादको राजधानी बनाकर पृथक् आन्ध्र राज्यकी स्थापना कर दी गयी। आन्ध्र राज्य भारतमे भापायी राज्यकी स्थापनाका पहला उदाहरण है और उसके बाद अन्य राज्योको भी भापायी आधारपर तोडनेके-आन्दोलन चल पडे।

आन्ध्र राजवश–देखो सातवाहन राजवश।

आभीर–गणका प्रथम उल्लेख पतजलिके महाभाष्यमे मिलता है। वे सिन्धु नदीके निचले कॉठे और पश्चिमी राजस्थानमे रहते थे। 'पेरिप्लस' नामक ग्रथ तथा टालेमीके भूगोलमे भी उनका उल्लेख है। ईसाकी दूसरी शताब्दीके उत्तरार्द्धमे आभीर राजा पश्चिमी भारतके शक् शासकोके अधीन थे। ईश्वरदत्त नामक आभीर राजा महाक्षत्रप बन गया था। ईसवी तीसरी शताब्दीमे आभीर राजाओने सातवाहन राजवशके पराभवमे महत्त्वपूर्ण योग दिया था। समुद्रगुप्तके इलाहाबादके स्तम्भ-लेखमे आभीरोका उल्लेख उन गणोके साथ किया गया है जिन्होने गुप्त सम्राट्की अधीनता स्वीकार कर ली थी। (**पोलि०, पृ० ५४५**)

आम्बूर की लडाई–फासीसियोका समर्थन प्राप्त कर लेने वाले चन्दा साहब और कर्नाटकके नवाब अनवरुद्दीनके बीच १७४९ ई० मे हुई, जिसमे नवाब पराजित हुआ और मारा गया।

आम्भि–ई० पू० ३२७–२६ मे भारतपर सिकदर महान्के आक्रमणके समय तक्षशिलाका राजा था। उसका राज्य सिन्धु और जेहलम नदियोके बीचमे विस्तृत था। वह पुरु अथवा पोरसका प्रतिद्वन्द्वी राजा था, जिसका राज्य जेहलमके पूर्व मे था। कुछ तो पोरससे ईर्ष्याके कारण और कुछ अपनी कायरताके कारण उसने स्वेच्छासे सिकदरकी अधीनता स्वीकार कर ली और पोरसके विरुद्ध युद्धमे उसने सिकदरका साथ दिया। सिकदरने उसको पुरस्कारस्वरूप पहले तो तक्षशिलाके राजाके रूपमे मान्यता प्रदान कर दी और बादमे सिन्धु और चनाब के सगम क्षेत्रतकका शासन उसे सौप दिया। सभवत चन्द्रगुप्त मौर्यने उससे सारा प्रदेश छीन लिया और पूरे पजाबसे यवनो (यूनानियो) को निकाल बाहर किया। जब सिकदरके सेनापति एव उसके पूर्वी साम्राज्यके उत्तराधिकारी सेल्यूकसने भारतपर आक्रमण किया तो उस समय भी पजाब चन्द्रगुप्त मौर्यके अधिकारमे था। आम्भिका अन्त कैसे हुआ, इसकी जानकारी नही मिलती है।

आम्रकार्द्दव–तीसरे गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय (३८१–४१३ ई०) का एक सेनापति था। अनेक युद्धोमे विजय प्राप्त करनेके कारण उसका यश चारो ओर फैला था। चन्द्रगुप्त द्वितीयने जब पूर्वी मालवापर हमला किया तो सेनापति आम्रकार्द्दव भी उसके साथ

था। उसने सनकानीक महाराजको गुप्तोंका सामन्त बनाने तथा पश्चिमी मालवा व काठियावाड़के शकोंका उन्मूलन करनेमें अपने सम्राट्की सहायता की। वह बौद्ध मतावलम्बी था अथवा बौद्ध धर्ममें श्रद्धा रखता था। उसने एक बौद्ध विहार को दान दिया था।

आयर, मेजर विन्सेण्ट (१८११–८१ ई०)–बंगाल तोपखाने-का अफसर होकर १८२८ ई० में भारत आया। १८३९–४२ ई० में काबुलपर अंग्रेजोंके आक्रमणमें भाग लिया। बादमें उसका स्थानान्तरण बर्माके लिए हो गया। जब भारतमें १८५७ ई० में प्रथम स्वाधीनता संग्राम छिड़ा, तो उसे भारत वापस बुला लिया गया। जब वह लौट रहा था, तो उसने सुना कि जगदीशपुरके कुँवर सिंहने आराको घेर रखा है। उसने अपनी जिम्मेदारीपर सेना एकत्र कर कुँवरसिंहको पराजित किया। इसके बाद वह लखनऊ गया जहाँ उसने १८५८ ई० में अंग्रेजोंको विजयी बनानेमें सहायता दी। वह १८६३ ई० में अवकाशपर चला गया।

आयर, सर चार्ल्स–फोर्ट विलियम (कलकत्ता) का प्रथम अध्यक्ष था। इस फोर्ट विलियमसे ही सन् १७०० ई० के बाद बंगालकी सभी अंग्रेजी फैक्ट्रियोंका नियन्त्रण होता था। सर चार्ल्सके प्रशासनमें कोई उल्लेखनीय घटना नहीं घटी।

आरगाँवकी लड़ाई–२९ नवम्बर १८०३ ई० में आर्थर वेलेस्लीके नेतृत्वमें अंग्रेजों और नागपुरके भोंसला शासकके नेतृत्वमें मराठा दलके बीच हुई। यह लड़ाई द्वितीय मराठा युद्धके सिलसिलेमें हुई थी। इसमें भोंसलाकी सेना निर्णा-यक ढंगसे परास्त हुई और अंग्रेजी सेनाका गवीलगढ़के किलेपर अधिकार हो गया। भोंसला राजाने दिसंबर १८०३ ई० में देवगढ़की सन्धि करके अंग्रेजोंका आधिन होना स्वीकार कर लिया।

आरजूमंद बानो बेगम–देखो मुमताज महल।

आरामशाह–दिल्लीका सुल्तान (१२०९–१२११ ई०)। वह दिल्लीके प्रथम सुल्तान कुतुबुद्दीनका उत्तराधिकारी था। सुल्तान आरामशाहमें कुतुबुद्दीनके गुण नहीं थे। उससे उसका सम्बन्ध भी अज्ञात है। कुछ इतिहासकारोंके अनुसार वह कुतुबुद्दीनका बेटा था। अबुल फजलके अनुसार वह कुतुबुद्दीनका भाई था। कुछ अन्य इतिहास-कारोंके अनुसार उसका प्रथम सुल्तानसे कोई सम्बन्ध नहीं था। उसको कुछ अज्ञात कारणोंसे ही सुल्तान बनाया गया जिसे कुतुबुद्दीनके दामाद इल्तुतमिशने गद्दीसे उतार दिया।

आरिया–यूनानी इतिहासकारोंके अनुसार हेरातका नाम।

आरियाना–अफगानिस्तानका यूनानी नाम।

आर्कोसिया–नामका प्रयोग यूनानी इतिहासकारोंने कन्दहार क्षेत्रके लिए किया है।

आर्यदेव–एक प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य जो ईसाकी दूसरी शताब्दीमें हुआ। उसकी गणना बौद्ध धर्मकी महायान शाखाके प्रवर्तकोंमें होती है।

आर्यभट–भारतका प्रमुख गणितज्ञ और ज्योतिषी। जन्म ४७६ ई० में हुआ। २३ वर्षकी अवस्थामें जब वह कुसुमपुर अथवा पटना में रहता था, 'आर्यभट्ट तंत्र' नामक ग्रंथ संस्कृतमें लिखा। उसने पता लगाया कि पृथ्वी प्रति दिन अपनी धुरीपर घूमती है जिससे दिन और रात होते हैं। कोपरनिकससे बहुत पहले उसने यह ढूँढ निकाला कि पृथ्वी सूर्यके चारों ओर परिक्रमा करती है। उसे सूर्य और चन्द्रग्रहणका असली कारण मालूम था। उसे यह भी पता था कि चन्द्रमा और दूसरे ग्रह स्वयं प्रकाश-मान नहीं है वरन् सूर्यकी किरणें उसमें प्रतिबिम्बित होती हैं तथा पृथ्वी एवं दूसरे ग्रह सूर्यके चारों ओर वृत्ताकार घूमते हैं। **(बी० बी० दत्त–हिन्दू कंट्रीब्यूशन टू मैथमेटिक्स तथा एल० रोडे–ले कास्त डि कल्कुल आर्यभट्ट)**

आर्यसमाज–एक सामाजिक सुधारका संगठन जिसकी स्थापना स्वामी दयानन्द सरस्वती (दे०) ने १८७५ ई० में की। पश्चिमी शिक्षा और विज्ञानके प्रभावसे बहुतसे शिक्षित भारतीय ईसाई धर्मकी ओर झुक जाते थे। ब्रह्मसमाज और प्रार्थनासमाजकी भाँति आर्यसमाज भी इस प्रवृत्ति-को रोकनेके लिए स्थापित किया गया और उसे इसमें काफी सफलता मिली। आर्यसमाजका लक्ष्य था 'वेदोंकी ओर पुनः लौटो'। वह समाजको वैदिक व्यवस्थाके आधारपर संगठित करना चाहता था और बादके पुराण पंथको छोड़नेपर जोर देता था। आर्यसमाजने एकेश्वरवादकी स्थापना की और बहुईश्वरवाद और मूर्तिपूजाकी निन्दा की। आर्यसमाजने जाति-पातिके प्रति-बन्धों, और बाल-विवाहका विरोध किया और समुद्र यात्रा, स्त्री-शिक्षा और विधवा-विवाहका समर्थन किया। आर्यसमाजका लक्ष्य भारतकी पददलित अथवा पिछड़ी जातियोंका उत्थान करना भी था। उसने शुद्धि आन्दोलन चलाकर बहुतसे गैर-हिन्दुओंको हिन्दू बनाया और इस प्रकार हिन्दू धर्मको फिरसे शक्तिशाली बनानेका प्रयास किया। आर्यसमाजने सामाजिक सुधार और शिक्षाके क्षेत्रमें बहुत काम किया, विशेष रूपसे पंजाबमें। प्रारम्भ में आर्यसमाजने केवल संस्कृत-शिक्षापर जोर दिया, लेकिन बादमें लाला हंसराजके नेतृत्वमें उसकी एक शाखाने पश्चिमी-शिक्षा ग्रहण करनेका समर्थन किया और लाहौरमें

दयानन्द एंग्लो-वैदिक कालेजकी स्थापना की। लेकिन कट्टर आर्यसमाजी वैदिक आदर्शोके अनुसार आधुनिक जीवनको ढालनेपर जोर देते रहे और १९०२ ई० मे उन्होने हरद्वारमे गुरुकुल कागडीकी स्थापना की। उत्तरी भारतमे आज भी आर्य समाजके अनुयायी बहुत बडी सख्यामे है।

आर्यावर्त—का अर्थ है आर्योका वासस्थान। मनुसहिता (२०० ई०) मे आर्यावर्तका प्रयोग हिमालयसे विन्ध्य तक समस्त उत्तरी भारतके लिए किया गया है। आर्य लोग कब इस क्षेत्रमे आये, इसका सही पता नही लगाया जा सका है। ऋग्वेद (२००० ई० पू०) की रचनाके कालमे आर्य लोग अफगानिस्तान और पजाबतक सीमित थे। पजाबमे बस जानेके बाद आर्योको पूर्वकी ओर बढने तथा समस्त आर्यावर्तमे फैलनेमे कई शताब्दियाँ लग गयी होगी।

आलम खा—सुलतान बहलोल लोदी (१४५१–८९ ई०) का तीसरा बेटा था और दिल्लीके अतिम सुल्तान इब्राहीम लोदी (१५१७–२६ ई०) का चाचा था। आलम खाँ अपने भतीजेकी अपेक्षा अपनेको दिल्लीकी सल्तनतका असली हकदार समझता था। जब वह अपने बलपर इब्राहीम लोदीको गद्दीसे नही हटा सका तो उसने लाहौरके हाकिम दौलत खाँ लोदीसे मिलकर बाबरको हिन्दुस्तानपर हमला करनेके लिए निमत्रण दिया। इसके फलस्वरूप बाबरने भारतपर हमला किया और पानीपतकी पहली लडाई (१५२६ ई०) मे इब्राहीम लोदीको हरानेके बाद मौतके घाट उतार दिया। तदुपरात बाबर स्वय दिल्लीके तख्तपर बैठ गया और आलम खाँकी सारी उम्मीदोपर पानी फिर गया। कुछ समय बाद उसकी मृत्यु हो गयी।

आलमगीर—देखो, औरगजेब।

आलमगीर द्वितीय—१६वाँ मुगल बादशाह (१७५४–५९) था। वह आठवे मुगल बादशाह जहाँदार शाह (१७१२–१३) का बेटा था। वजीर गाजीउद्दीनने १५वे मुगल बादशाह अहमद शाहको अन्धा करके गद्दीसे उतार दिया और १७५४ ई० मे आलमगीर द्वितीयको बादशाह बनाया। वह चाहता था कि बादशाह उसके हाथकी कठपुतली बना रहे। वह समय बडी उथल-पुथलका था। १७५६ ई० मे अहमदशाह अब्दालीने चौथी बार हिन्दुस्तानपर हमला किया और दिल्लीको लूटा। उसने सिन्धपर कब्जा कर लिया और अपने बेटे तैमूरको वहाँका शासन करनेके लिए छोड दिया। इसके बाद ही मराठोने १७५८ ई० मे दिल्लीपर चढाई की और पजाबको जीत कर तैमूरको वहाँसे निकाल दिया। बादशाह आलमगीर इन सब घटनाओका असहाय दर्शक बना रहा। जब उसने वजीर गाजीउद्दीनके नियत्रणसे अपनेको मुक्त करनेका प्रयास किया तो १७५९ ई० मे वजीरने उसकी भी हत्या करवा दी। इससे पहले पलासीकी लडाई १७५७ ई० मे हो चुकी थी और उसमे ईस्ट इडिया कम्पनीकी जीत हो चुकी थी। बादशाह आलमगीर द्वितीय बगालको मुगलोके कब्जेमे बनाये रखने और इस प्रकार भारतमे ब्रिटिश साम्राज्यकी नीव न पडने देनेके लिए कुछ न कर सका।

आलमशाह प्रथम—देखो 'बहादुर शाह प्रथम'।

आलमशाह द्वितीय या शाहआलम द्वितीय—१७वाँ मुगल बादशाह (१७५९–१८०६ ई०) था। जब वह अपने पिता बादशाह आलमगीर द्वितीयके उत्तराधिकारीके रूपमे १७५९ ई० मे गद्दीपर बैठा, तो उसका नाम शाहजादा अली गौहर था। बादशाह होनेपर उसने आलम-शाह द्वितीयका खिताब धारण किया। इतिहासमे वह शाह आलम द्वितीयके नामसे प्रसिद्ध है। उसका राज्य-काल भारतीय इतिहासका एक संकटग्रस्त काल कहा जा सकता है। उसके पिता आलमगीर द्वितीयको उसके सत्तालोलुप और कुचक्री वजीर गाजीउद्दीनने तख्तसे उतार दिया था और वह नये बादशाहको भी अपनी मुट्ठीमे रखना चाहता था। आलमशाह द्वितीयके गद्दीपर बैठनेके दो साल पहले पलासीकी लडाईमे ईस्ट इडिया कम्पनी विजयी हो चुकी थी, जिसके फलस्वरूप बगाल, बिहार और उडीसापर उसका शासन हो गया था। उत्तर-पश्चिममे अहमदशाह अब्दालीने अपने हमले शुरू कर दिये थे। १७५६ ई० मे उसने दिल्लीको लूटा और १७५९ ई० मे मराठोको जिन्होने १७५८ ई० मे पजाबपर अधिकार कर लिया था, वहाँसे निकाल बाहर किया। दक्षिणमे पेशवा बालाजी बाजीरावके नेतृत्वमे मराठे मुगलोके स्थानपर अपना साम्राज्य स्थापित करनेका प्रयास कर रहे थे। इस प्रकार जिस समय शाह आलम द्वितीय गद्दीपर बैठा, उस समय उसका अपना वजीर उसके खिलाफ गद्दारी कर रहा था, पूर्वमे ईस्ट इडिया कम्पनीकी ताकत बढ रही थी तथा पजाबमे अहमदशाह अब्दाली ताक लगाये बैठा था। शाह आलम द्वितीयने अपने तख्तके लिए अब्दालीको सबसे ज्यादा खतरनाक समझा। इसलिए उसने अब्दालीके पजेसे बचनेके लिए मराठोको अपना सरक्षक बना लिया। लेकिन १७६१ ई० मे पानीपतकी तीसरी लडाईमे अब्दाली-ने मराठोको हरा दिया। उसने शाहआलम द्वितीयको

दिल्लीके तख्तपर बना रहने दिया। यद्यपि बादमें उसकी इच्छा हुई कि वह उसे हटाकर स्वयं दिल्लीका तख्त हस्तगत कर ले, तथापि उसकी यह योजना पूरी नहीं हुई। किन्तु, अब्दालीकी इस विफलतामें बादशाह शाह आलम द्वितीयको कोई लाभ नहीं पहुँचा। १७६४ ई० में उसने अपनी शक्ति बढ़ानेका दूसरा प्रयास किया और बंगालसे अंग्रेजोंको निकाल बाहर करनेके लिए अवधके नवाब शुजाउद्दौला और बंगालके भगोड़े नवाब मीर कासिमसे सन्धि कर ली परन्तु अंग्रेजोंने बक्सरकी लड़ाई (१७६४ ई०) में शाही सेनाको हरा दिया और बादशाह शाह आलम द्वितीयने ईस्ट इंडिया कम्पनीसे इलाहाबादकी सन्धि कर ली। इस सन्धिके द्वारा बादशाहको कोड़ा और इलाहाबादके जिले अवधसे मिल गये और बादशाहने बंगाल, बिहार और उड़ीसाकी दीवानी (राजस्व वसूलनेका अधिकार) कम्पनीको इस शर्तपर सौंप दी कि वह उसे २६ लाख रुपये सालाना खिराज देगी। लेकिन शाह आलमको यह लाभ थोड़े समय ही मिला। पानीपतकी तीसरी लड़ाईमें मराठोंकी शक्तिको क्षति अवश्य पहुँची थी किन्तु शीघ्र ही उन्होंने फिरसे शक्ति अर्जित कर ली। बादशाह शाह आलम द्वितीय अपने वजीर नजीबुद्दौला (गाजीउद्दीन) की साजिशोंसे दिल्ली नहीं लौट पा रहा था। उसने मराठोंकी मदद लेनेके लिए कोड़ा और इलाहाबादके जिले मराठा सरदार महादजी शिन्देको सौंप दिये। इस प्रकार मराठोंकी सहायतासे १७७१ ई० में शाह आलम द्वितीय पुनः दिल्ली लौटा, लेकिन अब उसकी हैसियत मराठोंके हाथकी कठपुतलीके समान थी। अतएव ईस्ट इंडिया कम्पनीने इलाहाबादकी सन्धि तोड़ दी और शाह आलम द्वितीयसे कोड़ा और इलाहाबादके जिले वापस ले लिये और उसे वार्षिक २६ लाख रुपया देना भी बन्द कर दिया, जिसे अंग्रेजोंने १७६४ में बंगालकी दीवानीके बदलेमें देनेका वायदा किया था। इससे बादशाह शाह आलम द्वितीयकी हालत पतली हो गयी और वह दूसरे आंग्ल–मराठा युद्ध (१८०३–१८०५ ई०) तक मराठोंकी शरणमें रहा। दूसरे मराठा युद्धमें ईस्ट इंडिया कम्पनीकी फौजोंने जनरल लेकके नेतृत्वमें शिन्देकी सेनाको दिल्लीके निकट पराजित कर दिया। इसके बाद शाह आलम द्वितीय और उसकी राजधानी दिल्ली दोनोंपर ईस्ट इंडिया कम्पनीका नियंत्रण स्थापित हो गया। बादशाह अब बूढ़ा हो चला था और अंधा भी हो गया था। वह पूर्णतया निस्सहाय था। वह ईस्ट इंडिया कम्पनीकी पेंशनपर जीवन-यापन करता रहा। अंतमें १८०६ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी।

आलवार–वैष्णव सम्प्रदायके सन्त थे जिन्होंने ईसाकी सातवीं आठवीं शताब्दीमें दक्षिण भारतमें भक्तिमार्गका प्रचार किया। इन सन्तोंमें नाथमुनि, यामुनाचार्य और रामानुजाचार्य प्रमुख थे। रामानुजने विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तका प्रतिपादन किया, जो शंकराचार्यके अद्वैतवादका संशोधित रूप था।

आलिया बेगम–देखो, 'मुमताज महल'।

आश्वलायन–प्राचीनकालके एक प्रसिद्ध सूत्रकार ऋषि जिनके विरचित गृह्यसूत्रमें वैदिककालके विविध धार्मिक तथा सामाजिक अनुष्ठानोंका विस्तृत विवरण मिलता है। गृह्यसूत्रमें महाभारतका प्राचीनतम उल्लेख मिलता है। इसके रचनाकालके बारेमें निश्चय नहीं हो सका है।

आष्टीकी लड़ाई–२० फरवरी १८१८ ई० को ईस्ट इंडिया कम्पनी और पेशवा बाजीराव द्वितीयके बीच तृतीय आंग्ल-मराठा युद्ध (१८१७–१८) के दौरान हुई। इस लड़ाईमें पेशवाकी सेना हार गयी और उसका योग्य सेनापति गोखले मारा गया। इस पराजयके फलस्वरूप पेशवाने जून १८१८ ई० में आत्म-समर्पण कर दिया।

आसफउद्दौला (१७७५–९७ ई०)–अवधके नवाब शुजाउद्दौलाका बेटा और उत्तराधिकारी था। वह एक अयोग्य शासक था जिसने ईस्ट इंडिया कम्पनीसे फैजाबादकी सन्धि करके कम्पनीको ७४ लाख रुपये वार्षिक इस शर्तपर देना स्वीकार कर लिया कि कम्पनी अपनी दो रेजीमेण्ट फौज अवधमें उसके राज्यकी सुरक्षाके लिए रखेगी। नवाबका वित्तीय प्रबन्ध बहुत दोषपूर्ण था और शीघ्र ही उसपर बकायाकी रकम बहुत बढ़ गयी। १७८१ ई० में जब ईस्ट इंडिया कम्पनी और मराठोंके बीच लड़ाई चल रही थी उस समय कम्पनीके गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्सने नवाबसे बकाया रकमकी माँग की। नवाबने बकाया रकम बेबाक करनेमें तबतक अपनी असमर्थता प्रकट की जबतक उसे अपने बाप मरहूम नवाब शुजाउद्दौला द्वारा छोड़ी गयी दौलत न दिला दी जाय जो उसकी माँ और दादीके कब्जेमें थी। वारेन हेस्टिंग्सने अवधकी बेगमों (दे०) को आदेश दिया कि वे फैजाबादसे अपने महलसे बाहर न निकलें। उसने उनके महलके ख्वाजा सरा आदिको इतनी यातनाएँ दीं कि बेगमोंने अन्तमें उसकी बात मानकर रुपया दे दिया। इस काण्डको 'अवधकी बेगमोंकी लूट'की संज्ञा दी जाती है। नवाब आसफउद्दौलाने इस प्रकार कम्पनीके पदाधिकारियोंसे मिलकर अपनी माँ और दादीको जिस प्रकार अपमानित कराया उससे उसकी बहुत बदनामी हुई। अवधका १९ सालतक कुशासन

करनेके बाद १७९७ ई० मे आसफउद्दौलाकी मृत्यु हो गयी।

आसफ खा–बादशाह अकबर (१५५६–१६०५ ई०) के शासनकालके प्रारम्भमे कडाका सूबेदार था। १५६४ ई० मे उसने अकबरके आदेशसे गोडवानाका राज्य जीता जो आधुनिक मध्य प्रदेशके उत्तरी भागमे था। उसने गोडवानाकी शासिका रानी दुर्गावती और उसके नाबालिग पुत्र राजा वीर नारायणको हराया। कुछ समयतक आसफ खॉने नये विजित क्षेत्रका प्रशासन चलाया लेकिन बादमे वहॉसे उसका तबादला कर दिया गया। १५७६ ई० मे उसे राजा मानसिहके साथ उस मुगल सेनाका सेनापति बनाकर भेजा गया जिसने राणाप्रतापको हल्दीघाटीके युद्धमे अप्रैल १५७६ मे पराजित किया।

आसफ खा–बादशाह अकबरके शासनकालमे फारससे भारत आनेवाले मिर्जा गियासवेगका पुत्र और मेहरुन्निसाका भाई था जो बादशाह जहॉगीर (१६०५–२७ ई०) की मलका नूरजहॉके नामसे अधिक प्रख्यात है। आसफ खॉ शाही मुलाजमतमे था और मुगल दरबारका एक प्रमुख ओहदेदार बन गया था। आसफ खॉकी बेटी मुमताजमहल बादशाह जहॉगीरके तीसरे बेटे शाहजादा खुर्रमको ब्याही थी जो शाहजहॉके नामसे प्रख्यात है। १६२७ ई० मे जहॉगीरकी मौतके बाद आसफ खॉने नूरजहॉके उस षड्यत्रको विफल कर दिया जिसके द्वारा वह जहॉगीरके सबसे छोटे बेटे शहरयारको बादशाह बनाना चाहती थी। शहरयारको नूरजहॉकी बेटी ब्याही थी। आसफ खॉने शाहजहॉको बादशाह बनानेमे सफलता प्राप्त की। बादशाह शाहजहॉने तख्तपर बैठनेके बाद अपने ससुर आसफ खॉको सल्तनतका वजीर बना दिया जिस पदपर वह मृत्युपर्यंत बना रहा।

आसफजाह (चिन किलिच खा)–मुगल अमीरोमे तूरानी पार्टीका सरदार था। तूरानी मध्य एशियाके निवासी थे और मुगल बादशाहोके दरबारमे उच्च पदोपर नियुक्त थे। आसफजाहका पूरा नाम मीर कमरुद्दीन चिन किलिच खॉ था। उसका बाप गाजीउद्दीन फीरोज खॉ जग औरगजेबके शासनकालमे भारत आया था और शाही मुलाजमतमे उच्च पदोपर नियुक्त किया गया था। मीर कमरुद्दीन जब १३ वर्षका था तभी शाही मुलाजमतमे दाखिल हुआ। जल्दी ही उसने तरक्की की और उसे चिन किलिच खॉकी उपाधि मिली। औरगजेबकी मृत्युके समय वह बीजापुरमे शाही सेनाका सेनापति था। औरगजेबके बेटोमे उत्तराधिकारके लिए जो युद्ध हुए, वह उनसे दूर रहा। जब औरगजेबका बेटा और उत्तराधिकारी बादशाह बहादुरशाह (१७०७–१२ ई०) गद्दीपर बैठा तो उसने चिन किलिच खॉको अवधका सूबेदार बनाया और उसको भी उसके बापका गाजीउद्दीन फीरोज जग खिताब दिया। बादमे १७१३ ई० मे बादशाह फर्रुखसियर (१७१३–१९ ई०) ने उसे दक्खिनका सूबेदार बनाया और निजामुल्मुल्कका खिताब दिया। दक्षिणमे बादशाहके प्रतिनिधिके रूपमे उसने मराठोकी बढती हुई ताकतको रोकनेकी कोशिश की, लेकिन शीघ्र ही दिल्ली दरबारके प्रभावशाली सैयद बधुओ (दे०) से, जिनके हाथमे बादशाहकी नकेल थी, उसकी अनबन हो गयी। सैयद बधुओने निजामुल्मुल्कका तबादला पहले मुरादाबाद और फिर मालवा कर दिया जहॉ उसने सैनिक शक्ति बटोरना शुरू कर दिया। इससे सैयद बधुओसे शत्रुता और बढ गयी। अन्तत निजामुल्मुल्कने सैयद बधुओको पराजित कर दिया और उन्हे मरवा डाला। निजामुल्मुल्कको १७२० ई० मे फिरसे दक्खिनमे बादशाहका प्रतिनिधि बना दिया गया। १७२१ ई० मे बादशाह मुहम्मदशाह (१७१९–४८ ई०) ने उसे अपना वजीर बनाया लेकिन उसने १७२३ ई० मे यह पद छोड दिया और १७२४ ई० मे पुन बादशाहके प्रतिनिधिके रूपमे दक्खिन लौट गया। बादशाह मुहम्मद शाहने उसे इस पदसे जबरन हटानेकी कोशिश की, लेकिन उसमे बादशाहको सफलता नही मिली। तब उसने निजामुल्मुल्कको दक्षिणमे अपना प्रतिनिधि मान लिया और उसे आसफजाहका खिताब दिया। अब वह दक्षिणका लगभग स्वतत्र शासक हो गया और उसने हैदराबादके निजाम वशकी स्थापना की। आसफजाहने अपने राज्यमे अच्छा शासन प्रबध किया। पेशवा बाजीराव प्रथम (१७२०–४० ई०) दक्षिणमे उसका शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी था। अत उसने बाजीराव प्रथमके विरोधी मराठा सेनापति त्र्यम्बकराव दाभाडेका समर्थन किया, लेकिन १७३१ ई० मे दाभाडेकी पराजय और मृत्युके बाद आसफजाहने बाजीराव प्रथमसे सुलह कर ली और उसे उत्तरकी ओर बढनेकी खुली छूट दे दी। किन्तु निजामने १७३७ ई० मे इस सन्धिको तोड दिया और बादशाह मुहम्मदशाहके बुलावेपर वह उत्तरमे पेशवा बाजीराव प्रथमके प्रसारको रोकनेके लिए दिल्ली पहुँचा। लेकिन पेशवा बाजीराव प्रथमने निजामुल्मुल्कको भोपालके निकट लडाईमे पराजित कर दिया और इस शर्तपर सन्धि कर ली कि मालवा और नर्मदासे चम्बलतकके क्षेत्रपर उसका प्रभुत्व स्वीकार कर लिया जाय। १७३९ ई० मे जब नादिर-

शाहने दिल्लीपर हमला किया तो दिल्लीसे दूर होनेके कारण आसफजाह विनाशसे बच गया और इस वजहसे उसने दक्षिणमें अपनी स्थिति और मजबूत कर ली। १७४८ ई० में ९१ वर्षकी उम्रमें उसकी मृत्यु हुई।

आसाम—भारतका पूर्वोत्तर राज्य जिसका विस्तार पश्चिममें सकोष नदीसे पूर्वमें सदियानक है। यह राज्य ब्रह्मपुत्र नदकी देन है। ब्रह्मपुत्र नदने उत्तरमें हिमालय और दक्षिणमें आसामकी पहाड़ियोंके बीचमें बहते हुए एक उपजाऊ घाटी बना दी है जो आजकल आसाम कहलाती है। इसे महाभारतमें प्रागज्योतिष और पुराणोंमें कामरूप कहा गया है। मुसलमान इतिहासकारोंने इसे कामरूप लिखा है। जबसे इस क्षेत्रको अहोम (दे०) लोगोंने जीतकर अपने अधिकारमें कर लिया तबसे यह क्षेत्र आसामके नामसे पुकारा जाने लगा है। इस क्षेत्रमें चारों ओरसे लोग आसानीसे प्रवेश कर सकते हैं इसीलिए सभी पड़ोसी क्षेत्रोंके बुभुक्षित और साहसी लोग सभी युगोंमें यहाँ आकर बसते रहे। इसी कारण यहाँकी आबादीमें बहुत अधिक रक्तका मिश्रण हुआ। यहाँ आस्ट्रिक, मंगोल और द्राविड जातियोंके लोग भी मिलते हैं और आर्य जातिके लोग भी। आसामकी आधुनिक आबादी बहुत मिलीजुली है और वहाँ अनेक भाषाएँ और बोलियाँ बोली जाती हैं जिनमें असमी और बंगला भाषाकी अपनी लिपियाँ हैं। दूसरी बोलियाँ और भाषाएं रोमन लिपिमें लिखी जाती हैं और उनका अपना कोई साहित्य नहीं है। आसामका इतिहास मोटे तौरसे चार कालोंमें विभाजित किया जा सकता है—पौराणिक काल, प्रारम्भिक काल, अहोम काल और आधुनिक काल। पौराणिक कालमें आसाममें अनार्य लोगोंका राज्य था जिन्हें दानव और असुर कहा जाता था। इसी कालमें आर्य लोग उत्तर पश्चिमके स्थल मार्गसे यहाँ आये। प्रारम्भिक काल ईसाकी चौथी शताब्दीमें आरम्भ होता है और आसामका उल्लेख कामरूपके नामसे द्वितीय गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त (३३०-८० ई०) के इलाहाबादके स्तम्भ-लेखमें आया है। यह काल १३वीं शताब्दीतक जारी रहा जब आसामपर पूर्वकी ओरसे अहोम जातिका और पश्चिमकी ओरसे मुसलमानोंका हमला हुआ। मुसलमानोंके आक्रमणोंको विफल कर दिया गया जिसके फलस्वरूप आसामके इतिहासमें मुसलमानी शासन-काल नहीं मिलता। अहोम लोगोंने इस क्षेत्रको जीत लिया और यहाँ करीब ६०० वर्षतक राज्य किया। उनके बाद बर्मी लोगोंने आसामको जीत लिया और यहाँ थोड़े समय तक राज्य किया। १८२६ ई० में आसामको भारतके ब्रिटिश राज्यका हिस्सा बना लिया गया। उसके बाद आसामके इतिहासका आधुनिक काल आरम्भ हुआ और वह राजनीतिक और प्रशासनिक दृष्टिसे भारतका आन्तरिक भाग बन गया, हालांकि सांस्कृतिक दृष्टिसे वह सदैव भारतका एक अंग रहा। पौराणिक कालका सबसे अधिक विख्यात राजा नरकासुर था जिसके सम्बन्धमें कहा जाता है कि वह बिहारके मिथिला नगरसे प्रागज्योतिषमें राज्य करने आया था। इसलिए यह माना जा सकता है कि उसके राज्य-कालमें आसामकी गणना आर्य-क्षेत्रमें होने लगी। नरकका नाम आसामके प्राचीन इतिहाससे, विशेषरूपसे कामाख्या देवीकी पूजा और गोहाटीके निकट नीलाचलपर उसके मंदिरके निर्माणसे जुड़ा हुआ है। नरकासुरका पुत्र भागदत्त महाभारतमें महान योद्धा बताया गया है जिसने कुरुक्षेत्र युद्धमें कौरवोंकी ओरसे भाग लिया और मारा गया। उसका उत्तराधिकारी वज्रदत्त था और कहा जाता है कि वज्रदत्तके उत्तराधिकारियोंने कामरूपपर तीन हजार वर्षतक राज्य किया जो अतिशयोक्ति मालूम पड़ती है। ईसाकी चौथी शताब्दीमें कामरूपमें पुष्यवर्मा राज्य करता था। पुष्यवर्मा एक ऐतिहासिक व्यक्ति है जिसका उल्लेख भास्करवर्मा (दे०) (६०४-६४९ ई०) के निधानपुर दानपत्रमें १३ राजाओंके एक राजवंशके संस्थापकके रूपमें हुआ है। इन १३ राजाओंमें समुद्रवर्मा, बालवर्मा, कल्याणवर्मा, गणपतिवर्मा, महेन्द्रवर्मा, नारायणवर्मा, महभूतिवर्मा, अथवा भूतिवर्मा, चन्द्रमुखवर्मा, स्थितवर्मा, सुस्थितवर्मा, सुप्रतिष्ठितवर्मा, और भास्करवर्मा शामिल है। पुष्यवर्मा कामरूपका उस समय राजा था जब द्वितीय गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त (३३०-३८० ई०) ने वहाँ आक्रमण किया और इलाहाबादके स्तम्भ लेखके अनुसार पुष्यवर्माने समुद्रगुप्तके सामने आत्म-समर्पण कर दिया। भास्कर वर्मा सम्राट हर्षवर्द्धनका सम-सामयिक था। इस बातका उल्लेख बाणके हर्ष-चरित्रमें आया है और ह्युएन-त्सांगके यात्रा-वर्णनसे भी उसका पता चलता है। भास्कर वर्माका देहान्त ६४९ ई० में हर्षकी मृत्युके कुछ वर्षों बाद हुआ। उसके बाद कामरूप राज्य सातवीं शताब्दीके मध्यकालमें म्लेच्छ राजा सालस्तम्भके द्वारा स्थापित राजवंशके हाथमें चला गया। वह अपनी राजधानी प्रागज्योतिषपुर (गौहाटी) से हटाकर ब्रह्मपुत्रके किनारे हरूपेश्वर नामक स्थानपर ले गया। यह स्थान आधुनिक तेजपुरके निकट था। इस राजवंशके १३ राजा हुए

जिनमे विजय, पालक, कुमार, वज्रदत्त, हर्ष, बाल वर्मा, चक्र, प्रालम्भ, हर्जर, वनमाल, जयमाल, बालवर्मा और त्याग सिह शामिल है। इस राजवशने सातवी शताब्दीके मध्यमे १०वी शताब्दीके मध्यतक राज्य किया। त्याग सिह नि सन्तान मर गया। ब्रह्मपाल नामक एक व्यक्ति था जो अपनेको नरकासुरका वशज मानता था। उसे दसवी शताब्दीके उत्तरार्धमे कामरूपका राजा चुन लिया गया। ब्रह्मपालने कामरूपमे तीसरे हिन्दू राजवशकी स्थापना की। यह पाल राजवश बगालके राजवशसे भिन्न था और इसने यहाँ दसवी शताब्दीके उत्तरार्धसे १२वी शताब्दीके आरम्भतक राज्य किया। इस राजवशके रत्नपाल, इन्द्रपाल, गोपाल, हर्षपाल, धर्मपाल और जयपाल ६ राजा हुए। अन्तिम राजा जयपालको बगालके राजा रामपालने गद्दीसे हटा दिया और कामरूपमे तिग्य देवको अपना सामत राजा नियुक्त किया जिसने शीघ्र ही रामपालके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। अतएव बगालके राजा कुमारपालका सेनापति वैद्यदेव वहाँका राजा बनाया गया। लेकिन वैद्यदेवने भी शीघ्र ही बगालके राजाके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और उसके बाद करीब एक शताब्दीसे अधिक समय तक कामरूपमे अराजकता रही। इस कालमे बगालका कोई सेनवशी राजा जब-तब कामरूपपर चढाई करके वहाँके राजाओको जीत लेता था। इसी बीच इख्तियारुद्दीनने जो बख्तियार खिलजीके नामसे प्रसिद्ध है, बगालके सेनवशका तख्ता उलट दिया। बख्तियार खिलजीके नेतृत्वमे ११९८ ई० मे बगालपर मुसलमानोका पहला आक्रमण हुआ। उसने बगालकी विजयके बाद १२०५ ई० मे आसामपर भी चढाई की। गौहाटीके निकट ब्रह्मपुत्र नदीके उसपार स्थित कनाइ-बारसी बेर नामक गाँवमे एक चट्टानपर सस्कृतमे दो पक्तियोका एक लेख अकित है जिसमे कहा गया है कि शक सवत ११२७ (१२०५ ई०) के चैत्र मासकी त्रयोदशीको जिन तुर्कोने कामरूपपर आक्रमण किया था उनको नष्ट कर दिया गया। इस शिलालेखमे कामरूपके उस वीर योद्धाका नाम नहीं दिया है जिसने मुसलमानोके आक्रमणको विफल कर दिया। इसके बाद हमे कामरूपके इतिहासकी विशेष जानकारी नहीं मिलती है और १३वी शताब्दीसे वहाँका इतिहास अधकारमे है। यदि मुसलमानोने १२०५ ई० मे आसामपर पश्चिमकी ओरसे एक विफल आक्रमण किया तो १२२८ ई० मे पूर्वी दिशासे अहोम लोगोने उसपर हमला किया और उन्हे उसपर अपना अधिकार जमानेमे सफलता मिल गयी। दोनो ओरमे आक्रमण होनेपर कामरूपका राज्य खण्डित होकर अनेक छोटे-छोटे राज्योमे बँट गया। एकदम पश्चिममे कामतापुर राज्य करतोयासे सकोष नदीतक विस्तृत था और उसके पूर्वमे कामरूप राज्य ब्रह्मपुत्रके उत्तरी तटपर बर नदीसे सुवर्ण श्रीतक विस्तृत था जिसपर बारह भुइयाँ (भूमिपति) राज्य करते थे। सुवर्णश्रीके पूर्वमे ब्रह्मपुत्रके उत्तरी तटवर्ती क्षेत्रमे चुटिया राज्य था और उसके दक्षिण तटवर्ती क्षेत्रमे काचारी राज्य था। उसके दक्षिण-पश्चिममे खासी लोगोका जयन्तिया राज्य था। कामरूपका इस प्रकार छोटे-छोटे राज्योमे बँटा होनेके कारण मुसलमानो और अहोम आक्रमण-कारियोको उसपर अधिकार-कर लेनेमे आसानी रही। उन लोगोने करीब-करीब एक साथ पश्चिम तथा पूर्व दिशासे उसपर आक्रमण किया। पश्चिममे कामतापुर और कामरूपके राजाओने मुसलमानी आक्रमणोको १४९८ ई० तक रोका। उस वर्ष बगालके हुसेनशाहने कामतापुर और कामरूप राज्योको बर नदीतक जीत लिया और अपने लडकेको विजित क्षेत्रका सूबेदार बनाकर हाजोमे रख दिया। लेकिन १६वी शताब्दीके आरम्भमे कोच जातिके विश्व सिह नामक एक सरदारने आधुनिक आसामके पश्चिमी भागमे एक हिन्दू राज्यकी स्थापना कर ली। उसने बारह भुइयोको परास्तकर अपनी राजधानी कूच बिहारमे स्थापित की। उसने मुसलमानोको करतोया नदीके उसपार भगा दिया और आधुनिक आसामके पश्चिमी भागमे जिनमे ग्वालपाडा, कामरूप और दारग जिले आते है, हिन्दू राज्यकी फिरसे स्थापना की। कोच राजाओने बगालसे आनेवाले मुसलमान आक्रमणकारियोसे दीर्घ कालतक युद्ध किया। अतमे १५९६ ई० मे उन्हे मुगल बादशाह अकबरका सरक्षण स्वीकार कर लेना पडा। इस प्रकार केवल ग्वालपाडा जिला ही नही वरन् कामरूप जिलेका बहुत बडा भाग मुसलमानोके नियत्रणमे आ गया। लेकिन अहोम राजाओने, जिन्होने आसामके पूर्वी क्षेत्रमे अपना राज्य स्थापित कर लिया था, मुसलमानोसे कामरूप जिला फिरसे छीन लिया। प्रथम अहोम राजा सुकफ था जिसने १२२८ ई०मे आसामपर आक्रमण किया और शिवसागरपर अधिकार करके वहाँ अपना राजवश स्थापित किया। इस राजवशने ब्रह्मपुत्र घाटीमे कामरूप जिलेतक करीब छह शताब्दी (१२२८ ई०से १८२४ ई०) तक राज्य किया। इस राजवशके ३९ अहोम राजा हुए जिनमेसे १७वे राजा सुसेगफने अपना नाम सस्कृतमे

प्रतापसिंह रखा। उसके उत्तराधिकारियोंने भी संस्कृत नाम अपनाये और उनमें प्रमुख जयध्वज सिंह, चक्रध्वज सिंह, उदयादित्य सिंह, रामध्वज सिंह, गदाधर सिंह, रुद्रसिंह, शिव सिंह, प्रमत्त सिंह, राजेश्वर सिंह, लक्ष्मी सिंह, गौरीनाथ सिंह, कमलेश्वर सिंह, चन्द्रकान्त सिंह, पुरन्दर सिंह और जोगेश्वर सिंह थे। अहोम राजाओंकी आपसी फूट, विशेष रूपसे बड़ागुहाई (प्रधान मंत्री) पूर्णानन्द और गौहाटीके बड़ फूकन (गवर्नर) बदनचन्द्रकी आपसी फूटके कारण, बदनचन्द्रने वर्मी सरकारको आसाम-विजयके लिए अपनी सेना भेजनेका निमन्त्रण दिया। १८१६ ई०में वर्मी सेना आसाममें घुस आयी, किन्तु वह १८१९ ई० तक उसपर पूरी तरह कब्जा नहीं कर पायी और उसके बाद १८२४ ई० तक आसाममें वर्मी शासन रहा। वर्मी शासकोंने बड़ी सख्ती बरती और अत्याचार किये जिससे अहोम सरदारोंमें असंतोष फैल गया। भारतके अंग्रेज शासकोंको भी यह पसन्द नहीं था कि उनके राज्य-की सीमाओंपर वर्मी राज्यका विस्तार हो। उस समयके अहोम राजा चन्द्रकान्तने कई बार वर्मी आक्रमणकारियोंको आसामसे खदेड़ देनेका प्रयास किया लेकिन उसे सफलता नहीं मिली और अन्तमें वह वर्मी सेना द्वारा कैद कर लिया गया। इसके बाद ही वर्मी लोगों और भारतकी अंग्रेजी सरकारके बीच युद्ध छिड़ गया। यह युद्ध केवल आसाममें ही नहीं वरन् वर्मामें भी हुआ, जिसमें अन्तमें वर्मी लोगोंकी पराजय हुई। उन्हें अंग्रेजोंसे यन्दबकी सन्धि (दे०) (१८२६ ई०) करनी पड़ी जिसके द्वारा वर्मी लोगोंने आसाम और पड़ोसके कछार और मणिपुर जिलोंमें अपना शासन हटा लिया। दक्षिणी आसामके कामरूप, दारांग और नवगांव जिलोंको भी अंग्रेजी राज्यमें मिला लिया गया। इन क्षेत्रोंको बंगालमें मिला लिया गया और उनका प्रशासन डेविड स्काटको सौंप दिया गया जो उस समय बंगालके ग्वालपाड़ा और गारो पहाड़ी जिलेका अधिकारी था। इस प्रकार बंगालके दो जिले आसामके साथ जुड़ गये। उत्तरी आसाम जिसमें आधुनिक शिव-सागर जिला और सदिया और मटकको छोड़कर लखीमपुर जिला सम्मिलित था, पुराने अहोम राजवंशके वंशज पुरन्दर सिंहको सौंप दिया गया। लेकिन पुरन्दर सिंह शासकके रूपमें विफल रहा, इसलिए उसके राज्यको अर्थात् शिवसागर और लखीमपुर जिलोंको दक्षिणी आसाम-के साथ जोड़कर १८३९ ई०में अंग्रेजी शासनके अधीन कर दिया गया। सदिया और मटकको भी, जो पहले दो अहोम सरदारोंको सौंप दिये गये थे, १८४३ ई०में अंग्रेजी शासनमें ले लिया गया और उनको आसामके लखीम-पुर जिलेमें मिला दिया गया। १८७४ ई० तक आसामका प्रशासन बंगाल प्रान्तके अधीन रहा। उस वर्ष आसामके प्रशासनको सुधारनेके उद्देश्यसे उसे बंगाल प्रान्तसे हटाकर चीफ कमिश्नरके अधीन अलग प्रान्त बना दिया गया। उसी समय सिलहट, कछार, ग्वालपाड़ा जिले और गारो पहाड़ियोंका उत्तरी क्षेत्र आसाम राज्यमें मिला दिया गया और काफी बड़ी संख्यामें बंगाली-भाषी लोगोंको आसामका नागरिक बना दिया गया। तब (१८७४ ई०)में आसाम नाम, जो पहले अहोम लोगों द्वारा शासित पांच जिलों—कामरूप, दारांग, नवगांव, शिव सागर और लखीमपुरके लिए प्रयुक्त होता था, सदियासे ग्वालपाड़ातक सारे क्षेत्रके लिए प्रयुक्त होने लगा जिसमें खासी और जयन्तिया पहाड़ी क्षेत्र, सूरमा घाटीके सिलहट और कछार जिलोंके अतिरिक्त बंगालके गारो पहाड़िया तथा ग्वालपाड़ा जिलेमें सम्मिलित थे। इस प्रकार आसामकी मिली-जुली आबादी और अधिक मिश्रित हो गयी और उस क्षेत्रके अन्तर्गत तुलनात्मक दृष्टिसे अधिक पिछड़े पहाड़ी लोगोंके साथ अधिक उन्नत बंगाली-भाषी लोगोंको भी कर दिया गया। आसाममें हालमें भाषा-सम्बन्धी जो उपद्रव हुए उस विवादकी नींव उसी समय पड़ी थी। १९०५ ई०में बंगविभाजनके समय बंगालकी ढाका, चटगांव और राजशाही कमिश्नरियोंको आसाममें मिलाकर पूर्वी बंगाल तथा आसाम नामसे एक नया प्रान्त बना दिया गया और उसका प्रशासन एक अलग लेफ्टिनेन्ट-गवर्नरके अधीन कर दिया गया। छह वर्ष बाद बंग-भंग रद्द कर दिया गया। पूर्वी बंगाल फिरसे पश्चिमी बंगालमें जोड़ दिया गया और आसामको फिरसे चीफ कमिश्नरके अधीन अलग प्रान्त बना दिया गया और उसमें केवल खासी और जयन्तिया पहाड़ी जिलोंको ही नहीं वरन् बंगालके सिलहट, कछार, गारो पहाड़ी और ग्वालपाड़ा जिलोंको शामिल रखा गया। १९१२ ई०में आसामको गवर्नरके अधीन प्रान्त बना दिया गया जिसकी सहायताके लिए कार्यकारिणी परिषद और विधानसभाका भी गठन किया गया। स्वतंत्रता-प्राप्तिके पश्चात् आसाम-के गवर्नरके अधीन प्रान्तका अब राज्य कहा जाता है, किंतु देशके विभाजनके परिणाम-स्वरूप करीमगंज तहसील-को छोड़कर बाकी सिलहट जिला आसामसे निकालकर पूर्वी पाकिस्तानमें मिला दिया गया। इस प्रकार आसाम-के वर्तमान भाषाई विवादकी शुरुआत बहुत कुछ इस प्रान्तको बनानेमें अंग्रेजों द्वारा की गयी गड़बड़ीमें हुई है। अंग्रेजोंने प्रशासनकी सुविधा अथवा तात्कालिक आवश्यकताओंको

ध्यानमे रखकर इस प्रातका निर्माण किया जिसमे अब परिवर्तन करना यदि असम्भव नही तो कठिन अवश्य हो गया है। (राज्योंके पुनर्गठनके फलस्वरूप आसामकी सीमाओमे काफी उलटफेर हो गया है। नागा पहाडी जिलेको, जो पहले आसाम प्रातका भाग था, अब नागालैड नामके अलग राज्यमे शामिल कर दिया गया है। खासी तथा जयतिया पहाडी तथा गारो पहाडी जिलोको अब आसामसे अलग करके मेघालय नामसे अलग राज्य बना दिया गया है। भूतपूर्व मिजो पहाडी जिलेको भी अब मिजोराम नामसे अलग राज्य बना दिया गया है।

अब भारतके पूर्वाचलमे निम्न राज्य हे—आसाम, नागालैड, मेघालय, मणिपुर तथा त्रिपुरा तथा मिजोराम एव अरुणाचल प्रदेश (भूतपूर्व उत्तर-पूर्व सीमा एजेमी)के केन्द्र शासित क्षेत्र। –सपादक)

(कलिकपुराण, योगिनी तत्र, काकटी—मदर गाडेस कामाख्या एड अगामीज, इट्स फार्मेशन एड डेवलपमेन्ट, के० एल० बरुआ—हिस्ट्री आफ कामरूप, पी० भट्टाचार्य—कामरूप शासनावली, बी० के० बरुआ—कल्चरल हिस्ट्री आफ आसाम, एन० भट्टाचार्य—डेट आफ दि निधानपुर कापर प्लेट, जनरल आफ इडियन हिट्री खड ३१, अगस्त १९५३ पृष्ठ १११–१७, सर एडवर्ड गेट—हिस्ट्री आफ असाम; गोलपचन्द्र बरुआ—अहोम—बुरंजी; एस० के० भुइया—बुरंजीज एड एंग्लो-असामी रिलेशंस।)

आस्टेंड कम्पनी—भारतसे व्यापार करनेके लिए बेलजियन लोगो द्वारा स्थापित। इसकी स्थापना अन्तरराष्ट्रीय पूजीसे हुई थी ओर आस्ट्रियाके सम्राट् चार्ल्स छठेने १७२२ ई० मे कम्पनीको आज्ञापत्र प्रदान किया था। डच, अग्रेजी तथा फ्रासीसी ईस्ट इडिया कम्पनियोने तथा उनकी सरकारोने इस कम्पनीका तीव्र विरोध किया था। इस तीव्र विरोधके कारण सम्राट् चार्ल्स छठेने १७३१ ई० मे कम्पनी बद करवा दी थी। परन्तु कानूनी तौरमे आस्टेड कम्पनी १७९३ ई० तक वर्तमान रही।

आस्ट्रियाके उत्तराधिकारका युद्ध—यूरोपमे १७४० ई० मे शुरू हुआ और १७४८ ई० तक चला। उस वर्ष एक्स-ला-चेपेलकी सन्धिसे वह खत्म हो गया। इस युद्धमे इग्लैण्ड और फ्रासने दो विरोधी पक्षोका समर्थन किया और भारतमे अग्रेजोकी ईस्ट इडिया कम्पनी ओर फ्रासीसी ईस्ट इडिया कम्पनीने कर्नाटकमे एक दूसरेके विरुद्ध युद्ध छेड दिया। पाडिचेरीके फ्रासीसी गवर्नर डूप्लेने फ्रासीसी हितोकी रक्षाके निमित्त मद्रासकी अग्रेजोकी बस्तीपर अधिकार कर लिया। मद्रास और पाडिचेरी दोनो कर्नाटकके नवाब अनवरुद्दीन (दे०) के क्षेत्रमे स्थित थे। नवाबकी सेनाने अग्रेजोकी रक्षाके लिए जब मद्रास-का घेरा डाला तो फ्रासीसी सेनाने उसे पीछे खदेड दिया। सेट थोम की लडाईमे नवाबकी सेना पुन पराजित हुई। यूरोपमे एक्स-ला-चेपेलकी सन्धिके बाद शान्ति स्थापित हो गयी ओर उसके बाद इग्लैण्ड और फ्रासने एक दूसरे-के विजित क्षेत्रोको लौटा दिया। इसी आधारपर मद्रास अग्रेजोको वापस मिल गया। लेकिन आस्ट्रियाके उत्तरा-धिकारके युद्धके परिणामस्वरूप पहले आग्ल-फ्रासीसी युद्धका (जिसे कर्नाटक युद्ध भी कहते हे) इतिहासपर भारी प्रभाव पडा। इस युद्धका पहला परिणाम यह हुआ कि कर्नाटकके नवाब और उसके स्वामी हैदराबादके निजामकी कमजोरी प्रकट हो गयी जो अपने राज्यमे बसे विदेशियोको अपनी सार्वभौम सत्ताका सम्मान करने तथा शान्ति बनाये रखनेके लिए मजबूर नही कर सके। दूसरे, कर्नाटकके नवाबकी अपेक्षाकृत बडी सेनाको छोटी-सी फ्रासीसी सेनाने दो बार पराजित कर दिया। फ्रासीसी सेनामे फ्रासीसी सैनिकोके साथ भारतीय सैनिक भी थे। इन पराजयोमे प्रकट हो गया कि यूरोपीय ढगसे सगठित, प्रशिक्षित तथा शस्त्रास्त्रोसे सज्जित सेना भारतीय सेनासे श्रेष्ठ होती हे। तीसरे, इस लडाईमे फ्रासीसी और अग्रेज दोनो सेनाओमे भारतीय सिपाहियो-को भर्ती किया गया था और फ्रासीसियोने तो भारतीय सिपाहियोका प्रयोग देशी रजवाडोकी सेनाओसे लडने तकमे किया था। इस सबकको अग्रेजोने भली भाँति सीख लिया और बादमे भारतीय सिपाहियोकी सहायतासे ही भारतको विजय किया।

आहवमल्ल—का विरुद कल्याणीके चालुक्यवशी राजा सोमेश्वर प्रथम (१०५३–६८ ई०) ने धारण किया था। उसने चोल राजा राजाधिराजको कोप्पमके युद्धमे पराजित करके, चालुक्योकी शक्तिका पुनरुद्धार किया। उसने मालवाकी धारा नगरी और सुदूर दक्षिणकी काची नगरीपर भी कब्जा कर लिया। अन्तमे एक असाध्य ज्वर-से पीडित होनेपर उसने शिवमत्रका जाप करते हुए तुग-भद्रा नदीमे छलाग लगाकर अपना प्राणोत्सर्ग कर दिया।

इ

इंग्लिश कम्पनी ट्रेडिंग टु दि ईस्ट इण्डीज–१६६८ ई० मे स्थापित । यह ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी प्रतिद्वन्द्वी कम्पनी थी । दोनोमे जबर्दस्त व्यापारिक प्रतियोगिता रहती थी । फलत ईस्ट इण्डिया कम्पनी लगभग बर्बाद हो गयी । अन्तमे १७०२ ई० मे दोनो कम्पनियोके बीच समझौता हो गया और दोनोन आपसमे एकीकरण कर लिया । इसके अनुसार नयी कम्पनीका नाम पूर्वमे व्यापार करनेवाली "यूनाइटेड कम्पनी आफ मर्चेण्ट्स आफ इंग्लैण्ड" पडा, लेकिन सामान्य जनोमे वह ईस्ट इंडिया कम्पनीके नामसे ही विख्यात हुई ।

इंडियन एसोसिएशन–स्थापना जुलाई १८७६ ई०मे कलकत्तामे । इसका उद्देश्य भारतमे शक्तिशाली जनमतका निर्माण करना तथा समान राजनीतिक हितो और महत्त्वाकाक्षाओके आधारपर विविध भारतीय जातियो तथा वर्गोका एकीकरण था । अपने जन्मकालमे इस एसोसिएशनने देशके सामने उपस्थित राजनीतिक प्रश्नोपर भारतीय जनमत सगठित तथा अभिव्यक्त करनेका प्रयास किया । इस एसोसिएशनकी स्थापना सुरेन्द्रनाथ बनर्जी (दे०) ने की थी, जो उस समय उग्रवादी समझे जाते थे । परतु यह एसोसिएशन वास्तवमे नरम दल वालोका सगठन बना रहा और आज भी इसका यही रूप है ।

इंडियन एसोसिएशन फार दि कल्टीवेशन आफ साइन्स–प्रसिद्ध होम्योपैथ डा० महेन्द्रलाल सरकारके दानसे १८७६ ई० मे कलकत्तामे स्थापना । भारतीयोको वैज्ञानिक-शोधकी सुविधाएँ प्रदान करनेवाला यह पहला सस्थान था । सर सी० वी० रमनने अपना प्रसिद्ध किरण-सम्बन्धी अधिकाश शोध कार्य इसी सस्थानमे किया ।

इंडियन कौंसिल ऐक्ट–पहली बार १८६१ ई० मे पारित । दूसरा ऐक्ट १८९२ ई० मे और तीसरा १९०९ मे पारित हुआ । ये ऐक्ट (कानून) भारतकी प्रशासनिक व्यवस्थाका क्रमिक विकास सूचित करते है, जिनके द्वारा प्रशासनमे भारतीय जनताको भी कुछ राय देनेकी सुविधा प्रदान की गयी । १८६१ ई० के इंडियन कौसिल ऐक्टके द्वारा गवर्नर-जनरलकी एक्जीक्यूटिव कौसिलमे पाँचवे सदस्यकी नियुक्ति की गयी और कौसिलके प्रत्येक सदस्यको विभिन्न विभागोकी जिम्मेदारी सौप देनेकी प्रथा आरम्भ हुई । ऐक्टके द्वारा लेजिस्लेटिव कौसिलका पुनर्गठन किया गया और अतिरिक्त सदस्योकी सख्या छहसे बढाकर बारह कर दी गयी । इन बारह सदस्योमेसे आधे गैरसरकारी होते थे ।

१८९२ ई० के इंडियन कौसिल ऐक्टके द्वारा इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौसिलके सदस्योकी सख्या बारहसे बढाकर सोलह कर दी गयी और उनके मनोनयनकी प्रथा इस प्रकार बना दी गयी कि वे विविध वर्गो तथा हितोका प्रतिनिधित्व कर सके । यद्यपि विधान-मडलोमे सरकारी सदस्योका बहुमत कायम रखा गया, तथापि सदस्योकी नियुक्तिमे यदि निर्वाचन प्रणालीका नही, तो प्रतिनिधित्व प्रणालीका श्रीगणेश अवश्य कर दिया गया । विधान मडलोको वार्षिक बजटपर बहस करने तथा प्रश्न पूछनेके व्यापक अधिकार प्रदान किये गये । १९०९ ई० का इंडियन कौसिल ऐक्ट मार्ले-मिण्टो सुधारो (दे०) पर आधृत था । इस ऐक्टके द्वारा इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौसिल तथा प्रातीय विधान-मडलोके सदस्योकी सख्या और बढा दी गयी । ऐक्टके अनुसार विधानमडलोंके गैरसरकारी सदस्योकी सख्या भी बढ गयी और उनमेसे कुछ सदस्योके अप्रत्यक्ष रीतिसे निर्वाचित किये जानेकी व्यवस्था हुई । ऐक्टके द्वारा मुसलमानोके लिए पृथक् साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वकी प्रथा शुरू की गयी और इस प्रकार भारतके विभाजनका बीज-वपन कर दिया गया ।

इंडियन नेशनल कान्फ्रेंस–२८, २९ तथा ३० दिसम्बर १८८३ ई० को कलकत्तामे इंडियन एसोसिएशनके तत्त्वावधानमे आयोजित । यह पहला सम्मेलन था, जिसमे सारे भारतके गैरसरकारी प्रतिनिधियोने भाग लिया और सार्वजनिक प्रश्नोपर विचार-विमर्श किया । इसीके नमूनेपर दो साल बाद भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसका गठन किया गया । इस सम्मेलनमे औद्योगिक तथा तकनीकी शिक्षा, इंडियन सिविल सर्विसमे भारतीयोको अधिक स्थान देने, न्यायपालिका और कार्यपालिकाके कार्योको पृथक् करने, प्रतिनिधित्वपूर्ण सरकारकी स्थापना करने तथा शस्त्र कानूनके सम्बन्धमे विचार किया गया । इंडियन नेशनल कान्फ्रेसका द्वितीय अधिवेशन भी कलकत्तामे १८८५ ई० मे हुआ । यह पहले अधिवेशनसे अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण था । इसमे सामयिक राजनीतिक प्रश्नोपर विचार किया गया । १८८५ ई० के बाद इंडियन नेशनल कान्फ्रेसका विलयन भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसमे कर दिया गया, जिसका पहला अधिवेशन १८८५ ई० मे हुआ ।

इंदौर–अट्ठारहवी शताब्दीके उत्तरार्द्धमे मल्हारराव होल्कर (दे०) द्वारा स्थापित राज्यकी राजधानी ।

इसाफकी जंजीर–मुगल सम्राट जहाँगीर द्वारा १६०५ ई० मे सिंहासनारूढ होनेके तत्काल बाद लटकवायी गयी । इसमे ६० घण्टियाँ थी । यह आगराके किलेमे शाहबुर्जा

और यमुनातटपर स्थित एक पाषाणस्तम्भके बीच स्थित थी। इस जजीरको खीचनेसे सभी घण्टियाँ बज उठती थी। इसके द्वारा जहाँगीर की प्रजाका छोटेसे छोटा प्राणी भी अपनी शिकायत सीधे सम्राट् तक पहुँचा सकता था। इससे प्रजाके प्रति जहाँगीरके प्रेम और उसकी न्यायप्रियताका सकेत मिलता है।

इकबाल, सर मुहम्मद–(१८७६–१९३८ ई०)–आधुनिक भारतीय प्रसिद्ध मुसलमान कवि। इनकी रचनाएँ मुख्य रूपसे फारसीमे है और अग्रेजीमे केवल एक पुस्तक है, जिसका शीर्षक है 'सिक्स लेक्चर्स आन दि रिकन्सट्रक्शन आफ रिलीजस थाट' (धार्मिक चिंतनकी नवव्याख्याके सम्बन्धमे छह व्याख्यान)। उनका मत था कि इसलाम रूहानी आजादीकी जद्दोजहदके जज्बेका अलमबरदार है और सभी प्रकारके धार्मिक अनुभवोका निचोड है। वह कर्मवीरताका एक जीवत सिद्धात है जो जीवन-को सोद्देश्य बनाता है। यूरोप धन और सत्ताके लिए पागल है। इसलाम ही एकमात्र धर्म है जो सच्चे जीवन-मूल्योका निर्माण कर सकता है और अनवरत सघर्षके द्वारा प्रकृतिके ऊपर मनुष्यको विजयी बना सकता है। उनकी रचनाओने भारतके मुसलमान युवकोमे यह भावना भर दी कि उनकी एक पृथक् भूमिका है। इकबालने ही सबसे पहले १९३० ई० मे भारत सिंधके भीतर उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रात, बलूचिस्तान, सिंध तथा कश्मीरको मिलाकर एक नया मुसलिम राज्य बनानेका विचार रखा, जिसने पाकिस्तानको जन्म दिया। पाकिस्तान शब्द इकबालका गढा हुआ नही है। इसे १९३३ ई० मे चौधरी रहमत अलीने गढा था। इकबालकी काव्य-प्रतिभासे प्रभावित होकर ब्रिटिश सरकारने उन्हे 'सर' की उपाधि प्रदान की।

इक्ष्वाकु–एक प्रसिद्ध पौराणिक राजा। रामायणके नायक रामचन्द्रजीके पिता तथा कोशलके राजा दशरथ उन्हीके वशज थे।

इख्तियारुद्दीन अल्तूनिया–रजिया बेगम (१२३६–४० ई०) (दे०) के शासन कालके प्रारम्भमे भटिंडाका हाकिम। उसने १२४० ई० मे रजियाके खिलाफ बगावत कर दी, उसे परास्त कर दिया और बदी बना लिया। परतु उसे बहरामसे, जो नया सुल्तान बना था, यथेष्ट पुरस्कार नही मिला। इसलिए उसने रजियाको जेलखानेसे रिहा कर दिया, उससे शादी कर ली और रजियाको फिरसे गद्दीपर बिठानेके लिए एक बडी सेनाके साथ दिल्लीपर चढाई कर दी। परतु वह कैथलकी लडाईमे पराजित हुआ और दूसरे दिन उसे और रजियाको मार डाला गया।

इख्तियारुद्दीन मुहम्मद–बख्तियार खिलजीका लडका तथा बगालका पहला मुसलमान विजेता। वह सामान्य रूपसे बख्तियार खिलजीके नामसे विख्यात है। उसका व्यक्तित्व बाहरसे देखनेमे अधिक प्रभावशाली नही था, परन्तु वह बडा साहसी और महत्त्वाकाक्षी था। उसने बिहारपर हमला करके उसकी राजधानी उड्यन्तपुर-पर अधिकार कर लिया और वहाँके महाविहारमे रहने-वाले सभी बौद्ध भिक्षुओका वध कर डाला। उसने ११९२ ई० मे बिहार जीत लिया। इसके बाद ही, सभवत ११९३ ई० मे, किंवा निश्चित रूपसे १२०२ ई० से पहले, उसने अचानक नदियापर हमला बोल दिया, जो उस समय अंतिम सेन राजा, लक्ष्मण सेनकी राजधानी था। लक्ष्मण सेन पूर्वी बगाल भाग गया। बख्तियार खिलजी शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीकी ओरसे बगालका सूबेदार बन कर गौड (दे०) मे रहने लगा।

इस सफलतासे बख्तियार खिलजीकी महत्त्वाकाक्षा और बढ गयी और उसने एक बडी मुसलमानी फौज लेकर कामरूप (आसाम) होकर तिब्बतकी ओर कूच किया। बगालसे निकलकर उसकी फौज किस दिशामे आगे बढी अथवा उसका निश्चित लक्ष्य क्या था, यह सदिग्ध है। पन्द्रह दिन कूच करनेके बाद उसने जिस राज्यपर हमला किया था, उसकी सेनासे मुकाबला हुआ। युद्धमे उसकी हार हुई और उसे भारी क्षति उठानी पडी। वापस लौटते समय उसकी फौज नष्ट हो गयी। इख्तियारुद्दीन अपने साथ दस हजार घुडसवार ले गया था। जब वह वापस लौटा तो उनमे सौ घुडसवार जिन्दा बचे थे। इस हारने उसका साहस भग कर दिया और वह शोक तथा लाछनासे पीडित होकर १२०६ ई० मे मर गया।

इजिदबख्श–शाहजहाँके चौथे पुत्र, शाहजादा मुरादका लडका। औरगजेबने उसकी जान बख्श दी और बादमे अपनी पाँचवी लडकीकी शादी उससे कर दी।

इत्मादुद्दौला–बादशाह जहाँगीर द्वारा गद्दीपर बैठनेके बाद ही मिर्जा गयास बेगको प्रदत्त उपाधि। गयासबेग ईरानसे आया था और अकबरका दरबारी था। वह प्रसिद्ध नूरजहाँका पिता था, जिससे बादशाह जहाँगीरने १६११ ई० मे विवाह कर लिया। उसे तथा उसके बेटे आसफखाँ-को जहाँगीरने ऊँचे पद प्रदान किये। उसकी मृत्यु १६२२ ई० मे हुई और उसकी प्यारी बेटी, मलका नूरजहाँने उसकी कब्रपर सफेद सगमरमरका सुन्दर मकबरा बनवाया।

उसका नाम इत्मादुद्दौला है। "मुगल इमारतोमे उसके जोडकी और कोई दूसरी इमारत नही है। अपनी नफासत और महीन पच्चीकारीमे यह इमारत अपने आपमे एक नमूना है।" (फर्गुसन)

ईत्सिग—एक चीनी भिक्षु और यात्री, जो ६७५ ई० मे सुमात्रा होकर समुद्र मार्गसे भारत आया। वह दस वर्षो तक नालन्दा विश्वविद्यालयमे रहा और उसने वहाँके प्रसिद्ध आचार्योसे सस्कृत तथा बौद्ध धर्मके ग्रथोको पढा। उसने ६९१ ई० मे अपना प्रसिद्ध ग्रथ 'भारत तथा मलय द्वीप-पुजमे प्रचलित बौद्ध धर्मका विवरण' लिखा। इस ग्रथसे हमे उस कालके भारतके राजनीतिक इतिहासके वारेमे तो अधिक जानकारी नही मिलती, परतु यह ग्रथ बौद्ध धर्म और सस्कृत साहित्यके इतिहासका अमूल्य स्रोत माना जाता है।

इन्द्र—एक वैदिक देवता, जिसका प्रधान अस्त्र वज्र था। वैदिक देवताओमे इसका स्थान बहुत ऊँचा था।

इन्द्र—राष्ट्रकूट वश (दे०) मे इस नामके चार राजा हुए। इन्द्र प्रथम तथा इन्द्र द्वितीयके बारेमे उनके नामोको छोडकर और कुछ ज्ञात नही है। इन्द्र तृतीय (९१५–१७ ई०) ने बहुत थोडे समय तक राज्य किया। इतनेही समयमे उसने कन्नौजपर आक्रमण कर अधिकार कर लिया। उसकी मृत्युके बाद ही कन्नौज छिन गया। इन्द्र चतुर्थ, जिसकी मृत्यु ९८२ ई० मे हुई, राष्ट्रकूट वशका अतिम राजा था।

इन्द्रप्रस्थ—पाडवोकी राजधानी। कौरवोके साथ उनकी लडाई महाभारतकी मुख्य कथावस्तु है। इस नगर की पहचान दिल्लीके निकट इन्दरपत गाँवसे की जाती है।

इबादतखाना (प्रार्थनागृह)—बादशाह अकबरने फतहपुर सीकरीमे १५७५ ई०मे बनवाया। इसमे विभिन्न धर्मोके विद्वान् एकत्र होकर धार्मिक विषयोपर विचार करते थे। शुरूमे १५७५–७८ ई० तक इसमे केवल मुसलमान धर्मवेत्ता बुलाये जाते थे, परतु बादमे १५७९–१५८२ ई०के बीच सभी धर्मोके विद्वानोको आमत्रित किया जाने लगा। अकबर द्वारा 'दीन इलाही' (दे०) की घोषणा कर दिये जानेके बाद इबादतखानेकी मजलिसे समाप्त हो गयी।

इब्न बतूता—एक विद्वान् अफ्रीकी यात्री, जो १३३३ ई० मे सुल्तान मुहम्मद तुगलकके राज्यकालमे भारत आया। सुल्तानने उसका स्वागत किया और उसे दिल्लीका प्रधान काजी नियुक्त कर दिया। १३४२ ई० मे सुल्तानके राजदूतके रूपमे चीन जानेतक वह इस पदपर बना रहा। उसने अपनी भारत-यात्रा का बहुमूल्य वर्णन लिखा है, जिससे सुल्तान मुहम्मद तुगलकके जीवन और कालके बारेमे महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। उसका वर्णन अतिशयोक्तियोसे भरा होनेपर भी सामान्य रीतिमे विश्वसनीय है। उसने, सुल्तान द्वारा जिन कारणोमे राजधानीको दिल्लीमे हटाकर दौलताबाद ले जाने का आदेश दिया गया और जिस रीतिसे दिल्लीको पूरी तरहसे खाली कराया गया, उसका जो वर्णन किया है, उसे उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है।

इब्राहीम—गोलकुडाके कुतुबशाही वशका तीसरा शासक, जिसने १५५० से १५८० ई० तक शासन किया। उसने विजयनगर साम्राज्यके विरुद्ध बीजापुर, बराड तथा अहमदनगरके सुल्तानोसे समझौता कर लिया और तालीकोट की लडाई (१५५६ ई०)मे उसे हरा देने तथा विजयनगर-को उजाड देनेके बाद लूट-खसोटमे हिस्सा बँटाया। इब्राहीम अपनी प्रजाके साथ उदारतापूर्ण व्यवहार करता था और अपने राज्यमे उसने हिन्दुओको भी ऊँचे पद दे रखे थे।

इब्राहीम—सैयद बधुओने १७१९ ई०मे जिन चार नाममात्रके मुगल बादशाहोको दिल्लीकी गद्दीपर बिठाया था, उनमे अतिम। वह बहादुरशाह प्रथम (१७०७–१२ ई०)के तीसरे पुत्र रफी-उस-शानका लडका था। सैयद बधुओने कुछ समय बाद उसे गद्दीसे उतार दिया और मार डाला। उस समय दिल्लीके बादशाहोको बनाना और बिगाडना सैयद बधुओके हाथमे था।

इब्राहीम आदिल शाह प्रथम—बीजापुरके आदिलशाही वश-का चौथा सुल्तान (१५३४–५७ ई०)। इस वशके प्रथम सुल्तानने शिया धर्म अगीकार कर लिया था किन्तु इसने शिया धर्म अस्वीकार कर दिया। वह फारससे आये अमीरोके स्थानपर दक्खिनी अमीरोको पसद करता था। इसका वजीर असद खा अत्यत योग्य था। उसने विजयनगरकी एक सप्ताहकी राजकीय यात्रा की और बहुतसे उपहारोके साथ वापस लौटा। उसने अपने राज्य-पर बिदर, अहमदनगर तथा गोलकुडाके सुल्तानोके सयुक्त हमलेको विफल कर दिया। उसके शासन कालमे अनेका-नेक षडयत्र रचे गये। बुढापेमे वह बहुत अधिक शराब पीने लगा और उसीमे उसकी मृत्यु हो गयी।

इब्राहीम आदिल शाह द्वितीय—बीजापुरके आदिलशाही वशका छठा सुल्तान। उसने १५८० ई०मे १६२६ ई० तक शासन किया। उसकी माँ अहमदनगरकी प्रसिद्ध शाहजादी, चाँद बीबी थी। इब्राहीम आदिल शाह द्वितीय

जिस समय गद्दीपर बैठा, नाबालिग था और राज्यका प्रबंध १५९४ ई० तक उसकी माँ देखती रही। १५९४ ई०मे चाँद बीबी अहमदनगर वापस लौट गयी। १५९५ ई०मे इब्राहीम आदिलशाह द्वितीयने अहमदनगरके सुल्तान-को पराजित कर मार डाला। परतु शीघ्र ही दोनो राज्योको मुगल साम्राज्य द्वारा आत्मसात् कर लिये जाने-की योजनाका सामना करना पडा।

इब्राहीम आदिल शाह द्वितीय बहुत ही उदार शासक था। उसने अपने राज्यमे हिन्दू और ईसाई प्रजाको पूरी धार्मिक स्वतत्रता दे रखी थी। उसने प्रशासनमे कई सुधार किये, भूमिका बन्दोवस्त ठीक किया, गोआके पुर्तगालियोसे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये, अपने राज्यका विस्तार मैसूरकी सीमातक किया, बीजापुरमे कई सुदर इमारते बनवायी और प्रसिद्ध इतिहासकार मुहम्मद कासिमको–जो फरिश्ताके उपनामसे प्रसिद्ध है—आश्रय दिया।

इब्राहीम खाँ–१६८९–९७ ई०के मध्य बगालका मुगल सूबेदार। वह शात स्वभावका बूढा आदमी था और अग्रेजोके प्रति मित्रताका भाव रखता था। उसके पहलेके सूबेदार शाइस्ता खाँ (दे०) ने अग्रेजोको बगालसे निकाल दिया था। इब्राहीम खा ने उन्हे वापस बुला लिया और जाव चारनाक (दे०)को उस स्थानपर बसनेकी इजाजत दे दी जहाँ बादमे कलकत्ता नगर विकसित हुआ। इब्राहीम खाँ प्रशासनके कार्योकी बहुत उपेक्षा करता था, इसीलिए मिदनापुर जिलेके जमीदार शोभासिहको बगावत करनेका मौका मिल गया। उसने इस बगावतको तत्काल नही दबाया। अग्रेजो, फ्रासीसियो और डच लोगोको बगालमे अपनी बस्तियोकी किलेबदी करनेकी इजाजत देकर, ताकि वे शोभासिहका मुकाबला कर सके, उसने स्थितिको और शोचनीय बना दिया। इब्राहीम खाँकी इन गलतियोसे बादशाह औरगजेब नाखुश हो गया और उसने १६९७ ई० मे उसे बगालकी सूबेदारीसे हटा दिया।

इब्राहीम खाँ गार्दी–एक भाडेका सैनिक, जिसे बुसी (दे०)ने स्वय प्रशिक्षित किया और जो उसके तोपखानेका प्रधान हो गया। १७५७ ई०मे उसने निजामकी नौकरी कर ली, परतु अगले साल वह पेशवाकी सेवामे चला गया। उसने १७६० ई०मे उदगिर (दे०)की लडाईमे निजाम-की फौजोके खिलाफ मराठोको विजयी बनानेमे भारी योगदान दिया। वह पानीपत (दे०)की तीसरी लड़ाईमे ६००० सिपाहियो तथा ४० तोपोके साथ मराठोकी ओरसे लडा। यद्यपि शुरूमे उसने शत्रुकी फौजोको पछाड दिया, तथापि अतमे इस युद्धमे मराठोकी पराजय हुई और विजयी अफगानोने उसे बदी बना लिया तथा मार डाला।

इब्राहीम लोदी–दिल्लीके लोदी वश (दे०)का तीसरा सुल्तान (१५१७–२६ ई०)। अपने शासन कालके शुरूमे उसने राजपूतोसे ग्वालियर छीन लिया। परतु उसने अफगान सरदारोको कडे नियत्रणमे रखनेकी जो नीति अपनायी तथा उनके साथ जिस प्रकारका कठोर व्यवहार किया उससे वे उसके विरोधी बन गये। एक असतुष्ट सरदार, पजाबके हाकिम दौलत खाँ लोदीने बाबरको, जो अफ-गानिस्तानका बादशाह बन बैठा था, आमत्रित किया, कि वह आकर इब्राहीमकी गद्दी छीन ले। बाबरने २१ अप्रैल १५२६ ई०को यह निमत्रण स्वीकार कर लिया। उसने पानीपत (दे०)की पहली लडाईमे इब्राहीम लोदीको हरा दिया और मार डाला। इब्राहीम लोदी दिल्लीका अतिम सुल्तान था।

इब्राहीम शाह शर्की–जौनपुरका सुल्तान (१४०२–३६ ई०) और शर्की वशका सबसे योग्य शासक। हिन्दू धर्मके प्रति वह अत्यत असहनशील था। वह एक सुसस्कृत व्यक्ति था और कला और साहित्यका सरक्षक था। उसने जौनपुरको मुसलिम विद्याका महत्त्वपूर्ण केन्द्र बना दिया और बहुत-सी भव्य इमारते बनवा कर शहरको सुदर बनाया। उसने जो इमारते बनवायी, उनमे अटाला मसजिद सबसे मुख्य है जो १४०८ ई०मे पूरी हुई।

इब्राहीम सूर–सूर वश (दे०)का चौथा बादशाह, जिसने १५५५ई०मे बहुत थोडे समयके लिए शासन किया। हुमायू द्वारा दिल्लीपर फिरसे मुगल शासन स्थापित किये जानेपर इब्राहीम सूर उडीसा भाग गया। वहाँ वह १५६७ ई०के आसपास मार डाला गया।

इमादशाही वश–स्थापना लगभग १४९० ई०मे बराडके फतहुल्ला (दे०) द्वारा जिसको इमादुलमुल्क कहते थे। बहमनी राज्य (दे०) से अपनेको अलग कर वह स्वतत्र शासक बन बैठा। इस वशने चार पीढियो, १४९० ई०से १५७४ ई० तक राज्य किया। १५७४ ई०मे बराडपर अहमदनगरने कब्जा कर लिया।

इमादुल-मुल्क–मुगल शासनकालकी एक ऊची पदवी। यह पदवी निजामुल्-मुल्कके सबसे बडे बेटे फीरोज जग गाजीउद्दीनको मिली थी और उसकी मृत्युपर उसके बेटे तथा उत्तराधिकारी शहाबुद्दीनको, जिसे गाजीउद्दीन (दे०) भी कहते थे, १७५३ ई०मे मुगल बादशाहका वज़ीर नियुक्त होनेपर मिली थी।

इम्पीरियल कान्फ्रेस–लदनमे १९२१, १९२३ तथा १९२६ मे हुई, जिसमे भारतके प्रतिनिधियोने भी भाग लिया।

इम्पीरियल कैडेट कार्प्स—स्थापना वायसराय लार्ड कर्जन द्वारा १९०१ ई०में। इसमें रजवाड़ों और ऊँचे खानदान-के नवयुवकोंको भर्ती किया जाता था और उन्हें प्राथमिक फौजी प्रशिक्षण दिया जाता था।

इम्पीरियल लायब्रेरी (अब राष्ट्रीय पुस्तकालय कहलाता है)—स्थापना वायसराय लार्ड कर्जन द्वारा अपने शासनकाल (१८९९–१९०५ ई०) में। यह कलकत्तामें सम्प्रति बेलवेडियरमें विद्यमान है जो पहले लेफ्टिनेंट-गवर्नरका निवासस्थान था। यह सार्वजनिक पुस्तकालय है जिसमें पुस्तकोंका विशाल संग्रह है।

इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल—संघटन १८६१ ई०के इंडियन कौंसिल्स ऐक्टके द्वारा। यह उस समय वायसराय-की एक्जीक्यूटिव कौंसिल (कार्यकारिणी समिति) ही थी, जिसका विस्तार करके छहसे बारह मनोनीत सदस्य नियुक्त कर दिये गये थे। इनमें कमसे कम आधे गैरसरकारी सदस्य होते थे। इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिलके पहले तीन गैरसरकारी भारतीय सदस्य महाराज पटियाला, महाराज बनारस और ग्वालियरके सर दिनकर राव थे। उसके कानून बनानेके अधिकार अत्यंत सीमित थे। १८९२ ई०के इंडियन कौंसिल्स ऐक्टके द्वारा इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिलके सदस्योंकी संख्या बढ़ा दी गयी। इसके अतिरिक्त सदस्योंकी संख्या बारहसे बढ़ाकर सोलह कर दी गयी। इनमें अधिकसे अधिक छह मनोनीत सरकारी सदस्य होते थे। दस गैरसरकारी सदस्योंमें चार प्रांतीय लेजिस्लेटिव कौंसिलों द्वारा चुने जाते थे, एक कलकत्ताके चैम्बर आफ कामर्स (वाणिज्य संघ) द्वारा चुना जाता था और बाकी पाँच गवर्नर-जनरल द्वारा मनोनीत किये जाते थे। इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल-के कार्योंका भी विस्तार किया गया। उसे बजटपर बहस करने और प्रश्न करनेका अधिकार दे दिया गया।

१९०९ ई० के गवर्नमेण्ट आफ इंडिया ऐक्ट द्वारा इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिलमें और परिवर्तन किया गया। उसके सदस्योंकी संख्या बढ़ाकर साठ कर दी गयी, जिनमें अट्ठाईस मनोनीत सरकारी सदस्य होते थे, पाँच मनोनीत गैरसरकारी सदस्य होते थे और सत्ताईस गैर-सरकारी सदस्य प्रांतीय लेजिस्लेटिव कौंसिलों, मुसलमानों तथा वाणिज्य संघोंके द्वारा चुने जाते थे। इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिलके कार्योंका भी विस्तार किया गया। उसे बजट तथा कुछ सार्वजनिक महत्त्वके प्रश्नोंपर प्रस्ताव पेश करनेका अधिकार दे दिया गया। प्रस्ताव सिफारिशके रूपमें होते थे और सरकार उन्हें स्वीकार करनेके लिए बाध्य नहीं थी। गवर्नर-जनरल अपने इच्छानुसार कौंसिलके अध्यक्षके रूपमें कार्य कर सकता था और किसी भी प्रस्तावको पेश होनेसे रोक सकता था।

१९१९ के गवर्नमेण्ट आफ इंडिया ऐक्ट द्वारा और परिवर्तन किया गया। यह ऐक्ट माटेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट (दे०) पर आवृत था। ऐक्टके अन्तर्गत केन्द्रमें दो सदनोंवाले विधान मंडलकी स्थापना की गयी। इम्पी-रियल लेजिस्लेटिव कौंसिलको अब इंडियन लेजिस्लेटिव असेम्बलीमें विलीन कर दिया गया और उसके सदस्योंकी संख्या बढ़ाकर १४५ कर दी गयी। इनमेंसे १०५ सदस्य निर्वाचित होते थे। केन्द्रीय असेम्बलीके कानून बनानेके अधिकारोंका विस्तार कर दिया गया तथा प्रशा-सनपर उसका नियंत्रण बढ़ा दिया गया। (दे०, **ब्रिटिश प्रशासनके अंतर्गत**)

इम्पीरियल सर्विस कार्प्स—स्थापना लार्ड डफरिन (१८८४–८८ ई०) के प्रशासन कालमें। इस योजनाके अंतर्गत देशी रजवाड़ोंमें सैन्य-संग्रह किया जाता था। इन सेनाओंके अफसर भारतीय होते थे। आवश्यकता पड़नेपर साम्राज्य-की सेवाके लिए इनको उपलब्ध किया जाता था। इन सेनाओंने दोनों विश्वयुद्धोंमें भाग लिया और महत्त्व-पूर्ण सेवाएँ कीं।

इम्पी, सर एलिजा (१७३२–१८०९ ई०)—वेस्टमिनि-स्टरमें शिक्षा तथा गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्स (दे०) का सहपाठी। १७७३ ई० के रेग्युलेटिंग ऐक्ट द्वारा कलकत्ताके सुप्रीम कोर्टका मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया और १७७४ ई० में कलकत्ता पहुँचा। १७७५ ई० में उसकी अध्यक्षतामें नंदकुमार (दे०) के मुकदमेकी सुनवाई हुई। उसने जालसाजीके अभियोगमें उसे फाँसीकी सजा दी। बहुत-से लोगोंका विचार है कि इस मुकदमेमें वारेन हेस्टिंग्सकी मित्रताने इम्पीको प्रभावित किया। १७७७ ई० में वारेन हेस्टिंग्सके कथित इस्तीफेपर भी उसने उसके पक्षमें निर्णय दिया। उसने वारेन हेस्टिंग्सके विरोधी, फिलिप फ्रांसिसको ग्रांड काउंसमें ५०,००० रु० हर्जाना देनेका आदेश दिया। उसके नेतृत्वमें १७७९ ई० में सुप्रीम कोर्टने अपने अधिकार-क्षेत्रके प्रश्नपर कौंसिलसे झगड़ा शुरू कर दिया, जो उसकी प्रतिष्ठाको गिराने-वाला था। वारेन हेस्टिंग्सने जैसे ही उसे मुख्य न्यायाधीशके रूपमें मिलनेवाले ८००० पौंड वार्षिक वेतनके अतिरिक्त ६००० पौंड वार्षिक वेतनपर सदर दीवानी अदालतका अध्यक्ष नियुक्तकर दिया, यह झगड़ा समाप्त हो गया। पार्लियामेण्टने इस सारी कार्यवाहीको अत्यन्त अनियमित

ठहराया और १७८२ ई० मे इम्पीको वापस बुला लिया। उसके विरुद्ध महाभियोग चलानेकी कोशिशकी गयी। उसने पार्लियामेण्टके समक्ष अपनी सफाई पेश की और महाभियोगकी कार्यवाही समाप्त करा दी। वह १७९० ई० मे पार्लियामेण्टका सदस्य चुना गया और १७९६ ई० तक सदस्य रहा।

इम्मादि नरसिंह–विजयनगर (दे०) के सालुव वश (१४८६–१५०३ ई०) का दूसरा और अतिम राजा। उसने १४९२ ई० से १५०३ ई० के आसपास वीर नरसिंह द्वारा हत्या कर दिये जानेतक राज्य किया। उसकी गतिविधियोके बारेमे कुछ पता नही है।

इर्विन, लार्ड, एडवर्ड फ्रेडरिक लिन्डले वुड–द्वितीय वाइ-काउण्ट हैलिफैक्सका पुत्र। १८८१ई०मे जन्म। उसने ईटनमे शिक्षा प्राप्त की और १९१० से १९२५ ई० तक ब्रिटिश पार्लियामेण्टका सदस्य रहा। इस दौरान ब्रिटिश मन्त्रि-मडलके विविध पदोपर वह रहा। १९२५ ई० से १९३१ ई० तक वह भारतका वायसराय तथा गवर्नर-जनरल रहा। भारतके वायसरायके रूपमे उसका कार्यकाल अत्यन्त तूफानी कहा गया। १९२० ई० मे आरम्भ किया गया असहयोग आदोलन (दे०) उस समय भी जारी था। १९१९ के गवर्नमेण्ट आफ इडिया ऐक्टकी कार्यविधिका मूल्याकन करनेके लिए जो साइमन कमीशन (दे०) नियुक्त किया गया था, उसके सभी सदस्य अग्रेज थे। उसमे कोई भी भारतीय सदस्य न नियुक्त किये जानेसे सारे देशमे गहरी राजनीतिक अशाति फैल गयी। लार्ड इर्विनने भारतीय जनमतको शात करनेके उद्देश्यसे ३१ अक्तूबर १९२९ को ब्रिटिश सरकारसे परामर्श करके घोषणा की कि औपनिवेशिक स्वराज्यकी स्थापना भारतकी सवैधानिक प्रगतिका स्वाभाविक लक्ष्य है और साइमन कमीशन-की रिपोर्ट मिलनेके बाद पार्लियामेण्टमे नया भारतीय सवैधानिक बिल पेश किये जानेसे पूर्व लदनमे सभी भारतीय राजनीतिक पार्टियोका एक गोलमेज सम्मेलन बुलाया जायगा।

परतु इसके बाद ही ब्रिटिश अधिकारियोने औपनिवेशिक स्वराज्यकी व्याख्या करते हुए स्पष्ट कर दिया कि उसका आशय कनाडा जैसे औपनिवेशिक स्वराज्य-प्राप्त देशका दर्जा प्रदान करना नही है, बल्कि भारतको एक अधीनस्थ देश बनाये रखकर उसे स्वायत्तशासी सरकार प्रदान करना है। इस स्पष्टीकरणके फलस्वरूप लार्ड इर्विनकी घोषणा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसको सतोष नही प्रदान कर सकी और १९२९ ई० मे लाहौर अधिवेशनमे घोषणा कर दी गयी कि कांग्रेसका ध्येय पूर्ण स्वाधीनता है। कांग्रेसने अप्रैल १९३० मे महात्मा गाँधीके नेतृत्वमे सत्याग्रह आदोलन आरम्भ कर दिया। गाँधीजीने अपने कुछ अनुयायियोके साथ दाडीकी ओर कूच किया और जानबूझकर सरकारका 'नमक कानून' तोडा। यह 'नमक सत्याग्रह आदोलन' शीघ्र ही सारे देशमे फैल गया, जिससे भारी हलचल मच गयी। लार्ड इर्विनने युक्तिपूर्वक स्थितिको सँभालनेका प्रयास किया। एक ओर तो उसने कानून और व्यवस्था को बनाये रखनेके लिए राज्यकी सारी शक्ति लगा दी तथा कांग्रेस वर्किंग कमेटीके सभी सदस्योको गिरफ्तार कर लिया, दूसरी ओर वह महात्मा गाँधीसे समझौता-वार्ता चलाता रहा। वह गाँधीजीसे कई बार मिला और अतमे गाँधी-इर्विन समझौता हो गया।

इस समझौतेके अनुसार कांग्रेसने सत्याग्रह आदोलन स्थगित कर दिया और वह गोलमेज-सम्मेलनके दूसरे अधिवेशनमे गाँधीजीको अपना एकमात्र प्रतिनिधि बनाकर भेजनेको तैयार हो गयी। कांग्रेसने इस सम्मेलनके पहले अधिवेशनका बहिष्कार किया था। उधर सरकारने भी सभी राजनीतिक बदियोको रिहा कर दिया। सिर्फ उन बदियोको नही छोडा गया जिनपर हिंसात्मक उपद्रवोमे भाग लेनेके आरोप थे। गाँधी-इर्विन समझौतेके एक महीने बाद लार्ड इर्विनने भारतके वायसरायके पदसे अवकाश ग्रहण कर लिया और अपने उत्तराधिकारी लार्ड विलिंगडनपर यह भार छोड दिया कि वह चाहे तो उसकी नीतिको आगे बढाये और न चाहे तो समाप्त कर दे। भारतसे अवकाश ग्रहण करनेके बाद लार्ड इर्विन १९४० से १९४६ ई० तक अमेरिकामे ब्रिटिश राजदूत रहा। १९४४ ई० मे उसे अर्ल आफ हैलिफैक्सकी पदवी प्रदान की गयी।

इलाहाबाद–गगा और यमुनाके सगमपर स्थित। यह स्थान सामरिक दृष्टिसे बडा महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन नाम प्रयाग है और यह तीर्थराज कहा जाता है। ईसाकी चौथी और पाँचवी शताब्दीमे गुप्त वशके राज्यमे वह उनकी एक राजधानी भी रहा है। सातवी शताब्दीमे सम्राट् हर्षवर्धन, वहाँ पाँच-पाँच वर्षके अनन्तर, सत्रका आयोजन किया करता था। ऐसे एक सत्रमे चीनी यात्री ह्यु एनत्सागने ६४३ ई० मे भाग लिया था। इलाहाबादमे सबसे प्राचीन ऐतिहासिक स्मारक अशोक (२७३–२३२ ई०पू०)के ६ स्तम्भ-लेखोमेसे एक है। इसपर गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त (३३०–३८० ई०) की कवि हरि-

पेण रचित प्रसिद्ध प्रशस्ति है। इसमे उसके दिग्विजयका वर्णन है। इस स्थानके सामरिक महत्त्वको देखकर अकबरने १५८३ ई०में यहाँ गंगा-यमुनाके संगमपर किला बनवाया और प्रयागके स्थानपर इसका नाम इलाहाबाद रखा। यह नगर इलाहाबाद सूबेकी राजधानी बनाया गया। यह नगर बादमे उत्तर प्रदेश (संयुक्त प्रांत आगरा अवध)की राजधानी रहा। यहाँ प्रसिद्ध विश्वविद्यालय भी है।

इलाहाबादकी सन्धि—१७६५ ई० मे ईस्ट इंडिया कम्पनीकी ओरसे क्लाइव और बादशाह शाह आलम द्वितीयके मध्य हुई। इस सन्धिके द्वारा ईस्ट इंडिया कम्पनीने कोडा और इलाहाबादके जिलोको शाह आलम द्वितीयको लौटाना और उसे २६ लाख रुपये वार्षिक खिराज देना स्वीकार किया था और इसके बदलेमे बादशाहने ईस्ट इंडिया कम्पनीको बंगाल, बिहार और उडीसाकी दीवानी (राजस्व वसूलनेका अधिकार) सौंप दी थी।

इलाही सन्—बादशाह अकबरने १५८४ ई०मे चलाया। यह सौर वर्षपर आधृत था और अकबरके गद्दीपर बैठनेके बाद पहले नौरोज अर्थात् ११ मार्च १५५६ ई० से प्रचलित किया गया। शाहजहाँने सिक्कोंपर इस सन्को लिखनेकी प्रथाको निरुत्साहित किया और समाप्त कर दिया। औरंगजेबने १६५८ ई०मे गद्दीपर बैठनेके बाद ही इस सन्का प्रयोग पूरी तरहसे बन्द कर दिया।

इलियास शाह (हाजी या मलिक इलियास भी कहलाता था)—पश्चिमी बंगालके स्वतन्त्र बादशाह अलाउद्दीन अली शाह (१३३९–४५ ई०)का सौतेला भाई। उसके बाद १३४५ ई० के आसपास गद्दीपर बैठा और शमसुद्दीन इलियास शाहकी पदवी धारण की। उसने १३५७ ई० तक शासन किया और १३५२ ई०मे पूर्व बंगालको जीता तथा उडीसा और तिरहुतसे खिराज वसूल किया। उसने बनारसपर भी चढाई करनेकी धमकी दी। इससे दिल्लीका सुल्तान फीरोज शाह तुगलक (१३५१–८८ ई०) भडक उठा और उसने बंगालपर हमला कर दिया। इलियास अपनी राजधानी पडुआसे हटकर पूर्वी बंगालके इकडला नामक स्थानपर चला गया। उसने सुल्तानकी फौजको पीछे ढकेल दिया। उसका शासनकाल अत्यंत सफल रहा। उसने नया सिक्का चलाया और अपनी राजधानीमे कई मसजिदें और इमारतें बनवायी। उसकी मृत्यु राजधानी पडुआमे १३५७ ई०मे हुई। उसके बाद उसके उत्तराधिकारियोकी एक लम्बी शृंखला १४९० ई० तक बंगालका शासन करती रही। इन सबकी गणना बंगाल-के इलियास शाही वंशमे की जाती है।

इलोरा—महाराष्ट्रमे पर्वतीय गुफाओंके लिए प्रसिद्ध। ये गुफाएँ तीन वर्गोंमे विभाजित की गयी है और अलग-अलग तीन धर्मोंसे सम्बन्धित है। दाहिनी ओर बौद्धोंके चैत्य-सभाकक्ष है और सुदूर बायीं ओर जैनियोंकी गुफाएँ हैं। इन दोनोके मध्यमे हिन्दू मंदिर है। इनमे सबसे बडा कैलास-मन्दिर (दे०) है जो राष्ट्रकूट राजा कृष्ण (लगभग ७६०–७५ ई०) के आदेशपर बनाया गया था। केवल एक पहाडी चट्टानको काटकर बनाया गया यह अद्भुत मंदिर है। यह न केवल अपने आकारकी तुलनाके लिए, वरन् अलंकरणके लिए भी प्रसिद्ध है। (कैव०)

इल्तुतमिश—दिल्लीका सुल्तान (१२११–३६ ई०)। आरम्भमे वह दिल्लीके पहले सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबकका गुलाम था। योग्यताके कारण वह मालिकका प्यारा बन गया। उसने उसे गुलामीसे मुक्त कर दिया और अपनी लडकीकी शादी करके उसे बदायूँका हाकिम बना दिया। कुतुबुद्दीनकी मृत्युके एक साल बाद वह उसके उत्तराधिकारी आरामको हरानेके बाद दिल्लीकी गद्दी-पर बैठा। इल्तुतमिश बहुत योग्य शासक सिद्ध हुआ। उसने असंतुष्ट मुसलमान सरदारोकी बगावत कुचल दी। उसने अपने तीन शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वियो—पंजाबके एलदोज, सिंधके कुबाचा तथा बंगालके अली मर्दान खाँ-को भी पराजित किया। उसने रणथम्भोर और ग्वालियर-को हिन्दुओंसे फिर छीन लिया। सुल्तान आराम (दे०) के निर्बल शासनकालमे हिन्दुओने इन दोनो स्थानोंको फिरसे जीत लिया था। उसने भिलसा और उज्जैन सहित मालवाको भी जीत लिया। उसके शासन कालमे मंगोलोका खूँखार नेता चंगेज खाँ खीवाके शाह जलालुद्दीन-का पीछा करता हुआ भारतकी सीमाओंतक आ पहुँचा और उसने भारतपर हमला करनेकी धमकी दी। इल्तुत-मिशने विनम्र रीतिसे भगोडे शाह जलालुद्दीनको शरण देनेसे इन्कार करके इस आफतसे पीछा छुडाया। इल्तुत-मिशको बगदादके खलीफासे खिलअत प्राप्त हुई थी इससे दिल्लीकी सल्तनतपर उसके अधिकारकी धार्मिक पुष्टि हो गयी। उसने चाँदीके सिक्के ढालनेकी अच्छी व्यवस्था की जो बादके सुल्तानोंके लिए आदर्श सिद्ध हुई। उसने १२३२ ई० मे मुसलिम संत ख्वाजा कुतुबुद्दीनके सम्मानमे प्रसिद्ध कुतुब-मीनारका निर्माण कराया। एक साहसी, योद्धा और योग्य प्रशासकके रूपमे इल्तुत-मिशको दिल्लीके प्रारम्भिक सुल्तानोंमे सबसे महान् कहा जा सकता है।

इल्बर्ट बिल—वायसरायके कानून सदस्य, सर सी० पी० इल्बर्टने १८८३ ई० मे पेश किया। इसका उद्देश्य सरकारी

अधिकारियो और भारतीय प्रजाके बीच जातीय भेदभाव दूर करना था। बिलमे भारतीय जजो और मजिस्ट्रेटो-को भी अँग्रेज अभियुक्तोके मामलोपर विचार करनेके अधिकारका प्रस्ताव किया गया था। १८७३ ई०के जाब्ता फौजदारीके अतर्गत अग्रेज अभियुक्तोके मामलो-मे केवल अग्रेज मजिस्ट्रेट और जज ही विचार कर सकते थे। सिर्फ कलकत्ता, मद्रास और बम्बईके नगरोमे भारतीय जज और मजिस्ट्रेट उनके मामलोपर विचार कर सकते थे। यद्यपि कलकत्ता, मद्रास और बम्बईके नगरोमे अग्रेज अभियुक्तोके भारतीय मजिस्ट्रेटो तथा जजोके सामने उप-स्थित किये जानेसे उनका कोई अहित नही हुआ था, तथापि भारतमे रहनेवाले अग्रेजोने इल्बर्ट बिलके विरुद्ध एक तीव्र आदोलन छेड दिया। उन्होने वायसराय लार्ड रिपन तकको अपमानित करनेका प्रयास किया और उनका बहिष्कार शुरू कर दिया। दूसरी ओर भारतीय जनमत-ने इल्बर्ट बिलका जोरदार समर्थन किया। परतु, गोरो द्वारा आरम्भ किये गये इल्बर्ट बिल-विरोधी आदोलनसे इतना तहलका मच गया कि सरकारको झुकना पडा और उसने इल्बर्ट बिलमे परिवर्तन करके यह व्यवस्था कर दी कि किसी अग्रेज अभियुक्तके भारतीय मजिस्ट्रेट अथवा सेशन जजके सामने उपस्थित किये जानेपर वह माँग कर सकता है कि उसका मुकदमा जूरीके द्वारा सुना जाय और जूरियोमे कमसे कम आधे अग्रेज होगे। इस प्रकार सरकार जिस जातीय भेदभावको दूर करना चाहती थी वह न केवल कायम रहा, बल्कि उसका विस्तार कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बईके नगरोमे भी कर दिया गया। गोरो-ने इसे अपनी बहुत बडी विजय मानी।

इस आदोलनके बहुत महत्त्वपूर्ण परिणाम हुए। इससे भारतीयोके निकट स्पष्ट हो गया कि सगठन तथा सार्वजनिक आदोलन कितना फलदायी होता है। भारतीयोमे सुरेन्द्रनाथ बनर्जी (दे०) सरीखे लोगोने इस आदोलनसे काफी सबक सीखा। एक सालके अन्दर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी-के नेतृत्वमे राष्ट्रीय कोषकी स्थापना की गयी तथा १८८३ ई० मे कलकत्तामे इडियन नेशनल कान्फ्रेस हुई, जिसमे भारतके सभी भागोसे आये हुए प्रतिनिधियो ने भाग लिया। दो साल बाद भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसका जन्म हुआ। यह जातीय द्वेष भावसे प्रेरित गोरोके उन्मत्तता-पूर्ण आदोलनका भारतीय प्रत्युत्तर था।

इल्बर्ट, सर कोर्टनी पर्सीग्राहम—आक्सफोर्डका स्नातक और बैरिस्टर। १८८२ ई० मे वायसरायकी एक्जीक्यूटिव कौसिलका कानून सदस्य होकर वह भारत आया और १८८६ ई० तक यहाँ रहा। कानून सदस्यकी हैसियतसे उसने इल्बर्ट बिल (दे०) पेश किया और उसमे आधारभूत परिवर्तन करके उसे लेजिस्लेटिव कौसिलसे पास कराया। वह १८८५ से १८८७ ई० तक कलकत्ता विश्वविद्यालयका उपकुलपति रहा। उसने १८९८ ई० मे अपनी 'गवर्नमेण्ट आफ इडिया' नामक पुस्तक प्रकाशित करायी जो अपने विषयकी प्रामाणिक कृति है।

इसमाइल मुख—सुलतान मुहम्मद तुगलककी सेनाका एक अफगान अमीर, जो दक्खिनमे ऊँचे पदपर नियुक्त था। लगभग १३४५ ई० मे वहाँके बागी अफगान अमीरोने उसे दक्खिनका स्वतत्र शासक बना दिया। उसने अपना नाम नासिरुद्दीन शाह रखा। परन्तु, एक नये राज्यके शासक-की जिम्मेदारियोको सँभालनेमे अपनेको असमर्थ पाकर उसने १३४७ ई० मे हसनके पक्षमे गद्दी त्याग दी। हसनने प्रसिद्ध बहमनी राज्य तथा वश (दे०) की स्थापना की।

इसमाइल शाह—बीजापुरके आदिलशाही (दे०) वशका दूसरा सुलतान। उसने १५१० ई० से १५३४ ई० तक शासन किया। जब वह गद्दीपर बैठा तो नाबालिग था बालिग होनेपर उसने कई लडाइयाँ जीती और विजयनगरसे कृष्णा और तुगभद्राके बीच रायचूरका दोआब छीन लिया। फारसके शाहने उसके दरबारमे अपना दूत भेजा था। इससे वह इतना खुश हुआ कि उसका झुकाव शिया मतकी ओर हो गया। फारसका शाह भी शिया था।

इसलाम—देखो 'मुसलमान धर्म।'

इसलाम खाँ—बादशाह जहाँगीर द्वारा नियुक्त बगालका मुगल सूबेदार। उसने बागी अफगान सरदार उसमान खाको परास्त किया। युद्धमे लगे घावसे इसलाम खाँकी मृत्यु हो गयी और इस प्रकार बगालपर अफगानोका आधिपत्य समाप्त हो गया।

इसलाम खाँ लोदी—मुख्य नाम सुलतान शाह लोदी, सरहिन्दका हाकिम। उसकी प्रसिद्धि इस कारण है कि वह दिल्लीके सुलतानोमे लोदी वशके सस्थापक बहलोल लोदी (दे०) का चाचा था।

इसलाम शाह सूर—दिल्लीके बादशाह शेरशाह सूर (१५४०–१५४५ ई०) का पुत्र और उत्तराधिकारी। इसलाम शाहने (जिसका मूल नाम जलाल खाँ था और जो सलीम शाहके नामसे भी विख्यात था) १५४५ से १५५४ ई० तक शासन किया। उसने बागी सरदारोका दमन किया, धक्करोको कुचला तथा मानकोटका निर्माण पूरा करके कश्मीरपर अपने आधिपत्यको मजबूत बनाया। उसने सेनाकी दक्षता बनाये रखी और पिताके द्वारा किये गये

बहुत-से शासन सुधारोंको जारी रखा। परंतु भरी जवानीमें उसकी मृत्यु हो गयी और उसके बाद हुमायूं (दे०) ने मुश्किलसे दिल्लीकी सल्तनत छीन ली।

इसलिंगटन कमीशन—नियुक्ति १९१२ ई० में। इसका उद्देश्य उच्च पदोंपर विशेष रूपसे इंडियन सिविल सर्विसमें भारतीयोंकी भर्तीकी समस्यापर विचार करना था। लार्ड इसलिंगटन कमीशनके चेयरमैन थे और भारतीय तथा ब्रिटिश सार्वजनिक नेता उसके सदस्य थे। कमीशनने सिफारिश की कि जो भारतीय लंदनमें होनेवाली प्रतियोगिता परीक्षामें सफलता प्राप्त कर इंडियन सिविल सर्विसमें प्रवेश करते हैं, उनके अतिरिक्त इंडियन सिविल सर्विसके २५ प्रतिशत पद भारतीयोंकी *सीधी भर्ती* तथा प्रांतीय सिविल सर्विससे पदोन्नति करके भरे जायें। उसने इंडियन सिविल सर्विसमें भारतीयोंकी भर्तीके लिए भारतमें परीक्षा लेनेकी सिफारिश की। यह रिपोर्ट १९१७ ई० में प्रकाशित हुई। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस यह माँग पिछले ३० वर्षोंसे भी पूर्वसे कर रही थी। रिपोर्टमें उसकी यह माँग स्वीकार कर ली गयी। परन्तु कमेटीने आई० सी० एस० अफसरोंके वेतनोंमें जो भारी वृद्धिकी सिफारिशें कीं, उसपर भारतीयों द्वारा तीव्र आक्रोश व्यक्त किया गया।

ई

ईशान वर्मा—कन्नौजके मौखरि राजवंशका चौथा राजा। वह ५५४ ई० के आसपास राज्य करता था। उसने आंध्र और गौड राजाओंपर विजय प्राप्त की। महाराजाधिराजकी पदवी धारण करनेवाला वह पहला मौखरि राजा था।

ईश्वर—प्रारम्भिक मागधकालके हिन्दुओंमें इस सृष्टिके रचयिता और पालनकर्त्ताके रूपमें परम तत्त्वके जो अनेक नाम प्रचलित थे, उनमेंसे एक। यह विश्वास किया जाता है कि भक्ति करनेसे उसका अनुग्रह प्राप्त होता है जिससे कर्मोंके बन्धनसे छुटकारा मिल जाता है।

ईश्वरदेव—ह्युएनत्साग द्वारा शिवकी मूर्त्तिके लिए प्रयुक्त नाम, जिसकी स्थापना महाराजाधिराज हर्ष द्वारा प्रयागमें हर पाँचवें वर्ष आयोजित किये जानेवाले महोत्सवमें की जाती थी। इस महोत्सवमें बुद्ध और आदित्यदेवकी मूर्त्तियाँ भी स्थापित की जाती थीं और हर्ष बारी-बारीसे उनकी अर्चना करता था। ह्युएनत्सागने ६४३ ई० में होनेवाले महोत्सवमें भाग लिया था।

ईश्वर वर्मा—कन्नौजके मौखरि वंशका तीसरा राजा, जो छठीं शताब्दी ई० के द्वितीय चतुर्थांशमें राज्य करता था। उसे महाराजकी पदवी प्राप्त थी। उसने मगधके गुप्त राजकुमारी उपगुप्तासे विवाह किया था। उसका पुत्र और उत्तराधिकारी प्रसिद्ध ईशानवर्मा (दे०) था।

ईश्वरसेन—एक अभीर राजा, जिसने दूसरी शताब्दी ई० के अंतमें उत्तर-पश्चिमी महाराष्ट्रमें सातवाहन वंशका शासन समाप्त कर दिया। कहा जाता है कि २४८ ई० में प्रचलित त्रैकूटक संवत्सर उसीके द्वारा स्थापित राजवंशने चलाया था।

ईसाई मिशनरी (धर्म प्रचारक)—आधुनिक भारतपर इनका गहरा प्रभाव पड़ा है। भारतके सुदूर दक्षिणी भागोंमें बहुत पहलेसे सीरियाई ईसाइयोंकी भारी संख्यामें उपस्थिति इस बातकी द्योतक है कि इस देशमें सबसे पहले आनेवाले ईसाई मिशनरी यूरोपके नहीं, सीरियाके थे। जो भी हो, राजा गोंडोफारस (दे०) (लगभग २८ से ४८ ई०) से संत टामसका सम्बन्ध यह संकेत करता है कि ईसाई धर्मप्रचारकोंका एक मिशन सम्भवतः प्रथम ईसवीके दौरान भारत आया था। इतना तो निश्चित रूपसे ज्ञात है कि ईसाई मिशनरियोंने धर्मप्रचारका अपना काम भारतमें सोलहवीं शताब्दीके दौरान संत फ्रांसिस जेवियरके जमानेसे शुरू किया। संत जेवियरका नाम आज भी भारतके अनेक स्कूल-कालेजोंसे सम्बद्ध है। पुर्तगालियोंके भारत आने और गोआमें जम जानेके बाद ईसाई पादरियोंने भारतीयोंका बलात् धर्म-परिवर्तन शुरू किया। आरम्भिक ईसाई मिशन रोमन कैथोलिक चर्च द्वारा प्रवर्तित थे और वे छिटपुट रूपसे भारत आये। लेकिन उन्नीसवीं शताब्दीमें एंग्लिकन प्रोटेस्टेंट चर्चके द्वारा ईसाई धर्मप्रचारका कार्य सुव्यवस्थित ढंगसे आरम्भ हुआ। इस कालमें ईस्ट इंडिया कम्पनीने ईसाई मिशनरियोंको अपने राज्यके भीतर रहनेकी इजाजत नहीं दी, क्योंकि उसे डर था कि कहीं भारतीयोंमें उनके विरुद्ध उत्तेजना न उत्पन्न हो जाय। फलस्वरूप विलियम कैरी सरीखे प्रथम ब्रिटिश प्रोटेस्टेंट मिशनरियोंको कम्पनीके क्षेत्राधिकारके बाहर श्रीरामपुरमें रहना पड़ा, अथवा कुछ मिशनरियोंको कम्पनीसे सम्बद्ध पादरियोंके रूपमें सेवा करनी पड़ी, जैसा कि डेविड ब्राउन और हेनरी मार्टिनने किया। सन् १८१३ ई० में ईसाई पादरियोंपरसे रोक हटा ली गयी और कुछ ही वर्षोंके अन्दर इंग्लैण्ड जर्मनी और अमेरिकासे आनेवाले

विभिन्न ईसाई मिशन भारतमे स्थापित हो गये और उन्होने भारतीयोमे ईसाई धर्मका प्रचार शुरू कर दिया। ये ईसाई मिशन अपनेको बहुत अरसेतक विशुद्ध धर्मप्रचार तक ही सीमित न रख सके। उन्होने शैक्षणिक और लोकोपकारी कार्योमे भी दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी और भारतके बडे-बडे नगरोमे कालेजोकी स्थापना की और उनका सचालन किया। इस मामलेमे एक स्काटिश प्रेसबिटेरियन मिशनरी अलेक्जेडर डफ अग्रणी था। उसने १८३० ई० मे कलकत्तामे जनरल असेम्बलीज इस्टीट्यूशनकी स्थापना की और उसके बाद कलकत्तासे लेकर बगालके बाहरतक कई और मिशनरी स्कूल-कालेज खोले। अग्रेजी सीखनेके उद्देश्य से भारतीय युवक इन कालेजोकी ओर भारी सख्यामे आकर्षित हुए। ऐसे युवक बादमे पश्चिमी ज्ञान और मान्यताओको कट्टर हिन्दू और मुस्लिम समाजतक पहुँचानेका महत्त्वपूर्ण माध्यम बने। ईसाई मिशन और मिशनरियोने बौद्धिक स्तरपर तो भारतीयोके मस्तिष्कको प्रभावित किया ही, साथ ही अपने लोकोपकारी कार्यों (विशेषतया चिकित्सा सम्बन्धी) से भी यूरोपीय व ईसाई सिद्धान्तो और आदर्शो-का प्रचार-प्रसार किया। इस प्रकार ईसाई मिशनरियोने आधुनिक भारतके विकासपर गहरा प्रभाव डाला। मिशनरियोने प्राय बिना पर्याप्त जानकारीके भारतीय धर्मकी अनुचित आलोचना की, जिससे कुछ कटुता उत्पन्न हो गयी, लेकिन उन्होने भारतके सामाजिक उत्थानमे भी निःसदिग्ध रूपसे महत्त्वपूर्ण योगदान किया। उन्होने भारतीय नारीकी दयनीय, असम्मानजनक स्थिति, सती-प्रथा, बाल-हत्या, बाल-विवाह, बहुविवाह और जातिवाद जैसी कुरीतियोकी ओर लोगोका ध्यान आकृष्ट किया। इन सामाजिक व्याधियोको समाप्त करनेमे ईसाई मिशनरियोका बहुत बडा योगदान है।

ईसा खाँ—उन बारह भूमिपतियो (जमीदारो) मेसे एक, जो सोलहवी शताब्दीके अतिम चौथाई भागमे पूर्वी बगालका नियत्रण करते थे। पूर्वी तथा मध्यवर्ती ढाका जिला तथा मैमनसिह जिलेका अधिकाश भाग ईसा खाँके कब्जेमे था। उसने अपने पडोसी हिन्दू भूमिपति, विक्रमपुरके केदार रायके सहयोगसे कुछ समयतक बादशाह अकबरकी फौजोको रोक रखा। अतमे दोनोमे मनमुटाव हो गया और ईसा खाँको मुगल बादशाहने अपदस्थ कर दिया।

ईस्ट इडिया कम्पनी—स्थापना, १६०० ई० के अन्तिम दिन महारानी एलिजाबेथ प्रथमके एक घोषणापत्र द्वारा। यह लदनके व्यापारियोकी कम्पनी थी जिसे पूर्वमे व्यापार करनेका एकाधिकार प्रदान किया गया। कम्पनीने सबसे पहले व्यापारकी शुरुआत मसालेवाले द्वीपोमे की। १६०८ ई० मे उसका पहला व्यापारिक पोत सूरत पहुँचा, परन्तु पुर्तगालियोके प्रतिरोध और शत्रुतापूर्ण रवैयेने कम्पनीको भारतके साथ सहज ही व्यापार शुरू करने नही दिया। पुर्तगालियोसे निपटनेके लिए अग्रेजोको डच ईस्ट इडिया कम्पनीसे सहायता और समर्थन मिला और दोनो कम्पनियोने एक साथ पुर्तगालियोसे अरसेतक जमकर तगडा मोर्चा लिया। १६१२ ई०मे कैप्टन बेस्टके नेतृत्वमे अग्रेजोके एक जहाजी बेडेने पुर्तगाली हमलेको कुचल दिया और अग्रेजोकी ईस्ट इडिया कम्पनीने सूरतमे व्यापार शुरू कर किया। १६१३ ई० मे कम्पनीको एक शाही फरमान मिला और सूरतमे व्यापार करनेका उसका अधिकार सुरक्षित हो गया। १६२२ ई० मे अग्रेजोने ओर्मुजपर अधिकार कर लिया जिसके फलस्वरूप वे पुर्तगालियोके प्रतिशोध या आक्रमणसे पूर्णतया सुरक्षित हो गये। १६१५-१८ ई० मे सम्राट् जहाँगीरके समय ब्रिटिशनरेश जेम्स प्रथमके राजदूत सर टामस रो ने ईस्ट इडिया कम्पनीके लिए कुछ विशेषाधिकार प्राप्त कर लिये। इसके शीघ्र बाद कम्पनीने मसुलीपट्टम और बगालकी खाडीपर स्थित अरमा गाँव नामक स्थानोपर कारखाने स्थापित किये, किंतु कम्पनीको पहली महत्त्वपूर्ण सफलता मार्च १६४० ई० मे मिली जब उसने विजयनगर शासकोके प्रतिनिधि चद्रगिरिके राजासे आधुनिक मद्रास नगरका स्थान प्राप्त कर लिया। यहाँपर उन्होने शीघ्र ही सेट जार्ज किलेका निर्माण किया। १६६१ ई० मे ब्रिटेनके राजा चार्ल्स द्वितीयको पुर्तगाली राजकुमारीसे विवाहके दहेजमे बम्बई टापू मिल गया। चार्ल्सने १६६८ ई० मे इसको केवल १० पाउण्ड सालाना किरायेपर ईस्ट इडिया कम्पनीके सुपुर्द कर दिया। इसके बाद १६६९ और १६७७ ई० के बीच कम्पनीके गवर्नर जेराल्ड आगियरने आधुनिक बम्बई नगरकी नीव डाली। १६८७ ई० मे ईस्ट इडिया कम्पनीका पश्चिमी भारत स्थित मुख्यालय सूरतसे बम्बई लाया गया। अतमे १६९० ई० मे कम्पनीके 'एक वफादार सेवक' जाब चारनाकने बगालके नवाब इब्राहीम खाँके निमत्रणपर भागीरथीकी दलदली भूमिपर स्थित सूतानटी गाँवमे कलकत्ता नगरीकी स्थापना की। बादको १६९८ ई० मे सूतानटीसे लगे हुए दो गाँवो कालिकाता और गोविन्दपुरको उसमे और जोड दिया गया। इस प्रकार पुर्तगालियोके जबर्दस्त प्रतिरोधपर विजय प्राप्त करनेके बाद ईस्ट इडिया कम्पनीने ९० वर्षोके

अदर तीन अति उत्तम बंदरगाहों—बम्बई, मद्रास और कलकत्तापर अपना अधिकार कर लिया। इन तीनों बंदरगाहोंपर किले भी थे। ये तीनों बंदरगाह प्रेसीडेंसी कहलाये और इनमेंसे प्रत्येकका प्रशासन ईस्ट इंडिया कम्पनीके कोर्ट ग्राफ डायरेक्टर्स (दे०) और कोर्ट ग्राफ प्रोपराइटर्स द्वारा नियुक्त एक गवर्नरके सुपुर्द किया गया। ईस्ट इंडिया कम्पनीका संचालन लंदनमें लीडन हाल स्ट्रीट स्थित कार्यालयसे होता था।

१६९१ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनीको बंगालके नवाब इब्राहीम खाँ (दे०) से एक फरमान प्राप्त हुआ, जिससे कम्पनीको बंगालमें सिर्फ ३००० रु० की राशि सालाना देनेपर सीमाशुल्कके भुगतानसे मुक्त कर दिया गया था। अन्य यूरोपीय कंपनियोंको तीन प्रतिशत शुल्क अदा करना पड़ता था। ईस्ट इंडिया कंपनीके सर्जन डा० हैमिल्टनकी चिकित्सा सेवाओंसे खुश होकर सम्राट् फर्रुखसियरने १७१५ ई० में नया फरमान जारी करते हुए कम्पनीको सीमा शुल्कसे मुक्त करनेवाले पहलेके फरमानकी पुष्टि कर दी। (डा० हैमिल्टन कम्पनी द्वारा भेजे गये दूतमंडलके साथ मुगल दरबारमें गया था।) व्यापारमें ईस्ट इंडिया कम्पनीके इस एकाधिकारका कई अंग्रेज व्यापारियोंने विरोध किया और सत्रहवीं शताब्दीके अंतमें "दि इंगलिश कम्पनी ट्रेडिंग टु दि ईस्ट इंडीज़' नामक एक प्रतिद्वन्द्वी संस्थाकी स्थापना की। नयी और पुरानी दोनों कम्पनियोंमें कड़ी प्रतिद्वंदिता चल पड़ी जिससे पुरानीके पैर उखड़ने लगे, किन्तु भारत और इंग्लैंड दोनों ही जगह अत्यन्त कटु और अप्रतिष्ठाजनक प्रतिद्वंद्विताके बाद १७०८ ई० में समझौता हुआ जिसके अन्तर्गत दोनोंको मिलाकर एक कम्पनी बना दी गयी और उसका नाम रखा गया "दि यूनाइटेड कम्पनी ग्राफ दि मर्चेण्ट्स ग्राफ इंग्लैंड ट्रेडिंग टू दि ईस्ट इंडीज़'। यह संयुक्त कम्पनी बादमें भी ईस्ट इंडिया कम्पनीके नामसे ही विख्यात रही और डेढ़ सौ वर्षोंमें वह मात्र एक व्यापारिक निगम न रहकर ऐसी राजनीतिक एवं सैनिक संस्था बन गयी जिसने संपूर्ण भारतपर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित कर ली।

भारतपर इस कम्पनीकी प्रभुसत्ता सहसा नहीं स्थापित हो गयी। इसमें उसे सौसे भी अधिक वर्षोंका समय लगा और इस अवधिमें उसे फ्रांस और डच कम्पनियों तथा भारतीयोंसे अनेक युद्ध करने पड़े। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके सौभाग्यसे भारतपर प्रभुसत्ताका दावा करनेवाली केन्द्रीय मुगल सरकार धीरे-धीरे कमजोर होती गयी और देश अठारहवीं शताब्दीके दौरान छोटे-छोटे अनेक मुस्लिम और हिन्दू राज्योंमें बँट गया। इन राज्योंमें परस्पर कोई एकता न रही। मुस्लिम राज्य न केवल हिन्दू राज्यों के खिलाफ थे वरन् उनमें आपसमें भी एकता न थी और न ही उनके मनमें दिल्लीसे शासन करनेवाले मुगल सम्राट्के प्रति कोई निष्ठा थी। यह फूट ईस्ट इण्डिया कम्पनीके लिए वरदान सिद्ध हुई। इस कम्पनीने १७६१ ई० में वाँडीवाशका युद्ध जीत कर फ्रेंच ईस्ट इण्डिया कम्पनीका भारतसे सफाया कर दिया। सन् १७५७ में पलासीका युद्ध (दे०) जीतनेके बाद बंगाल, बिहार और उड़ीसापर उसका प्रभुत्व वस्तुत पहले ही स्थापित हो चुका था।

मुगल सम्राट् शाह आलम द्वितीय असहाय-सा कम्पनीकी फौजोंका बढ़ाव और विजयें देखता रहा। उसके देखते-देखते कम्पनीने मैसूरके मुस्लिम राज्यको हड़प लिया और हैदराबादके निजामने कम्पनीके आगे आत्मसमर्पण कर दिया। पर वह कर कुछ भी न सका। हाँ, उसे इस बातसे अलबत्ता कुछ संतोष मिला कि कम्पनीने मराठोंकी शक्तिको भी काफी क्षीण कर दिया था। राजपूत वीर थे, किन्तु शुरूसे उनमें आपसमें फूट थी। उन्होंने आत्मरक्षार्थ कोई वार किये बिना ही कम्पनीके आगे घुटने टेक दिये। लार्ड हेस्टिंग्स (१८१३–२३) (दे०) के प्रशासन कालमें मराठों द्वारा आत्म-समर्पण कर दिये जानेके बाद तो मुगल सम्राट् वस्तुत कम्पनीका पेंशनयाफ्ता बन गया। १८२६ ई० में आसाम, १८४३ ई० में सिन्ध, १८४९ ई० में पंजाब और १८५२ ई० में दक्षिणी बर्मा भी कम्पनीके शासनमें आ गया। वास्तवमें अब बर्मासे पेशावरतक कम्पनीका पूर्ण आधिपत्य था।

ईस्ट इण्डिया कम्पनीसे व्यापारिक अधिकार और एकाधिपत्य पहले ही हस्तान्तरित किया जा चुका था और इस प्रकार वह ग्रेट ब्रिटेनके सम्राट्के प्रशासनिक अभिकरणके रूपमें कार्य कर रही थी। चारों तरफ शांति नजर आ रही थी कि अचानक १८५७ ई० में भारतीय सिपाहियोंने विद्रोह कर दिया। कम्पनीने कुछ "गद्दार" भारतीयोंकी मददसे इस विद्रोहको दबा तो दिया, लेकिन भारतीयोंके कुछ वर्गोंमें विरोध और बगावतकी आग भड़कती रही। यह बगावत ईस्ट इण्डिया कम्पनीके लिए घातक सिद्ध हुई। १८५८ ई० में कम्पनीको समाप्त कर दिया गया और भारतकी प्रभुसत्ता ग्रेट ब्रिटेनके सम्राट्ने स्वयं ग्रहण कर ली।

ईस्ट इण्डिया कालेज, हैलीवरी—१८०५ ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा स्थापित। कम्पनीकी भारतीय सिविल

विभिन्न ईसाई मिशन भारतमे स्थापित हो गये और उन्होने भारतीयोमे ईसाई धर्मका प्रचार शुरू कर दिया। ये ईसाई मिशन अपनेको वहुत अरसेतक विशुद्ध धर्मप्रचार तक ही सीमित न रख सके। उन्होने शैक्षणिक और लोकोपकारी कार्योमे भी दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी और भारतके बडे-बडे नगरोमे कालेजोकी स्थापना की और उनका सचालन किया। इस मामलेमे एक स्काटिश प्रेसविटेरियन मिशनरी अलेक्जेडर डफ अग्रणी था। उसने १८३० ई० मे कलकत्तामे जनरल असेम्वलीज इस्टीट्यूशनकी स्थापना की और उसके बाद कलकत्तासे लेकर बगालके वाहरतक कई और मिशनरी स्कूल-कालेज खोले। अग्रेजी सीखनेके उद्देश्य से भारतीय युवक इन कालेजोकी ओर भारी सख्यामे आकर्षित हुए। ऐसे युवक बादमे पश्चिमी ज्ञान और मान्यताओको कट्टर हिन्दू और मुस्लिम समाजतक पहुँचानेका महत्त्वपूर्ण माध्यम बने। ईसाई मिशन और मिशनरियोने बौद्धिक स्तरपर तो भारतीयोके मस्तिष्कको प्रभावित किया ही, साथ ही अपने लोकोपकारी कार्यो (विशेषतया चिकित्सा सम्बन्धी) से भी यूरोपीय व ईसाई सिद्धान्तो और आदर्शोका प्रचार-प्रसार किया। इस प्रकार ईसाई मिशनरियोने आधुनिक भारतके विकासपर गहरा प्रभाव डाला। मिशनरियोने प्राय बिना पर्याप्त जानकारीके भारतीय धर्मकी अनुचित आलोचना की, जिससे कुछ कटुता उत्पन्न हो गयी, लेकिन उन्होने भारतके सामाजिक उत्थानमे भी नि सदिग्ध रूपसे महत्त्वपूर्ण योगदान किया। उन्होने भारतीय नारीकी दयनीय, असम्मानजनक स्थिति, सती-प्रथा, वाल-हत्या, वाल-विवाह, वहुविवाह और जातिवाद जैसी कुरीतियोकी ओर लोगोका ध्यान आकृष्ट किया। इन सामाजिक व्याधियोको समाप्त करनेमे ईसाई मिशनरियोका वहुत वडा योगदान है।

ईसा खॉ—उन बारह भूमिपतियो (जमीदारो) मेसे एक, जो सोलहवी शताब्दीके अतिम चौथाई भागमे पूर्वी वगालका नियत्रण करते थे। पूर्वी तथा मध्यवर्ती ढाका जिला तथा मैमनसिह जिलेका अधिकाश भाग ईसा खाँके कब्जेमे था। उसने अपने पडोसी हिन्दू भूमिपति, विक्रमपुरके केदार रायके सहयोगसे कुछ समयतक बादशाह अकवरकी फौजोको रोक रखा। अतमे दोनोमे मनमुटाव हो गया और ईसा खाँको मुगल वादशाहने अपदस्थ कर दिया।

ईस्ट इडिया कम्पनी—स्थापना, १६०० ई० के अन्तिम दिन महारानी एलिजाबेथ प्रथमके एक घोषणापत्र द्वारा। यह लदनके व्यापारियोकी कम्पनी थी जिसे पूर्वमे व्यापार करनेका एकाधिकार प्रदान किया गया। कम्पनीने सबसे पहले व्यापारकी शुरुआत मसालेवाले द्वीपोमे की। १६०८ ई० मे उसका पहला व्यापारिक पोत सूरत पहुँचा, परन्तु पुर्तगालियोके प्रतिरोध और शत्रुतापूर्ण रवैयेने कम्पनीको भारतके साथ सहज ही व्यापार शुरू करने नही दिया। पुर्तगालियोसे निपटनेके लिए अग्रेजोको डच ईस्ट इडिया कम्पनीसे सहायता और समर्थन मिला और दोनो कम्पनियोने एक साथ पुर्तगालियोसे अरसेतक जमकर तगडा मोर्चा लिया। १६१२ ई०मे कैप्टन बेस्टके नेतृत्वमे अग्रेजोके एक जहाजी बेडेने पुर्तगाली हमलेको कुचल दिया और अग्रेजोकी ईस्ट इडिया कम्पनीने सूरतमे व्यापार शुरू कर किया। १६१३ ई० मे कम्पनीको एक शाही फरमान मिला और सूरतमे व्यापार करनेका उसका अधिकार सुरक्षित हो गया। १६२२ ई० मे अग्रेजोने ओर्मुजपर अधिकार कर लिया जिसके फलस्वरूप वे पुर्तगालियोके प्रतिशोध या आक्रमणसे पूर्णतया सुरक्षित हो गये। १६१५–१८ ई० मे सम्राट् जहाँगीरके समय ब्रिटिशनरेश जेम्स प्रथमके राजदूत सर टामस रो ने ईस्ट इडिया कम्पनीके लिए कुछ विशेषाधिकार प्राप्त कर लिये। इसके शीघ्र वाद कम्पनीने मसुलीपट्टम और वगालकी खाडीपर स्थित अरमा गाँव नामक स्थानोपर कारखाने स्थापित किये, किंतु कम्पनीको पहली महत्त्वपूर्ण सफलता मार्च १६४० ई० मे मिली जब उसने विजयनगर शासकोके प्रतिनिधि चद्रगिरिके राजासे आधुनिक मद्रास नगरका स्थान प्राप्त कर लिया। यहाँपर उन्होने शीघ्र ही सेंट जार्ज किलेका निर्माण किया। १६६१ ई० मे ब्रिटेनके राजा चार्ल्स द्वितीयको पुर्तगाली राजकुमारीसे विवाहके दहेजमे वम्वई टापू मिल गया। चार्ल्सने १६६८ ई० मे इसको केवल १० पाउण्ड सालाना किरायेपर ईस्ट इडिया कम्पनीके सुपुर्द कर दिया। इसके वाद १६६९ और १६७७ ई० के बीच कम्पनीके गवर्नर जेराल्ड आगियरने आधुनिक बम्वई नगरकी नीव डाली। १६८७ ई० मे ईस्ट इडिया कम्पनीका पश्चिमी भारत स्थित मुख्यालय सूरतसे वम्वई लाया गया। अतमे १६९० ई० मे कम्पनीके 'एक वफादार सेवक' जाव चारनाकने बगालके नवाव इब्राहीम खाँके निमत्रणपर भागीरथीकी दलदली भूमिपर स्थित सूतानटी गाँवमे कलकत्ता नगरीकी स्थापना की। वाद को १६९८ ई० मे सूतानटीसे लगे हुए दो गाँवो कालिकाता और गोविन्दपुरको उसमे और जोड दिया गया। इस प्रकार पुर्तगालियोके जबर्दस्त प्रतिरोधपर विजय प्राप्त करनेके वाद ईस्ट इडिया कम्पनीने ९० वर्षोके

अदर तीन अति उत्तम वदरगाहो—बम्बई, मद्रास और कलकत्तापर अपना अधिकार कर लिया। इन तीनो वदरगाहोपर किले भी थे। ये तीनो वदरगाह प्रेसीडेंसी कहलाये और इनमेसे प्रत्येकका प्रशासन ईस्ट इडिया कम्पनीके कोर्ट आफ डायरेक्टर्स (दे०) और कोर्ट आफ प्रोपराइटर्स द्वारा नियुक्त एक गवर्नरके सुपुर्द किया गया। ईस्ट इडिया कम्पनीका सचालन लदनमे लीडन हाल स्ट्रीट स्थित कार्यालयसे होता था।

१६६१ ई० मे ईस्ट इडिया कम्पनीको वगालके नवाव इब्राहीम खाँ (दे०) से एक फरमान प्राप्त हुआ, जिसमे कम्पनीको वगालमे सिर्फ ३००० रु० की राशि सालाना देनेपर सीमाशुल्कके भुगतानसे मुक्त कर दिया गया था। अन्य यूरोपीय कपनियोको तीन प्रतिशत शुल्क अदा करना पडता था। ईस्ट इडिया कपनीके सर्जन डा० हैमिल्टनकी चिकित्सा सेवाओसे खुश होकर सम्राट् फर्रुखसियरने १७१५ ई० मे नया फरमान जारी करते हुए कम्पनीको सीमा शुल्कसे मुक्त करनेवाले पहलेके फरमानकी पुष्टि कर दी। (डा० हेमिल्टन कम्पनी द्वारा भेजे गये दूतमडलके साथ मुगल दरवारमे गया था।) व्यापारमे ईस्ट इडिया कम्पनीके इस एकाधिकारका कई अग्रेज व्यापारियोंने विरोध किया और सत्रहवी शताब्दीके अतमे "दि इगलिश कम्पनी ट्रेडिंग टु दि ईस्ट इडीज' नामक एक प्रतिद्वन्दी सस्थाकी स्थापना की। नयी और पुरानी दोनो कम्पनियोमे कडी प्रतिद्वदिता चल पडी जिससे पुरानीके पैर उखडने लगे, किन्तु भारत और इग्लैड दोनो ही जगह अत्यन्त कटु और अप्रतिष्ठाजनक प्रतिद्वद्विताके वाद १७०८ ई० मे समझौता हुआ जिसके अतर्गत दोनोको मिलाकर एक कम्पनी वना दी गयी और उसका नाम रखा गया "दि यूनाइटेड कम्पनी आफ दि मर्चेण्ट्स आफ इग्लैड ट्रेडिंग टू दि ईस्ट इडीज़'। यह सयुक्त कम्पनी वादमे भी ईस्ट इडिया कम्पनीके नामसे ही विख्यात रही और डेढ सौ वर्षोमे वह मात्र एक व्यापारिक निगम न रहकर ऐसी राजनीतिक एव सैनिक सस्था वन गयी जिसने सपूर्ण भारतपर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित कर ली।

भारतपर इस कम्पनीकी प्रभुसत्ता सहसा नही स्थापित हो गयी। इसमे उसे सौसे भी अधिक वर्षोका समय लगा और इस अवधिमे उसे फ्रास और डच कम्पनियो तथा भारतीयोसे अनेक युद्ध करने पडे। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके सौभाग्यसे भारतपर प्रभुसत्ताका दावा करनेवाली केन्द्रीय मुगल सरकार धीरे-धीरे कमजोर होती गयी और देश अठारहवी शताब्दीके दौरान छोटे-छोटे अनेक मुस्लिम और हिन्दू राज्योमे वँट गया। इन राज्योमे परस्पर कोई एकता न रही। मुस्लिम राज्य न केवल हिन्दू राज्यो के खिलाफ थे वरन् उनमे आपसमे भी एकता न थी और न ही उनके मनमे दिल्लीमे शासन करनेवाले मुगल सम्राट्के प्रति कोई निष्ठा थी। यह फूट ईस्ट इण्डिया कम्पनीके लिए वरदान सिद्ध हुई। इस कम्पनीने १७६१ ई० मे वाँडीवाशका युद्ध जीत कर फ्रेच ईस्ट इण्डिया कम्पनीका भारतसे सफाया कर दिया। सन् १७५७ मे पलासीका युद्ध (दे०) जीतनेके वाद वगाल, विहार और उडीसापर उसका प्रभुत्व वस्तुत पहले ही स्थापित हो चुका था।

मुगल सम्राट् शाह आलम द्वितीय असहाय-सा कम्पनीकी फौजोका वढाव और विजयें देखता रहा। उसके देखते-देखते कम्पनीने मैसूरके मुस्लिम राज्यको हडप लिया और हैदरावादके निजामने कम्पनीके आगे आत्म-समर्पण कर दिया। पर वह कर कुछ भी न सका। हाँ, उसे इस वातसे अलवत्ता कुछ सतोष मिला कि कम्पनीने मराठोकी शक्तिको भी काफी क्षीण कर दिया था। राजपूत वीर थे, किन्तु शुरूसे उनमे आपसमे फूट थी। उन्होने आत्मरक्षार्थ कोई वार किये विना ही कम्पनीके आगे घुटने टेक दिये। लार्ड हेस्टिंग्स (१८१३–२३) (दे०) के प्रशासन कालमे मराठो द्वारा आत्म-समर्पण कर दिये जानेके वाद तो मुगल सम्राट् वस्तुत कम्पनीका पेशनयाफ्ता वन गया। १८२६ ई० मे आसाम, १८४३ ई० मे सिन्ध, १८४६ ई० मे पजाव और १८५२ ई० मे दक्षिणी वर्मा भी कम्पनीके शासनमे आ गया। वास्तवमे अव वर्मासे पेशावरतक कम्पनीका पूर्ण आधिपत्य था।

ईस्ट इण्डिया कम्पनीसे व्यापारिक अधिकार और एकाधिपत्य पहले ही हस्तान्तरित किया जा चुका था और इस प्रकार वह ग्रेट ब्रिटेनके सम्राट्के प्रशासनिक अभिकरणके रूपमे कार्य कर रही थी। चारो तरफ शाति नजर आ रही थी कि अचानक १८५७ ई० मे भारतीय सिपाहियोने विद्रोह कर दिया। कम्पनीने कुछ "गद्दार" भारतीयोकी मददसे इस विद्रोहको दवा तो दिया, लेकिन भारतीयोके कुछ वर्गोमे विरोध और वगावतकी आग भडकती रही। यह वगावत ईस्ट इण्डिया कम्पनीके लिए घातक सिद्ध हुई। १८५८ ई० मे कम्पनीको समाप्त कर दिया गया और भारतकी प्रभुसत्ता ग्रेट ब्रिटेनके सम्राट्ने स्वय ग्रहण कर ली।

ईस्ट इण्डिया कालेज, हैलीवरी—१८०५ ई० मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा स्थापित। कम्पनीकी भारतीय सिविल

विभिन्न ईसाई मिशन भारतमे स्थापित हो गये और उन्होने भारतीयोमे ईसाई धर्मका प्रचार शुरू कर दिया। ये ईसाई मिशन अपनेको बहुत अरसेतक विशुद्ध धर्मप्रचार तक ही सीमित न रख सके। उन्होने शैक्षणिक और लोकोपकारी कार्योमे भी दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी और भारतके बडे-बडे नगरोमे कालेजोकी स्थापना की और उनका सचालन किया। इस मामलेमे एक स्काटिश प्रेसबिटेरियन मिशनरी अलेक्जेडर डफ अग्रणी था। उसने १८३० ई० मे कलकत्तामे जनरल असेम्बलीज इस्टीट्यूशनकी स्थापना की और उसके बाद कलकत्तासे लेकर बगालके बाहरतक कई और मिशनरी स्कूल-कालेज खोले। अग्रेजी सीखनेके उद्देश्य से भारतीय युवक इन कालेजोकी ओर भारी सख्यामे आकर्षित हुए। ऐसे युवक बादमे पश्चिमी ज्ञान और मान्यताओको कट्टर हिन्दू और मूस्लिम समाजतक पहुँचानेका महत्त्वपूर्ण माध्यम बने। ईसाई मिशन और मिशनरियोने बौद्धिक स्तरपर तो भारतीयोके मस्तिष्कको प्रभावित किया ही, साथ ही अपने लोकोपकारी कार्यो (विशेषतया चिकित्सा सम्बन्धी) से भी यूरोपीय व ईसाई सिद्धान्तो और आदर्शोका प्रचार-प्रसार किया। इस प्रकार ईसाई मिशनरियोने आधुनिक भारतके विकासपर गहरा प्रभाव डाला। मिशनरियोने प्राय बिना पर्याप्त जानकारीके भारतीय धर्मकी अनुचित आलोचना की, जिससे कुछ कटुता उत्पन्न हो गयी, लेकिन उन्होने भारतके सामाजिक उत्थानमे भी नि सदिग्ध रूपसे महत्त्वपूर्ण योगदान किया। उन्होने भारतीय नारीकी दयनीय, असम्मानजनक स्थिति, सती-प्रथा, बाल-हत्या, बाल-विवाह, बहुविवाह और जातिवाद जैसी कुरीतियोकी ओर लोगोका ध्यान आकृष्ट किया। इन सामाजिक व्याधियोको समाप्त करनेमे ईसाई मिशनरियोका बहुत बडा योगदान है।

ईसा खाँ—उन बारह भूमिपतियो (जमीदारो) मेसे एक, जो सोलहवी शताब्दीके अतिम चौथाई भागमे पूर्वी बगालका नियत्रण करते थे। पूर्वी तथा मध्यवर्ती ढाका जिला तथा मैमनसिह जिलेका अधिकाश भाग ईसा खाँके कब्जेमे था। उसने अपने पडोसी हिन्दू भूमिपति, विक्रमपुरके केदार रायके सहयोगसे कुछ समयतक बादशाह अकबरकी फौजोको रोक रखा। अतमे दोनोमे मनमुटाव हो गया और ईसा खाँको मुगल बादशाहने अपदस्थ कर दिया।

ईस्ट इडिया कम्पनी—स्थापना, १६०० ई० के अन्तिम दिन महारानी एलिजाबेथ प्रथमके एक घोषणापत्र द्वारा। यह लदनके व्यापारियोकी कम्पनी थी जिसे पूर्वमे व्यापार करनेका एकाधिकार प्रदान किया गया। कम्पनीने सबसे पहले व्यापारकी शुरुआत मसालेवाले द्वीपोमे की। १६०८ ई० मे उसका पहला व्यापारिक पोत सूरत पहुँचा, परन्तु पुर्तगालियोके प्रतिरोध और शत्रुतापूर्ण रवैयेने कम्पनीको भारतके साथ सहज ही व्यापार शुरू करने नही दिया। पुर्तगालियोसे निपटनेके लिए अग्रेजोको डच ईस्ट इडिया कम्पनीसे सहायता और समर्थन मिला और दोनो कम्पनियोने एक साथ पुर्तगालियोसे अरसेतक जमकर तगडा मोर्चा लिया। १६१२ ई०मे कैप्टन बेस्टके नेतृत्वमे अग्रेजोके एक जहाजी बेडेने पुर्तगाली हमलेको कुचल दिया और अग्रेजोकी ईस्ट इडिया कम्पनीने सूरतमे व्यापार शुरू कर दिया। १६१३ ई० मे कम्पनीको एक शाही फरमान मिला और सूरतमे व्यापार करनेका उसका अधिकार सुरक्षित हो गया। १६२२ ई० मे अग्रेजोने ओर्मुजपर अधिकार कर लिया जिसके फलस्वरूप वे पुर्तगालियोके प्रतिशोध या आक्रमणसे पूर्णतया सुरक्षित हो गये। १६१५–१८ ई० मे सम्राट् जहाँगीरके समय ब्रिटिशनरेश जेम्स प्रथमके राजदूत सर टामस रो ने ईस्ट इडिया कम्पनीके लिए कुछ विशेषाधिकार प्राप्त कर लिये। इसके शीघ्र बाद कम्पनीने मसुलीपट्टम और बगालकी खाडीपर स्थित अरमा गाँव नामक स्थानोपर कारखाने स्थापित किये, किंतु कम्पनीको पहली महत्त्वपूर्ण सफलता मार्च १६४० ई० मे मिली जब उसने विजयनगर शासकोके प्रतिनिधि चद्रगिरिके राजासे आधुनिक मद्रास नगरका स्थान प्राप्त कर लिया। यहाँपर उन्होने शीघ्र ही सेंट जार्ज किलेका निर्माण किया। १६६१ ई० मे ब्रिटेनके राजा चार्ल्स द्वितीयको पुर्तगाली राजकुमारीसे विवाहके दहेजमे बम्बई टापू मिल गया। चार्ल्सने १६६८ ई० मे इसको केवल १० पाउण्ड सालाना किरायेपर ईस्ट इडिया कम्पनीके सुपुर्द कर दिया। इसके बाद १६६९ और १६७७ ई० के बीच कम्पनीके गवर्नर जेराल्ड आगियरने आधुनिक बम्बई नगरकी नीव डाली। १६८७ ई० मे ईस्ट इडिया कम्पनीका पश्चिमी भारत स्थित मुख्यालय सूरतसे बम्बई लाया गया। अतमे १६९० ई० मे कम्पनीके 'एक वफादार सेवक' जाब चारनाकने बगालके नवाब इब्राहीम खाँके निमत्रणपर भागीरथीकी दलदली भूमिपर स्थित सूतानटी गाँवमे कलकत्ता नगरीकी स्थापना की। बाद को १६९८ ई० मे सूतानटीसे लगे हुए दो गाँवो कालिकाता और गोविन्दपुरको उसमे और जोड दिया गया। इस प्रकार पुर्तगालियोके जबर्दस्त प्रतिरोधपर विजय प्राप्त करनेके बाद ईस्ट इडिया कम्पनीने ९० वर्षोके

अदर तीन अति उत्तम बदरगाहो—बम्बई, मद्रास और कलकत्तापर अपना अधिकार कर लिया। इन तीनो बदरगाहोपर किले भी थे। ये तीनो बदरगाह प्रेसीडेंसी कहलाये और इनमेसे प्रत्येकका प्रशासन ईस्ट इडिया कम्पनीके कोर्ट आफ डायरेक्टर्स (दे०) और कोर्ट आफ प्रोपराइटर्स द्वारा नियुक्त एक गवर्नरके सुपुर्द किया गया। ईस्ट इडिया कम्पनीका सचालन लदनमे लीडन हाल स्ट्रीट स्थित कार्यालयसे होता था।

१६९१ ई० मे ईस्ट इडिया कम्पनीको बगालके नवाब इब्राहीम खाँ (दे०) से एक फरमान प्राप्त हुआ, जिसमे कम्पनीको बगालमे सिर्फ ३००० रु० की राशि सालाना देनेपर सीमाशुल्कके भुगतानसे मुक्त कर दिया गया था। अन्य यूरोपीय कपनियोको तीन प्रतिशत शुल्क अदा करना पडता था। ईस्ट इडिया कपनीके सर्जन डा० हैमिल्टनकी चिकित्सा सेवाओसे खुश होकर सम्राट् फर्रुखसियरने १७१५ ई० मे नया फरमान जारी करते हुए कम्पनीको सीमा शुल्कसे मुक्त करनेवाले पहलेके फरमानकी पुष्टि कर दी। (डा० हेमिल्टन कम्पनी द्वारा भेजे गये दूतमडलके साथ मुगल दरबारमे गया था।) व्यापारमे ईस्ट इडिया कम्पनीके इस एकाधिकारका कई अग्रेज व्यापारियोने विरोध किया और सत्रहवी शताब्दीके अतमे "दि इगलिश कम्पनी ट्रेडिंग टु दि ईस्ट इडीज' नामक एक प्रतिद्वन्दी सस्थाकी स्थापना की। नयी और पुरानी दोनो कम्पनियोमे कडी प्रतिद्वदिता चल पडी जिसमे पुरानीके पैर उखडने लगे, किन्तु भारत और इग्लैड दोनो ही जगह अत्यन्त कटु और अप्रतिष्ठाजनक प्रतिद्वद्विताके बाद १७०८ ई० मे समझौता हुआ जिसके अतर्गत दोनोको मिलाकर एक कम्पनी बना दी गयी और उसका नाम रखा गया "दि यूनाइटेड कम्पनी आफ दि मर्चेण्ट्स आफ इग्लैड ट्रेडिंग टू दि ईस्ट इडीज'। यह सयुक्त कम्पनी बादमे भी ईस्ट इडिया कम्पनीके नाममे ही विख्यात रही और डेढ सौ वर्षोमे वह मात्र एक व्यापारिक निगम न रहकर ऐसी राजनीतिक एव सैनिक सस्था बन गयी जिसने सपूर्ण भारतपर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित कर ली।

भारतपर इस कम्पनीकी प्रभुसत्ता सहसा नही स्थापित हो गयी। इसमे उसे सौसे भी अधिक वर्षोका समय लगा और इस अवधिमे उसे फ्रास और डच कम्पनियो तथा भारतीयोमे अनेक युद्ध करने पडे। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके सौभाग्यसे भारतपर प्रभुसत्ताका दावा करनेवाली केन्द्रीय मुगल सरकार धीरे-धीरे कमजोर होती गयी और देश अठारहवी शताब्दीके दौरान छोटे-छोटे अनेक मुस्लिम और हिन्दू राज्योमे बँट गया। इन राज्योमे परस्पर कोई एकता न रही। मुस्लिम राज्य न केवल हिन्दू राज्यो के खिलाफ थे वरन् उनमे आपसमे भी एकता न थी और न ही उनके मनमे दिल्लीमे शासन करनेवाले मुगल सम्राट्के प्रति कोई निष्ठा थी। यह फूट ईस्ट इण्डिया कम्पनीके लिए वरदान सिद्ध हुई। इस कम्पनीने १७६१ ई० मे वाँडीवाशका युद्ध जीत कर फ्रेंच ईस्ट इण्डिया कम्पनीका भारतसे सफाया कर दिया। सन् १७५७ मे पलासीका युद्ध (दे०) जीतनेके बाद बगाल, बिहार और उडीसापर उसका प्रभुत्व वस्तुत पहले ही स्थापित हो चुका था।

मुगल सम्राट् शाह आलम द्वितीय असहाय-सा कम्पनीकी फौजोका बढाव और विजयें देखता रहा। उसके देखते-देखते कम्पनीने मैसूरके मुस्लिम राज्यको हडप लिया और हैदराबादके निजामने कम्पनीके आगे आत्म-समर्पण कर दिया। पर वह कर कुछ भी न सका। हाँ, उसे इस बातसे अलबत्ता कुछ सतोष मिला कि कम्पनीने मराठोकी शक्तिको भी काफी क्षीण कर दिया था। राजपूत वीर थे, किन्तु शुरूसे उनमे आपसमे फूट थी। उन्होने आत्मरक्षार्थ कोई वार किये बिना ही कम्पनीके आगे घुटने टेक दिये। लार्ड हेस्टिंग्स (१८१३–२३) (दे०) के प्रशासन कालमे मराठो द्वारा आत्म-समर्पण कर दिये जानेके बाद तो मुगल सम्राट् वस्तुत कम्पनीका पेशनयाफ्ता बन गया। १८२६ ई० मे आसाम, १८४३ ई० मे सिन्ध, १८४९ ई० मे पजाब और १८५२ ई० मे दक्षिणी बर्मा भी कम्पनीके शासनमे आ गया। वास्तवमे अब बर्मामे पेशावरतक कम्पनीका पूर्ण आधिपत्य था।

ईस्ट इण्डिया कम्पनीसे व्यापारिक अधिकार और एकाधिपत्य पहले ही हस्तान्तरित किया जा चुका था और इस प्रकार वह ग्रेट ब्रिटेनके सम्राट्के प्रशासनिक अभिकरणके रूपमे कार्य कर रही थी। चारो तरफ शाति नजर आ रही थी कि अचानक १८५७ ई० मे भारतीय सिपाहियोने विद्रोह कर दिया। कम्पनीने कुछ "गद्दार" भारतीयोकी मददसे इस विद्रोहको दबा तो दिया, लेकिन भारतीयोके कुछ वर्गोमे विरोध और बगावतकी आग भडकती रही। यह बगावत ईस्ट इण्डिया कम्पनीके लिए घातक सिद्ध हुई। १८५८ ई० मे कम्पनीको समाप्त कर दिया गया और भारतकी प्रभुसत्ता ग्रेट ब्रिटेनके सम्राट्ने स्वय ग्रहण कर ली।

ईस्ट इण्डिया कालेज, हैलीबरी—१८०५ ई० मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा स्थापित। कम्पनीकी भारतीय सिविल

र्विसमे नौकरीके लिए मनोनीत युवकोको प्रशिक्षित करनेकी व्यवस्था इस कालेजमे की गयी थी। प्रत्येक प्रशिक्षार्थीको इसमे दो वर्ष व्यतीत करने पडते थे जहाँ उसे सामान्य शिक्षा, भारतीय भाषाओ, कानून तथा इतिहास-का ज्ञान कराया जाता था। शिक्षा की समाप्तिके पश्चात् उसे भारतीय सिविल सर्विसमे नौकरीपर भेज दिया जाता था। इस कालेजमे केवल मनोनीत युवक ही भर्ती किये जाते थे, अतएव उसमे उत्तीर्ण अथवा अनुत्तीर्ण होने-का प्रश्न नही था, बल्कि इस कालेजका उद्देश्य यही था कि प्रशिक्षार्थियोका उतना ज्ञान-वर्धन किया जाय जितनी उनमे क्षमता हो। इस कालेजमे बौद्धिक विकासकी ओर कम तथा सहयोगकी भावना विकसित करनेकी ओर अधिक ध्यान दिया जाता था। यह कालेज ५० वर्षतक चला। इसके पश्चात् १८५५ ई० मे भारतीय सिविल सर्विसमे प्रतियोगिता परीक्षा आरम्भ हो जानेपर उक्त कालेज समाप्त कर दिया गया। **(एन० सी० रायकृत -सिविल सर्विस)**

उ

उज्जयिनी–(जिसको **अवन्तिका** भी कहते है)–मालवामे स्थित भारतके प्राचीन नगरोमेसे एक। इसकी गणना हिन्दुओकी सात पवित्र नगरियोमे की जाती है। ईसासे पूर्व सातवी शताब्दीमे यह अवन्ति राज्यकी राजधानी थी जो बादमे मालवाके नामसे प्रसिद्ध हुई। ईसवी सन्‌की प्रारम्भिक शताब्दियोमे यह शक क्षत्रपो (दे०) के अधिकार-मे आ गयी परन्तु चन्द्रगुप्त द्वितीय ने, जो तीसरा गुप्त सम्राट् था, पाँचवी शताब्दीमे इसे पुन प्राप्त कर अपनी राजधानी बनाया। इस नगरका वर्णन प्रमुख रूपसे कालिदासके साहित्यिक ग्रन्थोमे हुआ है, जिन्होने अपने मेघदूत (दे०) मे इस नगरका चित्ताकर्षक वर्णन किया है। यह सिप्रा नदीके तटपर स्थित है और विभिन्न मन्दिरो, विशेष रूपसे महाकालके शिव मन्दिरमे शोभायमान है।

उडीसा–भारतीय गणतत्रका एक राज्य। यह भारतके पूर्वी समुद्रतटपर उत्तरमे बगाल और दक्षिणमे आध्र-तक फैला हुआ है। प्राचीन कालमे इसका नाम कलिग (दे०) था और यह नदवशके शासक महापद्मनद (दे०) के साम्राज्यका एक भाग था। नदवशके पतनके उपरात कलिग, मगध साम्राज्यमे अलग हो गया, परन्तु सम्राट् अशोकने उसे पुन जीतकर मौर्य साम्राज्यमे सम्मिलित कर लिया। इस युद्धकी भीषण नर-हत्या और लोगोके कष्टका सम्राट् अशोकके हृदयपर इतना गभीर प्रभाव पडा कि उसने बौद्धधर्म स्वीकार कर लिया। मौर्यवशके पतनके उपरात कलिग (उडीसा) चेरवशीय (दे०) राजाओके कालमे पुन स्वतत्र हो गया और खारवेल (दे०) के शासनकालमे इसकी शक्तिमे विशेष उत्कर्ष हुआ। चौथी शताब्दी ई० मे यह प्रदेश गुप्त साम्राज्यका एक भाग था और सातवी शताब्दीमे यह सम्राट् हर्ष-वर्द्धनके साम्राज्यके अन्तर्गत था। इसकी पुष्टि इस बात-से होती है कि हर्षका अतिम सैनिक अभियान ६४२ ई० मे गजामके विरुद्ध हुआ था, जो इसकी दक्षिणी सीमापर स्थित है। उपरात उडीसाके इतिहासमे एक अधकार युग आता है। किंतु नवी शताब्दीमे भजवशकी स्थापना-के उपरात यह प्रदेश पुन प्रकाशमे आया। इस वशका सबसे प्रतापी शासक रणभज था, जिसने लगभग ५० वर्षो-तक राज्य किया। १२वी शताब्दीके मध्यमे पूर्वी गग राजवशने उडीसापर अपना अधिकार जमाया और इस वशके शासक १४३४ ई० तक शासन करते रहे। इसी समय कपिलेन्द्रने इस वशके शासकको हरा कर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। पूर्वी गग वशका सबसे प्रसिद्ध शासक अनन्त वर्मा चोल गग था, जिसने १०७६ से ११४८ ई० तक राज्य किया और पुरीके प्रसिद्ध जगन्नाथ मदिरका निर्माण कराया। पूर्वी गगवशके शासकोने उत्तरी भारतके मुसलमानो और दक्षिणके बहमनी सुलतानोके आक्रमणोसे उडीसाकी रक्षा करके उसकी स्वतत्रता नष्ट न होने दी। अलाउद्दीन खिलजीके शासनकालमे कुछ समयके लिए उडीसाने दिल्ली सल्तनतकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। १३५६ ई० मे सुल्तान फीरोज तुगलकने भी उडीसापर आक्रमण किया, पर एक बडी सख्यामे हाथियोके उपहारसे सतुष्ट होकर वह वापस लौट आया। मुसलमान इतिहासकारोने उडीसाका उल्लेख जाजनगर के नाम से किया है, किन्तु १५६८ ई० मे बगालके सुल्तान सुलेमान करारानीने उडीसापर अधि-कार कर लिया था। १५७२ ई० मे बादशाह अकबरने इसे मुगल साम्राज्यमे सम्मिलित कर लिया और उडीसा बगाल प्रान्तका एक भाग बन गया। १७५१ ई० मे बगालके नवाब अलीवर्दी खाँने इसका कुछ भाग रघुजी भोसलाके अधीन मराठोको दे दिया। १८०३ ई० तक यह मराठा राज्यका एक भाग बना रहा और उसी वर्ष नागपुरके भोसला राजाने देवगाँवकी सधिके फलस्वरूप

इसे ईस्ट इण्डिया कम्पनीको दे दिया। १७६५ ई० में ही उड़ीसाका वह भाग जो बंगालके नवाबके अधीन शेष रह गया था, कम्पनीके अधिकारमें चला गया था, क्योंकि उसी वर्ष नवाबने दीवानीके अधिकार कम्पनीको दे दिये थे। इस प्रकार उड़ीसा बंगाल प्रान्तके साथ जुड़ गया और १८५४ ई० तक वह सीधे गवर्नर जनरल द्वारा शासित प्रान्त रहा। १८५४ ई० में बंगाल और बिहारके साथ इसका शासन भी एक लेफ्टीनेंट गवर्नरके हाथों सौंप दिया गया। १८६६–६७ ई० में यहाँ भीषण दुर्भिक्ष पड़ा। १९१२ ई० में इसे बंगालसे अलग कर दिया गया, किन्तु बिहारके साथ अलग प्रान्तके रूपमें यह जुड़ा रहा। अंततोगत्वा १९३५ ई० में उड़ीसा एक पृथक् प्रान्त बन गया और आज भी यह भारतीय गणतन्त्रका पृथक् प्रदेश बना हुआ है।

उत्तरकुरु–भारतीय आर्योंका एक भाग, जिसका उल्लेख 'ऐतरेय ब्राह्मण' में मिलता है। वे हिमालयके उस पार रहते थे।

उत्तर पश्चिमी सीमा प्रदेश–का निर्माण १९०१ ई० में हुआ, जब लार्ड कर्जन भारतका वायसराय था। सर्वप्रथम लार्ड लिटन (१८७६ से १८८० ई०) ने सीमान्त प्रान्तकी रचनाका सुझाव दिया था और इस प्रान्तमें सिन्ध तथा पंजाबके कुछ भागोंको भी सम्मिलित करनेका प्रस्ताव रखा था, किन्तु उस समय उसका सुझाव न माना गया। लार्ड कर्जनने सिंध और पंजाबके प्रान्तोंको नवनिर्मित सीमान्त प्रदेशसे अलग रखा और डूरण्ड रेखाके पूर्वके समस्त पख्तून भू-भागों तथा हजारा, पेशावर, कोहाट, बन्नू और डेरा इस्माइल खाँके व्यवस्थित जिलोंको मिला कर इस प्रान्तको एक अलग राजनीतिक इकाई का रूप दिया। इस प्रदेशका शासन चीफ कमिश्नरके हाथों सौंपा गया, जो सीधे वायसरायके नियंत्रणमें कार्य करता था। वायसरायकी सहायता राजनीतिक विभागके सदस्य अपने परामर्शोंसे करते थे। उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्तकी रचनाके फलस्वरूप तत्कालीन पश्चिमोत्तर प्रांतका नाम बदलकर आगरा और अवधका संयुक्त प्रान्त रख दिया गया, जिसे साधारणतया यू० पी० (वर्तमान उत्तर प्रदेश) कहा जाने लगा। १९३२ ई० में उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रदेश गवर्नर द्वारा शासित होने लगा और वहाँ विधान सभा भी बन गयी। स्वतन्त्रताके उपरांत भारतके विभाजनके फलस्वरूप यह पाकिस्तानका एक भाग बन गया।

उत्तर-मद्र–भारतीय आर्योंका एक गण, जो उत्तरकुरुकी भाँति हिमालयके उस पार रहता था।

उत्पल वंश–कश्मीरमें अवन्तिवर्मा (८५५–८३) द्वारा ८५५ ई० के लगभग प्रतिस्थापित। अवन्तिवर्माके शासनकालमें कश्मीरमें सिंचाईकी व्यवस्था अच्छी थी। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी शंकरवर्मा (८८३–९०२ ई०) ने सर्वप्रथम अपने राज्यकी सीमाका विस्तार किया, परन्तु अन्ततः अपनी ही प्रजाके हाथों जिसको उसने अत्यधिक कर-भार और मंदिरोंकी लूटसे पीड़ित कर रखा था, मार डाला गया। इसके बाद कुछ काल तक अराजकताका युग रहा जिसमें कश्मीरको भारी क्षति उठानी पड़ी। तत्पश्चात् दो राजा—पार्थ और उसका पुत्र उन्मत्तावन्ती—रक्त-पिपासु क्रूर शासक हुए। यह वंश उन्मत्तावन्तीकी मृत्युके साथ ही ९३९ ई० में समाप्त हो गया।

उदगिरिका युद्ध–फरवरी १७६० ई० में निजाम और मराठोंके बीच हुआ। तत्कालीन पेशवा बालाजी बाजीराव (दे०) के चचेरे भाई सदाशिव राव भाऊके नेतृत्वमें मराठों और हैदराबादके निजामकी मुठभेड़ हुई। निजाम निर्णयात्मक रूपसे पराजित हुआ और मराठोंकी महत्त्वाकांक्षा बलवती हो उठी।

उदय (या उदायी)–ई० पू० ४४३ के लगभग मगधका एक शासक। यह अजातशत्रु (दे०) का पौत्र एवं दर्शक (दे०) का पुत्र था। इसने सोन नदीके तटपर स्थित पाटलिपुत्रसे कुछ मील दूर गंगाके किनारे कुसुमपुर नगरकी स्थापना की। बादमें कुसुमपुर वृहत्तर पाटलिपुत्र (दे०) का भाग बन गया।

उदयपुरकी संधि–१८१८ ई० में उदयपुरके राणा और अंग्रेजी सरकारके बीच सपन्न। इसके अनुसार अंग्रेज प्रतिनिधि सर चार्ल्स मेटकाफके प्रयाससे मेवाड़ (उदयपुर) के राणा अंग्रेजोंके आश्रित हो गये।

उदय सिंह–मेवाड़का राणा। वह १५२७ ई० में बाबरके साथ युद्ध करनेवाले राणा संग्राम सिंहका पुत्र और उत्तराधिकारी था। उदयसिंहमें न तो अपने पिता जैसा साहस था और न मातृभूमि-प्रेम। दुर्भाग्यसे उसको मुगल सम्राट् अकबरका मुकाबला करना पड़ा, जिसने १५६७ ई० में मेवाड़पर चढ़ाई करके चित्तौड़को घेर लिया। उदयसिंहने चित्तौड़की सुरक्षामें व्यक्तिगत रूपसे कोई भाग नहीं लिया। चार महीनेके घेरेके बाद चित्तौड़ अकबरके अधिकारमें आ गया। उदयसिंहने चित्तौड़की पुनःप्राप्तिके लिए कोई प्रयास नहीं किया वरन् अपनी नयी राजधानी में, जिसे उसने उदयपुरमें स्थापित किया था, भोगविलासमें लीन हो गया। उसने

१५७२ ई० मे अपनी मृत्युतक उदयपुरपर, अपयशका भागी बनकर, राज्य किया। उसका यशस्वी पुत्र राणा प्रताप सिंह (दे०) उत्तराधिकारी बना।

उपगुप्त—एक प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु, जो वाराणसीके गुप्त नामक गधीका पुत था। वह अशोकका गुरु था। इससे प्रभावित होकर उसने बौद्ध धर्म अगीकार कर लिया। कहा जाता है कि वह अपने इस शिष्यके साथ पवित्र बौद्ध-स्थानोकी यात्रा करने गया था और उसने गौतमबुद्धके जन्म-स्थानका दर्शन भी किया था। अशोकके रुम्मिनदेई स्तम्भ-लेखसे यह प्रकट होता है। (एस० भट्टाचार्य—सेलेक्ट अशोक एपीग्रैफ्स, पृ० ५९)।

उपटन, कर्नल—ईस्ट इण्डिया कम्पनीका एक सैनिक अधिकारी, जिसने मराठोंके साथ १७७६ ई० मे पुरन्दर (दे०) की सधिकी थी। इसके द्वारा पहलेकी सूरत सधि (दे०) निरस्त कर दी गयी। पुरन्दरकी सधि कभी कार्यान्वित नही की जा सकी।

उपनिषद्—आर्योंके दार्शनिक विचारोकी सूचना देनेवाले ग्रन्थ जो वैदिक सहिताओके अतिम भागके रूपमे मिलते है। इनमे कर्मकाड अर्थात् यज्ञक्रियाओकी नही वरन् आध्यात्मिक चर्चा है। इनका प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म और आत्मा है, जिनका ज्ञान मोक्ष-प्राप्तिके लिए आवश्यक समझा जाता था। उपनिषद् सामान्यत गद्यमे है—लेकिन कुछ पद्यमे भी है। इनमेसे कुछ आरण्यकोके भाग हैं और कुछ स्वतत्र रूपमे भी मिलते है। वर्तमान समयमे सौ से भी अधिक ग्रन्थ उपनिषद्के नामसे प्रचलित है, लेकिन इनमेसे केवल बारहपर ही शकराचार्य जी (दे०) ने अपना भाष्य लिखा है और उनको ही मूल उपनिषद् ग्रन्थ माना जाता है। बारह उपनिषदोमे ऐतरेय और कौषीतकि ऋग्वेद (दे०) से सम्बन्धित हैं। छादोग्य और केन सामवेद (दे०) से। तैत्तिरीय, कठ और श्वेताश्वतर, बृहदारण्यक, ईश, प्रश्न, मुण्डक और माण्डूक्य कृष्ण और शुक्ल यजुर्वेदके अग है। निर्माणकालकी दृष्टिसे ये उपनिषदे बुद्धसे पूर्वकी मानी जाती है, यद्यपि उनमेसे कुछ निश्चित रूपसे बादमे सकलित हुई है।

उपवेद—आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद (सगीतशास्त्र) और शिल्पशास्त्र आदि विधाएँ जिन्हे वेदोसे निकली हुई समझा जाता था।

उमदुतुल उमरा—कर्नाटकका नवाब, जिसकी मृत्युके पश्चात् १८०१ ई० मे लार्ड वेलेजलीने कर्नाटकका शासन-प्रबन्ध इस आधारपर अपने हाथमे ले लिया कि नवाब बगावतकी नीयतसे मैसूरके टीपू सुलतान (दे०) के साथ पत्राचार कर रहा था।

उर्दू—तुर्की और फारसी बोलनेवाले विजेता मुसलमानो और हिन्दी बोलनेवाले विजित भारतीयोके बीच सलापकी आवश्यकताके परिणाम-स्वरूप उत्पन्न। 'उर्दू' तुर्की शब्द है जिसका अर्थ छावनी है। उर्दू मूलरूपमे फौजी लश्करकी भाषा थी, जिसमे फारसी, तुर्की और हिन्दीसे शब्द लिये गये थे। इसकी लिपि अरबी है, जो दाहिनी ओरसे बायी ओर लिखी जाती है और इसका व्याकरण तथा वाक्य-रचनाका ढग मुख्यरूपसे हिन्दीका है। उर्दू यद्यपि उत्तरी भारतमे मुख्यरूपसे मुसलमानो द्वारा बोली जाती है, तथापि अनेक हिन्दू भी इसे बोलते है। इसमे धीरे-धीरे साहित्यका भी विकास हुआ। प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरोने, जो अलाउद्दीन खिलजीके आश्रयमे था और जिसकी मृत्यु १३२५ ई० मे हुई, उर्दू तथा फारसीमे रचना-की थी। आधुनिक युगमे सर मुहम्मद इकबाल उर्दूके महान् कवियोमेसे थे।

उलमा (आलिमका बहुवचन)—इस्लाम धर्मके मीमासाकारके रूपमे कट्टरपन तथा दीनी (मजहबी) हुकूमतके समर्थक थे। उन्होने अलाउद्दीन खिलजी (दे०) मुहम्मद तुगलक (दे०) और अकबर (दे०) जैसे शक्तिशाली मुसलमान शासकोका विरोध किया। अशिक्षित तथा अज्ञानी मुसलमान जनतापर उनका भारी प्रभाव था जो आज भी बना हुआ है।

उलुग खा—सुलतान गयासुद्दीन बलबन (दे०) का सेनानायक। उलुग खाँने ओरगलके काकतीय राजा प्रतापरुद्र को १३२३ ई० मे हराकर उसका राज्य छीन लिया।

उलुग खाँ बलबन, सुलतान—दे० गयासुद्दीन बलबन।

उस्ताद ईसा—सभवत 'ताज' का वास्तु-कलाविद था।

उस्ताद मसूर—सम्राट् जहाँगीरका आश्रित एक प्रसिद्ध चित्रकार। इसके कुछ चित्र अब भी मिलते है जो उसके समकालीनो द्वारा की गयी उसकी चित्रकलाकी प्रशसाके औचित्यको सिद्ध करते हैं।

उस्मान खाँ—अफगानोका सरदार, जिसने बगालमे सूबेदारो-के निरन्तरके परिवर्तनोसे उत्पन्न असतोषका लाभ उठाया और बगालके पठानोको उत्तेजित करके मुगल सम्राट् जहाँगीरके विरुद्ध १६१२ ई० मे विद्रोह खडा कर दिया। लेकिन मार्च १६१२ ई० मे वह मुगल फौजो द्वारा परास्त हुआ और युद्धमे सिरपर लगे एक गम्भीर घावके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गयी।

ऋ

ऋग्वेद–चार वेदोमे सबमे प्राचीन। कट्टर हिन्दू वेदोको अपौरुषेय मानते है और उनके अनुसार वैदिक ऋचाओके साथ जिन ऋषियोके नाम मिलते है वे उनका दर्शन करनेवाले (द्रष्टा) थे। ऋग्वेद शब्द ऋक् (ऋचा अथवा मत्र) तथा वेद (विद् अर्थात् ज्ञान) के सयोगमे बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है ज्ञानके सूक्त। ऋग्वेद भी अन्य तीन वेदोकी भाँति चार भागोमे विभाजित है सहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्। ऋग्वेद सहितामे १०१७ सूक्त हैं जो १० मडलोके अतर्गत मिलते है। ऋग्वेदके अनेक मत्र यज्ञपरक है, किन्तु उसमे कुछ ऐसे मत्र भी मिलते हैं जिन्हे आदिकालीन धार्मिक कविताका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण कहा जा सकता है। ऐतरेय एव कौशीतक ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रथ ऋग्वेदसे सम्बन्धित हैं। ऋग्वेदका रचनाकाल अभी सुनिश्चित नही हो सका है। सम्भवत उसकी रचना ई० पू० २५०० से लेकर ई० पू० १५०० तक होती रही। उसका रचनाकाल चाहे जो भी निर्धारित हो, इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि ऋग्वेदमे भारतीय आर्योके प्राचीनतम युगका इतिहास और उस युगकी धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक अवस्थाका ज्ञान प्राप्त होता है। **(देखो, वेद) (कैम्ब्रिज, भाग १, खंड ४. ए० सी० दास—रिगवेदिक इडिया तथा ए० केगी–रिगवेद)**।

ऋषि–वेद मत्रोके द्रष्टा माने गये है। इन्ही ऋषियोकी परपरामे व्यास हुए जिन्होने वेदोका सग्रह व सम्पादन किया तथा पुराण, महाभारत, भागवत आदि हिन्दू धर्मग्रथोकी रचना की। इसी परपरामे अगस्त्य जैसे ऋषि हुए जिन्होने भारतके विभिन्न भागोमे आर्य सभ्यताका प्रसार किया। जनश्रुतियोके अनुसार दक्षिण भारतमे आर्य सभ्यताका प्रसार करनेवाले अगस्त्य ऋषि थे।

ए

एटिआल्किडस–भारतका एक यवन राजा था जो तक्षशिलामे राज्य करता था। आधुनिक भिलसीके निकट वेसनगर (विदिशा) मे प्राप्त स्तम्भ-लेखसे पता चलता है कि एटिआल्किडसने विदिशाके राजाके दरबारमे हेलियोडोरसको अपना राजदूत बना कर भेजा था। स्तम्भलेख ई० पू० १४० और ई० पू० १३० के बीचका माना जाता है।

एटिगोनस गोटस–का उल्लेख अशोकके शिलालेख (सख्या तेरह) मे अन्तिकिनिके रूपमे किया गया है। उसके साथ अशोकके मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे। वह मैसिडोनियाका राजा (ई० पू० २७७ मे ई० पू० २३९ तक) था।

एटियोकस प्रथम सोटर–सेल्यूकस निकेटरका पुत्र और सीरियाका राजा। भारतमे जब द्वितीय मौर्य सम्राट् बिदुसार राज्य करता था, उसके समयमे एटियोकस सीरियामे राज्य करता था। स्ट्राटो नामक इतिहासकारके अनुसार एटियोकस प्रथमने डायमेचस नामक एक यवनको राजा बिन्दुसारके दरबारमे अपना राजदूत बनाकर भेजा था। एटियोकस और बिन्दुसारके बीचमे मैत्री सम्बन्ध थे। बिन्दुसारने एटियोकस प्रथमको अपने लिए मीठी शराब (मधु), सूखे अजीर और एक यवन दार्शनिक खरीद कर भेजनेके लिए लिखा। एटियोकसने जवाबमे लिखा कि मीठी शराब और सूखे अजीर तो भेज दूँगा, लेकिन यवन दार्शनिक नही भेज सकता क्योकि यूनानके कानूनके अनुसार दार्शनिकको बेचा नही जा सकता।

एटियोकस द्वितीय थिओस–सीरिया और पश्चिमी एशियाका राजा (२६१–२४६ ई० पू०) था। उसका उल्लेख अशोकके शिलालेख सख्या तेरहमे अतियोक नामक योन (यवन) राजाके रूपमे हुआ है जिसका राज्य अशोकके साम्राज्यकी पश्चिमी सीमापर बताया गया है। अशोकने उसके साथ मित्रताके सम्बन्ध बना रखे थे और उसके राज्यमे धर्मका प्रचार किया था, मनुष्यो और पशुओके लिए चिकित्सालय खुलवाये थे और ओषधवनस्पतिके पौधे लगवाये थे। **(द्वितीय शिलालेख)**

एटियोकस तृतीय महान्–यवन राजा जो ईसा पूर्व तीसरी शताब्दीके अतमे सीरिया और पश्चिमी एशियामे राज्य करता था। उसके समयमे युथिडिमासके नेतृत्वमे बैक्ट्रिया स्वाधीन हो गया। इसके बाद ही एटियोकस तृतीयने हिन्दू-कुश पार करके सुभागसेन नामक भारतीय राजापर आक्रमण किया जिसका राज्य काबुलकी घाटीमे था। एटियोकस तृतीयने सुभागसेनको पराजित कर उससे क्षतिपूर्तिके रूपमे बहुत-सा धन और हाथी लिये और अपने देशको वापस चला गया। इस आक्रमणका कोई स्थायी प्रभाव नही पडा।

एंडरसन–बम्बईकी यूरोपीय रेजीमेण्टका लेफ्टिनेण्ट था जिसको मार्च १८४८ ई० मे लाहौर दरबारमे एक अन्य अधिकारी वान्स एग्न्यू और सरदार खानसिंहके साथ भेजा गया था। सरदार खानसिंहको दीवान मूलराजके स्थानपर मुल्तानका सूबेदार बनाया गया था। मुल्तान पहुँचनेके

बाद लेफ्टिनेण्ट एडरसन और उसके साथी वान्स एग्न्यूकी २० अप्रैल १८४८ ई० को हत्या कर दी गयी। अनुमान हैं कि दीवान मूलराज जिसे सूबेदारी से हटाया गया था उसने ही इन दोनोंकी हत्या करवा दी थी। इस घटनाके बाद मुल्तानमें भीषण उपद्रव हुए, जिनके परिणामस्वरूप द्वितीय आग्ल-सिख युद्ध (१८४८–४९ ई०) हुआ।

एकनाथ–१६वी शताब्दी ई० के उत्तरार्द्धमें उत्पन्न महाराष्ट्रके एक प्रसिद्ध सन्त और धर्मसुधारक। वे पैठनमें पैदा हुए और ब्राह्मण होते हुए भी उन्होंने जातिभेदकी तीव्र निंदाकी तथा भगवद्भक्तिके प्रचारमें वे लगे रहे। उन्होंने 'महार' नामक निम्न जातिके एक व्यक्तिके साथ भोजन करनेमें भी सकोच नहीं किया। वे १६०८ ई० में स्वर्गवासी हुए। उन्होंने अपनी कविताओं तथा अपने उपदेशों द्वारा शिवाजीके नेतृत्वमें मराठा शक्तिके अभ्युदयमें भारी योगदान दिया।

एक्स ला चैपेलकी सन्धि–१७४८ ई० में सम्पन्न। इस सधिके द्वारा आस्ट्रियाके उत्तराधिकारका युद्ध समाप्त हो गया और तदनुसार भारतमें भी प्रथम आग्ल-फ्रासीसी युद्ध समाप्त कर दिया गया और विजित क्षेत्र एक दूसरेको लौटा दिये गये। मद्रास, जिसपर इस युद्धके दौरान फ्रासीसियोंने कब्जा कर लिया था, फिर अग्रेजोंको वापस कर दिया गया।

एजस प्रथम–भारतका एक पार्थियन राजा था जो पजाबमें राज्य करता था। पहले वह आकोशिया (कन्धार) और सीस्तानका उपराजा था। बादमें ई० पू० ५८ में मौअसके स्थानपर उसका स्थानान्तरण तक्षशिला कर दिया गया। उसने पहले पार्थियन राजा मिथ्रिदातसके अधीन रहकर उस प्रदेशमें राज्य किया। वह एक शक्तिशाली राजा था जिसने करीब ४० वर्ष राज्य किया। इस बातकी सम्भावना है कि अपने लम्बे राज्य कालके अन्तमें उसने अपनेको पार्थियासे स्वतत्र कर लिया था। उसके नामके सिक्के पजाबमें मिले हैं। कुछ विद्वानोंका मत है कि विक्रम सवत् जो ईसवी पूर्व ५८–५७ में प्रचलित हुआ, उसने शुरू किया था।

एजस द्वितीय–एजस प्रथमका पौत्र था जो अपने पितामहकी गद्दीपर अपने पिता एजीलिसेस (दे०) के बाद गद्दीपर बैठा और २० ई० तक राज्य किया। एजेस द्वितीयके नामका पता भी उसके सिक्कोंसे चला है। सिक्कोंमें उसका नाम अश्पवर्मन्के नामके साथ आया है जिससे प्रकट होता है कि भारतीयों और पार्थियन राजाओंमें निकट सहयोग था।

एजीलिसेस–एजस प्रथमका पुत्र और उत्तराधिकारी था। उसके सिक्के भारतके पार्थियन राजाओंके सबसे अच्छे सिक्के माने जाते है, जिनकी नकल बादमें भारतीय राजाओंने की।

एटली, क्लीमेन्ट रिचर्ड (१८८३–१९६७ ई०)–१९४५–५० और १९५०–५५ ई० में ब्रिटेनके प्रधान मत्री। उनकी शिक्षा आक्सफोर्डमें हुई और इनर टेम्पिलके वे सदस्य थे। १९०७ ई० में वे समाजवादी विचारधाराके हो गये। प्रथम महायुद्धमें उन्होंने सैनिकके रूपमें भाग लिया और मेजरका पद प्राप्त किया। १९२२ में एटली ब्रिटिश कामन्स सभाके सदस्य चुने गये और १९५५ तक बने रहे जब उनको लार्ड बना दिया गया। १९३१ ई० में वे ब्रिटेनकी लेबर पार्टीके नेता चुने गये। द्वितीय महायुद्धके दौरान वे विस्टन चर्चिलके युद्ध मत्रिमडलमें मत्री बनाये गये। १९४५ के आम चुनावमें लेबर पार्टीने कजरवेटिव पार्टीको पराजित कर दिया और विस्टन चर्चिलके स्थानपर एटली प्रधान मत्री बने। उनके प्रधान-मत्रित्व कालमें ब्रिटिश पार्लियामेण्टने एक कानून बनाकर अगस्त १९४७ ई० में भारतका विभाजन करके उसे स्वतत्रता प्रदान कर दी। १९५५ के आम चुनावमें कजरवेटिव पार्टीने लेबर पार्टीको हरा दिया। उसके बाद एटलीको लार्ड सभाका सदस्य बना दिया गया। उनकी मृत्यु १९६७ ई० में हुई।

एडवर्ड, प्रिन्स आफ वेल्स–बादमें इग्लैण्डके राजा एडवर्ड अष्टम। वे १९२१ ई० में भारतमें यात्रा करने आये थे। उस समय देशमें १९१९ के गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया एक्टके विरोधमें महात्मा गाँधीके नेतृत्वमें असहयोग आदोलन जोर-शोरसे चल रहा था। अतएव जब वे नवम्बर महीनेमें बबई उतरे और बादमें कलकत्ता गये, तो नगरोंकी सडकें उन्हें सूनी दिखाई दी। भारतीय जनताने उनका कोई स्वागत नहीं किया। उनकी यात्राके समय समस्त भारतमें जबरदस्त हडतालें हुई और उनके स्वागत समारोहोंका पूर्ण बहिष्कार किया गया। जब १९३६ ई० में वे सम्राट् बने तो वे बहुत थोडे दिन सिहासनपर रहे, जिसका भारतीय शासनपर कोई विशेष प्रभाव नहीं पडा। बादमें एक तलाकशुदा सामान्य महिलासे विवाह कर लेनेपर उन्हें राजगद्दी छोडनी पडी। इस घटनाकी चर्चा भारतमें भी खूब हुई।

एडवर्ड्स, विलियम–इग्लैण्डके राजा जेम्स प्रथमका राजदूत, जो सम्राट जहाँगीरके दरबारमें १६१५ ई० में भारत आया था। जहाँगीरने उसकी बडी आवभगत की लेकिन उसे सम्राटसे कोई रियायत न प्राप्त हो सकी।

एडवर्ड सप्तम–१९०३ से १९११ ई० तक इंग्लैण्डके राजा तथा भारतके सम्राट्। उनके राज्याभिषेकके उपलक्ष्यमें लार्ड कर्जनने दिल्लीमें एक दरबार किया। इंग्लैण्डका संवैधानिक राजा होनेके कारण, उन्हें भारतके मामलेमें ब्रिटिश सरकारके भारत-मंत्रीकी सलाहसे कार्य करना पड़ता था। १९०८ ई० में, जब ब्रिटिश सम्राट् द्वारा भारतीय शासनको अपने हाथमें लिये ५० वर्ष पूरे हो चुके थे, उन्होंने भारतीय प्रजा तथा देशी राजाओंके नाम एक घोषणा प्रकाशित की, जिसमें विगत ५० वर्षोंके दौरान ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतमें की गयी सेवाओंका गर्वपूर्वक उल्लेख किया गया था। घोषणाके अंतमें यह वादा किया गया था कि भारतमें प्रतिनिधित्वपूर्ण शासन-संस्थाओंका विस्तार किया जायगा। इस शाही घोषणाका कार्यान्वयन १९०९ ई० में इण्डियन कांसिल ऐक्टके रूपमें किया गया। इसमें उन संवैधानिक सुधारोंकी व्यवस्था की गयी थी जिनकी सिफारिश ब्रिटिश सरकारके भारत-मंत्री लार्ड मार्ले तथा भारतके गवर्नर-जनरल लार्ड मिण्टो द्वितीयने की थी। निजी तौरपर सम्राट् एडवर्ड सप्तम इन 'सुधारों'के विरुद्ध थे, लेकिन एक संवैधानिक शासकके नाते उन्होंने अपनी उत्तरदायी सरकारकी नीति और कार्यों-पर अपनी स्वीकृति देकर विवेकपूर्ण कार्य किया।

एडवर्ड्स, सर हर्बर्ट (१८१९–६८ ई०)–ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी सेवामें १८४१ ई० में भारत आया और पंजाबमें नियुक्त हुआ। उसने प्रथम सिख युद्ध (१८४५–४६ ई०) के दौरान एक सिविलियन अधिकारीकी हैसियत-से मुदकी तथा सुबराहानकी लड़ाइयाँ देखीं। १८४८ ई० में जब वह मुल्तानमें था तो वहाँके सिख दीवान मूलराजने विद्रोह कर दिया और ऐग्न्यू तथा ऐण्डरसन नामक दो अंग्रेज अफसर मार डाले गये। उसने एक फौज इकट्ठी करके मूलराजको दो लड़ाइयोंमें पराजित कर दिया और कई महीनेतक मुल्तानपर अधिकार बनाये रखा। अंतमें ब्रिटिश सेना उसकी मददके लिए पहुँच गयी। उसकी सेवाओंकी ब्रिटिश संसदमें भी प्रशंसा हुई। पेशावरके कमिश्नरकी हैसियतसे उसने १८५५ तथा १८५७ ई० में अफगानिस्तानके अमीर दोस्त मुहम्मद खाँसे संधि करनेमें महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की, जिसका फल यह हुआ कि १८५७ ई०के प्रथम स्वाधीनता-संग्राम (कथित सिपाही-विद्रोह) के दौरान अमीर तटस्थ रहा। स्वास्थ्य खराब हो जानेके कारण उसने १८६५ ई० में अवकाश ले लिया और स्वदेश वापस चला गया। उसे साहित्यसे भी अनुराग था। उसने अपने कार्यकालके आरम्भमें "ब्राह्मणी-बुल्स लेटर्स इन इण्डिया टु हिज कजिन जान-बुल इन इंग्लैण्ड" नामक पुस्तक लिखी। बादमें १८४८–४९ ई० में "ए इयर ऑन द पंजाब फ्रान्टियर" नामक एक और पुस्तक लिखी।

एनफील्ड रायफिल–एक नये प्रकारकी रायफिल, जो १८५६ ई० में ब्रिटिश भारतीय सेनाके सैनिकोंको प्रयोगके लिए दी गयी। इन रायफिलोंमें ग्रीज लगे हुए कारतूस प्रयुक्त होते थे, जिन्हें प्रयोगके पहले मुँहसे काटना पड़ता था। सिपाहियोंका विश्वास था कि इन कारतूसोंमें गाय अथवा सुअरकी चर्बीका प्रयोग किया गया है, अतएव इसे दाँतसे काटनेपर हिन्दू और मुसलमान सिपा-हियोंका धर्म नष्ट होता है। इसके कारण भारतीय सेनामें विद्रोहकी भावना उत्पन्न हुई। प्रथम भारतीय स्वाधीनता-संग्राम (१८५७ ई०) के मूलमें यह भी एक कारण था।

एम्प्टहिल, लार्ड–मद्रासका गवर्नर, जिसने १९०४ ई० में लार्ड कर्जनके अवकाशपर जानेपर ६ महीने भारतके वाइसरायके रूपमें काम किया था।

एलगिन, लार्ड–मार्च १८६२ ई० में लार्ड केनिंगके स्थानपर भारतका गवर्नर-जनरल तथा वाइसराय बनाया गया। लेकिन इस पदपर कुछ ही समय रहनेके पश्चात् नवंबर १८६३ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी कब्र धर्मशाला (पंजाब) में बनी हुई है। लार्ड एलगिनके जमानेकी मुख्य घटना यह है कि उसने पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्तमें कबायलियोंके विद्रोहको दबानेके लिए 'अम्बेला अभियान' चलाया था।

एलगिन, लार्ड, द्वितीय–१८९४ से १८९९ ई० तक भारतका गवर्नर-जनरल तथा वाइसराय। अपने पिताकी भाँति वह इसके पूर्व किसी महत्त्वपूर्ण पदपर नहीं रहा और न उसमें कोई विशेष व्यक्तिगत योग्यता थी। इसके अलावा उसका भाग्य भी खराब था। उसीके कार्यकालमें १८९६ ई० में बम्बईमें प्लेगकी महामारी फैली और १८९६–९७ ई० में देशव्यापी अकाल पड़ा। इन दोनों विपत्तियोंको रोकनेमें अथवा जनताको राहत पहुँचानेमें उसका प्रशासन सफल नहीं हुआ। नतीजा यह हुआ कि प्लेग और अकालके कारण अकेले ब्रिटिश भारतमें १० लाख व्यक्ति कालके गालमें समा गये। इसके अलावा बम्बईमें प्लेग फैलनेसे अंग्रेजोंके हाथ-पैर इतने फूल गये कि उन्होंने सेनाकी सहायतासे उसे रोकनेके लिए अत्यन्त कठोर कदम उठाये। अंग्रेज अधिकारी लोगोंको घरोंसे निकालनेके लिए जनान-खानेतकमें घुस जाते थे। इससे भारतीय जनतामें बड़ी

कटुता उत्पन्न हुई। फल यह हुआ कि पूनामे दो अग्रेज, जिनमे एक सिविलियन तथा दूसरा सैनिक अधिकारी था, मार डाले गये। इस घटनाने राजनीतिक रूप ग्रहण कर लिया।

लार्ड एलगिन द्वितीयके जमानेमे ही यह तथ्य भी नग्न रूपमे सामने आया कि भारत सरकारकी वित्तीय नीति किस प्रकार अग्रेज उद्योगपतियोके लाभके लिए चलायी जाती है। १८९५ ई० मे बजटमे सभाव्य घाटेको रोकनेके लिए सभी प्रकारके आयातपर ५ प्रतिशत शुल्क लगाया गया। केवल लकाशायरसे भारत आनेवाले कपडेपर यह शुल्क नही लगाया गया। इस पक्षपातपूर्ण नीतिका भारतीयो द्वारा घोर विरोध किया गया। फल यह हुआ कि अगले बजटमे लकाशायरसे आयातित कपडेपर भी शुल्क लगानेका निश्चय किया गया, लेकिन उसके साथ भारतमे बने कपडेपर भी उत्पादन-शुल्क लगा दिया गया। इससे यह स्पष्ट हो गया कि ब्रिटिश सरकार भारतके कपडा-उद्योगके विकासको पसन्द नही करती। लार्ड एलगिन द्वितीयने १८९५ ई० मे गिलगिटके पश्चिम और हिन्दूकुश पर्वतके दक्षिणमे स्थित चित्राल रियासतमे उत्तराधिकारके प्रश्नपर अनावश्यक रीतिसे हस्तक्षेप किया जिसके फलस्वरूप उसे पश्चिमोत्तर प्रदेशमे लम्वा और खर्चीला युद्ध चलाना पडा। इस युद्धमे ब्रिटिश भारतीय सेनाकी विजय अवश्य हुई और भारत-अफगान सीमासे लेकर चित्रालतक सैनिक यातायातके लिए सडकका निर्माण कर दिया गया, लेकिन चित्रालके आन्तरिक मामलेमे अग्रेज सरकारके हस्तक्षेपसे आसपासके मोहमन्द और अफरीदी कबीलोमे रोप फैल गया और उन्होने १८९७ ई० मे अग्रेजोके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। लार्ड एलगिन द्वितीयको उस विद्रोहका दमन करनेके लिए कठिन सघर्ष करना पडा और अन्तमे ३५ हजार फौज लगा देनी पडी, तब कही वे काबूमे आये। १८५७ ई० के भारतीय स्वाधीनता-सग्रामके पश्चात् अग्रेजोके लिए यह सबसे कठिन सघर्प सिद्ध हुआ। लार्ड एलगिन द्वितीयके कार्यकालमे एक महत्त्वपूर्ण सैनिक सुधार हुआ। समस्त भारतीय सेनाके लिए एक प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया और उसके अधीन बगाल, मद्रास, वम्बई तथा पजाब एव पश्चिमोत्तर प्रान्तमे तैनात पलटनोको सँभालनेके लिए चार लेफ्टिनेण्ट-जनरल नियुक्त किये गये। लार्ड एलगिन द्वितीयके कार्यकालमे केवल यही एक महत्त्वका सुधार हुआ।

एलफिन्स्टन, जनरल विलियम जार्ज कीथ–(१७८२–१८७२ ई०)–ब्रिटिश सेनामे १८०४ ई० मे प्रविष्ट। उसने वाटरलूके युद्धमे तथा अन्य अनेक लडाइयोमे भाग लिया। पहले अफगान-युद्धके समय १८३९ ई० मे वह ब्रिटिश भारतीय सेनाके वनारस डिवीजनका कमाण्डर था। उसे भी अफगानिस्तान भेजा गया। १८४१ ई० के अन्तमे वह कावुलपर चढाई करनेवाली ब्रिटिश-भारतीय सेनाका प्रधान सेनापति वनाया गया। जब अफगानोने २३ दिसबर १८४१ ई० मे सर डब्लू० मैकनाटनकी हत्या कर दी, तो एलफिन्स्टन अपने बुढापे और खराब स्वास्थ्यके कारण अपनी सेनाकी सुरक्षाका उपाय न कर सका। जब ब्रिटिश सेना कावुलसे वापस लौटनेके लिए वाध्य हो गयी तो उसने अन्य अग्रेज अफसरोके साथ अपनेको वधकके रूपमे अकबर खाँके हवाले कर दिया। इससे अग्रेजोकी प्रतिष्ठाकी भारी हानि हुई। अप्रैल १८४२ ई० मे जब वह भारत वापस लौट रहा था, तो रास्तेमे ही नजीरामे उसकी मृत्यु हो गयी।

एलफिन्स्टन, जान बैरन–(१८०७–६०)–आरम्भमे १८३७ से १८४२ ई० तक मद्रासका गवर्नर। इस दौरान कोई विशेष घटना नही घटी। लेकिन जब वह १८५३ से १८६० ई० तक बम्बईका गवर्नर रहा, तब भारतमे प्रथम स्वाधीनता-सग्राम छिडा। उसने बडी चतुराईसे वम्वई प्रातमे विद्रोहाग्नि नही फैलने दी और मध्य भारतके कुछ भागोमे विद्रोहको दवानेमे सहायता दी।

एलफिन्स्टन, माउण्ट स्टुअर्ट–(१७७९–१८५९)–विख्यात इतिहासकार और प्रशासक। वह ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी सेवामे १७९५ ई० मे लिपिककी हैसियतसे भारत आया। बहुत शीघ्र वह पेशवा वाजीराव द्वितीयके दरवारमे सहायक ब्रिटिश रेजीडेण्ट हो गया। उसने असई तथा आरगाँवके युद्धोमे भारी वीरता दिखायी। १८०४ से १८०८ ई० तक नागपुरमे रेजीडेण्ट रहा। वादमे १८११ ई० मे पूनाका रेजीडेण्ट वनाया गया, जहाँ उसने भारी कूटनीतिक चातुर्यका परिचय दिया। तीसरे मराठा-युद्ध (दे०) (१८१७–१९ ई०) मे उसने भारी सगठन-शक्ति और साहसका परिचय दिया। इस युद्धमे उसके घरपर आक्रमण हुआ, उसके पुस्तकालयको नष्ट कर दिया गया, लेकिन उसने हिम्मत नही हारी और अन्तमे खड़कीकी लडाई (१८१७ ई०) मे वाजीराव द्वितीयको पराजित कर दिया। युद्ध समाप्त होनेपर उसे वम्वईका गवर्नर वना दिया गया। इस पदपर वह अवकाश ग्रहण करनेके समय (१८२७ ई०) तक वना रहा। गवर्नरकी हैसियतसे उसने वम्वई प्रान्तमे अनेक सुधार लागू किये

और प्रान्तमे शिक्षाका प्रसार किया। बम्बईका एलफिन्स्टन कालेज उसके ही सम्मानमे स्थापित किया गया था। उसने १८४१ ई० मे अग्रेजीमे 'भारतका इतिहास' नामक अपनी विख्यात पुस्तक लिखी।

एलारा—दक्षिणमे प्राचीन चोल वशका एक राजा, जो ईसवीसे पूर्व दूसरी शताब्दीमे हुआ। कहा जाता है कि उसने श्रीलकापर विजय प्राप्त की थी। वह अत्यधिक न्याय-प्रिय था।

एलिनबरो, लार्ड—१८४२ ई० से १८४४ ई० तक भारतका गवर्नर-जनरल। इसके पूर्व वह बोर्ड आफ कण्ट्रोलका अध्यक्ष रह चुका था। वह भारतमे लार्ड आकलैण्ड (दे०) के बाद गवर्नर-जनरल हुआ। उस समय भारतकी अग्रेज सरकार पहले अफगान-युद्ध (दे०) (१८४२–४४ ई०) मे सलग्न थी। लार्ड एलिनबरोने अफगानिस्तान-मे ब्रिटिश भारतीय सेनाको वापस बुलाते हुए किसीको यह आभास नही होने दिया कि ब्रिटिश सेना हार कर वापस आयी है। इसके बाद ही एलिनबरोने अन्याय-पूर्ण ढगसे सिंधपर चढाई बोल दी। सर चार्ल्स नैपियर (दे०) के नेतृत्वमे अग्रेजी सेनाने सिंधके अमीरोको पराजित कर दिया और १८४३ ई० मे सिंधको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमे सम्मिलित कर लिया गया।

लार्ड एलिनबरोने इसके बाद शिन्देके राज्यमे भी हस्तक्षेप किया और १८०४ ई० की विस्मृत एव निरस्त सधिका आधार लेकर ग्वालियरके राज्यपर चढाई करनेके लिए अग्रेजी सेना भेज दी। शिन्देकी फौजे महाराजपुर और पनियारके युद्धोमे पराजित हुई। लार्ड एलिनबरोने यद्यपि ग्वालियरके राज्यको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमे नही मिलाया, तथापि उसे अग्रेजोका आश्रित राज्य अवश्य बना लिया। उस समय ग्वालियरकी गद्दीपर एक नाबालिग शासक था, अतएव यह व्यवस्था की गयी कि राज्यका प्रशासन एक रीजेन्सी कौसिलके हाथमे होगा जिसके सभी सदस्य भारतीय होगे और वे ग्वालियर स्थित ब्रिटिश रेजीडेण्टकी सलाहपर शासन चलायेगे। ग्वालियर राज्यकी फौजकी सख्या घटाकर ६ हजार कर दी गयी, तथा १० हजार अग्रेजी सेना वहाँ तैनात कर दी गयी। इस प्रकार ग्वालियर राज्य व्यवहारत अग्रेज सरकारके अधीन हो गया।

लार्ड एलिनबरोकी इन कारवाइयोको ब्रिटेन स्थित कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सने पसद नही किया और कम्पनीके इतिहासमे पहली बार गवर्नर-जनरलको वापस बुला लिया गया। लार्ड एलिनबरोको स्वदेश वापस लौट जाना पडा। ब्रिटेन वापस जाकर भी लार्ड एलिनबरो भारतीय मामलोमे दिलचस्पी लेता रहा। १८५३ ई० मे जब इण्डियन सिविल सर्विसमे भर्तीके लिए प्रतियोगिता परीक्षा आरम्भ की गयी तो उसने उसका तीव्र विरोध किया, लेकिन इस विरोधका कोई फल नही निकला।

एलिफैण्टाकी गुफाएँ—बम्बईके निकट, पौराणिक देवताओकी अत्यन्त भव्य मूर्तियोके लिए विख्यात है। इन मूर्तियोमे त्रिमूर्ति सर्वश्रेष्ठ है।

एलिस, विलियम—१७६२ ई० मे उस समय पटना स्थित अग्रेजी फैक्टरीका मुखिया, जब बगालके नवाब मीर कासिम (दे०) ने बगाल, बिहार और उडीसामे समस्त व्यापारियोपरसे चुगी हटा ली। इसका नतीजा यह हुआ कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी और उसके कर्मचारियोके गैरकानूनी व्यापारसे जो लाभ होता था, वह समाप्त हो गया। कम्पनीके जिन कर्मचारियोको इस अवैध व्यापारसे भारी लाभ होता था, उन्होने नवाबकी आज्ञाका तीव्र विरोध किया। विलियम एलिस इस गैरकानूनी व्यापार-का सबसे उग्र पक्षधर था। उसने नवाबकी आज्ञाके विरोधमे पटना नगरपर कब्जा करनेका प्रयास किया। नवाबके सैनिकोने उसका प्रतिरोध किया। फलत एलिस अपनी छोटी-सी सेनाके साथ परास्त हो गया और वह स्वय मारा गया। इन्ही घटनाओके फलस्वरूप १७६३ ई० मे नवाब मीर कासिम तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनीके बीच युद्ध छिड गया।

एशियाटिक सोसाइटी आफ बगाल—स्थापना, प्राच्य विद्या-ध्ययनमे अभिरुचि रखनेवाले विद्वानोकी सस्थाके रूपमे १७८४ ई०मे कलकत्तेमे सर विलियम जोन्स द्वारा। गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्सने इसमे पूरी सहायता की। इस सस्थाकी ओरसे केवल भारत ही नही बल्कि एशियासे सम्बन्धित विभिन्न अनुसधान-कार्योको प्रोत्साहित किया गया। इस सस्थाके पास अच्छा पुस्तकालय है जिसमे प्रकाशित पुस्तकोके अतिरिक्त हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ सगृहीत है। इस सस्थाकी ओरसे एक पत्र भी प्रकाशित किया जाता है और सैकडो बहुमूल्य पुस्तकोको पुन प्रका-शित करके उनको लुप्त होनेसे बचाया गया है। इस सस्था-की ओरसे सस्कृत और फारसीकी पाण्डुलिपियोका अग्रेजी-मे अनुवाद भी प्रकाशित कराया गया है। सिपाही-विद्रोहके बाद जब सत्ता ईस्ट इण्डिया कम्पनीसे इग्लैण्डके राजाके पास चली गयी, उस समयसे इस सस्थाका नाम 'रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बगाल' हो गया, लेकिन

१९४७ ई० में स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद इसका नाम फिरसे 'एशियाटिक सोसाइटी आफ बगाल' हो गया है।

ऐम्हर्स्ट, लार्ड—भारतका गवर्नर-जनरल (१८२३-२८ ई०)। उसके शासन-कालमे प्रथम बर्मा-युद्ध (१८२४-२८ ई०) हुआ जिसके परिणाम-स्वरूप आसाम, अराकान और तेनास-रीम ब्रिटिश साम्राज्यमे मिला लिये गये। लार्ड ऐम्हर्स्ट युद्धका सचालन सही ढगसे नही कर सका, जिससे भारतीय एव अग्रेजी सेनाको बहुत नुकसान उठाना पडा और लडाई लम्बी चली। इस लडाईके दौरान दो घटनाए घटी। पहले ४७वी पलटनके देशी तोपखानेके सिपाहियोने विद्रोह कर दिया क्योंकि उनको जबर्दस्ती समुद्र-पार भेजा जा रहा था। उनकी कुछ दूसरी शिकायते भी थी। उनका विद्रोह अग्रेज-तोपखाने और दो अग्रेज पलटनोकी मददसे निर्दयतापूर्वक कुचल दिया गया। दूसरी घटना यह घटी कि भरतपुरकी गद्दीके एक दावेदार दुर्जनसिंहने १८२४ ई० मे विद्रोह कर दिया और अपनेको 'राजा' घोषित कर दिया। अग्रेजोने १८२५ ई० के शुरूमे भरतपुर किलेपर चढाई करके उसे अपने कब्जेमे ले लिया। लार्ड ऐम्हर्स्टके समयमे १८२४ ई० मे कलकत्तेमे गवर्नमेन्ट सस्कृत कालेजकी स्थापना की गयी। बादमे एम्हर्स्टने पारिवारिक कारणोसे गवर्नर-जनरलके पदसे इस्तीफा दे दिया।

ओदन्तपुरी—उड्यतपुर भी कहते है, यह बिहारमे स्थित है। आठवी शताब्दीके मध्यमे बगाल और बिहारमे पालवशके सस्थापक गोपालने यहा एक महाविहारकी स्थापना की थी। यह एक महत्त्वपूर्ण विद्या-केन्द्र बन गया। तेरहवी शताब्दीके आरम्भमे बख्तियार (दे०) के पुत्र मुहम्मदके नेतृत्वमे मुसलमान आक्रमणकारियोने इसे नष्ट कर दिया।

ओनेसि क्राइटोस—एक प्रसिद्ध ग्रीक इतिहासकार, जिसने भारतपर सिकन्दरके आक्रमणका वृत्तान्त लिखा है। वह सिकन्दरके साथ ३२६ ई० पू० मे तक्षशिला तक आया था। यद्यपि उसके द्वारा लिखित इतिहास अब उपलब्ध नही है, तथापि उसके कुछ उद्धरण अन्य यूनानी इतिहासकारोकी रचनाओमे उपलब्ध है।

ओर्मे राबर्ट (१७२८-१८०१ ई०)—भारतका एक अग्रेज सैनिक इतिहासकार। उसका जन्म दक्षिण भारतमे हुआ, पिता भारतमे ईस्ट इडिया कम्पनीमे सर्जन था। वह १७४३ ई० मे बगालमे लिपिक नियुक्त हुआ। छुट्टीपर जहाजमे इग्लैण्ड जाते समय राबर्ट क्लाइव (दे०) से इसकी घनिष्ठ मैत्री हो गयी। यह मैत्री दीर्घ कालतक चली। वह १७५४ मे १७५८ ई० तक मद्रास कौंसिलका सदस्य रहा और कलकत्तापर फिरसे अधिकार करनेके लिए क्लाइवके नेतृत्वमे, फौज भेजनेका जो निर्णय किया गया, उसमे मुख्य रूपसे उसीका हाथ था। उसका अग्रेजीमे लिखित 'हिन्दुस्तान मे ब्रिटिश राष्ट्रकी सन् १७४५ से फौजी कारवाइयोका इतिहास' शीर्षकसे विशाल ग्रथ तीन खडोमे १७६३-७८ ई० मे प्रकाशित हुआ। इसके पूर्वका वृत्तान्त 'ऐतिहासिक प्रकरण' शीर्षकसे १७८१ ई० मे प्रकाशित हुआ। उसने अपने ग्रथोमे अत्यन्त ब्यौरेवार विवरण दिया है और उसके 'इतिहास'मे उस कालका सबसे प्रामाणिक विवरण है। मेकालेने अपना ग्रथ लिखनेमे उससे बहुत सहायता ली है। उसने हस्तलिखित ग्रथोका बहुमूल्य सग्रह किया था, जो अब इडिया लाइब्रेरीमे सुरक्षित है।

औपनिवेशिक स्वराज्य (डोमिनियन स्टेटस)—की माग भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसने पहली बार १९०८ ई० मे की थी। उस समय इसका अर्थ केवल इतना ही था कि आन्तरिक मामलोमे भारतीयोको स्वशासनका अधिकार दिया जाय, जैसा कि ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत कनाडाको प्राप्त था किन्तु ब्रिटिश भारतीय सरकारने इस मागको स्वीकार नही किया। २१ वर्ष बाद ३१ अक्तूबर १९२९ ई० को वाइसराय लार्ड इर्विनने घोषणा की कि भारतमे सवैधानिक प्रगतिका लक्ष्य औपनिवेशिक स्वराज्यकी प्राप्ति है। किन्तु 'औपनिवेशिक स्वराज्य' के स्वरूपकी स्पष्ट परिभाषा नही की गयी। फलत भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसने इस प्रकारकी अस्पष्ट और विलम्बित घोषणापर सन्तोष प्रकट करनेसे इनकार कर दिया। काग्रेसने वर्षके अन्तमे अपने लाहौर अधिवेशनमे भारतका लक्ष्य 'पूर्ण स्वाधीनता' घोषित किया। इस प्रकार भारत और ब्रिटेनके बीचकी खाई बढती ही रही। औपनिवेशिक स्वराज्यकी घोषणा यदि २० वर्ष पहले की गयी होती, तो कदाचित् वह भारतीय आकाक्षाओकी पूर्ति कर देती। लेकिन द्वितीय विश्वयुद्धके पूर्व बदलती हुई अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियोके साथ बढते हुए राष्ट्रवादको औपनिवेशिक स्वराज्यकी घोषणा सन्तुष्ट न कर सकी। इसके बाद भी ६ वर्ष तक ब्रिटिश सरकारने उस घोषणाको लागू करनेके लिए कुछ नही किया। अतमे जब १९३५ का 'गवर्नमेन्ट आफ इडिया एक्ट' सामने आया तो वह कई दृष्टियोंमे औपनिवेशिक स्वराज्यके वादेकी पूर्ति नही करता था।

नये शासन-विधानके अनुसार केन्द्रमे द्वैध शासनकी व्यवस्था की गयी थी जिसके अन्तर्गत विदेश विभाग और प्रतिरक्षा विभाग आदिपर निर्वाचित विधान-मडलका

कोई नियंत्रण नहीं रखा गया। दूसरी बात, इस शासन-विधानमें वाइसरायको अनेक निरंकुश अधिकार प्रदान किये गये थे। तीसरी बात, भारतीय विधान-मंडल द्वारा पारित अधिनियमोंपर ब्रिटिश सम्राट्की स्वीकृति आवश्यक थी। ब्रिटिश सरकार उक्त अधिनियमोंपर स्वीकृति देनेसे इनकार भी कर सकती थी। इस प्रकारके प्रतिबन्धोंसे स्पष्ट था कि भारतीय शासन-विधान (१९३५) में औपनिवेशिक स्वराज्यकी जो कथित व्यवस्था थी, वह १९३१ ई० के स्टेट्यूट आफ वेस्टमिंस्टरके अन्तर्गत औपनिवेशिक स्वराज्यकी परिभाषामें बहुत निचले दर्जेकी थी। इस स्टेट्यूटके अन्तर्गत आन्तरिक मामलोंमें उपनिवेशकी प्रभुसत्ताको स्वीकार किया गया था और वैदेशिक मामलोंमें भी पूर्ण स्वशासन दिया गया था जिसके अनुसार उपनिवेशको विदेशोंसे संधि करनेका अबाध अधिकार प्राप्त था। साथ ही युद्धादिमें तटस्थ रहने और ब्रिटिश साम्राज्यसे अलग होनेका अधिकार भी उपनिवेशको दिया गया था। औपनिवेशिक स्वराज्यमें निहित उपर्युक्त समस्त अधिकार १९३५ के गवर्नमेन्ट आफ इंडिया एक्टमें नहीं प्रदान किये गये थे, अतएव वह भारतीय जनमतको संतुष्ट करनेमें पूर्णतया विफल हो गया। इसके अलावा शासन-विधानमें साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वके सिद्धान्तको इस प्रकार विकसित किया गया था कि उससे भारतके भावी विभाजनकी स्पष्ट आधारशिला तैयार कर दी गयी। ऐसी अवस्थामें सर स्टैफर्ड क्रिप्सने जब ११ मार्च १९४२ ई० को औपनिवेशिक स्वराज्यके लक्ष्यकी पुनः घोषणा की, तो भारतीय राष्ट्रवादियोंमें उसमें कोई उत्साह नहीं उत्पन्न हुआ।

द्वितीय विश्व-युद्धमें जब ब्रिटेनको धन-जनकी घोर हानि पहुँची और भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन तीव्रसे तीव्रतर होता गया, तो उसे १९३१ ई० के स्टेट्यूट आफ वेस्टमिंस्टरके अंतर्गत भारत और पाकिस्तानको पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य देनेकी घोषणा करनी पड़ी। १५ अगस्त १९४७ ई०को भारतने ब्रिटिश राष्ट्रमण्डलके अन्तर्गत पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त कर ली। यह स्थिति १९४९ ई० में और अधिक स्पष्ट हो गयी, जब भारतको सार्वभौम प्रभुसत्ता-सम्पन्न स्वाधीन गणराज्यके रूपमें मान्यता प्रदान कर दी गयी। भारतने स्वेच्छासे राष्ट्रमण्डलमें बने रहनेका निर्णय किया। उसने घोषणा की कि वह शांति, स्वतंत्रता तथा प्रगतिकी नीतिसे अपनेको आबद्ध रखेगा और ब्रिटिश सम्राट्को राष्ट्रमण्डलका प्रतीक-अध्यक्ष स्वीकार करेगा और जब भी वह अपने हितमें राष्ट्रमण्डलसे अलग होना आवश्यक समझेगा, उसे अलग होनेका पूरा अधिकार होगा। (जी० एन० जोशी लिखित 'भारतीय संविधान'-१९५६ ई०)

औरंगजेब—भारतका छठा मुगल बादशाह (१६५९-१७०७ ई०)। वह शाहजहाँ (दे०) (१६२७-१६५८ ई०) का तीसरा पुत्र था। जब वह शाहजादा था तभीसे महत्त्वपूर्ण प्रशासकीय और सैनिक पदोंपर था। दक्षिणमें दो बार और अफगानिस्तानमें एक बार वह बादशाहका प्रतिनिधि रह चुका था। इन पदोंपर काम करते हुए उसने बड़ी योग्यता, साहस और परिश्रमका परिचय दिया। उसमें ये गुण बहुतायतमें थे जिनका परिचय उसने बादशाह होनेपर भी दिया। १६५७ ई० में जब उसका पिता शाहजहाँ बीमार पड़ा, उस समय वह दक्षिणमें बादशाहका प्रतिनिधि था। उसके बड़े भाई दाराशिकोह-को शाहजहाँ दिल्लीके तख्तपर बैठाना चाहता था, वह उसके पास था। शाहजहाँका दूसरा पुत्र शुजा बंगालमें शासक था और चौथा तथा सबसे छोटा पुत्र मुराद गुजरातमें बादशाहका प्रतिनिधि था। जैसे ही शाहजहाँकी बीमारीकी खबर मिली, शुजाने बंगालमें अपनेको बादशाह घोषित कर दिया और गुजरातमें मुरादने भी वैसा ही किया। इन परिस्थितियोंमें औरंगजेबने भी तख्त पानेकी कोशिश करनेका निश्चय किया। उसने मुरादसे सुलह करके यह तय किया कि दोनों मिलकर कोशिश करें और विजयी होनेपर सल्तनतको आपसमें बाँट लें। इस तरह उत्तराधिकारके लिए शाहजहाँके चारों पुत्रोंमें भ्रातृयुद्ध शुरू हो गया। औरंगजेब और मुरादकी संयुक्त सेनाने उज्जैनके निकट अप्रैल १६५८ ई० में धर्मट और मई १६५८ ई० में सामूगढ़की लड़ाइयोंमें शाही सेनाको पराजित कर दिया। सामूगढ़की लड़ाईमें शाहजादा दारा खुद मौजूद था और हारके बाद वह भाग कर आगरा चला गया। विजयी भाइयोंकी संयुक्त सेना दाराशिकोहका पीछा करती हुई आगरा पहुँची और ८ जून १६५८ ई० को आगरा किले तथा उसके खजानेका समर्पण हो गया। बूढ़ा बादशाह शाहजहाँ जीवन पर्यंत बंदी बना रहा। औरंगजेबने १६५७ ई० में गुजरातके दीवानकी हत्याके अभियोगमें मुरादको फाँसी दिलवा दी। इसी बीचमें शुजाको दाराके लड़के सुलेमानने फरवरी १६५८ ई० में बनारसके पास बहादुरपुरकी लड़ाईमें पराजित कर दिया। बादमें उसने फिरसे कुछ फौज इकट्ठी कर ली। औरंगजेबने खुद सेनाका संचालन कर शुजाके विरुद्ध बंगालपर चढ़ाई की और उसे खजवाकी लड़ाईमें

पराजित किया। औरगजेबके सेनापति मीर जुमलाने शुजाका पीछा किया और उसे पहले दक्षिणकी ओर और बादमे अराकानकी ओर (मई १६६० ई०) भागनेपर मजबूर किया, जहाँ उसका पूरा परिवार नष्ट हो गया। आगरापर औरगजेबका अधिकार हो जानेके बाद दाराशिकोह वहाँसे भागा। औरगजेबकी सेनाने उसे अप्रैल १६५९ ई० मे दौराईकी लडाईमे पराजित किया और जूनके महीनेमे दाराशिकोह धोखा देकर पकड लिया गया। औरगजेबने उसको जलील किया और उसके विरुद्ध धर्मद्रोही होनेका अभियोग लगाकर ३० अगस्त १६५९ ई० को उसे भी फासीपर चढा दिया। इस प्रकार अपने सभी भाइयोमे औरगजेब अकेला बच गया। उसने अनौपचारिक रूपसे २१ जुलाई १६५८ को बादशाह शाहजहाँको आजीवन कैदमे डाल कर गद्दी प्राप्त कर ली थी। जून १६५९ मे वह औपचारिक रूपसे तख्तनशीन हुआ और 'आलमगीर' (विश्व-विजेता) का खिताब धारण किया।

औरगजेबकी बडी बेगम दिलरास बानोके पाँच लडके थे। उनमेसे मुहम्मदको १६७६ ई० मे गुप्त रीतिसे फासीपर चढा दिया गया। मुअज्जम उसका उत्तराधिकारी बना। आजम औरगजेबकी मृत्युके बाद होनेवाले उत्तराधिकार युद्धमे मारा गया। अकबरने अपने पिताके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और उसे देश छोडकर फारस भागना पडा, जहाँ १७०४ ई० मे वह मर गया और कामबख्श १७०९ ई० मे उत्तराधिकार-युद्धके दौरान मारा गया।

अपने पूर्वाधिकारियोकी भाँति औरगजेबने मुगल साम्राज्यको बढानेके लिए अथक् प्रयास किया। १६६१ ई० मे उसने पालामऊको जीतकर अपने साम्राज्यमे मिला लिया। अगले वर्ष सेनापति मीर जुमलाके नेतृत्वमे मुगल सेनाने आसाममे गढगाँवपर चढाई बोल दी जो उस समय अहोम राजाओकी राजधानी थी। अहोम राजाको मुगलोसे सन्धि करनी पडी और वर्तमान दरग जिलेका काफी बडा हिस्सा मुगलोको देना पडा। हर्जानेकी बडी रकमके अलावा सालाना नजराना देनेकी शर्त भी उसे माननी पडी। १६६६ ई० मे मुगलोने बगालकी खाडीके सद्वीप और चटगाँवको जीत लिया। १६६७ ई० मे पश्चिमोत्तर सीमापर अफगानोने विद्रोह कर दिया, उसे १६७५ ई० तक दबा दिया गया। औरगजेबके दरबारमे मक्काके शरीफ और फारसके शाह, बलख, बुखारा, काशगर, खीवा और अबीसीनिया जैसे दूरवर्ती मुस्लिम देशोके राजदूत उपस्थित रहते थे।

१६७९ ई० मे मुगलो और राजपूतोमे लडाई शुरू हो गयी जिसमे मेवाडके राणाने मारवाडके राजाका साथ दिया। इस लडाईका अन्त १६८१ ई० मे दिल्ली और मेवाडकी सन्धिमे हुआ। १६८६ ई० मे बीजापुर और १६८९ ई० मे गोलकुडा जीतकर मुगल साम्राज्यमे मिला लिया गया। १६८९ ई० मे शिवाजीके पुत्र और उत्तराधिकारी सम्भाजीको मुगलोने पकड कर मार डाला और उसकी राजधानी रायगढपर अधिकार कर लिया। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी युवक शाहूको मुगल दरबारमे बदी बनाकर रखा गया। १६९१ ई० मे विजयी औरगजेबने तजौर और त्रिचिनापल्लीके हिन्दू राजाओको खिराज देनेके लिए बाध्य किया। इस प्रकार मुगल साम्राज्य दक्षिणतक फैल गया।

इन विजयोके बावजूद सम्राट् औरगजेब मुगलोका अन्तिम बडा बादशाह हुआ और दक्षिणके बुरहानपुरमे १७०७ ई० मे अपनी मृत्युके पहले औरगजेबके सामनेही मुगल साम्राज्यका विघटन शुरू हो गया। औरगजेबने बहुतसे क्षेत्रोको अपने साम्राज्यमे मिला लिया था जिससे वह इतना विशाल हो गया था कि उसको एक व्यक्ति द्वारा एक केन्द्रसे शासित करना दुःसाध्य था। जैसा सर यदुनाथ सरकारने लिखा है, "एक अजगरकी भाँति मुगल साम्राज्यने इतना अधिक क्षेत्र लील लिया कि उसको वह हजम नही कर सका।" औरगजेबकी मृत्युके पहले १६६७–७५ ई० के बीच अफगानोसे युद्धके परिणामस्वरूप सल्तनतकी आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गयी। राजनीतिक दृष्टिसे भी अफगानोसे युद्ध बडा महगा पडा। इसके बाद ही बादशाहको राजपूतोसे युद्ध करना पडा और वह उनके विरुद्ध पठान सैनिकोका इस्तेमाल नही कर सका। इसके परिणामस्वरूप शिवाजी (१६२७–८० ई०) के विरुद्ध मुगल साम्राज्यके पूरे साधनोका इस्तेमाल नही हो सका जो दक्षिणमे स्वतत्र मराठा राज्यकी स्थापना कर रहा था। मथुरा और उसके पडोसके क्षेत्रोमे १६६९ ई० मे जाटोने विद्रोहका झडा फहरा दिया। इसके बाद १६७१ ई० मे बुन्देलखड और मालवामे विद्रोह हुए। पटियाला रियासतके नारनौलमे सतनामियोने और अलवरके क्षेत्रमे मेवातियोने १६७२ ई० मे विद्रोह कर दिया। इन सभी विद्रोहोका सख्तीसे दमन किया गया, लेकिन इनसे यह तो प्रकट ही हो गया कि मुगल साम्राज्यके विरुद्व जनतामे व्यापक रूपसे रोष फैल रहा था। पजाबमे सिख शक्तिशाली होते जा रहे थे। औरगजबके आदेशसे सिखोके गुरु

तेगबहादुरको इस्लाम धर्म स्वीकार न करनेपर फाँसी दे दी गयी। इस नृशंस कार्यसे सिखोंमें बदला लेनेकी भावना भड़क उठी और वे मुगल साम्राज्यके शत्रु बन गये। आसाममें अहोमोंपर १६६३ ई० में जो सन्धि थोपी गयी थी, उसको तोड़कर उन्होंने १६७१ ई० में अपने उन सब इलाकोंको वापस ले लिया जिन्हें उनसे छीन लिया गया था। सम्भाजीको फाँसी देने और शाहूको बंदी बना लेनेसे मराठोंकी राष्ट्रीय आकांक्षाओंको नष्ट नहीं किया जा सका और उन्होंने पहले सम्भाजीके भाई राजाराम और उसकी मृत्युके बाद उसकी विधवा ताराबाईके नेतृत्वमें मुगलोंके विरुद्ध अपना संघर्ष जारी रखा और अपनी खोयी हुई अधिकांश भूमिको औरंगजेबके जीवन-कालमें ही वापस ले लिया। उन्होंने यह दिखा दिया कि औरंगजेब मराठोंका दमन नहीं कर सकता है। १६८१ से १७०७ ई० तक औरंगजेबने दक्षिणमें जो सैनिक अभियान चलाया, उससे उसको उतनी ही आर्थिक क्षति उठानी पड़ी, जितनी नैपोलियनको स्पेनके अभियानमें उठानी पड़ी थी। इसी प्रकार १६७९–८० ई० के राजपूत-युद्धमें यद्यपि औरंगजेबकी विजय हुई तथापि उससे यह तो प्रकट ही हो गया कि औरंगजेबने राजपूतोंका वह समर्थन खो दिया है जिसे अकबरने अपने विवेकसे प्राप्त किया था और जिनकी शक्तिके आधारपर मुगल साम्राज्यकी शक्ति बढ़ी थी। औरंगजेबने अपने प्रपितामहकी नीति पूरे तौरसे त्याग दी। अकबरकी नीतिके प्रतिकूल उसने मजहबको सल्तनतके ऊपर कर दिया और अपनी शाही ताकतका प्रयोग न तो अपने व्यक्तिगत लाभके लिए, न अपने खानदानके लाभके लिए और न अपनी रियायाके लाभके लिए वरन् इस्लामके प्रसारके लिए किया। वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था और उसने कुरानकी शिक्षाओंके अनुसार अपने जीवनको ढालने तथा हुकूमत चलानेका प्रयास किया। वह ईमानका इतना पक्का था कि उसने मजहबके मामलेमें अपनेको, अथवा अपने खानदानको कभी नहीं बख्शा। उसने खान-पान और पोशाकके मामलेमें कुरानकी शिक्षाओंका पालन किया और एक पक्के मुसलमानकी तरह जीवन बिताया। उसने विरासत-में मिली अपनी सल्तनतको 'दारुल इस्लाम' (इस्लामी राज्य) बनानेका प्रयास किया। इस नीतिके परिणाम-स्वरूप ही उसने हिन्दुओंके प्रति असहिष्णुताकी नीति अपनायी और उनका दमन किया। हिन्दुओंपर उसने १६७९ ई० में फिरसे 'जजिया' लगा दिया, जिसे अकबरने १५६४ ई० में उठा लिया था। उसने सल्तनतके ऊँचे पदोंपर हिन्दुओंको नियुक्त करना बन्द कर दिया और उनके ऊपर करोंका बोझ बढ़ा दिया। उसने हिन्दुओंको नये मन्दिर बनानेसे रोक दिया और बहुतसे पुराने मंदिरों-को तोड़ डाला, जिनमें मथुराका केशवदेवका मन्दिर और बनारसका विश्वनाथका मन्दिर भी था। उसने मारवाड़के राजा जसवन्त सिंहके नाबालिग लड़केको जबरन अपने कब्जेमें करके उसे मुसलमान बनानेकी कोशिश की। उसने हिन्दुओंके लिए अपमानजनक कानून कायदे बनाये और हिन्दू देवी-देवताओंकी मूर्तियोंको मसजिदोंकी सीढ़ियोंके नीचे रखवाया ताकि उनपर मुसलमानोंके पैर पड़ें।

औरंगजेबने यद्यपि लगभग आधी शताब्दी (१६५८–१७०७ ई०) तक शासन किया, तथापि वह इस खतरेको नहीं देख सका कि फिरंगियोंकी ताकत बढ़ती जा रही है। फिरंगियोंने उसके शासनकालमें भारतके विभिन्न भागोंमें अपनी बस्तियाँ स्थापित कर ली थीं। औरंगजेब इस बातको समझ नहीं सका कि इन फिरंगियोंकी ताकत बढ़नेसे सल्तनतको खतरा पहुँचेगा। उसने समुद्री मार्गोंसे फिरंगियोंको आनेसे रोकनेके लिए एक शक्तिशाली जंगी बेड़ा बनानेकी आवश्यकता नहीं महसूस की। अत-एव इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं कि उसकी मृत्युके आधी शताब्दीके बाद ही फिरंगियोंकी ही एक कौमने बड़ी चालाकी और मक्कारीके साथ हिन्दुओंके असंतोष, मुगलोंके अधीनस्थ मुसलमान सूबेदारोंकी स्वतन्त्र शासक बन जानेकी महत्त्वाकांक्षा तथा हिन्दुस्तानियोंकी आपसी फूटसे लाभ उठाकर मुगल वंशको समाप्त कर दिया और उसके स्थानपर भारतमें अंग्रेजी राज्यकी स्थापना कर दी। मुगलोंमें जो बड़े-बड़े बादशाह हुए, उनमें औरंगजेब अंतिम था। (**जे० एन० सरकार—हिस्ट्री आफ औरंगजेब, खंड १-४, एडवर्ड्स एण्ड गैरेट—मुगल रूल इन इंडिया, ईलियट एण्ड डासन, खंड ७, पृ० २११–५३३ पर काफी खाँ लिखित मुंतखाब-उल-लुबाब**)

क

कदर्पनारायण—बंगाल प्रांतपर सोलहवीं शताब्दीमें शासन करनेवाले बारह भूमियाँ लोगोंमेंसे एक। उसका इलाका चंद्रद्वीप कहलाता था जो आधुनिक बाकरगंज जिलेके समतुल्य था। बाकरगंज अब बंगला देशमें है। वीर-

कालीन प्रतिरोधके बाद उसे बादशाह अकबरकी अधीनता स्वीकार कर लेनी पडी।

कदहार (अथवा कंधार)—अफगानिस्तानका दूसरा बडा नगर। सामरिक दृष्टिसे यह महत्त्वपूर्ण है क्योकि भारतसे अफगानिस्तान जानेवाली रेलवे लाइन यहीपर समाप्त होती है। यह नगर महत्त्वपूर्ण मडी भी है। पूर्वसे पश्चिम-को स्थलमार्गसे होनेवाला अधिकाश व्यापार यहीसे होता है। कदहारमे सोतोके पानीसे सिचाईकी अनोखी व्यवस्था है। जगह-जगह कुए खोदकर उनको सुरगसे मिला दिया गया है।

कदहारका इतिहास उथल-पुथलसे भरा हुआ है। पाँचवी शताब्दी ई० पू० मे यह फारसके साम्राज्यका भाग था। लगभग ३२६ ई० पू० मे मकदूनियाके राजा सिकदरने भारतपर आक्रमण करते समय इसे जीता और उसके मरनेपर यह उसके सेनापति सेल्यूकसके अधिकारमे आया। कुछ वर्ष बाद सेल्यूकसने इसे चद्रगुप्त मौर्य (दे०) को सौप दिया। यह अशोकके साम्राज्यका एक भाग था। उसका एक शिलालेख हालमे इस नगरके निकट मिला है। मौर्यवशके पतनपर यह बैक्ट्रिया, पार्थिया, कुषाण तथा शक राजाओके अतर्गत रहा।

दसवी शताब्दीमे यह अफगानोके कब्जेमे आ गया और मुसलिम राज्य बन गया। ग्यारहवी शताब्दीमे सुल्तान महमूद, तेरहवी शताब्दीमे चगेज खा तथा चौदहवी शताब्दीमे तैमूरने इसपर अधिकार कर लिया। १५०७ ई० मे इसे बाबरने जीत लिया और १६२५ ई० तक दिल्लीके मुगल बादशाहोके कब्जेमे रहा। १६२५ ई० मे फारसके शाह अब्बासने इसपर दखल कर लिया। शाहजहाँ और औरगजेब द्वारा इसपर दुबारा अधिकार करनेके सारे प्रयत्न विफल हुए। कदहार थोडे समय (१७०८–३७ ई०)को छोडकर १७४७ ई० मे नादिरशाह-की मृत्युके समय तक फारसके कब्जेमे रहा। १७४७ ई० मे अहमदशाह अब्दाली (दे०) ने अफगानिस्तानके साथ-साथ इसपर भी अधिकार कर लिया। किन्तु, उसके पौत्र जमानशाह (दे०) की मृत्युके बाद कुछ समयके लिए कदहार काबुलसे अलग हो गया। १८३९ ई० मे ब्रिटिश भारतीय सरकारने शाहशुजा (दे०) की ओर-से युद्ध करते हुए इसपर दखल कर लिया और १८४२ ई० तक अपने कब्जेमे रखा। ब्रिटिश सेनाने १८७९ ई० मे इसपर फिर दखल कर लिया, किन्तु १८८१ ई० मे खाली कर देना पडा। तबसे यह अफगानिस्तानके राज्यका एक भाग है।

कम्पनी-राजकी सिविल सर्विस (बादको '**इडियन सिविल सर्विस**')—वह प्रशासकीय सेवा, जिसे ईस्ट इण्डिया कम्पनी-ने भारतमे अपना प्रशासन चलानेके लिए चालू किया था। इसका आरम्भ अत्यन्त छोटे रूपमे हुआ। व्यापारियोकी सस्थाके रूपमे कम्पनीने अपनी सेवामे अग्रेज युवकोको लिपिकके पदपर नियुक्त किया। ये ब्रिटिश युवक आम तौरमे डायरेक्टरो द्वारा मनोनीत होते और कम्पनीके शेयरहोल्डरोसे रिश्तेदारीके आधारपर चुने जाते थे। उनकी उम्र २० वर्षसे कम होती। उन्हे स्कूली शिक्षा या तो बिल्कुल मिली ही न होती या बहुत कम मिली होती। उनका वेतन भी बहुत कम होता था। १७५७ ई० मे पलासी युद्धके बाद जब कम्पनीके आधिपत्यमे भारतका काफी बडा क्षेत्र आ गया तो उसने नवविजित क्षेत्रोका प्रशासन अपने इन लिपिकोके सुपुर्द कर दिया। इन नव-नियुक्त अफसरोने जबरदस्त भ्रष्टाचार और बेईमानी शुरू कर दी, अत कम्पनीने उनसे एक करार (काबेनेट) पर हस्ताक्षर करनेको कहा, जिसमे कम्पनीकी सेवा ईमान-दारी और सचाईके साथ करनेका वचन मागा गया था। इसी आधारपर अग्रेजीमे इस करारशुदा सेवाको 'काबेनेटेड सिविल सर्विस' कहा जाने लगा। बगालमे लार्ड क्लाइवके दूसरी बारके प्रशासनकालमे कम्पनीने पहली बार अपने अफसरोको उक्त करार करनेको बाध्य किया। अफसरो-ने शुरूमे तो इस नयी व्यवस्थाका विरोध किया किन्तु अतत उन्हे झुकना पडा। लार्ड कार्नवालिसके प्रशासन-कालमे यह काबेनेटेड सिविल सर्विस (करारवाली सिविल सेवा) भारतमे कम्पनीके प्रशासन तत्रका एक नियमित अग बन गयी।

लार्ड कार्नवालिसने इस सेवामे सिर्फ अग्रेजोको ही भर्ती किया और उनके वेतन भी काफी बढा दिये। कम्पनीके अतर्गत सभी महत्त्वपूर्ण सिविल पदोपर अग्रेजोकी नियुक्ति होती और जिला कलेक्टरो, मजिस्ट्रेटो, जजोके पदोपर तो जैसे उनका एकाधिकार हो गया। बादको जब विभागीय सचिवो और राजनयिक एजेटोके पद चालू किये गये तो उनपर भी अग्रेजोकी ही नियुक्ति की गयी। लार्ड वेलेस्लीने काबेनेटेड सिविल सर्विसके सदस्योका बौद्धिक स्तर ऊँचा उठानेके लिए एक निश्चित अवधि तक उनके प्रशिक्षणकी व्यवस्था की। इसके लिए उसने कलकत्तामे फोर्ट विलियम कालेजकी स्थापना की। किन्तु १८०५ ई० मे यह कालेज बद करना पडा, क्योकि इसपर होनेवाले खर्चपर कम्पनीने ऐतराज किया। इसके बादके पचास वर्षोमे काबेनेटेड सिविल सर्विसके रगरूटोको

लंदनके हेलेबरी कालेजमें प्रशिक्षण दिया जाता रहा। इनमेंसे कुछ रंगरूट तो वास्तवमें अत्यन्त योग्य और सफल प्रशासक सिद्ध हुए, किन्तु सामान्य तौरसे औसत सदस्योंमें बहुत कमियाँ पायी जाती थीं, क्योंकि कावेनेंटेड सिविल सर्विसमें कम्पनीके डायरेक्टरों द्वारा नामजद लोगोंकी भर्ती होती थी, जिन्हें योग्य प्रशासक बननेके लिए अपेक्षित शिक्षा बिल्कुल नहीं प्राप्त थी। फलतः स्वयं इंग्लैण्डमें ही यह मांग उठी कि सर्वोत्तम और सर्वाधिक मेधावी ब्रिटिश युवकोंको ही प्रशासक बनाकर भारत भेजा जाना चाहिए।

अतः १८५३ ई० में कावेनेंटेड सिविल सर्विसमें, जो अब 'इंडियन सिविल सर्विस'के नामसे पुकारी जाने लगी, प्रवेश सार्वजनिक प्रतियोगिताके माध्यमसे सबके लिए खोल दिया गया। १८५५ ई० में लंदनमें बोर्ड आफ कंट्रोलकी देख-रेखमें पहली सार्वजनिक प्रतियोगिता हुई। सन् १८५८ में यह प्रतियोगिता सिविल सर्विस कमिश्नरोंकी देखरेखमें होने लगी। इस प्रकार इंडियन सिविल सर्विसमें सभी मेधावी ब्रिटिश युवकोंके लिए प्रवेशका द्वार खुल गया, लेकिन चार्टर एक्ट, १८३३ ई० (दे०) और १८५८ ई० में महारानीके घोषणापत्र (दे०) के बावजूद भारतीय अब भी प्रवेशसे वंचित रहे। १८६४ ई० में पहली बार एक भारतीय (महाकवि रवीन्द्र नाथ ठाकुरके बड़े भाई सत्येन्द्र नाथ ठाकुर) लंदनमें हुई इण्डियन सिविल सर्विसकी प्रतियोगितामें सफल हुआ और उसने इंडियन सिविल सर्विसमें स्थान प्राप्त किया। किन्तु इंडियन सिविल सर्विसमें भारतीयोंका प्रवेश अत्यल्प रहा और १८७६में अधिकतम उम्र २३ वर्षसे घटा कर १९ वर्ष कर देनेसे यह प्रवेश असंभव, नहीं तो और अधिक कठिन अवश्य बना दिया गया।

बहरहाल, इस समय तक भारतमें पाश्चात्य शिक्षाका प्रसार हो गया था, इसलिए भारतीय विश्वविद्यालयोंके नये स्नातकों द्वारा इंडियन सिविल सर्विसमें प्रवेशकी अधिक सुविधाएं माँगना स्वाभाविक था। भारतीयोंने यह माँग करना शुरू किया कि इंडियन सिविल सर्विसमें प्रवेशके लिए लंदनके साथ ही साथ भारतमें भी एक प्रतियोगिता परीक्षा होनी चाहिए और प्रवेशकी अधिकतम उम्र पहलेकी तरह २३ वर्ष कर दी जाये। बादमें इस मांगपर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने भी जोर दिया और शुरूके प्राय सभी अधिवेशनोंमें इस माँगको दोहराया। लेकिन इसे बराबर नजरदाज किया जाता रहा।

१८७८ ई० में भारतीय मांगको टालनेके लिए एक नयी सेवा आरम्भ की गयी जिसे 'स्टेट्यूटरी सिविल सर्विस'का नाम दिया गया और इसमें भारतीयोंकी भर्ती की गयी। इस सेवाके लोग कम महत्त्ववाले कुछ ऊंचे पदोंपर विशेष रूपसे न्यायिक पदोंपर नियुक्त किये गये और उन्हें एकसे पदोंपर कार्य करनेके बावजूद इंडियन सिविल सर्विसके सदस्योंके मुकाबले दो-तिहाई वेतन दिया जाता रहा। इसलिए इस सेवासे भी भारतीय माँग संतुष्ट नहीं हुई और १८८५ ई० में इस सेवाको समाप्त कर दिया गया। उम्रकी सीमा १८८९ ई० में बढ़ाकर २३ वर्ष कर दी गयी किन्तु इंडियन सिविल सर्विसमें प्रवेशके लिए भारतमें भी प्रतियोगिता परीक्षा करानेकी माँग १९२२ ई० तक नहीं मानी गयी। ब्रिटेन और भारत दोनों ही सरकारोंका भरसक प्रयास अब भी यही रहा कि इंडियन सिविल सर्विस सेवामें बाहुल्य अंग्रेजोंका ही बना रहे।

प्रधान मंत्री लायड जार्जने अगस्त १९२२ में कामन सभा (हाउस आफ कामन्स) में किये गये एक भाषणमें इंडियन सिविल सर्विसके अंग्रेज नौकरशाहोंको भारतीय संवैधानिक ढाँचेका 'इस्पाती चौखटा' कहा और भविष्यवाणी की कि "अगर आप इस इस्पाती चौखटेको हटा ले तो पूरा ढाचा ही ढह जायेगा।" किन्तु पचीस वर्षो बाद इस इस्पाती चौखटेके बने रहनेपर भी ढाचा ढह पड़ा।

असलियत यह थी कि इंडियन सिविल सर्विसके ब्रिटिश सदस्योंने भारतके विकास और यहाँ तक कि उसके राजनीतिक भविष्यके विकासमें भी निस्सन्देह महत्त्वपूर्ण योग दिया, किन्तु वे अपनेको भारतका अंग कभी न बना पाये। वे भारतके लिए बहुत महंगे थे। उन्होंने आम तौरसे भारतीयोंको अपनेसे नीचा समझा। अपने अस्तित्वको बचानेके लिए उनका अंतिम प्रयास अत्यन्त घृणित था। उन्होंने भारतमें साम्प्रदायिक तनाव इस हद तक बढ़ा दिया कि अगस्त १९४७ में आखिरकार जब उन्हें परिस्थितियोंने भारत छोड़नेको विवश कर दिया तो वे उसे दो टुकड़ोंमें बँटा हुआ और लहू-लुहान छोड़कर गये। ***(एन० सी० राय कृत दि सिविल सर्विस इन इंडिया)***

कठिओई–(कठ) एक गण जो पंजाबमें चिनाब और रावी नदियोंके बीचमें रहता था। उसकी राजधानी सांगल थी, जो सम्भवत आधुनिक गुरदासपुर जिलेमें स्थित थी। मकदूनियाके राजा सिकन्दरने ३२६ ई० पू० में अपने आक्रमणके समय इस गणराज्यको भी हराया था।

कड़ा–इलाहाबाद जिलेका एक नगर। यहाँ सुल्तान जलालुद्दीन खिलजी (दे०) १२९६ ई० में अपने भतीजे

एव दामाद अलाउद्दीन खिलजी (दे०) के हाथो मारा गया।

कण्व (अथवा काण्वायन) वंश–लगभग ७३ ई० पू० शुग-वशके बाद मगधका शासनकर्ता। इसका सस्थापक वासुदेव शुग-वशके अतिम राजा देवभूतिका ब्राह्मण अमात्य था। कण्व-वशमे उसके सस्थापक सहित चार राजा हुए जिन्होने पैंतालीस वर्ष तक राज्य किया। उनके अतिम राजा सुशर्माको लगभग २८ ई० पू० मे आध्र वशके सस्थापक सिमुकने मार डाला।

कथावत्थु–पालि भाषाका एक प्रसिद्ध बौद्ध टीका ग्रन्थ। प्रो० र्‌हाइस डेविसने इसका रचनाकाल अशोकका राज्य-काल (लगभग २७३–२३२ ई० पू०) माना है।

कथासरित्सागर–सोमदेव कविकी १०६३ और १०८१ ई० के बीचकी रचना। इसमे भारतीय वणिक-पुत्रो द्वारा दक्षिण-पूर्व एशियाके समुद्रोमे साहसिक यात्राएँ करनेके अनेक वर्णन मिलते है।

कदफिसस प्रथम–पूरा नाम कुजल-कर-कदफिसस, कुषाण वशका पहला राजा। वह सम्भवत ४० ई० मे गद्दीपर बैठा तथा लगभग ३७ वर्ष तक राज्य किया। उसने अपने राज्यका विस्तार बैक्ट्रियासे आगे अफगानिस्तानमे तथा भारतके उत्तर-पश्चिमी सीमा क्षेत्रमे सिंधु नदीके उस पार तक किया।

कदफिसस द्वितीय–कदफिसस प्रथम (दे०) का पुत्र तथा उत्तराधिकारी। उसने कुषाण साम्राज्यका विस्तार सारे उत्तरी भारतमे किया। बहुतसे लोगोका विचार है कि उसीने ७८ ई० मे अपने राज्यारोहणके उपलक्ष्यमे शक सवत् (दे०) प्रचलित किया। उसका साम्राज्य पूर्वमे बनारस तथा दक्षिणमे नर्मदा तक फैला हुआ था। उसमे मालवा तथा पश्चिमी भारत भी सम्मिलित था, जहाँ-के शक क्षत्रप (दे०) उसे अपना स्वामी मानते थे। ८७ ई० मे उसने चीनी सम्राट्से बराबरीका दावा किया और अपने साथ एक चीनी राजकुमारीका विवाह-सम्बन्ध कर देनेकी माँग की। जब उसकी यह माँग स्वीकार नही की गयी तो उसने पामीरके मार्गसे चीनपर हमला करनेके लिए एक बडी सेना भेजी। परन्तु उसकी सेना हार गयी और कदफिसस द्वितीयको चीनसे सधि कर लेनी पडी। इस सधिके द्वारा उसने चीनको वार्षिक कर देना स्वीकार कर लिया। कदफिसस द्वितीयके विभिन्न प्रकारके सिक्के बहुत अधिक सख्यामे मिलते है। इससे सूचित होता है कि उसने दीर्घकाल तक राज्य किया। उसका राज्यकाल सम्भवत ११७ ई० के आसपास समाप्त हुआ।

कनकमुनिका स्तूप–उत्तर प्रदेशमे बस्ती जिलेमे निग्लीव गाँवके पास स्थित। सम्राट अशोक दोबार इस स्तूपका दर्शन करने गया था—पहली बार अपने राज्याभिषेक-के चौदहवे वर्षमे और दूसरी बार बीसवे वर्षमे। पहली बार जब वह स्तूपका दर्शन करने गया तो उसने उसका विस्तार कराकर आकार पहलेसे दूना करवा दिया। दूसरी बार जब वह उसके दर्शन करने गया तो उसने वहाँ एक प्रस्तर-स्तम्भ स्थापित कराया।

कनारा–पश्चिमी मैसूरमे एक पतली पट्टी, जो उसे समुद्रतट-से अलग करती है। १७९९ ई० मे इसे ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमे मिला लिया गया।

कनिंघम, जनरल जोसेफ डेवी (१८१२–१८५१)–१८३४ ई० मे बगाल इजीनियर्समे एक अधिकारी बनकर आया। वह सर अलैक्जैण्डर कनिंघम (दे०) का बडा भाई था। उसने पजाबमे विभिन्न स्थानो और पदोपर कार्य किया तथा रणजीतसिंह और अमीर दोस्त मोहम्मदके साथ हुए वार्ता-प्रसगके समय भी मौजूद था। उसने १८४६ ई० के प्रथम सिखयुद्ध (दे०) मे भाग लिया और अलीवाल तथा सुबराहानकी लडाइयाँ भी देखी। इस प्रकार उसे पजाब और पजाबियोको जाननेका पर्याप्त अवसर मिला। वह एक उदारमना व्यक्ति और उच्चकोटिका इतिहासकार भी था। उसके द्वारा लिखा गया सिखोका इतिहास अपने विषयका आधिकारिक और प्रामाणिक ग्रन्थ है, लेकिन इस प्रकाशनने उसे सकटमे डाल दिया। इस विषयपर उसके सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण और इस स्पष्टवादिताने कि प्रथम सिखयुद्धमे अग्रेजोने दो सिख जनरलोको फोड लिया था, उसके अफसरोको नाराज कर दिया और विशेष महत्त्वके राजनीतिक पदोसे हटाकर उसको साधारण काम सौप दिया गया। १८५१ ई० मे अम्बालामे उसकी मृत्यु हो गयी।

कनिंघम, सर अलेक्जेण्डर (१८१४–९३ ई०)–प्रसिद्ध पुरातत्त्वान्वेषक, जो १८३३ ई० मे एक सैन्य शिक्षार्थीकी हैसियतमे भारत आया। वह १८३६ ई० मे गवर्नर-जनरल लार्ड आकलैण्डका अगरक्षक हो गया। १८३६ ई० मे ही वह सेनाकी इजीनियरिंग शाखामे चला गया और १८४६ ई० के प्रथम सिखयुद्ध (दे०) मे फील्ड इजीनियर हो गया। उसने दूसरे सिखयुद्ध (दे०) (१८४८–४९ ई०) मे और चिल्लियाँवालाकी लडाईमे भी भाग लिया। वह १८५६ से ५८ ई० तक बर्मामे मुख्य अभियता (चीफ इजीनियर) रहा और इसके बाद इसी पदपर पश्चिमोत्तर प्रातमे भी नियुक्त हुआ। १८६१ ई० मे रिटायर होनेके

बाद फौरन ही वह भारत सरकारका पुरातत्त्व-सर्वेक्षक बना दिया गया। १८७० ई० में वह विभागका निदेशक हो गया और १८८५ ई० में भारतसे वापस जानेतक इसी पदपर बना रहा। अवकाश-ग्रहणके बाद उसने प्राचीन मुद्रा-शास्त्रपर विशेष ध्यान दिया और वह इस विषयका अधिकारी विद्वान् माना जाता था। उसकी मृत्यु १८९३ ई० में हुई। उसके महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंमें 'भिल्सा टोप्स', 'दि एंशियेण्ट ज्यागरफी आफ इंडिया', 'कार्पस् इन्स्क्रिप्शनम इंडिकेरम' (खण्ड प्रथम), 'दि स्तूप आफ भरहुत' और 'दि बुक आफ इंडियन एराज' विशेष उल्लेखनीय हैं। भारतीय पुरातत्त्व-शास्त्रमें उसके योगदानसे हमें प्राचीन भारतीय इतिहासकी बहुत अधिक जानकारी मिली है। प्राचीन भारतीय इतिहासके छात्रोंके लिए सर अलेक्जैण्डर कनिंघम-की पुस्तकें आज भी अत्यधिक महत्त्व रखती हैं।

कनिष्क—कदफिसस प्रथम (दे०) द्वारा स्थापित कुषाण राजवंशका सबसे प्रसिद्ध राजा। कनिष्कका काल अत्यंत विवादास्पद रहा है। कुछ विद्वानोंके मतानुसार उसका शासनकाल ७८ ई० में आरम्भ हुआ, जिस कालमें शक संवत् प्रचलित हुआ। अन्य मतके अनुसार वह दूसरे कुषाण राजा कदफिसस द्वितीयकी मृत्युके दस वर्ष बाद लगभग १२० ई० में सिंहासनपर बैठा। कदफिसस द्वितीयके साथ उसका सम्बन्ध ज्ञात नहीं है। उसके पिताका नाम वाझेष्क था, परन्तु वह गद्दीपर नहीं बैठा। कनिष्ककी राजधानी पुरुषपुर अथवा पेशावर थी। वहाँ उसने बहुत-सी इमारतें बनवाकर नगरको सुन्दर बनाया। उसके साम्राज्यमें गंधार (पूर्वी अफगानिस्तान), कश्मीर तथा सिंधु और गंगाका मैदान सम्मिलित थे। उसने एक सेना भेजकर पामीरके उस पार चीनी तुर्किस्तानपर चढ़ाई की और खोतन, यारकंद तथा काशगरके सरदारोंको हराया। ये सरदार अभी तक चीनी सम्राट्के अधीन थे। कनिष्कने इनमेंसे कुछको विवश किया कि वे उसके दरबारमें अपने पुत्रोंको बंधकके रूपमें भेजें। उसने लम्बे समयतक, सम्भवतः २४ वर्ष, १२० ई० से १४४ ई० तक शासन किया। उसका नाम कई शिलालेखोंपर अंकित है। उसके विविध प्रकारके सिक्के मिलते हैं, जिनपर जरथुस्त्री, यूनानी, मिहिर तथा शिव, बुद्ध आदि भारतीय देवताओंके चित्र अंकित हैं। इससे संकेत मिलता है कि कनिष्क सभी धर्मोंके प्रति आदरभाव रखता था। बौद्ध अनुश्रुतियोंके अनुसार वह बौद्ध धर्मका पक्का अनुयायी था और उसने बौद्धोंकी चौथी संगीति आयोजित की थी, जिसमें बौद्ध त्रिपिटकका प्रामाणिक भाष्य तैयार किया गया। यह भाष्य ताम्रपत्रोंपर उत्कीर्ण कराया गया और उनको कश्मीरके कुंडलवन विहारमें, जहाँ चौथी संगीति हुई, एक स्तूप बनवाकर उसमें सुरक्षित रख दिया गया। इस संगीतिमें मुख्य रूपसे हीनयान सम्प्रदायके अनुयायियोंने भाग लिया, परन्तु महायान निकाय भी उस समयतक काफी प्रबल हो चुका था और अश्वघोष, नागार्जुन, वसुमित्र आदि प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य, जिनको कनिष्कका संरक्षण प्राप्त था, इसी सम्प्रदायके अनुयायी थे। कनिष्क विद्वानोंका आश्रयदाता था। प्रसिद्ध आयुर्वेदाचार्य चरक उसका राजवैद्य था। कनिष्क विशाल भवनोंका महान निर्माता और मूर्ति एवं वास्तुकलाका प्रेमी था। उसने पेशावरमें बुद्धके अवशेषोंपर ४०० फुट ऊँचा स्तूप बनवाया। उसने तक्षशिला नगरका एक नया भाग बन-वाया जो सिरसुख कहलाता था। उसने कश्मीरमें अपने नामपर नया नगर बसाया, मथुरामें वास्तुकलाकी कई सुन्दर कृतियोंका निर्माण कराया। सम्भवतः गांधार कला (दे०) का विकास उसीके राज्यकालमें हुआ। उसने गंधारके बाहरके शिल्पियोंको भी अपना संरक्षण प्रदान किया। उसके साम्राज्यके अन्तर्गत सारनाथ तथा मथुरामें तथा दक्षिणमें कृष्णा नदीके तटपर स्थित अमरावतीमें वास्तुकलाकी नयी शैलियाँ विकसित हुईं। वास्तवमें भारतीय कला, संस्कृति तथा सभ्यताके विकासमें कनिष्कने विदेशी होते हुए भी इतना अधिक योगदान किया कि उसे प्राचीन भारतके सबसे महान् राजाओंमें माना जाता है।

कन्नौज—उत्तरी भारतका अत्यंत प्राचीन और प्रसिद्ध नगर। इसका मूल नाम कान्यकुब्ज था, जो ब्राह्मणोंका भी केन्द्रस्थल बन गया था। अब यह एक छोटा-सा नगर है और इसमें अधिकांश मुसलमान रहते हैं। महाभारतमें इसका बार-बार उल्लेख किया गया है। पतंजलिने भी, जो दूसरी शताब्दी ई० पू० में हुए, इसका संकेत किया है। जब चीनी यात्री फाह्यान लगभग ४०५ ई० में इस नगरमें आया तो यहाँ उसे केवल दो बौद्ध विहार मिले। यह उस समय उतना बड़ा नगर नहीं रह गया था जितना ह्युएन-त्सांगके समय था। वह ६३६ ई० में इस नगरमें आया था और यहाँ सात वर्ष ठहरा। उस समय यह जन-संकुल नगर था, यहाँ सैकड़ों हिन्दू तथा बौद्ध मंदिर थे और गंगाके पूर्वी तटपर लगभग चार मीलतक विहार-ही-विहार थे। नगरमें अनेक मनोरम उद्यान तथा सुन्दर तडाग थे और नगर-दुर्गकी रक्षाकी शक्तिशाली व्यवस्था थी। नगरमें इस परिवर्तनका सारा श्रेय महाराजाधिराज

हर्षवर्धन (६०६–६४७ ई०) को प्राप्त था, जिन्होने इसे राजधानी वनाया । यह नगर अपने ऐश्वर्य और समृद्धिके कारण 'महोदय श्री' कहा जाने लगा था । हर्षवर्धनकी मृत्युके वाद जितने भी हिन्दू राजवश हुए, उनकी अभिलापा कन्नौजपर अधिकार करनेकी रहती थी । प्रतिहार राजाओ (८१६–१०६० ई०) ने इसे अपनी राजधानी वनाया और कन्नौज फिर उत्तर भारतका प्रधान नगर वन गया । वगालके राजा धर्मपाल (दे०) ने इस नगरपर आक्रमण किया और कुछ समयतक वडे गर्वके साथ इसे अपने अधिकारमे रखा ।

इस नगरपर विपत्तियॉ उस समयसे पडनी शुरु हुई जव १०१८ ई० मे सुलतान महमूदने इसपर चढाई की। उस समयका प्रतिहार राजा अपनी राजधानी कन्नौजसे हटाकर गगाके दूसरे तटपर स्थित बारी भाग गया। इसका अतिम प्रतिहार राजा राज्यपाल (दे०) था, जिसे चदेल राजा गडने अपदस्थ कर दिया । इसके वाद वारहवी शताव्दीमे कन्नौज गाहड्वाल राजपूतोके अधिकारमे आ गया, जो राठौरके नामसे प्रसिद्ध है । कन्नौजका अतिम राठौर राजा जयचद ११९४ ई० मे शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीसे पराजित हुआ और मारा गया । इसके वाद कन्नौजका महत्त्व समाप्त हो गया । शेरशाह सूरी (दे०) ने मुगल वादशाहसे अपनी निर्णयात्मक लडाई इस शहरके पास ही १५४० ई० मे लडी और इसके वाद इस शहरको नष्ट कर दिया । इस शहरमे अव पुरानी इमारतोके सिर्फ खडहर वच गये है ।

कपय नायक–तेलगानाके हिन्दुओका नेता । १३३६ ई० मे उसने दक्षिण भारतके पूर्वी तटपर एक राज्यकी स्थापना की । वादमे उसने मुसलमानोका जुआ उतार फेकने और हिन्दू साम्राज्यकी स्थापना करनेमे विजयनगर राज्यके सस्थापक दो भाइयो हरिहर तथा बुक्क (दे०) के साथ सहयोग किया ।

कपिलवस्तु–उत्तर प्रदेशके वस्ती जिलेके उत्तरमे नेपालकी तराईसे स्थित । इसका शाब्दिक अर्थ है 'कपिलका स्थान' । परन्तु, यह पता नही है कि इस स्थानका क्या साख्य दर्शन (दे०) के प्रवर्तक कपिलसे कोई सम्वन्ध था ? ऐतिहासिक रूपसे कपिलवस्तु बौद्ध धर्मके सस्थापक गौतम बुद्ध (दे०) के जन्मस्थानके रूपमे प्रसिद्ध है । **(नवीन खुदाईसे प्रमाणित हो गया है कि वस्ती जिलेका पियरहवा नामक स्थान ही प्राचीन कपिलवस्तु था । –संपादक)**

कपिलेन्द्र (अथवा कपिलेश्वर)–एक राजा, जिसने लगभग १४५३ ई० मे उडीसाके गग-वश (दे०) का उच्छेद कर अपना राज्य स्थापित किया । उसने १४७० ई० तक राज्य किया। वहुत ही योग्य और पुरुपार्थी व्यक्ति था । उसने न केवल अपने राज्यके अदर विद्रोहोका दमन किया, वल्कि राज्यकी सीमा गगासे कावेरीतक विस्तृत कर ली । उसने उडीसामे एक नये राजवशकी स्थापना की, जिसमे सवसे प्रसिद्ध राजा पुरुषोत्तम (दे०) (१४७०–९७ ई०) तथा उसका पुत्र प्रतापरुद्र (दे०) (१४९७–१५४० ई०) था । लगभग १५४१ ई० मे कपिलेन्द्रके राजवशको भोई राजवश (दे०) ने अपदस्थ कर दिया ।

कपूर सिंह–पजावके फैजुल्लापुरका एक सिख नेता, जो अठारहवी शताव्दीमे हुआ । वन्दाको फासी दे दिये जानेके वाद उसने सिखोका सगठन किया, जो वादमे सिखोके धर्मराज्य, दल या खालसाके रूपमे विकसित हुआ । पजावमे सिखोका अस्तित्व एक अलग सम्प्रदायके रूपमे वनाये रखनेमे खालसाने वहुत मदद की ।

कवाचा, नासिरुद्दीन–एक गुलाम जो शहावुद्दीन महम्मद गोरीका कृपापात्र वन गया । शहावुद्दीनने उसे सिंधका सूवेदार नियुक्त कर दिया । वह इतना शक्तिशाली था कि दिल्लीके पहले सुल्तान कुतुवुद्दीन (दे०) ने इसीमे वुद्धिमानी समझी कि उससे अपनी वहिनका व्याह करके मित्रता स्थापित कर ली । सुल्तान कुतुवुद्दीनकी मृत्युपर कवाचा दिल्लीके तख्तका दावेदार वन गया और इस प्रकार वह कुतुवुद्दीनके दामाद एव उत्तराधिकारी सुल्तान इल्तुतमिश (दे०) का प्रवल प्रतिद्वन्द्वी सिद्ध हुआ। अतमे लम्वी लडाईके वाद कवाचाने इल्तुतमिशकी अधीनता स्वीकार कर ली ।

कबीर–प्रसिद्ध सत, जिन्होने मनुष्य-मनुष्य तथा हिन्दूधर्म एव मुसलमान धर्मके वीच एकता स्थापित करनेका उपदेश दिया । उनका जन्मकाल और मृत्युकाल अनिश्चित है, परन्तु सम्भवत उनका जीवनकाल चौदहवी शताव्दीका अतिम भाग तथा पन्द्रहवी शताव्दीका प्रारम्भिक भाग है । विश्वास किया जाता है कि वे प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य रामानन्दके शिष्य थे, यद्यपि उनका लालन-पालन मुसलमान जुलाहा परिवारमे हुआ था । कवीरने अपने अधिकाश विचार हिन्दू धर्मसे लिये । मुसलमान सूफी सतो तथा कवियोका भी उनपर भारी प्रभाव था । कवीरने प्रेमके पथका उपदेश दिया जिसमे विभिन्न जातियो और धर्मोमे कोई भेदभाव नही किया जाता । उनके लिए हिन्दू और तुरुक एक ही मिट्टीके पुतले थे और अल्लाह और राम एक ही ईश्वरके दो नाम । कवीर हिन्दू और इस-लाम धर्मके कर्मकाड अथवा वाह्याडम्वरोमे विश्वास नही

करते थे। उनका मत था कि जो हरिको भजता है वह उसीका हो जाता है। उनका मत था कि ईश्वर-प्राप्तिका मार्ग हिन्दुओं और मुसलमानोंके लिए एक है और वह है ईश्वरकी भक्ति करना तथा छल-कपट, झूठ तथा पाखंड-से दूर रहना।

कमरुद्दीन—बादशाह मुहम्मद शाह (१७१९–४८ ई०) (दे०) का वजीर और एक योग्य अधिकारी। अहमद शाह अब्दालीने १७४८ ई० में जब भारतपर पहला आक्रमण किया तो कमरुद्दीनने शाहजादा अहमदको उस आक्रमणको विफल करनेमें सहायता दी। परन्तु पंजाबमें सतलजके तटपर सरहिन्दमें जो लड़ाई हुई तथा जिसमें अब्दाली हारा, उसमें कमरुद्दीन मारा गया।

कमला देवी—गुजरातके राजा कर्णदेव द्वितीय (दे०) की रानी। १२९७ ई० में उसका पति अलाउद्दीन खिलजीकी सेनासे हार गया। फलस्वरूप वह अपनी पुत्री देवलदेवीको लेकर भागी, परन्तु मुसलमानोंने उसको पकड़ लिया और दिल्ली ले गये, जहाँ वह सुल्तानकी चहेती बेगम बन गयी।

कमिश्नर (आयुक्त)—वह सरकारी अधिकारी, जिसके अधीन कई जिलोंको मिलाकर बनाये गये एक मंडल (डिवीजन) का प्रशासन होता है। यह पद १८२९ ई० में प्रचलित हुआ। मूलरूपमें कमिश्नरका काम जिलेके कलक्टरों, मजिस्ट्रेटों और जजोंके कार्यका निरीक्षण करनेके अलावा पुलिस और न्याय विभागका दायित्व सँभालना था। किन्तु इतना अधिक काम एक व्यक्तिके लिए बहुत भारी पड़ता था, अतः कमिश्नरको न्याय एवं पुलिस विभागके दायित्वसे मुक्त कर अधीनस्थ जिला कलक्टरोंके कार्यका निरीक्षक मात्र रहने दिया गया। राजस्व सम्बन्धी मामलोंके मुकदमोंका फैसला करना भी उसीकी जिम्मे-दारी थी।

कम्बुज देश—आधुनिक कम्बोडियामें भारतीयों द्वारा स्थापित प्राचीन हिन्दू राज्य। जनश्रुतियोंके अनुसार इस राज्य-की स्थापना कौण्डिन्य नामक एक भारतीय ब्राह्मणने की थी। उसने वहाँके स्थानीय नागराजकी पुत्री सोमासे विवाह कर लिया और दूसरी शताब्दी ईसवीमें कम्बुजमें एक राजवंशकी स्थापना की। चीनी लोग इस राज्यको फूनान कहते थे। कहा जाता है कि भारतसे सैकड़ों ब्राह्मण फूनान जाकर बस गये और वहाँके मूल निवासियोंकी कन्याओंसे उन्होंने विवाह कर लिया। फूनान राज्यने भारत तथा चीनमें अपने दूत भेजे। छठी शताब्दीमें यह देश फूनानके बजाय 'कम्बुज देश' कहलाने लगा। इसका आधुनिक नाम 'कम्बोडिया' इसीके आधारपर पड़ा है। कम्बुज देशके राजाओंके शरीरमें भारतीय रक्त था। वे लगभग नौ शताब्दियों तक इस देशपर बड़े पराक्रमके साथ शासन करते रहे। पन्द्रहवीं शताब्दीमें कम्बुज देशके हिन्दू राज्यको अन्नाम तथा स्यामके लोगोंने नष्ट कर दिया और वह कम्बोडियाका एक छोटा-सा राज्य रह गया। कम्बोडिया अभी कुछ दशकों पहले तक फ्रांसका संरक्षित राज्य था।

कम्बुज देशके जो प्रतापी राजा हुए, उनमें चारका नाम उल्लेखनीय है। वे हैं जयवर्मा प्रथम तथा द्वितीय, यशोवर्मा जिसने यशोधरपुरकी स्थापना की, जिसे अब अंकोरथोम कहते हैं तथा जिसकी विजय-गाथाओंका वर्णन करनेवाले संस्कृत तथा स्थानीय भाषाओंमें कई शिलालेख मिलते हैं, सूर्यवर्मा द्वितीय, जिसने अंकोरवाटका अनुपम मंदिर बनवाया, जो अपनी विशालता तथा सुन्दरताके कारण संसारमें वास्तुकलाकी एक आश्चर्यजनक कृति माना जाता है। कम्बुज देशमें हिन्दू और बौद्ध, दोनों धर्म प्रचलित रहे। बादमें बौद्ध धर्मने अधिक प्राधान्य प्राप्त कर लिया और आधुनिक कम्बोडियामें भी यह धर्म प्रचलित है।

कम्बोज—कश्मीरके दक्षिण-पश्चिममें स्थित प्राचीन जनपद, काफिरिस्तानका कुछ भाग भी उसमें सम्मिलित था। इस देशके निवासी भी 'कम्बोज' कहलाते थे। अशोकके शिलालेखोंमें कम्बोजोंको उसकी प्रजा बताया गया है, जिनके बीच उसने बौद्ध धर्मका प्रचार किया।

कम्बोडिया—देखिये 'कम्बुज'।

कयाल—दक्षिण भारतमें ताम्रपर्णी नदीके तटपर स्थित एक नगर। वेनिसका यात्री मार्कोपोलो इस नगरमें १२८८ ई० तथा १२९३ ई० में दो बार आया था। उसने इसे विशाल नगर बताया है, जो वाणिज्य-व्यवसायका केन्द्र था। इसके पोताश्रय (बंदरगाह) में पश्चिमी तथा पूर्वके चीन जैसे सुदूर देशोंके व्यापारियोंकी भीड़ रहती थी।

करणसिंह—कश्मीरके अंतिम महाराज। अपने पिता द्वारा राज्यका विलयन भारत संघमें कर देनेके बाद वे कुछ समयतक कश्मीरके राजप्रमुख रहे। वे विद्वान् और साहित्यप्रेमी व्यक्ति हैं, उन्होंने गांधीजीपर भी एक पुस्तक लिखी है।

करणसिंह—मेवाड़के राणा अमरसिंह (दे०) का पुत्र और राणा प्रतापसिंहका पौत्र। १६१४ ई०में राणा अमरसिंह मुगलोंके अधीन हो गया और उसके तथा उसके पुत्र करणसिंहने बादशाह जहाँगीरका आधिपत्य स्वीकार कर लिया। जहाँगीर मेवाड़-विजयपर गर्वसे फूला न समाया और उसने करणसिंह तथा उसके पिताकी मूर्तियाँ आगरेके

हर्षवर्धन (६०६–६४७ ई०) को प्राप्त था, जिन्होने इसे राजधानी बनाया। यह नगर अपने ऐश्वर्य और समृद्धिके कारण 'महोदय श्री' कहा जाने लगा था। हर्षवर्धनकी मृत्युके बाद जितने भी हिन्दू राजवश हुए, उनकी अभिलाषा कन्नौजपर अधिकार करनेकी रहती थी। प्रतिहार राजाओ (८१६–१०६० ई०) ने इसे अपनी राजधानी बनाया और कन्नौज फिर उत्तर भारतका प्रधान नगर बन गया। बगालके राजा धर्मपाल (दे०) ने इस नगरपर आक्रमण किया और कुछ समयतक बडे गर्वके साथ इसे अपने अधिकारमे रखा।

इस नगरपर विपत्तियाँ उस समयसे पडनी शुरू हुई जब १०१८ ई० मे सुल्तान महमूदने इसपर चढाई की। उस समयका प्रतिहार राजा अपनी राजधानी कन्नौजसे हटाकर गगाके दूसरे तटपर स्थित बारी भाग गया। इसका अतिम प्रतिहार राजा राज्यपाल (दे०) था, जिसे चदेल राजा गडने अपदस्थ कर दिया। इसके बाद बारहवी शताब्दीमे कन्नौज गाहड्वाल राजपूतोके अधिकारमे आ गया, जो राठौरके नामसे प्रसिद्ध है। कन्नौजका अतिम राठौर राजा जयचद ११९४ ई० मे शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीसे पराजित हुआ और मारा गया। इसके बाद कन्नौजका महत्त्व समाप्त हो गया। शेरशाह सूरी (दे०) ने मुगल बादशाहसे अपनी निर्णयात्मक लडाई इस शहरके पास ही १५४० ई० मे लडी और इसके बाद इस शहरको नष्ट कर दिया। इस शहरमे अब पुरानी इमारतोके सिर्फ खडहर बच गये है।

कपय नायक–तेलगानाके हिन्दुओका नेता। १३३६ ई० मे उसने दक्षिण भारतके पूर्वी तटपर एक राज्यकी स्थापना की। बादमे उसने मुसलमानोका जुआ उतार फेकने और हिन्दू साम्राज्यकी स्थापना करनेमे विजयनगर राज्यके सस्थापक दो भाइयो हरिहर तथा बुक्क (दे०) के साथ सहयोग किया।

कपिलवस्तु–उत्तर प्रदेशके बस्ती जिलेके उत्तरमे नेपालकी तराईमे स्थित। इसका शाब्दिक अर्थ है 'कपिलका स्थान'। परन्तु, यह पता नही है कि इस स्थानका क्या साख्य दर्शन (दे०) के प्रवर्तक कपिलसे कोई सम्बन्ध था? ऐतिहासिक रूपसे कपिलवस्तु बौद्ध धर्मके सस्थापक गौतम बुद्ध (दे०) के जन्मस्थानके रूपमे प्रसिद्ध है। **(नवीन खुदाईसे प्रमाणित हो गया है कि बस्ती जिलेका पियरहवा नामक स्थान ही प्राचीन कपिलवस्तु था। –संपादक)**

कपिलेन्द्र (अथवा कपिलेश्वर)–एक राजा, जिसने लगभग १४५३ ई० मे उडीसाके गग-वंश (दे०) का उच्छेद कर अपना राज्य स्थापित किया। उसने १४७० ई० तक राज्य किया। बहुत ही योग्य और पुरुषार्थी व्यक्ति था। उसने न केवल अपने राज्यके अदर विद्रोहोका दमन किया, बल्कि राज्यकी सीमा गगासे कावेरीतक विस्तृत कर ली। उसने उडीसामे एक नये राजवशकी स्थापना की, जिसमे सबसे प्रसिद्ध राजा पुरुषोत्तम (दे०) (१४७०–९७ ई०) तथा उसका पुत्र प्रतापरुद्र (दे०) (१४९७–१५४० ई०) था। लगभग १५४१ ई० मे कपिलेन्द्रके राजवशको भोई राजवश (दे०) ने अपदस्थ कर दिया।

कपूर सिंह–पजाबके फैजुल्लापुरका एक सिख नेता, जो अठारहवी शताब्दीमे हुआ। बन्दाको फासी दे दिये जानेके बाद उसने सिखोका सगठन किया, जो बादमे सिखोके धर्मराज्य, दल या खालसाके रूपमे विकसित हुआ। पजाबमे सिखोका अस्तित्व एक अलग सम्प्रदायके रूपमे बनाये रखनेमे खालसाने बहुत मदद की।

कबाचा, नासिरुद्दीन–एक गुलाम जो शहाबुद्दीन महम्मद गोरीका कृपापात्र बन गया। शहाबुद्दीनने उसे सिधका सूबेदार नियुक्त कर दिया। वह इतना शक्तिशाली था कि दिल्लीके पहले सुल्तान कुतुबुद्दीन (दे०) ने इसीमे बुद्धिमानी समझी कि उससे अपनी बहिनका ब्याह करके मित्रता स्थापित कर ली। सुल्तान कुतुबुद्दीनकी मृत्युपर कबाचा दिल्लीके तख्तका दावेदार बन गया और इस प्रकार वह कुतुबुद्दीनके दामाद एव उत्तराधिकारी सुल्तान इल्तुतमिश (दे०) का प्रबल प्रतिद्वन्द्वी सिद्ध हुआ। अतमे लम्बी लडाईके बाद कबाचाने इल्तुतमिशकी अधीनता स्वीकार कर ली।

कबीर–प्रसिद्ध सत, जिन्होने मनुष्य-मनुष्य तथा हिन्दूधर्म एव मुसलमान धर्मके बीच एकता स्थापित करनेका उपदेश दिया। उनका जन्मकाल और मृत्युकाल अनिश्चित है, परन्तु सम्भवत उनका जीवनकाल चौदहवी शताब्दीका अतिम भाग तथा पन्द्रहवी शताब्दीका प्रारम्भिक भाग है। विश्वास किया जाता है कि वे प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य रामानन्दके शिष्य थे, यद्यपि उनका लालन-पालन मुसलमान जुलाहा परिवारमे हुआ था। कबीरने अपने अधिकाश विचार हिन्दू धर्मसे लिये। मुसलमान सूफी सतो तथा कवियोका भी उनपर भारी प्रभाव था। कबीरने प्रेमके पथका उपदेश दिया जिसमे विभिन्न जातियो और धर्मोमे कोई भेदभाव नही किया जाता। उनके लिए हिन्दू और तुरुक एक ही मिट्टीके पुतले थे और अल्लाह और राम एक ही ईश्वरके दो नाम। कबीर हिन्दू और इसलाम धर्मके कर्मकाड अथवा बाह्याडम्बरोमे विश्वास नही

करते थे। उनका मत था कि जो हरिको भजता है वह उसीका हो जाता है। उनका मत था कि ईश्वर-प्राप्तिका मार्ग हिन्दुओं और मुसलमानोंके लिए एक है और वह है ईश्वरकी भक्ति करना तथा छल-कपट, झूठ तथा पाखंड-से दूर रहना।

कमरुद्दीन–बादशाह मुहम्मद शाह (१७१९–४८ ई०) (दे०) का वजीर और एक योग्य अधिकारी। अहमद शाह अब्दालीने १७४८ ई० में जब भारतपर पहला आक्रमण किया तो कमरुद्दीनने शाहजादा अहमदको उस आक्रमणको विफल करनेमें सहायता दी। परन्तु पंजाबमें सतलजके तटपर सरहिन्दमें जो लड़ाई हुई तथा जिसमें अब्दाली हारा, उसमें कमरुद्दीन मारा गया।

कमला देवी–गुजरातके राजा कर्णदेव द्वितीय (दे०) की रानी। १२९७ ई० में उसका पति अलाउद्दीन खिलजीकी सेनासे हार गया। फलस्वरूप वह अपनी पुत्री देवलदेवीको लेकर भागी, परन्तु मुसलमानोंने उसको पकड़ लिया और दिल्ली ले गये, जहाँ वह सुल्तानकी चहेती बेगम बन गयी।

कमिश्नर (आयुक्त)–वह सरकारी अधिकारी, जिसके अधीन कई जिलोंको मिलाकर बनाये गये एक मंडल (डिवीजन) का प्रशासन होता है। यह पद १८२९ ई० में प्रचलित हुआ। मूलरूपमें कमिश्नरका काम जिलेके कलक्टरों, मजिस्ट्रेटों और जजोंके कार्यका निरीक्षण करनेके अलावा पुलिस और न्याय विभागका दायित्व सँभालना था। किन्तु इतना अधिक काम एक व्यक्तिके लिए बहुत भारी पड़ता था, अतः कमिश्नरको न्याय एवं पुलिस विभागके दायित्वसे मुक्त कर अधीनस्थ जिला कलक्टरोंके कार्यका निरीक्षक मात्र रहने दिया गया। राजस्व सम्बन्धी मामलोंके मुकदमोंका फैसला करना भी उसीकी जिम्मे-दारी थी।

कम्बुज देश–आधुनिक कम्बोडियामें भारतीयों द्वारा स्थापित प्राचीन हिन्दू राज्य। जनश्रुतियोंके अनुसार इस राज्य-की स्थापना कौण्डिन्य नामक एक भारतीय ब्राह्मणने की थी। उसने वहाँके स्थानीय नागराजकी पुत्री सोमासे विवाह कर लिया और दूसरी शताब्दी ईसवीमें कम्बुजमें एक राजवंशकी स्थापना की। चीनी लोग इस राज्यको फूनान कहते थे। कहा जाता है कि भारतसे सैकड़ों ब्राह्मण फूनान जाकर बस गये और वहाँके मूल निवासियोंकी कन्याओंसे उन्होंने विवाह कर लिया। फूनान राज्यने भारत तथा चीनमें अपने दूत भेजे। छठी शताब्दीमें यह देश फूनानके बजाय 'कम्बुज देश' कहलाने लगा। इसका आधुनिक नाम 'कम्बोडिया' इसीके आधारपर पड़ा है। कम्बुज देशके राजाओंके शरीरमें भारतीय रक्त था। वे लगभग नौ शताब्दियों तक इस देशपर बड़े पराक्रमके साथ शासन करते रहे। पन्द्रहवीं शताब्दीमें कम्बुज देशके हिन्दू राज्यको अन्नाम तथा स्यामके लोगोंने नष्ट कर दिया और वह कम्बोडियाका एक छोटा-सा राज्य रह गया। कम्बोडिया अभी कुछ दशकों पहले तक फ्रांसका संरक्षित राज्य था।

कम्बुज देशके जो प्रतापी राजा हुए, उनमें चारका नाम उल्लेखनीय है। वे हैं जयवर्मा प्रथम तथा द्वितीय, यशोवर्मा जिसने यशोधरपुरकी स्थापना की, जिसे अब अंकोरथोम कहते हैं तथा जिसकी विजय-गाथाओंका वर्णन करनेवाले संस्कृत तथा स्थानीय भाषाओंमें कई शिलालेख मिलते हैं, सूर्यवर्मा द्वितीय, जिसने अंकोरवाटका अनुपम मंदिर बनवाया, जो अपनी विशालता तथा सुन्दरताके कारण संसारमें वास्तुकलाकी एक आश्चर्यजनक कृति माना जाता है। कम्बुज देशमें हिन्दू और बौद्ध, दोनों धर्म प्रचलित रहे। बादमें बौद्ध धर्मने अधिक प्राधान्य प्राप्त कर लिया और आधुनिक कम्बोडियामें भी यह धर्म प्रचलित है।

कम्बोज–कश्मीरके दक्षिण-पश्चिममें स्थित प्राचीन जनपद, काफिरिस्तानका कुछ भाग भी उसमें सम्मिलित था। इस देशके निवासी भी 'कम्बोज' कहलाते थे। अशोकके शिलालेखोंमें कम्बोजोंको उसकी प्रजा बताया गया है, जिनके बीच उसने बौद्ध धर्मका प्रचार किया।

कम्बोडिया–देखिये 'कम्बुज'।

कयाल–दक्षिण भारतमें ताम्रपर्णी नदीके तटपर स्थित एक नगर। वेनिसका यात्री मार्कोपोलो इस नगरमें १२८८ ई० तथा १२९३ ई० में दो बार आया था। उसने इसे विशाल नगर बताया है, जो वाणिज्य-व्यवसायका केन्द्र था। इसके पोताश्रय (बंदरगाह) में पश्चिमी तथा पूर्वके चीन जैसे सुदूर देशोंके व्यापारियोंकी भीड़ रहती थी।

करणसिंह–कश्मीरके अंतिम महाराज। अपने पिता द्वारा राज्यका विलयन भारत संघमें कर देनेके बाद वे कुछ समयतक कश्मीरके राजप्रमुख रहे। वे विद्वान् और साहित्यप्रेमी व्यक्ति हैं, उन्होंने गांधीजीपर भी एक पुस्तक लिखी है।

करणसिंह–मेवाड़के राणा अमरसिंह (दे०) का पुत्र और राणा प्रतापसिंहका पौत्र। १६१४ ई०में राणा अमरसिंह मुगलोंके अधीन हो गया और उसके तथा उसके पुत्र करणसिंहने बादशाह जहाँगीरका आधिपत्य स्वीकार कर लिया। जहाँगीर मेवाड़-विजयपर गर्वसे फूला न समाया और उसने करणसिंह तथा उसके पिताकी मूर्तियाँ आगरेमें

महलमे स्थापित की। करणसिहको पचहजारी मनसबदारका पद स्वीकार कर लेन। पडा ग्रौर ग्रपने पिताकी मृत्युके बाद वह मुगलोका ग्रधीनस्थ राजा होकर मेवाडका शासन करता रहा।

करनालकी लडाई—१७३६ ई० मे नादिरशाह ग्रौर मुगल बादशाह मुहम्मद शाह (१७१६–४८ ई०) (दे०) की फौजोके बीच हुई। नादिरशाहकी फौजे बिना किसी प्रतिरोधके दिल्लीके निकट करनाल तक चढ ग्रायी। इस लडाईमे मुगलोकी जबरदस्त हार हुई, बादशाह मुहम्मद शाह बदी बना लिया गया, नादिरशाहने ग्रपनी सेनाके साथ दिल्लीमे प्रवेश किया ग्रौर निर्दयताके साथ मारकाट कर उसे लूटा।

करिकाल—ग्रबतक ज्ञात चोल राजाग्रोमे सबसे प्राचीन। उसका काल १०० ई० माना जाता है। कहा जाता है कि उसने पुहार नगरकी स्थापना की ग्रौर कावेरी नदीके किनारे सौ मील लम्बा बाध बनवाया।

करीम खा—पेढारियो (दे०) का नेता। भारतके गवर्नर-जनरल लार्ड हेस्टिग्स (१८१३–२३ ई०) ने पेढारियोपर जो चढाई की, उसके फलस्वरूप उसे १८१८ ई० मे ग्रग्रेजोके सामने ग्रात्मसमर्पण करना पडा। उसे उत्तर प्रदेशमे गावरुपुरमे एक जागीर दे दी गयी, जहाँ वह शातिपूर्ण जीवन व्यतीत करने लगा।

करेरी, डा० जेमिली—एक इटालियन यात्री, जो शाहशाह ग्रौरगजेब (१६५८–१७०७ ई०) के शासनकालके ग्रतिम दिनोमे भारत ग्राया। १६६५ ई० मे जब ग्रौरगजेब कृष्णा नदीके तटपर गलगलामे पडाव डाले हुए था, तब डा० जेमिली करेरी उससे मिला था। उसने बूढे शाहशाहके शिविर, उसकी शकल-सूरत, उसके रहन-सहनके ढगके बारेमे बडा दिलचस्प विवरण लिख छोडा है।

करोन, फ्रैन्को—भारतमे प्रथम फ्रासीसी फैक्टरीका सस्थापक। फ्रासीसी ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा भेजे जानेपर वह १६६७ ई०मे एक छोटे फ्रासीसी जहाजी बेडेके साथ भारतीय तटपर ग्राया ग्रोर सूरतमे एक फैक्टरीकी स्थापना की।

करौली राज्य—दक्षिणी राजपूतानेकी एक पुरानी रियासत। लार्ड डलहौजी जब्तीके सिद्धात (दे०) के ग्रतर्गत इसे ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमे मिला लेना चाहता था। परन्तु इग्लैण्डके उच्च ग्रधिकारियोने इसकी ग्राज्ञा नही दी। उनका मत था कि करौली ग्राश्रित राज्य नही हे, जिसपर यह सिद्धात लागू होता हो, बल्कि रक्षित मित्र राज्य है।

कर्क—एक प्रतिहार (दे०) राजा, जिसने ८३७ ई०मे मुगेरमे गौड राजासे यद्ध करते हुए ख्याति प्राप्त की।

कर्क द्वितीय—राष्ट्रकूट वश (दे०) का ग्रतिम राजा, जिसे ६७३ ई०मे तैल चालुक्य (दे०) ने ग्रपदस्थ कर दिया।

कर्कोटक वश—कश्मीरमे सातवी शताब्दीमे दुर्लभवर्धनके द्वारा स्थापित। इसने कश्मीरपर ८५५ ई० तक राज्य किया। इसके बाद उत्पल वशने इसे उखाड फेका। इस वशके तीन सबसे प्रसिद्ध राजा चन्द्रापीड (दे०), मुक्तापीड ललितादित्य (दे०) तथा जयापीड विनयादित्य (दे०) हुए।

कर्जन, जार्ज नेथानियल (केडिलसटनका मारक्विस) (१८५९–१९२५)—एटन ग्रौर ग्राक्सफोर्डमे शिक्षित ग्रार १८९९ ई० मे भारतका गवर्नर-जनरल नियुक्त। इससे पहले वह मध्य एशियासे कोरिया तक विस्तृत यात्रा कर चुका था ग्रौर इन यात्राग्रोके ऊपर उसकी कई पुस्तके भी प्रकाशित हो चुकी थी। गवर्नर-जनरलके पदपर उसका पहला कार्यकाल १९०४ ई० मे समाप्त हुग्रा। लेकिन उसे दुबारा फिर इसी पदपर नियुक्त कर दिया गया। इस दोरान वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्के सैनिक सदस्यकी स्थितिको लेकर कमाण्डर-इन-चीफ लार्ड किचनरसे उसका मतभेद हो गया। ब्रिटिश सरकारसे भी इस प्रश्नपर समर्थन न मिला, ग्रत १९०५ मे उसने गवर्नर-जनरलके पदसे त्यागपत्र दे दिया। लार्ड कर्जनके कार्यकालकी प्रमुख विशेषता प्रशासनमे किये गये सुधार थे। उसने सीमाप्रात नामक एक नये प्रातकी स्थापना की, जिसका उद्देश्य उस क्षेत्रकी विद्रोही जन-जातियोपर ग्रच्छी तरहसे नियत्रण रख सकना था। फिर भी उसे १९०१ मे वजीरी कबीलेके विरुद्ध ग्रभियानकी स्वीकृति देनी पडी, जिसका ग्रत ग्रग्रेजोकी जीतमे हुग्रा। १९०३ ई० मे कर्जन फारसकी खाडीमे ब्रिटिश हितोपर रूसी कुठाराघात रोकने ग्रोर वहाँ ब्रिटिश व्यापार ग्रौर प्रभाव बढानेके लिए गया। तिब्बतमे रूसी प्रभाव रोकनेके लिए उसने १९०३ ई० मे एक ब्रिटिश मिशन भेजा, लेकिन इसका नतीजा यह निकला कि तिब्बतसे युद्ध छिड गया। ग्रग्रेजी ग्रौर भारतीय सेना ल्हासामे घुस गयी ग्रोर शातिके लिए ल्हासा-सधि (दे०) करनेके लिए तिब्बतको मजबूर होना पडा।

कर्जनने प्रशासनके हर क्षेत्रकी जाँच-पडताल की ग्रौर जनमतकी ज्यादा परवाह किये बिना जो सुधार उचित समझे, किये। उसने इम्पीरियल कैडिट कोरकी स्थापना की, निजामसे बरारका विवाद निपटाया ग्रौर कलकत्तामे विक्टोरिया मेमोरियल हालका निर्माण शुरू कराया। इसके लिए उसने धनाढ्य भारतीयोसे बडे-बडे दान लिये।

दिसम्बर १९०३ ई० में एडवर्ड सप्तमके राज्याभिषेकपर दिल्ली दरबार आयोजित किया, भारतका वित्तीय प्रबंध दक्षतासे किया, नमक-कर दो बार कम किया, न्यूनतम आयपर कर माफ किया तथा सरकारी गोपनीयता कानून, भारतीय खान कानून, प्राचीन स्मारक संरक्षण कानून और सहकारी ऋण समिति कानून जैसे अनेक महत्त्वपूर्ण कानून पास कराये। किन्तु विश्वविद्यालय अधिनियम और बंग-भंग जैसे कुछ कार्यों तथा सार्वजनिक भाषणोंमें भारतीय चरित्र और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी निंदा किये जानेकी वजहसे भारतमें उनके खिलाफ उग्र जन-आक्रोश भड़क उठा। वह शासनको उदार बनाने और भारतमें हर प्रकारके आंदोलनोंको कुचलनेमें विश्वास करता था। उसकी इन नीतियोंका नतीजा यह निकला कि भारतीय राष्ट्रवादकी भावनाने और जोर पकड़ लिया और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी लोकप्रियता पहलेसे कहीं ज्यादा बढ़ गयी।

१९०५ ई० में भारतसे अवकाश ग्रहण करनेके बाद कर्जन बीस वर्षों तक जिया, इस अवधिमें उसने ब्रिटेनके कई मंत्रिमंडलोंमें उच्च पदोंपर काम किया, लेकिन इंग्लैण्डके प्रधानमंत्रीका पद पानेकी अभिलाषा पूरी न हो सकी और १९२५ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। (**लार्ड रोनाल्डशे कृत लाइफ आफ लार्ड कर्जन**)

कर्टिस, लायोनेल—प्रख्यात पत्रकार। वह 'राउण्ड टेबुल' पत्रका संस्थापक और कई वर्षों तक उसका संपादक रहा। वह ब्रिटिश साम्राज्यकी एकता बनाये रखनेका बहुत बड़ा समर्थक था। उसीके सुझावपर १९१९ ई० के गवर्नमेण्ट आफ इंडिया ऐक्टमें पहली बार 'द्वैध शासन' का सिद्धान्त शामिल किया गया, जिसका प्रयोजन यह था कि ब्रिटिश भारतके प्रांतोंमें आंशिक रूपसे प्रशासनका दायित्व जन-प्रतिनिधियोंपर छोड़ा जाय। यही सिद्धान्त १९३५ ई०के गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया ऐक्टके अन्तर्गत केन्द्रमें भी लागू करनेकी व्यवस्था की गयी, किन्तु वह कार्यान्वित न हो सकी।

कर्णदेव—गुजरातका राजा। १२९७ ई० में सुलतान अला-उद्दीन खिलजीके सिपहसालारोंने उसके राज्यपर हमला किया। युद्धमें वह पराजित हुआ और उसकी रानी कमलादेवीको बंदी बनाकर सुलतानके हरममें भेज दिया गया। कर्णदेव भागकर देवगिरिके राजा रामचन्द्रदेव (दे०) की शरणमें चला गया। परन्तु, सुलतान अला-उद्दीनकी फौजने उसे चैनसे न बैठने दिया और उसका पीछा करती हुई दक्खिनमें नन्दरबार पहुँची, जहाँ उसने एक छोटा-सा राज्य स्थापित कर लिया था। प्रबल प्रतिरोधके बाद उसका राज्य छीन लिया गया।

कर्णसुवर्ण—शशांक (दे०) के राज्यकालमें गौड़ (बंगाल) की राजधानी। शशांक तथा उसके समसामयिक महाराजाधिराज हर्षवर्धनकी मृत्युके बाद, कामरूप (असम) के राजा भास्करवर्मा (दे०) ने कर्णसुवर्णको जीत लिया और कुछ समय तक अपने अधिकारमें रखा। उसने निधानपुरका दानपत्र कर्णसुवर्णमें अपने विजयशिविरमें लिखवाया था। कर्णसुवर्णकी पहचान तर्कसंगत रीतिसे बंगालमें भागीरथीके तटपर स्थित मुर्शिदाबादसे की जाती है।

कर्णावती—मेवाड़की एक वीर रानी। गुजरातके शासक बहादुर शाहने जब १५३५ ई० में चित्तौड़पर चढ़ाई की तो रानीने दुर्गकी रक्षाकी व्यवस्था की। जब हुमायूं बहादुरशाहके खिलाफ फौजें लेकर दिल्लीसे चला तो रानी कर्णावतीने मुगल बादशाहसे बहादुरशाहके खिलाफ संधिका प्रस्ताव किया, क्योंकि वह दोनोंका समान शत्रु था। परन्तु हुमायूंने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया। रानी कर्णावती बहादुरशाहकी फौजोंसे चित्तौड़की रक्षा करनेमें विफल रही, परन्तु मुसलमानोंकी इस विजयसे हुमायूंको भी कोई लाभ नहीं हुआ, क्योंकि बहादुरशाहने उसे भी गुजरात-से वापस लौटनेके लिए विवश कर दिया।

कर्तृपुर—समुद्रगुप्त (लगभग ३३०–३८० ई०) के इलाहाबाद स्तम्भ-लेखके अनुसार एक प्रत्यन्त (सीमान्त) राज्य, जिसका राजा दूसरे प्रत्यन्त राजाओंकी भांति समुद्रगुप्तका करद था। यह राज्य सम्भवतः आधुनिक कुमायूं तथा गढ़वाल जिलोंमें विस्तृत था।

कर्नाक, कर्नल—कम्पनीकी सेनाका एक जनरल, १७६५ ई० में जब पदोन्नति कर इसे बंगालकी कौंसिलमें भेजा गया, तब यह बिहारमें तैनात था। बंगालमें कम्पनीके प्रशासनमें इसने १७६५ से १७६७ ई० तक क्लाइवकी सहायता की। बादमें प्रथम मराठा-युद्धके दौरान मराठोंके विरुद्ध अंग्रेज सेनाके साथ भेजा गया और १३ जनवरी १७७९ ई०को बड़ागाँवके समझौतेपर हस्ताक्षर कर अपने माथे कलंकका टीका लगाया। इस समझौतेके अन्तर्गत उसने यह वचन दिया कि कुछ अंग्रेज अधिकारी बन्धकके रूपमें मराठोंको उस समय तकके लिए सौंप दिये जायेंगे, जब तक कम्पनीने १७७३ ई० में मराठोंके जितने इलाकोंपर कब्जा किया वे सब उन्हें वापस नहीं कर दिये जाते। वारेन हेस्टिंग्सने इस समझौतेको नहीं माना और डाइरेक्टरोंके आदेशपर कर्नाकको बर्खास्त कर दिया गया।

कर्नाटककी लडाइयाँ—अठारहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें

अंग्रेजो तथा फ्रासीसियोके वीच हुई। ये लडाइया अंग्रेजो और फ्रासीसियोकी प्रतिद्वन्द्विताके परिणामस्वरूप हुई और उनकी यूरोपकी प्रतिस्पर्द्धासे सम्बन्धित थी। ये लडाइया अठारहवी शताब्दीके आग्ल-फ्रासीसी युद्धोका ही एक भाग थी। इनको 'कर्नाटककी लडाइया' इसलिए कहते है कि ये भारतके कर्नाटक प्रदेशमे लडी गयी।

कर्नाटककी पहली लडाई आस्ट्रियाई उत्तराधिकारके युद्ध (१७४०-४८ ई०) से उत्पन्न आग्ल-फ्रासीसी शत्रुताके फलस्वरूप हुई। यह भारतमे १७४६ ई० मे उस समय शुरू हुई, जब फ्रासीसियोने मद्रासपर कब्जा कर लिया। अंग्रेजोने कर्नाटकके नवाव अनवरुद्दीनको फ्रासीसियोको मद्राससे खदेड देनेके लिए एक वडी सेना भेजनेको प्रेरित किया। लेकिन सेन्ट थोमकी लडाईमे नवावकी सेना फ्रासीसियोसे पराजित हो गयी। फ्रासीसियोने पाडिचेरीपर अंग्रेजोका हमला विफल कर दिया। डूप्लेके नेतृत्वमे उनका मद्रासपर भी कब्जा वना रहा। विजित इलाकोकी पारस्परिक वापसीके आधारपर एक्स-ला-चैपेलकी सधि (१७४८ ई०) हो जानेके वाद यह युद्ध समाप्त हो गया। सधिके अन्तर्गत मद्रास अंग्रेजोको मिल गया और क्षेत्रीय दृष्टिसे अंग्रेजो और फ्रासीसियोकी स्थितिमे कोई अन्तर नही आया। लेकिन कर्नाटककी पहली लडाईसे यह महत्त्वपूर्ण सवक मिला कि यूरोपीय तरीकेसे प्रशिक्षित एव हथियारोसे सज्जित भारतीय सैनिकोकी सहायतासे यूरोपीयोकी एक छोटी सेना वहुत वडी भारतीय सेनाको सरलतासे हरा सकती है।

इस अनुभवके अनुसार डूप्लेने राजनीतिक लाभ उठानेके लिए हैदरावादके मामलेमे हस्तक्षेप किया। हैदरावादके निजाम आसफजाहकी मृत्यु १७४८ ई०मे हो गयी और कर्नाटकके नवाव अनवरुद्दीनका भी १७४९ ई०मे निधन हो गया। दोनो स्थानोपर उत्तराधिकारका प्रश्न विवादास्पद था। डूप्लेने कर्नाटककी गद्दीके लिए नवावके जारज पुत्र मुहम्मद अलीके विरुद्ध चन्दासाहवकी सहायता करनेका वचन दे दिया। इसी प्रकार हैदरावादकी गद्दीके लिए निजामके दूसरे पुत्र नासिरजगके विरुद्ध उसने निजामके दोहते मुजफ्फरजगकी सहायता करनेका आश्वासन दिया। ऐसी स्थितिमे अंग्रेजोने सहज ही हैदरावादकी गद्दीके लिए नासिरजग और कर्नाटकमे मुहम्मद अलीका समर्थन आरम्भ कर दिया। इस प्रकार आग्ल-फ्रासीसी युद्धका दूसरा चरण आरम्भ हुआ, जो कर्नाटककी दूसरी लडाई (१७५१-५४ ई०)के नामसे प्रसिद्ध है।

भारतमे अंग्रेजो और फ्रासीसियोके वीच यह लडाई अनधिकृत थी, क्योकि यूरोपमे दोनोके वीच शान्ति थी। पहले डूप्लेके निर्देशनमे फ्रासीसियोको सभी जगह सफलता मिली। उनके आश्रित चन्दासाहवको कर्नाटककी गद्दी मिल गयी और उसके प्रतिद्वन्द्वी मुहम्मद अलीको अंग्रेज सैनिकोके सरक्षणमे त्रिचनापल्लीके किलेमे शरण लेनी पडी। हैदरावादमे मुजफ्फरजग निजामके पदपर सत्तारूढ हो गया और उसने फ्रासीसियोको कृष्णासे कन्या कुमारी तकके क्षेत्रमे दक्षिण भारतकी सार्वभौम शक्तिके रूपमे मान्यता प्रदान कर दी।

१७५१ ई० मे मुजफ्फरजग मारा गया, लेकिन फ्रासीसी अपने दूसरे आश्रित सलावतजगको निजामकी गद्दीपर वैठानेमे सफल हो गये। सलावतजगने फ्रासीसियो-के वे सभी अधिकार कायम रखे जो उन्हे मुजफ्फरजगने प्रदान किये थे। उस समय ऐसा प्रतीत होने लगा कि अव कुछ ही समय वाद त्रिचनापल्लीपर कब्जा होते ही फ्रासी-सियोकी पूर्ण विजय हो जायगी। फ्रासीसियोकी सहायता-से चन्दासाहवने त्रिचनापल्लीको, जहाँ मुहम्मद अली आश्रय लिये था, घेर रखा था। त्रिचनापल्लीके पतनके साथ ही कर्नाटक तथा दक्षिण भारतमे अंग्रेजोकी शक्तिका नष्ट होना प्राय निश्चित था। इस गम्भीर परिस्थितिमे एक युवक कप्तान रावर्ट क्लाइवके सुझावपर अंग्रेजोने चन्दासाहवकी राजधानी अर्काटपर आक्रमण करनेका निश्चय किया। यह योजना वहुत ही सफल सिद्ध हुई। क्लाइव तथा उसकी २०० अंग्रेज और ३०० भारतीय सिपाहियोकी छोटी-सी सेनाने सरलताके साथ अर्काट-के किलेपर कब्जा कर लिया। तत्काल चन्दा साहवने त्रिचनापल्लीके सामनेसे वडी सेना हटाकर अर्काटपर पुन कब्जा करनेके उद्देश्यसे घेरा डाल दिया। किन्तु क्लाइव-की मुट्ठीभर सेना ५३ दिनो तक किलेके अदर डटी रही और अतमे चन्दा साहवकी सेनाने जब किलेपर धावा वोलकर उसे छीननेकी कोशिश की तो उसे पीछे ढकेल दिया। चन्दा साहवकी सेनाको वाध्य होकर अर्काटके सामनेसे हटना पडा। क्लाइवकी विजयी सेना तव किलेके वाहर निकल आयी। उसकी सहायताके लिए अंग्रेजो तथा सहयोगी भारतीय राजाओकी नयी फौजे भी पहुँच गयी थी। इन फौजोकी मददसे क्लाइवने कावेरीपाक तथा अन्य कई स्थानोपर चन्दा साहवकी सेनाको हराया। चन्दा साहवको विवश होकर आत्मसमर्पण कर देना पडा और उसे मार डाला गया।

फ्रासीसियोने अव कर्नाटकपर अपना समस्त अधिकार त्याग दिया, किंतु निजामपर उनका प्रभाव पूर्ववत् वना

रहा। निजामके दरवारमें इस समय बुसी डूप्लेका प्रतिनिधि था। इसी बीच फ्रांसकी सरकारने १७५४ ई० में डूप्लेको स्वदेश वापस बुला लिया, क्योंकि कर्नाटककी लडाइयोंमें डूप्लेकी हारसे वह हतोत्साहित हो गयी थी और इस अनधिकृत युद्धको समाप्त कर फिरसे शांति स्थापित कर देना चाहती थी। इस प्रकार कर्नाटककी दूसरी लडाईका अंत हो गया। इसके परिणामस्वरूप निजामके दरवारसे फ्रांसीसी और कर्नाटकमें अंग्रेज प्रभुत्वशाली हो गये।

कर्नाटककी तीसरी लडाई ठीक दो साल वाद १७५६ ई० में शुरू हुई। इस समय यूरोपमें सप्तवर्षीय युद्ध आरम्भ हो गया था और इंग्लैण्ड तथा फ्रांसमें फिर ठन गयी थी। फलत. भारतमें भी अंग्रेजों और फ्रांसीसियोंमें लड़ाई शुरू हो गयी। इस वार लडाई कर्नाटककी सीमा लाघ कर वंगाल तक फैल गयी। अंग्रेजोंने १७५७ ई० में फ्रांसीसियोंसे चन्द्रनगर छीन लिया। किन्तु, सर्वाधिक निर्णायक लडाइयाँ कर्नाटकमें ही हुई। फ्रांसने काउंट लालीको पाडिचेरीका गवर्नर बनाकर भेजा। उसने शुरूआत अच्छी की और आते ही फोर्ट सेंट डेविडपर तथा अंग्रेजोंकी पास-पड़ोसकी सभी छोटी-छोटी वस्तियोंपर कब्जा कर लिया, परन्तु मद्रासको उनसे नहीं छीन सका। उसने एक भारी गलती यह की कि वुसीको निजामके दरवारसे वापस वुला लिया। इससे निजामपर फ्रांसीसियोंका प्रभाव समाप्त हो गया। वंगालसे एक अंग्रेज सेना कर्नल फोर्डके नेतृत्वमें भेजी गयी। उसने आकर १७५८ ई० में उत्तरी सरकार फ्रांसीसियोंसे छीन लिया। युद्ध इसके वाद भी चलता रहा। १७६० ई० में सर आयर कूटके नेतृत्वमें अंग्रेजी सेनाने विन्दवासकी लडाईमें फ्रांसीसी सेनाको पराजित कर दिया। लालीको पीछे हटकर पाडिचेरी भागना पडा। अंग्रेजी सेनाने उसे भी घेर लिया और १७६१ ई० में लालीको आत्मसमर्पण कर देना पडा।

यह युद्ध १७६३ ई० में पेरिसकी संधिसे समाप्त हो गया। फ्रांसीसियोंको पाडिचेरी और अन्य वस्तियाँ इस शर्तपर वापस कर दी गयी कि उनकी न तो किलेवंदी की जायगी और न वहाँ फौज रखी जायगी। उनका उपयोग सिर्फ तिजारतके लिए किया जायगा। इस प्रकार कर्नाटककी तीसरी लडाईके परिणामस्वरूप भारतमें अंग्रेजोंके प्रतिद्वंद्वी फ्रांसीसियोंका पूर्ण पराभव हो गया और भारतमें अंग्रेजी राज्यकी स्थापनाका पथ प्रशस्त हो गया।

कर्पूरमंजरी–दक्षिणके एक कवि राजशेखर द्वारा प्राकृत भाषामें लिखा गया एक नाटक। राजशेखर गुर्जर-प्रतिहार राजा महेन्द्रपाल (दे०) (८९०–९१० ई०) का गुरु था।

कर्वे (महर्षि, धोंडो केशव कर्वे)–एक प्रसिद्ध समाजसेवी प्राध्यापक, जिन्होंने पूनामें महिला विश्वविद्यालयकी स्थापना की। यह अपने ढंगकी अनोखी संस्था है जो आधुनिक कालमें भारतमें नारी-शिक्षाकी प्रगतिको सूचित करती है।

कलकत्ता–स्थापना, ईस्ट इण्डिया कम्पनीके प्रतिनिधि जाव चारनाक द्वारा १६९० ई० में। उसने हुगली तटपर स्थित आधुनिक हुगली नगरसे १५ मील दक्षिण सूतानटीमें एक फैक्टरी कायम की। सूतानटीके चारो तरफ दलदल था और पहले यह सुविधाजनक स्थान नहीं लगता था। किन्तु यहाँतक जहाज आ-जा सकते थे और अंग्रेजोंकी समुद्री शक्तिके लिए यह स्थान चिनसुरा, जहाँ डच बस गये थे और चन्दरनगर जहाँ फ्रांसीसियोंने अपनेको पहलेसे जमा रखा था, दोनोंसे अधिक उपयुक्त था। डच और फ्रांसीसी दोनोंके जहाज विना सूतानटीसे गुजरे अपनी फैक्टरियों तक नहीं पहुँच सकते थे। १६९६ ई० में शोभासिंहके विद्रोहके परिणामस्वरूप अंग्रेजोंको सूतानटी स्थित अपनी फैक्टरीकी किलेवन्दी करनेका वहाना मिल गया। दो वर्ष वाद १६९८ ई० में अंग्रेजोंने तीन संलग्न गाँव सूतानटी, कालीकाता और गोविन्दपुरके जमींदारी-अधिकार मात्र १२०० रुपये भूतपूर्व मालिकोंको देकर प्राप्त कर लिये और तीनों गाँवोंको मिलाकर एक नयी वस्ती वस गयी, जो वादमें 'कलकत्ता' के नामसे प्रसिद्ध हुई। यह नाम वंगाली 'कालीकाता' का ही अंग्रेजी रूपांतर था। १७०० ई० में यह 'फोर्ट विलियम' नामसे वंगाल प्रेसीडेन्सीका सदर मुकाम हो गया। सर चार्ल्स आयर इस प्रेसीडेंसीका प्रथम अध्यक्ष हुआ। १७१६ ई० में फोर्ट विलियमका निर्माण-कार्य पूरा हो गया। वादशाह फर्रुखसियरके दरवारमें कम्पनीके वकील सरमेनके प्रयत्नसे कम्पनीको १७१७ई० में वंगालमें विना चुंगी दिये व्यापार करनेका अधिकार मिल गया। इसके वदलेमें कम्पनीको केवल तीन हजार रुपये वार्षिक मुगल सम्राट्को देना पडा। इससे वंगालमें कम्पनीका व्यापार खूव फला-फूला और कलकत्ताकी सम्पन्नता वढती गयी। इसकी जनसंख्या १७३५ ई० में एक लाख तक हो गयी। १७२७ ई० तक यहाँ जहाजोंसे दस हजार टन माल प्रतिवर्ष आने लगा। १७४२ ई० में मराठोंके आक्रमणके भयसे नगरके चारों ओर एक खाई खोदनेकी शुरुआत हुई। इसी स्थानपर आजकल सर्कुलर रोड वनी हुई है। अप्रैल १७५६ ई० में नवाव अलीवर्दीके देहावसानपर

उसका पौत्र सिराजुद्दौला वगालका नवाव वना । आग्ल-फ्रासीसी युद्धकी आशकासे अग्रेज और फ्रासीसी दोनोने अपनी-अपनी वस्तियोकी किलेबन्दी शुरू कर दी । सिराजने इसे पसन्द नही किया और समस्त निर्माण-कार्य वन्द कर देनेका आदेश दिया । फ्रासीसियोने निर्माणकार्य रुकवा दिया, किन्तु अग्रेजोने न केवल टालमटोल की, वरन् कलकत्तामे एक राजनीतिक भगोडेको शरण भी दे दी । इससे सिराज आगबवूला हो गया और उसने कलकत्तापर आक्रमण कर १६ जून १७५६ ई० को उसपर घेरा डाल दिया । केवल चार दिनोकी घेरेवन्दीके वाद अग्रेजोने नवावके समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया । नवाव अपनी जीतके वाद अग्रेजोको नगरपर पुन कब्जा करनेसे रोकनेकी कोई व्यवस्था किये विना ही शीघ्र वापस लौट गया । नवावकी इस लापरवाहीका लाभ उठाकर क्लाइव और वाटसनके नेतृत्वमे अग्रेज सेनाने जनवरी १७५७ ई० मे कलकत्तापर पुन अधिकार कर लिया । नवावने भी फरवरी १७५७ ई० की एक सधिके द्वारा कम्पनीकी सत्ताका वहाल किया जाना स्वीकार कर लिया । इसके वाद ही कलकत्तास्थित कम्पनीके अधिकारियोने नवावके असन्तुष्ट दरवारी अमीरोसे एक षड्यत्र रचना शुरू कर दिया; जिसके परिणामस्वरूप २३ जून १७५७ ई० को पलासीकी लडाई हुई । इस लडाईमे सिराजुद्दौलाकी पराजय हुई और वह मारा गया । मीर जाफरको मुर्शिदावादमे वगालके नवावकी गद्दीपर वैठाया गया । इन सव घटनाओ-से वगालमे कम्पनीका प्रभाव वढ गया । वगालका प्रशासन अव व्यावहारिक रूपमे अग्रेजोके हाथमे आ गया, अत नवावी राजधानी मुर्शिदावादकी अपेक्षा अव कलकत्ता वगालके प्रशासनका केन्द्रस्थल वन गया । वादमे होनेवाले राजनीतिक परिवर्तनोसे कलकत्ताका महत्त्व और वढ गया । १७७२ ई० मे वोर्ड आफ रेवेन्यू (राजस्व परिषद्) को, जो तवतक मुर्शिदावादमे था, कलकत्ता स्थानान्तरित कर दिया गया और अगले वर्ष रेग्युलेटिंग ऐक्टके अतर्गत वगालका तत्कालीन गवर्नर वारेन हेस्टिंग्स भारतमे ब्रिटिश अधिकृत सभी क्षेत्रोका गवर्नर-जनरल वना दिया गया । इस प्रकार कलकत्ता भारतके अग्रेजी साम्राज्यकी राजधानी वन गया । यह गौरव उसे १९१२ ई० तक, जव भारत सरकारकी राजधानी दिल्ली स्थानान्तरित की गयी, प्राप्त रहा । कलकत्ता अब पश्चिमी वगाल राज्यकी राज-धानी है ।

कलकत्ताको मद्रास तथा वम्वईके अन्य दो प्रेसीडेन्सी नगरोके सदृश स्थानीय स्वायत्त. शासनके विशेषाधिकार प्राप्त है । अठारहवी शताब्दीके अतमे नगरकी सफाईकी देखरेख तथा इसकी पुलिस-व्यवस्थाका दायित्व सरकार द्वारा नियुक्त कुछ विशिष्ट नागरिकोको सौंप दिया गया, जिन्हे 'जस्टिस आफ पीस'की उपाधि प्रदान की गयी । १८५६ ई० मे नगरकी सफाई-व्यवस्थाकी देखरेख, उसमे सुधार तथा करोके निर्धारण एव सग्रहके लिए तीन कमिश्नरो-की नियुक्ति की गयी । लेकिन यह व्यवस्था सतोषजनक सिद्ध नही हो सकी, अत 'जस्टिस आफ पीस' उपाधिधारी विशिष्ट नागरिकोके कामकी देखरेखके लिए एक अध्यक्षकी नियुक्ति की गयी और उसे नगरका पुलिस कमिश्नर भी वना दिया गया । सर स्टुअर्ट हागकी अध्यक्षतामे जलपूर्ति तथा जलनिकासीके लिए उचित व्यवस्था तथा सीवेजके निर्माणका सूत्रपात हुआ । नगर-व्यवस्थामे अन्य सुधार भी किये गये और कलकत्ता गगनचुम्वी अट्टालिकाओके नगरके रूपमे विकसित होने लगा । किन्तु 'जस्टिस आफ पीस उपाधिधारी विशिष्ट नागरिको और अध्यक्षके वीच निरन्तर खटपट चलती रहती थी । अत १८७६ ई० मे कलकत्ता कार्पोरेशनका पुनर्गठन किया गया । अव उसका प्रशासन एक अध्यक्ष तथा ७२ सदस्य चलाते थे, जिसमे दो तिहाई निर्वाचित होते थे । १८८२ ई० मे निर्वाचित सदस्योकी सख्या वढाकर पचास कर दी गयी और कार्पोरेशनकी सीमा कुछ उपनगरीय क्षेत्रो तक वढा दी गयी । किन्तु १८९९ ई० मे लार्ड कर्जनने एक कानून पास करवा कर निर्वाचित सदस्योकी सख्या घटा कर कुलकी आधी कर दी और अध्यक्षको, जो सरकार द्वारा नियुक्त एक अधिकारी होता था, विस्तृत अधिकार प्रदान कर दिये । इस कानूनसे जनतामे तीव्र आक्रोश उत्पन्न हुआ और प्रातीय कौसिलमे सुरेन्द्रनाथ वनर्जी (दे०) के नेतृत्वमे भारतीय सदस्योने उसका तीव्र विरोध किया, किन्तु उनके विरोधके वावजूद कानून पास हो गया । अत इसका कार्यान्वयन होनेपर कलकत्ता कार्पोरेशनके अट्ठाईस भारतीय सदस्योने सुरेन्द्रनाथ वनर्जीके नेतृत्वमे कार्पोरेशनकी सदस्यतासे त्यागपत्र दे दिया । इसे भारतमे असहयोग आदोलनकी शुरुआतका सवसे प्राचीन दृष्टात माना जा सकता है चौवीस वर्ष वाद सुरेन्द्रनाथ वनर्जीने, जो तव वगालके स्वायत्त-शासन मत्री थे, एक नया कानून पास कराया जिसके द्वारा कलकत्ता कार्पोरेशनके विधानमे समुचित परिवर्तन कर दिया गया । सरकारी अध्यक्षके पदक समाप्त कर दिया गया, कार्पोरेशनके सभी सदस्य निर्वाचित होने लगे और कार्पोरेशनके सदस्यो अथवा कौसिलरोको अपना 'मेयर' निर्वाचित करनेका अधिकार मिल गया

एक एक्जीक्यूटिव अफसर नियुक्त किया गया जो कार्पोरेशनके प्रति उत्तरदायी होता था और उसकी नियुक्तिका अधिकार भी कार्पोरेशनको ही प्राप्त था। इस प्रकार कलकत्ताको अपना नागरिक प्रशासन स्वयं चलानेका अधिकार प्राप्त हो गया।

कलकत्ता जर्नल–अंग्रेज पत्रकार जान सिल्क बकिंघमके द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित। सिल्कको कार्यकारी गवर्नर-जनरल जान एडम्सकी सरकारने १८२३ ई० में देशसे निष्कासित कर दिया और कलकत्ता जर्नलका प्रकाशन बन्द हो गया।

कलकत्ता मदरसा–तत्कालीन गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्सके आदेशसे १७८१ ई०में कायम किया गया और तबसे भारतमें फारसी और अरबीके अध्ययनका यह एक प्रमुख प्राच्य-विद्या-केन्द्र है।

कलकत्ता मेडिकल कालेज–मार्च, १८३५ ई० में तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड विलियम बेन्टिक द्वारा स्थापित। इसके अन्तर्गत भारतमें पश्चिमी चिकित्सा-विज्ञानके अध्ययन और व्यवसायकी शुरुआत हुई। इसने अनेक प्रमुख भारतीय चिकित्सक और शल्यक पैदा किये, जिनमें विधानचन्द्र राय (जो बंगालके मुख्य-मंत्री भी रहे) और उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारी भी थे, जिन्होंने कालाजारकी दवाका आविष्कार किया।

कलकत्ता विश्वविद्यालय–स्थापना लार्ड कैनिंगके प्रशासन-काल १८५७ ई० में। इसका आरम्भ कालेजोंको सम्बद्ध करनेवाली एवं परीक्षा लेनेवाली संस्थाके रूपमें हुआ। इसका वाइस-चांसलर मनोनीत हुआ करता था, जो अवैतनिक रूपसे एक सिंडिकेट तथा सिनेटकी मंत्रणा तथा सहमति लेकर कार्य करता था। प्रारम्भके सभी वाइस-चांसलर यूरोपियन होते थे। कुलगुरु पदपर नियुक्त होनेवाले प्रथम भारतीय थे सर गुरुदास बनर्जी। १९०४ ई० में लार्ड कर्जनने भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम पास कराया। इसका मुख्य उद्देश्य विश्वविद्यालयोंपर सरकारी नियंत्रण कड़ा करना तथा विशेषकर कलकत्ता विश्वविद्यालय-के क्षेत्रीय अधिकारको सीमित करना था। उस समय कलकत्ता विश्वविद्यालयका अधिकार-क्षेत्र सुदूर बर्मा और श्रीलंका तक प्रसारित था। इस कानूनके द्वारा सिनेटरोंकी संख्या सीमित कर दी गयी, उनमेंसे अधिकांश सरकार द्वारा मनोनीत होने लगे, नये कालेजोंको सम्बद्ध करनेके नियम कड़े कर दिये गये, विश्वविद्यालयों द्वारा सम्बद्ध कालेजोंका नियमित निरीक्षण निर्धारित किया गया और विश्वविद्यालयोंको प्रोफेसरों तथा लेक्चररोंकी नियुक्तियाँ कर अध्यापनकी व्यवस्था करनेका अधिकार दिया गया। इसके साथ ही विश्वविद्यालयोंको प्रयोगशालाओं तथा संग्रहालयोंकी स्थापना करनेके अधिकार दे दिये गये। १९०४ ई० के इस अधिनियमका, जिसका उद्देश्य बंगालमें शिक्षाके प्रसारको नियंत्रित रखना था, सदुपयोग सर आशुतोष मुखर्जीने अपने कुलगुरु-कालमें किया। उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालयमें अध्यापनका कार्य आरम्भ किया, जिससे न केवल बंगाल वरन् शेष भारत भी लाभान्वित हुआ। कलकत्ता विश्वविद्यालयका क्षेत्रीय अधिकार पहलेकी अपेक्षा अब बहुत कम है, किन्तु यह आज भी भारतका प्रमुख विश्वविद्यालय है। ज्ञानके प्रसारमें, जो इसका सदैव लक्ष्य रहा है, इसका योगदान अन्य भारतीय विश्वविद्यालयोंकी तुलनामें अब भी सर्वाधिक है। कलकत्ता विश्वविद्यालयके विधानमें हालमें परिवर्तन किया गया है और अब कुलगुरु तथा कोषाध्यक्ष पूर्णकालिक एवं वेतनभोगी शीर्षस्थ कार्याधिकारी होते हैं।

कलचूरि वंश–मालवा और उत्तरी महाराष्ट्रके शासक। उनको हैहयवंशी भी कहा जाता था। उनका राज्य 'चेदि' कहलाता था, जो आधुनिक मध्य प्रदेशके अधिकांश भागमें स्थित था। कलचूरि वंशका सबसे प्रसिद्ध राजा गांगेय-देव कलचूरि (लगभग १०१५-४० ई०) तथा उसका पुत्र एवं उत्तराधिकारी कर्णदेव (लगभग १०४०-७० ई०) था। कर्णदेवने लगभग १०६० ई०में मालवाके राजा भोज-को परास्त कर दिया, परंतु बादमें कीर्तिवर्मा चंदेल (दे०) ने, जो १०४९ से ११०० ई० तक राज्य करता था, उसे हरा दिया। इस पराजयसे कलचुरियोंकी शक्ति क्षीण हो गयी और ११८१ ई० तक अज्ञात कारणोंसे इस वंशका पतन हो गया। कलचूरि शासक त्रैकूटक संवत् (दे०) का व्यवहार करते थे, जो २४८-४९ ई० में प्रचलित हुआ।

कलात–बलूचिस्तानका एक राज्य, जो अब पाकिस्तानमें है। कलातके खानने भारतीय ब्रिटिश सरकारसे एक संधि करके अंग्रेजोंको क्वेटा (दे०) सौंप दिया, जो बोलन दर्रेकी रक्षाका उपयुक्त स्थल है। १८९२ ई० में उसने अपने वजीरको उसके पिता तथा पुत्र सहित मार डाला। इस अपराधके लिए ब्रिटिश सरकारने उसे गद्दी छोड़ देनेके लिए विवश किया और उसके लड़केको 'खान' बना दिया। कलात पाकिस्तानकी स्थापना तक ब्रिटिश भारतका एक संरक्षित अधीनस्थ राज्य बना रहा। अब वह पाकिस्तानका अधीनस्थ राज्य है।

कलिंग–पूर्वी समुद्रतटपर महानदी और गोदावरी नदियोंका मध्यवर्ती क्षेत्र। इसके अन्तर्गत आधुनिक उड़ीसाका राज्य

ग्रा जाता था। इसे ग्रशोक मौर्य (दे०) ने ग्रपने राज्याभिषेकके ग्राठवे वर्ष (लगभग २७३–२३२ ई० पू०) मे जीत लिया। कलिंगके लोगोने ग्रशोककी सेनाका इतना डटकर प्रतिरोध किया कि इस युद्धमे कलिगके एक लाख ग्रादमी मारे गये, डेढ लाख कैद कर लिये गये तथा इनसे कई गुने ग्रधिक ग्रादमी वादमे मर गये। युद्धमे जो वध ग्रौर विनाश हुग्रा तथा लोगोको जो विपत्ति उठानी पडी उसमे ग्रशोकको भारी दुख ग्रौर खेद हुग्रा। उसे सबसे ग्रधिक पश्चाताप इस वातसे हुग्रा कि यह सब उसकी शस्त्रो द्वारा साम्राज्य-विस्तारकी लिप्साके कारण हुग्रा। इस युद्धके वाद उसकी मानसिक वृत्ति बदल गयी। उसने शस्त्रो द्वारा विजय करना छोड दिया ग्रौर बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। (देखिये, उड़ीसा)

कलीमुल्ला–बहमनी वशका ग्रतिम नाममात्रका सुलतान, जो वास्तविक शासक कासिम वरीदके हाथो मारे जानेसे बचनेके लिए १५२६ ई० मे बीजापुर भाग गया। वादमे वह ग्रहमदनगर चला गया, जहाँ उसकी मृत्यु हुई।

कलुष–मराठा छत्रपति शिवाजीके पुत्र तथा उत्तराधिकारी सम्भाजी (१६८०–८९ ई०) का ब्राह्मण मत्री। मुगलोने सम्भाजीके साथ कलुषको भी बदी बना लिया ग्रौर उसे क्रूरतापूर्वक मार डाला।

कलेक्टर (जिला ग्रधिकारी)–भारतमे ब्रिटिश शासनकी स्थापनाके वादसे जिलेमे राजस्व-वसूलीका प्रभारी ग्रधिकारी। इस पदकी स्थापना सर्वप्रथम १७७२ ई०मे हुई जब बगाल, बिहार ग्रौर उडीसाका राजस्व-प्रशासन सपरिषद-गवर्नरने भारतीय नायब दीवानोसे ग्रपने हाथमे लेकर कलेक्टरोके सुपुर्द कर दिया। कलेक्टरोके पदोपर ग्रग्रेजोकी नियुक्ति की गयी ग्रौर प्रत्येक जिला एक कलेक्टरके ग्रधीन कर दिया गया। १७७३ ई० मे कलेक्टरका पद समाप्त कर दिया गया लेकिन १७८१ ई० मे वह पुन स्थापित कर दिया गया। १७८६ ई० मे उन्हे राजस्व परिषद् (दे०) की सलाह ग्रौर ग्रनुमतिसे राजस्व निर्धारित करने ग्रौर वसूलनेका दायित्व सौंपा गया। कलेक्टरको जिलेमे दीवानी मुकदमोका फैसला करनेका ग्रधिकार पहलेसे ही था, ग्रब उसे मजिस्ट्रेटके ग्रधिकार भी दे दिये गये, जिससे वह फौजदारीके मुकदमे भी सुन सकता था। इस प्रकार कलेक्टर जिलोमे ब्रिटिश शासनका एकमात्र प्रतिनिधि बन गया। उसके ऊपर बहुत-सी जिम्मेदारियाँ डाल दी गयी। किन्तु १७९३ ई० की 'कार्नवालिस सहिता' (दे०) मे कलेक्टरसे न्यायिक ग्रौर मजिस्ट्रेटी सभी प्रकारके ग्रधिकार छीन कर जिला जजको दे दिये गये। कुछ समय वाद मजिस्ट्रेटके ग्रधिकार जिला मजिस्ट्रेटमे निहित कर दिये गये ग्रौर जिला मजिस्ट्रेटका कार्यालय भी जिला कलेक्टरके कार्यालयसे ग्रलग कर दिया गया। वादको कलेक्टरके ऊपर फिरसे मजिस्ट्रेटकी जिम्मेदारियाँ डाल दी गयी ग्रौर जिला प्रशासन पूरी तरह जिला मजिस्ट्रेट ग्रौर कलेक्टरके हाथमे ग्रा गया। १८५३ ई० मे भारतीयोको जब प्रतियोगात्मक परीक्षाके जरिये 'इडियन सिविल सर्विस' मे प्रवेशकी ग्रनुमति मिल गयी, तबसे इस पदपर भारतीयोकी नियुक्ति भी होने लगी। ब्रिटिश शासनके दौरान जिला मजिस्ट्रेट ग्रौर कलेक्टर प्रशासन तत्रकी एक बहुत महत्त्वपूर्ण कडी था। स्वाधीन भारतकी गणतत्रीय व्यवस्थामे भी वह शासनप्रणालीका बहुत महत्त्वपूर्ण ग्रग बना हुग्रा है। (एल० एस० एस० ओमैले कृत 'इडियन सिविल सर्विस', जी० एन० जोशी कृत 'इडियन एडमिनिस्ट्रेशन')

कल्याणी–ग्रब ग्राध्र प्रदेश मे विद्यमान। मध्यकालकी दो शताब्दियो (९७३–११९० ई०) तक यह नगर चालुक्य (दे०) राजाग्रोकी राजधानी रहा।

कल्हण–सस्कृतके 'राजतरगिणी' (दे०) नामक ग्रथका रचयिता, जिसमे कश्मीरके राजाग्रोका वृत्तात दिया गया है। वह बारहवी शताब्दी ई० मे हुग्रा।

कश्मीर–भारतका धुर उत्तरवर्ती सीमाप्रात। इसके पश्चिममे पाकिस्तानी सीमाप्रदेश, उत्तर-पश्चिममे ग्रफगानिस्तान, उत्तर-पूर्वमे चीनका सिनकियाग प्रात तथा पूर्वमे तिब्बत है। कश्मीर ग्रपनी प्राकृतिक सुषमा तथा स्वास्थ्यप्रद जलवायुके लिए विख्यात है, सामरिक दृष्टिसे भी इसकी स्थिति महत्त्वपूर्ण है। यह उत्तर-पश्चिमसे भारतमे ग्रानेवाले मार्गकी रक्षा करता है। इसकी सीमाएँ ग्रफगानिस्तान, तुर्किस्तान तथा चीनकी सीमाग्रोसे मिली हुई है। इसका १००६ ई० तकका इतिहास कल्हणकी राजतरगिणीमे, १००६ ई० से १४२० ई० तकका जोनराजकी रचनामे, १४२० ई० मे १४८९ ई० तकका श्रीवरकी रचनामे तथा १४८९ ई० से १५८६ ई० तकका प्राज्य भट्टकी राजावलिपताकामे मिलता है। ये सभी ग्रथ सस्कृतमे है। परम्परामे यह विश्वास प्रचलित है कि कश्मीर मूल रूपमे एक सरोवर (झील) था तथा कश्यप मुनिके उद्योगसे इस झीलके पानीके लिए निर्गम मार्ग बनाया गया ग्रौर उन्होने ही इस भूमिपर ब्राह्मणोको बसाया। महाभारतमे 'कश्मीरज' के लोगोको क्षत्रिय बताया गया है, ग्रशोकके द्वारा भेजे गये भिक्षुग्रोने इस देशमे बौद्ध धर्मका प्रचार किया ग्रौर वह द्वितीय शताब्दी ई० मे कुषाण राज्यकाल तक फलता-फूलता रहा। परन्तु, हिन्दू धर्म इस

क्षेमका प्रधान धन बराबर बना रहा और सातवीं शताब्दी ई० में दुर्लभवर्धनने कर्कोटक राजवंश (दे०)की स्थापना की। ८५५ ई० में कर्कोटक वंशको उत्पल वंशने उखाड़ फेंका। बादमें तंत्री सैनिक सेनाओं, यशस्कर तथा पर्व-गुप्तके वंशजोंने क्रमिक रीतिसे शासन किया। क्षेमगुप्तकी विधवा रानी दिद्दाने १००३ ई० तक शासन किया। इसके बाद कश्मीर लोहरवंशी राजाओंके शासनमें आ गया।

कश्मीर सुल्तान महमूदके हमलोंसे बचा रहा, परन्तु १३४९ ई० में उसके अंतिम हिन्दू राजा उद्यानदेवकी हत्या उनके मुसलमान मंत्री अमीर शाहने कर दी और वह शमशुद्दीनके नामसे गद्दीपर बैठा। उसके वंशने १५८६ ई० तक कश्मीरपर शासन किया। इसके बाद वह बादशाह अकबरके अधीन हो गया और मुगल साम्राज्यका एक भाग बन गया। १७५७ ई० में अहमदशाह दुर्रानीने उसपर कब्जा कर लिया और वह १८१९ ई० तक अफगानिस्तानके राज्यका एक भाग रहा। १८१९ ई० में रणजीतसिंहने उसे पुन जीत लिया और अपने राज्यमें सम्मिलित कर लिया। प्रथम सिखयुद्ध (१८४६ ई०) में सिखोंकी हार होनेपर कश्मीर जम्मूके राजा गुलाबसिंहके हाथ एक करोड़ रुपयेमें बेच दिया गया। पराजित सिख राज्यने विजयी अंग्रेजोंको डेढ़ करोड़ रुपया हर्जाना देना मंजूर किया था। कश्मीरको बेचकर इसी रकमकी अदायगी की गयी। गुलाबसिंहने ब्रिटिश भारतीय सरकारसे एक अलग संधि कर ली, जिसके अंतर्गत उसे कश्मीर तथा जम्मूका स्वतंत्र शासक स्वीकार कर लिया गया। गुलाबसिंहने लद्दाख भी जीता था। १८५७ ई० में उसकी मृत्यु हुई। उसके उत्तराधिकारी रणवीरसिंह (१८५७–८५ ई०), परतापसिंह (१८८५–१९२५ ई०) तथा हरिसिंह (१९२५–४९ ई०) हुए।

१९४७ ई० में भारतका विभाजन होनेपर कश्मीर पहले भारत तथा पाकिस्तान दोनोंसे अलग रहना चाहता था, परंतु २० अक्तूबर १९४७ई० को उत्तर-पश्चिमी सीमाचलोंके कबीलेवालोंने नव-स्थापित पाकिस्तान सरकारकी साजिश और सहायतासे हमला कर दिया और उसकी राजधानी श्रीनगरकी ओर बढ़ने लगे। महाराज हरिसिंहने अनुभव किया कि जम्मू तथा कश्मीर रियासतके पास इतने साधन नहीं है कि वह कबीलेवालोंको खदेड़ सकें और अपने राज्यकी स्वतंत्रता तथा अखंडताकी रक्षा कर सकें। अतएव शेख मुहम्मद अब्दुल्लाकी सलाहपर उन्होंने भारतसे फौजी सहायताकी मांग की और भारतीय संघके प्रवेशपत्रपर हस्ताक्षर कर दिये। भारत सरकारने हवाई जहाजोंसे अपनी फौजें भेजीं और श्रीनगर आक्रमणकारियोंके हाथमें पड़नेसे बाल-बाल बच गया। परन्तु आक्रमणकारियोंने लगभग आधे कश्मीरपर अधिकार कर लिया था और भारत तथा पाकिस्तानके बीच एक भयंकर युद्धके द्वारा ही उन्हें पीछे ढकेला जा सकता था। भारत सरकारने इस प्रकारके युद्धसे बचने तथा विवादको शांतिपूर्ण रीतिसे तय करनेके उद्देश्यसे १ जनवरी १९४८ ई० को यह मामला संयुक्त-राष्ट्र सुरक्षा परिषद्में पेश कर दिया। सुरक्षा परिषद्ने उसी महीने कश्मीरमें युद्धविराम करा दिया। परंतु अब कश्मीरका प्रश्न पश्चिमी राष्ट्रोंकी शक्तिमूलक राजनीतिकी शतरंजका मोहरा बन गया और संयुक्त राष्ट्रसंघ अभी तक इस प्रश्नको तय करनेमें सफल नहीं हो सका है। फलस्वरूप कश्मीरका आधा भाग, जिसे तथाकथित 'आजाद कश्मीर' कहा जाता है, पाकिस्तानके गैरकानूनी कब्जेमें चला गया है और कश्मीरका आधा भाग तथा जम्मू भारतीय संघके अंतर्गत है।

काँगड़ा—हिमाचल प्रदेशमें परकोटेसे घिरा एक नगर। यह भटिंडाके राजा जयपाल (दे०) के राज्यकी पूर्वी सीमा थी। १३९९ ई० में तैमूरने इसे लूटा, परंतु इसके बाद भी इस नगरपर हिन्दू राजा शासन करते रहे। १६२० ई० में बादशाह जहाँगीरने इस नगरको जीत लिया और यह मुगल साम्राज्यका अंग बन गया। मुगलोंके संरक्षणमें कांगड़ाके चित्रकारोंने अपनी अलग शैली विकसित की। १८११ ई० में यह नगर रणजीतसिंहके अधिकारमें आ गया। १८४८ ई० में उसका राज्य भारतीय ब्रिटिश साम्राज्यमें मिला लिये जानेपर यह भी उसीका भाग हो गया।

कांग्रेस—देखिये, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस।

कांची—भारतमें हिन्दुओंकी सात पवित्र नगरियोंमेंसे एक। इसका पहला ऐतिहासिक उल्लेख समुद्रगुप्त (लगभग ३३५–८० ई०) के इलाहाबाद स्तम्भलेखमें मिलता है। इसके अनुसार गुप्त सम्राट्ने कांचीके राजा विष्णुगोपको अपने अधीन किया था। कांची, जिसे अब कांजीवरम् कहते हैं, पल्लवों (दे०) की राजधानी रही है। ह्युएन-त्सांग लगभग ६४० ई० में इस नगरमें आया था। उस समय नरसिंहवर्माके शासनमें 'पल्लव राजशक्ति अपने चरम उत्कर्षपर' थी। ह्युएन-त्सांगके अनुसार कांची ५ या ६ मीलके घेरेमें बसी एक विशाल नगरी थी और उसमें अनेकानेक हिन्दू, बौद्ध तथा जैन मंदिर थे। कांची प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य धर्मपालकी जन्मस्थली थी। वैष्णव आचार्य रामानुजने इसी नगरीमें शिक्षा प्राप्त की थी और अनेक वर्षोंतक वे यहां रहे थे। पल्लवों और चालुक्यों

अनवरत युद्धोके कारण काचीको काफी क्षति उठानी पडी । चालुक्योने इस नगरीमे अनेक भव्य मदिर वनवाये, जिनमे कैलासनाथका मदिर सवसे प्रसिद्ध है ।

कासीजोड़ा काड—ईस्ट इडिया कम्पनीके शासनकालमे कलकत्ता स्थित सुप्रीम कोर्ट और सपरिषद् गवर्नर-जनरल (सुप्रीम कोसिल) के वीच एक जमीदारके मामलेको लेकर होनेवाला सघर्प । कासीजोडाके जमीदार (राजा)से अपना कर्ज वसूलनेके लिए एक व्यक्तिने जमीदारके खिलाफ सुप्रीम कोर्टमे मुकदमा दायर किया । सुप्रीम कोर्टने मुकदमेको विचारार्थ स्वीकार करते हुए जमीदारके खिलाफ समादेश जारी किया, जिसमे उससे अदालतमे पेश होनेको कहा गया था । लेकिन उक्त जमीदारकी इस आपत्तिपर कि वह न तो कम्पनीका सेवक है और न कलकत्तावासी है, अत उसपर सुप्रीम कोर्टका क्षेत्राधिकार लागू नही होता, सुप्रीम कोसिल अर्थात् सपरिषद् गवर्नर-जनरलने सुप्रीम कोर्टसे कहा कि वह इस मामलेको आगे न बढाये । लेकिन सुप्रीम कोर्ट अपना क्षेत्राधिकार वढानेपर तुला हुआ था, इसलिए उसने अपने अधिकारियोको जमीदारकी गिरफ्तारीके लिए भेजा । सुप्रीम कौसिलने इसके जवावमे फौरन अपने सिपाहियोको उन अधिकारियोकी गिरफ्तारीके लिए भेज दिया जो जमीदारको गिरफ्तार करनेके लिए सुप्रीम कोर्ट द्वारा भेजे गये थे । इस प्रकार कार्यपालिका और न्यायपालिकाके वीच कटु सघर्पकी स्थिति पैदा हो गयी । लेकिन सुप्रीम कोर्टके मुख्य न्यायाधीश सर एलिजा इम्पीको काफी अधिक भत्ता देकर सदर दीवानी अदालतका भी मुख्य न्यायाधीश वना दिये जानेसे सघर्प टल गया । इम्पी द्वारा इस पदका स्वीकार किया जाना उचित नही समझा गया । उसपर वादमे जो महाभियोग लाया गया, उसका एक कारण यह भी था । (**आई० वी० वनर्जी कृत 'दि सुप्रीम कोर्ट इन कनफ्लिक्ट'**)

काकतीय वश—वारहवी शताब्दीमे कल्याणीके चालुक्य वशका पतन होनेके वाद प्रतिष्ठित । उसने ओरगलके राज्यकी स्थापना की । उसके राजा प्रतापरुद्रदेव द्वितीयको १३१० ई०मे सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीकी फौजोने हरा दिया । अलाउद्दीनने उससे हर्जानेके रूपमे भारी रकम ऐंठी और वार्पिक कर देनेका वचन लिया । सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक (१३२०–२५ ई०) के शासनकालमे इस राज्यको अतिम रूपसे समाप्त कर दिया गया और उसे दिल्लीकी सल्तनतमे मिला लिया गया ।

काकवर्न, कर्नल जेम्स—ईस्ट इडिया कम्पनीकी वम्बई फौजका अधिकारी । प्रथम मराठा-यद्ध (दे०) के दौरान उसका सामना मराठोकी सेनासे हुआ । उसने भयभीत होकर पीछे हटनेका फैसला किया और वडगाँव जा पहुँचा। वहाँ यह महसूस होनेपर कि अव इससे पीछे हटना सभव नही है, उसने मराठोसे वडगाँवका समझौता कर लिया । यह समझौता कम्पनीको अपमानजनक लगा और उसने उसे तोड दिया । काकवर्नको इसके वाद नौकरीसे निकाल दिया गया ।

काच—गुप्तकालके कुछ सिक्कोपर पाया गया नाम । सभवत इस नामका राजकुमार द्वितीय गुप्त सम्राट्, समुद्रगुप्त (दे०) ही था ।

काचार—आसाम प्रदेशका अव एक जिला, जिसका सदर मुकाम सिल्चर है । इसका इतिहास पुराना है, जिसका पता अनेक शताब्दियो पूर्वसे चलता है । यहाँ अनेक राजा ऐसे हो चुके है जो अपनेको भीम, पाँच पाण्डवोमेसे द्वितीयके वशज होनेका दावा करते थे । ऐतिहासिक कालमे यह अधिकतर अहोम राजाओका अधीनस्थ एव उनका सरक्षित राज्य रहा है । तत्कालीन शासक राजा गोविन्दचन्द्रकी साठगाठसे १८१९ ई० मे वर्मियोने इसे रोद डाला था, लेकिन शीघ्र ही अग्रेजोने वर्मियोको काचारसे वाहर निकाल दिया और उन्होने वदरपुर (मार्च १८२४ ई०) की सधि द्वारा गोविन्दचन्द्रको काचारके राजाके रूपमे पुन शासनारूढ कर दिया । इसके वदलेमे उसने ईस्ट इडिया कम्पनीकी सत्ताको स्वीकार कर लिया और दस हजार रुपये वार्पिक खिराजके रूपमे देनेको राजी हो गया । किन्तु गोविन्दचन्द्र प्रशासनकी दुर्व्यवस्थाके कारण स्थानीय विद्रोहियोको दवा सकनेमे विफल रहा और प्रजाको भारी करभारसे पीडित करने लगा, फलत १८३० ई०मे उसकी हत्या कर दी गयी । उसका कोई उत्तराधिकारी नही था, अत अगस्त १८३२ ई० की एक घोपणाके द्वारा काचार व्रिटिश साम्राज्यमे मिला लिया गया । तवसे यह निरन्तर भारतका एक भाग है । (**गेट–'हिस्ट्री आफ आसाम'**)

काचारी—एक जनजाति । विश्वास किया जाता है कि ब्रह्मपुत्रकी घाटीमे वसनेवाली यह सवसे प्राचीन जाति है । आसामके आधुनिक काचार जिलेका नामकरण इसी जनजातिके आधार पर हुआ है । तेरहवी शताव्दीमे काचारी लोगोका राज्य ब्रह्मपुत्र नदीके दक्षिणी तट तक फैला हुआ था । उनके राज्यमे अधिकाश आधुनिक नौगाँव जिला और काचार जिलेका कुछ भाग सम्मिलित था । उनकी राजधानी गोलाघाटके आधुनिक नगरसे पैतालीस मील दक्षिण, धनश्री नदीके तटपर स्थित डीमापुर थी । अहोम (दे०) लोगोने १५३६ ई०मे उनके राज्यको

जीत लिया और काचारी लोग डीमापुर छोडकर भाग गये। इस नगरके अब खडहर मिलते है। पराजित काचारी लोगोंने एक नये राज्यकी स्थापना की और मैबोगको अपनी राजधानी बनाया। किन्तु इसके बाद भी अहोम राजाओंसे उनकी बराबर लडाइयाँ होती रहती थीं। अहोम राजाओका कहना था कि वे उनके आश्रित है। उनका अतिम राजा गोविन्दचन्द्र था, जिसे १८१८ ई० मे मणिपुर(दे०) के राजाने हरा दिया। १८२१ ई० मे वर्मियोंने उसके राज्य-पर अधिकार कर लिया। १८३६ ई० मे ब्रिटिश भारतीय सरकारने वर्मियोको निकाल बाहर किया और गोविन्द-चन्द्रको पुन उसकी गद्दी मिल गयी। परन्तु, १८३० ई० मे एक मणिपुरी आक्रमणकारीने उसकी हत्या कर दी। उसके निस्सतान होनेके कारण १८३२ ई०मे उसका राज्य ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमे मिला लिया गया।

काजी—भारतमे मुसलमान शासनकालमे न्याय विभागका उच्च अधिकारी।

काटन, सर आर्थर टामस (१८०३–९९)—मद्रासमे ईस्ट इडिया कम्पनीका एक प्रख्यात इजीनियर। वह दक्षिण भारतमे सिचाई सम्बन्धी कार्योका विशेषज्ञ था। उसने कावेरी, कोलरुन, गोदावरी और कृष्णा नदियो द्वारा सिचाई करनेकी योजनाएँ बनायी व पूरी की और इस प्रकार तजोर, त्रिचिनापल्ली और दक्षिणी अर्काट जिलोकी सिंचाई-व्यवस्थाको सुधारा। उसने गोदावरी जिलेमे गोदावरी नदीपर एक बाँधका निर्माण भी किया। वह भारतीय हाईड्रालिक इजीनियरिंग विद्याका जनक था। १८६१ ई० मे उसे 'नाइट' की उपाधिसे विभूषित किया गया। सन् १८६२ मे उसने कम्पनीकी सेवाओसे अवकाश ग्रहण किया और १८९९ ई० मे उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी कृति 'पब्लिक वर्क्स इन इडिया' अपने विषयका एक मानक ग्रन्थ है।

काटन, सर विलिऔबी (१७८३–१८६०)—१८२१ ई० मे सैनिक अफसरके रूपमे भारत आया। उसने प्रथम वर्मी-युद्ध (दे०)(१८२५–२६ ई०) और प्रथम अफगान-युद्ध (दे०) (१८३८–३९ ई०) मे भाग लिया और १८४१ ई०मे ब्रिटिश सेनाके नष्ट कर दिये जानेसे पूर्व ही काबुलसे लौट आया। बादको उसे सेनाका प्रधान सेनापति (कमाडर-इन-चीफ) बनाया गया। इस पदपर वह १८४१ ई० से ५० ई० तक रहा।

काटन, सर सिडनी (१७९२–१८७४)—१८१० ई० मे एक सैनिक अफसरकी हैसियतसे भारत आया और उसने मद्रास, बगाल और बम्बई प्रेसीडेसियोमे सेवा की। उसने १८१७-१८ ई० मे पिंडारी-युद्ध (दे०), १८२८ मे वर्मी-युद्ध (दे०) और १८४२–४३ मे सिख-युद्ध (दे०) मे भाग लिया। १८५३ ई० मे पश्चिमोत्तर सीमापर ब्रिटिश सेनाकी कमान उसके हाथमे थी। १८५७ ई० के भारतीय स्वाधीनता सग्राम (जिसे अग्रेजोंने 'सिपाही विद्रोह'का नाम दिया) के समय वह पेशावरमे ब्रिगेडियर जनरल था। अपनी सूझ-बूझ और दूरदर्शितासे उसने वहाँ किसी प्रकार-का उपद्रव नही होने दिया। इससे आश्वस्त होकर पजाब सरकारने राज्यकी अधिकाश ब्रिटिश सेनाको दिल्लीमे विद्रोह दबानेके लिए भेज दिया। उसकी दो पुस्तके—'नाइन इयर्स आन दि नार्थ वेस्टर्न फ्रटियर' (पश्चिमोत्तर सीमापर नौ वर्ष) और 'सेंट्रल एशियन क्वेश्चन' (मध्य एशियाका मसला) अपने विषयकी उल्लेखनीय पुस्तके मानी जाती है।

काटन, सर हेनरी जान स्टेडमेन (१८४५–१९१५)—१८६७ ई० मे भारतीय सिविल सेवामे नियुक्त। वह उन्नति करते हुए १८९१ ई० मे बगालका मुख्य सचिव (चीफ सेक्रेटरी) हो गया। १८९६ ई० मे उसकी नियुक्ति भारत सरकारके गृह-सचिव पदपर हुई और इसके बाद वह, आसामका मुख्य आयुक्त (चीफ कमिश्नर) बनाया गया। इस पदपर वह १८९६ से १९०२ ई०मे अवकाश ग्रहण करने तक बना रहा। वह बहुत ही उदारवादी सिविल अधिकारी था, इस कारण भारतीय राष्ट्रवादका प्रमुख समर्थक बन गया। उसे १९०४ ई०मे बम्बईमे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके २०वे अधिवेशनका अध्यक्ष चुना गया। अपने भाषणमे उसने पहली बार भारतमे स्वतत्र और पृथक् राज्योंके महासघ 'सयुक्त राज्य भारत' की स्थापनाका सुझाव रखा। **(पी० सीतारमैया कृत 'हिस्ट्री आफ दि इडियन नेशनल काग्रेस'–खण्ड एक)**

काठमांडू—नेपालकी राजधानी। १८१५ ई० मे अग्रेजोने इसपर हमला किया था, परन्तु गोरखाओंने उन्हे पीछे खदेड दिया।

काठियावाड़ (सौराष्ट्र)—भारतके पश्चिमी भागमे स्थित। यह पहले मौर्य साम्राज्यके अतर्गत था। उसके बाद इसपर शक क्षत्रपोका शासन हुआ, जो कुषाण राजाओंको 'शाहोका शाह' मानते थे। बादमे काठियावाड गुप्त साम्राज्यका भाग रहा और हर्षवर्धन (६०६–४७ ई०) ने भी इसपर राज्य किया। इसके बाद यह स्थानीय हिन्दू राजाओके अधीन रहा। लगभग ७१२ ई०मे मुहम्मद-इब्न-कासिमके नेतृत्वमे अरबोने इसे जीत लिया। फिर भी हिन्दू तीर्थयात्री यहाँ बडी संख्यामे आते रहे। विशेषरूपसे सोमनाथ

शिव मंदिरमे पूजा करनेके लिए बहुतसे हिन्दू आते थे। १०२६ ई०मे सुल्तान महमूदने सोमनाथके प्रसिद्ध मंदिरपर अधिकार कर लिया और उसे नष्ट कर डाला। धीरे-धीरे काठियावाड मुसलमानोके नियंत्रणमे चला गया। तीसरे मराठा-युद्ध (दे०) के बाद यह ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमे शामिल कर लिया गया।

कादम्ब—एक कुल जो तीसरी शताब्दी ईसवीमे उत्तरी, दक्षिणी तथा पश्चिमी कर्नाटकमे राज्य करता था। बनवासी अथवा वैजयंती उनकी राजधानी थी। वे लोग जातिसे ब्राह्मण थे, परन्तु, कर्मसे क्षत्रिय माने जाते थे। उनका पहला राजा मयूर शर्मा था जो चौथी शताब्दी ई०मे हुआ। उसके उत्तराधिकारियोके बारेमे हमे कुछ पता नही है। उनका दर्जा धीरे-धीरे घटकर स्थानीय सामंतका रह गया और वे अधीनस्थ पदोपर कार्य करने लगे। विजयनगरके राजाओका शायद कादम्बवंशसे संबध रहा हो।

कादियान—पंजाबका एक कसबा। मिर्जा गुलाम अहमद (१८३८—१९०८ ई०), जिन्होने मुसलमानोमे सुधार आदोलन चलाया, यही रहते थे। उनके अनुयायी उनके निवास-स्थानके नामपर 'कादियानी' कहलाते है। कट्टर मुसलमान कादियानी लोगोको विधर्मी मानते है, क्योंकि वे मिर्जा गुलाम अहमदके पैगंबर होनेका दावा करते है।

कानपुर—उत्तर प्रदेशमे गंगा तटपर स्थित एक पुराना नगर। ब्रिटिश शासनके प्रारम्भिक दिनोसे ही यह नगर भारतका प्रमुख सैनिक-केन्द्र रहा है। १८५७ ई० के स्वतंत्रता-संग्राम (जिसे अंग्रेजोने 'सिपाही-विद्रोह' या 'गदर' कहकर पुकारा) मे इसने प्रमुख भूमिका अदा की। जिस समय स्वाधीनता-संग्राम छिडा, कानपुरके निकट बिठूरमे भूतपूर्व पेशवा बाजीरावके पुत्र नाना साहब रहते थे। उन्होने अपनेको 'पेशवा' घोषित किया और कानपुर स्थित विद्रोही सिपाहियोका नेतृत्व अपने हाथमे ले लिया। ८ जून १८५७ ई०को ब्रिटिश फौजी अड्डेको घेर लिया गया और २७ जूनको ब्रिटिश नागरिकोने इस आश्वासनपर आत्म-समर्पण कर दिया कि उन्हे इलाहाबाद तक सुरक्षित जाने दिया जायगा। किन्तु ब्रिटिश सेना जिस समय नौकाओके जरिये इस स्थानसे रवाना होनेकी तैयारी कर रही थी, उसपर प्राणघाती गोलाबारी शुरू कर दी गयी। चारको छोडकर सारे ब्रिटिश सैनिक मारे गये। इस कत्ले-आमने अंग्रेजोके दिमागमे बदलेकी जबर्दस्त भावना पैदा कर दी। नील और हैवलकके नेतृत्वमे अंग्रेजी सेनाने कानपुर शहरपर फिर कब्जा कर लिया और देशवासियोपर भारी अत्याचार किये। नवम्बरके अन्तमे नगरपर विद्रोही ग्वालियर टुकडीका कब्जा था, लेकिन दिसम्बर १८५७ ई०के शुरूमे उसपर सर कोलिन कैम्पबेलने अधिकार कर लिया। आज-कल कानपुर प्रमुख औद्योगिक केन्द्र है। १९३१ ई०मे यहाँ भयानक साम्प्रदायिक दंगा हुआ, जिसमे विख्यात कांग्रेस-नेता श्री गणेश शंकर विद्यार्थी शहीद हो गये।

कान्होजी आंग्रे—एक प्रसिद्ध मराठा जल-सेनापति अथवा समुद्री डाकू जो घेरिया तथा सुवर्णदुर्गके किलोके सहारे बम्बईसे लेकर गोआ तक सारे समुद्र तटपर नियंत्रण रखता था।

काफमेन, जनरल—१८६७ ई० मे तुर्किस्तानमे रूसकी ओरसे नियुक्त गवर्नर-जनरल। उसका अफगानिस्तानके अमीर शेरअलीसे पत्र-व्यवहार चल रहा था। शेर अलीने यह पत्र-व्यवहार ब्रिटिश भारतीय सरकारके पास भेज दिया। इसके आधारपर अफगानिस्तानको लेकर रूसी इरादोके बारेमे संदेह किया जाने लगा। परन्तु इससे कोई लाभ नही हुआ। १८७८ ई०मे दूसरा अफगान-युद्ध शुरू होनेपर शेर अलीने रूससे मदद देनेकी जो अपील की, उसका कोई नतीजा नही निकला और उसे रूसमे शरण लेने तकसे निरुत्साहित किया गया। जनरल काफमैनकी साजिशोका फल यही निकला कि शेरअलीको अपनी गद्दीसे हाथ धोना पडा।

काफूर—मूल रूपमे एक हिन्दू हिजडा, जिसे एक हजार दीनारमे खरीदकर गुलाम बनाया गया था। इसीलिए वह 'हजारदीनारी' कहलाता था। वह सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीके सामने १२९७ ई०मे गुजरात-विजय के तोहफेके रूपमे लाया गया था। वह शीघ्र ही सुल्तानकी नजरोमे चढ गया। सुल्तानने उसे उच्च पद प्रदान किये और १३०७ ई०मे उसे सल्तनतका मलिक नायब बना दिया। मलिक काफूर बहुत ही योग्य सेनापति सिद्ध हुआ और उसने देवगिरि, ओरंगल, घोरसमुद्र, मलाबार और मदुराको जीतकर सुल्तानके अधीन कर दिया और सल्तनतकी सीमाएँ रामेश्वरम् तक विस्तृत कर दी। इन सब सफलताओसे उसकी प्रतिष्ठा बहुत बढ गयी और वह सुल्तान अला-उद्दीन खिलजीका सबसे विश्वस्त अधिकारी बन गया। उसने सुल्तानपर सबसे अधिक प्रभाव जमा लिया। सत्ता और प्रभावमे वृद्धिके साथ-साथ मलिक काफूरकी महत्त्वा-कांक्षाएँ भी बढ गयी और १३१६ ई०मे अलाउद्दीनकी मृत्यु होनेपर उसने उसके एक नाबालिग लडकेको गद्दीपर बैठा दिया और सारी सत्ता अपने हाथमे केन्द्रित रखी। इसके बाद उसने गद्दीको स्वयं हथिया लेनेका विचार किया।

उसने अलाउद्दीनके दो बडे बेटोकी आँखें निकलवा ली, नाबालिग सुल्तानकी माँको कैद कर लिया और अलाउद्दीनके परिवारसे सम्बन्धित सभी सरदारो तथा गुलामोको मरवा डालनेकी साजिश रची। परन्तु वह जिन लोगोकी जान लेना चाहता था वे सब संगठित हो गये और उन्होंने उसके गद्दीपर बैठनेके पैंतीस दिन बाद ही उसे मार डाला।

काबुल—एक नगरका नाम और उस नदीका भी नाम, जिसके किनारे यह नगर बना हुआ है। यह नगर आधुनिक अफगानिस्तानकी राजधानी है। काबुल नदी, जिसे प्राचीनकालमे 'कुभा' भी कहते थे, सिंधुमे आकर मिल जाती है। मौर्यकाल (दे०) मे काबुल भारतीय साम्राज्यके अन्तर्गत था। मौर्यवंशके पतनपर काबुलपर कई यवन राजाओका शासन हुआ। यह कुषाणो (दे०) के भारतीय साम्राज्यका एक भाग था, परन्तु बादमे बाबरके समय तक यह प्रदेश भारतके अधीन नही रहा। बाबर काबुलका शासक था और १५२६ ई०मे उसने दिल्लीको जीत लिया। उसके बाद नादिर शाह (दे०) के समय तक यह भारतीय साम्राज्यका भाग रहा। नादिर शाहने अफगानिस्तान जीत लिया और उसके मरनेपर अहमद शाह अब्दाली उसका शासक हुआ। उसके बादसे अफगानिस्तान स्वतन्त्र राज्य हो गया है।

कामंदक—राजशास्त्रका एक भारतीय लेखक। उसका 'नीतिसार' अपने विषयका प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है।

कामता—कामरूप (दे०) का ही दूसरा नाम।

कामतापुर—आधुनिक कूच बिहारके कुछ मील दक्षिणमे स्थित। कामरूप राज्यके ह्रासकालमे खेन नामक जनजाति-ने वहाँ अपना राज्य स्थापित किया और कामतापुरको राजधानी बनाया। उन्होंने लगभग ७५ वर्ष तक इस राज्य-पर शासन किया। लगभग १४९८ ई०मे बगालके अला-उद्दीन हुसेनशाह (दे०) ने इस राज्यको जीत लिया।

कामबख्श—बादशाह औरंगजेब (दे०) का पाँचवा पुत्र। बादशाहकी मृत्युके बाद उसकी गद्दीके लिए उसके पुत्रोमे जो युद्ध हुआ, उसमे वह १७०७ ई०मे लडते हुए मारा गया।

कामरान, शाहजादा—मुगल वंशके संस्थापक बादशाह बाबर (१५२६–३० ई०)का दूसरा पुत्र। पिताकी मृत्युपर उसके बडे भाई, बादशाह हुमायू (दे०) ने उसके साथ बडी उदारताका व्यवहार किया और उसे अफगानिस्तानका शासक बना दिया। परन्तु कामरान कृतघ्न निकला। उसने हुमायूकी उस समय मदद नही की, जब वह शेरशाह (दे०) से युद्ध कर रहा था। जब वह भारतसे भागा तो उसने उसे शरण देनेसे भी इनकार कर दिया। हुमायूने जब फारसके शाहकी फौजी मददसे कामरानको परास्त कर दिया उसने गद्दी छीनकर उसे मार डाला, तभी वह दिल्लीपर फिरसे विजय प्राप्त करनेमे सफल हुआ।

कामरूप—देखो आसाम।

कामाख्या मंदिर—आसाममे गोहाटीके निकट नीलाचलपर स्थित। विश्वास किया जाता है कि शिव जब अपनी पत्नी सतीका शव कंधेपर लिये हुए उन्मत्तके सदृश भ्रमण कर रहे थे तो विष्णु द्वारा उसके छिन्न-भिन्न कर दिये जाने-पर देवीका योनिमंडल इसी पर्वतपर गिरा था। यह शाक्तोका केन्द्र है और देशके सभी भागोसे धर्मप्राण हिन्दू यहाँ आते हैं। वर्तमान मंदिर कोच राजा नरनारायण (१५४०–८० ई०) (दे०) ने बनवाया है।

काम्बरमेयर, स्टेपिलटन काटन, प्रथम वाई-काउण्ट (१७७३-१८६५)—ब्रिटिश फौजके लेफ्टीनेंट कर्नलकी हैसियतसे १७९६ ई०मे भारत आया और उसने टीपू सुलतान (दे०)के विरुद्ध युद्धमे भाग लिया। १८२२ ई०मे वह भारतीय सेनाका कमांडर-इन-चीफ (प्रधान सेनापति) हो गया और १८२६ ई०मे उसने भरतपुरके दुर्गपर विजय प्राप्त की। वह १८३० ई०मे कम्पनीकी सेवासे निवृत्त हुआ और १८६५ ई०मे उसकी मृत्यु हो गयी।

कायदे आजम—का अर्थ है महान् नेता। मुहम्मद अली जिन्ना (दे०)को इसी नामसे पुकारा जाता था। सबसे पहले महात्मा गाधीने उनके नामके साथ इस उपाधिका प्रयोग किया था।

कायस्थ—की गणना उच्च जातिके हिन्दुओमे होती है। बंगालमे वर्ण-व्यवस्थाके अतर्गत उनका स्थान ब्राह्मणोके बाद माना जाता है। बहुतसे विद्वानोका मत है कि बंगालके कायस्थ मूलरूपमे क्षत्रिय थे और उन्होंने तलवारके स्थानपर कलम ग्रहण कर ली और लिपिक बन गये। जैसोरका राजा प्रतापादित्य चन्द्रद्वीपका राजा कन्दर्पनारायण तथा विक्रमपुर (ढाका)का केदार राय, जिसने अकबरका प्रबल प्रतिरोध किया और अनेक वर्षो तक मुगलोको बगालपर अधिकार करने नही दिया, सभी कायस्थ थे।

कारमाइकेल, लार्ड—बिहार तथा आसामसे पृथक् कर बगालको गवर्नरका सूबा बनानेपर, उसका पहला गवर्नर।

काराजाल—भारत और चीनके बीचका एक क्षेत्र। सुल्तान मुहम्मद तुगलकने उसे जीतनेके लिए फौज भेजी, परन्तु वह इस कार्यमे बुरी तरह विफल हुआ। पूर्ववर्ती इतिहास-कारोने इस क्षेत्रको चीन समझ लिया और गलत तरीकेसे यह मत व्यक्त किया कि सुल्तानने अपनी सनकमे चीनपर चढाई की, जिसमे उसकी फौज नष्ट हो गयी।

शिव मंदिरमें पूजा करनेके लिए बहुतसे हिन्दू आते थे। १०२६ ई०में सुल्तान महमूदने सोमनाथके प्रसिद्ध मंदिरपर अधिकार कर लिया और उसे नष्ट कर डाला। धीरे-धीरे काठियावाड़ मुसलमानोंके नियंत्रणमें चला गया। तीसरे मराठा-युद्ध (दे०) के बाद यह ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें शामिल कर लिया गया।

कादम्ब–एक कुल जो तीसरी शताब्दी ईसवीमें उत्तरी, दक्षिणी तथा पश्चिमी कर्नाटकमें राज्य करता था। वनवासी अथवा वैजयंती उनकी राजधानी थी। वे लोग जातिसे ब्राह्मण थे, परन्तु, कर्मसे क्षत्रिय माने जाते थे। उनका पहला राजा मयूर शर्मा था जो चौथी शताब्दी ई०में हुआ। उसके उत्तराधिकारियोंके बारेमें हमें कुछ पता नहीं है। उनका दर्जा धीरे-धीरे घटकर स्थानीय सामंतका रह गया और वे अधीनस्थ पदोंपर कार्य करने लगे। विजयनगरके राजाओंका शायद कादम्बवंशसे संबंध रहा हो।

कादियान–पंजाबका एक कसबा। मिर्जा गुलाम अहमद (१८३८–१९०८ ई०), जिन्होंने मुसलमानोंमें सुधार आंदोलन चलाया, यहीं रहते थे। उनके अनुयायी उनके निवास-स्थानके नामपर 'कादियानी' कहलाते हैं। कट्टर मुसलमान कादियानी लोगोंको विधर्मी मानते हैं, क्योंकि वे मिर्जा गुलाम अहमदके पैगंबर होनेका दावा करते हैं।

कानपुर–उत्तर प्रदेशमें गंगा तटपर स्थित एक पुराना नगर। ब्रिटिश शासनके प्रारम्भिक दिनोंसे ही यह नगर भारतका प्रमुख सैनिक-केन्द्र रहा है। १८५७ ई० के स्वतंत्रता-संग्राम (जिसे अंग्रेजोंने 'सिपाही-विद्रोह' या 'गदर' कहकर पुकारा) में इसने प्रमुख भूमिका अदा की। जिस समय स्वाधीनता-संग्राम छिड़ा, कानपुरके निकट बिठूरमें भूतपूर्व पेशवा बाजीरावके पुत्र नाना साहब रहते थे। उन्होंने अपनेको 'पेशवा' घोषित किया और कानपुर स्थित विद्रोही सिपाहियोंका नेतृत्व अपने हाथमें ले लिया। ८ जून १८५७ ई०को ब्रिटिश फौजी अड्डेको घेर लिया गया और २७ जूनको ब्रिटिश नागरिकोंने इस आश्वासनपर आत्म-समर्पण कर दिया कि उन्हें इलाहाबाद तक सुरक्षित जाने दिया जायगा। किन्तु ब्रिटिश सेना जिस समय नौकाओंके जरिये इस स्थानसे रवाना होनेकी तैयारी कर रही थी, उसपर प्राणघाती गोलाबारी शुरू कर दी गयी। चारको छोड़कर सारे ब्रिटिश सैनिक मारे गये। इस कत्ले-आमने अंग्रेजोंके दिमागमें बदलेकी जबर्दस्त भावना पैदा कर दी। नील और हैवलकके नेतृत्वमें अंग्रेजी सेनाने कानपुर शहरपर फिर कब्जा कर लिया और देशवासियोंपर भारी अत्याचार किये। नवम्बरके अन्तमें नगरपर विद्रोही ग्वालियर टुकड़ीका कब्जा था, लेकिन दिसम्बर १८५७ ई०के शुरूमें उसपर सर कोलिन कैम्पबेलने अधिकार कर लिया। आज-कल कानपुर प्रमुख औद्योगिक केन्द्र है। १९३१ ई०में यहाँ भयानक साम्प्रदायिक दंगा हुआ, जिसमें विख्यात कांग्रेस-नेता श्री गणेश शंकर विद्यार्थी शहीद हो गये।

कान्होजी आंग्रे–एक प्रसिद्ध मराठा जल-सेनापति अथवा समुद्री डाकू जो घेरिया तथा सुवर्णदुर्गके किलोंके सहारे बम्बईसे लेकर गोआ तक सारे समुद्र तटपर नियंत्रण रखता था।

काफमैन, जनरल–१८६७ ई० में तुर्किस्तानमें रूसकी ओरसे नियुक्त गवर्नर-जनरल। उसका अफगानिस्तानके अमीर शेरअलीसे पत्र-व्यवहार चल रहा था। शेर अलीने यह पत्र-व्यवहार ब्रिटिश भारतीय सरकारके पास भेज दिया। इसके आधारपर अफगानिस्तानको लेकर रूसी इरादोंके बारेमें संदेह किया जाने लगा। परन्तु इससे कोई लाभ नहीं हुआ। १८७८ ई०में दूसरा अफगान-युद्ध शुरू होनेपर शेर अलीने रूससे मदद देनेकी जो अपील की, उसका कोई नतीजा नहीं निकला और उसे रूसमें शरण लेने तकसे निरुत्साहित किया गया। जनरल काफमैनकी साजिशोंका फल यही निकला कि शेरअलीको अपनी गद्दीसे हाथ धोना पड़ा।

काफूर–मूल रूपमें एक हिन्दू हिजड़ा, जिसे एक हजार दीनारमें खरीदकर गुलाम बनाया गया था। इसीलिए वह 'हजारदीनारी' कहलाता था। वह सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीके सामने १२९७ ई०में गुजरात-विजय के तोहफेके रूपमें लाया गया था। वह शीघ्र ही सुल्तानकी नजरोंमें चढ़ गया। सुल्तानने उसे उच्च पद प्रदान किये और १३०७ ई०में उसे सल्तनतका मलिक नायब बना दिया। मलिक काफूर बहुत ही योग्य सेनापति सिद्ध हुआ और उसने देवगिरि, ओरंगल, द्वारसमुद्र, मलाबार और मदुराको जीतकर सुल्तानके अधीन कर दिया और सल्तनतकी सीमाएँ रामेश्वरम् तक विस्तृत कर दीं। इन सब सफलताओंसे उसकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी और वह सुल्तान अला-उद्दीन खिलजीका सबसे विश्वस्त अधिकारी बन गया। उसने सुल्तानपर सबसे अधिक प्रभाव जमा लिया। सत्ता और प्रभावमें वृद्धिके साथ-साथ मलिक काफूरकी महत्त्वा-कांक्षाएँ भी बढ़ गयीं और १३१६ ई०में अलाउद्दीनकी मृत्यु होनेपर उसने उसके एक नाबालिग लड़केको गद्दीपर बैठा दिया और सारी सत्ता अपने हाथमें केन्द्रित रखी। इसके बाद उसने गद्दीको स्वयं हथिया लेनेका विचार किया।

उसने अलाउद्दीनके दो बड़े बेटोंकी आँखें निकलवा लीं, नाबालिग सुल्तानकी माँको कैद कर लिया और अलाउद्दीनके परिवारसे सम्बन्धित सभी सरदारों तथा गुलामोंको मरवा डालनेकी साजिश रची। परन्तु वह जिन लोगोंकी जान लेना चाहता था वे सब संगठित हो गये और उन्होंने उसके गद्दीपर बैठनेके पैंतीस दिन बाद ही उसे मार डाला।

काबुल—एक नगरका नाम और उस नदीका भी नाम, जिसके किनारे यह नगर बना हुआ है। यह नगर आधुनिक अफगानिस्तानकी राजधानी है। काबुल नदी, जिसे प्राचीनकालमें 'कुभा' भी कहते थे, सिंधुमें आकर मिल जाती है। मौर्यकाल (दे०) में काबुल भारतीय साम्राज्यके अंतर्गत था। मौर्यवंशके पतनपर काबुलपर कई यवन राजाओंका शासन हुआ। यह कुषाणों (दे०) के भारतीय साम्राज्यका एक भाग था, परन्तु बादमें बाबरके समय तक यह प्रदेश भारतके अधीन नहीं रहा। बाबर काबुलका शासक था और १५२६ ई०में उसने दिल्लीको जीत लिया। उसके बाद नादिर शाह (दे०) के समय तक यह भारतीय साम्राज्यका भाग रहा। नादिर शाहने अफगानिस्तान जीत लिया और उसके मरनेपर अहमद शाह अब्दाली उसका शासक हुआ। उसके बादसे अफगानिस्तान स्वतन्त्र राज्य हो गया है।

कामंदक—राजशास्त्रका एक भारतीय लेखक। उसका 'नीतिसार' अपने विषयका प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है।

कामता—कामरूप (दे०) का ही दूसरा नाम।

कामतापुर—आधुनिक कूच विहारके कुछ मील दक्षिणमें स्थित। कामरूप राज्यके ह्रासकालमें खेन नामक जनजातिने वहाँ अपना राज्य स्थापित किया और कामतापुरको राजधानी बनाया। उन्होंने लगभग ७५ वर्ष तक इस राज्यपर शासन किया। लगभग १४९८ ई०में बंगालके अलाउद्दीन हुसेनशाह (दे०) ने इस राज्यको जीत लिया।

कामबख्श—बादशाह औरंगजेब (दे०) का पाँचवाँ पुत्र। बादशाहकी मृत्युके बाद उसकी गद्दीके लिए उसके पुत्रोंमें जो युद्ध हुआ, उसमें वह १७०७ ई०में लड़ते हुए मारा गया।

कामरान, शाहजादा—मुगल वंशके संस्थापक बादशाह बाबर (१५२६–३० ई०)का दूसरा पुत्र। पिताकी मृत्युपर उसके बड़े भाई, बादशाह हुमायूं (दे०) ने उसके साथ बड़ी उदारताका व्यवहार किया और उसे अफगानिस्तानका शासक बना दिया। परन्तु कामरान कृतघ्न निकला। उसने हुमायूंकी उस समय मदद नहीं की, जब वह शेरशाह (दे०) से युद्ध कर रहा था। जब वह भारतसे भागा तो उसने उसे शरण देनेसे भी इनकार कर दिया। हुमायूंने जब फारसके शाहकी फौजी मददसे कामरानको परास्त कर दिया, उससे गद्दी छीनकर उसे मार डाला, तभी वह दिल्लीपर फिरसे विजय प्राप्त करनेमें सफल हुआ।

कामरूप—देखो, आसाम।

कामाख्या मंदिर—आसाममें गोहाटीके निकट नीलाचलपर स्थित। विश्वास किया जाता है कि शिव जब अपनी पत्नी सतीका शव कंधेपर लिये हुए उन्मत्तके सदृश भ्रमण कर रहे थे तो विष्णु द्वारा उसके छिन्न-भिन्न कर दिये जानेपर देवीका योनिमंडल इसी पर्वतपर गिरा था। यह शाक्तोंका केन्द्र है और देशके सभी भागोंमें धर्मप्राण हिन्दू यहाँ आते हैं। वर्तमान मंदिर कोच राजा नरनारायण (१५४०–८० ई०) (दे०) ने बनवाया है।

काम्बरमेयर, स्टेपिलटन काटन, प्रथम वाईकाउण्ट (१७७३-१८६५)—ब्रिटिश फौजके लेफ्टीनेंट कर्नलकी हैसियतसे १७९९ ई०में भारत आया और उसने टीपू सुल्तान (दे०)के विरुद्ध युद्धमें भाग लिया। १८२२ ई०में वह भारतीय सेनाका कमांडर-इन चीफ (प्रधान सेनापति) हो गया और १८२६ ई०में उसने भरतपुरके दुर्गपर विजय प्राप्त की। वह १८३० ई०में कम्पनीकी सेवासे निवृत्त हुआ और १८६५ ई०में उसकी मृत्यु हो गयी।

कायदे आजम—का अर्थ है महान् नेता। मुहम्मद अली जिन्ना (दे०)को इसी नामसे पुकारा जाता था। सबसे पहले महात्मा गांधीने उनके नामके साथ इस उपाधिका प्रयोग किया था।

कायस्थ—की गणना उच्च जातिके हिन्दुओंमें होती है। बंगालमें वर्ण-व्यवस्थाके अंतर्गत उनका स्थान ब्राह्मणोंके बाद माना जाता है। बहुतसे विद्वानोंका मत है कि बंगालके कायस्थ मूलरूपमें क्षत्रिय थे और उन्होंने तलवारके स्थानपर कलम ग्रहण कर ली और लिपिक बन गये। जैसोरका राजा प्रतापादित्य, चन्द्रद्वीपका राजा कन्दर्पनारायण तथा विक्रमपुर (ढाका)का केदार राय, जिसने अकबरका प्रबल प्रतिरोध किया और अनेक वर्षो तक मुगलोंको बंगालपर अधिकार करने नहीं दिया, सभी कायस्थ थे।

कारमाइकेल, लार्ड—बिहार तथा आसामसे पृथक् कर बंगालको गवर्नरका सूबा बनानेपर, उसका पहला गवर्नर।

काराजाल—भारत और चीनके बीचका एक क्षेत्र। सुल्तान मुहम्मद तुगलकने इसे जीतनेके लिए फौज भेजी, परन्तु वह इस कार्यमें बुरी तरह विफल हुआ। पूर्ववर्ती इतिहासकारोंने इस क्षेत्रको चीन समझ लिया और गलत तरीकेसे यह मत व्यक्त किया कि सुल्तानने अपनी सनकमें चीनपर चढ़ाई की, जिसमें उसकी फौज नष्ट हो गयी।

कारुवाकी (अथवा कालुवाकी)—अशोक मोर्यकी दूसरी रानी तथा तिवल अथवा तिवरकी माता थी। अशोककी रानियोमे सिर्फ इसी रानीका नामोल्लेख उसके शिलालेखोमे हुआ है। सस्कृतमे उसका नाम चारुवाकी रहा होगा।

कार्टियर, जान—ईस्ट इडिया कम्पनीका एक कर्मचारी जो पदोन्नति कर बगालका गवर्नर बन गया। इस पदपर उसने १७६९से १७७२ ई० तक कार्य किया। उसका प्रशासन भ्रष्टाचार और कृपकोके हितोकी उपेक्षाके लिए कुख्यात रहा, इसके ही शासन-कालमे भयकर दुर्भिक्ष पडा, जिसमे बगाल और बिहारकी एक तिहाई जनसख्या नष्ट हो गयी।

कार्नवालिस कोड—मई १७९३ मे प्रचलित। यह जार्ज बार्लो द्वारा तैयार किया गया था, जो बादमे गवर्नर-जनरल बना। यह उन सभी प्रशासकीय सुधारोपर आधारित है जो लार्ड कार्नवालिसने अपने शासनके दौरान (१७८६–९३) किये थे। बादमे इसीके आधारपर बगाल और सपूर्ण भारतमे सिविल सेवाकी सस्थापना हुई। इस कोडका सबसे बडा दोष यह था कि इसके अन्तर्गत कम्पनीकी सभी उच्च सेवाओ व ऊँचे पदोसे भारतीयोको पूर्णतया वचित कर दिया गया। ये सेवाए पूर्णरूपसे यूरोपीयोके लिए सुरक्षित कर दिये जानेसे भारत जैसे गरीब देशके लिए बहुत खर्चीली साबित हुई। यही नही, भारत जैसे विशाल देशके लिए अधिकारियोकी सख्या अत्यन्त न्यून रखी गयी थी।

कार्नवालिस, चार्ल्स (प्रथम मारक्विस) (१७३८–१८०५)—अमेरिकी स्वाधीनता-सग्रामके दौरान यार्कटाउनमे तैनात। अक्तूबर १७८१ मे उसे आत्मसमर्पण करना पडा, जिसके साथ ही अमेरिकामे अग्रेजी आधिपत्य समाप्त हो गया। इसके पश्चात् कार्नवालिस भारतका गवर्नर-जनरल और बगालका कमाडर-इन-चीफ (प्रधान सेनापति) नियुक्त किया गया। इस पदपर वह सात वर्षो (१७८६–९३) तक रहा। १८०५ ई०मे वह इसी पदपर दुबारा भारत भेजा गया, किन्तु तीन महीने बाद ५ अक्तूबरको गाजीपुर (उ० प्र०)मे उसकी मृत्यु हो गयी। अपने प्रथम कार्यकाल-मे कार्नवालिसने तीसरा मैसूर-युद्ध (दे०) (१७९०–९२) किया, जिसमे उसने हैदराबादके निजाम और मराठोके साथ मिलकर मैसूरके टीपू सुल्तानपर दो बार चढाई की। अग्रेजी फौजे राजधानी तक पहुँच जानेपर टीपू सुल्तान श्रीरगपट्टमकी सधि (दे०) (१७९२) करनेको बाध्य हुआ। इस सधिके अतर्गत टीपूने अपने राज्यका आधा भाग अग्रेजो, हैदराबादके निजाम और मराठोको सुपुर्द कर दिया। इसमे अग्रेजोके हिस्सेमे मलाबार, कुर्ग, डिण्डीगुल और बडा महल पडा। कुर्गको सरक्षित राज्य बनाये रखा गया और बाकी तीन क्षेत्रोको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमे मिला लिया गया।

लार्ड कार्नवालिसके शासन-सुधार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उसने पहले बगालमे कम्पनीके वाणिज्य प्रबन्धको सुधारा, व्यापार परिषद् (बोर्ड आफ ट्रेड)के सदस्योकी सख्या ग्यारहसे घटाकर पाँच कर दी और यह व्यवस्था की कि कम्पनीको मालकी सप्लाईके ठेके कम्पनीके अधिकारियो-को न देकर व्यापारियोको दिये जायँ। इससे कम्पनी नीची दरोपर माल खरीद सकती थी। नवाबके हाथोसे फौजदारी मुकदमे करनेका अधिकार छीनकर वह सदर निजामत अदालत कलकत्ता ले गया, जहाँ सदर दीवानी अदालत वारेन हेस्टिग्स द्वारा पहले ही स्थानान्तरित की जा चुकी थी। सदर निजामत अदालतकी अध्यक्षता सदर काजी और मुफ्तियोकी सहायतासे गवर्नर-जनरल तथा उसकी परिषद् करती थी। चार सरकिट अदालते स्थापित की गयी। इनमेसे हर अदालतमे काजी और मुफ्तियोकी मददसे दो ब्रिटिश जज न्याय करते थे। इन जजोको सालमे दो बार पूरे जिलेका दौरा करना पडता था और फौजदारीके मुकदमे निपटाने होते थे। चार प्रातीय अपील-अदालते कलकत्ता, पटना, ढाका और मुर्शिदाबादमे स्थापित की गयी, जिनका काम दीवानीके बडे मुकदमोका फैसला करना और मुसिफके अधीनस्थ नीची अदालतोकी अपीलकी सुनवाई करना था। प्रातीय अदालतोके फैसलोके विरुद्ध सदर दीवानी अदालतमे अपील की जा सकती थी। बगालको प्रशासनकी दृष्टिसे कई जिलोमे बाँटा गया। हर जिलेमे राजस्व-वसूलीका अधिकार कलेक्टरको सौपा गया और न्याय करने तथा मुकदमोका फैसला करनेकी जिम्मेदारी जिला जजको सौपी गयी। हर जिलेमे एक पुलिस अधीक्षककी भी नियुक्ति की गयी, जिसका काम जिलेके अदर कानून और व्यवस्था बनाये रखनेमे सहायता करना था। पुलिस अधीक्षकको जजके अधीन कार्य करना पडता था। प्रत्येक जिलेको विभिन्न थानोमे विभाजित किया गया। थानेका इचार्ज दारोगा (पुलिस सब-इसपेक्टर) बनाया गया, जिसका काम स्थानीय पुलिसपर नियत्रण रखना और जमीदारोको शाति-व्यवस्था सम्बन्धी उस दायित्वसे मुक्त करना था, जो वे दीर्घकालसे निबाहते आ रहे थे। दारोगासे ऊपरके ओहदे वाले सभी अधिकारियोके पदपर सिर्फ गोरागो-की नियुक्ति की जाती थी और भारतीयोको जान-बूझकर

ऐसे पदोंसे वंचित रखा जाता था। उनकी नियुक्ति छोटे पदोंपर की जाती थी। इस प्रकार भारतीयोंको उनकी अपनी ही भूमिमें उच्च सेवाओंमें वंचित करना और सभी ओहदोंके गोरांग अधिकारियोंको ऊँचा वेतन देना बंगालमें कार्नवालिसके सिविल प्रशासनका मूल आधार था। इस शासन प्रणालीकी नकल कुछ आवश्यक परिवर्तनोंके साथ अन्य प्रांतोंमें भी की गयी। लेकिन यह शासन-प्रणाली बहुत खर्चीली थी, इसी वजहसे अधिक समय तक चल नहीं सकी। कार्नवालिस द्वारा किये गये इन समस्त शासन-सुधारोंका समावेश 'कार्नवालिस कोड' (दे०) में किया गया।

लार्ड कार्नवालिस द्वारा किया जानेवाला सबसे महत्त्वपूर्ण शासन-सुधार बंगालमें लगानका स्थायी बंदोबस्त था। इसके अंतर्गत जमींदारोंको उनकी जमीनका मालिक मान लिया गया। वे इस जमीनको अपने पास इस शर्तपर बराबर रख सकते थे कि उससे प्राप्त होनेवाले अनुमानित मालगुजारीका ९० प्रतिशत अंश हर साल एक निश्चित तिथिपर सूर्यास्तसे पहले कम्पनीके कोषागारमें जमा करते रहें। निश्चित तिथिपर मालगुजारी जमा न करनेपर दंड-स्वरूप सम्बन्धित जमींदारकी जमीन जब्त कर ली जाती थी और नीलामीमें सबसे ऊँची बोली लगानेवालेको बेच दी जाती थी। इस जमींदारी प्रथाके द्वारा कम्पनीको मालगुजारीमें निश्चित वार्षिक आय होने लगी और उसने बंगालमें भूस्वामियोंका ऐसा वर्ग पैदा कर दिया जिसके हित कम्पनीके हितोंसे मजबूतीके साथ बँध गये। किन्तु इस प्रथासे प्रांतीय सरकारोंको कृषि-उत्पादनोंके बढ़े हुए मूल्यों, बेहतर प्रशासन और सामान्य आर्थिक सुधारके फलस्वरूप बढ़ी हुई मालगुजारीका कोई अंश न मिलता था और किसानको पूरी तरहसे जमींदारोंकी कृपापर छोड़ दिया गया था। लेकिन इन त्रुटियोंके बावजूद बंगाल, बिहार और उड़ीसामें सन् १७९३में लागू किया गया यह स्थायी बन्दोबस्त भारतमें समूचे ब्रिटिश शासनकालमें प्रचलित रहा। (**डब्लू० एस० सेंक्टन कार कृत 'दि मारक्विस आफ कार्नवालिस', एफ० डी० असकोली कृत 'अर्ली रिवाइज्ड हिस्टी आफ बंगाल'**)

कालंजर (कालिंजर)—उत्तर प्रदेशके बांदा जिलेमें। कालंजरका किला बहुत मजबूत माना जाता था और उसपर अधिकार करनेके लिए पड़ोसके हिन्दू राजा लालायित रहते थे। १२०३ ई०में शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीने इस किलेको जीत लिया, परन्तु बादमें राजपूतोंने उसे फिर ले लिया। १५४५ ई०में उसे शेरशाहने छीन लिया, परन्तु किलेपर घेरा डालनेके समय वह बारूदमें आग लग जानेसे जलकर मर गया। इसके बाद ही राजपूतोंने किला फिर ले लिया। १५६९ ई०में बादशाह अकबरने राजपूतोंसे किला जीता। इसके बाद वह मुगल साम्राज्यका एक भाग बन गया। मुगलोंके पतनपर वह अंग्रेजोंके नियन्त्रणमें आ गया।

कालचक्र यान—बौद्धधर्मके विविध सम्प्रदायोंमेंसे एक, जिसकी प्रवृत्ति अद्वैतवादकी ओर है। यह तिब्बत तथा उड़ीसामें लोकप्रिय था।

कालसी—उत्तर प्रदेशमें देहरादून जिलेका एक गाँव। यहाँपर एक विशाल शिलापर अशोकके चौदह शिलालेख ब्राह्मी लिपिमें उत्कीर्ण मिले हैं।

काला पहाड़ (उर्फ राजू)—एक ब्राह्मण, जो मुसलमान बन गया था। वह बड़ा योग्य सेनापति था और बंगालके सुलेमान करानी (दे०) (१५६५–७२ ई०) की सेनामें उसने भारी ख्याति प्राप्त की। १५६८ ई०में उसने उड़ीसापर चढ़ाई की, वहाँ के राजाको पराजित किया और पुरीके जगन्नाथ मंदिरको लूटा। इसके बाद उसने राजा नरनारायण (दे०) के भाई चिला रायकी कोच सेनाको हराया। आसाममें वह तेजपुर तक चढ़ गया और गौहाटीके निकट कामाख्या मंदिरको नष्ट कर दिया। परन्तु १५८३ ई०में वह राजमहलके निकट एक सैनिक लड़ाईमें बादशाह अकबरकी फौजोंसे हार गया और मारा गया।

कालाशोक (जो काकवर्ण भी कहलाता है)—मगध (दे०) के राजा शिशुनागका उत्तराधिकारी। वह राजधानीको गिरिव्रजसे उठाकर पाटलिपुत्र ले आया। उसीके राज्यकालमें, गौतम बुद्धके निर्वाण (लगभग ४८६ ई०) के लगभग सौ वर्ष बाद, बौद्धोंकी द्वितीय संगीति हुई। अज्ञात कारणोंसे उसकी हत्या कर दी गयी।

कालिदास—संस्कृतके कवियों और नाटककारोंका शिरोमणि। उसके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं-रघुवंश (महाकाव्य), शकुन्तला (नाटक), मालविकाग्निमित्र (नाटक), मेघदूत (खंडकाव्य) तथा ऋतुसंहार (गीतिकाव्य)। उसका काल विवादका विषय है। लोकानुश्रुतिके अनुसार वह राजा विक्रमादित्यकी राजसभाका कवि था। विक्रमादित्यकी पहचान चन्द्रगुप्त द्वितीय (लगभग ३७५–४१३ ई०) से की जाती है और लोक-परम्पराके आधारपर उसका जो काल (चौथी शताब्दीका अंतिम भाग तथा पाँचवीं शताब्दीका प्रारम्भिक भाग) निर्धारित किया जाता है, वह शायद सही है।

कालीकट—पन्द्रहवीं शताब्दीका मलाबार तटपर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह। २७ मई १४९८ ई०में पुर्तगाली अन्वेषक एडमिरल वास्कोडिगामा तीन जहाजोंके साथ

कारुवाकी (अथवा कालुवाकी)–अशोक मार्यकी दूसरी रानी तथा तिवल अथवा तिवरकी माता थी। अशोककी रानियोमे सिर्फ इसी रानीका नामोल्लेख उसके शिलालेखोमे हुआ है। सस्कृतमे उसका नाम चारुवाकी रहा होगा।

कार्टियर, जान–ईस्ट इडिया कम्पनीका एक कर्मचारी जो पदोन्नति कर बगालका गवर्नर बन गया। इस पदपर उसने १७६९से १७७२ ई० तक कार्य किया। उसका प्रशासन भ्रष्टाचार और कृषकोके हितोकी उपेक्षाके लिए कुख्यात रहा, इसके ही शासन-कालमे भयकर दुर्भिक्ष पडा, जिसमे बगाल और विहारकी एक तिहाई जनसख्या नष्ट हो गयी।

कार्नवालिस कोड–मई १७९३ मे प्रचलित। यह जार्ज बार्लो द्वारा तैयार किया गया था, जो बादमे गवर्नर-जनरल बना। यह उन सभी प्रशासकीय सुधारोपर आधारित है जो लार्ड कार्नवालिसने अपने शासनके दौरान (१७८६–९३) किये थे। बादमे इसीके आधारपर बगाल और सपूर्ण भारतमे सिविल सेवाकी सस्थापना हुई। इस कोडका सबसे बडा दोष यह था कि इसके अन्तर्गत कम्पनीकी सभी उच्च सेवाओ व ऊँचे पदोसे भारतीयोको पूर्णतया वचित कर दिया गया। ये सेवाए पूर्णरूपसे यूरोपीयोके लिए सुरक्षित कर दिये जानेसे भारत जैसे गरीब देशके लिए बहुत खर्चीली साबित हुई। यही नही, भारत जैसे विशाल देशके लिए अधिकारियोकी सख्या अत्यन्त न्यून रखी गयी थी।

कार्नवालिस, चार्ल्स (प्रथम मारक्विस) (१७३८–१८०५)–अमेरिकी स्वाधीनता-सग्रामके दौरान यार्कटाउनमे तैनात। अक्तूबर १७८१ मे उसे आत्मसमर्पण करना पडा, जिसके साथ ही अमेरिकामे अग्रेजी आधिपत्य समाप्त हो गया। इसके पश्चात् कार्नवालिस भारतका गवर्नर-जनरल और बगालका कमाडर-इन-चीफ (प्रधान सेनापति) नियुक्त किया गया। इस पदपर वह सात वर्षो (१७८६–९३) तक रहा। १८०५ ई०मे वह इसी पदपर दुबारा भारत भेजा गया, किन्तु तीन महीने बाद ५ अक्तूबरको गाजीपुर (उ० प्र०)मे उसकी मृत्यु हो गयी। अपने प्रथम कार्यकालमे कार्नवालिसने तीसरा मैसूर-युद्ध (दे०) (१७९०–९२) किया, जिसमे उसने हैदराबादके निजाम और मराठोके साथ मिलकर मैसूरके टीपू सुल्तानपर दो बार चढाई की। अग्रेजी फौजे राजधानी तक पहुँच जानेपर टीपू सुल्तान श्रीरगपट्टमकी सन्धि (दे०) (१७९२) करनेको बाध्य हुआ। इस सधिके अतर्गत टीपूने अपने राज्यका आधा भाग अग्रेजो, हैदराबादके निजाम और मराठोको सुपुर्द कर दिया। इसमे अग्रेजोके हिस्सेमे मलाबार, कुर्ग, डिण्डीगुल और बडा महल पडा। कुर्गको सरक्षित राज्य बनाये रखा गया और बाकी तीन क्षेत्रोको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमे मिला लिया गया।

लार्ड कार्नवालिसके शासन-सुधार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उसने पहले बगालमे कम्पनीके वाणिज्य प्रबन्धको सुधारा, व्यापार परिषद् (बोर्ड आफ ट्रेड)के सदस्योकी सख्या ग्यारहसे घटाकर पाँच कर दी और यह व्यवस्था की कि कम्पनीको मालकी सप्लाईके ठेके कम्पनीके अधिकारियोको न देकर व्यापारियोको दिये जायँ। इससे कम्पनी नीची दरोपर माल खरीद सकती थी। नवाबके हाथोसे फौजदारी मुकदमे करनेका अधिकार छीनकर वह सदर निजामत अदालत कलकत्ता ले गया, जहाँ सदर दीवानी अदालत वारेन हेस्टिग्स द्वारा पहले ही स्थानान्तरित की जा चुकी थी। सदर निजामत अदालतकी अध्यक्षता सदर काजी और मुफ्तियोकी सहायतासे गवर्नर-जनरल तथा उसकी परिषद् करती थी। चार सरकिट अदालते स्थापित की गयी। इनमेसे हर अदालतमे काजी और मुफ्तियोकी मददसे दो ब्रिटिश जज न्याय करते थे। इन जजोको सालमे दो बार पूरे जिलेका दौरा करना पडता था और फौजदारीके मुकदमे निपटाने होते थे। चार प्रातीय अपील-अदालते कलकत्ता, पटना, ढाका और मुर्शिदाबादमे स्थापित की गयी, जिनका काम दीवानीके बडे मुकदमोका फैसला करना और मुसिफके अधीनस्थ नीची अदालतोकी अपीलकी सुनवाई करना था। प्रातीय अदालतोके फैसलोके विरुद्ध सदर दीवानी अदालतमे अपील की जा सकती थी। बगालको प्रशासनकी दृष्टिसे कई जिलोमे बाँटा गया। हर जिलेमे राजस्व-वसूलीका अधिकार कलेक्टरको सौपा गया और न्याय करने तथा मुकदमोका फैसला करनेकी जिम्मेदारी जिला जजको सौपी गयी। हर जिलेमे एक पुलिस अधीक्षककी भी नियुक्ति की गयी, जिसका काम जिलेके अदर कानून और व्यवस्था बनाये रखनेमे सहायता करना था। पुलिस अधीक्षकको जजके अधीन कार्य करना पडता था। प्रत्येक जिलेको विभिन्न थानोमे विभाजित किया गया। थानेका इचार्ज दारोगा (पुलिस सब-इसपेक्टर) बनाया गया, जिसका काम स्थानीय पुलिसपर नियत्रण रखना और जमीदारोको शाति-व्यवस्था सम्बन्धी उस दायित्वसे मुक्त करना था, जो वे दीर्घकालसे निबाहते आ रहे थे। दारोगासे ऊपरके ओहदे वाले सभी अधिकारियोके पदपर सिर्फ गोरागोकी नियुक्ति की जाती थी और भारतीयोको जान-बूझकर

ऐसे पदोसे वंचित रखा जाता था। उनकी नियुक्ति छोटे पदोपर की जाती थी। इस प्रकार भारतीयोको उनकी अपनी ही भूमिमें उच्च सेवाओंमे वंचित करना और सभी ओहदोंके गोरांग अधिकारियोको ऊँचा वेतन देना बंगालमे कार्नवालिसके सिविल प्रशासनका मूल आधार था। इस शासन प्रणालीकी नकल कुछ आवश्यक परिवर्तनोंके साथ अन्य प्रांतोमे भी की गयी। लेकिन यह शासन-प्रणाली बहुत खर्चीली थी, इसी वजहसे अधिक समय तक चल नही सकी। कार्नवालिस द्वारा किये गये इन समस्त शासन-सुधारोंका समावेश 'कार्नवालिस कोड' (दे०) मे किया गया।

लार्ड कार्नवालिस द्वारा किया जानेवाला सबसे महत्त्वपूर्ण शासन-सुधार बंगालमे लगानका स्थायी बंदोबस्त था। इसके अंतर्गत जमींदारोको उनकी जमीनका मालिक मान लिया गया। वे इस जमीनको अपने पास इस शर्तपर बराबर रख सकते थे कि उससे प्राप्त होनेवाले अनुमानित मालगुजारीका ९० प्रतिशत अंश हर साल एक निश्चित तिथिपर सूर्यास्तसे पहले कम्पनीके कोषागारमे जमा करते रहे। निश्चित तिथिपर मालगुजारी जमा न करनेपर दंड-स्वरूप सम्बन्धित जमींदारकी जमीन जब्त कर ली जाती थी और नीलामीमे सबसे ऊँची बोली लगानेवालेको बेच दी जाती थी। इस जमींदारी प्रथाके द्वारा कम्पनीको मालगुजारीमे निश्चित वार्षिक आय होने लगी और उसने बंगालमे भूस्वामियोका ऐसा वर्ग पैदा कर दिया जिसके हित कम्पनीके हितोमे मजबूतीके साथ बँध गये। किन्तु इस प्रथासे प्रांतीय सरकारोको कृषि-उत्पादनोंके बढे हुए मूल्यो, बेहतर प्रशासन और सामान्य आर्थिक सुधारके फलस्वरूप बढी हुई मालगुजारीका कोई अंश न मिलता था और किसानको पूरी तरहसे जमींदारोकी कृपापर छोड दिया गया था। लेकिन इन त्रुटियोंके बावजूद बंगाल, बिहार और उडीसामे सन् १७९३मे लागू किया गया यह स्थायी बन्दोबस्त भारतमे समूचे ब्रिटिश शासनकालमे प्रचलित रहा। (**डब्लू० एस० सेक्टन कार कृत 'दि मारक्विस आफ कार्नवालिस', एफ० डी० असकोली कृत 'अर्ली रिवाइज्ड हिस्ट्री आफ बंगाल'**)

कालजर (कालिंजर)–उत्तर प्रदेशके बादा जिलेमे। कालजरका किला बहुत मजबूत माना जाता था और उसपर अधिकार करनेके लिए पडोसके हिन्दू राजा लालायित रहते थे। १२०३ ई०मे शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीने इस किलेको जीत लिया, परन्तु बादमे राजपूतोने उसे फिर ले लिया। १५४५ ई०मे उसे शेरशाहने छीन लिया, परन्तु किलेपर घेरा डालनेके समय वह बारूदमे आग लग जानेसे जलकर मर गया। इसके बाद ही राजपूतोने किला फिर ले लिया। १५६९ ई०मे बादशाह् अकबरने राजपूतोसे किला जीता। इसके बाद वह मुगल साम्राज्यका एक भाग बन गया। मुगलोंके पतनपर वह अंग्रेजोंके नियन्त्रणमे आ गया।

कालचक्र यान–बौद्धधर्मके विविध सम्प्रदायोमेसे एक, जिसकी प्रवृत्ति अद्वैतवादकी ओर है। यह तिब्बत तथा उडीसामे लोकप्रिय था।

कालसी–उत्तर प्रदेशमे देहरादून जिलेका एक गाँव। यहाँपर एक विशाल शिलापर अशोकके चौदह शिलालेख ब्राह्मी लिपिमे उत्कीर्ण मिले है।

काला पहाड (उर्फ राजू)–एक ब्राह्मण, जो मुसलमान बन गया था। वह बडा योग्य सेनापति था और बंगालके सुलेमान करानी (दे०) (१५६५–७२ ई०) की सेनामे उसने भारी ख्याति प्राप्त की। १५६८ ई०मे उसने उडीसापर चढाई की, वहाँ के राजाको पराजित किया और पुरीके जगन्नाथ मंदिरको लूटा। इसके बाद उसने राजा नरनारायण (दे०)के भाई चिला रायकी कोच सेनाको हराया। आसाममे वह तेजपुर तक चढ गया और गौहाटीके निकट कामाख्या मंदिरको नष्ट कर दिया। परन्तु १५८३ ई०मे वह राजमहलके निकट एक नौसैनिक लडाईमे बादशाह अकबरकी फौजोमे हार गया और मारा गया।

कालाशोक (जो काकवर्ण भी कहलाता है)–मगध (दे०)के राजा शिशुनागका उत्तराधिकारी। वह राजधानीको गिरिव्रजसे उठाकर पाटलिपुत्र ले आया। उसीके राज्यकालमे, गौतम बुद्धके निर्वाण (लगभग ४८६ ई०) के लगभग सौ वर्ष बाद, बौद्धोकी द्वितीय संगीति हुई। अज्ञात कारणोसे उसकी हत्या कर दी गयी।

कालिदास–संस्कृतके कवियो और नाटककारोका शिरोमणि। उसके प्रसिद्ध ग्रंथ है-रघुवंश (महाकाव्य), शकुन्तला (नाटक), मालविकाग्निमित्र (नाटक), मेघदूत (खंडकाव्य) तथा ऋतुसंहार (गीतिकाव्य)। उसका काल विवादका विषय है। लोकानुश्रुतिके अनुसार वह राजा विक्रमादित्यकी राजसभाका कवि था। विक्रमादित्यकी पहचान चन्द्रगुप्त द्वितीय (लगभग ३७५–४१३ ई०)मे की जाती है और लोक-परम्पराके आधारपर उसका जो काल (चौथी शताब्दीका अंतिम भाग तथा पाँचवी शताब्दीका प्रारम्भिक भाग) निर्धारित किया जाता है, वह शायद सही है।

कालीकट–पन्द्रहवी शताब्दीका मलाबार तटपर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह। २७ मई १४९८ ई०मे पुर्तगाली अन्वेषक एडमिरल वास्कोडिगामा तीन जहाजोके साथ

इस बन्दरगाहपर उतरा। यहाँके हिन्दू राजा ने, जो 'जमोरिन' कहलाता था, उसका स्वागत किया। इस घटनाने समुद्र मार्गसे आनेवाले साहसी यात्रियोंके लिए देशके द्वार खोलकर भारतीय इतिहासकी धारा बदल दी। इससे भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यकी स्थापनाका मार्ग प्रशस्त हो गया।

कालीकाता (अथवा कालीघाट)–देखिये, 'कलकत्ता'।

काल्विन, जान (१७९७–१८५७)–कलकत्ताके एक अंग्रेज व्यापारीका पुत्र। उसका जन्म कलकत्तामें ही हुआ था। उसने सन् १८२६में इंडियन सिविल सर्विसमें प्रवेश किया और उन्नति करते-करते गवर्नर-जनरल लार्ड आकलैण्ड (दे०)के निजी-सचिव पद तक पहुँच गया। जान काल्विन-ने गवर्नर-जनरलकी अफगान नीतिको बहुत ज्यादा प्रभावित किया था। वह सन् १८५३से १८५७में अपनी मृत्युके समय तक पश्चिमोत्तर प्रांत (आधुनिक उत्तर प्रदेश)का लेफ्टिनेंट-गवर्नर रहा। उसकी मृत्यु १८५७के स्वाधीनता-संग्राम (सिपाही-विद्रोह)के दौरान हुई जिसकी उसने कभी कल्पना नहीं की थी। इस विद्रोहके कारण चिंता और कठोर परिश्रमने उसके स्वास्थ्यको जर्जर कर दिया और उसकी मृत्यु हो गयी।

कावेनेन्टेड सिविल सर्विस–देखिये, 'कम्पनी-राजकी सिविल सर्विस'।

काशगर–मध्य तुर्किस्तानका एक राज्य, जो पहले चीनके नियंत्रणमें था। कुषाण सम्राट् कनिष्क (लगभग १२०–४४ ई०) ने उसे अपने अधीन कर लिया। चीनी यात्री ह्युएन-त्सांगके यात्रा-विवरण से प्रकट होता है कि सातवीं शताब्दीमें काशगरमें बौद्ध धर्मका व्यापक प्रभाव था। पुरातात्त्विक अनुसंधानोंसे प्रकट हुआ है कि इस क्षेत्रमें भारतीय संस्कृतिका प्रचार-प्रसार विशेषरूपसे था।

काशी–देखिये, 'बनारस'।

काशीराज पंडित–एक मराठा वाकयानवीस। सदाशिव राव भाऊके नेतृत्वमें जो मराठा सेना उत्तरी भारतमें भेजी गयी और जिसने १७६१ ई०में पानीपतकी लड़ाईमें हिस्सा लिया, वह उसीके साथ नियुक्त था। उसने सावधानीसे जाँच-पड़तालके बाद अपने खरीते पूना दरबार भेजे थे। इन खरीतोंमें पानीपतकी लड़ाईका विवरण भी है। यह विवरण अब अंग्रेजी भाषामें 'एकाउण्ट आफ दि बैटिल आफ पानीपत' शीर्षकसे आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा प्रकाशित कर दिया गया है। काशीराज पंडित कुशल पर्यवेक्षक था।

काशीराम दास–बंगालमें पैदा हुआ एक कवि। उसने सोलहवीं शताब्दीमें बंगला भाषामें महाभारत लिखा। बंगालमें एक-एक बच्चा उसका नाम जानता है और उसका महाभारत बंगला साहित्यकी एक सबसे लोकप्रिय तथा सम्मानित पुस्तक है।

काश्यप मातङ्ग–पहला भारतीय भिक्षु, जो चीनमें बौद्ध धर्मका प्रचार करनेके लिए लगभग ६७ ई०में वहाँ गया। चीनी सम्राट् मिंग (५८–७५ ई०)ने अपने कुछ दूत भेजे थे। उन्हींके निमंत्रणपर वह चीन गया था। वह मगधमें जन्मा था, परन्तु जिस समय चीन जानेका निमंत्रण मिला, वह गंधारमें रहता था।

कासिम खां–एक मुगल सरदार, जिसे बादशाह शाहजहाँ (१६२७–५८ ई०)ने बंगालका सूबेदार नियुक्त किया। शाहजहाँने उसे हुक्म दिया था कि वह बंगालसे पुर्तगाली व्यापारियोंको निकाल बाहर कर दे, क्योंकि उन्हें व्यापार करनेका जो अधिकार प्रदान किया गया था, उसका वे दुरुपयोग कर रहे थे। कासिम खांने १६३२ ई०में हुगलीपर अधिकार कर लिया और बंगालमें व्यापार करनेवाले पुर्तगालियोंके होश ठिकाने लगा दिये। १६५८ ई०में कासिम खांको राजा जसवंत सिंहके साथ बागी शाहजादों, औरंगजेब और मुरादको रोकने तथा उन्हें दक्खिनसे उत्तर भारतमें न आने देनेके लिए भेजा गया। धर्मट (दे०)में शाही फौजका बागी शाहजादोंकी फौजसे मुकाबला हुआ। कासिम खांने इस युद्धमें अपने मालिकको जितानेके लिए कोई कोशिश नहीं की और युद्धमें शाही फौज हार गयी।

कासिम बरीद–बहमनी सुल्तान महमूद (दे०) (१४८२-१५१८ ई०)का वजीर। १४९२ ई०से कासिम बरीद एक प्रकारसे बहमनी साम्राज्यसे बीजापुर, बराड़-गोलकुंडा तथा अहमदनगरके निकल जानेके बाद, राजधानीके आसपासके उसके हिस्सेका शासक रहा। कासिम बरीद बरीदशाही वंशका संस्थापक माना जाता है, जिसने १६१९ ई० तक बिदरपर राज्य किया। १६१९ ई०में बिदरपर बीजापुरने अधिकार कर लिया।

कासिम बाजार–पश्चिमी बंगालके मुर्शिदाबाद जिलेमें भागीरथीके तटपर स्थित। मुर्शिदाबाद नगर बंगालके नवाबोंकी राजधानी था और कासिम बाजारका उसके अत्यधिक निकट होना फिरंगी व्यापारियोंके लिए विशेष आकर्षणकी बात थी। ब्रिटिश, फ्रांसीसी और डच, सभी लोगोंने यहाँपर अपने कारखाने स्थापित किये। १६८६ ई०में बंगालके नवाबने पहले तो ब्रिटिश कारखानेको जब्त कर लिया, बादको १६९० ई०में उसे लौटा दिया। नवाब

सिराजुद्दौलाने १७५६ ई०में उसपर फिर कब्जा कर लिया और रेजीडेंट तथा उसके सहायक (वारेन हेस्टिंग्स)को मुर्शिदाबादमें बंदी बना लिया गया। लेकिन पलासी युद्धके बाद कम्पनीने उसे सिराजुद्दौलाके हाथोंसे वापस छीन लिया। इसके बाद १७७० ई० तक इस कस्बेकी सम्पन्नता बराबर बढती रही। किन्तु १७७० ई०में भीषण अकाल पडा, जिससे कासिम बाजारके आसपास बहुत-से खेत वीरान हो गये। १८१३ ई०में भागीरथीकी धारा भी हटकर शहरसे तीन मील दूर चली गयी। फलत व्यापारिक क्षेत्रके रूपमें कासिम बाजारकी पुरानी महत्ता समाप्त हो गयी।

कास्मास इंदिकोप्लूसटेस–एक यवन (यूनानी) व्यापारी, जो बादको भिक्षु हो गया। उसने ५३५ ई०में ५४७ ई० तक भूमध्यसागर, लाल सागर और फारसकी खाडीके क्षेत्रों तथा श्रीलका और भारतकी यात्रा की और अपनी पुस्तक 'क्रिश्चियन टोपोग्राफी' में अपना यात्रा-वृत्तात विस्तारसे लिखा। पुस्तकसे श्रीलका तथा पश्चिमी समुद्र-तटपर स्थित अन्य देशोंके साथ भारतके व्यापारके सम्बन्धमें बहुमूल्य जानकारी मिलती है। (**जे० डब्लू० मेक्क्रिंडिल कृत 'ऐंशिएंट इंडिया'**)

किचनर, होरेशियो हूबर्ट, अर्ल (१८५०–१९१६ ई०)–१९०२ ई० में भारतका प्रधान-सेनापति नियुक्त। इससे पहले वह मिस्रके सेनापतिकी हैसियतसे मिस्र तथा सूडानकी लडाइयों (१८९६–९९ ई०)में और १९०० में दक्षिण अफ्रीकाके युद्धमें नामवरी हासिल कर चुका था। भारतके प्रधान-सेनापतिकी हैसियतसे उसने सेनामें अनेक प्रशासनिक सुधार किये तथा सामरिक दृष्टिसे ब्रिटिश तथा भारतीय फौजोंकी अलग-अलग छावनियोंमें फिरसे तैनाती की। लार्ड किचनरको उदार नहीं कहा जा सकता। उसने वाइसरायकी एक्जीक्यूटिव कौंसिलमें भारतीय सदस्यकी नियुक्तिका विरोध किया।

भारतमें उसके प्रशासन-कालकी सबसे महत्त्वपूर्ण घटना फौजी प्रशासनके प्रश्नपर वाइसराय लार्ड कर्जन (दे०)से उसका तीव्र विवाद था। विवादास्पद प्रश्न यह था कि क्या वाइसरायकी एक्जीक्यूटिव कौंसिलमें प्रधान सेनापतिके अतिरिक्त सैनिक सदस्य भी होना चाहिए। सैनिक सदस्य फौजका आदमी था, परन्तु वह पद तथा सैनिक अनुभवमें प्रधान सेनापतिसे छोटा था। लार्ड किचनरका कहना था कि सैनिक सदस्यका पद तोड दिया जाना चाहिए तथा एक्जीक्यूटिव कौंसिलमें प्रधान सेनापतिको सैनिक मामलोंमें एकमात्र निर्णायक अधिकारी होना चाहिए। लार्ड कर्जन लार्ड किचनरके इस प्रस्तावके विरुद्ध था। यह विवाद अंतिम रूपसे तय करनेके लिए भारत-मंत्रीके पास भेजा गया। उसने एक समझौता प्रस्तुत किया, जिसे किचनरने स्वीकार कर लिया, परन्तु कर्जनको वह स्वीकार नहीं हुआ और उसने इस्तीफा दे दिया। किचनरने इस तरह काफी यश पैदा करके भारतमें अवकाश ग्रहण किया। अगस्त १९१४ में प्रथम विश्वयुद्ध शुरू होनेपर लार्ड किचनरको युद्ध मत्रणालयका अधिकारी बना दिया गया और इस पदपर उसने बडी सफलताके साथ काम किया। जून १९१६ ई०में 'हेम्पशायर' जहाजपर सवार होकर वह जब एक महत्त्वपूर्ण फौजी तथा कूटनीतिक कार्यसे स्कापा फ्लोसे रूस जा रहा था तो मार्गमें एक बारूदी सुरगसे टकराकर जहाज डूब गया और उसकी मृत्यु हो गयी।

किलपैट्रिक, कर्नल जान–ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें मद्रासमें नियुक्त। अंधेरी तग कोठरीकी दुर्घटना (जो 'ब्लैक होलकी घटना' नामसे सरनाम है) (दे०) का समाचार पाकर किलपैट्रिकको २३० सिपाहियोंके साथ बगाल भेजा गया। कलकत्तासे दक्षिण, हुगलीके तटपर स्थित फुल्टा नामक स्थानमें जिन अंग्रेजोंने शरण ले रखी थी, उनकी सहायताके लिए पहुँचनेवाली यह पहली ब्रिटिश कुमुक थी। बादमें क्लाइव (दे०) तथा वाटसन (दे०)के पहुँचनेपर उसने कलकत्तापर फिरसे अधिकार करनेमें भाग लिया। खबर है कि पलासीकी लड़ाईसे ठीक पहले युद्ध कौंसिलकी जो बैठक हुई थी, उसमें किलपैट्रिकने सेनाको आगे बढनेका आदेश देनेके विरुद्ध वोट दिया। क्लाइवने पहले इस निर्णयको मान लिया, परन्तु बादमें उसे अस्वीकार कर दिया। किलपैट्रिक १७८७ ई०में मर गया।

किलागुल मुहम्मद–क्वेटाके निकट एक छोटा-सा स्थान। पुरातात्त्विक अनुसधानोंसे प्रकट हुआ है कि यहाँ प्रागैतिहासिक कालकी एक पाषाणकालीन ग्राम सभ्यता वर्तमान थी, जब मिट्टीके बरतनोंका प्रचलन नहीं था।

किशलू खा–मुलतान तथा सिंधका नाजिम। उसने सुलतान मुहम्मद तुगलक (१३२५–५१ ई०)के खिलाफ विद्रोह कर दिया। परन्तु १३२८ ई०में एक लडाईमें उसे हराकर मार डाला गया।

की-पिन–की पहचान कश्मीरसे और गधार (दे०) से भी की जाती है। गधारसे उसकी पहचान अधिक युक्तिसगत प्रतीत होती है। इतना निश्चित है कि यह प्रदेश अफगानिस्तान और पजाबके बीच में स्थित था और तक्षशिला भी इसीके अतर्गत थी। इसपर शकों (दे०)का अधिकार

था। बादमे इसपर कुषाण राजा कदफिसस प्रथम (लगभग ४०–७८ ई०) का अधिकार हो गया।

कीरतसागर–बुंदेलखडमे महोबाके निकट एक सुदर झील। इसका निर्माण चदेल राजा कीर्तिवर्मा (लगभग १०४९–११०० ई०)ने कराया। यह झील ग्यारह मीलके घेरेमे थी और इसके तटपर कई मदिर बने हुए थे।

कीरत सिह–बुदेलखडमे कालजरका राजा। रीवाके बघेल राजा वीरसिह (अथवा वीर खा) को शरण देनेके कारण शेरशाह सूर (१५४०–४५ ई०) उससे कुपित हो गया। १५४५ ई०मे शेरशाहने जब कालजरका किला लेनेकी कोशिश की तो कीरतसिहने उसकी फौजोका डटकर मुकाबला किया। शेरशाहने किला सर कर लिया, परतु इस से पहले वह सांघातिक रूपसे घायल हो गया। बादमे शेरशाहके लडके इसलाम शाहने कीरत सिहको मार डाला।

कीरत सिह–आमेरके राजा जयसिह (दे०) का लडका। खबर है कि बादशाह औरगजेबके भडकानेपर उसने १६६७ ई०मे अपने पिताको जहर देकर हत्या कर डाली। राजा जयसिहकी मृत्यु हो जानेपर औरगजेबने सतोपकी गहरी साँस ली।

कीर्तिवर्मा–एक चदेल राजा, जो बुदेलखडपर राज्य (लगभग १०४९–११०० ई०) करता था। वह बडा पराक्रमी था। उसने चेदि (मध्यप्रदेश) राजा कर्णदेव (दे०)को पराजित कर अपने राज्यका काफी विस्तार किया। उसने प्रजाकी भलाईके लिए अनेक कार्य किये। उसने कीरतसागर (दे०) झील बनवायी। वह विद्वानोका आश्रयदाता था। 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटकके रचयिता श्रीकृष्ण मिश्रको उसका आश्रय प्राप्त था।

कुजुल कदफिसस–देखिये, 'कदफिसस प्रथम'।

कुणाल–अशोकका पुत्र? उसका उल्लेख अशोक अथवा उसके किसी उत्तराधिकारीके शिलालेखमे नही मिलता। उसको लेकर अनेक किंवदतियाँ प्रचलित है जो मनमे करुणा उत्पन्न करती है। कहा जाता है कि वह अपनी सौतेली माँ तिष्यरक्षिताका कोपभाजन बन गया। तिष्यरक्षिताका भी उल्लेख अशोकके किसी शिलालेखमे नही मिलता। उसने उसकी आँखे फोडवा दी और अशोककी आज्ञासे उसे तक्षशिलाके शासकके पदसे हटा दिया। बादमे अशोकको अपनी गलतीका पता चला। कहा जाता है कि भिक्षु घोषने बुद्धकी करुणापर जोप्रवचन किया, उसे सुनकर धर्मनिष्ठ भिक्षुओके कपोलोपर अश्रुधारा बह चली। उसे लगानेसे ही कुणालके ज्योतिहीन नेत्रोंमे ज्योति आ गयी, जिससे अशोकको सान्त्वना प्राप्त हुई।

कुतलग खा–सुल्तान मुहम्मद तुगलक (१३२५–५१ ई०) द्वारा दक्खिनका नाजिम (सूबेदार) नियुक्त किया गया। राजधानीसे दूर होने तथा सुल्तानके सनकभरे आदेशोसे असतुष्ट होकर उसने बगावत कर दी, किन्तु सुल्तानने १३४४–४५ ई०मे उसकी बगावत कुचल दी।

कुतलग, ख्वाजा–मगोलोका सरदार। उसने १२९९ ई०मे भारतपर विजय प्राप्त करनेके उद्देश्यसे चढाई की। दिल्लीके बाहर एक युद्धमे सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (१२९६–१३१६ ई०)के एक बहुत ही योग्य सिपहसालार जफर खाने उसे हरा दिया और वह भारतसे वापस लौट गया। उसे इतना ही सतोष मिला कि युद्धमे उसका विजयी प्रतिद्वन्द्वी जफर खा मारा गया।

कुतुब मीनार–दिल्ली तथा भारतमे मुसलमान शासनकालकी सबसे शानदार इमारत। नीचेके भागको छोडकर, यह पूरी मीनार सुल्तान इल्तुतमिशके हुक्मसे १२३२ ई०मे बनायी गयी। इसका नीचेका भाग पहले सुल्तान कुतुबुद्दीनने बनवाया था। सम्भवत इसका नामकरण कुतुबुद्दीनके नामपर नही, वरन् उस सतके नामपर किया गया है जिसे यहाँ दफन किया गया था।

कुतुबशाही वश–स्थापना १५१८ ई०मे कुली कुतुबशाह (दे०)के द्वारा, जो सुल्तान मुहम्मद शाह तृतीय (दे०) तथा उसके उत्तराधिकारी महमूद शाह (दे०)के राज्यकालमे बहमनी राज्यके पूर्वी भागका हाकिम था। महमूद शाहकी मृत्युपर उसने अपनेको गोलकुडाका स्वतत्र सुल्तान घोषित कर दिया और कुतुबशाही वशकी स्थापना की, जिसने १५१८ ई०से १६८७ ई० तक राज्य किया। इस वशके प्रारम्भिक सुल्तान जमशेद (१५४३–५० ई०), इब्राहीम (१५५०–८० ई०) तथा मुहम्मद कुली (१५८७–१६११ ई०) थे। जमशेद पितृघातक था। इब्राहीम योग्य शासक था। उसने १५६५ ई०मे तालीकोटकी लडाई (दे०)मे विजयनगर साम्राज्यको पराजित करनेमे भाग लिया। १६८७ ई०मे औरगजेबने कुतुबशाही वशका उच्छेद कर दिया।

कुतुबुद्दीन ऐबक–दिल्लीका पहला मुसलमान सुल्तान। मूल रूपसे तुर्किस्तानका रहनेवाला था, जो गुलामके रूपमे खरीदकर शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी (दे०)की सेवामे उपस्थित किया गया। अपनी योग्यता के कारण वह मालिकका कृपापात्र बन गया। ११९२ ई०मे तराईकी दूसरी लडाई (दे०)मे विजयके बाद शहाबुद्दीन भारतमे युद्ध जारी रखनेका भार अपने विश्वासपात्र गुलाम और

सिपहसालार कुतुबुद्दीन ऐबकपर छोड़कर खुरासान वापस लौट गया। कुतुबुद्दीनने बड़ी योग्यताके साथ मालिकके द्वारा सौंपा गया काम पूरा किया। ११९३ ई०में उसने दिल्लीपर अधिकार कर लिया और दोआबपर चढ़ाई की। अगले दस सालों (११९३–१२०३ ई०)में उसने अपने मालिकको कन्नौज, ग्वालियर, अन्हिलवाड़, अजमेर तथा कालजर फतह करनेमें मदद दी। इन बीचमें कुतुबुद्दीनके एक सहायक, बख्तियार (दे०)के पुत्र मुहम्मदने बिहार और बगाल जीत लिया था।

इस तरह शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीकी मृत्युके समय तक कुतुबुद्दीन ऐबकने अपनी प्रतिष्ठा इतनी बढ़ा ली थी कि शहाबुद्दीनके मरनेके बाद उसके भारतीय साम्राज्यका उत्तराधिकारी नियुक्त होनेमें उसे किसी कठिनाईका सामना नहीं करना पड़ा। उसकी गणना दिल्लीके पहले सुल्तानके रूपमें की जाती है। उसने १२०६ ई०से १२१० ई०में मृत्यु होने तक राज्य किया। कुतुबुद्दीन बुद्धिमान् राजनीतिज्ञ था। उसने अनुभव किया कि मुहम्मद गोरीसे उसका खूनका रिश्ता नहीं है, अतएव उसने मुहम्मद गोरीके प्रमुख सहयोगियोंको अपना समर्थक बना लेना उचित समझा। फलत उसने किरमानके हाकिम ताजुद्दीन यिल्दिजकी पुत्रीसे स्वय विवाह कर लिया और अपनी बहिनका विवाह सिंधके हाकिम नासिरुद्दीन कुबाचा (दे०) तथा अपनी पुत्रीका विवाह अपने प्रमुख गुलाम तथा सबसे योग्य सिपहसालार इल्तुतमिशसे कर दिया। कुतुबुद्दीनने केवल चार वर्ष (१२०६–१० ई०) राज्य किया और पोलोके मैदानमें दुर्घटनाग्रस्त हो जानेसे उसकी मृत्यु हो गयी। वह शक्तिशाली और क्रूर विजेता तथा शासक था, परन्तु इसके साथ ही उसमें सौन्दर्यको परखनेकी सहज वृत्ति भी थी, जिसके फलस्वरूप उसने कुतुबमीनार (दे०) बनवाना शुरू किया था।

कुतुबुद्दीन कोका–बादशाह जहाँगीर (१६०५–२७ ई०) का दूध-भाई था। जहाँगीरने तख्तपर बैठनेके बाद ही उसे शेर अफगान (दे०)को दरबारमें लानेके लिए भेजा था, जिसने मेहरुन्निसा (भावी मलका नूरजहाँ) (दे०)से शादी कर ली थी और उस समय बगालमें बर्दवानमें उसे जागीर मिली हुई थी। कोका शातिपूर्ण रीतिसे शेर अफगानको पकड़कर ला नहीं सका। दोनोंमें युद्ध छिड़ गया, जिसमें दोनों मारे गये।

कुतुबुद्दीन मुबारक–खिलजी वशका अतिम सुल्तान तथा सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (दे०)का पुत्र एव उत्तराधिकारी। उसने १३१६से १३२० ई० तक राज्य किया। गद्दीपर बैठनेके बाद ही उसने देवगिरिके राजा हरपाल देवपर चढ़ाई की, युद्धमें उसे परास्त किया और उसे बदी बनाकर उसकी खाल उधेड़वा दी। इस सफलताके फलस्वरूप उसका दिमाग फिर गया। वह अपना समय सुरा तथा सुन्दरीमें बिताने लगा। १३२० ई० में उसके कृपापात्र खुसरो खाने उसकी हत्या कर डाली। उसकी मृत्युके साथ खिलजी वशका अत हो गया।

कुन्हा, नूनो दा–१५३७ ई०में दिवका पुर्तगाली गवर्नर, उसने अपने समकालीन गुजरातके सुल्तान बहादुरशाह (१५२६–३७)को अपने जहाजपर सैरके लिए आमत्रित किया और कुचक्र रचकर उसकी हत्या करा दी। सुल्तान जिस समय जहाजसे उतर रहा था कुन्हाने उसपर हमला करा दिया। सुल्तानने जान बचानेके लिए उछलकर जहाजके अदर जानेकी कोशिश की किन्तु पुर्तगाली नाविकने उसके सिरपर प्रहार किया और उसे मार डाला।

कुबेर–देवराष्ट्रका राजा। प्रयागके स्तम्भ-लेखके अनुसार समुद्रगुप्त (दे०)ने उसे युद्धमें बदी बनानेके बाद मुक्त कर दिया था। देवराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेशके विजगापट्टम जिलेमें स्थित बताया जाता है।

कुबेरनागा–चन्द्रगुप्त द्वितीय (लगभग ३८०–४१३ ई०)की एक रानी थी।

कुब्ज विष्णुवर्धन–चालुक्य राजा पुलकेशी द्वितीय (लगभग ६०९–४२ ई०)का छोटा भाई। पुलकेशीने ६११ ई०में अपने छोटे भाईको कृष्णा और गोदावरी नदियोंके मध्यमें स्थित वेंगिके राज्यका शासक नियुक्त कर दिया। इसकी राजधानी पिष्टपुर, आधुनिक पीठापुरम् थी। लगभग ६१५ ई०में कुब्ज विष्णुवर्धनने अपनेको वेंगिका स्वतत्र राजा बना लिया और पूर्वी चालुक्य वश (दे०) की स्थापना की, जिसने १०७० ई० तक राज्य किया।

कुमराहार–बिहारमें बाँकीपुरके निकट एक गाँव। यहींपर प्राचीन पाटलिपुत्र (दे०) नगर स्थित था।

कुमार–देखिये, 'भास्करवर्मा'।

कुमारगुप्त प्रथम–चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (लगभग ३७५–४१३ ई०)का पुत्र तथा उत्तराधिकारी। उसने ४१३ ई०से ४५३ ई० तक राज्य किया, उत्तराधिकारमें प्राप्त विशाल गुप्त साम्राज्यकी अखडता बनाये रखी और शायद उसका और विस्तार किया, क्योंकि अपने पितामह समुद्रगुप्तकी भाति उसने भी अश्वमेध यज्ञ किया था, परन्तु उसके राज्यकालमें गुप्त साम्राज्यके ऊपर विपत्तिके बादल घहराने लगे थे। पहले तो पुष्यमित्रोंने, जिन के बारेमें कुछ ज्ञात नहीं है, साम्राज्यपर आक्रमण किया,

उनके खदेड दिये जानेके बाद हूणोके आक्रमण आरम्भ हो गये। कुमारगुप्तके पुत्र स्कन्दगुप्तके नेतृत्वमे हूणोको पराजित करके उनकी बाढ रोक दी गयी। इन सब विपत्तियोके कालमे ही कुमारगुप्त प्रथमकी मृत्यु हो गयी।

कुमारगुप्त द्वितीय—कुमारगुप्त प्रथमका प्रपौत्र। उसने लगभग ४७३ ई०मे अपने पिता नरसिंहगुप्त बालादित्यसे सिहासन प्राप्त किया और ४७४ ई० तक राज्य किया। उसका राज्य उसके पूर्वजोके विशाल साम्राज्यके पूर्वी प्रातो तक सीमित था। उसने बहुत थोडे समय राज्य किया। वह पुत्रहीन था और उसके बाद गुप्तवशकी सीधी वश-परम्परा समाप्त हो गयी।

कुमारघोष—बगालका प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु, जो जावाके शैलेन्द्र राजवश (दे०) का गुरु हो गया। उसके आदेशसे एक शैलेन्द्र राजाने जावामे ताराका सुन्दर मदिर बनवाया।

कुमारजीव—जन्म ३४४ ई०मे। उसका पिता कुमार अथवा कुमारायन था। उसकी माता मध्य एशिया स्थित कूचाके राजाकी बहन, राजकुमारी जीवा थी। कुमारजीवकी जीवन-कहानी सामान्य रूपसे भारतसे बाहर भारतीय सस्कृति, और विशेष रूपसे बौद्धधर्मके प्रसारकी कहानी है। उसने पहले कूचामे और फिर कश्मीरमे शिक्षा पायी। २० वर्षकी अवस्थामे वह बौद्ध भिक्षु हो गया। वह कूचामे रहकर महायानी बौद्धधर्मकी शिक्षा देने लगा। जब वह बन्दी बनाकर चीन ले जाया गया तो चीनी सम्राट् याओ हीनने ४०१ ई०मे उससे अपने राज्यमे बौद्धधर्मका प्रचार करनेको कहा। इसके बाद वह चीनकी राजधानी चाग-आनमे बस गया और ४१३ ई० मे अपनी मृत्यु तक वही रहा।

कुमारजीवने अपने जीवनकालके इन अतिम बारह वर्षोंमे चीनी विद्वानोकी सहायतासे, जिन्हे चीनी सम्राट्ने उसकी सेवामे नियुक्त कर दिया था, अट्ठानवे सस्कृत बौद्ध ग्रन्थोका चीनी भाषामे अनुवाद किया। इन ग्रन्थोमे 'प्रज्ञापारमिता', 'विमलकीर्ति-निर्देश' तथा 'सद्धर्म पुडरीक सूत्र' नामक ग्रन्थ भी है जो महायानी निकायके मूल सिद्धात-ग्रथ है। उसने बहुतसे चीनियोको अपना शिष्य बनाया। उसका सबसे प्रसिद्ध चीनी शिष्य फा-हियान था, जिसने उसके कहनेसे ४०५—११ ई०मे भारतकी यात्रा की। इस तरह कुमारजीवने महायानी बौद्धधर्मकी विजय-पताका फहरायी जिसका प्रसार पहले चीनमे और फिर वहाँसे कोरियामे और फिर जापान मे हुआ। बृहत्तर भारतके निर्माणमे कुमारजीव और उसके चरण-चिह्नोपर चलनेवाले अन्य अनेकानेक भारतीय बौद्ध भिक्षुओका बहुत बडा हाथ है।

कुमारदेवी—लिच्छवि राजकुमारी, चन्द्रगुप्त प्रथम (लगभग ३२०—३० ई०)के साथ विवाहित और प्रसिद्ध समुद्रगुप्त (लगभग ३३०—३८० ई०)की माता। विश्वास किया जाता है कि लिच्छविकुमारीके विवाह-सम्बन्धने चन्द्रगुप्त प्रथमके उत्कर्षमे बहुत सहायता दी और उसके पुत्रने अपने शिलालेखमे गर्वके साथ अपने लिच्छवि-दौहित्र होनेका उल्लेख किया है।

कुमारपाल—एक चालुक्य राजकुमार, जिसे राज्याधिकारियोने गुजरातकी गद्दीपर बैठाया। उसने अन्हिलवाडको राजधानी बनाकर ११४३ ई०से ११७२ ई० तक राज्य किया। वह पक्का जैन धर्मानुयायी और प्रसिद्ध जैन आचार्य हेमचन्द्रका सरक्षक था। अहिसाका प्रचार करनेके उद्देश्यसे उसने राजाज्ञाकी अवहेलना करके जीव-हिंसा करनेवाले बहुतसे लोगोको सूलीपर चढा दिया। उसने अनेक जैन मन्दिरोका निर्माण कराया।

कुमारपाल—बगालके पालवशका बादका राजा। वह रामपालका पुत्र था और लगभग ११२० ई०मे पिताके सिंहासन-पर बैठा। उसने केवल पाँच वर्ष राज्य किया। उसके राज्यकालमे पालवशका अपकर्ष आरम्भ हो गया। कामरूपमे कुमारपालके कृपापात्र तथा अमात्य विद्यादेवने एक स्वतत्र राज्यकी स्थापना कर ली।

कुमारामात्य—गुप्त साम्राज्यके उच्च राज्याधिकारियोकी एक पदवी। कवि हरिषेणको, जिसने इलाहाबाद स्तम्भपर उत्कीर्ण समुद्रगुप्त (दे०)की प्रशस्तिकी रचना की, 'कुमारामात्य'के अतिरिक्त 'महादड नायक' (सेनाका अधिकारी) आदिकी पदवियाँ भी प्राप्त थी। कुमारामात्य या तो महाराजाधिराज या युवराज या प्रातीय शासककी सेवामे रहता था।

कुमारिल भट्ट—हिन्दुओके धर्मसूत्रो एव पूर्व-मीमासा दर्शनके विद्वान् भाष्यकार। वे आत्माको नित्य मानते थे और बौद्ध-धर्म एव दर्शनके प्रखर आलोचक थे। वे दक्षिण भारतके निवासी थे और लगभग ७०० ई०मे हुए।

कुम्भा—मेवाडका राणा (१४३१—६८ ई०)। मेवाडके सबसे महान शासकोमे उसकी गणना की जाती है। उसने मालवा तथा गुजरातके सुलतानोकी शक्तिशाली सेनाओको मेवाडसे दूर रखा। वह महान वास्तु-निर्माता था। उसने मेवाडकी रक्षाके लिए स्थापित चौरासी दुर्गोंमेसे बत्तीस दुर्गोंका निर्माण कराया। इन दुर्गोंमे कुम्भलगढ सैनिक दृष्टिसे सबसे अधिक उल्लेखनीय है। उसने जयस्तम्भ

(जिसे 'कीर्तिस्तम्भ' भी कहते है) का निर्माण कराया। वह केवल महान् शासक तथा योद्धा ही नही, प्रतिभाशाली कवि, प्रकाड विद्वान् तथा प्रसिद्ध सगीतज्ञ भी था।

'कुरल' (अथवा तिरुक्कुरल)–तमिल भाषाका महत्त्वपूर्ण काव्यग्रथ। इसकी रचना ईसवी सन्की प्रारम्भिक शताब्दियोमे हुई। गोदावरीके दक्षिणका यह सबसे प्रतिष्ठित और लोकप्रिय ग्रथ है। इसमे सदाचार और नीति विषयक अनेक शिक्षाएँ है जो आज भी तमिल लोगोकी जबानपर रहती है।

कुरान–मुसलमानोकी सबसे पवित्र पुस्तक। उसमे उनके पैगम्बर हजरत मुहम्मद साहबकी वाणी सगृहीत है। इसलामी धर्मशास्त्र तथा राजशास्त्र उसीपर आधारित है। इस किताबको 'खुदाका कलाम' माना जाता है, जो पैगम्बर मुहम्मद साहबपर उतारी गयी थी।

कुरुक्षेत्र–प्रसिद्ध युद्धभूमि, जहाँ महाभारतके अनुसार १८ दिन तक कौरवो और पाडवोके बीच इस बातका निर्णय करनेके लिए भीषण युद्ध हुआ कि दोनोमेसे कौन उत्तरी भारतका सार्वभौम शासन करेगा। इस युद्धमे पाडवोकी विजय हुई। कुरुक्षेत्र दिल्लीके निकट ही स्थित था। यह स्थान पानीपतसे अधिक दूर नही है, जहाँ तीन बार भारतका भाग्य-निर्णय हुआ। पश्चिमी विद्वान् कुरुक्षेत्रके युद्धकी ऐतिहासिकतामे सदेह करते हैं, परतु सभी धर्मनिष्ठ हिन्दुओका विश्वास है कि यह युद्ध हुआ था।

कुर्ग–अब मैसूर (कर्नाटक) राज्यका एक जिला। यह पश्चिमी घाटके पठारपर प्रायद्वीपके दक्षिणमे स्थित है। इस जिलेकी पुरानी राजधानी मरकारा और अब यहाँकी राजभाषा कन्नड है। यहाँ चावल और काफीकी पैदावार बहुतायतमे होती है। यहाँकी काफीने ही खासतौरसे अग्रेजोका ध्यान इस जिलेकी ओर आकर्षित किया। इस जिलेका नाम कुर्ग नामक कबायलियोके आधारपर पडा, जो मूलरूपसे यहाँके निवासी थे। इस जिलेका इतिहास नवी और दसवी शताब्दीके बादसे ही मिलता है जब इसका शासन गग राजाओ (दे०) के हाथमे था। ११वी शताब्दीमे गगवशी राजाओके पदच्युत कर दिये जानेपर इसका शासन क्रमश चोल और होयसलोके हाथ मे आ गया। इसके बाद यह विजयनगर साम्राज्यका अग बन गया। विजयनगरका पतन होनेपर राजपरिवारके एक राजकुमारने इस क्षेत्रपर अपना शासन स्थापित किया और उसके वशज तबतक यहाँ शासन करते रहे, जबतक वह १८३४ ई० मे ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमे मिला नही लिया गया। मैसूरके हैदरअली और उसके पुत्र टीपू सुल्तानने इसपर अपने प्रभुत्वका दावा किया, यद्यपि कुर्ग बार-बार मुस्लिम शासनके खिलाफ विद्रोह करते रहे। १७८८ ई० मे जब लार्ड कार्नवालिसने टीपू सुल्तानसे युद्ध छेडा तो उसने वीरराजाके साथ एक सधि की, जो अपनेको कुर्गका शासक कहता था। बादको मार्च १७९२ ई० मे टीपू सुल्तानने भी ईस्ट इडिया कम्पनीके साथ सधि की, जिसके अनुसार टीपूने कुर्ग कम्पनीको दे दिया और कम्पनीने वीरराजाको कुर्गके स्वतत्र शासकके रूपमे मान्यता दी। १८०९ ई० मे वीरराजाकी मृत्यु हो गयी और १८२० ई० मे वीरराजा द्वितीय उत्तराधिकारी बना। वह बहुत ही निर्दय और भ्रष्ट था। अत गवर्नर-जनरल लार्ड विलियम बेण्टिकने १८३४ ई० मे उसे अपदस्थ कर कुर्गको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमे मिला लिया। इसके बाद जब तक भारतमे ब्रिटिश शासन रहा, कुर्गका प्रशासन बराबर पृथक् राज्यके रूपमे चीफ कमिश्नर (मुख्य आयुक्त) द्वारा चलाया जाता रहा। १९५१ ई० मे इसका विलय भारतीय गणतत्रमे हो गया और अब यह मैसूर राज्यका एक जिला है। (**पी० एम० सुत्तन्ना कृत 'कुर्ग और कुर्गवासी'**)

कुर्नूल–पुराने मद्रास प्रान्तकी छोटी-सी रियासत, जिसका शासन नवाबके हाथमे था। लार्ड आकलैड (१८३६–४२ ई०) के शासनकालमे इस रियासतको ब्रिटिश भारतीय राज्यमे मिला लिया गया, क्योकि यह सदेह किया जाता था कि नवाब अग्रेजोके विरुद्ध षड्यत्र कर रहा है।

कुर्रम (अथवा कोट्टम)–चोल राज्यमे प्रशासनकी एक इकाई। इसके अतर्गत गाँवोका एक समूह होता था, जिसका स्थानीय प्रशासन महासभाकी सहायतासे चलाया जाता था। महासभाका वार्षिक चुनाव सम्पन्न करानेके लिए विस्तृत नियम थे। कुर्रम (अथवा कोट्टम) को राजाके अधीन स्थानीय स्वशासनके विस्तृत अधिकार प्राप्त थे। उसकी ओरसे स्थानीय कर लगाये जाते थे। उसका स्थानीय खजाना भी होता था। अपने क्षेत्रकी भूमिपर उसका पूरा नियत्रण रहता था। वह अपनी समितियाँ नियुक्त करती थी, जिनके द्वारा अपने क्षेत्रके जलाशयो और उद्यानोकी देखभाल करती थी। वह अपने क्षेत्रमे शाति और न्यायकी भी व्यवस्था करती थी।

कुली कुतुबशाह–एक तुर्क सरदार, जो बहमनी सुल्तान मुहम्मद तृतीय (दे०) (१४६३–८२ ई०) का नौकर था। सुल्तानके वजीर मुहम्मद गवाँ (दे०) की कृपादृष्टि होनेके कारण वह पदोन्नति करके बहमनी राज्यके पूर्वी अर्थात् गोलकुडाका हाकिम नियुक्त हो गया। १४८

अपने सरक्षक मुहम्मद गवाँका वध कर दिये जानेपर उसने बिदरके दरबारसे नाता तोड लिया और १५१८ ई०मे अपनेको गोलकुडाका सुल्तान घोषित कर दिया। उसने १५४३ ई० तक शासन किया। उस समय जब उसकी अवस्था नब्बे वर्षकी हो चुकी थी, उसके पुत्र जमशेदने उसकी हत्या कर दी। उसने कुतुबशाही वशकी स्थापना की, जिसने गोलकुडापर १६८७ ई० तक राज्य किया। १६८७ ई०मे औरगजेब (दे०)ने गोलकुडा जीत लिया और उसे मुगल साम्राज्यमे मिला लिया।

कुलीनतावाद–का प्रवेश बगालके ब्राह्मणोमे बगालके दूसरे सेन राजा, बल्लालसेन (लगभग ११५८–७९)ने किया। बादमे उसके पुत्र एव उत्तराधिकारी लक्ष्मणसेन (लगभग ११७९–१२०६ ई०)ने इसका विस्तार किया। इस प्रथाका मूल उद्देश्य स्पष्ट नही है, परन्तु बादके समयमे यह सामाजिक उत्पीडनका एक बहुत बडा कारण बन गया। इसके द्वारा विवाह-सम्बन्ध केवल उन्ही घरानोमे सीमित कर दिया गया, जिन्हे कुलीन माना जाता था। परिणाम-स्वरूप कुलीन ब्राह्मण घरानोमे वरके अभावमे बहुत-सी कन्याए अविवाहित रह जाती थी। फलत एक-एक कुलीन ब्राह्मणके साथ कई-कई कुलीन कन्याओका पल्ला बाँध देनेकी प्रथा चली, जिनके भरण-पोषणका कोई भार उसके ऊपर नही रहता था। इस प्रथासे बहुत-सी सामाजिक बुराइयाँ पैदा हो गयी और उन्नीसवी शताब्दीके अग्रेजी पढे-लिखे बगालियोने इस प्रथाका तीव्र विरोध किया। यद्यपि इधर हालके वर्षोमे यह प्रथा उतनी कठोर नही रह गयी है जितनी पहले थी, तथापि बगालके कुलीन हिन्दुओमे यह अब भी वर्तमान है।

कुलोत्तुङ्ग प्रथम–चोल राजा राजेन्द्र प्रथम (दे०) (१०१२-४४ ई०)की पुत्री अम्मङ्गदेवी और पूर्वी चालुक्य राजा राजराज नरेन्द्र प्रथम (१०२२–६३ ई०)का पुत्र। चोल राजा अधिराजेन्द्र (१०६७–७० ई०)की मृत्यु हो जानेपर वह सिहासनपर बैठा और इस प्रकार एक नये चालुक्य-चोल वशका सूत्रपात हुआ। उसने १०७० से ११२२ ई० तक राज्य किया। उसके वशने चोल राज्यपर १०७० ई० से लेकर १२७९ ई० मे उसकी समाप्ति तक राज्य किया। वह सुयोग्य शासक था। उसने कलिगको जीता और चोल राज्यमे मालगुजारीकी व्यवस्थाका व्यापक सशोधन किया। उसके पूर्ववर्ती चोल राजा अधिराजेन्द्रकी धार्मिक असहिष्णुताकी नीतिके कारण आचार्य रामानुज (दे०) चोल राज्यसे बाहर चले गये थे। कुलोत्तुङ्गके राज्यकालमे वे वापस लौट आये और चोल राजधानी श्रीरगममे रहने लगे।

कुलोत्तुङ्ग चोल द्वितीय–चालुक्य-चोल वशका तीसरा राजा। उसने ११३३ से ११५० ई० तक राज्य किया।

कुलोत्तुङ्ग चोल तृतीय–चालुक्य-चोल वशका अतिम राजा। उसने ११७८ से १२१८ ई० तक राज्य किया। उसने पाण्ड्य देशपर कई चढाइया की और कुछ समयतक उसे अपने अधीन रखा। कहा जाता है कि १२०८ ई० मे उसने वेङ्गि (दे०) पर भी आक्रमण किया। परतु १२१६ ई० मे उसे पाण्ड्य शक्तिसे परास्त होना पडा और पाण्ड्य राजा सुन्दरकी अधीनता स्वीकार करके ही वह अपनी गद्दी वापस पा सका। इसके बाद चालुक्य-चोल वशका पराभव हो गया।

कुल्लूक–एक धर्मशास्त्रज्ञ विद्वान्, जिनका जन्म बगालमे हुआ, परतु काशीमे रहते थे। उनका समय चौदहवी शताब्दीका मध्यकाल है। उन्होने मनुसहितापर (दे०) 'मन्वर्थमुक्तावली' नामक सस्कृत-टीका लिखी है, जिसका हिन्दू समाजपर बहुत व्यापक प्रभाव रहा है।

कुशीनगर–उत्तर प्रदेशके गोरखपुर जिलेमे स्थित आधुनिक कसिया। यहापर गौतम बुद्धने निर्वाण प्राप्त किया था।

कुषाण–युहारी कबीलेके लोग, जो यायावर जीवन व्यतीत करता था। बैक्ट्रियामे बस जानेके बाद इस कबीलेने यायावर जीवन त्याग दिया। ईसवी सन्से पूर्वकी पहली शताब्दीमे उसके भारतपर हमले शुरू हो गये। इस कबीलेकी कई शाखाए थी, जिनमे कुषाण भी थे। अतमे कुजुल कर कदफिसस (दे०) के नेतृत्वमे कुषाणोने अन्य चार शाखाओपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। कुजुल कर कदफिससने बादमे भारतमे कुषाण राजवशकी स्थापना की और भारतीय इतिहासमे वह कदफिसस प्रथम (दे०)के नामसे विख्यात हुआ। कुषाणोने भारतमे एक विशाल साम्राज्यका विस्तार किया और सभवत लगभग ४८ ई० से २२० ई० तक उसपर राज्य किया। भारतके कुषाण राजाओमे कदफिसस प्रथम, कदफिसस द्वितीय, कनिष्क, हुविष्क तथा वासुदेव सबसे महत्त्वपूर्ण है। सामान्य रीतिसे यह माना जाता है कि ७८ ई० से प्रचलित शक सवत् कुषाणोने चलाया।

कुसुमपुर–पाटलिपुत्र (दे०)का दूसरा नाम।

कूचबिहार–भारतके बगाल प्रातका एक नगर और जिला। यह तोरसा नदीके किनारे स्थित है और तिस्ता तथा सकोश नदियाँ ब्रह्मपुत्रमे मिलनेसे पहले इस जिलेसे होकर गुजरती है। इसका नाम कोच नामक कबायलियोके आधारपर पडा है, जिन्हे बादको, खासकर उनके राजाओको क्षत्रिय समझा जाने लगा। यह जिला कामरूप (आसाम)के प्राचीन

हिंदू शासकोंके राज्यका एक अंग था। भास्करवर्मा (लगभग ६००–६५० ई०)के कालमें यह राज्य करतोया तक फैला हुआ था। लेकिन सोलहवीं शताब्दीके आरंभमें वह कामरूपसे अलग हो गया और स्थानीय कोच लोगोंके मुखिया विश्वसिंह द्वारा स्थापित नये राज्यकी राजधानी कूचविहार बन गयी। इस वंशका सबसे बडा राजा विश्वसिंहका पुत्र और उसका उत्तराधिकारी नरनारायण (१५४०–८४ ई०) हुआ। इसने आसामका काफी बडा भूभाग अपने अधीन कर लिया और आधुनिक रंगपुर जिलेके दक्षिणी अंचल तक अपनी शक्तिका विस्तार किया। वह हिन्दुत्व, कला और साहित्यका बहुत बडा पोषक था। उसने गौहाटीके निकट कामाख्या देवीके मंदिरका फिरसे निर्माण कराया। यह मंदिर काला पहाड नामक मुस्लिम हमलावर द्वारा ध्वस्त कर दिया गया था। वह आसाममें वैष्णव धर्मके महान् संस्थापक शंकरदेव (दे०)का संरक्षक था।

उसकी मृत्युके बाद उसके पुत्र और भतीजेमें उत्तराधिकारका युद्ध छिड गया। उसके पुत्रने अपनेको बचानेके लिए मुगल बादशाह अकबरकी अधीनता स्वीकार कर ली। उसका राज्य काफी अरसे तक मुगलोंके अधीन बना रहा, किंतु बादको १७७२ ई० में उसपर भोटोंने हमला कर दिया। तत्कालीन राजाने बंगालके गवर्नर वारेन हेस्टिंग्ससे सहायता मांगी। वारेन हेस्टिंग्सने कम्पनीके सैनिकोंकी एक टुकडी मददके लिए भेज दी जिसने भोटोंको खदेड़कर उन्हें संधि करनेको मजबूर कर दिया। कम्पनी और कूचविहारके राजाके बीच एक संधि हुई, जिसके अधीन राजाने ईस्ट इंडिया कम्पनीका संरक्षण स्वीकार कर लिया और इसके बदलेमें वह कम्पनीको वार्षिक राजस्व देनेके लिए राजी हो गया। कूचविहार १९३८ ई० तक बंगालके गवर्नरके शासनान्तर्गत रहा, किन्तु इसके बाद इसका नियंत्रण ईस्टर्न स्टेट्स एजेन्सीके सुपुर्द कर दिया गया। १९५० ई० में इसका विलय भारतीय गणतंत्रमें हुआ और यह पश्चिमी बंगालका एक जिला बन गया। **(अमानुल्लाह कृत 'कूचविहारका इतिहास')**

कूचा अथवा कुची—तुर्किस्तानका एक नगर। ईसवी सन्‌की प्रारम्भिक शताब्दियोंमें यह भारतीय संस्कृति, सभ्यता तथा बौद्ध धर्मका महान् केन्द्र था। प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु कुमारजीव (दे०)को इसी नगरसे बन्दी बनाकर चीन ले जाया गया था, जहां उसने बौद्ध धर्मके प्रचार-प्रसारमें अपना जीवन लगा दिया।

कूट, सर आयर (१७२६–१७८३)—प्रथम ब्रिटिश रेजीमेंटके साथ कैप्टनके रूपमें भारत आया। यह रेजीमेंट (३९वीं) १७५४ ई० में भारत भेजी गयी थी। कैप्टन कूट १७५६ ई० में क्लाइवके साथ बंगाल गया और वह कलकत्ताकी विजय और पलासीके युद्ध दोनों ही मौकोंपर मौजूद था। पलासी युद्धके बाद पराजित फ्रांसीसी सेनाको उसने ४०० मील तक खदेडा, जिसके पुरस्कारस्वरूप वह लेफ्टीनेंट-कर्नल बना दिया गया। इसके बाद उसे मद्रास भेजा गया, जहाँ पहले उसने उत्तरी सरकारपर अधिकार किया जो कई वर्षोंसे फ्रांसीसी आधिपत्यमें था और बादको २२ जनवरी १७६० ई० को विन्दवासके निर्णायक युद्धमें फ्रांसीसियोंको करारी मात देनेवाली ब्रिटिश सेनाका संचालन किया। १७६१ ई० में पांडिचेरीके अधिग्रहणमें भी उसने हिस्सा लिया। १७७९ ई० में क्लेवरिंगकी मृत्युके बाद वह गवर्नर-जनरलकी परिषद्‌का सदस्य बनाया गया। १७८० ई० में हैदरअलीके विरुद्ध अंग्रेजी फौजका नेतृत्व करनेके लिए वह फिर मद्रास भेजा गया। इस बार उसने पोर्टोनोवोके युद्ध (जून १७८१)में हैदरअलीको हराया तो सही, किंतु उसकी यह विजय विन्दवास युद्धके विजेताके अनुरूप न थी। बादको हैदरअलीके साथ पालीलुरमें एक अन्य युद्धमें कूटको अपनी एक टांगसे हाथ धोना पडा। इस दुर्घटनाके बाद कूटका पुराना साहस और पराक्रम लुप्त हो गया और १७८२ से १७८३ ई० में अपनी मृत्युके समय तक उसने अपनी पुरानी ख्यातिके अनुरूप कोई कार्य नहीं किया। **(एस० सी० विली कृत 'लाइफ आफ सर आयर कूट')**

कूणिक—अजातशत्रु (दे०)को इस नामसे भी सम्बोधित किया जाता था।

कूना (जिसे **सुन्दर नेडुमरन** भी कहते हैं)—एक पाडय शासक, जो सातवीं शताब्दी ई० में राज्य करता था। वह पहले जैनधर्मानुयायी था, बादमें शैव हो गया। शैव होनेके बाद उसने जैनोंपर भारी अत्याचार किये। कहा जाता है कि उसने ८००० जैनोंको सूलीपर चढवा दिया था।

कृत्तिवास—एक प्रसिद्ध बँगला कवि, जिसका जन्म १३४६ ई० में हुआ। उसने रामायणका संस्कृत भाषामें बँगलामें अनुवाद किया है। उसकी रामायणका बंगालमें घर-घरमें प्रचार है।

कृष्ण—विष्णुके अवतारके रूपमें इनकी पूजा सारे भारतमें होती है। महाभारत और भागवतपुराणमें इनका वर्णन मिलता है।

कृष्ण—सातवाहन (दे०) वंशका दूसरा राजा। उसका सम्भाव्य काल २३५ ई० पू० है। उसने सातवाहन राज्यका विस्तार पश्चिममें नासिक तक किया था।

कृष्ण प्रथम—द्वितीय राष्ट्रकूट (दे०) राजा (७६८—७२ ई०)। उसने चालुक्यो (दे०) पर राष्ट्रकूटोका प्रभुत्व स्थापित किया और एलोराके कैलास मदिर (दे०)का निर्माण कराया, जिसे प्राचीन भारतमे वास्तुकलाकी सबसे आश्चर्यजनक कृति माना जाता है।

कृष्ण द्वितीय—बादका एक राष्ट्रकूट राजा, जिसने ८७७—९१३ ई० तक राज्य किया।

कृष्ण तृतीय—राष्ट्रकूट वशका अतिम महान् शासक, जिसने ९३९—६८ ई० तक राज्य किया। उसके बाद तीन और नाममात्रके राजा हुए।

कृष्णदेव राय—विजयनगरका १५०९ से १५२९ ई० तक राजा। विजयनगरके शासकोमे वह सबसे महान् था। उसने बीदरके सुल्तानके हमलेको विफल कर दिया, बीजापुरके सुल्तान यूसुफ आदिलशाहको युद्धमे परास्त किया तथा मार डाला, बादमे बीजापुरसे रायचूरका किला वापस ले लिया, जिसके लिए दोनो राज्योमे लम्बे अर्सेसे लडाई चल रही थी। उसने अस्थायी रीतिसे बीजापुरपर भी अधिकार कर लिया और कुलवर्गका किला नष्ट कर दिया। उसने उडीसाके राजा प्रतापरुद्रको भी हराया और अपना राज्य कृष्णा नदी तक और बादमे तेलगण होकर उडीसामे गोदावरी तक विस्तृत किया। दक्षिणमे उसने अपना राज्य मैसूरमे श्रीरगपट्टनम (श्रीरगपट्टम) तक विस्तृत किया। इस प्रकार उसके राज्यकालमे विजयनगर साम्राज्यके अतर्गत सारा मद्रास प्रात, उत्तरमे उडीसाका एक बडा भाग तथा सारा मैसूर राज्य आ गया था।

कृष्णदेव राय बडा वीर तथा पराक्रमी राजा था। उसके सम्पर्कमे आनेवाले सभी व्यक्ति उससे बहुत अधिक प्रभावित थे। इनमे नूनिज (दे०) तथा पीस (दे०) जैसे विदेशी यात्री भी थे, जो उसके राज्यमे आये थे। कृष्णदेव राय स्वय भी कवि एव लेखक होनेके कारण विद्वानोका बडा आदर करता था। उसने मदिरो तथा विद्वान् ब्राह्मणोको प्रचुर मात्रामे दान दिया। प्रसिद्ध तेलुगु कवि अल्लसानि पेछन्न उसका राजकवि था।

कृष्णराजा—मैसूरके सर चमो राजेन्द्रका पुत्र और उत्तराधिकारी तथा उदार शासक। १८९६ ई० मे वह गद्दीपर बैठा। उसने राज्यमे कई प्रशासनिक सुधार किये, जिसके फलस्वरूप मैसूर ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यकी एक उन्नत रियासत बन गयी।

कृष्णा—दक्षिण भारतकी एक नदी। यह पश्चिमी घाटसे निकलकर पूर्वकी दिशामे बहती है और आन्ध्र प्रदेशमे गुन्टूरके निकट बगालकी खाडीमे गिरती है। तुगभद्रा इसकी एक शाखा है और रायचूरके निकट इसमे मिलती है। दोनो नदियोके बीचका दोआब हथियानेके लिए अनेक वर्षो तक विजयनगर साम्राज्य और बहमनी राज्यमे सघर्ष होता रहा। इसके तटपर अमरावती स्थित है, जिसकी वास्तुकला तथा मूर्तिकलाकी अपनी विशिष्ट शैली थी, जो गाधार शैलीसे प्रतिस्पर्धा करती थी। इसकी घाटी अत्यत उर्वर है, जिससे आबादी अत्यत सघन हो गयी है।

केनेडी, चार्ल्स (१७८४—१८४६ ई०)—शिमलाके पर्वतीय राज्योमे, जो १८१६ ई० मे ब्रिटिश शासनमे आये, ब्रिटिश भारतीय सरकारका एजेंट। उसने सबसे पहले पता लगाया कि शिमलाका जलवायु बडा स्वास्थ्यप्रद है और यूरोपीय देशोसे मिलता-जुलता है। उसने १८२२ ई० मे सबसे पहले शिमलामे अपना मकान बनवाया। इस प्रकार शिमला क्रमिक रीतिसे गर्मियोमे निवासके लिए लोकप्रिय पर्वतीय स्थान बन गया। बादमे उसे भारत सरकारकी ग्रीष्मकालीन राजधानी बना दिया गया। केनेडी कई भाषाओका अच्छा जानकार था और उसने अग्रेजी भाषामे 'एन्शियन्ट हिन्दू माइथालोजी' (प्राचीन हिन्दू मिथक) तथा 'वेदान्त फिलासोफी आफ हिन्दूज' (हिन्दुओका वेदान्त दर्शन) शीर्षकसे दो रोचक पुस्तके लिखी है।

केरलपुत्र—अशोकके द्वितीय शिलालेखके अनुसार उसके साम्राज्यके दक्षिणी सीमात प्रदेशके निवासी। उनके देशमे आधुनिक ट्रावणकोर क्षेत्र सम्मिलित था।

केरी, विलियम—मूल पेशेसे मोची, बादमे बैपटिस्ट मिशनरी बन गया और १७९३ ई० मे कलकत्ता आकर अन्य बैपटिस्ट मिशनरियोके साथ श्रीरामपुरमे बस गया। उसने बगालके लोगोके मध्य ईसाई धर्मका प्रचार करनेमे अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। उसने बगला सीखी और अपने मुशी रामराम बसुकी सहायतासे बाइबिलका बगलामे अनुवाद किया। बगला गद्यमे अन्य पुस्तकोकी रचना की, जिनमे सर्वाधिक प्रसिद्ध कथोपकथन है। उसने बगलाके दो पत्र 'दिग्दर्शन' तथा 'समाचार दर्पण'के प्रकाशनमे सहायता भी दी थी। १८०१ ई० मे केरी कलकत्ता स्थित फोर्ट विलियम कालेजमे सस्कृत और बगलाका प्राध्यापक हो गया और १८३१ ई० मे अपनी मृत्यु तक उस पदपर बना रहा। अपने इस पदपर रहकर उसने बगलामे इतिहास, दर्शन, कथाओ एव लोककथाओकी अनेक पुस्तकोकी रचनाको प्रोत्साहित किया। शिक्षाविद्के रूपमे केरीने भारतीयोको पश्चिमी विज्ञान और अग्रेजी साहित्यकी शिक्षा

देनेका समर्थन किया और उसके विचारोंने भारतमे पश्चिमी शिक्षाके प्रसारके पक्षमे लार्ड विलियम वेन्टिकके निर्णयको प्रभावित किया। केरी प्रमुख समाज-सुधारक भी था और उसके ही कहनेमे १८०२ ई० मे लार्ड वेलेस्लीने गगा और समुद्रके सगम (गगासागर) पर शिशुओकी बलि देनेकी प्रथापर रोक लगा दी थी। सती प्रथाकी भी केरीने जोरदार शब्दोमे भर्त्सना की थी। उसने इस सम्बन्धमे हिन्दुओमे भी लोकमत इतना अनुकूल बना लिया कि १८२९ ई० मे लार्ड विलियम वेन्टिकने इसपर प्रतिबन्ध लगा दिया। शिक्षाविद् और समाज-सुधारकके रूपमे भारतीयो द्वारा केरीका आज भी स्मरण किया जाता है। **(जार्ज स्मिथ कृत 'लाइफ आफ विलियम केरी')**

केलॉड, कर्नल जान–बगालमे कम्पनीकी सेनाका १७६० ई० मे कमाडर। उसने नवाब मीर जाफरके स्थानपर मीर कासिमको नवाब बनानेके लिए वानसिटार्टके षड्यन्त्रमे भाग लिया। वानसिटार्टके आदेशोपर वह सेनाके साथ मुर्शिदाबाद जा धमका और नवाबके महलको घेर लिया। इस प्रकार उसने मीर जाफरको गद्दी छोडनेके लिए बाध्य कर दिया। उसके बाद मीर कासिमको बगालका नवाब घोषित कर दिया गया।

केशवदेव मदिर–मथुरामे स्थित। जहागीर (१६०५–२७ ई०)के राज्यकालमे राजा वीरसिंह बुदेला (दे०)ने पहलेसे तोडे गये इस मन्दिरको फिरसे बनवाया था। १६७० ई० मे औरगजेबके हुक्मसे इस भव्य मदिरको पुन तोड डाला गया और उसी स्थानपर एक मसजिद बनायी गयी। मदिरकी रत्नजटित मूर्तियोको उठाकर आगरा ले आया गया, जहा उन्हे जहानाराकी मसजिदकी सीढियोके नीचे चिन दिया गया।

कैकोबाद–सुल्तान बलबन (दे०)का पोता और उसके सबसे बडे बेटे बुगरा खाका लडका था। १२८७ ई० मे सुल्तान बलबनकी मृत्यु हो जाने और बुगरा खा द्वारा सल्तनतका भार सभालनेसे इनकार कर देनेपर, कैकोबाद, जो सत्रह या अट्ठारह वर्षका तरुण था, दिल्लीका सुल्तान बना। परतु वह सुरा और सुन्दरीमे इतना आसक्त हो गया कि उसने अपना स्वास्थ्य चौपट कर लिया और वह शासनका सचालन नही कर सका। १२९० ई० मे वह अपने ही महलके अदर मार डाला गया। उसकी मृत्युसे दिल्लीके सुल्तानोमे गुलाम वशका अत हो गया।

उसके स्थानपर १२९० ई० मे जलालुद्दीन खिलजी (दे०) सुल्तान बना।

कैक्टस लाइन (नागफनी रेखा)–भारतमे ब्रिटिश राजके प्रारम्भिक कालमे एक सूबेसे दूसरे सूबेमे बिना चुगी अदा किये मालकी रफ्तनी, विशेषकर देशी राज्योमे नमककी तस्करी रोकनेके लिए २५०० मीलकी लम्बाईमे स्थापित की गयी थी। इसकी देखरेख करनेके लिए १२००० आदमियोकी जरूरत पडती थी। भारतमे मुक्त व्यापारकी प्रगति होनेपर एक हजार मीलकी नागफनीकी झाडी लार्ड नार्थब्रुकके कार्यकालमे और शेष लार्ड लिटन (१८७६-८० ई०)के कार्यकालमे नष्ट कर दी गयी।

कैथलकी लड़ाई–१२४० ई० मे हुई, जिसमे सुल्ताना रजिया (दे०) और उसका पति अल्तूनिया उसके भाई बहरामके हाथो पराजित हुए और बदी बना लिये गये। लडाईके दूसरे दिन दोनोको मार डाला गया और बहराम सुल्तान बन गया।

कैंनिंग, कैप्टन–ब्रिटिश भारत सरकार द्वारा बर्माके राजा (१७७९–१८१९ ई०) बोदाँपायाके दरबारमे १८०३, १८०९ तथा १८११ ई० मे दूत बनाकर भेजा गया। पहले भेजे गये दूतोके सदृश कैंनिंगके साथ भी अच्छा व्यवहार नही हुआ और उसे भारत तथा बर्माकी सीमाके सम्बन्धमे समझौता करानेमे सफलता नही मिली।

कैंनिंग, वाईकाउण्ट (अर्ल)–भारतका १८५६ से १८६२ ई० तक गवर्नर-जनरल तथा प्रथम वाइसराय। उसके शासनके आरम्भिक कालमे सिपाही-विद्रोह (१८५७-५८) सबसे प्रमुख घटना थी, जिसके कारण भारतमे ब्रिटिश राज खतरेमे पड गया। अपनी सगठन-शक्ति तथा भारतकी अधिकाश जनताके निष्क्रिय रहनेके कारण कैंनिंग विद्रोहका दमन करनेमे सफल हुआ। विद्रोहके दमनके बाद पार्लियामेण्टने भारतका शासन अच्छे ढगसे चलानेके लिए एक कानून बनाया, जिसके अतर्गत भारतका प्रशासन ईस्ट इडिया कम्पनीके हाथोसे निकालकर ब्रिटिश सम्राटके अधीन कर दिया गया और गवर्नर-जनरलको वाइसराय (सम्राटका प्रतिनिधि) बना दिया गया। इस कानूनके बन जानेके बाद महारानी विक्टोरियाका घोषणा-पत्र (दे०) प्रकाशित हुआ और इस प्रकार लार्ड कैंनिंगने प्रथम वाइसरायके रूपमे भारतीय प्रशासनमे नया अध्याय प्रारम्भ किया। लार्ड कैंनिंगने भारतीयोसे प्रतिशोध लेनेकी अग्रेजोकी प्रवृत्तिपर अकुश लगानेका प्रयास किया, जिसके फलस्वरूप उन्होने 'क्षमाशील कैंनिंग' कहकर उसका उपहास उडाया। कलकत्ता स्थित अग्रेज व्यापारियोने तो महारानीको आवेदन-पत्र देकर लार्ड कैंनिंगके वापस बुला लेने तककी माग की, किन्तु उसे अस्वीकार कर दिया गया और लार्ड कैंनिंग भारतमे वाइसराय बना रहा। उसने भारतकी सेनाको पुनर्गठित किया और आयकर,

दस प्रतिशतका एकसमान सीमाशुल्क तथा नोटोका प्रचलन कर डावाडोल आर्थिक स्थितिको पुन स्थिर बनाया। उसने १८५६ ई० मे लगान कानून पासकर स्थायी बदोवस्त-के अन्तर्गत असामी काश्तकारोको सुरक्षा प्रदान की। १८६० ई० मे भारतीय दड विधान और १८६१ ई० मे जाब्ता फौजदारी बना। १८६२ ई० मे एक कानून पास कर पुरानी अदालतोके स्थानपर कलकत्ता, मद्रास और बम्बई हाईकोर्ट कायम किये गये। गोरे नील-उत्पादकोके विरुद्ध बगाल तथा बिहारके असामियोकी शिकायतोकी सुनवायी-के लिए एक आयोगकी नियुक्ति की गयी। इस रिपोर्टके आधारपर नील-उत्पादकोको असामियोपर अत्याचार करनेसे काफी हदतक रोक दिया गया। लार्ड कैनिगने १८५७ ई० मे कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बईमे विश्व-विद्यालयोकी स्थापना करके भारतमे नवजागरणके युगका श्रीगणेश किया। उसके प्रशासनका अन्तिम महत्त्वपूर्ण कार्य १८६१ ई० मे इडियन कौसिल एक्ट (दे०) का पास होना था, जिसके द्वारा भारतीय प्रशासन तत्रमे महत्त्व-पूर्ण सुधार हुए और भारतीय विधान मडलोमे भारतीयोको प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ।

कैबिनेट मिशन–एटली (दे०) मन्त्रिमडल द्वारा १९४६ ई० मे भारत भेजा गया। लार्ड पैथिक-लारेन्स प्रतिनिधिमडल-के अध्यक्ष तथा सर स्टेफर्ड क्रिप्स और श्री ए० वी० अलेक्जेण्डर उसके सदस्य थे। प्रतिनिधिमडलने, जो अप्रैलमे भारत आ गया था, भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस तथा मुस्लिम लीगमे सवैधानिक प्रश्नोपर पहले समझौता करानेका प्रयास किया। लेकिन समझौता-प्रयासोके विफल होनेपर प्रतिनिधिमडलने भारतकी सवैधानिक प्रगतिके लिए स्वय अपने प्रस्ताव प्रस्तुत किये। वे प्रस्ताव थे (१) ब्रिटिश भारतीय प्रातोके सघकी स्थापना, जिसे प्रतिरक्षा, विदेशी मामलो तथा सचार व्यवस्थाके नियत्रणका अधिकार होगा, (२) समझौता-वार्ताके बाद भारतीय सघमे देशी रियासतो-का प्रवेश, (३) प्रातो द्वारा अपने इच्छानुसार अपने अधीनस्थ सघोका निर्माण, जिन्हे यह निर्णय करनेका अधिकार होगा कि सघीय विषयोके अतिरिक्त अन्य कौन-कौन विषय उनके अधीन रहेगे, (४) उपर्युक्त तीन प्राविधानोके अनुसार सविधान सभाका गठन, जिसमे भारतका सर्वमान्य सविधान बनानेके लिए सभी राजनीतिक पार्टियोको प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा, (५) इस बीच, भारतीय प्रशासनको चलानेके लिए अतरिम राष्ट्रीय सरकारका गठन। अतरिम सरकारमे विभिन्न सम्प्रदायोके बीच सीटोके बटवारेके प्रश्नपर मतभेद उत्पन्न हो जानेके कारण कैबिनेट मिशनके प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिये गये।

कैब्राल, अन्तानियो–गोवास्थित पुर्तगाली वाइसरायके दूतके रूपमे १५७३ ई० मे मुगलो तथा पुर्तगालियोके बीच सधिकी शर्तोपर वार्ता करनेके लिए बादशाह अकबरके दरबारमे पहुँचा। कैब्राल अकबरके दरबारमे दूसरी बार १५७८ ई० मे आया था। उस समय बादशाहने उससे अपने दरबारमे ईसाई धर्मके विद्वानोको भिजवानेके लिए कहा, जिनसे वह ईसाई धर्मकी विशेषताओके बारेमे जान-कारी प्राप्त कर सके। उसकी प्रार्थनापर गोवास्थित पुर्तगाली वाइसरायने फादर अकविवा और फादर मोनसेरेत-को अकबरके दरबारमे भेजा। अकबरने उनका स्वागत किया और उन्होने ईसाई धर्मके सम्बन्धमे उसे सही जानकारी करायी।

कैब्राल, पेड्रो अलवारिस–दूसरा पुर्तगाली एडमिरल, जो वास्कोडिगामाकी रवानगीके ठीक एक वर्ष बाद एक बडे पुर्तगाली जहाजी बेडेके साथ भारत आया। उसने कालीकटमे व्यापारिक कोठी अथवा कारखाना कायम किया। कन्नानोर और कोचीनसे उसे काफी तिजारती माल मिला। वह इस सफल यात्राके उपरान्त पुर्तगाल वापस लौट गया।

कैब्राल, फादर जान–एक पुर्तगाली जेसुइट पादरी। १६३२ ई० मे जब बादशाह शाहजहाँने हुगलीस्थित पुर्तगाली बस्तीपर आक्रमण करके अधिकार कर लिया, तब फादर कैब्राल बगालमे था। उसने एक प्रत्यक्षदर्शीके रूपमे १६३३ ई० मे इस घटनाका वर्णन किया था।

कैमक, जनरल–प्रथम मराठा-युद्ध (१७७५–८२ ई०)मे अग्रेज सेनाका कुशल नायक। उसने १६ फरवरी, १७८१ ई० को सिपरीमे शिन्देकी सेनाको हराया।

कैम्पबेल, जान–कम्पनीकी सेवामे नियुक्त एक असैनिक अधिकारी, जो १८४७ तथा १८५४ई० के बीच उडीसाका प्रशासक था। भारतके गवर्नर-जनरल लार्ड हार्डिञ्ज प्रथमके निर्देशपर उसने उडीसामे प्रचलित नरबलिकी प्रथाका उन्मूलन करनेमे प्रमुख भूमिका अदा की।

कैम्पबेल, सर आर्किबाल्ड–प्रथम बर्मी युद्ध (१८२४–२६ ई०)मे चढाईके लिए भेजी गयी ब्रिटिश सेनाका प्रधान सेनापति। उसने बर्मी अभियानको सगठित तथा सचालित करनेमे अनेक गलतियाँ की, जिसके कारण युद्ध निरर्थक ही लम्बा चला और सैनिकोको ऐसी अनेक कठिनाइयोका सामना करना पडा जिनसे बचा जा सकता था। इन गलतियोके बावजूद कैम्पबेलने रगूनपर मई, १८२४ ई० मे कब्जा कर लिया और बर्मी सेनापति बधुलकी सेनाको पराजित कर दिया। इसके बाद ही सेनापति बधुल

लडाईमे मारा गया। अंग्रेज सेना प्रोमपर कब्जा कर यादवू तक वढ गयी जो वर्मी राजधानीसे ६० मीलकी दूरीपर था। इसके परिणामस्वरूप वर्माके राजाको कैम्पवेलकी शर्तोंके अनुसार यदक (१८२६)की सधि करनी पडी।

कैम्पवेल, सर कालिन (वादमे लार्ड क्लाइड) (१७९२–१८६३ ई०)–यूरोपमे स्पेन प्रायद्वीप तथा नेपोलियनके विरुद्ध युद्धमे तथा १८४२ ई० मे चीन-युद्धमे भाग लेकर ख्याति प्राप्त की। १८४६ ई० मे ब्रिटिश भारतीय सेनामे शामिल हुआ। दूसरे सिख-युद्ध (दे०)मे ब्रिगेडियरकी हेसियतमे लडा और नामवरी पायी। इसके वाद इग्लैड वापस लौट गया। प्रथम स्वाधीनता-सग्रामके समय (जिसे अग्रेज इतिहासकारो 'सिपाही-विद्रोह' लिखा है) एक दिनकी नोटिसपर ब्रिटिश सेनाका प्रधान सेनापति नियुक्त होकर जुलाई १८५६ ई० मे भारत पहुचा।

सिपाही-विद्रोह (१८५७–५८ ई०) को दवानेमे उसका प्रमुख हाथ था। उसने विद्रोहियोंके विरुद्ध अभियानकी सुविचारित योजना तैयार की, नेपालके जग वहादुर राणाकी सहायता प्राप्त की, नवम्वर १८५७ ई० के मध्य लखनऊको मुक्त किया, विद्रोही ग्वालियर सेनामे कानपुरको दिसम्वरमे फिर ले लिया, अवध तथा रुहेलखडके विद्रोहका वेरहमीसे दमन किया और रानी झासी तथा तात्या टोपेका तव तक वरावर पीछा किया, जव तक रानी लडाईमे मारी नही गयी और तात्याको वन्दी नही वना लिया गया। तात्याको वादमे फासीपर चढा दिया गया। इस प्रकार कैम्पवेलने गदरको दवाने और भारतमे ब्रिटिश राजको विजयी वनानेमे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

उसे वादमे जनरल वना दिया गया और 'लार्ड'की पदवी प्रदान की गयी। १८६३ ई० मे मृत्यु होनेपर उसे वेस्टमिनिस्टर एवेमे दफनाया गया।

कैलास मन्दिर–एलोरा, आन्ध्र प्रदेशमे है। वहाँ चट्टानको काटकर विरचित यह मन्दिर राष्ट्रकूट राजा कृष्ण प्रथम (लगभग ७६० ई० मे राज्यारोहण)ने वनवाया था। यह सारे ससारमे वास्तुकलाकी सवसे आश्चर्यजनक कृति है। यह समूचा मन्दिर पहाडीके एक भागको काटकर वनाया गया है और इसका अलकरण अद्वितीय है। पत्थरपर इतनी सुदर पालिश की गयी है कि आज भी जो लोग मन्दिर देखनेके लिए जाते है, उनका प्रतिविंव उसमे स्पष्ट दिखाई पडता है।

कोकण–एक सामुद्रिक पट्टी, जो उत्तरमे दमनसे लेकर दक्षिणमे कनारा तक तथा पूर्वमे पश्चिमी घाटसे लेकर पश्चिममे अरव सागरके तट तक फैली हुई है। इस क्षेत्रमे तूफानके साथ वर्षा वहुत होती है। समुद्री किनारा काफी ऊँचा-नीचा और वीहड है। इसके फलस्वरूप समुद्री डाकुओंके लिए कोकणके तटपर समुद्री डकैती डालना सरल होता था। १८१२ ई० मे यह समुद्री डकैती समाप्त कर दी गयी।

कोटी, निकोलो डी–एक इटालवी यात्री, जो पन्द्रहवी शताव्दीके प्रारभमे भारत आया। १४२० ई० मे वह देवराय द्वितीय (दे०)के शासनके समय विजयनगरमे था। उसने इस नगरका रोचक वर्णन किया है। उसका अनुमान है कि नगर ६० मीलके घायरेमे फैला था, उसकी किलेवदी वहुत मजवूत और आवादी घनी थी तथा उसमे युद्धकलामे प्रवीण ९० हजार लोग निवास करते थे। राजाकी कई रानियाँ थी तथा रानियोमे भी सती प्रथा (दे०)प्रचलित थी।

कोडप्पल्ली–विजयनगर साम्राज्यके अतर्गत एक दुर्ग, जिसपर वहमनी सुल्तान मुहम्मदशाह तृतीयने १४८१ ई० मे अधिकार कर लिया। उसने दुर्गके भीतर एक मन्दिरमे पूजा करनेवाले कुछ ब्राह्मण पुरोहितोको अपने हाथसे मार डाला और इस प्रकार 'गाजी'की उपाधि प्राप्त की, जिसपर वह वहुत गर्व करता था।

कोचीन–मलावार समुद्र तटपर स्थित। १६वी शताव्दीके आरम्भमे यह हिन्दू राज्य था लेकिन कालीकटके पडोसी हिन्दू राज्यसे इसके सम्वन्ध अमैत्रीपूर्ण चल रहे थे। इसने पुर्तगाली यात्री कैब्रालको आश्रय दिया और पुर्तगालियोंके साथ व्यापारिक सम्वन्ध स्थापित किये। पुर्तगालियोने कोचीनमे अपनी एक कोठी स्थापित की। कुछ ही समयमे पुर्तगालियोंने हिंदू राजाको शक्तिहीन वना दिया। १६६२ ई० मे डच लोगोंने पुर्तगालियोको कोचीनसे खदेड भगाया। अठारहवी शताव्दीमे कोचीनका राजा मैसूरके हैदरअली (दे०)का सामत वन गया। किन्तु टीपू सुलतान (दे०)की पराजयके वाद यह ब्रिटिश आधिपत्यमे आ गया और अग्रेजोंने इसे भारतमे अपनी एक सरक्षित रियासत वना लिया।

कोटाकी लड़ाई–कर्नल मौन्सनके नेतृत्वमे ईस्ट इडिया कम्पनीकी सेनाओ और होल्करकी सेनाओके वीच १८०४ई० मे हुई। इस लडाईमे कर्नल मौन्सन हार गया और आगरेकी तरफ भागा। लार्ड वेलेस्लीके प्रशासनकालमे कम्पनीने अनेक लडाइयाँ जीती, परन्तु इस लडाईमे उसे हार खानी पडी।

कोटा, नगर तथा राज्य–दिल्लीसे २५० मीलकी दूरीपर, राजपूतानामे चम्वलके दाहिने तटपर स्थित। इस राज्यकी स्थापना १६२५ ई० मे वादशाह शाहजहांने की। शाहजहां-

ने गद्दीपर बैठनेसे पूर्व जब अपने पिता जहाँगीरके विरुद्ध विद्रोह किया था, तब बूंदीके छोटे राजकुमारने उसकी मदद की थी। इसके पुरस्कारमे शाहजहाँने उसे कोटा दे दिया। मार्च १९४८ ई० मे कोटा रियासतका विलयन राजस्थान सघमे कर दिया गया।

कोड़ा जहानाबाद–इलाहाबाद जिलेके निकट। ईस्ट इडिया कम्पनीने बक्सरकी लडाई (१७६४ ई०)के बाद इसे अवधके नवाबसे ले लिया और १७६५ ई० मे इलाहाबाद जिलेके साथ बादशाह शाह आलमको दे दिया। बादशाहने बगालकी दीवानी कम्पनीको सौप दी और कम्पनीने इसके बदलेमे बादशाहको प्रतिवर्ष २६ लाख रुपया खिराज देना स्वीकार कर लिया। इसके बाद ही शाह आलमने कोडा और इलाहाबाद जिले मराठोको दे दिये। बादमे उनसे ये जिले छीन लिये गये और इनको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमे मिला दिया गया।

कोप्पम्की लड़ाई–कल्याणीके चालुक्य राजा सोमेश्वर (दे०) तथा चोल राजा राजाधिराजके बीच ११५२ अथवा ११५३ ई० मे हुई। इस लडाईमे चोल राजा हार गया और मारा गया। चालुक्य और चोल राजाओमे आये दिन होनेवाली लडाइयोमे यह मुख्य लडाई थी।

कोमारोफ–एक रूसी जनरल। १८८५ ई० मे उसने अफगानोको मर्वसे सौ मील दक्षिण पजदेहमे अपनी चौकी हटानेपर मजबूर कर दिया, जिससे एक सकटपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गयी। रूसका कहना था कि १८८४ ई० मे मर्वपर उसका अधिकार हो जानेके बाद पजदेह उसके इलाकेमें आ गया है, परन्तु ब्रिटिश सरकार उसे अफगानिस्तानका इलाका मानती थी और उसपर रूसी अधिकारको अफगानिस्तानकी क्षेत्रीय अखडताके लिए खतरा समझती थी। इस प्रकार कोमारोफकी काररवाईके फलस्वरूप पजदेहकी घटना (दे०) घटित हुई।

कोयम्बटूर जिला–टीपू सुलतान (दे०)के शासनकालमे मैसूर राज्यका एक भाग। अतिम मैसूर-युद्धमे उसकी पराजय और मृत्युके बाद १७९९ ई० मे कोयम्बटूर भारतीय ब्रिटिश साम्राज्यमे मिला लिया गया।

कोरेगांवकी लडाई–१८१८ ई० मे तीसरे मराठा-युद्धके दौरान पेशवा बाजीराव द्वितीय और अग्रेजोके बीच हुई। इस लडाईमे पेशवा हार गया और अतमे उसने सर जान मैलकमके सामने आत्मसमर्पण कर दिया।

कोर्कै–ईसवी सन्‌की प्रारम्भिक शताब्दियोमे तिन्नैवेल्ली तटपर एक प्रमुख बदरगाह। मोतियोके व्यापारका यह मुख्य स्थान था। समुद्रतटमे परिवर्तन हो जानेसे दीर्घकालसे यह स्थान चारो ओर स्थलसे घिर गया है। यहाँपर अनेक जैन मदिर हैं।

कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स–देखिये, 'कोर्ट आफ प्रोप्राइटर्स'।

कोर्ट आफ प्रोप्राइटर्स–मे ईस्ट इडिया कम्पनीके शेयर होल्डर होते थे। वे प्रतिवर्ष चौबीस निदेशको (डाइरेक्टरो)को चुनते थे जो कम्पनीके कार्यकलापोका प्रबन्ध करते थे। शुरूमे कोर्ट आफ प्रोप्राइटर्सको कोर्ट आफ डायरेक्टर्सके कार्योका निरीक्षण करनेका अधिकार था और उसकी बैठके हगामी हुआ करती थी। उसकी सारी कार्यवाही सिर्फ हानि-लाभकी दृष्टिसे सचालित होती थी। प्रतिद्वन्द्वी गुट वार्षिक चुनावोके समय डाइरेक्टरोको बनाते, हटाते और अपने वोट बढानेके लिए शेयरोको खरीदते व बाँटते थे। इससे भ्रष्टाचार खूब पनपा। फलत रेग्यूलेटिंग ऐक्ट १७७३ ई० के जरिये कोर्ट आफ प्रोप्राइटर्सकी बैठकमे मत देनेकी योग्यता ५०० पौण्डसे बढाकर १ हजार पौण्डका शेयर कर दी गयी। इसके अलावा अब यह कोर्ट चार वर्षोके कार्यकालके लिए एक वर्षमे सिर्फ छ डाइरेक्टर चुन सकता था। फिर भी कोर्ट आफ प्रोप्राइटर्स सिर्फ व्यापार और वाणिज्यमे दिलचस्पी रखनेवाले व्यापारियोकी सस्था बनी रही और वह कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सके निर्णयोको बहुत हद तक प्रभावित करती थी। इस बीच कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सके ऊपर भारतमे बढते हुए ब्रिटिश साम्राज्यके प्रशासनकी देखरेख करनेका दायित्व आ गया था। फलत पिट्स इडिया ऐक्ट (दे०)के द्वारा कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सके कार्यका निरीक्षण करनेके लिए बोर्ड आफ कट्रोल स्थापित किया गया। इसके बाद कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सकी ऐसी किसी कार्यवाहीको रद्द करने या उसमे हेर-फेर करनेका अधिकार कोर्ट आफ प्रोप्राइटर्सको न रहा जिसे बोर्ड आफ कट्रोलकी स्वीकृति मिल चुकी हो। इस प्रकार कोर्ट आफ प्रोप्राइटर्सको अब भारतीय राजनीतिको प्रभावित करनेका कोई अधिकार नही रहा। किन्तु कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स भारतमे ब्रिटिश राज्यको चलानेका माध्यम बना रहा, हालाकि समय बीतनेके साथ भारतीय प्रशासनपर बोर्ड आफ कण्ट्रोलके अध्यक्षका अकुश अधिकाधिक बढता गया। फिर भी डाइरेक्टरोके हाथमे इतनी शक्ति अब भी थी कि उन्होने लार्ड वेलेस्ली और लार्ड एलेनबरीको कार्यकाल समाप्त होनेसे पहले ही इग्लैण्ड वापस बुला लेनेके लिए बाध्य कर दिया। १८५८ ई० मे ब्रिटिश सम्राट् द्वारा भारतका प्रशासन अपने हाथमे ले लिये जानेके फलस्वरूप ईस्ट इडिया कम्पनी भग कर दी गयी और उसके साथ ही उसकी कार्यकारणी अर्थात् कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सका अस्तित्व भी समाप्त हो गया।

कोर्ट, जनरल क्लाइड आगस्ट—एक फ्रांसीसी सैनिक अफसर, जो १८२७ ई० में पंजाबके महाराज रणजीतसिंह (दे०) की फौजमें नियुक्त हुआ। उसने रणजीतसिंहके तोपखानेका पुनर्गठन करके उसमें भारी सुधार किये। किन्तु रणजीतसिंहकी मृत्युके बाद न जाने किस वजहसे सिख सेनाका उसपर विश्वास समाप्त हो गया और उसने कोर्टपर हमला कर दिया। किन्तु एक फ्रांसीसी सहयोगी वेंतुराकी मददसे उसकी जान बच गयी। वह लाहौरसे फ्रांस चला गया, जहाँ वह विस्मृतिके गर्भमें विलीन हो गया।

कोल्लम—त्रावणकोरके क्विलोन नगरका पुराना नाम। ख्याल किया जाता है कि कोल्लम नगरकी स्थापनापर कोल्लम संवत् चलाया गया, जो ८२४–२५ ई० में प्रचलित हुआ। प्राचीन चेर राज्यके कई अभिलेखोंमें इस संवत्का प्रयोग किया गया है।

कोल्हापुर—एक शहरका भी नाम और राज्यका भी, जिसपर शिवाजीका दूसरा पुत्र शासन करता था। तीसरे मराठा-युद्धके बाद यह अंग्रेजोंका रक्षित राज्य हो गया और १९४८ ई० में भारत संघमें विलयन होने तक एक छोटा-सा अधीनस्थ रक्षित राज्य बना रहा।

कोशल—इस नामके दो प्राचीन राज्य थे। पहला, उत्तर भारतमें था जो अवधके भूभागमें स्थित था। इसकी राजधानी अयोध्या थी। दूसरा, दक्षिण भारतमें महानदीकी उत्तरी घाटीमें स्थित था। समुद्रगुप्त (लगभग ३३०–३८० ई०) के इलाहाबाद स्तम्भलेखमें दक्षिणवाले कोशलके राजा महेन्द्रका उल्लेख मिलता है, जिसने समुद्रगुप्तकी अधीनता स्वीकार कर ली। दक्षिणके कोशल राज्यमें आधुनिक बिलासपुर, रायपुर तथा संभलपुर जिले सम्मिलित थे। उसकी राजधानी श्रीपुर थी, जो आजभी रायपुर जिलेमें वर्तमान है। इसने भारतीय इतिहासमें कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं अदा की।

परन्तु उत्तरका कोशल राज्य प्राचीन भारतीय अनुश्रुतियों तथा इतिहासमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसकी गौरवगाथा वाल्मीकिकी रामायणमें अंकित है, जिसमें उसके राजा दशरथ और उनके पुत्र रामका यशोगान है। ऐतिहासिक कालमें कोशल काफी बड़ा राज्य था। छठी शताब्दी ई० के आसपास भारत जिन सोलह महाजनपदों (राज्यों) में विभाजित था, उनमें कोशल भी था। उसके तीन प्रधान नगर थे—अयोध्या, साकेत तथा श्रावस्ती। इसके राजा अपनेको इक्ष्वाकुका वंशज कहते थे। इक्ष्वाकुके कुछ वंशजोंका उल्लेख वेदोंमें भी मिलता है। कोशलका पहला ऐतिहासिक राजा प्रसेनजित था जो मगधके राजा बिंबसारका समसामयिक था। दोनों राजा गौतम बुद्धके समसामयिक थे। कोशल और मगधमें शक्ति प्राप्त करनेके लिए तीव्र प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी। अंतमें अजातशत्रु (लगभग ४९४–४६७ ई०पू०)के राज्यकालमें मगधने कोशलको हड़प लिया।

कोहनूर—एक संसार-प्रसिद्ध हीरा। यह मुगल बादशाहोंके ताजमें संलग्न था, परन्तु नादिरशाह इसे लूट ले गया। उसकी मृत्युपर यह अहमदशाह अब्दाली (दे०)को मिला। उसके एक वंशज शाह शुजासे यह महाराज रणजीतसिंहको मिला और उनके वंशजसे ब्रिटिश भारतीय सरकारने ले लिया और महारानी विक्टोरियाको अर्पित कर दिया। अब यह इंग्लैण्डके राजमुकुटकी शोभा बढ़ा रहा है।

कौण्डिन्य—कंबोडियामें सुरक्षित अनुश्रुतियोंके अनुसार एक भारतीय ब्राह्मण जिसने कम्बुज देश (दे०)के राज्यकी स्थापना की। कम्बुज देशको ही अब 'कम्बोडिया' कहते हैं।

कौंसिल आफ स्टेट (राज्य परिषद्)—भारतीय शासन विधान १९१९ ई०के अधीन इसका संघटन हुआ, जिसके द्वारा ब्रिटिश भारतमें दो सदनोंवाले विधानमण्डलकी स्थापना की गयी। इसी विधानमंडलका उच्च सदन 'राज्य परिषद्' कहलाता था। इसकी सदस्य संख्या ६१ रखी गयी, जिनमेंसे ३४ का निर्वाचन व १० अधिकारियों तथा शेष गैर-सरकारी सदस्योंका मनोनयन होता था। निर्वाचनमें सम्पत्तिशाली व्यक्तियोंको ही मतदानका अधिकार दिया गया था। परिषद्के सदस्योंमेंसे ही किसी एकको गवर्नर-जनरल उसका अध्यक्ष मनोनीत करता था। परिषद्को निचले सदनके साथ (जिसे केन्द्रीय विधान सभाके नामसे पुकारा जाता था) समन्वयकारी अधिकार प्रदान किये गये, किन्तु अनुदान सम्बन्धी मांगें निचले सदनमें ही पेश की जा सकती थीं। राज्य परिषद्से आशा की जाती थी कि वह केन्द्रीय विधान सभाकी संभाव्य उदार और लोकतांत्रिक प्रवृत्तियोंपर अंकुश रखे। इसने काफी हद तक इस मन्तव्यको पूरा किया। भारतीय शासनविधान १९३५ ई० के अंतर्गत इसकी सदस्य संख्या एवं इसका महत्त्व बढ़ गया। अब इसमें २६० सदस्य होते थे, जिनमें १५६ सदस्य ब्रिटिश भारतके थे और १०४ सदस्य भारतीय संघमें शामिल होनेवाली रियासतोंके। ब्रिटिश भारतके १५६ मेंसे छ सदस्य अल्पसंख्यकों, दलित वर्ग और महिलाओंको समुचित प्रतिनिधित्व देनेके लिए गवर्नर-जनरल द्वारा मनोनीत किये जाने और शेष १५० का चुनाव साम्प्रदायिक आधारपर किये जानेकी व्यवस्था की गयी। मताधिकार काफी सीमित रखा गया। रियासतोंके सभी १०४

सदस्योको नियुक्त करनेका अधिकार वहाँके राजाओको दिया गया। इस प्रकार २६० सदस्योके सदनमे ११० केन्द्रीय और रियासती सरकारो द्वारा मनोनीत किये जानेकी व्यवस्था की गयी। यह राज्य परिषद् स्थायी सस्था थी और भग नही की जा सकती थी। उसके एक तिहाई सदस्य हर तीसरे साल निवृत्त होते थे और किसी भी हालतमे एक सदस्यका कार्यकाल नौ वर्षसे अधिक नही हो सकता था। परिषद्को सभी मामलोमे जिनमे वित्तीय मामले भी शामिल थे, विधान सभा (निचले सदन)के साथ लगभग समान अधिकार प्राप्त थे। इस प्रकार भारतीय शासनविधान १९३५ ई० द्वारा गठित यह राज्य परिषद् केन्द्रमे वास्तविक उत्तरदायी सरकारके विकासकी दिशामे गभीर बाधा थी। लेकिन १९३५ ई० के इस विधानका राज्य परिषद् सम्बन्धी भाग पूरी तरह लागू भी न हो पाया था कि भारत स्वाधीन हो गया। स्वाधीनताके बाद भारतने जो नया सविधान स्वीकार किया, उसके अतर्गत इस राज्य परिषद्को राज्य सभा (दे०) मे बदल दिया गया। राज्य सभाका गठन और स्तर पुरानी राज्य परिषद्से बहुत भिन्न प्रकारका है।

कौटिल्य (जिसे **चाणक्य** अथवा **विष्णुगुप्त** भी कहते है)–तक्षशिला-निवासी एक ब्राह्मण। मुद्राराक्षस (दे०) नाटकमे सुरक्षित अनुश्रुतियोके अनुसार वह पाटलिपुत्र (दे०) चला आया, जहाँ राजा नद (दे०)ने उसे अपमानित किया। अपमानका बदला लेनेके लिए वह चन्द्रगुप्त मौर्यसे मिल गया और उसे नदको पराजित करने तथा मार डालने और मगधके सिहासनपर स्वय बैठ जानेमे मदद दी। इसके बाद वह उसका प्रधान अमात्य बन गया और मगध राज्यपर उसका अधिकार सुदृढ बनाने तथा राज्यका शासन-प्रबध करनेमे उसकी सहायता की। यह पता नही है कि उसकी मृत्यु कहाँ और कब हुई। कौटिल्यने 'अर्थशास्त्र' की रचना की जो सस्कृतमे राजशास्त्रका सबसे प्रसिद्ध ग्रथ है। यद्यपि चद्रगुप्त मौर्य (लगभग ३२२–२९८ ई० पू०) के अमात्य कौटिल्य (अथवा चाणक्य अथवा विष्णुगुप्त) तथा अर्थशास्त्रके रचयिता कौटिल्यको एक ही व्यक्ति माना जाता है, तथापि अर्थशास्त्रको चौथी शताब्दी ई० पू० की रचना माननेमे अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित होती है। अर्थशास्त्रमे चीनका उल्लेख मिलता है। उसमे राजभाषाके रूपमे सस्कृतका व्यवहार मिलता है। उसमे राज्याधिकारियोके जो पद (जैसे सधाता आदि) दिये गये है, उनमेसे किसीका उल्लेख अशोकके शिलालेखोमे नही मिलता। इन सब कारणोसे अर्थशास्त्रको प्रारम्भिक मौर्य राजाओके कालकी रचना न मानकर बादके कालकी रचना माना जाता है। परन्तु इस बातसे इन्कार नही किया जा सकता कि भारतीय राजशास्त्रपर उसका अमिट प्रभाव पडा।

कौरव–इन्द्रप्रस्थके राजा धृतराष्ट्रके पुत्र। इन्द्रप्रस्थ दिल्लीके निकट स्थित था, जहाँ आज इन्दरपत गाँव बसा हुआ है। पाडव (पाडुके पुत्र) (दे०) कौरवोके चचेरे भाई थे। कोरवो और पाडवोकी प्रतिद्वन्द्विता तथा उनका युद्ध महाभारतकी मुख्य कथावस्तु है।

कौराल–दक्षिणका एक राज्य, जिसका उल्लेख समुद्रगुप्त (दे०)के इलाहाबाद स्तम्भ-लेखमे है। उसका राजा मलराज गुप्त सम्राट् द्वारा पराजित हुआ। बादमे समुद्रगुप्तने उसे फिर गद्दीपर बैठा दिया। कौराल राज्य कहाँ था, यह अभीतक निश्चित रूपसे पता नही चल सका है।

कौस्थलपुर–दक्षिण भारतका एक राज्य, जिसके राजा धनजयको समुद्रगुप्त (दे०)ने सिंहासनसे उतार दिया। बादमे समुद्रगुप्तने उसका राज्य उसे लौटा दिया। यह सम्भवत उत्तरी आर्काट जिलेमे स्थित था।

क्यूरी, सर फ्रेडरिक (१७९९-१८७५)–कम्पनीकी कावेनेटेड सिविल सर्विसमे १८२० ई० मे प्रविष्ट और १८४२ ई० मे विदेश सचिव। वह गवर्नर-जनरलके स्टाफमे भी रहा। वह १८४५-४६ ई० मे प्रथम सिखयुद्ध (दे०)के दौरान कमाडर-इन-चीफ था। उसने लाहौरकी सधि की, जिसके फलस्वरूप युद्ध समाप्त हो गया। इसके बाद वह ६ अप्रैल १८४८ ई० को लाहौरमे ब्रिटिश रेजीडेंट नियुक्त हुआ। जब मुल्तानके बर्खास्त सिख गवर्नर मूलराजने वहाँ उपद्रव शुरू किया और २० अप्रैलको दो ब्रिटिश अफसरोको मार डाला तो सर फ्रेडरिकने मुल्तानके विद्रोहको दबाने और शहरकी घेराबदी करनेका असफल प्रयास किया। उसने हजारा जिलेके सिख गवर्नर शेरसिंहको मुल्तानकी घेराबदी करनेवाली फौजोकी मददके लिए भेजा, किन्तु शेरसिंह जाकर मूलराजसे मिल गया और सर फ्रेडरिकके प्रयास पूरी तरह विफल हो गये। इसके बाद शीघ्र ही १८४८-४९ ई० मे दूसरा सिख-युद्ध (दे०) छिड गया। सिखोकी बुरी तरह पराजय हुई और उनकी राजसत्ता एकदम समाप्त हो गयी। पजाबको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमे मिला लिया गया। उसने १८५३ ई० मे शासनसे अवकाश ग्रहण किया और १८५४ ई०मे वह ईस्ट इडिया कम्पनीका डायरेक्टर चुना गया। १८५७ ई० मे उसे चेयरमैन बनाया गया। इसके एक वर्ष बाद ईस्ट इडिया कम्पनी समाप्त हुई और उसे इडिया कौसिलका सदस्य नियुक्त किया गया। १८७५ ई० मे उसकी मृत्यु हो गयी।

क्रिप्स, सर रिचर्ड स्टेफोर्ड (१८८९–१९५२)—ब्रिटेनका प्रख्यात राजनीतिज्ञ, वकील और मजदूर दल (लेवर पार्टी)का विशिष्ट सदस्य। १९३९ ई० मे उसे मजदूर दलसे निष्कासित कर दिया गया था, १९४० ई० मे प्रधानमंत्री चर्चिलने सोवियत सघमे राजदूत नियुक्त किया, जहाँ उसने इग्लैण्ड और रूसके बीच करार कराया। १९४२ ई० मे वह लार्ड प्रिवी सील, कामन सभाका नेता और युद्ध मंत्रिमडलका सदस्य नियुक्त किया गया। भारतमे लागू किये जानेवाले सवैधानिक परिवर्तनोके सबधमे उसका दृष्टिकोण उदार समझा जाता था। भारत की राजनीतिक और सवैधानिक समस्याओंको शातिपूर्वक हल करानेके लिए उसे दो बार—पहले १९४२ ई० मे और दुबारा १९४६ ई०मे भारत भेजा गया। १९४२ ई० मे क्रिप्सने भारतमे सविधानके विकासके लिए कुछ सुझाव दिये, जिन्हे 'क्रिप्स-प्रस्ताव'के नामसे जाना जाता है। इन प्रस्तावोमे ब्रिटिश सरकारके इस इरादेको दोहराया गया कि युद्ध समाप्त होनेके बाद यथाशीघ्र भारतीय सघकी स्थापना कर दी जायगी, जिसका स्तर ब्रिटिश राष्ट्रमडलके राज्यका-सा होगा। इस लक्ष्यकी पूर्तिके लिए क्रिप्स-प्रस्तावमे आगे कहा गया था कि प्रातीय विधानमडलो द्वारा निर्वाचित सविधान सभा ब्रिटिश सरकारके साथ भावी सम्बन्धोके बारेमे एक सधि करेगी। भारतको राष्ट्रमडलसे अलग होने, भारतीय राज्योको भारतीय सघमे शामिल होने न होने और किसी भी भारतीय प्रातको प्रस्तावित भारतीय सघसे बाहर रहने और वर्तमान सविधान बनाये रखनेकी छूट रहेगी। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसने उसे इस आधारपर अस्वीकार कर दिया कि उसमे भारतको 'औपनिवेशिक स्वराज्य' तत्काल देनेकी बात नही कही गयी थी। १९४६ ई० मे क्रिप्सने कैबिनेट मिशन (दे०)के सदस्यकी हैसियतसे प्रस्ताव पेश किया, जिसमे ब्रिटिश भारतीय प्रातोका ऐसा सघ बनानेका सुझाव दिया गया था, जिसके नियत्रणमे रक्षा, विदेश और सचार सम्बन्धी सभी मामले रहते। उक्त प्रस्तावके अनुसार देशी रियासतें भी बातचीतके बाद सघमे शामिल हो सकती थी। प्रातोको सघके अधीन अपना उप-सघ बनानेकी स्वतत्रता थी। इस सम्बन्धमे बाकी सब बाते विस्तारसे तय करनेका अधिकार सविधान सभाको दिया गया था और परिवर्तनोके पूरी तरह लागू होने तक केन्द्रमे सभी दलोकी अतरिम राष्ट्रीय सरकार बनानेका प्रावधान था। काग्रेस और मुस्लिम लीगकी शत्रुता दूर न की जा सकी और कैबिनेट मिशन प्रस्ताव, जिसके तैयार करनेमे क्रिप्सका काफी बड़ा हाथ था, ठुकरा दिया गया।

क्रिवी, लार्ड—१९११–१२ ई० मे ब्रिटिश सरकारका भारत-मत्री। सम्राट् जार्ज पचमके भारत पधारनेपर क्रिवीने दिल्लीमे दरबारका आयोजन किया। इस समय राजधानीको कलकत्तासे दिल्ली लानेकी घोषणा भी की गयी। इसके अलावा जिन अन्य महत्त्वपूर्ण परिवर्तनोकी घोषणा की गयी थी, उनमे बग-विभाजनको रद्द करते हुए उसे सपरिषद् गवर्नरके अन्तर्गत करना, बिहार और उड़ीसाको बगालसे पृथक् करना, बिहार, उड़ीसा और छोटा नागपुरके लिए लेफ्टिनेंट-गवर्नरका नया पद चालू करना तथा आसामका दर्जा घटाकर फिर चीफ कमिश्नरीके स्तरपर ले आना शामिल था। इस प्रकार भारतीय प्रशासनमे होनेवाले अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तनोंके साथ लार्ड क्रिवीका नाम जुड़ा हुआ है।

क्रेटिरास—सिकदरके साथ पजाबके अभियानमे भाग लेनेके लिए जो यूनानी सेनापति आये, उनमे सबसे वफादार और योग्य। सिकदर उसको 'बिलकुल अपने समान' मानता था। उसने करींके मैदानवाली लड़ाईमें भाग लिया था, जिसमे पुरु (दे०)की हार हुई थी। बादमे उसने सिंधु नदीके दाहिने किनारे-किनारे दक्षिणी पजाब तथा सिंध होकर वापस लौटनेवाली यूनानी सेनाका नेतृत्व किया। अतमे वह विजयी यूनानी सेनाओंको कदहार और सीसतान (शकस्थान)के मार्गमे बेबिलोन वापस ले गया।

क्रोमर, ईवलिन बारिंग, लार्ड (१८४१–१९१७)—१८७७ ई० मे मिस्रमे गठित अतर्राष्ट्रीय वित्तीय बोर्डके सदस्यकी हैसियतसे सार्वजनिक वित्त-प्रबधके विशेषज्ञके रूपमे विख्यात। १८८० ई० मे वह वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्के वित्तीय सदस्यकी हैसियतसे भारत आया। उसने इस पदपर तीन वर्षो तक सफलतापूर्वक कार्य किया। १८९२ ई० मे उसे 'लार्ड'की उपाधिसे विभूषित किया गया। इसीके बाद मिस्रमे अपने शासन-प्रबधके लिए उसने और भी नाम कमाया।

क्लाइड, कालिन कैम्पबेल, लार्ड—देखिये, 'कैम्पबेल, सर कालिन'।

क्लाइव, लार्ड राबर्ट—जन्म १७२५ ई० मे। वह नवयुवकके रूपमे भारत आया, और मद्रासमे ईस्ट इडिया कम्पनीके लिपिक (क्लर्क) पदपर नियुक्त हो गया। बादमे उसे कम्पनीकी सैनिक सेवामे काम करनेकी अनुमति मिल गयी। १७५१ ई० मे २६ वर्षकी उम्रमे ही वह कैप्टेन हो गया। इस समय कर्नाटक (दे०)मे अंग्रेजो और फ्रांसीसियोंके बीच दूसरी लड़ाई छिड़ी हुई थी। फ्रांसीसियोंके आश्रित चदा साहबने अंग्रेजोंके आश्रित मुहम्मद अलीसे त्रि

पल्लीमें घेर लिया था। मद्रासके कम्पनी अधिकारी यह नही समझ पा रहे थे कि मुहम्मद अलीको कैसे मदद पहुँचायी जाय। इस विषम स्थितिमे युवा कप्तान राबर्ट क्लाइवने सुझाव दिया कि चदा साहबका ध्यान बटानेके लिए कर्नाटककी राजधानी अर्काटपर अचानक आक्रमण कर दिया जाय। राबर्ट क्लाइवने इस योजनाको पूरी सफलताके साथ कार्यान्वित करके अर्काटपर कब्जा कर लिया। चदा साहबने उसपर पुन आधिपत्य स्थापित करनेके लिए बडी सेना भेजी। राबर्ट क्लाइवने ५३ दिनो तक इस सेनाकी घेरेबदीका डटकर मुकाबला किया। इसके बाद युद्धका पासा पलटकर ब्रिटिश कम्पनीके पक्षमे हो गया और क्लाइवकी ख्याति बढ गयी।

१७५३ ई० मे क्लाइव छुट्टी लेकर इगलैण्ड चला गया और दो वर्षो बाद एडमिरल वाटसनकी कमानके अतर्गत एक स्काड्रनके साथ लौटा। बम्बई आनेपर उसे शीघ्र ही घेरिया बदरगाहपर समुद्री लुटेरोसे निपटनेके लिए भेजा गया, जहाँ उसकी विजय हुई। बादको पश्चिमी भारतमे स्थित बनकोट और नौ गाँवोके बदलेमे घेरिया बदरगाह मराठोके सुपुर्द कर दिया गया।

इसके बाद क्लाइव और वाटसन जहाजसे मद्रास गये, लेकिन कुछ ही समय बाद उसे बगाल भेज दिया गया, जहाँ इस बीच बगालके नवाब सिराजुद्दौलाने कलकत्तापर अधिकार जमा लिया था। जनवरी १७५७ ई० मे कलकत्ताको वस्तुत बिना किसी प्रतिरोधके नवाबके हाथोसे छीन लिया गया। इस समयसे क्लाइव बगालमे कम्पनीका सर्वेसर्वा हो गया। फरवरीमे उसने नवाबके साथ अलीनगर सधि (दे०)की, जिसके अतर्गत कम्पनीने बगालके ऊपर नवाबका आधिपत्य स्वीकार करनेका वायदा किया। लेकिन एक महीने बाद ही क्लाइवने फ्रासीसी उपनिवेश चन्द्रनगरपर हमला किया, उसे जीता और ध्वस्त कर दिया। इस प्रकार बगालमे फ्रासकी प्रतिद्वद्विता समाप्त करनेके बाद उसने नवाब सिराजको अपदस्थ करने और उसके स्थानपर मीरजाफरको बगालका नवाब बनानेके लिए सिराजके निकाले हुए दरबारियोके साथ ईस्ट इडिया कम्पनीकी तरफसे षड्यत्र रचा। जून १७५७ ई० मे औपचारिक रूपसे एक सधि हुई। कलकत्ताके सेठ अमीचन्द (दे०)को उक्त सधिका पता चल गया। उसने धमकी दी कि मुर्शिदाबादके खजानेकी लूटका कुछ हिस्सा यदि मुझे देनेका वायदा नही किया गया तो मैं सधिका भडाफोड कर दूगा। क्लाइवने असली सधिको गुप्त बनाये रखनेके विचारसे अमीचदको सधिकी एक नकली प्रति थमाकर चकमा दे दिया।

इधर क्लाइवने असली सधिके अनुसार बिना किसी औपचारिक घोषणाके नवाब सिराजुद्दौलाके ऊपर हमला बोल दिया और २३ जून १७५७ ई० को पलासीके युद्धमे उसकी फौजोको बुरी तरह परास्त किया। सिराज भाग खडा हुआ और क्लाइव अपनी फौजके साथ मुर्शिदाबादकी ओर बढा जहाँ बिना किसी प्रतिरोधका सामना किये उसने राजधानीपर अधिकार कर लिया और मीरजाफरको बगालका नवाब बनाया। मीरजाफरने कम्पनीके सभी कर्मचारियोको बडे-बडे इनाम दिये। राबर्ट क्लाइवको २ लाख ३४ हजार १ सौ पाउण्डकी भारी रकम देनेके अलावा मीरजाफरने उससे २४ परगनाकी जमीदारीके बदले ईस्ट इडिया कम्पनीसे मिलनेवाली मालगुजारीमेसे प्रतिवर्ष ३० हजार पाउण्डकी राशि देनेका वायदा किया। इस प्रकार राबर्ट क्लाइव स्वय कम्पनीका एक जमीदार बन गया। उसे अब बगालका गवर्नर बना दिया गया। उसने चिनसुराके निकट बिदेरांके युद्ध (दे०)मे डचोको हराया और बगालमे उनकी सत्ताको समाप्त किया। इसके बाद क्लाइव छुट्टीपर इगलैण्ड चला गया, जहाँ उसने पाँच वर्ष (१७६०–६५) बिताये। आयरलैण्डके लार्डोकी सूचीके अतर्गत उसे 'बैरन, क्लाइव आफ प्लासी'की उपाधि दी गयी। चैथमके अर्लने 'जन्मजात जनरल' कहकर उसका स्वागत किया।

क्लाइवके इगलैण्ड प्रवासकालमे बगालमे कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। नवाब मीरजाफरको भ्रष्ट कौसिलने अपदस्थ कर उसके स्थानपर मीरकासिम (दे०)को बैठा दिया। मीरकासिमने भी शीघ्र ही कलकत्ता कौसिलको इस कदर नाराज कर दिया कि उसके और कम्पनीके बीच युद्ध छिड गया। मीरकासिमकी पराजय हुई। वह अवध भाग गया, जहाँ उसने नवाब शुजाउद्दौला और बादशाह शाहआलम द्वितीयके साथ गठबधन किया। इन सब घटनाओसे चिंतित होकर कम्पनीके डाइरेक्टरोने राबर्ट क्लाइवको, जो अब 'लार्ड क्लाइव' हो गया था, बगालका गवर्नर और प्रधान सेनापति बनाकर भेजा। वह ३ मई १७६५ ई०को बगाल पहुँचा, लेकिन तबतक मीरकासिम और उसके सहयोगी बक्सरके युद्धमे पराजित हो चुके थे। इन पराभूत शत्रुओके साथ राजनीतिक समझौता करना अब क्लाइवके जिम्मे पडा। बक्सरमे हारनेके बाद मीरकासिम भाग गया और बगालके रिक्त राजसिंहासनपर मीरजाफरके पौत्रको बैठाया गया। नवाब शुजाउद्दौलाको अवध लौटा दिया गया और बदलेमे उसने कोडा और इलाहाबादके जिले कम्पनीको दे दिये, जिन्हे कम्पनीने शाहआलम द्वितीयके

सुपुर्द कर दिया। शाहआलमने दीवानी अधिकार अर्थात् बंगाल, बिहार और उड़ीसाका शासन-प्रबंध करने और मालगुजारी वसूलनेका अधिकार ईस्ट इंडिया कम्पनीको इस शर्तपर दे दिया कि वह बादशाहको सालाना २६ लाख रुपया देगी। इस प्रकार बंगाल, बिहार और उड़ीसामें लार्ड क्लाइवने बादशाह और कम्पनीकी 'दोहरी सरकार' की स्थापना की।

इस राजनीतिक व्यवस्थाके बाद लार्ड क्लाइवने कम्पनीकी आंतरिक व्यवस्था सुधारनेका कठिन कार्य हाथमें लिया। १७६५ ई० में नियुक्तिके समय लार्ड क्लाइव-को खासतौरसे यह निर्देश दिया गया था कि वह बंगालमें कम्पनीके अधिकारियोंमें व्याप्त भ्रष्टाचारका उन्मूलन करे और इनके द्वारा किये जा रहे निजी व्यापारको रोके। ये अधिकारी निजी व्यापार बढ़ानेमें लग गये थे, जिससे कम्पनी और नवाब दोनोंके ही राजस्वको नुकसान पहुँच रहा था। लार्ड क्लाइवने कम्पनीके सभी अधिकारियोंसे प्रतिज्ञापत्रोंपर दस्तखत कराये, जिनमें इस बातकी शपथ ली गयी थी कि वे रिश्वत नहीं लेंगे। क्लाइवने फिजूल-खर्ची रोकनेके लिए अधिकारियोंके दौरा-भत्तामें भी कटौती कर दी और जब गोरोंने बगावत करनेका प्रयास किया तो क्लाइवने बड़े साहसके साथ उसे कुचल दिया। निजी व्यापार रोकनेके मामलेमें क्लाइवने स्वयं अपने निर्देशोंकी उपेक्षा की। उसने कम्पनीके वरिष्ठ अधिकारियोंके साथ एक व्यापार-मंडलकी स्थापना की और उसे नमक तथा कुछ अन्य चीजोंमें निजी व्यापार चलानेका एकाधिकार प्रदान कर दिया। इसमें क्लाइवने खुद पाँच हिस्से लिये, जिन्हें बादमें उसने तीन लाख रुपयोंमें बेच दिया। १७६७ ई० में क्लाइवने अंतिमरूपसे अवकाश ग्रहण कर लिया और इंग्लैण्ड चला गया। बंगालके प्रशासनकालमें क्लाइवने अपने अनगिनत शत्रु बना लिये थे। इंग्लैण्ड लौटनेपर इन शत्रुओं तथा कुछ सार्वजनिक नेताओंने, जो कम्पनीके प्रशासनको भ्रष्टाचार और धनलोलुपतासे मुक्त कराना चाहते थे, क्लाइवपर गंभीर आक्षेप किये। ब्रिटिश संसदमें कर्नल बरगोइनके प्रस्तावपर क्लाइवके बंगाल-प्रशासनकी संसदीय जाँच करायी गयी। इसके फलस्वरूप संसदने कर्नल बरगोइनका प्रस्ताव पारितकर बंगालमें व्याप्त भ्रष्टाचारकी भर्त्सना की, बंगालमें कम्पनीकी फौजकी मददसे इकट्ठी की गयी दौलतको गैरकानूनी करार दिया। राबर्ट क्लाइवके विरुद्ध संसदने एक तरफ तो यह अभियोग लगाया कि उसने २ लाख ३४ हजार पाउण्डकी धनराशि-को अवैध ढंगसे हड़प लिया, दूसरी ओर उसकी यह कहकर प्रशंसा भी की कि उसने देशकी महान् और सराहनीय सेवाएं की। इस प्रच्छन्न भर्त्सनासे राबर्ट क्लाइवके दिलको इतनी चोट पहुँची कि उसने २२ नवम्बर १७७४ ई० को अपना गला काटकर आत्महत्या कर ली।

क्लियोफिस–यूनानी इतिहासकारोंके अनुसार असिक्नोई (दे०)की रानी। कहा जाता है कि मकदूनियाके राजा सिकन्दरसे उसको एक लड़का पैदा हुआ था।

क्लेवरिंग, जनरल, सर जान–ईस्ट इंडिया कम्पनीकी ओरसे रेगूलेटिंग ऐक्ट (१७७३ ई०)के अन्तर्गत गवर्नर-जनरलकी परिषदका सदस्य नियुक्त। वह अक्तूबर १७७४ ई० को कलकत्ता आया और तबसे अगस्त १७७७ ई० तक इसी पदपर कार्य करते हुए उसका निधन हो गया। वह सामान्य गुणोंवाला एक ईमानदार व्यक्ति था। उसने अपने कार्य-कालमें वारेन हेस्टिंग्सका बराबर विरोध किया और अपने एक अन्य साथी फिलिप फ्रांसिसका समर्थन किया। यद्यपि महाराज नन्दकुमारने उसे अपना संरक्षक समझा, तथापि उसने नंदकुमारको फाँसीसे बचानेके लिए कुछ भी नहीं किया। १७७७ ई० के प्रारंभमें वारेन हेस्टिंग्सके इस्तीफेकी खबरपर सर जान क्लेवरिंगको उसका उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया, किन्तु हेस्टिंग्सने अपने इस्तीफेकी खबरका खंडन कर दिया और क्लेवरिंगको गवर्नर-जनरलके पदपर नहीं बैठने दिया। इनके खिलाफ सुप्रीम कोर्टमें अपील की गयी, लेकिन हेस्टिंग्सके पक्षमें फैसला हुआ। इस घटनाने कौंसिलमें घोर कटुता उत्पन्न कर दी और इसी कटुताके वातावरणमें क्लेवरिंगकी मृत्यु हो गयी।

क्लोज, सर बेरी (१७५६–१८१३)–१७७१ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनीकी मद्रासी पलटनके अधिकारीकी हैसियतसे भारत आया। उसने १७८० ई० में हैदरअलीके खिलाफ लड़ाईमें भाग लिया। वह १७९२ ई० में और दुबारा फिर १७९९ ई० में श्रीरंगपट्टमकी घेराबंदीके समय मौजूद था। १७९९ ई० में उसे मैसूरमें ब्रिटेनका पहला रेजीडेंट नियुक्त किया गया। नये राजाके लिए वह बड़ा ही महानुभूतिपूर्ण पथप्रदर्शक सिद्ध हुआ। इसके बाद १८०१ ई०में वह पूनामें रेजीडेंट नियुक्त किया गया, जहाँ १० वर्षोंतक रहा। उसने दिसम्बर १८०२ ई० में बसईकी संधि (दे०)के लिए पेशवा बाजीराव द्वितीयसे वार्ता आरम्भ की। १८११ ई०में उसने अपने पदसे अवकाश ग्रहण किया और वह बैरन (लार्ड) बना दिया गया। १८१३ ई० में उसका निधन हो गया।

क्षत्रप–उत्तर भारतके कई भूभागोंपर राज्य करनेवाले मक शासकोंकी उपाधि। क्षत्रप शासक तीन वर्गोंमें विभक्त

किये जाते है, यथा काबुलकी घाटीमे कापिशीके क्षत्रप, पश्चिम पजाव अथवा तक्षशिला और मथुराके क्षत्रप। ग्रनह्वर्यक, तिरह्वर्न एव शिवसेन कापिशीके क्षत्रपोमेसे था। पजावका क्षत्रपकुल अपेक्षाकृत बडा था और उसमे लियक, उसका पुत्र पतिक, मणिगुल और उसका पुत्र जियोनिसस अथवा डिहोनिक, इन्द्रवर्मा और उसका पुत्र अस्थवर्मा तथा उसका भतीजा शस आदि थे। मथुराके क्षत्रप कुलमे रजुबल अथवा रजुल, उसका पुत्र सुदास, अथवा सोडाश तथा उसका भतीजा खरोष्ठ हुए। इन शक क्षत्रपोके सम्बन्धमे कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नही है। उनके नाम सिक्को और खण्डित अभिलेखोमे उपलब्ध हैं। उनकी तिथियोका अभी तक निश्चय नही हो सका है, पर ऐसा विश्वास किया जाता है कि उन्होने कुषाणोके पूर्व राज्य किया। **(बनर्जी, पृ० ४४३ नोट)**

क्षत्रिय–भारतीय आर्योमे अत्यत आरम्भिक कालसे वर्ण-व्यवस्था मिलती है, जिसके अनुसार समाजमे उनको दूसरा स्थान प्राप्त था। उनका कार्य युद्ध करना तथा प्रजाकी रक्षा करना था। 'क्षत्रिय' शब्दका व्युत्पत्तिकी दृष्टिसे अर्थ है—जो (दूसरोको) क्षतसे बचावे। ब्राह्मण ग्रथोके अनुसार क्षत्रियोकी गणना ब्राह्मणोके बाद की जाती थी, परन्तु बौद्ध ग्रन्थोके अनुसार चार वर्णोमे क्षत्रियोको ब्राह्मणोसे ऊँचा अर्थात् समाजमे सर्वोपरि स्थान प्राप्त था। गौतम बुद्ध और महावीर दोनो क्षत्रिय थे और इससे इस स्थापनाको वल मिलता है कि बौद्ध धर्म और जैन धर्म जहाँ एक ओर समाजमे ब्राह्मणोकी श्रेष्ठताके दावेके प्रति क्षत्रियोके विरोध भावको प्रकट करते है, वही दूसरी ओर पृथक् जीवन दर्शनके लिए उनकी आकाक्षाको भी अभिव्यक्ति देते है। जो भी हो, बादमे क्षत्रियोका स्थान निश्चित रूपसे चारो वर्णोमे ब्राह्मणोके बाद दूसरा माना जाता था।

क्षयार्श (जरक्सीज)–पारस (फारस)का सम्राट् (४८६–४६५ ई०पू०), सम्राट् दारयवुह (डेरियस)का पुत्र एव उत्तराधिकारी। उसने अपने पितासे प्राप्त भारतीय साम्राज्य अक्षुण्ण रखा। उसके साम्राज्यमे गधार, सिन्धु नदीकी घाटी (पूर्वमे राजस्थानकी मरुभूमि तक) तथा सभवत सिध प्रात सम्मिलित था। यूनानी इतिहासकार हेरोडोटसके अनुसार क्षयार्श यूनान (ग्रीस) पर चढाई करनेके लिए जो सेना ले गया था उसमे गधार तथा भारतके योद्धा भी सम्मिलित थे। गधारके सैनिक नरकुलके धनुप तथा भाले लिये हुए थे। भारतीय सैनिक सूती कपडे पहने हुए थे और वे वासके धनुप लिये हुए थे, जिसमे वे नुकीले लोहेके फलकसे युक्त तीर फेकते थे।

क्षुद्रक–एक गण, जो पजावमे जेहलम और चिनाब नदियोके सगमके नीचे वाले भागमे निवास करता था। यूनानी इतिहासकारोने इनका नाम ओक्सिड्राकाई दिया है। जब सिकन्दरने इनके देशपर आक्रमण किया तो उन्होने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली और उसे बहुत-से रथ, बकलस, सौ टैलेंट (एक प्राचीन भार) लोहा और सूती वस्त्रोका ढेर भेट किया। इससे सकेत मिलता है कि उनकी सभ्यता बहुत उन्नत थी।

क्षेमजित (अथवा क्षात्रौजस)–शैशुनागवशका चौथा राजा और राजा बिम्बसार (दे०) (लगभग ५२२-४६४ ई० पू०) का पूर्ववर्ती शासक। नामके अलावा उसके बारेमे और कुछ ज्ञात नही है।

क्षेमधर्म–शैशुनागवश (दे०) का तीसरा राजा, जो सातवी शताब्दी ई० पू० के उत्तरार्धमे राज्य करता था। उसके राज्यकालके बारेमे कुछ विशेष वृतान्त ज्ञात नही है।

ख

खजवाकी लडाई–शाहजहाके दूसरे और तीसरे पुत्रो, शाहजादा शुजा (दे०) और शाहजादा औरगजेब (दे०) के बीच १६५६ ई० मे हुई। इस लडाईमे शुजा हारकर भागा। उसे बगालसे बाहर खदेड दिया गया। वह अराकान भाग गया, जहा उसकी मृत्यु हो गयी।

खजुराहो–चदेलो (दे०) की धार्मिक राजधानी, जो बुदेलखण्डमे छतरपुरसे २७ मील पूर्वमे स्थित है। खजुराहोमे अनेक मदिर बने हुए है जो चदेलोके ऐश्वर्य और उनके कला, मूर्तिकला तथा वास्तुकला-प्रेमकी साक्षी देते है। दसवी और ग्यारहवी शताब्दीमे उत्तरी भारतमे जिन मदिरोका निर्माण किया गया, उनमे यहाके मदिर सबसे भव्य माने जाते है। खजुराहोके मदिरोमे कडरिया महादेवका मदिर सबसे विशाल और सबसे सुन्दर है।

खडकीकी लडाई–१८१७ ई० मे तीसरे मराठा-युद्धकी शुरूआत इसीसे हुई। पेशवा बाजीराव द्वितीयने पूनामे तैनात ब्रिटिश फौजोपर हमला बोल दिया। परन्तु एलिफन्स्टन (दे०) ने उन फौजोका नेतृत्व बडी कुशलतासे किया और खडकीकी लडाईमे पेशवाको हरा दिया।

खड्गसिह–महाराज रणजीतसिह (दे०) का पुत्र तथा उत्तराधिकारी। वह न केवल मद-बुद्धि था, बल्कि उद्धत सिखोको वशमे रखनेकी क्षमतासे भी रहित था। गद्दीपर

बैठनेके साल भर बादही १८४० ई० मे उसकी हत्या कर दी गयी।

खरोष्ठी—एक प्राचीन भारतीय लिपि जो ब्राह्मी लिपिके ठीक उलटे ढग अर्थात् दाहिनेसे बाये लिखी जाती थी। अशोकने अपने चतुर्दश शिलालेखोमेसे दो मानसेरा तथा शहबाजगढीके शिलालेखोमे खरोष्ठी लिपिका प्रयोग किया है। इससे मालूम पडता है कि तीसरी शताब्दी ई० पू० मे भारतके उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्तोमे ब्राह्मी लिपिके बजाय खरोष्ठी लिपि प्रचलित थी।

खर्दाकी लडाई—१७९५ ई० मे हैदराबादके निजाम और मराठोके बीच हुई, जिसमे निजाम बुरी तरह हारा और उसे अत्यत प्रतिकूल शर्तोपर सधि करनेके लिए विवश होना पडा। मुख्यरूपसे इस हारके कारण निजामने १७९८ ई० मे भारतमे अग्रेजोके आश्रित होनेकी सधि कर ली और इस प्रकार अपनी स्वतत्रता बेच कर जान बचा ली।

खलाफ हसन बसरी—एक विदेशी सौदागर, जो पन्द्रहवी शताब्दीमे बहमनी राज्यमे आया और आठवें बहमनी सुल्तान फीरोज (दे०) के भाई शाहजादा अहमदको १४२२ ई० मे फीरोजको गद्दीसे उतार देने तथा उसकी हत्या कर डालनेमे मदद की। इसके बाद वह नये सुल्तान अहमद (१४२२-३५ ई०) का वजीर हो गया, परतु, अगले सुल्तान अलाउद्दीन (१४३५-५७ ई०) के राज्यकालमे बहमनी राज्यमे दक्खिनी तथा विलायती अमीरोके बीच एक दगे-के दौरान मार डाला गया।

खलीलुल्ला खा—उस फौजका एक सिपहसालार, जिसको लेकर बादशाह शाहजहाका सबसे बडा पुत्र शाहजादा दारा (दे०) अपने तीसरे और चौथे भाई शाहजादा औरगजेब तथा शाहजादा मुरादसे १६५८ ई० मे आगराके किलेसे ८ मील पूर्व सामूगढमे लडा। खलीलुल्ला खाकी विश्वासघातपूर्ण सलाहपर ही शाहजादा दारा लडाईके नाजुक दौरमे उस हाथीसे उतर पडा, जिसपर वह लडाईके शुरूसे सवार था और एक घोडेपर सवार हो गया। हाथी-की पीठपर खाली हौदेको देखकर दाराके सिपाहियोने समझा कि वह मारा गया है और वे सब भाग खडे हुए। दारा वह लडाई तो हार ही गया, इसके साथ दिल्लीका ताज भी उसके हाथसे निकल गया।

खानजमा—एक उजबेक अमीर, जिसे बादशाह अकबर (१५५६-१६०५ ई०) की ईरानी चाल-ढाल पसद नही थी। उसने १५६७ ई० मे बादशाहके खिलाफ बगावत कर दी। बगावत शीघ्र कुचल दी गयी। इसकी वजहसे अकबरकी चित्तौडपर चढाईमे कुछ विलम्ब हो गया।

खानजहा बहादुर—बादशाह औरगजेब (१६५९-१७०७ ई०) का एक अधिकारी, जिसने उसके मन्दिरोको तोडनेके हुक्म-का बखूबी पालन किया। उसने १६७९ ई० मे जोधपुर-मे अनेक हिन्दू मन्दिर तोड दिये और कई गाडी भर कर देवमूर्तिया जोधपुरसे आगरा भेजी। औरगजेबने उसे खूब शाबाशी दी।

खानजहा लोदी—एक अफगान सरदार, जो बादशाह शाह-जहाके गद्दीपर बैठनेके समय दक्खिनका सूबेदार था। उसने दावरबख्श (दे०) के बादशाह बनाये जानेका समर्थन किया, परन्तु शाहजहा (१६२७-५९ ई०) ने गद्दीपर बैठनेपर उसे क्षमा कर दिया और दक्खिनके सूबेदार-के पदपर बने रहने दिया। परन्तु, जब वह बादशाहके हुक्मसे बालाघाटको फिरसे न जीत सका, जिसे उसने निजामशाहके हाथ बेच दिया था, तो उसे दिल्ली वापस बुला लिया गया। उसे डर था कि मुझे अभी और दडित किया जायगा। इसलिए वह अहमदनगर भाग गया। परन्तु शाही फौजोने उसका पीछा किया और वह १६३१ ई० मे एक युद्ध मे मारा गया।

खानवाकी लडाई—आगरासे थोडी दूरपर बादशाह बाबर (१५२५-३० ई०) तथा मेवाडके राणा सग्रामसिंहके बीच १५२७ ई० मे हुई, जिसमे राणा सग्रामसिंहकी निर्णयात्मक पराजय हो गयी। इस लडाईके बाद मुगल साम्राज्यके लिए राजपूतानेकी ओरसे कोई भय नही रहा।

खाने-जहान—मूल रूपमे तेलगानाका एक हिन्दू। वह मुसलमान बन गया और अपनी योग्यताके कारण सुल्तान फीरोज तुगलक (१३५१-८८ ई०) का अत्यन्त विश्वस्त उच्च अधिकारी बन गया। वास्तवमे सल्तनतका सारा आतरिक प्रशासन १३७० ई०मे उसकी मृत्यु तक उसीके हाथमे था।

खाने-जहान (कनिष्ठ)—खाने-जहान (ज्येष्ठ) का पुत्र। १३७० ई० मे पिताकी मृत्यु होनेपर उसके स्थानपर सुल्तान फीरोज तुगलक (१३५१-८८ ई०) का वजीर बना। उसने सुल्तान फीरोज और उसके सबसे बडे पुत्र मुहम्मद खासे मनमुटाव करानेकी कोशिश की, परन्तु शाहजादेने सुल्तानके सामने सारे षड्यन्त्रका पर्दाफाश कर दिया। इस तरह खाने-जहान सुल्तानके मनसे उतर गया। १३८७ ई० मे उसे बर्खास्त कर मार डाला गया।

खाने दौरान—शाहजहाके राज्यकाल (१६२८-५८ ई०) मे एक सूबेदार, जो रैयतसे निर्दयतापूर्वक रुपया ऐंठनेके लिए बदनाम था। उसकी मृत्युपर लोगोने इस तरह खुशी मनायी जैसे किसी आफतसे छुटकारा पाया हो।

खाफी खा—खुरासानके ख्वाफ नामक स्थानके निवासी मुहम्मद

हाशिमका उपनाम, जिसने 'मुन्तखवुल-लुवाव' नामक प्रसिद्ध इतिहास ग्रथकी रचना की है। वह मुगल दरवारमे रहता था और उसने अपनी पुस्तक वादशाह मुहम्मदशाह (१७१६–४८ ई०)के राज्यकालमे लिखी। मुसलमान इतिहासकारोमे उसे अत्यन्त तटस्थ लेखक माना जा सकता है। वह इतना उदार और सत्यप्रेमी लेखक था कि उसने अपनी पुस्तकमे मराठा छत्रपति शिवाजीकी विजयोका भी उल्लेख किया है और उनके कुछ गुणोकी प्रशसा की है। उसके ग्रथमे बादशाह औरगजेब (१६५६–१७०७ ई०)के राज्यकालका सबसे प्रामाणिक विवरण मिलता है। वह उसका निकटवर्ती समकालीन कहा जा सकता है।

खाम–भारतीय मुसलिम राज्य-प्रणालीमे राजस्वका एक स्रोत। यह युद्धकी लूट तथा खानोकी उपजका एक बटा पाँच हिस्सा लिया जाता था।

खारवेल–कलिग (उडीसा) तथा उसके आसपासके क्षेत्रका एक प्रारम्भिक राजा। उसके बारेमे सारी सूचनाओका आधार सिर्फ हाथीगुम्फा लेख है, जिसको अभी एकदम सुनिश्चित रीतिसे पढा नही जा सका है। उस लेखमे आये हुए दो वाक्याशोकी सही-सही व्याख्या होना अभी शेष है। अनुमान किया जाता है कि इन वाक्याशोमे तिथिका सकेत है। फिर भी इस लेखका पुरी जिलेमे उदयगिरिपर निर्ग्रन्थ (जैन) साधुओकी एक गुफापर अकित होना प्रमाणित करता है कि खारवेल कलिगका राजा था और निर्ग्रन्थो (जैन साधुओ)का उपासक था। वह महान योद्धा था। उसने पूर्वी भारतमे चतुर्दिक् विजय-यात्राएँ की। उसकी सेनाने यदि सुदूर दक्षिणमे पाडच राजाओकी राज्य सीमातक धावा मारा तो उत्तरमे उसने मगधके राजा वहपति-मितमको परास्त किया, जिसकी पहचान लगभग १८५ ई०पू० मे शुगवश के राजा पुण्यमित्र (दे०) से की जाती है। बताया जाता है कि खारवेलने मथुराके यवन राजा तथा (सातवाहन वशके) एक शातकर्णि राजाको हराया। उसने जनताके कल्याणके लिए भी अनेक कार्य किये। उसने एक नहर नगरके वीचसे निकलवायी, जिसका निर्माण तीन सौ वर्ष पूर्व एक नन्दराजाने किया था। उसके राज्यकालकी अवधि ज्ञात नही है। उसके उत्तराधिकारियोने कोई ख्याति नही प्राप्त की।

खालसा–सिखोका सैनिक धर्मतत्र। इसकी स्थापना १७१६ ई० मे वन्दा (दे०)को सूलीपर चढा दिये जानेके वाद हुई। इसका सूत्रपात कपूरसिह (दे०) ने किया। जैसे-जैसे समय बीतता गया, इसका आशय सिखोकी समूची सैनिक शक्ति हो गया। परतु शुरूमे अनेक वर्षोतक खालसाके अदर एकताका अभाव था। वह वारह मिस्लोमे विभाजित था, जिनमे आपसी लडाई-झगडे चलते रहते थे। महाराज रणजीतसिह (१७६८–१८३६ ई०) (दे०) ने इन मिस्लोको अपने अधिनायकत्वमे सगठित किया और समस्त सिख जनता 'खालसा' सम्बोधित की जाने लगी। प्रथम सिख-युद्ध (दे०) मे खालसाकी हार हुई तथा द्वितीय सिख-युद्ध (१८४८–४६ ई०) मे हारके बाद उसका विघटन कर दिया गया।

खालसा–उस सरकारी जमीनको कहते हैं, जिसका प्रवध सरकार खुद करती है। दिल्लीके सुल्तानोके अतर्गत मालगुजारीकी जो व्यवस्था थी, उसके सम्बधमे इस शब्दका प्रयोग किया जाता था।

खिज़र खा–सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (१२६६–१३१६ ई०)का सबसे बडा पुत्र, १३०३ ई० मे उसे मेवाडका सूवेदार बनाया गया। यह राज्य अलाउद्दीनने हालमे जीता था। खिज़र खा १३११ ई० तक इसका सूवेदार रहा। उसने १३०७ ई० मे गुजरातके पराजित राजा कर्णदेवकी पुत्री देवलदेवीसे विवाह कर लिया। दोनोकी प्रेमगाथाका वर्णन कवि अमीर खुसरो (दे०)ने किया है। सब यही सोचते थे कि वही अपने पिताके राज्यका उत्तराधिकारी होगा। परतु १३१६ ई० मे सुल्तान अलाउद्दीनकी मृत्यु होनेपर उसे मलिक काफूरने अधा वनाकर गद्दीपर बैठनेके अयोग्य कर दिया।

खिज्र खां सैयद–तैमूरकी ओरमे मुलतानका हाकिम। १४१४ ई० मे दिल्लीके अतिम तुगलक सुल्तानके ऊपर उसने चढाई की और उसे वन्दी वनाकर राजधानीपर अधिकार कर लिया। इस प्रकार वह दिल्लीके सुल्तानोमे एक नये वश—सैयद वशका सस्थापक वना। उसका अधिकारक्षेत्र केवल दिल्ली तथा उसके आसपासके क्षेत्र तक सीमित था। उसने दिल्लीपर सात साल (१४१४-२१ ई०) तक शासन किया।

खिलजी–तुर्कोका एक कबीला, जो उत्तरी भारतपर मुसलमानोकी विजयके बाद यहा आकर बस गया। जलालुद्दीनने गुलाम वशके अतिम सुल्तानकी हत्या करके खिलजियोको दिल्लीका सुल्तान बनाया। खिलजी वशने १२९० से १३२० ई० तक राज्य किया। दिल्लीके खिलजी सुल्तानोमे अलाउद्दीन (१२६६–१३१६ ई०) सवसे प्रसिद्ध और योग्य शासक था।

खिलाफत आदोलन–उद्देश्य मुसलमान शासनमे तुर्कोकी प्रभुसत्ता तथा अखडता वनाये रखना तथा उसके सुल्तानको मुसलिम देशोका खलीफा मानना था। १९१४ ई० से

पहले ही तुर्कीकी सल्तनत दिनोंदिन कमजोर होती जा रही थी और उसका तेजीसे ह्रास हो रहा था। प्रथम विश्वयुद्ध (१९१४–१८ ई०) मे उसे जो क्षति उठानी पडी, उसके फलस्वरूप इस बातका खतरा उत्पन्न हो गया कि वह पूरी तरह समाप्त हो जायगी। इससे भारतीय मुसलमानोमे बडी बेचैनी फैली और उन्होने १९२० ई० मे एक आदोलन शुरु किया, जिसका उद्देश्य इग्लैडपर इस बातके लिए जोर डालना था कि वह तुर्की साम्राज्य तथा 'खलीफा' पदको तोडनेमे हिस्सा न ले। भारतीय मुसलमानोका यह आदोलन 'खिलाफत आंदोलन'के नामसे विख्यात है। इसमे 'अलीबधु'–शौकत अली और मुहम्मद अली खूब चमके। दोनो सुशिक्षित और अच्छे वक्ता थे। वे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसमे सम्मिलित हो गये, जिसने महात्मा गाधीके नेतृत्वमे १९२० मे असहयोग आदोलन आरम्भ किया। इस प्रकार खिलाफत आदोलनके फलस्वरूप भारतीय मुसलमानो और हिन्दुओमे अभूतपूर्व एकता स्थापित हो गयी और इससे भारतीय राष्ट्रीय आदोलनको काफी शक्ति मिली। खिलाफत आदोलनके साथ-साथ असहयोग आदोलनने बहुतसे भारतीय मुसलमानोको अफगानिस्तानकी हिज्रतके लिए प्रेरित किया। परंतु अफगानोने मुसलमान होते हुए भी अपने भारतीय मुसलमान भाइयोकी हिज्रतका स्वागत नही किया। उधर तुर्कीमे कमाल अतातुर्कका उदय हुआ, जिसने तुर्कीमे नवजागरणका सचार किया। १९२३ ई० मे तुर्कीके सुल्तानको गद्दीसे उतार दिया गया और १९२० ई० मे खलीफाका पद तोड दिया गया। इस प्रकार खिलाफत आदोलनके नीचे की जमीन ही एक प्रकारसे खिसक गयी और इसके बाद आदोलन शीघ्रतासे समाप्त हो गया।

खीव–उज्बेकिस्तानमे स्थित, जो अब सोवियत सघमे है। पहले अफगान-युद्धके अवसरपर यह अफगानिस्तानका अधीनस्थ राज्य था। रूस खीवको हथियाना चाहता था। परतु १८३९ ई० मे खीवपर उसका आक्रमण पूर्णतया विफल रहा। इससे प्रकट हो गया कि रूस अपनी राजधानीसे इतनी दूरीपर कमजोर पडता है। परतु कई साल बाद १८७३ ई० मे रूसने खीवपर दखल कर लिया। इससे अफगानिस्तानका अमीर शेर अली इतना घबटाया कि उसने ब्रिटिश भारतीय सरकारसे प्रार्थना की कि उसके साथ रक्षात्मक सधि कर ली जाय। उस समय ब्रिटिश भारतीय सरकारने उसका यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। परतु १८७८ ई० मे इसी प्रकारका एक प्रस्ताव अफगानिस्तानसे जबर्दस्ती मनवानेके लिए दूसरा अफगान-युद्ध (१८७८–८१ ई०) छेडा गया।

खुसरो खॉ–एक नीच जातिका गुजराती हिन्दू, जो मुसलमान बन गया था। वह सुल्तान मुबारक खिलजी (१३१६–२० ई०)का कृपापात्र होकर उसका बडा वजीर नियुक्त हो गया। परतु वह इतना कृतघ्न निकला कि उसने १३२० ई० मे अपने मालिककी हत्या कर दी और उसकी गद्दी हथिया ली। गद्दीपर बैठनेपर उसने अपना नाम सुल्तान नासिरुद्दीन खुसरो शाह रखा। उसने राज्यका खजाना या तो उन सरदारोको घूस देनेमे, जिनसे वह डरता था अथवा अपने सम्बधियो और जातिजनोको पुरस्कृत करनेमे लुटा दिया। उसने मरहूम सुल्तानके परिवारके सदस्योकी हत्या कर डाली और उसके समर्थकोका वध कर दिया। परतु वह थोडे ही दिन राज्य कर पाया। वह १३२० ई० के अप्रैलसे सितम्बर तक गद्दीपर रहा। दिल्लीके मुसलमान सरदारोके एक दलने उसे हराकर मार डाला।

खुसरो मलिक–खुसरो शाह (दे०) का पुत्र तथा उत्तराधिकारी। पजाबपर शासन करनेवाला वह अतिम गजनवी था। ११८६ ई० मे शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीने उसे हरा दिया। उसके साथ ही गजनवी वशका अत हो गया।

खुसरो शाह–गजनवी वशके बहराम शाहका पुत्र तथा उत्तराधिकारी। गुज्ज तुर्कोके हमलेके फलस्वरूप ११६० ई० मे गजनी छोडकर पजाब भाग आनेको विवश हुआ, जहा अपनी मृत्यु तक शासन करता रहा। उसके बाद उसका पुत्र खुसरो मलिक उत्तराधिकारी हुआ।

खुसरो, शाहजादा–सलीम (जहागीर) का सबसे बडा पुत्र और बादशाह अकबरका पौत्र। १६०५ ई० मे अकबरकी मृत्युके समय उसकी गद्दीपर सलीमके बजाय शाहजादा खुसरोको बैठानेका प्रयत्न किया गया। राजा मानसिहके समर्थनके बावजूद यह योजना विफल हुई। मानसिह खुसरोका मामा था। सलीमने गद्दीपर बैठनेके बाद अपने पुत्रको क्षमा कर दिया, साथ ही उसे आगरेके किलेमे कैद कर दिया। परतु वह कैदसे निकल भागा और अपने पिता बादशाह जहागीरके खिलाफ बगावतका झडा बुलद कर दिया। परतु उसे शीघ्र परास्त कर दिया गया। बादशाहने उसे फिर क्षमा कर दिया।

इसके बाद शाहजादा खुसरोको गद्दीपर बैठानेके लिए दूसरा षड्यत्र रचा गया, परतु वह निष्फल हो गया। शाहजादेको अधा कर दिया गया। शाहजादा काफी लोकप्रिय था और मुगलोंके खानदानमे एक [illegible] था। इसने मलका नूरजहाँकी पहले पतिसे उत्पन्न कन्याके [illegible]

विवाह करने और उसे अपनी दूसरी पत्नी बनानेसे इनकार कर दिया। शाहजादेका मन अपने पितासे कभी पूरी तरहसे मिल नही पाया। उसका छोटा भाई खुर्रम (शाहजहा) उससे ईर्ष्या एव घृणा करता था। १६२० ई० मे जहागीरने खुसरोको शाहजहाँके सुपुर्द कर दिया। उसने उसे बुरहानपुरमे कैद कर दिया, जहा १६२२ ई० मे उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्युका कारण निश्चित रूपसे ज्ञात नही है, परतु विश्वास किया जाता है कि शाहजहाने द्वेपवश किसी रीतिसे उसकी जान ले ली।

खेर, बी० जी०–बम्बई प्रातमे १९३७ ई० मे बननेवाले पहले काग्रेस मत्रिमडलके मुख्य-मत्री। उन्होने बडी योग्यता तथा सफलताके साथ प्रशासन चलाया तथा शिक्षा-प्रणालीके विकासमे विशेष रुचि दिखलायी।

खैबरका दर्रा–अविभाजित भारतवर्ष और अफगानिस्तानके बीच मुख्य पहाडी दर्रा। इसके पूर्वी (भारतीय) छोरपर पेशावर तथा लण्डी कोतल स्थित है, जहासे अफगानिस्तानकी राजधानी काबुलको मार्ग जाता है। उत्तर-पश्चिमसे भारतपर आक्रमण करनेवाले अधिकाश आक्रमणकारी इसी दर्रेसे भारत मे आये। अब यह दर्रा पाकिस्तानके पश्चिमी पजाब प्रातको अफगानिस्तानसे जोडता है। प्राचीन कालके हिन्दू राजा विदेशी आक्रमणकारियोसे इस दर्रेकी रक्षा नही कर सके। मुसलमानी शासनकालमे तैमूर, बाबर, हुमायू, नादिरशाह तथा अहमदशाह अब्दालीने इसी दर्रेसे होकर भारतपर चढाइया की। जब पंजाब ब्रिटिश शासनमे आ गया, तभी खैबरके दर्रेकी रक्षाकी समुचित व्यवस्था की गयी और उसके बाद इस मार्गसे भारतपर फिर कोई हमला नही हुआ।

खैरपुर–सिधका एक नगर। १८४३ ई० मे ब्रिटिश भारतीय सरकार द्वारा सिधपर दखल किये जानेके समय वहापर तालपुर कबीलेके जो तीन अमीर शासन करते थे, उनमेसे एककी यह राजधानी थी।

खोखर खुर्द–उडीसाकी सीमापर हीरेकी खानोका क्षेत्र। बादशाह जहागीर (१६०५–२७ ई०) ने इसे जीत कर मुगल साम्राज्यमे सम्मिलित किया। १७५७ ई० मे पलासीकी लडाईके बाद यह क्षेत्र अग्रेजोके नियत्रणमे आ गया।

ख्वाजा जहां–मूल नाम अहमद, सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक (१३२०–२५ ई०) के राज्यकालमे इमारतोका दारोगा था। सुल्तानके पुत्र जूना खाने पिताके स्वागतके लिए तुगलकाबादके बाहर एक तोरण बनवाया, जो सुल्तानके ऊपर गिर पडा और उसकी मृत्यु हो गयी। उसके बाद जूना खा सुल्तान मुहम्मद तुगलक (१३२५–५१ ई०) के नामसे गद्दीपर बैठा। अहमदको सुल्तानने 'ख्वाजा जहा'की उपाधि प्रदान की और उसे अपना वजीर बनाया। ख्वाजा जहाने सुल्तानके २६ वर्षके राज्यकालमे उसकी महती सेवा की और उसकी ओरसे कई लडाइया जीती। परतु १३५१ ई० मे सुल्तानकी मृत्युपर उसने उसके भतीजे फीरोज तुगलकके मुकाबलेमे एक प्रतिद्वन्द्वीको गद्दीपर बैठानेकी कोशिश की, परतु उसकी योजना विफल हो गयी। नये सुल्तानने उसे क्षमा कर दिया और उसे सामान जाकर शातिपूर्ण जीवन बितानेकी इजाजत दे दी। परतु उसके साथ जो फौजी टुकडी भेजी गयी थी, उसने उसे रास्तेमे मार डाला।

ख्वाजा जहाँ–मलिक सरवरको बख्शी गयी उपाधि, जो खोजा था। छठे तुगलक सुल्तान नासिरुद्दीन (१३९०–९४ ई०) ने उसे 'मलिक्-उस्-शर्क' (पूरबका स्वामी) बनाकर १३९४ ई० मे जौनपुर भेज दिया। उसने शीघ्र अपना अधिकार गंगाके समूचे दोआबपर कर लिया और १३९९ ई० मे अपनी मृत्यु तक लगभग स्वतत्र सुल्तानकी हैसियतसे इस सारे क्षेत्रपर शासन करता रहा। उसके पुत्र तथा उत्तराधिकारी मुबारकने सुल्तानकी पदवी धारण की और जौनपुर (दे०) के शर्की वशकी स्थापना की।

ख्वाजा जहाँ–कई बरसो तक बहमनी सुल्तानोका वजीर। वह राज्यकी सारी शक्ति अपने हाथमे केन्द्रित करनेके मनसूबे बाधने लगा, इसलिए १४६३ ई० मे उसकी हत्या कर दी गयी और उसका पद और पदवी मुहम्मद गवा (दे०)को प्रदान कर दी गयी।

ख्वाजा हाजी–सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (१२९६–१३१६ ई०)का मशहूर तथा वफादार सिपहसालार। मलिक काफूर (दे०)के साथ दक्खिनपर कई चढाइया की और उसे जीतकर अलाउद्दीनका राज्य वहा स्थापित किया।

ग

गग राजा–द्वारसमुद्रके राजा विष्णुवर्धन (लगभग १११०–४१)का मत्री। विष्णुवर्धन विष्णुका अनन्य उपासक था, जबकि गग राजा जैन था और उसने बहुतसे जैन मदिरोका निर्माण कराया।

गंगवंश–दूसरीसे ग्यारहवी शताब्दी ई० तक मैसूरके अधिकाश भागका शासक। इस वशके प्रथम शासक कोगनिवर्माने

अनेक युद्धोमे विजय प्राप्त की और अपने राज्यका काफी विस्तार किया। उसके उत्तराधिकारियोने भी दक्षिण भारतके राजाओके बीच होनेवाले युद्धोमे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। कुछ समय तक वे पल्लवोकी अधीनतामे रहे। दसवी शताब्दीके गग राजा जैन धर्मके आश्रयदाता थे। ९८३ ई० मे गग राजा राजमल्ल चतुर्थके मत्री चामुण्डराय-ने श्रवण-वेलगोलामे गोमटेश्वरकी साढे छप्पन फुट ऊँची विशाल प्रतिमाका निर्माण कराया। गगोकी शक्तिको विष्णुवर्धन (लगभग १११०–४१)ई० ने तलकाडके युद्धमे नष्ट कर दिया। (डुबरनिल०)

गगवश (पूर्वी)–मैसूरके गगवशकी ही एक शाखा, जिसने कलिग या उडीसापर शासन किया। इस वशका सस्थापक वज्रहस्त था, जिसके पुत्र और उत्तराधिकारी राजराज प्रथमने राजेन्द्र चोलदेव द्वितीय (१०७०–१११८ ई०) की पुत्री राजसुदरीसे विवाह किया। इस वैवाहिक सवधने इस वशकी शक्ति अत्यधिक वढा दी और राजराज प्रथमका पुत्र अनतवर्मा चोलगंग (१०७८–११४८ ई०) (दे०) उत्तरकी ओर अपने साम्राज्यका विस्तार करनेमे समर्थ हुआ। अनतवर्मा चोलगगने ७० वर्ष तक शासन किया और उसके राज्यमे मद्रासके कुछ उत्तरी जिले भी शामिल थे। उसके पास शक्तिशाली नौसेना थी और उसने वगालकी दक्षिणी सीमापर वार-वार हमले किये। अनतवर्माके वाद उसके उत्तराधिकारी चार पुत्रोने कुल मिलाकर एकके वाद एक ६० वर्ष तक राज्य किया। इस अवधिमे तुर्कोके हमले शुरू हो गये थे। पूर्वके गग राजा इनको रोक नही पाये। अनतवर्माके चार पुत्रोके वाद इस वशके नौ और राजाओने उस समय तक शासन किया, जब तक अतिम राजा नरसिह चतुर्थ (१३८४–१४०२ ई०)को तुर्कोने उखाड नही फेका। पूर्वी गग शासक कलाके महान् सरक्षकोमेसे थे। पुरी (उडीसा)का प्रसिद्ध जगन्नाथ मदिर और मुखलिगम् (उडीसा) स्थित राज-राजेश्वर मदिर पूर्वी गग शासकोके कलाप्रेमके भव्य प्रतीक है। गग शासको द्वारा निर्मित ये मदिर भारतमे आज भी अपना सानी नही रखते। (बनर्जी० पृ० २७०, स्मिथ० पृ० ४९८)

गगा–हिन्दुओकी सवसे पवित्र नदी। इसके तटोपर अनेक नगर वसे हुए है, जिनमे सवसे प्राचीन और पवित वाराणसी (दे०) है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक राजधानी पाटलिपुत्र गगा और सोनके सगमपर स्थित है। आधुनिक युगमे व्यापार और वाणिज्यके प्रमुख केन्द्र कलकत्ता महानगरको भी गगाकी ही एक सहायक नदीके तटपर वसाया गया। गगाकी मिट्टी उत्तर भारतके अधिकाश भूभागको उर्वर वनाती है। गगाकी घाटी आज भी भारतका हृदयस्थल मानी जाती है। गगा और यमुनाके वीच दोआवका क्षेत्र भारतका सवसे अधिक उपजाऊ क्षेत्र है। इस क्षेत्रने भारत-मे अनेक वशोका उत्थान और पतन देखा है।

गगाधर शास्त्री–वडौदाके गायकवाडका मुख्य-मत्री। अग्रेजो-से उसकी गाढी मित्रता थी। इसलिए पेशवा वाजीराव द्वितीय (१७९६–१८१८ ई०) उससे नाराज हो गया। पेशवा और गायकवाडके वीच कुछ पुराने विवादोको तय करनेके उद्देश्यसे गगाधर शास्त्री १८१४ ई० मे पूना भेजा गया। पेशवा उसको वहामे नासिक ले गया। नासिकमे पेशवाके हार्दिक मित्र त्र्यम्वकजीने उसकी हत्या करा दी। गगाधर शास्त्रीकी हत्याको ब्रिटिश भारतीय सरकारने अमैत्रीपूर्ण कार्य समझा और परोक्ष रूपमे यही तीसरे मराठा-युद्ध (दे०)का कारण वना।

गंगावाई–पेशवा नारायणराव (१७७२–७३ ई०)की पत्नी। पेशवाकी हत्या चाचा राघोवाके इशारेपर अगस्त १७७३ ई० मे कर दी गयी। अगले वर्ष विधवा गगावाईने एक पुत्रको जन्म दिया, जिसका नाम माधवराव नारायणराव रखा गया। माधवराव १७७४ से १७९६ ई० तक पेशवा रहा।

गगासिह, सर, महाराज–राजपूताना स्थित वीकानेरके १८८७ से १९३४ ई० तक शासक। वे प्रगतिशील भारतीय राजा थे। १९२१ से १९२५ ई० तक वे नरेन्द्रमण्डल (चैम्बर आफ प्रिस)के प्रथम चासलर रहे। दिल्लीमे हुए नरेन्द्र-सम्मेलनका उन्हे महामत्री वनाया गया (१९१६-२० ई०)। प्रथम विश्व-युद्धके समय उन्होने अपने सारे साधनस्रोत ब्रिटिश सरकारकी सहायतामे लगा दिये। व्यक्तिगत युद्ध-सेवाकी इच्छा प्रकट करनेपर उन्हे फ्रास-स्थित ब्रिटेनके प्रधान सेनापति सर जान फेचके स्टाफमे नियुक्त किया गया।

गगू–'फरिश्ता'के अनुसार दिल्लीका एक ब्राह्मण ज्योतिषी और वहमनी राज्यके सस्थापक हसनका गुरु। कहा जाता है उसने हसनकी महानताके वारेमे पहलेसे ही भविष्यवाणी कर दी थी। इस किवदतीकी पुष्टि अन्य इतिहासग्रथ या सिक्को और अभिलेखोके प्रमाणसे नही होती है।

गगे कोड–एक उपाधि, जिसे चोल नरेश राजेन्द्र चोलदेव प्रथम (१०१८–३५ ई०)ने वंगालके राजा महिपाल या गग राजाओपर विजय पानेके उपलक्ष्यमे धारण किया। इस विजयके उपलक्ष्यमे ही उसने गगे कोड-चोलपुरम् नामसे एक नया नगर भी वसाया था। (स्मिथ०)

विवाह करने और उसे अपनी दूसरी पत्नी बनानेसे इनकार कर दिया। शाहजादेका मन अपने पितासे कभी पूरी तरहसे मिल नही पाया। उसका छोटा भाई खुर्रम (शाहजहा) उससे ईर्ष्या एव घृणा करता था। १६२० ई० मे जहागीरने खुसरोको शाहजहाँके सुपुर्द कर दिया। उसने उसे बुरहानपुरमे कैद कर दिया, जहा १६२२ ई० मे उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्युका कारण निश्चित रूपसे ज्ञात नही है, परतु विश्वास किया जाता है कि शाहजहाने द्वेषवश किसी रीतिसे उसकी जान ले ली।

खेर, बी० जी०–बम्बई प्रातमे १९३७ ई० मे बननेवाले पहले काग्रेस मत्रिमडलके मुख्य-मत्री। उन्होने बडी योग्यता तथा सफलताके साथ प्रशासन चलाया तथा शिक्षा-प्रणालीके विकासमे विशेष रुचि दिखलायी।

ख़ैबरका दर्रा–अविभाजित भारतवर्ष और अफगानिस्तानके बीच मुख्य पहाडी दर्रा। इसके पूर्वी (भारतीय) छोरपर पेशावर तथा लण्डी कोतल स्थित है, जहासे अफगानिस्तानकी राजधानी काबुलको मार्ग जाता है। उत्तर-पश्चिमसे भारतपर आक्रमण करनेवाले अधिकाश आक्रमणकारी इसी दर्रेसे भारत मे आये। अब यह दर्रा पाकिस्तानके पश्चिमी पजाब प्रातको अफगानिस्तानसे जोडता है। प्राचीन कालके हिन्दू राजा विदेशी आक्रमणकारियोसे इस दर्रेकी रक्षा नही कर सके। मुसलमानी शासनकालमे तैमूर, बाबर, हुमायू, नादिरशाह तथा अहमदशाह अब्दालीने इसी दर्रेसे होकर भारतपर चढाइया की। जब पजाब ब्रिटिश शासनमे आ गया, तभी खैबरके दर्रेकी रक्षाकी समुचित व्यवस्था की गयी और उसके बाद इस मार्गसे भारतपर फिर कोई हमला नही हुआ।

खैरपुर–सिधका एक नगर। १८४३ ई० मे ब्रिटिश भारतीय सरकार द्वारा सिधपर दखल किये जानेके समय वहापर तालपुर कबीलेके जो तीन अमीर शासन करते थे, उनमेसे एकको यह राजधानी थी।

खोखर खुर्द–उडीसाकी सीमापर हीरेकी खानोका क्षेत्र। बादशाह जहागीर (१६०५–२७ ई०) ने इसे जीत कर मुगल साम्राज्यमे सम्मिलित किया। १७५७ ई० मे पलासीकी लडाईके बाद यह क्षेत्र अग्रेजोके नियत्रणमे आ गया।

ख्वाजा जहा–मूल नाम अहमद, सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक (१३२०–२५ ई०) के राज्यकालमे इमारतोका दारोगा था। सुल्तानके पुत्र जूना खाने पिताके स्वागतके लिए तुगलकाबादके बाहर एक तोरण बनवाया, जो सुल्तानके ऊपर गिर पडा और उसकी मृत्यु हो गयी। उसके बाद जूना खा सुल्तान मुहम्मद तुगलक (१३२५–५१ ई०) के नामसे गद्दीपर बैठा। अहमदको सुल्तानने 'ख्वाजा जहा'की उपाधि प्रदान की और उसे अपना वजीर बनाया। ख्वाजा जहाने सुल्तानके २६ वर्षके राज्यकालमे उसकी महती सेवा की और उसकी ओरसे कई लडाइया जीती। परतु १३५१ ई० मे सुल्तानकी मृत्युपर उसने उसके भतीजे फीरोज तुगलकके मुकाबलेमे एक प्रतिद्वन्द्वीको गद्दीपर बैठानेकी कोशिश की, परतु उसकी योजना विफल हो गयी। नये सुल्तानने उसे क्षमा कर दिया और उसे सामान जाकर शातिपूर्ण जीवन बितानेकी इजाजत दे दी। परतु उसके साथ जो फौजी टुकडी भेजी गयी थी, उसने उसे रास्तेमे मार डाला।

ख्वाजा जहाँ–मलिक सरवरको बख्शी गयी उपाधि, जो खोजा था। छठे तुगलक सुल्तान नासिरुद्दीन (१३९०–९४ ई०) ने उसे 'मलिक्-उस्-शर्क' (पूरबका स्वामी) बनाकर १३९४ ई० मे जौनपुर भेज दिया। उसने शीघ्र अपना अधिकार गगाके समूचे दोआबपर कर लिया और १३९९ ई० मे अपनी मृत्यु तक लगभग स्वतत्र सुल्तानकी हैसियतसे इस सारे क्षेत्रपर शासन करता रहा। उसके पुत्र तथा उत्तराधिकारी मुबारकने सुल्तानकी पदवी धारण की और जौनपुर (दे०) के शर्की वशकी स्थापना की।

ख्वाजा जहाँ–कई बरसो तक बहमनी सुल्तानोका वजीर। वह राज्यकी सारी शक्ति अपने हाथमे केन्द्रित करनेके मनसूबे बाधने लगा, इसलिए १४६३ ई० मे उसकी हत्या कर दी गयी और उसका पद और पदवी मुहम्मद गवा (दे०)को प्रदान कर दी गयी।

ख्वाजा हाजी–सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (१२९६–१३१६ ई०)का मशहूर तथा वफादार सिपहसालार। मलिक काफूर (दे०)के साथ दक्खिनपर कई चढाइया की और उसे जीतकर अलाउद्दीनका राज्य वहा स्थापित किया।

ग

गग राजा–द्वारसमुद्रके राजा विष्णुवर्धन (लगभग १११०–४१)का मत्री। विष्णुवर्धन विष्णुका अनन्य उपासक था, जबकि गग राजा जैन था और उसने बहुतसे जैन मदिरोका निर्माण कराया।

गंगवंश–दूसरीसे ग्यारहवी शताब्दी ई० तक मैसूरके अधिकाश भागका शासक। इस वशके प्रथम शासक कोगनिवर्माने

अनेक युद्धोंमें विजय प्राप्त की और अपने राज्यका काफी विस्तार किया। उनके उत्तराधिकारियोंने भी दक्षिण भारतके राजाओंके बीच होनेवाले युद्धोंमें महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। कुछ समय तक वे पल्लवोंकी अधीनतामें रहे। दसवीं शताब्दीके गग राजा जैन धर्मके आश्रयदाता थे। ९८३ ई० मे गग राजा राजमल्ल चतुर्थके मन्त्री चामुण्डराय-ने श्रवण-बेलगोलामें गोमटेश्वरकी साढे छप्पन फुट ऊँची विशाल प्रतिमाका निर्माण कराया। गगोंकी शक्तिको विष्णुवर्धन (लगभग १११०–४१) ई० ने तलकाटके युद्धमें नष्ट कर दिया। (डुवरनिल०)

गगवश (पूर्वी)—मैसूरके गगवशकी ही एक शाखा, जिसने कलिंग या उडीसापर शासन किया। इस वशका सस्थापक वज्रहस्त था, जिसके पुत्र और उत्तराधिकारी राजराज प्रथमने राजेन्द्र चोलदेव द्वितीय (१०७०–१११८ ई०) की पुत्री राजसुदरीसे विवाह किया। इस वैवाहिक सबधने इस वशकी शक्ति अत्यधिक बढा दी और राजराज प्रथमका पुत्र अनतवर्मा चोलगग (१०७८–११४८ ई०) (दे०) उत्तरकी ओर अपने साम्राज्यका विस्तार करनेमे समर्थ हुआ। अनतवर्मा चोलगगने ७० वर्ष तक शासन किया और उसके राज्यमें मद्रासके कुछ उत्तरी जिले भी शामिल थे। उसके पास शक्तिशाली नौसेना थी और उसने बगालकी दक्षिणी सीमापर बार-बार हमले किये। अनतवर्माके बाद उसके उत्तराधिकारी चार पुत्रोंने कुल मिलाकर एकके बाद एक ६० वर्ष तक राज्य किया। इस अवधिमे तुर्कोंके हमले शुरू हो गये थे। पूर्वके गग राजा इनको रोक नही पाये। अनतवर्माके चार पुत्रोंके बाद इस वशके नौ और राजाओंने उस समय तक शासन किया, जब तक अंतिम राजा नरसिंह चतुर्थ (१३८४–१४०२ ई०)को तुर्कोंने उखाड नही फेका। पूर्वी गग शासक कलाके महान् सरक्षकोंमेसे थे। पुरी (उडीसा)का प्रसिद्ध जगन्नाथ मदिर और मुखलिंगम् (उडीसा) स्थित राज-राजेश्वर मदिर पूर्वी गग शासकोंके कलाप्रेमके भव्य प्रतीक हैं। गग शासकों द्वारा निर्मित ये मदिर भारतमें आज भी अपना सानी नही रखते। (बनर्जी० पृ० २७०, स्मिथ० पृ० ४९८)

गगा—हिन्दुओंकी सबसे पवित्र नदी। इसके तटोंपर अनेक नगर बसे हुए हैं, जिनमें सबसे प्राचीन और पवित्र वाराणसी (दे०) है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक राजधानी पाटलिपुत्र गगा और सोनके सगमपर स्थित है। आधुनिक युगमें व्यापार और वाणिज्यके प्रमुख केन्द्र कलकत्ता महानगरको भी गगाकी ही एक सहायक नदीके तटपर बसाया गया। गगाकी मिट्टी उत्तर भारतके अधिकांश भूभागको उर्वर बनाती है। गगाकी घाटी आज भी भारतका हृदयस्थल मानी जाती है। गगा और यमुनाके बीच दोआबका क्षेत्र भारतका सबसे अधिक उपजाऊ क्षेत्र है। इस क्षेत्रने भारत-मे अनेक वशोंका उत्थान और पतन देखा है।

गंगाधर शास्त्री—बडौदाके गायकवाडका मुख्य-मत्री। अग्रेजों-से उसकी गाढी मित्रता थी। इसलिए पेशवा बाजीराव द्वितीय (१७९६–१८१८ ई०) उससे नाराज हो गया। पेशवा और गायकवाडके बीच कुछ पुराने विवादोंको तय करनेके उद्देश्यसे गगाधर शास्त्री १८१४ ई० में पूना भेजा गया। पेशवा उसको बहानेसे नासिक ले गया। नासिकमें पेशवाके हार्दिक मित्र त्र्यम्बकजीने उसकी हत्या करा दी। गगाधर शास्त्रीकी हत्याको ब्रिटिश भारतीय सरकारने अमैत्रीपूर्ण कार्य समझा और परोक्ष रूपमें यही तीसरे मराठा-युद्ध (दे०)का कारण बना।

गगाबाई—पेशवा नारायणराव (१७७२–७३ ई०)की पत्नी। पेशवाकी हत्या चाचा राघोबाके इशारेपर अगस्त १७७३ ई० मे कर दी गयी। अगले वर्ष विधवा गगाबाईने एक पुत्रको जन्म दिया, जिसका नाम माधवराव नारायणराव रखा गया। माधवराव १७७४ से १७९६ ई० तक पेशवा रहा।

गंगासिंह, सर, महाराज—राजपूताना स्थित बीकानेरके १८८७ से १९३४ ई० तक शासक। वे प्रगतिशील भारतीय राजा थे। १९२१ से १९२५ ई० तक वे नरेन्द्रमण्डल (चैम्बर आफ प्रिंस)के प्रथम चासलर रहे। दिल्लीमें हुए नरेन्द्र-सम्मेलनका उन्हे महामत्री बनाया गया (१९१६-२० ई०)। प्रथम विश्व-युद्धके समय उन्होंने अपने सारे साधनस्रोत ब्रिटिश सरकारकी सहायतामें लगा दिये। व्यक्तिगत युद्ध-सेवाकी इच्छा प्रकट करनेपर उन्हे फ्रास-स्थित ब्रिटेनके प्रधान सेनापति सर जान फ्रेंचके स्टाफमें नियुक्त किया गया।

गगू—'फरिश्ता'के अनुसार दिल्लीका एक ब्राह्मण ज्योतिषी और बहमनी राज्यके सस्थापक हसनका गुरु। कहा जाता है उसने हसनकी महानताके बारेमें पहलेसे ही भविष्यवाणी कर दी थी। इस किंवदतीकी पुष्टि अन्य इतिहासग्रथ या सिक्कों और अभिलेखोंके प्रमाणसे नहीं होती है।

गगे कोंड—एक उपाधि, जिसे चोल नरेश राजेन्द्र चोलदेव प्रथम (१०१८–३५ ई०)ने बगालके राजा महिपाल या गग राजाओंपर विजय पानेके उपलक्ष्यमें धारण किया। इस विजयके उपलक्ष्यमें ही उसने गगे कोंड-चोलपुरम्के नामसे एक नया नगर भी बसाया था। (स्मिथ०)

विवाह करने और उसे अपनी दूसरी पत्नी बनानेसे इनकार कर दिया। शाहजादेका मन अपने पितासे कभी पूरी तरहसे मिल नही पाया। उसका छोटा भाई खुर्रम (शाहजहा) उससे ईर्ष्या एव घृणा करता था। १६२० ई० मे जहागीरने खुसरोको शाहजहाँके सुपुर्द कर दिया। उसने उसे बुरहानपुरमे कैद कर दिया, जहा १६२२ ई० मे उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्युका कारण निश्चित रूपसे ज्ञात नही है, परतु विश्वास किया जाता है कि शाहजहाने द्वेपवश किसी रीतिसे उसकी जान ले ली।

खेर, बी० जी०–बम्बई प्रातमे १९३७ ई० मे बननेवाले पहले काग्रेस मत्रिमडलके मुख्य-मत्री। उन्होने बडी योग्यता तथा सफलताके साथ प्रशासन चलाया तथा शिक्षा-प्रणालीके विकासमे विशेप रुचि दिखलायी।

खैबरका दर्रा–अविभाजित भारतवर्ष और अफगानिस्तानके बीच मुख्य पहाडी दर्रा। इसके पूर्वी (भारतीय) छोरपर पेशावर तथा लण्डी कोतल स्थित है, जहासे अफगानिस्तानकी राजधानी काबुलको मार्ग जाता है। उत्तर-पश्चिमसे भारतपर आक्रमण करनेवाले अधिकाश आक्रमणकारी इसी दर्रेसे भारत मे आये। अब यह दर्रा पाकिस्तानके पश्चिमी पजाब प्रातको अफगानिस्तानसे जोडता है। प्राचीन कालके हिन्दू राजा विदेशी आक्रमणकारियोसे इस दर्रेकी रक्षा नही कर सके। मुसलमानी शासनकालमे तैमूर, बाबर, हुमायू, नादिरशाह तथा अहमदशाह अब्दालीने इसी दर्रेसे होकर भारतपर चढ़ाइया की। जब पजाब ब्रिटिश शासनमे आ गया, तभी खैबरके दर्रेकी रक्षाकी समुचित व्यवस्था की गयी और उसके बाद इस मार्गसे भारतपर फिर कोई हमला नही हुआ।

खैरपुर–सिधका एक नगर। १८४३ ई० मे ब्रिटिश भारतीय सरकार द्वारा सिधपर दखल किये जानेके समय वहापर तालपुर कबीलेके जो तीन अमीर शासन करते थे, उनमेसे एककी यह राजधानी थी।

खोखर खुर्द–उडीसाकी सीमापर हीरेकी खानोका क्षेत्र। बादशाह जहागीर (१६०५–२७ ई०) ने इसे जीत कर मुगल साम्राज्यमे सम्मिलित किया। १७५७ ई० मे पलासीकी लडाईके बाद यह क्षेत्र अग्रेजोके नियत्रणमे आ गया।

ख्वाजा जहा–मूल नाम अहमद, सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक (१३२०–२५ ई०) के राज्यकालमे इमारतोका दारोगा था। सुल्तानके पुत्र जूना खाने पिताके स्वागतके लिए तुगलकाबादके बाहर एक तोरण बनवाया, जो सुल्तानके ऊपर गिर पडा और उसकी मृत्यु हो गयी। उसके बाद जूना खा सुल्तान मुहम्मद तुगलक (१३२५–५१ ई०) के नामसे गद्दीपर बैठा। अहमदको सुल्तानने 'ख्वाजा जहा'की उपाधि प्रदान की और उसे अपना वजीर बनाया। ख्वाजा जहाने सुल्तानके २६ वर्षके राज्यकालमे उसकी महती सेवा की और उसकी ओरसे कई लडाइया जीती। परतु १३५१ ई० मे सुल्तानकी मृत्युपर उसने उसके भतीजे फीरोज तुगलकके मुकाबलेमे एक प्रतिद्वन्द्वीको गद्दीपर बैठानेकी कोशिश की, परतु उसकी योजना विफल हो गयी। नये सुल्ताननने उसे क्षमा कर दिया ओर उसे सामान जाकर शातिपूर्ण जीवन बितानेकी इजाजत दे दी। परतु उसके साथ जो फौजी टुकडी भेजी गयी थी, उसने उसे रास्तेमे मार डाला।

ख्वाजा जहाँ–मलिक सरवरको बख्शी गयी उपाधि, जो खोजा था। छठे तुगलक सुल्तान नासिरुद्दीन (१३९०–९४ ई०) ने उसे 'मलिक्-उस्-शर्क' (पूरबका स्वामी) बनाकर १३९४ ई० मे जौनपुर भेज दिया। उसने शीघ्र अपना अधिकार गगाके समूचे दोआबपर कर लिया और १३९९ ई० मे अपनी मृत्यु तक लगभग स्वतत्र सुल्तानकी हैसियतसे इस सारे क्षेत्रपर शासन करता रहा। उसके पुत्र तथा उत्तराधिकारी मुबारकने सुल्तानकी पदवी धारण की और जौनपुर (दे०) के शर्की वशकी स्थापना की।

ख्वाजा जहाँ–कई बरसो तक बहमनी सुल्तानोका वजीर। वह राज्यकी सारी शक्ति अपने हाथमे केन्द्रित करनेके मनसूबे बाधने लगा, इसलिए १४६३ ई० मे उसकी हत्या कर दी गयी और उसका पद और पदवी मुहम्मद गवा (दे०)को प्रदान कर दी गयी।

ख्वाजा हाजी–सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (१२९६–१३१६ ई०)का मशहूर तथा वफादार सिपहसालार। मलिक काफूर (दे०)के साथ दक्खिनपर कई चढाइया की और उसे जीतकर अलाउद्दीनका राज्य वहा स्थापित किया।

ग

गग राजा–द्वारसमुद्रके राजा विष्णुवर्धन (लगभग १११०–४१)का मत्री। विष्णुवर्धन विष्णुका अनन्य उपासक था, जबकि गग राजा जैन था और उसने बहुतसे जैन मदिरोका निर्माण कराया।

गंगवंश–दूसरीसे ग्यारहवी शताब्दी ई० तक मैसूरके अधिकाश भागका शासक। इस वशके प्रथम शासक कोगनिवर्माने

अनेक युद्धोमे विजय प्राप्त की और अपने राज्यका काफी विस्तार किया। उसके उत्तराधिकारियोंने भी दक्षिण भारतके राजाओंके बीच होनेवाले युद्धोमे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। कुछ समय तक वे पल्लवोकी अधीनतामे रहे। दसवी शताब्दीके गग राजा जैन धर्मके आश्रयदाता थे। ९८३ ई० मे गग राजा राजमल्ल चतुर्थके मत्री चामुण्डराय-ने श्रवण-बेलगोलामे गोमटेश्वरकी साढे छप्पन फुट ऊँची विशाल प्रतिमाका निर्माण कराया। गगोकी शक्तिको विष्णुवर्धन (लगभग १११०–४१) ई० ने तलकाडके युद्धमे नष्ट कर दिया। (डुवरनिल०)

गगवश (पूर्वी)—मैसूरके गगवशकी ही एक शाखा, जिसने कलिंग या उडीसापर शासन किया। इस वशका सस्थापक वज्रहस्त था, जिसके पुत्र और उत्तराधिकारी राजराज प्रथमने राजेन्द्र चोलदेव द्वितीय (१०७०–१११८ ई०) की पुत्री राजसुदरीसे विवाह किया। इस वैवाहिक सबधने इस वशकी शक्ति अत्यधिक बढ़ा दी और राजराज प्रथमका पुत्र अनतवर्मा चोलगग (१०७८–११४८ ई०) (दे०) उत्तरकी ओर अपने साम्राज्यका विस्तार करनेमे समर्थ हुआ। अनतवर्मा चोलगगने ७० वर्ष तक शासन किया और उसके राज्यमे मद्रासके कुछ उत्तरी जिले भी शामिल थे। उसके पास शक्तिशाली नौसेना थी और उसने बगालकी दक्षिणी सीमापर बार-बार हमले किये। अनतवर्माके बाद उसके उत्तराधिकारी चार पुत्रोने कुल मिलाकर एकके बाद एक ६० वर्ष तक राज्य किया। इस अवधिमे तुर्कोके हमले शुरू हो गये थे। पूर्वके गग राजा इनको रोक नही पाये। अनतवर्माके चार पुत्रोके बाद इस वशके नौ और राजाओंने उस समय तक शासन किया, जब तक अतिम राजा नरसिंह चतुर्थ (१३८४–१४०२ ई०) को तुर्कोने उखाड नही फेका। पूर्वी गग शासक कलाके महान् सरक्षकोमेसे थे। पुरी (उडीसा) का प्रसिद्ध जगन्नाथ मदिर और मुखलिंगम् (उडीसा) स्थित राज-राजेश्वर मदिर पूर्वी गग शासकोके कलाप्रेमके भव्य प्रतीक है। गग शासको द्वारा निर्मित ये मदिर भारतमे आज भी अपना सानी नही रखते। (बनर्जी० पृ० २७०, स्मिथ० पृ० ४९८)

गंगा—हिन्दुओंकी सबसे पवित्र नदी। इसके तटोपर अनेक नगर बसे हुए है, जिनमे सबसे प्राचीन और पवित्र वाराणसी (दे०) है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक राजधानी पाटलिपुत्र गगा और सोनके सगमपर स्थित है। आधुनिक युगमे व्यापार और वाणिज्यके प्रमुख केन्द्र कलकत्ता महानगरको भी गगाकी ही एक सहायक नदीके तटपर बसाया गया। गगाकी मिट्टी उत्तर भारतके अधिकाश भूभागको उर्वर बनाती है। गगाकी घाटी आज भी भारतका हृदयस्थल मानी जाती है। गगा और यमुनाके बीच दोआबका क्षेत्र भारतका सबसे अधिक उपजाऊ क्षेत्र है। इस क्षेत्रने भारत-मे अनेक वशोका उत्थान और पतन देखा है।

गगाधर शास्त्री—बडौदाके गायकवाड़का मुख्य-मत्री। अग्रेजो-से उसकी गाढी मित्रता थी। इसलिए पेशवा बाजीराव द्वितीय (१७९६–१८१८ ई०) उससे नाराज हो गया। पेशवा और गायकवाडके बीच कुछ पुराने विवादोको तय करनेके उद्देश्यसे गगाधर शास्त्री १८१४ ई० मे पूना भेजा गया। पेशवा उसको वहासे नासिक ले गया। नासिकमे पेशवाके हार्दिक मित्र त्र्यम्बकजीने उसकी हत्या करा दी। गगाधर शास्त्रीकी हत्याको ब्रिटिश भारतीय सरकारने अमैत्रीपूर्ण कार्य समझा और परोक्ष रूपसे यही तीसरे मराठा-युद्ध (दे०) का कारण बना।

गंगाबाई—पेशवा नारायणराव (१७७२–७३ ई०) की पत्नी। पेशवाकी हत्या चाचा राघोबाके इशारेपर अगस्त १७७३ ई० मे कर दी गयी। अगले वर्ष विधवा गगाबाईने एक पुत्रको जन्म दिया, जिसका नाम माधवराव नारायणराव रखा गया। माधवराव १७७४ से १७९६ ई० तक पेशवा रहा।

गगासिह, सर, महाराज—राजपूताना स्थित बीकानेरके १८८७ से १९३४ ई० तक शासक। वे प्रगतिशील भारतीय राजा थे। १९२१ से १९२५ ई० तक वे नरेन्द्रमण्डल (चैम्बर आफ प्रिंस) के प्रथम चासलर रहे। दिल्लीमे हुए नरेन्द्र-सम्मेलनका उन्हे महामत्री बनाया गया (१९१६-२० ई०)। प्रथम विश्व-युद्धके समय उन्होंने अपने सारे साधनस्रोत ब्रिटिश सरकारकी सहायतामे लगा दिये। व्यक्तिगत युद्ध-सेवाकी इच्छा प्रकट करनेपर उन्हे फ्रास-स्थित ब्रिटेनके प्रधान सेनापति सर जान फ्रेंचके स्टाफमे नियुक्त किया गया।

गगू—'फरिश्ता'के अनुसार दिल्लीका एक ब्राह्मण ज्योतिषी और बहमनी राज्यके सस्थापक हसनका गुरु। कहा जाता है उसने हसनकी महानताके बारेमे पहलेसे ही भविष्यवाणी कर दी थी। इस किवदतीकी पुष्टि अन्य इतिहासग्रथ या सिक्को और अभिलेखोके प्रमाणसे नही होती है।

गगे कोड—एक उपाधि, जिसे चोल नरेश राजेन्द्र चोलदेव प्रथम (१०१८–३५ ई०) ने बगालके राजा महिपाल या गग राजाओपर विजय पानेके उपलक्ष्यमे धारण किया। इस विजयके उपलक्ष्यमे ही उसने गगे कोड-चोलपुरम्के नामसे एक नया नगर भी बसाया था। (स्मिथ०)

गजाम–उडीसाका एक नगर, जो ६१९ ई० मे कन्नौजके सम्राट हर्षवर्धन (६०६–४७ ई०) के प्रतिद्वन्द्वी और समकालीन बगालके राजा गशाकके नियन्त्रणमे था। ६४८ ई० मे हर्षने हमला कर इसपर अपना अधिकार स्थापित किया। इस समय यह महत्त्वपूर्ण समृद्ध नगर है।

गंड (९९९–१०२५)–चदेल राजा धगका पुत्र और उत्तराधिकारी। वह पजाबके राजा आनदपाल द्वारा महमूद गजनीका सामना करनेके लिए १००८–९ ई० मे बनाये गये हिन्दू राजाओके सघमे शामिल हुआ और सबके साथ हार गया। दस वर्ष बाद गडके पुत्र विद्याधरने कन्नौजके शासक राज्यपालपर हमला कर उसे मार डाला, क्योकि उसने कायरतापूर्वक महमूद गजनीका आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। इस बातसे क्रुद्ध होकर सुलतान गजनीने गडके राज्यपर हमला कर दिया और उसे कालजरका दुर्ग समर्पित कर सुलह करनेको बाध्य किया। (स्मिथ०)

गडमककी संधि–द्वितीय अफगान-युद्ध (दे०) (१८७८–८० ई०)के दौरान मई १८७९ मे भारतीय ब्रिटिश सरकारके तत्कालीन वाइसराय लार्ड लिटन और अफगानिस्तानके अपदस्थ अमीर शेरअलीके बडे पुत्र याकूब खाके बीच हुई थी। इस सधिके अन्तर्गत याकूब खॉ, जिसे अमीरके रूपमे मान्यता दी गयी थी, अपने विदेशी सबध ब्रिटिश निर्देशनसे सचालित करने, राजधानी काबुलमे ब्रिटिश रेजीडेट रखने और कुर्रम दर्रे तथा पिशीन और सीबी जिलोको ब्रिटिश नियन्त्रणमे देनेके लिए राजी हो गया। पिशीन और सीबी जिले बोलन दर्रेके निकट स्थित है। गंडमक-सधि लार्ड लिटनकी अफगान-नीति (दे०)की सबसे बडी उपलब्धि थी और उसने ब्रिटिश भारतको इग्लैण्डके तत्कालीन प्रधान-मत्री लार्ड बेकन्सफील्डके शब्दोमे 'वैज्ञानिक सीमा' प्रदान कर दी। किन्तु अग्रेजोकी यह विजय अल्पकालीन थी। गडमक-संधिके केवल चार महीने बाद ३ सितम्बर १८७९ ई० को अफगानोने फिर सिर उठाया और उन्होने ब्रिटिश रेजीडेण्टकी हत्या कर गडमक-सधिको रद्द कर दिया। अफगानिस्तानमे युद्ध फिर भडक उठा और वह तभी समाप्त हुआ जब अग्रेजोने अपने आश्रित याकूब खाको अफगानोके हाथ समर्पित कर दिया और काबुलमे अपना रेजीडेण्ट रखनेका विचार तथा सधिके अन्तर्गत मिला समग्र अफगान क्षेत्र त्याग दिया।

गधार–प्राचीन कालमे सिंधु नदीके दोनो तटोपर स्थित उस प्रदेशका नाम, जहॉ आजकल पाकिस्तानके रावलपिण्डी और पेशावर जिले है। तक्षशिला और पुष्करावती इसके दो प्रमुख नगर थे। यहॉके लोग 'गाधार' कहलाते थे और उनका उल्लेख अशोककालीन अभिलेखोमे मिलता है। बहिस्तान अभिलेख (लगभग ५२०–५१८ ई० पू०) (दे०)से पता चलता है कि इस प्रदेशको बादमे फारसके सम्राट् दारा (डेरियस)ने अपने राज्यमे मिला लिया। इस राज्यमे कुछ समय कश्मीर भी शामिल था। गधार निश्चित रूपसे अशोकके साम्राज्यका अग था। भारतके साथ उसके घनिष्ठ सबध थे। महाभारतके अनुसार गधारकी राजकुमारी धृतराष्ट्रकी महारानी और दुर्योधनकी माता थी। मौर्य वशके पतनके पश्चात् गधार भारत और बाख्त्री शासकोके बीच बट गया। इसके उपरान्त यह प्रदेश कुषाण राज्यका अग बना। इस प्रकार यह पूर्वी और पश्चिमी सस्कृतियोका सगम-स्थल बन गया और उसने कलाकी एक नयी शैलीको जन्म दिया जो 'गाधार शैली'के नामसे विख्यात है।

गक्खड़–कबायली लोग, जिनका दमन १२०४ ई० मे शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीने और उसके बाद १५३३ ई० मे शेरशाहने किया। शेरशाहने इन लोगोको दबाये रखनेके लिए रोहतास (पजाब)मे किलेका निर्माण भी कराया।

गजनवी–गजनीके शासक। अलप्तगीन प्रथम गजनवी शासक था जिसने ९६३ ई० तक राज्य किया। इसके बाद क्रमश अमीर सुबुक्तगीन (९७७–९७), सुल्तान महमूद (९९७-१०३०) और बहराम शाहने राज्य किया। बहरामके पुत्र खुसरोने गजनीको त्यागकर सन् ११६० मे पजाबमे अड्डा जमाया तथा लाहौरको अपना सदर-मुकाम बनाया। उसका पुत्र खुसरो मलिक अंतिम गजनवी था। उसे सन् ११८६ मे शहाबुद्दीन गोरीने उखाड फेका। इसके साथ ही गजनवी वश नष्ट हो गया।

गजनी–अफगानिस्तानका एक पहाडी नगर, जो काबुलसे दक्षिण-पश्चिम ७८ मीलपर स्थित व्यापारिक केन्द्र है। मध्य युगमे यह किलेके रूपमे था। १०वी शताब्दीमे अलप्तगीन नामक तुर्कने यहा एक छोटेसे राज्यकी स्थापना कर गजनीको राजधानी बनाया। अलप्तगीनकी मृत्यु ९६३ ई० मे हुई। उसका पुत्र सुबुक्तगीन और पौत्र सुल्तान महमूद (९९७–१०३० ई०) था जो महमूद गजनवीके नामसे प्रसिद्ध हुआ। गजनी नगर बडे-बडे भवनो, चौडी सडको और सग्रहालयोसे परिपूर्ण था, लेकिन सन् ११५१ मे गोरके अलाउद्दीन हुसेनने इस नगरको जलाकर खाक कर दिया। इसके लिए उसे जहासोजकी उपाधि मिली। बादमे शहाबुद्दीन गोरीने इस नगरका उद्धार किया और इसे अपना सदर-मुकाम बनाया व यही गोरी बादमे भारतका पहला मुस्लिम विजेता बना। यह नगर आधुनिक काल

तक महत्त्वपूर्ण सामरिक अड्डा बना रहा। प्रथम अफगान-युद्ध (दे०)के दौरान ब्रिटिश जनरल नाटने इस नगरकी किलेबंदीको नष्ट कर दिया।

गजनी खाँ–खान देशका सातवा सुल्तान, जो दाऊदका पुत्र था। गद्दीपर बैठने (सन् १५०८)के दस दिनोके अंदर उसे जहर देकर मार डाला गया।

गजपति प्रतापरुद्र–उडीसाका शासक, जिसे विजयनगरके राजा कृष्णदेव राय (१५१०–३० ई०)ने परास्त किया। इस युद्धमे उदयगिरिका दुर्ग भी गजपतिके हाथोसे निकल गया।

गजबाहु–श्रीलंकाका एक प्राचीन राजा, जिसने सन् १७३ से लेकर १९१ ई० तक राज्य शासन किया। यह तिथि इस दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है कि इससे प्राचीन पाण्ड्य, चेरि और चोल राजाओकी तिथियाँ निश्चित करनेमे सहायता मिलती है। ये राजा उसके समकालीन थे।

गढ कटंगा–गोंडवानाके अन्तर्गत आधुनिक मध्यप्रदेशके उत्तरी जिलोमे कहीपर स्थित था। १५६४ ई० मे जब इसका प्रशासन रानी दुर्गावती अपने अल्पवयस्क पुत्र वीर-नारायणकी अभिभाविकाके रूपमे चला रही थी, मुगल सम्राट् अकबरने उसपर हमला किया और उसे अपने साम्राज्यमे मिला लिया।

गढगाव–अहोम राजाओ (१२२८–१८२४ ई०) के शासन-कालमे आसामकी राजधानी थी। यह आधुनिक शिवसागर जिलेमे दीखू नदीके तटपर स्थित है। १६६२–६३ ई० मे मुगल सम्राट् औरंगजेबके सेनानायक मीर जुमलाने इस शहरपर आक्रमण कर अधिकार कर लिया। शहाबुद्दीनने गढगावपर मीर जुमलाके विजय-अभियानका विस्तारसे वर्णन किया है। गढगावकी शक्ति और वैभवसे प्रभावित होकर वह लिखता है कि इस शहरके चार द्वार थे जो पत्थर और गारेसे बनाये गये थे। चारो द्वारोसे मार्ग राजप्रासादकी ओर जाता था, जो तीन कोस (दो मील)की दूरीपर था। नगरके चारो ओर प्राचीरके स्थानपर दो कोस या उससे कुछ अधिक चौडाईमे उगाया गया बासोंका घना और अभेद्य झुरमुट था। राजप्रासादके चतुर्दिक् कई पुरसा गहरे पानीसे भरी खाई थी। राजप्रासाद ६६ स्तम्भोपर खडा था। प्रत्येक स्तम्भकी गोलाई ६ फुट थी। सभी स्तंभ अत्यधिक चिकने और चमकदार थे। शहाबुद्दीनके विचारानुसार राजप्रासादकी काष्ठकला इतनी भव्य और रमणीक थी कि दुनियामे उसके जोडकी नक्काशी मिलना मुश्किल है। आसामने १६६७ ई० मे मुगल शासनका जुआ उतार फेका और गढगाँव १८२४ ई० मे अंग्रेजोकी विजय तक अहोम राजाओकी राजधानी बना रहा।

गणेश, राजा–प्रारंभमे उत्तरी बंगालके दीनाजपुरका एक शक्तिशाली सामत। योग्यता, अनुभव, सम्पत्ति और अन्य साधनस्रोतोने उसे बंगालके सुल्तान गयासुद्दीन आजम (लगभग १३९३–१४१० ई०)के दरबारका सबसे शक्तिशाली व्यक्ति बना दिया। १४१० ई० मे सुल्तानकी मृत्युके बाद उसके युवा पुत्रोमे उत्तराधिकारका संघर्ष छिड गया और देशमे अव्यवस्था व्याप्त हो गयी। इस अराजक स्थितिका लाभ उठाकर गणेश १४१४ ई० मे बंगालके तख्तपर बैठ गया। उसने 'दनुजमर्दनदेव'की उपाधि धारण की। उसने चार वर्षों तक शासन किया। इस दौरान उसके राज्यपर जौनपुरके सुल्तान इब्राहीम शाहकी फौजने हमला किया। राजा गणेशने हमलावरोको मार भगाया और कुशलतापूर्वक शासन करता रहा। १४१८ ई० मे वृद्धावस्थाके कारण उसकी मृत्यु हो गयी। गणेश अपने पीछे दो पुत्र छोडकर मरा। बडे पुत्रका नाम जदू था, जिसने बादको इसलाम धर्म स्वीकार करके अपना नाम जलालुद्दीन रख लिया और छोटेका नाम महेन्द्र था जो अपने परम्परागत हिन्दू धर्मके प्रति ही आस्थावान् बना रहा। राजाकी मृत्युके बाद कुछ लोगोने महेन्द्रको सिंहासनपर बैठानेका असफल प्रयास किया, किन्तु अतत बंगालकी राजगद्दी बडे पुत्र जदू या जलालुद्दीनको ही मिली। उसने बंगालपर १४१८ से १४३१ ई० तक शासन किया। जलालुद्दीनका पुत्र और उत्तराधिकारी शमसुद्दीन अहमद मूर्ख और निर्दय शासक था। १४४२ ई० मे दो गुलामोने उसकी हत्या कर दी। इसके साथ ही गणेशके वंशका अंत हो गया। (हि० व०, खंड २, पृष्ठ १२०-२९)

गदरोसिया–यूनानी (यवन) बलूचिस्तानको इसी नामसे पुकारते थे। सिकन्दरने भारतविजयके दौरान गदरोसिया-पर भी विजय प्राप्त की थी किन्तु बादको सेल्यूकस (दे०)ने इसे चन्द्रगुप्त मौर्य (लगभग ३८३ से २९८ ई० पू०)को समर्पित कर दिया और वह मौर्योके भारतीय साम्राज्यका अंग बन गया।

गदाई शेख–एक शिया, जिसे सम्राट अकबरके अभिभावक बैरमखाँने सदरुस्सुदुर (विधि और धार्मिक विभागका मुख्य अधिकारी) नियुक्त किया। सभी प्रकारके अनुदानो, अनुमोदनो और भत्तोपर उसका नियंत्रण था। गदाईको इतने ऊँचे पदके लायक कोई विशेष योग्यता नहीं प्राप्त थी और ऊपरसे वह शिया था, इसलिए इस पदपर उसकी

नियुक्तिकी वजहसे कट्टर सुन्नी मुसलमानोंने बैरमखाँका विरोध और जोर-शोरसे शुरु कर दिया।

गदाधर सिंह–उन्तीसवा अहोम राजा, जिसने आसामपर पन्द्रह वर्षो (१६८१–९६ ई०) तक राज्य किया। उसने सबसे पहले १६८२ ई० में गौहाटीको मुगल आधिपत्यसे मुक्त कराया और औरंगजेबको मोनास नदी अहोम राज्यकी सीमा माननेके लिए मजबूर किया। मोनास नदी आधुनिक गोलपाडा और कामरूप जिलोके बीच बहती है। गदाधर सिंह बहुत ही शक्तिशाली शासक था। उसने सभी आतरिक षड्यन्त्रो और उपद्रवोका दमन किया, आसाममे राज्यकी गिरी हुई प्रतिष्ठाको ऊँचा उठाया, मीरी और नागा विद्रोहियोंको कुचला और सामन्तोकी शक्तिको तोडा। गदाधर सिंह शाक्त (शक्तिका उपासक) था, इसलिए उसने वैष्णवोका उत्पीडन किया और वैष्णव गोसाइयोको कुचल डाला। उसने गौहाटीमे कचेरी घाटके बिलकुल सामने ब्रह्मपुत्रके एक द्वीपमे उमानन्द मंदिरका निर्माण कराया, ब्राह्मणो और हिन्दू मंदिरोको भूमिदान किया, कई राजमार्गोका निर्माण कराया, पत्थरके दो पुल बनवाये, तालाब खुदवाये और आसाममे जोतोका विस्तृत सर्वेक्षण आरंभ कराया। (**सर एडवर्ड गेट कृत 'हिस्ट्री आफ आसाम'**)।

गफ, ह्यू (प्रथम वाईकाउन्ट) (१७७९–१८६९)–एक ब्रिटिश सेनाधिकारी, १७९४ मे ब्रिटिश सेनामे भर्ती हुआ, स्पेन प्रायद्वीपके युद्धमे भाग लिया। १८३७ ई० मे मद्रासकी सेनाके मैसूर डिवीजनका सेनापति बनकर भारत आया तथा १८४१–४३ ई० के दौरान चीनके युद्धमे भाग लिया। वहासे लौटनेपर वह ब्रिटिश भारतीय सेनाका प्रधान सेनापति हो गया। उसने १८४३ ई० मे महाराजपुरके युद्धमे शिन्देकी फौजोको हराया तथा प्रथम सिख-युद्ध (१८४५–४६)के दौरान ब्रिटिश सेनाका नेतृत्व किया। उसके अधीन लार्ड हार्डिजने भी काम किया था, जो बादमे भारतका गवर्नर-जनरल बना। उसने मुदकीकी लडाई (१८४५), फीरोजशाहकी लडाई (१८४६) तथा सुबराहानकी लडाई (१८४६)मे सिखोको परास्त कर अंतिम विजय प्राप्त की। दूसरे सिख-युद्ध (१८४८–४९)मे भी उसने ब्रिटिश सेनाका नेतृत्व किया तथा रामनगरके युद्ध (१८४८)मे विजय प्राप्त की। चिलियानवालाकी लडाई (१८४९)मे उसे कुछ पीछे हटना पडा था, लेकिन गुजरातके युद्धमे उसने निर्णायक विजय प्राप्त की। सिख लोग सदाके लिए परास्त हो गये। उसने मई १८४९ ई० मे अवकाश ग्रहण कर लिया। कहा जाता है कि ड्यूक आफ वेलिंगटनको छोडकर कोई भी सेनापति ह्यू गफकी भाँति युद्धोमे ऐसी सफलताके साथ नहीं लडा।

गफूर खाँ–लूटमार करनेवाले अफगान सरदार अमीर खाँका दामाद। अमीर खाँको कम्पनीने १८१७ ई०मे टोंकका नवाब स्वीकार किया। इसी प्रकार गफूर खाँ जकडाका नवाब माना गया, जिसे होल्करने मन्दोरकी सधिके अनुसार १८१९ ई०मे अंग्रेजोके हाथ सौंप दिया।

गया–बिहारका एक नगर और हिन्दुओका तीर्थस्थल। हिन्दू लोग यहा एक खास स्थानपर अपने पुरखोको पिण्डदान देना अपना कर्तव्य समझते है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि यहा भगवान् विष्णुके चरणचिह्न पडे थे। गयासे कुछ मीलकी दूरीपर बोधि-गया है, जहा गौतम बुद्धको बोधिलाभ हुआ था, इसलिए यह स्थान बौद्ध धर्मावलम्बियोका तीर्थ है। गयामे हर वर्ष खासकर पितृपक्षके दिनोमे भारी सख्यामे दूर दूरसे तीर्थयात्री आते है और शहरसे लगकर बहनेवाली फाल्गु नदीके जल और बालूके पिण्ड बनाकर अपने पूर्वजोको चढाते है। गयामें अब मगध विश्वविद्यालय स्थापित हो गया है।

गयासुद्दीन–गोरका सुल्तान, जिसने ११७३ ई०मे गजनीको तुर्कमानोसे छीन लिया। ये तुर्कमान गजनी और उसके आसपासके क्षेत्रोपर ११५१ ई० से कब्जा किये हुए थे। गयासुद्दीनने बादमे यह क्षेत्र अपने भाई शहाबुद्दीनको सौंप दिया जो मुईजुद्दीन मुहम्मद बिन साम अथवा मुहम्मद गोरीके नामसे विख्यात है। गयासुद्दीन १२०३ ई० मे मर गया। उसके बाद गद्दी उसके भाई शहाबुद्दीनको मिली, जो दिल्लीको जीत चुका था।

गयासुद्दीन खिलजी–मालवाके खिलजी वशका द्वितीय सुल्तान, जिसका शासनकाल (१४६९ से १५०१ ई०) शातिपूर्ण रहा। उसने मरनेके एक वर्ष पहले ही अपने बडे पुत्रको गद्दीपर बैठा दिया था।

गयासुद्दीन तुगलक (अथवा तुगलक शाह)–दिल्लीका सुल्तान (१३२०–२५ ई०)। उसने तुगलक वशकी स्थापना की थी। उसका पिता सुल्तान बलबन (१२६६–८६) (दे०)का तुर्क गुलाम था। सुल्तानने उसे गुलामीसे मुक्त कर दिया था और उसने एक जाट स्त्रीसे विवाह किया। उसके लडके गयासुद्दीनका आरंभिक नाम गाजी मलिक था, जो अपने गुणो और वीरताके कारण सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (१२९६–१३१६ ई०)के द्वारा उच्च पदोपर नियुक्त किया गया। उसने मगोलोके आक्रमणमे कई बार उत्तर-पश्चिमी सीमाकी रक्षा की। खिलजी वशके अंतिम शासक मुबारकको मारकर (१३२० ई०) गद्दीपर

बैठनेवाले सरदार खुसरोको भी गयासुद्दीनने पराजित किया। तदनन्तर अमीरोंने गयासुद्दीनको ही गद्दीपर बैठा दिया। उसने तुगलक वंशकी स्थापना की। गद्दीपर बैठनेके बाद उसने केवल ५ वर्ष शासन किया लेकिन अपने अल्पकालीन शासनमें ही दिल्लीके सुल्तानोंकी सैनिक शक्तिको पुनर्गठित किया। वारंगलके काकतीय राजा प्रतापरुद्रदेव द्वितीयको पराजित किया, और बंगालके विद्रोही हाकिम गयासुद्दीन बहादुरको हराया। इसके अलावा उसने गैरकानूनी भूमि अनुदानोंको छीनकर, योग्य और ईमानदार हाकिमोंको नियुक्त करके, लगानवसूलीमें मनमानी बंद करके, कृषिको प्रोत्साहित कर, सिंचाईके साधन प्रस्तुत कर, न्याय एवं पुलिस-व्यवस्थामें सुधार करके, गरीबोंके लिए सहायताकी व्यवस्था करके तथा डाक-व्यवस्थाको विकसित करके राज्यव्यवस्थाको आदर्श रूप दिया। उसने विद्वानोंका भी संरक्षण किया, जिनमें अमीर खुसरो मुख्य था। एक दुर्घटनाके कारण गयासुद्दीनके शासनका अंत हो गया, जिसके लिए कुछ इतिहासकारोंने उसके पुत्र जूनाखाँ (दे०)को ही जिम्मेदार बताया है, जो बादमें मुहम्मद तुगलकके नाममें गद्दीपर बैठा।

गयासुद्दीन वलवन—देखिये, 'वलवन'।

गयासुद्दीन बहमनी—दक्षिणके बहमनी वंशका छठा सुल्तान, जिसने १३९७ ई०में कुछ महीने तक ही शासन किया। उसे अंधा करके गद्दीसे उतार दिया गया।

गयासुद्दीन बहादुर—बंगालके सूबेदार शम्सुद्दीन फीरोजशाहके पाँच पुत्रोंमेंसे एक। वह १३१० ई०में पूर्वी बंगालपर स्वतंत्र सुल्तानकी भाँति शासन कर रहा था। १३१८ ई० में शम्सुद्दीनके मरनेपर गयासुद्दीन बहादुरने भी अपनेको बंगालकी गद्दीका हकदार बताया किंतु वह पराजित हो गया। १३२४ ई०में दिल्लीके सुल्तान गयासुद्दीन तुगलकने उसे कैद कर लिया। गयासुद्दीन बहादुरकी मृत्यु कैदखानेमें हुई।

गयासुद्दीन महमूद शाह—हुसेनशाही वंशका अंतिम सुल्तान। इस वंशने १४९३ से १५३८ ई० तक राज्य किया। गयासुद्दीन १५३३ ई०में बंगालकी गद्दीपर बैठा किन्तु वह केवल ५ वर्ष शासन कर सका, क्योंकि शेरखाँ सूरी (दे०)ने उसे बंगालसे खदेड़ दिया।

गवर्नर-जनरल—ब्रिटिश भारतका सर्वोच्च अधिकारी। १७७३ ई०के रेगुलेटिंग ऐक्ट (दे०) के अंतर्गत इस पदकी सृष्टि की गयी थी। सर्वप्रथम वारेन हेस्टिंग्स इस पदपर नियुक्त हुआ। वह १७७४ से १७८६ ई० तक इस पदपर रहा। इस पदका पूरा नाम "बंगालमें फोर्ट विलियमका गवर्नर-जनरल' था जो १८३४ ई० तक रहा। १८३३ ई०के चार्टर ऐक्टके अनुसार इस पदका नाम 'भारतका गवर्नर-जनरल' हो गया। १८५८ ई०में जब भारतका शासन कम्पनीके हाथसे ब्रिटेनकी महारानीके हाथमें आ गया तब गवर्नर-जनरलको 'वाइसराय (राज-प्रतिनिधि) भी कहा जाने लगा। जबतक भारतपर ब्रिटिश शासन रहा तबतक भारतमें कोई भारतीय गवर्नर-जनरल या वाइसराय नहीं हुआ। १७७३ ई०के रेगुलेटिंग ऐक्टमें गवर्नर-जनरलके अधिकारों और कर्त्तव्योंका विवरण दिया हुआ है। बादमें पिटके इंडिया ऐक्ट (१७८४) तथा पूरक ऐक्ट (१७८६)के अनुसार इन अधिकारों और कर्त्तव्योंको बढ़ाया गया। गवर्नर-जनरल अपनी कौंसिल (परिषद)की सलाह एवं सहायतासे शासन करता था, लेकिन आवश्यकता पड़नेपर वह परिषदकी रायकी उपेक्षा भी कर सकता था। इस व्यवस्थासे गवर्नर-जनरल व्यवहारतः भारतका भाग्य-विधाता होता था। केवल सुदूर स्थित ब्रिटेनकी संसद और भारतमंत्री ही उसपर नियंत्रण रख सकते थे। क्रमानुसार निम्नलिखित गवर्नर जनरल हुए

वारेन हेस्टिंग्स, लार्ड कार्नवालिस, सर जान शोर, लार्ड वेलेस्ली, लार्ड कार्नवालिस (द्वितीय), लार्ड मिण्टो (प्रथम), लार्ड हेस्टिंग्स, लार्ड एमहर्स्ट, लार्ड विलियम बेंटिक, लार्ड आकलैंड, लार्ड एलेनबरो, लार्ड हार्डिंग (प्रथम), लार्ड डलहौजी, लार्ड केनिंग, लार्ड एलगिन (प्रथम), लार्ड लारेंस, लार्ड मेयो, लार्ड नार्थब्रुक, लार्ड लिटन (प्रथम), लार्ड रिपन, लार्ड डफरिन, लार्ड लैंसडाउन, लार्ड एलगिन (द्वितीय), लार्ड कर्जन, लार्ड मिण्टो (द्वितीय), लार्ड हार्डिंग (द्वितीय), लार्ड चेम्सफोर्ड, लार्ड रीडिंग, लार्ड इरविन, लार्ड विलिंगटन, लार्ड लिनलिथगो, लार्ड वावेल तथा लार्ड माउण्टबैटेन।

भारतके स्वाधीन होनेपर श्री राजगोपालाचार्य गवर्नर-जनरलके पदपर २५ जनवरी १९५० तक रहे। उसके बाद २६ जनवरी १९५०को भारतके गणतंत्र बन जानेपर गवर्नर-जनरलका पद समाप्त कर दिया गया। लार्ड विलियम बेंटिक बंगालमें फोर्ट विलियमका अंतिम गवर्नर-जनरल था। वही फिर १८३३ ई० के चार्टर एक्टके अनुसार भारतका प्रथम गवर्नर-जनरल बना। लार्ड केनिंग १८५८के भारतीय शासन-विधानके अनुसार प्रथम वाइसराय था तथा लार्ड लिनलिथगो अंतिम वाइसराय। लार्ड माउण्टबैटेन ब्रिटिश सम्राट्का अंतिम प्रतिनिधि था। (**विस्तारके लिए उक्त नामोंके अंतर्गत अन्यत्र देखिये।**)

गवर्नर-जनरलके कानून—वे कानून जिन्हे गवर्नर-जनरल, भारतीय शासन-विधान (१९३५)के अतर्गत प्राप्त अधिकारोके अनुसार बना-बनाकर लागू करता था। ये कानून केवल ६ माह तक वैध माने जाते थे। गवर्नर-जनरल जिन कानूनोको बनाना जरूरी समझता था किन्तु जिनपर विधान-मडलकी स्वीकृति नही मिल पाती थी, उन्हे गवर्नर-जनरल कानून बना सकता था।

गवासपुर—अग्रेजी शासनके समय आधुनिक उत्तरप्रदेशका एक छोटा-सा राज्य, जो १८१८ ई०मे पिण्डारी नेता करीम खाको अग्रेजोके आगे आत्मसमर्पण कर देनेके बाद दे दिया गया था। उसके वशज पिछले समय तक इस रियासतपर शासन करते रहे।

गागेयदेव कलचूरि—यमुना और नर्मदा नदियोके बीचमे स्थित चेदि (दे०)का राजा (लगभग १०१५–४० ई०)। वह योग्य और महत्त्वाकाक्षी शासक था,जिसने 'विक्रमादित्य' उपाधि धारण करते हुए उत्तर भारतमे सर्वशक्तिमान् सार्वभोम सम्राट्की स्थिति प्राप्त करनेकी कोशिश की। उसे इसमे कुछ हद तक सफलता भी मिली। १०१९ ई०मे उसने सुदूर तिरहुत (आधुनिक उत्तरी बिहार) पर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित की। उसने पश्चिमोत्तरके विदेशी हमलावरो और बगालके पाल राजाओसे प्रयाग और वाराणसी नगरोकी रक्षा की। उसके बाद उसका पुत्र कर्ण या लक्ष्मीकर्ण (लगभग १०४०–७० ई०) गद्दीपर बैठा।

गांधी, मोहनदास करमचद—महात्मा गाधीके नामसे प्रसिद्ध, जन्म २ अक्तूबर १८६९ ई०को पश्चिमी भारतके पोरबदर नामक स्थानमे। उनके माता-पिता कट्टर हिन्दू थे। उनके पिता करमचद (कबा गाधी) पहले पोरबदर रियासतके दीवान थे और बादको क्रमश राजकोट (काठियावाड) और वाकानेरमे दीवान रहे। मोहनदास करमचद जब केवल तेरह वर्षके थे और स्कूलमे पढते थे, पोरबदरके एक व्यापारीकी पुत्री कस्तूरबाई (कस्तूरबा)से उनका विवाह कर दिया गया। वर-वधूकी अवस्था लगभग समान थी। दोनोने ६२ वर्ष तक वैवाहिक जीवन बिताया। १९४४ ई०मे पूनाकी ब्रिटिश जेलमे कस्तूरबाका स्वर्गवास हुआ। गाधीजी अठारह वर्षकी आयुमे एक पुत्रके पिता हो गये थे और अगले वर्ष इग्लैण्ड चले गये, जहाँ तीन वर्षो (१८८८–९१) तक रहकर उन्होने 'बैरिस्टरी' पास की। भारत लौटनेपर उन्होने राजकोट और बम्बईमे वकालत शुरू की, किन्तु इसमे उन्हे विशेष सफलता न मिली।

इसलिए सन् १८९२मे जब दक्षिण अफ्रीकामे व्यापार करनेवाले एक भारतीय मुसलमान (मेमन) व्यापारीने उनके सामने अपने मुकदमे देखनेका प्रस्ताव रखा तो उन्होने उसे स्वीकार कर लिया और सन् १८९३मे वे दक्षिण अफ्रीका चले गये। वहाँ पहुँचते ही उन्हे दक्षिण अफ्रीकामे भारतीयोके साथ किये जानेवाले अपमानजनक व्यवहारके कटु अनुभव हुए। एक बार वे डरबनसे प्रिटोरिया तक रेलवे द्वारा प्रथम श्रेणीके डिब्बेमे यात्रा कर रहे थे। रास्तेमे मेरित्सबर्गपर एक गोरा उनके डिब्बेमे घुसा और उसने स्थानीय पुलिसकी सहायतासे उन्हे धक्का देकर डिब्बेसे नीचे उतार दिया,क्योकि दक्षिण अफ्रीकामे किसीभी भारतीयको, चाहे वह कितना ही धनी और प्रतिष्ठित क्यो न हो, गोरोके साथ प्रथम श्रेणीमे यात्रा करनेकी अनुमति नही थी। मेरित्सबर्ग-काडने गाधीजीकी जीवनयात्राको एक नयी दिशा दी। उन्होने स्वय इस घटनाका विवरण इस प्रकार लिखा है—"मेरित्सबर्गमे एक पुलिस कास्टेबुलने मुझे धक्का देकर ट्रेनसे बाहर निकाल दिया। ट्रेन चली गयी। मै विश्रामकक्षमे जाकर बैठ गया। मै ठडसे कॉप रहा था। मुझे नही मालूम था कि मेरा असबाब कहॉपर है और न मै किसीसे कुछ पूछनेकी हिम्मत कर सकता था कि कही फिर बेइज्जती न हो। नीदका सवाल ही नही था। मेरे मनमे ऊहापोह होने लगी। काफी रात गये मै इस नतीजेपर पहुँचा कि भारत वापस भाग जाना कायरता होगी। मैने जो दायित्व अपने ऊपर लिया है, उसे पूरा करना चाहिए।" मेरित्सबर्ग-काडके बाद उन्होने अपने मनमे दक्षिणी अफ्रीकाके प्रवासी भारतीयोको अपमानकी उस जिन्दगीसे उबारनेका सकल्प किया, जिसे वे लम्बे अरसेसे झेलते चले आ रहे थे। इस सकल्पके बाद गाधीजी अगले बीस वर्षो (१८९३–१९१४) तक दक्षिणी अफ्रीकामे रहे और शीघ्र ही वहाँ इनके नेतृत्वमे उत्पीडित भारतीयोपर लगे सारे प्रतिबधोको हटानेके लिए एक आदोलन छिड गया। इस आदोलनको सफल बनानेके उद्देश्यसे उन्होने अपनी चलती हुई वकालत छोड दी और ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर अपने परिवार और मित्रोके साथ टालस्टाय आश्रमकी स्थापना करके वही रहने लगे। उन्होने श्रीमद्भगवद्गीता (दे०) और रस्किन तथा टालस्टायके ग्रथोका गहन अध्ययन किया और उनसे प्रेरणा प्राप्त की। श्रीमद्भगवद्गीताकी तो उन्होने टीका भी की। उन्हे इन ग्रथोके अध्ययनसे विश्वास हो गया कि परमार्थका जीवन ही सच्चा जीवन है, मनुष्यको खुद मेहनत करके अपनी रोजी कमानी चाहिए और जहाँतक हो सके मशीनोपर कमसे कम आश्रित होना चाहिए। उन्होने सन् १८९४मे नेटाल इडियन काग्रेसकी स्थापना की और दक्षिण अफ्रीकाके लम्बे आदोलनके

दौरान उन्होंने उनकी पत्नीने और उनके साथियोंने कई बार जेलयात्रा की। एक अवसरपर कुछ गोरोंने, जो दक्षिण अफ्रीकामें गांधीजीकी मौजूदगी नापसंद करते थे, उनपर हमला कर दिया। एक अन्य अवसरपर कुछ पठानोंने उनपर हमला कर दिया क्योंकि उन्होंने दक्षिणी अफ्रीकी नेता जनरल स्मट्सके साथ एक समझौतेका समर्थन किया था। बादमें जनरल स्मट्सने अपना वचन भंग कर दिया। सन् १८९९–१९०२के दक्षिण अफ्रीकी-युद्ध और १९०६के जुलू-विद्रोहके दौरान गांधीजीने घायल ब्रिटिश सैनिकोंकी शुश्रूषाके लिए, भारतीयोंकी एक एम्बुलेंस कोरका गठन किया। गांधीजी संकटकी घड़ीमें ब्रिटिश साम्राज्यकी सहायता करना भारतीयोंका कर्त्तव्य समझते थे, किन्तु ब्रिटिश साम्राज्यवादी इससे प्रभावित नहीं हुए। उन्होंने उल्टे कई दमनात्मक कानूनोंके ऊपर एक नया कानून बना दिया कि ट्रांसवालमें रहनेवाले प्रत्येक भारतीयको परिवारके प्रत्येक सदस्यके साथ अपना नाम पंजीकृत कराना होगा और उसे अपने साथ हर वक्त निजी परिचयपत्र रखना होगा। इस अपमानजनक कानूनके विरुद्ध गांधीजीने दक्षिण अफ्रीकी भारतीयोंके बीच एक सशक्त आंदोलनका संचालन किया जो अहिंसक सविनय अवज्ञापर आधारित था। उनके नेतृत्वमें अनेक भारतीयोंने अपना नाम पंजीकृत करानेसे इनकार कर दिया और बार-बार कानूनका उल्लंघन करते हुए ट्रांसवाल सीमाको पार किया। गांधीजीके नेतृत्वमें लगभग दो हजार भारतीयोंने इस सिलसिलेमें अपनेको गिरफ्तार कराया। इस विरोधके फलस्वरूप दक्षिणी अफ्रीकी सरकारको सन् १९१४ में अधिकांश काले कानूनोंको रद्द करना पड़ा और गांधीजी एवं उनके अहिंसक सत्याग्रह आंदोलनको यह पहली महान सफलता प्राप्त हुई।

सन् १९१४ में गांधीजी भारत वापस लौट आये। देशवासियोंने उनका भव्य स्वागत किया और उन्हें 'महात्मा' पुकारना शुरू कर दिया। उन्होंने अगले चार वर्ष भारतीय स्थितिका अध्ययन करने तथा स्वयंको व उन लोगोंको तैयार करनेमें बिताये जो सत्याग्रहके द्वारा भारतमें प्रचलित सामाजिक व राजनीतिक बुराइयोंको हटानेमें उनका अनुगमन करना चाहते थे। इस दौरान गांधीजी मूक पर्यवेक्षक नहीं रहे। सन् १९१७में वे उत्तरी बिहारके चम्पारन जिलेमें गये और वहाँ सविनय अवज्ञा आंदोलनके माध्यमसे उन्होंने उत्पीड़ित किसानोंके मनमें नया साहस और विश्वास भरा तथा निलहे गोरोंके हाथों अरसेमें हो रहा किसानोंका शोषण समाप्त किया। इसके शीघ्र बाद गांधीजीने अहमदाबादके मिल मजदूरोंका नेतृत्व किया। इन मजदूरोंको बहुत कम वेतन मिलता था। उन्होंने उनकी हड़ताल संगठित की जो २१ दिनों तक चली और अंतत मालिक-मजदूरों, दोनोंको ही पंच-निर्णयका सिद्धांत स्वीकार करना पड़ा। मार्च सन् १९१९ में केन्द्रीय विधानमंडल द्वारा सभी भारतीय सदस्योंके संयुक्त विरोधके बावजूद रौलट बिल (दे०) पास कर दिये जाने और अप्रैल १९१९ में जालियांवाला बाग हत्याकांड (दे०) के बाद गांधीजीने भारतमें ब्रिटिश सरकारको 'शैतान'की संज्ञा दी और भारतीयोंसे अपील की कि वे सभी सरकारी पदोंसे इस्तीफा दे दें, ब्रिटिश अदालतों तथा स्कूल और कालेजोंका बहिष्कार करें तथा सरकारके साथ असहयोग करके उसे पूरी तरह अपंग बना दें। गांधीजीके इस आह्वानपर रौलट कानूनके विरोधमें बम्बई तथा देशके सभी प्रमुख नगरोंमें ३० मार्च १९१९ को और गाँवोंमें ६ अप्रैल १९१९ को हड़ताल हुई। हड़तालके दिन सभी शहरोंका जीवन ठप्प हो गया, व्यापार बंद रहा और अंग्रेज अफसर असहाय-से देखते रहे। इस हड़तालने असहयोगके हथियारकी शक्ति पूरी तरह प्रकट कर दी। सन् १९२०में गांधीजी कांग्रेसके नेता बन गये और उनके निर्देश और उनकी प्रेरणासे हजारों भारतीयोंने ब्रिटिश सरकारके साथ पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। हजारों असहयोगियोंको ब्रिटिश जेलोंमें ठूंस दिया गया और लाखों लोगोंपर सरकारी अधिकारियों ने बर्बर अत्याचार किये। ब्रिटिश सरकारके इस दमनचक्रके कारण लोग अहिंसक न रह सके और कई स्थानोंपर हिंसा भड़क उठी। हिंसाका इस तरह भड़क उठना गांधीजीको अच्छा न लगा। उन्होंने स्वीकार किया कि अहिंसाके अनुशासनमें बाँधे बिना लोगोंको असहयोग आंदोलनके लिए प्रेरित कर उन्होंने "हिमालय जैसी भूल"की है और यह सोचकर उन्होंने असहयोग आंदोलन वापस ले लिया। अहिंसक असहयोग आंदोलनके फलस्वरूप जिस 'स्वराज्य'को गांधीजीने एक वर्षके अंदर लानेका वादा किया था वह नहीं आ सका, फिर भी लोग आंदोलनकी विफलताकी ओर ध्यान नहीं देना चाहते थे, क्योंकि असलियतमें देखा जाय तो इस अहिंसक असहयोग आंदोलनको जबरदस्त सफलता हासिल हुई। उसने भारतीयोंके मनसे ब्रिटिश तोपों, संगीनों और जेलोंका खौफ निकालकर उन्हें निडर बनाया, जिससे भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यकी नींव हिल गयी। भारतमें ब्रिटिश शासनके दिन अब इने-गिने रह गये। फिर भी अभी संघर्ष कठिन और लंबा था। सन् १९२२ में गांधीजीको

राजद्रोहके अभियोगमे गिरफ्तार कर लिया गया। उनपर मुकदमा चलाया गया और एक मधुरभाषी ब्रिटिश जजने उन्हे ६ वर्ष कैदकी सजा दे दी। सन् १९२४ मे एपेण्डेसाइटिसकी बीमारीकी वजहसे उन्हे रिहा कर दिया गया।

गाधीजीका विश्वास था कि भारतकी भावी राजनीतिक प्रगति हिन्दू-मुस्लिम एकतापर निर्भर करती है। वे इस एकताकी स्थापनाके लिए सन् १९१८ से बराबर प्रयत्नशील रहे। उन्होने इस्लामी देशोकी एकताके प्रतीक-स्वरूप तुर्कीकी खिलाफतके सवालपर भारतीय मुसलमानोकी माँगोका समर्थन किया किन्तु हिन्दू-मुसलिम एकताके उनके इन प्रयासोका कोई स्थायी असर न हुआ। सितम्बर सन् १९२४मे उन्होने दिल्लीमे मुस्लिम नेता मुहम्मद अलीके निवासपर तीन हफ्तेका अनशन किया। उन्हे आशा थी कि यह उपवास हिन्दू और मुसलमानोमे पूर्ण सौहार्द्र और सद्भावना स्थापित कर देगा। कुछ समयके लिए तो ऐसा लगा भी कि उनके इस कठिन व्रतने अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया, किन्तु पारस्परिक अविश्वास और हितोके सघर्षसे, जिसे भारतकी अग्रेज सरकार बराबर उभाडती और बढावा देती रही, दोनो सम्प्रदाय जल्दी ही फिर एकताके पथमे भटक गये। गाधीजीने हिन्दुओसे अपील की कि वे मुसलमानो द्वारा गोवधसे उत्तेजित न हो और नमाजके समय मस्जिदोके सामनेसे बाजा बजाते हुए जुलूस आदि न निकाले। किन्तु गाधीजीके इन उपदेशो और अपीलोसे मुसलमान सतुष्ट नही हुए क्योकि हिन्दुओके साथ उनके मतभेद गोवध और मस्जिदोके सामने बाजेके प्रश्न तक ही सीमित नही थे। इन मतभेदोकी जडे गहरी थी। मुसलमानोको भय था कि अग्रेजो द्वारा सत्ता भारतीयोको हस्तातरित किये जानेपर अल्पसख्यक मुसलमानोपर हिन्दुओका शासन स्थापित हो जायेगा, जो बहुत बडी सख्यामे है। मुसलमानोके इस भयको अग्रेज शासकोने और अधिक भडकाया। सन् १९०९ और १९१९के भारतीय शासन-विधानोके अतर्गत केन्द्रीय तथा प्रातीय विधानमडलोमे साप्रदायिक प्रतिनिधित्वका सिद्धात लागू करके उनके इस भयको साकार रूप दे दिया गया था। गाधीजी और भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस द्वारा मुसलमानोके इस भयका निवारण न हो सका और न ही ऐसा कोई उपाय निकाला जा सका जिससे अल्पसख्यक मुसलमानोको देशके प्रशासनमे समान अधिकारोके लिए आश्वस्त किया जा सकता हो। बस, यहीसे पाकिस्तानकी उत्पत्तिका बीज अकुरित हुआ।

सन् १९२५मे जब अधिकाश काग्रेसजनोने १९१९के भारतीय शासन-विधान द्वारा स्थापित कौंसिलोमे प्रवेश करनेकी इच्छा प्रकट की, तो गाधीजीने कुछ समयके लिए सक्रिय राजनीतिसे सन्यास ले लिया और उन्होने अपने आगामी तीन वर्ष ग्रामोत्थान कार्यमे लगाये। उन्होने गाँवोकी भयकर निर्धनताको दूर करनेके लिए चरखेपर सूत कातनेका प्रचार किया और हिन्दुओमे व्याप्त छुआछूतको मिटानेकी कोशिश की। अपने इस कार्यक्रमको गाधीजी 'रचनात्मक कार्यक्रम' कहते थे। इस कार्यक्रमके जरिये वे अन्य भारतीय नेताओके मुकाबले, गाँवोमे निवास करनेवाली देशकी ९० प्रतिशत जनताके बहुत अधिक निकट आ गये। उन्होने सारे देशमे गाँव-गाँवकी यात्रा की, गाँववालोकी पोशाक अपना ली और उनकी भाषामे उनसे बातचीत की। इस प्रकार उन्होने गाँवोमे रहनेवाली करोडोकी आबादीमे राजनीतिक जागृति पैदा कर दी और स्वराज्यकी मागको मध्यमवर्गीय आदोलनके स्तरसे उठाकर देशव्यापी अदम्य जन-आदोलनका रूप दे दिया। सन् १९२७ मे गाधीजीने फिर राजनीतिमे हिस्सा लेना शुरू कर दिया क्योकि उन्होने देखा कि सवैधानिक विकासकी मद गतिके कारण देशमे हिंसा भडक उठनेकी आशका है। काग्रेस पहले ही यह घोषणा कर चुकी थी कि उसका लक्ष्य पूर्ण स्वतत्रता प्राप्त करना है। गाधीजीके नेतृत्वमे शीघ्र ही यह निर्णय लिया गया कि अगर ब्रिटिश सरकार तत्काल 'औपनिवेशिक स्वराज्य' प्रदान करनेका वायदा नही करती है तो काग्रेस सविनय-अवज्ञाका एक नया अहिंसक आदोलन आरभ करेगी। इस आदोलनका नेतृत्व गाधीजीने सभाल लिया और सन् १९३०मे उन्होने अपने कुछ चुने हुए अनुयायियोके साथ अहमदाबादके निकट साबरमती आश्रमसे दाडी तक पदयात्रा की और वहाँ समुद्रजलसे नमक बनाया, जो तत्कालीन कानूनोके अनुसार अवैध और दडनीय था। साबरमतीसे दाडी तककी यह नमक यात्रा, उनका अवज्ञापूर्ण चुनौतीसे भरा क्रातिकारी कदम था। इसका देशभरपर असाधारण प्रभाव पडा और शीघ्र ही हजारो भारतीयोने विभिन्न कानूनोको तोडना शुरू कर दिया। देशमे एक बार फिर तेजीसे सत्याग्रह आदोलन चल पडा। ब्रिटिश सरकारने पहले तो दमन और उत्पीडनका अपना पुराना रास्ता अपनाया और हजारोकी सख्यामे लोगोको जेलोमे ठूस दिया, गाधीजीको भी कैद कर लिया, किन्तु बादको उसने राजनीतिक बातचीत भी शुरू कर दी। सन् १९३१ और ३२मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके एकमात्र प्रतिनिधिकी हैसियतसे गाधीजीने, लदनमे होनेवाले दूसरे

और तीसरे गोलमेज सम्मेलनों (दे०) में भाग लिया। गांधीजी वहाँपर एक सामान्य ग्रामीण भारतीयकी तरह धोती पहने और चादर ओढ़े उपस्थित हुए जिसका विंस्टन चर्चिलने खूब मजाक उड़ाया और उन्हें 'भारतीय फकीर'की संज्ञा दी। गांधीजीने ब्रिटिश सम्राट्से भी मुलाकात की। गोलमेज सम्मेलनोंके नतीजोंने उन्हें निराश कर दिया और स्वदेश लौटते समय रास्तेमें ही उन्होंने सविनय अवज्ञा आंदोलन फिरसे छेड़नेकी घोषणा कर दी। इस कारण भारत आते ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैम्से मेकडोनाल्डने जिस समय अपना कुख्यात 'कम्युनल एवार्ड' (साम्प्रदायिक निर्णय) (दे०) दिया, गांधीजी उस समय जेलमें थे। इस एवार्डमें केन्द्रीय और प्रांतीय विधानमंडलोंमें न केवल मुसलमानों और ईसाइयोंको अलग प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया था वरन् हिन्दुओंकी परिगणित जातियोंको भी अलग प्रतिनिधित्व दिया गया था। यह सवर्ण हिन्दुओं और परिगणित जातियोंके बीच स्थायी दरार पैदा करनेका कुचक्र था। गांधीजीने इसके खतरेको समझा और विरोध-स्वरूप आमरण अनशन शुरू कर दिया। वे अछूतोंको शेष हिन्दुओंसे हमेशाके लिए अलग कर देनेका विचार गवारा न कर सके। गांधीजीके अनशनके फलस्वरूप पूना-समझौता (दे०) हुआ जिसके अनुसार कुछ वर्षोंके लिए दलित वर्गोंके वास्ते कुछ स्थान आरक्षित रखनेके साथ संयुक्त निर्वाचन-क्षेत्रोंकी व्यवस्था की गयी। इस प्रकार हिन्दू समाजकी एकता और अखण्डता कायम रह सकी।

गांधीजी सन् १९३३में रिहा हुए और इसके बाद अगले कुछ वर्षों तक उन्होंने अपनेको अछूतोद्धारके काम में लगा दिया और इसके हेतु उन्होंने 'हरिजन' नामक एक पत्र निकाला। इस साप्ताहिकका संपादन और प्रकाशन वे आजीवन करते रहे।

जब दूसरा विश्वयुद्ध छिड़ा, गांधीजी ब्रिटेनको अपना नैतिक समर्थन देनेके लिए तैयार हो गये और उन्होंने ऐसा कोई काम न करनेका फैसला किया जिससे संकटकी घड़ीमें उसे परेशानी हो। इसी कारण उन्होंने जर्मनी या जापानकी सैनिक सहायतासे भारतीय स्वाधीनता प्राप्त करनेके नेताजी सुभाषचन्द्र बसुके प्रयासोंका समर्थन नहीं किया। उन्होंने अन्य कांग्रेसी नेताओंके साथ इस बातपर सहमति प्रकट की कि अगर ब्रिटेन युद्धके बाद भारतकी पूर्ण स्वाधीनता देनेका पक्का आश्वासन दे तो भारत उसके साथ पूरा सहयोग करेगा। लेकिन चूंकि ऐसा कोई आश्वासन नहीं मिला, इसलिए गांधीजी तथा कुछ उनके चुने हुए अनुयायियोंने 'व्यक्तिगत सत्याग्रह'के नामसे एक नया आंदोलन शुरू कर दिया। परन्तु इस आंदोलनका ब्रिटिश सरकारपर कोई खास असर नहीं पड़ा। इसलिए अगस्त सन् १९४२में उन्होंने अंग्रेजोंसे भारत छोड़ने और भारतवासियोंको तत्काल सत्ता हस्तांतरित करनेकी मांग की। 'भारत छोड़ो' नारा शीघ्र ही देशभरमें फैल गया। सेना तक इससे प्रभावित हुई। अंग्रेजोंको एक बार फिर एक शक्तिशाली जन-आंदोलनका सामना करना पड़ा। हजारों लोगोंको गिरफ्तार कर जेलमें ठूंस दिया गया। सन् १९४२में सभी कांग्रेसी नेताओंके साथ गांधीजीको भी कैद कर लिया गया। गांधीजीकी पत्नी कस्तूरबा भी गिरफ्तार कर ली गयी और सन् १९४४में नजरबंदीकी अवस्थामें जेलके अंदर ही उनकी मृत्यु हो गयी।

इसके बाद गांधीजीको शीघ्र ही रिहा कर दिया गया। ब्रिटेन और उसके मित्रराष्ट्रोंकी युद्धमें विजय हुई। भारतमें आजादीकी माँगको बराबर जोर पकड़ता देख ब्रिटेनने महसूस किया कि उसके लिए अब भारतपर अपना आधिपत्य बनाये रखना सम्भव नहीं है। उसने भारतीयोंके हाथों सत्ता सौंपनेका फैसला किया। किन्तु उनके सामने प्रश्न यह था कि भारतको एक अखण्ड देशके रूपमें स्वतंत्रता प्रदान की जाय या साम्प्रदायिक आधारपर उसके दो टुकड़े कर दिये जायँ। दोनों सम्प्रदायोंके स्वार्थी नेताओंने देशके अंदर सन् १९४६में भयंकर साम्प्रदायिक दंगे करवा दिये। गांधीजी देशके विभाजन और साम्प्रदायिक दंगे, दोनोंके तीव्र विरोधी थे। उन्होंने बंगाल, बिहार और पंजाबमें गाँव-गाँव जाकर लोगोंको साम्प्रदायिक सौहार्द्र और राष्ट्रीय एकताका महत्त्व समझाया। किन्तु उनके प्रयास सफल न हुए। कांग्रेसके अंदर उनके साथियोंने देशको भारत और पाकिस्तान, दो पृथक् राष्ट्रोंमें बाँट देनेके आधारपर स्वाधीनता स्वीकार कर ली और अंतत गांधीजीको भी उनकी बात मान लेनी पड़ी। भारतने १५ अगस्त १९४७को स्वाधीनता प्राप्त कर ली। किन्तु इसके तुरन्त बाद भयंकर साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे और पश्चिमी सीमाके दोनों ओर अल्पसंख्यक समुदायोंपर जघन्य अत्याचार किये गये। दिल्ली भी इन दंगोंसे अछूती नहीं रही। गांधीजीने साम्प्रदायिक वैमनस्य दूर करनेके उद्देश्यसे जनवरी सन् १९४८में दिल्लीमें पुन अनशन आरम्भ किया। कुछ ही दिनोंके अंदर एक समझौता हुआ और राजधानीमें साम्प्रदायिक सौहार्द्र स्थापित हो गया। गांधीजीने स्वयं हस्तक्षेप करके नवस्थापित भारत सरकारसे पाकिस्तान सरकारको एक बहुत बड़ी धनराशि दिलवा दी। बहुतसे हिन्दुओंके

विचारसे पाकिस्तान सरकार इस धनराशिके लिए कानूनी तौरसे हकदार न थी। इस प्रकार कुछ हिन्दू लोग गांधीजीको भारतमें हिन्दूराजकी स्थापनामें बाधक समझने लगे। गांधीजीके अंतिम उपवासके दस दिनों बाद ही ३० जनवरी १९४८ को एक धर्मान्ध हिन्दूने दिल्लीमें उन्हें उस समय गोली मार दी, जब वे अपनी दैनिक प्रार्थना-सभामें भाग लेने जा रहे थे।

अपने महान नेताकी मृत्युका समाचार सुनकर सारा देश शोकाकुल हो उठा। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरूने राष्ट्रको महात्माजीकी हत्याकी सूचना इन शब्दोंमें दी, "हमारे जीवनसे प्रकाश चला गया और आज चारों तरफ अंधकार छा गया है। मैं नहीं जानता कि मैं आपको क्या बताऊँ और कैसे बताऊँ। हमारे प्यारे नेता, राष्ट्रपिता बापू अब नहीं रहे।" महात्मा गांधी वास्तवमें भारतके 'राष्ट्रपिता' थे। सत्ताइस वर्षोंके अल्पकालमें उन्होंने भारतको सदियोंकी दासताके अँधेरेसे निकालकर आजादीके उजालेमें पहुँचा दिया। किन्तु गांधीजीका योगदान सिर्फ भारतकी सीमाओं तक सीमित नहीं था। उनका प्रभाव संपूर्ण मानव जातिपर पड़ा, जैसा कि अर्नाल्ड टायनबीने लिखा है—"हमने जिस पीढ़ीमें जन्म लिया है, वह न केवल पश्चिममें हिटलर और रूसमें स्टालिनकी पीढ़ी है, वरन् वह भारतमें गांधीजीकी पीढ़ी भी है और यह भविष्यवाणी बड़े विश्वासके साथ की जा सकती है कि मानव इतिहासपर गांधीका प्रभाव स्टालिन या हिटलरसे कहीं ज्यादा और स्थायी होगा।" (**मोहनदास करमचंद गांधी–'आत्मकथा', डा० जी० तेन्दुलकर कृत 'महात्मा', लुई फिशर कृत 'लाइफ आफ गांधी', एच० मुखर्जी कृत 'गांधीजी', अर्नाल्ड टायनबी कृत 'स्टडी आफ हिस्ट्री' खण्ड १२)**

गाज़ी–एक उपाधि, जिसका अर्थ होता है धर्मयुद्ध करनेवाला। अनेक मुसलमान बादशाहोंकी भांति औरंगजेबने भी यह उपाधि धारण की थी।

गाजीउद्दीन इमामुलमुल्क–हैदराबादके प्रथम निजामके पुत्र गाजीउद्दीन खाँका पुत्र। जब उसका पिता १७५२ ई० में औरंगाबादमें उसकी सौतेली माँ द्वारा विष देकर मार डाला गया, उस समय गाजीउद्दीन दिल्लीमें था। दिल्लीमें वह अवधके सूबेदार सफदरजंगकी सहायतासे मीरबख्शी (वेतन-वितरण विभागका प्रधान) बन गया। बादमें उसने सफदरजंगका साथ छोड़ दिया और मराठोंके साथ हो गया, जिनकी सहायतासे उसने बादशाह अहमदशाह (१७४८–५४ ई०)को गद्दीसे उतार दिया। युवक गाजीउद्दीन कुटिल, एहसानफरामोश और बड़ा महत्त्वाकांक्षी था, किन्तु न तो उसमें रण-कौशल था और न संगठन-शक्ति। वह अहमदशाह अब्दालीका आक्रमण रोकनेमें विफल रहा, जिसने १७५६ ई० में दिल्लीपर हमला किया और उसे लूटा तथा पंजाबपर अधिकार कर लिया। अब्दालीके चले जानेके बाद उसने मराठोंसे मिलकर १७५८ ई० में पंजाबपर पुनः अधिकार करनेका षड्यंत्र किया, लेकिन १७५९ ई० में अब्दालीने पुनः भारतपर आक्रमण किया और पंजाबको फिर हथिया लिया। गाजीउद्दीन किसी प्रकार अब्दालीसे क्षमा प्राप्त करनेमें सफल हो गया। जैसे ही अब्दाली वापस गया, गाजीउद्दीनने फिरसे चालबाजी शुरू कर दी और १७५९ ई० में बादशाह आलमगीर द्वितीयको मार डाला। उसने औरंगजेबके सबसे छोटे पुत्र कामबख्शके पोतेको शाहजहाँ तृतीयके नामसे गद्दीपर बैठा दिया। लेकिन अब्दाली फिर आ धमका। गाजीउद्दीनने सूरजमल जाटकी शरण ली और मराठोंकी सहायतासे अब्दालीका सामना करनेका प्रयास किया, किन्तु पानीपतकी तीसरी लड़ाई (१७६१)में अब्दालीने मराठोंको बुरी तरह कुचल दिया और गाजीउद्दीनके षड्यंत्रों एवं राजनीतिक गतिविधियोंको सदाके लिए समाप्त कर दिया। गाजीउद्दीनकी मृत्यु १८०० ई० में हुई।

गाजीउद्दीन, फीरोज जंग–एक ईरानी जो औरंगजेबके शासनकालमें भारत आया। वह मुगलोंकी नौकरीमें अनेक उच्च पदोंपर रहा। १६८५ ई० में बीजापुर और १६८७ ई० में गोलकुंडापर घेरा डाले जानेके समय वह उपस्थित था। उसने युद्धमें अद्भुत कौशलका प्रदर्शन किया। १६८८ ई० में ताऊनकी बीमारी फैलनेपर उसकी एक आँख चली गयी, तो भी वह मृत्युपर्यन्त मुगल दरबारका प्रभावशाली सरदार बना रहा। उसका बेटा मीर कमरुद्दीन चिन किलिचखाँ था जो १७१३ में हैदराबादका प्रथम निजाम बना।

गाज़ी मलिक–देखिये, 'गयासुद्दीन तुगलक'।

गाडविन, जनरल सर एच० टी०–ब्रिटिश भारतीय सेनाका एक अधिकारी। प्रथम बर्मा-युद्ध (१८२४–२६)के दौरान उसने ईस्ट इंडिया कम्पनीकी महत्त्वपूर्ण सेवा की। द्वितीय बर्मा-युद्ध (१८५२)में भी उसने ७० वर्षकी अवस्था होनेपर भी ब्रिटिश सेनाका नेतृत्व किया और युद्धमें विजय प्राप्त की।

गायकवाड़–एक मराठा खानदान, जो पेशवा बाजीराव प्रथम (१७२०–४०)के शासनकालमें सत्तामें आया।

इस वंशके संस्थापक दामजी प्रथमके बारेमें कुछ भी ज्ञात नहीं है। उसके भतीजे पीलाजी (१७२१–३२)के जीवन-कालमें यह खानदान प्रमुखतामें आया। पीलाजी राजा साहूके सेनापति खाण्डेराव दाभाडेके गुटका था। उसने १७२० ई० में सूरतसे ५० मील पूर्व सोनगढमें एक दुर्गका निर्माण कराया। १७३१ ई० में वह बिल्हापुर अथवा बालापुरके युद्धमें खाण्डेरावके पुत्र और उत्तराधिकारी त्र्यम्बकराव दाभाडेकी तरफसे लड़ा, किन्तु इस युद्धमें दाभाडेकी पराजय और मृत्यु होनेपर उसने पेशवा बाजीराव प्रथमके साथ सन्धि कर ली। पेशवाने उससे गुजरातपर निगाह रखनेको कहा। गायकवाडने अपना मुख्य ठिकाना बड़ौदा बनाया। किन्तु पीलाजीकी १७३२ ई० में हत्या कर दी गयी और उसका पुत्र दामाजी द्वितीय उत्तराधिकारी बना, जो सन् १७६१ ई० में पानीपतके युद्धमें मौजूद था और बादमें भाग निकला। १७६८ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। दामाजी द्वितीयके कई पुत्र थे, जिनमें १७६८ से १८०० ई० तक लगातार उत्तराधिकार-युद्ध चलता रहा। १८०० ई० में दामाजीके बड़े लड़के गोविन्दरावका पुत्र सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने १८१९ ई० तक शासन किया। इस दौरान गायकवाड वंशने अंग्रेजोंके साथ शांतिपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखा और बिना किसी युद्धके १८०५ ई० में आश्रित-संधि कर ली। गायकवाड वंश अंग्रेजोंके प्रति वफादार बना रहा और इस कारण दूसरे और तीसरे आंग्ल-मराठा युद्धोंमें अन्य मराठा सरदारोंको जन-धनकी जो अपार क्षति उठानी पड़ी उससे बच गया। आनंदरावका उत्तराधिकारी उसका भाई सयाजी द्वितीय (१८१९–४७) बना और उसके बाद उसके तीन पुत्र गणपतिराव (१८४७–५६), खाण्डेराव (१८५६–७०) और मल्हारराव (१८७०–७५) क्रमशः सिंहासनपर आरूढ़ हुए। मल्हार-रावपर कुशासन और ब्रिटिश रेजीडेण्ट कर्नल फेयरेको विष देकर मरवा डालनेका अभियोग लगाया गया। उसे गिरफ्तार कर लिया गया और वाइसराय लार्ड नार्थब्रुक द्वारा नियुक्त आयोगके सामने उसपर मुकदमा चला। हत्याभियोगपर आयोगके सदस्योंमें मतभेद था, अतः उसे बरी कर दिया गया, किन्तु दुराचरण और कुशासनके आरोपमें उसे गद्दीसे उतार दिया गया। मल्हाररावके कोई संतान नहीं थी, इसलिए भारत सरकारने सयाजी-राव नामक बालकको, जिसका गायकवाड वंशसे कुछ दूरका सम्बन्ध था, गद्दीपर बैठा दिया और नये शासकके अल्पवयस्क रहनेतक प्रशासन सर टी० माधवरावके हाथों सुपुर्द कर दिया। सयाजीराव तृतीयने १८७५ ई० में शासन सँभाला और १९३९ ई० में उसकी मृत्यु हुई। उसने अपनेको देशी रजवाड़ोंमें सर्वाधिक योग्य और जागरूक शासक सिद्ध किया और बड़ौदाको भारतका सर्वाधिक उन्नतिशील राज्य बना दिया।

गार्डनर, कर्नल अलेक्जेण्डर हटन (१७८५–१८७७)–एक साहसी अंग्रेज पेशेवर सिपाही। उसने अफगानिस्तान पहुँचकर हबीबुल्लाह खाँके यहाँ नौकरी की और उसके चाचा अमीर दोस्त मोहम्मदके खिलाफ लड़ाइयोंमें भाग लिया। १८२६ ई० में वह पंजाब चला आया और कर्नलकी हैसियत-से रणजीत सिंहकी फौजमें शामिल हो गया। उसने उसके तोपखानेको प्रशिक्षण दिया। १८३५ ई० में उसने अफ-गानोंके विरुद्ध युद्धमें सिखोंकी सहायता की। रणजीतसिंह-की मृत्युके उपरान्त होनेवाले उत्तराधिकार-युद्धमें उसने भी भाग लिया। प्रथम सिख-युद्ध (दे०) के दौरान वह लाहोरमें था, किन्तु इसमें उसे कोई सक्रिय भूमिका नहीं दी गयी। १८४६ ई० में उसने जम्मू-कश्मीरमें राजा गुलाब सिंहके यहाँ नौकरी कर ली और १८४७ ई० तक मृत्युपर्यन्त उन्हींकी सेवामें रहा।

गालिब खाँ–एक पठान सरदार, जो भारतपर तैमूरके आक्रमण (१३९८–९९ ई०)के बाद सामाना का स्वतंत्र शासक बन गया था।

गाविल गढ़–बरारका एक शक्तिशाली दुर्ग, जिसका निर्माण बहमनी सुल्तानोंने कराया था। बादमें इसपर मराठोंका अधिकार हो गया। दूसरे मराठा-युद्ध (१८०४–६)में १५ दिसम्बर १८०३ ई० को अंग्रेजोंने इसे बरारके भोंसला राजाके हाथोंसे छीन लिया।

गाहड़वाल (गहरवार) वंश–राजपूत राजा चंद्रदेवने ग्यारहवीं शताब्दीके अंतिम दशकमें इसको प्रतिष्ठापित किया। उसके पौत्र गोविन्दचंद्रने युवराजके रूपमें ११०४ से १११४ ई० तक तथा उसके बाद राजाके रूपमें ११५४ ई० तक एक विशाल राज्यपर शासन किया, जिसमें आधुनिक उत्तर प्रदेश और बिहारका अधिकांश भाग शामिल था। उसने मुस्लिम तुर्कोंके आक्रमणसे वाराणसी और जेतवन जैसे पवित्र धार्मिक स्थानोंकी रक्षा की। उसने अपनी राजधानी कन्नौजका पूर्व गौरव कुछ सीमा तक पुनः स्थापित किया। गोविन्दचंद्रका पौत्र राजा जयचंद्र (जो जयचंदके नामसे विख्यात है) था, जिसकी सुन्दर पुत्री संयोगिताको अजमेरका चौहान राजा पृथ्वीराज अपहृत कर ले गया था। इस कांडसे दोनों राजाओंमें इतनी अधिक शत्रुता हो गयी कि जब तुर्कोंने पृथ्वीराजके राज्यपर हमला किया, उस समय जयचंदने उसकी कोई

सहायता नही की। ११९२ ई०मे तराइन (तरावडी)के दूसरे युद्धमे पृथ्वीराज पराजित हुआ और उसने स्वय प्राणात कर लिया। दो वर्ष वाद सन् ११९४ ई०मे चन्दावर-के युद्धमे तुर्क विजेता शहावुद्दीन मुहम्मद गोरीने जयचदको भी हराया और मार डाला। तुर्कोने उसकी राजधानी कन्नौजको खूव लूटा और नष्ट-भ्रष्ट किया। उसके साथ ही गाहडवाल वशका अत हो गया।

गिरनार–काठियावाड प्रायद्वीपमे जूनागढके निकट स्थित पर्वत। यहाँ एक चट्टानपर मौर्य सम्राट् अशोक (लगभग २७३ ई०पू० से २३२ ई०पू०)का चतुर्दश शिलालेख अकित है। उसी चट्टानके दूसरी ओर शक क्षत्रप रुद्रदमन (लगभग १५० ई०)का अभिलेख है, जिसमे प्रथम मौर्य-सम्राट् चन्द्रगुप्त (लगभग ३२२ ई०पू० से २९८ ई०पू०)के आदेशसे वहाँपर सुदर्शन झीलके निर्माणका उल्लेख है। इन दोनो महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक अभिलेखोके अलावा गिरनारमे अनेक भव्य मदिर वने हुए हैं, जिन्हे गुजरातके चालुक्य राजाओने वनवाया था। **(वर्गेस० खंड २ तथा ह० हं० खंड ८, पृ० ३६)**

गिरमिट प्रथा–मजदूरोकी भरतीके लिए उन्नीसवी शताब्दीके तीसरे दशकमे आरम्भ की गयी। इस प्रथाके अंतर्गत भारतीय मजदूरोसे किसी बगीचेपर एक निर्धारित अवधि तक (प्राय पाचसे सात साल) काम करनेके लिए 'एग्रीमेंट' (जिसे वोलचालकी भाषामे 'गिरमिट' कहा जाता था, इसीसे इस प्रथाको 'गिरमिट' प्रथा कहने लगे) कराया जाता था। 'गिरमिट'से मुक्त होनेपर मजदूरको छूट रहती थी कि वह या तो भारत लौट जाय या स्वतत्र मजदूरकी हैसियतसे वही उपनिवेशमे वस जाय। यदि वह स्वदेश वापस लौटना चाहता था तो उसे किराया दिया जाता था। 'गिरमिट'की यह सामान्य प्रथा कही-कही कुछ परिवर्तित रूपमे भी प्रचलित थी। भारतीय मजदूर अनपढ और असगठित होते थे। उन्हे रोजीकी तलाश थी, इसलिए न्यायान्यायके विचारसे शून्य धनी ठेकेदार बहुधा मजदूरो-से मनमानी शर्ते भी करा लेते थे। गिरमिट प्रथाके अतर्गत वहुसख्यक भारतीय मजदूर हिन्द महासागरमे स्थित मारीशस, प्रशात महासागरमे स्थित फिजी, मलय प्रायद्वीप तथा द्वीपपुज, श्रीलका, केनिया, टागानायका, उगाडा, दक्षिण अफ्रीका, ट्रिनिडाड, जमायका और ब्रिटिश गायना गये और इनमेसे वहुतेरोने 'गिरमिट'-मुक्त होनेपर उसी स्थानपर वस जाना पसद किया। वे वहापर या तो स्वतत्र मजदूर वनकर या छोटे-मोटे व्यापारी वनकर जीविका कमाने लगे। इस तरह उपर्युक्त ब्रिटिश उपनिवेशोमे प्रवासी भारतीयोकी काफी वडी सख्या हो गयी। प्रवासी भारतीयोकी सख्या जब वढी और वे समृद्ध होने लगे तो उन उपनिवेशोमे रहनेवाले गोरे उनसे ईर्ष्या करने लगे और उनके विरोधी वन गये। गोरोने इस वातको भुला दिया कि इन प्रवासी भारतीयोके पुरखोको उन्ही लोगोने अपने देशमे आमत्रित किया था और गिरमिटिया मजदूरो-की सेवाओसे भारी लाभ उठाया था। उन्होने उन उपनि-वेशोकी समृद्धिमे उतना ही योगदान दिया था, जितना वहाके गोरे निवासियोने। अव चूकि वे गोरोकी गुलामी नही करना चाहते थे तो उन्हे अवाछित व्यक्ति करार दिया जा रहा था। इस तरह गिरमिट प्रथाके कारण जातीय भेदभावपर आधारित नयी समस्याए उठ खडी हुई, जिनका अभीतक समाधान नही हो सका है।

गिरिया–विहारमे राजमहलके निकट, जहा दो वार युद्ध हुए। पहला युद्ध १७४० ई० मे वगालके नवाव अलीवर्दी खा (दे०) और उसके प्रतिद्वन्द्वी सरफराज खाके वीच हुआ, जिसमे सरफराज पराजित हुआ और मारा गया। अलीवर्दीखा इस विजयके वाद मसनदपर वैठा। गिरिया-की दूसरी लडाई (१७६३) नवाव मीर कासिम (दे०) और ईस्ट इडिया कम्पनीके वीच हुई। मीर कासिम परा-जित हो गया तथा अन्य तीन युद्धोमे हारकर पटना भाग गया। वगालकी गद्दी उससे छिन गयी।

गिरिव्रज–पटनाके समीप राजगिर नामक आधुनिक कसवेका प्राचीन नाम। इस नगरको सम्राट विम्वसार (लगभग ५५० ई० पू०)ने वनवाकर इसका नाम राजगृह रखा और अपनी राजधानी बनाया। वादमे उसीका वशज सम्राट् कालाशोक राजगृहसे राजधानी हटाकर पाटलिपुत्र ले गया। महात्मा वुद्धके निर्वाणके वाद राजगृहमे ही प्रथम वौद्ध सगीति (धर्मसभा) ४८६ ई० पू० मे हुई, जहाँ अभिधर्म और विनय पिटकोकी रचना की गयी। गिरिव्रज अथवा राजगृह वहुत काल तक विभिन्न प्रकारसे वौद्ध धर्मसे सवधित रहा। आजकल राजगिर गरम पानीके झरनोके कारण अच्छे स्वास्थ्य-केन्द्रके रूपमे भी प्रसिद्ध है।

गिलगिट–कश्मीरके उत्तर-पश्चिमी कोनेमे स्थित। घाटीमे वहनेवाली नदी और वहाँ वसे हुए कसवेका नाम भी गिलगिट है, जो जिलेका सदरमुकाम है। गिलगिट सिंधु नदीकी सहायक नदी है। सामरिक दृष्टिसे गिलगिटका वहुत महत्त्व है। यहाँसे चित्राल होकर अफगानिस्तानके लिए सीधा रास्ता है। कुछ दूरी तक रूसकी सीमा भी इसमे लगी हुई है। अतएव वाइसराय लार्ड लिटन प्रथमके समय ब्रिटिश सरकारने गिलगिट घाटीपर सीधा नियत्रण प्राप्त

करनेका प्रयत्न किया, जो कश्मीरके महाराजके शासनके अन्तर्गत थी। लार्ड लिटनने महाराजसे गुप्त समझौता किया जिसके अनुसार गिलगिटमे एक ब्रिटिश एजेंट नियुक्त हुआ। १८८९ ई० मे एक ब्रिटिश अफसर गिलगिट भेजा गया। ब्रिटिश सरकारकी इस कार्रवाईसे अफगानिस्तान-का शासक अमीर अब्दुर्रहमान बहुत घबराया, उसकी दृष्टिमे अफगानिस्तानके प्रति ब्रिटिश इरादे सच्चे नही थे। इस प्रकार भारत सरकार और अफगानिस्तानके बीच उस कालमे गिलगिट विवादका विषय हो गया था। आजकल वह पाकिस्तान द्वारा नियन्त्रित गुलाम कश्मीरके शासनके अन्तर्गत है।

गिलजई–एक अफगान कबीला, जिसने १८४० ई० मे अफगा-निस्तानपर चढाई करनेवाली ब्रिटिश सेनाकी दुर्बल स्थिति-का फायदा उठाकर विद्रोह कर दिया। यद्यपि उन्हे तत्काल दबा दिया गया, तथापि १८४१ ई० मे उनका विद्रोह फिर भड़क उठा। फलत १८४१–४२ ई० मे काबुलसे जलालाबाद वापस आनेवाली ब्रिटिश फौजको भारी हानि उठानी पडी।

गीतगोविन्द–सस्कृतके मधुरतम गीतोकी एक उत्कृष्ट रचना। बगालके राजा लक्ष्मणसेन (दे०) (लगभग ११७८-१२०३) के दरबारी कवि जयदेवने इन गीतोकी रचना की, जिनमे राधा और कृष्णके अलौकिक प्रेमका वर्णन है।

गुजरात–पश्चिमी भारतका एक प्रदेश। गुजराती भाषा बोलनेवाले सम्पूर्ण क्षेत्रको 'गुजरात' कहा जाता है, जिसमे पुराने बम्बई सूबेके अहमदाबाद, भड़ौच, पचमहल, खैरा तथा सूरत जिले, भूतपूर्व बडौदा राज्यका क्षेत्र तथा सौराष्ट्र एव कच्छकी रियासते शामिल थी। अन्य प्रदेशोकी अपेक्षा गुजरात कम प्राचीन जान पडता है, क्योकि अशोक अथवा रुद्रदामाके शिलालेखोमे इसका विवरण नही मिलता। पाँचवी शताब्दी ईसवीमे जब हूणोंने भारतपर हमला किया, तबसे यह नाम प्रचलित हुआ। यह नाम गुर्जर लोगोसे उदभूत प्रतीत होता है। गुर्जर लोग विदेशी थे, जो पाँचवी शताब्दी ईसवीमे पश्चिमोत्तर दिशामे भारत मे अन्हिलवाड व भिन्नमाल आये और क्रमश यहाँ बस गये। इसके बाद दो शताब्दियोमे गुजरात राज्य बन गया, जिसमे राजपूताना-का भी कुछ भाग सम्मिलित था। आरभमे इसकी राजधानी अन्हिलवाड थी जो बादमे भिन्नमालमे स्थापित हुई। गुर्जर प्रतिहार (दे०) राजाओके समयमे गुजरात बहुत विख्यात हुआ। १०२४ ई० मे महमूद गजनवीके आक्रमणमे इस राज्यकी शक्ति घटने लगी और इसकी प्रतिष्ठा नष्ट हो गयी। इसी आक्रमणमे महमूद गजनवीने सोमनाथ मदिर लूटा था। फिर भी यह १२९७ ई० तक स्वतन्त्र रहा जबकि अलाउद्दीन खिलजीने इसे अपने अधिकारमे कर लिया। १४०१ ई० मे गुजरातका हाकिम जाफर खाँ अपनेको स्वतन्त्र घोषित कर नसीरुद्दीन मुहम्मदशाहके नामसे गुजरातका सुलतान बन गया। उसके वशने १५७२–७३ ई० तक शासन किया। नसीरुद्दीन मुहम्मद शाहके वशमे अहमदशाह (१४११–४१), महमूद बवर्रा (१४५९–१५११) तथा बहादुरशाह (१५२६–३७) प्रमुख शासक हुए। १५३७ ई० मे पुर्तगालियोने धोखा देकर बहादुरशाहको उस समय मार डाला, जब डचू नामक बदरगाहमे जहाजपर पुर्तगाली गवर्नर डी'कुन्हासे मिलनेके लिए वह गया था। बहादुरशाहकी मृत्युके बाद लगभग ४० वर्ष तक गुजरातमे अराजकताकी स्थिति रही, बादमे इसपर अकबरने कब्जा कर लिया। औरगजेबके मरनेके बाद बाजीराव प्रथम (द्वितीय पेशवा) (१७२०–४०)के जमानेमे यह राज्य मराठोके अधिकारमे आ गया, जिसे गायकवाड़ोको शासनके लिए दे दिया गया, जिन्होने बडौदाको राजधानी बनाया। गायकवाडोका सबध अग्रेजो-से भी अच्छा रहा और बसईकी सधि (१८०२) (दे०)मे उन्हे विशेष सरक्षण प्राप्त हुआ। तीसरे मराठा-युद्ध (१८१७–१८)मे गुजरात अग्रेजोके अधिकारमे आ गया, जिसे बम्बई प्रान्तका अग बना दिया गया। भारतके आजाद होनेके बाद राज्योका पुनर्गठन होनेपर गुजरात बम्बईसे अलग कर दिया गया और उसकी राजधानी अहमदाबाद बनायी गयी। गुजरातमे हिन्दू और मुसलमान राजाओ द्वारा बनवायी गयी इमारते वास्तुशिल्पकी सुन्दर कृतिया है। राजधानी अहमदाबाद बहुत साफ सुथरा नगर माना जाता है और भारतीय सूती वस्त्र उद्योगका केन्द्र है। **(के० एम० मुशी कृत 'ग्लोरी दैट वाज़ गुजरात')**

गुजरातकी लडाई–पजाबमे १८४९ ई० मे अग्रेजो और सिखोके बीच दूसरे सिख-युद्ध (१८४८-४९ ई०)के दौरान हुई। इस लडाईमे दोनो ओरसे मुख्यत तोपोका इतना अधिक प्रयोग हुआ कि इसे तोपोकी लडाई कहा जाता है। अग्रेज सेनापति लार्ड गफने रणभूमि-का सावधानीसे निरीक्षण करनेके बाद सिखोकी तोपोपर गोले बरसाकर उनका मुह बद कर दिया। इसके बाद अग्रेजोकी पैदल सेनाने सिख सेनापर हमला किया और उसमे भगदड मचा दी। अग्रेजोने सिख सेनाका दूर तक पीछा करके उसके ऊपर निर्णयात्मक विजय प्राप्त की। इस लडाईने एक प्रकारसे दूसरे सिख-युद्धका भाग्यनिर्णय कर दिया।

गुणवर्मा—कश्मीरका एक राजकुमारजो बौद्ध भिक्षु हो गया और अपना जीवन सुदूरपूर्वके देशोमे धर्मप्रचारमे विताया। वह पहले लका, फिर जावा और अतमे चीन पहुँचा। चीनी वृत्तातके अनुसार उसने जावाके लोगोको बौद्ध बनाया। ४३१ ई० मे नानकिंग (चीन)मे उसका देहात हुआ।

गुप्तवंश—३२० ई० के लगभग चन्द्रगुप्त प्रथम द्वारा स्थापित। इस वशने लगभग ५१० ई० तक उत्तर भारतपर शासन किया। चन्द्रगुप्त प्रथमका पिता घटोत्कच तथा पितामह गुप्त था जो शायद पाटलिपुत्रके राजा थे। चन्द्रगुप्त प्रथमने लिच्छवि राजकुमारी कुमारदेवीसे विवाह किया, जिसमे उसकी शक्ति बहुत बढ गयी। वह केवल सम्पूर्ण मगधका शासक ही नही हो गया, उसका राज्य प्रयाग तक फैल गया। उसके राज्यमे तिरहुत, दक्षिणी विहार तथा अवधके प्रदेश शामिल थे। उसने महाराजाधिराजकी' पदवी धारण की। इस वशमे कई वडे बडे सम्राट् हुए, यथा समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य, कुमारगुप्त प्रथम, स्कदगुप्त, तथा कुमारगुप्त द्वितीय। इसके अलावा परवर्ती कालमे कुछ निर्बल राजा भी हुए, जिन्होने या तो केवल मगधपर या सुदूर मालवा जैसे छोटे राज्योपर शासन किया। गुप्त वशका द्वितीय सम्राट् समुद्रगुप्त बहुत बडा विजेता था। उसने न केवल लगभग सम्पूर्ण उत्तरी भारतको अपने अधीन किया, वरन् दक्षिण-विजयके लिए भी अभियान किया। उसने काची (काजीवरम्)के राजा विष्णुगोपको भी अपना करद बनाया। तृतीय गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय था जो विक्रमादित्य (लगभग ३८०–४१५ ई०)के नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसने सौराष्ट्रपर विजय प्राप्त की और वहाके स्थानीय शकराजके शासनको उखाड फेका। फलत उसे 'शकारि'की उपाधि मिली। कहानियो एव किवदन्तियोमे जिस विक्रमादित्यका उल्लेख मिलता है, वह कदाचित् यही विक्रमादित्य था। यही सम्राट् महान् सस्कृत कवि और नाटककार कालिदासका सरक्षक था। उसके पुत्र कुमारगुप्त प्रथम (४१५–५५)ने पुष्यमित्रोके आक्रमणको विफल किया जो एक अज्ञात आदिवासी जाति-के लोग थे। उसने गुप्त साम्राज्यको अक्षुण्ण रखा। उसके पुत्र स्कन्दगुप्त (४५५ से लगभग ४६७ ई० तक) को, जिसने पुष्यमित्रोको खदेडनेमे अपने पिताकी सहायता की थी और अभूतपूर्व वीरताका परिचय दिया था, हूण आक्रमणकारियोका सामना करना पडा। हूणोसे उसका जबरदस्त युद्ध हुआ और उसने उन्हे परास्त किया, लेकिन हूणोने आक्रमण रुके नही। इन आक्रमणोने गुप्त साम्राज्य को जर्जर कर दिया। हूणोने गाधारपर कब्जा कर लिया। जब स्कदगुप्त मरा, गुप्त साम्राज्य लडखडा रहा था। उसके बाद उसका भाई पुरगुप्त सिहासनपर बैठा जो कुछ ही महीने जीवित रहा। उसका पुत्र एव उत्तराधिकारी नृसिहगुप्त बालादित्य (४६७–७३) बौद्धमतानुयायी था। उसने नालदा (दक्षिण विहार)मे ३०० फुट ऊँचा एक विशालकाय मदिर बनवाया। उसने भी हूणोके विरुद्ध युद्ध किया और सम्भवत उन्हे पराजित भी किया, किन्तु उसका शासनकाल भी बहुत दिनो तक नही चला। उसके बाद उसके पुत्र कुमारगुप्त द्वितीय (४७३–७६)का शासन भी अल्पकालीन था। यह वह समय था, जब गुप्त साम्राज्यका पतन हो रहा था। बादके गुप्त राजाओका विशेष विवरण नही मिलता। सम्भवत एक राजा बुद्धगुप्त (४७६–९५) हुआ, जिसके कालमे तोरमान तथा उसके पुत्र मिहिरगुलके नेतृत्वमे हूणोने भीषण आक्रमण किये और वे उत्तर भारतके मध्य तक धसते चले गये। इस प्रकार गुप्त साम्राज्य खडित हो गया। बादमे बाला-दित्य नामक गुप्त राजाने मिहिरगुलके हमलोको रोका। बताया जाता है कि मन्दसौरके राजा यशोधर्माने ५३३ ई० मे मिहिरगुलको पराजित कर मार डाला। लेकिन इस विजयसे गुप्त वशको कोई लाभ नही हुआ। अब कोई सम्राट् तो रहा नही, स्थानीय छोटे-छोटे राजा रह गये जो मगध अथवा मालवाके सीमित भागोपर शासन करते रहे। **(आर० सी० मजूमदार लिखित 'क्लासिकल एज')**।

गुप्तवंशकी सांस्कृतिक उपलब्धियां—भारतके सास्कृतिक इतिहासमे गुप्त वशका बहुत बडा महत्त्व है। एकको छोडकर बाकी सभी गुप्त सम्राट् ब्राह्मण धर्म (वैदिक धर्म)को माननेवाले थे। समुद्रगुप्त तथा कुमारगुप्त प्रथमने तो अश्वमेध यज्ञ भी किया था। उन्होने बौद्ध और जैन धर्मको भी आश्रय दिया। चन्द्रगुप्त द्वितीयके समय मे चीनी यात्री फाहियान आया था। उसने उस समयके भारतकी दशाका वर्णन किया है। उसके विवरणोमे पता चलता है कि गुप्त साम्राज्य सुशासित था। हलके दण्डकी व्यवस्थाके बावजूद अपराध बहुत कम होते थे। करभार बहुत कम था। राजकाजकी भाषा सस्कृत थी। साहित्यकी प्रत्येक विधा-मे सस्कृतने बहुत उच्च स्थान ग्रहण कर रखा था। विश्व-विश्रुत नाटक अभिज्ञान शाकुन्तल तथा रघुवश महाकाव्यके रचयिता कालिदास, मृच्छकटिक नाटकके लेखक शूद्रक, मुद्राराक्षस नाटकके लेखक विशाखदत्त तथा सुविख्यात कोशकार अमरसिंह इसी गुप्तकालमे हुए। ऐसा विश्वास

किया जाता है कि रामायण, महाभारत, पुराण (विशेषकर वायुपुराण) तथा मनुसंहिता अपने वर्तमान रूपमें गुप्त कालमें ही बनी। महान् गणितज्ञ आर्यभट्ट (जन्म ४७६ ई०), वराहमिहिर (५०५–५८७ ई०) तथा ब्रह्मगुप्त (जन्म ५९८ ई०)ने गणित तथा ज्योतिर्विज्ञानके विकासमें बहुत बड़ा योगदान किया। इसी कालमें दशमलव प्रणालीका यहाँ आविष्कार हुआ जो बादमें अरबोंके माध्यमसे यूरोप तक पहुँची। व्यावहारिक ज्ञानके क्षेत्रमें विश्वको भारतकी यह सबसे बड़ी देन मानी जाती है। उस कालमें वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला तथा धातुविज्ञान अत्यंत विकसित अवस्थामें पहुँच गये थे, जिसका प्रमाण झाँसी और कानपुर (जिले)के गुप्तकालीन अवशेषों, अजन्ताकी गुफा सं० १६ तथा १७ की चित्रकारी, मेहरौली (दिल्ली) में स्थित राजा चन्द्रके लौहस्तम्भ, नालंदामें ८० फुट ऊँची बुद्धकी ताँबेकी मूर्ति तथा सुलतानगंज स्थित साढ़े सात फुट ऊँची बुद्धकी ताँबेकी प्रतिमामें मिलता है। निश्चय ही गुप्तकालमें कला, वास्तुशिल्प, मूर्तिनिर्माण और धातुविज्ञानके जो स्मारक आज हमें दिखाई देते हैं, उनसे यही प्रमाणित होता है कि गुप्तकालके उस लम्बे शांतिपूर्ण युगमें भारतीय कला विकास एवं सौन्दर्यके शिखरपर पहुँच गयी थी। (**आर० डी० बनर्जी लिखित 'गुप्त सम्राटोंका युग', दत्त लिखित 'गणित विज्ञानको हिन्दुओंकी देन', ए० डी० कीथ लिखित 'संस्कृत साहित्यका इतिहास', आर० सी० मजूमदार लिखित 'क्लासिकल एज'**)

गुप्त—एक गन्धी, जो किंवदन्तीके अनुसार अशोकको बौद्ध धर्ममें दीक्षित करनेवाले श्रमण उपगुप्तका पिता था। कहा जाता है, गौतम बुद्धके जन्मस्थान लुम्बिनीकी यात्रा करनेके लिए उपगुप्त अशोकके साथ गया था।

गुप्त—तृतीय और चतुर्थ शताब्दी ई०के मध्यमें वर्तमान मगधका एक स्थानीय सामन्त, जिसका पौत्र चन्द्रगुप्त प्रथम बादमें गुप्त वंशका संस्थापक बना।

गुरुकी लड़ाई—१९०४ ई०में तिब्बतियों और ब्रिटिश भारतीय फौजोंके बीच हुई थी। तिब्बती लोग इसमें बड़ी आसानीसे पराजित हो गये। ब्रिटिश भारतीय फौजका सेनापति कर्नल् फ्रांसिस यंगहस्बैण्ड (दे०) विजेताकी भाँति तिब्बतकी राजधानीमें प्रविष्ट हुआ। तिब्बतने अन्ततः अंग्रेजोंकी अधीनता स्वीकार कर ली।

गुरुकुल—उत्तर प्रदेशमें हरिद्वारके निकट कांगड़ी (अब कनखल)में स्थित। इस विद्यामंदिरकी स्थापना आर्यसमाजके नेता स्वामी श्रद्धानंदने १९०२ ई०में की थी। इसका उद्देश्य भारतमें वैदिक जीवन-विधिकी पुनः प्रतिष्ठा करना रहा है। संस्कृतके माध्यमसे अध्ययन इस संस्थाकी मुख्य विशेषता है। अब यह एक विश्वविद्यालय बन गया है।

गुरु गोविन्दसिंह—सिखोंके दसवें तथा अंतिम गुरु, जो अपने पिता तथा ९वें गुरु तेगबहादुरकी गद्दीपर १६७५ ई०में बैठे। दक्षिणमें नान्देड नामक स्थानपर एक अफगान द्वारा १७०८ ई०में मार डाले जाने तक गद्दीपर विराजमान रहे। वे सिखोंको एक सैनिक-शक्ति बना देनेवाले प्रथम गुरु थे। उन्होंने मुसलमानोंका सामना करनेके लिए सिखोंका सैनिक संगठन किया। उन्होंने 'पाहुल' (दीक्षा) प्रथाका शुभारंभ किया, जिसके अनुसार सभी सिख समूहमें जातिबंधन तोड़नेके उद्देश्यसे एक ही कटोरेसे 'अमृत' पान करते थे तथा प्रसाद ग्रहण करते थे। उन्होंने इन सिखोंको 'खालसा' (पवित्र) सम्बोधित किया और उन्हें अपने नामके आगे 'सिंह' जोड़नेका आदेश दिया। गुरुजीने धूम्रपान (तम्बाकू-सेवन)पर रोक लगा दी तथा पाँच 'ककार'का नियम बनाया, अर्थात् प्रत्येक सिखके लिए केश, कंघा, कड़ा, कच्छ (जाँघिया) तथा कृपाण रखना जरूरी कर दिया। गुरु गोविन्दसिंहने पुरानी धार्मिक शिक्षाओंको अक्षुण्ण रखते हुए सिखोंमें नये प्राण फूँक दिये। अभी तक उनकी गिनती शांतिप्रिय धर्मभीरु व्यक्तियोंमें होती थी। अब वे एक नयी सामाजिक तथा राजनीतिक शक्ति बन गये। गुरु गोविन्दसिंहको अनेक पहाड़ी राजाओं और मुगल मनसबदारोंसे युद्ध करना पड़ा। उनके दो पुत्र सरहिन्दके मुगल फौजदारके हाथमें पड़ गये, जिन्हें उसने जिन्दा दीवारमें चुनवा दिया। औरंगजेबकी मृत्युके बाद उसकी गद्दीके उत्तराधिकारके लिए जो युद्ध हुआ, उसमें गुरुजीने बहादुरशाहका पक्ष लिया। उसके बादशाह बननेपर उन्होंने उसकी सुरक्षामें शान्तिमय जीवनयापन स्वीकार कर लिया, किन्तु १७०८ ई० में एक विश्वासी पठानने दक्षिणमें उनकी हत्या कर दी।

गुरुदासपुर—पंजाबका एक किलेबंद नगर। इसी किलेमें सिखोंका नेता बंदा बैरागी सन् १७१५ ई० में मुगल सेना द्वारा घेर लिया गया था और बादमें भीषण युद्धके पश्चात् गिरफ्तार कर लिया गया। बंदा और उसके अनुयायियोंको मुगल दिल्ली ले गये, जहाँ उन्हें घोर यातनाएँ देकर मार डाला गया।

गुर्जर—एक जनजाति, जिसके बारेमें विश्वास किया जाता है कि ये लोग हूणोंके साथ भारत आये। छठी शताब्दीके बाद इन्होंने भारतीय इतिहासमें महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। सातवीं शताब्दीमें इनका उल्लेख बाणकृत हर्षचरित, ह्वेनसांगके यात्रा-विवरण और पुलकेशीके ऐहोल शिलालेखमें

आया है। इन्होंने पंजाब, मारवाड और भडौंचमे अपनी रियासते कायम की। इनकी कई शाखाएँ थी, जिनमे गुर्जर प्रतिहारोंने ८वी शताब्दी ई० मे भारतीय इतिहासमे बडी प्रतिष्ठा प्राप्त की।

गुर्जर प्रतिहार वंश—की स्थापना नागभट्ट नामक एक सामतने ७२५ ई०मे की। उसने रामके भाई लक्ष्मणको अपना पूर्वज बताते हुए अपने वंशको सूर्यवंशकी शाखा प्रसिद्ध किया। वह राजपूतोकी प्रतिहार शाखाका शासक था। उसके राज्यकी स्थापना गुजरातमे हुई, अतएव उसके वंशका नाम 'गुर्जर प्रतिहार' पडा। लेकिन पश्चिमी विद्वानोका कहना है कि जो गुर्जर लोग आरम्भिक हूणोके साथ आये थे, उन्हीकी शाखा प्रतिहार थे। इसीलिए यह वंश 'गुर्जर प्रतिहार' कहा जाने लगा। कुछ भी हो, नागभट्ट प्रथम बडा वीर था। उसने सिंधकी ओरसे होनेवाले अरबोंके आक्रमणका सफलतापूर्वक सामना किया। साथ ही दक्षिणके चालुक्यो और राष्ट्रकूटोके आक्रमणोका भी प्रतिरोध किया और अपनी स्वतन्त्रताको कायम रखा। नागभट्टके भतीजेका पुत्र वत्सराज इस वंशका पहला शासक था जिसने सम्राट्की पदवी धारण की, यद्यपि उसने राष्ट्रकूट राजा ध्रुवसे बुरी तरह हार खायी। वत्सराजके पुत्र नागभट्ट द्वितीयने ८१६ ई०के लगभग गंगाकी घाटीपर हमला किया, और कन्नौजपर अधिकार कर लिया। वहाँके राजाको गद्दीसे उतार दिया और वह अपनी राजधानी कन्नौज ले आया। यद्यपि नागभट्ट द्वितीय भी राष्ट्रकूट राजा गोविन्द तृतीय (दे०)) से पराजित हुआ, तथापि नागभट्टके वंशज कन्नौज तथा आसपासके क्षेत्रोपर १०१८–१९ ई० तक शासन करते रहे, जबकि महमूद गजनवीने कन्नौजपर कब्जा करके प्रतिहार राजाको बाडी भाग जानेके लिए विवश किया। इस वंशका सबसे प्रतापी राजा भोज प्रथम था, जो मिहिरभोजके नाममे भी जाना जाता है और जो नागभट्ट द्वितीयका पौत्र था। भोज प्रथमने (लगभग ८३६–८६ ई०) ५० वर्ष तक शासन किया और प्रतिहार साम्राज्यका विस्तार पूर्वमे उत्तरी बंगालसे पश्चिममे सतलज तक हो गया। अरब व्यापारी सुलेमान इसी राजा भोजके समयमे भारत आया था। उसने अपने यात्रा-विवरणमे राजाकी सैनिक शक्ति और सुव्यवस्थित शासनकी बडी प्रशंसा की है। अगला सम्राट् महेन्द्रपाल था, जो 'कर्पूरमंजरी' नाटकके रचयिता महाकवि राजशेखर का शिष्य और संरक्षक था। महेन्द्रका पुत्र महिपाल भी राष्ट्रकूट राजा इन्द्र तृतीय (दे०)से बुरी तरह पराजित हुआ। राष्ट्रकूटोने कन्नौजपर कब्जा कर लिया, लेकिन शीघ्र ही महिपालने पुन उसे हथिया लिया। परन्तु महिपालके समयमे ही गुर्जर-प्रतिहार राज्यका पतन होने लगा। उसके बाद के राजाओं—भोज द्वितीय, विनायकपाल, महेन्द्रपाल द्वितीय, देवपाल, महिपाल द्वितीय और विजयपालने जैसे-तैसे १०१९ ई० तक अपने राज्यको कायम रखा। महमूद गजनवीके हमलेके समय कन्नौजका शासक राज्यपाल था। राज्यपाल बिना लडे भाग खडा हुआ। बादमे उसने महमूदकी अधीनता स्वीकार कर ली। इससे आसपासके राजपूत राजा बहुत नाराज हुए। महमूद गजनवीके लौट जानेपर कालिंजरके चन्देल राजा गण्डके नेतृत्वमे राजपूत राजाओंने कन्नौजके राज्यपालको पराजित कर मार डाला और उसके स्थानपर त्रिलोचनपालको गद्दीपर बैठाया। महमूदके दुबारा आक्रमण करनेपर कन्नौज फिर उसके अधीन हो गया। त्रिलोचनपाल भागकर बाडीमे शासन करने लगा, उसकी हैसियत स्थानीय सामन्त जैसी रह गयी। कन्नौजमे गहडवाल अथवा राठौर वंशका उद्भव होनेपर उसने ११वी शताब्दीके द्वितीय चतुर्थाशमे बाडीके गुर्जर-प्रतिहार वंशको सदाके लिए उखाड फेंका। गुर्जर प्रतिहार वंशके आतरिक प्रशासनके बारेमे कुछ भी पता नही है, लेकिन इतिहासमे इस वंशका मुख्य योगदान यह है कि इसने ७१२ ई०मे सिंध विजय करनेवाले अरबोको आगे नही बढने दिया।

गुलबदन बेगम—प्रथम मुगल बादशाह बाबरकी पुत्री। वह प्रतिभाशाली महिला थी, जिसने अपने भाई बादशाह हुमायू (१५३०–५६)के जमानेका विवरण इकट्ठा कर 'हुमायूनामा' नामक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तकमे उस जमानेके भारतकी आर्थिक दशाका महत्त्वपूर्ण विवरण प्राप्त होता है।

गुलबर्ग (अथवा कुलबर्ग)—दक्षिणके बहमनी वंशके संस्थापक सुल्तान अलाउद्दीनने इसे १३४७ ई० मे अपनी राजधानी बनाया। उसने इसका नाम एहसानाबाद रखा। १४२५ ई० तक यह इस राज्यकी राजधानी रहा, जबकि ९वे सुल्तान (१४२२–३६)ने इसे त्याग कर बीदरको राजधानी बनाया। बहमनी सुल्तानो और उनके दरबारियोंने गुलबर्गमे बहुत इमारते बनवायी थी। लेकिन ये इमारते इतनी बडी और कमजोर थी कि अब उनके ध्वसावशेष ही देखे जा सकते है।

गुलाबसिंह, कश्मीरका महाराज—पंजाबके सिख शासक महाराज रणजीतसिंह (दे०)के यहाँ आरम्भमे घुडसवारकी हैसियतसे नियुक्त। गुलाबसिहकी सेवाओंसे प्रसन्न होकर रणजीतसिंहने उसे जम्मूकी जागीर दे दी, जिससे गुलाबसिंहने अपना प्रभुत्व लद्दाख तक बढा लिया। १८३९ ई० मे

महाराज रणजीतसिंहकी मृत्यु हो गयी, तब खालसा (दे०)ने गुलाबसिंहको भी एक मंत्री चुना। १८४६ ई० में अंग्रेजों और सिखोंमें सुबराहानका युद्ध (दे०) हुआ। गुलाबसिंहने चतुराईसे विजयी अंग्रेजों और सिखोंके बीच लाहौरकी संधि (१८४६) करा दी, जिसके अनुसार सिखोंने कश्मीर और संलग्न इलाका अंग्रेजोंको सौंप दिया। बादमें अंग्रेजोंने कश्मीर और संलग्न इलाकेको एक लाख पौंडके बदले गुलाबसिंहके हाथ बेच दिया और उसे वहाँका राजा स्वीकार कर लिया। गुलाबसिंहने कश्मीरमें डोगरा वंशके राज्यकी स्थापना की। गुलाबसिंह और अंग्रेजोंके बीच बहुत अच्छे सम्बन्ध रहे। उसकी मृत्यु १८५७ ई० में हुई। डोगरा वंशका शासन १९४८ ई० तक रहा। इसके बाद यह राज्य भारतमें विलीन हो गया।

गुलाम कादिर–रुहेला सरदार नजीबुद्दौला (दे०)का पौत्र, जो १७६१ से १७७० ई० तक अहमदशाह अब्दालीकी सदारतमें रहा तथा बादमें मुगल बादशाह शाह आलम द्वितीय (१७५९–१८०६)के सहायककी हैसियतसे व्यवहारत दिल्लीपर शासन करता रहा। १७८७ ई० में कादिरने लूटपाट करनेकी गरजसे फिर दिल्लीपर कब्जा किया, लेकिन इसके पूर्व अब्दालीकी लूटमारसे शाही खजाना खाली हो चुका था, अतएव कादिरको कुछ भी नहीं प्राप्त हुआ। इसी निराशामें खीझकर उसने शाहआलमको अंधा बना दिया। महादजी शिन्देने कादिरको पराजित कर मार डाला। इसके बाद वह व्यवहारत मुगल बादशाहका संरक्षक बन गया।

गुलाम वंश–दिल्लीमें कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा १२०६ ई० में स्थापित। यह वंश १२९० ई० तक शासन करता रहा। इसका नाम 'गुलाम वंश' इस कारण पड़ा कि इसका संस्थापक और उसके इल्तुतमिश और बलबन जैसे महान् उत्तराधिकारी प्रारम्भमें गुलाम अथवा दास थे और बादमें वे दिल्लीका सिंहासन प्राप्त करनेमें समर्थ हुए। कुतुबुद्दीन (१२०६–१० ई०) मूलत शहाबुद्दीन मोहम्मद गोरीका तुर्क दास था और ११९२ ई० के तराइनके युद्धमें विजय प्राप्त करनेमें उसने अपने स्वामीकी विशेष सहायता की। उसने अपने स्वामीकी ओरसे दिल्लीपर अधिकार कर लिया और मुसलमानोंकी सल्तनत पश्चिममें गुजरात तथा पूर्वमें बिहार और बंगाल तक, १२०६ ई० में गोरीकी मृत्युके पूर्व ही, विस्तृत कर दी। शहाबुद्दीनने १२०३ ई० में उसे दासतासे मुक्त कर सुल्तानकी उपाधिसे विभूषित किया। इस प्रकार स्वभावत वह अपने स्वामीके भारतीय साम्राज्यका उत्तराधिकारी और दिल्लीके गुलाम वंशका संस्थापक बन गया। उसने १२१० ई० में अपनी मृत्युके समय तक राज्य किया। उसका पुत्र और उत्तराधिकारी आरामशाह था, जिसने केवल एक वर्ष राज्य किया और बादमें १२११ ई०में उसके बहनोई इल्तुतमिशने उसे सिंहासनसे हटा दिया। इल्तुतमिश भी कुशल प्रशासक था और उसने १२३६ ई० में अपनी मृत्यु तक राज्य किया। उसका उत्तराधिकारी, उसका पुत्र रुक्नुद्दीन था, जो घोर निकम्मा तथा दुराचारी था और उसे केवल कुछ महीनोंके शासनके उपरान्त गद्दीसे उतारकर उसकी बहिन रजिय्यतउद्दीन, उपनाम रजिया सुल्तानाको १२३७ ई०में सिंहासनासीन किया गया। रजिया कुशल शासक सिद्ध हुई, किन्तु स्त्री होना ही उसके विरोधका कारण हुआ और ३ वर्षोंके शासनके उपरान्त १२४० ई०में उसे गद्दीसे उतार दिया गया। उसका भाई बहराम उसका उत्तराधिकारी हुआ और उसने १२४२ ई० तक राज्य किया, जब उसकी हत्या कर दी गयी। उसके उपरान्त इल्तुतमिशका पौत्र मसूद शाह उत्तराधिकारी हुआ, किन्तु वह इतना विलासप्रिय और अत्याचारी शासक सिद्ध हुआ कि १२४६ ई०में उसे गद्दीसे उतारकर इल्तुतमिशके अन्य पुत्र नासिरुद्दीनको शासक बनाया गया। सुल्तान नासिरुद्दीनमें विलासप्रियता आदि दुर्गुण न थे। वह शांत स्वभावका और विद्याप्रेमी व्यक्ति था। साथ ही उसे बलबन सरीखे कर्त्तव्यनिष्ठ एक ऐसे व्यक्तिका सहयोग प्राप्त था, जो इल्तुतमिशके प्रथम चालीस गुलामोंमेंसे एक और सुल्तानका श्वसुर भी था। उसने २० वर्षों तक (१२४६–१२६६ ई०) शासन किया। उसके उपरांत उसका श्वसुर बलबन सिंहासनासीन हुआ, जो बड़ा ही कठोर शासक था। उसने इल्तुतमिशके कालमें होनेवाले मंगोल आक्रमणोंसे देशको मुक्त किया, सभी हिन्दू और मुस्लिम विद्रोहोंका दमन किया और दरबार तथा समस्त राज्यमें शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित की। उसने बंगालके तुगरिल खाँ (दे०)के विद्रोहका दमन करके १२८६ ई० अथवा अपनी मृत्युपर्यंत राज्य किया। इसके एक वर्ष पूर्व ही उसके प्रिय पुत्र शाहजादा मुहम्मदकी मृत्यु पंजाबमें मंगोल आक्रामकोंके युद्धके बीच हो चुकी थी। उसके द्वितीय पुत्र बुगरा खाँने, जिसे उसने बंगालका सूबेदार नियुक्त किया था, दिल्ली आकर अपने पिताके शासनभारको सँभालना अस्वीकार कर दिया। ऐसी परिस्थितिमें बुगरा खाँके पुत्र कैकोबाद (दे०) को १२८६ ई०में सुल्तान घोषित किया गया। किन्तु वह इतना शराबी निकला कि दरबारके अमीरोंने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और १२९० ई०में उसका वध कर डाला। इस प्रकार

गुलाम वशका दुखमय अन्त हुआ। गुलाम वशके शासकोने प्रजाके हितोपर अधिक ध्यान न दिया और प्रशासनकी अपेक्षा भोग-विलासोमे ही उनका अधिक झुकाव रहा। फिर भी वास्तुकलाके क्षेत्रमे उनकी कुछ उल्लेखनीय कृतियाँ शेष है, जिनमे कुतुबमीनार (दे०) अपनी भव्यताके कारण दर्शनीय है। इस वशके शासकोने मिनहाजुद्दीन सिराज और अमीर खुसरो जैसे विद्वानोको सरक्षण प्रदान किया। मिनहाजुद्दीन सिराजने 'तबकाते-नासिरी' (दे०) नामक ग्रन्थकी रचना की है।

गुलाम हुसेनखाँ तबत खाँ, सैयद–१८वी शताब्दीका प्रसिद्ध इतिहासकार। वह बगालके नवाब अलीवर्दी खाँ (दे०) का चचेरा भाई लगता था। वह मुगल बादशाहका मीर-मुशी और बगालके नवाबके यहाँ नियुक्त था। बादमे उसने कलकत्तामे नवाब मीर कासिम (दे०)का प्रति-निधित्व किया। मीर कासिमके पतनके पश्चात् उसने ईस्ट इडिया कम्पनीमे नौकरी कर ली। वह उच्चकोटिका इतिहासकार था। उसकी पुस्तक 'सियारुल मुतखरीन'मे मुगल वशके पतन तथा पिछले सात मुगल बादशाहोके शासनकालके सबधमे आधिकारिक तथा विश्वस्त विवरण मिलता है।

गुहा वास्तु–भारतीय प्राचीन वास्तुकलाका एक बहुत ही सुन्दर नमूना। अशोकके शासनकालसे गुहाओका उपयोग आवासके रूपमे होने लगा। गयाके निकट बराबर (दे०) पहाडीपर ऐसी अनेक गुफाएँ विद्यमान है, जिन्हे सम्राट् अशोकने आवास-योग्य बनाकर आजीवकोको दे दिया था। अशोककालीन गुहाएँ सादे कमरोके रूपमे होती थी, लेकिन बादमे उन्हे आवास एव उपासनागृह के रूपमे स्तम्भो एव मूर्तियोसे अलकृत किया जाने लगा। यह कार्य विशेष रूपसे बौद्धो द्वारा किया गया। भारतके विभिन्न भागोमे सैकडो गुहाएँ बिखरी पडी है। इनमे जो गुहाएँ बौद्ध बिहारोके रूपमे प्रयुक्त होती थी, वे सादी होती थी। उनके बीचोबीच एक विशाल मडप तथा किनारे-किनारे छोटी-छोटी कोठरियाँ होती थी। पूजाके लिए प्रयुक्त गुहाएँ 'चैत्यशाला' कहलाती थी, जो सुन्दर कला-कृतियाँ होती थी। चैत्यमे एक लम्बा आयताकार मडप होता था, जिसका अतिम भाग गजपृष्ठाकार होता था। स्तम्भोकी दो लम्बी पक्तियाँ इस मडपको मुख्यकक्षा और दो पार्श्व-वीथिकाओमे विभक्त कर देती थी। गजपृष्ठमे एक स्तूप होता था। द्वारमुख खूब अलकृत होता था। उसमे तीन दरवाजे होते थे। बीचका द्वार मध्यवर्ती कक्षमे प्रवेशके लिए तथा अन्य दो द्वार पार्श्ववीथियोके लिए होते थे। चैत्यके ठीक सामने द्वारमुखके ऊपर अश्वपादत्र (घोडेकी नाल) के आकारका चैत्यगवाक्ष होता था। ऐसी अनेक गुहाएँ महाराष्ट्रके नासिक, भाजा, भिलसा, कार्ले और अन्य स्थानोपर पायी गयी है। कार्लेकी गुहाएँ सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है। इनका निर्माण ईसापूर्व २०० से ईसाबाद ३२० की अवधिमे हुआ था। (**स्मिथ कृत 'हिस्ट्री आफ फाइन आर्ट इन इडिया एण्ड सीलोन'**)।

गूजर–गुर्जर लोगोकी एक शाखा। ऐसा विश्वास किया जाता है कि शको और हूणोके साथ जो और विदेशी आये थे, वे यहाँ बस गये और उन्हे हिन्दू बना लिया गया।

गृहवर्मा मौखरि–कन्नौजके मौखरि राजा अवन्तिवर्माका पुत्र। वह छठी शताब्दी ईसवीके अन्तमे गद्दीपर बैठा और उसने थानेश्वरके राजा प्रभाकरवर्धनकी पुत्री राज्यश्री-से विवाह किया। किन्तु ६०५ ई० मे मालवाके राजाने (जो कदाचित् देवगुप्त था) कन्नौजपर हमला कर दिया और गृहवर्माको पराजित कर मार डाला। राज्यश्रीको कन्नौजमे ही कैदमे डाल दिया गया। इस प्रकार मौखरि वशका अत हो गया।

गैरवाज–एक तकनीकी शब्द, जो सुल्तान फीरोजशाह तुगलक (१३५१–८८ ई०)की सेनामे अनियमित सिपाहियोके लिए प्रयुक्त होता था। इन लोगोको सीधे शाही खजानेसे वेतन मिलता था।

गोड–एक आदिवासी जाति, जो आधुनिक मध्यप्रदेशके छतरपुर इलाकेमे निवास करती थी। बादमे इस जातिने लूटपाटका काम छोडकर युद्धोमे लडनेका व्यवसाय शुरू किया। कालातरमे इन्हे राजपूत माना जाने लगा। जेजाकभुक्तिके चन्देल राजा (दे०) सम्भवत मूलरूपसे गोड ही थे।

गोडवाना–गोडोका राज्य, जो वर्तमान मध्यप्रदेशके उत्तरी भागमे था। उसे गढकटगा भी कहते थे। अकबरने १५६४ ई०मे इसपर विजय प्राप्त की और अपने राज्यमे मिला लिया (देखिये, रानी दुर्गावती)।

गोण्डोफर्नीज (गोण्डोफारेंस)–भारतीय पार्थियन राजा, जिसने २० से ४८ ई० तक एक बडे साम्राज्यपर शासन किया, जिसमे कदहार, काबुल और तक्षशिला भी शामिल थे। एक किवदन्तीके अनुसार ईसामसीहके शिष्य सेण्ट टामस इसीके शासनकालमे यहाँ आये, और यहाँ शहीद हुए थे।

गोकुला–१७वी शताब्दीमे उत्पन्न, उत्तर प्रदेशके मथुरा क्षेत्र (व्रजमडल)का जाट नेता। वह तिलपतका जमीदार था, उसने मुगल बादशाह औरगजेबके शासनके विरुद्ध किसानोके विद्रोहका नेतृत्व किया और असाधारण साहस

और वीरताका परिचय दिया। १६६९ ई० मे उसने मथुराके अत्याचारी मुगल फोजदारपर हमला कर उसे मार डाला। इससे सारे जिलेम अशाति उत्पन्न हो गयी। गोकुलाके विरुद्ध मुगल सेना भेजी गयी, जिसने विद्रोहियोका दमन किया। गोकुलाकी पराजय हुई और वह मार डाला गया। उसके परिवारके लोगोको जबरदस्ती मुसलमान बना लिया गया। लेकिन गोकुलाका बलिदान विफल नही गया। उसके उदाहरणने जाटोमे अदम्य स्फूर्ति और प्रेरणा भर दी, और उन्होने औरगजेबकी असह्य नीतियोका लम्बे अरसे तक इतना जबरदस्त प्रतिरोध किया कि मुगल साम्राज्य अदरसे जर्जर हो गया। १६९१ ई०मे जाटोने औरगजेबके अत्याचारोका प्रतिशोध लेनेके लिए अकबरके मकबरे (सिकन्दरा)को बरबाद कर दिया और अकबरकी हड्डियाँ कब्रमे निकालकर जला दी।

गोखले, गोपालकृष्ण (१८६६-१९१५)–भारतके महान् राष्ट्रवादी नेता। वे कोल्हापुरके एक मराठा ब्राह्मण परिवारमे पैदा हुए थे। उन्होने फर्गुसन कालेज पूनामे इतिहास और अर्थशास्त्रके प्रोफेसरकी हैसियतसे जीवन आरभ किया और १९०२ ई० तक वे इस पदपर रहे। आरभसे ही वे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेससे सबधित रहे। कुछ दिनो तक वे इसके सयुक्त-मत्री रहे, १९०५ ई०के अधिवेशनमे इसके अध्यक्ष बने। १९०२ ई०मे वे बम्बई विधान परिषदके सदस्य चुने गये, और तत्पश्चात् वे वाइस-राय द्वारा केन्द्रीय विधान परिषद्मे गैर-सरकारी सदस्योका प्रतिनिधित्व करनेके लिए चुने गये। १९०५ ई०मे उन्होने पूनामे 'सर्वेण्ट्स आफ इडिया सोसायटी' (भारत सेवक समाज)की स्थापना की, जिसके सदस्य आजीवन निर्धन रहने और निस्स्वार्थ भावसे देशकी सेवा करनेका व्रत लेते थे। १९१० ई०मे जब केन्द्रीय व्यवस्थापिका परिषद्का विस्तार हुआ तो गोखले उसके एक प्रमुख नेता गिने जाते थे और सरकारके प्रभावशाली आलोचक थे। सरकारकी वित्तीय नीतियोकी बखिया उधेडनेमे उन्हे विशेष दक्षता प्राप्त थी और वार्षिक बजटपर विवादके दौरान उनकी असाधारण पाडित्यपूर्ण वक्तृताएँ सुनने लायक होती थी। उन्होने अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा लागू करनेके लिए एक विधेयक प्रस्तुत किया जो सरकार द्वारा विरोध किये जानेके कारण अस्वीकृत हो गया। १९१२–१५ ई०मे वे इण्डियन पब्लिक सर्विस कमीशनके सदस्य रहे। इस हैसियतसे उन्होने सबसे बडी देश-सेवा यह की कि कमीशनकी सिफारिशपर सरकारी नौकरियोमे भारतीयोकी सख्या काफी बढा दी गयी। १९१५ ई०मे उनकी मृत्युसे देशमे सविधानवादी दलकी शक्तिका भारी ह्रास हुआ। असहयोग आदोलनके युगके पहले पुरानी काग्रेसके वे सबसे श्रेष्ठ और महान् नेता गिने जाते थे। (आर० पी० पराजपे लिखित **'गोपालकृष्ण गोखले'** और एस० शास्त्री द्वारा लिखित **'गोपालकृष्ण गोखलेका जीवन'**)।

गोखले, सेनापति–पेशवा बाजीराव द्वितीय (१७९६–१८१८ ई०)का सेनानायक। उसने तृतीय मराठा-युद्धमे पेशवाकी सेनाओका नेतृत्व किया था, किन्तु पराजित हो गया तथा आष्ठीके युद्ध (१८१८ ई०)मे मारा गया।

गोगुण्डाका युद्ध–मुगल सम्राट् अकबर तथा मेवाडके राणा प्रताप सिंह (दे०)के बीच हुआ। यह युद्ध गोगुण्डाके निकट हल्दीघाटीमे लडा गया, अतएव इसे हल्दीघाटीका युद्ध भी कहते है। इस युद्धमे मुगल सेनाका नेतृत्व राजा मानसिंहने किया। राणा और उनकी सेनाने बडी बहादुरीसे युद्ध किया तो भी वे पराजित हो गये। राणाको भागना पडा और अपनी मृत्यु (१५९७) पर्यन्त वे अकबरके विरुद्ध लडते रहे।

गोडर्ड कर्नल (१७४०-८३)–जनरल कूटके अधीन मद्रासमे १७५९ ई०मे सैनिक-सेवा आरभ की और अनेक युद्धोमे भाग लिया, जिनके फलस्वरूप १७६१ ई०मे पाडिचेरीका पतन हो गया। वह १७७८ ई० तक अनेक सैनिक पदो-पर रहा। जब अग्रेजो तथा मराठोके बीच पहला युद्ध हुआ, उसने वारेन हेस्टिग्स (दे०)के आदेशसे सेना लेकर कलकत्तासे बम्बईकी ओर प्रयाण किया। उसने सूरत और अहमदाबाद छीन लिया, महादजी शिन्देको हराया, १७८० ई०मे बसईपर अधिकार कर लिया और पूनापर चढाई की, किन्तु पीछे हटना पडा। १७८२ ई०मे सालबाईकी सधि होनेपर जब मराठा-युद्ध समाप्त हुआ, गोडर्डको बम्बईमे ब्रिटिश सेनाका प्रधान सेनाध्यक्ष बना दिया गया। लेकिन स्वास्थ्य अच्छा न होनेके कारण वह शीघ्र अवकाशपर चला गया। जब वह १७८३ ई०मे समुद्रके रास्ते इग्लेण्ड जा रहा था, रास्तेमे जहाजपर ही मर गया।

गोडोलफिन, अर्ल आफ–इग्लैण्टकी महारानी ऐन (१७०२–१४)का प्रधान-मत्री, वह १७०२मे १७०८ ई० तक इस पदपर रहा। उसने १६०० ई०मे स्थापित पुरानी ईस्ट इडिया कम्पनी तथा १६९८ ई०मे स्थापित नयी कम्पनीके बीच उठे विवादमे पच बनकर निर्णय दिया। इस निर्णयके फलस्वरूप दोनो कम्पनियाँ एक दूसरेमे मिल गयी और उनका नामकरण "युनाइटेड कम्पनी आफ मर्चेण्ट्स आफ इग्लैण्ड ट्रेडिग टू दि ईस्ट इडीज" किया गया। जनतामे उसका नाम 'ईस्ट इडिया कपनी' ही प्रचलित रहा।

गोदावरी–दक्षिण भारतमे पश्चिमसे पूर्वकी ओर बहनेवाली ८०० मील लम्बी नदी, जो बगालकी खाडीमे मसुलीपट्टमके निकट गिरती है। यह भारतकी सात पवित्र नदियोमेसे एक गिनी जाती है।

गोदेहू–फ्रासीसी ईस्ट इडिया कम्पनीका डाइरेक्टर। कम्पनीने १७५४ ई०मे उसे डूप्ले (दे०)के स्थानपर भेजा और भारतमे फ्रासीसियोकी स्थितिकी जाँच करनेका आदेश दिया। यहाँ आनेके बाद गोदेहूने, जिसे डूप्लेने कोई आपत्ति किये बिना कार्यभार सौप दिया था, अग्रेजोके साथ युद्ध बद कर दिया और उनसे जनवरी १७५५ ई०मे अस्थायी सधि कर ली। इस सधिके द्वारा अग्रेजो और फ्रासीसियोने देशी राजाओके विवादमे हस्तक्षेप न करनेका निश्चय किया तथा दोनोके द्वारा अधिकृत कुछ क्षेत्रोको मान्यता प्रदान कर दी। इस सधिपर दोनो कम्पनियोको स्वीकृति देना शेप था, तभी ब्रिटेन और फ्रासके बीच सप्तवर्षीय युद्ध छिड गया। फलत भारतमे भी अग्रेजो और फ्रासीसियोके बीच पुन युद्ध छिड गया।

गोपचन्द्र–गुप्त साम्राज्यके पतनके समय ६ठी शताब्दीके पूर्वार्धके लगभग स्वतत्र बग राज्य (जिसमे वर्तमान बगालका पूर्वी, दक्षिणी तथा पश्चिमी भाग शामिल था)के आरभिक तीन शासकोमेसे एक। अन्य दोके नाम धर्मादित्य तथा समाचारदेव थे। गोचपन्द्रका नाम कुछ दानपत्रोमे मिलता है। उसके नाम की कुछ स्वर्णमुद्राएँ भी पायी गयी है। उसके पूर्वजो अथवा वशजोके बारेमे कुछ भी ज्ञात नही है।

गोपाल प्रथम–बगाल और बिहारपर लगभग चार शताब्दी तक शासन करनेवाले पाल वशका सस्थापक। उसके पिताका नाम वप्यट और पितामहका नाम दयितविष्णु था। दोनोका सम्बन्ध सम्भवत किसी राजकुलसे नही था। आठवी शताब्दीके मध्य बगाल और बिहारमे अराजकता उत्पन्न होनेपर लोगोने गोपाल (प्रथम) को राजा चुना। गोपाल (प्रथम)का शासन लगभग ७५०से ७७० ई० तक चला। उसने कहाँ-कहाँ विजय प्राप्त की, यह ज्ञात नही। लेकिन उसके द्वारा सस्थापित पाल वशने दीर्घकाल तक शासन किया। इस वशके अधिकाश राजा बौद्ध थे। १२वी शताब्दी तक बगाल-बिहारपर इस वशके राजाओका शासन रहा। ११९७ ई०मे मुसलमानोने इसपर विजय प्राप्त की। (हि० व०, खड १)

गोपाल द्वितीय–बगालके पाल वशका परवर्ती राजा, जो अपने पिता राज्यपालके बाद गद्दीपर बैठा। उसने सम्भवत ९४०–५७ ई० तक शासन किया। उसके कार्योके बारेमे कुछ भी ज्ञात नही है। (हि० व०, खड १)

गोपाल तृतीय–बगालके पाल वशका परवर्ती राजा, जो अपने पिता कुमारपालके बाद गद्दीपर बैठा। वह राजा रामपाल (दे०)का पौत्र था। उसके चाचा मदनपालने ११४५ ई०मे उसको गद्दीसे उतार दिया। उसके बारेमे भी विस्तृत विवरण ज्ञात नही है। (हि० व०, खड १)

गोपुरम्–दाक्षिणात्य शैलीके मदिरोका एक विशेष शिखराकार अग। खासतौरसे चोल राजाओ (दे०) द्वारा निर्मित मदिर विशाल गोपुर (उत्तुग शीर्षवाले द्वार)से मडित होते थे। कालातरमे कई-कई मजिलोके गोपुरोका निर्माण किया जाने लगा, जिनकी वास्तु-आकृति अत्यत भव्य होती थी। कुम्भकोणम्का गोपुरम् वास्तुकलाकी दृष्टिसे अत्यन्त भव्य गिना जाता है।

गोबी मरुस्थल–मध्य एशियामे स्थित, जो पूर्वसे पश्चिम १५०० मील लम्बा तथा उत्तरसे दक्षिण ७०० मील चौडा है। आजकल यह एक रेगिस्तान है, लेकिन प्राचीनकालमे इस क्षेत्रके बीच-बीचमे समृद्धिशाली भारतीय बस्तियाँ बसी हुई थी। सर औरेल स्टोन द्वारा पुरातात्विक खुदाईमे बौद्ध स्तूपो, बिहारो, बौद्ध एव हिन्दू देवताओकी मूर्तियाँ, बहुत-सी पाडुलिपियाँ तथा भारतीय भाषाओ एव वर्णाक्षरोमे बहुत से आलेखोके अवशेष प्राप्त हुए है। इन अवशेषोके बीच घूमते हुए सर औरेलको यह अनुभव होने लगा था कि वे पजाबके किसी प्राचीन गाँवमे घूम रहे है। ७वी शताब्दीमे सुप्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यु एनसाग इसी गोबी मरूस्थलके रास्तेसे ही भारत आया और फिर चीन वापस गया। उसे इस क्षेत्रमे बौद्ध धर्म और भारतीय सस्कृतिका प्राधान्य दिखाई दिया। ज्यो-ज्यो इस क्षेत्रमे रेगिस्तान बढता गया, त्यो-त्यो यहाँ भारतीय सस्कृतिके केन्द्र विलुप्त होते गये।

गोमटेश्वर–के नामसे प्रसिद्ध मूर्ति मैसूरके गग वशीय राजाके मत्री चामुण्डराय (दे०) ने ९८३ ई०के लगभग निर्मित करायी थी। यह मूर्ति ५६ फुटसे अधिक ऊँची है और श्रवणबेलगोलाकी एक पहाडीपर स्थित है। यह एक काले पत्थरको काटकर बनायी गयी है। वास्तु-कलाकी दृष्टिसे यह मूर्ति विश्वमे अपने ढगकी अद्वितीय मानी जाती है।

गोरके सुलतान–पूर्वी ईरानी वशके और आरभमे गजनीके सुल्तानोके सामन्त। गजनवी (दे०) वशके अशक्त हो जानेपर गोरके शासक स्वाधीन होनेका लगातार प्रयास करते रहे और गजनीके सुल्तानोसे लडते रहे। अतमे ११५१ ई०मे अलाउद्दीन हुसेन गोरीने गजनीपर चढाई

करके उसे लूटा और जलाकर खाक कर दिया। इस प्रकार उसने गोरको गजनीमे पूर्णतया स्वाधीन कर सुल्तानकी उपाधि ग्रहण की। यद्यपि उसका पुत्र सैफुद्दीन महमूद गद्दीपर बैठनेके कुछ समय बाद ही गुज्ज तुर्कमानोंसे युद्धमे मारा गया तथापि उसका चचेरा भाई गयासुद्दीन महमूद एक सफल शासक सिद्ध हुआ। उसने ११७३ ई०मे गजनीपर कब्जा कर लिया और अपने छोटे भाई शहाबुद्दीन-को वहाँका हाकिम नियुक्त किया, जो मुईजुद्दीन मुहम्मद बिन साम अथवा मुहम्मद गोरी (दे०) के नामसे विख्यात हुआ। गजनीको ही आधार बनाकर शहाबुद्दीनने भारतपर हमले शुरू किये। उसका पहला आक्रमण ११७५ ई०मे मुलतानपर हुआ। दूसरे हमलेके दौरान ११९२ ई०मे तराइनके युद्धमे उसने पृथ्वीराज चौहानको हराया। इसी हमलेके फलस्वरूप भारतमे मुस्लिम शासनकी स्थापना हुई। १२०३ ई०मे सुलतान गयासुद्दीन गोरी मर गया और शहाबुद्दीन गोर, गजनी और उत्तर भारतका शासक बन गया। उसने बहुत थोडे समय शासन किया। १२०६ ई०मे खोकरोने उसे मार डाला। उसके वशमे कोई पुरुष उत्तराधिकारी नही था, फलत उसकी मृत्युके बाद गोरी वशका अन्त हो गया।

गोरखा–मगोलियन आकृतिके लोग, जो मुख्यत नेपालमे बसे हुए है। इनके दाढी नही उगती, शरीरका रग कुछ पीला होता है, नाक चपटी और गाल फूले होते ह। ये लोग हिमालयकी ढलानोपर निवास करते है और उच्च-कोटिके योद्धा माने जाते है। पहले ये लोग क्षत्रिय राजाओं-की अधीनतामे रहते थे। किंतु १७६८ ई०मे क्षत्रिय राजवशोकी आपसी कलहसे लाभ उठाकर उन्होने अपने देशमे गोरखा शासन स्थापित कर लिया। १८१६ ई०मे अग्रेजोसे पराजित हो जानेपर ब्रिटिश फौजमे नौकरी करने लगे और ब्रिटिश साम्राज्यके प्रसारमे इन्होने बडी सहायता दी। भारतके कथित 'सिपाही-विद्रोह' या गदर (१८५७) को दबानेमे भी गोरखोने अग्रेजोकी मदद की।

गोरखा युद्ध–१८१६ ई०मे ब्रिटिश भारतीय सरकार और नेपालके बीच हुआ। उस समय भारतका गवर्नर-जनरल लार्ड हेस्टिग्स था। १८०१ ई०मे ईस्ट इडिया कम्पनीका कब्जा गोरखपुर जिलेपर हो जानेसे कम्पनीका राज्य नेपालकी सीमा तक पहुँच गया। यह दोनो राज्योके लिए परेशानीका विषय था। नेपाली अपने राज्यका प्रसार उत्तर की ओर नही कर सकते थे, क्योकि उत्तरमे शक्तिशाली चीन और हिमालय था, अतएव ये लोग दक्षिणकी ओर ही अपने राज्यका प्रसार कर सकते थे। लेकिन दक्षिणमे कम्पनीका राज्य हो जानेसे उनके राज्यके प्रसारमे बाधा उत्पन्न हो गयी। अतएव दोनो पक्षोमे मनमुटाव रहने लगा। १८१४ ई०मे गोरखोने बस्ती जिले (उत्तर प्रदेश)के उत्तरमे बुटवलके तीन पुलिस थानोपर, जो कपनीके अधिकारमे थे, आक्रमण कर दिया, फलत कम्पनी-ने नेपालके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी। प्रथम ब्रिटिश अभियान तो विफल हुआ और अग्रेज लोग नेपाली राजधानी-पर कब्जा न कर सके। कालगके किलेपर हमलेके समय अग्रेज सेनापति जनरल जिलेस्पी मारा गया। जैतककी लडाईमे भी अग्रेजी सेना हार गयी। लेकिन १८१५ ई०मे अग्रेजी अभियानको अधिक सफलता मिली। अग्रेजोने अलमोडापर, जो उन दिनो नेपालके कब्जेमे था, अधिकार कर लिया और मालोनके किलेमे स्थित गोरखोको आत्म-समर्पण करनेके लिए बाध्य कर दिया। गोरखोने सोचा कि अग्रेजोसे लडना उचित नही है, अतएव उन्होने नवम्बर १८१५ ई०मे सुगौलीकी सधि कर ली। लेकिन नेपाल सरकारने सधिकी पुष्टि करनेमे देर की, फलत ब्रिटिश जनरल आक्टरलोनीने पुन नेपालपर आक्रमण कर दिया और फरवरी १८१६ ई०मे मकवानपुरकी लडाईमे गोरखो-को पराजित कर दिया। जब ब्रिटिश भारतीय फौज आगे बढते हुएँ नेपालकी राजधानीसे केवल ५० मील दूर रह गयी, तो गोरखोने अतिम रूपसे हार स्वीकार कर ली और सुगौलीकी सधिके अनुसार गढवाल और कुमायू जिले अग्रेजोको दे दिये तथा काठमाण्डूमे अग्रेज रेजीडेण्ट रखना स्वीकार कर लिया। इसके बाद गोरखा लोगोके सबध अग्रेजोसे बहुत अच्छे हो गये और वे लोग ब्रिटिश साम्राज्यके प्रति बराबर वफादार रहे।

गोरा–मेवाडका एक वीर राजपूत, जिसने अपने साथी बादलके साथ सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीका घोर प्रतिरोध किया। जब सुल्तानने मेवाडपर आक्रमण किया, उस समय नगरके बाहरी फाटकपर गोरा-बादलने डटकर सामना किया। इन दोनोने अपनी जान दे दी, लेकिन पराजय स्वीकार नही की।

गोलकुण्डा–दक्षिण भारतमे हैदराबादके निकट एक किला और ध्वस्त नगर। गोदावरी और कृष्णा नदियोके बीचका इलाका भी जो बगालकी खाडी तक फैला हुआ था, गोलकुण्डा-के नामसे प्रसिद्ध था। पहले यह वरमगल (वारगल)के काकतीय साम्राज्यके अन्तर्गत था, जिसपर बादमे अलाउद्दीन खिल्जी (१३१० ई०)ने विजय प्राप्त की। फिर वह एक स्वतत्र राज्यके रूपमे १४२४–२५ ई० तक बना रहा और बादमे बहमनी सल्तनतमे मिला लिया गया।

गोदावरी–दक्षिण भारतमे पश्चिमसे पूर्वकी ओर बहनेवाली ८०० मील लम्बी नदी, जो बगालकी खाडीमे मसुलीपट्टमके निकट गिरती है। यह भारतकी सात पवित्र नदियोमेसे एक गिनी जाती है।

गोदेहू–फ्रासीसी ईस्ट इडिया कम्पनीका डाइरेक्टर। कम्पनीने १७५४ ई०मे उसे डूप्ले (दे०)के स्थानपर भेजा और भारतमे फ्रासीसियोकी स्थितिकी जॉच करनेका आदेश दिया। यहाँ आनेके बाद गोदेहूने, जिसे डूप्लेने कोई आपत्ति किये बिना कार्यभार सौप दिया था, अग्रेजोके साथ युद्ध बद कर दिया और उनसे जनवरी १७५५ ई०मे अस्थायी सधि कर ली। इस सधिके द्वारा अग्रेजो और फ्रासीसियोने देशी राजाओके विवादमे हस्तक्षेप न करनेका निश्चय किया तथा दोनोके द्वारा अधिकृत कुछ क्षेत्रोको मान्यता प्रदान कर दी। इस सधिपर दोनो कम्पनियोको स्वीकृति देना शेष था, तभी ब्रिटेन और फ्रासके बीच सप्तवर्षीय युद्ध छिड गया। फलत भारतमे भी अग्रेजो और फ्रासीसियोके बीच पुन युद्ध छिड गया।

गोपचन्द्र–गुप्त साम्राज्यके पतनके समय ६ठी शताब्दीके पूर्वार्धके लगभग स्वतत्र बग राज्य (जिसमे वर्तमान बगालका पूर्वी, दक्षिणी तथा पश्चिमी भाग शामिल था)के आरभिक तीन शासकोमेसे एक। अन्य दोके नाम धर्मादित्य तथा समाचारदेव थे। गोचपन्द्रका नाम कुछ दानपत्रोमे मिलता है। उसके नाम की कुछ स्वर्णमुद्राएँ भी पायी गयी है। उसके पूर्वजो अथवा वशजोके बारेमे कुछ भी ज्ञात नही है।

गोपाल प्रथम–बगाल और बिहारपर लगभग चार शताब्दी तक शासन करनेवाले पाल वशका सस्थापक। उसके पिताका नाम वप्यट और पितामहका नाम दयितविष्णु था। दोनोका सम्बन्ध सम्भवत किसी राजकुलसे नही था। आठवी शताब्दीके मध्य बगाल और बिहारमे अराजकता उत्पन्न होनेपर लोगोने गोपाल (प्रथम) को राजा चुना। गोपाल (प्रथम)का शासन लगभग ७५०से ७७० ई० तक चला। उसने कहाँ-कहाँ विजय प्राप्त की, यह ज्ञात नही। लेकिन उसके द्वारा सस्थापित पाल वशने दीर्घकाल तक शासन किया। इस वशके अधिकाश राजा बौद्ध थे। १२वी शताब्दी तक बगाल-बिहारपर इस वशके राजाओका शासन रहा। ११९७ ई०मे मुसलमानोने इसपर विजय प्राप्त की। **(हि० ब०, खड १)**

गोपाल द्वितीय–बगालके पाल वशका परवर्ती राजा, जो अपने पिता राज्यपालके बाद गद्दीपर बैठा। उसने सम्भवत ९४०–५७ ई० तक शासन किया। उसके कार्योंके बारेमे कुछ भी ज्ञात नही है। **(हि० ब०, खड १)**

गोपाल तृतीय–बगालके पाल वशका परवर्ती राजा, जो अपने पिता कुमारपालके बाद गद्दीपर बैठा। वह राजा रामपाल (दे०)का पौत्र था। उसके चाचा मदनपालने ११४५ ई०मे उसको गद्दीसे उतार दिया। उसके बारेमे भी विस्तृत विवरण ज्ञात नही है। **(हि० ब०, खड १)**

गोपुरम्–दाक्षिणात्य शैलीके मदिरोका एक विशेष शिखराकार अग। खासतौरसे चोल राजाओ (दे०) द्वारा निर्मित मदिर विशाल गोपुर (उत्तुग शीर्षवाले द्वार)से मडित होते थे। कालातरमे कई-कई मजिलोके गोपुरोका निर्माण किया जाने लगा, जिनकी वास्तु-प्राकृति अत्यत भव्य होती थी। कुम्भकोणम्का गोपुरम् वास्तुकलाकी दृष्टिसे अत्यन्त भव्य गिना जाता है।

गोबी मरुस्थल–मध्य एशियामे स्थित, जो पूर्वसे पश्चिम १५०० मील लम्बा तथा उत्तरसे दक्षिण ७०० मील चौडा है। आजकल यह एक रेगिस्तान है, लेकिन प्राचीनकालमे इस क्षेत्रके बीच-बीचमे समृद्धिशाली भारतीय बस्तियाँ बसी हुई थी। सर औरेल स्टोन द्वारा पुरातात्विक खुदाईमे बौद्ध स्तूपो, विहारो, बौद्ध एव हिन्दू देवताओकी मूर्तियाँ, बहुत-सी पाडुलिपियाँ तथा भारतीय भाषाओ एव वर्णाक्षरोमे बहुत से आलेखोके अवशेष प्राप्त हुए है। इन अवशेषोके बीच घूमते हुए सर औरेलको यह अनुभव होने लगा था कि वे पजाबके किसी प्राचीन गाँवमे घूम रहे है। ७वी शताब्दीमे सुप्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यु एनसाग इसी गोबी मरुस्थलके रास्तेसे ही भारत आया और फिर चीन वापस गया। उसे इस क्षेत्रमे बौद्ध धर्म और भारतीय सस्कृतिका प्राधान्य दिखाई दिया। ज्यो-ज्यो इस क्षेत्रमे रेगिस्तान बढता गया, त्यो-त्यो यहाँ भारतीय सस्कृतिके केन्द्र विलुप्त होते गये।

गोमटेश्वर–के नामसे प्रसिद्ध मूर्ति मैसूरके गग वशीय राजाके मत्री चामुण्डराय (दे०) ने ९८३ ई०के लगभग निर्मित करायी थी। यह मूर्ति ५६ फुटसे अधिक ऊँची है और श्रवणबेलगोलाकी एक पहाडीपर स्थित है। यह एक काले पत्थरको काटकर बनायी गयी है। वास्तु-कलाकी दृष्टिसे यह मूर्ति विश्वमे अपने ढगकी अद्वितीय मानी जाती है।

गोरके सुलतान–पूर्वी ईरानी वशके और आरभमे गजनीके सुल्तानोके सामन्त। गजनवी (दे०) वशके अशक्त हो जानेपर गोरके शासक स्वाधीन होनेका लगातार प्रयास करते रहे और गजनीके सुल्तानोसे लडते रहे। अतमे ११५१ ई०मे अलाउद्दीन हुसेन गोरीने गजनीपर चढाई

करके उसे लूटा और जलाकर खाक कर दिया। इस प्रकार उसने गोरको गजनीसे पूर्णतया स्वाधीन कर सुल्तानकी उपाधि ग्रहण की। यद्यपि उसका पुत्र सैफुद्दीन महमूद गद्दीपर बैठनेके कुछ समय बाद ही गुज्ज तुर्कमानोंसे युद्धमें मारा गया तथापि उसका चचेरा भाई गयासुद्दीन महमूद एक सफल शासक सिद्ध हुआ। उसने ११७३ ई०में गजनीपर कब्जा कर लिया और अपने छोटे भाई शहाबुद्दीन-को वहाँका हाकिम नियुक्त किया, जो मुईजुद्दीन मुहम्मद बिन साम अथवा मुहम्मद गोरी (दे०) के नामसे विख्यात हुआ। गजनीको ही आधार बनाकर शहाबुद्दीनने भारतपर हमले शुरू किये। उसका पहला आक्रमण ११७५ ई०में मुलतानपर हुआ। दूसरे हमलेके दौरान ११९२ ई०में तराइनके युद्धमें उसने पृथ्वीराज चौहानको हराया। इसी हमलेके फलस्वरूप भारतमें मुस्लिम शासनकी स्थापना हुई। १२०३ ई०में सुलतान गयासुद्दीन गोरी मर गया और शहाबुद्दीन गौर, गजनी और उत्तर भारतका शासक बन गया। उसने बहुत थोड़े समय शासन किया। १२०६ ई०में खोकरोंने उसे मार डाला। उसके वंशमें कोई पुरुष उत्तराधिकारी नहीं था, फलतः उसकी मृत्युके बाद गोरी वंशका अन्त हो गया।

गोरखा—मंगोलियन आकृतिके लोग, जो मुख्यतः नेपालमें बसे हुए हैं। इनके दाढ़ी नहीं उगती, शरीरका रंग कुछ पीला होता है, नाक चपटी और गाल फूले होते हैं। ये लोग हिमालयकी ढलानोंपर निवास करते हैं और उच्च-कोटिके योद्धा माने जाते हैं। पहले ये लोग क्षत्रिय राजाओं-की अधीनतामें रहते थे। किंतु १७६८ ई०में क्षत्रिय राजवंशोंकी आपसी कलहसे लाभ उठाकर उन्होंने अपने देशमें गोरखा शासन स्थापित कर लिया। १८१६ ई०में अंग्रेजोंसे पराजित हो जानेपर ब्रिटिश फौजमें नौकरी करने लगे और ब्रिटिश साम्राज्यके प्रसारमें इन्होंने बड़ी सहायता दी। भारतके कथित 'सिपाही-विद्रोह' या गदर (१८५७) को दबानेमें भी गोरखोंने अंग्रेजोंकी मदद की।

गोरखा युद्ध—१८१६ ई०में ब्रिटिश भारतीय सरकार और नेपालके बीच हुआ। उस समय भारतका गवर्नर-जनरल लार्ड हेस्टिंग्स था। १८०१ ई०में ईस्ट इंडिया कम्पनीका कब्जा गोरखपुर जिलेपर हो जानेसे कम्पनीका राज्य नेपालकी सीमा तक पहुँच गया। यह दोनों राज्योंके लिए परेशानीका विषय था। नेपाली अपने राज्यका प्रसार उत्तर की ओर नहीं कर सकते थे, क्योंकि उत्तरमें शक्तिशाली चीन और हिमालय था, अतएव ये लोग दक्षिणकी ओर ही अपने राज्यका प्रसार कर सकते थे। लेकिन दक्षिणमें कम्पनीका राज्य हो जानेसे उनके राज्यके प्रसारमें बाधा उत्पन्न हो गयी। अतएव दोनों पक्षोंमें मनमुटाव रहने लगा। १८१४ ई०में गोरखोंने बस्ती जिले (उत्तर प्रदेश)के उत्तरमें बुटवलके तीन पुलिस थानोंपर, जो कंपनीके अधिकारमें थे, आक्रमण कर दिया, फलतः कम्पनी-ने नेपालके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी। प्रथम ब्रिटिश अभियान तो विफल हुआ और अंग्रेज लोग नेपाली राजधानी-पर कब्जा न कर सके। कालगके किलेपर हमलेके समय अंग्रेज सेनापति जनरल जिलेस्पी मारा गया। जैतककी लड़ाईमें भी अंग्रेजी सेना हार गयी। लेकिन १८१५ ई०में अंग्रेजी अभियानको अधिक सफलता मिली। अंग्रेजोंने अल्मोड़ापर, जो उन दिनों नेपालके कब्जेमें था, अधिकार कर लिया और मालौनके किलेमें स्थित गोरखोंको आत्म-समर्पण करनेके लिए बाध्य कर दिया। गोरखोंने सोचा कि अंग्रेजोंसे लड़ना उचित नहीं है, अतएव उन्होंने नवम्बर १८१५ ई०में सुगौलीकी संधि कर ली। लेकिन नेपाल सरकारने संधिकी पुष्टि करनेमें देर की, फलतः ब्रिटिश जनरल आक्टरलोनीने पुनः नेपालपर आक्रमण कर दिया और फरवरी १८१६ ई०में मकवानपुरकी लड़ाईमें गोरखों-को पराजित कर दिया। जब ब्रिटिश भारतीय फौज आगे बढ़ते हुए नेपालकी राजधानीसे केवल ५० मील दूर रह गयी, तो गोरखोंने अंतिम रूपसे हार स्वीकार कर ली और सुगौलीकी संधिके अनुसार गढ़वाल और कुमायूं जिले अंग्रेजोंको दे दिये तथा काठमाण्डूमें अंग्रेज रेजीडेण्ट रखना स्वीकार कर लिया। इसके बाद गोरखा लोगोंके संबंध अंग्रेजोंसे बहुत अच्छे हो गये और वे लोग ब्रिटिश साम्राज्यके प्रति बराबर वफादार रहे।

गोरा—मेवाड़का एक वीर राजपूत, जिसने अपने साथी बादलके साथ सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीका घोर प्रतिरोध किया। जब सुलतानने मेवाड़पर आक्रमण किया, उस समय नगरके बाहरी फाटकपर गोरा-बादलने डटकर सामना किया। इन दोनोंने अपनी जान दे दी, लेकिन पराजय स्वीकार नहीं की।

गोलकुण्डा—दक्षिण भारतमें हैदराबादके निकट एक किला और ध्वस्त नगर। गोदावरी और कृष्णा नदियोंके बीचका इलाका भी जो बंगालकी खाड़ी तक फैला हुआ था, गोलकुण्डा-के नामसे प्रसिद्ध था। पहले यह वरंगल (वारंगल)के काकतीय साम्राज्यके अन्तर्गत था, जिसपर बादमें अलाउद्दीन खिलजी (१३१० ई०)ने विजय प्राप्त की। फिर वह एक स्वतन्त्र राज्यके रूपमें १४२४–२५ ई० तक बना रहा और बादमें बहमनी सल्तनतमें मिला लिया गया।

वहमनी सल्तनतके पूर्वी भागकी राजधानी वारंगल बनायी गयी। १५१८ ई०मे उसका कुतुबशाह नामक तुर्क हाकिम स्वतन्त्र सुल्तान बन बैठा और उसने गोलकुण्डाको अपनी राजधानी बनाया। यह राज्य १६८७ ई० तक स्वाधीन रहा, जबकि औरंगजेबने उसपर अधिकार करके उसे अपने साम्राज्यमे मिला लिया। पुराने जमानेमे गोलकुण्डा हीरोंके लिए प्रसिद्ध था। आजकल यह कुतुबशाही सुल्तानो द्वारा निर्मित मस्जिदो तथा मकवरोंके ध्वसावशेषोके लिए प्रसिद्ध है।

गोलमेज सम्मेलन–१९३० से १९३२ ई०के बीच लन्दनमे आयोजित। इस सम्मेलनका आयोजन तत्कालीन वाइसराय लार्ड इर्विनकी ३१ अगस्त १९२९ ई०की उस घोषणाके आधारपर हुआ था, जिसमे उन्होने साइमन कमीशनकी रिपोर्ट प्रकाशित हो जानेके उपरान्त भारतके नये सविधानकी रचनाके लिए लदनमे गोलमेज सम्मेलनका प्रस्ताव किया था। साइमन कमीशनके सभी सदस्य अग्रेज थे, जिससे भारतीयोमे तीव्र असतोष उत्पन्न हो गया। इसी असतोषको दूर करनेके अभिप्रायसे इस सम्मेलनका आयोजन किया गया था। १९२९ ई०मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके लाहौर अधिवेशनमे पडित जवाहरलाल नेहरूने अध्यक्ष पदसे स्पष्ट घोषणा की थी कि भारतीयोका लक्ष्य पूर्ण स्वतन्त्रता है, और काग्रेसका गोलमेज सम्मेलनमे भाग लेना व्यर्थ होगा। ६ अप्रैल १९३० ई०को महात्मा गाधीने सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरभ किया और उसके एक मास उपरान्त ही साइमन कमीशनकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई। भारत सरकारने आर्डिनेस-राज लागू करके कठोर दमननीतिका आश्रय लिया और महात्मा गाधी सहित काग्रेसके सभी नेताओको जेलमे बद कर दिया। इससे यद्यपि आन्दोलन प्रकट रूपमे तो शात हो गया, तथापि अप्रत्यक्ष रूपसे उसकी अग्नि सुलगती रही। निरन्तर वढते हुए असन्तोषको दूर करनेके लिए ही नवम्बर १९३१ ई०मे लन्दनमे गोलमेज सम्मेलनका आयोजन हुआ, जिसमे भारत और इग्लैण्डके सभी राजनीतिक दलोके प्रतिनिधियोको आमत्रित किया गया। इस सम्मेलनकी अध्यक्षता इग्लैण्डके तत्कालीन प्रधानमत्री रैम्जे मैकडोनल्डने की और उसके तीन अधिवेशन क्रमश १६ नवम्बर १९३० से १९ जनवरी १९३१ ई० तक, २ सितम्बरसे २ दिसम्बर १९३१ तक, तथा १७ नवम्बरसे २४ दिसम्बर १९३२ ई० तक हुए। प्रथम अधिवेशनमे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसने अपना कोई प्रतिनिधि नही भेजा था। इस अधिवेशनसे इतना लाभ अवश्य हुआ कि ब्रिटिश सरकारने इस प्रतिवध-के साथ केन्द्र और प्रान्तोकी विधान सभाओको शासन सवधी उत्तरदायित्व सौपना स्वीकार कर लिया कि केन्द्रीय विधानमडलका गठन ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्योके सघके आधारपर हो। द्वितीय अधिवेशनमे महात्मा गाधीने काग्रेसके एकमात्र प्रतिनिधि बनकर भाग लिया। इसमे मुख्य रूपसे साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वके आधारपर सीटोके बँटवारेके जटिल प्रश्नपर विचार-विनिमय होता रहा। किन्तु इस प्रश्नपर परस्पर मतैक्य न हो सका, क्योकि मुसलमान प्रतिनिधियोको ऐसा विश्वास हो गया था कि हिन्दुओसे समझौता करनेकी अपेक्षा अग्रेजोसे उन्हे अधिक सीटे प्राप्त हो सकेगी। इस गतिरोधका लाभ उठाकर प्रधानमत्री रैम्जे मैकडोनल्डने साम्प्रदायिक निर्णय (दे०) की घोषणा की, जिसमे केवल मान्य अल्पसख्यकोको ही नही, वल्कि हिन्दुओके दलित वर्गको भी अलग प्रतिनिधित्व देनेकी व्यवस्था थी। महात्मा गाधीने इसका तीव्र विरोध किया और आमरण अनशन आरम्भ कर दिया, जिसके फलस्वरूप काग्रेस और ब्रिटिश सरकारमे एक समझौता हुआ जो 'पूना समझौता' (दे०)के नामसे विख्यात है। यद्यपि इस समझौतेसे साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वकी समस्याका कोई सतोषजनक समाधान न हुआ, तथापि इससे अच्छा कोई दूसरा हल न मिलनेके कारण सभी दलोने इसे मान लिया। गोलमेज सम्मेलनके तीसरे अधिवेशनमे भारतीय सवैधानिक प्रगतिके कुछ सिद्धान्तोपर सभी लोग सहमत हो गये, जिन्हे एक श्वेतपत्रके रूपमे ब्रिटिश ससदके दोनो सदनोकी सयुक्त प्रवर समितिके सम्मुख रखा गया। यही श्वेतपत्र आगे चलकर १९३३ ई०के गवर्नमेन्ट आफ इडिया एक्ट (भारतीय शासन-विधान)का आधार बना।

गोल्लास–श्वेत हूणोका नेता, जिसका जिक्र यूनानी यात्री कास्मस इण्डिकोप्लूस्टीजने किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह हूण राजा तोरमासाका पुत्र मिहिरगुल था, जिसने छठी शताब्दीमे गुप्त साम्राज्यपर आक्रमण करके उसकी जडे हिला दी। लेकिन वादमे नृसिह गुप्त बालादित्य तथा यशोधर्मा (दे०)ने मिलकर ५३३ ई०मे उसे पराजित कर दिया। (मकगवर्न, पृ० ४१६-१७)

गोवा–भारतके पश्चिमी तटपर वम्बईसे दक्षिणकी ओर २०० मीलपर स्थित एक महत्त्वपूर्ण द्वीप और बदरगाह। भारत और पश्चिमी जगतके वीच यह सदैव एक महत्त्वपूर्ण व्यापार-केन्द्र रहा है। १५१० ई०ने यह बीजापुरके सुल्तानके अधिकारमे था, तभी अल्बूकर्कके नेतृत्वमे पुर्तगालियोने इसपर अधिकार कर लिया। मुगलोने पुर्तगालियोसे गोवा छीननेका बहुत प्रयत्न किया, किन्तु

सफल न हुए। बादमें १८०९ ई०में नैपोलियनसे युद्धके दौरान अंग्रेजोंने बडी आसानीसे गोवापर कब्जा कर लिया, लेकिन वियनाकी सधि (१८१५ ई०)के अन्तर्गत वह पुन पुर्तगालियोको लौटा दिया गया। १९६२ ई० तक वह पुर्तगालियोंके अधिकारसे रहा। उसी वर्ष जन-आन्दोलनके बलपर भारत सरकारने उसे चार शताब्दियों-की विदेशी दासतासे मुक्त करके भारतीय गणराज्यमे मिला लिया।

गोविन्द पडित–एक मराठा अधिकारी जिसे मराठा सेनापति सदाशिवराय भाऊने पानीपतकी तीसरी लडाईसे पहले अहमदशाह अब्दालीकी सचार-व्यवस्थाको भग करनेके लिए नियुक्त किया था। लेकिन अब्दालीने पडितकी सेना-पर हमला कर उसे पराजित कर दिया। इस विजयसे अब्दालीको रसदपूर्ति अबाध रूपसे मिलने लगी। फलत पानीपतकी लडाई (जनवरी १७६१ ई०)मे अब्दालीने मराठोंपर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली।

गोविन्द प्रथम–उडीसाके भोई वशका सस्थापक। इस वशने १५४२ से १५५९ ई० तक शासन किया। वह पहले उडीसाके राजा प्रतापरुद्र (१४९७–१५४०)का मन्त्री था। गोविन्द प्रथमने प्रतापरुद्र (दे०)के वशजोको निकाल बाहर किया और स्वयम् गद्दीपर बैठ गया। उसने, उसके पुत्रने तथा उसके दो पौत्रोंने कुल १८ वर्ष तक शासन किया। इन लोगोके बारेमे विस्तारपूर्वक कुछ भी ज्ञात नही है, लेकिन अतिम राजा मुकुन्द हरिचन्दको १५५९ ई०मे गद्दीसे उतार दिया गया।

गोविन्द प्रथम–दक्षिणके राष्ट्रकूट वश (दे०)के सस्थापक दन्तिदुर्गका पूर्वज। इसके बारेमे अधिक ज्ञात नही है। लेकिन राष्ट्रकूट वश (दे०)ने ७५३ से ९७३ ई० तक शासन किया था।

गोविन्द द्वितीय–राष्ट्रकूट वशका आरम्भिक राजा। वह कृष्ण प्रथमका पुत्र था और उसने ७७५–७९ ई० तक शासन किया। उसे उसके भाई ध्रुवने गद्दीसे उतार दिया।

गोविन्द तृतीय–राष्ट्रकूट वशके राजा ध्रुवका पुत्र, जिसने ७९३ से ८१५ ई० तक शासन किया। उसने उत्तरमे विन्ध्य पर्वतके इस पार मालवा तक तथा दक्षिणमे कॉची (कॉजीवरम्) तक अपना साम्राज्य फैलाया। उसने अपने भाई इन्द्रराजको लाट (दक्षिण गुजरात)का शासक नियुक्त किया, प्रतिहार राजा वत्सराजको पराजित किया, बगालके राजा धर्मपाल तथा कन्नौजके राजा चक्रायुधको अपने अधीन किया।

गोविन्द चतुर्थ–राष्ट्रकूट वशका एक परवर्ती राजा, जिसने ९१८ से ९३४ ई० तक शासन किया। राष्ट्रकूट साम्राज्य-का पतन उससे कुछ पहले ही आरभ हो गया था, वह इस राजाके कालमे भी जारी रहा। इसके ४० वर्ष बाद तो इस वशका ही अन्त हो गया।

गोविन्दचद्र–कन्नौजके गाहडवाल अथवा गहरवार (दे०) वशका एक राजा। वह इस वशके सस्थापक राजा चन्द्रदेव-का पौत्र था, जिसने ११।४ से ११५४ ई० तक विशाल साम्राज्यपर शासन किया। इस साम्राज्यमे वर्तमान उत्तर प्रदेशका अधिकाश भाग तथा विहार शामिल था। वह उदार शासक था, उसने बहुत भूमिदान किया और सिक्के चलाये जो भारतमे अनेक स्थानोपर पाये गये है। उत्तर भारतमे इस समय मुसलमानोका प्रवेश आरभ हो गया था। गोविन्दचन्द्रने जनतापर 'तुरुष्क दण्ड' नामक एक विशेष कर लगाया था। यह शायद मुसलमानी आक्रमणका प्रतिरोध करने हेतु धन एकत्र करनेके उद्देश्यसे लगाया गया था।

गोविन्दपुर–पास-पास बसे उन तीन गावोमेसे एक, जिनके स्थानपर कलकत्ता बसाया गया था। अन्य दो गावोंके नाम सूतानट्टी और कालीकोठा था। कलकत्ताकी नींव जाब चारनाकने १६९० ई०मे रखी थी। ईस्ट इडिया कम्पनीको इसपर जमीदारी अधिकार १६९८ ई०मे प्राप्त हुआ था।

गोशाला–बुद्ध और महावीरका समकालीन, जिसने आजीवक सम्प्रदाय (दे०)की स्थापना की।

गोसॉई–एक शैव सम्प्रदाय, जिसने १९वी शताब्दीके पूर्वार्ध-मे देशमे व्याप्त अशाति और अव्यवस्थाके कारण शस्त्र धारण कर लिया। इन लोगोने हिम्मत बहादुरके नेतृत्वमे शिन्देकी सेनामे भाग लिया। आसाम (या अन्यत्रके भी कुछ) वैष्णव मतोंके प्रधान लोगोको 'गोसॉई' कहा जाता है।

गोहाटी–ब्रह्मपुत्रके बाये या दक्षिणी तटपर स्थित आसामका सबसे विशाल नगर। इसका इतिहास बहुत पुराना है। यह प्राचीन कामरूप राज्यकी राजधानी थी और उस समय इसका नाम प्राग्ज्योतिषपुर था। आधुनिक गोहाटी नगरके निकट ही नीलाचल पहाडीपर कामाख्या देवीका मन्दिर स्थित है। नगरका नाम प्राग्ज्योतिषपुरसे बदलकर गोहाटी कब पडा, यह ठीक तौरसे नही कहा जा सकता, किन्तु ऐसा अनुमान है कि इसका नाम बारहवी शताब्दीके मध्यमे कामरूपके प्राचीन हिन्दू राज्यके पतनके बाद और सोलहवी शताब्दीके प्रारभमे मुगलोकी विजयके बीच रखा गया। जो हो, इतना निश्चित है १६३७ ई०मे मुगल शासकने

जब दक्षिणी आसाममे इस नगरको अपना सदर मुकाम बनाया, तब इसका नाम गुवा-हाटी या गोहाटी था। तीस वर्ष बाद अहोम राजा चक्रध्वज सिह (१६६३–६६)ने इस नगरको मुगलोके आधिपत्यसे मुक्त करा लिया और अपने एक प्रतिनिधि (बार फूकन)की नियुक्ति की। किन्तु १६७९ ई०मे मुगलोके सेनानायक मीर जुमलाने इसपर पुन कब्जा कर लिया। तीन वर्ष बाद १६८२ ई०मे अहोम राजा गदाधर सिह (दे०) (१६८१–९६)ने इसे फिर मुगलोके हाथसे छीन लिया। १७८६ ई०मे अहोम राजा गौरीनाथ सिह (१७८०–९४)ने गौहाटीको अपनी राजधानी बनाया। १७९३ ई०मे कैप्टन वेल्शने, जिनके नेतृत्वमे यहाँ ब्रिटिश कुमुक भेजी गयी थी, इस नगरको ब्रह्मपुत्र महानदके दोनो तटोपर बसा हुआ एक विशाल और घनी आबादीवाला स्थान पाया। आसामपर अंग्रेजोका कब्जा हो जानेके बाद शीघ्र ही गौहाटीका महानगरीय स्वरूप समाप्त हो गया, क्योकि अब नयी राजधानी शिलाग हो गयी। इस समय गौहाटी आसामका प्रमुख व्यापारिक केन्द्र है। यहाँपर एक विश्वविद्यालय भी है।

गौड़–इसका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थो, जैसे पाणिनिके सूत्रो, कौटिल्यके अर्थशास्त्र और कुछ पुराणोमे जनपद और वहाँके निवासियो, दोनोके लिए हुआ है। इसका आशय पश्चिमी और पश्चिमोत्तर बगाल क्षेत्र और यहाँके वासी, दोनो ही है। वग नामका प्रयोग सिर्फ पूर्वी और मध्य बगालके लिए होता था। समुद्रगुप्तके प्रयाग अभिलेख (३३०–८०)मे बगालको गुप्त साम्राज्यका अग बताया गया है, किन्तु उसमे गौडका जिक्र नही है। गौड राजा गुप्त सम्राटोके पतनके बाद प्रमुखतामे आये। इसके शासकोमे गोपचद्र और समाचारदेवके नाम उल्लेखनीय है, जिन्होने इस राज्यकी सैनिक-शक्तिका विस्तार किया। सातवी शताब्दीमे गौडनरेश शशाकने, जिसकी राजधानी कर्णसुवर्ण (मुर्शिदाबाद) थी, थाण्वीश्वर (थानेसर)के पुष्यभूति वशके राजाओसे लम्बा युद्ध किया और उसके दूसरे शासक राज्यवर्धन (दे०)को मार डाला। राज्यवर्धनके भाई और उत्तराधिकारी हर्षवर्धन (दे०)ने इसका बदला लेनेके लिए कामरूप (आसाम)के शासक कुमार भास्करवर्माके साथ मिलकर कमसे कम सन् ६१९ ई० तक शशाकके विरुद्ध युद्ध जारी रखा, किन्तु शशाकने उनकी सेनाओका तीव्र प्रतिरोध किया। शशाककी मृत्युके बाद उसकी राजधानी कर्णसुवर्णपर कुछ समयके लिए भास्करवर्माका अधिकार हो गया। यह अधिकार कितने अरसे तक रहा, ठीक ठीक पता नही चलता। सातवी शताब्दीके मध्यसे लेकर आठवी शताब्दीके मध्य तकके सौ वर्ष गौड राज्य भारी उथल-पुथल, विदेशी आक्रमणो और अराजकतासे व्याप्त रहा। यह स्थिति ७५० ई०मे पाल वशके राजाओके सिहासनारूढ होनेपर समाप्त हुई। पाल नरेशोने गौडेश्वरकी उपाधि धारण की। द्वितीय पालनरेश धर्मपाल (लगभग ७५२–८१०) और उसके पुत्र देवपाल (लगभग ८१०–४९)के शासनकालमे गौड उत्तरी भारतकी एक प्रमुख शक्ति बन गया। इसके बाद पाल वशके पतनपर गौड भी अवनतिके गर्तमे तबतक गिरता रहा, जबतक वहाँ सेन राजाओका नया वश सत्तामे नही आया। ११५८ ई०के लगभग बख्तियार खिलजीके पुत्र मलिक इख्तियारुद्दीन मुहम्मदने हमला करके गौडको सेन शासकोके हाथसे छीन लिया। मुसलमानोके आधिपत्यके बाद पृथक् राज्यके रूपमे गौडका अस्तित्व समाप्त हो गया, किन्तु नगरके रूपमे वह इसी नामसे आगामी तीन शताब्दियो तक प्रातीय राजधानी बना रहा।

गौड, नगर–पश्चिमी बगालके आधुनिक मालदा जिलेमे स्थित। यह सेन राजाओ (११वी और १२वी ई० शताब्दी)के शासनकालमे बगालकी राजधानी था। १२०३ ई०मे इसपर मलिक इख्तियारुद्दीन मुहम्मद बख्तियारने कब्जा कर लिया। १२२० ई०मे गयासुद्दीन ईवाजने इसे बगालकी राजधानी बनाया। १५३८ ई०मे इसे शेरशाहने लूटा और जला दिया। हुमायूने इसका पुनर्निर्माण कराया। १५७० ई०मे सम्राट् अकबरने विशाल फौज भेजकर गौडपर कब्जा कर लिया। इस कब्जेके बाद शहरमे एक भीषण महामारीका प्रकोप हुआ, जिससे इसकी आबादी बहुत कम हो गयी। जब गगा नदी अपनी धारा बदलकर शहरसे दूर जा पहुँची, तब इसका पूरी तरहसे पतन हो गया। अब तो यह ध्वसावशेषोका ढेर और बीहड जगल है। समृद्धिके दिनोमे गौड नगर साढे सात मील लबे और दो मील चौडे क्षेत्रमे फैला हुआ था। इसके चारो ओर सुदृढ प्राचीर था। इस नगरकी अपनी विशिष्ट स्थापत्य शैली थी। इस शैलीकी प्रमुख विशेषता पत्थरके छोटे किन्तु भारीभरकम खम्भोपर टिकी ईटोकी बनी नुकीली मेहराबे और गुम्बज है। गौडमे स्वर्ण मस्जिद (१५२६), छोटी स्वर्ण मस्जिद, लोटन मस्जिद और कदम रसूल मस्जिदके अवशेष अब भी विद्यमान है। इनमे कदम रसूल मस्जिदके अवशेष काफी अच्छी हालतमे है।

गौतम बुद्ध–देखिये, बुद्ध।

गौतमीपुत्र शातकर्णी–सातवाहन वशका एक प्रसिद्ध राजा, जिसने दूसरी शताब्दी ईसवीके प्रथम चतुर्थाशमे शासन

किया। उसने भूमक द्वारा स्थापित क्षहरात वंशका उन्मूलन कर उसका राज्य अपने राज्यमें मिला लिया। गोतमीपुत्र-के राज्यमें मालवा, काठियावाड़, गुजरात, उत्तरी कोंकण, बरार और गोदावरीसे सींचा जानेवाला समग्र प्रदेश शामिल था। उसने विदेशी शकों, यवनों (ग्रीकों) और पह्लवों (पार्थियनों)की शक्तिका विनाशकर देशके गौरव-का पुनरुद्धार किया। उसने ब्राह्मणों और बौद्धोंको उदारतापूर्वक दान दिये, और वर्णाश्रम धर्मकी मर्यादा फिरसे स्थापित की। उसने सातवाहन वंशका गौरव फिरसे प्रतिष्ठित किया।

गौतमी बालश्री—सातवाहन वंशकी एक विधवा रानी, जिसका उल्लेख नासिक अभिलेखमें मिलता है। अभिलेख-में उसे सत्यनिष्ठ, दानी और धैर्यशाली रानी बताया गया है जो तप, त्याग और आत्मसंयमके साथ जीवन व्यतीत करती थी। वह आदर्श राजर्षिवधू और प्रसिद्ध सातवाहन राजा गोतमीपुत्र शातकर्णीकी माता थी।

ग्यान्से—तिब्बतका एक व्यापारिक नगर। १९०४ ई०में लार्ड कर्जनने तिब्बतपर चढ़ाईके लिए अपनी सेना भेजी। सन्धिके अनुसार इस नगरमें ब्रिटिश भारतीय व्यापार मिशन-की स्थापना की गयी।

ग्रान्ट, चार्ल्स (१७४६-१८२३)—ईस्ट इंडिया कम्पनीमें क्लर्ककी हैसियतसे १७६७ ई०में भारतमें नियुक्त, किन्तु पदोन्नति करते-करते १७८१ ई०में वह मालदा (बंगाल) स्थित व्यापारिक कार्यवाह (कामर्शियल रेजीडेंट) बन गया। लार्ड कार्नवालिस उसकी ईमानदारीसे बहुत प्रभा-वित था। फलत: १७८७ ई०में ग्रान्टको व्यापार बोर्डका चौथा सदस्य मनोनीत किया गया। भारतमें वह ईसाई धर्मप्रचारका कट्टर समर्थक था। सेवासे निवृत्त होनेपर वह इंग्लैण्ड वापस गया और १८०२ ई०में ब्रिटिश संसदका सदस्य बनाया गया। १८०५ ई०में ईस्ट इंडिया कम्पनीके कोर्ट आफ डायरेक्टर्सका अध्यक्ष बना। इसके बाद १८०९ और १८१५ में भी इस पदपर चुना गया। ब्रिटिश संसदमें वह भारतीय मामलोंकी बहसमें प्रमुख भाग लेता था। उसने भारतमें शिक्षा-प्रसार और ईसाई धर्मप्रचारके लिए ब्रिटिश संसदमें वार्षिक अनुदान स्वीकार कराया।

ग्रान्ट, जेम्स—बंगालमें ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें १७८४ से १७८९ ई० तक रहा। उसने प्रान्तमें राजस्वकी व्यवस्थाकी देखरेख की और १७९१ ई०में बंगालकी जमींदारी और भूमि-व्यवस्थापर अपनी विस्तृत रिपोर्ट दी। इस रिपोर्टमें उस कालकी राजस्व-प्रणालीका प्रामाणिक विवरण मिलता है।

ग्राण्ड ट्रंक रोड—शेरशाह (१५४०-४५) (दे०) द्वारा बनवायी गयी। यह सड़क पूर्वी बंगालके सोनारगाँवसे पश्चिममें सिन्धु नदी तक लगभग १५०० कोस (३००० मील) लम्बी थी। यह अब भी विद्यमान है और कलकत्ता-को अमृतसर (पंजाब)से जोड़ती है।

ग्राहम, जनरल—१८८८ ई०में सिक्किमपर हुए तिब्बतके आक्रमणको विफल करनेवाली ब्रिटिश भारतीय फौजका सेनापति।

ग्रिफिन, एडमिरल—एक ब्रिटिश नौसेनाधिकारी। जब १७४७ ई०में डूप्ले (दे०)के नेतृत्वमें फ्रांसीसियोंने फोर्ट सेण्ट डेविडपर अधिकार करनेकी कोशिश की, तब इस आक्रमणको विफल करनेवाले नौसैनिक बेड़ेका नेतृत्व ग्रिफिनने ही किया था।

ग्लैडस्टन, विलियम इवर्ट (१८०९-९८)—एक प्रसिद्ध ब्रिटिश राजनेता। वह महारानी विक्टोरियाके जमानेमें उदार दलका नेता था और अपने जीवनकालमें चार बार १८६८-७४, १८८०-८५, १८८६ तथा १८९२-९४ ई० में ब्रिटेनका प्रधानमंत्री रहा। उसने भारतीय प्रशासनमें कुछ अंशोंतक उदारताकी नीति अपनायी थी। वह अनुदार दलवालोंकी उस प्रसार-नीतिका विरोधी था, जिसके फलस्वरूप दो बार अफगान-युद्ध हुआ। उसने लार्ड रिपनको भारतमें वाइसराय (१८८०-१८८४) नियुक्त किया था, जिसकी नीतियाँ बहुत लोकप्रिय हुईं। ग्लैडस्टनने द्वितीय अफगान-युद्ध (१८७८-८०)को समाप्त कराया और अमीर अब्दुर्रहमानको मान्यता प्रदान करते हुए अफगानिस्तानके आन्तरिक मामलोंमें कोई हस्तक्षेप न करनेका आदेश दिया। ग्लैडस्टन अपने उदार सिद्धान्तों और आयरलैंडके राष्ट्रवादके प्रति सहानुभूतिके कारण भारतीय जनतामें भी लोकप्रिय हुआ। भारतमें भी वह उदार नीतिका समर्थक समझा जाने लगा।

ग्लौकनिकाई—भारतपर सिकन्दरके आक्रमणके समय यह गण चनाब नदीके पश्चिम, पंजाबके एक भागमें निवास करता था। यह राज्य पुरु (दे०)के राज्यमें मिला हुआ था। इस गण राज्यमें ३७ पुर थे, जिनमेंसे प्रत्येककी जनसंख्या १० हजारसे अधिक थी। पुरु (पोरस) की पराजयके पश्चात् सिकन्दरने इस गणको भी पराजित कर अपने अधीन कर लिया। इस गणका नाम ग्लौसी भी मिलता है। (**काशीप्रसाद जायसवालने इसे गणकी पहचान पाणिनिके एक सूत्रमें आये ग्लुचुकायन गणसे की है।—संपादक**)

ग्वायर, सर मारिस लिनफोर्ड–एक विख्यात अग्रेज विधिवेत्ता, जो भारतीय सघ न्यायालय (दे०)का अध्यक्ष था और १९३७ से १९४३ ई० तक भारतके प्रधान न्यायाधीश पदपर रहा। अवकाशग्रहण करनेके पश्चात् वह दिल्ली विश्वविद्यालयका उपकुलपति हुआ और १९४९ ई० तक इस पदपर रहा। भारतीय सविधानका प्रारूप तैयार करनेमे उसने महत्त्वपूर्ण योगदान किया था।

ग्वालियर–मध्यप्रदेशका एक नगर। पहले इस नामकी देशी रियासत भी थी। यहाँ एक प्रसिद्ध किला नगरके बाहर लगभग ३०० फुट ऊँची पहाडीपर बना हुआ है। इसकी दीवारे बहुत ऊँची है और बहुत दिनो तक इसे अभेद्य माना जाता रहा। इसे किस राजाने बनवाया, इसका पता नही, किन्तु यह निश्चित हे कि यह ५२५ ई०के पूर्व बना। ऐसी जनश्रुति प्रचलित है कि जिस सूरज नामक राजाने इस नगरकी स्थापना की, वह कुष्ठ रोगसे पीडित था और ग्वालिया नामक एक सतकी कृपासे रोगमुक्त हुआ। नगरका ग्वालियर नाम इसी सन्तके नामपर पडा। शिलालेखोसे पता चलता है कि किलेका आरभिक नाम गोपगिरि या गोपाद्रि था, जिसे बादमे ग्वालियर कहा जाने लगा। ऐतिहासिक प्रमाणोके अनुसार हूण सरदार तोरमाण (दे०) तथा उसके पुत्र मिहिरगुल (दे०)ने छठी शताब्दी ई०मे इसपर अधिकार कर लिया। ९वी शताब्दीमे यह किला कन्नौजके गुर्जर-प्रतिहार राजा भोज (दे०)के अधिकारमे आया। १०२१ ई०मे महमूद गजनवीके आक्रमण-तक यह राजपूतोके अधिकारमे रहा। ११९६ ई०मे सुलतान कुतुबुद्दीन ऐबक (दे०)ने इसपर अधिकार कर लिया। १२१० ई०मे राजपूतोने इसे पुन हथिया लिया, लेकिन १२३२ ई०मे सुल्तान इल्तुतमिशने पुन इसपर कब्जा कर लिया। १३९८ ई०मे यह तोमर (तवर) राजपूतोके अधिकारमे आया और १५१८ ई० तक रहा। इस वशका सर्वप्रसिद्ध राजा मानसिह तोमर (१४८६–१५१७) हुआ है, जिसने इस किलेमे विशाल महल और बडे-बडे फाटक बनवाये। उसकी रानी मृगनैनी-के कारण ग्वालियर सगीत विद्याका केन्द्र बना। तानसेन जैसा विख्यात सगीतज्ञ इसी ग्वालियरकी देन है। यहीपर उसकी कब बनी हुई हे। १५१८ ई०मे इब्राहीम लोदी (दे०)ने इस किलेपर कब्जा जमा लिया। सन् १५२६ ई०मे बाबर (दे०)ने इसपर अधिकार किया। १५४२ ई०मे यह शेरशाह सूरी (दे०)के कब्जेमे आया। लेकिन १५५८ ई०मे अकबरने पुन इसे मुगल सल्तनतमे मिला लिया। मुगल बादशाहोने इस किलेको मुख्यत शाही कैदखानेके रूपमे इस्तेमाल किया, जिसमे राजबदी रखे जाते थे। १७५१ ई०मे मारठोने इसपर कब्जा कर लिया। १७७१ ई०मे मराठा सरदार शिन्देने इसे अपनी राजधानी बनाया। १७८१ ई०मे अग्रेजी सेनाने पोफमके नेतृत्वमे इसपर अचानक कब्जा कर लिया, लेकिन बादमे अग्रेजोने इसे शिन्देको लौटा दिया। १८५७ ई०के स्वाधीनता सग्राम-मे यहाकी फौजोने विद्रोह किया और शिन्देके शासनको समाप्त कर दिया, लेकिन सर ह्यू रोजके नेतृत्वमे अग्रेजी फोजने विद्रोहको दबाकर इसपर कब्जा कर लिया। १८८६ ई० तक इसपर अग्रेज काबिज रहे। बादमे उन्होने इसे शिन्देको लौटा दिया। १९४७ ई०मे भारतके स्वाधीन होनेके बाद यह राज्य भारतीय गणतन्त्रमे विलीन हो गया। इस नगरमे तथा आसपास बहुतसे ऐतिहासिक स्मारक है। नगरमे ८ बडे तालाब तथा ६ बडे महल है। प्राचीन उज्जयिनी, भिलसा (विदिशा), बेसनगर, उदयगिरि तथा बाधकी प्रसिद्ध बौद्ध गुहाओके अवशेष आज भी इस राज्यमे विद्यमान है। चन्देरी, मन्दसौर और गोहदमे भी, जो इसी राज्यके अग थे, प्राचीन अवशेष पाये जाते है।

घ

घसीटी बेगम–बगालके नवाब अलीवर्दीखा (१७४०–५६) की सबसे बड़ी पुत्री। वह अपने चचेरे भाई नवाजिश मुहम्मदको व्याही थी। नवाजिशको ढाकाका हाकिम नियुक्त किया गया, जहाँ उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी विधवा घसीटी बेगम मुर्शिदाबाद लौट आयी। राजवल्लभ उसका दीवान तथा हुसेन कुली खा उसका विश्वस्त गुमाश्ता था। अलीवर्दी खाके पश्चात् घसीटी बेगमने अपने भाजे सिराजुद्दौलाको गद्दीपर बैठानेका समर्थन नही किया। उसने अपनी दूसरी छोटी बहनके पुत्र शौकतजगको, जो पूर्णियाका हाकिम था, बगालका नवाब बनाना चाहा। सिराजने इसी दौरान जब सुना कि घसीटी बेगम और हुसेन कुली खाके बीच अवैध सबध है, तो वह आगबबूला हो गया और उसने मुर्शिदाबादकी सडकपर खुलेआम हुसेनकुली खाकी हत्या कर दी। इससे घसीटी बेगम और सिराजके बीच मनमुटाव और बढ गया। जब १७५६ ई०मे अलीवर्दी खा बहुत बीमार था और उसके जीवित रहनेकी कोई आशा नही रही, घसीटी बेगमने राजवल्लभकी सलाहपर मुर्शिदाबाद स्थित नवाबके महलको छोड दिया

और नगरके बाहर दक्षिणमे दो मील दूर मोतीझीलपर वह अपने १० हजार अंगरक्षकोंके साथ रहकर सिराजुद्दौला-के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने लगी। सिराज गद्दीपर बैठनेके बाद बडी चतुराईसे घसीटी बेगमको मोतीझीलसे नवाबके महलमे ले आया। राजवल्लभ घसीटी बेगमका बहुत-सा धन हडपकर अंग्रेजोंकी शरणमे चला गया, किन्तु घसीटी बेगम अब सिराजुद्दौलाके विरुद्ध षड्यन्त्रोंमे कोई सक्रिय भाग लेनेकी स्थितिमे नही रह गयी थी। १७५६ ई०मे सिराजने घसीटी बेगमकी छोटी बहनके पुत्र शौकतजंगको लडाईमे हरा दिया और मार डाला। इसके बाद बंगालकी राजनीतिपर घसीटी बेगमका प्रभाव समाप्त हो गया। आज भी मोतीझीलके खडहर विद्यमान है।

घोषा—वैदिक युगकी एक प्रमुख ब्रह्मवादिनी नारी, जिसके नामसे ऋग्वेदमे अनेक सूक्त मिलते है।

च

चगेज खाँ—जन्म ११६२ ई०मे। उसका मूल नाम तामूचिन था। वह मंगोलोंका सरदार था जो बादको चिंगीज़ कागन (चगेज खाँ)के चीनी नामसे विख्यात हुआ। वह महान् सेनानायक और विजेता था, जिसने चद वर्षोंके अदर चीनके विशाल भूभाग और मध्य एशियाके सभी प्रसिद्ध राज्योपर विजय प्राप्त कर ली थी। इन राज्योमे बलख, बुखारा और समरकद तथा हेरात और गजनी शामिल थे। चगेज खाँने खीवाके बादशाह जलालुद्दीनको हराया जो भागकर पजाब पहुँचा और उसने दिल्लीके सुल्तान इल्तुतमिश (१२११–३६)से शरण माँगी, मगर इल्तुत-मिशने इनकार कर दिया। सुलतान इल्तुतमिशके इस बुद्धिमत्तापूर्ण कदमका परिणाम यह हुआ कि चगेजखाँ, जो वस्तुत सिन्ध नदी तक चढ आया था, भारतकी ओर न बढकर दक्षिण-पूर्वी यूरोपकी तरफ मुड गया। मृत्युसे पहले (१२२७ ई०) तक चगेज खाँ ने दक्षिण-पूर्वी यूरोपके अनेक भागोको रौदा और कृष्ण सागरमे गिरनेवाली नीपर नदी तक अपनी विजय-वैजयती फहरायी। चगेज खाँ सेनानायक और विजेता मात्र ही नही, सुयोग्य सगठन-कर्ता और शासक भी था। उसने अपने विशाल साम्राज्यके लिए कानून बनाये और व्यवस्थाकी स्थापना की। उसके वशजोंने बादको इस्लाम धर्म अपना लिया। भारतीय मुगल साम्राज्यका सस्थापक बाबर भी मातृकुलसे अपनेको चगेज खाँकी सतान मानता था।

चण्ड प्रद्योत महासेन—देखिये, अवन्तीका प्रद्योत।

चण्डीदास, अनन्तबडु—प्रख्यात वैष्णव कवि। इनका जन्म पश्चिमी बगालके वीरभूमि जिलेके नन्नूर गाँवमे सम्भवत चौदहवी शताब्दीके अन्तमे हुआ था। इन्होंने राधाकृष्ण-प्रेमपर बगला भाषामे बहुत ही सुन्दर भजनोकी रचना की है। ये गीत आज भी बहुत लोकप्रिय है। 'श्रीकृष्ण कीर्तन' भी इन्हींकी रचना है।

चद बरदाई—दिल्ली और अजमेरके शासक (११७०–६०) पृथ्वीराज चौहान (दे०)का दरबारी कवि। उसने 'पृथ्वी-राज रासो' या 'चद रायसा' नामक महाकाव्यकी रचना की थी। इस ग्रथमे मुख्यरूपसे पृथ्वीराज चौहानकी गौरवगाथा, उसके विवाहो और मुसलमानोंसे युद्धोका वर्णन है।

चंद रायसा—हिन्दीका एक प्रसिद्ध महाकाव्य, जिसे दिल्ली और अजमेरके चौहान शासक पृथ्वीराजके दरबारी कवि चद्र बरदाईने लिखा है। बादमे चारणोंने इसमे कुछ अंग और जोडकर इसकी आकार-वृद्धि कर दी। अब इस ग्रथमे लगभग सवा लाख छद मिलते है। पृथ्वीराजके जीवन, कन्नौजके राठौर राजा जयचदसे उसकी शत्रुता, उसके विवाह, मुसलमानोके साथ हुए उसके युद्धो और उसकी वीरगतिके बारेमे सूचना देनेवाला एकमात्र यही ग्रथ है।

चन्दा साहब—कर्नाटकके नवाब दोस्त अलीका दामाद। १७४१ ई०मे मराठोंने कर्नाटकपर हमला कर दिया और नवाब दोस्त अलीकी हत्या कर उसके दामाद चन्दा साहबको बदी बनाकर ले गये। सात वर्ष बाद १७४८ ई० मे मराठोंने चन्दा साहबको मुक्त कर दिया। इसी बीच पहला कर्नाटक या इंग्लैण्ड-फ्रास युद्ध छिड गया था। इस युद्धमे डूप्लेके नेतृत्वमे फ्रासीसियोंके श्रेष्ठ रणकौशलकी सब ओर प्रशसा होने लगी। इसलिए चन्दा साहबने अनवरुद्दीनको गद्दीसे उतारनेके लिए, जिसे १७४३ ई० मे निजामने कर्नाटकका नवाब नियुक्त किया था, डूप्लेके साथ सैनिक सधि कर ली। दोनोकी सयुक्त फौजोंने अगस्त १७४६ ई०मे आम्बूरके युद्धमे अनवरुद्दीनको हराया और मार डाला तथा उसके पुत्र और भावी उत्तराधिकारी मुहम्मद अलीको खदेड दिया। मुहम्मदअलीने त्रिचिना-पल्लीके किले मे शरण ली। चन्दा साहब कर्नाटकका नवाब घोषित किया गया तथा आर्काट राजधानी बनी। इसके बाद चन्दा और डूप्लेने त्रिचिरापल्लीमे मुहम्मद अलीको घेर लिया। किन्तु यह घेरा कुशलताके साथ नही सचालित किया गया, जिससे मुहम्मद अलीको मैसूर और तजोरके शासकोंसे सहायता प्राप्त करनेका

समय मिल गया। उधर मद्रासस्थित अंग्रेजोको भी मुहम्मद अलीकी तरफसे हस्तक्षेप करनेका मौका मिल गया। युवक राबर्ट क्लाइव (दे०)ने दो सौ अंग्रेज तथा तीन सौ भारतीय सैनिकोको लेकर आर्काटके किलेपर अचानक आक्रमण करके अधिकार कर लिया। चन्दा साहबने आर्काटको पुन हस्तगत करनेके लिए तुरत भारी फौज भेजी, लेकिन वह न केवल अपने इस प्रयासमे विफल हुआ वरन् घमासान युद्धमे पराजित भी हुआ। उसने मजबूर होकर आत्मसमर्पण कर दिया। लेकिन तजौरके राजा (१७५२)के आदेशपर उसका सर उडा दिया गया।

चंदावरका युद्ध—११९४ ई०मे शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी और बनारस तथा कन्नौजके राजा जयचदके बीच हुआ। जयचद इस युद्धमे पराजित होकर मारा गया तथा कन्नौज और बनारसपर मुस्लिम शासन स्थापित हो गया।

चदेल—राजपूतोकी एक जाति, इस वर्गके लोग अपनेको क्षत्रिय वर्णके अन्तर्गत मानते है। किन्तु कुछ आधुनिक विद्वानो द्वारा उनकी उत्पत्ति गोडो तथा भरोसे बतलायी जाती है। बादमे इनके सरदारोके हाथमे शासन सत्ता आ जानेपर इन्हे क्षत्रिय कहा जाने लगा। चदेलोकी राजनीतिक शक्तिका उदय और विकास आधुनिक विध्य प्रदेशके दक्षिणमे विध्याचल और उत्तरमे यमुनाके बीच स्थित बुदेलखण्डमे हुआ। उस समय इस प्रदेशका नाम जेजाकभुक्ति या जझौती था। खजुराहोके भव्य मदिर, कालिजरका मजबूत किला, अजयगढका महल और महोबाका प्राकृतिक सौदर्य चदेलोकी सस्कृति और उपलब्धियोके केन्द्र थे। चदेल शिव तथा कृष्णके उपासक थे, परन्तु कुछ चदेल बौद्ध और जैन धर्मोके भी अनुयायी थे। चदेलोने स्थापत्यकलाकी एक भव्य शैलीका विकास किया, जिसके उदाहरण खजुराहोमे अब भी विद्यमान है। यहाँका महादेव नामक मुख्य शिव मन्दिर १०९ फुट लम्बा,, ६० फुट चौडा और ११६ ५ फुट ऊँचा है। चदेलोकी शासनप्रणाली राजतत्रीय परम्परापर आधारित थी और उसमे न केवल राजसिहासनके लिए उत्तराधिकारकी व्यवस्था थी, वरन् मत्रियोके पद भी वशानुगत हुआ करते थे। दसवी शताब्दीके अन्तमे प्रतिहारोकी शक्ति क्षीण हो जानेके बाद चदेलोको सपूर्ण उत्तरी भारतपर शासन करनेका अवसर मिला, लेकिन वे इसके योग्य सिद्ध नही हुए। (**एन० एस० बोस कृत 'हिस्ट्री आफ चदेलाज', एस० के० मित्र कृत 'खजुराहोके प्रारम्भिक शासक'**)

चदेलवंश—नवी शताब्दीके आरभमे नानुक चदेल द्वारा इस वशकी स्थापना हुई, जो प्रतिहारोके मुखियाको विनष्टकर जेजाकभुक्ति (आधुनिक बुदेलखण्ड)के दक्षिणी भागका स्वामी बन गया था। नानुकसे बीस राजाओकी वशपरम्परा चली। इससे पहलेके चदेल राजा गुर्जर प्रतिहारोके करद सामत थे। सातवॉ राजा यशोवर्मा ही व्यावहारिक दृष्टिसे इस वशका पहला स्वतत्र शासक हुआ। उसने कालिजरका प्रसिद्ध दुर्ग अपने अधिकारमे कर लिया और खजुराहो मदिरमे स्थापनार्थ विष्णुकी बहुमूल्य प्रतिमा उपहारस्वरूप देनेके लिए प्रतिहार राजा देवपालको मजबूर कर दिया। उसका पुत्र धग (लगभग ९५०–१००८ ई०) चदेलवशका सबसे अधिक प्रतापी शासक हुआ। उसने पूरे जेजाकभुक्तिपर अपने राज्यका विस्तार करते हुए *तत्कालीन भारतीय राजनीतिमे सक्रिय भाग* लिया। वह ९८९ या ९९० ई० मे अफगानिस्तानसे होनेवाले सुबुक्तगीनके आक्रमणको रोकनेके लिए पजाबनरेश जयपाल द्वारा बनाये गये सघमे शामिल था। लेकिन सुबुक्तगीनके हाथो इस सघको हार खानी पडी। अन्तमे सौ वर्षकी लम्बी आयु प्राप्त कर धगने प्रयागमे शिवका नाम लेते हुए गगा-यमुना सगममे जल-समाधि ले ली। धगके बाद उसके पुत्र गडने पजाबनरेश आनदपाल (जयपालका पुत्र)के साथ सघ बनाकर महमूद गजनवीसे मोर्चा लिया, किन्तु दुर्भाग्यसे यह दूसरा सघ भी पराजित हुआ। इस वशके दसवे शासक विजयपाल (१०३०–५० ई०)ने कन्नौजनरेश राज्यपालपर आक्रमण कर इसलिए मार डाला कि उसने सुल्तान महमूद गजनवीके आगे आत्मसमर्पण कर दिया था। किन्तु शीघ्र ही वह स्वय महमूद गजनवीसे पराजित हो गया। यद्यपि महमूद गजनवीका आधिपत्य अधिक समय तक नही रहा, तथापि श्री विजयपालकी पराजयसे इस वशकी शक्ति क्षीण हो गयी और बादके बारहो राजाओमे कोई भी तत्कालीन राजनीतिमे महत्त्वपूर्ण भाग नही ले सका और धीरे-धीरे चदेल शक्तिका पतन हो गया। बारहवे राजा कीर्तिवर्माने (१०६०–११०० ई०) प्रसिद्ध आध्यात्मिक नाटक 'प्रबोधचद्रोदय' के रचयिताको अपने यहॉ प्रश्रय दिया था। सत्रहवा शासक परमार्दि या परमल (लगभग ११६५–१२०२ ई०) इस वशका अन्तिम उल्लेखनीय राजा था, जिसने इतिहासके मचपर कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। परमार्दिने अजमेरके चौहान राजा पृथ्वीराजके आक्रमणका बहादुरीसे सामना किया किन्तु हारका मुह देखना पडा। इसके बाद कुतुबुद्दीन ऐबक आ धमका और उसने कालिजरके दुर्गपर कब्जा कर लिया। चदेलवशने बुदेलखडकी मात्र स्थानीय शक्तिके रूपमे १४वी शताब्दी तक किसी न किसी तरह

अपना अस्तित्व बनाये रखा। अन्तिम शासक हमीरवर्माके निधनके साथ इस वशका अन्त हो गया (**एन० एस० बोस कृत 'हिस्ट्री आफ दि चंदेलाज'**)।

चन्द्र–पूर्वी बगालका स्थानीय सामन्त, जिसने ग्यारहवी शताब्दीमे पालवशकी अवनति शुरु होनेके बाद कुछ समयके लिए बगालके कुछ भागपर शासन किया।

चन्द्रगिरि–लगभग १५८५ ई०मे विजयनगरके परवर्ती राजाओकी राजधानी। १६३९ ई०मे चन्द्रगिरिके राजाके अधीनस्थ एक नायकने ईस्ट इडिया कम्पनीके मि० डेको मद्रासकी भूमि प्रदान कर दी। १६४५ ई०मे चद्रगिरिके राजा रग द्वितीयने इस अनुदानकी पुष्टि कर दी। इसके बाद वहाँ सेण्ट डेविड नामक किलेका निर्माण हुआ। इसी किलेके चारो तरफ मद्रास नगरका विकास किया गया है।

चन्द्रगुप्त–कर्कोट वशका तीसरा राजा। इस वशकी स्थापना सातवी शतीके प्रारभमे कश्मीरमे हुई थी।

चन्द्रगुप्त प्रथम–गुप्त राजाओके वशका प्रवर्तक और पहला शासक। शुरूमे उसका शासन मगधके कुछ भागो तक सीमित था। बादको लिच्छिवि कुमारी कुमारदेवीसे विवाह करके उसने अपनी शक्ति और राज्यका विस्तार कर लिया। उसने पाटलिपुत्रको राजधानी बनाया, महाराजाधिराजकी उपाधि धारण की, स्वय अपने, अपनी रानी और लिच्छिवियोके नामपर सयुक्तरूपसे सोनेके सिक्के चलाये, साम्राज्यका विस्तार मगधके बाहर इलाहाबाद तक किया और एक नये युगका प्रवर्तन किया जो गुप्तकालके नामसे ज्ञात हे। गुप्तकालका शुभारभ २६ फरवरी ३२० ई०मे हुआ, जो सम्भवत चन्द्रगुप्तके राज्याभिषेककी तिथि है। चन्द्रगुप्त प्रथमका अल्प शासनकाल ३३० ई०मे समाप्त हो गया। मृत्युके पहले उसने अपने पुत्र समुद्रगुप्त (दे०) को, जो कुमारदेवीसे जन्मा था, उत्तराधिकारी मनोनीत किया। इसने अपने बाहुबलसे साम्राज्यका दूर-दूर तक विस्तार किया और शक्तिशाली गुप्त सम्राटोके वशका सूत्रपात किया, जिन्होने पाँचवी शताब्दीके अत तक मगधपर शासन किया।

चन्द्रगुप्त द्वितीय–गुप्त वशका तीसरा सम्राट् और समुद्रगुप्त (दे०) का पुत्र व उत्तराधिकारी। इसका शासनकाल सम्भवत ३७५ ई०से ४१३ ई० तक रहा। उसने मालवा, गुजरात और काठियावाडपर विजय प्राप्त की, उज्जयिनीके शक क्षत्रपोका उच्छेदन किया और उनका राज्य गुप्तसाम्राज्यमे मिला लिया। अपनी महान् विजयोके उपलक्ष्यमे उसने विक्रमादित्य (दे०)की उपाधि धारण की। शायद यह वही विक्रमादित्य है, जिसकी न्याय-नीति, उदारता और शौर्य-पराक्रमके बारेमे न जाने कितनी किंवदतियाँ प्रचलित है। इतना स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय बहुत प्रतापी और शक्तिशाली सम्राट् था। उसके शासनकालमे कला, स्थापत्य और मूर्तिरचनाका उल्लेखनीय विकास हुआ और भारतका सास्कृतिक विकास तो अपनी पराकाष्ठापर पहुँच गया। कालिदास जैसा सस्कृतका उद्भट महाकवि और नाटककार (अभिज्ञानशाकुन्तलम्का लेखक) चन्द्रगुप्त द्वितीयके ही दरबारमे था। उसके ही शासनकालमे चीनी यात्री फाह्यान भारत आया और छ वर्षो (४०५–११) तक उसके राज्यमे रहा। फाह्यान यद्यपि सम्राट् चद्रगुप्तके दरबारमे कभी गया नही, तथापि उसने तत्कालीन भारतकी बहुत सुदर तस्वीर पेश की है। उसने अपने यात्रा-विवरणोमे लिखा है कि उस समय देशका शासन अत्यन्त सुव्यवस्थित था, लोग शान्तिपूर्ण और समृद्धिशाली जीवन बिता रहे थे। सम्राट् चद्रगुप्त आमतौरसे अयोध्या या कोशाम्बीमे रहता था, फिर भी पाटलिपुत्रकी ख्याति महत्त्वपूर्ण नगरके रूपमे बनी हुई थी। फाह्यानको इस नगरके वैभव और सुख-सम्पन्नताने अत्यन्त प्रभावित किया। चद्रगुप्तने धर्मार्थ औषधालयो और यात्रियोके लिए नि शुल्क विश्रामशालाओका निर्माण कराया। वह अपने पूर्वजोकी ही तरह धर्मनिष्ठ हिन्दू और विष्णुका उपासक था, लेकिन उसने बौद्ध और जैन धर्मोको भी प्रश्रय दिया।

चन्द्रगुप्त मौर्य–मौर्यवशका सस्थापक। उसके माता-पिताके नाम ठीक-ठीक ज्ञात नही हे। पुराणोके अनुसार वह मगधके राजा नन्दका उपपुत्र था, जिसका जन्म मुरा नामक शूद्रा दासीसे हुआ था। बौद्ध और जैन सूत्रोसे पता चलता है कि चन्द्रगुप्त मौर्यका जन्म पिप्पलिवनके मोरिय क्षत्रिय कुलमे हुआ था। जो भी हो, चन्द्रगुप्त प्रारभसे ही बहुत साहसी व्यक्ति था। जब वह किशोर ही था, उसने पजाबमे पडाव डाले हुए यवन (यूनानी) विजेता सिकदरसे भेट की। उसने अपनी स्पष्टवादितासे सिकदरको नाराज कर दिया। सिकदरने उसे बदी बना लेनेका आदेश दिया, लेकिन वह अपने शौर्यका प्रदर्शन करता हुआ सिकदरके शिकजेसे भाग निकला और कहा जाता है कि इसके बाद ही उसकी भेट तक्षशिलाके एक आचार्य चाणक्य या कौटिल्यसे हुई। चाणक्यने चद्रगुप्तको सुदृढ सेना गठित करने और नदवशके अन्तिम शासकको उच्छिन्न कर मगधमे अपना शासन स्थापित करनेमे धनकी सहायता दी। इस बीच सिकदर भारतसे लौट गया था और उसकी मृत्यु भी हो चुकी थी। इस स्थितिका लाभ उठाकर चद्रगुप्तने

पजावसे यूनानी शासनका उच्छेदन कर दिया। इन घटनाओकी निश्चित तिथिया अभी तक निर्धारित नही की जा सकी है, लेकिन ऐसा अनुमान है कि वे ईसापूर्व ३२४ और ३२१ के बीच घटी होगी। चद्रगुप्तके पास विशाल सेना थी, जिसमे ३० हजार घुडसवार, ९ हजार हाथी, ६ लाख पैदल और भारी सख्यामे रथ शामिल थे। इस विशाल वाहिनीके बलपर उसने सपूर्ण आर्यावर्त (उत्तरी भारत)पर अपनी विजय-पताका फहरायी। मालवा, गुजरात और सौराष्ट्रपर विजय प्राप्त कर उसने नर्मदा तक साम्राज्यका विस्तार किया। ईसा-पूर्व ३०५ मे यूनानी सेनापति सेल्यूकसने, जो सिकदरकी मृत्युके बाद पूर्वी यूनानी साम्राज्यका अधिष्ठाता बन बैठा था, चद्रगुप्तकी शक्तिको चुनौती दी। भारत और यूनानी सम्राटोमे जमकर लडाई हुई। यद्यपि इस युद्धके बारेमे विस्तारसे कुछ पता नही है, फिर भी इतना निश्चित है कि इसमे सेल्यूकसकी हार हुई और उसे अपमानजनक सधि करनेको बाध्य होना पडा, जिसके अतर्गत उसने चद्रगुप्त मौर्यको काबुल, हेरात, कन्धार और बलूचिस्तानके प्रदेश समर्पित कर दिये और अपनी पुत्री हेलनाका उससे विवाह कर दिया। चद्रगुप्त मौर्यने सेल्यूकसको उपहारमे सिर्फ ५०० हाथी दिये। इस प्रकार चद्रगुप्त मौर्य अपने साम्राज्यका विस्तार उत्तर-पश्चिममे हिदुकुशकी पहाडियो तक करके उसे वहाँ तक पहुँचा दिया जिसे भारतकी वैज्ञानिक सीमा कहा जाता है। इतिहासकारोके मतानुसार यह सधि ईसा-पूर्व ३०३मे हुई होगी। यह सधि चद्रगुप्त मौर्यकी सबसे बडी उपलब्धि थी। चद्रगुप्त अठारह वर्षोके अल्पकालमे न केवल मगधके राजसिहासनपर बैठा वरन् उसने पजाव और सिंधसे यूनानी फौजोको खदेड दिया, सेल्यूकसका दर्प चूर कर दिया और समग्र उत्तर भारतमे अपना एकछत्र साम्राज्य स्थापित कर लिया। इन्ही उपलब्धियोके कारण चद्रगुप्तकी गणना भारतीय इतिहासके महान् और सर्वाधिक सफल सम्राटोमे होती है।

चन्द्रगुप्तके दरबारमे मेगस्थनीज (दे०) नामक एक यूनानी राजदूत भेजा गया था। उसके द्वारा लिखी गयी पुस्तक 'इडिका' (दे०) तथा चाणक्य या कौटिल्यके अर्थशास्त्रसे चन्द्रगुप्तकी उस शासन-प्रणालीके बारेमे पता चलता है, जिसके बलपर विशाल साम्राज्यको एक सूत्रमे बाँधकर चौबीस वर्षो (ईसा-पूर्व ३२२से २९८)तक सफलतापूर्वक शासन करता रहा। पाटलिपुत्रमे चद्रगुप्तका महल, जो मेगस्थनीजके अनुसार ऐश्वर्य और वैभवमे सूसा और इक्बतानाके महलोकी भी मात करता था, अब नही है। स्वय पाटलिपुत्र नगर भी, जो गगा और सोन नदियोके सगमपर आधुनिक दीनापुरके निकट बसा हुआ था, अब इन नदियोकी रेतके नीचे दबा पडा है। लेकिन उसके यशस्वी निर्माताकी कीर्ति अजर अमर है। (**स्मिथ, अध्याय ४; राय चौधरी, अध्याय ४ तथा मैकक्रिनिल कृत 'एन्शियेन्ट इडिया'**)

चन्द्रदेव—ग्यारहवी शताब्दीके आखिरी दशकमे इसने गाहडवाल वशकी स्थापना की और कन्नौजको राजधानी बनाया। उसके वशने तेरहवी शताब्दीके आरभ तक राज्य किया।

चन्द्रनगर—बगालका वह स्थान, जहाँ फ्रेंच ईस्ट इडिया कम्पनीने व्यापारिक केन्द्रकी स्थापना की। फ्रासीसियोको यह स्थान १६७४ ई० मे नवाब शायस्ता खाँने दिया था और कारखानेका निर्माण १६९०—९२ ई०मे हुआ। १७५७ ई० मे क्लाइव और वाटसनके नेतृत्वमे अग्रेजोने इस नगरपर कब्जा कर लिया। छ वर्ष बाद १७६३ ई०मे चन्द्रनगर फ्रासीसियोको इस हिदायतके साथ फिर लौटा दिया गया कि व्यापारिक केन्द्रके अलावा किसी और रूपमे इसका विकास न हो। चन्द्रनगर १९५० ई०मे भारतीय गणतत्रकी स्थापना तक फ्रासीसियोके अधिकारमे रहा। इसके बाद इसका विलय भारतीय गणतत्रमे हो गया।

चन्द्र, राजा—मेहरौली लौह-स्तम्भके अभिलेखोमे इसका वर्णन हुआ है। कहा जाता है कि उसने एक तरफ तो बगालमे अपने शत्रुओको परास्त किया और दूसरी तरफ सिधके मुहानेपर बाह्लीकोपर विजय प्राप्त की। इस राजाकी पहचान निश्चित रूपसे नही की जा सकी है। सुसुनिया अभिलेखमे भी चन्द्र नामक राजाका उल्लेख है। (**रायचौधरी, पृ० ५३५ नोट**)

चन्द्र वर्मा—इस नामके दो राजा हुए हैं। एकका वर्णन महाकाव्योमे कम्बोजनरेशके रूपमे हुआ है और दूसरेका उल्लेख समुद्रगुप्तके प्रयाग-अभिलेखमे मिलता है। इस अभिलेखके अनुसार समुद्रगुप्तने उत्तरी भारतके जिन राजाओको पराजित और अपदस्थ किया, उनमे एक राजा चन्द्रवर्मा भी था। सुसुनिया अभिलेखमे इस नामके जिस राजाका उल्लेख है, वह पश्चिमी बगालके बाँकुडा जिलेमे दामोदर नदीके तटपर स्थित 'पुष्करण'का शासक था। (**रायचौधरी, पृ० ५३४—५४**)

चन्द्रसेन जादव—धनाजी यादवका पुत्र और मराठा राजा साहुका प्रधान सेनापति। चन्द्रसेनका अधीनस्थ सेनासचालक बालाजी विश्वनाथ था। बादको बालाजीकी बढती हुई शक्तिके आगे चन्द्रसेनकी शक्ति क्षीण हो गयी और १७१३ ई०मे बालाजी पेशवा बन गया।

चम्पतराय–बुंदेलोका नेता। उसने बुंदेलोको सगठित करके मुगल बादशाह औरंगजेब (१६५८–१७०७ ई०) के शासनके आरम्भिक दिनोमे उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया, लेकिन जब चम्पतरायने देखा कि औरंगजेबसे उसकी हार निश्चित है और कैद हो जाना सम्भव है, तो उसने अपने पुत्र छत्रसालको औरंगजेबके खिलाफ लडाई जारी रखनेका दायित्व सौंपकर आत्महत्या कर ली।

चम्पानगर–मगधके पूर्व और राजमहल पहाडियोके पश्चिममे स्थित प्राचीन अग राज्यकी राजधानी। आधुनिक विहारका भागलपुर क्षेत्र ही प्राचीन कालका चम्पानगर था। यह नगर चम्पा नदी और गगाके सगमपर बसा हुआ था और अत्यन्त समृद्ध था एव वाणिज्य-व्यापारका प्रसिद्ध केन्द्र था। भागलपुर शहरके निकट चम्पानगर और चम्पापुर गाँवोसे इस प्राचीन नगरकी पहचान की जाती है। (राय चौधरी, पृ० १०७)

चम्पा राज्य–एक प्राचीन हिन्दू राज्य, जिसकी स्थापना भारतीय प्रवासियोने दूसरी शताब्दी ई०मे हिन्दचीनके अनाम प्रदेशमे की थी, जो आज वियतनामके नामसे विदित है। राज्यकी राजधानीका नाम भी चम्पा था। चम्पा राज्यका अस्तित्व लगभग तेरह सौ वर्षो (लगभग १५० ई० से १४७१ ई०) तक कायम रहा। इसने कम्बुज, अनाम और यहाँ तक कि महान मगोल सरदार कुबलाई खाँके विरुद्ध लडाइयोमे शानदार विजय प्राप्त की। चीनसे इसके अच्छे राजनयिक सबध थे। यहाँके लोग मुख्यत हिन्दू धर्मको मानने वाले थे। उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु और महेशके बहुतसे मदिरोका निर्माण कराया। बौद्धधर्मावलम्बियोकी सख्या भी यहाँ काफी थी। यहाँके अभिलेखोमे सस्कृत भाषा और देवनागरी लिपिका प्रयोग किया गया है। सोलहवी शताब्दीमे मगोलवशी अनामियोने इस हिन्दू राज्यको समाप्त कर दिया।

चक्क–१५५५से १५८८ ई० तक कश्मीरपर शासन करनेवाली जनजाति। इसका शासन मुगल सम्राट् अकबरने उखाड फेका था।

चक्रपाणि–एक प्रसिद्ध सस्कृत विद्वान्, जिसने चिकित्साशास्त्रमे विशेष दक्षता प्राप्त की थी। इसका काल ग्यारहवी शती है। इसने चरक और सुश्रुतसहिताओपर बहुत सुदर व्याख्याएँ लिखी, जिनका नाम क्रमश 'आयुर्वेद-दीपिका' और 'भानुमती' है। चक्रपाणिकी एक अन्य पुस्तक 'चिकित्सासग्रह' आरोग्य विज्ञानका आधिकारिक ग्रथ है। (बगालका इतिहास, खण्ड १, पृष्ठ ३१६–३१८)

चक्रवर्ती राजा–प्राचीनकालमे उस सार्वभौम सम्राट्को कहते थे, जिसका सम्पूर्ण भारतपर एकछत्र शासन हो। प्राचीन भारतके सभी शक्तिशाली शासक इस महान् पदको प्राप्त करनेके आकाक्षी हुआ करते थे, लेकिन कुछ ही राजा अपनी इस अभिलाषाको पूरा करनेमे सफल होते थे। साहित्य और शिलालेखोमे उल्लिखित चक्रवर्ती राजाओसे इस बातका पता तो चलता ही है कि तत्कालीन भारतमे मौलिक राजनीतिक एकता विद्यमान थी।

चक्रायुध–बगालके राजा धर्मपाल (लगभग ७७०–८०० ई०)का आश्रित, जिसको धर्मपालने कन्नौजके शासक इन्द्रायुध या इन्द्रराजको हराकर उसके स्थानपर वहाँका शासक नियुक्त किया। कन्नौजके शासकके रूपमे उसकी गतिविधियोके बारेमे कुछ ज्ञात नही है। शिलालेखीय प्रमाणोसे पता चलता है कि चक्रायुध धर्मपालका सामत था और इसी धर्मपालके सरक्षकत्वमे उसका सितारा चमका। इतना निश्चित है कि कन्नौजपर चक्रायुधका शासन अधिक समय तक नही रहा, क्योकि उसे और उसके सरक्षक धर्मपाल दोनोको ही गुर्जर-प्रतिहार नरेश नागभट्टने पराजित कर दिया और उनके राज्यको अपने बढते हुए साम्राज्यमे मिला लिया। यह ठीकसे ज्ञात नही है कि राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द तृतीयके हाथो नागभट्टकी पराजयके बाद चक्रायुध पुन कन्नौजके सिंहासनपर आरूढ हुआ कि नही। इतना निश्चित है कि चक्रायुधने कन्नौजमे अपना कोई राजवश स्थापित नही किया।

चगताई–प्रसिद्ध मगोल सरदार चगेज खाँका दूसरा पुत्र, जिसने बारहवी शताब्दीके उत्तरार्धमे मध्य और पश्चिमी एशियामे विशाल साम्राज्य स्थापित किया। चगताईके वशज 'चगताई मुगल'के नामसे जाने जाते है। बाबर मातृकुलसे चगताई वशका ही था।

चच–सिंधके ब्राह्मण शासक वशका सस्थापक। जब ७११ ई० मे अरबोने सिन्धपर आक्रमण किया तो चचका पुत्र और उत्तराधिकारी 'दाहिर' (दे०) सिंधके राजसिंहासनपर आरूढ था।

चटगाँव जिला–आराकानके राजाने १६६६ ई०मे इसे मुगल सम्राट् औरंगजेबके हवाले कर दिया। १७६० ई०मे मीर कासिमने यह जिला ईस्ट इडिया कम्पनीको दे दिया। १९०५ ई०मे बग-भग होनेपर यह जिला अन्य जिलोके साथ पूर्वी बगाल और आसामके नवगठित प्रान्तमे जोड दिया गया। बग-भग रद्द होनेपर १९१२ ई०मे यह फिर बगाल प्रातके अन्तर्गत आ गया। १९४७ ई०मे पाकिस्तान बननेपर चटगाँव पूर्वी-पाकिस्तान (पूर्वी बगाल) का भाग

पजाबसे यूनानी शासनका उच्छेदन कर दिया। इन घटनाओकी निश्चित तिथिया अभी तक निर्धारित नही की जा सकी है, लेकिन ऐसा अनुमान है कि वे ईसापूर्व ३२४ और ३२१ के बीच घटी होगी। चद्रगुप्तके पास विशाल सेना थी, जिसमे ३० हजार घुडसवार, ९ हजार हाथी, ६ लाख पैदल और भारी सख्यामे रथ शामिल थे। इस विशाल वाहिनीके बलपर उसने सपूर्ण आर्यावर्त (उत्तरी भारत)पर अपनी विजय-पताका फहरायी। मालवा, गुजरात और सौराष्ट्रपर विजय प्राप्त कर उसने नर्मदा तक साम्राज्यका विस्तार किया। ईसा-पूर्व ३०५ मे यूनानी सेनापति सेल्यूकसने, जो सिकदरकी मृत्युके बाद पूर्वी यूनानी साम्राज्यका अधिष्ठाता बन बैठा था, चद्रगुप्तकी शक्तिको चुनौती दी। भारत और यूनानी सम्राटोमे जमकर लडाई हुई। यद्यपि इस युद्धके बारेमे विस्तारसे कुछ पता नही है, फिर भी इतना निश्चित है कि इसमे सेल्यूकसकी हार हुई और उसे अपमानजनक सधि करनेको बाध्य होना पडा, जिसके अतर्गत उसने चद्रगुप्त मौर्यको काबुल, हेरात, कन्धार और बलूचिस्तानके प्रदेश समर्पित कर दिये और अपनी पुत्री हेलनाका उससे विवाह कर दिया। चद्रगुप्त मौर्यने सेल्यूकसको उपहारमे सिर्फ ५०० हाथी दिये। इस प्रकार चद्रगुप्त मौर्य अपने साम्राज्यका विस्तार उत्तर-पश्चिममे हिदुकुशकी पहाडियो तक करके उसे वहाँ तक पहुँचा दिया जिसे भारतकी वैज्ञानिक सीमा कहा जाता है। इतिहासकारोके मतानुसार यह सधि ईसा-पूर्व ३०३मे हुई होगी। यह सधि चद्रगुप्त मौर्यकी सबसे बडी उपलब्धि थी। चद्रगुप्त अठारह वर्षोके अल्पकालमे न केवल मगधके राजसिहासनपर बैठा वरन् उसने पजाब और सिंधसे यूनानी फौजोको खदेड दिया, सेल्यूकसका दर्प चूर कर दिया और समग्र उत्तर भारतमे अपना एकछत्र साम्राज्य स्थापित कर लिया। इन्ही उपलब्धियोके कारण चद्रगुप्तकी गणना भारतीय इतिहासके महान् और सर्वाधिक सफल सम्राटोमे होती है।

चन्द्रगुप्तके दरबारमे मेगस्थनीज (दे०) नामक एक यूनानी राजदूत भेजा गया था। उसके द्वारा लिखी गयी पुस्तक 'इडिका' (दे०) तथा चाणक्य या कौटिल्यके अर्थशास्त्रसे चन्द्रगुप्तकी उस शासन-प्रणालीके बारेमे पता चलता है, जिसके बलपर विशाल साम्राज्यको एक सूत्रमे बाँधकर चौबीस वर्षो (ईसा-पूर्व ३२२से ३९८)तक सफलतापूर्वक शासन करता रहा। पाटलिपुत्रमे चद्रगुप्तका महल, जो मेगस्थनीजके अनुसार ऐश्वर्य और वैभवमे सूसा और इक्बतानाके महलोको भी मात करता था, अब नही है। स्वय पाटलिपुत्र नगर भी, जो गगा और सोन नदियोके सगमपर आधुनिक दीनापुरके निकट बसा हुआ था, अब इन नदियोकी रेतके नीचे दबा पडा है। लेकिन उसके यशस्वी निर्माताकी कीर्ति अजर अमर है। **(स्मिथ, अध्याय ४; राय चौधरी, अध्याय ४ तथा मैकक्रिनिल कृत 'एन्शियेन्ट इंडिया')**

चन्द्रदेव–ग्यारहवी शताब्दीके आखिरी दशकमे इसने गाहडवाल वशकी स्थापना की और कन्नौजको राजधानी बनाया। उसके वशने तेरहवी शताब्दीके आरभ तक राज्य किया।

चन्द्रनगर–बगालका वह स्थान, जहाँ फ्रेंच ईस्ट इडिया कम्पनीने व्यापारिक केन्द्रकी स्थापना की। फ्रासीसियोको यह स्थान १६७४ ई० मे नवाब शायस्ता खॉने दिया था और कारखानेका निर्माण १६९०–९२ ई०मे हुआ। १७५७ ई० मे क्लाइव और वाटसनके नेतृत्वमे अग्रेजोने इस नगरपर कब्जा कर लिया। छ वर्ष बाद १७६३ ई०मे चन्द्रनगर फ्रासीसियोको इस हिदायतके साथ फिर लौटा दिया गया कि व्यापारिक केन्द्रके अलावा किसी और रूपमे इसका विकास न हो। चन्द्रनगर १९५० ई०मे भारतीय गणतत्रकी स्थापना तक फ्रासीसियोके अधिकारमे रहा। इसके बाद इसका विलय भारतीय गणतत्रमे हो गया।

चन्द्र, राजा–मेहरौली लौह-स्तम्भके अभिलेखोमे इसका वर्णन हुआ है। कहा जाता है कि उसने एक तरफ तो बगालमे अपने शत्रुओको परास्त किया और दूसरी तरफ सिधके मुहानेपर बाह्लीकोपर विजय प्राप्त की। इस राजाकी पहचान निश्चित रूपसे नही की जा सकी है। सुसुनिया अभिलेखमे भी चन्द्र नामक राजाका उल्लेख है। **(रायचौधरी, पृ० ५३५ नोट)**

चन्द्र वर्मा–इस नामके दो राजा हुए है। एकका वर्णन महाकाव्योमे कम्बोजनरेशके रूपमे हुआ है और दूसरेका उल्लेख समुद्रगुप्तके प्रयाग-अभिलेखमे मिलता है। इस अभिलेखके अनुसार समुद्रगुप्तने उत्तरी भारतके जिन राजाओको पराजित और अपदस्थ किया, उनमे एक राजा चन्द्रवर्मा भी था। सुसुनिया अभिलेखमे इस नामके जिस राजाका उल्लेख है, वह पश्चिमी बगालके बॉकुडा जिलेमे दामोदर नदीके तटपर स्थित 'पुष्करण'का शासक था। **(रायचौधरी, पृ० ५३४–५४)**

चन्द्रसेन जादव–धनाजी यादवका पुत्र और मराठा राजा साहूका प्रधान सेनापति। चन्द्रसेनका अधीनस्थ सेनासचालक बालाजी विश्वनाथ था। बादको बालाजीकी बढती हुई शक्तिके आगे चन्द्रसेनकी शक्ति क्षीण हो गयी और १७१३ ई०मे बालाजी पेशवा बन गया।

चम्पतराय–बुंदेलोका नेता। उसने बुंदेलोको सगठित करके मुगल बादशाह औरगजेब (१६५८–१७०७ ई०) के शासन-के आरम्भिक दिनोमे उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया, लेकिन जब चम्पतरायने देखा कि औरगजेबसे उसकी हार निश्चित है और कैद हो जाना सम्भव है, तो उसने अपने पुत्र छत्रसालको औरगजेबके खिलाफ लडाई जारी रखनेका दायित्व सौंपकर आत्महत्या कर ली।

चम्पानगर–मगधके पूर्व और राजमहल पहाडियोके पश्चिममे स्थित प्राचीन अग राज्यकी राजधानी। आधुनिक विहारका भागलपुर क्षेत्र ही प्राचीन कालका चम्पानगर था। यह नगर चम्पा नदी और गगाके सगमपर बसा हुआ था और अत्यन्त समृद्ध था एव वाणिज्य-व्यापारका प्रसिद्ध केन्द्र था। भागलपुर शहरके निकट चम्पानगर और चम्पापुर गाँवोसे इस प्राचीन नगरकी पहचान की जाती है। (राय चौधरी, पृ० १०७)

चम्पा राज्य–एक प्राचीन हिन्दू राज्य, जिसकी स्थापना भारतीय प्रवासियोने दूसरी शताव्दी ई०मे हिन्दचीनके अनाम प्रदेशमे की थी, जो आज वियतनामके नामसे विदित है। राज्यकी राजधानीका नाम भी चम्पा था। चम्पा राज्यका अस्तित्व लगभग तेरह सौ वर्षों (लगभग १५० ई० से १४७१ ई०) तक कायम रहा। इसने कम्वुज, अनाम और यहाँ तक कि महान मगोल सरदार कुवलई खाँके विरुद्ध लडाइयोमे शानदार विजय प्राप्त की। चीनसे इसके अच्छे राजनयिक सबध थे। यहाँके लोग मुख्यत हिन्दू धर्मको मानने वाले थे। उन्होने ब्रह्मा, विष्णु और महेशके बहुतसे मदिरोका निर्माण कराया। बौद्धधर्मावलम्बियोकी सख्या भी यहाँ काफी थी। यहाँके अभिलेखोमे सस्कृत भाषा और देवनागरी लिपिका प्रयोग किया गया है। सोलहवी शताव्दीमे मगोलवशी अनामियोने इस हिन्दू राज्यको समाप्त कर दिया।

चफक–१५५५से १५८८ ई० तक कश्मीरपर शासन करनेवाली जनजाति। इसका शासन मुगल सम्राट् अकवरने उखाड फेका था।

चक्रपाणि–एक प्रसिद्ध सस्कृत विद्वान्, जिसने चिकित्सा-शास्त्रमे विशेष दक्षता प्राप्त की थी। इसका काल ग्यारहवी शती है। इसने चरक और सुश्रुतसहिताओपर बहुत सुदर व्याख्याएँ लिखी, जिनका नाम क्रमश 'आयुर्वेद-दीपिका' और 'भानुमती' है। चक्रपाणिकी एक अन्य पुस्तक 'चिकित्सासग्रह' आरोग्य विज्ञानका आधिकारिक ग्रथ है। (बंगालका इतिहास, खण्ड १, पृष्ठ ३१६–३१८)

चक्रवर्ती राजा–प्राचीनकालमे उस सार्वभौम सम्राट्को कहते थे, जिसका सम्पूर्ण भारतपर एकछत्र शासन हो। प्राचीन भारतके सभी शक्तिशाली शासक इस महान् पदको प्राप्त करनेके आकाक्षी हुआ करते थे, लेकिन कुछ ही राजा अपनी इस अभिलाषाको पूरा करनेमे सफल होते थे। साहित्य और शिलालेखोमे उल्लिखित चक्रवर्ती राजाओसे इस वातका पता तो चलता ही है कि तत्कालीन भारतमे मौलिक राजनीतिक एकता विद्यमान थी।

चक्रायुध–वगालके राजा धर्मपाल (लगभग ७७०–८०० ई०) का आश्रित, जिसको धर्मपालने कन्नौजके शासक इन्द्रायुध या इन्द्रराजको हराकर उसके स्थानपर वहाँका शासक नियुक्त किया। कन्नौजके शासकके रूपमे उसकी गतिविधियोके वारेमे कुछ ज्ञात नही है। शिलालेखीय प्रमाणोसे पता चलता है कि चक्रायुध धर्मपालका सामत था और इसी धर्मपालके सरक्षकत्वमे उसका सितारा चमका। इतना निश्चित है कि कन्नौजपर चक्रायुधका शासन अधिक समय तक नही रहा, क्योकि उसे और उसके सरक्षक धर्म-पाल दोनोको ही गुर्जर-प्रतिहार नरेश नागभट्टने पराजित कर दिया और उनके राज्यको अपने बढते हुए साम्राज्यमे मिला लिया। यह ठीकसे ज्ञात नही है कि राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द तृतीयके हाथो नागभट्टकी पराजयके बाद चक्रायुध पुन कन्नौजके सिंहासनपर आरूढ हुआ कि नही। इतना निश्चित है कि चक्रायुधने कन्नौजमे अपना कोई राजवश स्थापित नही किया।

चगताई–प्रसिद्ध मगोल सरदार चगेज खाँका दूसरा पुत्र, जिसने बारहवी शताव्दीके उत्तरार्धमे मध्य और पश्चिमी एशियामे विशाल साम्राज्य स्थापित किया। चगताईके वशज 'चगताई मुगल'के नामसे जाने जाते हैं। बाबर मातृकुलसे चगताई वशका ही था।

चच–सिंधके ब्राह्मण शासक वशका सस्थापक। जब ७११ ई० मे अरबोने सिन्धपर आक्रमण किया तो चचका पुत्र और उत्तराधिकारी 'दाहिर' (दे०) सिंधके राजसिंहासनपर आरूढ था।

चटगाँव जिला–आराकानके राजाने १६६६ ई०मे इसे मुगल सम्राट् औरगजेबके हवाले कर दिया। १७६० ई०मे मीर कासिमने यह जिला ईस्ट इडिया कम्पनीको दे दिया। १९०५ ई०मे वग-भग होनेपर यह जिला अन्य जिलोके साथ पूर्वी वगाल और आसामके नवगठित प्रातमे जोड दिया गया। वग-भग रद्द होनेपर १९१२ ई०मे यह फिर वगाल प्रातके अन्तर्गत आ गया। १९४१ ई०मे पाकिस्तान वननेपर चटगाँव पूर्वी-पाकिस्तान (पूर्वी वगाल) का भाग

बन गया। बादमें दिसम्बर १९७१ ई०में पूर्वी पाकिस्तानके स्वाधीन हो जानेपर यह जिला नवोदित बगला देशका अग बन गया। कर्णफूली नदीपर स्थित इस जिलेका मुख्यालय चटगाँव नगर समुद्रके नजदीक है और आधुनिक सुविधाओसे युक्त विशाल और सपन्न बदरगाहके रूपमे विकसित हो रहा है।

चरक–प्राचीन भारतका एक सुविख्यात चिकित्सक, जिसने चिकित्साशास्त्र और औषधिविज्ञानपर एक बहुत ही आधिकारिक ग्रन्थ लिखा है, जिसका नाम उसके नामपर ही 'चरकसहिता' प्रसिद्ध हो गया। ऐसा विश्वास किया जाता है कि चरक कुषाण राजा कनिष्कका समसामयिक था, जिसका सरक्षकत्व भी उसे प्राप्त था। इसलिए कुछ इतिहासकारोका मत है कि चरक ईसा बाद दूसरी शताब्दीमे हुआ होगा, लेकिन डाक्टर पी० सी० रायने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री आफ हिन्दू केमिस्ट्री' (हिन्दू रसायनशास्त्रका इतिहास)मे यह सिद्ध करनेका प्रयास किया है कि वह प्राक्-बौद्धकालमे हुआ था।

चर्चिल, सर विस्टन–ब्रिटेनका प्रधानमत्री, जिसने दूसरे विश्वयुद्धमे विजय प्राप्त की। वह पत्रकार, साहित्यिक, इतिहासकार और मार्लबरोके ड्यूकका वशज था। उसने अनेक महत्त्वपूर्ण पदोपर काम किया और अन्तमे ब्रिटेनके सर्वाधिक सकटमय कालमे १० मई १९४० ई० को प्रधानमत्री बना। इस गुरुतर दायित्वको उसने ७ जुलाई १९४५ तक सँभाला। इस अवधिमे उसने मिली-जुली सरकारके नेताके रूपमे दूसरे महायुद्धका सचालन किया और ब्रिटेनको उसमे विजयी बनाया। चर्चिल कट्टर 'टोरी' था और उसे भारतके राष्ट्रीय आदोलनसे कोई हमदर्दी नही थी। वह उग्र साम्राज्यवादी था और एक अवसरपर घोषणा की थी कि "आपको देर-सबेर गाधी तथा भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसका दमन करना पडेगा।" वह गाधीजी तकके लिए 'भारतका नगा फकीर' जैसे अपशब्दोका प्रयोग करता था और एक अवसरपर बडे ही दम्भपूर्ण स्वरमे कहा था कि "मैने ब्रिटिश साम्राज्यका विघटन करनेके लिए प्रधानमत्रीका पद स्वीकार नही किया है।" किन्तु परिस्थितियोके आगे उसकी कुछ नही चली। चर्चिल के प्रधानमत्री पदसे हटनेके बाद एक-दो वर्षोमे ही ब्रिटेनको भारतको आजादी देनी पडी। अवश्य ही भारतमे ब्रिटेनकी दमनमूलक नीतिकी विफलताका कटु आभास सर विस्टन चर्चिलको अपनी मृत्युसे पूर्व हुआ होगा।

चर्बीवाले कारतूस–इन्फील्ड रायफलमे, जो १८५६ ई० मे ब्रिटिश भारतीय सेनामे चालू की गयी थी, इस्तेमाल किये जाते थे। कारतूसोपर चर्बी लगी रहती थी और रायफलमे डालनेके पहले उन्हे दाँतसे काटना पडता था। चूकि अग्रेजोमे किसी भी पशुका मास वर्जित नही है, अत यह विश्वास किया गया कि इन कारतूसोका प्रचलन हिन्दुओ और मुसलमानोको विधर्मी बनानेके लिए ही किया गया है। अधिकारियोने पहले तो किसी प्रकारकी चर्बीके इस्तेमालको अस्वीकार किया, किन्तु बादमे जाँच करनेपर पता चला कि ऊलविच आयुध कारखानेमे जहाँ कारतूस बने थे पशुओकी चर्बीका इस्तेमाल किया गया है। अतएव सरकारी खडनसे स्थिति और भी छलपूर्ण समझी गयी और ऐसी धारणा फैल गयी कि चर्बीवाले कारतूसोका जान बूझकर प्रचलन करके ईसाई सरकार हिन्दुओ और मुसलमानोको धर्मभ्रष्ट कर रही है। कारतूसोको बादमे वापस ले लिया गया, लेकिन यह कार्य काफी विलम्बसे हुआ और इसे सरकारकी कमजोरीका परिचायक माना गया। सरकारके वक्तव्योपर विश्वास नही किया गया और चर्बीवाले कारतूसोके प्रयोगसे सिपाहियोमे व्याप्त असन्तोष और भडक उठा। १८५७ ई० के सिपाही-विद्रोहके अनेक कारणोमे यह प्रमुख कारण था।

चस्टन–मालवाके महाक्षत्रिय वशका सस्थापक। उसका शासनकाल पहली शताब्दी ईसवीके उत्तरार्ध मे था और राजधानी उज्जैन थी। उसने चाँदी और सोनेके बहुत-से सिक्के चलाये, जिनमेसे कुछ प्राप्त हुए है।

चाँद बीबी–अहमदनगरके तीसरे शासक हुसैन निजामशाहकी पुत्री, जिसका विवाह बीजापुरके पाँचवे सुलतान अली आदिलशाह (१५५७–८० ई०)के साथ हुआ था। १५८० ई०मे पतिकी मृत्यु हो जानेपर वह अपने नाबालिग बेटे इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय (बीजापुरके छठे सुल्तान) की अभिभाविका बन गयी। बीजापुरका प्रशासन मत्रियो द्वारा चलाया जाता रहा। १५८४ ई०मे चाँदबीबी बीजापुरसे अपनी जन्मभूमि अहमदनगर चली गयी और फिर कभी बीजापुर नही गयी। १५९३ ई०मे मुगल बादशाह अकबरकी फौजोने अहमदनगर राज्यपर आक्रमण किया। सकटकी इस घडीमे चाँदबीबीने अहमदनगरकी सेनाका नेतृत्व किया और अकबरके पुत्र शाहजादा मुरादकी फौजोसे बहादुरीके साथ सफलतापूर्वक मोर्चा लिया। किन्तु सीमित साधनोके कारण अतमे चाँदबीबीको मुगलोके हाथ बरार सुपुर्द कर उनसे सधि कर लेनी पडी। लेकिन इस सधिके बाद जल्दी ही लडाई फिर शुरू हो गयी। चाँदबीबीकी सुरक्षा-व्यवस्था इतनी सुदृढ थी कि उसके जीवित रहते मुगल सेना अहमदनगरपर कब्जा नही कर

सकी। किन्तु एक उग्र भीडने चाँदबीबीको मार डाला और इसके बाद अहमदनगर किलेपर मुगलोंका कब्जा हो गया।

चाइल्ड, सर जान–सूरतमें स्थित ईस्ट इंडिया कम्पनीकी व्यापारिक कोठीका अध्यक्ष। इंग्लैण्डसे मिले निर्देशोंके अनुसार उसने पश्चिमी तटपर औरंगजेबकी सत्ताको माननेसे इन्कार कर दिया किन्तु मुगलोंके आगे उसकी कुछ चल न पायी और पराजयका मुह देखना पड़ा। मुगलोंने कम्पनीकी सूरत स्थित कोठीको जब्त कर लिया। बादमें मुगल बादशाहने अपने राज्यसे अंग्रेजोंके निष्कासनका आदेश जारी कर दिया। अततः अंग्रेजोंको झुकना पड़ा और उन्हें सूरत वापस आनेकी इजाजत फिर मिल गयी।

चाइल्ड, सर जोसिया–ईस्ट इंडिया कम्पनीका चेयरमैन या गवर्नर। कम्पनीके अन्य डाइरेक्टरोंके विपरीत सर जोसिया चाइल्ड बहुत ही महत्त्वाकांक्षी था। उसने भारतमें अंग्रेजी राज्यकी स्थापनाको अपना लक्ष्य बनाया। १६८५ ई०में उसे राजा जेम्स द्वितीयको इस बातके लिए राजी करनेमें सफलता मिल गयी कि चटगाँवपर अधिकार और किलेबदी करनेके लिए दस या बारह जहाजोंका बेड़ा भेजा जाय। लेकिन यह अभियान बुरी तरह विफल हुआ और अंग्रेजोंको १६८८ ई०में बगालसे निष्कासित कर दिया गया। सर जोसियाका स्वप्न उसके जीवन कालमें साकार नहीं हो सका, किन्तु बादकी घटनाएँ इस बातकी साक्षी है कि उसने जो सपना देखा था, वह दिवा-स्वप्न नहीं था।

चाणक्य–देखिये, 'कौटिल्य'।

चामी राजेन्द्र, सर राजा–१८६८से १८६६ ई० तक मैसूरका शासक। देशी रियासतोंके प्रशासनमें निरकुशता समाप्त कर उदारवादी नीतियोंको अपनानेवाला वह पहला नरेश था।

चामुण्डराज–गग वश (दे०)के एक राजाका मत्री, जो मैसूरपर शासन करता था। उसके ही आदेशसे श्रवण-बेलगोलामें एक पहाड़ीकी चोटीपर गोमटेश्वरकी ५६ ५ फुट ऊँची विशालकाय मूर्तिका निर्माण कराया गया था। यह मूर्ति काले पत्थरकी चट्टानको तराश कर बनायी गयी थी। अपनी भव्य विशालताके कारण यह प्रतिमा विश्वमें बेजोड़ मानी जाती है।

चाय उद्योग–इसका जन्म १९वीं शताब्दीमें हुआ। ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा अठारहवीं शताब्दीमें चीनसे चाय लायी गयी थी। अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें जगली चायके पौधोंको आसाममें उगते हुए देखा गया था, परन्तु उनके विषयमें सन्देह था कि उनकी पत्तियाँ उपभोग्य है कि नहीं। १८३४ ई०में लार्ड विलियम बेंटिक चायके पौधोंके बीज और उनको उगानेमें कुशल श्रमिकोंको चीनसे ले आया और एक सरकारी चायका बगीचा स्थापित किया जो १८३९में असम टी कम्पनीके हाथ बेच दिया गया। इस कम्पनीने कुछ प्रयोगोंके उपरान्त भारतमें भारतीय मजदूरो द्वारा चायके पौधे उगानेमें सफलता प्राप्त कर ली। १८५० ई०के बाद चाय उद्योगका द्रुतगतिसे विस्तार होने लगा। अब चायके पौधोंका रोपण केवल आसाममें ही नहीं वरन् काचार, दार्जिलिंग, नैनीताल तथा कागड़ाकी घाटीमें व्यापकरूपसे होने लगा है। यह उद्योग आज भारतका विदेशी मुद्रा अर्जित करनेवाला सर्वोत्तम उद्योग है।

चारुमती–मौर्य सम्राट् अशोक (लगभग ईसा पूर्व २७२–२३२)की पुत्री। उसने देवपाल क्षत्रियसे विवाह किया था लेकिन बादमें वह बौद्ध भिक्षुणी बन गयी। वह ईसा पूर्व २५० या २४९ मे पिताके साथ नेपालकी यात्रापर गयी और पिताके लौट आनेके बाद भी वहीं रह गयी। उसने वहाँ अपने दिवगत पतिके नामपर देवपत्तन नामक नगरकी स्थापना की और खुद एक विहारमें भिक्षुणीकी तरह रहने लगी। इस विहारका निर्माण चारुमतीने पशुपतिनाथ मन्दिरके उत्तरमें कराया। चारुमतीके नाम-पर यह विहार आज भी विद्यमान है।

चार्टर ऐक्ट (कानून)–१७९३, १८१३, १८३३ और १८५३ ई० में पास किये गये। ईस्ट इंडिया कम्पनीका आरंभ महारानी एलिजाबेथ प्रथम द्वारा वर्ष १६०० ई० के अंतिम दिन प्रदत्त चार्टरके फलस्वरूप हुआ। इस चार्टरसे कम्पनीको ईस्ट इडीजसे व्यापार करनेका एकाधिकार दिया गया था। भारतमें घटनेवाली अनेक विलक्षण राजनीतिक घटनाओंके फलस्वरूप १७६३ ई० में कम्पनी-को व्यापार और वाणिज्य सबधी अधिकारोंके साथ-साथ भारतके विशाल क्षेत्रपर प्रशासन करनेका दायित्व भी सौंपा गया। कम्पनीका पहला चार्टर १७९४ ई० में समाप्त होनेवाला था। कम्पनीकी गतिविधियोंके बारेमें जाँच-पड़ताल तथा कुछ विचार-विमर्श करनेके बाद १७९३ ई० में एक नया चार्टर कानून पास किया गया, जिसके द्वारा कम्पनीकी कार्य-अवधि और अधिकार २० वर्षोंके लिए पुनः बढ़ा दिये गये। इसके बाद १८५८ ई० तक हर बीस वर्षोंके उपरान्त एक नया चार्टर कानून पास करनेकी प्रथा-सी बन गयी। १८५८ ई० में ईस्ट-इंडिया कम्पनीको समाप्त कर दिया गया और उसके अधिकार तथा शासित क्षेत्रको महारानी विक्टोरियाने सीधे अपने हाथमें ले लिया।

१७९३ ई० के चार्टर कानूनमे कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया गया था और कम्पनीको भारतमे व्यापार-वाणिज्यपर एकाधिकार जमाये रखने तथा अपने हस्तगत क्षेत्रोपर शासन करनेकी पूरी छूट दे दी गयी थी। १८१३ ई० के चार्टर कानूनने भारतके साथ व्यापार करनेके कम्पनीके एकाधिकारको समाप्त कर दिया और इग्लैण्डके अन्य व्यापारियोको भी आशिक रूपमे भारतके साथ निजी व्यापार, वाणिज्य और औद्योगिक सबध स्थापित करनेका अवसर दिया, किन्तु चीनसे होनेवाले कम्पनीके व्यापारिक एकाधिकारको समाप्त नही किया। इस चार्टर कानूनने कम्पनीके भारतीय क्षेत्रोमे ईसाई पादरियोको भी प्रवेश करनेकी अनुमति दे दी तथा भारतीय प्रशासनमे एक धार्मिक विभाग और जोड दिया। इस चार्टर कानूनमे यह भी कहा गया कि भारतवासियोके हितोकी रक्षा करना और उन्हें खुशहाल बनाना इग्लैण्डका कर्त्तव्य है -और इसके लिए ऐसे कदम उठाये जाने चाहिये जिनसे उनको उपयोगी ज्ञान उपलब्ध हो और उनका धार्मिक और नैतिक उत्थान हो। लेकिन यह घोषणापत्र केवल आदर्श अभिलाषा बनकर रह गया और इसपर कोई कार्रवाई नही की गयी।

१८३३ ई० के चार्टर कानूनने ईस्ट इडिया कम्पनीकी व्यापारिक भूमिका समाप्त कर दी और उसे पूरी तरह भारतीय प्रशासनके लिए इग्लैण्डके राजाके राजनीतिक अभिकरणके रूपमे परिणत कर दिया। गवर्नर-जनरलकी परिपद्मे कानूनके वास्ते एक सदस्यको और शामिल कर दिया गया तथा कानून आयोगकी भी स्थापना की गयी, जिसके फलस्वरूप बादमे इडियन पेनल कोड (भारतीय दण्ड सहिता) और इडियन सिविल एण्ड क्रिमिनल प्रोसीजर कोड (भारतीय दीवानी एव फौजदारी प्रक्रिया सहिता) लागू हुआ। इस प्रकार भारतके वर्तमान सरकारी कानूनो-का विकास १८३३ ई० के चार्टरसे शुरू हुआ। गवर्नर-जनरल और उसकी परिषदको एक साथ बैठकर कानून बनानेका अधिकार भी दिया गया। इसमे इस सिद्धातका प्रतिपादन भी किया गया कि सरकारी पदोके लिए अगर कोई भारतीय शैक्षणिक तथा अन्य योग्यताएँ रखता है तो उसे केवल धर्म या रगभेदके आधार पर इस पदसे वचित नही किया जायगा। यह घोपणापत्र भी काफी अरसे तक पवित्र भावनाकी अभिव्यक्ति मात्र रहा, लेकिन अन्तमे यह काफी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

चार्टर कानूनोकी शृखलामे १८५३ ई० का चार्टर कानून चौथा और अन्तिम था। इसमे कम्पनीको सरकारी अभिकरणके रूपमे अपना काम जारी रखनेका अधिकार दिया गया और कानून आयोगके कामको पूरा करनेका प्रबन्ध किया गया। इसमे यह प्राविधान भी किया गया कि कानूनोको बनानेके लिए गवर्नर-जनरलकी परिषद्मे छ सदस्योको और जोडा जाय। इस चार्टरने इडियन सिविल सर्विसमे प्रवेशके लिए खुली प्रतियोगिताकी प्रणाली शुरू की। इससे पहले इस सेवामे सिर्फ कम्पनी-डाइरेक्टरोके सिफारिशी लोगोको ही प्रवेश पानेका विशेषाधिकार प्राप्त था। लेकिन अब इस सेवाका द्वार मेधावी अग्रेजो और भारतीयो, दोनोके ही लिए खुल गया।

चार्ल्स द्वितीय–१६६०–८५ ई० मे इग्लैडका बादशाह, जिसे पुर्तगालकी राजकुमारी कैथरीन ब्रेगेन्जाके साथ शादी करनेपर पुर्तगालीके राजासे बम्बई द्वीप दहेजके रूपमे मिला था। १६६८ ई० मे चार्ल्सने यहाँ की जमीन ईस्ट इडिया कम्पनीको १० पौण्डके सालाना किरायेके बदले पट्टेपर उठा दी। इसके बाद ही बम्बईकी प्रगति और समृद्धिका श्रीगणेश हुआ। १६८७ ई० मे सूरतके स्थानपर बम्बई पश्चिमी तटपर अग्रेजोकी मुख्य बस्ती बन गयी। चार्ल्स द्वितीयने भारतमे ईस्ट इडिया कम्पनीकी तरक्कीके लिए विभिन्न रीतियोसे और भी सहायता प्रदान की।

चार्वाक–भारतीय दर्शनकी भौतिकवादी विचारधारा (लोकायत)का व्याख्याता। कट्टरपथी हिन्दू दार्शनिकोसे सर्वथा विपरीत वेदोको प्रमाण नही माना, शरीरसे परे अजर-अमर आत्मा होनेके सिद्धातका खण्डन किया, पुनर्जन्मके सिद्धान्तको माननेसे इनकार कर दिया और एक ऐसे दर्शनका प्रतिपादन किया जिसका मूलतत्व है कि जब तक जिओ, खाओ, पिओ और मस्त रहो, क्योकि एक बार शरीरके भस्म हो जानेपर आत्मा नामकी कोई चीज बाकी नही रह जाती है। (**डी० आर० शास्त्री कृत 'दि लोकायत स्कूल आफ फिलासफी'**)

चालुक्य, कल्याणीके–देखिये, 'चालुक्य'।

चालुक्य-चोल–वेगिके चालुक्य वशके अट्ठाईसवे नरेश राजेन्द्र तृतीयका वशज, जिसने पूर्वी चालुक्य और चोल राज्योको विरासतमे प्राप्त कर दोनोको मिला दिया। राजेन्द्र तृतीयने कुलोत्तुग चोलकी उपाधि ग्रहण की और १०७० से ११२२ ई० तक शासन किया। चोल राज्यपर इस वशका शासन १५२७ ई० तक रहा। कुलोत्तुग चोल तृतीयकी मृत्युके बाद इस वशका पतन हो गया और इसके राज्यको अलाउद्दीन खिलजीकी मुस्लिम सेनाओने रौद डाला।

चालुक्य-वंश–छठी शताब्दी ई० के मध्य दक्षिणी भारतमे उत्कर्पको प्राप्त। इसके मूलके बारेमे ठीकसे कुछ पता नही। चालुक्य नरेशोका दावा था कि वे चद्रवशी राजपूत है

और कभी अयोध्यापर शासन करते थे। गुर्जरोकी एक शाखा चापसके एक अभिलेखमे चालुक्यनरेश पुलकेशीके उल्लेखसे कुछ आधुनिक इतिहासकारोंने यह अर्थ निकाला है कि चालुक्य—जो सोलकीके नामसे भी विख्यात हैं—गुर्जरोंसे सम्बद्ध थे और राजपूतानासे दक्षिणमे आकर बसे थे। जो हो, इतना तो निश्चित है कि चालुक्योंके नेता पुलकेशी प्रथमने ५५० ई० मे एक राज्यकी स्थापना की जिसकी राजधानी वातापी थी, जो आज बीजापुर जिलेमे 'वादामी'के नामसे ज्ञात है। पुलकेशी प्रथमने अपनेको दिग्विजयी राजा घोषित करनेके लिए अश्वमेध यज्ञ भी किया था। उसके वशने, जो वातापीके चालुक्योके नामसे प्रसिद्ध है, तेरह वर्षोंके व्यवधान (६४२–६५५ ई०)को छोडकर ५५० से लेकर ७५७ ई० तक शासन किया। इस वशके नरेशोके नाम हैं—पुलकेशी प्रथम (५५०–६६ ई०), कीर्तिवर्मा प्रथम (लगभग ५६६–६७ ई०), मगलेश (लगभग ५९७–६०८), पुलकेशी द्वितीय (लगभग ६०६–४२), व्यवधान (लगभग ६४२–५५), विक्रमादित्य प्रथम (६५५–८०), विनयादित्य (६८०–६६), विजयादित्य (६९६–७३३), विक्रमादित्य द्वितीय (७३३–७४६) और कीर्तिवर्मा द्वितीय (७४६–५७)। शुरूके इन नौ चालुक्य नरेशोमे चौथा पुलकेशी द्वितीय सबसे अधिक प्रख्यात है। उसने ३४ वर्ष (६०८–४२)तक शासन किया। उसका राज्य-विस्तार उत्तरमे नर्मदासे लेकर दक्षिणमे कावेरी तक हो गया। किन्तु ६४२ ई० मे वह पल्लव नरेश नरसिंहवर्मा द्वारा पराजित हुआ और शायद मारा भी गया। इसके बाद अगले तेरह सालो तक चालुक्य वश पराभवको प्राप्त रहा। ६५५ ई० मे पुलकेशीके पुत्र विक्रमादित्य प्रथमने चालुक्य-शक्ति पुन प्रतिष्ठित की। पल्लवोके साथ चालुक्योका सघर्ष जारी रहा और ७४० ई० मे चालुक्यनरेश विक्रमादित्य द्वितीयने पल्लवोकी राजधानी काचीपर अधिकार कर लिया। लेकिन उसके पुत्र और उत्तराधिकारी कीर्तिवर्मा द्वितीयको राष्ट्रकूटोंके नेता दतिदुर्गने ७५३ ई० मे सिंहासन-च्युत कर दिया। चालुक्योकी शक्तिपर यह दूसरा ग्रहण था। दो शताब्दियो बाद चालुक्यवश पुन उत्कर्षको प्राप्त हुआ जब तैल या तैलपने, जो अपनेको वातापीके सातवे चालुक्य नरेश विजयादित्यका वशज कहता था, ९७३ ई० मे राष्ट्रकूट नरेश द्वितीयको परास्त कर दिया और कल्याणीको अपनी राजधानी बनाकर नये चालुक्य वशकी स्थापना की। यह नया वश ९७३ से १२०० ई० तक सत्तासीन रहा और इसमे १२ राजा हुए। इनके नाम हैं—तैल या तैलप (९७३–९७), सत्याश्रय (९९७–१००८), विक्रमादित्य पचम (१००८–१४), अय्यन द्वितीय (१०१५), जयसिंह (१०१५–४२), सोमेश्वर प्रथम (१०४२–६८), सोमेश्वर द्वितीय (१०६८–१०७६), विक्रमादित्य षष्ठ (१०७६–११२७), सोमेश्वर तृतीय (११२७–३८), जगदेकमल्ल (११३८–५१), तैलप तृतीय (११५१–५६) और सोमेश्वर चतुर्थ (११८४–१२००)। कल्याणीके इस चालुक्य राज्यका एक लम्बे अर्से तक तजोरके चोलवशी शासकोसे सघर्ष चलता रहा। सत्याश्रयको चोल नरेश राजराजने परास्त किया और चालुक्य राज्यको रौंद डाला। लेकिन सोमेश्वर प्रथमने इस अपमानका बदला न केवल चोल नरेश राजाधिराजको कोप्पमके युद्धमे करारी हार देकर ले लिया वरन् इस युद्धमे उसने राजाधिराजका वध कर दिया। सातवे नरेश विक्रमादित्य षष्ठने, जो विक्रमाकके नामसे भी विख्यात हैं, काचीपर अधिकार कर लिया और प्रसिद्ध कवि बिल्हणको सरक्षकत्व प्रदान किया। बिल्हणने विक्रमादित्यके जीवनपर 'विक्रमाक-चरित' नामक सुविख्यात ग्रथ लिखा है। विक्रमादित्य षष्ठकी मृत्युके बादसे कल्याणीके चालुक्योकी शक्तिका ह्रास शुरू हो गया। ग्यारहवें राजा तैलप तृतीयके शासनकालमे चालुक्य राज्यका अधिकाश भाग उसके प्रधान सेनापति बिज्जल कलचूरिने हडप लिया। चालुक्य राज्य शनै-शनै इतना कमजोर हो गया कि २१वी शतीमे बारहवें राजा सोमेश्वर चतुर्थका शासन समाप्त होने तक उसके राज्यका पश्चिमी भाग तो देवगिरिके यादवोने छीन लिया और दक्षिणी भाग द्वारसमुद्रके होयसलोंके नियन्त्रणमे आ गया। वातापी और कल्याणीके चालुक्य नरेशोने स्वय कट्टर हिन्दू होनेपर भी बौद्ध और जैन धर्मको प्रश्रय दिया। इनके शासनकालमे यज्ञ-प्रधान हिन्दू धर्मपर विशेष बल दिया गया। चालुक्य राजाओने हिन्दू देवताओके अनेक मदिरोका निर्माण कराया। याज्ञवल्क्यस्मृतिकी 'मिताक्षरा' व्याख्याके लेखक प्रसिद्ध विधिवेत्ता विज्ञानेश्वर चालुक्योकी राजधानी कल्याणीमे ही रहते थे। बगालको छोडकर शेष भारतमे 'मिताक्षरा'को हिन्दू कानूनका सबसे आधिकारिक ग्रथ माना जाता है। **(वी० ए० स्मिथ कृत 'अर्ली हिस्ट्री आफ इडिया')**

चालुक्य, वेंगिके—वातापीके चालुक्योकी एक शाखा। इसे पूर्वी चालुक्य वश भी कहते हैं। इस वशका सस्थापक पुलकेशी द्वितीय (दे०)का भाई कुब्ज विष्णुवर्धन था। इसे पुलकेशी द्वितीयने कृष्णा और गोदावरी नदियोंके बीचमे स्थित वेंगि राज्यके सिंहासनपर अपने सामतके रूपमे आरूढ किया था। इसने पिष्टपुरको, जो आजकल

पीठापुरम् कहलाता है, अपनी राजधानी बनाया। ६१५ ई० के लगभग विष्णुवर्धनने अपनेको स्वतंत्र नरेश घोषित कर दिया और इस प्रकार वेगिके चालुक्यो या पूर्वी चालुक्यो-के नये वंशकी स्थापना की। इस वंशमे २७ शासक हुए। इनके नाम है—जयसिंह प्रथम, इन्द्र, विष्णुवर्धन द्वितीय, मगी, जयसिंह द्वितीय कोक्किली, विष्णुवर्धन तृतीय, विजयादित्य प्रथम, विष्णुवर्धन चतुर्थ, विजयादित्य द्वितीय, विष्णुवर्धन पचम, विजयादित्य तृतीय, भीम प्रथम, विजया-दित्य चतुर्थ, विष्णुवर्धन षष्ठ, विजयादित्य पचम, तारप या ताल प्रथम, विक्रमादित्य द्वितीय, भीम द्वितीय, युद्धमल्ल, भीम तृतीय, वादप, दानार्णव, शक्तिवर्मा, विमला-दित्य, राजराज और राजेन्द्र। इस वंशके उपान्तिम नरेश राजराजने राजेन्द्र चोल प्रथमकी पुत्रीसे विवाह किया और उसके पुत्र राजेन्द्रने, जिसने चोल नरेश राजेन्द्र चतुर्थकी पुत्रीसे विवाह किया, विरासतमे प्राप्त वेगि और चोल राज्योको एकमे मिला दिया। इस प्रकार वेगिके चालुक्यो या पूर्वी चालुक्योके वंशका चालुक्य-चोलके वंशमे विलय हो गया।

चालुक्य, वातापीके–देखिये 'चालुक्य'।

चित्तरंजन दास (१८७०–१९२५)–कलकत्ता उच्च न्याया-लयके विख्यात वकील, जिन्होने अलीपुर बम केसमे अरविंद घोष (दे०)की पैरवी की थी। उन्होने अपनी चलती हुई वकालतको छोडकर गाधीजी के असहयोग आदोलनमे भाग लिया और पूर्णतया राजनीतिमे आ गये। उन्होने विलासी जीवन व्यतीत करना छोड दिया और भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके सिद्धातोका प्रचार करते हुए सारे देशका भ्रमण किया। उन्होने अपनी समस्त सपत्ति और विशाल प्रासाद राष्ट्रीय हितमे समर्पण कर दिया। वे कलकत्ताके नगरप्रमुख निर्वाचित हुए। उनके साथ श्री सुभाषचद्र बोस (दे०) कलकत्ता निगमके मुख्य कार्याधि-कारी नियुक्त हुए। इस प्रकार श्री दासने कलकत्ता निगम-को यूरोपीय नियंत्रणसे मुक्त किया और निगमके साधनोको कलकत्ताके भारतीय नागरिकोके हितके लिए प्रयुक्त किया। उन्होने मुसलमानोसे समझौता करके और उन्हे नौकरियोमे अधिक जगहे देकर हिन्दू-मुस्लिम मतभेदोको दूर करनेका प्रयास किया। श्री दास सन् १९२२ ई० मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके अध्यक्ष हुए, लेकिन उन्होने भारतीय शासन-विधानके अन्तर्गत सर्वाद्धित धारासभाओसे अलग रहना उचित नही समझा। इसीलिए उन्होने मोतीलाल नेहरू (दे०) और एन० सी० केलकरके सहयोगसे 'स्वराज्य पार्टी'की स्थापना की, जिसका उद्देश्य था कि धारासभाओमे प्रवेश किया जाय और आयरलैण्डके देशभक्त श्री पार्नेलकी कार्यनीति अपनाते हुए १९१९ ई० के भारतीय शासन-विधानमे सुधार करने अथवा उसे नष्ट करनेका प्रयत्न किया जाय। यह एक प्रकारसे सहयोगकी नीति थी। स्वराज्य पार्टीने शीघ्र ही धारासभाओमे बहुत-सी सीटोपर कब्जा कर लिया। बगाल और बम्बईकी धारासभाओमे तो यह इतनी शक्तिशाली हो गयी कि वहा द्वैध शासन प्रणाली-के अंतर्गत मंत्रिमडल तकका बनना कठिन हो गया। श्री दासके नेतृत्वमे स्वराज्य पार्टीने देशमे इतना अधिक प्रभाव बढा लिया कि तत्कालीन भारतमंत्री लार्ड बर्केनहेडके लिए भारतमे सावैधानिक सुधारोके लिए श्री दाससे कोई न कोई समझौता करना जरूरी हो गया। लेकिन दुर्भाग्यसे अधिक परिश्रम करने और जेलजीवनकी कठिनाइयोको न सह सकनेके कारण श्री दास बीमार पड गये और १६ जून १९२५ ई० को उनका देहान्त हो गया। उनकी मृत्युके फलस्वरूप ब्रिटिश सरकारसे वार्ताकी बात समाप्त हो गयी और इस प्रकार भारतीय स्वाधीनताकी समस्याके शातिमय समाधानका अवसर नष्ट हो गया। श्री दासके निधनका शोक सपूर्ण देशमे मनाया गया। सारे देशवासी उन्हे प्यारसे 'देशबधु' कहते थे। उनके मरनेपर विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरने उनके प्रति असीम शोक और श्रद्धा प्रकट करते हुए लिखा

एनेछिले साथे करे मृत्युहीन प्रान।
मरने ताहाय तुमी करे गेले दान॥

चित्तू–पेढारियो (दे०) का सबसे साहसी नेता, जो अनेक लूटपाटोमे अग्रसर रहा। पेढारियोके खिलाफ ब्रिटिश अभियानके दौरान उसका जगह-जगह पीछा किया गया। वह भागकर असीरगढके निकट जगलोमे जा छिपा, लेकिन वहाँ एक बाघने उसे खा डाला।

चित्तौड–मेवाडके राणाओकी राजधानी। यह राजपूतानाका सबसे मजबूत गढ था। इसकी किलेबदीपर मेवाड़को गर्व था और इसीके कारण सदियो तक मुस्लिम आक्रमण-कारी इसपर कब्जा न कर सके। फिर भी १३०३ ई० मे अलाउद्दीन खिलजीके आक्रमणके फलस्वरूप इसका पतन हो गया। लेकिन १३११ ई० मे राजपूतोने इसपर पुन अधिकार कर लिया। १५३४ ई० मे गुजरातके सुलतान बहादुरशाहने इसपर तूफानी हमला किया, किन्तु राणा-ने शीघ्र ही सुल्तानके कब्जेसे इसे छुडा लिया। इसके बाद १५६७ ई० मे अकबरने चित्तौडका प्रसिद्ध घेरा डाला। किलेके सेनापति जयमल और पत्ता (फत्ता) के कुशल नेतृत्वने चार महीने तक मुगल सेनाओका मुकाबला किया

किन्तु अन्तमें अकबर चित्तौडके दुर्गपर विजय प्राप्त करनेमें सफल हो गया। जब-जब चित्तौडका पतन हुआ, महलकी सभी रानियाँ, दासियों सहित अपनी लाज बचानेके लिए दुर्गके भीतर चिता जलाकर सती हो गयीं। चित्तौडपर विजय प्राप्त करनेके बाद अकबर उस दुर्गके फाटक और विशाल नगाडेको जो मीलों दूर तक राजाके आगमन और प्रस्थानकी सूचना देते थे तथा देवीके मंदिरको प्रकाशित करनेवाले विशाल दीपदानको अपने साथ आगरा ले गया। इस प्रकार चित्तौडको वीरान बना दिया गया। उसके प्राचीरको बादमें राणा जगतसिंहने फिर बनवाया लेकिन शाहजहाँके आदेशपर १६५४ ई०में वह फिर ढहा दिया गया। फलस्वरूप अठारहवीं शताब्दी तक चित्तौड बाघ आदि जंगली जानवरोंका केलिस्थल बना रहा। उन्नीसवीं शताब्दीके अंतमें आंशिक रूपसे इसका पुनर्निर्माण कराया गया। पर्वतमालाकी उपत्यकामें अब यहाँ छोटा-सा नगर और उसका रेलवे स्टेशन है। यहाँका प्राचीन किला पहाडीपर अचल खडा हुआ राजपूतोंकी शौर्यगाथा सुनाता हुआ हजारों दर्शकोंको अपनी ओर आकृष्ट करता है।

चित्राल–अफगानिस्तान और भारतके बीच पर्वतमालाके अंतरालमें स्थित एक घाटी, जो डुरण्ड रेखा (दे०)को अफगानिस्तान और भारतके ब्रिटिश साम्राज्यके बीच सीमा स्वीकार कर लिये जानेके बाद १८९३ ई० में भारतके ब्रिटिश शासनके अंतर्गत आ गयी। लेकिन जब ब्रिटिश सरकार चित्राल घाटीपर अधिकार जमाने चली तो वहाँके कबायलियोंने प्रतिरोध किया। ब्रिटिश सरकारको उन्हें अधीन करनेके लिए १८९५ ई०में सेना भेजनी पडी। अब यह पाक-अधिकृत गुलाम कश्मीरके क्षेत्रमें हो गयी है।

चिन किलिच खाँ–देखिये, 'आसफजाह'।

चिनसुराकी डच बस्ती–१६५३ ई० में डच ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा स्थापित। यह अच्छा व्यापारिक केन्द्र था, जहाँसे डच लोग कच्चा रेशम, सूती कपडे और शोराका निर्यात किया करते थे। चिनसुरा स्थित डच लोग पलासीके युद्धके बाद बंगालमें अंग्रेजोंकी सफलताओंसे बहुत ईर्ष्या करने लगे थे। उन्होंने अंग्रेजोंके खिलाफ बंगालके नवाब मीर जाफरसे एक संधि की, किन्तु राबर्ट क्लाइवकी चौकसी और सतर्कतासे यह योजना बेकार हो गयी। इससे पहले कि डच नयी फौजें ला सकें, क्लाइवने उन लोगोंपर आक्रमण कर नवम्बर १७६९ ई० में उन्हें विदर्राके युद्ध (दे०) में परास्त कर दिया। क्लाइवने डचोंको शांतिसंधिके लिए मजबूर किया, जिसके अंतर्गत चिनसुराका उपयोग सिर्फ व्यापार-केन्द्रके रूपमें किया जा सकता था। डचोंने इस स्थानको १८२५ ई० तक अपने अधीन रखा, इसके बाद सुमात्रा स्थित कुछ स्थानोंके बदले ब्रिटिश सरकारके हवाले कर दिया।

चिलियाँवालाकी लड़ाई–दूसरे सिख-युद्धके दौरान (दे०) १३ जनवरी १८४९ ई० को लार्ड गफके नेतृत्वमें भारतीय-ब्रिटिश फौज और सिखोंके बीच हुई। सिखोंने बडा भयंकर युद्ध किया और अंग्रेजी फौजका बडी बहादुरीके साथ डटकर मुकाबला किया। इस युद्धमें अंग्रेजोंको जान-मालका भारी नुकसान उठाना पडा। उनके २३५७ सैनिक और ८९ अफसर हताहत हुए। सिखोंने तीन रेजीमेण्टोंके ध्वजों और चार तोपोंपर कब्जा कर लिया। यह वास्तवमें ब्रिटिश फौजकी हार थी, लेकिन सिख रातमें युद्धस्थल छोडकर तीन मील दूर चले गये, इसलिए अंग्रेजोंने दावा किया कि यह लडाई बराबरीपर छूटी।

चीन–भारतका संबंध इसके साथ बहुत प्राचीन है, यद्यपि उसमें बहुधा व्यवधान पडता रहा है। कौटिल्यके अर्थशास्त्र (दे०)में चीनी रेशम (कौशेय वस्त्रों) का उल्लेख हुआ है जिससे पता चलता है कि चीनके साथ प्रारम्भमें व्यापारिक संबंध थे। अशोकके धर्मप्रचारकोंके चीन जानेका उल्लेख कहीं नहीं मिलता है। पहली ई० के अंतमें कुषाण शासक कडफिस द्वितीय (ईसवी ७८–११०) और चीनी सम्राट् हो-ती (ईसवी ८९–१०५) की फौजोंमें संघर्ष हुआ। इस संघर्षमें कडफिसकी पराजय हुई। कडफिसके उत्तराधिकारी और प्रसिद्ध कुषाणशासक कनिष्क (१२०–१६२ ई०)ने इस हारका बदला लिया और चीनियोंको पराजित कर भारतीय सीमापारके उस क्षेत्रपर पुन अधिकार कर लिया जिसे चीनी सम्राट्ने कडफिस द्वितीयसे छीन लिया था। लेकिन इसके पहले ही भारत और चीनके बीच अधिक शांतिपूर्ण और प्रभावकारी संबंधोंका बीज-वपन शुरू हो गया था। ईसा पूर्व सन् ५२ में बाख्त्री राजदरबार-स्थित, चीनी सम्राट् आईके एक राजदूतने बौद्धधर्म स्वीकार किया था। कुछ वर्षों बाद ६७ ई० में दो भारतीय भिक्षु, कश्यप मातंग और धर्मरक्ष चीनी सम्राट् मिंग-ती (५८–७५ ई०)के दरबारमें पहुँचे थे। मिंग-ती इन बौद्ध भिक्षुओंके उपदेशोंसे बहुत प्रभावित हुआ और उसने इनके आवास और उपासनाके लिए अपनी राजधानीमें नये मंदिर-का निर्माण कराया। यह मंदिर 'श्वेताश्व' मंदिर कहलाता था। कश्यप और धर्मरक्षने बौद्ध ग्रंथोंका अनुवाद चीनी भाषामें आरम्भ किया और बहुत लोगोंको बौद्ध धर्मकी दीक्षा दी। इस प्रकार चीनमें भारतके बौद्ध धर्मके प्रसार एवं प्रचारकी प्रक्रिया शुरू हो गयी। अनेक भारतीय

बौद्ध-भिक्षु पश्चिमोत्तरी स्थल मार्ग एव पूर्वोत्तरी जलमार्गसे होकर चीन पहुँचे और उन्होने धर्म-प्रचारके कार्यमे महान् सफलता प्राप्त की।

चौथी शताब्दीमे चीनी सम्राट् वू-तीने बौद्ध धर्मको अपनाया। इसके बाद यदा-कदा लगनेवाले आघातोको छोडकर बौद्ध धर्म समग्र चीनमे फैलता गया और उसे कन्फ्यूशियसवाद और ताओवादकी तरह ही चीनी धर्मके रूपमे मान्यता मिल गयी। वस्तुत चीनमे बौद्धोकी सख्या शीघ्र ही अन्य मतावलम्बियोसे अधिक हो गयी। लगभग एक हजार साल तक चीन और भारतके बीच बराबर-आना-जाना लगा रहा। भारतीय बौद्ध भिक्षु चीन जाते, वहाँ बसते और सैकडो पवित्र बौद्ध ग्रथोका अनुवाद चीनी भाषामे करते। चीनी बौद्ध भिक्षु भी भारतकी तीर्थयात्राओं-पर आते, क्योकि यह वह देश है, जहाँ बौद्ध धर्मके सस्थापक भगवान् गौतम बुद्धने जन्म लिया था। यहाँ वे यात्री बौद्ध धर्मका अध्ययन करते और भारतसे अनेक ग्रथोका सग्रह कर चीन ले जाते। चीनकी यात्रापर जानेवाले भारतीय बौद्ध भिक्षुओमे कुमारजीव, बोधिधर्म, गुणवर्मा और अमोघबज्रके नाम अधिक प्रसिद्ध है। चीनी तीर्थयात्रियोमे फाह्यान और ह्वेनसागके नाम उल्लेखनीय है। फाह्यान ईसाकी चौथी शताब्दीमे और ह्वेनसाग सातवी शताब्दीके आरम्भमे भारत आया था। ये चीनी यात्री अपने साथ न केवल बौद्ध धर्म और दर्शनसे सबधित वरन् भारतीय ज्ञानकी अन्य अनेक शाखाओसे सबधित हजारो सस्कृत ग्रथ चीन ले गये, जहाँ इनका अनुवाद और अध्ययन किया गया।

बौद्ध धर्मका महायान सम्प्रदाय (दे०) चीनियोके बीच विशेषरूप से लोकप्रिय हुआ। चीनियोने इसे नये विचार-तत्त्व प्रदान किये। उन्होने गौतम बुद्धके इस उपदेशकी उपेक्षा की कि निर्वाण प्राप्त करनेके लिए मनुष्यको तृष्णापर विजय प्राप्त करनी चाहिये। इसके स्थानपर उन्होने बोधिसत्त्वो, विशेषरूपसे अमिताभकी बुद्ध उपासनाका विकास किया और यह मत प्रतिपादित किया कि भगवान बुद्ध द्वारा बताये गये अष्टाग मार्गपर चलनेके अतिरिक्त अमिताभके नामचिन्तन मात्रसे (निर्वाण नही, जिसकी वे परवाह नही करते थे) अगले जीवनमे अमिताभ बुद्धलोककी प्राप्ति होगी। इस प्रकार बौद्ध धर्मके विकासमे चीनका भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। पहली ईसवीसे शुरू होकर एक हजार वर्ष तक भारतके साथ चीनके धार्मिक और सास्कृतिक सबधोका चीनी चित्रकला, मूर्तिकला और वास्तुकलापर भी गहरा प्रभाव पडा। तुन हुआग, यान-काग और लाग-मेनमे चट्टानोको काटकर बनायी गयी गुफाओ, गौतम बुद्धकी ६०–७० फुट ऊँची विशाल प्रतिमाओ, शुगकालमे बनी गुफाओ और कई मजिले मदिरोके चीनमे उपलब्ध भित्तिचित्र इसके ज्वलत उदा-हरण है। भारतीय सगीत कला, ज्योतिष शास्त्र, गणित और आयुर्वेदशास्त्रका भी चीनमे अध्ययन हुआ और इसका चीनी सस्कृतिपर व्यापक प्रभाव पडा।

भारतीय-भूभागमे मुसलमानी शासन स्थापित हो जानेके बाद भारत और चीनका सबध कई शताब्दियो तक वस्तुत विच्छिन्न-सा रहा। लेकिन ईस्ट इडिया कम्पनीके शासनकालसे भारत-चीन सबध फिर स्थापित हो गया। किन्तु इस कालमे यह सबध मुख्यरूपसे ब्रिटेनके व्यापारिक और साम्राज्यवादी हितो द्वारा नियन्त्रित होता था। वास्तविक अर्थोमे तो भारत-चीन सबध १९४७ ई०मे भारतके नये गणराज्यकी स्थापनाके बाद कायम हुए। शुरूमे यह सबध अत्यत सौहार्द्रपूर्ण रहा। दोनो देशोने एक दूसरेके देशमे अपने-अपने राजदूतावास स्थापित किये, सास्कृतिक सम्पर्क बढाया, दोनोके प्रधान-मत्रियोने एक दूसरेके यहाँ मैत्रीपूर्ण यात्राएँ की, पचशीलके आधारपर चीनके प्रधानमत्री चाऊ-एन-लाई और भारतके प्रधानमत्री जवाहरलाल नेहरूके बीच एक समझौतेपर हस्ताक्षर हुए। भारतने सयुक्त राष्ट्र सघमे प्रवेशके लिए चीनी दावेका बराबर समर्थन किया, जबकि पश्चिमी देश उसको प्रवेशसे रोके हुए थे। लेकिन चीनने मित्रता और सहानुभूतिकी परवाह न कर १९६२ ई०मे भारतपर अचानक हमला कर दिया। उसने लद्दाख और पूर्वोत्तर सीमाके काफी बडे भागपर अपना दावा किया। चीनके रुखमे सहसा इस परिवर्तनसे भारत आश्चर्यमे पड गया। हमारी फौजे चीनी हमलेके निरोधके लिए बिलकुल तैयार नही थी, इसलिए बहादुरीसे लडनेके बावजूद उन्हे नेफामे हार खानी पडी। चीनी फौजे इस क्षेत्रमे बढते-बढते आसामके मध्य तक पहुँच गयी। लेकिन इसके बाद ही उन्होने अपनी विजययात्रा अचानक रोक दी और दोनो देशोके बीच युद्ध-विराम लागू हो गया। इसके बादसे भारत और चीनका सबंध बहुत खराब हो गया। १९६५ ई०के भारत-पाकिस्तान युद्ध मे चीनने पाकिस्तानके साथ गठ-बधन किया और भारतपर आक्रमण करनेका झूठा आरोप लगाया। इस युद्धके समय चीनने भारतको अल्टीमेटम भी दिया था, लेकिन बादको वापस ले लिया। तबसे भारत और चीनके बीच कटुता बराबर बनी हुई है।

चीनी यात्री–बौद्ध धर्मके अनुयायी थे और इस धर्मके पवित्र उद्गमस्थल भारतमे बौद्ध अवशेषो और धर्मग्रथोकी खोज तथा बुद्ध और उनके प्रमुख शिष्योंसे सबधित पवित्र स्थानोपर श्रद्धा-सुमन चढानेके लिए आये थे। ये यात्री अपने साथ अनेक बौद्ध ग्रथ और अवशेष चीन ले गये। भारत आनेवाले चीनी यात्रियोमे फाह्यान सबसे पहला था। वह चन्द्रगुप्त द्वितीय (३७५–४१३ ई०)के शासनकालमे आया और ४०१ से ४१० ई० तक रहा। इस समयमे ७०० ई० तक बहुतमे चीनी तीर्थयात्री यहाँ आते रहे। इन यात्रियोने अपने यात्रा-वृत्तात लिखे है, जिनमे तत्कालीन भारतीय इतिहासके सबधमे बहुमूल्य सामग्री मिलती है। इन चीनी यात्रियोने तक्षशिला, वल्लभी, नालन्दा और विक्रमशिलाके विश्वविद्यालयोमे पठन-पाठन किया। बादके चीनी तीर्थयात्रियोमे इत्सिग (दे०) और ह्वेनसाग (दे०) सर्वाधिक प्रसिद्ध है।

चूटिया आदिवासी–उत्तरी आसामके कबायली लोग, जो इस समय मुख्यरूपसे लखीमपुर और शिवसागरसे सलग्न क्षेत्रमे पाये जाते है। इनकी भाषा बोडो है। आरम्भकालमे चूटिया कबायलियोमे शान जातिके रक्तका पर्याप्त समावेश हुआ। इसके बाद इन्होने अहोमोसे वैवाहिक सबध स्थापित किये और फिर उसी जातिमे विलीन हो गये। तेरहवीसे लेकर सोलहवी शताब्दी तक अहोमोके साथ इनका सघर्ष होता रहा लेकिन अन्तमे अहोमोने इनपर विजय पा ली और इसके बाद दोनो कबीलोका परस्पर विलय हो गया। इनका मुख्यालय सदियामे था। इनके अपने पुरोहित थे, जिन्हे 'देवरी' कहा जाता था। इनकी सहायतासे ही वे काली देवीके विभिन्न रूपोकी उपासना किया करते थे। सदिया स्थित ताबेके मन्दिरमे ये लोग कालीको प्रसन्न करनेके लिए मानवकी बलि चढाते थे। (**गेट कृत 'हिस्ट्री आफ असम', पृष्ठ ४१-४२**)

चूटी खान–बगालके शासक हुसेनशाह (१४९३–१५१८ ई०) के सेनापति परागलखाँका पुत्र। वह चटगाँवका सूबेदार था। हुसेनशाहकी तरह वह स्वय भी बगाली साहित्यका सरक्षक था। उसीकी सरक्षकतामे श्रीकर नदीने महाभारतके अश्वमेध पर्वका बगलामे अनुवाद किया था।

चूटू वंश–सातवाहनोकी ही एक शाखा। इस वशने २२५ ई०के लगभग सातवाहन साम्राज्यके एक भागपर शासन किया था, जिसकी राजधानी उत्तरी तुगभद्रापर बनवासीमे थी। यह शासन तीसरी शताब्दीके अत तक चला। अभिलेखोमे इस वशके दो राजाओ, विष्णुकड और उसके दौहित्र स्कदनागका उल्लेख मिलता है। चूटू वशके बाद कदम्ब (दे०) वशका शासन स्थापित हुआ। (**पी० एच० ए० आई०, पृष्ठ ५०३–५०४**)

चूडामणि जाट–मथुरा जिलेके जाटो और किसानोका नेता। इसने सुदृढ सैनिक शक्तिके रूपमे ग्रामीणोका सगठन किया और सम्राट् औरगजेबकी मृत्युके बाद मुगलोसे मोर्चा लिया। १७२१ ई०मे मुगल बादशाह मुहम्मदशाहने राजा सवाई जयसिहको जाटोके दमनके लिए भेजा। जयसिहने चूडामणिके भतीजे बदनसिहको अपनी ओर मिला लिया और चूडामणिको पराजित कर उसका गढ छीन लिया। फलत चूडामणिने आत्महत्या कर ली। जयसिहने बदनसिह (दे०)को राजा मान लिया। बदनसिहने आगरा और मथुरा जिलोके कुछ भागोको लेकर भरतपुर राज्यकी स्थापना की।

चेटफील्ड कमेटी–लार्ड लिनलियगो (१९३६–४१) के प्रशासन कालमे भारतीय सेनाके आधुनिकीकरणपर रिपोर्ट देनेके लिए नियुक्त। लार्ड चैटफील्ड इस कमेटीके अध्यक्ष थे। कमेटीने अपनी रिपोर्ट १९३९ ई०मे पेश की। इस रिपोर्टके अनुसार ब्रिटेनकी सरकारने सेनामे आवश्यक सुधारके लिए काफी बडी धनराशि प्रदान की। रिपोर्टमे भारत-स्थित ब्रिटिश सैनिकोकी सख्यामे २५ प्रतिशत कमी करने और भारतीय सेनाको सीमा सुरक्षा, आतरिक सुरक्षा, समुद्रतटीय सुरक्षा और सामान्य आरक्षित—चार वर्गोमे फिरसे विभक्त करनेकी सिफारिश की गयी थी। इसके अलावा स्थल सेनाके लिए हलके टैको, बख्तरबद गाडियो और मोटर परिवहनका प्रबध करने, स्थल सेना और समुद्री सीमाकी रक्षा करनेवाली नौसेनाके साथ सहयोग और समन्वयके लिए नभ-सेनामे बम-वर्षक विमानोका स्क्वाड्रन जोडने, शाही भारतीय नौसेनाको आधुनिकतम युद्धपोतोसे सज्जित करके सुदृढ बनाने और आयुध कारखानोका पुनर्निर्माण और विस्तार करके गोला-बारूदका उत्पादन बढानेकी भी सिफारिश की गयी थी।

चेतसिह–बनारसका राजा। पहले वह अवधके नवाबका सामत था, लेकिन बादको उसने अपनी निष्ठा 'ईस्ट इडिया कम्पनी'के प्रति व्यक्त की। कम्पनीके साथ एक सधि हुई, जिसके अतर्गत चेतसिहने कम्पनीको २२.५ लाख रुपयेका सालाना नजराना देना स्वीकार किया और बदलेमे कम्पनीने करार किया कि वह किसी भी आधारपर अपनी माँगको नही बढायेगी और किसी भी व्यक्तिको राजाके अधिकारमे दखल देने और उसके देशकी शान्ति भग करनेकी इजाजत नही देगी। १७७८ ई०मे कम्पनी जब भारतमे फ्रासीसियोके साथ युद्धरत थी और मैसूर तथा मराठोसे भी उसकी ठनी

हुई थी, हेस्टिंग्सने चेतसिंहसे पाँच लाख रुपयेका एक विशेष अंशदान माँगा। राजाने उसे दे दिया। १७७६ ई० मे यह माँग फिर दोहरायी गयी और इस वार उसके साथ फौजी कार्रवाईकी धमकी भी दी गयी। १७८० ई०मे यह माँग तीसरी वार फिर की गयी। इस वार चेतसिंहने २ लाख रुपये व्यक्तिगत उपहारके रूपमे हेस्टिंग्सको इस आशाके साथ भेजे कि वह प्रसन्न हो जायगा। हेस्टिंग्सने यह राशि कम्पनीकी फौजोपर खर्च कर दी और अपनी माँगमे जरा भी कमी किये विना उसने राजासे २ हजार घुडसवार देनेको कहा। राजाके अनुरोधपर उसने वादमे यह सख्या घटाकर एक हजार कर दी। लेकिन राजा ५०० घुडसवारो और ५०० तोडदारोका ही वदोवस्त कर सका। राजाने हेस्टिंग्सको सूचना भिजवायी कि ये घुड-सवार और तोडदार कम्पनीकी सेवाके लिए तैयार है। हेस्टिंग्सने इसका कोई जवाव नही दिया और चेतसिंहसे ५० लाख रुपया जुर्माना वसूलनेकी ठानी। हेस्टिंग्स अपनी योजना कार्यान्वित करने खुद वनारस पहुँचा। उसने राजाको उसके महलमे ही कैद कर दिया। राजाने चुपचाप आत्मसमर्पण कर दिया, किन्तु उसके सिपाही राजाके इस अपमानसे क्रुद्ध हो गये। उन्होने उस छोटी-सी व्रिटिश टुकडीका सफाया कर दिया जिसके साथ हेस्टिंग्सने वनारस आनेकी गलती की थी। हेस्टिंग्स अपनी जान वचानेके लिए जल्दीसे चुनार भाग गया। वहाँसे कुमुक लाकर उसने वनारसपर फिर कब्जा कर लिया और चेतसिंह-के महलको कम्पनीके सिपाहियोसे लुटवाया। लेकिन चेतसिंहको न पकडा जा सका। वह ग्वालियर निकल भागा। हेस्टिंग्सने चेतसिंहका सारा राजपाट जब्त करके उसके भतीजेको इस शर्तके साथ सुपुर्द कर दिया कि वह सालाना नजरानेकी रकम वढाकर ४० लाख रु० कर देगा। राजाके लिए यह रकम काफी वडा वोझ थी और इससे उसकी आर्थिक स्थितिपर वहुत वुरा प्रभाव पडा। व्रिटेनके प्रधान-मत्री पिटने महसूस किया कि चेतसिंहके मामलेमे हेस्टिंग्सका व्यवहार क्रूर, अनुचित और दमन-कारी था। हेस्टिंग्सपर महाभियोग लगाये जानेका एक कारण यह भी था। **(सर अल्फ्रेड लायल कृत 'वारेन हेस्टिंग्स' तथा पी० ई० रावर्ट्स कृत 'हिस्ट्री आफ व्रिटिश इण्डिया')**

चेदि–गगा और नर्मदाके वीचके क्षेत्रका नाम। प्राचीन वौद्ध ग्रथोमे इसका उल्लेख सोलह वडे राज्यो (महा-जनपदो) मे हुआ है। वादको इस क्षेत्रपर कल्चुरियो (दे०)ने शासन किया।

चेम्पियन, कर्नल एलेक्जेण्डर–वगालमे ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामे नियुक्त एक सैनिक अफसर। वारेन हेस्टिंग्सने उसे व्रिटिश फौजका कमाण्डर वनाकर रुहेलोके विरुद्ध अवधके नवावकी मददके लिए भेजा। दोनोकी सयुक्त सेनाओने २३ अप्रैल १७७४ ई० को मीरनपुर कटराके युद्धमे रुहेलोको परास्त कर दिया।

चेम्बरलेन, सर नेविली–व्रिटिश राजदूत, जिसे वाइसराय लार्ड लिटन प्रथमने १८७८ ई०मे अफगानिस्तान भेजा था। इसे कावुलके राजदरवारमे रूसी राजदूतका प्रभाव कम करनेके लिए भेजा गया था। अमीर शेर अली रूसी राजदूतको अपने यहाँ पहले ही वुला चुका था, अत अमीरने सर नेविलीको स्वीकार करनेसे इनकार कर दिया। सर नेविलीको अली मसजिदसे लौटना पडा। उसकी वापसीके फलस्वरूप दूसरा अफगान-युद्ध (१८७८–८०) छिडा।

चेम्सफोर्ड–१९१६से १९२१ ई० तक भारतका वाइसराय और गवर्नर-जनरल। नियुक्तिके समय उसकी आयु लगभग ५० वर्ष थी और प्रशासनका कोई अनुभव नही था। भारतीय राजनीति जिस समय नयी करवट ले रही थी, उसकी भूमिका अपेक्षाकृत निष्क्रियतापूर्ण रही। उसका प्रशासन मेसोपोटामियाँमे व्रिटिश सेनाओकी हारकी पृष्ठभूमिमे आरभ हुआ। १९१४ ई०मे प्रथम विश्वयुद्ध छिडनेके वाद भारत अपनी वफादारीका जिस रीतिसे लगातार प्रदर्शन कर रहा था, व्रिटेनने उसका कोई समुचित प्रत्युत्तर नही दिया था, जिससे भारतमे गहरा असतोष व्याप्त था। लार्ड चेम्सफोर्डने इस असतोषको दूर करनेके लिए अपनी ओरसे कोई पहलकदमी नही की। भारतके प्रति व्रिटिश नीतिके निर्धारणमे उसकी भूमिका नगण्य रही। व्रिटिश कामन सभामे भारत-मत्री श्री एडविन मोण्टेगू द्वारा २० अगस्त १९१७ ई०को की गयी इस प्रसिद्ध घोषणामे उसका कोई विशेष हाथ नही था कि भारत मे व्रिटिश सरकारका अन्तिम ध्येय "क्रमिक रीतिसे उत्तरदायी सरकारकी स्थापना करना है।" वादको जव मोण्टेगू भारतकी यात्रापर आया, लार्ड चेम्सफोर्डने उसके साथ सपूर्ण देशका दौरा किया। १९१८ ई०मे भारतीय सावि-धानिक सुधार की जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई, उसपर मोटेगूके साथ-साथ चेम्सफोर्ड का नाम भी दिया गया था। १९१९ ई०मे इसी मोण्टेगू-चेम्सफोर्ड रिपोर्टके आधारपर नया भारतीय शासन-विधान तैयार करनेमे भी उसका वहुत थोडा हाथ था। इस शासन-विधानके लागू होनेके पहले ही उसका कार्यकाल समाप्त हो गया।

लार्ड चेम्सफोर्डने तत्कालीन राजनीतिक स्थितिका बडे कुशल ढगसे सामना किया। १९१८ ई० मे महायुद्ध समाप्त हो गया,परन्तु चेम्सफोर्डकी सरकारने १९१९ ई०मे रौलट कमेटी (दे०)की सिफारिशोके आधारपर कई कानून पास किये। इनके अतर्गत जजोको विना जूरीकी सहायताके राजनीतिक मुकदमे करने और प्रातीय सरकारोको नजर-वदीके व्यापक अधिकार प्रदान किये गये। ये कानून इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौसिलके सभी गैरसरकारी सदस्योके विरोधके वावजूद पास कर दिये गये। इन दण्डात्मक कानूनोमे रुष्ट जनताने महात्मा गाधीके नेतृत्व और निर्देशनमे जोरदार आदोलन छेड दिया। देशभरमे हडताले और सभाएँ हुईं। सरकारी प्रतिवधके वावजूद इसी तरहकी एक सभा अमृतसरके जालियाँवाला वागमे होने जा रही थी। जनरल डायरके नेतृत्वमे ब्रिटिश सैनिकोने इस वागमे एकत्र निहत्थी भीडपर विना किसी चेतावनीके गोलियाँ दागना शुरू कर दिया। यह वाग चारो तरफ ऊँची चहारदीवारीसे घिरा हुआ था और वाहर निकलनेका एक ही रास्ता था जिसे सशस्त्र ब्रिटिश सैनिकोने वद कर रखा था। इस गोलीकाडमे सैकडो स्त्री, पुरुष और वच्चे मारे गये और घायल हुए। यह जघन्य हत्याकाड था। इतना ही नही, इस हत्याकाडके वाद मार्शल-ला घोषित करके वेगुनाह लोगोपर और भी अत्याचार किये गये। उन्हे वेकसूर कडी सजाएँ दी गयी और कोडोसे पिटाई और जमीनपर घिसटाकर अपमानित किया गया। लार्ड चेम्सफोर्डने इन वर्वर अत्याचारोको वद कराने और जन-आक्रोशको शान्त करनेके लिए कुछ नही किया और वडी अनिच्छासे जालियावाला वाग काडकी जाँच करानेके लिए हटर कमेटी (दे०) नियुक्त की। इस कमेटीने अभी अपना काम शुरू भी नही किया था कि वाइसरायने अत्याचारी सैनिक और असैनिक अधिकारियोको माफी देनेके लिए दोप-मुक्ति (इन्डेम्निटी) कानून पास कर दिया। हटर कमेटीने जनरल डायरकी कडी भर्त्सना की और मार्शल कानून प्रशासनकी आलोचना की। लार्ड चेम्सफोर्ड अपराधी अफसरोको, खासकर पजावके अफसरो-को तत्काल और प्रभावी ढगसे दडित करनेमे विफल रहा। इससे भारत-ब्रिटिश सवधोमे इतनी अधिक कटुता उत्पन्न हो गयी जितनी १८५७ ई० के विद्रोहके वाद किसी भी वाइसरायके जमानेमे नही हुई थी। किन्तु अहिंसाकी नीतिमे विश्वास करनेवाले महात्मा गाधीके व्यापक प्रभावके कारण लार्ड चेम्सफोर्डको किसी सशस्त्र विद्रोहका सामना नही करना पडा।

चेर—देखिये, 'केरल'।

चैतन्य-चरितामृत—चैतन्यदेवके जीवन-वृत्तान्तपर सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रथ। इसके लेखक कविराज कृष्णदास है, जिनका जन्म १५१७ ई० मे वगालके वर्दवान जिलेमे हुआ था।

चैतन्य देव—वगालमे वैष्णव धर्मके सस्थापक, जन्म १४८५ ई० मे वगालमे नवद्वीपके विद्वान् ब्राह्मण परिवारमे। अपने अलौकिक पाडित्यके कारण वे शीघ्र ही विख्यात हो गये। २४ वर्षकी आयुमे उन्होने सन्यास ले लिया। वृद्धा मा और सुन्दर पत्नीको घरमे छोडकर उन्होने अपने ४८ वर्षोके छोटेसे जीवनका शेषकाल प्रेम और भक्तिके सदेशका प्रचार करनेमे व्यतीत किया। अठारह वर्ष वे उडीसामे रहे और ६ वर्ष उन्होने दक्षिण भारत, वृन्दावन, गौड और अन्य स्थानोपर विताये। उनके भक्त और अनुयायी उन्हे भगवान् विष्णुका अवतार मानते थे। वे पडितोके कर्मकाण्डोके विरुद्ध थे। उन्होने जनताको हरि (विष्णु)के प्रति आस्था रखनेका उपदेश दिया। उनका विश्वास था कि प्रेम और भक्तिके माध्यमसे ईश्वर-की अनुभूति हो सकती है। उनका उपदेश सभी जाति और पथके लोगोके लिए उन्मुक्त था। हिन्दू और मुसलमान, सभीने उनकी शिष्यता ग्रहण की। उन्होने भक्ति-भावना और उसकी महत्ताको फिरसे जागृत किया। उनके सिद्धान्तोसे पूर्वी भारत, खासकर वगालके लोग वडी सख्यामे प्रभावित हुए। चैतन्यके जीवन एव उपदेशोपर काफी वडा साहित्य-भण्डार रचा गया है। उन्होने खोल (मृदग वाद्य)की तालपर जो कीर्तन गाये है, वे आज भी वगालमे, खासकर मणिपुरमे वहुत लोकप्रिय है। (कविराज कृष्णदास कृत 'चैतन्य चरितामृत')

चैतन्य-भागवत—इसमे चैतन्यदेवका जीवनवृत्तात और उनकी शिष्यपरपरा और उपदेशोका विवरण है। यह ग्रथ वृन्दावनदास (जन्म १५०७ ई०) द्वारा वगालमे लिखा गया है। इससे वगालमे चैतन्यके समयके सामाजिक जीवनके वारेमे महत्त्वपूर्ण सूचनाए मिलती है।

चैतन्य-मगल—चैतन्यके जीवनपर लिखी गयी दो पुस्तकोका नाम। इनमेसे एक जयानन्द और दूसरी त्रिलोचनदास द्वारा विरचित है। जयानदका जन्म १५१३ ई० और त्रिलोचन दासका जन्म १५२३ ई० मे वर्दवान जिलेमे हुआ था। इन दोनोमे त्रिलोचनदासकी पुस्तक अधिक लोकप्रिय है।

चैत्य-गुहाए—देखिये, 'गुहा वास्तुकला'।

लन १९२० ई०मे महात्मा गाधीके नेतृत्वमे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस द्वारा असहयोग आन्दोलनके रूपमे आरम्भ किया गया था। महात्मा गाधीने इस बातपर जोर दिया था कि आदोलनका स्वरूप अहिंसक रहना चाहिये। आदोलन-कारियोके हिसापर उतर आनेसे गाधीजीको बहुत सदमा पहुचा और उन्होने यह स्वीकार किया कि उनसे भारी भूल हुई है। उन्होने तुरन्त असहयोग आदोलन स्थगित कर दिया। गाधीजीके इस आदेशसे बहुतसे काग्रेसजनोको भारी निराशा हुई। वाइसराय लार्ड रीडिंगने इस काडका फायदा उठाकर गाधीजीको हिंसा भडकानेके अभियोगमे गिरफ्तार कर लिया। गाधीजीपर मुकदमा चला और छ वर्ष कैदकी सजा हुई। इस चौरी-चौरा काण्डसे असहयोग आदोलनको गहरा धक्का लगा।

चौसाका युद्ध–जून १५३९ ई०मे दूसरे मुगल बादशाह हुमायू और अफगान शासक शेरशाह (दे०)के बीच हुआ। इस युद्धमे हुमायूकी बुरी तरह पराजय हुई। वह अपने घोडेके साथ गगासे कूद पडा और एक भिश्तीकी मददसे डूबनेसे बच गया। हुमायू उसकी मशकके सहारे नदी पार कर आगरा भाग गया और शेरशाह बिहार और बगाल-का स्वतत्र शासक बन गया। चौसा गगाके तटपर बक्सरके निकट स्थित है, इसलिए चौसाके युद्धको कभी-कभी बक्सर-का युद्ध भी कहते है।

चौहान–इनका नाम चाह्मान भी मिलता है। यह राजपूतोका ही एक कुल था और पँवारो, प्रतिहारो और सोलकियोकी भाति उनका उद्भव भी राजपूतानाके आबू पर्वत स्थित एक यज्ञकुण्डसे माना जाता है। कुछ आधुनिक विद्वानोका मत है कि चौहान भी पँवारो, प्रतिहारो और सोलकियोकी भांति वास्तवमे गुर्जरो और श्वेत हूणोके वशज है जो ईसवी पाचवी और छठी शताब्दीके दौरान भारतमे प्रविष्ट हुए, यही बस गये, और हिन्दू धर्म ग्रहण कर लिया। शासक तथा योद्धा होनेके कारण उनकी गणना क्षत्रियोमे की जाने लगी। **(स्मिथ, पृ० ४२८–२९)**

चौहान, शाकम्भरीके–हर्षवर्धनके पतनके बाद राजपूतानामे शाकभरी (साभर)मे कई शताब्दियो तक इन्होने शासन किया। इनकी राजधानी अजमेर थी। इस वशमे अनेक राजा हुए है और उनमे बहुतोके नाम अभिलेखोमे मिलते है, लेकिन दोके नाम विशेषरूपसे उल्लेखनीय है। पहला है विग्रहराज, जिसने बारहवी शतीके मध्यमे शासन किया। इस राजाने अपने राज्यकी सीमाओका काफी विस्तार किया और दिल्ली तथा उसके पास-पडोसके क्षेत्रोपर विजय प्राप्त की। विग्रहराज विजेता होनेके साथ-साथ कवि और साहित्यप्रेमी भी था। उसने 'हरकाली नाटक'की रचना की। 'ललितविग्रह नाटक' उसीके शासनकालकी कृति है, जिसकी रचना विग्रहराजकी प्रशस्तिके लिए की गयी थी। कुछ लोग इस नाटकका लेखक भी विग्रहराजको ही मानते है। इसके कुछ अश अजमेरमे 'अढाई दिनका झोपडा' नामक मसजिदमे लगे पत्थरपर अकित पाये गये है। इस वशका दूसरा सर्वाधिक उल्लेखनीय शासक विग्रहराजका भतीजा पृथ्वीराज द्वितीय या राय पिथौरा (दे०) था। अजमेर और दिल्लीके चौहान वशका पतन ११९२ ई० मे तराइनके दूसरे युद्धमे पृथ्वीराज द्वितीयकी हार और मृत्युके बाद हो गया।

चौहान नरेशोके एक वशने तोमरोके उत्तराधिकारीके रूपमे मालवापर शासन किया। मालवाके चौहानोका पतन १४०१ ई०मे मुसलमानोसे हारनेके बाद हुआ। मुसलमानोने इनका राज्य हडपकर इन्हे अपदस्थ कर दिया। **(स्मिथ, पृ० ४००–४७४)**

छ

छतरसिंह–१८४८ ई० मे दूसरा सिख-युद्ध छिडनेके समय सिखोका एक प्रमुख सरदार। अग्रेजोके खिलाफ युद्धमे उसने तथा उसके पुत्र शेरसिंहने प्रमुख भूमिका अदा की, लेकिन १८४९ ई० मे गुजरातके युद्ध (दे०) मे सिखोकी पराजयके बाद उसने अग्रजोके आगे आत्मसमर्पण कर दिया।

छत्रपति–एक राजकीय उपाधि, जो जून १६७४ ई० मे स्वतत्र शासकके रूपमे अपने राज्याभिषेकके समय शिवाजीने धारण की थी।

छत्रसाल–बुदेला सरदार चम्पतरायका पुत्र और उत्तराधि-कारी। छत्रसालने शिवाजीके विरुद्ध मुगल बादशाह औरगजेबकी फौजोका साथ दिया, लेकिन बादमे उसे इस मराठा नेतासे प्रेरणा मिली। अपना स्वतत्र राज्य स्थापित करनेकी आशाके साथ उसने शिवाजीकी तरह साहस और जोखिमपूर्ण जीवन बितानेका फैसला किया। दक्षिणके फौजी अभियानसे लौटनेके बाद छत्रसालने बुदेलखण्ड और मालवाके असतुष्ट हिंदुओके हितोकी रक्षाका बीडा उठाया। मुगलोके खिलाफ उसने कई लडाइया जीती और १६७१ ई० तक पूर्वी मालवामे अपना स्वतत्र राज्य स्थापित कर लिया। उसने अपनी राजधानी पन्नाको बनाया और १७३१ ई० तक मृत्यु पर्यन्त शासन किया।

ज

जकात–मुसलमान बादशाहोंके द्वारा लागू किया गया एक कर, जो उनकी मुसलमान प्रजापर लगाया जाता था। यह व्यक्तिकी उपार्जित आयका दो प्रतिशत होता था और इससे प्राप्त होनेवाली धनराशि खैरातके रूपमें मुसलमानोमें बांट दी जाती थी।

जगतसिंह–आमेरके मानसिंहका पुत्र। बादशाह अकबरके राज्यकालमें मानसिंह अनेक ऊँचे पदोपर रहा। मानसिंह जब बंगालका सूबेदार था तब जगतसिंह उसका नायब था। अक्तूबर १५९९ ई०में उसकी मृत्यु हो गयी।

जगतसिंह, मेवाड़का राणा–मेवाड़के राणा प्रतापका पौत्र और राणा अमरसिंहका पुत्र। वह बादशाह जहाँगीरका समसामयिक था। उसके राज्यकालमें जगतसिंहने चित्तौड़का किला फिरसे बनवाया। उसने बादशाह शाहजहाँ (१६२८–५८ ई०)के हुक्मको माननेसे इनकार कर दिया। इसपर उसका मानभंग करनेके लिए १६५४ ई० में शाहजहाँके हुक्मसे चित्तौड़का किला ढहा दिया गया।

जगत सेठ–यह उपाधि १७२३ ई० के आसपास दिल्लीके बादशाहने बंगालके एक बहुत अधिक धनी महाजन, मानिकचंदके भतीजे तथा गोद लिये हुए लड़के फतहचंदको प्रदान की थी। जगत सेठकी कोठियाँ ढाका और पटनामें भी थीं। उसकी मुख्य कोठी मुर्शिदाबादमें थी। उसकी अतुल सम्पत्तिका उल्लेख उस कालके अनेक राजनीतिक लेखों, क्लाइव तथा बर्क जैसे अंग्रेज राजनेताओंके भाषणोंमें मिलता है। उसका कारोबार 'बैंक आफ इंग्लैंडसे मिलता-जुलता' था। उसकी कोठी केवल रुपयेका लेन-देन ही नहीं करती थी, बंगालकी सरकारकी ओरसे ऐसे अनेक कार्य भी करती थी, जो अठारहवीं शताब्दीमें 'बैंक आफ इंग्लैंड' ब्रिटिश सरकारकी ओरसे करता था। वह बंगालमें चाँदीकी खरीद करती थी। उसने मुर्शिदाबादमें एक टकसाल खोलनेमें मदद की थी। वह प्रांतीय सरकारकी ओरसे जमींदारोंकी मालगुजारी वसूल करती थी, शाही खजानेको दिया जानेवाला आयका भाग दिल्ली भेजती थी और बंगालमें वाणिज्य-व्यवसायके जरिये जितने सिक्के आते थे उनकी विनिमय-दरका नियंत्रण करती थी।

दूसरा जगत सेठ फतहचंदका पौत्र महताबचंद हुआ। वह १७४४ ई० में वारिस बना। उसका तथा उसके चचेरे भाई तथा साझेदार महाराज स्वरूपचंदका नवाब अलीवर्दी खां (दे०)के दरबारमें बड़ा प्रभाव था। अलीवर्दी खांके उत्तराधिकारी, नवाब सिराजुद्दौला (दे०)ने उसे अपमानित किया तथा अपना विरोधी बना लिया। उसने उसके विरुद्ध अंग्रेजोंसे साजिश की और पलासीकी लड़ाई (दे०)में पहले और बादमें अंग्रेजोंकी रुपये-पैसेसे भारी मदद की। मीर जाफर (दे०)के नवाब होनेपर उसे फिर पहले जैसा सम्मान और प्रभाव प्राप्त हो गया, परंतु नवाब मीर कासिम (दे०) उससे बहुत अधिक नाराज हो गया। उसे जगत सेठकी वफादारीपर संदेह था और १७६३ ई० में नवाबके आदेशसे उसे मार डाला गया। इसके बाद ही बंगालका प्रशासन नवाबके हाथोंसे अंग्रेजोंके हाथमें आ गया। उन्होंने बेईमानी करके ईस्ट इंडिया कंपनीके ऊपर जगत सेठका कोई कर्ज होनेसे इनकार कर दिया। इन सब घटनाओंके फलस्वरूप जगत सेठके घरानेका शीघ्रतासे ह्रास हो गया और उन्नीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें उसका वैभव समाप्त हो गया, हालांकि जगत सेठकी उपाधि महताबचंदके उत्तराधिकारियोंकी छह पीढ़ियोंको मिलती रही। बादके जगत सेठ ब्रिटिश भारतीय सरकारके छोटे-मोटे पेंशनरोंसे अधिक हैसियत नहीं रखते थे। अंतिम जगत सेठ फतहचंद हुआ, जिसे यह उपाधि १९१२ ई० में मिली। उसकी मृत्युके बाद उसके वारिसोंको फिर यह उपाधि नहीं दी गयी।

जगत सेठ फतहचंद–जगत सेठ घरानेके संस्थापक मानिकचंदका भतीजा तथा गोद लिया हुआ लड़का। उसे जगत सेठकी उपाधि मुगल बादशाह मुहम्मदशाहने १७२३–२४ ई० में प्रदान की। उसीके जीवनकालमें जगत सेठका घराना प्रतिष्ठा और समृद्धिके चरम शिखरपर पहुंचा। फतहचंद जगत सेठ १७१२ से १७४४ ई० तक अपने परिवारका मुखिया रहा। नवाब मुर्शिदकुली खां और उसके देहांतके बाद नवाब अलीवर्दी खां (१७४०–५६ ई०)पर उसका भारी प्रभाव था।

जगदीशपुर–बिहारमें है। गदरमें वहां के जमींदार कुँवर सिंह (दे०)की शानदार सफलताओंसे यह स्थान प्रसिद्ध हो गया है।

जगन्नाथ मंदिर–पुरी, उड़ीसामें है। इसका निर्माण उड़ीसाके राजा अनंत वर्मा चोड-गंग (लगभग १०७६–११४८ ई०) ने कराया था। यह वास्तुकलाका अद्भुत नमूना है और कई शताब्दियां बीत जानेपर भी इसका प्रभाव इसपर बहुत थोड़ा पड़ा है। सारे भारतसे हजारों धर्मप्रेमी हिन्दू यात्री और विदेशी पर्यटक इसे अब भी देखने आते हैं।

जजिया–एक मुंड-कर, जो कानूनके अनुसार यहूदियों और ईसाइयोंसे लिया जाता था, परन्तु मुसलमान विजेताओंने

इसे भारतमे हिन्दुओंपर भी लगा दिया। मुहम्मद बिन कासिमने ७१२ ई० मे जब सिंध जीता तब जजिया पहली बार लगाया गया। विजित हिन्दुओंको यह कर देना पड़ता था और सम्पत्तिके अनुसार यह कर उनसे लिया जाता था। भारतमे मुसलमानी शासनका विस्तार होनेपर यह कर सारे भारतके हिन्दुओंपर लगा दिया गया। प्रारम्भमे ब्राह्मणोंको इस करसे मुक्त रखा गया था, परन्तु फीरोज-शाह तुगलक (१३५१–८८ ई०) (दे०)के राज्यकालमे ब्राह्मणोपर भी यह कर पहले-पहल लगाया गया। बादशाह अकबरने जब १५६४ ई०मे यह कर उठा लिया तो हिन्दुओं-ने उसकी बड़ी प्रशंसा की, परन्तु औरंगजेबने १६७९ ई० मे यह फिर लगा दिया। इस धार्मिक असहिष्णुतासे हिन्दुओंमे बड़ी नाराजी फैली और औरंगजेब एवं राजपूतोंके बीच लम्बी लड़ाई चली। इसके फलस्वरूप औरंगजेबने मेवाड़को जजियासे बरी कर दिया। बादशाह फर्रुखसियरने १७१३ ई० मे गद्दीपर बैठनेपर यह कर उठा लिया, परन्तु १७१७ ई० मे फिर लागू कर दिया। इसके बाद, यह कर हालांकि किताबी ढंगसे जायज बना रहा, परन्तु बादशाह मुहम्मदशाह (१७१९–४८ ई०) के समयसे इसका वसूल किया जाना बंद कर दिया गया। जब दिल्लीकी हुकूमत मजबूत थी तब इस करसे काफी आय होती थी, परन्तु बादके मुगल शासकोंके समय इसकी आय काफी कम हो गयी होगी। यह अन्यायपूर्ण कर था और इसीलिए इस करके वसूल किये जानेसे हिन्दुओंमे नाराजी फैलती थी।

जञौती–जेजाकभुक्ति (दे०)का दूसरा नाम है।

जनगणना–का ज्ञान प्राचीन भारतमे था। मेगस्थनीजने लिखा है कि चन्द्रगुप्त मौर्य (३२५–२९८ ई० पू०) के शासनकालमे पाटलिपुत्र नगरपालिकाका एक काम नागरिकोंके जन्म और मृत्युका लेखा-जोखा रखना था। अर्थशास्त्र (दे०)मे भी जनगणनाके स्थायी प्रबंधका उल्लेख है। लेकिन बादमे जनगणनाकी परम्परा लुप्त हो गयी। आधुनिक कालमे ब्रिटिश भारतीय सरकारने इस परम्पराको पुनर्जीवित किया। अब तो यह देशके प्रशासनका नियमित अंग बन गयी है। हर दस सालपर एक बार जनगणना होती है।

जफर खां–अलाउद्दीन खिलजीका मंत्री और सेनाध्यक्ष। सुल्तानके विभिन्न युद्धोमे इसने प्रमुख भाग लिया। उसने मंगोल आक्रमणके प्रतिरोधमे बड़ी वीरता और रणकौशलका प्रदर्शन किया। मंगोल आक्रमणका नायकत्व १२९९ ई० मे कुल्तुघ ख्वाजाने किया था। उसने मंगोलोंको हरानेमे अपनी जान न्योछावर कर दी।

जफर खां–दक्षिणमे बहमनी राज्य (दे०)का संस्थापक। उसका वास्तविक नाम हसन था। सुलतान मुहम्मद तुगलककी सराहनीय सेवा करनेके कारण उसे जफर खांकी उपाधिसे सम्मानित किया गया। १३४७ ई० मे दौलताबाद-मे उसे एक बड़ी सेनाका नायकत्व सौंपा गया और इस स्थितिसे लाभ उठाकर उसने स्वयको दक्षिणमे एक स्वतन्त्र शासकके रूपमे प्रतिष्ठित किया तथा गुलबर्ग अथवा कुल-बर्गको अपनी राजधानी बनाया। सुल्तान बननेपर उसने अबुल मुजफ्फर अलाउद्दीन बहमन शाहकी उपाधि धारण की। फरिश्ताका कहना है कि हुसेन मूलतः एक ब्राह्मण, ज्योतिषी गंगूका सेवक दास था जिसने उसे जीवनमे ऊँचा उठनेसे भारी सहायता पहुँचायी। परन्तु फरिश्ताके इस कथनकी स्वतंत्र सूत्रोंसे पुष्टि नही होती। हसनका दावा था कि वह फारसके प्रसिद्ध वीर इस्कान्दियारके पुत्र बहमनका वंशज था और इसी आधारपर उसने जिस राजवंशकी स्थापना की वह 'बहमनी' कहलाया। उसने अपने पड़ोसी राज्योंसे अनेक युद्ध किये, विशेषरूपसे हिन्दू राज्य विजय-नगर (दे०)से, जोकि उसीके समय स्थापित हुआ था। वह विजयी योद्धा सिद्ध हुआ तथा १३५८ ई० मे उसकी मृत्युके समय उसकी सल्तनत उत्तरमे वेनगंगासे दक्षिणमे कृष्णा नदी तक तथा पश्चिममे दौलताबादसे पूर्वमे भोनगिर तक फैली हुई थी। उसने राज्यका प्रबन्ध कुशलतासे किया और उसे चार प्रदेशोमे विभक्त किया, जिनके नाम गुलबर्ग, दौलताबाद, बराड और बीदर थे। प्रत्येक प्रदेशका कार्यभार एक हाकिमके अधीन था, जो सेनाका गठन तथा आवश्यक नागरिक तथा सैनिक अधिकारियोंकी नियुक्ति करता था। इतिहासकारों द्वारा उसकी न्यायकारी सुल्तानके रूपमे प्रशंसा की गयी है। वह प्रजापालक था। जब मृत्युशैयापर था, तभी उसने अपने सबसे बड़े पुत्र मुहम्मदशाहको अपना उत्तराधिकारी नामांकित कर दिया था।

जफर खान–बंगालकी गद्दीका झूठा दावेदार तथा पूर्वी बंगालके सुल्तान फखरुद्दीन मुबारकशाह (दे०) का जामाता। वह भागकर सुल्तान फिरोजशाह तुगलक (दे०) के दरबारमे पहुँचा तथा सुल्तानको बंगालके ऊपर आक्रमण करनेके लिए प्रेरित किया, परन्तु इस अभियानमे सुल्तान फीरोज तुगलक असफल रहा।

जफर खान–गुजरातके स्वतन्त्र सुल्तानोंके राजवंशका संस्थापक। उसने अपना जीवन तुगलक सुल्तान मुहम्मद शाहके यहाँ सेनानायकके रूपमे प्रारम्भ किया, जिसने १३९१ ई० मे उसे गुजरातका सूबेदार नियुक्त किया। उसने शीघ्र ही

वहाँ शान्ति व व्यवस्था स्थापित की। १३९६ ई० में फीरोज तुगलकके वंशजोंके बीच होनेवाले संघर्षसे लाभ उठाकर जफर खाँने स्वयंको गुजरातके स्वतंत्र सुल्तानके रूपमें प्रतिष्ठापित किया। उसने सात वर्षों तक शान्तिपूर्वक राज्य किया। अन्तिम दशामें वह अपने ही पुत्र तातारखाँके द्वारा कैद कर लिया गया, जिसने बादमें स्वयंको सुल्तान घोषित कर दिया। लेकिन जफर खाँने अपने भाईकी सहायतासे तातार खाँकी हत्या करवा दी और गद्दीपर पुनः अधिकार कर लिया तथा सुल्तान मुजफ्फरकी उपाधि धारण की। वृद्धावस्थाको प्राप्त हो जानेके बावजूद मुजफ्फर (जफर खान)ने मालवाके शासकको पराजित कर दिया तथा अपने भाई नुसरतको वहाँका शासक नियुक्त किया। १४११ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके वंशज सुल्तानोंने गुजरातपर १५७२–७३ ई० तक स्वतंत्र रूपसे राज्य किया। अन्तमें अकबरने उसे मुगल साम्राज्यमें मिला लिया।

जब्तीका सिद्धान्त–(डॉक्ट्रिन आफ लैप्स)–इसके अनुसार जो रियासतें ब्रिटिश भारतीय सरकारके अधीन थीं अथवा जो ब्रिटिश संरक्षणमें थीं, उनके शासकके निस्सन्तान होनेपर उनकी प्रभुता समाप्त होकर ब्रिटिश-भारतीय सरकारके हाथमें आ जायेगी और उनमें राजाको गोद लेनेका अधिकार न होगा। इसका अर्थ यह था कि अपनी सन्तान न होनेपर राजाको किसी अन्यको गोद लेनेका अधिकार न होगा। यदि कोई राजा किसीको गोद लेता है, तो वह दत्तक पुत्र राजाकी निजी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी तो हो सकेगा, लेकिन राज्यका उत्तराधिकारी न हो सकेगा। इस सिद्धान्तका प्रतिपादन १८३४ ई० में ही किया गया था, लेकिन गवर्नर-जनरल लार्ड डलहौजी (दे०) (१८४८–५६ ई०) ने इसे अमली रूप देकर सख्तीसे लागू किया। उसने इस बातकी कोई परवाह नहीं की कि इससे देशी रियासतोंके हिन्दू राजाओंमें बड़ी बेचैनी फैलेगी, क्योंकि सन्तान न होनेपर गोद लेना धार्मिक कर्तव्य माना जाता है।

इस सिद्धान्तको लागू करके डलहौजीने १८४८ ई० में सतारा, १८४९ ई० में जैतपुर तथा सम्भलपुर, १८५० ई० में बघाट, १८५२ ई० में उदयपुर, १८५४ ई० में नागपुर तथा १८५५ ई० में झाँसीको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया। उसने नागपुर राज्यके जवाहरात आदिकी खुली नीलामी करायी। वह करौली रियासतपर भी कब्जा करना चाहता था। लेकिन लंदनस्थित ब्रिटिश सरकारने मध्यप्रदेशके उदयपुर राज्य तथा सतलजके इस पारके बघाट राज्यकी जब्ती रद्द कर दी और करौलीकी प्रस्तावित जब्तीकी अनुमति नहीं दी। सतारा तथा नागपुरकी जब्तीसे ब्रिटिश भारतीय सरकारको यह लाभ हुआ कि कलकत्ता और बम्बई तथा बम्बई और मद्रासके बीच सीधे आवागमनमें सारी बाधाएँ दूर हो गयीं। लेकिन इन जब्तियोंसे भारतीय रियासतोंके राजाओंमें खलबली मच गयी और वे अपनेको अरक्षित मानने लगे। इस सिद्धान्तका भी यह फल निकला कि १८५७ ई० में प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम हुआ, जिसे अंग्रेजोंने सिपाही विद्रोहकी संज्ञा दी है।

जमरूदकी लड़ाई–पंजाबके महाराज रणजीतसिंह और अफगानिस्तानके अमीर दोस्त मुहम्मदके बीच १८०३ ई० में हुई। इस लड़ाईमें अमीर परास्त हुआ और रणजीतसिंहको पेशावर सौंप देनेके लिए विवश हुआ।

जमशेद–एक प्रसिद्ध ईरानी कलाकार, जिसे बादशाह अकबर (दे०)का आश्रय प्राप्त था।

जमशेद–गोलकुण्डाके कुतुबशाही वंश (दे०)का दूसरा सुल्तान। इस वंशकी स्थापना उसके पिता कुली कुतुबशाहने की थी। उसने १५४३ ई० में अपने पिताको मरवा दिया और १५५० ई०में मृत्यु होनेतक राज्य किया।

जमशेदपुर–भारतका 'इस्पात-नगर'। इसका नामकरण सर जमशेदजी टाटाके नामपर हुआ, जिनके मनमें बिहारमें आज जहाँ जमशेदपुर तथा टाटानगर स्थित है, वहाँ इस्पात कारखाना खोलनेका विचार उत्पन्न हुआ। यह संसारमें इस्पातका सबसे बड़ा अकेला कारखाना है। यहाँ प्रतिवर्ष लगभग दस लाख टन इस्पात तैयार होता है।

जमानशाह–१७९३ से १७९९ ई० तक अफगानिस्तानका शासक। वह अहमदशाह अब्दालीका पौत्र था और गद्दीपर बैठते ही अपने पितामहकी भाँति भारतपर चढ़ाई करना चाहता था। परन्तु उसे सुबुद्धि आ गयी कि भारतपर हमला करनेसे पहले स्वदेशमें अपनी स्थिति मजबूत कर लेनी चाहिये। फिर भी उसने १७९४ ई० में कश्मीरपर कब्जा कर लिया तथा सिखके अमीरोंको भी कर देनेके लिए विवश किया। इसके बाद वह भारतपर चढ़ाई करनेके लिए काबुलसे रवाना हुआ, किन्तु उसकी फौजें रोहतास तक ही बढ़ पायी थीं कि अफगानिस्तानमें बलवा हो गया जिसे दबानेके लिए उसे वापस लौट जाना पड़ा। उसकी सेनाके जो अग्रिम दस्ते पंजाब तक पहुँच गये थे उन्हें सिखोंके कड़े प्रतिरोधका सामना करना पड़ा और वे कोई विजय प्राप्त किये बिना ही अफगानिस्तान वापस लौट गये। इसके बाद १७९६–९७ ई० में जमानशाहने भारतपर फिर चढ़ाई की और वह पेशावरसे लाहौरकी ओर

बढने लगा। किन्तु सिखोने पुन कडा प्रतिरोध किया और उसकी सेनापर छापे मारने लगे। अत पजावमे अपनी स्थितिको मजबूत करनेमे जमानशाहको काफी समय लग गया। उसी बीच अफगानिस्तानमे फिर बलवा शुरू हो गया। अतएव जमानशाहको लाहौरसे आगे बढे बिना ही पुन काबुल वापस लौट जाना पडा। जमानशाहने भारतपर आक्रमणका अन्तिम प्रयास १७९८ ई० मे किया और सरलतासे लाहौर तक बढ आया, जिसपर उसने पुन अधिकार कर लिया, परन्तु इसी बीच ईरानके बादशाहने उसके सौतेले भाई शाह महमूदकी साँठगाँठसे अफगानिस्तान-पर हमला बोल दिया और उसे अपनी विजय अधूरी छोड कर पुन पजावसे अफगानिस्तान वापस लौट जाना पडा। शाह महमूदने अन्तमे जमानशाहको १७९९ ई० मे हरा दिया और उसकी आँखे फोड दी। फिर भी भारतीय सीमाओपर उसके हमलेका खतरा यहाँके राजाओको लम्बे समय तक आतकित किये रहा, जिसके फलस्वरूप भारतके शासक अग्रेजी राज्यके प्रसारको रोकनेके लिए कोई प्रभावशाली कदम न उठा सके। **(एन० के० सिन्हा कृत 'राइज आफ द सिक्ख पावर इन इण्डिया')**

जयंतिया राज्य–इसके अतर्गत आसामका जयतिया पहाडी क्षेत्र तथा इन पहाडियो तथा बादक नदीके बीचका मैदान सम्मिलित था। इस क्षेत्रके लोग उसी वशमूलके है जिसके खासी (दे०) लोग, और दोनो एक ही भाषा बोलते है। उनमे मातृसत्ताक व्यवस्था है और सम्पत्तिका उत्तराधिकार मातृ सम्बन्धसे प्राप्त होता है। १५०० ई० के आसपास पर्वतरायने जयतियामे एक हिन्दू राजवशकी स्थापना की, जिसके राजाओके नाम सस्कृत शब्दोपर आधारित थे। उनकी राजधानी जयतियापुर थी। विश्वास किया जाता है कि शिवकी अर्द्धाङ्गिनी सतीके अग जिन-जिन स्थानोपर गिरे थे, उनमे यह भी था, इसीलिए इसे अत्यन्त पवित्र माना जाता है। १५४८ से १५६४ ई० के बीच कूचबिहारके राजा नरनारायणने जयतियापर अधिकार कर लिया। बादमे सत्रहवी शताब्दीके शुरूमे जयतियाके राजा धन मानिकको कचारी राजाने हरा दिया और उसके राज्यपर अधिकार कर लिया। धन मानिकके पुत्र तथा उत्तराधिकारी जस मानिक (लगभग १६०५–२५ ई०)ने अहोम राजा प्रतापसिंह (१६०३–४१ ई०) को अपनी लडकी ब्याह दी और उसकी सहायतासे अपना राज्य पुन प्राप्त कर लिया।

जस मानिकके बाद छठे राजा लक्ष्मीनारायण (१६६९–९७ ई०) ने जयतीपुरमे एक महल बनवाया, जिसके खडहर आज भी वर्तमान है। उसके उत्तराधिकारी रामसिह (१६९७–१७०८ ई०) और अहोम राजा रुद्रसिंह (१६९६–१७१४ ई०)के बीच युद्ध छिड गया, जिसमे रामसिहको प्राणोमे हाथ धोना पडा। फिर भी जयतिया राज्यकी स्वतत्रता बनी रही। उसने १८२४ ई० मे अपनी स्वतत्रता खो दी जब बर्मियोने हमला करके आसामपर अधिकार कर लिया। दो साल बाद अग्रेजोने बर्मियोको मार भगाया और राजा रामसिहको जयतियाका राज्य लौटा दिया जिसे बर्मियोने अपदस्थ कर दिया था। राम-सिहके भतीजे तथा उत्तराधिकारी राजेन्द्रसिहसे ब्रिटिश भारतीय सरकार बहुत नाराज हो गयी, क्योकि उसकी प्रजाने ब्रिटिश भारतके चार नागरिकोको पकडकर उनकी बलि चढा दी थी। ब्रिटिश भारतीय सरकारके बार-बार कहनेपर भी राजाने इस काडके अभियुक्तोको उसके सुपुर्द नही किया। अतएव १८३५ ई० मे जयतियाके राजाको गद्दीसे उतार दिया गया और उसका राज्य ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमे मिला लिया गया।

जयचद (अथवा जयचन्द्र)–बारहवी शताब्दीके अतिम वर्षोंमे कन्नौज तथा बनारसका शासक। वह अजमेर तथा दिल्लीके राजा पृथ्वीराजका समसामयिक तथा प्रतिद्वन्द्वी था। चद बरदाईके रासो (दे०)के अनुसार पृथ्वीराजने उसकी पुत्री सयोगिताका हरण कर लिया था, अतएव जयचदने क्रुद्ध होकर उससे प्रतिशोध लेनेके लिए शहाबुद्दीन मोहम्मद गोरी (दे०) की सहायता की। गोरीने ११९२ ई० मे तराईनकी दूसरी लडाईमे पृथ्वीराजको हरा दिया और उसे मार डाला। परतु अगले साल गोरीकी मुसलमान फौजोने जयचन्द्रके राज्यपर हमला कर दिया। जयचद आगरा और इटावाके बीच जमनातटपर स्थित चन्दावर (अब फीरोजाबाद) मे गोरीके सिपहसालार कुतुबुद्दीनसे युद्धमे हारकर मारा गया। उसके मरनेपर उसके राजवश-का अत हो गया और कन्नौज मुसलमानी शासनके अतर्गत आ गया।

जयदेव–एक प्रसिद्ध कवि, जो बगालके राजा लक्ष्मण सेन (लगभग ११८०–१२०२ ई०) का समसामयिक था। वह 'गीतगोविन्द'का रचयिता है, जो आज भी अत्यन्त लोकप्रिय भक्तिमय गीतिकाव्य है।

जयध्वज सिह–कामरूप (आसाम) का एक अहोम राजा (१६४८–६३ ई०)। उसके राज्यकालमे मुगल सिपह-सालार मीर जुमला (दे०)ने आसामपर चढाई की। जयध्वजसिहने उसकी फौजको खदेड देनेका भारी प्रयत्न किया, परन्तु सफलता नही मिली। वह राजधानी छोडकर कामरूप भाग गया। १६६२ ई० मे मीर जुमलाने उसकी

राजधानीपर दखल कर लिया। उसे विवश होकर जनवरी १६६३ ई० मे आक्रमणकारियोंसे सधि कर लेनी पडी। इस सधिके द्वारा उसने हर्जानेके रूपमे एक बडी रकम तथा दक्षिणी आसाम मुगल बादशाहको सौंप देना मजूर कर लिया। जयध्वजसिंह अपनी राजधानीमे लौट आया, परन्तु कुछ महीने बाद नवम्बर १६६३ ई० मे उसकी मृत्यु हो गयी।

जयपाल—ओहिन्द (उद्भाण्डपुर) के हिन्दू शाहीवंशका राजा, जिसका राज्य उत्तर प्रदेशके बागडासे लेकर अफगानिस्तानके लगभग तक फैला था। उस समय गजनीकी गद्दीपर उसका समसामयिक अमीर सुबुक्तगीन (९७७–९९७ ई०) था। उसने जब सुना कि सुबुक्तगीन अफगानिस्तानमे उसके राज्यपर हमला कर रहा है तो उसने उसे रोकनेका निश्चय किया और सेना लेकर गजनी और लमगानके बीच गुजुक नामक स्थान तक बढ गया। परन्तु अचानक एक वर्फीला तूफान आ गया और जयपालको अपमानजनक सधि कर लेनी पडी। परन्तु उसने शीघ्र ही इस सधिकी शर्तोंको तोड दिया और सुबुक्तगीनके साथ फिर लडाई छिड गयी। सुबुक्तगीन ९९७ ई०मे मर गया। उसके बाद उसके उत्तराधिकारी सुल्तान महमूदने फिरसे युद्ध शुरू कर दिया और १००१ ई०मे पेशावरके निकट जयपाल उससे बुरी तरह हार गया। जयपाल इतना अभिमानी और देशभक्त था कि इस हारकी ग्लानिके बाद उसने जीवित रहना और राज्य करना पसद न किया। वह जीवित जलती चितामे कूद गया। उसको आशा थी कि उसका उत्तराधिकारी पुत्र आनदपाल देशकी रक्षा अधिक सफलताके साथ कर सकेगा। जयपाल एकमात्र हिन्दू राजा था जिसने उत्तर-पश्चिमसे भारतपर आक्रमण करनेवाले मुसलमानोंके खिलाफ आक्रामक नीति अपनायी और अपनी आहुति देकर आत्मत्यागका अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया।

जयपुर—एक आदर्श नगर तथा राजपूतानाकी भूतपूर्व देशी रियासत। इस नगरकी स्थापना १७२८ ई० में महाराज जयसिंह द्वितीयने की और अब यह राजस्थानकी राजधानी है। यह सुनियोजित ढगसे बसाया गया सुदर नगर है। इसकी मुख्य सडकोंसे नगरको छह समचतुरस्त्र विभागोंमे बाँट रखा है, जिनके किनारे लाल पत्थरके मकान बने है। जयपुर राज्यकी स्थापना ११२८ ई० मे दूरहारायने की थी, जो कछवाहा राजपूत था और ग्वालियरसे आया था। सोलहवी शताब्दीमे उसके शासक राजा बिहारीमलने स्वेच्छासे बादशाह अकबरकी अधीनता स्वीकार कर ली और उसे अपनी लडकी व्याह दी जो बादमे जहाँगीरकी मा बनी। बिहारीमलके उत्तराधिकारियोंमे अकबरके राज्यकालमे राजा मानसिंह (दे०) तथा औरगजेबके शासनकालमे मिर्जा राजा जयसिंह द्वितीयने योग्य सेनापतिके रूपमे विशेष ख्याति प्राप्त की। जयसिंह द्वितीय प्रसिद्ध गणितज्ञ और खगोलवेत्ता भी था। उसने काशी, दिल्ली और जयपुरकी वेधशालाओंका निर्माण कराया। अट्ठारहवी शताब्दीके अतिम दिनोंमे जोधपुर (दे०)की प्रतिद्वन्द्विता तथा अमीर खॉ (दे०)के नेतृत्वमे पेढारियोंके हमलेके कारण राज्यमे काफी अव्यवस्था फैल गयी। इन परिस्थितियोंमे जयपुर राज्यने जयपुरकी सधि द्वारा प्रतिवर्ष निश्चित रकम नजरानेके रूपमे देनेकी शर्तपर अग्रेजोंका सरक्षण प्राप्त कर लिया। ३० मार्च १९४८ ई० को इस राज्यका राजस्थान सघमे विलयन कर दिया गया और महाराज सवाई मानसिंहको राजप्रमुख बना दिया गया।

जयपुरकी संधि—जयपुर राज्य और ब्रिटिश भारतीय सरकारके बीच १८१७ ई० मे गवर्नर-जनरल लार्ड हेस्टिंग्सके शासनकालमे हुई। इस सधिके द्वारा जयपुरने ब्रिटिश आश्रित राज्य होना स्वीकार कर लिया।

जयमल्ल—मेवाडका एक राजपूत वीर। बादशाह अकबरकी सेनाओंने जब चित्तौडको घेर लिया तब राणा उदयसिंह उसको अपने भाग्यपर छोडकर जगलोंमे भाग गया और चित्तौडका दुर्ग जयमल्लको सौंप गया। जयमल्लने वीरतापूर्वक चार महीने (२० दिसम्बर १५६७ ई० से २३ फरवरी १५६८ ई०) तक दुर्गकी रक्षा की। २३ फरवरीको वह खुद बादशाह अकबर द्वारा चलाये गये तोपके गोलेसे मारा गया। जयमल्लके वीरगति प्राप्त करनेके बाद चित्तौडका पतन हो गया।

जयरुद्रमल्ल—नेपालका राजा, जिसे तिरहुतके राजा हरिसिंहने १३४२ ई०मे अपने अधीन कर लिया। वह तथा उसके उत्तराधिकारी पाटन और काठमाडू क्षेत्रोंपर पन्द्रहवी शताब्दीके मध्य तक राज्य करते रहे।

जयसिंह—मेवाडका महाराणा (१६८०–९८ ई०), जिसने अपने पिता राजसिंहकी गद्दी प्राप्त की। उसने औरगजेबकी फौजका मुकाबला किया और १६८१ ई० के अतमे उससे सधि कर ली। इस सधिके द्वारा उसने जजिया (दे०)के बदले मुगल बादशाहको तीन परगने सौंप दिये। आक्रमणकारी मुगल सेना मेवाडसे वापस लौट आयी।

जयसिंह—आमेर (जयपुर)का राजा, जिसने शाहजहॉके शासनकालके अतिम भागमे तथा औरगजेबके शासनकालके प्रारम्भिक भागमे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। जब शाहजहॉ बीमार पडा और उसके बेटोंमे राजगद्दीके लिए

लडाई होने लगी तो जयसिंहको शाहजादा शुजाके खिलाफ भेजा गया। उसने शाहजादेको हरा दिया और बंगालकी सीमाओं तक उसका पीछा किया। शाहजादा दारा जब देवराईकी लडाईमें हार गया तो उसका पीछा करनेके लिए जयसिंहको भेजा गया। उसने दाराका सिंध तक पीछा किया। इसके बाद औरंगजेबने उसे दक्खिन भेजा। वहाँ वह १६६५ से १६६६ ई० तक बीजापुरपर हमले करता रहा, परन्तु उसे ले न सका। उधर शिवाजी (दे०)के विरुद्ध उसे अधिक सफलता मिली। उसने शिवाजीपर चारों ओरसे चढाई बोल दी और उनकी राजधानी पुरन्दरके किलेको घेर लिया। शिवाजीको विवश होकर उसके साथ १६६५ ई०में पुरन्दरकी संधि करनी पडी, जिसके द्वारा उन्होंने मुगल बादशाहसे सुलह कर ली, उन्हें २३ किले सौंप दिये और बादशाहकी सेवा करना स्वीकार कर लिया। उसने शिवाजीको १६६६ ई०में आगरा मुगल दरबारमें जानेके लिए राजी कर लिया। बीजापुरका किला जीतनेमें उसकी असफलतासे औरंगजेब उससे नाखुश हो गया और उसे दक्खिनसे वापस बुला लिया गया। १६६७ ई० में दिल्ली लौटते हुए रास्तेमें उसकी मृत्यु हो गयी।

जयसिंह सवाई–आमेरका राजा। यह बडा ही वीर और कूटनीतिज्ञ था। औरंगजेबकी मृत्युके बाद जब मुगल साम्राज्यमें अव्यवस्था फैल रही थी, उसका नाम चमक उठा। उसने बहादुरशाह प्रथमके विरुद्ध बगावतका झंडा बुलंद कर दिया, पर बादशाहने उसे क्षमा कर दिया। वह मालवामें और बादमें आगरामें बादशाहका प्रतिनिधि नियुक्त हुआ। पेशवा बाजीराव प्रथमके साथ उसके मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे। मुगल साम्राज्यके खंडहरोंपर हिन्दू पद पादशाहीकी स्थापना करनेके पेशवा-लक्ष्यसे उसे सहानुभूति थी। परन्तु आमेरपर ४४ वर्ष राज्य करनेके बाद १७४३ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। इसीके राज्यकालमें गुलाबी नगर जयपुरके रूपमें नयी राजधानीकी रचना हुई।

जयसिंह सूरी–एक संस्कृत नाटककार, जो तेरहवीं शताब्दी ई० के प्रारम्भमें हुआ। उसने १२१९ और १२२९ ई० के बीच 'हम्मीरमदमर्दन' नाटक लिखा।

जयस्तम्भ, राणा कुम्भका–इसे कीर्तिस्तम्भ भी कहते हैं। इसकी स्थापना पन्द्रहवीं शताब्दीके लगभग मध्यमें चित्तौडके राणा कुंभ (१४३१–६९ ई०)ने मालवा अथवा गुजरातके मुसलमान शासकके ऊपर अपनी विजयके उपलक्ष्यमें की।

जयस्थित मल्ल–तिरहुतके राजाका एक सम्बन्धी था। उसने नेपालके राजाकी लडकीसे विवाह किया और १३७६ ई० में नेपालकी गद्दी छीन ली। उसने समस्त नेपालमें अपना राज्य स्थापित किया। उसने एक नये राजवंशकी स्थापना की जिसने १४७६ ई० तक अविभाजित नेपालपर राज्य किया।

जयाजीराव शिन्दे (१८४३–८६ ई०)–जब नाबालिग था तभी शिन्दे राजवंशका मुखिया हो गया। उसकी नाबालिगीकी अवस्थामें उसका संरक्षक नियुक्त करनेके प्रश्नपर षड्यन्त्र रचे जाने लगे। इसके फलस्वरूप लार्ड एलेनबरो (दे०)की सरकारने उसके राज्यपर चढाई करनेके लिए एक फौज भेज दी। महाराजपुर तथा पनियारकी लडाइयोंमें शिन्देकी फौज हारी और शिन्देका दर्जा घटकर एक आश्रित राजाका हो गया। गदरके समय जयाजीराव अंग्रेजोंका वफादार बना रहा, हालांकि उसकी सेनाने विप्लवियोंका साथ दिया। पुरस्कारस्वरूप जयाजीको ग्वालियर लौटा दिया गया जिसपर अंग्रेजोंने १८५८ ई० में विप्लवी सेनासे युद्धके समय अधिकार कर लिया था। (देखिये, 'ग्वालियर')

जयापीड विनयादित्य–कश्मीरके प्रसिद्ध राजा ललितादित्य (७२४–७६० ई०)का पौत्र जो उसके बाद गद्दीपर बैठा। उसने गौड और कन्नौजके राजाओंको हरा दिया। वह विद्वानोंका आश्रयदाता था और क्षीरस्वामी (दे०) जैसे विद्वान् उसके आश्रयमें रहते थे।

जलंधर–पंजाबमें व्यास और सतलज नदियोंके बीचका दोआब। यह महाराज रणजीतसिंहके राज्यके अंतर्गत था, परन्तु प्रथम आंग्ल-सिख युद्धकी समाप्तिपर लाहौरकी संधि (९ मार्च १८४६ ई०)के द्वारा अंग्रेजोंको सौंप दिया गया और ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें शामिल कर लिया गया।

जलालखां लोदी–सुलतान इब्राहीम लोदी (१५१७–२६ ई०) का भाई। १५१७ ई०में उसे जौनपुरका शासक बना दिया गया। परन्तु सल्तनतका यह बटवारा कई लोगोंको स्वीकार नहीं हुआ और जलाल खाँने शीघ्र दिल्लीकी सल्तनतके खिलाफ बगावतका झंडा बुलंद कर दिया। सुल्तानने जब उसके खिलाफ फौजें भेजीं तो वह ग्वालियर भागा, जहाँके राजपूत राजा विक्रमाजीतने उसे शरण प्रदान की। इससे सुल्तान इब्राहीम भडक उठा और उसने ग्वालियरपर हमला कर दिया और राजा विक्रमाजीतको आत्मसमर्पण करनेके लिए विवश कर दिया। युद्धमें जलाल खाँ मारा गया।

जलाल खां लोहानी–बिहारका अफगान सुल्तान। शेरशाह १५२७ ई० में उसकी नौकरी करने लगा। १५३३ ई० में

नूरजगढ़की लड़ाईमें शेरशाहने उसे हरा दिया और उसके राज्यको दखल कर लिया।

जलाल खाँ सूर–शेरशाह (दे०) का पुत्र और उत्तराधिकारी। दिल्लीकी गद्दीपर बैठनेपर उसने सुल्तान इस्लामशाह (दे०) की उपाधि धारण की। उसने नौ वर्ष (१५४५–५४ ई०) तक शासन किया।

जलालुद्दीन–सुल्ताना रजिया (१२३६–४० ई०) (दे०) की उपाधि थी।

जलालुद्दीन खिलजी–दिल्लीका सुल्तान (१२९०–९६ ई०) एवं खिलजी राजवंशका संस्थापक। उसका मूल नाम फीरोजशाह खिलजी था। दिल्लीके सरदारोंने १२९० ई० में सुल्तान कैकोबादकी हत्या करनेके बाद उसे सुल्तान बनाया, तब उसने अपना नाम जलालुद्दीन रखा। जिस समय वह गद्दीपर बैठा सत्तर वर्षका बूढ़ा था और स्वभावका इतना नरम कि साहसपूर्ण कार्योंके लिए अक्षम था। उसने एक ही सफलता प्राप्त की। उसने १२९२ ई० में मंगोलोंका एक बड़ा हमला विफल कर दिया। परन्तु उसने बहुत बड़ी संख्यामें मंगोल भगोड़ोंको मुसलमान बन जाने और दिल्लीके पास बस जानेकी इजाजत देकर नयी समस्या खड़ी कर ली। बूढ़े सुल्तानके दो बेटे थे, परन्तु प्रियपात्र भतीजा और दामाद अलाउद्दीन (दे०) था। उसीने विश्वासघात करके १२९६ ई० में उसकी हत्या कर दी और दिल्लीकी गद्दीपर उसका उत्तराधिकारी बन गया।

जलालुद्दीन मंगबरनी–खीवाका सुल्तान। चंगेज खाँ (दे०) की फौजोंने जब उसके राज्यपर हमला किया, वह भागा और १२२१ ई० में दिल्लीके दरबारकी शरण पानेकी कोशिश की। परन्तु सुल्तान इल्तुतमिशने उसे शरण देनेसे इनकार कर दिया। तब वह सिंध और उत्तरी गुजरातको लूटता हुआ फारस भाग गया।

जलालुद्दीन रूमी–एक ईरानी सूफी रहस्यवादी तथा कवि। उसके विचारोंसे बादशाह अकबर और उसका प्रमुख दरबारी अबुल फजल, इतिहासकार (दे०) बहुत अधिक प्रभावित हुआ था।

जसवंतराव होलकर–तुकोजीराव होलकरका पुत्र तथा उत्तराधिकारी। उसने होलकर राज्यपर १७९८ से १८११ ई० तक शासन किया। (देखिये, होल्कर)।

जसवंत सिंह–मारवाड़का राजा; जोधपुर उसकी राजधानी थी। वह बादशाह शाहजहाँकी सेनामें कई ऊँचे पदोंपर रहा। जब शाहजहाँ बीमार पड़ा और उसके बेटोंमें गद्दी पानेके लिए लड़ाई छिड़ गयी तो जसवंतसिंह राजधानीमें था। उसे औरंगजेबके खिलाफ भेजा गया और यह जिम्मेदारी सौंपी गयी कि औरंगजेबको दक्खिनसे उत्तर भाग न आने दे। परन्तु जसवंतसिंह उज्जैनके निकट धर्मट (दे०) की लड़ाईमें १६५८ ई० में उससे हार गया। बादमें वह बादशाह औरंगजेबकी सेवामें रहा और राजा जयसिंह (दे०) की मृत्युके बाद मुगलोंकी सेवामें सबसे प्रमुख राजपूत सरदार माना गया। उसे शाहजादा मुअज्जम (दे०) के साथ शिवाजीसे लड़नेके लिए भेजा गया, परन्तु कोई सफलता नहीं मिली। अतएव उसे खैबरके दर्रेके मुहानेपर स्थित जमरूदके किलेका फौजदार बनाकर भेजा गया। वहीं १६७८ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। औरंगजेबको उसकी मृत्युसे काफी राहत मिली। उसने उसके राज्यको जब्त कर लेने तथा उसकी मृत्युके बाद पैदा हुए उसके लड़के अजितसिंहको मुसलमान बनानेकी योजना बनायी। परन्तु यह योजना सफल नहीं हो सकी और इसके फलस्वरूप राजपूतानेमें लम्बी लड़ाई चली, जिसने मुगल साम्राज्यको कमजोर बना दिया।

जहाँगीर बादशाह–बादशाह अकबर (दे०) का सबसे बड़ा लड़का। १६०५ ई० में उसकी मृत्यु होनेपर उत्तराधिकारी हुआ और १६२७ ई० में मृत्यु होनेतक राज्य करता रहा। बाल्यावस्थामें उसका नाम सलीम था। उसने १६०१ से १६०४ ई० तक पिताके खिलाफ बगावत की, परंतु उसे क्षमा कर दिया गया। वह १५६९ ई० में पैदा हुआ था। उसकी मा राजपूत थी। उसने अपने शासनकालके प्रारम्भमें मुसलमान धर्मको बढ़ानेकी कोशिश की। परंतु अपने पिताकी भाँति, वह भी उदार तथा सहिष्णु था और उसने वही शासन-प्रणाली जारी रखी। शासनके प्रारम्भमें उसे अपने सबसे बड़े बेटे खुसरोकी बगावतका सामना करना पड़ा। अकबरके शासनकालके अंतिम दिनोंमें कुछ लोगोंने खुसरोको गद्दीपर बैठानेका प्रयत्न किया था। जहाँगीरने बड़ी फुर्ती दिखायी और बागी शाहजादेका पंजाब तक पीछा किया। वहाँ वह लड़ाईमें हारा, बंदी बना लिया गया और वापस राजधानी ले आया गया। उसे कैदखानेमें डाल दिया गया, जहाँ १६२२ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी।

बादशाह जहाँगीर कोई कुशल सेनानायक नहीं था, फिर भी उसने अपने पितासे जो विशाल साम्राज्य पाया था उसमें उसने वृद्धि की। उसने १६१६ ई० में अहमदनगर तथा १६२० ई० में काँगड़ा जीत लिया। उसने १६१२ ई० में अफगानोंको भी पूरी तरह वशमें कर लिया, जिन्होंने उसमान खाके नेतृत्वमें बंगालमें अपनी स्वतंत्रता बनाये रखी थी। उसने १६१४ ई० में मेवाड़के राणा अमरसिंहने

भी हार मनवा ली। परतु फारसके शाहने १६२२ ई० मे कदहार उससे छीन लिया। उसके दरवारमे १६०८–११ ई० तक कैप्टेन हाकिन्स (दे०) और फिर १६१५–१८ ई० तक सर थामस रो रहे। अपने पिताकी भाति उसने भी मुगल साम्राज्यका शक्तिशाली जगी वेडा तैयार करनेकी कोई आवश्यकता नही अनुभव की। पुर्तगालियोसे होनेवाली नौसैनिक लडाइयोमे वह उनके दूसरे फिरगी प्रतिद्वन्द्वियोकी नौसैनिक सहायतापर निर्भर रहता था। इस समय वहुत-से फिरगी भारतमे पहुँच चुके थे और वाणिज्य सम्वधी सुविधाएँ प्राप्त करनेका प्रयत्न कर रहे थे।

उसके शासनकालकी सवसे मुख्य घटना १६११ ई० मे शेर अफगन (दे०)की विधवा, नूरजहाँ (दे०)से उसकी शादी है। इस शादीके वाद उसने क्रमिक रीतिमे शासनका अधिकाधिक कार्य नूरजहाँपर छोड दिया और उसका नाम सिक्कोपर भी ढाला जाने लगा। उसके तीसरे लडके शाहजादा खुर्रम (शाहजहाँ)ने १६२२ ई० मे उसके खिलाफ वगावत कर दी, परतु उसके सिपहसालार महावत खा (दे०)ने १६२५ ई० मे उसे वशमे कर लिया। अगले साल खुद महावत खा वगावतपर उतर आया और कुछ समय तक जहाँगीरको भी कैद कर लेनेमे सफल हो गया, परतु मलका नूरजहाँके युक्ति-कौशलसे उसे छुडा लिया गया और महावत खाँको फिरसे वशमे कर लिया गया। उसका दूसरा लडका परवेज १६२६ ई० मे मर गया और एक साल वाद वादशाह जहाँगीरका भी देहावसान हो गया।

जहाँगीर चित्रकलाका प्रेमी था और उसने अपने समयके दो महान् मुसलमान चित्रकारो, अवुल हसन और मसूरको सरक्षण प्रदान किया। वह वडा न्यायप्रिय था और अपनी प्रजाके साथ न्याय करनेकी भावनासे उसने गद्दीपर वैठनेके वाद ही राजधानीमे अपने महलके फाटकपर एक घटा लटकवा दिया था, जिसके साथ एक डोरी वधी थी। न्याय चाहनेवाला कोई भी व्यक्ति इस डोरीसे घटा वजा सकता था। उसकी धार्मिक प्रवृत्तियोकी व्याख्या करना सरल नही है। निश्चय ही सार्वजनिक रूपसे वह पक्का मुसलमान था, परतु अनेक वर्षो तक वह ईसाई पादरियोका इतना अधिक सत्सग करता रहा जिससे यह आशा होने लगी कि वे उसे ईसाई वनानेमे सफल हो जायेगे। परतु उसने उन्हे निराश किया। वह अपने पिताकी धार्मिक सहिष्णुताकी नीतिसे हटा नही।

जहांदारशाह–वादशाह वहादुरशाह (दे०) का सवसे वडा पुत्र था और १७१२ ई० मे उसका उत्तराधिकारी हुआ। परन्तु वह वहुत थोडे समय (१७१२–१३ ई०) राज्य कर सका। उसके भतीजे फर्रुखसियर (दे०)ने १७१३ ई० मे उसे हरा दिया और मार डाला।

जहांनारा बेगम–वादशाह शाहजहाँकी दो पुत्रियोमे वडी। वडी सुसस्कृत और तेजस्वी महिला थी। १६४४ ई० मे वह अचानक वुरी तरह जल गयी। उसके घावोको डा० वागटनने नही अच्छा किया, जैसा कि आमतौरसे ख्याल किया जाता है, वल्कि आरिफ नामक गुलामके द्वारा तैयार की गयी दवाने अच्छा किया। पिताकी गद्दी पानेके लिए उसके भाइयोमे जो युद्ध हुआ उसमे उसने दारा (दे०)का समर्थन किया और औरगजेब (दे०) के गद्दीपर वैठनेपर जेलमे कैद अपने पिताकी सेवामे अपने दिन विताये। वह कुमारी ही मरी और उसे निजामुद्दीन औलियाकी ममजिदके अहातेमे एक सादी कव्रमे दफनाया गया। वह शायरा थी और उसकी कव्रपर जो फारसी शेर अकित है, वह उसीका लिखा हुआ है।

जहाजपुरका किला–मेवाडसे वूदीको जानेवाले सकीर्ण गिरिपथकी रक्षा करता है। कहा जाता है कि अशोकके पौत्र सम्प्रतिने इसे वनवाया। अनुश्रुतियोके अनुसार उसे अपने पितामहके साम्राज्यका पश्चिमी भाग उत्तराधिकारमे मिला था।

जहाज महल–जहाजके आकारका यह महल मालवाके खिलजी वादशाहोकी राजधानी माडूमे वास्तुकलाकी एक उल्लेखनीय कृति थी। यह दो झीलोके वीचमे स्थित है। अपने महरावदार वडे-वडे कमरो, छतोपर वने चोटीदार मडपो तथा सुदर जलाशयोके कारण यह माडूका सवसे दर्शनीय स्थल है। सम्भवत इसे सुल्तान महमूद खिलजी (१४३६–१४६९) ने वनवाया था।

जहान खाँ–एक योग्य अफगान सेनापति। अहमदशाह अव्दालीने १७५७ ई० मे अपने लडके तैमूरशाहको अपना प्रतिनिधि वनाकर लाहोरमे रख दिया और जहान खाँको उसका वजीर वना दिया। जहान खाँ पजावमे शाति वनाये नही रख सका और मराठोने तैमूर शाहको अपदस्थ करके १७५८ ई० मे पजावपर अधिकार कर लिया।

जहानशाह–वादशाह वहादुरशाह प्रथम (१७०७–१२ ई०) का चौथा वेटा। १७१२ ई० मे वादशाहकी मृत्यु होनेपर गद्दी पानेके लिए उसके चारो वेटोमे जो लडाई हुई उसमे इसने भी हिस्सा लिया और मारा गया।

जहानसोज–का अर्थ है दुनियाको जला देनेवाला। यह पदवी गोरके अलाउद्दीन हुसेनको प्रदान की गयी थी। ११५१ ई० मे उसने गोरको सर किया और नगरमे आग

लगा दी। यह आग, सात दिन और सात रात जलती रही। उसने सुल्तान महमूद (दे०) के मकबरेको छोडकर सारे शहरको भस्म कर दिया।

जाकेमान्ट, विक्टर—एक फ्रेंच वनस्पतिशास्त्री, जो लगभग १८३० ई० मे पंजावमे रणजीतसिंहके दरबारमें आया। उसने 'भारतसे पत्र' नामक पुस्तकमें 'शेरे-पंजाब'के सम्बन्धमे अपने विचार लिखे है। वह रणजीतसिंहकी जिज्ञासु वृत्तिसे बहुत प्रभावित हुआ था और उसे 'एक असाधारण व्यक्ति' मानता था। उसके लिखे ग्रंथोंमें हिमालय क्षेत्रके पेड़-पौधो तथा उस कालके भारतकी सामाजिक अवस्थाके बारेमे महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है।

जागीर प्रथा—दिल्लीके प्रारम्भिक सुल्तानोंने शुरू की। इस प्रथाके अतर्गत सरदारोंको नकद वेतन न देकर जागीरें प्रदान कर दी जाती थीं। उन्हे इन जागीरोका प्रबंध करने तथा मालगुजारी वसूल करनेका हक दे दिया जाता था। यह सामतशाही शासन-प्रणाली थी और इसमे केन्द्रीय सरकार कमजोर हो जाती थी। इसलिए सुल्तान गयासुद्दीन बलबन (दे०)ने इसपर रोक लगा दी और सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीने इसे समाप्त कर दिया। परतु सुल्तान फीरोजशाह तुगलक (दे०)ने इसे फिरसे शुरू कर दिया और बादके कालमें भी यह चलती रही। शेरशाह और अकबर दोनो इस प्रथाके विरोधी थे। वे इसको समाप्त कर उसके स्थानपर सरदारोको नकद वेतन देनेकी प्रथा शुरू करना चाहते थे। परन्तु बादके मुगल बादशाहोंने यह प्रथा फिर शुरू कर दी। उनको कमजोर बनाने और उनके पतनमें इस प्रथाका भी हाथ रहा है।

जाजऊकी लडाई—१७०७ ई० मे शाहजादा मुअज्जम (बादमे बहादुर शाह प्रथम) और उसके छोटे भाई शाहजादा आजमके बीच हुई। इस लडाईमें आजम हार गया और मारा गया। इस प्रकार उसके बडे भाईको गद्दीका उत्तराधिकारी होनेका रास्ता साफ हो गया।

जाजनगर—मुसलमानोंने उडीसाका उल्लेख इसी नामसे किया है।

जाट—ये लोग बडे हृष्ट-पुष्ट होते है और आगरा, मथुरा, मेरठके आसपास अधिकतर रहते है। कुछ नृवशशास्त्री राजपूतोकी तरह इनकी उत्पत्ति भी विदेशी जातियोंसे मानते हैं। राजपूतोंकी तरह जाटोका अठारहवीं शताब्दीमे पूर्व कोई राज्य नही रहा। परतु वे बडे स्वातत्र्यप्रिय होते है, अत औरंगजेबकी हिन्दू-विरोधी नीतिसे अत्यत क्षुब्ध हो गये। १६८१ ई० मे उन्होंने बगावत कर दी, अकबरके मकबरेको लूट लिया, उसकी कब्र खोदकर हड्डिया निकालकर जला दी और मुगल साम्राज्यके लिए अच्छी खासी आफत पैदा कर दी। बादमे उन्हे चूडामन सिंहके रूपमें एक नेता मिल गया। उसने थूनमें किला बनवाया। वह एक स्वतन्त्र राज्यकी स्थापना करनेका स्वप्न देखता था, परतु १७२१ ई० मे उसे वशमें कर लिया गया। चूडामनके भतीजे बदनसिंहने जाटोको सगठित किया और उनका एक राज्य स्थापित कर दिया। १७५६ ई० मे उसकी मृत्यु हो जानेपर उसके उत्तराधिकारी सूरजमलके राज्यकालमें यह राज्य भरतपुरके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसके अतर्गत आगरा, धौलपुर, मैनपुरी, हाथरस, अलीगढ, इटावा, मेरठ, रोहतक, फर्रुखनगर, मेवात, रेवाडी, गुडगाव तथा मथुरा जिले थे। सूरजमल (१७५६-६३ ई०) के समयमें जाट इतने शक्तिशाली हो गये थे कि मराठोंने अहमदशाह अब्दालीसे लडनेके लिए उनकी सहायता मांगी। परतु मराठा सेनापति सदाशिव राव भाऊ(दे०)के घमडपूर्ण व्यवहारने जाटोको इतना नाराज कर दिया कि उन्होंने पानीपत (दे०)की तीसरी लडाईमें कोई भाग नही लिया। परतु, जाटोंको वास्तविक खतरेका सामना पूर्वकी दिशासे करना पडा। फिलहाल, ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यने लार्ड वेलेजली (दे०)के प्रशासनकालमे भरतपुरका किला ले लेनेकी कोशिश की, परतु सफलता नहीं मिली (१८०५ ई०)। परतु जाट थोडे ही समय चैनसे बैठ पाये। १८२६ ई० मे अग्रेजोंने भरतपुरका किला जीत लिया और जाटोंके स्वतन्त्र राज्यका अंत हो गया।

जातक कथा—इनमें बुद्धके पूर्वजन्मकी कथाएं मिलती हैं, जो पाली भाषामें है। जातक कथाओंके द्वारा हमें गौतम बुद्ध-कालके भारतकी सामाजिक और राजनीतिक दशाका रोचक विवरण मिलता है। इनकी रचना तीसरी शताब्दी ई० पू० से पहले हुई होगी, क्योंकि भरहुत और साचीके स्तूपोंपर, जो ई० पू० तीसरी शताब्दीके है, कई जातक कथाए अकित मिलती है। इन कथाओंके लेखक अथवा लेखकोंका नाम ज्ञात नही है, परतु इन्होने बौद्ध धर्म, साहित्य और कलाको बहुत अधिक प्रभावित किया है।

जाति व्यवस्था—हिन्दुओंके सामाजिक जीवनकी विशिष्ट व्यवस्था, जो उनके आचरण, नैतिकता और विचारोंको सर्वाधिक प्रभावित करती है। यह व्यवस्था कितनी पुरानी है, इसका उत्तर देना कठिन है। सनातनी हिन्दू इसे दैवी या ईश्वर-प्रेरित व्यवस्था मानते है और ऋग्वेदमे इसका सम्बन्ध जोडते है। लेकिन आधुनिक विद्वान इसे मानवकृत व्यवस्था मानते है जो किसी एक व्यक्ति द्वारा कदापि नहीं बनायी गयी वरन् विभिन्न कालकी परिस्थितियोंके अनुसार

विकसित हुई। यद्यपि प्राचीन धार्मिक ग्रंथोमे मनुष्यो-को चार वर्णोमे विभाजित किया गया है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तथा प्रत्येक वर्णका अपना विशिष्ट धर्म निरूपित किया गया है तथा अन्तर्जातीय भोज अथवा अन्तर्जातीय विवाहका निषेध किया गया है, तथापि वास्तविकता यह है कि हिन्दू हजारो जातियो और उप-जातियोमे विभाजित है और अन्तर्जातीय भोज तथा अन्तर्जातीय विवाहके प्रतिबन्ध विभिन्न समयमे तथा भारत-के विभिन्न भागोमे भिन्न-भिन्न रहे हैं। आजकल अतर्जातीय भोज सम्बन्धी प्रतिबध विशेषकर शहरोमे प्राय समाप्त हो गये है और अतर्जातीय विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्ध भी शिथिल पड गये है। फिर भी जाति व्यवस्था पढे-लिखे भारतीयोमे भी प्रचलित है और अब भी इस व्यवस्थाके कारण हिन्दुओको अन्य धर्मावलम्बियोसे सहज ही अलग किया जा सकता है।

ऐतिहासिक दृष्टिसे जाति व्यवस्था आरम्भिक वैदिक कालमे भी विद्यमान थी, यद्यपि उस समय उसका रूप अस्पष्ट था। उत्तर वैदिक युग और सूत्रकालमे यह पुश्तैनी बन गयी और विभिन्न पेशे विभिन्न जातियोका प्रतिनिधित्व करने लगे। वेदपाठी, कर्मकाडी और पुरोहिती करनेवाले 'ब्राह्मण' कहलाये। देशका शासन करनेवाले तथा युद्ध-कलामे निपुण व्यक्ति 'क्षत्रिय' कहलाये और सर्वसाधारण, जिनका मुख्य धधा व्यवसाय और वाणिज्य था, 'वैश्य' कहलाये। शेष लोग, जिनका धन्धा सेवा करना था, 'शूद्र' नाममे पुकारे जाने लगे। ऐतिहासिक कालमे मौर्य शूद्र माने जाते थे। मेगस्थनीजने, जो चन्द्रगुप्त मौर्यके समयमे भारत आया था, लोगोको सात जातियोमे विभाजित किया है जो पुश्तैनी जातिया होनेके बजाय वास्तवमे पेशोके आधारपर वर्गीकृत जातिया थी। उसने लिखा है, दार्शनिकोको छोडकर, जो समाजके शीर्षस्थ स्थानपर थे, अन्य लोगोके लिए अतर्जातीय विवाह अथवा पुश्तैनी पेशा बदलना वर्जित था। उसके बादके कालमे जो विदेशी विजेताओके रूपमे अथवा आप्रवासियोके रूपमे भारत आये, उन सबको हिन्दू धर्ममे अगीकार कर लिया गया और उनके धधोके अनुसार उन्हे विभिन्न जातियोमे स्थान मिल गया। युद्ध करनेवाले लोगोको क्षत्रिय जातिमे स्थान मिला और वे 'राजपूत' कहलाये। इसी प्रकार गोड आदि आदिवासियोको भी, जिन्होने राजनीतिक दृष्टिसे महत्त्व प्राप्त कर लिया था, क्षत्रियोके रूपमे मान्यता प्राप्त हो गयी। मुसलमानोके आक्रमण एव देशको विजय कर लेनेके समय तक भारतीय समाजमे जाति व्यवस्था एक गतिशील सस्था थी। मुसलमानोके आनेके बाद जाति बन्धन और कडे पड गये। लडाईके मैदानमे मुसलमानोका मुकाबला करनेमे असमर्थ होनेपर हिन्दुओने अपनी रक्षा निष्क्रिय रूपसे जातीय प्रतिबन्धोकी कडाईमे और वृद्धि करते हुए की। इस रीतिसे भारतमे मुसलमानो-के अनेक शताब्दियोके शासनकालमे हिन्दू तथा हिन्दू धर्म-को जीवित रखा गया। आधुनिक कालमे जाति प्रथाकी कडाई हिन्दुओमे आधुनिक ज्ञान और विचारोके प्रसारके फलस्वरूप काफी शिथिल पड गयी है। भारतीय गणतत्रकी नीति धीरे-धीरे जातीय भेदभाव और प्रतिबन्धोको समाप्त करनेकी है। (**हिस्ट्री आफ कास्ट इन इडिया', ई० सेनार्ट, 'कास्ट इन इडिया', जे० एच० हट्टन, 'कास्ट इन इडिया', १९४६)**

जाफर खा—देखिये, 'मुर्शिदकुली खा'।

जाब चारनाक—ईस्ट इडिया कम्पनीकी हुगली नदीके किनारे स्थित कोठीका मुखिया। शायस्ता खाके बाद नवाब इब्राहीम खा जब बगालका सूबेदार बना तो उसके निमत्रण पर जाब चारनाकने वह स्थान चुना जहाँ २४ अगस्त १६९० ई० को कलकत्ता नगरकी नीव पडी। अगले वर्ष उसको नवाबका फरमान मिला कि तीन हजार रु० सालाना रकम देनेपर अग्रेजोके मालपर चुगी माफ कर दी जायगी। इस प्रकार जाब चारनाकने बगालमे कलकत्ता महानगरी और भारतमे ईस्ट इडिया कम्पनीके राज्यका शिलान्यास किया। (**सी० आर० विल्सन कृत 'ओल्ड फोर्ट विलियम इन बगाल', दो खण्ड)**

जामा मसजिद—मुसलमानो द्वारा सामूहिक रूपमे नमाज पढनेके लिए बडी-बडी मसजिदोका निर्माण करना मुगल वास्तुकलाकी विशेषता रही है। जामा मसजिदे कई है। साभलकी जामा मसजिद बाबरने १५२६ ई० मे बनवायी। फतहपुर सीकरीकी जामा मसजिद अकबरने तथा दिल्लीकी शाहजहाने बनवायी। शाहजहाने आगरामे भी दूसरी जामा मसजिद बनवायी। बीजापुरकी जामा मसजिद १५६५ ई० मे सुल्तान अली आदिलशाह प्रथम (दे०) ने तथा बुरहानपुरकी जामा मसजिद १५८८ ई० मे खानदेशके फारूकी वशके बादशाह अली खाने बनवायी। दिल्लीकी जामा मसजिद इन सब मसजिदोसे बडी और आलीशान है। इसे बनानेमे चौदह साल (१६४४–५८ ई०) लगे और यह मुगल राजधानीके केन्द्रमे स्थित थी।

जालिम—इस विशेषणका प्रयोग बहमनी सुलतान हुमायू (दे०) (१४५७–६१ ई०) (दे०) के लिए किया जाता था।

जालिम सिंह—राजपूतानाके कोटा राज्यका राजपूत शासक। इसने १८१७ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनीके साथ सुरक्षा और स्थायी मैत्रीकी आश्रित संधि कर ली जिसके परिणाम-स्वरूप वह मराठोंके आक्रमणसे अपने राज्य तथा परिवार-की रक्षा करनेमें सफल हो गया। शीघ्र ही राजपूतानाके दूसरे शासकोंने भी उसका अनुसरण किया।

जालौक—राजतरंगिणी (दे०) के अनुसार अशोकका पुत्र, उत्तराधिकारके रूपमें कश्मीरका राज्य उसे मिला। कहा जाता है कि वह और उसकी रानी ईशानदेवी शिवके उपासक थे, उसने बहुतसे म्लेच्छोंको कश्मीरसे बाहर निकाल दिया। अशोकके किसी शिलालेखमें उसका उल्लेख नहीं है। उसका भी कोई शिलालेख नहीं मिलता। राज-तरंगिणीमें उसका जो विवरण मिलता है, उससे मालूम होता है कि स्वयं सम्राट् अशोकके परिवारके सभी सदस्य बौद्ध धर्मके अनुयायी नहीं थे।

जावली—सत्रहवीं शताब्दीके मध्यमें महाराष्ट्रका एक छोटा-सा राज्य। उसके राजा चन्द्ररावने शिवाजीके द्वारा स्वराज्यकी स्थापनाके प्रयत्नोंमें योग देनेसे इन्कार कर दिया। इसपर शिवाजीके एक सहायकने उसका वध कर दिया। १६५५ ई०में यह राज्य शिवाजीके नियंत्रणमें आ गया।

जावा—मलय द्वीपपुंजका एक द्वीप। भारतसे इसका बहुत प्राचीन कालसे सम्पर्क रहा है। इसका उल्लेख यव-द्वीपके रूपमें रामायणमें मिलता है। ऐतिहासिक कालमें हिन्दुओंने भारतसे वहाँ जाकर बस्तियाँ बसायीं। आठवींसे ग्यारहवीं शताब्दी ई० तक यह द्वीप शैलेन्द्र साम्राज्यका भाग रहा। उसका पतन होनेपर वहाँ दूसरा हिन्दू राज्य स्थापित हुआ जिसकी राजधानी मजपाहित थी। जावामें बहुत-से हिन्दू तथा बौद्ध मंदिर मिलते हैं, जिनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बोरोबदूर (दे०) में है। मजपाहितके हिन्दू राज्यका पन्द्रहवीं शताब्दी ई० में अंत हो गया। वहाँके हिन्दू राजाको मुसलमान बना लिया गया तथा द्वीपपर मुसल-मानोंका अधिकार हो गया। इस प्रकार कुछ कालके लिए जावासे भारतका सम्बन्ध टूट गया। सत्रहवीं शताब्दीमें फिरंगियोंकी व्यापारिक कम्पनियोंके आगमनसे यह सम्बन्ध फिर स्थापित हो गया। ईस्ट इंडिया कम्पनीने भारत और जावा दोनोंमें व्यापार चलानेकी कोशिश की। परन्तु जावामें अंग्रेजोंका स्थान धीरे-धीरे डच लोगोंने ले लिया। विशेषरूपसे १६२३ ई० में अम्बोयनाके हत्या-कांडके बाद द्वीपपर डच लोगोंका प्रभुत्व हो गया और भारतसे उसका सम्बन्ध फिर टूट गया। परन्तु नेपोलियन-युद्धके समय १८११ ई० में भारतके गवर्नर-जनरल लार्ड मिण्टोने जावामें डच लोगोंपर चढ़ाई कर दी और द्वीपपर अधिकार कर लिया। परन्तु १८१५ ई० में वियना सम्मेलनके फलस्वरूप यह द्वीप डच लोगोंको लौटा दिया गया और अभी हाल तक उनके अधिकारमें ही रहा। द्वितीय महायुद्धके बाद डच लोगोंको वहाँसे हटना पड़ा और स्वतंत्र भारतीय गणराज्यके नैतिक तथा राजनीतिक समर्थनसे जावा तथा उसके पड़ोसके द्वीपोंको मिलाकर इंडोनेशियाके स्वतंत्र राज्यकी स्थापना कर दी गयी।

जाविद खाँ—एक खोजा, जो बादशाह अहमदशाह (१७४८—५४ ई०)के राज्यकालमें दिल्लीके दरबारियोंके दलका नेता बन गया। उसकी वजहसे वजीर सफ़दरजंग (दे०) की सत्ताको खतरा पैदा हो गया और वजीरकी साजिशसे उसकी हत्या कर दी गयी।

जिंजी—कर्नाटकका एक मजबूत किला, जो गोलकुण्डाके सुल्तानके राज्य क्षेत्रके अन्तर्गत था। १६७७ ई० में मराठा छत्रपति शिवाजीने इसपर अधिकार कर लिया। १६८० ई० में शिवाजीके देहावसानके समय यह किला तथा आसपास-का क्षेत्र उनके साम्राज्यके अन्तर्गत था। १६८६ ई० में शिवाजीके बड़े पुत्र शम्भूजीको जब औरंगजेबने कैद कर लिया और मरवा दिया, तब उनका दूसरा पुत्र राजाराम गद्दीपर बैठा। वह मुगलोंके डरसे राजधानी रामगढ़को छोड़कर जिंजी भाग गया और रामगढ़पर मुगलोंका अधि-कार हो गया। इसके बाद जिंजी पूर्वीतटपर मराठोंके स्वातंत्र्ययुद्धका प्रमुख केन्द्र बन गया। तीन पहाड़ियोंकी किलेबंदीको मजबूत दीवालसे जोड़कर ३ मीलकी परिधिमें जिंजीका शक्तिशाली किला बना हुआ था। औरंगजेबने सोचा कि राजारामको पराजित करनेके लिए जिंजीके किलेपर अधिकार करना जरूरी है। अतएव १६९० ई० में विशाल मुगल सेनाने जिंजीके किलेको घेर लिया। लेकिन इसकी किलेबंदी इतनी मजबूत थी कि मुगल फौजें इसपर अधिकार न कर सकीं और उन्हें बार-बार पीछे खदेड़ दिया गया। लगभग ८ वर्षके घेरेके बाद ही जिंजी किलेपर १६९८ ई० में औरंगजेबका अधिकार हो सका। लेकिन राजाराम सकुशल किलेसे बाहर निकल गया, अतएव जिंजीपर मुगल फौजोंका अधिकार बेकार साबित हुआ।

बादमें इस किलेपर फ्रांसीसी लोगोंने अधिकार कर लिया। १७६१ ई० में पांडिचेरीके पतनके बाद उन्हें यह किला अंग्रेजोंको सौंप देना पड़ा।

जिन्दा पीर—औरंगजेबके कालमें अनेक भारतीय मुसलमान बादशाह औरंगजेबको इस नामसे सम्बोधित करते थे।

जिन्दा रानी–पजाबके महाराज रणजीतसिह (दे०) की पाँचवी रानी तथा उनके सबसे छोटे बेटे दलीपसिहकी माँ। १८४३ ई० मे जब दलीपसिह गद्दीपर बैठा तो वह नाबालिग था, अतएव जिन्दा रानी उसकी सरक्षिका बनी। परन्तु वह इस पदभारको सभाल नही सकी और १८४५ ई० मे प्रथम सिखयुद्ध (दे०) छिड गया। जब १८४६ ई० मे लाहौरकी सधिके द्वारा प्रथम सिख-युद्ध समाप्त हुआ तो जिन्दा रानी दलीपसिहकी सरक्षिका बनी रही। परन्तु उसकी गतिविधियोके कारण ब्रिटिश सरकार उसे सदेहकी दृष्टिसे देखने लगी और १८४८ ई०मे षड्यत्र रचनेके अभियोगमे उसे लाहौरसे हटा दिया गया। द्वितीय सिख-युद्ध (१८४९ ई०) जिन कारणोसे छिडा, उनमे एक कारण यह भी था। इस युद्धमे भी सिखोकी हार हुई। युद्धकी समाप्तिपर दलीपसिहको गद्दीसे उतार दिया गया और रानी जिन्दाके साथ इग्लैण्ड भेज दिया गया। वही रानीकी मृत्यु हो गयी।

जिन्ना, मुहम्मद अली (१८७६–१९४८ ई०)–पाकिस्तानके सस्थापक भारतीय मुसलमान। उनका जन्म कराचीमे हुआ, कानूनका अध्ययन किया, और बम्बईमें उनकी बैरिस्टरी अच्छी चलने लगी। उन्होने दादाभाई नौरोजी (दे०) तथा गोपालकृष्ण गोखले (दे०) जैसे काग्रेसके नरमदलीय नेताओके अनुयायीके रूपमे भारतीय राजनीतिमे प्रवेश किया। १९१० ई० मे वे बम्बईके मुसलिम निर्वाचन क्षेत्रसे केन्द्रीय लेजिस्लेटिव कौंसिलके सदस्य चुने गये, १९१३ ई० मे मुसलिम लीगमे शामिल हुए और १९१६ ई० मे उसके अध्यक्ष हो गये। इसी हेसियतसे उन्होने सवैधानिक सुधारोकी सयुक्त काग्रेस-लीग योजना पेश की। इस योजनाके अतर्गत काग्रेस-लीग समझौतेसे मुसलमानोके लिए अलग निर्वाचन क्षेत्रो तथा जिन प्रातोमे वे अल्पसख्यक थे वहाँ उन्हे अनुपातसे अधिक प्रतिनिधित्व देनेकी व्यवस्था की गयी। इसी समझौतेको 'लखनऊ-समझौता' कहते है।

जिन्ना भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके समर्थक थे। परन्तु गाधीजीके असहयोग आदोलनका उन्होने तीव्र विरोध किया और इसी प्रश्नपर काग्रेससे वे अलग हो गये। इसके बादसे उनके ऊपर हिन्दू राज्यकी स्थापनाके भयका भूत सवार हो गया। उनका कहना था कि अग्रेज लोग जब भी सत्ता हस्तातरण करे, उन्हे उसे हिन्दुओके हाथमे नही सौपना चाहिए, हालाकि वे बहुमतमे हैं। ऐसा करनेसे भारतीय मुसलमानोको हिन्दुओकी अधीनतामे रहना पडेगा। जिन्ना अब भारतीयोकी स्वतत्रताके अधिकारके बजाय मुसलमानोके अधिकारोपर ज्यादा जोर देने लगे। उन्हे अग्रेजोका सामान्य कूटनीतिक समर्थन मिलता रहा और इसके फलस्वरूप वे अतमे भारतीय मुसलमानोके नेताके रूपमे देशकी राजनीतिमे उभडे। उन्होने लीगका पुनर्गठन किया और 'कायदे आजम' (महान नेता)के रूपमे विख्यात हुए। १९४० ई० मे उन्होने धार्मिक आधारपर भारतके विभाजन तथा मुसलिम बहुसख्यक प्रातोको मिलाकर पाकिस्तान बनानेकी माग की। बहुत कुछ उन्हीकी वजहसे १९४७ ई० मे भारतका विभाजन और पाकिस्तानकी स्थापना हुई। पाकिस्तानके पहले गवर्नर-जनरल बनकर उन्होने पाकिस्तानको एक इसलामी राष्ट्र बनाया। पजाबके दगे तथा सामूहिक रूपसे जनताका एक राज्यसे दूसरे राज्यको निर्गमन उन्हीके जीवनकालमे हुआ। भारत और पाकिस्तानके बीच कश्मीरका विवाद भी उन्होने ही खडा किया। ११ सितबर १९४८ ई० को कराचीमे उनकी मृत्यु हुई।

जियाउद्दीन बर्नी–प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकार, जिसे सुल्तान फिरोजशाह तुगलक (दे०)का सरक्षण प्राप्त था। उसके ग्रथ 'तारीखे फिरोजशाही'मे उसके सरक्षकके शासनकालका तात्कालिक ब्यौरा है। इसके अतिरिक्त उसके पूर्ववर्ती सुल्तान मुहम्मद तुगलकके शासनका भी ब्योरा दिया गया है।

जिलेस्पी, जनरल सर आर० आर०–१८११ ई० मे फ्रासीसियोको जावामे पराजित करके इसने बडा नाम कमाया, किन्तु नेपालके पहाडी किलेपर अधिकार करनेके प्रयासमे गोरखा युद्ध (१८१४–१५)के दौरान पराजित हुआ और मारा गया। इससे अग्रेजोकी प्रतिष्ठाको गहरा धक्का लगा।

जिहाद–वह मजहबी लडाई जो मुसलमान लोग अन्य धर्मावलम्बियोसे लडते थे। आज भी झगडालू मुसलमान नेता जब-तब जिहादका नारा देते रहते है।

जीजाबाई (अथवा जीजीबाई)–मराठा राज्यके सस्थापक शिवाजी (दे०)की माँ। पतिके द्वारा उपेक्षित कर दिये जानेपर भी वह अपने पुत्रकी सरक्षिका बनी रही और उनके चरित्र, महत्त्वाकाक्षाओ तथा आदर्शोके निर्माणमे सबसे अधिक योगदान किया। शिवाजीके जीवनकी दिशा निर्धारित करनेमे उनकी माताका सबसे अधिक प्रभाव था।

जीवन खा–बोलन दर्रेके निकट दादरका एक अफगान सरदार। शाहजहाँका सबसे बडा लडका दारा १६५९ ई० मे उसीके पास भागकर शरण माँगने पहुँचा था। शाहजादा दाराने इससे पहले जीवन खाँको शाहजहाँके हुक्मसे सूलीपर चढाये जानेसे बचाया था। परन्तु जीवन खाँ कृतघ्न

निकला और उसने दारा और उसकी दो लड़कियों तथा एक लड़केको औरंगजेबके सिपहसालार बहादुर खाँके सुपुर्द कर दिया। बहादुर खाँ दाराको बंदी बनाकर दिल्ली लाया, जहाँ उसे कुछ समय बाद फाँसी दे दी गयी।

जीवित गुप्त प्रथम–गुप्तवंशके बादके राजाओंमें शुरूमें हुआ। वह हर्षगुप्तका पुत्र और उत्तराधिकारी था, जो छठी शताब्दी ई० के द्वितीय चतुर्थांशमें हुआ। वह पूर्वी हिमालय प्रदेश और बंगालकी खाड़ीके बीचके भूभागमें राज्य करता था। उसके बारेमें और कुछ ज्ञात नहीं है।

जीवित गुप्त द्वितीय–बादके गुप्त राजाओंमें अन्तिम राजा। वह आठवीं शताब्दीके छठे दशकमें राज्य करता था। उसके देववरनाकके शिलालेखमें उसके द्वारा भूमिदानका उल्लेख मिलता है। उसके बारेमें और कुछ ज्ञात नहीं है।

जुझारसिंह–राजा वीरसिंह बुंदेला (दे०) का पुत्र तथा उत्तराधिकारी। जहाँगीर (उस समय शाहजादा सलीम)के कहनेसे वीरसिंह बुंदेलाने अबुल फजलको मार डाला था और १६०५ ई० में जहाँगीरके तख्तपर बैठनेपर वह पुरस्कृत हुआ था। जब शाहजहाँ तख्तपर बैठा, तब राजा वीरसिंह बुंदेला द्वारा छीने गये इलाकोंके बारेमें जाँच करनेकी बात चली। इसपर जुझार सिंहने विद्रोह कर दिया, परन्तु उसे शीघ्र वशमें कर लिया गया और हर्जानेके रूपमें उसे बहुत-सा रुपया और जमीन देनी पड़ी। जुझारसिंहने बादशाहकी सेवा करना स्वीकार कर लिया और कई वर्षों तक दक्खिनमें रहा, जहाँ उसने बहुमूल्य सेवा की। उसे ऊँचा मनसब और राजाका खिताब मिला। इससे उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ जाग उठीं और उसने शाहजहाँके हुक्मके खिलाफ अपने पड़ोसी चौरागढ़के राजापर हमला कर दिया और उसे मार डाला। इसपर शाही फौजोंने उसपर चढ़ाई कर दी और उसे शीघ्र हरा दिया। शाही फौजों द्वारा पीछा किये जानेपर वह पड़ोसके जंगलोंमें भाग गया, जहाँ गोंडोंने उसे मार डाला।

जुल्फिकार खाँ–एक मुगल अमीर, जिसने बहादुरशाह (दे०) के शासनकालमें भारी शक्ति एवं समृद्धि अर्जित की। वह औरंगजेबके प्रधान मंत्री असद खाँका पुत्र था। बहादुर शाहकी मृत्यु के बाद, उसकी गद्दीके लिए होनेवाली लड़ाईमें जुल्फिकार खाँने हस्तक्षेप किया। उसने बादशाहके चारों पुत्रोंके बीच फूट पैदा करा दी तथा जहाँदारशाहको सिंहासन प्राप्त करनेमें सहायता पहुँचायी। जुल्फिकार उसे अपने हाथकी कठपुतली बना कर रखना चाहता था। सिंहासनारोहणके ग्यारह महीने बाद १७१३ ई० में उसने जहाँदारशाहको कैद कर दिया और फर्रुखसियरको गद्दीपर बिठाया। १७१३ ई० में फर्रुखसियरके हुक्मसे उसे कत्ल कर दिया गया।

जूना खाँ–देखो मुहम्मद तुगलक।

जेकब, जान (१८१२–५८ ई०)–१८२८ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनीके तोपखानेमें प्रविष्ट हुआ। उसने पहले अफगान-युद्ध (दे०) तथा १८४३ ई० में सिंधमें मियानीकी लड़ाईमें हिस्सा लिया। १८४३ ई० में वह सिंधका राजनीतिक अधीक्षक नियुक्त किया गया। वह योग्य प्रशासक था और उसने अपने व्यक्तिगत प्रभाव तथा फौजी कार्रवाइयोंसे सिंधकी सीमापर शान्ति स्थापित की। वह कुशल पर्यवेक्षक था और उसने १८५३ ई० में भारत सरकारको चेतावनी दे दी थी कि सिपाहियोंमें गदरकी आशंका है। परन्तु लार्ड डलहौजीने जल्दी भयभीत होनेवाला कहकर उसकी निंदा की। १८५८ ई० में दिमागमें सूजन आ जानेसे सिंधमें उसकी मृत्यु हो गयी। सिंधका जैकोबाबाद नगर उसकी याद दिलाता है।

जेजाकभुक्ति–यमुना और नर्मदा नदियोंके बीचमें स्थित। इसे अब बुंदेलखंड कहते हैं। इसपर चंदेल राजाओंका शासन था। यह अब आंशिकरूपसे उत्तर प्रदेशमें तथा आंशिकरूपसे मध्यप्रदेशमें सम्मिलित है। इसके मुख्य नगर महोबा, कालिंजर तथा खजुराहो हैं, जहाँ बहुतसे सुंदर मंदिर और जलाशय वर्तमान हैं। इन जलाशयोंको पहाड़ियोंके बीचके मार्गको बाँधोंसे अवरुद्ध करके निर्मित किया गया था।

जेटलैण्ड, लार्ड–१९१७ से १९२२ ई० तक बंगालका गवर्नर। एक योग्य प्रशासकसे भी बढ़कर वह एक योग्य लेखक था। उसके प्रमुख ग्रंथ हैं—'लाइफ आफ लार्ड कर्जन' और 'हार्ट आफ आर्यावर्त'। उसने जब ये ग्रंथ लिखे तब वह लार्ड रोनाल्डशेकी उपाधिसे विभूषित हो गया था।

जेन्किन्स, सर रिचर्ड (१७८५–१८५३ ई०)–ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें १८०० ई० में आया और १८०४ ई० में उसका तबादला राजनीतिक विभागमें कर दिया गया। वह १८१० से १८२७ ई० तक नागपुरमें ब्रिटिश रेजिडेंट रहा। १८१८ ई० में अप्पा साहब (दे०)के गद्दीसे उतार दिये जानेके बाद वह अगले राजाकी नाबालिगी अवस्थामें नागपुर राज्यका प्रशासक रहा। उसने १८२८ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनीकी नौकरीसे अवकाश ग्रहण किया। वह १८३७–१८४१ ई० तक ब्रिटिश पार्लियामेन्टका सदस्य रहा। १८३९ ई० में वह ईस्ट इंडिया कम्पनीके कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सका चेयरमैन हो गया।

जिन्दा रानी–पंजाबके महाराज रणजीतसिंह (दे०) की पाँचवीं रानी तथा उनके सबसे छोटे बेटे दलीपसिंहकी माँ। १८४३ ई० में जब दलीपसिंह गद्दीपर बैठा तो वह नाबालिग था, अतएव जिन्दा रानी उसकी संरक्षिका बनी। परन्तु वह उस पदभारको सभाल नहीं सकी और १८४५ ई० में प्रथम सिखयुद्ध (दे०) छिड गया। जब १८४६ ई० में लाहौरकी सधिके द्वारा प्रथम सिख-युद्ध समाप्त हुआ तो जिन्दा रानी दलीपसिंहकी सरक्षिका बनी रही। परन्तु उसकी गतिविधियोंके कारण ब्रिटिश सरकार उसे सदेहकी दृष्टिसे देखने लगी और १८४८ ई०में षड्यत्र रचने-के अभियोगमें उसे लाहौरसे हटा दिया गया। द्वितीय सिख-युद्ध (१८४९ ई०) जिन कारणोंसे छिडा, उनमें एक कारण यह भी था। उस युद्धमें भी सिखोंकी हार हुई। युद्धकी समाप्तिपर दलीपसिंहको गद्दीसे उतार दिया गया और रानी जिन्दाके साथ इग्लैण्ड भेज दिया गया। वहीं रानीकी मृत्यु हो गयी।

जिन्ना, मुहम्मद अली (१८७६–१९४८ ई०)–पाकिस्तानके सस्थापक भारतीय मुसलमान। उनका जन्म कराचीमें हुआ, कानूनका अध्ययन किया, और बम्बईमें उनकी बैरिस्टरी अच्छी चलने लगी। उन्होंने दादाभाई नौरोजी (दे०) तथा गोपालकृष्ण गोखले (दे०) जैसे कांग्रेसके नरमदलीय नेताओंके अनुयायीके रूपमें भारतीय राजनीतिमें प्रवेश किया। १९१० ई० में वे बम्बईके मुसलिम निर्वाचन क्षेत्रसे केन्द्रीय लेजिस्लेटिव कौंसिलके सदस्य चुने गये, १९१३ ई० में मुसलिम लीगमें शामिल हुए और १९१६ ई० में उसके अध्यक्ष हो गये। इसी हैसियतसे उन्होंने सवैधानिक सुधारोंकी संयुक्त कांग्रेस-लीग योजना पेश की। उस योजनाके अतर्गत कांग्रेस-लीग समझौतेसे मुसलमानोंके लिए अलग निर्वाचन क्षेत्रों तथा जिन प्रांतोंमें वे अल्प-सख्यक थे वहाँ उन्हें अनुपातसे अधिक प्रतिनिधित्व देनेकी व्यवस्था की गयी। इसी समझौतेको 'लखनऊ-समझौता' कहते हैं।

जिन्ना भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके समर्थक थे। परन्तु गांधीजीके असहयोग आदोलनका उन्होंने तीव्र विरोध किया और इसी प्रश्नपर कांग्रेससे वे अलग हो गये। इसके बादसे उनके ऊपर हिन्दू राज्यकी स्थापनाके भयका भूत सवार हो गया। उनका कहना था कि अंग्रेज लोग जब भी सत्ता हस्तातरण करें, उन्हें उसे हिन्दुओंके हाथमें नहीं सौंपना चाहिए, हालाँकि वे बहुमतमें हैं। ऐसा करनेसे भारतीय मुसलमानोंको हिन्दुओंकी अधीनतामें रहना पडेगा। जिन्ना अब भारतीयोंकी स्वतत्रताके अधिकारके बजाय मुसलमानोंके अधिकारोंपर ज्यादा जोर देने लगे। उन्हें अंग्रेजोंका सामान्य कूटनीतिक समर्थन मिलता रहा और इसके फलस्वरूप वे अतमें भारतीय मुसलमानोंके नेताके रूपमें देशकी राजनीतिमें उभरे। उन्होंने लीगका पुनर्गठन किया और 'कायदे आजम' (महान नेता)के रूपमें विख्यात हुए। १९४० ई० में उन्होंने धार्मिक आधारपर भारतके विभाजन तथा मुसलिम बहुसख्यक प्रांतोंको मिलाकर पाकिस्तान बनानेकी माँग की। बहुत कुछ उन्हींकी वजहसे १९४७ ई० में भारतका विभाजन और पाकिस्तानकी स्थापना हुई। पाकिस्तानके पहले गवर्नर-जनरल बनकर उन्होंने पाकिस्तानको एक इस्लामी राष्ट्र बनाया। पंजाबके दंगे तथा सामूहिक रूपसे जनताका एक राज्यसे दूसरे राज्यको निर्गमन उन्हींके जीवनकालमें हुआ। भारत और पाकिस्तानके बीच कश्मीरका विवाद भी उन्होंने ही खडा किया। ११ सितबर १९४८ ई० को कराचीमें उनकी मृत्यु हुई।

जियाउद्दीन बर्नी–प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकार जिसे सुल्तान फिरोजशाह तुगलक (दे०)का सरक्षण प्राप्त था। उसके ग्रन्थ 'तारीखे फिरोजशाही'में उसके सरक्षकके शासनकालका तात्कालिक ब्यौरा है। इसके अतिरिक्त उसके पूर्ववर्ती सुल्तान मुहम्मद तुगलकके शासनका भी ब्यौरा दिया गया है।

जिलेस्पी, जनरल सर आर० आर०–१८११ ई० में फ्रांसीसियोंको जावामें पराजित करके उसने बडा नाम कमाया, किन्तु नेपालके पहाडी किलेपर अधिकार करनेके प्रयासमें गोरखा युद्ध (१८१४–१५)के दौरान पराजित हुआ और मारा गया। इससे अंग्रेजोंकी प्रतिष्ठाको गहरा धक्का लगा।

जिहाद–वह मजहबी लडाई जो मुसलमान लोग अन्य धर्माव-लम्बियोंसे लडते थे। आज भी झगडालू मुसलमान नेता जब-तब जिहादका नारा देते रहते हैं।

जीजाबाई (अथवा जीजीबाई)–मराठा राज्यके सस्थापक शिवाजी (दे०)की माँ। पतिके द्वारा उपेक्षित कर दिये जानेपर भी वह अपने पुत्रकी सरक्षिका बनी रहीं और उनके चरित्र, महत्त्वाकाक्षाओं तथा आदर्शोंके निर्माणमें सबसे अधिक योगदान किया। शिवाजीके जीवनकी दिशा निर्धारित करनेमें उनकी माताका सबसे अधिक प्रभाव था।

जीवन खा–बोलन दर्रेके निकट दादरका एक अफगान सरदार। शाहजहाँका सबसे बडा लडका दारा १६५९ ई० में उसीके पास भागकर शरण माँगने पहुँचा था। शाहजादा दाराने इससे पहले जीवन खाको शाहजहाँके हुक्मसे सूलीपर चढाये जानेसे बचाया था। परन्तु जीवन खाँ कृतघ्न

निकला और उसने दारा और उसकी दो लड़कियां तथा एक लड़केको औरंगजेबके सिपहसालार बहादुर खाँके सुपुर्द कर दिया। बहादुर खाँ दाराको बंदी बनाकर दिल्ली लाया, जहाँ उसे कुछ समय बाद फाँसी दे दी गयी।

जीवित गुप्त प्रथम–गुप्तवंशके बादके राजाओंमें गुप्त हुआ। वह हर्षगुप्तका पुत्र और उत्तराधिकारी था, जो छठी शताब्दी ई० के द्वितीय चतुर्थांशमें हुआ। वह पूर्वी हिमालय प्रदेश और बंगालकी खाड़ीके बीचके भूभागमें राज्य करता था। उसके बारेमें और कुछ ज्ञात नहीं है।

जीवित गुप्त द्वितीय–बादके गुप्त राजाओंमें अंतिम राजा। वह आठवीं शताब्दीके छठे दशकमें राज्य करता था। उसके देववरनाकके शिलालेखमें उसके द्वारा भूमिदानका उल्लेख मिलता है। उसके बारेमें और कुछ ज्ञात नहीं है।

जुझारसिंह–राजा वीरसिंह बुंदेला (दे०) का पुत्र तथा उत्तराधिकारी। जहाँगीर (उस समय शाहजादा सलीम)के कहनेसे वीरसिंह बुंदेलाने अबुल फजलको मार डाला था और 1605 ई० में जहाँगीरके तख्तपर बैठनेपर वह पुरस्कृत हुआ था। जब शाहजहाँ तख्तपर बैठा, तब राजा वीरसिंह बुंदेला द्वारा छीने गये इलाकोंके बारेमें जाँच करनेकी बात चली। इसपर जुझार सिंहने विद्रोह कर दिया, परन्तु उसे शीघ्र वशमें कर लिया गया और हर्जानेके रूपमें उसे बहुत-सा रुपया और जमीन देनी पड़ी। जुझारसिंहने बादशाहकी सेवा करना स्वीकार कर लिया और कई वर्षों तक दक्खिनमें रहा, जहाँ उसने बहुमूल्य सेवा की। उसे ऊँचा मनसब और राजाका खिताब मिला। इससे उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ जाग उठीं और उसने शाहजहाँके हुक्मके खिलाफ अपने पड़ोसी चौरागढ़के राजापर हमला कर दिया और उसे मार डाला। इसपर शाही फौजोंने उसपर चढ़ाई कर दी और उसे शीघ्र हरा दिया। शाही फौजों द्वारा पीछा किये जानेपर वह पड़ोसके जंगलोंमें भाग गया, जहाँ गोंडोंने उसे मार डाला।

जुल्फिकार खाँ–एक मुगल अमीर, जिसने बहादुरशाह (दे०) के शासनकालमें भारी शक्ति एवं समृद्धि अर्जित की। वह औरंगजेबके प्रधान मंत्री असद खाँका पुत्र था। बहादुर शाहकी मृत्यु के बाद, उसकी गद्दीके लिए होनेवाली लड़ाईमें जुल्फिकार खाँने हस्तक्षेप किया। उसने बादशाहके चारों पुत्रोंके बीच फूट पैदा करा दी तथा जहाँदारशाहको सिंहासन प्राप्त करनेमें सहायता पहुँचायी। जुल्फिकार उसे अपने हाथकी कठपुतली बना कर रखना चाहता था। सिंहासनारोहणके ग्यारह महीने बाद 1713 ई० में उसने जहाँदारशाहको कत्ल कर दिया और फर्रुखसियरको गद्दीपर बिठाया। 1713 ई० में फर्रुखसियरके हुक्मसे उसे कत्ल कर दिया गया।

जूना खाँ–देखो मुहम्मद तुगलक।

जेकब, जान (1812–58 ई०)–1828 ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनीके तोपखानेमें प्रविष्ट हुआ। उसने पहले अफगान-युद्ध (दे०) तथा 1843 ई० में सिंधमें सियासीकी लड़ाईमें हिस्सा लिया। 1847 ई० में वह सिंधका राजनीतिक अधीक्षक नियुक्त किया गया। वह योग्य प्रशासक था और उसने अपने व्यक्तिगत प्रभाव तथा फौजी कार्रवाइयोंसे सिंधकी सीमापर शांति स्थापित की। वह कुशल पर्यवेक्षक था और उसने 1853 ई० में भारत सरकारको चेतावनी दे दी थी कि सिपाहियोंमें गदरकी आशंका है। परन्तु लार्ड डलहौजीने जल्दी भयभीत होनेवाला कहकर उसकी निंदा की। 1858 ई० में दिमागमें सूजन आ जानेसे सिंधमें उसकी मृत्यु हो गयी। सिंधका जैकोबाबाद नगर उसीकी याद दिलाता है।

जेजाकभुक्ति–यमुना और नर्मदा नदियोंके बीचमें स्थित। इसे अब बुंदेलखंड कहते हैं। इसपर चंदेल राजाओंका शासन था। यह अब आंशिकरूपसे उत्तर प्रदेशमें तथा आंशिकरूपसे मध्यप्रदेशमें सम्मिलित है। इसके मुख्य नगर महोबा, कालिंजर तथा खजुराहो हैं, जहाँ बहुतसे सुंदर मंदिर और जलाशय वर्तमान हैं। इन जलाशयोंको पहाड़ियोंके बीचके मार्गको बाँधोंसे अवरुद्ध करके निर्मित किया गया था।

जेटलैण्ड, लार्ड–1913 से 1920 ई० तक बंगालका गवर्नर। एक योग्य प्रशासकसे भी बढ़कर वह एक योग्य लेखक था। उसके प्रमुख ग्रंथ हैं—'लाइफ आफ लार्ड कर्जन' और 'हार्ट ऑफ आर्यावर्त'। उसने जब ये ग्रंथ लिखे, तब वह लार्ड रोनाल्डशेकी उपाधिसे विभूषित हो गया था।

जेन्किन्स, सर रिचर्ड (1785–1853 ई०)–ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें 1800 ई० में आया और 1804 ई० में उसका तबादला राजनीतिक विभागमें कर दिया गया। वह 1810 से 1827 ई० तक नागपुरमें ब्रिटिश रेजिडेंट रहा। 1818 ई० में अप्पा साहब (दे०) के गद्दीसे उतार दिये जानेके बाद वह अगले राजाकी नाबालिगी अवस्थामें नागपुर राज्यका प्रशासक रहा। उसने 1828 ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनीकी नौकरीसे अवकाश ग्रहण किया। वह 1830–1841 ई० तक ब्रिटिश पार्लियामेंटका सदस्य रहा। 1839 ई० में वह ईस्ट इंडिया कम्पनीके कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सका चेयरमैन हो गया।

जिन्दा रानी—पंजाबके महाराज रणजीतसिंह (दे०) की पाँचवीं रानी तथा उनके सबसे छोटे बेटे दलीपसिंहकी माँ। १८४३ ई० में जब दलीपसिंह गद्दीपर बैठा तो वह नाबालिग था, अतएव जिन्दा रानी उसकी संरक्षिका बनी। परन्तु वह इस पदभारको सभाल नहीं सकी और १८४५ ई० में प्रथम सिखयुद्ध (दे०) छिड़ गया। जब १८४६ ई० में लाहौरकी संधिके द्वारा प्रथम सिख-युद्ध समाप्त हुआ तो जिन्दा रानी दलीपसिंहकी संरक्षिका बनी रही। परन्तु उसकी गतिविधियोंके कारण ब्रिटिश सरकार उसे संदेहकी दृष्टिसे देखने लगी और १८४८ ई०में षड्यंत्र रचनेके अभियोगमें उसे लाहौरसे हटा दिया गया। द्वितीय सिख-युद्ध (१८४९ ई०) जिन कारणोंसे छिड़ा, उनमें एक कारण यह भी था। इस युद्धमें भी सिखोंकी हार हुई। युद्धकी समाप्तिपर दलीपसिंहको गद्दीसे उतार दिया गया और रानी जिन्दाके साथ इंग्लैण्ड भेज दिया गया। वहीं रानीकी मृत्यु हो गयी।

जिन्ना, मुहम्मद अली (१८७६–१९४८ ई०)—पाकिस्तानके संस्थापक भारतीय मुसलमान। उनका जन्म कराचीमें हुआ, कानूनका अध्ययन किया और बम्बईमें उनकी बैरिस्टरी अच्छी चलने लगी। उन्होंने दादाभाई नौरोजी (दे०) तथा गोपालकृष्ण गोखले (दे०) जैसे कांग्रेसके नरमदलीय नेताओंके अनुयायीके रूपमें भारतीय राजनीतिमें प्रवेश किया। १९१० ई० में वे बम्बईके मुसलिम निर्वाचन क्षेत्रसे केन्द्रीय लेजिस्लेटिव कौंसिलके सदस्य चुने गये, १९१३ ई० में मुसलिम लीगमें शामिल हुए और १९१६ ई० में उसके अध्यक्ष हो गये। इसी हैसियतसे उन्होंने संवैधानिक सुधारोंकी संयुक्त कांग्रेस-लीग योजना पेश की। इस योजनाके अंतर्गत कांग्रेस-लीग समझौतेसे मुसलमानोंके लिए अलग निर्वाचन क्षेत्रों तथा जिन प्रान्तोंमें वे अल्पसंख्यक थे वहाँ उन्हें अनुपातसे अधिक प्रतिनिधित्व देनेकी व्यवस्था की गयी। इसी समझौतेको 'लखनऊ-समझौता' कहते हैं।

जिन्ना भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके समर्थक थे। परन्तु गांधीजीके असहयोग आंदोलनका उन्होंने तीव्र विरोध किया और इसी प्रश्नपर कांग्रेससे वे अलग हो गये। इसके बादसे उनके ऊपर हिन्दू राज्यकी स्थापनाके भयका भूत सवार हो गया। उनका कहना था कि अंग्रेज लोग जब भी सत्ता हस्तांतरण करें, उन्हें उसे हिन्दुओंके हाथमें नहीं सौंपना चाहिए, हालांकि वे बहुमतमें हैं। ऐसा करनेसे भारतीय मुसलमानोंको हिन्दुओंकी अधीनतामें रहना पड़ेगा। जिन्ना अब भारतीयोंकी स्वतंत्रताके अधिकारके बजाय मुसलमानोंके अधिकारोंपर ज्यादा जोर देने लगे। उन्हें अंग्रेजोंका सामान्य कूटनीतिक समर्थन मिलता रहा और इसके फलस्वरूप वे अंतमें भारतीय मुसलमानोंके नेताके रूपमें देशकी राजनीतिमें उभरे। उन्होंने लीगका पुनर्गठन किया और 'कायदे आजम' (महान नेता)के रूपमें विख्यात हुए। १९४० ई० में उन्होंने धार्मिक आधारपर भारतके विभाजन तथा मुसलिम बहुसंख्यक प्रान्तोंको मिलाकर पाकिस्तान बनानेकी माँग की। बहुत कुछ उन्हींकी वजहसे १९४७ ई० में भारतका विभाजन और पाकिस्तानकी स्थापना हुई। पाकिस्तानके पहले गवर्नर-जनरल बनकर उन्होंने पाकिस्तानको एक इस्लामी राष्ट्र बनाया। पंजाबके दंगे तथा सामूहिक रूपसे जनताका एक राज्यसे दूसरे राज्यको निर्गमन उन्हींके जीवनकालमें हुआ। भारत और पाकिस्तानके बीच कश्मीरका विवाद भी उन्होंने ही खड़ा किया। ११ सितंबर १९४८ ई० को कराचीमें उनकी मृत्यु हुई।

जियाउद्दीन बर्नी—प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकार, जिसे सुल्तान फिरोजशाह तुगलक (दे०)का संरक्षण प्राप्त था। उसके ग्रंथ 'तारीखे फिरोजशाही' में उसके संरक्षकके शासनकालका तात्कालिक ब्योरा है। इसके अतिरिक्त उसमें पूर्ववर्ती सुल्तान मुहम्मद तुगलकके शासनका भी ब्योरा दिया गया है।

जिलेस्पी, जनरल सर आर० आर०—१८११ ई० में फ्रांसीसियोंको जावामें पराजित करके इसने बड़ा नाम कमाया, किन्तु नेपालके पहाड़ी किलेपर अधिकार करनेके प्रयासमें गोरखा युद्ध (१८१४–१५)के दौरान पराजित हुआ और मारा गया। इससे अंग्रेजोंकी प्रतिष्ठाको गहरा धक्का लगा।

जिहाद—वह मजहबी लड़ाई जो मुसलमान लोग अन्य धर्मावलम्बियोंसे लड़ते थे। आज भी झगड़ालू मुसलमान नेता जब-तब जिहादका नारा देते रहते हैं।

जीजाबाई (अथवा जीजीबाई)—मराठा राज्यके संस्थापक शिवाजी (दे०)की माँ। पतिके द्वारा उपेक्षित कर दिये जानेपर भी वह अपने पुत्रकी संरक्षिका बनी रही और उनके चरित्र, महत्त्वाकांक्षाओं तथा आदर्शोंके निर्माणमें सबसे अधिक योगदान किया। शिवाजीके जीवनकी दिशा निर्धारित करनेमें उनकी माताका सबसे अधिक प्रभाव था।

जीवन खाँ—बोलन दर्रेके निकट दादरका एक अफगान सरदार। शाहजहाँका सबसे बड़ा लड़का दारा १६५९ ई० में उसीके पास भागकर शरण माँगने पहुँचा था। शाहजादा दाराने इससे पहले जीवन खाँको शाहजहाँके हुक्मसे सूलीपर चढ़ाये जानेसे बचाया था। परन्तु जीवन खाँ कृतघ्न

निकला और उसने दारा और उसकी दो लडकियों तथा एक लडकेको औरंगजेबके सिपहसालार बहादुर खाँके सुपुर्द कर दिया। बहादुर खाँ दाराको बंदी बनाकर दिल्ली लाया, जहाँ उसे कुछ समय बाद फाँसी दे दी गयी।

जीवित गुप्त प्रथम—गुप्तवंशके बादके राजाओंमे शुरूमे हुआ। वह हर्षगुप्तका पुत्र और उत्तराधिकारी था, जो छठी शताब्दी ई० के द्वितीय चतुर्थाशमे हुआ। वह पूर्वी हिमालय प्रदेश और बगालकी खाडीके बीचके भूभागमे राज्य करता था। उसके बारेमे और कुछ ज्ञात नही है।

जीवित गुप्त द्वितीय—बादके गुप्त राजाओंमे अतिम राजा। वह आठवी शताब्दीके छठे दशकमे राज्य करता था। उसके देववरनाकके शिलालेखमे उसके द्वारा भूमिदानका उल्लेख मिलता है। उसके बारेमे और कुछ ज्ञात नही है।

जुझारसिंह—राजा वीरसिंह बुंदेला (दे०) का पुत्र तथा उत्तराधिकारी। जहाँगीर (उस समय शाहजादा सलीम)के कहनेसे वीरसिंह बुदेलाने अबुल फजलको मार डाला था और १६०५ ई० मे जहाँगीरके तख्तपर बैठनेपर वह पुरस्कृत हुआ था। जब शाहजहाँ तख्तपर बैठा, तब राजा वीरसिंह बुदेला द्वारा छीने गये इलाकोंके बारेमे जाँच करनेकी बात चली। इसपर जुझार सिंहने विद्रोह कर दिया, परन्तु उसे शीघ्र वशमे कर लिया गया और हर्जानेके रूपमे उसे बहुत-सा रुपया और जमीन देनी पडी। जुझारसिंहने बादशाहकी सेवा करना स्वीकार कर लिया और कई वर्षो तक दक्खिनमे रहा, जहाँ उसने बहुमूल्य सेवा की। उसे ऊँचा मनसब और राजाका खिताब मिला। इससे उसकी महत्त्वाकाक्षाएँ जाग उठीं और उसने शाहजहाँके हुक्मके खिलाफ अपने पडोसी चौरागढके राजापर हमला कर दिया और उसे मार डाला। इसपर शाही फौजोंने उसपर चढाई कर दी और उसे शीघ्र हरा दिया। शाही फौजो द्वारा पीछा किये जानेपर वह पडोसके जगलोमे भाग गया, जहाँ गोडोने उसे मार डाला।

जुल्फिकार खा—एक मुगल अमीर, जिसने बहादुरशाह (दे०) के शासनकालमे भारी शक्ति एव समृद्धि अर्जित की। वह औरंगजेबके प्रधान मत्री असद खाँका पुत्र था। बहादुर शाहकी मृत्यु के बाद, उसकी गद्दीके लिए होनेवाली लडाईमे जुल्फिकार खाँने हस्तक्षेप किया। उसने बादशाहके चारो पुत्रोके बीच फूट पैदा करा दी तथा जहाँदारशाहको सिंहासन प्राप्त करनेमे सहायता पहुँचायी। जुल्फिकार उसे अपने हाथकी कठपुतली बना कर रखना चाहता था। सिंहासनारोहणके ग्यारह महीने बाद १७१३ ई० मे उसने जहाँदारशाहको कत्ल कर दिया और फर्रुखसियरको गद्दीपर बिठाया। १७१३ ई० मे फर्रुखसियरके हुक्मसे उसे कत्ल कर दिया गया।

जूना खाँ—देखो मुहम्मद तुगलक।

जेकब, जान (१८१२—५८ ई०)—१८२८ ई० मे ईस्ट इडिया कम्पनीके तोपखानेमे प्रविष्ट हुआ। उसने पहले अफगान-युद्ध (दे०) तथा १८४३ ई० मे सिंधमे मियामीकी लडाईमे हिस्सा लिया। १८४७ ई० मे वह सिंधका राजनीतिक अधीक्षक नियुक्त किया गया। वह योग्य प्रशासक था और उसने अपने व्यक्तिगत प्रभाव तथा फौजी कार्रवाइयोंसे सिंधकी सीमापर शाति स्थापित की। वह कुशल पर्यवेक्षक था और उसने १८५३ ई० मे भारत सरकारको चेतावनी दे दी थी कि सिपाहियोंमे गदरकी आशका है। परन्तु लार्ड डलहौजीने जल्दी भयभीत होनेवाला कहकर उसकी निंदा की। १८५८ ई० मे दिमागमे सूजन आ जानेसे सिंधमे उसकी मृत्यु हो गयी। सिंधका जैकोबाबाद नगर उसीकी याद दिलाता है।

जेजाकभुक्ति—यमुना और नर्मदा नदियोंके बीचमे स्थित। इसे अब बुदेलखड कहते है। इसपर चदेल राजाओंका शासन था। यह अब आशिकरूपमे उत्तर प्रदेशमे तथा आशिकरूपमे मध्यप्रदेशमे सम्मिलित है। इसके मुख्य नगर महोबा, कालिंजर तथा खजुराहो है, जहाँ बहुतसे सुदर मदिर और जलाशय वर्तमान है। इन जलाशयोंको पहाडियोंके बीचके मार्गको बाँधोंसे अवरुद्ध करके निर्मित किया गया था।

जेटलैण्ड, लार्ड—१९१३ से १९२२ ई० तक बगालका गवर्नर। एक योग्य प्रशासकसे भी बढकर वह एक योग्य लेखक था। उसके प्रमुख ग्रथ है—'लाइफ आफ लार्ड कर्जन' और 'हार्ट ऑफ आर्यावर्त'। उसने जब ये ग्रथ लिखे, तब वह लार्ड रोनाल्डशेकी उपाधिसे विभूषित हो गया था।

जेन्किन्स, सर रिचर्ड (१७८५—१८५३ ई०)—ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामे १८०० ई० मे आया और १८०८ ई० मे उसका तबादला राजनीतिक विभागमे कर दिया गया। वह १८१० से १८२७ ई० तक नागपुरमे ब्रिटिश रेजिडेंट रहा। १८१८ ई० मे अप्पा साहब (दे०)के गद्दीसे उतार दिये जानेके बाद वह अगले राजाकी नाबालिगी अवस्थामे नागपुर राज्यका प्रशासक रहा। उसने १८२८ ई० मे ईस्ट इंडिया कम्पनीकी नौकरीसे अवकाश ग्रहण किया। वह १८३७—१८४१ ई० तक ब्रिटिश पार्लियामेन्टका सदस्य रहा। १८३९ ई० मे वह ईस्ट इंडिया कम्पनीके कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सका चेयरमैन हो गया।

जेबुन्निसा, शाहजादी–औरंगजेबकी पुत्री (१६३८–१७०६)। वह बड़ी ही गुणवती महिला थी। फारसी और अरबीकी अच्छी विदुषी तथा सुलेखिका थी। उसने अपना अच्छा पुस्तकालय बनाया था। वह अच्छी कवियत्री भी थी। उसने कुरानपर टीका भी लिखी थी।

जेम्स प्रथम–इग्लैण्डके राजा (१६०३–२५ ई०) ने सर थामस रोको अपना दूत बनाकर १६१५ ई० मे बादशाह जहाँगीर (दे०)के दरबारमे भेजा। जेम्स प्रथम इग्लैण्डका पहला राजा था, जिसने भारतसे सीधा सम्पर्क स्थापित किया।

जेवियर, फादर जेरोम–जेसुइट सम्प्रदायका पुर्तगाली साधु। वह अकबरके राज्यकाल (१५५६–१६०५ ई०) मे भारत आया था। फादर जेवियर, बादशाह अकबरके घनिष्ट सम्पर्कमे आया। बादशाह उससे सर्वप्रथम १५९५ ई० मे लाहौरमे मिला था। जहाँगीरके शासनकाल तक फादर जेवियरने मुगल दरबारसे सम्पक बनाये रखा। उसने सम्राट्से धर्मपरिवर्तन करानेकी अनुमति ले ली किन्तु उसे किसीको ईसाई बनानेमे सफलता न मिली। उसने मुगल सम्राटोमे भारतमे बसे पुर्तगालियोके लिए कुछ रियायते अवश्य प्राप्त की। फादर जेरोम जेवियर और उसका साथी एमैनुएल पिनहेरो बडे कुशल पत्रलेखक थे। इन पत्रोमे अकबरके परवर्ती शासनकाल और जहाँगीरके पूर्ववर्ती शासनकालका रोचक विवरण प्राप्त होता हे। **(सर ई० मेक्लगान कृत 'दि जेसुएट्स एण्ड द ग्रेट मुगल')**

जेसुइट पादरी–(अज्ञानियोमे ईसाई धर्मका प्रचार करनेके उद्देश्यसे सगठित सोसाइटी आफ जीससके सदस्य) ये पहली बार भारत तथा गोआकी पुर्तगाली बस्तीमे १५४२ ई० मे आये। बादशाह अकबरसे मिलनेके लिए जो पहले जेसुइट पादरी पहुँचे, वे साधु रिदालफो अकविवा तथा साधु अन्तानियो मोनसेरेत (दे०) थे। वे १५८० ई० मे फतहपुर सीकरीमे बादशाहसे मिले। जेसुइट पादरियोका दूसरा दल १५९० ई० मे बादशाहके दरबारमे पहुँचा और तीसरा दल १५९५ ई० मे आया। बादशाहने जेसुइट पादरियोकी बाते ध्यान और सम्मानसे सुनी और एक समय यह आशा होने लगी कि वे बादशाहको ईसाई धर्ममे बपतिस्मा देनेमे सफल हो जायेगे। उन्होने भारतमे व्यापार करनेवाली पुर्तगाली कम्पनीको राजनीतिक तथा व्यापारिक सुविधाएँ दिलानेकी भी कोशिश की। परन्तु उनकी सारी कोशिशे विफल रही और अकबरने ईसाई धर्ममे बपतिस्मा नही लिया। जेसुइट पादरी जहाँगीरके दरबारमे भी पहुँचे। उसने उन्हे अपना गिरजाघर बनाने, अपने पादरियोके लिए लाहौरमे एक मठ बनवाने तथा बादशाहकी भारतीय प्रजाको बपतिस्मा देकर ईसाई बनानेकी इजाजत दे दी। परन्तु जहाँगीरने भी जेसुइट पादरियोकी यह आशा पूरी नही की कि वह बपतिस्मा लेकर ईसाई बन जायगा। बादमे राजनीतिक कारणोसे उसने पुर्तगालियोके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी। फलस्वरूप उसने जेसुइट पादरियोको आदेश दिया कि वे गिरजाघर बद कर दे और उसकी प्रजाको बपतिस्मा देकर ईसाई न बनाये। जहाँगीरके राज्यकालके बाद जेसुइट पादरियोका सारा राजनीतिक प्रभाव समाप्त हो गया। फिर भी उन्होने भारतमे ईसाई धर्मका प्रचार-कार्य जारी रखा, बहुतसे भारतीयोको ईसाई बनाया और कलकत्ताके सेट जेवियर कालेज जैसी शिक्षण सस्थाओकी स्थापना की।

जेहलम (अथवा झेलम)–पजाबकी पाँच मुख्य नदियोमेसे एक। यूनानियोने इसका नाम हाइडस्पीस लिखा है, जिसके पूर्वमे पुरु (पोरस)का राज्य था। मकदूनियाके राजा सिकदरने जब ३२६ ई० पू० मे भारतपर आक्रमण किया तो पुरु पहला भारतीय राजा था, जिसने उसका प्रबल प्रतिरोध किया।

जैकसन, कवर्ली–१८५७ ई० मे गदरके आरम्भिक कालमे अवधका चीफ कमिश्नर। वह बडे क्रोधी स्वभावका था उसमे युक्ति-कौशल और सयमका अभाव था। उसने गद्दीसे उतार दिये गये अवधके नवाबकी फोज बर्खास्त कर दी और इस तरह उस फौजके सिपाहियोमे भारी असतोष उत्पन्न कर दिया, जिनकी जीविकाका कोई साधन नही रह गया था। उसने अवधके ताल्लुकेदारोकी रियासतोकी जाँच आरम्भ की, जिससे इस प्रभावशाली वर्गमे भारी हैरानी और बेचैनी फैल गयी, फौजके बर्खास्त सिपाहियो और भयभीत ताल्लुकेदारोने गदरमे प्रमुख हिस्सा लिया। १८५७ ई० मे हेनरी लारेसको जैकसनकी जगह भेजा गया, परन्तु उस वक्त तक इतनी देर हो चुकी थी कि गदरको रोकना सम्भव नही था।

जैकोबाबादकी सधि–ब्रिटिश भारतकी सरकार और कलातके खानके बीच १८७६ ई० मे हुई। इस सधिके द्वारा फौजी छावनीके रूपमे क्वेटा नगर ब्रिटिश भारतकी सरकारको मिल गया।

जैतपुर–एक छोटा-सा देशी राज्य, जिसे लार्ड डलहौजी (दे०) ने १८५० ई० मे जब्तीका सिद्धात लागू करके ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमे मिला लिया।

जैन धर्म–इसका प्रवर्त्तन छठी शताब्दी ई० पू० मे वर्धमान महावीर (दे०)ने पार्श्वनाथकी शिक्षाओंके आधारपर किया जो उनमें पहले हुए थे। पार्श्वनाथ और महावीर दोनो राजकुलमे जन्मे थे, दोनोंने ससार त्याग दिया और अनागार श्रमण बन गये। महावीरने पूर्ण (केवल) ज्ञान प्राप्त किया और जिन (इन्द्रियोंके विजेता) तथा निर्ग्रन्थ (बाह्य और आभ्यन्तर ग्रथियोंसे रहित) कहलाने लगे। इसीलिए उनके अनुयायियोको जैन और निगठ (निर्ग्रन्थ) दोनो कहते है। जैन धर्ममें ब्राह्मण धर्मका कर्म (दे०) तथा पुनर्जन्मका सिद्धात ग्रहण कर लिया गया है, परन्तु वेदोंको प्रमाण नही स्वीकार किया जाता, वर्णभेद नही माना जाता और यज्ञमें पशुओंकी बलिका विरोध किया जाता है। वह परमात्माको इस जगतका कर्त्ता नही मानता। वह मानता है कि प्रत्येक मनुष्यका चैतन्ययुक्त आत्मा स्वभावसे अनन्त गुणोंसे युक्त होता है और जब अपने शुद्ध रूपको प्राप्त कर लेता है तो परमात्मा कहलाने लगता है। एक जैनधर्मानुयायीका जीवन-लक्ष्य होता है आत्माको बार-बार जन्म लेनेके बन्धनसे मुक्त करके उस सिद्धशिलापर स्थित कर देना जहाँ वह परम आनन्दमे मग्न रहता है। इसे ही निर्वाण अथवा मोक्ष कहा जाता है। मोक्षकी प्राप्ति रत्नत्रय मार्गसे सभव है। रत्नत्रयका आशय जीवनके तीन सिद्धात रत्नोंसे है—सम्यक् दर्शन (सच्चा विश्वास), सम्यक् ज्ञान (सच्चा ज्ञान) तथा सम्यक् चारित्र (सच्चा आचरण)। रत्नत्रय मार्गपर चलनेके लिए अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह तथा ब्रह्मचर्य आवश्यक है।

जैन धर्ममे अहिंसाके सिद्धातपर बौद्ध धर्मकी अपेक्षा कही अधिक बल दिया जाता है। वह मानता है कि चेतनासे युक्त प्रत्येक पदार्थ जीव होता है और दुःखका अनुभव करता है। इसीलिए जैनधर्मानुयायी किसी जीवको दुःख पहुँचानेसे अपनेको बचाता है। जैन धर्म मोक्षकी प्राप्तिके लिए बाह्य तथा अन्तरग तपपर बल देता है। वह परिग्रह-त्याग नग्नताकी सीमा तक ले जाता है। परन्तु इस विषयमे दो मत पाये जाते है। एक वर्ग साधुओंके लिए श्वेत वस्त्र धारण करनेका अनुमोदन करता है। इस प्रकार जैनोंमे दो भेद मिलते है। जो साधुके लिए वस्त्र-त्याग (दिगम्बर वेश) आवश्यक मानते है, वे दिगम्बर कहलाते है। जो साधुओंको श्वेत वस्त्र-धारणकी अनुमति देते है वे श्वेताम्बर कहलाते है। जैनधर्मानुयायी यद्यपि जगत्के कर्त्ताके रूपमे परमात्मामे विश्वास नही करते, तथापि वे ब्राह्मणोंको अपना पुरोहित बनाते है और कुछ हिन्दू देवताओंकी पूजा भी करते है। उनके मदिरोंमे जिन महावीर तथा उनके पूर्ववर्ती तीर्थंकरो (मार्ग-प्रवर्तकों) की मूर्तियाँ स्थापित की जाती है जिनकी पूजा होती है। जैनधर्मानुयायी भी अपनेको हिन्दू मानते है, सिर्फ उनके कुछ दार्शनिक तथा धार्मिक सिद्धात उनसे भिन्न है। जैन धर्ममे गृहस्थोंके लिए भी धर्मका विशद विधान है। जैन धर्म कभी भारतकी सीमाओंसे बाहर नही फैला। प्राचीन भारतमे देशके दक्षिणी तथा पश्चिमी भाग जैन धर्मके गढ थे। जैन धर्मका विशाल साहित्य है। उसका प्राचीन साहित्य 'पूर्व' कहलाता है, जिनकी सख्या चौदह है। यह साहित्य अर्द्धमागधी भाषामें था और उसमे महावीरकी शिक्षाओंका सग्रह था। जैन साहित्यका वर्गीकरण बारह अगों, उपागों, मूलसूत्रो आदिमे किया जाता है। जैन धर्ममे विशाल लौकिक साहित्य भी मिलता है, जिसमे महाकाव्य, आख्यान, नाटक, दर्शन-शास्त्र, न्यायशास्त्र, व्याकरण, कोशविज्ञान, काव्यशास्त्र, गणित, नक्षत्र विद्या, फलित ज्योतिष, राजनीतिशास्त्र तथा शिक्षाशास्त्रसे सम्बन्धित ग्रथ है। विविध विषय विभूषित विशाल जैन साहित्यने भारतीय चितधारा तथा सस्कृति के विकासमें भारी योगदान किया है।

जैनुल आब्दीन–कश्मीरका आठवाँ सुल्तान। इसने १४२० से १४५० ई० तक शासन किया। उसका शासन धार्मिक सहिष्णुताके सिद्धात तथा व्यवहारपर आधारित था। उसने हिन्दुओंपर लगे 'जजिया' (दे०)को निरस्त कर दिया और उन्हे मन्दिर बनानेकी अनुमति भी प्रदान की। वह मास खानेसे परहेज करता था, उसने गोवधपर प्रतिबन्ध लगाया और साहित्य व ललित कलाको प्रोत्साहन दिया। उसने करोंको कम कर दिया तथा मुद्रा-सुधार किया। वह फारसी, हिन्दी तथा तिब्बती भाषाओंका ज्ञाता था तथा कविता, सगीत व चित्रकलाका सरक्षक था। उसने महाभारत (दे०) तथा राजतरगिणी (दे०) का अनुवाद सस्कृतसे फारसीमे तथा कुछ फारसी ग्रथोंका अनुवाद हिन्दीमे कराया। उसने सदाचारपूर्ण जीवन-यापन किया। वह एकपत्नीव्रती था। पुत्रोंके बीच सिंहासनके लिए सघर्ष होनेके कारण, उसके जीवनके अन्तिम वर्ष दुःखपूर्ण बीते। १४७० ई० मे उसकी मृत्युके बाद उसके दूसरे पुत्र हाजी खाँने शासनभार सम्हाला।

जोधपुर–राजस्थानका एक नगर एव राज्य, जो मारवाड़के नामसे अधिक प्रसिद्ध रहा। वहाँके धनी व्यवसायी मारवाड़ी कहलाते है। इस नगरकी स्थापना १४५९ ई० मे राव जोधाने की जो कन्नौजके राजा जयचन्द (दे०)का वशज था। इस राज्यकी स्थापना इससे काफी पहले राव सीहने की थी जो जयचन्दकी पीढ़ीमे आठवाँ राजा था।

१५६१ ई० मे जोधपुर राज्यको वादशाह अकवरकी अधीनता स्वीकार करनी पडी और मुगलोके यहाँ डोला भेजना पडा। १६७८ ई० मे राजा जसवतसिह (दे०) के देहावसानपर औरगजेवने उसके लडकेको मुसलमान वनाने और जोधपुरको मुगल साम्राज्यमे मिला लेनेकी योजना वनायी। इसके विरोधमे जोधपुर, जयपुर तथा उदयपुरमे मुगल साम्राज्यका जुआ उतार फेकनेकी एक सधि हुई। इसके फलस्वरूप राजपूत-युद्ध छिड गया, जिसका अत मुगलो द्वारा राजपूतोको कुछ सुविधाएँ दिये जानेसे हुआ। परन्तु वादमे त्रिराज्य सधिकी एक धाराको लेकर तीनो राज्योमे विवाद छिड गया। इस धाराके अनुसार जयपुर तथा जोधपुरके राजाओको उदयपुरके राणा वशकी लडकी लेनेका अधिकार मिल गया था। मुगल वादशाहोको लडकियाँ देनेके कारण दोनो राज्योमे उदयपुरकी लडकियाँ नही दी जाती थी। इसके साथ यह शर्त लगा दी गयी कि जयपुर तथा जोधपुरके राजघरानोमे उदयपुरके राजघरानेकी जो लडकियाँ व्याही जायेगी, उनकी सतानोको अन्य राजघरानोकी रानियोसे उत्पन्न सतानोकी अपेक्षा सबसे पहले राज्यका उत्तराधिकारी बननेका हक होगा। इस शर्तके फलस्वरूप इन राजघरानोकी वादकी पीढियोमे अनेकानेक उत्तराधिकार सम्वन्धी युद्ध हुए जिनमे गद्दी पानेके प्रतिद्वन्द्वी दावेदारोने मराठोकी सहायता लेना शुरू कर दिया। अतमे मराठोने सभी राजपूत राज्योको अपने अधीन कर लिया और उनके राज्योको नष्ट कर दिया। १८१८ ई० मे जोधपुर राज्यने अग्रेजोका आश्रित बनना स्वीकार करके अपनी रक्षा की। गदरके समय यह राज्य अग्रेजोका वफादार वना रहा। ३० मार्च १९४९को इसका विलय राजस्थान सघमे कर दिया गया।

जोन्स, सर हारफोर्ड–१८०९ ई० मे इग्लैण्डके राजाका दूत वनाकर फारसके शाहके दरवारमे भेजा गया। उसको यह काम सोपा गया कि वह फारसको फ्रास तथा रूसके प्रभावमे न जाने दे। सर हारफोर्डने फारससे एक सधि की, जिसके द्वारा उसने वचन दिया कि वह यूरोपके किसी देशकी सेनाको फारससे होकर भारत जानेकी इजाजत नही देगा और यदि ब्रिटिश भारतपर किसी विदेशी ताकतने हमला किया तो उसकी मदद करेगा। इसके वदलेमे ब्रिटेनने वचन दिया कि यदि फारसपर किसी यूरोपीय ताकतने, चाहे फौजके द्वारा और चाहे आर्थिक सहायताके द्वारा अथवा फौजी अफसरोकी सेवाएँ उधार देकर, हमला किया तो वह उसकी मदद करेगा। यह आशा की जाती थी कि इस सधिके द्वारा फारसको भारत तथा फ्रास अथवा रूसके वीच एक मध्यवर्ती राज्य वना दिया जायगा। परन्तु वादके घटनाक्रमसे प्रमाणित हुआ कि इग्लैण्ड और भारत दोनो फारससे इतनी दूर और इतने निर्वल थे कि रूससे उसकी रक्षा करनेके लिए उसे आवश्यक सहायता देनेमे समर्थ नही थे और १८०९ की सधि काम नही आयी।

जौनपुर–उत्तर प्रदेशका एक नगर जो पहले एक राज्य था। इस नगरकी स्थापना सुल्तान फीरोजशाह तुगलक (दे०)ने की थी। उसने इसका नामकरण अपने पूर्वाधिकारी मुहम्मद तुगलक (दे०)के नामपर किया, जिसे जूना खाँ भी कहते थे। तैमूरके हमलेके समय इसका शासन ख्वाजा जहाँके हाथमे था, जिसने दिल्लीके सुल्तानोकी वहुमूल्य सेवा की थी। तैमूरके हमलेके फलस्वरूप सल्तनतमे जो अव्यवस्था फैली, उससे लाभ उठाकर ख्वाजा जहाँने अपनेको स्वतत्र कर लिया और शर्की वशकी स्थापना की। इस वशने ८५ वर्पतक जौनपुरमे राज्य किया। अतमे सुल्तान वहलोल लोदी (दे०)ने उसकी स्वतत्रताका अत कर दिया। शर्कीवशके राज्यकालमे जौनपुर कला और सस्कृतिका महान् केन्द्र वन गया। उसने वास्तुकलाकी अपनी विशिष्ट शैली विकसित की, जिसका शानदार नमूना अटाला मसजिद है। यह तीसरे सुल्तान इब्राहीमके राज्यकालमे १४०८ ई० मे पूरी हुई।

झ

झाँसी–बुदेलखडका एक राज्य, जो पेशवा वाजीराव द्वितीयके अधीन था। तीसरे मराठा-युद्ध (दे०)मे उसके हार जानेपर १८१९ ई०मे यह राज्य ब्रिटिश भारतीय सरकारके सरक्षणमे आ गया। १८५३ ई० मे लार्ड डलहौजीके प्रशासन कालमे जब्तीका सिद्धात लागू करके यह राज्य ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमे शामिल कर लिया गया। इससे झाँसीकी रानी लक्ष्मीवाई (दे०) कुपित हो गयी और १८५८ ई० मे वह विप्लवियोके दलमे सम्मिलित हो गयी।

ट

टाटा परिवार–जीजीभाई जमशेदजी टाटा (१७८३–१८५९ ई०) मे यह वश प्रचलित हुआ। जीजीभाईका जन्म वडौदा राज्यके नौसारी गाँवमे वहुत ही गरीव पारसी

परिवारमें हुआ था। अपने परिश्रम, उत्साह तथा व्यावसायिक कुशाग्रताके कारण वे बहुत बड़े व्यवसायी बन गये। इसी सिलसिलेमें वे चीन गये। उन्होंने २८ वर्षके अन्दर व्यावसायिक पेशेमें दो करोड़ रुपये एकत्र किये। वे बड़े उदार तथा परोपकारी थे, दानव्य संस्थाओंके संस्थापन हेतु ५० लाख रुपयोंका वृत्तिदान (स्थिरदान) उन्होंने बम्बई नगरमें किया था। उनके पुत्र जमशेदजीने १८५८ ई० में व्यवसायका प्रबन्धाधिकरण (व्यवस्थापन) किया और धनसम्पन्नता तथा गतिविधियोंकी अभिवृद्धिमें सफल योगदान किया। अमरीकी गृहयुद्धके दौरान उन्होंने भारतसे अमरीका, कच्चे सूतका निर्यात करके लाखों रुपये पैदा किये। वे इंग्लैण्ड गये। मैनचेस्टरमें वस्त्र विनिर्माण उद्योगका अध्ययन किया और १८८३ ई० में इम्प्रेस कॉटन मिल तथा टाटा स्वदेशी मिलकी नींव डाली। लोनावालामें उन्होंने जलविद्युत परियोजनाका श्रीगणेश किया। उनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी—सकची (वर्तमान जमशेदपुर) में टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनीका संस्थापन, जिसने १९०७ ई० में उत्पादनकार्य प्रारम्भ कर दिया। आज वह संसारके सबसे बड़े इस्पात कारखानोंमेंसे एक है। अपने पिताकी भाँति जनकल्याणके लिए उन्होंने बहुत धन दिया किन्तु इनके वृत्तिदान बड़े उद्देश्यपूर्ण थे। इन्होंने दो ऐसी छात्रवृत्तियाँ प्रदान कीं जिनसे दो भारतीय विद्यार्थी यूरोपमें प्रौद्योगिकी (टेकनॉलोजी) का अध्ययन कर सकें। अपने पीछे बंगलोर टाटा साइंटिफिक रिसर्च इन्स्टीट्यूटके निमित्त स्थिरदानके लिए उन्होंने अपार धन छोड़ा, जो इनकी मृत्युके उपरान्त स्थापित हुआ।

टाटाओंने उद्योगोंका पुनरुत्थान करके भारतके औद्योगिक विकासमें महत्त्वपूर्ण भाग लिया। नवीन उद्योगों एवं कारखानोंको स्थापित करके उन्होंने अनुसंधानके लिए मार्गदर्शन किया।

टाल्मी फिलेडेल्फस—मिस्रका यवन (यूनानी) राजा (२८५ ई० पू०—२४७ ई०पू०)। उसने डायोनीसियसको अपना दूत बनाकर मौर्य सम्राट् बिन्दुसार (दे०)की राजसभामें भेजा था। उसका उल्लेख अशोक (दे०)के शिलालेख संख्या १३ में हुआ है। अशोकने धर्मविजयके लिए बौद्ध भिक्षुओंको उसके राज्यमें भी भेजा था।

टीपू सुलतान—मैसूरके हैदरअलीका पुत्र तथा उत्तराधिकारी। अप्रैल १७८३ ई० में अपने पिताकी मृत्युके बाद उसने मैसूरका सिंहासन ग्रहण किया। उस समय भारतमें स्थित अंग्रेजोंके साथ मैसूरका युद्ध चल रहा था। अपने पिताकी भाँति टीपू वीर तथा युद्धप्रिय था। उसने युद्ध जारी रखा और ब्रिगेडियर मैथ्यूजकी सेनाको परास्त किया और उसे बंदी बनाया। उसने मार्च १७८४ ई० में अंग्रेजोंको मंगलोरकी संधि करनेके लिए विवश किया। इस संधिके द्वारा दोनोंने एक दूसरेके जीते इलाके लौटा दिये। किन्तु यह संधि अस्थायी सिद्ध हुई, फिर पाँच वर्ष बाद अंग्रेजों और मैसूरके बीच तीसरा युद्ध प्रारंभ हो गया। यद्यपि इस युद्धमें अंग्रेजोंका साथ निजाम तथा मराठा दे रहे थे, तथापि टीपूने पर्याप्त रणकौशल एवं शौर्य प्रदर्शित किया, परन्तु अन्तमें १७९२ ई० में उसे श्रीरंगपट्टम्‌की संधि करनेके लिए बाध्य होना पड़ा। इस संधिके द्वारा टीपूको विजेता मित्रोंके लिए अपना आधा राज्य, तीन करोड़ रुपये क्षतिपूर्तिके रूपमें और अपने दो पुत्रोंको बंधकके रूपमें अंग्रेजोंके हाथों सौंपना पड़ा। टीपू सुलतान इस अपमानपूर्ण पराजयसे उद्विग्न और क्षुब्ध बना रहा। उसने अंग्रेजोंके विरुद्ध शक्ति-सञ्चय जारी रखा, क्योंकि वह समझता था कि अंग्रेजोंसे अन्तिम युद्ध होना अनिवार्य है। उसने अंग्रेजोंके विरुद्ध सहायता-प्राप्ति की आशासे अपने दूतोंको अरब, काबुल, कुस्तुनतुनियाँ, फ्रांस तथा मारिशसके फ्रांसीसी उपनिवेशमें भेजा, परन्तु मारिशसके अतिरिक्त किसी भी देशने उसका उत्साहवर्धन नहीं किया। उधर अप्रैल १७९८ ई० में लार्ड वैलेजली गवर्नर-जनरलके रूपमें भारत आया। वह टीपूके शत्रुतापूर्ण मंतव्यसे परिचित होनेके कारण उसके विरुद्ध युद्ध करनेके लिए उद्यत हो गया। उसने टीपूको अंग्रेजोंका आश्रित होनेके लिए आमंत्रित किया और उसके द्वारा यह प्रस्ताव ठुकरा दिये जानेपर उसने निजाम और मराठोंके साथ त्रिपक्षीय संधि करके मार्च १७९९ में टीपूके विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी। टीपूने बड़ी वीरतासे युद्ध किया, परन्तु भाग्य उसके विरुद्ध था। तीनों मित्र सेनाओंने तीन विभिन्न दिशाओंसे श्रीरंगपट्टम्‌की ओर प्रस्थान किया और राजधानीपर घेरा डाल दिया, टीपूने अभूतपूर्व साहसके साथ राजधानीकी रक्षा की। वह श्रीरंगपट्टम्‌के प्राचीरोंके सामने लड़ता हुआ वीरगतिको प्राप्त हुआ। अस्तु, अंग्रेजोंने मई १७९९ ई० में राजधानीपर अधिकार कर लिया। इस प्रकार टीपू सुल्तानका अन्त हो गया। भारतीय इतिहासमें उसका एक विलक्षण व्यक्तित्व था। विद्वेषसे कुछ तात्कालिक अंग्रेज इतिहासकारोंकी दृष्टि उसके प्रति इतनी कलुषित हो गयी थी कि उन्होंने टीपूको एक धर्मान्ध क्रूर शासक वर्णित किया है। किन्तु ये सभी आरोप निराधार हैं। वह इतना सुयोग्य शासक था कि युद्धोंमें व्यस्त रहनेपर भी उसने मैसूरको एक श्रीसम्पन्न राज्य बना दिया। वह **धर्मान्ध**

नही था और साधारणत उसने अपनी हिन्दू प्रजाके साथ सद्भावना एव सहिष्णुताका व्यवहार किया। वह एक दूरदर्शी राजनेता था और यदि उसे भारतमे अग्रेजोके विरुद्ध सयुक्त मोर्चा बनानेमे सफलता नही मिली तो इसमे उसका दोष नहीं था। महत्त्वपूर्ण वात यह है कि वही एकमात्र ऐसा भारतीय शासक था जिसने किसी भारतीय शासकके विरुद्ध चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, अग्रेजोके साथ गठबन्धन नही किया, यद्यपि इसमे सन्देह नही कि भारतीय शासकोका व्यवहार उसके प्रति आक्रोशपूर्ण रहा। **(विल्कीज तथा एम० एच० खान कृत 'हिस्ट्री ऑफ टीपू सुलतान')**

टुकरोईका युद्ध—यह युद्ध १५७५ ई० मे उडीसाके वालासोर जिलेमे हुआ था, जिसमे मुनिम खाके नेतृत्वमे अकवर की मुगल सेनाने बगालके अफगान शासक दाऊदको परास्त किया और उसे फिर शर्तके साथ छोड दिया गया। किन्तु १५७६ ई० के दूसरे युद्धमे वह परास्त हुआ और मार डाला गया।

टेरी एडवर्ड—एक पादरी, जो सर थामस रो (दे०) के साथ मुगल बादशाह जहागीरके दरवारमे आया था। उसने अपनी भारतयात्राका विवरण लिखा है। उसका ग्रन्थ 'वायज टु ईस्ट इण्डिया' तत्कालीन भारत की घटनाओ तथा लोगोके विषयमे जानकारी हासिल करनेका प्रमुख साधन है।

टैरिफ बोर्ड—१९२३ ई० मे भारतीय उद्योगो की सुरक्षा तथा नये उद्योगोके पोषणके लिए गठित। लोहा, कपडा, शक्कर और सीमेण्ट उद्योगोको सरक्षण देकर इस बोर्डने अच्छा कार्य किया, जिसके परिणामस्वरूप ये उद्योग फूले-फले।

टोकका नवाव—देखिये, 'अमीर खॉ'।

टोडरमल, राजा—अकवर वादशाहका वित्तमन्त्री, जो राजाकी उपाधिसे सम्मानित किया गया था। वह पजाव-के लाहौर नगर (अब पाकिस्तान) मे एक साधारण परिवारमे उत्पन्न हुआ और १५७३ ई० मे अकवरके दरवारमे आया। १५७३ ई० मे जव अकवरने गुजरातपर विजय प्राप्त की, तब टोडरमलको मालगुजारीका बन्दोबस्त करनेके लिए वहा नियुक्त किया गया। उसने जमीन नापनेकी समरूप प्रणाली सर्वप्रथम प्रचलित की, उर्वरताके आधारपर जमीन-का वर्गीकरण किया तथा लगानकी दर फसलकी एक तिहाई निर्धारित की, जो किसानसे सीधे वसूल की जाती थी। वादमे यह व्यवस्था कुछ स्थानीय परिवर्तनोके साथ पूरे मुगल साम्राज्यमे लागू कर दी गयी। टोडरमल अच्छा सेनानायक भी था, १५७६ ई० मे उसने वगाल विजय किया, १५८० ई० मे वगाल, विहार तथा उडीसाका सूबेदार वनाया गया। वह ईमानदार, निर्लोभी और सुयोग्य राजसेवक था।

टोपरा—पजावमे अम्वालाके निकट स्थित। यहाँ अशोकका एक स्तम्भ था, जिसपर उसके सप्त शिलालेखोकी एक प्रति उत्कीर्ण थी। इस स्तम्भको सुलतान फीरोजशाह तुगलक (दे०) दिल्ली उठवा कर ले आया, जहाँ यह अब भी विद्यमान है और फीरोजशाहकी लाटके नामसे प्रसिद्ध है। **(अफीफ-ए-सिराज, 'तारीख-ए-फिरोजशाही')**

टोल—देशी सस्कृत विद्यालय, जो अध्यापकोके घरोमे स्थित थे। प्राचीन हिन्दू शिक्षा-व्यवस्थाके अनुसार अध्यापकगण इन सस्कृत पाठशालाओको अपने खर्चसे चलाते थे। इनमे प्रवेश पानेवाले विद्यार्थियोको वे स्थान, भोजन, वस्त्र उपलब्ध कराते थे। अध्ययन और अध्यापनका समय विद्यार्थी और अध्यापक दोनोके सुविधानुकूल रखा जाता था। इस शिक्षा-व्यवस्थाके अन्तर्गत अध्यापक और विद्यार्थीका घनिष्ठ सम्पर्क रहता था और विद्यार्थीको विद्या-प्राप्तिके लिए कोई धन नही देना पडता था। चूकि विद्यार्थीके भरण-पोषणका भार अध्यापकपर रहता था, इसलिए उनका चुनाव भी उसकी इच्छापर निर्भर करता था। इन पाठशालाओमे विद्याध्ययनके लिए अधिकाशतया ब्राह्मणोके वालक प्रवेश करते थे। अन्य वर्णोके मेधावी विद्यार्थियोको भी इनमे प्रवेश मिलता था, किन्तु अपने भोजन-का प्रवध उन्हे स्वय करना पडता था। इन पाठशालाओका खर्च निकालनेमे अध्यापकोको काफी कठिनाइयाँ उठानी पडती थी क्योकि इसके लिए उन्हे स्थानीय जमीदारो तथा दाताओकी दानशीलतापर निर्भर करना पडता था। फिर भी शास्त्रोका अध्ययन करनेके वाद प्रत्येक ब्राह्मण विद्यादान करना अपना पवित्र कर्त्तव्य मानता था, इसलिए वह अपने घरपर एक टोलकी स्थापना अवश्य करता था। इन टोलोमे व्याकरण, साहित्य, स्मृति, न्याय और वेदात अथवा दर्शनकी शिक्षा दी जाती थी। कुछ टोले अब भी विद्यमान हैं और कुछको सरकारसे अब मासिक अनुदान प्राप्त होता है।

ठ

ठग—लुटेरो तथा हत्यारोका एक गिरोह। ये लोग यात्रियोके वेशमे छोटे-छोटे गिरोहोमे घूमा करते थे और सीधे-सादे

बटोहियोंकी गर्दन रूमालसे बाँधकर, सोते समय या असावधानीकी अवस्थामें मार डालते और फिर उन्हें लूट लेते थे। मध्यभारतमें इनकी संख्या बहुत अधिक थी। १८३० ई० से कई वर्षकी तैयारीके बाद कर्नल स्लीमैनको इनका विनाश करनेमें सफलता प्राप्त हुई।

ठट्ठा प्रान्त—बिचली सिंध घाटीमें अवस्थित। अकबरके समयमें इसे मुलतान (दे०)के सूबेमें मिला दिया गया था, परन्तु औरंगजेबके समय इसे पृथक् सूबा बनाया गया। इस सूबेदारकी राजधानी भी ठट्ठा कहलाती थी। इसी नगरके निकट १३५१ ई० में सुल्तान मुहम्मद तुगलककी मृत्यु हुई थी।

ठाकुर अवनीन्द्रनाथ (१८७१–१९३१)—प्रख्यात कलाकार तथा साहित्यकार, 'इण्डियन सोसायटी ऑफ ओरियण्टल आर्ट्स'की स्थापना की। कला और चित्रकलाकी भारतीय पद्धति पुनः प्रतिष्ठित करके समाजमें उसे उचित सम्मान दिलाया। उनकी चित्रकारीके प्रमुख नमूने हैं—'प्रवासी यक्ष', 'शाहजहाँकी मृत्यु', 'बुद्ध और सुजाता', 'कच और देवयानी' तथा 'उमर खय्याम'।

१९०५ से १९१६ ई० तक वे कलकत्तामें 'गवर्नमेण्ट स्कूल ऑफ आर्ट'के उपप्राचार्य और कुछ समयके लिए प्राचार्य भी रहे। उन्होंने भारतीय चित्रकलाके एक नये स्कूलको जन्म दिया। उनके सर्वाधिक प्रख्यात शिष्य नंदलाल बोस थे।

ठाकुर देवेन्द्रनाथ (१८१७–१९०५)—कलकत्ता निवासी श्री द्वारकानाथ टैगोर (ठाकुर)के पुत्र, जो प्रख्यात विद्वान् और धार्मिक नेता थे। अपनी दानशीलताके कारण उन्होंने 'प्रिंस'की उपाधि प्राप्त की थी। पितासे उन्होंने ऊँची सामाजिक प्रतिष्ठा तथा ऋण उत्तराधिकारमें प्राप्त किया। पिताके ऋणका भुगतान उन्होंने बड़ी ही ईमानदारीके साथ किया (जो कि उस समय असाधारण बात थी) और अपनी विद्वत्ता, शालीनता, श्रेष्ठ चरित्र तथा सांस्कृतिक क्रियाकलापोंमें योगदानके द्वारा उन्होंने टैगोर परिवारकी सामाजिक प्रतिष्ठाको और ऊँचा उठाया। वे ब्राह्म समाज (दे०)के प्रमुख सदस्य थे जिसका १८४३ ई० से उन्होंने बड़ी सफलताके साथ नेतृत्व किया। १८४३ ई० में उन्होंने 'तत्त्वबोधिनी पत्रिका' प्रकाशित की, जिसके माध्यमसे उन्होंने देशवासियोंको गम्भीर चिन्तन तथा हृद्गत भावोंके प्रकाशनके लिए प्रेरित किया। इस पत्रिकाने मातृभाषाके विकास तथा विज्ञान एवं धर्मशास्त्रके अध्ययनकी आवश्यकतापर बल दिया और साथ ही तत्कालीन प्रचलित सामाजिक अंधविश्वासों व कुरीतियोंका विरोध किया तथा ईसाई मिशनरियों द्वारा किये जानेवाले धर्मपरिवर्तनके विरुद्ध कठोर संघर्ष छेड़ दिया। राममोहन राय (दे०)की भाँति देवेन्द्रनाथजी भी चाहते थे कि देशवासी, पाश्चात्य संस्कृतिकी अच्छाइयोंको ग्रहण करके उन्हें भारतीय परम्परा, संस्कृति और धर्ममें समाहित कर लें। वे हिन्दू धर्मको नष्ट करनेके नहीं, उसमें सुधार करनेके पक्षपाती थे। वे समाज-सुधारमें 'धीरे चलो' की नीति पसन्द करते थे। इसी कारण उनका केशवचन्द्र सेन (दे०) तथा उग्र समाज-सुधारके पक्षपाती ब्राह्मसमाजियों, दोनोंसे मतभेद हो गया। केशवचन्द्र सेनने अपनी नयी संस्था 'नवविधान' आरम्भ की। उधर उग्र समाज-सुधारके पक्षपाती ब्राह्म समाजियोंने आगे चलकर अपनी अलग संस्था 'साधारण ब्राह्म समाज'की स्थापना की। देवेन्द्रनाथजीके उच्च चरित्र तथा आध्यात्मिक ज्ञानके कारण सभी देशवासी उनके प्रति श्रद्धा-भाव रखते थे और उन्हें 'महर्षि' सम्बोधित करते थे।

देवेन्द्रनाथजी धर्मके बाद शिक्षाप्रसारमें सबसे अधिक रुचि लेते थे। उन्होंने बंगालके विविध भागोंमें शिक्षा-संस्थाएँ खोलनेमें मदद की। उन्होंने १८६३ ई० में बोलपुरमें एकांतवासके लिए २० बीघा जमीन खरीदी और वहाँ गहरी आत्मिक शांति अनुभव करनेके कारण उसका नाम 'शांति निकेतन' रख दिया और १८८६ ई०में उसे एक ट्रस्टके सुपुर्द कर दिया। यहीं बादमें उनके स्वनामधन्य पुत्र रवीन्द्रनाथने विश्वभारतीकी स्थापना की।

देवेन्द्रनाथजी मुख्य रूपसे धर्म-सुधार तथा शिक्षा-प्रसारमें रुचि तो लेते ही थे, देश-सुधारके अन्य कार्योंमें भी पर्याप्त रुचि लेते थे। १८५१ ई० में स्थापित होनेवाले ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशनका सबसे पहला सेक्रेटरी उन्हें ही नियुक्त किया गया। इस एसोसियेशनका उद्देश्य संवैधानिक आंदोलनके द्वारा देशके प्रशासनमें देशवासियोंको उचित हिस्सा दिलाना था। उन्नीसवीं शताब्दीमें जिन मुट्ठी भर शिक्षित भारतीयोंने आधुनिक भारतकी आधारशिला रखी, उनमें उनका नाम सबसे शीर्षपर लिया जायगा। **(एस० चक्रवर्ती कृत 'देवेन्द्रनाथ ठाकुर आत्मजीवनी')**

ठाकुर द्वारकानाथ—(१७९४–१८४६)—कलकत्तामें जोड़ासाँकूके प्रसिद्ध ठाकुर (टैगोर) परिवारके संस्थापक। उन्होंने अंग्रेजोंके सहयोगसे व्यापार करके अपार धन अर्जित किया। उन्होंने यूनियन बैंककी स्थापना की जो बंगालियों द्वारा खोला जानेवाला पहला बैंक था। उन्होंने तत्कालीन समाज तथा धर्म-सुधारके आन्दोलनोंमें हिस्सा लिया। वे राजा राममोहन राय (दे०) द्वारा स्थापित

ब्राह्म समाजके सबसे प्रारम्भिक सदस्योमेसे थे। उन्होने १८४३ ई० तक उसका नेतृत्व किया। इसके बाद उनके पुत्र देवेन्द्रनाथ (दे०)ने उसका नेतृत्व सभाल लिया। उन्होने १८४२ तथा १८४५ ई०मे दो बार यूरोप-यात्रा की और महारानी विक्टोरियासे उनके महलमे भेट की। उन्होने दोनो हाथो इस तरह पैसा लुटाया कि अतमे वे कर्जमे डूब गये। उनकी दानशीलता और उदारताके कारण उन्हे प्रिस (राजा) पुकारा जाता था। १८४६ ई० मे लन्दनमे उनकी मृत्यु हो गयी।

ठाकुर रवीन्द्रनाथ (७ मई १८६१–७ अगस्त १९४१)–आधुनिक कालके सबसे महान भारतीय कवि। वे श्री देवेन्द्रनाथ (दे०) ठाकुरके पुत्र थे। उनका जन्म कलकत्ता-मे हुआ और विश्वख्याति तथा गुरुदेवकी उपाधि प्राप्त करनेके बाद मृत्यु भी वही हुई। उन्होने बाल्यकालमे ही कविता लिखना आरम्भ कर दिया और १८८२ ई०मे प्रकाशित उनके 'सध्या-सगीत'से प्रख्यात बंगला उपन्यास-कार एव साहित्यकार तथा हमारे राष्ट्रगान 'वदेमातरम्' के रचयिता वकिमचन्द्र चटर्जी (दे०) इतने प्रभावित हुए कि उन्होने अपने गलेकी माला उन्हे पहनाकर उनका सत्कार किया। रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। वे केवल कवि ही नही वरन् नाटककार, उपन्यासकार तथा निवधकार भी थे। बादके जीवनमे वे चित्रकार भी बने। उन्होने अपने काव्यमे विभिन्न प्रकारके प्रयोग किये है। उनकी कविता सहज ही हृत्तत्रीको झकृत कर देती है। उनकी विशेष ख्याति गीति-काव्यकारके रूपमे है। १९१३ ई० मे 'गीताजलि'का अग्रेजी अनुवाद प्रकाशित होनेपर उन्हे नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ। उसी वर्ष कलकत्ता विश्वविद्यालयने उन्हे डी०लिट्०की सम्मानित उपाधिसे विभूपित करके अपनेको गौरवान्वित किया। उन्हीके सुझावपर कलकत्ता विश्वविद्यालयने वगला भाषा-की वर्तनी शुद्ध की और उसे अपनी सबसे ऊँची डिगरीकी परीक्षाओके पाठ्यक्रममे सम्मिलित किया। १९१३ ई० मे ब्रिटिश सरकारने उन्हे 'सर'की उपाधि प्रदान की। ससारके सभी भागोसे उन्हे सम्मान प्राप्त हुआ और उन्होने वौद्धिक जगतमे पराधीनताके कालमे भी भारतका मस्तक ऊंचा कर दिया। उन्होने युरोप, अमेरिका और एशियाका विस्तृत भ्रमण किया और सभी देशोमे भारतकी कीर्ति-पताका फहरायी।

रवीन्द्रनाथ ऊचे कवि ही नही, वरन ऊचे देशभक्त भी थे। उन्होने स्वदेशी आन्दोलनमे प्रमुख भाग लिया। उनकी देशभक्ति सकीर्ण राष्ट्रवादपर नही, वरन उदार अतरराष्ट्रीयतावाद पर आधारित थी, इसीलिए उन्होने विदेशी वस्तोकी होली जलानेके आदोलनका समर्थन किया। वे स्वदेशी उद्योगोको वढावा देनेके पक्षमे थे। उन्होने ग्राम-सुधारके कार्योके लिए शातिनिकेतनके निकट श्रीनिकेतनकी स्थापना की। उन्होने लोकशिक्षा, लोक-गीत, लोकनृत्य, लोक-कला एव शिल्प तथा सहकारिता आदोलनको भी प्रोत्साहन प्रदान किया। वे उग्र राज-नीतिक आदोलनोसे अपनेको प्राय पृथक् रखते थे, फिर भी विदेशी सरकार जब देशवासियोपर अत्याचार करने लगती थी तो उसके विरुद्ध अपना स्वर ऊचा करनेमे वे कभी भयभीत नही होते थे। अग्रेजो द्वारा जालियावाला वाग (दे०)मे किये गये बर्बर हत्याकाडसे क्षुब्ध होकर उन्होने ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रदत्त 'सर'की पदवी लौटा दी। उनका यह कार्य भारतमे ब्रिटिश शासनकी सबसे कठोर भर्त्सना थी।

रवीन्द्रनाथने मानव-सस्कृतिके विकासमे सबसे वडा योगदान १९०१ ई०मे शातिनिकेतनमे विश्वभारतीकी स्थापना करके किया। इसकी स्थापनाके लिए उन्होने तत्कालीन सरकारसे किसी प्रकारकी आर्थिक सहायता नही ली और पचास वर्षो तक उसे अपनी पुस्तकोंसे होने-वाली आय तथा अपनी पैतृक सम्पत्तिकी आयसे चलाते रहे। उनके देहावसानके दस वर्ष वाद इस सस्थाका भार भारतीय गणराज्यकी सरकारने अपने ऊपर ले लिया और अब उसने इसे केन्द्रीय विश्वविद्यालयका रूप दे दिया है। रवीन्द्रनाथ श्रेष्ठ कवि और विद्वान ही नही, दृष्टा भी थे। वे प्रथमत भारतीय थे। उनका अतर-राष्ट्रीयतावाद उनके देशप्रेमका ही एक अग था। महात्मा गाधी भी उन्हे अपना मार्गदर्शक मानते थे और उन्हे श्रद्धापूर्वक 'गुरुदेव' पुकारते थे। (**रवीन्द्रनाथकी कृतिया, थाम्पसन कृत 'रवीन्द्रनाथ', एस० राधाकृष्णन् लिखित 'फिलासफी आफ रवीन्द्रनाथ' तथा एस० एन० दासगुप्त लिखित 'रवीन्द्र-दीपिका'**)

ठाकुर सत्येन्द्रनाथ (१८४२–१९२३)–इडियन सिविल सर्विस परीक्षामे उत्तीर्ण होनेवाले प्रथम भारतीय। इनका जन्म कलकत्तामे हुआ था। ये देवेन्द्रनाथ टैगोर (दे०)के द्वितीय पुत्र और रवीन्द्रनाथ टैगोरके अग्रज थे। १८६४ ई० मे उन्होने इंडियन सिविल सर्विसमे प्रवेश किया और वम्वई प्रातमे नियुक्त किये गये। उन दिनो सरकारी नौकरीमे भारतीयोको ऊचे उठनेका बहुत कम अवसर दिया जाता था। इस कारण अवकाश-प्राप्तिके समय तक वे केवल जिला तथा सेशन जजके पद तक

ही उन्नति कर सके। वे कवि और साहित्यकार भी थे। बगला भाषामें उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखी हैं।

ड

डंकन, जोनाथन (१७५६–१८११ ई०)–ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी सेवामें १७७२ ई०में भारत आया। उसे १७७८ ई०में बनारस स्थित रेजीडेण्ट एव सुपरिण्टेण्डेण्ट बनाया गया, जहा उसने प्रशासनका सुधार और शिशुबलि-की कुप्रथाका निवारण किया। बादमें १७९५ से १८११ ई० तक वह बम्बईका गवर्नर रहा और काठियावाडमें भी प्रचलित शिशुवलिकी कुप्रथाका निवारण किया। इस प्रकार उसने एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक सुधारका श्रीगणेश किया। बम्बईके गवर्नरकी हैसियतसे उसने चतुर्थ मैसूर-युद्ध (दे०) (१७९९ ई०) और दूसरे मराठा-युद्ध (दे०) (१८०३–०५ ई०)में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। मिस्रके विरुद्ध बैर्डके अभियान (१८०१ ई०)को सगठित करने तथा गुजरात एव काठियावाडमें शान्ति स्थापित करनेमें भी उसने विशेष योगदान किया। उसकी कब्रपर लगे पत्थरमें ठीक ही लिखा है कि वह 'सज्जन और न्यायप्रिय व्यक्ति' था।

डंडास, हेनरी–पिटके इण्डिया ऐक्ट (१७८४ ई०)के अन्तर्गत स्थापित बोर्ड आफ कण्ट्रोलका प्रथम अध्यक्ष। १७८६ ई० मे उसने वारेन हेस्टिंग्स द्वारा सचालित रोहिल्ला युद्धको पार्लमेण्टमें उचित ठहराया, लेकिन बादमें वारेन हेस्टिंग्स-पर चलाये गये महाभियोगका समर्थन किया। विशेषतया बनारसके राजा चेतसिंह तथा अवधकी बेगमोंके मामलोंमें उसने वारेन हेस्टिंग्सकी कटु आलोचना की। १८०२ ई० मे डंडास लार्ड मेलविले बना दिया गया। १८०६ ई० मे स्वयम् उसपर सार्वजनिक धनके घोटाले और कर्तव्य-अव-हेलनाका आरोप लगाकर महाभियोग चलाया गया, लेकिन वह बरी कर दिया गया। बोर्ड आफ कण्ट्रोलके अध्यक्षकी हैसियतसे उसने बडी योग्यता तथा प्रशासनिक कुशलताका परिचय दिया। उसने बोर्ड आफ कंट्रोलको वस्तुत एक सरकारी विभागका रूप दे दिया और उसके अध्यक्षके पदको भारतमन्त्रीके पदका समकक्ष बना दिया।

डच ईस्ट इंडिया कम्पनी–अथवा नीदरलैडकी यूनाइटेड ईस्ट इडिया कम्पनी, की स्थापना १६०२ ई० में हुई। इस कम्पनीके पास बहुत अधिक वित्तीय साधन थे और इसे डच सरकारका भी समर्थन प्राप्त था। शुरूमें अग्रेजोकी तरह डच लोगोंका भी पुर्तगालियोंने विरोध किया, क्योंकि उन्होंने अग्रेजोकी ईस्ट इडिया कम्पनीके सहयोगसे पूर्वमें पुर्तगालियोंके व्यापारपर एकाधिकारको चुनौती देकर व्यापारमें हिस्सा बटा लिया। डच ईस्ट इडिया कम्पनीने अपना ध्यान मुख्यरूपसे मसालेवाले द्वीपोंसे व्यापारपर केन्द्रित किया और १६२३ ई० के अम्बोना हत्याकाडके बाद वहासे अग्रेजोको पूर्णरूपमें निकाल बाहर करनेमें सफल हो गयी। किन्तु भारतमें डच कम्पनीको उतनी सफलता नही मिली। पूलीकट और मसुलीपट्टममें उसकी व्यापारिक कोठिया मद्रास स्थित अग्रेजी कम्पनीकी बराबरी कभी नही कर सकी और बगालमें चिनसुरा स्थित उसकी कोठी शीघ्र ही कलकत्ता स्थित अग्रेजी कोठीके सामने फीकी पड गयी। १७५९ ई० के बिदर्रा युद्ध (दे०)में अग्रेजोंने चिनसुराके डचोंको परास्त कर दिया। इसके बाद डच लोगोंने बगाल तथा सम्पूर्ण भारतमें राजनीतिक शक्ति बननेका इरादा छोड दिया और अग्रेजोंके साथ शाति-सधि कर ली और भारतके साथ उनका व्यापार फलता-फूलता रहा। डच कम्पनीने मलय द्वीपसमूहमें अपना विशाल साम्राज्य स्थापित किया। इन द्वीपोंपर उनका आधिपत्य सन् १९५२ तक रहा, जब उन्होंने इडोनेशियाकी स्वतन्त्रताको मान्यता दे दी।

डच ईस्ट इण्डीज–मसालेवाले जावा तथा मोलुक्कास द्वीपो-का सम्मिलित राज्य। १७वी शताब्दी ई० के प्रारम्भमें डचो (हालैण्डवासियों)ने इन द्वीपोंमें अपनी व्यापारिक कोठिया स्थापित की और अग्रेजोको वहा अपना पैर जमाने नही दिया, यहातक कि १६२३ ई० मे उन्होंने अम्बोयनामें अग्रेजोका कत्लेआम करके वहासे उनका सफाया कर दिया। उन्होंने बटाविया (जावा)को अपना सदरमुकाम बनाया, जहासे वे मलयद्वीप-समूहके अधिकाश भागपर शासन करते थे। फलत मलय-द्वीपसमूह डच ईस्ट इण्डीजके नामसे जाना जाने लगा। १९वी शताब्दी ई० के प्रारम्भमें जब फ्रासके नैपोलियनने हालैण्डपर अधि-कार जमाया, तो मलय द्वीप भी उसके नियन्त्रणमें आ गया।

उस समय भारतमें ईस्ट इण्डिया कम्पनीका गवर्नर-जनरल लार्ड मिण्टो (प्रथम) था। उसने मलय-द्वीपसमूह-पर कब्जा करनेका निश्चय किया। इसके लिए उसने विशेष तैयारी की। १८१० ई० में ब्रिटिश भारतीय फौजने अम्बोयना और मसालेवाले द्वीपोपर अधिकार कर लिया। दूसरे वर्ष मिण्टोने १२ हजार नौसैनिकोका बेडा सर सैमुअल अकमूटीके नेतृत्वमें भेजा जिसने

मलक्कामे लगर डाला। लार्ड मिण्टो स्वयम् इस वेडेके साथ था। इन सैनिकोने वटाबियापर आसानीसे अधिकार कर लिया। इसके बाद कोर्नेलिसके किलेके लिए फ्रासीसी जनरल जैन्सेन्स, जिसे नैपोलियनने कमाडर नियुक्त किया था और अग्रेजी फौजके बीच घोर युद्ध हुआ। इस युद्धमे विजयके फलस्वरूप सम्पूर्ण मलय-द्वीपसमूह अग्रेजोके कब्जेमे आ गया। लार्ड मिण्टो इस द्वीपसमूहका प्रशासन स्टैम्फोर्ड रैफिल्सके जिम्मे छोडकर भारत वापस आ गया। लेकिन जब १८१५ ई० मे वियनाकी सधिके फलस्वरूप यूरोपमे शाति स्थापित हुई, तो १८१६ ई० मे डच ईस्ट इण्डीज (मलय-द्वीपसमूह) हालैण्डको वापस कर दिया गया। अब यह इण्डोनेशियाके स्वाधीन गणतत्रके अतर्गत है।

डफरिन, फ्रेडरिक टेम्पिल हैमिल्टन-टेम्पिल ब्लैकाउड, मार्क्विस आफ—१८८४ से १८८८ ई० तक भारतका वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल। सामान्य तौरपर उसका शासनकाल शातिपूर्ण था, वैसे तृतीय बर्मा-युद्ध (दे०) (१८८५–८६ ई०) उसीके कार्यकालमे हुआ जिसके फलस्वरूप उत्तरी बर्मा ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यका अग बन गया। रूसी-अफगान सीमापर स्थित पजदेहपर रूसियोका कब्जा हो जानेके फलस्वरूप रूस तथा ब्रिटेनके बीच युद्धका खतरा पैदा हो गया था, लेकिन अफगानिस्तानके अमीर अब्दुर्रमान (दे०) (१८८०–१६०१ ई०)के शाति-प्रयास तथा लार्ड डफरिनकी विवेकशीलतासे युद्ध नही छिडने पाया। लार्ड डफरिनके कार्यकालमे ही १८८५ ई० का बगाल लगान कानून बना, जिसके अतर्गत किसानोको भूमिकी सुरक्षाकी गारटी दी गयी, न्याययुक्त लगान निर्धारित किया गया तथा जमीदारो द्वारा बेदखल किये जानेके अधिकारको सीमित कर दिया गया। किसानोके हितके लिए इसी प्रकारके कानून अवध और पजाबमे भी बनाये गये। लार्ड डफरिनके कार्यकालकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है १८८५ ई० मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसका प्रथम अधिवेशन बम्बईमे होना। उस समय इस घटनाकी महत्ता नही आकी गयी, लेकिन बादमे इसी सगठनके माध्यमसे भारतको १६४७ ई० मे स्वाधीनता प्राप्त हुई और तभीसे भारतीय गणराज्यका शासन इस पार्टीके हाथमे है। (सर अल्फ्रेड लायल कृत 'लाइफ आफ मार्क्विस आफ डफरिन ऐण्ड आवा')

डफरिन, लेडी हैरियट जार्जियाना—१८६२ ई० मे लार्ड डफरिनके साथ विवाह हुआ। भारतमे रहते हुए उसने 'नेशनल एसोसियेशन' नामक सस्थाकी स्थापना की, जिसका उद्देश्य भारतीय महिलाओके लिए पश्चिमी चिकित्सा-सुविधा उपलब्ध करना था। एसोसियेशनने काउण्टेस आफ डफरिन फण्डकी स्थापना की, जिससे कलकत्तामे लेडी डफरिन अस्पताल खोला गया।

डफ, रेवरेण्ड अलेक्जेण्डर—कलकत्तामे १८३० से १८६३ ई० तक स्काटिश प्रेसबिटेरियन पादरी। सभवत १८२३ ई० मे राजा राममोहन रायके अनुरोधपर चर्च आफ स्काटलैण्डने डफको भारतमे अग्रेजी शिक्षाके प्रचारके लिए भेजा। राजा राममोहन रायने उसका भारी स्वागत किया और उन्हीकी सहायतासे डफने १८३० ई० मे जनरल असेम्बलीज इन्स्टीट्यूशन नामक अग्रेजी स्कूल खोला। कालातरमे इस स्कूलने कालेजका रूप धारण कर लिया। पहले इसका नाम डफ कालेज था, लेकिन बादमे स्काटिश चर्च कालेज हो गया।

डफने बगालमे शिक्षा-प्रसार तथा समाज-सुधारके लिए बहुत कुछ किया। उसने भारतमे विश्वविद्यालयोकी स्थापना करानेमे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। कलकत्ता विश्वविद्यालय खुलनेपर वह उसकी प्रबन्ध समितिका आरम्भिक सदस्य रहा। १८५६ ई० से कई वर्षो तक वह बेथून सोसाइटीका अध्यक्ष रहा। वह पादरी था और भारतमे ईसाई धर्मके प्रचारके उद्देश्यसे आया था। अपनी पुस्तक 'इण्डिया ऐण्ड इण्डियन मिशन्स'मे उसने हिन्दू धर्मके बारेमे यहातक लिख डाला है कि "पतित व्यक्तियोके विकृत मस्तिष्कने जिन झूठे धर्मोकी सृष्टि की, उनमे हिन्दू धर्म सबसे आगे है।" स्वभावत भारतीय विद्वानो और ग्रामजनतामे डफके विरुद्ध भीषण आक्रोश उत्पन्न हुआ। केशवचन्द्र सेन तथा देवेन्द्रनाथ ठाकुरने डफका कडा विरोध किया। बगालके कुछ ही पढे-लिखे लोगोको वह ईसाई बनानेमे सफल हो सका और निराश होकर १८६३ ई० मे स्वदेश वापस लौट गया। उसकी मृत्यु १८७८ ई० मे हुई। (स्मिथ लिखित 'लाइफ आफ अलेक्जैण्डर डफ')

डफला—आसामकी पूर्वोत्तर सीमा (जो डफला पर्वतमाला-से लेकर आधुनिक दारग जिलेके उत्तर तक फैली हुई है) मे रहनेवाली एक जन-जाति।

डलहौजी, लार्ड—१८४८ से १८५६ ई० तक भारतका गवर्नर-जनरल। उसके प्रशासनकालमे ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यका विपुल विस्तार हुआ और शासन-सुधारके अनेक कदम उठाये गये। उसके कार्यकालमे दूसरा सिख-युद्ध (१८४८–४६) हुआ और पजाबको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमे मिला लिया गया। १८५० ई० मे दो अग्रेजोके प्रति दुर्व्यवहारके दडस्वरूप उसने सिक्किमके एक भागपर

अधिकार कर लिया और १८५२ ई० मे उसने दूसरा वर्मी-युद्ध छेडकर प्रोम नगर तक सम्पूर्ण उत्तरी वर्माको ब्रिटिश साम्राज्यका अग बना लिया। इस प्रकार ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य पेशावरसे वर्मा तक फैल गया, जिसमे बगालकी खाडीका पूरा तटवर्ती प्रदेश शामिल था। उसके मतानुसार भारतीयोके लिए देशी राजाओके शासनकी अपेक्षा ब्रिटिश शासन अधिक हितकर था। इसलिए उसने जब्तीका सिद्धात (डाक्ट्रिन आफ लैप्स) (दे०) ईजाद किया, जिसके अनुसार यदि ब्रिटिश सरकार द्वारा सरक्षित कोई देशी राजा निस्सतान मर जाता है तो उसके दत्तक पुत्रको राज्य प्राप्त करनेका अधिकार नही होगा और उसके राज्यको अग्रेजी राज्यमे मिला लिया जायगा। इस सिद्धान्तको लागू करके उसने सतारा (१८४८ ई०), जैतपुर तथा सभलपुर (१८४९ ई०), वाघाट (१८५० ई०), उदयपुर (१८५२ ई०), झासी (१८५३ ई०), नागपुर (१८५४ ई०) और करौली (१८५५ ई०)को विटिश साम्राज्यमे मिला लिया। वाघाट, उदयपुर और करौलीके राज्य वादको उच्च अधिकारियोके आदेशपर दत्तक पुत्रोको लौटा दिये गये। डलहौजीने कर्नाटक और तजोरकी नाममात्रकी स्वाधीनताको भी यह कहकर समाप्त कर दिया कि अब उनके स्वतत्र अस्तित्वकी कोई आवश्यकता नही है। १८५३ ई० मे भूतपूर्व पेशवा वाजीराव द्वितीयकी मृत्युपर उसने उसके दत्तकपुत्र ढोण्डू पत (जो नाना साहवके नामसे अधिक विख्यात है) को दी जानेवाली ८० हजार पौण्ड सालानाकी वह पेशन वद कर दी जो उसके धर्मपिता वाजीरावको मिलती थी। अतमे निदेशकमडल (कोर्ट आफ डायरेक्टर्स)के आदेशपर डलहौजीने १८५६ ई० मे अवधको भी ब्रिटिश साम्राज्यमे मिला लिया। इस प्रकार आठ वर्षोके अल्प शासनकालमे उसने भारतका राजनीतिक मानचित्र एकदम वदल दिया।

आतरिक प्रशासनमे भी डलहौजीने अनेक सुधार किये। बगालका प्रशासन उसने लेफ्टिनेंट-गवर्नर(१८५४) के सुपुर्द कर दिया। सार्वजनिक निर्माण विभाग स्थापित करके उसे ग्राण्ड ट्रक रोड आदि सडकोंके निर्माण और रख-रखावका भार सौंप दिया। उसके प्रशासनकालमे सार्वजनिक निर्माणके कार्योपर अधिक पैसा खर्च होने लगा। सिंचाई व्यवस्थापर पहलेसे कही अधिक ध्यान दिया गया और गगा नहरका निर्माण उसीने शुरू कराया। रेलवे लाइन विछानेकी एक सुविचारित योजना तैयार की गयी और १८५३ ई० मे वम्बईसे थाना तक पहली रेल लाइन-का उद्घाटन हुआ। १८५४ ई० मे कलकत्ता और रानी-गजके वीच दूसरी रेलवे लाइन चालू हुई। तार-व्यवस्था-का श्रीगणेश भी डलहौजीके जमानेमे ही हुआ और देश भरमे दो पैसे (तीन नया पैसा)की सामान्य दरपर डाक प्रणाली आरभ की गयी। भारतकी सार्वजनिक शिक्षा-प्रणालीमे सुधारके लिए उसने १८५४ ई० की शिक्षा सवधी घोषणा क्रियान्वित की और कलकत्ता, वम्बई एव मद्रास विश्वविद्यालयोकी स्थापनाके लिए प्रारंभिक कदम उठाये।

लार्ड डलहौजी स्वेच्छाचारी प्रवृत्तिका प्रशासक था और जो कुछ उचित और लाभदायक समझता था, वही करता था। वह दूसरो, विशेषरूपसे भारतीयोकी भावनाओकी कोई परवा नही करता था और उसने भारतीय राजाओ और साधारण जनता दोनोके ही मनमे गहरा असतोष उत्पन्न कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप १८५७ ई० मे प्रथम स्वाधीनता-सग्राम (सिपाही-विद्रोह) छिड गया। (सर ली वार्नर कृत 'लाइफ आफ डलहौजी')

डायर, जनरल—ब्रिटिश भारतीय सरकारका एक सेनाधिकारी। अप्रैल १९१९ ई० में वह अमृतसर (पजाव)मे तैनात था। इस वर्षके आरम्भमे रौलट ऐक्ट नामक अत्यत दमनकारी कानून वनाया गया। केन्द्रीय विधान परिषदके गैर-सरकारी (निर्वाचित) सदस्योंके विरोधके वावजूद यह कानून पास किया गया था। भारतीय जनमत-की इस प्रकारकी घोर उपेक्षा किये जानेसे समस्त भारतमे रोष उत्पन्न हुआ और दिल्ली, गुजरात, पजाव आदि प्रान्तोमे जगह-जगह इस कानूनके विरोधमे प्रदर्शन हुए। १० अप्रैलको अमृतसरमे जो प्रदर्शन हुआ, वह अधिक उग्र हो गया और उसमे चार यूरोपियन मारे गये, एक यूरोपीय ईसाई साध्वीको पीटा गया और कुछ वैंको और सरकारी भवनोको आग लगा दी गयी।

पजाव सरकारने तुरन्त वदलेकी कार्रवाई करनेका निश्चय किया और एक घोषणा प्रकाशित कर अमृतसरमे सभाओ आदिपर प्रतिवन्ध लगा दिया तथा नगरका प्रशासन जनरल डायरके नेतृत्वमे सेनाके सुपुर्द कर दिया। उक्त प्रतिवन्धको तोडकर जलियावाला वागमे सभा आयोजित की गयी। यह स्थान तीन तरफसे घिरा हुआ था। केवल एक ही तरफसे आने-जानेका रास्ता था। इस सभाका समाचार पाते ही जनरल डायर अपने ९० सशस्त्र सैनिकोके साथ जलियावाला वाग आया और वागमे प्रवेश एव निकासके एकमात्र रास्तेको घेर लिया। उसने आते ही वागमे निश्शस्त्र पुरुषों, स्त्रियो और वच्चोको विना किसी चेतावनीके गोली मारनेका आदेश दिया। यह-

गोलीकाण्ड १० मिनट तक होता रहा। सरकारी रिपोर्टके अनुसार ३७९ व्यक्ति मारे गये तथा १२०८ घायल हुए। हताहतोके उपचारकी कोई व्यवस्था नही की गयी और जनरल डायर सैनिकोके साथ सदर मुकाम वापस आ गया, मानो उसने एक ऊँचे कर्तव्यका पालन किया हो।

डायर कदाचित् कुछ यूरोपियनोकी हत्याके इस प्रतिशोधको पर्याप्त नही समझता था। अतएव उसने नगरमे मार्शल-ला लागू किया, जनताके विरुद्ध कठोर दण्डात्मक कार्रवाई तथा सार्वजनिक रूपसे कोडे लगाये जानेकी अपमानजनक आज्ञा दी। यह आदेश भी दिया कि जो भी भारतीय उस स्थानसे गुजरे, जहा यूरोपीय ईसाई साध्वीको पीटा गया था वह सडकपर पेटके बल रेंगता हुआ जाय। डायरकी यह कार्रवाई भारतीयोका दमन करनेके लिए नृशस शक्ति-प्रयोगका नग्न प्रदर्शन थी। समस्त भारतमे इसका तीव्र विरोध हुआ। रवीन्द्रनाथ ठाकुरने घृणापूर्वक 'सर'की उपाधि सरकारको वापस कर दी। लेकिन ब्रिटिश भारतीय सरकारने इस सार्वजनिक रोप-प्रदर्शनकी कोई परवाह नही की। इतना ही नही, पजाब सरकारने जनरल डायरकी इस बेहूदी कार्रवाईपर अपनी स्वीकृति प्रदान की और उसे सेनामे उच्च पद देकर अफगानिस्तान भेज दिया।

फिर भी इग्लैण्डमे कुछ भले अग्रेजोने जनरल डायरकी कार्रवाईकी निंदा की। एस्क्विथने जलियावाला बाग काण्डको "अपने इतिहासके सबसे जघन्य कृत्योमेसे एक" बताया। ब्रिटिश जनमतके दबावसे तथा भारतीयोकी व्यापक मागको देखते हुए भारत सरकारने अक्तूबर १९१९ मे एक जाच कमेटी नियुक्त की, जिसका अध्यक्ष एक स्काटिश जज, लार्ड हण्टर बनाया गया। कमेटीने जाचके पश्चात् अपनी रिपोर्टमे जनरल डायरकी कार्रवाईको अनुचित बताया। भारत सरकारने उक्त रिपोर्टको मजूर करते हुए जनरल डायरकी निंदा की और उसे इस्तीफा देनेके लिए विवश किया। लेकिन साम्राज्य-मदमे चूर अग्रेजोमे जनरल डायरके बहुतसे प्रशसक भी थे, जिन्होने चन्दा करके धन एकत्र किया और उससे जनरल डायरको पुरस्कृत किया। (देखिये **'हण्टर कमेटीकी रिपोर्ट' तथा पट्टाभि-सीतारामैया कृत 'कांग्रेसका इतिहास' प्रथम भाग, पृष्ठ १६५**)

डायोनीसियस–एक यूनानी दूत, जिसे मिस्रके सम्राट तालमी फिलाडेल्फस (लगभग २८५–४७ ई० पू०) द्वारा मौर्य सम्राट् बिन्दुसार अथवा अशोकके दरबारमे पाटलिपुत्र भेजा गया था। अशोकके शिलालेख सख्या १३ मे तालमीका उल्लेख है।

डिओडोरस–एक प्राचीन इतिहासकार, जिसने मेगस्थनीजके विवरणका आधार लेते हुए भारतपर किये गये सिकन्दरके आक्रमणका इतिहास यूनानी भाषामे लिखा है।

डिग्बी, जान–रगपुरका कलेक्टर, जिसकी अधीनतामे राममोहन राय (दे०)ने, जब वे केवल २० वर्षके थे, १८०९ ई० मे सरिश्तेदारकी हेसियतसे नौकरी शुरू की। इसी दौरान राममोहन रायने अग्रेजी पढी और कलेक्टरके पास आनेवाली अग्रेजीकी तमाम पत्र-पत्रिकाओको पढ-पढकर वे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक गतिविधियोसे परिचित हो गये।

डिसरायली, बेंजामिन, अर्ल आफ बीकन्सफील्ड–एक अग्रेज राजनीतिज्ञ और उपन्यासकार। १८३७ ई०मे ब्रिटिश पार्लमेण्टका सदस्य बना और अनुदार दलके पील-विरोधी गुटका नेता बन गया। वह पहले १८६८ ई० मे तथा बादमे १८७४–८० ई० मे ब्रिटेनका प्रधानमत्री रहा। दूसरी बार उसके प्रधानमत्रित्व-कालने भारतीय इतिहासपर अपनी छाप छोडी। १८७४ ई० मे स्वेज नहर कम्पनीके शेयर खरीद कर उसने भारत और ब्रिटेनके बीच एक सीधा निकटका रास्ता खोलनेमे मदद दी। उसीने महारानी विक्टोरियाको १८७७ ई० मे भारतकी सम्राज्ञीकी उपाधिसे विभूषित किया। इस प्रकार उसने भारतके ऊपर ब्रिटिश नरेशके सार्वभौम प्रभुत्वपर बल दिया। उसने वाइसराय लार्ड लिटन (दे०) (१८७६–८०)की "अग्रसर नीति"का समर्थन करते हुए द्वितीय अफगान युद्ध (दे०) (१८७८-७९) छेड दिया।

डी'एक, काउंत–फासका एक नौसैनिक अधिकारी। यह फासके उस जहाजी बेडेका कमाडर था जिसपर सवार होकर कर्नाटकमे अग्रेजो और फासीसियोके बीच हो रहे युद्धके आखिरी चरणमे १७५८ ई० मे काउत दि लाली और फासीसी सेना भारत आयी थी। प्रारम्भमे डी'एकको भारी सफलता मिली और उसने पीकाकके नेतृत्वमे ब्रिटिश बेडेको मद्रासके समुद्रतटसे दूर भागनेको मजबूर कर दिया। किन्तु पीकाकका बेडा शीघ्र ही लौट आया और उसने कारीकलसे कुछ दूरीपर डी'एकको परास्त कर दिया (१७५८)। डी'एककी इस पराजयसे चौथे कर्नाटक-युद्धमे फासीसियोको बहुत नुकसान पहुँचा और उसे फास वापस लौट जाना पडा।

डुरंड रेखा–सर मार्टिमर डुरड (दे०) की अध्यक्षतामे गठित अफगान-सीमा आयोगने १८९३ ई०मे अफगानिस्तान तथा भारतके बीच यह सीमा-रेखा निर्धारित की थी। दोनो देशोके बीच जो कबायली क्षेत्र था, उसके दो भाग कर दिये गये। एक भाग अफगानिस्तानके नियन्त्रणमे और दूसरा

भाग ब्रिटिश भारतीय सरकारके नियत्रणमे कर दिया गया। ब्रिटिश नियत्रणमे खैवर क्षेत्रके अफरीदी, महसूद, वजीरी तथा स्वात कवीले और चित्राल तथा गिलगिटके क्षेत्र आये।

डुरंड, सर हेनरी मार्टीमेर—१८७३ ई० मे २३ वर्षकी आयुमे इण्डियन सिविल सर्विसमे प्रवेश किया। उसका पिता सर हेनरी मेरियन डुरड था जो वगाल इजीनियर्सका अफसर होकर भारत आया और १८७० ई० मे पजावका गवर्नर हो गया। लेकिन १८७१ ई० मे एक दुर्घटनामे उसकी मृत्यु हो गयी। हेनरी मार्टीमेर डुरड १८७९ ई० मे कावुल-अभियानके दौरान सर फ्रेडरिक रावर्ट्सका राजनीतिक सचिव था। १८८४ ई० मे वह भारत सरकारका विदेश-सचिव हो गया और इस पदपर १८९४ ई० तक रहा। १८९३ ई० मे एक ब्रिटिश प्रतिनिधि-दलके साथ अफगानिस्तानके अमीर अव्दुर्रहमानके पास जाकर उसने वडी चतुराईके साथ अमीरको एक सीमा-आयोगकी स्थापनाके लिए राजी कर लिया। वही इस आयोगका अध्यक्ष नियुक्त किया गया। इस आयोगने प्रसिद्ध डुरड रेखा (दे०) निर्धारित की जो भारत और अफगानिस्तानके वीच स्थायी सीमा वनी। पाकिस्तान आज भी डुरड रेखाको पाकिस्तान और अफगानिस्तानके वीचकी सीमा रेखा वनाये रखनेपर वल देता है।

डूप्ले, जोसेफ फ्रैक्वाय—फ्रासीसी ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी व्यापारिक सेवामे भारत आया और वादको १७३१ ई० मे चन्द्रनगरका गवर्नर वन गया। १७४१ ई० मे वह पाण्डिचेरीका गवर्नर-जनरल वनाया गया और १७५४ ई० तक इस पदपर रहा, जहाँसे वापस वुला लिया गया। वह योद्धा न होते हुए भी कुशल राजनीतिज्ञ और राजनेता था। उसने अपनी दूरदृष्टिसे यह देख लिया (जैसा कि कोई नही कर सका) कि १८वी शताव्दी ई० के पचम दशकमे दक्षिण भारतके राजनीतिक सतुलनमे परिवर्तन घटित हो रहा है। तत्कालीन दक्षिण भारतकी राजनीतिक व्यवस्थाकी कमजोरियोको उसीने समझा और इस वातको भी महसूस किया कि एक छोटी-सी यूरोपियन सेना लम्वी दूरीकी मार करनेवाली तोपो, जल्दी गोली दागनेवाली पैदल सिपाहियोकी वन्दूको और प्रशिक्षित सैनिकोकी सहायतासे दक्षिण भारतकी राजनीतिमे निर्णायक भूमिका अदा कर सकती है। उस समय फ्रास और इग्लैण्डके वीच युद्ध चल रहा था। डूप्लेका उद्देश्य मद्रासपर कव्जा करके ब्रिटिश शक्तिको पगु वना देना था। इसी उद्देश्यसे उसने फ्रासीसी जलसेनापति ला-वोर्दनेको अपना जहाजी वेडा सशक्त करनेके लिए धन दिया और सितम्वर १७४६ ई० मे मद्रास अग्रेजोसे छीन लिया। ला-वोर्दने अग्रेजोसे घूस लेकर मद्रास वापस कर देना चाहता था लेकिन डूप्लेने वडी चतुराईसे ऐसा नही होने दिया। वरसात आनेपर ला-वोर्दनेके वेडेने जव मद्राससे हटकर आयल्स आफ फ्रासमे अड्डा जमाया, तो डूप्लेने स्वय जाकर मद्रासपर अधिकार किया।

उसने अग्रेजोके निकटवर्ती सेण्ट डेविडके किलेको भी लेनेकी कोशिश की लेकिन विफल हो गया। किंतु अन्य स्थानोपर उसे उल्लेखनीय सफलताए मिली। कर्नाटकके नवाव अनवरुद्दीनने एक वडी सेना मद्रासपर कव्जा करनेके लिए भेजी, लेकिन उसे दो वार फ्रासीसी-भारतीय सेना द्वारा परास्त कर दिया गया। ये दोनो युद्ध कावेरीपाक और सेण्ट टोममे हुए। यूरोपमे फ्रास और इग्लैण्डके वीच युद्ध १७४८ ई० मे समाप्त हो गया। दोनो देशोके वीच एक्स-ला-चैपेलकी सधि हुई जिसके अनुसार मद्रास अग्रेजोको वापस कर दिया गया। इस प्रकार डूप्लेने जो श्रम किया, वह व्यर्थ गया। कुछ भी हो, डूप्लेने यह सिद्ध कर दिया कि यूरोपीय ढगसे प्रशिक्षित और आधुनिक शस्त्रोसे लैस छोटी-सी फ्रासीसी भारतीय सेना इस देशकी विशाल भारतीय सेनाओकी अपेक्षा कही अधिक श्रेष्ठ है।

डूप्लेने अपने इस अनुभवका प्रयोग करके दक्षिण भारतकी रियासतोके आन्तरिक मामलोमे दखल देना शुरू कर दिया। ये रियासते वाहरसे देखनेमे वडी सशक्त जान पडती थी, किन्तु सैनिक दृष्टिसे वहुत कमजोर तथा आन्तरिक विग्रहसे पीडित थी। १७४८ ई० मे हैदरावादके निजामके मरनेपर जव उत्तराधिकारका झगडा चला, तो डूप्लेने हस्तक्षेप किया और निजामके पुत्र नासिरजगके विरुद्ध पोते मुजफ्फर जगका पक्ष लिया। इसी रीतिसे डूप्लेने कर्नाटकमे नवाव अनवरुद्दीनके विरुद्ध चन्दासाहवका पक्ष-समर्थन किया। आरभमे डूप्लेको कुछ सफलता मिली। १७४९ ई० मे आम्वूरकी लडाईमे अनवरुद्दीन मारा गया। उसका पुत्र मुहम्मद अली भागकर त्रिचनापल्ली पहुँचा जहा चन्दासाहव और फ्रासीसियोकी सेनाने उसे घेर लिया।

दूसरी ओर हैदरावादमे १७५० ई० मे नासिरजग मारा गया और फ्रासीसी जनरल वुसीके सरक्षणमे मुजफ्फरजग निजामकी गद्दीपर वैठा दिया गया। नये निजामने डूप्लेको कृष्णा नदीके दक्षिणमे समस्त मुगल प्रदेशका नाजिम मान लिया। नये निजामने पाण्डिचेरीके आसपासके क्षेत्र तथा उडीसाके तटीय क्षेत्र और मसुलीपट्टम् भी फ्रासीसियोको दे दिये। इस प्रकार डूप्लेने भारतमे फ्रासीसी

साम्राज्यकी स्थापनाके स्वप्नको साकार होते देखा। लेकिन इसके बाद ही उसका पासा पलटने लगा। वह जिन फ्रासीसी जनरलोपर निर्भर था, वे बडे अयोग्य साबित हुए, फलत उसकी योजनाए विफल होने लगी। फ्रासीसी सेनापति त्रिचनापल्लीपर कब्जा न कर सके। फ्रासीसियो द्वारा त्रिचनापल्लीकी घेराबदी इतने लम्बे समयतक चली कि अग्रेजी सेना कर्नाटकके शाहजादेकी मददके लिए आ गयी। दूसरी ओर राबर्ट क्लाइवके नेतृत्वमे एक अग्रेजी सेनाने कर्नाटककी राजधानी आर्काटके किलेको घेर लिया। यह घेरा ५० दिन तक चला। कुछ और अग्रेजी सेना आ जानेपर क्लाइवने चन्दा साहबको पराजित करके मार डाला।

इसी बीच नया निजाम मुजफ्फरजग भी मर गया। उसकी जगह सलाबजग गद्दीपर बैठा। उसने भी फ्रासीसियोसे मैत्री कायम रखी। डूप्ले त्रिचनापल्लीपर कब्जा करनेका बराबर प्रयत्न करता रहा। उसने तजौरके राजाको तटस्थ रखने, मराठा सरदार मुरारीरावका समर्थन प्राप्त करने और मैसूरके शासकको अपनी ओर मिलानेमे सफलता प्राप्त की और ३१ दिसम्बर १७५२ ई० को त्रिचनप्पल्लीकी घेराबदी पुन शुरू कर दी। यह घेराबदी १७५४ के मध्य तक चली। जब यह सब कुछ हो रहा था, फ्रासकी सरकारने डूप्लेकी नीतियोकी महत्ताको नही समझा और भारतमे होनेवाली इन लडाइयोके भारी खर्चोसे वह परेशान हो उठी। फ्रासीसी सरकारने डूप्लेका कार्य पूरा होनेके पहले ही उसे १७५४ ई०मे स्वदेश वापस बुला लिया और उसके स्थानपर १ अगस्त १७५४ ई० को जनरल गोदेहूको नया गवर्नर-जनरल बना दिया। गोदेहूने आते ही १७५५ ई०मे अग्रेजोसे सधि कर ली। इस सधिके अनुसार तय पाया गया कि अग्रेज और फ्रासीसी दोनो ही भारतीय रियासतोके आन्तरिक मामलोमे हस्तक्षेप नही करेगे और जितना-जितना क्षेत्र अग्रेजो और फ्रासीसियोके पास है, वह उनके पास बना रहेगा।

इस प्रकार फ्रासीसी सरकारने ही डूप्लेकी नीतिको विफल कर दिया। यह अवश्य हुआ कि हैदराबादके निजामके दरबारमे फ्रासीसियोका प्रभाव बना रहा और वहा जनरल बुसीके नेतृत्वमे फ्रासीसी भारतीय फौज तैनात रही। निराश डूप्लेकी मृत्यु फ्रासमे १७६३ ई०मे गरीबीकी दशामे हुई।

डूप्ले भले ही विफल रहा हो, यह मानना पडेगा कि वह भारतीय इतिहासका एक प्रतिभाशाली और शक्तिमान व्यक्ति था। डूप्लेने जिस राजनीतिक दूरदृष्टिका परिचय दिया, उससे अग्रेजोने बादमे स्वय लाभ उठाया। यद्यपि फ्रासीसी-भारतीय साम्राज्यकी स्थापना करनेका डूप्लेका स्वप्न साकार नही हुआ, तथापि ब्रिटिश-भारतीय साम्राज्यकी स्थापना मुख्यत डूप्लेकी दूरदृष्टिके ही आधारपर हुई। **(पी० कल्टू लिखित 'डूप्ले', एच० एच० डाडवेल लिखित 'डूप्ले एण्ड क्लाइव')**

डूमा, जनरल–फ्रासीसी उपनिवेश पाण्डिचेरीका गवर्नर। उसने पाडिचेरीके विकासमे बडा योग दिया। १७४४ ई० मे उसके स्थानपर डूप्ले आया जिसकी प्रसिद्धिके आगे डूमाकी सफलताए धूमिल पड गयी।

डेन, सर लुई–१९०४ ई० मे ब्रिटिश भारतीय मिशनका नेता बनाकर अफगानिस्तान भेजा गया। यह मिशन दिसम्बर १९०४ ई०से मार्च १९०५ ई० तक काबुलमे रहा और उसने वहाँके तत्कालीन शासक अमीर हबीबुल्ला खाँके साथ सबध सुधारनेमे सफलता प्राप्त की।

डेनिश ईस्ट इडिया कंपनी–१६१६ ई० मे स्थापित। इसने १६२० ई० मे भारतके पूर्वी समुद्रतटपर त्रक्वेबारमे अपनी पहली व्यापारिक कोठी स्थापित की। १७५५ ई० मे उसने बगालमे श्रीरामपुरमे अपनी बस्ती स्थापित की। किंतु डेनिश ईस्ट इडिया कम्पनी कभी पनप नही सकी और १८४५ ई०मे उसने अपनी कोठिया ब्रिटिश सरकारको बेच दी।

डे, फ्रासिस–अरमा गाँव स्थित ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी फैक्ट्रीका मुखिया। उसने १६४० ई० मे स्थानीय राजासे मसुलीपट्टम्से २३० मील दक्षिणकी ओर जमीनकी एक पतली पट्टी प्राप्त की, साथ ही वहापर एक किला बनानेकी अनुमति भी ले ली। उसका नाम फोर्ट सेण्ट जार्ज पडा। बादमे चद्रगिरिके राजाने भी इस अनुदानपर अपनी स्वीकृति दे दी। यह राजा उपर्युक्त स्थानीय राजाका अधीश्वर था। कुछ ही वर्षोमे फोर्ट सेट जार्जके चारो ओर एक शहर बस गया, जिसका नाम 'मद्रास' पडा जो बादमे चोलमण्डल तटपर ईस्ट इडिया कम्पनीका मुख्यालय बन गया। फ्रासिस डे साहसिक और दूरदर्शी व्यक्ति था। उसीने जोर देकर बगालकी खाडीके किनारे स्थित कम्पनीकी बस्तियोको न छोडनेका आग्रह किया था। बादकी घटनाओने सिद्ध कर दिया कि फ्रासिस डे सही ढगसे सोच रहा था।

डेरियस (दारा)–देखिये, 'दारयवहु'।

डोरीजियफ–एक मगोल, जो जन्मत रूसकी प्रजा था। तिब्बतके दलाई लामाकी सेवामे वह उच्च पदपर पहुँच गया। १८९८ और १९०१ ई० के बीच उसने रूसकी

अनेक वार यात्रा की। १९०१ ई० मे उसने रूसके जारके दरवारमे जाकर उससे मुलाकात की। डोरीजियफकी यात्राओका विज्ञापित उद्देश्य तिव्वतमे वननेवाले वौद्ध मदिरोके लिए रूसी वौद्धोसे चन्दा वसूल करना था। यद्यपि रूसी सरकारने सेण्ट पीटर्सवर्ग स्थित व्रिटिश राजदूतको यह आश्वासन दिया कि डोरीजियफकी यात्राओका कोई राजनीतिक उद्देश्य नही है, तथापि व्रिटिश भारतके वाइसराय लार्ड कर्जनने तिव्वत सरकारके विरुद्ध अनेक निराधार आरोप लगाकर १९०४ ई० मे सर फ्रासिस यगहसवैण्ड (दे०)के नेतृत्वमे तिव्वतपर चढाई करनेके लिए एक सैन्यदल भेज दिया।

ड्यूक आफ कनाट–महारानी विक्टोरियाका पुत्र और इग्लैण्डके राजघरानेका प्रमुख सदस्य। मार्च १९२१ ई० मे वह भारत आया और गवर्नमेन्ट आफ इडिया एक्ट १९१९ ई०के अतर्गत भारतमे लागू नये सविधानका श्रीगणेश किया। इस रीतिसे शाही हाथोसे नये शासन-विधानका शुभारम्भ करानेपर भी वह भारतीयोको सतोष नही प्रदान कर सका और भारत और इग्लैण्डके सम्वध कटु वने रहे।

ड्रेक, रोगर–जून १७५६ ई० मे जव नवाव सिराजुद्दौला (दे०)ने कलकत्तापर हमला किया तो ईस्ट इण्डिया कम्पनीके फोर्ट विलियमका गवर्नर था। ड्रेक किलेकी रक्षा करनेके वजाय स्त्री-वच्चोको लेकर नदीमे खडे एक जहाजपर सवार होकर भाग खडा हुआ। उसने किलेकी रक्षा करनेवाली सेनाको उसके भाग्यपर छोड दिया और कलकत्तासे दक्षिणकी ओर भाग गया। जनवरी १७५७ ई०मे जव वाटसन तथा क्लाइवने पुन कलकत्तापर अधिकार कर लिया तो ड्रेकको फिर गवर्नर वना दिया गया। इसके वाद ड्रेकके वारेमे कोई उल्लेख नही मिलता।

ढ

ढाका–वाँगलादेशकी राजधानी। यह नगर ब्रह्मपुत्र और गगा (पद्मा)को जोडनेवाली वूढी गगा नदीके तटपर वसा हुआ है। ढाका १६०८ ई० मे मुगलोके सूवा वगालका मुख्यालय था और उसका नाम वादशाह जहाँगीरके नामपर जहाँगीरनगर कर दिया गया था। आसामपर मुगलोका पहला हमला ढाकामे ही किया गया था जव मीर जुमला वहाँसे वढता हुआ उत्तरी आसाममे अहोम राज्यकी राजधानी तक पहुँच गया था। वहाँसे मीर जुमला ढाका वापस लौट आया और कुछ समय वाद वही उसकी मृत्यु हो गयी। मीर जुमलाके उत्तराधिकारी शायस्ता खाँने १६६३ ई० से तीस वर्षो तक वगालका शासन ढाकासे ही किया। इग्लैण्डकी ईस्ट इडिया कपनीने महीन वढिया सूती वस्त्रो, विशेषरूपसे मलमलका, जिनको वनानेमे ढाकाके वुनकरोका वडा नाम था, व्यापार करनेके लिए ढाकामे एक कोठी स्थापित की। १७०५ ई० मे जव मुर्शिद कुली खा वगालका सूवेदार वना तो वह मुख्यालय ढाकासे हटाकर मुर्शिदावाद ले गया। इसके वाद दो सौ वर्षो तक ढाका उपेक्षित रहा। १९०५ ई० मे वह पूर्वी वगाल और आसाम प्रातका सदर मुकाम वना दिया गया। लेकिन उसको यह गौरव कुछ ही समय तक हासिल रहा, क्योकि १९१२ ई०मे पूर्वी वगालके जिले पुन वगालमे मिला दिये गये और आसामको चीफ कमिश्नरके अधीन अलग प्रात वना दिया गया। १९२० ई० मे ढाकामे विश्वविद्यालयकी स्थापना हुई और १९४७ ई० मे भारतकी आजादी और विभाजनके वाद वह पूर्वी पाकिस्तानकी राजधानी वना दिया गया। दिसम्वर १९७१ ई० मे पाकिस्तानकी तानाशाहीके खिलाफ ऐतिहासिक लडाई जीतकर पूर्वी पाकिस्तान स्वतत्र सार्वभौम गणतत्र 'वागला देश' वन गया और ढाका उसकी राजधानी हो गयी।

त

तक्षशिला–अति प्राचीन नगर, जो पश्चिमी पजावमे रावलपिण्डीसे उत्तर-पश्चिमकी ओर २० मीलकी दूरीपर सरायकला नामक रेलवे स्टेशनके निकट स्थित था। सिकन्दरके आक्रमणके समय, यह राजा आम्भि (दे०)की राजधानी थी और चिकित्सा-शास्त्रके केन्द्रके रूपमे विख्यात था। कहा जाता है कि राजा विम्वसार (दे०)के चिकित्सक जीवकने तक्षशिलामे सात वर्ष वैद्यकशास्त्रका प्रशिक्षण प्राप्त किया था। इस स्थानपर विस्तृत पुरातात्त्विक पर्यवेक्षणके परिणामस्वरूप प्राक्-मौर्य, मौर्य, यवन और कुषाणकालीन स्मारकोका उद्घाटन हुआ है। हिन्दू, जैन एव वौद्ध साहित्यमे तक्षशिलाका विशेष उल्लेख हुआ है। अपोलोनियस नामका यूनानी यात्री जिसने ४३–४४ ईसवीमे तक्षशिलाका भ्रमण किया था, नगरका विस्तृत विवरण लिखा है। अशोक (दे०) के कालमे तक्षशिलामे राजप्रतिनिधि (उपराजा) रहता था। यवन और

कृपाण (दे०) शासकोके कालमे भी यह राजनीतिक केन्द्र रहा। सातवी शताब्दीमे यह कश्मीर राज्यका अग हो गया। ११वी शताब्दीके प्रारभमे सुल्तान महमूद (दे०)की पजाब-विजयके उपरान्त तक्षशिलाका महत्त्व कम होता गया और वह एक वीरान स्थल बन गया।
(सर जॉन मार्शल कृत 'गाइड टु टैक्शिला')

तबकाते अकबरी–सम्राट् अकबरके कालका आधिकारिक इतिहास ग्रन्थ। दरबारी इतिहासकार निजामुद्दीन अहमदने इसे फारसीमे लिखा था। तिथि तथा भौगोलिक वर्णनकी दृष्टिसे यह सर्वाधिक विश्वसनीय ग्रथ है।

तबकाते नासिरी–यह मिनहाजुद्दीन सिराज (दे०) द्वारा लिखित दिल्लीके प्रारम्भिक सुल्तानोका इतिहास है। सिराजने इस ग्रथकी रचना अपने आश्रयदाता नासिरुद्दीन (दे०)के राज्यकालमे की थी।

तमिळगम्–तमिल देश, जिसके अतर्गत तीन प्राचीन राज्य–पाण्ड्य, चोल और चेर अथवा केरल स्थित थे। इसका विस्तार उत्तरमे मद्रासके सौ मील उत्तर पश्चिम पुलीकट और तिरुपति पहाड़ियो तक, दक्षिणमे केप कमोरिन तक, पूरबमे कारोमण्डल घाट तक और पश्चिममे पश्चिमी घाट तक था। यहाँ अधिकाश लोग तमिल भाषा बोलते थे, जिसका साहित्य प्राचीन एव समृद्ध है। यहाँके प्राचीन निवासी अधिकाश द्रविड लोग थे, किन्तु बादमे बहुतसे आर्य भी बस गये हैं। तमिल भाषा भी सस्कृत व्याकरण और वाक्य-विन्याससे प्रभावित और परिवर्तित है। तमिल साहित्यके सर्वाधिक प्रसिद्ध और लोकप्रिय ग्रथ 'कुरल', और 'मणिबेकलै' हैं। इनमेसे 'कुरल' गोदावरीके दक्षिणमे सर्वाधिक लोकप्रिय एव सम्मानित है।

तराइनका युद्ध–११९१ ई० और ११९२ ई० मे दिल्ली और अजमेरके चौहान राजा पृथ्वीराज (दे०) और शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीके मध्य हुआ। तराइनके पहले युद्धमे पृथ्वीराजने शहाबुद्दीनको परास्त किया। वह घायल होकर भाग खडा हुआ। परन्तु एक ही वर्ष बाद ११९२ ई० मे होनेवाले दूसरे युद्धमे शहाबुद्दीनने पृथ्वीराजको परास्त करके मार डाला। इस दूसरे युद्धमे विजयके बाद शहाबुद्दीनने दिल्लीपर अपना अधिकार कर लिया। इसके फलस्वरूप पूरा उत्तरी भारत कई शताब्दियोतक मुसलमानोके शासनमे रहा।

तरावड़ीका युद्ध–देखिये तराइन, जो तरावडीका दूसरा नाम है।

तर्दी बेग–एक मुगल सेनापति जिसे १५५५ ई० मे हुमायू (दे०)के मरनेके तुरत बाद बैरम खाँ (दे०) द्वारा दिल्लीकी सुरक्षाका भार सौपा गया था, परन्तु वह अपने कार्यमे असफल रहा। दुष्परिणाम-स्वरूप १५५६ ई० मे दिल्लीको हेमू (दे०)ने विजित कर अपने अधिकारमे ले लिया। इस असफलताके लिए बैरमखाकी आज्ञासे उसका वध कर दिया गया।

तर्मशीरी–मगोलोकी चगताई प्रशाखाका खान (शासक)। इसने १३२८–१३२९ ई० मे भारतपर आक्रमण किया और दिल्लीके निकट तक पहुँच गया। मोहम्मद तुगलकने उसे अपनी फौजे वापस ले जानेके लिए प्रेरित किया।

तहमस्प, शाह–फारसका बादशाह, जिसकी शरण १५४४ ई०मे निर्वासित मुगल बादशाह हुमायू (दे०)ने ली थी। शरण देनेके साथ ही उसने मुगल बादशाहको सैन्य सहायता भी दी जिसके फलस्वरूप हुमायू कधार और काबुलको १५४५ ई० मे अपने अधीन करनेमे समर्थ हो सका और अन्तत भारतीय साम्राज्यका पुन अधीश्वर हो गया।

ताजमहल–भारतमे मुगल शासनका सर्वाधिक प्रसिद्ध स्मारक। इस मकबरेको बादशाह शाहजहाँ (दे०)ने आगरामे अपनी प्रिय बेगम मुमताज महल (दे०)के मजारपर बनवाया है। इसका निर्माणकार्य १६३२ ई० मे आरम्भ हुआ था और १६५३ ई० मे बाईस वर्षमे पूरा हुआ, जिसमे पचास लाख रुपये खर्च हुए थे। अपने सौदर्यके कारण यह सारे ससारमे विख्यात है। इसका नकशा उस्ताद ईसा नामक भारतीय वास्तुकारने बनाया था। हो सकता है कि उसने नक्शा बनानेमे किसी इतालवी अथवा फ्रासीसी वास्तुकारकी सहायता ली हो या वह उसकी मौलिक कृति हो। ताजमहल आजभी आगराके निकट यमुनाके किनारे स्थित है और ससारके सभी भागोसे हजारो यात्री उसे देखने आते हैं। इसे 'सगमरमरकी स्वप्निल रचना' कहा जाता है।
(स्मिथ, वी. ए., 'हिस्ट्री ऑफ दि फाइन आर्ट्स इन इडिया')

ताजुद्दीन यिल्दिज–देखिये, 'यिल्दिज़'।

तातार खाँ–देखिये, 'नासिरुद्दीन मुहम्मद शाह' (गुजरात)।

तात्या जोग–जसवन्तराव जोगका मत्री। इसने तृतीय मराठा-युद्ध (दे०) के बाद होल्कर राज्यके पुनर्गठन और पुनरुत्थानमे विशेष योग दिया था।

तात्या टोपे–सिपाही-विद्रोह (दे०) मे विप्लवियोकी ओरसे लडनेवाला प्रख्यात मराठा सेनानायक। वह नाना साहब (दे०) का विशेष सहयोगी तथा आदोलनकारियोका सशक्त समर्थक था। वह अग्रेजोका प्रबल विरोधी था। विप्लवियो द्वारा कानपुरपर अधिकार करनेके समय वह उपस्थित था। बीबीगढमे फिरगी नर-नारियो तथा बच्चोका सहार उसके सामने हुआ। वह सेनानायक, रणनीति-

वेत्ता, सगठनकर्ता था। बीस हजार सैनिकोकी ग्वालियर-सेनाका नायक बनकर उसने कानपुरमे अग्रेजी सेनानायक विंढमको पराभूत किया। सर कॉलिन कैम्पवेल द्वारा कानपुरमे भगाये जाने और परास्त किये जानेपर तात्याने रानी झासीसे मिलकर मध्यभारतमे भीषण युद्ध छेड दिया, किन्तु वेतवाके युद्धमे सर ह्यू ग रोज (दे०) द्वारा परास्त हो गया। इन पराजयोंने तात्याको हतोत्साहित नही किया। कुछ ही महीनोंमे उसने रानी झाँसीके साथ ग्वालियरकी दिशामे प्रयाण किया, सिंधिया (शिन्दे) की सेनाको विजित किया और सिंधिया आगरामे अग्रेजोकी शरणमे चला गया। नानासाहबको पेशवा घोषित किया गया और उसने सभी मराठोको अग्रेजोंके विरुद्ध खड्गहस्त करनेका प्रयास किया। परन्तु ह्यू गने ग्वालियरपर कब्जा कर लिया और उसे मोरार और कोटाके युद्धोमे पराजित कर दिया। इन्ही युद्धोमे झाँसीकी रानी भी लडते हुए मारी गयी। तात्या पुन भाग गया और उसने आत्मसमर्पण नही किया। जगह-जगह उसका पीछा किया गया, पर वह बच निकला। अतमे अप्रैल १८५९ ई० मे सिंधियाके सामन्त मानसिहने विश्वासघात करके उसे पकडवा दिया। उसपर ब्रिटिश अदालतमे मुकदमा चलाया गया और विद्रोह और हत्याका अभियोग लगाया गया, परन्तु उसने यह माननेसे इनकार कर दिया कि ब्रिटिश अदालतको उसके विरुद्ध सुनवाई करनेका अधिकार है। अतत उसे फाँसीकी सजा दे दी गयी।

तानसेन–एक प्रख्यात सगीतज्ञ। यह सम्राट् अकबरका दरबारी गायक था। कहा जाता है कि 'भारतमे सैकडो वर्षोंसे तानसेनके समान गायक नही हुआ'। उसने मानसिह (दे०)के शासनकालमे ग्वालियरमे प्रशिक्षण प्राप्त किया और वही उसका अन्तिम सस्कार किया गया। बादशाह अकबरके दरबारमे उसका आगमन इतनी महत्त्वपूर्ण घटना मानी गयी कि बादशाहने उसका एक रगीन चित्र १५६२ ई० मे बनवाया था।

ताम्रपर्णी–तिर्नेवेल्ली जिलेकी एक नदीका नाम। अशोकके स्तम्भलेख दो और तेरहमे सीलोनको ताम्रपर्णी कहा गया है।

ताम्रलिप्ति–प्राचीन नगर। इस स्थानपर पश्चिमी बगालका मिदनापुर जिलेका तामलुक नगर स्थित है। पहले यह समुद्रके निकट था (गगाका मार्ग बदल जानेके कारण आधुनिक तामलुक समुद्रसे दूर हो गया है), पाँचवीं शताब्दी-मे यह व्यस्त बन्दरगाह था। ताम्रलिप्तिमे ही प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान (दे०), जिसने ४०१से ४१० ई०के बीच भारतका भ्रमण किया, जलपोतपर सवार होकर स्वदेश वापस गया था।

तारकी पहली लाइन–भारतमे १८५४ ई०मे स्थापित की गयी। यह कलकत्तासे आगरा तक ८०० मील लम्बी थी। सिपाही-विद्रोह (प्रथम स्वाधीनता-सग्राम)के समयमे अग्रेजोको इससे भारी लाभ हुआ। १८५७ ई० तक इसका विस्तार पहले लाहौर और फिर पेशावर तक कर दिया गया। इसके बाद इसका विस्तार सारे भारतमे कर दिया गया। अब भारत और ससारके सभी देशोंके बीच तारकी व्यवस्था है।

तारानाथ–प्रसिद्ध तिब्बती लेखक और इतिहासकार जो सत्रहवीं शताब्दीमे हुआ। उसके ग्रथोंमे तिब्बती परम्परासे सुरक्षित भारतके प्रारम्भिक कालका इतिहास मिलता है। यह अन्य सूत्रोंसे प्राप्त सूचनाओंकी पुष्टि तथा अन्तरालो-की पूर्तिके लिए उपयोगी है।

ताराबाई–शिवाजी प्रथमके द्वितीय पुत्र राजाराम (दे०)की पत्नी। १७०० ई०मे पतिकी मृत्युके उपरान्त यह अपने अल्पवयस्क पुत्र शिवाजी तृतीयकी सरक्षिका तथा प्रति-शासक बनी और उसके नामसे मराठा राज्यका शासन-प्रबन्ध सम्हाला तथा मुगल सम्राट् औरगजेबसे अनवरत युद्ध किया। उसके प्रोत्साहनपूर्ण नेतृत्वमे मराठोंने फिरसे मुगल सल्तनतके बराड, गुजरात और अहमदनगरके इलाकोंपर हमले करने शुरू कर दिये। इसमे उसे अभूतपूर्व सफलता, सम्मान और धन मिला। १७०७ ई०मे उसके पतिके अग्रज शम्भूजीके पुत्र और उत्तराधिकारी शाहू अथवा शिवाजी द्वितीयको मुगलोंने जब बन्दीगृहसे मुक्त कर दिया, तब ताराबाई बडी विकट स्थितिमे पड गयी। शम्भूजीने महाराष्ट्र आकर अपनी पैतृक सम्पत्तिका अधिकार माँगा। उसको शीघ्र पेशवा बालाजी विश्वनाथके नेतृत्वमे बहुतसे समर्थक मिल गये। ताराबाईका पक्ष कमजोर पड गया और उसे शाहूको मराठा साम्राज्यका छत्रपति स्वीकार कर लेना पडा। फिर भी वह अपने पुत्र शिवाजी तृतीयको सतारामे राजपदपर बनाये रखनेमे सफल हुई। १७००से १७०७ ई० तकके सकटकालमे ताराबाईने मराठा राज्यकी एकसूत्रता और अखण्डता बनाये रखकर अमूल्य सेवा की। बादमे उसके पुत्र शिवाजी तृतीयको राजा शाहूने गोद लेकर अपना उत्तराधिकारी घोषित किया।

तालपुरके अमीर–सिंधके अमीरो (दे०)की तीन शाखाओंमेसे एक, जो १८४३ ई० मे अग्रेजो द्वारा परास्त, पदच्युत और निर्वासित किये गये।

तालीकोटका युद्ध–रामराजा (दे०) जो विजयनगर (दे०)की सेनाका नेतृत्व कर रहा था, तथा अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डाके सुलतानोंकी सयुक्त सेनाके बीच २३ जनवरी

१५६५ ई०को हुआ। इस युद्धमे रामराजा परास्त होकर वीरगतिको प्राप्त हुआ एव विजयनगरकी सेना पूर्णत ध्वस्त हो गयी। यह एक निर्णायक युद्ध था जिसके परिणामस्वरूप विजयनगरके हिन्दूराज्यका पूर्णरूपेण पतन हो गया।

ताशकन्द घोषणा—भारतके प्रधानमन्त्री लालबहादुर शास्त्री तथा पाकिस्तानके राष्ट्रपति अयूब खाँ की लम्बी वार्ताके उपरान्त ११ जनवरी १९६६ ई०को हस्ताक्षर किये गये, सयुक्त रूपसे प्रकाशित हुई। ताशकद सम्मेलन सोवियत रूसके प्रधानमत्री द्वारा आयोजित किया गया था। ताशकद घोषणामे कहा गया कि भारत और पाकिस्तान शक्तिका प्रयोग नही करेगे और अपने झगडोको शातिपूर्ण ढगसे तय करेगे, वे २५ फरवरी १९६६ तक अपनी सेनाएँ ५ अगस्त १९६५की सीमा-रेखापर पीछे हटा लेगे, दोनो देशोके बीच आपसी हितके मामलोमे शिखर वार्ताएं तथा अन्य स्तरोपर वार्ताएँ जारी रहेगी, दोनो देशोके बीच सम्बन्ध एक दूसरेके आन्तरिक मामलोमे हस्तक्षेप न करनेपर आधारित होगे; दोनोके बीच राजनयिक सबध पुन स्थापित कर दिये जायेगे, एक दूसरेके विरुद्ध प्रचारकार्यको हतोत्साहित किया जायेगा, आर्थिक एव व्यापारिक सम्बन्धो तथा सचार सम्बन्धोकी फिरसे स्थापना तथा सास्कृतिक आदान-प्रदान फिरसे शुरू करनेपर विचार किया जायगा, ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की जायेगी कि लोगोका निर्गमन बद हो, शरणार्थियोकी समस्याओ तथा अवैध प्रवासी प्रश्नपर विचार-विमर्श जारी रखा जायगा तथा हालके सघर्षमे जब्त कर ली गयी एक दूसरेकी सम्पत्तिको लौटानेके प्रश्नपर विचार किया जायगा। इस घोपणाके क्रियान्वयनके फलस्वरूप दोनो पक्षोकी सेनाएँ उस सीमारेखापर वापस लौट गयी जहाँ वे युद्धके पूर्व तैनात थी। परन्तु इस घोषणासे भारत-पाकिस्तानके दीर्घकालीन सम्बन्धोपर क्या प्रभाव पडेगा, यह अभी नही कहा जा सकता। फिर भी ताशकद घोषणा इस कारण याद रखी जायगी कि इसपर हस्ताक्षर करनेके कुछ घटे बाद ही लालबहादुर शास्त्रीकी दु खद मृत्यु हो गयी।

तिब्बत—और भारतके बीच सास्कृतिक सम्बन्धोका लम्बा इतिहास है। सातवी शताब्दीमे तिब्बतके राजा स्रोङ् ग्चन्-स्गाम्-पो (दे०) (लगभग ६२९–९८ ई०)ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया और थोव्मी-सम्भोटा नामक तिब्बती विद्वान्को भारत भेजा, जिसने बौद्ध धर्म सम्बन्धी कुछ ग्रथ इकट्ठे किये और पश्चिमी गुप्त लिपिको तिब्बत ले गया, जो देवनागरी लिपिसे काफी मिलती-जुलती थी। यही लिपि तिब्बती वर्णमालाका आधार बनी। सम्भव है बुद्ध अवलोकितेश्वरकी चदनकी प्रसिद्ध मूर्ति जो अब तक दलाईलामाके राजमहल पोतालामे प्रतिष्ठापित है और पूजी जाती है, वह सर्वप्रथम थोव्मीके द्वारा तिब्बत ले जायी गयी हो। राजा स्रोङ्-ग्चन्ने न केवल बौद्ध धर्म ग्रहण किया बल्कि थोव्मीका शिष्य बनकर विद्याध्ययन भी किया। उसने तिब्बती लोगोमे बौद्ध धर्मका प्रचार करके उनमे सत्यवादिता, दया, पवित्र एव सादा जीवन, विद्वानोका आदर और मातृभूमि-प्रेम आदि गुणोका विकास किया। इस प्रकार बौद्ध धर्मने तिब्बतके सास्कृतिक और आर्थिक विकासमे पर्याप्त योगदान किया। सस्कृत ग्रथोके तिब्बती भाषामे अनुवादका जो कार्य स्रोङ् ग्चन्-स्गाम्-पोके द्वारा प्रारम्भ किया गया था, वह उसके उत्तराधिकारियो द्वारा आगे बढाया गया और इससे तिब्बती भाषा प्राजल एव समर्थ साहित्यिक माध्यमके रूपमे निखर कर सामने आयी। बौद्ध धर्मके प्रचार-प्रसारने तिब्बत और भारतके बीच घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित कर दिया। तिब्बती लोग बौद्ध धर्मके भारतीय शिक्षाकेन्द्रो, विशेषत नालदा और विक्रमशिला आने लगे और इसी प्रकार भारतीय लोग तिब्बत जाने लगे। आने-जानेका यह सिलसिला तिब्बत और भारतके सास्कृतिक सम्बन्धोका एक नियमित अग बन गया। बौद्ध धर्मके महान् आचार्यों शातिरक्षित (दे०) और पद्मसम्भव (दे०)ने तिब्बतकी यात्राएँ ८वी शतीके मध्यमे और अतिशा (दे०)ने ११वी शताब्दीके मध्यमे की। इस सास्कृतिक सम्पर्कसे तिब्बतमे लामावादकी स्थापना और विकास हुआ। लामावादने बौद्ध धर्मके हीनयान, महायान और तत्रयान सम्प्रदायोमे समन्वय स्थापित करनेका प्रयास किया। इसने तिब्बतियोके राष्ट्रीय चरित्रमे परिवर्तन करके उन्हे धीरे-धीरे युद्धप्रियसे शातिप्रिय धर्मभीरु व्यक्ति बना दिया। इसने उनके बीच अनेक आध्यात्मिक गुरु, प्रकाड विद्वान्, सुयोग्य भाषाविद् और ऊँचे साधक उत्पन्न किये। सस्कृत ग्रथोका तिब्बती भाषामे अनुवाद करनेका तिब्बती और भारतीय विद्वानोका प्रयास अत्यधिक सफल सिद्ध हुआ और बहुतसे सस्कृत ग्रथ जिनकी मूल प्रतियाँ अब भारतमे नही पायी जाती है, या तो मूलरूपमे या तिब्बती अनुवादके रूपमे तिब्बतमे उपलब्ध हुए है।

भूतकालमे तिब्बत और भारतके मध्य राजनीतिक सम्बन्ध बहुत थोडे थे। द्वितीय गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त (दे०) नेपालके नृपतिको अपना करद तथा आज्ञापालक बनानेपर बडा गर्व करता था। उसने अपने चौथी शताब्दीके

प्रयाग अभिलेखमें तिब्बतका कोई उल्लेख नहीं किया है। ७वीं शताब्दीमें हर्षवर्धन (दे०)ने, जिसका चीनके साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध था, तिब्बतके मार्गसे एक दूत चीन भेजा था, जिससे प्रकट होता है कि तिब्बतके साथ भी उसका मैत्री-सम्बन्ध था। हर्षकी मृत्युके बाद उसका मन्त्री अर्जुन जिसने उसकी गद्दी छीन ली थी, तिब्बती शासक स्रोङ् गृचन्का कोपभाजन बन गया, क्योंकि उसने चीनी दूत वाग-ह्युएन-त्से-सी (दे०)को लूट लिया था, और उसे परास्त होकर तिरहुतसे हाथ धोना पड़ा। किन्तु ७०३ ई० में तिरहुतने तिब्बती शासनका जुआ उतार फेंका। इसके पश्चात् तिब्बतका भारतके साथ किसी भी प्रकारका राजनीतिक सम्बन्ध नहीं रहा। भारतके मुसलमान विजेता तिब्बतके हिमवेष्टित पर्वतोंपर सेनाएँ भेजनेसे कतराते थे और बख्तियारके बेटे इख्तयारुद्दीन मोहम्मदके सिवा जिसका तिब्बतके ऊपर आक्रमण १२०४ ई०में बुरी तरह विफल हुआ, और किसीने उसे विजय करनेका प्रयास तक नहीं किया। किन्तु अंग्रेजोंका व्यापारिक लोभ सीमाहीन था, और १७७४–७५ ई०में वारेन हेस्टिंग्ज (दे०)ने कम्पनीके युवा अधिकारी जार्ज बोगलको तिब्बतके धार्मिक गुरु एवं शासक ताशीलामासे भेंट करनेके लिए भेजा। किन्तु बोगल, जिसने अपनी यात्राका रोचक वर्णन किया है, अंग्रेजोंके लिए कोई लाभ नहीं प्राप्त कर सका। तिब्बत अठारहवीं शताब्दीके प्रारम्भसे ही चीनकी प्रभुसत्ताको स्वीकार करने लगा था और तिब्बतकी राजधानी ल्हासामें दो चीनी राजप्रतिनिधि, जिन्हें अम्बन कहा जाता था, निवास करने लगे थे। चीन और तिब्बतने उन्नीसवीं शताब्दीके अन्त तक अंग्रेजोंको भारतसे तिब्बतमें घुसने नहीं दिया। तीसरे बर्मायुद्ध (दे०)के बाद १८८६ ई०में ब्रिटिश सरकारने चीनके साथ एक समझौता किया, जिसके अन्तर्गत तिब्बतपर चीनकी प्रभुसत्ताकी परोक्ष स्वीकृतिके बदलेमें चीनी सरकार ब्रिटेन द्वारा बर्मा हथियानेपर कोई आपत्ति न करनेके लिए सहमत हो गयी। १८८७ ई०में तिब्बतियोंने ब्रिटिश सुरक्षित सिक्किम राज्यपर हमला कर दिया, किन्तु वे बड़ी आसानीसे पीछे खदेड़ दिये गये और १८९० ई०में तिब्बत-सिक्किमकी सीमा का निर्धारण चीन और ब्रिटेनके मध्य हुए समझौतेके अन्तर्गत किया गया। १८९३ ई० में अंग्रेजोंको तिब्बतमें कुछ व्यापारिक सुविधाएँ प्रदान करनेकी बात तय हुई, किन्तु व्यवहाररूपमें ये सुविधाएँ उपलब्ध नहीं करायी गयीं। इस प्रकार बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें भी अंग्रेजोंके लिए तिब्बत वर्जित देश बना रहा। प्रथम ब्रिटिश नागरिक, जिसने ल्हासामें घुसनेका साहस किया (दे०) और वहाँकी राजनीतिक और धार्मिक अवस्थाकी अमूल्य जानकारी प्राप्त करके वापस लौटा, शरतचन्द्र दास (दे०) नामक एक बंगाली अध्यापक था। बीसवीं सदीके प्रारम्भमें दलाई लामाने अपने शिक्षक तथा रूसी बौद्ध दोरजीफकी सहायतासे चीनी प्रभुसत्ता उखाड़ फेंकनेके लिए रूसी सरकारके साथ कुछ समझौतेकी वार्ता चलायी, जिससे ब्रिटिश भारतीय सरकार जो उस समय दबंग वाइसराय लार्ड कर्जन (दे०) द्वारा नियंत्रित थी, सशंकित हो उठी कि तिब्बत शीघ्र ही रूसी संरक्षणमें चला जायगा। ब्रिटिश भारतीय सरकार इसे रोकनेके लिए कृतसंकल्प थी और १९०३ ई० में कर्नल-फ्रांसिस यंगहसबैण्डके नेतृत्वमें एक दल तिब्बत भेजा गया। इसने जुलाई १९०३ ई० में बिना किसी विरोधके तिब्बती क्षेत्रोंमें प्रवेश किया और मार्च १९०४ ई०में तिब्बती सेनाको गुरु नामक स्थानपर आसानीसे परास्त कर दिया। अप्रैलमें उसने विशाल तिब्बती सेनाको पुनः हरानेके बाद अगस्त १९०४ ई०में ल्हासामें प्रवेश किया। वहाँ यंगहसबैण्डने सितम्बरमें तिब्बतको संधि करनेके लिए विवश किया, जिसके अंतर्गत उसे अंग्रेजोंको तिब्बतकी तीन मंडियोंमें व्यापार करने, ७५ लाख रुपयेका हर्जाना देने (पहले तो ७५ वार्षिक किश्तोंमें देनेकी बात तय हुई), किन्तु बादमें इसे घटाकर २५ लाख रुपया कर दिया गया और उसे तीन वार्षिक किस्तोंमें अदा करनेकी बात तय हुई, हर्जानेका भुगतान न होने तक अंग्रेजोंको सिक्किम और भूटानके मध्य स्थित चुम्बी घाटीपर अधिकार करने, किसी विदेशी शक्तिको तिब्बतका कोई भूभाग न देने तथा उसे तिब्बतमें रेलवे लाइन बिछानेकी इजाजत उस समय तक न देने जबतक उसी प्रकारकी सुविधाएँ ब्रिटिश सरकारको न दी जाएँ, की शर्तें स्वीकार करनी पड़ीं। इस प्रकार तिब्बतमें रूसी-प्रसारका मार्ग बंद कर दिया गया, किन्तु शीघ्र ही अंग्रेजोंकी गलतियोंके परिणामस्वरूप तिब्बतपर चीनकी जो प्रभुसत्ता अभी तक केवल नाममात्रकी और सांकेतिक रूपमें थी, वह वास्तविक रूपमें स्वीकार कर ली गयी। तिब्बतकी ओरसे २५ लाख रु० हर्जाना चीनको अदा करनेकी अनुमति दे दी गयी और अंग्रेजोंको चुम्बी घाटीसे हट आना पड़ा। १९०६ ई०में इंग्लैण्ड और चीनके बीच एक समझौतेके अन्तर्गत इंग्लैण्ड इस बातके लिए राजी हो गया कि वह न तो तिब्बतके किसी भूभागपर अधिकार करेगा और न उसके आन्तरिक प्रशासनमें हस्तक्षेप करेगा। इसके बदलेमें चीन सहमत हो गया कि वह किसी विदेशी शक्तिको तिब्बतके आन्तरिक प्रशासनमें हस्तक्षेप करने

उसकी क्षेत्रीय अखडताका उल्लघन करनेकी अनुमति नही देगा। १९०७ ई०मे इग्लैण्ड और रूस तिब्बतके साथ अपने राजनीतिक सम्बन्ध चीनके माध्यमसे सचालित करनेके लिए सहमत हो गये। इस प्रकार चीनको तिब्बतका स्वामी स्वीकार कर लिया गया और इसके बाद ही चीनने तिब्वतको रौंद डाला और दलाई लामाको भागकर भारतमे शरण लेनी पडी। ब्रिटिश सरकारने इसपर तीव्र प्रतिवाद किया और तिब्बतियोने १९१८ ई० मे चीनकी आतरिक अव्यवस्थासे लाभ उठाकर अपनेको चीनी आधिपत्यसे मुक्त कर लिया। १९१७की राज्यक्रातिके बाद रूसमे जो परिवर्तन हुए तथा चीनमे जो अव्यवस्था व्याप्त रही उसके परिणामस्वरूप तिब्वतमे ब्रिटिश हितोपर किसी विदेशी शत्रु द्वारा आघात किये जानेका खतरा समाप्त हो गया और अगले बीस वर्षो तक तिब्वत और भारतकी सरकारोके बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहे। किन्तु इस शताब्दीके पाँचवे दशकमे राजनीतिक परिस्थितियाँ बदल गयी। माओत्से तुगके नेतृत्वमे चीन एक महान् साम्यवादी राष्ट्र बन गया और उसने तिब्वतके ऊपर अपनी प्रभुसत्ताको पुन स्थापित करनेका सकल्प किया। इसके अनुसार चीनी सेनाओने १९५९ ई०मे तिब्वतपर अधिकार् कर लिया और दलाई-लामाको प्राणरक्षाके लिए भागकर भारतकी शरण लेनी पडी। भारतीय गणराज्यकी नवस्थापित सरकार इन घटनाओकी मूक दर्शक बनी रही। इस प्रकार तिब्बत विशाली चीनी साम्राज्यका अग बना लिया गया और उसकी दक्षिणी सीमा भारतकी उत्तरी सीमारेखाको छूने लगी। इसके परिणामस्वरूप दोनो देशोके बीच सघर्ष अनिवार्य हो गया। (१९६२ ई०मे भारत और चीनके बीच युद्ध हुआ जिसके परिणामस्वरूप दोनो देशोके सम्बन्ध अभी तक सामान्य नही हो पाये है।–सपादक)

तिरुमल–विजयनगरके सेनानायक राजराज (दे०) का भाई जो १५६५ ई० मे तालीकोटके युद्धमे परास्त हुआ। युद्धोपरात तिरुमलने नाममात्रके राजा सदाशिव (दे०)के साथ परकोण्डामे आश्रय लिया और लगभग १५७० ई० मे उसका सिहासन छीन लिया। उसने केवल तीन वर्ष तक राज्य किया और चौथे अरविंद अथवा कर्णाट राजवशकी नीव डाली। उसका अन्तिम वशज रग था, जो लगभग सत्रहवी शताब्दीके मध्यमे हुआ।

तिलक, बाल गंगाधर (१८५७–१९२०)–प्रख्यात भारतीय राष्ट्रवादी नेता एव विद्वान्। उनका रत्नागिरिके मराठा ब्राह्मण परिवारमे जन्म हुआ। डकेन कालेजमे शिक्षा पायी और कानूनकी डिग्री हासिल की। बादमे इन्होने फर्गुसन कालेजकी स्थापना की और 'मराठा' (अग्रेजी) और 'केसरी' (मराठी) पत्रोके सम्पादकके रूपमे पत्रकारिताके क्षेत्रमे प्रवेश किया। १८९७ ई०मे उन्होने शिवाजी उत्सवका शुभारम्भ किया और भारतीयोमे पुन देशभक्तिकी तीव्र भावना जगानेका प्रयास किया। पूनामे प्लेगके भयकर प्रकोपको दबानेके लिए सरकार द्वारा किये गये कठोर उपायो-की उन्होने कटु आलोचना की, जिसके परिणामस्वरूप राजद्रोहका अभियोग लगाकर उन्हे दण्डित किया गया। १९०७ ई०मे उन्होने विपिनचन्द्रपाल और लाला लाजपत-रायके साथ काग्रेसके अदर गरम दल सगठित किया। इस दलका कहना था कि प्रस्तावो द्वारा देशकी माँगोको ब्रिटिश सरकार द्वारा मनवाना सम्भव नही हे और इसके लिए अधिक प्रभावोत्पादक रीतिमे काररवाई की जानी चाहिए। तिलक और उनके साथियोने भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके इस लक्ष्यको अस्वीकार कर दिया कि भारतमे उसी प्रकारकी उत्तरदायी सरकार गठित होनी चाहिए जैसी ब्रिटिश साम्राज्यके स्वायत्तशासी उपनिवेशोमे प्रचलित है। उन्होने भारतमे ब्रिटिश नियत्रणसे पूर्णतया मुक्त, पूर्ण स्वराज्यकी स्थापनाकी माँग की। इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके नरम और गरम दलके बीच मौलिक मतभेद उत्पन्न हो गये। १९१६ ई० मे तिलकने होमरूल लीगका गठन किया। तिलक १९१९ के गवर्नमेण्ट आफ इडिया एक्टसे सतुष्ट न थे, किन्तु अगस्त १९२०मे उनका स्वर्गवास हो गया। दिसम्बर १९२० मे काग्रेसके नागपुर अधिवेशनमे घोषणा की गयी कि काग्रेसका लक्ष्य डोमीनियन स्टेटस (औपनिवेशिक स्वराज्य) नही, बल्कि सभी उचित तथा शातिपूर्ण उपायो द्वारा पूर्ण स्वराज्यकी स्थापना करानी है। इस प्रकार तिलकके स्वर्गवासके बाद उनकी माँगका काग्रेसने भी जोरदार समर्थन किया। ब्रिटिश प्रभुत्वका घोर विरोध करनेके कारण उन्हे जीवनका एक बडा भाग ब्रिटिश जेलोमे बिताना पडा, परन्तु इससे उनका आत्मबल तोडा नही जा सका। सर वैलेन्टाइन चिरोलने अपनी 'इडियन अनरेस्ट' (भारतीय अशाति) नामक पुस्तकमे उनपर जो झूठे लाछन लगाये, उनका प्रतिवाद करनेके लिए उन्होने इग्लैण्ड जाकर उसपर मुकदमा दायर किया, परन्तु ब्रिटिश अदालतने उनके विरुद्ध फैसला दिया। उनके 'गीता रहस्य' तथा 'ओरियन' नामक ग्रथ उनके प्रकाड पाडित्यका परिचय देते हैं। **(टी० वी० पर्वते कृत 'बालगंगाधर तिलक'; एन० सी० केलकर कृत 'लैंडमार्क्स इन लोकमान्याज लाइफ'; डी० पी० करमरकर कृत 'बालगगाधर तिलक'; अरविन्द**

घोषकी 'स्पीचेज आफ बी० जी० तिलक' तथा रीशनर एवं गोल्डबर्ग कृत 'तिलक एण्ड दि स्ट्रगल फार इंडियन फ्रीडम')

तिवर (तिवल)–सम्राट् अशोककी दूसरी रानी कारुवाकीके गर्भसे उत्पन्न राजकुमार। इसका उल्लेख अशोकके रानी वाले अभिलेखमे हुआ है। इसके विषयमे और अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है। (भट्टाचार्यजी)

तिस्स–लगभग २५० ई० पू० से २११ ई० पू० तक सिंहलद्वीप (श्रीलका)का राजा। राजकुमार महेन्द्र (दे०) इसीके आमन्त्रणपर श्रीलका गया और वहाँ बौद्ध धर्मका प्रचार किया। तिस्स और मौर्य सम्राट् अशोक (दे०)मे अत्यत सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध थे तथा श्रीलकामे बौद्ध धर्मके प्रसारमे उसने महत्त्वपूर्ण योगदान किया। उसने अनुराधपुरकी नीव डाली, जहाँ बोधिगयासे ले जाकर पवित्र बोधिवृक्ष आरोपित किया गया। यह बोधिवृक्ष आज भी विद्यमान है।

तुंगभद्रा–दक्षिणकी एक नदी। यह पश्चिम घाटसे निकलती है और रायचूरके निकट कृष्णामे मिलती है। इसका प्रसिद्ध दोआब दीर्घकाल तक विजयनगरके हिन्दू राज्य व मुस्लिम बहमनी राज्य और उसके परवर्ती राज्योके बीच विवादका विषय रहा।

तुकाराम–महाराष्ट्रके एक प्रसिद्ध कवि तथा सत। ये शिवाजी प्रथम (दे०)के ज्येष्ठ समकालीन थे। इनकी कविताओ तथा शिक्षाओका शिवाजीपर बहुत प्रभाव पडा।

तुकोजी राव होलकर प्रथम–१७६७ ई० मे रानी अहल्याबाई (दे०) द्वारा होलकर सेनाका सेनापति नियुक्त। रानीकी मृत्युके बाद १७९५ ई० मे वह होलकर राज्यका शासक बना और मृत्युपर्यन्त अर्थात १७९७ ई० तक शासन किया।

तुकोजी राव द्वितीय–१८४३ से १८८६ ई० तक होलकर राज्यका शासक। अपने कुशल शासनसे उसने होलकर वश-के ऐश्वर्य एव प्रतिष्ठामे विशेष अभिवृद्धि की थी।

तुकोजी राव तृतीय–१९०३ से १९२६ ई० तक होलकर राज्यका शासक। राज्यके बाहरके एक व्यक्तिको मार डालनेके अभियोगमे भारत सरकारकी ओरसे उसे पदत्याग-के लिए बाध्य किया गया।

तुगरिल खां–एक तुर्की अमीर, जिसे सुल्तान बलबन (दे०) ने बगालका सूबेदार नियुक्त किया था, किन्तु १२७८ ई० मे वह स्वतत्र हो गया। सुल्तान बलबनने १२७९ से १२८२ ई० तक तीन वर्षकी लडाईमे उसे परास्त किया और मार डाला।

तुगलकशाह–देखिये, 'गयासुद्दीन तुगलक'।

तुरुष्क-दण्ड–एक अतिरिक्त कर, जो लगभग ११०४–११५५ ई० मे राजा गोविन्दचन्द्र द्वारा लगाया गया। मुस्लिम आक्रमणकारियोसे टक्कर लेनेके लिए यह कर-आरोपण किया गया था।

तुलसीदास–प्रसिद्ध हिन्दी कवि तथा सत। उनका जीवन-काल १५३२ ई० से १६२३ ई० तक माना जाता है। वे काशीमे रहते थे। उनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'रामचरितमानस' है जिसका उत्तरी भारतके सभी हिन्दू, चाहे गरीब हो अथवा अमीर, बडा आदर करते हैं। वे केवल उच्चकोटिके कवि ही नही थे, वरन् हिन्दुओके धार्मिक नेता भी थे और आज भी उनका नाम बडी श्रद्धाके साथ लिया जाता है।

तुलसी बाई–यशवन्तराव होल्करकी प्रिया (१७९८–१८११ ई०)। तुलसीबाई बडी ही बुद्धिमती और चतुर थी। १८०८ ई० मे जब यशवन्तराव होलकर पागल हो गया तब होल्कर राज्यकी सरक्षिका वही बनी। १८११ ई० मे राजाकी मृत्यु होनेपर राज्यका वास्तविक शासन उसके हाथमे आ गया। उसको राज्यके दीवान बलराम सेठ और पेंढारी नेता अमीर खाँका समर्थन प्राप्त था। १८१७ ई० मे सेनाने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और उसे मार डाला। इसके तुरन्त बाद यह सेना १८१७ ई० मे महीदपुरके युद्धमे अग्रेजो द्वारा हरा दी गयी।

तुलुव वश–की प्रस्थापना नरस नायक द्वारा १५०३ ई० मे विजयनगरमे हुई। इस वशने १५६५ ई० तक शासन किया। इसमे छ राजा हुए—नरस नायक (१५०३–१५०५ ई०), उसका पुत्र नरसिंह (१५०५–१५०९ ई०), उसका भाई कृष्णदेव राय (दे०) (१५०९–१५२९), जो कि अपने वशका सबसे प्रतापी राजा था और इसके कालमे राज्य अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा। १५२९ से १५४२ ई० तक उसका भाई अच्युत और उसके बाद १५४२ ई० मे उसका पुत्र वेंकट प्रथम और फिर (१५४२–१५६५ ई० तक) उसका चचेरा भाई सदाशिव शासक रहा। अन्तिम राजाके शासनकालमे बीजापुर, गोलकुण्डा और अहमद-नगरके सुल्तानोने मिलकर विजयनगर राज्यपर हमला किया और १५६५ ई० मे तालीकोटके युद्धमे राजाको परास्त कर दिया। उन्होने राजधानीमे लूटमार करनेके पश्चात् उसे उजाड डाला। सदाशिव पेनूकोण्डा भाग गया, जहाँ वह १५७० ई० मे मार डाला गया। इस प्रकार विजयनगर और तुलुव वशका अत हो गया।

तुषास्प–अशोक (दे०)के राज्यकालमे गुजरात और काठिया-वाडका महामात्य था। उसे राजाकी उपाधि प्राप्त थी। गिरनारके पास सुदर्शन नामक झील (दे०)का उसने

पुर्नर्निर्माण इतनी मजबूतीके साथ कराया कि फिर ४०० वर्ष तक उसकी मरम्मत की आवश्यकता नही पडी। १५० ई०मे क्षत्रप रुद्रदामाने इसका जीर्णोद्धार कराया। तुषास्प सभवत ईरानी था और सम्राट् अशोककी सेवामे नियुक्त था।

तेगबहादुर (१६६४–१६७५)–सिखोके नवे गुरु। ये छठे गुरु हरगोविन्दके पुत्र थे और आठवे गुरु हरकिशनके उत्तराधिकारी बने। पजाबमे कीरतपुरके निकट आनन्दपुरमे वे निवास करते थे। कुछ समयके लिए वे पटनामे भी रहे, जहाँ १६६६ ई०मे इनके प्रख्यात पुत्र तथा उत्तराधिकारी गोविन्दसिहका जन्म हुआ। १६६८ ई०मे गुरु तेगवहादुर औरगजेबकी सेनाके साथ आसाम गये परन्तु वहाँसे पजाव वापस आनेके वाद बादशाहके कोपभाजन वन गये। कश्मीरके ब्राह्मणोको मुगल सम्राट्के विरुद्ध भडकानेके आरोपमे राजाज्ञानुसार गुरु तेगवहादुरको बन्दी बनाकर दिल्ली लाया गया, जहाँ उनके सम्मुख विकल्प रखा गया कि या तो मुसलमान बन जाओ या मौतको स्वीकार करो। उन्होने धर्म देनेकी अपेक्षा जीवन दे देना अच्छा समझा और १६७५ ई०मे औरगजेबकी आज्ञासे उनको क्रूरतापूर्वक सूली दे दी गयी। उनके बाद उनके सुपुत्र गोविन्दसिह सिखोके गुरु हुए, जिन्होने शातिप्रिय सिखोको एक सैनिक शक्तिके रूपमे परिवर्तित कर दिया। गुरु तेगवहादुरकी शहादतने सिखोको मुगलोके अत्याचारोका बदला लेनेके लिए प्रेरित किया।

तेजा सिह–प्रथम सिख-युद्ध (दे०) (१८४५–४६) छिडनेके समय सिख सेनाका प्रधान सेनापति। वह युद्धमे विजय पानेकी अपेक्षा प्रतिरोधी अग्रेजोकी सद्भावना प्राप्त करनेके लिए अधिक प्रयत्नशील रहा। उसके विश्वासघातके ही कारण सिखोको युद्धमे पराजयका मुह देखना पडा।

तैमूर (अथवा तैमूरलग) (१३३६–१४०५)–१३६९ ई० मे समरकदके अमीरके रूपमे अपने पिताके सिहासनपर बैठा और इसके बाद ही विश्व-विजयके लिए निकल पडा। मेसोपोटामिया, फारस और अफगानिस्तानको विजित कर १३९८ ई० मे उसने अपनी विशाल अश्वसेनाके साथ भारतपर आक्रमण किया और दिल्ली तक बढ आया। मार्गमे उसने सहस्त्रो लोगोकी हत्या की और वहुतसे नगरोको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। उसने दिल्लीके निकट सुलतान महमूद तुगलककी विशाल सेनाको निर्णायक रूपसे परास्त कर दिया और १८ दिसम्बर १३९८ ई० को दिल्लीके अन्दर प्रवेश किया। उसके सैनिकोने कई दिनो तक राजधानीकी लूटपाट की। दिल्लीमे वह केवल १५ दिन रुका, फिर हजारो छकडोपर लूटका माल लादकर अपने वतन वापस लौट गया। मार्च १३९८ ई० मे उसने सिंधु नदीको दुवारा पार किया। उसकी सेना जिन-जिन इलाकोसे होकर गुजरी, वहाँ अराजकता, अकाल और महामारी फैल गयी। उसके आक्रमणसे दिल्ली सल्तनतकी जडे हिल गयी और उसका शीघ्र पतन हो गया।

तैमूरलंग–देखिये, 'तैमूर'।

तैल (अथवा तैलव)–द्वितीय चालुक्य राजवशका प्रतिष्ठापक। उसकी राजधानी कल्याणी थी। ९७२ ई०के आसपास उसने अन्तिम राष्ट्रकूट राजा कर्क द्वितीय (दे०)को परास्त किया। तैल द्वारा प्रतिष्ठापित राजवशने ११९९ ई० तक शासन किया।

तैलुगु–दक्षिणकी चार प्रमुख भाषाओमेसे एक भाषा। शेष तीन है–तमिल, मलयालम और कन्नड। एक समय मद्रास प्रेसीडेन्सीके उत्तरी भागमे तेलुगु भाषा वोली जाती थी। वर्तमान आध्र राज्यमे जो तमिलनाडु तथा उडीसा राज्यके बीचमे स्थित है, अधिकाश लोग तेलुगु भाषा बोलते है। विजयनगरके राजाओका, विशेषरूपसे कृष्णदेव रायका सरक्षण तेलुगु भाषाको प्राप्त रहा। कृष्णदेव राय स्वय तेलुगु तथा सस्कृतमे कविता करता था। उसके दरवारमे तेलुगुके आठ उच्चकोटिके कवि थे, उनमे पेदन्न सर्वाधिक विख्यात था।

तोमर–राजपूतो (दे०)की एक शाखा। कुछ विद्वानोके अनुसार, प्रतिहारो और चौहानोकी भाँति ये भी विदेशी थे। ये लोग ११वी शताब्दीमे वर्तमान दिल्ली क्षेत्रके शासक थे। तोमर-अग्रणी अनगपालने ग्यारहवी शताब्दीके मध्यमे दिल्ली नगरकी नीव डाली थी। प्रसिद्ध लौहस्तम्भ, जिसपर चद्र नामक अपरिचित राजाकी प्रशस्ति अकित है, १०५२ ई०मे अनगपाल द्वारा हटाकर वर्तमान स्थानपर लाया गया और मदिरोके बीच खडा कर दिया गया, मुसलमान विजेताओने वादमे इन मदिरोको नष्ट-भ्रष्ट कर डाला और उस सामग्रीका प्रयोग एक मसजिद और कुतुवमीनारके निर्माणमे किया।

तोरमाण–हूणोका नेता, जिसने ५०० ई०के लगभग मालवापर अधिकार कर लिया। इसने महाराजाधिराजकी उपाधि धारण की और उसका प्रभुत्व सभवत मध्यप्रदेश, नमककी पहाडियो तथा मध्यभारत तक व्याप्त था। वहुत वडी सख्यामे उसके चाँदीके सिक्के प्राप्त हुए हैं। उसका सुप्रसिद्ध पुत्र मिहिरकुल अथवा मिहिरगुल लगभग ५०२ ई०मे उसका उत्तराधिकारी वना।

तोर्णा—पूनासे दक्षिण-पश्चिमकी ओर लगभग बीस मीलकी दूरीपर स्थित एक दुर्ग। शिवाजीने उन्नीस वर्षकी अवस्थामे १६४६ ई०मे इस दुर्गको अधिकारमे करके अपना स्वराज्य अभियान आरम्भ किया।

तोसली—अशोक (दे०)के राज्यकालमे उसका एक महामात्य यहाँ रहता था। इसका उल्लेख उसके कलिंग शिलालेख मे मिलता है जो उडीसाके पुरी जिला स्थित धौलीमे पाया गया है। (भट्टाचार्यजी)

त्रक्वावार—कारोमण्डल समुद्रतटपर स्थित एक बन्दरगाह, जहाँ १६२० ई०मे डेनमार्कवासियोने एक व्यापारिक कोठी स्थापित की थी। यह एक व्यापारिक बदरगाह था, जो राजनीतिक दृष्टिसे कभी महत्त्वपूर्ण नही रहा। १८४५ ई०मे यह ब्रिटिश सरकारके हाथ बेच दिया गया।

त्रिचनापल्ली—कर्नाटकका दुर्ग, जहाँ कर्नाटककी मसनदके दावेदार मुहम्मद अली (दे०)ने १७५१ ई०मे शरण ली थी। फासीसी तथा उनके आश्रित चदा साहबने इस दुर्गपर घेरा डाल दिया, किन्तु रावर्ट क्लाइव (दे०)ने जब आरकाटको अपने अधिकारमे कर लिया तो उन्हे अपना घेरा उठा लेना पडा। १७५३ ई०मे यहाँ पुन फासीसियो द्वारा घेरा डाला गया परन्तु १७५४ ई०मे अग्रेजोने इस घेरेको तोड दिया और यह तबतक कर्नाटकके नवाबके अधीन रहा जबतक भारतीय ब्रिटिश साम्राज्यमे नही मिला लिया गया।

त्रिपक्षीय सधि—१८३८ ई०मे अग्रेजो, अफगानिस्तानके भगोडे अमीर शाहशुजा और पजाबके महाराज रणजीतसिहमे ऑकलैडके शासनकालमे सम्पन्न हुई थी। इसके अनुसार शाहशुजाको सिख सेना और ब्रिटिश आर्थिक सहायतासे काबुलकी गद्दीपर पुन बैठानेकी बात तय हुई। इसके बदलेमे रणजीतसिहने जितना प्रदेश जीत लिया था, वह उसके अधिकारमे रहने देना और सिखको अफगानिस्तानके अमीर शाहशुजाको सौप देना स्वीकार कर लिया गया। यह आशा की जाती थी कि शाहशुजा अग्रेजोके हाथकी कठपुतली बन जायगा। इस आक्रामक सन्धिने अन्तत लार्ड ऑकलैण्डकी सरकारको १८३८–४२ ई०के विनाशकारी अफगान-युद्ध (दे०)मे फसा दिया।

त्र्यम्बक जी—एक मराठा सरदार। बाजीराव द्वितीय (दे०)का विश्वासी कृपापात्र था। पेशवाने उसे अहमदाबादका सूबेदार बना दिया। गायकवाडका दूत गगाधर शास्त्री, सुरक्षाके आश्वासनपर जब पूना आया तब त्र्यम्बकजीने षड्यत्र रचाकर उसे मरवा डाला। अग्रेजोने इसपर गहरा आक्रोश व्यक्त किया और ब्रिटिश रेजीडेण्ट एल्फिस्टनके आग्रहपर त्र्यम्बकजीको बन्दी बनाकर, अग्रेजोको सौप दिया गया जिन्होने उसे साष्टीमे नजरबन्द कर दिया।

त्रिलोचन पाल—चदेल राजा गण्डने १०१९ ई० मे राजा राज्यपालको परास्त करके मार डाला और उसके स्थानपर त्रिलोचन पालको कन्नौजका राजा बनाया। उसी साल त्रिलोचन पालने सुलतान महमूद गजनवीको जमुना पार करनेसे रोकनेका असफल प्रयास किया और सभवत इस प्रयासमे वह मारा गया। इससे अधिक उसके विषयमे कुछ पता नही है।

त्रिलोचन पाल—ओहिन्दका पूर्वान्तिम साही राजा। इसने सुलतान महमूद गजनवीकी सेनाको रोकनेका विफल प्रयास किया। रामगगाके युद्धमे वह परास्त हुआ और १०२१–२२ ई०मे मार डाला गया। उसका पुत्र तथा उत्तराधिकारी भीम अन्तिम साही राजा था, जिसकी मृत्यु १०२६ ई०मे हुई।

थ

थानेश्वर—सस्कृत साहित्यमे वर्णित एक प्रख्यात प्राचीन नगर। यह आधुनिक दिल्ली तथा प्राचीन इद्रप्रस्थ नगरके उत्तरमे अम्बाला और करनालके बीच स्थित था। यह ब्रह्मावर्त क्षेत्रका केन्द्रबिन्दु था, जहाँ भारतीय आर्योका सबसे पहले विस्तार हुआ। इसीके निकट कुरुक्षेत्र स्थित है, जहाँ कौरवो-पाण्डवोके बीच अठारह दिन तक युद्ध हुआ था जो महाभारत महाकाव्यका प्रमुख विषय है। थानेश्वरको स्थानेश्वर भी कहते थे, जो शिवका पवित्र स्थान था। छठी शताब्दीके अन्तमे यह पुष्यभूति वशकी राजधानी बना और इसके शासक प्रभाकरवर्धनने इसे एक विशाल साम्राज्यका, जिसके अतर्गत मालवा, उत्तर-पश्चिमी पजाब और राजपूतानाका कुछ भाग आता था, केन्द्रीय नगर बनाया।

प्रभाकरवर्धनके छोटे पुत्र हर्षवर्धनके काल (६०६–६४७)मे इसका महत्त्व घट गया। उसने अपने अपेक्षाकृत अधिक विशाल साम्राज्यकी राजधानी कन्नौजको बनाया। सातवी और आठवी शताब्दीमे हूण आक्रमणोके फलस्वरूप इस नगरका तेजीसे पतन हो गया, फिर भी यह हिन्दुओका पवित्र तीर्थस्थल बना रहा। १०१४ ई० मे यह सुलतान महमूद द्वारा लूटा तथा नष्ट किया गया और अन्तत पजाबके गजनवी राज्यका अग हो गया। यह दिल्ली

जानेवाली सडकपर स्थित है। इसके इर्द-गिर्द क्षेत्रमे तराइन (दे०)के दो तथा पानीपत (दे०)के तीन युद्ध हुए जिन्होने कई बार भारतके भाग्यका निर्णय किया। तृतीय मराठा-युद्ध (दे०)के उपरान्त यह भारतीय ब्रिटिश साम्राज्यका अग हो गया।

थारका रेगिस्तान—राजपूताना और सिधु नदीकी घाटीके निचले भागके मध्य फैला हुआ है। इस रेगिस्तानमे एक बूद जल नही मिलता और इसे केवल कारवाँके द्वारा ही पार किया जा सकता है। यह भारत और पाकिस्तानके बीचकी सीमा-रेखा बनाता है। यह सिधको दक्षिण और उत्तरी पश्चिमी भारतसे पृथक् करता है। अरबोने जब ७१० ई० मे सिंध-विजय किया तो इस रेगिस्तानके कारण वे अपने राज्यका विस्तार सिंधसे आगे नही कर सके। इसने कुछ समय तक अग्रेजोको भी सिंधपर अपना आधिपत्य जमानेसे रोक रखा। अग्रेज सिंधपर दाँत इसलिए गडाये थे क्योकि वह अफगानिस्तान और पजाबका प्रवेशद्वार था। अग्रेजो द्वारा सिंध (दे०)के अधिग्रहणके बाद यह रेगिस्तान भारतीय ब्रिटिश साम्राज्यका अग बन गया।

थियोसोफिकल सोसाइटी—की स्थापना १८७५ ई० मे सयुक्त राज्य अमेरिकामे मैडम ब्लावत्सकी (दे०) और कर्नल एच० एस० ओलकाट द्वारा हुई। बादमे वे लोग भारत आये और सोसाइटीका प्रधान कार्यालय मद्रासके उपनगर अड्यार-मे स्थापित किया। जबसे सोसाइटीकी सर्वेसर्वा श्रीमती एनी बेसेण्ट (दे०) भारतमे आकर बस गयी, तबसे भारतीय राजनीति और जनजीवनमे सोसाइटीने एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। श्रीमती एनी बेसेण्टके सत्प्रयासो और उनकी वाग्मिताके फलस्वरूप शीघ्र ही सोसाइटीकी अनेक शाखाएँ सम्पूर्ण भारतमे स्थापित हो गयी। भारतमे एक अलग धार्मिक सम्प्रदायकी स्थापनाके रूपमे सोसाइटीको बहुत थोडी सफलता मिली, किन्तु पाश्चात्य शिक्षा-प्राप्त हिन्दुओके मस्तिष्कमे इसने हिन्दूधर्मके प्रति श्रद्धाभाव पुन जागृत कर दिया। पाश्चात्य शिक्षा-प्राप्त विद्वानो द्वारा प्राचीन हिन्दू धर्मकी प्रशसाके फलस्वरूप शिक्षित भारतीयोके मनमे नव आत्मसम्मान, प्राचीनताका गौरव, देशभक्तिकी नयी लहर और राष्ट्रके पुनर्निर्माणकी भावना भर गयी। श्रीमती एनी बेसेण्टने उसको समुन्नत करके पराकाष्ठापर पहुँचा दिया। भारतमे थियोसोफिकल सोसाइटीको लोकप्रियता श्रीमती एनी बेसेण्टने प्रदान की। श्रीमती एनी बेसेण्टने भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस द्वारा परिचालित राष्ट्रीय आन्दोलनमे अपनेको अर्पित कर दिया था।

थीबा—उत्तर बर्माका १८७८ से १८८६ ई० तक शासक। उसका कहना था कि उसे ब्रिटेनके अलावा अन्य यूरोपीय देशोसे स्वतत्र व्यापारिक और राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित करनेका पूर्ण अधिकार है। उसके इसी दावेके कारण वाइसराय लार्ड डफरिन (दे०)ने यह बहाना करके कि थीबाने ब्रिटिश व्यापारियोको बर्मामे सुविधाएँ प्रदान करनेसे इनकार कर दिया है और वह अपनी प्रजापर कुशासन कर रहा है, दिसम्बर १८८५ ई० मे उसके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी। थीबा इस आक्रमणका कोई मुकाबला नही कर सका, उसकी सेनाएँ सरलतासे परास्त हो गयी और उसने बिना किसी शर्तके आत्मसमर्पण कर दिया। उसे निर्वासित कर भारत भेज दिया गया, जहाँ वह मृत्यु पर्यन्त रहा। उसका राज्य ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यका एक अग बना लिया गया।

थेर तिस्स—वरिष्ठ तथा बहुश्रुत भारतीय बौद्ध भिक्षु, जिसने अशोकके कालमे पाटिलपुत्रमे समायोजित बौद्ध सगीति (परिषद्, दे०)का सभापतित्व किया था।

द

दण्डनायक—विजयनगरके हिंदू राजाओके सेनाध्यक्षोकी उपाधि।

दण्डी—छठी शताब्दी ई०मे वर्तमान, जो सस्कृतका सरस कवि, साहित्य समालोचक और गद्य-लेखक था। 'काव्यादर्श' सस्कृत पद्यमे लिखा उसका काव्यशास्त्रका प्रसिद्ध ग्रथ है। उसके द्वारा लिखा गया 'दशकुमारचरित' सस्कृत गद्य-काव्यका सबसे प्रसिद्ध प्रेमाख्यान है।

दंतिदुर्ग—आठवी शताब्दी ई० के मध्यमे राष्ट्रकूट वशका प्रवर्तक। उसने वातापीके चालुक्य राजा कीर्तिवर्मा द्वितीयको पराजित एव अपदस्थ किया और एक नये राजवश-की स्थापना की, जिसके शासकोने ७३३ से ९७२ ई० तक दक्षिण भारतमे शासन किया।

दक्षिण—मूलरूपसे दक्षिण अथवा दक्षिणापथका प्रयोग उस क्षेत्रके लिए किया जाता था, जो उत्तरमे विन्ध्य पर्वत और नर्मदासे लेकर दक्षिणमे कन्याकुमारी तक विस्तृत है। बादमे दक्षिणका अर्थ वह क्षेत्र माना जाने लगा, जो उत्तरमे नर्मदा तक, दक्षिणमे तुगभद्रा तथा कृष्णानदीके बीच स्थित है, अर्थात् दक्षिणी पठारके मुख्य भागको दक्षिण कहा जाने लगा, जिसके अंतर्गत आजकलका मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र

तथा आंध्रप्रदेश आता है। कृष्णा और तुगभद्राके दक्षिणके क्षेत्रको कभी-कभी तमिळहम् अर्थात् तमिल देश कहा जाता था। यहाँ दक्षिणका अर्थ है नर्मदा और कृष्णा नदियोके बीचका दक्षिणी पठार। भूगर्भीय दृष्टिसे सिंधु और गगाके मैदानोकी अपेक्षा यह पठार बहुत प्राचीन माना जाता है।

दक्षिणमे जो पुरातात्त्विक अवशेष मिले हैं, वे उत्तरी भारत (हिमालय क्षेत्रको छोडकर)मे प्राप्त अवशेषोसे अधिक प्राचीन है। दक्षिणी पठार वस्तुत एक पर्वतीय त्रिकोणपर स्थित है, जिसका शीर्षविन्दु नीलगिरि है। पश्चिमीघाट एव पूर्वीघाट इस त्रिकोणकी दो भुजाएँ हैं तथा विंध्य पर्वतश्रेणी इसका आधार है। विन्ध्य पर्वत-श्रेणीके कारण कोई नदी उत्तरसे दक्षिणकी ओर नही वहती। चूकि पश्चिमी घाट पूर्वीघाटकी अपेक्षा अधिक ऊँचे है, अतएव दक्षिणकी सभी नदियाँ सतपुडा पहाडियोके नीचे पश्चिमसे पूर्वकी ओर वहती है और वगालकी खाडीमे गिरती है।

रामायण तथा महाभारतमे सुरक्षित प्राचीन अनु-श्रुतियोके अनुसार सर्वप्रथम अगस्त्य मुनि दक्षिण गये थे। वहाँ उन्होने वानरो, असुरो तथा राक्षसोको प्रभावित कर अपना सम्मानजनक स्थान वनाया। विश्वास किया जाता है कि ये दक्षिणवासी द्रविड थे, जिनकी भौतिक सभ्यता आर्योकी अपेक्षा ऊँची थी।

ऐतिहासिक दृष्टिसे हमे दक्षिणके सम्वन्धमे जो जान-कारी मिलती है, वह उत्तर भारतकी तुलनामे काफी अर्वाचीन है। नन्दवश (दे०) से पहले हमे दक्षिणके वारेमे जानकारी नही मिलती। इन नद राजाओ (ई०पू० चौथी शताव्दी)के साम्राज्यमे कलिंग शामिल था। हो सकता है कि सम्पूर्ण दक्षिण उनके साम्राज्यके अतर्गत रहा हो। अशोकके साम्राज्यमे यद्यपि कलिंग ही शामिल था, तथापि उसका साम्राज्य पेनार नदी तक फैला हुआ था। उसके साम्राज्यकी दक्षिणी सीमाएँ चेर, चोल, पाण्ड्य तथा सातियपुत्र राज्योको छूती थी। मौर्यवशके पतनके पश्चात् सातवाहनो (दे०)ने, जो आंध्र भी कहे जाते थे, एक विशाल साम्राज्यकी स्थापना की और ई०पू० ५० से २२५ ई० तक शासन किया। इसी कालमे शको (दे०) की एक शाखाने दक्षिणके पश्चिमी भागपर अधिकार कर लिया।

सातवाहनोके पतनके पश्चात् दक्षिणके विविध भागोमे अनेक छोटे-छोटे राजवशोका प्रादुर्भाव हुआ। इनमे गग (दे०), वाकाटक (दे०) तथा कदम्ब (दे०) मुख्य थे। गगवशकी एक शाखाने दूसरीसे ग्यारहवी शताव्दी तक मैसूरके एक वडे क्षेत्रपर राज्य किया। श्रवण-वेलगोलाकी पहाडीपर स्थापित ५६।। फुट ऊँची गोमटेश्वरकी विशाल प्रतिमा इन्ही राजाओकी याद दिलाती है। गगवंशकी एक शाखाने उडीसामे भी छठीसे १६वी शताव्दी तक शासन किया। इसी वशके अनतवर्मा चोडगगने पुरीके विख्यात जगन्नाथ मदिरको वनवाया था। कदम्ब राजाओंने तीसरीमे छठी शताव्दी तक दक्षिण कर्नाटक और पश्चिमी मैसूरमे शासन किया, जवकि वाकाटकोने चतुर्थसे छठी शताव्दी तक मध्यप्रदेश तथा दक्षिणके पश्चिमी भागपर शासन किया। चतुर्थ शताव्दीके मध्यमे समुद्रगुप्त (दे०)ने, जो गुप्तवशका द्वितीय सम्राट् था, दक्षिणकी ओर अभियान किया और वहाँके अनेक राजाओको अपने अधीन किया, जिनमे पल्लव राजा विष्णुगोप भी था, जिसकी राजधानी काची थी जिसे आजकल काजीवरम् कहते है। गुप्तवशके तृतीय सम्राट् चद्रगुप्त विक्रमादित्य (दे०)ने उज्जयिनीके शक क्षत्रपको पराजित कर सम्पूर्ण मालवा और गुजरातको अपने अधीन कर लिया।

गुप्त साम्राज्यके पतनके पश्चात् उत्तर भारत दक्षिणसे अलग हो गया तथा दक्षिणमे चालुक्यवशका राज्य स्थापित हुआ जो कदाचित् उत्तर भारतके किसी राजपूत-वशकी एक शाखा थे। चालुक्योकी राजधानी वातापी अथवा वादामीमे थी, जो आजकल महाराष्ट्रके वीजापुर जिलेमे है। इस वशने लगभग दो सौ वर्ष तक शासन किया। इस वशका सबसे प्रतापी राजा पुलकेशी द्वितीय (दे०) था, जिसने ६०८-४२ ई० तक शासन किया और ६४१ ई० मे नर्मदा नदीके किनारे उत्तर भारतके सुप्रसिद्ध सम्राट् हर्षवर्धनको पराजित किया और इस प्रकार उत्तर तथा दक्षिणके बीच नर्मदा नदीकी प्राकृतिक सीमाको कायम रखा। पडोसी काचीके पल्लव राजा (दे०) उसके सवसे शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी थे। पल्लव राजा नरसिंह वर्मा-ने ६४२ ई० मे चालुक्य नरेश पुलकेशी द्वितीयको पराजित कर मार डाला। वत्तीस वर्ष पश्चात् राष्ट्रकूट वशके दति-दुर्ग (दे०) ने चालुक्यवशका मूलोच्छेद कर दिया। राष्ट्र-कूटोके नये वशने मान्यखेट (आधुनिक मालखेट)को अपनी राजधानी वनाकर दक्षिणी भारतपर शासन किया। इस वशका सवसे प्रतापी राजा अमोघवर्ष (लगभग ८१५-७७ ई०) (दे०) था, जिसका उल्लेख अरव यात्रियोने वलहर अथवा वल्लभरायके नाममे किया है। ९७३ ई० मे द्वितीय चालुक्यवशने राष्ट्रकूट वशका मूलोच्छेद कर दिया। इस द्वितीय चालुक्यवशने दक्षिणी भारतपर ११९० ई० तक शासन किया।

द्वितीय चालुक्यवंशके पतनके पश्चात् दक्षिणापथ तीन राजवंशोमे विभाजित हो गया। यादवोंने देवगिरिको अपनी राजधानी बनाकर दक्षिणके पश्चिमी भागपर शासन किया। होयसल वंशने द्वारसमुद्र (आधुनिक हैलविड)को अपनी राजधानी बनाकर मैसूरपर शासन किया। काकतीयवंशने वारंगलको राजधानी बनाकर दक्षिणके पूर्वी भाग (तेलंगाना)पर शासन किया। दक्षिणके इन राजाओंके बीच बराबर युद्ध होते रहते थे। फलत दिल्लीके सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीने एक-एक करके सभीको अपने अधीन कर लिया। यादव राजा १२९६ और १३१३ ई० के बीच परास्त हुए, काकतीय राजा १३१० ई० मे तथा होयसल-नरेश १३११ ई० मे। इसके बाद होयसलोने नाममात्रके लिए १४२४–२५ ई० तक शासन किया। इनके राज्यको बादमे बहमनी सुल्तानोने अपने राज्यमे मिला लिया। इस प्रकार उत्तर भारतकी भाँति दक्षिणमे भी हिन्दू राज्य समाप्त हो गया।

यद्यपि राजनीतिक दृष्टिसे नदो, मौर्यो तथा गुप्तोको छोडकर शेष कालमे दक्षिण उत्तर भारतसे लगभग अलग ही रहा, तथापि सास्कृतिक और धार्मिक दृष्टिसे वह सदैव हिन्दू भारतका अभिन्न अग रहा। यद्यपि दक्षिणवासी उत्तरभारतीयोसे भिन्न भाषाएँ बोलते थे, तथापि उत्तरके हिन्दुओकी भाँति दक्षिणकी भी राजभाषा सस्कृत ही रही। ब्राह्मण धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्मका दक्षिणमे भी उतना ही आदर हुआ, जितना उत्तरमे। यदि दक्षिणने उत्तरसे बहुत कुछ प्राप्त किया, तो उसने उत्तरको बहुत कुछ दिया भी। आदि शकराचार्य दक्षिणके ही थे, जिन्होने वेदान्तदर्शनका प्रतिपादन किया। रामानुजाचार्यने वैष्णवधर्मकी स्थापना की। विख्यात स्मृतिकार विज्ञानेश्वरने 'मिताक्षरा सिद्धात' प्रतिपादित किया जो बगाल और आसामको छोडकर शेष भारतके सामाजिक जीवनका नियमन करता है। कला और वास्तुशिल्पमे दक्षिणने हिन्दू परम्पराको जीवित रखा। कला, वास्तुशिल्प, मूर्तिकला और चित्रकलाके क्षेत्रमे हिन्दुओकी उन्नतिका परिचय दक्षिण जानेपर ही मिलता है, जहाँ विशाल मदिरोके रूपमे अत्यन्त सुन्दर कलाकृतियाँ विद्यमान है। एलोरा-अजताकी गुफाएँ और ये मदिर हिन्दुओके कलावैभवका जो चित्र प्रस्तुत करते है, उसकी कल्पना उत्तर भारतके मदिरोको देखकर नही की जा सकती।

दक्षिणका बादका इतिहास—अलाउद्दीन खिलजीने १३१० ई० मे देवगिरि, उसी वर्ष वारंगल और १३११ ई० मे द्वारसमुद्रके हिन्दू राजाओको जीता। बादमे उसने अपने सेनापति मलिक काफूर (दे०) को सुदूर दक्षिणकी विजयके लिए भेजा। काफूरने पाण्ड्य राजधानी मदुरापर अधिकार कर लेनेके बाद रामेश्वरम् तक धावा बोला। इस प्रकार उसने कन्याकुमारी तक सम्पूर्ण दक्षिण भारतको मुसलमानोके अधीन कर दिया। वह अपने साथ लूटके सामानमे ६१२ हाथी, २० हजार घोडे, ९६ हजार मन सोना तथा मोती एव जवाहरातके बहुतसे सदूक भर कर लाया। इससे दक्षिण भारतके वैभवका पता चलता है। किन्तु दिल्लीका प्रभुत्व वहाँ बहुत दिनो तक कायम न रह सका।

सुल्तान मुहम्मद तुगलककी नीतियोकी प्रतिक्रियास्वरूप मअबर (सुदूर दक्षिण)ने विद्रोह कर दिया तथा १३३५ ई० मे अहसानशाहके नेतृत्वमे स्वाधीन हो गया और अगले दशकमे नर्मदा और कृष्णाके बीचका दक्षिणी पठार भी अलाउद्दीन हसन बहमनी (दे०) के नेतृत्वमे १३४७ ई० मे स्वतत्र हो गया। उसी समयके आसपास विजयनगर (दे०)मे हिन्दू साम्राज्यकी स्थापना हुई, जो कृष्णा नदीके दक्षिणमे था। १६वी शताब्दीके द्वितीय दशकमे बहमनी सल्तनतके टुकडे-टुकडे हो गये। जब १५२६ ई० मे बाबरने दिल्लीमे मुगल साम्राज्यकी स्थापना की तब बहमनी सल्तनत पाच मुस्लिम राज्यो—बरार, बीदर, बीजापुर, अहमदनगर तथा गोलकुण्डामे बँट गयी। विजयनगरका हिन्दू राज्य १५६५ ई० तक कायम रहा, जबकि बीजापुर, अहमदनगर गोलकुण्डा तथा बीदरके सुल्तानोने मिलकर उसपर आक्रमण किया और तालीकोटके युद्धमे पराजित किया। लेकिन मुस्लिम राज्योकी एकता भी कायम न रह सकी। अहमदनगरको, जिसने १५७४ ई० मे बरारको जीत लिया था, मुगल सम्राट् अकबर (दे०)को १५९६ ई० मे सौंप देना पडा। बादमे १६३७ ई० मे सम्पूर्ण सल्तनतको मुगल साम्राज्यमे मिला लिया गया। इसके बाद बीजापुरको भी, जिसने १६१९ ई० मे बीदरको जीत लिया था, १६८६ ई० मे मुगल साम्राज्यमे शामिल कर लिया गया। एक वर्ष पश्चात् गोलकुडा भी शामिल कर लिया गया। उसके तीन वर्ष बाद महाराष्ट्र अर्थात् दक्षिणके उत्तरी-पश्चिमी भागको जहाँ शिवाजीने स्वराज्यकी स्थापना की थी, मुगल सम्राट् औरगजेबने अपने अधिकारमे कर लिया। इस प्रकार सम्पूर्ण दक्षिण पुन उत्तरका भाग बन गया।

लेकिन इस बार भी यह एकता बहुत दिन तक कायम न रह सकी। महाराष्ट्रने औरगजेबकी मृत्यु (१७०७ ई०) के पहले ही पुन स्वाधीनता प्राप्त कर ली। औरगजेबके उत्तराधिकारी बहादुरशाह (१७०७–१२ ई०)ने महाराष्ट्रकी स्वाधीनताको मान्यता भी दे दी। १७२४ ई० मे

दक्षिणका मुगल सूबेदार चिनकिलिच खाँ (दे०), जो निजा-मुलमुल्क आसफजाहके नामसे जाना जाता है, स्वाधीन हो गया और उसने अपनेको स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया। इस प्रकार १८वी शताब्दीके प्रथम चतुर्थांशमें ही दक्षिण पुन उत्तरसे अलग हो गया। कुछ समय बाद ही दक्षिण दो भागोमें बँट गया। हैदराबादमें निजामका शासन तथा पूनामें मराठोंका शासन स्थापित हुआ। इस बीच यूरोपीय व्यापारी भी दक्षिण पहुँच गये और पूर्वी तथा पश्चिमी तटपर यत्र-तत्र बस गये। पुर्तगाली गोवा, दमण और दिवमें, अंग्रेज सूरत, बम्बई और मद्रासमें और फ्रासीसी पाण्डेचेरी, माहे तथा कारीकलमें जम गये।

इन विदेशी व्यापारियोमें भी प्रतिद्वन्द्विता शुरू हो गयी। पहले अंग्रेजो और फ्रासीसियोने मिलकर पुर्तगालियोंके व्यापारको खत्म किया। बादमें अंग्रेजो और फ्रासीसियोके बीच द्वन्द्व हुआ। दोनोके बीच यूरोपमें लडाई शुरु हो जानेके कारण भारतमें भी सघर्ष शुरू हो गया। १७४० और १७६३ ई० के बीच दक्षिणकी भूमिपर दोनोंमें लडाइयाँ हुईं। दोनोंके पास देशी सेनाएँ भी थी। ये लडाइयाँ कर्नाटक-युद्ध (दे०)के नामसे जानी जाती हैं। इन युद्धोका फल यह हुआ कि दक्षिणमें फ्रासीसियोकी राजनीतिक शक्ति समाप्त हो गयी और अंग्रेजोकी सत्ता स्थापित हो गयी। इसके अलावा दक्षिणमें और भी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटी। महाराष्ट्रमें शिवाजीके पौत्र साहू (१७०७-४८) ने १७२७ ई० मे अपनी राजसत्ता पेशवा बाजीराव प्रथम (दे०)को हस्तातरित कर दी, जिसने महाराष्ट्रपर अपनी मृत्यु (१७४० ई०) पर्यंत शासन किया।

पेशवाने मराठा सघकी स्थापना की और पहली बार १७३७ ई० मे अपनी सेनाएँ उत्तरमें भेजी, जिसका मुख्य उद्देश्य पतनोन्मुख मुगल साम्राज्यके स्थानपर हिन्दू साम्राज्यकी स्थापना था। लेकिन १७४० ई० मे पेशवा बाजीरावकी अचानक मृत्यु हो गयी। मृत्युके पहले उसने अपने प्रधान सरदार भोसलेको नागपुर क्षेत्र, गायकवाडको बडौदा क्षेत्र, होल्करको इदौर क्षेत्र तथा शिन्देको ग्वालियर क्षेत्रका शासन सौपा था। उसके पुत्र पेशवा बालाजी बाजीराव (१७४०-६१ ई०) (दे०)ने पजाबमें मराठा सेना भेजी, जहाँ अहमदशाह अब्दालीका पुत्र तैमूर शासन कर रहा था। इस प्रकार बालाजीने अब्दालीसे लडाई मोल ले ली। फलत पानीपतकी तीसरी लडाई (१७६१ ई०) (दे०)मे मराठोको करारी हार खानी पडी। बालाजी-को इससे भारी धक्का लगा और उसका प्राणात हो गया। मराठा एकताको भी भारी धक्का लगा।

इसी बीच १७६१ ई०में एक मुस्लिम सिपाही हैदर अलीने मैसूरके हिन्दू वाडयार वश (दे०)के राजाको उखाड फेका। यह हिन्दू राज्य विजयनगरके पतन (१५६५ ई०) के पश्चात् स्थापित हुआ था और इसका विस्तार दक्षिणी प्रायद्वीपके अतिम छोर तक था। अब दक्षिणके तीनो राज्यो—हैदराबाद, मैसूर तथा पूनाके बीच द्वन्द्व होने लगा। इन्होने दक्षिणमें अंग्रेजोकी बढती हुई राजशक्तिकी ओर विशेष ध्यान नही दिया। ये तीनो राज्य एक दूसरेके विरुद्ध षड्यत्रो और देशविरोधी कार्योंमें सलग्न रहे। फल यह हुआ कि दक्षिणके राज्य मिलकर अंग्रेजोको निकाल बाहर करनेमें विफल रहे। दूसरी ओर अंग्रेजोने इन राज्योकी प्रतिद्वन्द्विताका पूरा-पूरा फायदा उठाया। अंग्रेजोंने निजाम-को आश्रित सधि (दे०) करनेके लिए बाध्य किया और फिर उसकी मददसे १७९९ ई०में श्रीरगपट्टम्‌के युद्ध मे मैसूरके सुल्तान टीपूको पराजित करके मार डाला। मराठे निष्क्रिय होकर तमाशा देखते रहे। इसके बाद अंग्रेजोने उसी वर्ष तजौर और सूरतको अपने अधिकारमें कर लिया। अतमें १८०२ ई०में अंग्रेजोने मराठोको भी पराजित कर उनपर बसईकी सधि (दे०) आरोपित कर दी, जिसके अनुसार पेशवा भी आश्रित सधि करनेको बाध्य हो गया।

मराठोने इस सधिसे निकलनेका प्रयास किया। फलत दूसरा मराठा-युद्ध (१८०३-०५ ई०) (दे०) हुआ, जिसमे मराठा सघके सभी राज्य हार गये और सभीको आश्रित सधि स्वीकार करनी पडी। इस प्रकार दक्षिणपर अंग्रेजोका प्रभुत्व स्थापित हो गया। मराठोकी बची-खुची शक्ति तीसरे मराठा-युद्ध (१८१७-१९ ई०) (दे०)में समाप्त हो गयी जिसके फलस्वरूप पेशवा बाजीराव द्वितीयको पेशन देकर उत्तर भारत (बिठूर) भेज दिया गया। होल्कर आदि मराठा सरदारोने भी अंग्रेज सरकारकी अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार दक्षिणका पृथक् राजनीतिक अस्तित्व पूर्णतया समाप्त हो गया। इसके बाद वह बराबर राजनीतिक एव सास्कृतिक दृष्टिसे भारतका अभिन्न अग बना रहा। १९४७ ई० मे भारतके स्वतत्र होनेपर दक्षिणके देशी रजवाडे भी जो अंग्रेजोके अधीन थे, भारतीय गणतत्रमें विलीन हो गये। उत्तर भारतकी भाँति दक्षिणा-पथ अथवा दक्षिण भी अब भारतका अविभाज्य अग है।

दक्षिण एजूकेशन सोसाइटी—महाराष्ट्रके न्यायमूर्ति महादेव गोविंद रानाडेकी प्रेरणासे १८८४ ई०में स्थापित की गयी। इसका मुख्यालय बम्बई था और इसका उद्देश्य शिक्षा-पद्धतिमें ऐसा सुधार करना था, जिससे तत्कालीन शिक्षा-सस्थाओमे प्रशिक्षित युवकोकी अपेक्षा कही बेहतर

देशसेवाके लिए तैयार किये जा सके। सोसाइटीके सदस्योके लिए यह आवश्यक था कि वे ७५ रुपया नाममात्रके वेतनपर कमसे कम २० वर्ष तक देशसेवा करे। गोपाल-कृष्ण गोखले, श्री श्रीनिवास शास्त्री आदि विख्यात समाज-सेवकोने, जो इसी सोसाइटीकी देन थे, बादमे सुप्रसिद्ध फर्गुसन कालेज, पूना तथा वेलिगडन कालेज, सागलीकी स्थापना की।

दत्ताजी शिन्दे—एक मराठा सेनापति, जो १७५६ ई० मे पेशवा बालाजी रावकी ओरसे पजावका शासक था। यह सूवा अहमदशाह अब्दाली (दे०)के पुत्र तैमूरसे छीना गया था। जब अहमदशाह अब्दालीने यह खबर सुनी तो वह आग-बबूला हो गया। उसने वर्ष समाप्त होनेके पहले ही एक बडी सेना लेकर पजाबपर आक्रमण कर दिया। दत्ताजी-ने अब्दालीका सामना थानेश्वरके युद्ध (दिसम्बर १७५६ ई०)मे किया, लेकिन हारकर भाग खडा हुआ। दिल्लीके १० मील उत्तर बरारीघाटमे फिर दोनोके बीच युद्ध हुआ जिसमे दत्ताजी ६ जनवरी १७६० को अब्दालीके हाथो मारा गया।

दनुजमर्दन देव—बंगालका शासक, जिसके सिक्के बगालके सुदूर स्थानो, जैसे पाडुआ (पश्चिमी बगाल), स्वर्णग्राम (ढाका जिला ?) और चटगाँवमे मिले है। इन सिक्कोपर बंगलामे सस्कृत लेख और शक सवत् १३३६–१३४० अकित है। ऐसी धारणा है कि दनुजमर्दन देव और राजा गणेश एक ही थे। राजा गणेश पन्द्रहवी ईसवी शताब्दीमे बगालका शासन करता था। (**'ढाका हिस्ट्री आफ बंगाल', खण्ड दो, पृष्ठ १२०–२२**)

दयानद सरस्वती, स्वामी—(१८२४–८३ ई०) आर्य समाज (१८७५ ई०)के सस्थापक। भारतमे अग्रेजी राज्य, विशेषरूपसे अग्रेजी शिक्षा तथा ईसाई धर्मके प्रसारके साथ पश्चिमके अधानुकरणकी जो प्रवृत्ति बढती जा रही थी, उसका आर्य समाजने विरोध किया। स्वामीजी सस्कृतके अद्वितीय विद्वान् थे, लेकिन उन्हे अग्रेजीका ज्ञान नही था। वे वैदिक धर्म, वैदिक शिक्षा तथा वैदिक दर्शनमे अत्यधिक विश्वास करते थे और उसीके अनुसार हिन्दू धर्म और समाज-को फिरसे ढालना चाहते थे। 'वेदोकी ओर चलो' उनका नारा था। उन्होने परवर्ती पौराणिक धर्मकी आलोचना की और वहुदेववाद तथा मूर्तिपूजाका खण्डन किया। वे एकेश्वरवादमे विश्वास करते थे। उन्होने जातिवधन, बालविवाह और समुद्रयात्रा-निषेधकी निंदा की। उन्होने नारी-शिक्षा तथा विधवा-विवाहको प्रोत्साहित किया। वस्तुत वे मुस्लिम शासनके अतर्गत हिन्दू समाजमे आ जानेवाली बुराइयोको दूर करना चाहते थे। इसके अलावा वे यह भी कहते थे कि किसी भी अहिन्दूको हिन्दू बनाया जा सकता है। इसके लिए उन्होने शुद्धि-आदोलन चलाया, जिसका उद्देश्य भारतीयोकी अखण्डता और एकता-को बल प्रदान करना था। अतएव इस आदोलनके राजनी-तिक निहितार्थ भी थे। स्वामीजीने अपने सिद्धातोके प्रचारके लिए अनेक पुस्तके लिखी, जिनमे 'सत्यार्थप्रकाश' मुख्य है। वे एक महान् वक्ता थे और सीधे जनताके बीच जाकर उपदेश देते थे। पजाब और उत्तर प्रदेशमे उनके सिद्धान्तोका बहुत प्रचार हुआ। उन्होने यद्यपि पश्चिमी विज्ञान तथा समाजशास्त्र तथा धर्मके सम्वन्धमे वैज्ञानिक दृष्टिकोणकी उपेक्षा की, तथापि उन्होने अपने असाधारण व्यक्तित्वसे हिन्दू समाजको नीवसे हिला दिया। उन्होंने हिंदू मस्तिष्कको पश्चिमी शिक्षा और धर्मकी चुनौतीका सामना करने, प्राच्य सभ्यताको जीवित रखने तथा हिन्दू धर्म एव सस्कृतिके शुद्ध रूपको प्रतिष्ठित करनेका भगीरथ प्रयास किया।

आर्य समाजके आदोलनका फल यह हुआ कि हिन्दुओका धर्म-परिवर्तन रुक गया। जिन हिन्दुओने दूसरा मजहब स्वीकार कर लिया था, उनमेसे अनेकको फिर हिन्दू बना लिया गया। आर्य समाजने भारतमे राष्ट्रवादके विकासमे बहुत बडा योगदान किया एव यह शिक्षा दी कि जातिभेद और सामाजिक भिन्नताके बावजूद समस्त भारतकी जनता एक है। इससे राष्ट्रीयताकी भावनाको बहुत बल मिला। गुरुकुल कागडी (हरिद्वार) स्वामीजीके आदर्शोका मूर्तिमान रूप है, जहाँ सस्कृत शिक्षाका माध्यम है। स्वामीजीके अनुयायियोने बादमे आधुनिक शिक्षापर भी जोर दिया। इसके लिए उन्होने उत्तर भारतमे सैकडो दयानद ऐग्लो-वैदिक स्कूल-कालेज खोले, जिनमे आधुनिक ज्ञान-विज्ञानके साथ अग्रेजीकी भी शिक्षा दी जाने लगी। १६वी शताब्दीमे भारतीय राष्ट्रीयताके विकासमे स्वामी दयानदका बहुत बडा योगदान माना जाता है।

दर्शक (लगभग ४६७–४४३ ई० पू०)—मगधके सम्राट् अजातशत्रु (लगभग ४६४–४६७ ई० पू०) का पुत्र और उत्तराधिकारी। कदाचित् यह वही नरेश था, जिसका उल्लेख भास लिखित नाटक 'स्वप्नवासवदत्ता'मे मिलता है।

दलाई लामा—कुछ वर्ष पहले तक तिब्बतके धर्मगुरु तथा शासक। वर्तमान दलाई लामा, जिन्हे तिब्बतपर चीनी आक्रमणके बाद भागकर भारतमे शरण लेनी पडी, दलाई लामाओके क्रममे चौदहवे है। तिब्बतकी बौद्ध मतावलम्बी जनता दलाई लामाको बोधिसत्व अवलोकितेश्वरका

अवतार मानती है। प्रचलित प्रथाके अनुसार दलाई लामाको देवता और मनुष्य मिलकर खोजते हैं। उस समय वे आमतौरसे बालक होते है और गद्दीपर बैठनेके बाद उनकी तरफसे अभिभावक और भिक्षुओंकी परिषद् शासन चलाती है। वयस्क हो जानेपर वे स्वय भिक्षुओकी परिषद् चुनते है और उसकी सहायतासे शासन करते हैं।

दलायल-ए-फीरोजशाही—फारसीका एक उल्लेखनीय काव्य-ग्रथ। इसकी रचना सुल्तान फीरोजशाह तुगलकके आदेशपर उसके दरबारी कवि आजुद्दीन खालिद खानीने की थी। इसमें विभिन्न विषयोके ३०० सस्कृत ग्रथोका अनुवाद है। ये ग्रथ सुल्तानको नगरकोटके निकट ज्वालामुखीके मदिरमे उस समय मिले थे जब १३३७ ई० मे छ महीनेकी घेराबदीके बाद नगरकोटने सुल्तानके आगे आत्मसमर्पण कर दिया था।

द-लाली—देखिये, 'लाली'।

द-ला-हाये—एक फ्रासीसी नौसेनाधिकारी, जो चोलमण्डल तटपर फ्रासीसी हितोकी रक्षा करनेके लिए भेजा गया था। १६७२ ई० मे फ्रासीसियोंने मद्रासके निकट सेण्ट थोमपर कब्जा कर लिया, लेकिन अगले वर्ष ही डचोने श्रीलकाके त्रिकोमाली बदरगाहमे तैनात फ्रासीसी बेडेको, जिसका नेतृत्व द-ला-हाये कर रहा था, वहाँसे मार भगाया। बादमे डचोने १६७४ ई० मे सेण्ट थोमपर भी अधिकार कर लिया।

दलीपसिंह—पजाबके महाराज रणजीतसिंहका सबसे छोटा पुत्र। १८४३ ई० मे वह नाबालिगीकी अवस्थामे अपनी माँ रानी जिंदाँकी सरक्षकतामे राजसिंहासनपर बैठाया गया। उसकी सरकार प्रथम सिख-युद्ध (१८४५–४६)मे शामिल हुई, जिसमे सिखोकी हार हुई और उसे सतलज नदीके बायी ओरका सारा क्षेत्र एव जलधर दोआब अग्रेजोको समर्पित करके और डेढ करोड रुपया हर्जाना देकर सधि करनेके लिए बाध्य होना पडा। रानी जिंदाँसे नाबालिग राजाकी सरक्षकता छीन ली गयी और उसके सारे अधिकार सिख सरदारोकी परिषद्मे निहित कर दिये गये। किन्तु परिषद्ने दलीपसिंहकी सरकारको १८४८ ई० मे ब्रिटिश भारतीय सरकारके विरुद्ध दूसरे युद्धमे फँसा दिया। इस बार भी सिखोकी पराजय हुई और ब्रिटिश विजेताओने दलीपसिंहको अपदस्थ करके पजाबको ब्रिटिश राज्यमे मिला लिया। दलीपसिंहको पाँच लाख रुपया वार्षिककी पेशन बाँध दी गयी और इसके बाद शीघ्र ही माँके साथ उसे इग्लैण्ड भेज दिया गया, जहाँ दलीपसिंहने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया और वह नारफाकमे कुछ समय तक जमीदार रहा। इग्लैण्ड प्रवासके दौरान दलीपसिंहने १८८७ ई० मे रूसकी यात्रा की और वहाँ जारको भारतपर हमला करनेके लिए राजी करनेका असफल प्रयास किया। बादमे वह भारत लौट आया और फिरसे अपना पुराना सिख धर्म ग्रहण करके शेष जीवन व्यतीत किया। (**'बंगाल पास्ट ऐण्ड प्रेजेण्ट', खण्ड ७४, पृष्ठ १८६**)

दवार बख्श—बादशाह जहाँगीर (१६०५–२७)के पुत्र खुसरू (दे०)का पुत्र। खुसरूकी मृत्यु १६२२ ई० मे हो गयी और अक्तूबर १६२७ ई० मे जहाँगीरके मरनेपर शाहजहाँके श्वसुर आसफखाँने दिल्लीकी गद्दीपर दवार बख्शको बैठा दिया ताकि जहाँगीरका सबसे छोटा पुत्र शहरयार जो मलका नूरजहाँका कृपापात्र था, गद्दीपर न बैठ सके। फरवरी १६२८ ई० मे शाहजहाँके दक्षिणसे आगरा लौट आनेपर दवार बख्शको गद्दीसे उतार दिया गया और शाहजहाँ सम्राट् घोषित किया गया। दवार बख्शको कारागारमे डाल दिया गया। बादमें वह मुक्त होनेपर फारस चला गया और वहाँके बादशाहकी सरक्षकतामे जीवन व्यतीत करता रहा।

दशरथ—अयोध्या अथवा अवधके राजा, जो भारतके आदि-कवि वाल्मीकि-रचित रामायणके नायक रामचद्रजीके पिता थे।

दशरथ—अशोक मौर्यका पौत्र, जो लगभग २३२ ई० पू० गद्दीपर बैठा। उसने बिहारकी नागार्जुनी पहाडियोकी कुछ गुहाएँ आजीविकोको निवासके लिए दान कर दी थी। इन गुहाओकी दीवालोपर अकित अभिलेखोसे प्रकट होता है कि दशरथ भी अपने पितामहकी भाँति 'देवानाम्प्रिय'की उपाधिसे विभूषित था। यह कहना कठिन है कि वह भी बौद्ध धर्मका अनुयायी था या नही। (**रायचौधरी, पृ० ३५०–५१**)

दस्तक—बगालमे ईस्ट इडिया कम्पनी जो पारपत्र जारी करती थी, उनमे कपनीके अभिकर्ताओको अधिकार दिया जाता था कि वे प्रातके अदर चुगी अदा किये बिना व्यापार कर सके। १७१७ ई० मे शाह फर्रुखसियर द्वारा कम्पनीको दिये गये फरमानके अन्तर्गत ढाई प्रतिशत चुगी अदा न करनेकी छूट दी गयी थी। कानूनी तौरपर यह छूट केवल कम्पनी ही प्राप्त कर सकती थी। लेकिन इस छूटका बेजा फायदा दो प्रकारसे उठाया जाता था। पहले तो कम्पनीके कर्मचारी दस्तक प्राप्त करके स्वय बिना चुगी दिये निजी व्यापार करते थे। फिर कम्पनी इस प्रकारके दस्तक भारतीय व्यापारियोको भी बेच दिया करती थी, जिनके द्वारा वे लोग भी बिना चुगी दिये व्यापार करते थे।

नवाव सिराजुद्दौला (दे०)ने 'दस्तक' प्रथाका विरोध किया, लेकिन पलासीके युद्ध (दे०)के बाद 'दस्तक' प्रथा और अधिक बढ गयी। इस समय नवाब मीर जाफर (दे०) नाममात्रका शासक था। अन्तमे इस प्रथाका फल यह हुआ कि इससे सबसे अधिक हानि भारतीय व्यापारियोको ही उठानी पडी और नवाबको भी राजस्वके बहुत बडे अशसे हाथ धोना पडा।

मीर जाफरके पदच्युत किये जाने और मीर कासिम (१७६०–६३) (दे०)के पदारूढ किये जानेके बाद यह बुराई इतनी अधिक बढ गयी कि १७६२ ई० मे मीर कासिमने कम्पनीसे इसका घोर विरोध किया तथा माँग की कि इसे रोका जाय। लेकिन कम्पनीने इस ओर कोई ध्यान नही दिया। फलत मीर कासिमने सभीके लिए पूरी चुगी माफ कर दी, जिससे सभी प्रकारके व्यापारियोको समान लाभ मिल सके। इसका नतीजा यह हुआ कि कम्पनीके कर्मचारियोको अपनी गैरकानूनी आमदनीका घाटा होने लगा। उन्होने, विशेषरूपसे पटनाके एलिस नामक कम्पनीके कर्मचारीने, शस्त्रबलसे अपने गैरकानूनी दावेको मनवानेका प्रयास किया। फलत कम्पनी और मीर कासिममे युद्ध (१७६३) छिड गया। मीर कासिम लडाईमे हारकर भाग खडा हुआ। क्लाइव (दे०)ने, दूसरी बार (१७६५–१७६७ ई०) बगालका गवर्नर नियुक्त होनेपर 'दस्तक' प्रथासे उत्पन्न बुराईको दूर करने और कर्मचारियोके निजी व्यापारको नियत्रित करनेका प्रयास किया। लेकिन अन्तमे गवर्नर-जनरल लार्ड कार्नवालिस (१७८६–९३ ई०)के जमानेमे ही यह बुराई पूरी तौरसे समाप्त हो सकी।

दस्यु—देखिये, 'दास'।

दाऊद खॉ—बगालके हाकिम सुलेमान कर्रानीका पुत्र और उत्तराधिकारी। सुलेमानकी १५७८ ई० मे मृत्यु हो गयी। दाऊदने गद्दीपर बैठनेके बाद अपनेको स्वतत्र बादशाह घोषित किया। उसने गाजीपुर जिले (उ० प्र०)के एक मुगल किलेपर अधिकार कर लिया। तत्कालीन मुगल बादशाह अकबर (दे०), बगालमे स्वतत्र राज्यकी स्थापनाको मुगल साम्राज्यकी सुरक्षाके लिए खतरनाक मानकर १५७४ ई० मे स्वय दाऊदको दडित करनेके लिए, एक बडी सेना लेकर रवाना हुआ। दाऊद बिहार छोडकर भागा। मुगल सेनापति मुनअम खॉने उसे टुकरोई (उडीसा) के युद्ध (मार्च १५७५)मे पराजित किया। फिर भी दाऊद मुगलोके विरुद्ध लडता रहा। जुलाई १५७६ ई० मे राजमहलके युद्धमे दाऊद अतिम रूपसे पराजित हुआ और मारा गया। उसके बाद बगालको मुगल साम्राज्यमे मिला लिया गया।

दाऊद खॉ—गुजरातमे १४०१ ई० मे जफर खांने अपनेको स्वतत्र सुल्तान घोषित करके जो नया राजवश चलाया उसमे चौथा सुल्तान। दाऊद १४५१ ई० मे गद्दीपर बैठा परन्तु आरम्भमे ही उसने अपने दुराचरणसे समर्थक अमीरोको अपना विरोधी बना दिया और उन्होने उसे कुछ ही दिनोके बाद गद्दीसे उतार दिया।

दाऊद खॉ—खानदेशके फारूकी वशका छठा शासक। उसने सात वर्ष (१५०१–१५०८ ई०) तक शासन किया। उसके शासनकालमे कोई महत्त्वपूर्ण घटना नही घटी।

दाऊद बहमनी—दक्षिणके बहमनी वशका चौथा सुल्तान, वह तृतीय सुल्तान मुजाहिदशाहका चचेरा भाई था। दाऊदने उसकी हत्या करायी और स्वय १३७८ ई० मे गद्दीपर बैठ गया। लेकिन वह अधिक दिन तक शासन न कर सका। कुछ ही समय बाद मृत मुजाहिदशाहकी दूध-बहनने दाऊदको मरवा दिया।

दादाजी खोडदेव (कोण्डदेव)—एक मराठा ब्राह्मण और महान मराठा नेता शिवाजी (१६२७–८० ई०)का गुरु और अभिभावक। उसने अपने इस शिष्यके मनमे बचपनसे साहस और पराक्रमके उदात्त भावके साथ-साथ प्राचीन भारतके महान् हिंदू वीरोके प्रति श्रद्धाकी भावना भरी। उसने गौ और ब्राह्मणको पूज्य बताया। उसीसे प्रेरित होकर शिवाजीने भारतमे स्वराज्य स्थापित करनेका सकल्प किया। दादाजी खोडदेवने शिवाजीके छोटेसे राज्यका शासन सुव्यवस्थित करके उसकी भावी राजस्व प्रणालीकी आधारशिला रखी। (यदुनाथ सरकार कृत 'शिवाजी ऐण्ड हिज टाइम्स')

दादाभाई नौरोजी (१८२५–१९१७)—बम्बईके एक प्रमुख व्यापारी, जिनका इग्लैण्डतक गहरा व्यापारिक सबध था। वे जातिके पारसी और बहुत धनिक थे। उनका दृष्टिकोण बहुत उदार था और उन्हे भारतके सार्वजनिक आन्दोलनोमे गहरी दिलचस्पी रहती थी। १८८६ ई० में कलकत्तामे हुए दूसरे अधिवेशनमे उन्हे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसका अध्यक्ष चुना गया। वे पहले भारतीय थे जिन्हे उदार दल (लिबरल पार्टी) के टिकटपर इग्लैण्डकी कामन सभाका सदस्य चुना गया। इसके बाद भी वे दो बार १८९३ और १९०६ मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके अध्यक्ष निर्वाचित हुए। उनके देखते-देखते भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस प्रशासन सबधी शिकायते दूर करानेके लिए प्रयत्नशील पराधीन जनताके मामूलीसे सगठनसे स्वराज्य प्राप्

करनेके लिए संघर्षशील एक शक्तिशाली राष्ट्रीय प्रतिनिधि सभा बन गयी। स्वराज्यकी माग भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने पहली बार १९०६ ई०में श्री नौरोजीकी अध्यक्षतामे हुए कलकत्ता अधिवेशनमे की। उनकी मृत्यु ९२ वर्षकी अवस्थामे १९१७ ई०मे हुई, जिसके १२ वर्ष बाद कांग्रेसने पूर्ण स्वाधीनताको अपना लक्ष्य घोषित किया। **(आर० पी० मसानी कृत 'दादाभाई नौरोजी—दि ग्रैंड ओल्ड मैन आफ इंडिया')**

दादू—इन्होंने एक निर्गुणवादी सम्प्रदायकी स्थापना की, जो 'दादूपंथ'के नामसे ज्ञात है। वे अहमदाबादके एक धुनियाके पुत्र और मुगल सम्राट् शाहजहां (१६२७–५८) के समकालीन थे। उन्होंने अपना अधिकाश जीवन राजपूतानामे व्यतीत किया एव हिन्दू और इस्लाम धर्ममे समन्वय स्थापित करनेके लिए अनेक पदोकी रचना की। उनके अनुयायी न तो मूर्तियोकी पूजा करते हैं और न कोई विशेष प्रकारकी वेशभूषा धारण करते है। वे सिर्फ राम-नाम जपते है और शातिमय जीवनमे विश्वास करते हैं, यद्यपि दादूपंथियोका एक वर्ग सेनामें भी भर्ती होता रहा है।

दादोका युद्ध—मार्च १८४३ ई० मे सर चार्ल्स नेपियरके नेतृत्वमे भारतीय ब्रिटिश सेना द्वारा मीरपुर (सिंध) के सर्वाधिक शक्तिसपन्न अमीर मुहम्मदके खिलाफ छेडा और जीता गया। इस युद्धके बाद वस्तुत पूरे सिंध प्रदेशपर अंग्रेजोका कब्जा हो गया और उसे ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया गया।

दानसागर—बगालके राजा बल्लालसेन (११५८–७९ ई०) द्वारा सकलित ग्रन्थ। इसमे ७० अध्याय है, जिनमे दानकी महत्ता, दानके प्रकार, दान करनेके काल तथा दान देनेकी विधियोका विवेचन है।

दानाध्यक्ष—शिवाजीके प्रशासनके अष्ट-प्रधानोमेंसे एक, जो 'पडितराव' भी कहलाता था। वह राजपुरोहित और राजकीय दान-वितरक होता था।

दानियाल, शाहजादा—मुगल सम्राट् अकबरका तीसरा और सबसे छोटा पुत्र। जन्म १५७२ ई० मे। वह उस मुगल सेनाका नायक था जिसके आगे अहमदनगरको आत्मसमर्पण करना पडा। वह अकबरका बहुत ही प्यारा पुत्र था, लेकिन शराबखोरीकी बुरी आदत पड जानेसे उसकी मृत्यु बहुत जल्दी १६०४ ई० मे हो गयी।

दानिशमंद खाँ—शाहजहांके शासनके अंतिमकाल और औरंगजेबके शासनके प्रारम्भिककालमे दिल्ली दरबारमे विद्यमान। वह बर्नियरका सरक्षक था, जो उसे एशियाका योग्यतम व्यक्ति समझता था। **(बर्नियर कृत 'ट्रेवेल्स')**

दामाजी गायकवाड—पिलाजी गायकवाडका पुत्र, जो आरम्भमे मराठा सेनापति त्र्यम्बकराव दाभाडेकी सेनामे नौकर था। १७३१ ई० मे बिल्हापुरके युद्धमे त्र्यम्बकरावकी पराजय हुई और वह मारा गया। दामाजीने इस युद्धमे अद्भुत शौर्यका प्रदर्शन किया। इससे प्रभावित होकर विजेता पेशवा बाजीराव प्रथमने दामाजीको अपनी सेवामे रख लिया और बादको उसे गुजरातमे पेशवाका प्रतिनिधि नियुक्त कर दिया। इस प्रकार दामाजी मराठा सघका एक प्रमुख सरदार बन गया और उसने बडोदाको अपनी राजधानी बनाकर गुजरातमे गायकवाडोकी सत्ता स्थापित की। उसने बाजीराव प्रथमके बाद दूसरे पेशवा बालाजी बाजीरावकी भी सेवा की और १७६१ ई० मे पानीपतके युद्धमे भाग लिया, किंतु जान बचानेके लिए वह युद्धक्षेत्रसे भाग आया। इस पराजयके बाद भी दामाजी गुजरातको अपने अधिकारमे किये रहा। १७६८ ई० मे उसकी मृत्यु हो गयी। **('बम्बई गजेटियर', खण्ड ७)**

दामोदर गुप्त—एक प्रख्यात विद्वान्। वह नवी शताब्दी ई० मे कश्मीरके शासक महाराज जयापीडका दरबारी कवि था।

दारयबहु (लगभग ई० पू० ५२२–४८६)—फारसके अखामनी वशका तीसरा सम्राट्। उसके बहिस्तान अभिलेख (लगभग ई० पू० ५१९)मे गधारके लोगोको भी उसकी प्रजा बताया गया है। हमदान, परसीपोलिस तथा नक्शेरुस्तमसे प्राप्त उसके एक अन्य अभिलेखमे भारतीयोका भी उल्लेख उसकी प्रजाके रूपमे किया गया है। हेरोडोटसके अनुसार गधार उसके साम्राज्यका सातवाँ प्रात और भारत अर्थात् सिंधुघाटी बीसवाँ प्रात था। दारयबहुको अपने भारतीय साम्राज्यसे काफी राजस्व प्राप्त होता था और साथ ही यहासे उसकी सेनाके लिए सैनिक भी भेजे जाते थे। इस प्रकार भारत और फारसके बीच अत्यत प्राचीनकालमे सपर्क था, जो दिनोदिन बढता गया। फलस्वरूप बहुतसे फारसी शब्द भारतमे प्रचलित हो गये। फारसके विचारोंने कुछ अंश तक भारतीय कलाको भी प्रभावित किया। **(राय चौधरी, पृ० २४० नोट)**

दाराशिकोह, शाहजादा—मुगल बादशाह शाहजहाँ (दे०)का सबसे बडा पुत्र। मुमताज बेगम उसकी माता थी। आरम्भमे वह पंजाबका सूबेदार बनाया गया, जिसका शासन वह राजधानीसे अपने प्रतिनिधियोंके जरिये चलाता था। शाहजहाँ अपने पुत्रोंमे सबसे ज्यादा इसीको चाहता था और उसे आमतौरसे अपने साथ दरबारमे रखता था। दारा बहादुर इसान था और बौद्धिक दृष्टिसे उसे अपने प्रपितामह अकबरके गुण विरासतमे मिले थे। वह सू-

की ओर उन्मुख था और इस्लामके हनफी पथका अनुयायी था। वह सभी धर्म और मजहबोंका आदर करता था और हिंदू दर्शन व ईसाई धर्ममे विशेष दिलचस्पी रखता था। उसके इन उदार विचारोसे कुपित होकर कट्टरपथी मुसलमानोने उसपर इस्लामके प्रति अनास्था फैलानेका आरोप लगाया। इस परिस्थितिका दाराके तीसरे भाई औरगजेबने खूब फायदा उठाया। दाराने १६५३ ई० मे कधारकी तीसरी घेराबदीमे भाग लिया था, यद्यपि वह इस अभियानमे विफल रहा, फिर भी अपने पिताका कृपापात्र बना रहा और १६५७ ई०मे शाहजहाँ जब बीमार पडा तो वह उसके पास मौजूद था।

दाराकी उम्र इस समय ४३ वर्ष थी और वह पिताके तख्ते ताऊसको उत्तराधिकारमे पानेकी उम्मीद रखता था। लेकिन तीनो छोटे भाइयो, खासकर औरगजेबने उसके इस दावेका विरोध किया। फलस्वरूप दाराको उत्तराधिकारके लिए अपने इन भाइयोके साथ युद्ध करना पडा (१६५७–५८ ई०)। लेकिन शाहजहाँके समर्थनके बावजूद दाराकी फौज १५ अप्रैल १६५८ ई० को धर्मटके युद्धमे औरगजेब और मुरादकी सयुक्त फौजोसे हार गयी। इसके बाद दारा अपने बागी भाइयोको दबानेके लिए दुबारा खुद अपने नेतृत्वमे शाही फौजोको लेकर निकला, किन्तु इस बार भी उसे २९ मई १६५८ ई० को सामूगढके युद्धमे पराजयका मुह देखना पडा। इस बार दाराके लिए आगरा वापस लौटना सभव नही हुआ। वह शरणार्थी बन गया और पजाब, कच्छ, गुजरात एव राजपूतानामे भटकनेके बाद तीसरी बार फिर एक बडी सेना तैयार करनेमे सफल हुआ। दौराईमे अप्रैल १६५९ ई० मे औरगजेबसे उसकी तीसरी और आखिरी मुठभेड हुई। इस बार भी वह हारा। दारा फिर शरणार्थी बनकर अपनी जान बचानेके लिए राजपूताना और कच्छ होता हुआ सिध भागा। यहाँ उसकी प्यारी बेगम नादिराका इतकाल हो गया।

दाराने दादरके अफगान सरदार जीवनखानका आतिथ्य स्वीकार किया। किंतु मलिक जीवनखान गद्दार साबित हुआ और उसने दाराको औरगजेबकी फौजके हवाले कर दिया, जो इस बीच बराबर उसका पीछा कर रही थी। दाराको बदी बनाकर दिल्ली लाया गया, जहाँ औरगजेबके आदेशपर उसे भिखारीकी पोशाकमे एक छोटे-सी हथिनीपर बिठाकर सड़कोपर घुमाया गया। इसके बाद मुल्लाओके सामने उसके खिलाफ मुकदमा चलाया गया। धर्मद्रोहके अभियोगमे मुल्लाओने उसे मौतकी सजा दी। ३० अगस्त १६५९ ई० को इस सजाके तहत दाराका सिर काट लिया गया। उसका बडा पुत्र सुलेमान पहलेसे ही औरगजेबका बदी था। १६६२ ई० मे औरगजेबने जेलमे उसकी भी हत्या करा दी। दाराके दूसरे पुत्र सेपहरशिकोहको बख्श दिया गया, जिसकी शादी बादको औरगजेबकी तीसरी लडकीसे हुई। **(कालिकारंजन कानूनगो कृत 'दाराशिकोह')**

दारोगा–एक फारसी शब्द, जिसका अर्थ होता है 'प्रधान'। ब्रिटिश कालमे यह थाना अधिकारीका पद-नाम बन गया। इसका अग्रेजी पर्याय सब-इसपेक्टर, पुलिस है। इस पदका सर्जन लार्ड कार्नवालिस (१७८६–९३) के प्रशासनके दौरान हुआ, जिसने प्रत्येक जिलेको थानो या पुलिस स्टेशनोमे विभाजित किया था। थानोका इचार्ज दारोगा होता था।

दास–वैदिक साहित्यमे 'दास' शब्द आर्योके शत्रुके लिए प्रयुक्त हुआ है, जिनके साथ उन्हे पजाबमे युद्ध करना पडा था। इन्हे दस्यु भी कहते है। दासोको श्याम वर्ण और चपटी नाकवाला बताया गया है। वे ऐसी भाषा बोलते थे, जिसे आर्य नही समझते थे। उनके किलो और पशुधनको हस्तगत कर लेनेके लिए आर्य लोग लालायित रहते थे। दास लोग आर्योकी यज्ञप्रथाके विरोधी थे। ये लोग कदाचित् निचली सिंधु घाटीमे फलने-फूलनेवाली प्रागैतिहासिक सभ्यतासे सम्बधित थे। बादमे 'दास' शब्दका अर्थ नौकर अथवा गुलाम हो गया और दस्यु डाकुओको कहा जाने लगा। **(मेकडानेल एव कीथ रचित 'वैदिक इण्डेक्स')**

दास प्रथा–भारतवर्षमे प्राय सभी युगोमे विद्यमान रही है। यद्यपि चौथी शताब्दी ई० पू० मे मेगस्थनीज (दे०) ने लिखा था कि भारतवर्षमे दास प्रथा नही है, तथापि कौटिल्यके अर्थशास्त्र (दे०) तथा अशोकके अभिलेखोमे प्राचीन भारतमे दास प्रथा प्रचलित होनेके सकेत उपलब्ध होते है। ऋणग्रस्त अथवा युद्धोमे बन्दी होनेवाले व्यक्तियोको दास बना लिया जाता था। फिर भी प्राचीन भारतमे यूरोपकी भाति दास प्रथा न तो व्यापक थी और न दासोके प्रति वैसा क्रूर व्यवहार होता था। मुसलमानोके शासनकालमे दास प्रथामे वृद्धि हुई और उन्हे नपुसक बना डालनेकी क्रूर प्रथा आरम्भ हुई। यह प्रथा भारतमे ब्रिटिश शासन स्थापित हो जानेके उपरात भी यथेष्ट दिनो तक चलती रही। १८४३ ई० मे इसको बन्द करनेके लिए एक अधिनियम पारित किया गया।

दासबोध–१७वी शताब्दीमे स्वतत्र मराठा राज्यकी स्थापना करनेवाले शिवाजीके गुरु रामदास द्वारा लिखित प्रसिद्ध ग्रथ।

दास्ताने अमीर हमजल–चित्रोंकी एक किताब, जिसमे फारसके सुप्रसिद्ध कलाकार मीर सैयद अली और ख्वाजा अब्दुस्समदके चित्र सगृहीत है। जब हुमायूने भारतमे भागकर फारसमे शरण ली थी, तो यह पुस्तक उसे समर्पित की गयी थी। जब हुमायू काबुलसे वापस लौटा तो वह इस पुस्तकको अपने साथ ले आया। बादमे जब उसने पुन दिल्लीको विजय किया, वह उस किताबको दिल्ली ले आया। तबसे यह चित्रसग्रह भारतमे है। इन सग्रहके चित्रोसे ही मुगल चित्रकलाकी नीव पडी।

दाहिर–चचका पुत्र। जब आठवी शताब्दी ई० के पहले दशकमे अरबोने सिधपर आक्रमण किया, वह वहाँका शासक था। शुरूके हमलोको तो दाहिरने कुचल दिया किन्तु ७१२ ई० मे मुहम्मद-इब्न-कासिमके नेतृत्वमे अरबोने उसे परास्त कर दिया और राओरके युद्धमे वह मारा गया। उसकी विधवा रानीने राओरका किला बचानेमे असफल होनेपर जौहर कर लिया। इसके बाद अरबोने सिंधकी राजधानी आलोरपर कब्जा कर लिया और इस प्रकार सिंध मुस्लिम अरबोके शासनाधीन हो गया।

दिगम्बर जैन–जैन धर्म (दे०) का एक सम्प्रदाय, जिसके साधु वस्त्रहीन रहते हैं। इसके विपरीत श्वेताम्बर साधु श्वेत वस्त्र धारण करते हैं।

दिङ्नाग–प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य और कवि, जो सम्भवत चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (३८०–४१५ ई०)के शासन-कालमे विद्यमान था।

दिद्दा–कश्मीरनरेश क्षेमगुप्तकी रानी, जिसने १०वी शताब्दी ईसवीमे पहले अपने पतिकी ओरसे शासन किया जो उसके हाथकी कठपुतली मात्र था, बादमे राजाके मरनेपर वह स्वय राजसिंहासनपर आरूढ हो गयी। १००३ ई० मे उसने अपने भतीजे सग्रामराजको राजमुकुट सौंप दिया, जिससे कश्मीरमे लोहर राजवश प्रचलित हुआ।

दिया ज द नोवैस, बार्थो लोम्यो–प्रथम पुर्तगाली नाविक, जिसने १४८७ ई० मे दक्षिण अफ्रीकाके उत्तमाशा अन्तरीप-का चक्कर लगाया और इस प्रकार यूरोप और भारतके बीच समुद्रमार्गकी खोज की।

दिलरस बानो बेगम–मुगल अफसर शाहनवाज खाकी पुत्री, जो एक ईरानी अमीर था, १६३७ ई० मे शाहजादा औरग-जेबके साथ व्याही गयी। जब १६५८ ई० मे औरगजेब सम्राट्‌की हैसियतसे दिल्लीकी गद्दीपर बैठा, तो दिलरस बानो सम्राज्ञी बनी।

दिलावर खाँ गोरी–शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीका वशज होनेका दावा करनेवाला एक सरदार। वह १३९२ ई० मे मालवा-का सूबेदार नियुक्त किया गया। जब तैमूरने १३९८ ई० मे दिल्लीपर आक्रमण किया तो चारो ओर अराजकता उत्पन्न हो गयी, जिसका लाभ उठाकर दिलावर खाँ मालवा-का स्वतन्त्र शासक बन बैठा। पाँच वर्ष शासन करनेके पश्चात् उसकी मृत्यु हो गयी। १४०६ ई० मे उसका पुत्र अल्प खाँ गद्दीपर बैठा और उसमे मालवामे एक नये राजवश-का प्रचलन हुआ। मालवा स्वाधीन राज्यके रूपमे १५६१ ई० तक बचा रहा जब कि मुगल सम्राट् अकबरने उसे विजय करके अपने अधिकारमे कर लिया।

दिलावर खा लोदी–दिल्लीके अतिम सुल्तान इब्राहीम लोदी (१५१७–२६)के अधीनस्थ लाहौरके अर्ध-स्वतन्त्र सूबेदार दौलतखा लोदीका पुत्र, जिसके साथ सुल्तानने बडा कठोर व्यवहार किया। इसके फलस्वरूप दौलत खा सुल्तानसे कुपित हो गया और उसने बाबरको भारतपर आक्रमण करनेके लिए आमत्रित किया।

दिलेर खा–एक मुगल अमीर, जिसे सम्राट् औरगजेबने शिवाजीके विरुद्ध राजा जयसिंहके साथ भेजा था। शिवाजी-को जून १६६५ ई० मे पुरन्दरकी सधिके लिए बाध्य करनेका श्रेय जयसिंहके साथ इस अमीरको भी है। किन्तु १६७० ई० मे मराठो और मुगलोके बीच पुन युद्ध आरम्भ हो गया। दिलेर खाको शाहजादा शाहआलमका सहायक बनाकर युद्धके लिए भेजा गया। इस युद्धमे शिवाजीके विरुद्ध दिलेर खाको बहुत कम सफलता मिली। पुरन्दरकी सधिके अनुसार जो किले शिवाजीके हाथसे निकल गये थे, वे पुन शिवाजीने छीन लिये और १६७४ ई० मे शिवाजीने एक स्वतन्त्र नरेश के रूपमे अपना राज्याभिषेक किया।

दिल्ली–भारतकी राजधानी। ऐसा विश्वास किया जाता है कि मूल दिल्ली उस स्थानपर थी जहा पहले महाभारत वर्णित पाण्डवोकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ थी। इस नगरकी प्राचीनता इसी बातसे सिद्ध होती है कि इन्द्रपत नामका गाँव आज भी विद्यमान है, जहाँ हुमायू और शेरशाहके किलोके अवशेष पाये जाते हैं। ऐतिहासिक दृष्टिसे दिल्ली-का प्रथम निर्माता तोमर नरेश अनगपाल था, जो ईसाकी ११वी शताब्दीमे शासन करता था। उसने एक लाल किला भी बनवाया था जहाँ आजकल कुतुबमीनार अवस्थित है, जो वर्तमान नयी दिल्लीसे दक्षिणमे तीन मीलपर है। बारहवी शताब्दीमे यह नगर अजमेरके चौहानोंके हाथ गया हो गया। किन्तु ११९३ ई०मे शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीने इसे अतिम चौहान नरेश पृथ्वीराजसे छीन लिया। इस प्रकार दिल्लीपर हिन्दू शासनका अत हो गया।

मुस्लिम विजेताओंने १८५७ ई० तक इसे अपनी

राजधानी बनाये रखा, जबकि अंग्रेजोने अंतिम मुगल सम्राट् बहादुरशाह (१८३७–५७ ई०)को गद्दीसे उतारकर उसपर अधिकार कर लिया। मुस्लिम शासकोने इस लम्बे काल (११९३–१८५७)के दौरान विभिन्न समयोमे दिल्ली क्षेत्रके अतर्गत विभिन्न स्थानोपर अपने महल बनाये। इन लोगोने कभी दिल्ली छोड देनेकी बात नही सोची। केवल कुछ अवधिके लिए बाबर, अकबर और जहागीरने आगरा अपनी राजधानी बनायी थी।

अलाउद्दीन खिलजी (१२९६–१३१६)ने पुरानी दिल्लीके उत्तर-पूर्व तीन मीलपर सीरी बसायी, गयासुद्दीन तुगलकने पुरानी दिल्लीके पूर्व चार मीलपर तुगलकाबादका निर्माण कराया, उसके पुत्र मुहम्मद तुगलकने १३२७ ई०मे राजधानीको दिल्लीसे दोलताबाद ले जानेका असफल प्रयास करनेके पश्चात् पुरानी दिल्ली और सीरीके बीच शहरपनाहका निर्माण कराया तथा उसके उत्तराधिकारी फीरोज तुगलकने पुरानी दिल्लीके उत्तरमे ८ मीलपर फीरोजाबाद बसाया। इसमे सदेह नही कि मुस्लिम शासकोने दिल्ली क्षेत्रमे सात शहर बसाये, लेकिन सबका केन्द्र पुरानी दिल्ली ही रही। लोदी शासकोने आगराको राजधानी बनाया, जो मुगल शासक बाबरके जमानेमे भी राजधानी रही। लेकिन हुमायू फिर दिल्ली आ गया और पुराना किला बनवाना शुरू किया, जिसके चारो ओर मुगल बादशाहोकी राजधानी अवस्थित थी। शाहजहाँने पुरानी दिल्लीसे जुडा हुआ शाहजहाँबाद बसाया, जहाँ उसने बहुतसे शानदार महल बनवाये। पुरानी दिल्लीके बीच निर्मित जामा मस्जिद अपनी भव्यताके लिए आज भी प्रसिद्ध है। दिल्लीको कम दुर्दिन नही देखने पडे। १३९८ ई०मे तैमूर, १७३९ ई०मे नादिरशाह तथा १७५७ ई०मे अहमदशाह अब्दालीने इसपर आक्रमण कर खूब लूटा और हजारो आदमियोको मौतके घाट उतारा। १७५८ ई०मे इसपर मराठोका कब्जा होते-होते रह गया। १७६१ ई०मे पानीपतकी तीसरी लडाईके बाद भी यह लुटनेसे बच गयी।

मुगल बादशाहोकी शक्ति धीरे-धीरे क्षीण हो गयी और १८०३ ई०मे दिल्लीपर अंग्रेजोका प्रभुत्व हो गया और मुगल बादशाह नाममात्रके शासक बने रहे। अंग्रेजोने कलकत्ताकी स्थापना की, उसका विकास किया और उसे अपनी राजधानी बनाया। फलत दिल्लीका महत्त्व घट गया। १८५७ ई०के स्वाधीनता-सग्राममे विद्रोही सिपाहियोने मईके महीनेमे दिल्लीपर कब्जा कर लिया, लेकिन सितम्बर महीनेमे अंग्रेजोने पुन उसे छीन लिया। जनवरी १८५८ ई०मे अंतिम मुगल शासक बहादुरशाहको औपचारिक रीतिसे गद्दीसे उतार दिया गया और दिल्लीको अंग्रेजी राज्यमे मिला लिया गया। बहादुरशाहको पेशन देकर रगूनमे नजरबद कर दिया गया। १९११ ई० तक कलकत्ता अंग्रेजी भारतकी राजधानी रही। इसके बाद राजधानी पुन दिल्ली लायी गयी। मुस्लिम शासकोकी भाँति अंग्रेजोने भी पुरानी दिल्लीसे ६ मील दूर नयी दिल्ली बसायी, जो आज भी भारतीय गणतत्रकी राजधानी है।

दिल्ली दरबार–अंग्रेज सरकारने १८७७, १९०३ तथा १९११ ई०मे कुल तीन बार दिल्लीमे विशाल दरबार किये। पहला दरबार लार्ड लिटनने किया था, जिसमे महारानी विक्टोरियाको भारतकी सम्राज्ञी घोषित किया गया। इस दरबारकी शान-शौकतपर बेशुमार धन खर्च किया गया, जबकि १८७६ से १८७८ ई० तक दक्षिणके लोग भीषण अकालसे पीडित थे, जिसमे हजारो व्यक्तियोकी जाने गयी। उस समय दरबारके आयोजनको जन-धनकी बहुत बडी बरबादी समझा गया। दूसरा दरबार लार्ड कर्जनने १९०३ ई०मे आयोजित किया, जिसमे बादशाह एडवर्ड सप्तमकी ताजपोशीकी घोषणा की गयी। यह दरबार पहले से भी ज्यादा खर्चीला साबित हुआ। इसका कुछ नतीजा तो निकला नही। यह केवल ब्रिटिश सरकारका शक्ति-प्रदर्शन मात्र था। तीसरा दरबार लार्ड हार्डिज (दे०)के जमानेमे १९११ ई०मे आयोजित हुआ। बादशाह जार्ज पचम और उसकी महारानी इस अवसरपर भारत आये थे और उनकी ताजपोशीका समारोह हुआ था। इसी दरबारमे एक घोषणा द्वारा बगालके विभाजन (दे०)को रद्द किया गया, साथ ही राजधानी कलकत्तासे दिल्ली लानेकी घोषणा की गयी।

दिल्ली विश्वविद्यालय–१९२२ ई०मे स्थापित हुआ, १९५२ ई०मे उसका पुनस्सगठन किया गया। इस विश्वविद्यालयमे शिक्षा भी दी जाती है तथा अनेक डिग्री कालेज इससे सम्बद्ध भी है। अब बहुतसे विश्वविद्यालयोमे इसी प्रकारकी व्यवस्था है।

दिल्ली समझौता–५ मार्च १९३१ ई०को तत्कालीन वायसराय लार्ड इरविन तथा भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके नेता महात्मा गाधीके बीच हुआ। इसके अनुसार सत्याग्रह आदोलन जो अप्रैल १९३०मे चालू किया गया था, स्थगित कर दिया गया, काग्रेस राजनीतिक मसले हल करनेके लिए लदनके गोलमेज सम्मेलनमे भाग लेनेके लिए सहमत हो गयी तथा १९३० ई० के बाद जितने भी दमनात्मक अध्यादेश जारी किये गये थे, वे वापस ले लिये गये।

सत्याग्रह आदोलन के सिलसिलेमे जो लोग गिरफ्तार किये गये थे उन्हे रिहा कर दिया गया।

दिल्ली सल्तनत—१२०६ ई०से लेकर, जबकि कुतुबुद्दीन ऐबक भारतका प्रथम मुस्लिम सुल्तान हुआ, १५२६ ई० तक जबकि मुगल बादशाह बाबरने पानीपतकी लडाईमे इब्राहीम लोदीको पराजित कर मार डाला और मुगल साम्राज्यकी स्थापना की, दिल्लीपर सुल्तानोका शासन रहा और इसे दिल्ली सल्तनतका काल कहा जाता है। इस ३२० वर्ष-के लम्बे कालमे दिल्लीके सुल्तान सारे हिन्दुस्तानके बादशाह माने जाते थे, हालाकि उनकी सल्तनतका विस्तार घटता-बढता रहा। मुहम्मद तुगलक (१३२५–५१)के जमानेमे तो दिल्ली सल्तनतका विस्तार हिमालयसे लेकर कन्याकुमारीतक हो गया था, किन्तु सन् १५२६ ई०मे पानीपत-की लडाईके समय उसका विस्तार दिल्लीके चारो ओर तक ही सीमित था। दिल्ली सल्तनतके अन्तर्गत पाँच पृथक् वशोने राज्य किया, जिनका एक दूसरेसे कोई सम्बन्ध नही था, यथा—गुलामवश (१२०६–९० ई०), खिलजी-वश (१२९०–१३२० ई०), तुगलकवश (१३२०–१४१३ ई०), सैयदवश (१४१४–५१ ई०) तथा लोदी-वश (१४५१–१५२६ ई०)।

गुलामवशके १० सुल्तानोमे कुतुबुद्दीन ऐबक (१२०६-१० ई०), आराम (१२११ ई०), इल्तुतमिश (१२११–३६ ई०), रुकनुद्दीन (१२३६ ई०) रजिया (१२३६–४० ई०), बहराम (१२४०–४२ ई०), मसऊद (१२४२–४६ ई०), नासिरुद्दीन (१२४६–६६ ई०), गयासुद्दीन बलबन (१२६६–८७ ई०) तथा कैकबाद (१२८७–९० ई०) हुए है। इनमेसे अधिकाश सुल्तान अपने जीवन-कालके प्रारम्भमे गुलाम रह चुके थे, अतएव यह वश गुलामवश कहलाया। ये लोग बादके तीन वशोकी भाँति तुर्क जातिके थे। अतिम लोदीवश अफगान जातिका था। गुलामवशकी पाँचवी शासिका रजिया सुल्ताना इल्तुत-मिशकी लडकी थी। यह एकमात्र मुस्लिम रानी थी जो दिल्लीके तख्तपर बैठी।

खिलजीवशमे ६ सुल्तान हुए, यथा—जलालुद्दीन (१२९०–९६ ई०), रुकनुद्दीन (१२९६ ई०), अला-उद्दीन (१२९६–१३१६ ई०), शहाबुद्दीन उमर (१३१६ ई०), मुबारक (१३१६–२० ई०) तथा खुसरो (१३२० ई०)। इन सुल्तानोमे अलाउद्दीन सबसे प्रतापी था। उसने न केवल राजस्थानको वरन् कन्याकुमारी तक सम्पूर्ण दक्षिणको अपने अधीन किया। उसके पास बहुत बडी सेना थी तथा जासूसोका सगठित दल था। जो भी उसके शासनका विरोध करता, उसे कठोर दण्ड दिया जाता था। सिपाहियोंके वेतन निर्धारित थे तथा बहुत-सी वस्तुओंके दाम भी नियत्रित एव निर्धारित थे। लेकिन उसके उत्तरा-धिकारी बहुत कमजोर साबित हुए। उसके मरनेके ६ वर्ष बाद यह राज्य तुगलकवशके हाथमे चला गया।

तुगलकवशमे ९ सुल्तान हुए, यथा—गयासुद्दीन (१३२०–२५ ई०), मुहम्मद (१३२५–५१ ई०), फीरोज (१३५१–८८ ई०), गयासुद्दीन द्वितीय (१३८८ ई०), अबूबकर (१३८९–९० ई०), नासिरुद्दीन (१३९०–९४ ई०), अलाउद्दीन (१३९४ ई०), नुसरतशाह (१३९५–९८ ई०) तथा महमूद (१३९९–१४१३ ई०)। इस वशके द्वितीय सुल्तान मुहम्मद तुगलकके जमानेमे सल्तनतका सर्वाधिक विस्तार हुआ, लेकिन इसके समयमे उसका विघटन भी शुरू हो गया जबकि बगाल और मअबरने १३३८ ई०मे विद्रोह किया, दक्षिणमे बहमनी सल्तनतकी स्थापना हुई तथा १३४७ ई०मे सुदूर दक्षिणमे विजयनगरके हिन्दू साम्राज्यका उदय हुआ। उसके शासनकालकी सबसे स्मरणीय घटना यह थी कि उसने १३२७ ई०मे राजधानी दिल्लीसे देवगिरि (दौलताबाद) ले जाने तथा १३२९–३२ ई०मे ताँबेकी सांकेतिक मुद्रा चलानेका प्रयास किया। उसके ये दोनो प्रयोग विफल रहे और सुल्तानकी प्रतिष्ठाको गहरा धक्का लगा। १३९८ ई०मे तैमूरने दिल्लीपर आक्रमण किया और उसे लूटा। कमजोर सुल्तान मुकाबला न कर सका। अतिम सुल्तान महमूदकी मृत्यु (१४१३) पर खिज्र खाँने गद्दीपर अधिकार कर लिया और नया सैयदवश चलाया, जिसने १४१४ से १४५१ ई० तक शासन किया। इस वशमे चार सुल्तान हुए, यथा—खिज्र खाँ (१४१४–२१ ई०), मुबारक (१४२१–३४ ई०), मुहम्मद (१४३४–४५ ई०) तथा आलमशाह (१४४५–५३ ई०)। इनमेसे कोई भी इतना शक्तिशाली नही था कि वह सल्तनतकी ताकतको फिरसे प्रतिष्ठित करता। अतिम शासक आलमशाहके जमानेमे तो यह हाल हो गया कि सल्तनतके अतर्गत केवल दिल्ली नगर और आसपासके गाँव रह गये। नतीजा यह हुआ कि उसे गद्दीसे उतारकर लोदीवशने शासन शुरू किया। इस वशने १४५३–१५२६ ई० तक शासन किया। इस वशमे कुल तीन शासक हुए, जिनके नाम है—बहलोल (१४५३–८९ ई०), सिकदर (१४८९–१५१७ ई०) तथा इब्राहीम (१५१७–२६ ई०)। इनमेसे सिकदर बहुत वीर था। उसने जौनपुरपर पुन कब्जा किया और बिहारपर अपना आधिपत्य स्थापित किया। उसने आगरेका निर्माण

किया, ताकि आसपासके राज्योंपर नियन्त्रण रह सके। इब्राहीम लोदीने अपने उद्दण्ड व्यवहारसे अपने सरदारोंको नाराज कर दिया। नतीजा यह हुआ कि पंजाबके हाकिम दौलत खाँ और सुल्तानके चाचा अलम खाँने मुगल बादशाह बाबरको भारतपर आक्रमणके लिए आमन्त्रित किया। बाबरने १५२६ ई०में पानीपतकी लड़ाईमें इब्राहीमको परास्त किया और उसे मारकर दिल्लीकी गद्दीपर बैठा। इस प्रकार दिल्ली सल्तनतका अंत हो गया।

दिल्लीके सुल्तानोंने तलवारके जोरपर शासन किया और एक ऐसा प्रशासन स्थापित किया जिसका उद्देश्य सरदारोंकी सहायतासे जनताको दबाये रखना था। यह एक प्रकारसे निरंकुश शासन-प्रणाली थी जिसमें, हिन्दू और मुसलमान जनताको कोई अधिकार नहीं था। हिन्दुओंको और भी ज्यादा सताया जाता था। उनपर जजिया लगाया गया। साथ ही तीर्थयात्रा-कर भी लिया जाता था। जमीनका लगान और अन्य कर तो मनमाने ढंगसे सुल्तानों द्वारा वसूल ही किये जाते थे। इस प्रकारके प्रशासनमें प्रगति असंभव थी। शासन-प्रणाली पूर्णतया एक वर्ग तक सीमित थी। हाकिमोंकी एकके ऊपर एक कई श्रेणियाँ थीं, परन्तु सभी हाकिम केवल सुल्तानके प्रति उत्तरदायी होते थे और उसकी इच्छापर नियुक्त और बर्खास्त होते थे। प्रशासनको हिंदुओंकी कोई परवाह नहीं थी, जो बहुमतमें थे। उदारसे उदार कहे जानेवाले सुल्तानोंने भी हिन्दू जनताके कल्याणके लिए कोई कार्य नहीं किया। नतीजा यह हुआ कि हिन्दू प्रजा प्रशासनके प्रति उदासीन हो गयी और मुस्लिम सूबेदारोंको केन्द्रीय सत्ताके निर्बल होते ही अपनेको स्वतंत्र घोषित करनेका मौका मिल गया। विजयनगरको छोड़कर कहीं भी हिन्दुओंने संगठित होकर मुस्लिम शासनको उखाड़नेका प्रयत्न नहीं किया।

हिन्दू संस्कृति और सभ्यताने इससे पहलेके आक्रमणकारियों—यूनानियों, शकों और हूणोंको आत्मसात कर लिया, लेकिन मुस्लिम आक्रमणकारियों और उनके धर्म एवं संस्कृतिको आत्मसात न किया जा सका। इसके विपरीत हजारों विजित हिन्दुओंको बलात् मुसलमान बना लिया गया। फिर भी इस्लाम सभी हिन्दुओंको मुसलमान न बना सका और अंतमें वह एक अल्पसंख्यक धर्म बनकर रह गया। मुसलमानोंको हिन्दुओंके साथ-साथ रहनेके लिए बाध्य होना पड़ा। हिन्दुओंने भी लड़ाईके मैदानोंमें पराजित होकर मुस्लिम विजेताओंसे दूर रहनेका प्रयत्न किया। हिन्दुओंने अपने जातिबंधनको और भी कठोर कर लिया, महिलाओंको पर्देके अंदर कैद कर दिया गया तथा छुआछूत हिन्दुओंका अभिन्न अंग बन गया। लेकिन मुसलमानोंसे हिन्दुओंका कुछ न कुछ सम्पर्क तो बना ही रहा। इसका फल यह हुआ कि एक नयी उर्दू भाषाका जन्म हुआ, जो हिन्दुओं और उन मुसलमानोंके बीच सम्पर्क भाषा बनी जो तुर्की भाषा बोलते थे, सरकारी लिखापढ़ीमें फारसी भाषा प्रयुक्त करते थे तथा धार्मिक समारोहोंमें अरबीका इस्तेमाल करते थे। हिन्दू विभिन्न प्रकारकी क्षेत्रीय भाषाएँ बोलते थे, लेकिन धार्मिक कार्योंमें संस्कृतका प्रयोग करते थे। दोनों धर्मोंके कुछ उदारचेता व्यक्तियोंने दोनों धर्मोंकी विशेषताओंका अध्ययन किया और दोनोंके बीच समन्वयकी स्थापनाका प्रयत्न किया। फलतः मुसलमानोंमें 'सूफीवाद'का जन्म हुआ और हिन्दुओंमें रामानंद, चैतन्य, कबीर और नानक जैसे धार्मिक सुधारकोंने मत-मतान्तरोंसे ऊपर उठकर केवल एक ईश्वरकी आराधनापर जोर दिया। लेकिन हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीचकी खाई यथावत् बनी रही।

कुछ सुल्तानोंको भवन-निर्माणका भारी शौक था। उन्होंने अनेक भव्य प्रासादों और मस्जिदोंका निर्माण कराया। यद्यपि उनके बनवाये प्रासाद इस युग तक अक्षुण्ण नहीं बचे, तथापि मस्जिदें अभी विद्यमान हैं, जो उनके कला और वास्तुशिल्पके प्रति प्रेमको व्यक्त करती हैं। यह निर्माण कार्य मुख्यतः हिन्दू शिल्पकारोंकी सहायतासे हुआ और मस्जिदोंका निर्माण तो मुख्यतः उस सामग्रीकी मददसे हुआ जो हिन्दुओंके मंदिरोंको तोड़कर प्राप्त की गयी थी। इस प्रकार दिल्ली सल्तनतकी कला एवं वास्तुशिल्पमें भारतीय (हिन्दू) और विदेशी (फारसी तथा तुर्की) इस्लामी विचारोंका प्रस्फुटन हुआ। भारतमें वास्तुशिल्पकी एक नयी शैलीका जन्म हुआ, जिसे भारतीय-अरबी कहते हैं। सल्तनतके विभिन्न भागोंमें विभिन्न प्रकारके वास्तुशिल्पका विकास हुआ, जिसका दिल्लीकी वास्तुशैलीसे कोई सम्बन्ध नहीं था। इस प्रकार जौनपुर, बंगाल, गुजरात, मालवा और दक्षिणमें भिन्न-भिन्न प्रकारके वास्तुशिल्पका विकास हुआ। इनमेंसे हरएककी अपनी-अपनी विशेषता थी। दिल्ली सल्तनतके कालकी सबसे प्रसिद्ध इमारतें हैं—कुतुबमीनार और उसका अलाई दरवाजा, निजामुद्दीन औलियाकी दरगाह और मस्जिद, कुव्वतुल इस्लाम मस्जिद और फीरोज तुगलककी कब्र। इन सबका निर्माण सुल्तानोंने दिल्लीमें ही कराया। (**कैम्ब्रिज, खण्ड तीन; ईश्वरीप्रसाद लिखित 'मध्यकालीन भारत', टामस कृत 'दिल्लीके पठान बादशाहोंका**

[illegible] नियन्त्रण रह गये। इब्राहीम लोदीने अपने उद्दण्ड व्यवहारसे अपने सरदारोंको नाराज कर दिया। नतीजा यह हुआ कि पंजाबके हाकिम दौलत खाँ और सुल्तानके चाचा आलम खाँने मुगल बादशाह बाबरको भारतपर आक्रमणके लिए आमन्त्रित किया। बाबरने १५२६ ई०में पानीपतकी लड़ाईमें इब्राहीमको पराजित किया और उसे मारकर दिल्लीकी गद्दीपर बैठा। इस प्रकार दिल्ली सल्तनतका अंत हो गया।

दिल्लीके सुल्तानोंने तलवारके जोरपर शासन किया और एक ऐसा प्रशासन स्थापित किया जिसका उद्देश्य सरदारोंकी सहायतासे जनताको दबाये रखना था। यह एक प्रकारसे निरंकुश शासन-प्रणाली थी जिसमें, हिन्दू और मुसलमान जनताको कोई अधिकार नहीं था। हिन्दुओं-को और भी ज्यादा सताया जाता था। उनपर जजिया लगाया गया। साथ ही तीर्थयात्रा-कर भी लिया जाता था। जमीनका लगान और अन्य कर तो मनमाने ढंगसे सुल्तानों द्वारा वसूल ही किये जाते थे। इस प्रकारके प्रशासनमें प्रगति असंभव थी। शासन-प्रणाली पूर्णतया एक वर्ग तक सीमित थी। हाकिमोंकी एकके ऊपर एक कई श्रेणियाँ थीं, परन्तु सभी हाकिम केवल सुल्तानके प्रति उत्तरदायी होते थे और उसकी इच्छापर नियुक्त और बर्खास्त होते थे। प्रशासनको हिंदुओंकी कोई परवाह नहीं थी, जो बहुसंख्यक थे। उदारसे उदार कहे जानेवाले सुल्तानोंने भी हिन्दू जनताके कल्याणके लिए कोई कार्य नहीं किया। नतीजा यह हुआ कि हिन्दू प्रजा प्रशासनके प्रति उदासीन हो गयी और मुस्लिम सूबेदारोंको केन्द्रीय सत्ताके निर्बल होते ही अपनेको स्वतंत्र घोषित करनेका मौका मिल गया। विजयनगरको छोड़कर कहीं भी हिन्दुओंने संगठित होकर मुस्लिम शासनको उखाड़नेका प्रयत्न नहीं किया।

हिन्दू संस्कृति और सभ्यताने इससे पहलेके आक्रमण-कारियों—यवनों, शकों और हूणोंको आत्मसात कर लिया, लेकिन मुस्लिम आक्रमणकारियों और उनके धर्म एवं संस्कृतिको आत्मसात न किया जा सका। उनके विपरीत [illegible] हिन्दुओंको बलात् मुसलमान बना लिया गया। फिर भी इस्लाम सभी हिन्दुओंको मुसलमान न बना सका और भारतमें रह कर [illegible] धर्म बनकर रह गया। मुसलमानोंको हिन्दुओंके साथ-साथ रहनेके लिए बाध्य होना पड़ा। हिन्दुओंने भी [illegible] मुस्लिम विजेताओंको [illegible] न किया। हिन्दुओंने अपने [illegible] और भी कठोर कर दिया, महिलाओंको पर्देके अंदर बंद कर दिया गया तथा छुआछूत हिन्दुओंका अभिन्न अंग बन गया। लेकिन मुसलमानोंसे हिन्दुओंका कुछ न कुछ सम्पर्क तो बना ही रहा। इसका फल यह हुआ कि एक नयी उर्दू भाषाका जन्म हुआ, जो हिन्दुओं और उन मुसलमानोंके बीच सम्पर्क भाषा बनी जो तुर्की भाषा बोलते थे, सरकारी लिखापढ़ीमें फारसी भाषा प्रयुक्त करते थे तथा धार्मिक समारोहोंमें अरबीका इस्तेमाल करते थे। हिन्दू विभिन्न प्रकारकी क्षेत्रीय भाषाएँ बोलते थे, लेकिन धार्मिक कार्योंमें संस्कृतका प्रयोग करते थे। दोनों धर्मोंके कुछ उदारचेता व्यक्तियोंने दोनों धर्मोंकी विशेषताओंका अध्ययन किया और दोनोंके बीच समन्वयकी स्थापनाका प्रयत्न किया। फलतः मुसलमानोंमें 'सूफीवाद'का जन्म हुआ और हिन्दुओंमें रामानंद, चैतन्य, कबीर और नानक जैसे धार्मिक सुधारकोंने मत-मतान्तरोंसे ऊपर उठकर केवल एक ईश्वरकी आराधना-पर जोर दिया। लेकिन हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच-की खाई यथावत् बनी रही।

कुछ सुल्तानोंको भवन-निर्माणका भारी शौक था। उन्होंने अनेक भव्य प्रासादों और मस्जिदोंका निर्माण कराया। यद्यपि उनके बनवाये प्रासाद इस युग तक अक्षुण्ण नहीं बचे, तथापि मस्जिदें अभी विद्यमान हैं, जो उनके कला और वास्तुशिल्पके प्रति प्रेमको व्यक्त करती हैं। यह निर्माण कार्य मुख्यतः हिन्दू शिल्पकारोंकी सहायतासे हुआ और मस्जिदोंका निर्माण तो मुख्यतः उन सामग्रीकी मददसे हुआ जो हिन्दुओंके मंदिरोंको तोड़कर प्राप्त की गयी थी। इस प्रकार दिल्ली सल्तनतकी कला एवं वास्तुशिल्पमें भारतीय (हिन्दू) और विदेशी (फारसी तथा तुर्की) इस्लामी विचारोंका प्रस्फुटन हुआ। भारतमें वास्तु-शिल्पकी एक नयी शैलीका जन्म हुआ, जिसे भारतीय-अरबी कहते हैं। सल्तनतके विभिन्न भागोंमें विभिन्न प्रकारके वास्तुशिल्पका विकास हुआ, जिनका दिल्लीकी वास्तुशैलीसे कोई सम्बन्ध नहीं था। इस प्रकार जौनपुर, बंगाल, गुजरात, मालवा और दक्षिणमें भिन्न-भिन्न प्रकारके वास्तुशिल्पका विकास हुआ। इनमेंसे हरएककी अपनी-अपनी विशेषता थी। दिल्ली सल्तनतके कालकी सबसे प्रसिद्ध इमारतें हैं—कुतुबमीनार और उसका अलाई दरवाजा, निजामुद्दीन औलियाकी दरगाह और मस्जिद, कुव्वतुल इस्लाम मस्जिद और फीरोज तुगलककी कब्र। इन सबका निर्माण सुल्तानोंने दिल्लीमें ही कराया। (कैम्ब्रिज, खण्ड तीन; ईश्वरीप्रसाद लिखित 'मध्यकालीन भारत'; टामस कृत 'दिल्लीके पठान बादशाहोंका

इतिवृत्त'; के० एम० अशरफ रचित 'हिन्दुस्तानकी जनताका जीवन और दशा'; फर्गुसन कृत 'भारतीय वास्तुशिल्पका इतिहास', हैवेल कृत 'भारतीय वास्तुशिल्प'; विन्सेण्ट स्मिथ रचित 'भारतमे ललित कलाका इतिहास')

दिव–गुजरातके समुद्रतटपर एक महत्त्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र और वदरगाह। १५३५ ई० मे जब बादशाह हुमायूने गुजरातपर विजय प्राप्त की, गुजरातके सुल्तान बहादुरशाह (दे०) (१५२६–३७ ई०) ने भागकर मालवामे शरण ली और पुर्तगालियोकी मदद मागी। पुर्तगालियोने इस अवसरका लाभ उठाया और १५३५ ई० मे दिवपर अधिकार कर लिया। इसपर पुर्तगालियोका अधिकार चार सौ वर्षसे अधिक काल तक रहा। १९६१ ई०मे वह स्वाधीन भारतीय गणराज्यमे सम्मिलित कर लिया गया।

दिवाकर—एक कवि, जो महाराज हर्षवर्धन (६०६–४७ ई०) के कालमे विद्यमान था, और उनका आश्रित था।

दिव्योक अथवा दिव्य—कैवर्तो का नेता, जिसने राजा महिपाल द्वितीय (लगभग १०७०–७५ ई०) को पराजित कर मार डाला और उत्तरी वगालमे अपने स्वतत्र राज्यकी स्थापना की।

दिवोदास—एक प्रसिद्ध राजा, जिसका उल्लेख ऋग्वेदमे हुआ है। उसने दासोके अनार्य राजा सवरसे युद्ध किया था।

दीगकी लडाई—द्वितीय मराठा-युद्ध (दे०) के दौरान नवम्बर १८०४ ई० मे छेडी गयी। इस लडाईमे अग्रेजोने मराठा सरदार होलकरको पराजित किया। (दीग पहलेकी भरतपुर रियासतकी पुरानी राजधानी थी। स०)

दीदोमीर—एक मुस्लिम नेता, जिसके बहुत से अनुयायी फरीदपुर (वागलादेश) जिलेमे थे। इसने १८४७ ई० मे अग्रेजोके विरुद्ध विद्रोह किया, जो बलप्रयोग द्वारा दबा दिया गया।

दीनइलाही—एक नया धर्म जिसे अकबर बादशाहने १५८२ ई० मे चलाया। यह एक समन्वयात्मक धर्म था जिसमे हिन्दू, मुस्लिम, बौद्ध, जैन, पारसी तथा ईसाई धर्मकी मुख्य-मुख्य बातोको शामिल किया गया था। यह एकेश्वरवादपर आधारित था, किन्तु उसमे थोडा बहुदेववादका भी पुट था। इसका उद्देश्य सार्वभौम धार्मिक सहिष्णुताकी स्थापना करना था। भारतमे, जो धार्मिक भेदभावसे बहुत पीडित था, इस प्रकारकी सहिष्णुता एक राष्ट्रीय आवश्यकता थी। यह धर्म तर्कपर आधारित था। अकबरके कालमे ही इसके बहुतसे अनुयायी हो गये थे। लेकिन अकबरकी मृत्युके बाद यह धर्म लुप्त हो गया।

दीपवश—सिंहल (श्री लका) के प्राचीन इतिहासका एक ग्रन्थ, जो चतुर्थ अथवा पचम शताब्दी ईसवीमे लिखा गया। इस ग्रन्थसे इस बातकी पुष्टि होती है कि मौर्य सम्राट् अशोककी ओरसे भारतके बाहर धर्म-प्रचारक भेजे जाते थे। इसमे अशोक द्वारा भेजे गये धर्म-प्रचारकोके नाम भी मिलते है। इस प्रकार इस पुस्तकमे अशोकके धर्म-विजयके प्रयासोपर बहुत अच्छा प्रकाश डाला गया है।

दीवान—मुगल प्रशासनमे सबसे बडा अधिकारी होता था। वह राजस्व एव वित्तका एकमात्र प्रभारी होता था। उसकी नियुक्ति न केवल केन्द्रीय सरकारमे वरन् प्रान्तीय सरकारोमे भी होती थी। प्रान्तोमे उसका पद सूबेदारके बाद माना जाता था। प्रान्तोमे दीवान भी सम्राट् द्वारा नियुक्त होता था जो केवल सम्राट्के प्रति उत्तरदायी होता था। इस प्रकार वह सूबेदारको मनमानी करनेसे रोकता था।

दीवान—इस शब्दका प्रयोग सामान्यत एक विभागके लिए होता था, यथा—

दीवान-ए-आम–अथवा सम्राट्का कार्यालय।
दीवान-ए-अमीर कोही–अथवा कृषि विभाग।
दीवान-ए-अर्ज–अथवा सेना विभाग।
दीवान-ए-बदगान–अथवा दास विभाग।
दीवान-ए-इन्शा–अथवा पत्राचार विभाग।
दीवान-ए-इस्तिहकाक–अथवा पेन्शन विभाग।
दीवान-ए-खैरात–अथवा दान विभाग।
दीवान-ए-खास–अथवा सम्राट्का अन्तरग सभाकक्ष।
दीवान-ए-मुस्तखराज–अथवा कर वसूल करनेवालोसे बकाया वसूल करनेवाला विभाग।
दीवान-ए-काजिए-ममालक-अथवा न्याय, गुप्तचरी और डाक विभाग।
दीवान-ए-रिसालात–अथवा अपील विभाग।
दीवान-ए-रियासत–अथवा हाट अधीक्षकोका विभाग।

यह शब्दावली प्रकट करती है कि दिल्लीके सम्राटोकी प्रशासन पद्धतिमे एक प्रकारकी विभागीय व्यवस्था थी।

दीवानी अदालत–दीवानी (धनसबन्धी) न्यायकी अदालत।

दुर्गादास–मारवाडका इतिहास-प्रसिद्ध राठौर-सरदार। वह जोधपुरके राजा जसवतसिंहके मत्री असिकर्णका पुत्र था। मुगल सम्राट्की ओरसे जब राजा जसवतसिंह काबुल अभियानपर गया था, उसी बीच वहा १० दिसम्बर १६७८ ई० को उसकी मृत्यु हुई। उस समय उसका कोई पुत्र नही था। लेकिन दो मास पश्चात् विधवा रानियोके दो पुत्र हुए। एक पुत्र तो तत्काल मर गया, लेकिन दूसरा अजितसिंहके नामसे विख्यात हुआ। यही अजितसिंह मारवाडका वैध उत्तराधिकारी था। स्व० राजाके सरदारोके सरक्षणमे

शिशु अजितसिंह तथा उसकी मा को दिल्ली लाया गया। इन सरदारोमे दुर्गादास प्रमुख था।

सरदारोने औरगजेवसे आग्रह किया कि वे अजितसिंहको मारवाडकी गद्दीका उत्तराधिकारी स्वीकार करे। लेकिन औरगजेव मारवाडको मुगल साम्राज्यमे मिलाना चाहता था, अतएव उसने यह शर्त रखी कि अजितसिंह मुसलमान हो जाय तो उसे मारवाडकी गद्दीका उत्तराधिकारी माना जा सकता है। औरगजेवने अजितसिंह और उसकी विधवा माको पकडनेके लिए मुगल सैनिक भेजे, किन्तु चतुर वीर दुर्गादासने औरगजेवकी योजना विफल कर दी। उसने कुछ राठौर सैनिकोको मुगल सैनिकोका सामना करनेके लिए भेज दिया तथा स्वय रानियो और शिशु को दिल्ली स्थित महलसे निकालकर सुरक्षित जोधपुर ले गया। औरगजेवने जोधपुरपर कब्जा करनेके लिए विशाल मुगल सेना भेजी। १६८० ई० मे जो युद्ध हुआ उसमे राठौरोका नेतृत्व दुर्गादासने वडी वहादुरीसे किया। औरगजेवका पुत्र शाहजादा अकवर राजपूतोमे मिल गया।

इस समय एक अवसर उपस्थित हुआ था जव राजपूत और अकवर मिलकर औरगजेवका तख्ता पलट सकते थे, लेकिन औरगजेवने छलनीतिसे राजपूतो और अकवरमे फूट पैदा कर दी। जव दुर्गादासको वास्तविकताका पता लगा तो वह अकवरको खानदेश और वगलाना होते हुए मराठा राजा शम्भूजीके दरवारमे ले गया। दुर्गादासने वहुत प्रयत्न किया कि राजपूत, मराठा और अकवरकी फौजे मिलकर औरगजेवसे युद्ध करे, लेकिन आलसी शम्भूजी इसके लिए तैयार नही हुआ। दुर्गादास १६८७ ई० में मारवाड लौट आया। यद्यपि मेवाडने औरगजेवसे सधि कर ली थी, तथापि मारवाडकी ओरसे दुर्गादास लगातार २० वर्ष तक औरगजेवके विरुद्ध युद्ध करता रहा। १७०७ ई० मे औरगजेवकी मृत्यु हो गयी। इसके वाद नये मुगल वादशाहने १७०८ ई० मे अजितसिंह को मारवाडका महाराज स्वीकार कर लिया।

दुर्गावती, रानी–गोडवानाकी शासक, जो भारतीय इतिहासकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रानियोमे गिनी जाती है। वह महोवा कालिंजरके चन्देल राजा कीर्तिराजकी पुत्री थी। यह राजा १५४५ ई० मे शेरशाह सूरी द्वारा कालिंजरके किलेके घेरेके समय मारा गया था। दुर्गावतीका विवाह गढ-मण्डल (गोडवाना)के राजा दलपतिशाहके साथ हुआ, किन्तु वह जल्दी ही विधवा हो गयी। उस समय उसका वीर नारायण नामक नावालिग पुत्र था जिसकी ओरसे उसने स्वयम् शासन करना शुरू किया। उसने मालवाके वाजवहादुर और वगालके अफगानोके हमलोसे गोडवानाकी रक्षा की।

१५६४ ई० मे मुगल सम्राट् अकवरने रानीके राज्यपर हमला करनेके लिए अपने सेनापति आसफ खाँको भेजा। पुत्रको साथ लेकर रानीने मुगलोकी ५० हजार सेनाका सामना किया। दोनोके वीच राजधानीके पास नरहीमे घोर युद्ध हुआ। युद्धके दूसरे दिन उसका पुत्र घायल हो गया, जिसे रानीके सैनिकोकी देखरेखमे सुरक्षित स्थानपर भेज दिया गया। इन सैनिकोके जानेसे रानीका पक्ष कमजोर हो गया और वह पराजित हो गयी। उसके दो तीर लगे और वह घायल हो गयी। शत्रुओके हाथमे अपनेको पडनेसे वचानेके लिए रानीने कटार मारकर अपनी जान दे दी। इसके वाद मुगल सेना राजधानी चौरागढकी ओर वढी। वहाँ उसके घायल अल्पवयस्क पुत्रने पुन जवर्दस्त प्रतिरोध किया, लेकिन वेचारा पराजित हुआ और मारा गया। गोडवाना अकवरके साम्राज्यमे मिला लिया गया। सेनापति आसफ खाँ अपने साथ वेशुमार सोना, चाँदी, हीरे, जवाहरात, सिक्के और एक हजार हाथी लेकर दिल्ली लौटा। यह इस वातका प्रमाण है कि रानीके राज्यकालमे गोडवाना अत्यन्त समृद्धिशाली था।

दुर्जनसाल–१८२४ ई० मे भरतपुरकी गद्दीपर अनधिकृत कब्जा करनेवाला जाट सरदार, जवकि वास्तविक अधिकारी मृतक राजाका नावालिग पुत्र था। ब्रिटिश सरकारने दुर्जनसालको मान्यता देनेसे इनकार कर दिया। १८२६ ई० मे लार्ड कोम्वरमियरके नेतृत्वमे एक ब्रिटिश भारतीय फौज भरतपुरपर चढाईके लिए भेजी गयी। किलेपर अग्रेजोका कब्जा आसानीसे हो गया। दुर्जनसालको कैद करके वाहर भेज दिया गया।

दुर्योधन–'महाभारत' महाकाव्यमे वर्णित कौरवोका सवसे वडा भाई, जिसका युद्ध पाण्डवोसे हुआ। युद्धमे दुर्योधन पराजित हुआ और मारा गया।

दुर्रानी–अव्दालीवशका दूसरा नाम। जव अफगानिस्तानके सुल्तान अहमदशाह (१७४७–७३ ई०)ने नादिरशाहकी हत्याके पश्चात् शासन-भार ग्रहण किया, उसने गद्दीपर वैठते ही दुर्र-ये-दुर्रानकी पदवी धारण की। तभीसे अव्दाली खानदानको 'दुर्रानी' कहा जाने लगा।

दुर्लभराय–नवाव सिराजुद्दौला (दे०)का विश्वासघाती सेनापति, जिसने मीर जाफरके सहयोगसे अपने स्वामीके विरुद्ध अग्रेजोसे साँठगाँठ की। उसने और मीर जाफरने अग्रेजोसे १० जून १७५७ ई० को एक गुप्त सधि की। इसका फल यह हुआ कि २३ जून १७५७ ई० को जव सिरा-

जुद्दौला और अंग्रेजोंके बीच विख्यात पलासी-युद्ध हुआ, दुर्लभराय और मीर जाफरने लड़ाईमें कोई भाग नहीं लिया। इस प्रकार सिराजुद्दौला पराजित हुआ।

दुर्लभवर्धन–सातवीं शताब्दी ई० में कश्मीरके कर्कोट वंशका प्रवर्तक। इस वंशने ८५५ ई० तक कश्मीरपर शासन किया। इसके बाद उत्पलवंशका शासन स्थापित हुआ। कर्कोट-वंशके प्रसिद्ध राजाओंमें ललितादित्य (दे०) तथा जयापीड विनयादित्य (दे०)का नाम लिया जाता है।

देरोज़ियो, हेनरी लुई विवियन–एक पुर्तगाली भारतीय परिवारमें सन् १८०९ ई०में कलकत्तामें पैदा हुआ। उसने अपने पिताके कार्यालयमें क्लर्ककी हैसियतसे कार्य आरम्भ किया। बादमें वह अध्यापक और पत्रकार बन गया। १८२६ ई० में वह कलकत्ताके हिन्दू कालेजमें अध्यापक नियुक्त हुआ, किन्तु अप्रैल १८३१ ई० में उसे इस्तीफा देनेके लिए बाध्य किया गया। इन पाँच वर्षोंके अध्यापन कालमें हिन्दू कालेजके छात्रोंपर उसका असाधारण प्रभाव जम गया। इन छात्रोंके माध्यमसे बंगालके नौ-जवानोंको भी उसने प्रभावित किया, जिनमें अधिकांश स्वतंत्र चिंतक बन गये और 'युवा बंगाल'के नामसे पुकारे जाने लगे। ये लोग अपने विचारोंमें बहुत उग्र थे और हिन्दू समाज और धर्मकी उन सभी बातोंकी आलोचना करते थे जो उन्हें असंगत जान पड़ती थीं। इससे सारे देशमें हलचल मच गयी। कट्टर हिन्दुओंने इन युवकोंका तीव्र विरोध किया। नतीजा यह हुआ कि देरोज़ियोको हिन्दू कालेजसे त्यागपत्र देनेके लिए बाध्य कर दिया गया। तत्पश्चात् देरोजियो बहुत कम दिन यहाँ रहा, लेकिन आधुनिक बंगालके इतिहासपर उसने अपनी अमिट छाप छोड़ी। उसकी शिक्षाओंने आधुनिक विचारोंके ऐसे युवकोंका समूह खड़ा कर दिया जो विचारोंमें प्रगतिशील थे और जिन्होंने न केवल धार्मिक कट्टरताका विरोध किया, वरन् बादमें प्रशासनके विरुद्ध भी आवाज उठायी। शायद ही कभी किसी अध्यापकने इतने कम समयमें अपने छात्रोंपर ऐसा व्यापक प्रभाव प्रदर्शित किया हो। (**टी० एडवर्ड्स कृत देरोज़ियोका जीवन**)

देवगढ़–उत्तर प्रदेशके झाँसी जिलेमें स्थित, जहाँ गुप्तकाल (३००–४५० ई०)के अनेक सुन्दर मंदिर विद्यमान हैं। यहाँके दशावतार मंदिरमें शिव, विष्णु तथा अन्य देवी-देवताओंकी अत्यंत कलापूर्ण मूर्तियाँ मिलती हैं, जो मुसल-मानोंकी तोड़फोड़से बच गयी।

देवगाँवकी संधि–१७ दिसम्बर १८०३ ई० को रघुजी भोंसले और अंग्रेजोंके बीच हुई। द्वितीय मराठायुद्ध (दे०)के दौरान आरगाँवकी लड़ाई (नवम्बर १८०३)में अंग्रेजोंने भोंसलेको पराजित किया था, उसीके फलस्वरूप उक्त संधि हुई। इसके अनुसार बरारके भोंसला राजाने अंग्रेजोंको कटकका प्रांत दे दिया, जिसमें बालासोरके अलावा वरदा नदीके पश्चिमका समस्त भाग शामिल था। उसे अपनी राजधानी नागपुरमें ब्रिटिश रेजीडेण्ट रखनेके लिए मजबूर होना पड़ा। उसने निजाम अथवा पेशवाके साथ होनेवाले किसी भी झगड़ेमें अंग्रेजोंको पंच बनाना स्वीकार किया और यह वायदा किया कि वह अपने यहाँ कम्पनी सरकारकी अनुमतिके बिना किसी भी यूरोपीय अथवा अमेरिकीको नौकरी नहीं देगा। व्यावहारिक दृष्टिकोणसे इस संधिने भोंसलेको अंग्रेजोंका आश्रित बना दिया।

देवगिरि–देखिये 'दौलताबाद'।

देवगुप्त–तीन विभिन्न वंशोंके तीन राजाओंका नाम। प्रथमतः गुप्तवंशके तृतीय सम्राट् समुद्रगुप्त (लगभग ३२०–३८० ई०)के पुत्र चंद्रगुप्त द्वितीयका यह एक नाम था। उसे देवगुप्त प्रथम कहा जाता है। दूसरा मालवाके गुप्त राजाका भी यह नाम था, जिसने सम्राट् हर्षवर्धनके बहनोई मौखरि नरेश गृहवर्मा (दे०)को लगभग ६०६ ई० में पराजित कर मार डाला। मालवाके इस राजाको देव-गुप्त द्वितीयके नामसे याद किया जाता है। तीसरा देवगुप्त मगधके राजा आदित्यसेनका पुत्र एवं उत्तराधिकारी था जिसने हर्षवर्धनकी मृत्यु (६४७ ई०)के बाद पुनः गुप्तवंशकी स्थापना की थी। वह देवगुप्त तृतीयके नामसे जाना जाता है। सम्भवतः वह सम्पूर्ण उत्तर भारतपर शासन करता था। उसे चालुक्य नरेश विनयादित्यने पराजित किया, जिसने ६८० ई० तक राज्य किया। (**बनर्जी० पृष्ठ ५५४, ६०७, ६१०**)।

देवदत्त–बौद्ध धर्मके प्रवर्तक गौतम बुद्धका चचेरा भाई। उसने बौद्ध धर्मको त्यागकर एक नये मतका प्रवर्तन किया, जो गुप्तकाल (चतुर्थ शताब्दी ईसवी) तक वर्तमान रहा।

देवपाल (लगभग ८१०–५० ई०)–बंगाल और बिहारपर शासन करनेवाले पालवंश (दे०)का तृतीय राजा और धर्मपालका पुत्र। उसने लगभग ३५ वर्ष तक शासन किया। उसके कालमें पालवंशकी शक्ति अपनी चरम सीमापर पहुँच गयी थी। आसामसे लेकर पश्चिमकी सीमा तक और हिमालयसे विन्ध्य पर्वत तक सम्पूर्ण उत्तर-भारतपर उसका आधिपत्य था। जावाके शैलेन्द्रवंशी राजा बालपुत्रदेवका दूतमंडल उसके दरबारमें आया था। शैलेन्द्र राजाने नालंदामें एक विहारका निर्माण कराया था और देवपालने उसके अनुरोधपर पाँच गाँवोंका दान दिया

का महान् संरक्षक था, जो उन दिनों बौद्ध शिक्षाका बहुत बडा केन्द्र था। (ढाका हिस्ट्री आफ बगाल, खण्ड १, पृष्ठ ११६ एफ-एफ०)

देवपाल–कन्नौजके प्रतिहारवशका राजा, जिसने लगभग ९४०से ९५५ ई० तक शासन किया। इसीके कालमे प्रतिहारोकी शक्ति क्षीण होने लगी। चदेल राजा यशोवर्माने उसे पराजित किया और उसे विष्णुकी बहुमूल्य एक मूर्ति समर्पित करनेके लिए बाध्य किया, जिसे फिर खजुराहोके मदिरमे प्रतिष्ठित किया गया।

देवभूति (अथवा देवभूमि)–मगधके शुगवश (दे०) (लगभग १८५ ई० पू० से ७३ ई० पू०) का अतिम राजा। वह चरित्रहीन और दुराचारी था, फलत उसके ब्राह्मण मत्री वासुदेवने लगभग ७३ ई०पू० मे उसे मारकर कण्ववशका शासन स्थापित किया।

देवराय प्रथम–(लगभग १४०६–२२) विजयनगर (दे०)के प्रथम राजवशका तृतीय शासक। उसके सिहासनारूढ होनेपर विवाद उठ खडा हुआ, जिससे उसकी स्थिति बहुत कमजोर हो गयी। बहमनी सुलतान फीरोज (दे०)ने इसका लाभ उठाते हुए विजयनगरपर हमला कर राजधानीपर कुछ समयके लिए अधिकार कर लिया। देवरायने विवश होकर उससे सधि की जिसके अनुसार उसने सुल्तानको कर देनेका वायदा किया और उसके साथ अपनी लडकीका विवाह कर दिया।

देवराय द्वितीय (१४२५–४६)–विजयनगरके प्रथम राजवशका छठा शासक। उसने राज्यकी उत्तरी सीमा पुन कृष्णा नदी तक ले जाकर केरलपर अपनी प्रभुता स्थापित की। बहमनी सुल्तान अहमद (दे०) ने उसके समयमे ही विजयनगरपर आक्रमण किया और सारे प्रजावर्गको भीषण अत्याचारोसे सत्रस्त कर डाला। लेकिन जान पडता है कि इस आक्रमणके बाद विजयनगरने पुन. अपना पूर्व वैभव प्राप्त कर लिया, क्योकि इटालियन यात्री निकोलो कोण्टीने, जिसने १४२० ई० मे विजयनगरकी यात्रा की थी और फारसके यात्री अब्दुर्रज्जाकने, जिसने १४४३ ई० मे विजयनगरका भ्रमण किया था, अपने यात्रा-विवरणोमे इस राज्यके ऐश्वर्य और वैभवका वर्णन किया है।

देवराष्ट्र–एक प्रदेश, जिसके राजा कुबेरको सम्राट् समुद्रगुप्त (दे०) (लगभग ३३० से ३७५ ई०)ने अपने दक्षिणापथ अभियानमे पराजित करनेके बाद उसके अपहृत राज्यको उसे लौटा दिया। इतिहासकार स्मिथके अनुसार यह राज्य महाराष्ट्र प्रदेशमे था किन्तु नयी खोजोके था। (स्मिथ० पृष्ठ ३०१, डुबरीनल० पृष्ठ १६०)।

देवाक–समुद्रगुप्त (लगभग ३३०–३८० ई०)के प्रयाग अभिलेखमे वर्णित एक प्रत्यत राज्य, जिसका राजा समतट (पूर्वी बगालका एक भाग) तथा कामरूप (प० असम)की भाँति गुप्त सम्राट्का करद था। देवाक राज्य कहाँपर स्थित था, यह अभी तक निश्चित नही हो पाया है। अनुमानत यह पूर्वी बगाल या पश्चिमी आसाममे स्थित रहा होगा।

देवानाम्पिय तिस्स–सिहलद्वीप (श्रीलका)का राजा, जो सम्राट् अशोकका समकालीन था। अशोकने अपने भाई अथवा पुत्र महेन्द्रको इसी राजाके दरबारमे भेजा था जिसने बादमे बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया।

देवानाम्पिय पियदस्सी–(सस्कृत रूप देवानाम्-प्रिय प्रियदर्शी) तृतीय मौर्य सम्राट् अशोककी उपाधि, जिसका उल्लेख अनेक शिलालेखोमे हुआ है। केवल मास्कीके शिलालेखमे उसे देवानामपिय अशोक सम्बोधित किया गया है। इस उपाधिका अर्थ है देवोका प्रिय जो सभीके कल्याणकी कामना करता है। (एस० भट्टाचार्य कृत 'सेलेक्ट अशोकन इपीग्राफ्स')।

देवी-चन्द्र गुप्तम्–सस्कृतका एक लुप्त नाटक, जिसके कतिपय अशोकी खोज हाल हीमे हुई है। इसका लेखक विशाखदत्त (दे०) माना जाता है। इस नाटकका कथानक चन्द्रगुप्त द्वितीयके बडे भाई रामगुप्तके राज्यकालसे सम्बन्धित है, जो कायर तथा कुलकलक था। जब वह अतिम शकक्षत्रप रुद्रसिहके आक्रमणसे भयभीत होकर उसे अपनी भार्याको भेट करनेको प्रस्तुत हो गया, तो उसके कनिष्ठ भ्राता चद्रगुप्त द्वितीयने, शकराजकी हत्या करके कुलगौरवकी रक्षा की। इसके बाद चद्रगुप्त द्वितीयने बडे भाईका भी वध कर डाला और उसकी भार्यासे स्वय विवाह कर लिया। इस नाटकसे विदित होता है कि गुप्तराजवशमे समुद्र गुप्त (दे०) और चद्रगुप्त द्वितीय (दे०)के बीच रामगुप्त भी सिहासनारूढ हुआ था। (इ० ऐं० १९२३, पृ० १८१ नोट)

दोआब–उत्तर भारतमे गगा और यमुनाके बीच तथा दक्षिण भारतमे कृष्णा और तुगभद्राके बीचके ऐसे क्षेत्र, जो भारतके सर्वाधिक उपजाऊ भूभाग माने जाते है। इन क्षेत्रोपर अधिकार करनेके लिए आसपासके राजा बराबर प्रयत्नशील रहते थे। दिल्लीके सुल्तान गगा और यमुनाके दोआबपर अपना प्रभुत्व स्थापित करनेके इच्छुक रहते थे। यह दोआब बहुधा दिल्लीपर शासन करनेवालोके ही हाथमे

रहता रहा है। कुछ समयके लिए शिन्देके नेतृत्वमें मराठोंका भी अधिकार इसपर रहा। १८०३ ई० मे यह ब्रिटिश सरकारके हाथमें आया। कृष्णा और तुगभद्राके बीचके क्षेत्रको रायचूर दोआब भी कहते है। वहमनी सुल्तानों और विजयनगरके हिन्दू राजाओंके बीच इस दोआबपर कब्जेके लिए बराबर द्वन्द्व होता रहा। इस दोआबमें रायचूर तथा मुदगल नामके दो किले हैं। १५६५ ई०में विजयनगरके ध्वसके पश्चात् रायचूर दोआब बीजापुरके सुल्तानके अधीन हुआ, और बादमें क्रमश मुगल सम्राटों और अंग्रेज सरकारके कब्जेमें आया।

दोनाबूका युद्ध—प्रथम वर्मा-युद्धके दौरान (दे०) अप्रैल १८२४ ई०में हुआ। इस युद्धमें अंग्रेजोंने बर्मियोंको पराजित कर दिया। बर्माका सेनापति बधुल मारा गया।

दोस्त अली—कर्नाटकका नवाब, जो हैदराबादके निजामकी अधीनतामें था। १७४३ ई० में मराठोंने कर्नाटकपर हमला कर दिया। दोस्त अली पराजित हुआ और मारा गया। मराठे उसके दामाद चदा साहब (दे०)को बदी बनाकर अपने साथ ले गये। चदा साहबने आगे चलकर कर्नाटकके परवर्ती इतिहासमें महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

दोस्त मुहम्मद खां—अफगानिस्तानका अमीर, जिसने १८२६में १८६३ ई० तक शासन किया। जब १८३६ ई० में रूसके इशारेपर फारसने हेरातपर हमला करनेकी धमकी दी, दोस्त मुहम्मद खाँने ब्रिटिश भारतीय सरकारसे मैत्रीके लिए यह शर्त रखी कि वह अमीरको पजाबके महाराज रणजीतसिंहसे पेशावर वापस लेनेमें मदद दे। चूंकि ब्रिटिश भारतीय सरकारने इस शर्तपर अमीरकी मदद देनेसे इनकार कर दिया, अतएव अमीरने १८३७ ई०में अपने दरबारमें रूसके राजदूतको आमन्त्रित किया। भारतका गवर्नर-जनरल लार्ड आकलैण्ड इससे कुपित हो गया और उसकी नीतिकी चरम परिणति १८३८ ई० में ब्रिटिश-अफगान-युद्ध (दे०)में हुई जो १८४२ ई० तक चला। युद्धके दौरान दोस्त मुहम्मद खाँने १८४० ई० मे आत्म-समर्पण कर दिया और अंग्रेज उसे बदी बना कर कलकत्ता ले गये। १८४२ ई० तक ब्रिटिश-भारतीय सेनाको २० हजार आदमी गँवाकर तथा लगभग १५ करोड रुपया बर्बाद करके अफगानिस्तानसे लौट आना पड़ा। इसके बाद दोस्त मुहम्मद खाँको रिहा कर अफगानिस्तान भेज दिया गया। वहाँ वह फिरसे अमीरकी गद्दीपर बैठा और एक स्वतन्त्र शासक की भाँति १८६३ ई० तक जीवित रहा। १८५५ तथा १८५७ ई० मे उसने ब्रिटिश सरकारसे दो सन्धियाँ की। अमीरने ईमानदारीसे इन सन्धियोंका पालन किया और १८५७-५८ ई० के भारतीय स्वतन्त्रता सग्रामको कुचलनेमें अंग्रेजोंकी पूरी मदद की।

दौराईका युद्ध—अतिम युद्ध था जो दारा (दे०) और औरगजेबकी सेनाओंके बीच हुआ। यह युद्ध अजमेरके दक्षिणमें एक पहाडी दर्रेके बीच हुआ था जो तीन दिन (१२-१४ अप्रैल १६२९ ई०) तक चला। इस युद्धमें दाराकी पूर्ण पराजय हुई और वह भाग निकला। अन्तमें वह पकड़ा गया और औरगजेबने धर्मद्रोहका आरोप लगाकर उसे मृत्युदण्ड दिया।

दौलत खाँ—जब फारसके शाह अब्बासने दिसम्बर १६४८ ई० में कन्धारपर आक्रमण किया, उस समय वहाँका मुगल हाकिम। दौलत खाँ किलेकी रक्षा न कर सका, फलत फरवरी १६४९ ई० में कन्धार फारसके अधिकारमें चला गया।

दौलत खाँ लोदी—पन्द्रहवी शताब्दीके आरम्भमें दिल्लीका एक मुख्य अमीर। उस समय सुल्तान मुहम्मद तुगलक (दे०)की मृत्युके फलस्वरूप तुगलकवशका अत हो चुका था। दिल्लीके अमीरोंने दौलत खाँ लोदीको गद्दीपर बिठा दिया। लेकिन वह कुछ ही महीनों तक सुल्तान रहा, क्योंकि खिज्र खाँ (दे०)ने मार्च १४१४ ई० में उसे गद्दीसे उतार दिया। खिज्र खाँने स्वय गद्दीपर बैठकर सैयद वश प्रचलित किया।

दौलत खाँ लोदी—जिस समय दिल्लीमें इब्राहीम लोदी (१५१७-२६ ई०) शासन कर रहा था, उस समय पजाबका हाकिम। वह स्वाभिमानी प्रकृतिका था और अपने पुत्रके साथ दुर्व्यवहार किये जानेके कारण सुल्तान इब्राहीमसे बहुत नाराज हो गया था। दौलत खाँने सुल्तानके चाचा आलम खाँसे मिलकर अफगानिस्तानके शासक बाबरको भारतपर आक्रमण करनेके लिए आमन्त्रित किया। दौलत खाँने आशा की थी कि बाबर भारत आकर लूट-पाट करनेके पश्चात् वापस चला जायगा। बाबरने जब १५२४ ई० मे लाहौरपर अधिकार कर लिया और अफगानिस्तान वापस जानेकी इच्छा नही की, तो आलम खाँने अपना समर्थन वापस ले लिया। फलत उस समय तो बाबर अफगानिस्तान वापस चला गया, लेकिन १५२६ ई० में उसने पुन आक्रमण किया और भारतमें मुगल साम्राज्यकी नींव डाली। इस बार दौलत खाँ लोदीको भी बाबरकी अधीनता स्वीकार करनी पडी।

दौलत राव शिन्दे—महादजी शिन्दे (दे०)के भाई तुकोजीका पौत्र। १७९४ ई० मे महादजीके मरनेपर ग्वालियरका अधिपति बना। गद्दीपर बैठनेके समय दौलतराव युवक

था। उसने १८२७ ई० मे अपनी मृत्यु पर्यन्त शासन किया। उसका राज्य बहुत बडा, उत्तरसे लेकर दक्षिण तक फैला हुआ था। उसके पास विशाल सेना थी, जिसको फ्रासीसी अफसर द-ब्वाञ्ज (दे०)ने प्रशिक्षित किया था और उस समय एक अन्य फ्रासीसी अफसर पेरो उसका कमाडर था। दौलतराव पूनाके पेशवाको अपनी मुट्ठीमे करना चाहता था, लेकिन इदोरका जसवतराव होल्कर (दे०) इस मामलेमे उसका मुख्य प्रतिद्वन्द्वी था। इसके अलावा पेशवाका मुख्यमत्री नाना फडनवीस भी इसमे बाधक था। लेकिन १८०० ई० मे नानाकी मृत्यु हो गयी। दौलतराव तुरन्त पूनामे अपनी धाक जमानेका प्रयास करने लगा। होल्करने उसका विरोध किया, फलत पूनाके परकोटेके बाहर ही अक्तूबर १८०२ ई० मे दोनोके बीच युद्ध हुआ। पेशवा बाजीराव द्वितीय डरकर भाग खडा हुआ। उसने अग्रेजोकी शरण लेकर उनसे बसईकी सधि (दे०)की जिसके अनुसार अग्रेजोने पेशवाको पूनाकी गद्दीपर बैठानेका वायदा किया और बदलेमे पेशवाने अपने खर्चपर पूनामे अग्रेज पलटन रखना स्वीकार किया। अग्रेजोने मई १८०३ ई० मे पेशवाको पुन गद्दीपर बैठा दिया। लेकिन शिन्दे, होल्कर और भोसले (दे०) सभीने बसईकी सधिका विरोध किया, क्योकि उससे मराठोकी स्वाधीनता समाप्त हो जाती थी।

फलत १८०३ ई० मे द्वितीय मराठा-युद्ध हुआ। दौलतराव शिन्देकी सेना यद्यपि यूरोपीय पद्धतिसे प्रशिक्षित थी तथापि वह असई, आरगाँव और लासवाडीके युद्धोमे बुरी तरह पराजित हुई। दौलतरावके फ्रासीसी सेनापति पेरोने नौकरी छोड दी। दौलतरावको विवश होकर सुर्जी-अर्जुनगाँवकी सधि करनी पडी, जिसके अनुसार उसने अपना दक्षिणका प्रदेश तथा गगा-यमुनाके बीचका दोआब अग्रेजोको समर्पित कर दिया। दौलतराव इस पराजयसे बहुत क्षुब्ध हुआ। फलत नवम्बर १८०५ ई० मे उसने अग्रेजोसे फिर युद्ध कर दिया। यद्यपि उसे विजय प्राप्त नही हुई, तथापि अग्रेजोने पहलेकी सधिकी शर्तोको नरम कर दिया। अग्रेजोने चम्बल नदी शिन्दे तथा अग्रेजी राज्यकी सीमा स्वीकार कर ली। दौलतराव अब भी अपने खोये हुए प्रदेशोको वापस पानेके लिए लालायित था। उसने अग्रेजी क्षेत्रमे लूटपाट करनेवाले पिंडारियोको सहायता देना आरभ किया। १८१७ ई० मे लार्ड हेस्टिंग्जने पिंडारियोंके दमनके लिए अभियान चलाया और दौलतरावको नयी सधि करनेके लिए बाध्य किया, जिसके अनुसार दौलतरावने पिंडारियोको कोई सहायता न देनेका वायदा किया तथा अग्रेजोका यह अधिकार भी स्वीकार किया कि वे राजपूत राजाओसे सधि कर सकते है। इस प्रकार दौलतराव अग्रेजोको कोई भी हानि पहुँचानेमे असमर्थ हो गया। १८२७ ई० मे जब उसकी मृत्यु हो गयी, तब भी उसके अधीन एक विशाल राज्य था, जिसकी राजधानी ग्वालियर थी।

दौलताबाद—दक्षिणके यादववशी (दे०) राजाओकी राजधानी देवगिरिका सुल्तान मुहम्मद तुगलक द्वारा रखा गया नाम। यह गोदावरी नदीकी उत्तरी घाटीमे स्थित है और भौगोलिक दृष्टिसे भारतका केन्द्रीय स्थल कहा जा सकता है। इस नगरने इतिहासमे बहुत बार उत्थान और पतन देखा। यह १३१८ ई० तक यादवोकी राजधानी रहा, १२९४ ई० मे अलाउद्दीन खिलजीने इसे लूटा। बादमे खिलजीकी फौजोने दुबारा १३१८ ई०मे यादव राजा हरपाल देवको पराजित कर मार डाला। उसकी मृत्युसे यादववशका अत हो गया और नगर दिल्ली सल्तनतके अतर्गत आ गया। बादमे जब सुल्तान मुहम्मद तुगलक गद्दीपर बैठा, उसे देवगिरिकी केन्द्रीय स्थिति बहुत पसद आयी। उस समय मुहम्मद तुगलकका शासन पजाबसे बगाल तक तथा हिमालयसे लेकर कन्याकुमारी तक फैला हुआ था।

सुल्तानने देवगिरिका नाम दौलताबाद रखा। उसने इस नगरमे बडे-बडे भवन और सडके बनवायी। एक सडक दौलताबादसे दिल्ली तक बनायी गयी। १३२७ ई० मे सुल्तान दिल्लीसे राजधानी हटाकर दौलताबाद ले गया। दिल्लीके नागरिकोने दौलताबाद जाना पसद नही किया। इस स्थानातरणसे लाभ कुछ नही हुआ, उल्टे परेशानियाँ बढ गयी। फलत राजधानी पुन दिल्ली ले आयी गयी। लेकिन इससे दौलताबादका महत्त्व नही घटा। दक्षिणमे जब बहमनी राज्य टूटा, तब अहमदनगर राज्यमे दौलताबादका गढ अत्यन्त शक्तिशाली माना जाता रहा। १६३१ ई० मे सम्राट् शाहजहाँ इस गढको सर न कर सका, और किलेदार फतेहखाँको घूस देकर ही उसपर कब्जा कर राका। मुगल शासनके अन्तर्गत भी दौलताबाद प्रशासनका मुख्य केन्द्र बना रहा। इसी नगरसे औरगजेबने अपने दक्षिणी अभियानोका आयोजन किया। औरगजेबके आदेशसे गोलकुण्डाका अतिम शासक अब्दुल हसन दौलताबादके ही गढमे कैद किया गया था। १७०७ ई० मे बुरहानपुरमे औरगजेबकी मृत्यु होनेपर उसके शवको दौलताबादमे ही दफनाया गया। १७६० ई० मे यह नगर मराठोके अधिकारमे आ गया, लेकिन इसका पुराना नाम देवगिरि

पुनः प्रचलित न हो सका। आज भी यह दौलताबादके नामसे ही जाना जाता है।

द्रविड (देश)—तमिलनाडुका प्राचीन नाम अर्थात् मद्राससे लेकर दक्षिणमें कन्याकुमारी तक दक्षिण भारतका भूभाग।

द्रविड (निवासी)—भारतमें बसी हुई प्राचीनतम प्रजातियोंमें-से एक, जो पहले उत्तर और दक्षिण दोनों भागोंमें फैली हुई थी। कालान्तरमें उत्तर भारतके द्रविड मेसोपोटामिया (वर्तमान ईराक)की ओर चले गये और रास्तेमें बलूचिस्तान-में अपनी ब्राहुई शाखा छोड़ गये जो आज भी द्रविड भाषासे मिलती-जुलती बोली बोलते हैं। उत्तर भारतके द्रविड लोगोंको आर्योंने दक्षिणकी ओर खदेड़ दिया। आर्योंकी सभ्यता और संस्कृति द्रविडोंके मुकाबले निचले दर्जेकी थी, लेकिन अच्छे योद्धा होनेके कारण उत्तर भारतमें अपनी सत्ता स्थापित करनेमें वे सफल हो गये।

उत्तरमें आर्योंके जम जानेके बावजूद दक्षिण भारतमें द्रविड लोगोंकी सत्ता शताब्दियोंतक कायम रही। इनकी सन्तान आज भी दक्षिण भारतमें है जो तमिल, तेलुगु, कन्नड और मलयालम भाषाएँ बोलती है। इन भाषाओंका मूल उद्भव संस्कृतसे नहीं हुआ है जो आर्योंकी भाषा मानी जाती है। समय बीतनेके साथ द्रविडों और आर्योंमें रक्तका सम्मिश्रण हुआ और इस समय दोनोंके बीचका भेद लगभग लुप्त हो गया है और दोनोंकी सभ्यता, संस्कृति और धर्ममें समन्वय स्थापित हो गया है। द्रविड लोगोंके देवी-देवता वैदिक धर्ममें शामिल हो गये हैं और उत्तर भारतमें उनकी पूजा उसी प्रकार होती है जैसे दक्षिण भारतमें।

द्रौपदी—पंचालके राजा द्रुपदकी पुत्री, जिसे पाण्डुपुत्र अर्जुनने अपनी धनुर्विद्याका प्रदर्शन करके विजित किया था, लेकिन बादमें पाँचों पाण्डवोंके साथ उसका विवाह हुआ। संस्कृतके प्रसिद्ध महाकाव्य 'महाभारत'की वह मुख्य नायिका है।

द्वारसमुद्र—आधुनिक हलेबिडका प्राचीन नाम। यह होयसल राजाओंकी राजधानी थी जो वर्तमान कर्नाटक क्षेत्रपर शासन करते थे। इस राजधानीकी स्थापना बिट्टिग (दे०)ने की, जो बादमें विष्णुवर्धन (लगभग 1111–14 ई०)के नामसे विख्यात हुआ। यह नगर वैष्णव धर्मका केन्द्र बना। विख्यात वैष्णव संत रामानुजको विष्णुवर्धनकी ही संरक्षकता प्राप्त थी। इस राजाने कई भव्य विष्णुमंदिर बनवाये। द्वारसमुद्रमें बना विष्णुमंदिर अपने सौंदर्य और कलाके लिए बहुत विख्यात हुआ। किसी समय द्वारसमुद्रका राज्य देवगिरि (दे०) तक फैला हुआ था। 1326 ई० में सुलतान मुहम्मद तुगलककी मुस्लिम सेनाने इस नगरको लूट-पाटकर बरबाद कर डाला।

द्वैध शासन-पद्धति—सांविधानिक व्यवस्थाका एक रूप। द्वैध शासनका सिद्धान्त सबसे पहले लियोनेल कर्टिसने प्रतिपादित किया था जो बहुत दिनों तक 'राउण्ड टेबिल'का सम्पादक रहा। बादमें यह सिद्धान्त 1919 ई० के भारतीय शासन विधानमें लागू किया गया जिसके अनुसार प्रान्तोंमें द्वैध शासन स्थापित हुआ। इस पद्धतिके अनुसार प्रान्तोंमें शिक्षा, स्वायत्त शासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सार्वजनिक निर्माण, कृषि तथा सहकारिता आदि विभागोंका प्रशासन मंत्रियोंको हस्तांतरित कर दिया गया। ये मंत्री प्रान्तीय विधानसभाके निर्वाचित सदस्य होते थे और विधानसभाके प्रति उत्तरदायी थे। दूसरी ओर राजस्व, कानून, न्याय, पुलिस, सिंचाई, श्रम तथा वित्त आदि विभागोंका प्रशासन गवर्नरकी एक्जीक्यूटिव कौंसिलके सदस्योंके लिए सुरक्षित रखा गया। ये सदस्य गवर्नर द्वारा मनोनीत होते थे और उन्हींके प्रति उत्तरदायी होते थे, विधानसभाके प्रति नहीं।

अंग्रेज शासकोंके मतानुसार द्वैध शासन-पद्धतिकी स्थापनाका मुख्य उद्देश्य भारतीयोंको क्रमिक रूपसे प्रशासन चलानेकी कलाका प्रशिक्षण देना था और यह एक प्रकारसे भारतीयोंकी प्रशासन-क्षमतापर आक्षेप था। इसके अलावा हस्तांतरित विभाग खर्चेवाले विभाग थे, जबकि सुरक्षित विभाग आमदनीवाले विभाग थे। इस प्रकारका विभागोंका बँटवारा मंत्रियोंके लिए परेशानी पैदा करनेवाला था, क्योंकि ऐसी स्थितिमें उन्हें खर्चेके लिए एक्जीक्यूटिव कौंसिलके सदस्योंका मुँह देखना पड़ता था। वास्तवमें यह द्वैध शासन-पद्धति एक प्रकारसे संक्रमणकालीन शासन-पद्धति थी, जिसे भारतीयोंने पसन्द नहीं किया। लेकिन ब्रिटिश सरकारको इस शासन-पद्धतिमें अधिक लाभ नजर आता था, क्योंकि अधिक महत्त्वपूर्ण विभाग एक्जीक्यूटिव कौंसिलके सदस्योंके हाथमें थे जो गवर्नरके प्रति उत्तरदायी थे। इस शासन-पद्धतिकी अलोकप्रियता तथा कार्यान्वयनमें कठिनाईके बावजूद इसे आगे चलकर 1935 ई० के भारतीय शासन-विधानमें भी शामिल कर लिया गया। अर्थात् केन्द्रमें भी द्वैध प्रशासन-पद्धति लागू करनेकी व्यवस्था की गयी, जबकि पहले यह केवल प्रान्तोंमें लागू थी। लेकिन 1935 ई० का नया शासन-विधान कभी पूर्णतया लागू नहीं किया जा सका, अतः केन्द्रमें द्वैध शासन-पद्धति लागू नहीं हुई। जब स्वतन्त्र भारतका नया संविधान बना, पुराने शासन-विधान और द्वैध शासन-पद्धतिका स्वतः अंत हो गया।

द्वैध शासन, बंगालका—1765 ई० की इलाहाबादकी संधि (दे०)के अंतर्गत बंगाल, बिहार और उड़ीसामें स्था-

पित। उक्त सधिके फलस्वरूप एक ओर ईस्ट इण्डिया कम्पनी और दूसरी ओर अवधके नवाब शुजाउद्दौला, बगालके नवाब मीर कासिम और दिल्लीके सम्राट् शाह-आलम द्वितीयके बीच युद्धका अन्त हो गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनीको बगालकी दीवानी (दे०) सौंप दी गयी, अर्थात् कम्पनीको बगालका दीवान (वित्तमत्री तथा राजस्व सग्रहकर्त्ता) बना दिया गया, जबकि मीर जाफरके लडके-को बगालका नवाब मान लिया गया। यह तय पाया गया कि कम्पनी जो राजस्व वसूल करेगी, उसमेसे २६ लाख रुपया सालाना सम्राट्को तथा ५२ लाख रुपया बगालके नवाबको शासन चलानेके लिए दिया जायगा तथा शेष भाग कम्पनी अपने पास रखेगी। इस प्रकार बगाल, बिहार और उडीसामे दोहरे शासनका आविर्भाव हुआ।

इसके अतर्गत कम्पनी राजस्व वसूलनेके लिए तथा नवाब शासन चलानेके लिए जिम्मेदार हुए। दोनोने ही सम्राट्की अधीनता स्वीकार की और सम्राट्को भी राजस्व-का कुछ भाग मिलने लगा जो बहुत वर्षोंसे बद हो गया था। इस दोहरे शासनसे कम्पनीकी असगत स्थितिका तो अत हो गया, किन्तु शासन-व्यवस्थामे कोई सुधार न हो सका।

दूसरी ओर नवाबसे वित्तीय प्रबध ले लिये जाने और उसपर शाति एव व्यवस्था तथा कम्पनीके कर्मचारियोकी घूसखोरीकी प्रवृत्तिको रोकनेकी जिम्मेदारी सौंप दिये जानेसे बगालकी शासन-व्यवस्था बिगडने लगी, क्योकि कम्पनीके कर्मचारी अपनेको मालिक समझते थे, उनपर नियत्रण पा सकना बहुत कठिन था। गरीब जनता कम्पनी तथा नवाब दोनोके अफसरोके अत्याचारोसे त्राहि-त्राहि करने लगी। इसीका फल हुआ कि १७६९–७० ई० मे भयकर अकाल पडा जिससे बगालकी एक-तिहाई आबादी नष्ट हो गयी। इस दुखद घटनाने दोहरी शासन-पद्धतिकी बुराईको सबसे अधिक उजागर कर दिया। फलत १७७२ ई० मे इसे समाप्त कर दिया गया।

ध

धंग–(लगभग ९५०–९९)–मध्य भारतके चदेलवशका सबसे अधिक शक्तिशाली राजा। उसने अपना साम्राज्य चारो दिशाओमे फैलाया और काफी लम्बे अरसे तक शासन किया। उसने खजुराहोके कुछ सुन्दर मदिर भी बनवाये तथा तत्कालीन राजनीतिमे सक्रिय भाग लिया। ९८९–९० ई०मे वह पजाबके राजा जयपाल (दे०) द्वारा सगठित भारतीय नरेशोके महासघमे शामिल हुआ और सबके साथ मिलकर गजनीके सुबुक्तगीन (दे०)के हमलेका मुकाबला करनेको बढा, लेकिन कुर्रम घाटीके निकट युद्धमे सब राजाओके साथ धगने भी हार खायी। राजा धग सौ वर्ष तक जिया। जीवनके सौ वर्ष पूरे होनेपर उसने प्रयाग जाकर त्रिवेणीमे जलसमाधि ले ली। (एन० एस० बसु कृत 'चदेलोका इतिहास')

धनञ्जय–दक्षिण भारतके उत्तरी अर्काट जिलेमे स्थित कुस्थल-पुरका राजा। प्रयागके स्तम्भलेखके अनुसार समुद्रगुप्त (चतुर्थ शताब्दी)ने अपने दक्षिणी अभियानमे धनञ्जयको पराजित करने बाद उदारतापूर्वक मुक्त भी कर दिया।

धन नंद–नदवशी राजाओमे अतिम, जो सिकन्दरके आक्रमणके समय शासन करता था। प्राचीन यूनानी लेखकोने उसका नाम अग्रमस अथवा जैण्ड्रमस लिखा है। इन लेखकोके अनुसार धननदके पास अपार सम्पत्ति थी। पश्चिममे उसके साम्राज्यकी सीमा व्यास नदी तक थी। उसके पास विशाल सेना थी, जिसमे २० हजार घुडसवार, दो लाख पैदल, दो हजार रथ तथा तीन हजार हाथी थे। इस विशाल सेनासे मुकाबला होनेकी बात सुनकर ही सिकन्दरके सैनिकोने आगे पूर्वकी ओर बढनेसे इनकार कर दिया। फलत सिकदरको अपने देश वापस लौटना पडा। धननद अत्याचारी राजा था और प्रजा उससे कुपित थी। चन्द्र-गुप्त मौर्य (दे०)ने तक्षशिलाके स्नातक चाणक्यकी सहायतासे प्रजाके असतोषका लाभ उठाकर मगधपर आक्रमण कर दिया और धननदको मार डाला तथा पाटलिपुत्रको राजधानी बनाकर मौर्यवशको सत्तारूढ किया।

धनाजी जादव–एक मराठा सरदार, जिसने १६८९ ई० मे शम्भु जी (दे०) की पराजय और मृत्युके पश्चात् मुगलोके विरुद्ध मराठोका सघर्ष पूरी शक्तिसे जारी रखा। उसने मुगलोके विभिन्न क्षेत्रोको बारी-बारीसे रौंदा और मराठो-का स्वराज्यके लिए सघर्ष जारी रखा। १७०७ ई० मे मुगलो-की कैदसे साहुकी मुक्तिके पश्चात् धनाजी मराठा सेनाका प्रधान बनाया गया। धनाजीकी मृत्यु हो जानेपर उसके स्थानपर उसका लडका चद्रसेन जादव सेनापति बनाया गया।

धरसेन–पश्चिममे वल्लभीके मैत्रकवश (दे०)के चार राजाओने यह नाम धारण किया। यह वश गुप्त राजाओके पतनके पश्चात् राज्यश्रीसम्पन्न हुआ था। धरसेन प्रथमने सेनापतिकी उपाधि ग्रहण की, किन्तु अन्य तीनोने राजकीय उपाधियाँ धारण की। धरसेन चतुर्थने ६४५ से ६४९ ई०

तक शासन किया। वह सम्राट् हर्षवर्धनका दौहित्र था। उसने 'परमभट्टारक परमेश्वर चक्रवर्ती'की उपाधि धारण की थी। वह अपने नाना हर्षवर्धनका उत्तराधिकारी भी बनना चाहता था, लेकिन उसे सफलता न मिली। उसके कार्यकलापोंके बारेमें अधिक जानकारी नहीं मिलती।

धर्मटकी लड़ाई—१५ अप्रैल १६५८ ई० को उज्जैनसे १८ मील दूर हुई। इस युद्धमें एक ओर बीमार सम्राट् शाहजहाँकी ओरसे दाराका पक्ष लेते हुए राजा जसवतसिंह तथा कासिम अलीकी फौजोंने तथा दूसरी ओरसे विद्रोही औरंगजेब तथा मुरादकी फौजोंने भाग लिया। इस लड़ाईमें शाही फौज बुरी तरह परास्त हुई। औरंगजेबने विजयी होकर दिल्लीकी ओर तेजीसे प्रयाण किया। वह चम्बल नदी पारकर आगरासे पूर्व आठ मीलपर सामूगढ़ पहुँचा, जहाँ दाराके नेतृत्वमें शाही फौजसे उसकी पुन मुठभेड़ हुई। दारा पराजित होकर भाग खड़ा हुआ।

धर्मपाल—बंगाल और बिहारके पालवंश (दे०)का द्वितीय राजा। उसने लगभग ७५२ से ७९४ ई० तक शासन किया। वस्तुत वह पालवंशकी कीर्तिका प्रतिष्ठापक था। बंगालके नरेशोंमें वह सबसे अधिक प्रतापी था। उसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी, जहाँसे उसने बंगाल और बिहारकी सीमाओंके बाहर अनेक विजय-यात्राएँ की। कुछ समयके लिए वह सम्पूर्ण उत्तरी भारतका अधिपति हो गया। उसने कन्नौजके राजा इन्द्रराजको गद्दीसे उतारकर उसके स्थानपर चक्रायुधको बैठाया, जिसने उसका सामंत बनना स्वीकार कर लिया। धर्मपालको दो मोर्चोंपर युद्ध करना पड़ा। उसने दक्षिणमें राष्ट्रकूटों (दे०)से लोहा लिया जिन्होंने उसे गंगा-यमुनाके दोआबसे पीछे खदेड़ दिया। उधर प्रतिहारों (दे०)ने कन्नौजसे उसके सामंत चक्रायुधको मार भगाया। राजा धर्मपाल बौद्धधर्मका उत्साही सरक्षक था, उसने विक्रमशिला (आधुनिक भागलपुर जिले)में सुप्रसिद्ध विहार एवं विश्वविद्यालयकी स्थापना की तथा राजशाही जिलेके पहाड़पुरके निकट सोमपुर विहार बनवाया। (ढाका हिस्ट्री आफ बंगाल, खण्ड एक)

धर्मपाल—कामरूप (आसाम)में १०वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें राजा ब्रह्मपाल द्वारा प्रवर्तित वंशका सातवाँ राजा। धर्मपाल १२वीं शताब्दीमें हुआ। उसके शासनकी अवधिका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। तीन आलेखोंमें उसके द्वारा ब्राह्मणोंको दिये गये भूमिदानका उल्लेख मिलता है। वह सात्त्विक विचारोंका शासक था, अत अपने भूमिदानके आलेखोंमें धर्माचरणसे होनेवाले पुण्योंका उल्लेख अवश्य कराता था। सम्भवत वह विष्णुका उपासक था।

धर्मरत्न—मध्य एशियामें रहनेवाला एक भारतीय बौद्ध भिक्षु, जो ६५ ई० में कश्यप मातंग(दे०)के साथ चीन गया और वहाँके हान सम्राट् मिंग-तीकी संरक्षकतामें लोयांगमें श्वेताश्व विहारकी स्थापना की। इस प्रकार उसने चीनमें बौद्ध धर्मके प्रसारमें योगदान किया।

धर्मशास्त्र—वेदोंके बाद धर्मशास्त्रोंको ही हिन्दुओंमें सबसे अधिक मान्यता प्राप्त है। धर्मशास्त्रोंमें वैदिक धर्मसूत्रोंके अतिरिक्त जिनमें उस युगकी सामाजिक रीति-नीति और विधि-विधानोंका विवरण है, मनुस्मृति आदि स्मृतियाँ भी शामिल की जाती है।

धृतराष्ट्र—महाभारतकी कथाके अनुसार कौरवोंका पिता। इन्हीं कौरवोंका युद्ध अपने चचेरे भाई पाण्डवोंसे हुआ था। धृतराष्ट्र जन्मसे ही अंधा था, अतएव वह हस्तिनापुरका औपचारिक राजा था और उसकी ओरसे छोटा भाई पाण्डु शासन चलाता था। पाण्डुके मरनेके बाद कौरवों और पाण्डवोंमें उत्तराधिकारका विवाद चला, जिसके फलस्वरूप कुरुक्षेत्रमें 'महाभारत' युद्ध हुआ, जिसमें दुर्योधनके नेतृत्वमें कौरवोंकी पराजय हुई और युधिष्ठिरके नेतृत्वमें पाण्डवोंकी विजय हुई।

धीमान्—९वीं शताब्दी ई०में बंगालके पाल राजाओंके समयमें एक सुप्रसिद्ध कलाकार और मूर्तिकार। विख्यात तिब्बती इतिहासकार तारानाथने धीमान् और उसके पुत्र बिटोपालका उल्लेख अपनी पुस्तकमें किया है और उन्हें बंगालमें प्रस्तर-मूर्तिकला, ताम्र-मूर्तिकला तथा चित्रकलाकी पृथक् शैलीका प्रवर्तक बताया है।

धोयी—बंगालके राजा लक्ष्मणसेन (११७९–१२०५ ई०)के दरबारका कवि। उसने कालिदासके 'मेघदूत'के अनुकरण पर 'पवनदूत' काव्यकी रचना की जिसमें राजकुमार लक्ष्मणसेनके अभियानका वर्णन है।

धौली—उड़ीसाके पुरी जिलेमें स्थित, जहाँ अशोकके चतुर्दश शिलालेखोंकी एक प्रति प्राप्त हुई है। जौगढ़की भाँति यहाँ भी सख्या ११, १२ तथा १३ के लेख नहीं मिलते। उनके स्थानपर दो अन्य लेख मिले है, जो विशेषरूपसे कलिंगके लिए उत्कीर्ण कराये गये थे।

ध्रुव—मान्यखेटके राष्ट्रकूट वंशका चौथा राजा, जिसने लगभग ७८० से ७९३ ई० तक शासन किया। वह पराक्रमी योद्धा था, जिसने भिन्नमालके गुर्जर राजा वत्सराजको पराजित किया और उससे वे दोनों श्वेत छत्र छीन लिये जो इसके पहले गुर्जर नरेशने गौड नरेशसे छीने थे। राजा ध्रुवने लगभग ७७५ ई०में पल्लव (दे०) नरेशको भी परास्त किया।

ध्रुवदेवी—आरम्भमें, सम्राट समुद्रगुप्तके बड़े पुत्र रामगुप्तकी

रानी। वादमे जव समुद्रगुप्तके छोटे पुत्र चद्रगुप्त (द्वितीय) विक्रमादित्य (३८० से ४१५ ई०, दे०)ने रामगुप्तको मारकर गद्दी प्राप्त की तव उसने ध्रुवदेवीसे विवाह कर लिया। उससे कुमारगुप्त उत्पन्न हुआ, जिसने वादमे ४१५ से ४५५ ई० तक शासन किया।

ध्रुवभट्ट—वल्लभीका राजा, जिसने कन्नौजके सम्राट् हर्पवर्धन (६०६–६४७ ई०)की पुत्रीसे विवाह किया। उसके मरने पर उसके पुत्र धरसेन चतुर्थ (दे०)ने 'परमभट्टारक' की पदवी प्राप्त की।

न

नंदवश—का प्रवर्तन महापद्मनन्द (दे०) द्वारा लगभग ३६२ ई० पू० मगधमे हुआ। इस वशमे नो शासक हुए, यथा महापद्म और उसके आठ पुत्र, जिन्होने बारी-बारीसे राज्य किया। विभिन्न प्रमाणोके आधारपर उनका शासन काल १००, ४०, अथवा २० वर्षोका माना जाता है। केवल दो ही पीढियोके शासकोके लिए १०० वर्पोका शासनकाल अत्यधिक जान पडता है। ४० वर्षोका शासन-काल उचित प्रतीत होता है। इस आधारपर मानना पडेगा कि ३२२ ई० पू० के आसपास चन्द्रगुप्त मौर्य (दे०)ने नदवशका नाश किया। नदवशके शासक शूद्र थे, फिर भी उन्होने यथेष्ट शक्ति और धन सचय किया था। इस वशके अतिम शासकके पास, जिसे पुराणोने धननन्द और यूनानी इतिहासकारोने अग्रमस अथवा जैण्ड्रमस लिखा है, अतुल कोप तथा एक विशाल सेना थी, जिसमे २०,००० अश्वारोही, २००,००० पदाति, २,००० रथ और ३,००० हाथी थे। यूनानी इतिहासकारोने उसे प्राच्य देशके शासकके रूपमे उल्लिखित किया है। उसके राज्यकी सीमा व्यास नदी तक विस्तृत थी और उसकी शक्तिसे भयभीत होकर सिकन्दरके सैनिकोने व्यास नदीसे आगे वढना अस्वीकार कर दिया और सिकन्दरको वापस लौटना पडा। किन्तु नदवशका अन्तिम शासक धननन्द अत्यत अलोकप्रिय था। चन्द्रगुप्त मौर्यने चाणक्य अथवा कौटिल्य नामक ब्राह्मणकी सहायतासे ३२२ ई० पू० के निकट उसे तथा नदवशको नष्ट करके मौर्य वशकी नीव डाली।

नदकुमार—एक वगाली फौजदार, जो १७५७ ई० मे क्लाइव तथा वाटसन द्वारा चन्द्रनगरके फ्रांसीसियोपर आक्रमण करनेके समय हुगलीमे नियुक्त था। नन्दकुमारके अधीन वगालके नवावकी एक वडी सैन्य टुकडी थी, जिसका प्रयोग वह अग्रेजोके आक्रमणके समय फ्रांसीसियोकी रक्षाके लिए कर सकता था। किन्तु उक्त आक्रमणके पूर्व नन्दकुमार अपने अधीनस्थ सैनिकोको लेकर हुगलीसे दूर चला गया और अग्रेजोने सरलतासे चन्द्रनगरपर अधिकार कर लिया। "यह स्पष्ट है कि इस प्रकारके आचरणके लिए नदकुमारको उत्कोच (घूस) दिया गया था।" पलासीके युद्धके उपरान्त वह नवाव मीर जाफरका कृपा-पात्र वन गया और १७६४ ई० मे शाहआलमने उसको 'महाराज'की उपाधि प्रदान की। उसी साल वारेन हेस्टिंग्स-को हटाकर नन्दकुमारको वर्दवानका कलक्टर नियुक्त किया गया और इस कारण हेस्टिंग्सने उसे कभी क्षमा नही किया। अगले ही वर्प नन्दकुमारको वगालका नायव सूबेदार नियुक्त किया गया, किन्तु शीघ्र ही उसे पदमुक्त कर वहा मुहम्मद रजा खाकी नियुक्ति की गयी। १७७२ ई० मे तत्कालीन गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्सने रजा खाको हटा दिया तथा नन्दकुमारकी सहायतासे उसपर मुकदमा भी चलाया। किन्तु आरोप सिद्ध न हुए और तभीसे नन्दकुमार और वारेन हेस्टिंग्समे मतभेद हो गया।

मार्च १७७५ ई०मे नन्दकुमारने वारेन हेस्टिंग्सके विरुद्ध कलकत्ता कौसिलके सम्मुख भ्रष्टाचार एव घूसके गभीर आरोप लगाये, किन्तु दूसरे ही महीने वारवेल (दे०) नामक कौसिलके सदस्यने नन्दकुमारके विरुद्ध षड्यन्त्रका एक वाद प्रस्तुत कर दिया। ये दोनो वाद विचाराधीन ही थे कि मोहनप्रसाद नामक एक व्यक्तिने नन्दकुमारके विरुद्ध जालसाजीका एक और वाद प्रस्तुत कर दिया। इस अभियोगकी सुनवाई मई, १७७५ मे प्रारभ हुई और समस्त कार्यवाही, वडी शीघ्रतासे पूर्ण की गयी। नन्दकुमार दोषी सिद्ध किया गया और गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्सके मित्र तथा सुप्रीम कोर्टके जज सर एलिजा इम्पी (दे०)ने उसको फाँसीकी सजा दी। ५ अगस्त १७७५ ई० को नन्दकुमारको फासी दे दी गयी। यद्यपि नन्दकुमार निर्दोप तथा सच्चा देशभक्त न था, तथापि जालसाजीके आरोपमे उसे प्राणदण्ड देना एक प्रकारमे न्यायकी हत्या करना था। (बेवरिज कृत 'महाराजा नदकुमारका मुकदमा')

नन्दिवर्धन—पुराणोके अनुसार शिशुनागवशके अतिम शासक पचमकके पूर्व मगधका शासक। इसके सबधमे कोई विवरण उपलब्ध नही है।

नम्बूद्री ब्राह्मण—इस वर्गका निवास मलावार (केरल)का भूभाग है। इन लोगोने वैदिक परपरा और कर्मकाण्डको विपरीत परिस्थितियोमे भी आत्मत्यागपूर्वक सुरक्षित रखा है। अपनी

विशिष्टताके कारण इन्हीं लोगोंमेंसे बदरीनाथ आदि पवित्र मन्दिरोंके रावल (मुख्य पुजारी) नियुक्त किये जाते हैं।

नगरकोट–आधुनिक काँगड़ा, जो हिमाचल प्रदेशमें है। सुल्तान मुहम्मद तुगलक (दे०)ने १३३७ ई० में उसपर अधिकार कर लिया था।

नजफ खाँ–देखिये, 'मिर्जा नजफ खाँ'।

नजमुद्दौला–बंगालके नवाब मीर जाफरका द्वितीय पुत्र और उत्तराधिकारी। १७६६ ई० में मीर जाफरकी मृत्युके उपरान्त अंग्रेजोंने बड़े भाईके स्थानपर उसको इस शर्तपर गद्दीपर बैठाया कि राज्यका संचालन कलकत्ता कौंसिल द्वारा चुने गये एक डिप्टी या उपशासक द्वारा होगा। कौंसिलने रजा खाको उपशासक चुना और इस प्रकार नजमुद्दौला केवल नाममात्रका शासक रह गया। १७६६ ई० में उसका भत्ता कम करके ४१ लाख कर दिया गया, जो पुनः १७६९ ई० में ३२ लाख और १७७० ई० में केवल १५ लाख कर दिया गया, जो उसके पद और शक्तिके क्रमिक ह्रासका सूचक है।

नयपाल–बिहार और बंगालके पालवंशीय शासक महीपाल (दे०)का पुत्र और उत्तराधिकारी। वह पालवंशका दसवाँ शासक था और उसने लगभग १०३८ से १०५५ ई० तक राज्य किया। उसके राज्यकालमें दीर्घकाल तक कलचुरियों (दे०)से संघर्ष चलता रहा। पाल शासनका विघटन नयपालके राज्यकालमें ही प्रारम्भ हो गया था और पूर्वी, पश्चिमी तथा दक्षिणी बंगाल उसके हाथोंसे निकल गया था। उसके राज्यकालमें प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् अतिशा (दीपंकर श्रीज्ञान)ने तिब्बतके शासकोंके निमंत्रणपर अपने शिष्यों सहित वहाँकी यात्रा की।

नरसा नायक–विजयनगरके साल्लुववंशके दूसरे और अन्तिम अल्पवयस्क शासक इम्मडि नरसिंहका संरक्षक। उसने उस बाल-शासकको एक प्रकारसे बन्दी बना लिया और शासन-संचालनकी समस्त शक्ति अपने हाथोंमें ले ली। यह कार्य उसने इतनी चतुरता एवं कठोरतासे किया कि १५०३ ई० में उसकी मृत्युके उपरान्त उसका पुत्र वीर नरसिंह ही संरक्षक बना और वही १५०५ ई० में शासक बन बैठा।

नरसिंहगुप्त–सुविख्यात गुप्तवंशका एक शासक, जिसने बालादित्यका विरुद धारण किया था। वह सम्राट् पुरुगुप्त (दे०)का पुत्र एवं उत्तराधिकारी था। उसका शासनकाल लगभग ४६७ ई० से ४७३ ई० तक माना जाता है। नरसिंहगुप्त बौद्ध धर्मका कट्टर अनुयायी था और उसने नालन्दामें, जो उत्तरी भारतमें बौद्ध शिक्षाका विश्वविख्यात केन्द्र था, ईंटोंका एक भव्य मंदिर बनवाया, जिसमें ८० फुट ऊँची बुद्धकी ताम्रप्रतिमाकी स्थापना की गयी थी। विद्वानोंने बालादित्यको ही हूण शासक मिहिरकुलका विजेता माना है, जिसकी सत्ता ५३३–३४ ई० में समाप्त कर दी गयी। ऊपर जो तिथियाँ दी गयी हैं, उनमें यह समीकरण सही नहीं प्रतीत होता।

नरसिंहवर्मा–काञ्चीके विख्यात पल्लव सम्राट् महेन्द्रवर्मा (दे०)का पुत्र और उत्तराधिकारी। उसका उपनाम राजसिंह भी था। उसने लगभग ६३० ई० से ६६८ ई० तक राज्य किया। नरसिंहवर्मा पल्लववंशका सबसे सफल एवं ख्यातिलब्ध शासक था। उसने ६४२ ई० में चालुक्यवंशके प्रतापी सम्राट् पुलकेशी द्वितीयको पराजित कर मार डाला और चालुक्योंकी राजधानी वातापी (आधुनिक बादामी)पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार उसने दक्षिण भारतमें पल्लवोंकी सार्वभौम सत्ता स्थापित की। ६४० ई० में ह्यु्एनत्साग नामक चीनी यात्री दक्षिणमें परिभ्रमण करते हुए उनकी राजधानी काञ्ची गया था, और नरसिंहवर्माकी शक्ति एवं ऐश्वर्यसे विशेषरूपसे प्रभावित हुआ था। नरसिंहवर्माने पल्लव कलामें एक नवीन शैलीका प्रचलन किया जो राजसिंह शैलीके नामसे विख्यात है। उसने महाबलिपुरम् (मामल्लपुर)में धर्मराजरथका निर्माण कराया और काञ्चीका प्रसिद्ध कैलासनाथ मंदिर भी उसीके राज्यकालमें निर्मित हुआ।

नरेन्द्रनाथ दत्त–देखिये, 'स्वामी विवेकानन्द'।

नरेन्द्र-मण्डल–माण्टेगू-चेम्सफोर्ड रिपोर्टकी सिफारिशोंके अनुसार ८ फरवरी १९२१ ई० को शाही ऐलान द्वारा इसकी स्थापना हुई। भारतीय देशी रियासतोंके विभिन्न प्रतिनिधि शासक इसके सदस्य थे। वाइसराय इसका अध्यक्ष होता था और हर साल राजाओंमेंसे इसके चान्सलर और प्रोचान्सलरका चुनाव होता था। यह सिर्फ एक सलाहकार संस्था थी और इसे कार्यकारी अधिकार प्राप्त नहीं थे। वाइसराय इस संस्थासे उन सभी मामलोंमें परामर्श ले सकता था, जिनसे ब्रिटिश भारत और देशी रियासत, दोनोंका ही संबंध होता था। यह रियासतों और उनके शासकोंके आन्तरिक मामलों या ब्रिटेनके बादशाहसे उनके संबंधों, या रियासतोंके वर्तमान अधिकारों या विवाह-संबंधोंमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता था और न उनकी कार्य-स्वतंत्रतापर अंकुश लगा सकता था। इस मण्डलकी स्थापनाका उद्देश्य देशी रियासतोंको ब्रिटिश भारतीय सरकार तथा नयी राष्ट्रीय विचारधाराके निकट संपर्कमें लाना था। संस्था बहुत कारगर सिद्ध नहीं हुई। परिस्थितियोंवश इसकी उपयोगिता सिर्फ इतनी रही कि

उसने सम्पूर्ण भारतके लिए आजकी तरहकी संघीय सरकार-की स्थापनाके लिए रास्ता साफ कर दिया।

नवाज ख़ाँ, शाह–१६५८–५९ ई० में मुगलोंकी ओरसे अहमदाबादका सूबेदार। सामूगढ (दे०)के युद्धके उपरान्त जब शाहजादा दारा (दे०) भागकर अहमदाबाद आया तो उसने उसको शरण दी। नवाज खाँने दाराको सूरतपर अधिकार करनेमें इस आशयसे भी सहायता दी कि कदाचित् वह पुन: अपना राज्य पानेमें समर्थ हो सके। किन्तु दारा अजमेर चला गया और नवाज खा द्वारा की गयी सहायता व्यर्थ सिद्ध हुई।

नवाब वजीर (अवधके)–देखिये, 'शुजाउद्दौला'।

नसरतशाह–हुसैनशाहका सबसे बडा पुत्र और उत्तराधिकारी। उसने १५१८ से १५३३ ई० तक बंगालमें शासन किया। हुसैनशाहके १८ पुत्र थे और नसरतशाहने सभी के साथ अच्छा व्यवहार किया। उसने तिरहुत भी जीत लिया था और वह ललितकलाओ, वास्तुकला और साहित्यका पोषक था। उसने अपनी राजधानी गौडमें बडी सुनहली मसजिद और कदमरसूल नामक दो प्रसिद्ध मसजिदोका निर्माण कराया। साथ ही उसने महाभारतका संस्कृतसे बंगलामें अनुवाद कराया।

नसरत शाह–तुगलकवंश (दे०)का आठवाँ सुल्तान। वह सुल्तान फीरोज तुगलकका पौत्र था। उसे जनवरी १३९५ ई० में गद्दीपर बैठाया गया किन्तु ३ या ४ ही वर्ष नाममात्रका शासक रहनेके उपरांत उसकी हत्या कर दी गयी। अपने शासनकालमें वह फिरोजाबादमें दरबार लगाता था, जबकि उसका प्रतिद्वन्द्वी और चचेरा भाई महमूद तुगलक पुरानी दिल्लीमें शासन करता था। उसकी मृत्युमें महमूद तुगलक, तुगलकवंशका एकमात्र निर्विरोध प्रतिनिधि रह गया।

नहपान–शकोंके क्षहरातवंशका एक प्रसिद्ध क्षत्रप, जिसने नासिक या उसके निकट राजधानी बनाकर महाराष्ट्र प्रदेशपर शासन किया। उसकी तिथिका निश्चयपूर्वक निर्धारण नही हो सका है, लेकिन उसके सिक्को एव अभिलेखोंसे यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि उसने दूसरी शताब्दीके प्रथम चतुर्थांशमें राज्य किया। उसके राज्यमें पूना (पुणे), उत्तरी कोंकण, काठियावाड और मालवाके भूभाग तथा अजमेर सम्मिलित थे। कुछ लोग उसे ही शक संवत्का प्रवर्तक मानते है।

नाग–नर्मदा नदीकी घाटीके मूल निवासी। उनके एक शासक गणपति नागका उल्लेख समुद्रगुप्तके प्रयाग स्तम्भ-लेखमें हुआ है।

नागपुर–विदर्भ क्षेत्रका एक नगर और ब्रिटिशकालीन मध्य-प्रदेशकी एक रियासत। अब यह महाराष्ट्र प्रदेशके अन्तर्गत है। पेशवा बाजीराव प्रथम (दे०)के कालमें रघुजी भोसला द्वारा स्थापित राजवंशके शासकोकी यह नगर राजधानी था। १७६१ ई० में पेशवा बालाजी बाजीराव (दे०)की मृत्युके उपरान्त नागपुरके भोसला शासक प्राय स्वतंत्र हो गये। परन्तु द्वितीय मराठा-युद्ध (दे०)में अंग्रेजो द्वारा पराजित होनेपर १८०३ ई० में उन्हे सहायक-सन्धि स्वीकार करनी पडी। १८५४ ई० में जब्तीके सिद्धांतके अनुसार इसे ब्रिटिश साम्राज्यमें सम्मिलित कर लिया गया।

नागभट्ट प्रथम–गुर्जर प्रतीहार वंशका संस्थापक। साधारणतया उसका काल आठवी शताब्दी माना जाता है। सिन्धके अरबो और दक्षिणके चालुक्यो तथा राष्ट्रकूटोके विरुद्ध वह अपने वंशकी सत्ता बनाये रखनेमें समर्थ रहा।

नागभट्ट, द्वितीय–गुर्जरप्रतिहार वंशका एक प्रारंभिक शासक। लगभग ८१६ ई० में उसने गंगाके मैदानपर आक्रमण करके कन्नौजपर अधिकार कर लिया और वहाँके शासकको सिंहासनसे उतारकर कन्नौजको अपनी राजधानी बनाया। उपरान्त राष्ट्रकूट शासक गोविन्द तृतीय (दे०)के हाथों उसकी पराजय हुई।

नागसेन–एक प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु एव दार्शनिक। मेनेण्डर नामक यवन शासकको बौद्ध धर्मके सिद्धान्तोंसे परिचित करानेवाले विद्वानके रूपमें इसका उल्लेख 'मिलिन्द-पञ्हो' (मिलिन्दके प्रश्न) नामक ग्रथमें हुआ है।

नागसेन–समुद्रगुप्त (दे०)की प्रयाग-प्रशस्ति लेखमें उट्टंकित एक शासक। समुद्रगुप्तने उसे पराजित करके उसके राज्यको अपने साम्राज्यमें मिला लिया। उसे पद्मावती (पदम पवाया)का शासक बताया गया है, जो ग्वालियर और झाँसीके बीच स्थित थी।

नागा–लोग भारतके उत्तर-पूर्वी सीमा-प्रदेशमें रहते हैं। वे प्रारम्भमें बडे ही क्रूर थे और नर-मुण्डोका शिकार करते थे। उनकी माग है कि उनके निवास क्षेत्र नागालैण्ड-को स्वायत्त-शासन प्राप्त हो। (अब 'नागालैंड' भारतीय संघका एक राज्य बना दिया गया है।–स०)

नागानन्द–एक प्रसिद्ध संस्कृत नाटक, जिसकी रचना सातवी शतीमें सम्राट हर्षवर्धन (दे०) द्वारा की हुई मानी जाती है।

नागार्जुन–एक प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान्, जिसका समय दूसरी शताब्दी ई० माना जाता है। कदाचित उसको सम्राट् कनिष्क (दे०)का संरक्षण प्राप्त था। उसकी दो प्रसिद्ध कृतियाँ 'सुहृल्लेख' और 'मध्यमकारिका' हैं। 'सुहृल्लेख'

मे बौद्धधर्मके सिद्धान्तोका सक्षिप्त वर्णन है और 'मध्यम-कारिका' महायान सम्प्रदायका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

नागार्जुन–एक प्रख्यात हिन्दू रसायनशास्त्रका विद्वान। उनका समय सातवी-आठवी शताब्दी माना जाता है। उसके प्रसिद्ध ग्रथ 'रसरत्नाकर'मे धातुओके सशोधन और उनके गुण-दोषोका निरूपण है, जिसमे पारेका उल्लेख (पारद प्रयोग) सबसे महत्त्वपूर्ण है। अरबोने नागार्जुनके ग्रन्थोमे ही रसायन-विद्याका विशेष ज्ञान प्राप्त किया था (देखिये–पी० सी० राय कृत 'हिन्दू रसायनशास्त्रका इतिहास', भाग दो)।

नाट, जनरल सर विलियम (१७८२ से १८४५ ई० तक)–ईस्ट इडिया कम्पनीकी बगाल सेनामे १८०० ई० मे एक सैनिक पदाधिकारी होकर आया। उसकी अतिशीघ्र पदोन्नति हुई और १८३९ ई० मे उसे कदहार स्थित ब्रिटिश सेनाओका नेतृत्व सौंपा गया। आगे चलकर उसने अफगानोके आक्रमणोसे कदहारकी रक्षा की। मैकनाटन (दे०)की हत्याके उपरान्त उसने बिना स्पष्ट आदेशके भारत लौटना अस्वीकार कर दिया, किन्तु जब १८४२ ई० के जुलाई मासमे लार्ड एलेनबराने उसे अपने मनचाहे मार्गसे लौटनेकी अनुमति दी, तब उसने लौटनेके लिए जानबूझकर लम्बा मार्ग चुना। गजनी होता हुआ वह १७ सितम्बर १८४२ ई० को काबुल पहुँचा और ब्रिटिश सेनाओकी शक्ति जताता हुआ जलालाबाद होकर भारत लौटा। इस प्रकार उसने अफगान-युद्धकी पराजयको विजयका रूप दे दिया। उपरान्त उसकी नियुक्ति काबुलके रेजीडेण्टके रूपमे हुई और १८४४ ई० मे उसने भारतीय सेवासे अवकाश लिया।

नादिरशाह–१७३६ ई० मे फारसमे सिंहासनारूढ हुआ। उसने १७३८ ई० मे काबुल और कन्दहारपर अधिकार कर लिया और १७३९ ई० के प्रारभमे भारतवर्षपर आक्रमण कर दिया। तत्कालीन मुगल बादशाह मुहम्मदशाह (दे०) राजपूतोका सहयोग उपलब्ध न कर सका। मुसलमान अमीरो और अधिकारियोमेसे अधिकाश नादिरशाहके साथ षड्यत्र करते रहे। फलस्वरूप नादिरशाह निर्विरोध करनाल तक बढ आया और मुगल सेनाओको सरलतासे परास्त कर २० मार्च १७३९ ई०को उसने दिल्लीमे प्रवेश किया। पराजित मुगल बादशाहको उसका स्वागत करना पडा। उसके सैनिकोने पहले कुछ दिनो तक दिल्लीमे कोई लूटमार नही की, परतु उसके सैनिकोपर जब हमले होने लगे तो उसने क्रुद्ध होकर कत्लेआम तथा प्रात आठ बजेसे सायकाल तक नगरको लूटनेका आदेश दे दिया। मुगल-सम्राट्की मध्यस्थताके फलस्वरूप उसने नर-सहार एव लूटमार बन्द करवा दी, किन्तु तब तक दिल्लीके ३०,००० नागरिक मारे जा चुके थे और नगरका अधिकाश भाग जलाया जा चुका था।

नादिरशाहने काबुल और सिन्धु नदीके पश्चिमका समस्त भूभाग अपने राज्यमे सम्मिलित कर लिया तथा मुहम्मदशाहको दिल्लीका सम्राट् बना रहने दिया। १६ मई १७३९ ई० को वह ३० करोड रुपये, बहुमूल्य रत्न, मोती, कोहेनूर (दे०) सहित असख्य हीरे, तख्ते ताऊस (दे०), १००० हाथी, ७००० घोडे, १०,००० ऊँट, मुगल रनिवास (हरम)की बहुत-सी सुदरियाँ, २०० कारीगर, १०० मिस्त्री एव २०० बढई लेकर तथा भारतको रक्तरजित और पददलित छोडकर स्वदेश लौट गया। वस्तुत उसे इस आक्रमणमे लूटका इतना धन प्राप्त हुआ कि उसने फारसको ३ वर्ष तक कर-मुक्त रखा। किन्तु उसके प्रारब्धमे इस धनका उपभोग अधिक काल तक बदा न था। इसीलिए भारतसे लौटनेके आठ ही वर्ष बाद उसका मस्तिष्क विकृत हो गया और विक्षिप्तावस्थामे उसके ही शिविरमे १७४७ ई० मे छुरेसे उसकी हत्या कर दी गयी।

नादिरा बेगम–बादशाह शाहजहाँके ज्येष्ठ पुत्र दारा शिकोहकी पत्नी। सामूगढके युद्धोपरान्त उसने दाराके साथ पलायन किया और उसके साथ ही समस्त दुःख एव कष्ट सहे। अन्तत इस दारुण दुःखको और अधिक सहन करनेमे असमर्थ होकर दादर जाते समय १६५९ ई० मे उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्युसे दाराको गहरा आघात लगा।

नानक–सिख धर्मके प्रवर्तक। १४६९ ई० मे लाहोरके निकट तलवण्डी अथवा आधुनिक ननकाना साहिबमे खत्री परिवारमे वे उत्पन्न हुए। वे साधु स्वभावके धर्म-प्रचारक थे। उन्होने अपना समस्त जीवन हिन्दू और इस्लाम धर्मकी उन अच्छी बातोके प्रचारमे लगाया, जो समस्त मानव समाजके लिए कल्याणकारी है। उनका ध्येय धार्मिक झगडोको मिटाना था। उन्होने विश्वमे एक दूसरेके प्रति उदारता एव सहनशीलताका उपदेश दिया। उन्होने सर्वशक्तिमान् ईश्वरमे आस्था रखनेकी शिक्षा दी तथा धार्मिक कट्टरता एव अधविश्वासका विरोध किया। उन्होने सभी मनुष्योको जाति और धर्मके भेदभावोसे ऊपर उठाकर एक माना तथा अपने अनुयायियोको इस अपवित्र ससारमे पवित्र जीवन बितानेकी प्रेरणा दी। उन्होने अत्यधिक तपस्या तथा अत्यधिक सासारिक भोगविलास, अहभाव

एवं आडम्बर, स्वार्थपरता और असत्यभाषणसे दूर रहनेकी शिक्षा दी। उन्होंने सभीको अपने धर्मका उपदेश दिया, फलतः हिन्दू और मुसलमान, दोनों ही उनके अनुयायी हो गये। उनके स्वरचित पवित्र पद तथा शिक्षाएं (बानियाँ) सिखोंके धर्मग्रंथ 'ग्रंथ साहिब' में संकलित हैं। नानकदेवकी मृत्यु १५३९ ई०में हुई।

नाना फडनवीस–एक मराठा राजनेता, जो पानीपत (दे०) के तृतीय युद्धके समय पेशवाकी सेवामें नियुक्त था। वह युद्धभूमिसे जीवित लौट आया था। उपरान्त १७७३ ई० में नारायणराव पेशवाकी हत्या कराकर उसके चाचा राघोबाने जब स्वयं गद्दी हथियानेका प्रयत्न किया तो उसने उसका विरोध किया। नाना फडनवीसने नारायणरावके मरणोपरान्त उत्पन्न पुत्र माधवराव नारायणको १७७४ ई० में पेशवाकी गद्दीपर बैठाकर राघोबाकी चाल विफल कर दी। नाना फडनवीस ही अल्पवयस्क पेशवाका मुख्य-मंत्री बना और १७७४ से १८०० ई० में मृत्युपर्यन्त मराठा राज्यका शासन-संचालन करता रहा। किन्तु उसकी स्थिति निष्कंटक न थी, क्योंकि अन्य मराठा सरदार, विशेषकर महादजी शिन्दे (दे०) उसके विरोधी थे।

फिर भी नाना फडनवीस अपनी चतुराईसे समस्त विरोधोंके बावजूद अपनी सत्ता बनाये रखनेमें सफल रहा। १७७५ से १७८३ ई० तक उसने अंग्रेजोंके विरुद्ध प्रथम मराठा-युद्धका संचालन किया। सालबाईकी संधिसे इस युद्धकी समाप्ति हुई। उक्त संधिके अनुसार राघोबाको पेंशन दे दी गयी और मराठोंको साष्टीके अतिरिक्त अन्य किसी भूभागसे हाथ नहीं धोना पड़ा। १७८४ ई०में नाना फडनवीसने मैसूरके शासक टीपू सुल्तानसे लोहा लिया और कुछ ऐसे इलाके पुनः प्राप्त कर लिये, जिन्हें टीपूने बलपूर्वक अपने अधिकारमें कर लिया था। १७८९ ई०में टीपू सुल्तानके विरुद्ध उसने अंग्रेजों और निजामका साथ दिया तथा तृतीय मैसूर-युद्धमें भी भाग लिया, जिसके फलस्वरूप मराठोंको टीपूके राज्यका एक भूभाग प्राप्त हुआ। १७९४ ई०में महादजी शिन्देकी मृत्यु हो जानेसे नाना फडनवीसका एक प्रबल प्रतिद्वन्द्वी उठ गया और उसके बाद नाना फडनवीसने निर्विरोध मराठा राजनीतिका संचालन किया। १७९५ ई०में उसने मराठा संघकी सम्मिलित सेनाओंका निजामके विरुद्ध संचालन किया और खर्दा (दे०)के युद्धमें निजामकी पराजय हुई। फलस्वरूप निजामको अपने राज्यके कई महत्त्वपूर्ण भूभाग मराठोंको देने पड़े।

१७९६ ई० में नाना फडनवीसके कठोर नियन्त्रणसे तंग आकर माधवराव पेशवाने आत्महत्या कर ली। उपरान्त राघोबाका पुत्र बाजीराव द्वितीय (दे०) पेशवा बना, जो प्रारम्भसे ही नाना फडनवीसका विरोधी था। इस प्रकार ब्राह्मण पेशवा और उसके ब्राह्मण मुख्यमंत्रीमें प्रतिद्वन्द्विता चल पड़ी। दोनोंमेंसे किसीमें भी सैनिक क्षमता न थी, किन्तु दोनों ही राजनीतिके चतुर एवं धूर्त खिलाड़ी थे। दोनोंके परस्पर षड्यन्त्रोंसे मराठोंका दो विरोधी शिविरोंमें विभाजन हो गया, जिससे पेशवाकी स्थिति दुर्बल हो गयी। इसके बावजूद नाना फडनवीस आजीवन मराठा संघको एक सूत्रमें आबद्ध रखनेमें समर्थ रहा। १८०० ई० में नाना फडनवीसकी मृत्यु हो गयी और इसके साथ ही मराठोंकी समस्त क्षमता, चतुरता एवं सूझ-बूझका अंत हो गया।

नाना साहब (धोण्डो पंत)–अंतिम पेशवा बाजीराव द्वितीय (दे०)के दत्तक पुत्र। वे अपने निर्वासित पिता बाजीराव द्वितीयके साथ कानपुर जिलेमें बिठूर नामक स्थलपर रहते थे और वहाँके अंग्रेजोंसे उनका अच्छा मैत्री सम्बन्ध था। किन्तु १८५३ ई० में उनके पिता बाजीरावकी मृत्युके उपरान्त तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड डलहौजीने उनकी पैतृक वार्षिक पेंशन देना अस्वीकार कर दिया, जिससे उनमें अंग्रेजोंके प्रति घृणा और विरोध-भावना उत्पन्न हो गयी। तथाकथित सिपाही-विद्रोह (१८५७)में उनका कितना हाथ था, इस संबंधमें निश्चय कर पाना कठिन है, किन्तु यह निश्चित है कि उसके संगठन एवं संचालनमें उनका प्रमुख योगदान था। कुछ विद्रोहियोंने तो अंग्रेजी सत्ता हटाकर उन्हींको सिंहासनासीन करने तककी योजना बनायी थी। कानपुरके निकट बीबीपुरमें अंग्रेजोंकी हत्याका उत्तरदायित्व भी उन्हींपर आरोपित किया गया। किन्तु नाना साहबमें अपने पिताकी ही भाँति सैनिक योग्यता न थी। १८५८ ई० में ताँत्या टोपेने ग्वालियरपर अधिकार कर लेनेके उपरान्त उन्हें पेशवा भी घोषित किया, पर नाना साहब विद्रोही सैनिकोंका सफल नेतृत्व न कर सके। ताँत्या टोपे (दे०)की पराजय और २० जून १८५८ ई० को ग्वालियरपर अंग्रेजोंके पुनः अधिकार कर लेनेके उपरान्त नाना साहब भाग खड़े हुए। अनेक प्रयत्न करनेपर भी अंग्रेज उन्हें बन्दी न बना सके और अज्ञातवासमें ही उनकी मृत्यु हो गयी।

नाभपंक्ति–का उल्लेख सम्राट् अशोकके १३वें शिलालेखमें हुआ है परन्तु उसकी ठीक पहचान नहीं हो सकी है। अभिलेखकी अन्य प्रतियोंमें उन्हें नाभक और नाभिति भी कहा गया है। भण्डारकर महोदयका मत था कि वे उत्त-

पश्चिमी सीमान्त प्रदेश और भारतके पश्चिमी तटके बीच निवास करते थे। (दे०—डी० आर० भण्डारकर कृत 'अशोक', पृ० ३३)।

'नामहीन शासक'—अनुमानतः कुषाण राजा था जिसने कदफिसस द्वितीयकी मृत्युके उपरान्त सम्भवतः ११० ई०से १२० ई०के कनिष्कके सिंहासनारोहण तक राज्य किया। कदाचित् उस अज्ञातनामा राजाने ही वे नामरहित सिक्के प्रचलित किये थे जिनपर सोटरमेगस या त्राता ... (महान त्राता)का लेख उत्कीर्ण पाया गया है।

नायडू, सरोजिनी (१८७९–१९४९)—उन सुप्रसिद्ध विदुषी महिलाका जन्म बंगाली परिवारमें और विवाह मराठा सज्जन (दाक्षिणात्य महानुभाव)से हुआ। वे ख्यातिलब्ध कवि तथा वक्ता थीं। उन्होंने भारतीय राजनीतिमें महत्त्वपूर्ण भाग लिया और १९२५ ई०में कानपुरमें होनेवाले भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अधिवेशनकी अध्यक्षता की। इस उच्च पदपर आसीन होनेवाली वे प्रथम महिला थीं। भारतीय गणतन्त्रमें १९४८ से १९४९ ई० में मृत्यु पर्यन्त उत्तर प्रदेशके राज्यपालका पद सँभालनेवाली वे प्रथम महिला थीं। उनकी पुत्री पद्मजा नायडू भी पश्चिमी बंगालकी राज्यपाल रहीं।

नारायण राव—मराठोंका पाँचवाँ पेशवा, जिसने १७७२–७३ ई० में केवल ९ महीनों तक शासन किया। वह पेशवा माधवराव नारायण (१७६१–७२) (दे०)का सहोदर एवं उत्तराधिकारी था। सिंहासनासीन होनेके केवल ९ मास उपरान्त ही उसके चाचा रघुनाथराव अथवा राघोबाके समर्थकोंने उसकी हत्या कर दी।

नार्थब्रुक, अर्ल—१८७२से १८७६ ई० तक भारतवर्षका वाइसराय और गवर्नर-जनरल। वह ग्लैडस्टोनके विचारोंका समर्थक और उदारदलका था। भारतमें उसकी नीति "करोंमें कमी, अनावश्यक कानूनोंको न बनाने तथा कृषि योग्य भूमिपर भार कम करने" की थी। वह मुक्त व्यापारका समर्थक था, परन्तु आयात होनेवाली वस्तुओंपर अल्प करोंसे होनेवाली आयको तिलाजलि नहीं दे सका। उसने तेल, चावल, नील और लाखको छोड़कर निर्यात होनेवाली समस्त वस्तुओंपरसे निर्यात-कर हटा दिया और आयात करोंमें भी ७॥ प्रतिशतसे ५ प्रतिशतकी कमी कर दी। परन्तु इस अल्प आयातकरका भी लंकाशायरके सूती उद्योगपतियोंने विरोध किया। परिणामस्वरूप लार्ड डिजरेलीकी अनुदार सरकार तथा तत्कालीन भारत-मंत्री लार्ड सैलिसबरीने उद्योगपतियोंके हितोंको ध्यानमें रखकर ५ प्रतिशतके आयातकरको भी हटा देनेपर बल दिया, इस कारण भारत-मंत्री (लार्ड सैलिसबरी) और नार्थब्रुकमें मतभेद हो गया। यह मतभेद अफगानिस्तानके प्रति अपनायी जानेवाली नीतिके प्रश्नपर और भी बढ़ गया।

१८७३ ई० में जब रूसने खीव (दे०)पर अधिकार कर लिया, तब अफगानिस्तानके अमीर शेरअलीने भारतकी अंग्रेजी सरकारसे और भी निकटके मैत्री-सम्बन्धका प्रस्ताव रखा। भविष्यमें रूसके आक्रमण और साम्राज्य-विस्तारको ध्यानमें रखकर यह सन्धि-प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। नार्थब्रुक शेरअलीकी इस प्रार्थनाको उचित समझता था, इसलिए उसने ब्रिटिश सरकारसे अफगानिस्तानके साथ इस आशयका लिखित समझौता कर लेनेकी अनुमति चाही। किन्तु इंग्लैण्डकी सरकारने अनुमति देना स्वीकार न किया तथा शेरअलीको केवल साधारण सहायताका वचन देनेको कहा गया। किन्तु इंग्लैण्डमें डिजरैलीकी सरकार बनते ही ब्रिटिश मंत्रिमण्डलकी नीतियोंमें परिवर्तन आ गया। उसने अफगानिस्तानके प्रति १८७३ ई० से चली आती हुई अत्यधिक निष्क्रियताकी नीतिको त्यागकर अग्रसर नीति अपनानेमें रुचि प्रकट की। नये भारतमंत्री लार्ड सैलिसबरीने १८७४ ई० में नार्थब्रुकको आदेश दिया कि वे अमीर शेरअलीसे अपने राज्यमें एक अंग्रेज रेजीडेण्ट रखनेको कहें। किन्तु नार्थब्रुकने इस माँगको अनुचित समझा क्योंकि थोड़े ही दिन पूर्व भारत सरकारने अमीरके सन्धि-प्रस्तावोंको ठुकरा दिया था। उसके विचारसे रेजीडेण्ट रखनेका प्रस्ताव अनुचित था और उसके भयंकर परिणाम हो सकते थे। फलतः लार्ड नार्थब्रुकने अंग्रेज सरकारके साथ पहलेसे ही मतभेद होनेके कारण त्यागपत्र दे दिया। कहना न होगा कि भारतीय अर्थव्यवस्थाकी स्थिरताकी दृष्टिसे उक्त आयातकरका प्रचलित रहना अत्यावश्यक था।

नालन्दा—सातवीं शताब्दीका एक विश्वविख्यात बौद्ध विद्यापीठ। नालन्दा दक्षिणी बिहारसे राजगिरि (राजगृह)के निकट स्थित है और उसके ध्वंसावशेष बड़गाँव नामक ग्राममें दूरतक बिखरे पड़े हैं। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि कब और किसने नालन्दा महाविहारकी नींव डाली। फाहियानने, जिसने पाँचवीं शताब्दीमें पाटलिपुत्र और आसपासके क्षेत्रोंमें भ्रमण किया था, इसका उल्लेख नहीं किया है, किन्तु सातवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें भारत भ्रमण करनेवाले चीनी यात्री ह्युएनत्सांगने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इस प्रकार नालन्दा महाविहारने, विश्वविद्यालयके रूपमें पाँचवीं और छठी शताब्दियोंमें विशेष कीर्ति अर्जित कर ली थी। वस्तुतः

ह्युएन-त्सागका कथन है कि गुप्त सम्राट् नरसिहगुप्त बालादित्य (लगभग ४७० ई०)ने नालन्दामे एक सुन्दर मन्दिरका निर्माण कराया और उसमे ८० फुट ऊँची तथागतकी बुद्ध प्रतिमाकी स्थापना की। जिन दिनो ह्युएन-त्साग नालन्दा विश्वविद्यालयमे शिक्षा प्राप्त कर रहा था, उस समय शीलभद्र नामक बगाली बौद्ध भिक्षु वहाँका महास्थविर था। प्राय इसी कालमे शैलेन्द्र शासक बालपुत्रदेवने मगधके तत्कालीन शासक देवपालकी अनुमतिसे नालन्दामे एक नये विहारका निर्माण इस आशयसे कराया कि जावासे नालन्दा शिक्षा प्राप्त करने आनेवाले भिक्षुओको निवासकी सुविधा प्राप्त हो सके।

वास्तवमे नालन्दा विहार अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विश्वविद्यालय था। वहाँ केवल भारतसे नही, बल्कि सुदूर तिब्बत, चीन, जावा और लकासे अनेकानेक विद्यार्थी और विद्वान आते रहते थे। यद्यपि वहाँ सभी प्रकारकी शिक्षा दी जाती थी तथापि बौद्धधर्मकी महायान शाखाका अध्ययन-अध्यापन विशेषरूपसे होता था। वहाँ हस्तलिखित ग्रथोका एक विशाल पुस्तकालय, जो तीन विशाल भवनोमे, जिनमेसे एक नौ खडो (मजिलो)का था, स्थापित था। आजके किसीभी भारतीय विश्वविद्यालयको यह श्रेय प्राप्त नही है। वहाँका अनुशासन कठोर था और समयकी सूचना जलघडी द्वारा विधिवत् दी जाती थी। सभी प्रश्नो एव समस्याओपर खुलकर वाद-विवाद होते थे। शिक्षाके इस महान् केन्द्रका कब और कैसे विनाश हुआ, यह निश्चयपूर्वक ज्ञात नही है, किन्तु ध्वसावशेषोके अध्ययनसे प्रतीत होता है कि एक भयकर अग्निकाड उसका कारण था। (पी० वी० बापट कृत '२५०० ईअर्स आफ बुद्धिज्म')

नासिक—महाराष्ट्र प्रदेशमे गोदावरी तीरवर्ती एक प्राचीन नगर तथा हिन्दुओका पवित्र तीर्थस्थल। यह नगर कदाचित् शक क्षत्रप नहपान (दे०)की राजधानी था। चालुक्य सम्राट् पुलकेशी द्वितीय और प्रारम्भिक राष्ट्रकूट (दे०) शासकोके कालमे इस नगरकी महत्ता बनी रही, परन्तु राष्ट्रकूट शासक अमोघवर्ष द्वारा मान्यखेट (आधुनिक मालखेड)को राजधानी बना लेनेपर इसका महत्त्व कम हो गया। नासिक और उसके समीपवर्ती क्षेत्र हिन्दू, बौद्ध एव जैन अवशेषोके लिए प्रसिद्ध है।

नासिर जग—दक्षिण (हैदराबाद)के निजामुल्मुल्क आसफजाहका द्वितीय पुत्र और उत्तराधिकारी। वह १७४८ ई० मे निजाम बना, किन्तु उसके भानजे मुजफ्फर जग (दे०) ने उत्तराधिकारके सम्बन्धमे विवाद खडा कर दिया। फ्रासीसी गवर्नर डूप्ले और अर्काटके सिहासनके दावेदार चदा साहबने उसका पक्ष लिया। नासिर जगने कर्नाटक पर आक्रमण करके अपने विरोधियोको मार्च १७५० ई० मे वेलुडावूरके युद्धमे पराजित किया और मुजफ्फर जगने पूर्णरूपसे आत्मसमर्पण कर दिया। किन्तु नासिर जग उस विजयसे अधिक दिनो तक लाभ न उठा सका, क्योकि दिसम्बर १७५० ई० मे एक आकस्मिक आक्रमणमे वह मारा गया।

नासिरुद्दीन—१५००से १५१२ ई० मे अपनी मृत्युपर्यन्त मालवाका सुलतान। वह पितृहन्ता था, यद्यपि उसके पिताने उसे स्वेच्छासे १५०० ई० मे सुल्तान बना दिया था तथापि उसने १५०१ ई० मे उसे विष देकर मार डाला। वह क्रूर एव अत्याचारी शासक था।

नासिरुद्दीन कुबाचा (कुबैचा)—शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी (दे०)का तुर्क गुलाम। अपनी योग्यताके बलपर वह सिधका सूबेदार नियुक्त हुआ और उसने कुतुबुद्दीन ऐबककी बहिनसे विवाह कर लिया। कुतुबुद्दीन भी उसीकी भाँति गोरीका एक तुर्क गुलाम था। शहाबुद्दीन गोरीकी मृत्युके उपरान्त जब कुतुबुद्दीन (१२०६—१० ई०) दिल्लीका सुल्तान बना, कुबाचाने विद्रोह कर दिया। किन्तु उसकी पराजय हुई और उसे कुतुबुद्दीनकी अधीनता स्वीकार करनी पडी।

नासिरुद्दीन महमूद—दिल्लीका सुल्तान जिसने १२४६ ई० से १२६६ ई० तक राज्य किया। वह सुल्तान इल्तुतमिश (दे०) (१२११—१२३६)का कनिष्ठ पुत्र था। नासिरुद्दीन विद्याप्रेमी और शान्त स्वभावका व्यक्ति था। शासनका सम्पूर्ण भार उलग खाँ अथवा गयासुद्दीन बलबन (दे०)पर छोडकर वह सादा जीवन व्यतीत करता था। उसने बलबनकी पुत्रीसे विवाह किया था। उसके राज्यकालमे बलबनने शासन-प्रबन्धमे विशेष क्षमता दिखायी और पजाब तथा दोआबके हिन्दुओके विद्रोहोका दृढतासे दमन किया। साथ ही उसने मुगलो (मगोलो)के आक्रमणोको भी रोका। नासिरुद्दीन विद्वानो का आश्रयदाता था और तबकाते-नासिरी (दे०)के लेखक मिनहाजुद्दीन सिराजको उसके दरबारमे उच्च पद प्राप्त था।

नासिरुद्दीन मुहम्मद शाह—तातार खाँने १४०३ मे सिहासनारोहणके उपरान्त उपाधि धारण की। उसने अपने पिता जफर खाँको जो उन दिनो गुजरातका सूबेदार था, बन्दी बना लिया और स्वय स्वतन्त्ररूपसे उस प्रदेशपर शासन करने लगा। किन्तु एक वर्ष बाद ही उसके पिताने उसे विष देकर मार डाला और स्वय गुजरातके सिहासनपर अधिकार

काम लिया ।

निकितिन, अथनासियस–एक रूसी व्यापारी एवं पर्यटक, जिसने १४७० से १४७४ ई० तक दक्षिणके बहमनी राज्यमें भ्रमण किया । उसने दक्षिणकी तत्कालीन दशाका आँखों देखा विवरण लिखा है । उसके अनुसार दक्षिणमें साधारण मनुष्योंकी स्थिति दयनीय थी, परन्तु वहाँका शासक वर्ग तथा अमीर उमरा अत्यधिक धनी और विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे ।

निकोल्सन, ब्रिगेडियर जनरल जॉन (१८२१–१८५७ ई०)–एक वीर सैनिक, जो १८३९ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें कलकत्तेमें नियुक्त हुआ । उसने १८५७ ई० के तथाकथित सिपाही-विद्रोहमें यथेष्ट ख्याति अर्जित की । अफगानिस्तानमें होनेवाले १८४०–४१ ई० के अभियानमें भाग लेते हुए वह बंदी बनाया गया, परन्तु शीघ्र ही मुक्त हो गया । १८४८–४९ ई० के सिख-युद्धमें भी उसने विशेष ख्याति प्राप्त की । १८५७ ई० के सिपाही-विद्रोहके प्रारंभ होनेके समय वह पेशावरमें डिप्टी कमिश्नर था । किन्तु शीघ्र ही उसको एक द्रुतगामी सैनिक टुकडीका नायक बनाकर पंजाबसे दिल्लीको पुनः जीत लेनेके लिए भेजा गया । निकोल्सन शीघ्रतासे मंजिल तय करता हुआ १४ अगस्त १८५७ ई० को दिल्ली पहुँच गया और १४ सितम्बरको उस अंग्रेज सेनाका नेतृत्व किया, जिसने दिल्लीपर पुनः अधिकार कर लिया । दिल्लीकी सडकोंपर लडते हुए निकोल्सनके सीनेमें गोली लगी और इस सघातिक चोटके फलस्वरूप २३ सितम्बर १८५७ ई० को उसकी मृत्यु हो गयी । किन्तु दिल्लीपर उसके द्वारा अधिकार कर लेनेसे विद्रोह प्रायः समाप्त हो गया और इस प्रकार उसने अंग्रेजोंके भारतीय साम्राज्यकी रक्षा की ।

निजाम आसफजाह–देखिये, आसफजाह निजाम खाँ ।

निजाम खां–देखिये, सिकन्दर लोदी ।

निजामशाह बहमनी–बहमनी सल्तनत (दे०) का बारहवाँ सुल्तान । १४६१ ई० में अपने पिता सुल्तान हुमायूँ (दे०) के उपरांत सिंहासनासीन होनेके समय वह अल्पवयस्क था । १४६३ ई० में अचानक उसकी मृत्यु हो गयी ।

निजामशाही वंश–का आरम्भ जुन्नारमें १४९० ई० में मलिक अहमदके द्वारा हुआ, जिसने तत्कालीन बहमनी शासक सुल्तान महमूद (दे०) (१४८२ से १५१८) के विरुद्ध विद्रोह कर दिया । उसने निजामशाहकी उपाधि धारण की और अपनी राजधानी अहमदनगर ले गया । उसके द्वारा प्रवर्तित निजामशाही वंश १४९० से १६३७ ई० तक राज्य करता रहा । पश्चात् १६३७ ई० में सम्राट् शाहजहाँके राज्यकालमें उसे जीतकर मुगल साम्राज्यमें मिला लिया गया । १५७४ ई० में इस वंशने बरारपर भी अधिकार कर लिया था, परन्तु १५९६ ई० में उसे बरारको मुगल सम्राट् अकबरको दे देना पडा ।

इस वंशके तृतीय शासक हुसैनशाहने विजयनगर (दे०) राज्यके विरुद्ध दक्षिणके मुसलमान राज्योंके गठबंधनमें भाग लिया था और १५६५ ई० के तालीकोट (दे०) के युद्धमें विजय प्राप्त करनेके उपरांत विजयनगरके लूटनेमें भी पूरा हाथ बँटाया । चाँदबीबी, जो मुगलोंके विरुद्ध अपनी वीरताके लिए प्रसिद्ध हुई, निजामशाही वंशके सुल्तान हुसैन निजामशाह (१५५३ से १५६५ ई०) की पुत्री थी । निजामशाही वंशका आधुनिक कालमें अवशिष्ट स्मारक भद्रमहल है, जो सफेद पत्थरोंसे निर्मित है और अपनी जीर्णदशामें अहमदनगरमें विद्यमान है ।

निजामुद्दीन–मुगल सम्राट् अकबरके कालका इतिहासलेखक । उसने 'तबकाते अकबरी' नामक पुस्तक लिखी, जिसमें अकबरके राज्यकालका प्रामाणिक एवं विश्वसनीय विवरण है ।

निजामुद्दीन औलिया–एक प्रसिद्ध सूफी संत, जो अकबरके राज्यकालमें दिल्लीमें आकर बस गया था । समस्त जनता उसे अत्यधिक आदरकी दृष्टिसे देखती थी । दिल्लीमें उसकी कब्रके पास एक विशाल मस्जिदका निर्माण किया गया ।

निजामुलमुल्क–इस उच्च उपाधिका शाब्दिक अर्थ है–'समस्त साम्राज्यका उपप्रधान' । सम्राट् मोहम्मदशाह (१७१९-४८) ने सर्वप्रथम यह उपाधि चिन किलिच खाँको प्रदान की थी । तभीसे उनके वंशमें यह उपाधि आनुवंशिक रूपमें कुछ समय पहले तक चली आ रही थी । इस वंशका मुखिया साधारणतया निजाम कहलाता था ।

नियार्कस–मकदूनियाके महान् विजेता सिकन्दरका नौसेनाधिकारी । उसीने सिकन्दरके जलपोतोंका पहले झेलम नदीसे सिन्धु नदीके मुहाने तक और उपरान्त फारसकी खाडी होते हुए दजला और फरात नदियोंके मार्गसे सूसा पहुँचने तक नेतृत्व किया था । सूसा पहुँचनेपर वह सिकंदरसे मिला, जो स्थल मार्गसे पहले ही वहाँ पहुँच चुका था । नियार्कसने अपनी इस लम्बी यात्राका विवरण भी लिखा है ।

निवेदिता, सिस्टर–स्वामी विवेकानन्द (दे०) की एक प्रमुख शिष्या, जो आयरिश महिला थी और उसका मूल नाम कुमारी मार्गरेट नोबुल था । वह स्वामी विवेकानन्दसे सर्वप्रथम लन्दनमें मिली थी और उनसे प्रभावित होकर भारत चली आयी । यहाँ विधिवत् दीक्षित होकर वह

स्वामीजीकी शिष्य बन गयीं और उसे रामकृष्ण मिशनके सेवाकार्यमें लगा दिया गया। इस प्रकार वह पूर्णरूपसे समाजसेवाके कार्योंमें निरत हो गयीं और कलकत्तेमें भीषणरूपमें प्लेग फैलनेपर भारतीय बस्तियोंमें प्रशंसनीय सुश्रूषा कार्य कर उसने एक आदर्श स्थापित कर दिया। उत्तरी कलकत्ताके उस भागमें एक बालिका विद्यालयकी स्थापना उसने की, जहाँ घोर कट्टरपंथी हिन्दू बहुसंख्यामें थे। प्राचीन हिन्दू आदर्शोंको शिक्षित जनता तक पहुँचानेके लिए अंग्रेजीमें पुस्तकें लिखीं और सम्पूर्ण भारतमें घूम-घूमकर अपने व्याख्यानों द्वारा उनका प्रचार किया। वह भारतकी स्वतंत्रताकी कट्टर समर्थक थीं और अरविन्द घोष सरीखे राष्ट्रवादियोंसे उसका घनिष्ठ सम्पर्क हो गया। स्वामी विवेकानन्दकी मृत्युके उपरान्त एक सप्ताहके अंदर ही उसने भारतकी सेवामें अपना सम्पूर्ण समय लगा देनेके उद्देश्यसे रामकृष्ण मिशनसे सबंध विच्छेद कर लिया। 'भारतकी बालसुलभ कहानियाँ' (Cradle Tales of India) उसकी अनेक रचनाओंमेंसे एक लोकप्रिय रचना है। (देखिये—प्रवर्तिका आत्मप्राण द्वारा रचित 'सिस्टर निवेदिता')

नील प्रभु मुंशी—शिवाजीका ब्राह्मण परामर्शदाता। छत्रपति शिवाजीने औरंगजेब (दे०)को जो विरोधपत्र भेजा था, वह उसीने लिखा था। यह पत्र शिवाजीने औरंगजेब द्वारा १६७९ ई०में हिन्दुओंपर पुन: जजिया (दे०) लगानेके विरोधमें भेजा था।

नील, ब्रिगेडियर जनरल, जेम्स—प्रथम स्वाधीनता संग्राम—(तथाकथित सिपाही-विद्रोह)के दिनोंमें ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेनाका एक उच्च अधिकारी। ११ जून, १८५७ ई० को उसने एक साहसिक धावेके उपरान्त इलाहाबादके किलेपर उसी समय अधिकार कर लिया, जब वह दुर्ग विद्रोहियोंके हाथोंमें जाने ही वाला था। शीघ्र ही वहाँ जनरल हैवलाकके नेतृत्वमें एक और ब्रिटिश टुकड़ी उससे आ मिली। इस प्रकार स्थिति सुदृढ़ हो जानेपर हेवलाक और नीलके नेतृत्वमें अंग्रेज सेनाएं कानपुरकी ओर चल पड़ीं। इलाहाबादसे कानपुर तकके मार्गमें नीलने, प्रतिशोधकी भावनासे प्रेरित होकर, अपनी नृशंस बर्बरताका परिचय दिया और मार्गके गाँवोंकी निरीह तथा निर्दोष भारतीय जनताको वह मौतके घाट उतारता चला। इस प्रकार उसने प्रतिशोधकी ऐसी ज्वाला धधका दी जिसका प्रतिफल भारतीयों तथा अंग्रेजों दोनोंको भोगना पड़ा। नील और उसकी सेनाओंके कानपुर पहुँचनेके पूर्व ही बीबी-गढ़का दुःखद काण्ड हो चुका था। नील और हेवलाकने शीघ्र ही कानपुरपर अधिकार कर लिया और नील वहीं रुक गया। वहाँ उसने अपनी प्रतिशोध भावनाका अत्यधिक बीभत्स प्रदर्शन किया तथा हेवलाकके सहायतार्थ जब वह कानपुरसे लखनऊको चला तो मार्गमें जिस किसी भारतीयको वह पकड़ पाता था उसे पेड़ोंपर लटकाकर फाँसी दे देता था। किन्तु लखनऊ पहुँचनेपर वहाँ की गलियोंमें युद्ध करता हुआ वह मौतके घाट उतार दिया गया।

नुनीज, फरनाओ—एक पुर्तगाली यात्री जो १५३५ ई० में विजयनगर (दे०) आया। उसने सम्पूर्ण विजयनगर राज्यका विस्तृत भ्रमण किया और उसके इतिहास तथा तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दशाका विस्तृत वर्णन किया है।

नूरजहाँ—सम्राट् जहाँगीरकी पत्नी। उसका मूल नाम मेहरुन्निसा था। जब उसका पिता मिर्जा गयासबेग, जो फारसका निवासी था, अपने भाग्यकी परीक्षा करने भारत आ रहा था, तभी मार्गमें नूरजहाँका जन्म कंदहारमें हुआ। उसका पिता गयासबेग अकबरके दरबारमें एक उच्च पद पानेमें सफल हुआ और १६०५ ई० में जहाँगीरके राज्यारोहणके वर्ष ही वह मालमंत्री नियुक्त हो गया। उसे एतमादुद्दौलाकी उपाधि दी गयी। सत्रह वर्षकी अवस्थामें मेहरुन्निसाका विवाह अलीकुली नामक एक साहसी ईरानी नवयुवकसे हुआ, जिसे जहाँगीरके राज्यकालके प्रारम्भमें शेर अफगनकी उपाधि और बर्दवानकी जागीर दी गयी थी। १६०७ ई० में जहाँगीरके दूतोंने शेर अफगनको एक युद्धमें मार डाला और विधवा मेहरुन्निसाको दिल्लीके शाही हरममें लाया गया, जहाँ वह सम्राट् अकबरकी विधवा रानी सलीमा बेगमकी परिचारिका बनी। उसके सौन्दर्यके प्रति आकर्षित होकर जहाँगीरने १६११ ई० में उससे विवाह कर लिया। उसका नाम बदलकर पहले नूरमहल और उपरांत नूरजहाँ रखा गया।

असाधारण सुन्दरी होनेके अतिरिक्त नूरजहाँ बुद्धिमती, शील और विवेकसंपन्न भी थी। उसकी साहित्य, कविता और ललित कलाओंमें विशेष रुचि थी। उसका लक्ष्य-वेध अचूक होता था। १६१९ ई० में उसने फतेहपुर सीकरीमें एक ही गोलीसे शेरको मार दिया था। इन समस्त गुणोंके कारण उसने अपने पतिपर पूर्ण प्रभुत्व स्थापित कर लिया, फलतः जहाँगीरके शासनका प्रायः समस्त भार उसीपर आ गया। सिक्कोंपर भी उसका नाम खोदा जाने लगा और वह महलमें ही दरबार करने लगी। उसके पिता एतमादुद्दौला और भाई आसफ खाँको मुगल दरबारमें उच्च पद प्रदान किया गया और उसकी

प्रसिद्ध युद्ध (दे०) के उपरान्त, जिसमे सिखो द्वारा ब्रिटिश सेना लगभग पराजित हो गयी थी, नेपियरको ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी सेनाके सर्वोच्च सेनाधिकारीके रूपमे पुन भारत बुलाया गया। किन्तु उसके भारत आनेके पूर्व ही अग्रेजोकी विजय तथा सिख युद्धकी समाप्ति हो चुकी थी। भारत आनेपर उसने कम्पनीकी सेनाओके पुनर्गठनपर विशेष ध्यान दिया परन्तु कम्पनीकी सेवामे रत भारतीय सैनिकोके भत्ते सम्बन्धी नियमोमे परिवर्तन कर देनेके लिए उसे तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड डलहौजीकी भर्त्सना सहनी पडी। फलत उसने त्यागपत्र प्रेषित कर दिया और इग्लैण्ड लौट गया। यद्यपि नेपियर योग्य सेनानायक था, तथापि एक राजनीतिज्ञके रूपमे वह औचित्य-अनौचित्यपर ध्यान न देनेवाला तथा झगडालू प्रकृतिका व्यक्ति भी था। उसे १८५७ ई० के सिपाही-विद्रोहका पूर्वाभास हो गया था। उसने तत्कालीन भारत सरकारके प्रशासकीय एव सैनिक दोषोपर एक पुस्तक भी लिखी थी।

नेहरू, पण्डित जवाहरलाल (१८८९–१९६४)–भारतीय स्वतत्रता सग्रामके महान् सेनानी एव स्वतत्र भारतके प्रथम प्रधान मत्री। जन्म इलाहाबादमे १४ नवम्बर १८८९ ई० को हुआ। वे प० मोतीलाल नेहरू और श्रीमती स्वरूप रानीके एकमात्र पुत्र थे। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा घरपर ही हुई और १५ वर्षकी उम्रमे वे इग्लैण्डके हैरो स्कूल भेजे गये। वहाँ (हैरो) से ट्रिनिटी कालेजमे दाखिल किये गये और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयसे स्नातक हुए। उनके विषय रसायनशास्त्र, भूगर्भ विद्या और वनस्पति शास्त्र थे। १९१२ ई० मे वे बैरिस्टर बने और उसी वर्ष भारत लौटकर उन्होने इलाहाबादमे वकालत प्रारम्भ की। वकालतमे उनकी विशेष रुचि न थी और शीघ्र ही वे भारतीय राजनीतिमे भाग लेने लगे। १९१२ ई० मे उन्होने बाँकीपुर (बिहार) मे होनेवाले भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके अधिवेशनमे प्रतिनिधिके रूपमे भाग लिया और १९१६ ई० के लखनऊ अधिवेशनमे वे सर्वप्रथम महात्मा गाँधीके सम्पर्कमे आये। उसी वर्ष उन्होने कुमारी कमला कौलसे विवाह किया, जिनसे उन्हे एक पुत्री इन्दिरा, जो आजकल भारतकी प्रधान मत्री है, तथा एक पुत्र प्राप्त हुआ, जिसकी शीघ्र ही मृत्यु हो गयी। समयके साथ-साथ प० नेहरूकी रुचि भारतीय राजनीतिमे बढती गयी। जालियाँवाला बाग हत्याकाडकी जाँचमे देशबन्धु चितरजनदास एव महात्मा गाँधीके सहयोगी रहे और १९२१ के असहयोग आदोलनमे तो महात्मा गाँधीके अत्यधिक निकट सम्पर्कमे आ गये। यह सम्बन्ध समयकी गतिके साथ-साथ दृढतर होता गया और उसकी समाप्ति केवल महात्मा गाँधी जीकी मृत्युसे ही हुई।

असहयोग आदोलनमे वे पहली बार जेल गये। उनके जीवनकालके नौ वर्ष जेलमे ही बीते। उन्होने कुल नौ बार जेलयात्रा की। साइमन कमीशनके विरुद्ध लखनऊके प्रदर्शनमे उन्होने भाग लिया। एक अहिंसात्मक सत्याग्रही होनेपर भी उन्हें पुलिसकी लाठियोकी गहरी मार सहनी पडी। १९२८ ई० मे वे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके महामत्री बने और १९२९ के लाहौर अधिवेशनमे उसके अध्यक्ष चुने गये। इसी ऐतिहासिक अधिवेशनमे काग्रेसने पूर्ण स्वराज्यका प्रस्ताव पारित किया था। वे पुन १९३६ तथा १९४६ मे इसके अध्यक्ष हुए और १९५१ मे १९५४ तकके प्रत्येक अधिवेशनमे काग्रेस अध्यक्ष चुने जाते रहे। १९५८ ई० मे उनकी पुत्री इन्दिरा (गाँधी) भी उसी अध्यक्ष पदपर आसीन हुई, जिस पदको उनके पिता एव पितामह (प० मोतीलाल नेहरु) सुशोभित कर चुके थे।

१९२९ के बाद प० नेहरू भारतीय राष्ट्रीय आदोलनके अग्रणी नेता रहे। १९३० ई० मे सविनय अवज्ञा आदोलनमे उन्हे ६ मासका कारागार-दण्ड मिला और वहाँसे मुक्त होनेके केवल ८ दिन बाद ही उन्हे धारा १४४ भग करनेके अभियोगमे पुन बन्दी बनाया गया तथा ३० माहका कारागार-दण्ड मिला। किन्तु एक वर्ष बाद ही उन्हे मुक्त कर दिया गया। कारागारसे छूटनेके १० दिन बाद ही उनके पिता प० मोतीलाल नेहरू की १९३१ ई० मे मृत्यु हो गयी। उसके उपरान्त जेलयात्राओ तथा परिवारके प्रियजनोके बिछोहका ताँता-सा लगा रहा। उनकी माता स्वरूप रानीजी तथा पत्नी कमलाजी गभीर रूपमे अस्वस्थ थी। माँ पक्षाघातमे तथा पत्नी राजयक्ष्मासे पीडित थी। जब वे सातवी बार कारागारमे थे, तभी जर्मनीमे उनकी पत्नी मरणासन्न दशामे पहुँच गयी और सरकारने अन्तिम क्षणपर उन्हे पत्नीकी मृत्युशैय्याके निकट पहुँचनेकी अनुमति दे दी। कमलाजीकी मृत्युके बाद ही १९३८ ई० मे उनकी माताकी मृत्यु हो गयी। उपरान्त उन्होने स्पेन, चेकोस्लोवाकिया और चुगकिंग (चीन) का भ्रमण किया। किन्तु भारतकी राजनीतिक गतिविधियोसे उनका निकट सम्पर्क बराबर बना रहा। १९३९ ई० मे महात्मा गाँधीके विरोध करनेपर भी नेताजी सुभाषचन्द्र बसुके भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके दूसरी बार अध्यक्ष चुने जानेपर, उनमे और नेताजीमे गभीर सैद्धान्तिक मतभेद हो गया और उन्होने उनके द्वारा गठित वर्किंग कमेटीसे त्यागपत्र दे दिया। १९४० ई० मे महात्माजी द्वारा निर्देशित व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन-

इस प्रकार भारत और पाकिस्तानके सम्बन्धोको सुधारनेमे प० नेहरूके प्रयास असफल रहे। उन्हे सर्वाधिक आघात अक्टूबर १९६२ ई० मे लगा, जब चीनने, जिसे भारतने बिना सैनिक अथवा अन्य किसी प्रकारके विरोधके तिब्बतपर बलपूर्वक अधिकार कर लेने दिया था भारतीय सीमाके अंतर्गत घुसकर लद्दाख तथा उत्तरी पूर्वी सीमाचल प्रदेशो (नेफा)पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमणका कारण दीर्घकालसे चला आ रहा भारत-चीन सीमा-विवाद था।

प० नेहरू तथा भारतके लिए यह आक्रमण अप्रत्याशित था। यद्यपि लद्दाखमे भारतीय सैनिकोने चीनियोको यथासभव रोकनेका प्रयास किया, तथापि उत्तरी पूर्वी सीमामे चीनी सेनाएँ निरन्तर घुसती चली आयी। वे आसाम प्रदेशको रौद डालनेकी स्थितिमे थी, पर नवम्बर १९६२ ई० मे चीनने एकतरफा युद्धविरामकी घोषणा कर दी और नेफासे उसकी सेनाएँ लौटने लगी। यद्यपि भारतने युद्ध-विराम स्वीकार नही किया, तथापि उसके सम्मुख युद्ध बन्द करनेके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय न था। देशभरमे भारतकी इस सैनिक एव सामरिक तैयारीके अभावकी तीव्र आलोचना हुई। फलत प० नेहरूको अपने रक्षामंत्री कृष्ण मेननको हटाकर मंत्रिमडलमे परिवर्तन करना पडा। उन्होने विश्वके सभी देशोसे सहायताकी अपील की और इग्लैण्ड, अमरीका तथा रूसने भारतके प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए तत्काल सहायताका वचन दिया। किन्तु आग्ल-अमरीकी गुटने भारतकी इस विषम परिस्थितिका अनुचित लाभ उठानेके लिए प० नेहरू-पर दबाव डालना प्रारम्भ किया कि वे भारत-पाकिस्तान-के बीच उन विवादग्रस्त क्षेत्रोको जो भारतके अभिन्न भूभाग बन चुके थे, पाकिस्तानको देकर समझौता कर ले। किन्तु पडित जी विपत्तियोसे घबरानेवाले व्यक्ति न थे। वे आग्ल-अमरीकी गुटकी चालोमे न फसे। उन्होने देशवासियोको चीनके साथ एक दीर्घकालीन सघर्षकी चेतावनी भी दी। दिसम्बर १९६२ ई० मे अफ्रीका तथा एशियाके कुछ देशोने कोलम्बो (श्रीलका)की एक बैठक-मे एक योजना तैयार की, जो 'कोलम्बो योजना'के नामसे विख्यात है और जिसमे भारत तथा चीनके सीमा-सम्बन्धी विवादोको हल करनेके कुछ सुझाव थे। यद्यपि इस योजनाके कुछ सुझाव प्रत्यक्षरूपसे भारतके प्रति न्यायोचित न थे, तथापि पडित नेहरूने उन्हे स्वीकार कर लिया, क्योकि वे युद्ध अथवा सघर्षकी अपेक्षा शातिमय ढगसे इन विवादोको समाप्त करना चाहते थे। किन्तु चीनने उन सुझावोको स्वीकार न किया और सीमा-विवादका प्रश्न पण्डित नेहरूकी मृत्यु पर्यंत बना रहा।

पडित नेहरू पहले राष्ट्राध्यक्ष थे, जिन्होने १९६३ ई० मे रूस, इग्लैण्ड तथा अमेरिकाके बीच आणिक परमाणविक परीक्षण-निषेध सधिपर हस्ताक्षर किये जानेका स्वागत किया। उपरान्त लोकसभाके कुछ उपचुनावोमे काग्रेसी उम्मीदवारोकी विफलताके कारण काग्रेस दलने उन्हे सुझाव दिया कि वे अपने मंत्रिमडलका पुनर्गठन करे, ताकि काग्रेसके कुछ गण्यमान्य नेता दलको पुनर्सगठित करनेमे अपना पूर्ण समय दे सके। पडित नेहरूने अपने मंत्रिमडलके सदस्योकी सख्या कम कर दी और श्री मोरारजी देसाई तथा श्री पाटिल सरीखे अपने पुराने सहयोगियोका त्यागपत्र स्वीकार कर लिया। साथ ही उन्होने एक छोटे तथा ठोस मंत्रिमडलका गठन किया। जनवरी १९६४ ई० मे जब वे भुवनेश्वर काग्रेस अधिवेशनमे भाग ले रहे थे, तभी वे गभीर रूपसे अस्वस्थ हो गये। यद्यपि कुछ दिनोके लिए उनके स्वास्थ्यमे थोडा सुधार अवश्य हुआ, किन्तु २७ मई १९६४ ई० को दिल्लीमे उनका प्राणान्त हो गया।

पडित नेहरू एक महान् राजनीतिज्ञ और प्रभाव-शाली वक्ता ही नही, ख्यातिलब्ध लेखक भी थे। उनकी आत्मकथा १९३६ ई० मे प्रकाशित हुई और ससारके सभी देशोमे उसका आदर हुआ। उनकी अन्य रचनाओमे भारत और विश्व (India and the World), सोवियत रूस (Soviet Russia), विश्व इतिहासकी एक झलक (Glimpses of World History), भारतकी एकता (Unity of India) और स्वतंत्रता और उसके बाद (Independence and After) विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमेसे अन्तिम दो पुस्तके उनके फुटकर लेखो और भाषणोके सग्रह है।

स्वतंत्रता सेनानीके रूपमे पडित नेहरू स्वाधीन भारतीय गणतंत्रके मुख्य निर्माता थे, किन्तु राष्ट्रवादके प्रति उनका दृष्टिकोण व्यापक था। विश्वकी समस्त मानव जातिकी स्वतंत्रताके प्रति उन्हे प्रेम था। इसीलिए उन्होने अफ्रीका, एशिया तथा दक्षिण अमरीकाके सभी स्वातंत्र्य आदोलनोके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की तथा उनका समर्थन भी किया। देश, वर्ग, वर्ण और जातिके भेदोसे ऊपर उठकर उन्हे समस्त मानव जातिकी स्वतंत्रतामे गहरी निष्ठा थी। इसी प्रकार विश्व शातिकी स्थापनाके प्रयासोमे उन्हे अटूट विश्वास था और इस हेतु वे सयुक्त राष्ट्रसघके प्रबल समर्थक थे। स्वेज नहर, कोरिया, लाओस, कागो और वियतनाम सरीखी कई अन्तर्राष्ट्रीय

समस्याओंको उन्होंने शांतिपूर्ण वार्तामें सुलझानेका सुझाव दिया और विश्वने भी उनके विचारोंका आदर किया।

नेहरू, पण्डित मोतीलाल (१८६१—१९३१)—ख्यातिलब्ध देशभक्त जन्म दिल्लीके एक कश्मीरी परिवारमें १८६१ ई० में। उन्होंने इलाहाबाद हाईकोर्टमें वकालत प्रारम्भ की और थोड़े ही समयमें समस्त उत्तरी भारतके बड़े वकीलोंमें उनकी गणना होने लगी। १९१९ ई० में माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्टके आधारपर किये गये शासन-सुधारोंके उपरान्त वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके आन्दोलनमें सम्मिलित हुए और उसका समर्थन करनेके लिए 'इण्डिपेण्डेण्ट' नामक एक दैनिक निकालना प्रारम्भ किया। १९२० ई०में असहयोग आन्दोलनमें सम्मिलित हुए और आर्थिक दृष्टिसे अपनी अत्यन्त लाभप्रद वकालत छोड़नेके साथ ही असेम्बली-की सदस्यतासे भी त्यागपत्र दे दिया। किन्तु कुछ ही समयके उपरान्त उन्होंने तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों पर पुनर्विचार करके देशबन्धु चितरंजन दास (दे०)के सहयोगसे कांग्रेसके अन्दर स्वराज्य पार्टीकी स्थापना की। १९२३ ई० में वे पुनः असेम्बलीके सदस्य चुने गये और वहाँ स्वराज्य पार्टीके नेता बने।

प्रभावशाली वक्ता होनेके साथ ही वे कुशल संसदीय नेता भी थे। परिणामस्वरूप अल्पसंख्यक होते हुए भी उनकी स्वराज्य पार्टीने तत्कालीन असेम्बलीमें अनेक उल्लेखनीय सफलताएँ प्राप्त कीं। वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके दो बार, प्रथम बार १९१९ ई० कलकत्तामें और दूसरी बार १९२८ ई० में अमृतसरमें, अध्यक्ष बने और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी ओरसे १९२८ ई० में भावी भारतीय संविधानकी एक रूपरेखा तैयार की, जो 'नेहरू रिपोर्ट'के नामसे विख्यात है। इस रिपोर्टमें उन्होंने भारतवर्षके लिए तत्काल औपनिवेशिक स्वराज्य दिये जाने-की संस्तुति की थी। किन्तु जब तत्कालीन भारत सरकारने उस रिपोर्टको अस्वीकार कर दिया, तब प० मोतीलालने १९३० के असहयोग आंदोलनमें सक्रिय भाग लिया। वे कारागार भेज दिये गये। जेलयात्राका उनके स्वास्थ्यपर बड़ा ही साघातिक प्रभाव पड़ा और १९३१ ई० में, एक वर्ष उपरान्त ही उनकी मृत्यु हो गयी। प० मोतीलाल भारतके एक सच्चे सपूत तो थे ही, उन्होंने देशको पंडित जवाहरलाल नेहरू सरीखा पुत्ररत्न भी दिया।

नौनिहालसिंह—महाराज रणजीतसिंह (दे०)के पुत्र एवं उत्तराधिकारी खड्गसिंह (दे०)का पुत्र। अपने पिता खड्गसिंहकी हत्याके एक दिन बाद ही एक दुर्घटनामें मार्च १८४० ई० में उसकी मृत्यु हो गयी।

नौमुस्लिम—आक्रमणकारी मंगोलोंको, जिन्होंने १२९२ ई०में आसपास इस्लामधर्म ग्रहण कर लिया और जिन्हें किलोखेड़ी तथा दिल्लीके आसपास बसा दिया गया था 'नौमुस्लिम' कहा जाता था। लेकिन उनको बसा दिये जानेके बाद भी मंगोलोंके आक्रमण होते रहे, अतएव १२९८ ई०में तत्कालीन दिल्ली शासक अलाउद्दीन खिलजी (दे०)ने इन सभी नौमुस्लिमोंकी हत्या करा दी, क्योंकि उसे उनपर मंगोलोंसे षड्यंत्र रचनेका संदेह हो गया था।

नौसेना विद्रोह—१९४८ ई० में बम्बईके बन्दरगाहमें स्थित भारतीय नौसेनाने विद्रोह कर दिया। यद्यपि उसके विद्रोह-का बलपूर्वक दमन कर दिया गया, तथापि उससे स्पष्ट हो गया कि भारतीय नौसैनिकोंमें भी राजनीतिक असंतोष फैल गया है और ब्रिटिश सरकारको सेनाके इस महत्त्व-पूर्ण भागसे निष्ठा एवं आज्ञापालनकी आशा नहीं करनी चाहिए।

दिशामें आगे बढ़नेसे रोकनेके लिए रूसियोंकी उस कार-रवाईपर गहरी नाराजी प्रकट की और इस बातकी आशंका की जाने लगी कि पंजदेहके प्रश्नको लेकर इंग्लैंड और रूसमें लड़ाई छिड़ जायगी। अमीर अब्दुर्रहमान (दे०) की बुद्धिमत्तासे यह लड़ाई टल गयी। उसने दूरदर्शितासे यह समझ लिया था कि यदि पंजदेहके प्रश्नपर इंग्लैण्ड और रूसके बीच लड़ाई हुई तो अफगानिस्तान युद्धभूमि बन जायगा और वह इस विपत्तिको दूर रखना चाहता था। उसने घोषणा की कि यह निश्चय नहीं है कि पंजदेह वास्तवमें अफगानिस्तानका हिस्सा है और यदि पंजदेह और अफगानिस्तानके बीच जुल्फिकार दर्रेपर उसका अधिकार मान लिया जाय तो उसे संतोष हो जायगा। अमीर अब्दुर्रहमानके इस समझौतापरक रवैयेसे ब्रिटिश सरकारको भी अपना रवैया बदलना पड़ा। इंग्लैण्ड और रूसका संयुक्त सीमा कमीशन नियुक्त किया गया। उसने जिस सीमा-रेखाकी सिफारिश की, उसे १८८७ ई० में स्वीकार कर लिया गया। इस सीमारेखाके अनुसार पंजदेहपर रूसियोंका अधिकार और जुल्फिकार दर्रेपर अफगानिस्तानका अधिकार मान लिया गया। इस सिफारिशके अनुसार पामीरकी दिशामें रूसियोंके बढ़ावपर कोई रोकटोक नहीं लगायी गयी।

पंजाब–पाँच नदियोंका देश। पाँच नदियाँ हैं झेलम, चिनाब, रावी, व्यास तथा सतलज, जो सभी सिंधुमें मिल जाती हैं। यह त्रिकोणात्मक प्रदेश है। सिंधु और सतलज इसकी दो भुजाएँ और हिमालय इसका आधार है। उत्तर-पश्चिममें यह हिमालयके उस पारके देशोंके साथ चार दर्रोंसे जुड़ा हुआ है, जिनमें खैबर दर्रा मुख्य है। अतएव पश्चिमसे सभी युगोंमें सभी जातियोंके लोग यहाँ आकर बसते रहे हैं। इसे जातियोंका संगम-स्थल कहा जा सकता है। समुद्र मार्गसे यूरोपीयोंके आगमनसे पूर्व सभी आक्रमणकारी पंजाब होकर भारतीय उपमहाद्वीपमें प्रवेश करते रहे हैं और उसकी आबादीपर अपने चिह्न छोड़ते रहे हैं। पंजाबमें अत्यंत प्राचीन कालमें सभ्यता फलती-फूलती रही है, जिसके अवशेष हालमें सिंधु घाटी सभ्यता (दे०)के रूपमें मिले हैं। ऐतिहासिक कालमें पंजाब पाँचवीं शताब्दी ई०पू० में हखामनी वंशके सम्राट् दारयवहु प्रथम (दे०)के साम्राज्यमें सम्मिलित था। ३२६ ई० पू० में जब मकदूनियाके राजा सिकन्दरने हमला किया, पंजाब कई छोटे-छोटे राज्योंमें बँटा हुआ था, जिन्हें सिकन्दरने जीत लिया। परन्तु वह पंजाबमें अपने पैर नहीं जमा सका और उसकी मृत्युके बाद ही पंजाब मौर्य साम्राज्य (दे०)का एक भाग बन गया। मौर्य साम्राज्यके अपकर्ष तथा पतनके बाद पंजाबपर क्रमिक रीतिसे बाख्त्री (बैक्ट्रिया)के यूनानियों (यवनों), शकों, कुषाणों तथा हूणोंने आक्रमण किया और उसपर अधिकार कर लिया।

पंजाबका पहला मुसलमान विजेता गजनीका सुल्तान महमूद (९७१–१०३० ई०) (दे०) था, जिसके वंशजोंसे इसे ११८६ ई० में शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीने जीत लिया। १२०६ ई० में यह दिल्ली सल्तनतके अधीन रहा और उसके बाद अठारहवीं शताब्दीके मध्य तक मुगल साम्राज्यका भाग रहा। तत्पश्चात् इसपर अधिकार करनेके लिए अफगानों, मराठों तथा सिखोंमें त्रिपक्षीय संघर्ष चलता रहा। १७६१ ई० में पानीपतकी तीसरी लड़ाई (दे०) में अफगान अहमदशाह अब्दालीकी विजयसे मराठोंकी राज्यशक्ति समाप्त हो गयी। इसके बाद ही अहमदशाह अब्दालीकी भी मृत्यु हो गयी और सिखोंकी राज्यशक्तिका उदय होने लगा। रणजीतसिंह (१७८०–१८३९ ई०)ने पंजाबमें शक्तिशाली स्वतंत्र सिख राज्यकी स्थापना की। परंतु उसकी मृत्युके बाद ही राज्यमें अव्यवस्था फैल गयी और सिखों और अंग्रेजोंके बीच दो लड़ाइयोंके फलस्वरूप १८४९ ई० में पंजाब ब्रिटिश साम्राज्यमें सम्मिलित कर लिया गया। यह १९४७ ई० तक ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यके एक प्रांतके रूपमें फलता-फूलता रहा। १९४७ ई० में भारतके स्वाधीन होनेपर पंजाब दो भागोंमें बाँट दिया गया। मुसलिम-बहुल पश्चिमी पंजाबको पाकिस्तान (दे०)में सम्मिलित कर लिया गया और पूर्वी पंजाब, जहाँ हिन्दुओंकी जनसंख्या अधिक थी, भारतका भाग बना रहा।

पंजाब भूमि-बेदखली कानून–१९०० ई० में वाइसराय लार्ड कर्जनकी प्रेरणासे बनाया गया। इस कानूनसे महाजनोंके पास भूमि गिरवीं रख देनेवाले किसानोंको बेदखलीसे सुरक्षा प्रदान की गयी। उसमें व्यवस्था की गयी कि वंश-परंपरासे भूमि जोतनेवाले किसानोंको कर्जकी अदायगीके लिए अदालतसे प्राप्त की गयी डिगरीके आधारपर भूमिसे बेदखल नहीं किया जा सकेगा। उसके फलस्वरूप पंजाबके किसानोंको भूमिहीन बननेसे रोक दिया गया।

पंडितराव–शिवाजी (दे०)के अष्ट प्रधानोंमेंसे एक। वह राजपुरोहित था और मराठा राज्यका धर्म विभाग उसके अधीन था।

पंडित, श्रीमती विजयालक्ष्मी–जन्म १९०० ई० में। पंडित मोतीलाल नेहरू (दे०)की पुत्री तथा पंडित जवाहरलाल

नेहरू (दे०)की बहिन। भारतके राष्ट्रीय आंदोलन तथा स्वाधीनता संग्राममें मुख्य भाग लिया। वक्तृत्व कलामें दक्ष है। भारतकी स्वाधीनताके बाद अनेक उच्च पदोंपर रह चुकी हैं। इंग्लैण्डमें भारतकी उच्चायुक्त (१९५५–६१ ई०), सोवियत संघ (१९४७–४९ ई०) तथा अमरीका (१९४९–५१ ई०)में भारतकी राजदूत रह चुकी है। १९५४ ई० में संयुक्त राष्ट्र जनरल असेम्बली-की अध्यक्ष रही। १९६२ ई० में महाराष्ट्रकी राज्यपाल नियुक्त हुई। देशकी राजनीतिमें सक्रिय भाग लेनेके लिए अक्तूबर १९६४ ई० में इस पदसे इस्तीफा दे दिया और पंडित नेहरूके फूलपुर निर्वाचन क्षेत्रसे लोकसभाकी सदस्य चुनी गयीं। १९६७ ई० में चौथे आम चुनावमें पुनः इसी क्षेत्रसे विजयी हुई। १९७१ ई० में राजनीतिसे अवकाश ग्रहण कर लिया।

पंडिता रमाबाई (१८५८–१९२२ ई०)–उन्नीसवीं शताब्दी-की उन थोड़ी-सी भारतीय महिलाओंमें मुख्य, जिन्होंने पश्चिमी शिक्षा प्राप्त की। वे बाल्यावस्थामें ही विधवा हो गयी थीं। उन्होंने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया और एक विधवाश्रमकी स्थापना की। उन्होंने अमरीकामें व्याख्यान दिये और भारतीय महिलाओं, विशेषरूपसे हिन्दू विधवाओंके लिए एक शिक्षण संस्थान खोलनेके निमित्त धन-संग्रहका प्रयास किया। पश्चिमी देशोंमें उनकी विद्वत्ता एवं वाग्मिताकी बड़ी प्रसिद्धि थी और उन्हें 'सरस्वती'की उपाधिसे विभूषित किया जाता था।

पंत, गोविन्दवल्लभ–भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके एक प्रमुख सदस्य तथा नेता। स्वाधीनताके बाद वे उत्तर प्रदेशके मुख्य मंत्री हुए और पंडित नेहरूके केन्द्रीय मंत्रिमंडलमें गृह मंत्रीके रूपमें सम्मिलित होने तक प्रांतका प्रशासन बड़ी योग्यताके साथ चलाते रहे। उन्होंने देशकी महती सेवा की और जिस समय उनकी मृत्यु हुई, उस समय भी वे केन्द्रीय गृह मंत्रीका पदभार संभाले हुए थे।

पंत प्रतिनिधि–यह पद पेशवा (दे०)से भी ऊँचा था। यह नया पद शिवाजीके दूसरे पुत्र राजाराम (दे०)ने उस समय बनाया जब उसने जिंजीके किलेमें शरण ले रखी थी। शाहू (दे०)के राज्यकालमें पंत प्रतिनिधिके पदका महत्त्व घट गया और पेशवाके पदका महत्त्व बढ़ गया।

पटना–भारतीय गणराज्यके विहार राज्यकी राजधानी। गंगाके तटपर प्राचीन पाटलिपुत्र (दे०) नगरीके निकट स्थित है। ईस्ट इंडिया कम्पनीने पटनामें एक व्यापारिक केन्द्र खोल रखा था और मि० एलिस उसका प्रधान था। १७६३ ई० में उसने बंगालके नवाब मीर कासिमसे पटना छीन लेनेकी कोशिश की, जिसमें उसे सफलता नहीं मिली। इसके फलस्वरूप अंग्रेजों और मीर कासिमके बीच युद्ध शुरू हो गया। मीर कासिमके हार जानेपर तथा ईस्ट इंडिया कम्पनीको दीवानी मिल जानेपर पटना विहारके पटना डिवीजनका मुख्यालय बना दिया गया। १९१२ ई० में यह विहार तथा उड़ीसाके नवनिर्मित प्रांतकी राजधानी बना दिया गया और यहां पृथक् उच्च न्यायालय तथा विश्वविद्यालयकी स्थापना कर दी गयी।

पटियाला–एक नगर और पंजाबकी एक भूतपूर्व देशी रियासत थी। दिल्लीसे लगभग १२५ मील उत्तर-पश्चिममें स्थित है। रियासतकी स्थापना १७६३ ई० में सिखोंकी फुलकिया मिस्लके एक सरदारने की थी। रणजीतसिंह (दे०)के राज्यप्रसारके भयसे पटियाला राज्य १८०९ ई० में अंग्रेजोंका रक्षित राज्य बन गया और जुलाई १९४८ ई० में भारत संघमें विलयन होने तक रक्षित राज्य बना रहा। यह पहले पटियाला तथा पूर्वी पंजाब राज्य संघ (जिसे संक्षेपमें पेप्सू कहते थे) का हिस्सा था, किंतु १९५६ ई० के राज्य पुनर्गठन अधिनियमके अंतर्गत इसे पंजाब राज्यका एक हिस्सा बना दिया गया। ब्रिटिश शासन कालमें पटियाला नरेश, महाराज भूपेन्द्रसिंह (१८९१–१९३८ ई०)ने पटियाला रियासतकी काफी उन्नति की, नरेन्द्रमंडलकी स्थापनामें भारी योग दिया और १९२५ ई० में राष्ट्रसंघ असेम्बलीमें देशी राजाओंका प्रतिनिधित्व किया।

पटेल, वल्लभभाई, सरदार (१८७५–१९५० ई०)–एक प्रसिद्ध देशभक्त तथा राजनेता, जन्म ३१ अक्तूबर १८७५ ई० को गुजरातमें। उन्होंने गोधरा नगरमें वकालतमें जीवन आरम्भ किया। बादमें उन्होंने इंग्लैण्ड जाकर वैरिस्टरी पास की और लौटकर अहमदाबादमें रहने लगे। महात्मा गांधीसे जब पहली बार मिले तो अहमदाबादमें ही वैरिस्टर थे। इसके बाद ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसमें सम्मिलित हो गये और बारडोली सत्याग्रहका नेतृत्व किया और जेल गये। बारडोलीके किसानोंका जिस कुशलतासे संगठन किया, उसके फलस्वरूप वे गांधीजीके अधिक निकट आ गये और उनके द्वारा 'सरदार' कहलाने लगे। क्रमिक रीतिसे सरदार पटेलको कांग्रेस नेताओंमें उच्च स्थान प्राप्त हो गया। १९३१ ई० में वे कांग्रेसके अध्यक्ष चुने गये और १९४२ ई० में महात्मा गांधी द्वारा चलाये गये 'भारत छोड़ो' आंदोलनमें प्रमुख भाग लिया। कांग्रेस वर्किंग कमेटीके सभी सदस्योंके साथ उन्हें नजरबंद कर दिया गया और १९४५ ई० में उनके साथ वे भी रिहा किये गये।

दिशामें आगे बढ़नेसे रोकनेके लिए, रूसियोंकी इस कार्रवाईपर गहरी नाराजी प्रकट की और इस बातकी आशंका की जाने लगी कि पंजदेहके प्रश्नको लेकर इंग्लैण्ड और रूसमें लड़ाई छिड़ जायगी। अमीर अब्दुर्रहमान (दे०) की बुद्धिमत्तासे यह लड़ाई टल गयी। उसने दूरदर्शितासे यह समझ लिया था कि यदि पंजदेहके प्रश्नपर इंग्लैण्ड और रूसके बीच लड़ाई हुई तो अफगानिस्तान युद्धभूमि बन जायगा और वह इस विपत्तिको दूर रखना चाहता था। उसने घोषणा की कि यह निश्चय नहीं है कि पंजदेह वास्तवमें अफगानिस्तानका हिस्सा है और यदि पंजदेह और अफगानिस्तानके बीच जुल्फिकार दर्रेपर उसका अधिकार मान लिया जाय तो उसे संतोष हो जायगा। अमीर अब्दुर्रहमानके इस समझौतापरक रवैयेसे ब्रिटिश सरकारको भी अपना रवैया बदलना पड़ा। इंग्लैण्ड और रूसका संयुक्त सीमा कमीशन नियुक्त किया गया। उसने जिस सीमा-रेखाकी सिफारिश की, उसे १८८७ ई० में स्वीकार कर लिया गया। इस सीमारेखाके अनुसार पंजदेहपर रूसियोंका अधिकार और जुल्फिकार दर्रेपर अफगानिस्तानका अधिकार मान लिया गया। इस सिफारिशके अनुसार पामीरकी दिशामें रूसियोंके बढ़ावपर कोई रोकटोक नहीं लगायी गयी।

पंजाब–पाँच नदियोंका देश। पाँच नदियाँ हैं झेलम, चिनाव, रावी, व्यास तथा सतलज, जो सभी सिंधुमें मिल जाती हैं। यह त्रिकोणात्मक प्रदेश है। सिंधु और सतलज इसकी दो भुजाएँ और हिमालय इसका आधार है। उत्तर-पश्चिममें यह हिमालयके उस पारके देशोंके साथ चार दर्रोंसे जुड़ा हुआ है, जिनमें खैबर दर्रा मुख्य है। अतएव पश्चिमसे सभी युगोंमें सभी जातियोंके लोग यहाँ आकर बसते रहे हैं। इसे जातियोंका संगम-स्थल कहा जा सकता है। समुद्र मार्गसे यूरोपीयोंके आगमनसे पूर्व सभी आक्रमणकारी पंजाब होकर भारतीय उपमहाद्वीपमें प्रवेश करते रहे हैं और उसकी आबादीपर अपने चिह्न छोड़ते रहे हैं। पंजाबमें अत्यंत प्राचीन कालसे सभ्यता फलती-फूलती रही है, जिसके अवशेष हालमें सिंधु घाटी सभ्यता (दे०)के रूपमें मिले हैं। ऐतिहासिक कालमें पंजाब पाँचवीं शताब्दी ई० पू० में हखामनी वंशके सम्राट् दारयवहु प्रथम (दे०)के साम्राज्यमें सम्मिलित था। ३२६ ई० पू० में जब मकदूनियाके राजा सिकन्दरने हमला किया, पंजाब कई छोटे-छोटे राज्योंमें बँटा हुआ था, जिन्हें सिकन्दरने जीत लिया। परंतु वह पंजाबमें अपने पैर नहीं जमा सका और उसकी मृत्युके बाद ही पंजाब मौर्य साम्राज्य (दे०)का एक भाग बन गया। मौर्य साम्राज्यके अपकर्ष तथा पतनके बाद पंजाबपर क्रमिक रीतिसे बाख्त्री (वैक्ट्रिया)के यूनानियों (यवनों), शकों, कुषाणों तथा हूणोंने आक्रमण किया और उसपर अधिकार कर लिया।

पंजाबका पहला मुसलमान विजेता गजनीका सुल्तान महमूद (९७१–१०३० ई०) (दे०) था, जिसके वंशजोंसे इसे ११८६ ई० में शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीने जीत लिया। १२०६ ई० में यह दिल्ली सल्तनतके अधीन रहा और उसके बाद अठारहवीं शताब्दीके मध्य तक मुगल साम्राज्यका भाग रहा। तत्पश्चात् इसपर अधिकार करनेके लिए अफगानों, मराठों तथा सिखोंमें त्रिपक्षीय संघर्ष चलता रहा। १७६१ ई० में पानीपतकी तीसरी लड़ाई (दे०) में अफगान अहमदशाह अब्दालीकी विजयमें मराठोंकी राज्यशक्ति समाप्त हो गयी। इसके बाद ही अहमदशाह अब्दालीकी भी मृत्यु हो गयी और सिखोंकी राज्यशक्तिका उदय होने लगा। रणजीतसिंह (१७८०-१८३९ ई०)ने पंजाबमें शक्तिशाली स्वतंत्र सिख राज्यकी स्थापना की। परंतु उसकी मृत्युके बाद ही राज्यमें अव्यवस्था फैल गयी और सिखों और अंग्रेजोंके बीच दो लड़ाइयोंके फलस्वरूप १८४९ ई० में पंजाब ब्रिटिश साम्राज्यमें सम्मिलित कर लिया गया। यह १९४७ ई० तक ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यके एक प्रांतके रूपमें फलता-फूलता रहा। १९४७ ई० में भारतके स्वाधीन होनेपर पंजाब दो भागोंमें बाँट दिया गया। मुसलिम-बहुल पश्चिमी पंजाबको पाकिस्तान (दे०)में सम्मिलित कर लिया गया और पूर्वी पंजाब, जहाँ हिन्दुओंकी जनसंख्या अधिक थी, भारतका भाग बना रहा।

पंजाब भूमि-बेदखली कानून–१९०० ई० में वाइसराय लार्ड कर्जनकी प्रेरणासे बनाया गया। इस कानूनमें महाजनोंके पास भूमि गिरवी रख देनेवाले किसानोंको बेदखलीसे सुरक्षा प्रदान की गयी। उसमें व्यवस्था की गयी कि वंश-परंपरासे भूमि जोतनेवाले किसानोंको कर्जेकी अदायगीके लिए अदालतसे प्राप्त की गयी डिग्रीके आधारपर भूमिसे बेदखल नहीं किया जा सकेगा। इसके फलस्वरूप पंजाबके किसानोंको भूमिहीन बननेसे रोक दिया गया।

पंडितराव–शिवाजी (दे०)के अष्ट प्रधानोंमेंसे एक। वह राजपुरोहित था और मराठा राज्यका धर्म विभाग उसके अधीन था।

पंडित, श्रीमती विजयालक्ष्मी–जन्म १९०० ई० में। पंडित मोतीलाल नेहरू (दे०)की पुत्री तथा पंडित जवाहरलाल

नेहरू (दे०)की बहिन। भारतके राष्ट्रीय आंदोलन तथा स्वाधीनता संग्राममें मुख्य भाग लिया। वक्तृत्व कलामें दक्ष हैं। भारतकी स्वाधीनताके बाद अनेक उच्च पदोंपर रह चुकी हैं। इंग्लैण्डमें भारतकी उच्चायुक्त (१९५५–६१ ई०), सोवियत संघ (१९४७–४९ ई०) तथा अमरीका (१९४९–५१ ई०)में भारतकी राजदूत रह चुकी हैं। १९५४ ई० में संयुक्त राष्ट्र जनरल असेम्बली-की अध्यक्ष रहीं। १९६२ ई० में महाराष्ट्रकी राज्यपाल नियुक्त हुई। देशकी राजनीतिमें सक्रिय भाग लेनेके लिए अक्तूबर १९६४ ई० में इस पदसे इस्तीफा दे दिया और पंडित नेहरूके फूलपुर निर्वाचन क्षेत्रसे लोकसभाकी सदस्य चुनी गयीं। १९६७ ई० में चौथे आम चुनावमें पुनः इसी क्षेत्रसे विजयी हुई। १९७१ ई० में राजनीतिसे अवकाश ग्रहण कर लिया।

पंडिता रमाबाई (१८५८–१९२२ ई०)—उन्नीसवीं शताब्दी-की उन थोड़ी-सी भारतीय महिलाओंमें मुख्य, जिन्होंने पश्चिमी शिक्षा प्राप्त की। वे बाल्यावस्थामें ही विधवा हो गयी थीं। उन्होंने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया और एक विधवाश्रमकी स्थापना की। उन्होंने अमरीकामें व्याख्यान दिये और भारतीय महिलाओं, विशेषरूपसे हिन्दू विधवाओंके लिए एक शिक्षण संस्थान खोलनेके निमित्त धन-संग्रहका प्रयास किया। पश्चिमी देशोंमें उनकी विद्वत्ता एवं वाग्मिताकी बड़ी प्रसिद्धि थी और उन्हें 'सरस्वती'की उपाधिसे विभूषित किया जाता था।

पंत, गोविन्दवल्लभ—भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके एक प्रमुख सदस्य तथा नेता। स्वाधीनताके बाद वे उत्तर प्रदेशके मुख्य मंत्री हुए और पंडित नेहरूके केन्द्रीय मंत्रिमंडलमें गृह मंत्रीके रूपमें सम्मिलित होने तक प्रांतका प्रशासन बड़ी योग्यताके साथ चलाते रहे। उन्होंने देशकी महती सेवा की और जिस समय उनकी मृत्यु हुई, उस समय भी वे केन्द्रीय गृह मंत्रीका पदभार संभाले हुए थे।

पंत प्रतिनिधि—यह पद पेशवा (दे०) से भी ऊँचा था। यह नया पद शिवाजीके दूसरे पुत्र राजाराम (दे०)ने उस समय बनाया जब उसने जिंजीके किलेमें शरण ले रखी थी। शाहु (दे०)के राज्यकालमें पंत प्रतिनिधिके पदका महत्त्व घट गया और पेशवाके पदका महत्त्व बढ़ गया।

पटना—भारतीय गणराज्यके बिहार राज्यकी राजधानी। गंगाके तटपर प्राचीन पाटलिपुत्र (दे०) नगरीके निकट स्थित है। ईस्ट इंडिया कम्पनीने पटनामें एक व्यापारिक केन्द्र खोल रखा था और मि० एलिस उसका प्रधान था। १७६३ ई० में उसने बंगालके नवाब मीर कासिमसे पटना छीन लेनेकी कोशिश की, जिसमें उसे सफलता नहीं मिली। इसके फलस्वरूप अंग्रेजों और मीर कासिमके बीच युद्ध शुरू हो गया। मीर कासिमके हार जानेपर तथा ईस्ट इंडिया कम्पनीको दीवानी मिल जानेपर पटना बिहारके पटना डिवीजनका मुख्यालय बना दिया गया। १९१२ ई० में यह बिहार तथा उड़ीसाके नवनिर्मित प्रांतकी राजधानी बना दिया गया और यहाँ पृथक् उच्च न्यायालय तथा विश्वविद्यालयकी स्थापना कर दी गयी।

पटियाला—एक नगर और पंजाबकी एक भूतपूर्व देशी रियासत भी। दिल्लीसे लगभग १२५ मील उत्तर-पश्चिममें स्थित है। रियासतकी स्थापना १७६३ ई० में सिखोंकी फुलकिया मिस्लके एक सरदारने की थी। रणजीतसिंह (दे०)के राज्यप्रसारके भयसे पटियाला राज्य १८०९ ई० में अंग्रेजों-का रक्षित राज्य बन गया और जुलाई १९४८ ई० में भारत संघमें विलयन होने तक रक्षित राज्य बना रहा। यह पहले पटियाला तथा पूर्वी पंजाब राज्य संघ (जिसे संक्षेपमें पेप्सू कहते थे) का हिस्सा था, किंतु १९५६ ई० के राज्य पुनर्गठन अधिनियमके अंतर्गत इसे पंजाब राज्यका एक हिस्सा बना दिया गया। ब्रिटिश शासन कालमें पटियाला नरेश, महाराज भूपेन्द्रसिंह (१८९१–१९३८ ई०)ने पटियाला रियासतकी काफी उन्नति की, नरेन्द्रमंडलकी स्थापनामें भारी योग दिया और १९२५ ई० में राष्ट्रसंघ असेम्बलीमें देशी राजाओंका प्रतिनिधित्व किया।

पटेल, वल्लभभाई, सरदार (१८७५–१९५० ई०)—एक प्रसिद्ध देशभक्त तथा राजनेता, जन्म ३१ अक्तूबर १८७५ ई० को गुजरातमें। उन्होंने गोधरा नगरमें वकालतसे जीवन आरम्भ किया। बादमें उन्होंने इंग्लैण्ड जाकर बैरिस्टरी पास की और लौटकर अहमदाबादमें रहने लगे। महात्मा गांधीसे जब पहली बार मिले तो अहमदाबादमें ही बैरिस्टर थे। इसके बाद ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसमें सम्मिलित हो गये और बारडोली सत्याग्रहका नेतृत्व किया और जेल गये। बारडोलीके किसानोंका जिस कुशलतासे संगठन किया, उसके फलस्वरूप वे गांधीजीके अधिक निकट आ गये और उनके द्वारा 'सरदार' कहलाने लगे। अचिर रीतिसे सरदार पटेलको कांग्रेस नेताओंमें उच्च स्थान प्राप्त हो गया। १९३१ ई० में वे कांग्रेसके अध्यक्ष चुने गये और १९४२ ई० में महात्मा गांधी द्वारा चलाये गये 'भारत छोड़ो' आंदोलनमें प्रमुख भाग लिया। कांग्रेस वर्किंग कमेटीके सभी सदस्योंके साथ उन्हें नजरबंद कर दिया गया और १९४५ ई० में उनके साथ वे भी रिहा किये गये।

दिशामें आगे बढ़नेसे रोकनेके लिए, रूसियोंकी उस कार्रवाईपर गहरी नाराजी प्रकट की और इस बातकी आशंका की जाने लगी कि पंजदेहके प्रश्नको लेकर इंग्लैण्ड और रूसमें लड़ाई छिड़ जायगी। अमीर अब्दुर्रहमान (दे०) की बुद्धिमत्तासे यह लड़ाई टल गयी। उसने दूरदर्शितासे यह समझ लिया था कि यदि पंजदेहके प्रश्नपर इंग्लैण्ड और रूसके बीच लड़ाई हुई तो अफगानिस्तान युद्धभूमि बन जायगा और वह इस विपत्तिको दूर रखना चाहता था। उसने घोषणा की कि यह निश्चय नहीं है कि पंजदेह वास्तवमें अफगानिस्तानका हिस्सा है और यदि पंजदेह और अफगानिस्तानके बीच जुल्फिकार दर्रेपर उसका अधिकार मान लिया जाय तो उसे संतोष हो जायगा। अमीर अब्दुर्रहमानके इस समझौतापरक रवैयेसे ब्रिटिश सरकारको भी अपना रवैया बदलना पड़ा। इंग्लैण्ड और रूसका संयुक्त सीमा कमीशन नियुक्त किया गया। उसने जिस सीमा-रेखाकी सिफारिश की, उसे १८८७ ई० में स्वीकार कर लिया गया। इस सीमारेखाके अनुसार पंजदेहपर रूसियोंका अधिकार और जुल्फिकार दर्रेपर अफगानिस्तानका अधिकार मान लिया गया। इस सिफारिशके अनुसार पामीरकी दिशामें रूसियोंके बढ़ावपर कोई रोकटोक नहीं लगायी गयी।

पंजाब–पाँच नदियोंका देश। पाँच नदियाँ हैं झेलम, चिनाब, रावी, व्यास तथा सतलज, जो सभी सिंधुमें मिल जाती हैं। यह त्रिकोणात्मक प्रदेश है। सिंधु और सतलज इसकी दो भुजाएँ और हिमालय इसका आधार है। उत्तर-पश्चिममें यह हिमालयके उस पारके देशोंके साथ चार दर्रोंसे जुड़ा हुआ है, जिनमें खैबर दर्रा मुख्य है। अतएव पश्चिमसे सभी युगोंमें सभी जातियोंके लोग यहाँ आकर बसते रहे हैं। इसे जातियोंका संगम-स्थल कहा जा सकता है। समुद्र मार्गसे यूरोपीयोंके आगमनसे पूर्व सभी आक्रमणकारी पंजाब होकर भारतीय उपमहाद्वीपमें प्रवेश करते रहे हैं और उसकी आबादीपर अपने चिह्न छोड़ते रहे हैं। पंजाबमें अत्यंत प्राचीन कालसे सभ्यता फलती-फूलती रही है, जिसके अवशेष हालमें सिंधु घाटी सभ्यता (दे०)के रूपमें मिले हैं। ऐतिहासिक कालमें पंजाब पाँचवीं शताब्दी ई० पू० में हखामनी वंशके सम्राट् दारयवहु प्रथम (दे०)के साम्राज्यमें सम्मिलित था। ३२६ ई० पू० में जब मकदूनियाके राजा सिकन्दरने हमला किया, पंजाब कई छोटे-छोटे राज्योंमें बँटा हुआ था, जिन्हें सिकन्दरने जीत लिया। परंतु वह पंजाबमें अपने पैर नहीं जमा सका और उसकी मृत्युके बाद ही पंजाब मौर्य साम्राज्य (दे०)का एक भाग बन गया। मौर्य साम्राज्यके अपकर्ष तथा पतनके बाद पंजाबपर क्रमिक रीतिसे बाख्त्री (बैक्ट्रिया)के यूनानियों (यवनों), शकों, कुषाणों तथा हूणोंने आक्रमण किया और उसपर अधिकार कर लिया।

पंजाबका पहला मुसलमान विजेता गजनीका सुल्तान महमूद (९७१–१०३० ई०) (दे०) था, जिसके वंशजोंसे इसे ११८६ ई० में शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीने जीत लिया। १२०६ ई० में यह दिल्ली सल्तनतके अधीन रहा और उसके बाद अठारहवीं शताब्दीके मध्य तक मुगल साम्राज्यका भाग रहा। तत्पश्चात् इसपर अधिकार करनेके लिए अफगानों, मराठों तथा सिखोंमें त्रिपक्षीय संघर्ष चलता रहा। १७६१ ई० में पानीपतकी तीसरी लड़ाई (दे०) में अफगान अहमदशाह अब्दालीकी विजयसे मराठोंकी राज्यशक्ति समाप्त हो गयी। इसके बाद ही अहमदशाह अब्दालीकी भी मृत्यु हो गयी और सिखोंकी राज्यशक्तिका उदय होने लगा। रणजीतसिंह (१७९०-१८३९ ई०)ने पंजाबमें शक्तिशाली स्वतंत्र सिख राज्यकी स्थापना की। परंतु उसकी मृत्युके बाद ही राज्यमें अव्यवस्था फैल गयी और सिखों और अंग्रेजोंके बीच दो लड़ाइयोंके फलस्वरूप १८४९ ई० में पंजाब ब्रिटिश साम्राज्यमें सम्मिलित कर लिया गया। यह १९४७ ई० तक ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यके एक प्रांतके रूपमें फलता-फूलता रहा। १९४७ ई० में भारतके स्वाधीन होनेपर पंजाब दो भागोंमें बाँट दिया गया। मुसलिम-बहुल पश्चिमी पंजाबको पाकिस्तान (दे०)में सम्मिलित कर लिया गया और पूर्वी पंजाब, जहाँ हिन्दुओंकी जनसंख्या अधिक थी, भारतका भाग बना रहा।

पंजाब भूमि-बेदखली कानून–१९०० ई० में वाइसराय लार्ड कर्जनकी प्रेरणासे बनाया गया। इस कानूनसे महाजनोंके पास भूमि गिरवी रख देनेवाले किसानोंको बेदखलीसे सुरक्षा प्रदान की गयी। उसमें व्यवस्था की गयी कि ऋण-परंपरासे भूमि जोतनेवाले किसानोंको कर्जेकी अदायगीके लिए अदालतसे प्राप्त की गयी डिगरीके आधारपर भूमिसे बेदखल नहीं किया जा सकेगा। उसके फलस्वरूप पंजाबके किसानोंको भूमिहीन बननेसे रोक दिया गया।

पंडितराव–शिवाजी (दे०)के अष्ट प्रधानोंमेंसे एक। वह राजपुरोहित था और मराठा राज्यका धर्म विभाग उसके अधीन था।

पंडित, श्रीमती विजयालक्ष्मी–जन्म १९०० ई० में। पंडित मोतीलाल नेहरू (दे०)की पुत्री तथा पंडित जवाहरलाल

नेहरू (दे०) की बहिन। भारतके राष्ट्रीय आंदोलन तथा स्वाधीनता संग्राममें मुख्य भाग लिया। वक्तृत्व कलामें दक्ष हैं। भारतकी स्वाधीनताके बाद अनेक उच्च पदोंपर रह चुकी हैं। इंग्लैण्डमें भारतकी उच्चायुक्त (१९५५–६१ ई०), सोवियत संघ (१९४७–४९ ई०) तथा अमरीका (१९४९–५१ ई०) में भारतकी राजदूत रह चुकी हैं। १९५८ ई० में संयुक्त राष्ट्र जनरल असेम्बली-की अध्यक्ष रहीं। १९६२ ई० में महाराष्ट्रकी राज्यपाल नियुक्त हुईं। देशकी राजनीतिमें सक्रिय भाग लेनेके लिए अक्तूबर १९६४ ई० में इस पदसे इस्तीफा दे दिया और पंडित नेहरूके फूलपुर निर्वाचन क्षेत्रसे लोकसभाकी सदस्य चुनी गयीं। १९६७ ई० में चौथे आम चुनावमें पुनः इसी क्षेत्रसे विजयी हुईं। १९७१ ई० में राजनीतिसे अवकाश ग्रहण कर लिया।

पंडिता रमाबाई (१८५८–१९२२ ई०)–उन्नीसवीं शताब्दी-की उन थोड़ी-सी भारतीय महिलाओंमें मुख्य जिन्होंने पश्चिमी शिक्षा प्राप्त की। वे बाल्यावस्थामें ही विधवा हो गयी थीं। उन्होंने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया और एक विधवाश्रमकी स्थापना की। उन्होंने अमरीकामें व्याख्यान दिये और भारतीय महिलाओं, विशेषरूपसे हिन्दू विधवाओंके लिए एक शिक्षण संस्थान खोलनेके निमित्त धन-संग्रहका प्रयास किया। पश्चिमी देशोंमें उनकी विद्वत्ता एवं वाग्मिताकी बड़ी प्रसिद्धि थी और उन्हें 'सरस्वती'की उपाधिसे विभूषित किया जाता था।

पंत, गोविन्दवल्लभ–भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके एक प्रमुख सदस्य तथा नेता। स्वाधीनताके बाद वे उत्तर प्रदेशके मुख्य मंत्री हुए और पंडित नेहरूके केन्द्रीय मंत्रिमंडलमें गृह मंत्रीके रूपमें सम्मिलित होने तक प्रांतका प्रशासन बड़ी योग्यताके साथ चलाते रहे। उन्होंने देशकी महती सेवा की और जिस समय उनकी मृत्यु हुई, उस समय भी वे केन्द्रीय गृह मंत्रीका पदभार सँभाले हुए थे।

पंत प्रतिनिधि–यह पद पेशवा (दे०) से भी ऊँचा था। यह नया पद शिवाजीके दूसरे पुत्र राजाराम (दे०) ने उस समय बनाया जब उसने जिंजीके किलेमें शरण ले रखी थी। शाहू (दे०) के राज्यकालमें पंत प्रतिनिधिके पदका महत्त्व घट गया और पेशवाके पदका महत्त्व बढ़ गया।

पटना–भारतीय गणराज्यके बिहार राज्यकी राजधानी। गंगाके तटपर प्राचीन पाटलिपुत्र (दे०) नगरीके निकट स्थित है। ईस्ट इंडिया कम्पनीने पटनामें एक व्यापारिक केन्द्र खोल रखा था और मि० एलिस उसका प्रधान था। १७६३ ई० में उसने बंगालके नवाब मीर कासिमसे पटना छीन लेनेकी कोशिश की, जिसमें उसे सफलता नहीं मिली। इसके फलस्वरूप अंग्रेजों और मीर कासिमके बीच युद्ध शुरू हो गया। मीर कासिमके हार जानेपर तथा ईस्ट इंडिया कम्पनीको दीवानी मिल जानेपर पटना बिहारके पटना डिवीजनका मुख्यालय बना दिया गया। १९१२ ई० में यह बिहार तथा उड़ीसाके नवनिर्मित प्रांतकी राजधानी बना दिया गया और यहाँ पृथक् उच्च न्यायालय तथा विश्वविद्यालयकी स्थापना कर दी गयी।

पटियाला–एक नगर और पंजाबकी एक भूतपूर्व देशी रियासत थी। दिल्लीसे लगभग १२५ मील उत्तर-पश्चिममें स्थित है। रियासतकी स्थापना १७६३ ई० में सिखोंकी फुलकिया मिस्लके एक सरदारने की थी। रणजीतसिंह (दे०) के राज्यप्रसारके भयसे पटियाला राज्य १८०९ ई० में अंग्रेजों-का रक्षित राज्य बन गया और जुलाई १९४८ ई० में भारत संघमें विलयन होने तक रक्षित राज्य बना रहा। यह पहले पटियाला तथा पूर्वी पंजाब राज्य संघ (जिसे संक्षेपमें पेप्सू कहते थे) का हिस्सा था, किंतु १९५६ ई० के राज्य पुनर्गठन अधिनियमके अंतर्गत इसे पंजाब राज्यका एक हिस्सा बना दिया गया। ब्रिटिश शासन कालमें पटियाला नरेश, महाराज भूपेन्द्रसिंह (१८९१–१९३८ ई०) ने पटियाला रियासतकी काफी उन्नति की, नरेन्द्रमंडलकी स्थापनामें भारी योग दिया और १९२५ ई० में राष्ट्रसंघ असेम्बलीमें देशी राजाओंका प्रतिनिधित्व किया।

पटेल, वल्लभभाई, सरदार (१८७५–१९५० ई०)–एक प्रसिद्ध देशभक्त तथा राजनेता, जन्म ३१ अक्तूबर १८७५ ई० को गुजरातमें। उन्होंने गोधरा नगरमें वकालतमें जीवन आरम्भ किया। बादमें उन्होंने इंग्लैण्ड जाकर बैरिस्टरी पास की और लौटकर अहमदाबादमें रहने लगे। महात्मा गांधीसे जब पहली बार मिले तो अहमदाबादमें ही बैरिस्टर थे। इसके बाद ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसमें सम्मिलित हो गये और बारडोली सत्याग्रहका नेतृत्व किया और जेल गये। बारडोलीके किसानोंका जिस कुशलतासे संगठन किया, उसके फलस्वरूप वे गांधीजीके अधिक निकट आ गये और उनके द्वारा 'सरदार' कहलाने लगे। क्रमिक रीतिसे सरदार पटेलको कांग्रेस नेताओंमें उच्च स्थान प्राप्त हो गया। १९३१ ई० में वे कांग्रेसके अध्यक्ष चुने गये और १९४२ ई० में महात्मा गांधी द्वारा चलाये गये 'भारत छोड़ो' आंदोलनमें प्रमुख भाग लिया। कांग्रेस वर्किंग कमेटीके सभी सदस्योंके साथ उन्हें नजरबंद कर दिया गया और १९४५ ई० में उनके साथ वे भी रिहा किये गये।

१९४६ ई० में गठित अंतरिम सरकारमें वे गृह सदस्यके रूपमें सम्मिलित हुए। इसके बाद ही सारे देशमें साम्प्रदायिक दंगे शुरू हो गये, जिन्हें रोकनेमें आंशिक सफलता ही मिली। स्वाधीनताकी अनिवार्यता देखते हुए वे देशके विभाजनसे सहमत हो गये और स्वतंत्रता-प्राप्तिके बाद गृह मंत्री तथा उपप्रधान मंत्री नियुक्त हुए। इस पदपर १५ दिसम्बर १९५० ई० को मृत्यु होने तक बने रहे। भारतीय गणराज्यके उपप्रधान मंत्री तथा गृहमंत्रीके रूपमें उन्होंने बडी दृढताका परिचय दिया, जिसके फलस्वरूप वे 'लौहपुरुष'के रूपमें विख्यात हुए। उनकी सबसे महान् उपलब्धि शांतिपूर्ण रीतिसे भारतीय गणराज्यमें देशी रियासतोंका विलयन था।

१९४७ ई० में पाकिस्तानके हमलेके बाद कश्मीरका भारतमें विलयन स्वीकार करनेके निर्णयमें उनका मुख्य हाथ था। उनकी अंतिम महान् उपलब्धि हैदराबादके निजामके विरुद्ध पुलिस काररवाईका निर्णय था। इसके फलस्वरूप हैदराबाद रियासत भारतीय गणराज्यमें विलयनके लिए विवश हो गयी और भारतीय उपमहाद्वीपमें तीसरा स्वतंत्र राज्य अथवा दक्षिणमें पाकिस्तानका गढ नहीं बन सका। महात्मा गांधीकी हत्याके समय उन्होंने अपनी स्वभावगत दृढताका परिचय दिया और हत्याकांडके बाद ही यह घोषणा करके कि हत्यारा एक पागल हिन्दू था तथा शांति तथा व्यवस्था बनाये रखनेके कडे प्रबंध करके एक भयानक गृह युद्धसे देशको बचा लिया।

पटेल, विट्ठलदास झवेरभाई (१८७३–१९३३ ई०)–भारतके प्रमुख राष्ट्रीय नेता और सरदार पटेलके बडे भाई। २७ सितम्बर १८७३ ई० को नडियादमें जन्म और २२ अक्तूबर १९३३ ई०को वियनामें देहावसान हुआ। १९०५ ई० बैरिस्टर हुए और वकालत करने लगे, परंतु शीघ्र ही भारतीय राष्ट्रीय आंदोलनमें खिंच आये। उन्होंने रौलट कानून (दे०)के विरुद्ध प्रबल आंदोलन चलाया, केन्द्रीय असेम्बलीके सदस्य चुने गये, किंतु कांग्रेसकी असहयोगकी नीतिके अनुसार सदस्यतासे त्यागपत्र दे दिया। बादमें स्वराज्य पार्टी (दे०)में सम्मिलित हो गये और पुनः केन्द्रीय असेम्बलीके सदस्य चुने गये। वे केन्द्रीय असेम्बलीके पहले गैरसरकारी अध्यक्ष निर्वाचित हुए और अपना निर्णायक मत डालकर सरकारी सार्वजनिक सुरक्षा बिलको अस्वीकृत करा दिया और अधिवेशनके दौरान पुलिसको केन्द्रीय असेम्बली हालमें प्रवेश करनेसे रोक दिया। उन्होंने १९३० ई० में कांग्रेस नेताओंके नजरबंद कर दिये जानेके विरोधस्वरूप केन्द्रीय असेम्बलीके अध्यक्ष पदसे इस्तीफा दे दिया और इसके बाद ही स्वयं उनको भी नजरबंद कर दिया गया। जेलमें उनका स्वास्थ्य चौपट हो गया और वे स्वास्थ्य-सुधारके लिए यूरोप चले गये। वियनामें उनकी भेंट नेताजी सुभाष चन्द्र बसुसे हुई। नेताजीपर उनका पूरा विश्वास था और उन्होंने उनको अपने इच्छानुसार राष्ट्रीय कार्योंमें खर्च करनेके लिए दो लाख रुपयेकी वसीयत कर दी। इसके बाद ही वियनामें उनकी मृत्यु हो गयी। १९३३ ई० में उनकी मृत्युपर छोटे भाई सरदार पटेलने असहयोगके सिद्धान्तोंमें विश्वास करते हुए भी भारतमें एक ब्रिटिश अदालतमें मुकदमा दायर कर दिया और बडे भाईकी वसीयत रद्द करा दी। विट्ठलदास झवेरभाई पटेल महान् देशभक्त थे और भारतके अंग्रेज शासक भी उनसे डरते थे।

पठान–भारत और अफगानिस्तानके बीच सीमांत क्षेत्रमें रहनेवाली जनजातियाँ। कुछ इतिहास ग्रंथोंमें, जैसे थामसके अंग्रेजी भाषाके 'पठान बादशाहोंके वृत्तांत' शीर्षक ग्रंथमें इस शब्दका गलत प्रयोग किया गया है और कुतुबुद्दीनसे लेकर इब्राहीम लोदीतक दिल्लीके समस्त सुल्तानोंको 'पठान' लिख दिया गया है। दिल्लीके सुल्तानोंके अधिकांश राजवंशोंका विकास तुर्कोंसे हुआ था, लोदी और संभवतः खिलजी वंश इसके अपवाद थे। शेरशाह अफगान था और उसके वंशको पठानवंश कह सकते हैं। सीमाप्रांतके पठान वजीरी, अफ्रीदी आदि अनेक कबीलोंमें बँटे हुए हैं और कुछ समय पहले तक लगभग घुमन्तू जीवन व्यतीत करते रहते थे। इसीलिए ये जब-तब भारतपर चढाइयाँ करना जीवन-यापनका वैध साधन मानते थे। भारतमें बसनेवाले बहुत-से पठान रुपया उधार देनेका काम करते हैं और बडी लम्बी दरसे सूद वसूल करते हैं।

पतंजलि–पाणिनि (दे०)की प्रसिद्ध संस्कृत व्याकरण पुस्तक अष्टाध्यायीके ख्यातिनामा टीकाकार, जिनकी उक्त टीका 'महाभाष्य' नामसे प्रसिद्ध है। विश्वास किया जाता है कि वे शुंग (दे०) राजा पुष्यमित्रके समसामयिक थे, जो दूसरी शताब्दी ई०पू०में हुआ।

पतंजलि–एक महान् दार्शनिक, जिन्होंने संस्कृत भाषामें 'योगसूत्र' नामसे प्रसिद्ध दर्शन-ग्रंथकी रचना की। उनका काल अनिश्चित है, परंतु वे प्रसिद्ध भाष्यकार पतंजलिसे भिन्न थे।

पद्मभूषण–भारतीय गणराज्यमें प्रदान किये जानेवाले अलंकरणोंमें इसका स्थान तीसरा है। सर्वोच्च अलंकरण 'भारतरत्न' है और उसके बाद दूसरा स्थान 'पद्मविभूषण' का है।

पद्मश्री–भारतीय गणराज्यमें प्रदान किये जानेवाले अलंकरणोंमें इसका चौथा स्थान है।

पद्मसंभव–एक प्रसिद्ध भारतीय भिक्षु जो आठवीं शताब्दी ई० के मध्यकालमें वर्तमान था। कहा जाता है कि वह पहले उद्यान (स्वात)का राजकुमार था और उसने बौद्ध भिक्षुकी दीक्षा ले ली थी। तिब्बतके राजा थ्रि-स्रोङ्-दे-वचन्के निमन्त्रणपर वह तिब्बत गया और वहाँ उसने तन्त्रयानका प्रचार किया। तिब्बती लोगोंको विश्वास था कि उसे ऐसी सिद्धियाँ प्राप्त थीं जिनसे वह अलौकिक चमत्कार दिखा सकता था। उसने तिब्बतमें बौद्ध धर्मके जिस सम्प्रदायकी स्थापना की, उसे पश्चिमी विद्वान् 'लाल टोपीवाले' कहते हैं। उसने तिब्बतके राजाको तथा बहुत-से तिब्बतियोंको शिष्य बनाया। उसने तिब्बतमें बौद्ध-धर्मके जिस रूपका प्रचार किया, वह 'लामा धर्म'के नामसे विख्यात है। तिब्बती लोग बुद्धके समान पद्मसंभवकी भी पूजा करते हैं।

पद्मिनी–मेवाड़के राणा रत्नसिंहकी रानी। राजपूत अनुश्रुतियोंके अनुसार सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी पद्मिनीके रूपकी प्रशंसा सुनकर उसे पानेके लिए व्याकुल हो उठा और उसने १३०३ ई० में चित्तौड़पर हमला कर दिया। राजपूत बड़ी वीरताके साथ लड़े, परन्तु वे चित्तौड़गढ़की रक्षा नहीं कर सके। जब यह देखा गया कि अब दुर्गपर शत्रुका अधिकार होनेसे रोका नहीं जा सकता तो पद्मिनीने अन्य रानियोंके साथ जलती चिताओंपर कूदकर 'जौहर' कर लिया।

पनगलका राजा–जस्टिस अथवा अब्राह्मण पार्टीका नेता, जो गवर्नमेण्ट आफ इंडिया एक्ट, १९१९ के द्वारा स्थापित संविधानको क्रियान्वित करनेके लिए १९२१ ई० में मद्रासका मुख्य मंत्री नियुक्त हुआ। उसके मंत्रिमंडलने शिक्षा तथा मंदिरोंकी धर्मादा सम्पत्तिकी प्रबंध व्यवस्थामें सुधार किये।

परगना–प्रशासनकी दृष्टिसे सरकार (जिला)का एक उपविभाग। यह प्रशासकीय व्यवस्था अकबरने की थी।

परमार (पँवार) वंश–इसका आरम्भ नवीं शताब्दीके प्रारम्भमें नर्मदाके उत्तर मालवा (प्राचीन अवन्ती) क्षेत्रमें उपेन्द्र अथवा कृष्णराजसे हुआ। इसकी राजधानी धारा नगरी थी। इस वंशमें आठ राजा हुए, जिनमें सातवाँ मुंज और आठवाँ मुंजका भतीजा भोज (दे०) सबसे प्रतापी था। मुंज अनेक वर्षों तक कल्याणीके चालुक्य राजाओंसे युद्ध करता रहा और ९९५ ई० में युद्धमें ही मारा गया। उसका उत्तराधिकारी भोज (१०१८–६० ई०) गुजरात तथा चेदिके राजाओंकी संयुक्त सेनाओंके साथ युद्धमें मारा गया। उसकी मृत्युके साथ परमार-वंशका प्रताप नष्ट हो गया, यद्यपि स्थानीय राजाओंके रूपमें परमार राजा तेरहवीं शताब्दीके आरम्भ तक राज्य करते रहे, अन्तमें तोमरों (दे०)ने उनका उच्छेद कर दिया। परमार राजा विशेषरूपसे मुंज और भोज बड़े विद्वान् थे और विद्वानों एवं कवियोंके आश्रयदाता थे।

परमार्थ (४९९–५६९ ई०)–एक प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु तथा विद्वान्, जिसने ५४६ तथा ५६९ ई० के बीच अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'वसुबन्धुचरित'की रचना की। इस पुस्तकमें उसने कनिष्क (दे०)के द्वारा आमंत्रित बौद्धोंकी चौथी संगीति (महासभा)का विवरण लिपिबद्ध किया है।

परमार्दि (अथवा परमाल)–जेजाकभुक्ति (दे०)का अंतिम चंदेल शासक, जिसे एक महत्त्वपूर्ण स्वतंत्र राजा कहा जा सकता है। वह पाँच वर्षकी अवस्थामें सिंहासनपर बैठा और ११८२ ई० तक राज्य करता रहा, जब कि चौहान राजा पृथ्वीराज (दे०)से युद्धमें पराजित हो गया। पृथ्वीराजने उसकी राजधानी ध्वस्त कर दी। इस पराजयके बाद ही दिल्लीके सुल्तान कुतुबुद्दीन (दे०)के नेतृत्वमें मुसलमानोंने उसके राज्यपर आक्रमण कर दिया और कालंजरका किला घेर लिया। परमार्दिको कालंजरका किला शत्रुओंके हाथ सौंप देना पड़ा और संभवतः युद्धभूमिमें वह मारा गया। उसकी मृत्युके साथ चंदेल-वंशका उत्कर्ष समाप्त हो गया।

परवेज, शाहजादा–बादशाह जहाँगीरका दूसरा लड़का। उसके बड़े भाई शाहजादा खुसरोके अंधा कर दिये जानेके बाद उसे युवराज बनाया गया। उसको मेवाड़पर आक्रमण करनेके लिए भेजा गया, वह इलाहाबाद तथा दक्खिनमें ऊँचे पदोंपर रहा। उसके छोटे भाई शाहजादा खुर्रम (बादमें शाहजहाँ)ने जब जहाँगीरके विरुद्ध विद्रोह कर दिया, उसने पिताका साथ दिया और १६२४ ई० में इलाहाबादके निकट दमदमकी लड़ाईमें शाहजादा खुर्रमको हरा दिया। इसके बाद परवेजको गुजरातका सूबेदार बना दिया गया। अत्यधिक शराब पीनेके कारण १६२६ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी।

परशाद, राणा–राजपूतानेमें स्थित अमरकोटका शासक। उसने भगोड़े मुगल बादशाह हुमायूँ और उसकी नवपरिणीता बेगम हमीदा बानूको शरण दी। इनका पुत्र अकबर राणा परशादके संरक्षणमें अमरकोटमें १५४२ ई० में पैदा हुआ।

परसाजी भोसले–रघुजी भोसले (दे०)का पुत्र तथा उत्तराधिकारी। वह जड़बुद्धि था और गद्दीपर बैठनेके एक

साल बाद, १८१७ ई० में उसके चचेरेभाई अप्पा साहेब (दे०)ने उसकी हत्या कर दी।

परान्तक प्रथम–चोल राजा आदित्य (दे०)का पुत्र तथा उत्तराधिकारी, जिसने ९०७ ई०से ९४९ ई० तक राज्य किया। वह प्रवल पराक्रमी योद्धा था और उसने पाड्य राजाओंकी राजधानी मदुरापर अधिकार कर चोल राज्य-की सीमाओंका विस्तार कर दिया। उसने सिंहलद्वीप (श्रीलका)पर भी आक्रमण किया।

परान्तक द्वितीय–चोल राजा परान्तक प्रथम (दे०)का पौत्र, जिसने ९५६ से ९७३ ई० तक राज्य किया।

परागल खा–बगालके सुल्तान हुसेनशाह (१४९३–१५१९ ई०)का सेनापति। वह बँगला साहित्यका सरक्षक था। परमेश्वरने महाभारतका बगला अनुवाद उसीकी आज्ञासे किया, जो बँगला भाषामें महाभारतका सबसे प्राचीन अनुवाद है।

परिहार–देखिये, 'प्रतिहार'।

परेरा, पादरी जूलियन–बगालका बडा पादरी, जो १५७६ तथा १५७७ ई० में बादशाह अकबरके सम्पर्कमें आया और उसे ईसाई धर्मके बारेमें जानकारी दी।

पर्चाज, सैमुएल–भारतमें फिरगियोंकी प्रारम्भिक बस्तियोंका विवरण-लेखक, जिसकी 'पिल्ग्रिम्स' (यात्रीगण) नामक पुस्तक विख्यात है। कम्पनीके डाइरेक्टरोंका मत था कि भारतकी वस्तुस्थिति, डच लोगोंकी धूर्तताओं तथा भारत-में भूतपूर्व अग्रेज व्यापारियोंकी धोखेबाजियोंके ज्ञानार्थ कम्पनीके नौकरोंके लिए इस पुस्तकको पढना बहुत जरूरी है। कम्पनीने भारतमें कर्मचारियोंकी ज्ञानवृद्धिके लिए १८९६ ई० में इस पुस्तककी प्रतियाँ भारत भेजी थी।

परोपनिसदे–यूनानी इतिहासकारोंके अनुसार अफगानिस्तान-की राजधानी काबुलके आसपासका भूभाग। सेल्यूकस निकेटरने आरिया (हेरात क्षेत्र), आकासिया (कदहार क्षेत्र) तथा गदरोसिया (बलूचिस्तान)के साथ-साथ यह भूभाग भी चन्द्रगुप्त मौर्य (दे०)को सौंप दिया।

पल्लववंश–इस वंशके शासक अर्काट, मद्रास, त्रिचनापल्ली तथा तजौरके आधुनिक जिलोंपर राज्य करते थे। उनके उत्कर्षकालमें यह राज्य उत्तरमें उडीसाकी सीमा तक तथा दक्षिणमें पेन्नार नदी तक विस्तृत था। पश्चिममें भी वह दक्षिण भारतमें दूर तक फैला हुआ था। यह पता नहीं है कि पल्लव राजवंशकी स्थापना कब हुई और किसने की। उत्तरी भारतके शिलालेखमें जिस सबसे पहले पल्लव राजाका उल्लेख मिलता है, वह काचीका विष्णुगोप था। चौथी शताब्दी ई० के लगभग मध्यकालमें समुद्रगुप्त (दे०)ने पहले उसे बदी बनाकर फिर मुक्त कर दिया था। सिंहविष्णुके राज्यकालके बाद इस राजवंशका इतिहास अधिक सुनिश्चित रीतिसे ज्ञात है। सिंहविष्णु छठी शताब्दी ई० के उत्तरार्धमें सिंहासनपर बैठा। उसके बाद लगभग दो शताब्दियों तक अनेक शक्तिशाली पल्लववंशी राजाओं-ने राज्य किया। इन राजाओंके नाम थे—महेन्द्रवर्मा प्रथम (लगभग ६००–२५ ई०), नरसिंहवर्मा प्रथम (लगभग ६२५–४५ ई०), महेन्द्रवर्मा द्वितीय, परमेश्वर वर्मा, नरसिंहवर्मा द्वितीय, परमेश्वरवर्मा द्वितीय, महेन्द्र वर्मा तृतीय, नन्दीवर्मा (लगभग ७१७–८२ ई०), दंति वर्मा, नन्दीवर्मा द्वितीय तथा अपराजित।

पल्लव राज्यकालके इतिहासकी सबसे मुख्य विशेषता यह है कि इसके पूर्वार्धकालमें इस वंशके राजाओंका वातापी-के चालुक्य राजाओंके साथ तथा उत्तरार्ध कालमें मान्यखेट-के राष्ट्रकूट राजाओंके साथ अनवरत युद्ध चलता रहा। महेन्द्रवर्मा प्रथम महान् वास्तु-निर्माता था। उसने पत्थरोंको तराशकर अनेक मदिर बनवाये। उसने महेन्द्र तालाब भी खुदवाया। उसे लगभग ६१० ई० में चालुक्य राजा पुलकेशी द्वितीय (दे०)ने पराजित कर दिया और वह उसे वेङ्गि प्रात सौंप देनेके लिए विवश हुआ। महेन्द्रके पुत्र तथा उत्तराधिकारी नरसिंहवर्मा (दे०)ने ६४२ ई०में पुलकेशी द्वितीयको परास्त कर दिया, उसकी राजधानी वातापीपर अधिकार कर लिया और उसका वध कर दिया। परतु चालुक्योंने ६५५ ई० में इस हारका बदला ले लिया। चालुक्य राजा विक्रमादित्य प्रथमने पल्लव राजा परमेश्वरवर्माको पराजित कर राजधानी काचीपर अधिकार कर लिया।

इसके बाद पल्लव राज्यशक्ति क्षीण होने लगी। लगभग ७४० ई० में पल्लव राजा नन्दीवर्मा प्रथमको चालुक्य राजा विक्रमादित्य द्वितीयने परास्त कर उसकी राजधानी काचीपर पुन अधिकार कर लिया। नन्दीवर्मा-के उत्तराधिकारी दतिवर्माको राष्ट्रकूट राजा गोविन्द तृतीय (दे०)ने परास्त कर दिया। अगले पल्लव राजाने राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष प्रथमकी पुत्रीसे विवाह करके अपनी राज्यशक्ति सुदृढ करनेका प्रयास किया। परतु यह विवाह-सम्बध अधिक समय तक, पल्लववंशकी रक्षा नहीं कर सका। नवी शताब्दीके अतमें चोल राजा आदित्य प्रथमने पल्लव राजा अपराजितको परास्त करके पल्लव-वंशका अत कर दिया। इसके बाद पल्लव राज्य चोलोंके राज्यके अतर्गत आ गया।

प्रारम्भिक पल्लव राजाओंने अनेक मदिरोंका निर्माण

कराया। उन्होंने मामल्लपुरम् अथवा महाबलिपुरम् नगर-की स्थापना की और वहांपर पांच रथ-मंदिरोंका निर्माण कराया। इनमें से प्रत्येक रथ एक-एक चट्टानको काटकर बनाया गया है। इनपर सुन्दर मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। ये मंदिर वास्तुकलाकी आश्चर्यजनक कृति हैं। कांचीमें पल्लव राजाओंके बनवाये बहुत-से मंदिर हैं। उन्होंने कांचीको एक प्रकारसे मंदिरोंका नगर बना दिया। पल्लव राजा अधिकांशतः हिन्दूधर्मानुयायी थे। उनमेंसे कुछ विष्णुके उपासक थे और कुछ शिवके।

पलासीकी लड़ाई–राबर्ट क्लाइव (दे०)के नेतृत्वमें ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेना और बंगालके नवाब सिराजुद्दौला-की सेना के बीच २३ जून १७५७ ई० को की गयी। नवाबके प्रमुख सेनाध्यक्ष मीर जाफर तथा उसके सहयोगियोंके विश्वासघातके कारण लड़ाई कुछ घंटे ही चली—सुबह आरम्भ हुई तथा दोपहर तक समाप्त हो गयी। फलतः नवाबकी हार हुई। इसे लड़ाई न कहकर झड़प कहना अधिक युक्तिसंगत होगा। फिर भी इसके गम्भीर परिणाम हुए। नवाब सिराजुद्दौला, जो युद्धभूमिसे भाग गया था शीघ्र बंदी बना लिया गया और उसकी हत्या कर दी गयी। विजयी अंग्रेजी सेना अपनी कठपुतली, विश्वासघाती मीर जाफरको लेकर मुर्शिदाबादकी ओर बढ़ी और उसके पहुँचते ही मुर्शिदाबादने बिना किसी लड़ाईके आत्मसमर्पण कर दिया। मीर जाफरको बंगालका नवाब घोषित कर दिया गया। मीर जाफर ने सारा खजाना राबर्ट क्लाइव तथा उसके सहयोगी अंग्रेजोंको पुरस्कृत करनेमें लुटा दिया और पूरी तरहसे वह अंग्रेजोंका आश्रित हो गया। अंग्रेज एक प्रकारसे बंगालके सर्वेसर्वा बन गये। बंगालकी जो दौलत उनके हाथ लगी, उसने उनको भारतमें फ्रांसीसियों-पर विजय प्राप्त करनेमें बहुत मदद दी। फ्रांसीसियोंके साथ उनका जो युद्ध हुआ, वह कर्नाटक युद्धके नामसे विख्यात है।

पल्लीलोरकी लड़ाई–१७८१ ई० में मैसूरके हैदरअली (दे०) और सर आयरकूट तथा जनरल पियर्सके नेतृत्वमें कम्पनीकी सेनाओंके बीच हुई। इस लड़ाईमें हैदरअली हार गया और उसकी रोकथाम कर दी गयी।

पँवार–देखिये, 'परमार'।

पांडव–राजा पांडुके पुत्र, जो पाँच भाई थे। महाभारतमें उनकी और कौरवोंकी प्रतिद्वन्द्विता तथा लड़ाईका वर्णन है।

पांडिचेरी–मद्राससे कुछ मील दक्षिण भारतके पूर्वी तटपर स्थित एक बंदरगाह। इसकी स्थापना १६७४ ई० में फ्रांकोइस मर्टिनने की, जो फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनीका कर्मचारी था। १६९३ ई० में इसपर डच लोगोंने अधिकार कर एक मजबूत किला बनाया। १६९९ ई० में यह फ्रांसीसी लोगोंको किलेके साथ वापस मिल गया। मार्टिन-ने समृद्ध नगरके रूपमें इसका विकास किया और यह भारतमें फ्रांसीसी साम्राज्यकी राजधानी बना दिया गया। फ्रांसीसी लोगोंके पास बंगालमें चन्द्रनगर, मलाबारमें माहे तथा कारोमंडल तटपर कारिकलकी बस्तियां थीं। अंग्रेजोंने १७४५ ई० में और पुनः १७४७ ई० में पांडिचेरीपर कब्जा करनेकी कोशिश की, परंतु सफल नहीं हुए। अंतमें उन्होंने १७६१ ई० में इसपर अधिकार कर लिया। इसके छिन जानेसे भारतमें फ्रांसीसी साम्राज्यका अंत हो गया। १७६३ ई० में इसे फ्रांसीसी लोगोंको लौटा दिया गया, किंतु इसकी किलेबंदी तोड़ दी गयी और यहांपर रखी जानेवाली सेनाकी संख्यापर कड़ी पाबंदी लगा दी गयी। इसके बादमें यह भारतमें फ्रांसीसी बस्तियोंकी राजधानी बना रहा। भारतके स्वाधीन होनेके बाद पांडिचेरी तथा भारतकी अन्य फ्रांसीसी बस्तियोंका शांतिपूर्ण रीतिसे भारतीय गणराज्यमें विलयन कर दिया गया। इसका शासन अब केन्द्र-शासित क्षेत्रके रूपमें होता है। इसकी एक निर्वाचित विधान सभा है और लोकप्रिय सरकार-के द्वारा इसका शासन संचालित होता है। ब्रिटिश शासन-कालमें अरविन्द घोष (दे०)ने ब्रिटिश भारतसे भाग कर पांडिचेरीमें शरण ली और वहाँ एक आश्रमकी स्थापना की थी। संसारके विविध देशोंसे श्री अरविन्दके भक्तगण यहाँ आते रहते हैं।

पाड्य–उत्तरमें वेल्लास नदीके दक्षिणी भागसे लेकर दक्षिणमें केप कमोरिन तथा पूर्वमें कारोमंडल तटसे लेकर पश्चिममें त्रावणकोरके मार्गपर पड़नेवाले अच्चनकोविल दर्रे तकका प्रदेश पांड्यवंशी राजाओंका शासित क्षेत्र होनेके कारण पांड्य देश कहलाता था। इस प्रकार पांड्य राज्य आधुनिक मदुरा तथा तिन्नेवेल्ली जिलोंमें तथा त्रावणकोरके उस भूभागमें जिसमें केप कमोरिन स्थित है, विस्तृत था। उसकी राजधानी मदुरा थी। दूर-दूरके देशोंके साथ इस राज्यके व्यापारिक सम्बंध थे। यह व्यापार कोर्कै और बादमें कयाल बंदरगाहसे होता था। ईसवी सन्‌की पहली शताब्दीमें प्लिनीने इसे एक अत्यंत समृद्ध देश बताया है। पेरिप्लस (लगभग ८० ई०) तथा टालमी (लगभग १४० ई०)ने भी इसकी सम्पन्नताका उल्लेख किया है। मेगस्थनीजने भी, जो चौथी शताब्दी ई० पू० में आया था, इस देशका नाम सुना था और वह इसकी उत्पत्ति हेराक्लीजकी पुत्रीसे मानता था। यह कपोलकथा मात्र

गया। पूर्वी बंगाल (जो अब 'बंगला देश' बन गया है), उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रांत, सिंध तथा पश्चिमी पंजाबको मिलाकर बनाये गये पश्चिमी पाकिस्तानमें एक हजारसे अधिक मीलके फासलेपर था। प्रारम्भमें पाकिस्तानकी राजधानी कराची हुई और मुहम्मद अली जिन्ना उसके पहले गवर्नर-जनरल नियुक्त किये गये। पाकिस्तानको 'इसलामी राज्य' घोषित किया गया और वहां संसदीय लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था स्थापित की गयी। परन्तु १९४८ ई० में जिन्नाकी मृत्यु के बाद संविधानकी धाराओंके अनुसार शासन चलाना कठिन हो गया। पाकिस्तानका पहला संविधान २३ मार्च १९५६ ई० को लागू हुआ, जिसके अनुसार जनरल इसकंदर मिर्जाको पहला अस्थायी प्रेसीडेंट चुना गया। जनरल इसकंदर मिर्जाने ७ अक्तूबर १९५८ ई०को पाकिस्तानका संविधान रद्द करके फौजी शासनकी स्थापना कर दी, जो दिसम्बर १९७१ ई० तक चलता रहा। २७ अक्तूबर १९५८ ई० को जनरल अयूब खाने जनरल इसकंदर मिर्जाको अपदस्थ कर दिया। २५ मार्च १९७० ई०को जनरल याहिया खाने जनरल अयूब खांका स्थान ले लिया। दिसम्बर १९७१ ई० के भारत-पाकिस्तान युद्धमें हारनेके बाद जनरल याहिया खांको शासन-सत्ता जुल्फिकार अली भुट्टोके हाथमें सौंप देनी पड़ी।

पाकिस्तानी शासकोंने पिछले २६ सालोंमें भारतके प्रति संघर्ष और टकरावकी जो नीति बरती, उसके फलस्वरूप दोनों देशोंके बीच चार युद्ध हो चुके हैं—पहला १९४८-४९ ई० में, दूसरा अप्रैल १९६५ ई० में, तीसरा अगस्त १९६५ ई० में और चौथा दिसम्बर १९७१ ई० में।

पाकिस्तानी शासकोंने पूर्वी पाकिस्तानको पश्चिमी पाकिस्तानका उपनिवेश जैसा भाग मानकर उसके प्रति जो भेदभावपूर्ण नीति बरती, उसके फलस्वरूप १८ अप्रैल १९७१ ई० को शेख मुजीबुर्रहमानके नेतृत्वमें उसने पाकिस्तानसे अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया और 'बंगला देश'के नामसे स्वतन्त्र राज्य घोषित कर दिया। बंगला देशपर बलात् अधिकार रखनेवाली पाकिस्तानी सेनाओंने १६ दिसम्बर १९७१ ई०को ढाकामें भारतीय सेनाओं और बंगला देशकी मुक्तवाहिनीकी संयुक्त कमानके सामने बिना शर्त आत्मसमर्पण कर दिया। २६ महीने बाद २२ फरवरी १९७४ ई०को पाकिस्तानने बंगला देशको मान्यता प्रदान कर दी।

बंगला देशके निर्माणके फलस्वरूप पाकिस्तानका इसलामी गणराज्य अब पश्चिमी पाकिस्तान तक सीमित रह गया है। बंगला देश भी भारतकी भांति धर्मनिरपेक्ष गणराज्य है। पिछले २६ वर्षोंमें पाकिस्तानके उथल-पुथल-से भरे इतिहासमें उसके तीन संविधान बन चुके हैं। उसका नया संविधान १४ अगस्त १९७३ ई० को लागू हुआ। इसके अन्तर्गत पाकिस्तानको 'इसलामी गणराज्य' घोषित किया गया है। संविधानमें प्रधान मंत्रीको विशेष अधिकार प्रदान किये गये हैं।

पाटलिपुत्र—मगधके राजाओंकी प्रसिद्ध राजधानी। सोन और गंगा नदीके संगमपर आधुनिक पटना तथा बांकीपुरके निकट स्थित। पाटलिपुत्रका दुर्ग राजा अजातशत्रु (लगभग ४९४–४६७ ई० पू०)ने बनवाया और उसके पौत्र उदयी (लगभग ४४३–४१८ ई० पू०)ने पाटलिपुत्र दुर्गके पड़ोसमें गंगा तटपर कुसुमपुरकी स्थापना की। दोनों नगर शीघ्र मिलकर एक हो गये और मौर्य राजा चन्द्रगुप्तके अधीन पाटलिपुत्र नगरका राजधानीके रूपमें विकास हुआ। नगरके चारों ओर लकड़ीकी प्राचीर बनी हुई थी, जिसमें ५७० बुर्ज तथा ६४ द्वार थे। प्राचीरके बाहर नगरकी रक्षाके निमित्त गहरी खाई थी, जिसमें सोन नदीका पानी भरा रहता था। प्राचीरके भीतर राजाका महल था, जिसके ध्वंसावशेष आधुनिक कुमराहार ग्रामके निकट मिले हैं। राजाका महल इतना भव्य था कि मेगस्थनीज (दे०)ने उसके सामने सूसा तथा एकबतानाके राजमहलों-को हेय बताया था। राजमहल लकड़ीका बना हुआ था और अब लगभग नष्ट हो गया है। बादमें अशोकने नगरके अंदर पत्थरका महल बनवाया। यह महल भी नष्ट हो गया है, किंतु पांचवीं शताब्दी ई० में जब फाहियान पाटलिपुत्र आया था, यह वर्तमान था। चीनी यात्री इस भव्य महलको देखकर इतना चकित हो गया कि उसे विश्वास नहीं हुआ कि यह मनुष्योंका बनाया हुआ है, वह इसे असुरोंके द्वारा निर्मित समझता था।

पाटलिपुत्र शुंग (दे०) और कण्व (दे०) वंशके राजाओंकी भी राजधानी रहा। उड़ीसाके राजा खारवेल (दे०) और संभवतः भारतीय यवन राजा मिनाण्डर (दे०)ने इसपर आक्रमण किया, फिर भी नगर फलता-फूलता रहा। यह गुप्त सम्राटोंकी राजधानी रहा, जिन्होंने ३२० ई० से ५०० ई० तक राज्य किया। उनका राज्यकाल भारतीय इतिहासका स्वर्णकाल माना जाता है और पाटलिपुत्र उस युगमें भारतीय संस्कृति और सभ्यताका महान् केन्द्र था। गुप्तवंशके पतनके बाद इस नगरका महत्त्व घटने लगा। सातवीं शताब्दी ई० में इसका स्थान कन्नौज (दे०)ने ले लिया। बादमें नवीं शताब्दीमें पाल राजाओंने मुद्गगिरि (मुंगेर)को अपनी राजधानी बनाया। मुसल-

है, किंतु यह सही है कि पाड्य देशमें मातृसत्ताक व्यवस्था प्रचलित थी। संस्कृत वैयाकरण कात्यायनने भी, जो चौथी शताब्दी ई० पू० में हुआ, पाड्य देशका वर्णन किया है। मार्कोपोलो (दे०)के यात्रा-वृत्तांतमें पाड्य देशके बारेमें काफी जानकारी मिलती है। उसने दो बार १२८८ ई० में और १२९३ ई० में पाड्य देशकी यात्रा की थी। वह पाड्य राजा और प्रजाके धन और ऐश्वर्यको देखकर चकित रह गया था।

यद्यपि प्राचीन तमिल साहित्यमें पाड्य राज्यका महत्त्व-पूर्ण वर्णन है, तथापि उसके प्राचीन इतिहासके बारेमें अधिक जानकारी नही मिलती। सबसे पहला पाड्य राजा जिसकी तिथि निश्चित रूपसे निर्धारित की जा सकी है (दूसरी शताब्दी ई०), नेडुचेलियन था। पाड्य और पल्लव (दे०) राजाओंके बीच बराबर युद्ध होते रहते थे, जो कई शताब्दियो तक चलते रहे। प्रतीत होता है कि पाड्य राजाओंकी अपेक्षा पल्लव राजा अधिक शक्ति-शाली सिद्ध हुए और ८६२–६३ ई० में पल्लव राजा अपराजितने पाड्य राजाको परास्त कर दिया। किंतु पल्लवोंको चोल राजाओंने परास्त कर दिया और लगभग ९९४ ई० से तेरहवी शताब्दीके अंत तक पाड्य राजा भी चोल राजाओंकी अधीनतामें रहे।

इस बीच पाड्य राजाओंको अक्सर सिंहल (श्रीलंका)के राजाओंसे भी युद्ध करना पड़ता था। ११०० ई० से १५६७ ई० के बीच सत्रह पाड्य राजाओंने कभी स्वतंत्र रूपसे और कभी करद राजाके रूपमें राज्य किया। इनमें जटावर्मा सुन्दर सबसे शक्तिशाली राजा था। उसने १२५१ से १२७१ ई० तक राज्य किया। वह नेल्लोरसे लेकर केप कमोरिन तक सारे पूर्वी तटका स्वामी था। १३१० ई०मे सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीके सेनानायक मलिक कफूर (दे०) के नेतृत्वमें मुसलमानोने पाड्य राज्यको रौंद डाला। इसके बाद पाड्य राजाओंकी स्थिति पलायगार (स्थानीय जमींदार)के समान हो गयी। पाड्य देशको मुसलमान 'मअबर' कहते थे। मुहम्मद तुगलकके राज्य-काल तक पाड्य देश दिल्ली सल्तनतके अधीन रहा। १३३५ ई० मे वहाके मुसलमान सूबेदार जलालुद्दीन अहसान-शाह (दे०)ने अपनेको स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया। उसके वंशने १३७८ ई० तक पाड्य देशपर राज्य किया। इसके बाद पाड्य देश विजयनगरके हिन्दू साम्राज्यमें सम्मिलित कर लिया गया।

पाकिस्तान—यह नाम १९३३ ई० मे चौधरी रहमत अलीने गढा। अंग्रेजीमे पजाब 'पी'में, अफगान (सीमाप्रात) 'ए' में, कश्मीर 'के' में तथा सिंध 'एस' में लिखा जाता है। अतएव इन चारो प्रातोंके प्रथम अक्षरोंको मिलाकर अंग्रेजीमे PAKS (पाक्स) शब्द बनता है। इसमें 'स्तान' (स्थान) प्रत्यय लगाकर उसने पाकिस्तान शब्द बनाया, जिसका अर्थ उसने किया 'पाक देश'। यहांपर स्मरण रखना चाहिए कि पाकिस्तानका निर्माण करनेके लिए जिन चार प्रातोंको चुना गया था, वे सभी मुसलिम बहुमतवाले प्रात थे। १९३० ई० में सर मुहम्मद इकबालने भारत संघके अंतर्गत उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रात, बलूचिस्तान, सिंध तथा कश्मीरके प्रातोंका एक अलग मुसलिम राज्य बनानेका सुझाव दिया था।

१९४० ई० मे मुसलिम लीगने पाकिस्तानकी स्थापना अपना लक्ष्य बना लिया। जैसे-जैसे यह स्पष्ट होता गया कि अंग्रेज अब भारतीयोंके हाथमें सत्ता हस्तांतरण कर देंगे, वैसे-वैसे भारतीय मुसलमानोंको भय होने लगा कि उन्हें हिन्दुओंके बहुमतके शासनमें रहना पड़ेगा और मुहम्मद अली जिन्ना (दे०)के नेतृत्वमें उन्होंने माग की कि उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रात, सिंध, कश्मीर तथा बंगालको मिलाकर पाकिस्तान बना दिया जाय और भारतका विभाजन—हिन्दुस्तान और पाकिस्तान—ऐसे दो राज्योंमें कर दिया जाय। इतिहासकी दृष्टिसे भारतके विभाजनकी माग गलत थी और न देश और न देशवासियोंके हितमें थी। परंतु 'फूट डालो और शासन करो'की नीतिके अनुसार अंग्रेजोंने बहुत समय पहले ही मुसलमानोंकी साम्प्रदायिक आधारपर पृथक् निर्वाचन क्षेत्रोंकी माग स्वीकार कर ली थी और अब वे पृथक् राज्यकी माग अस्वीकार नही कर सकते थे। कुछ ब्रिटिश अधिकारियोंने भी पाकिस्तानकी मागका समर्थन किया। इससे उत्साहित होकर मुसलमानोंने लूट, आगजनी, बलात्कार तथा हत्याओंके रूपमें सारे देश-में, और विशेष रूपसे पंजाब, सिंध तथा बंगालके मुसलिम बहुमतवाले प्रातोंमें 'सीधी कारवाई' शुरू कर दी। देशमें अराजकताकी स्थिति उत्पन्न होने लगी और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने अगस्त १९४७ ई० में स्वाधीनता पानेकी बेचैनीमें देशके विभाजन तथा पाकिस्तानके निर्माणकी माग स्वीकार कर ली।

पाकिस्तानमें उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रात, बलूचिस्तान, सिंध, पश्चिमी पंजाब तथा पूर्वी बंगालको सम्मिलित किया गया। इस प्रकार मुसलिम लीगकी इच्छाके विपरीत पाकिस्तान दो हिस्सोंमें बटा हुआ था। कश्मीरने पहले तो हिन्दुस्तान तथा पाकिस्तान दोनोंमेंसे किसी राज्यमें मिलनेसे इनकार कर दिया, बादमें वह हिन्दुस्तानमें मिल

गया। पूर्वी बंगाल (जो अब 'बंगला देश' बन गया है) उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त, सिंध तथा पश्चिमी पंजाबको मिलाकर बनाये गये पश्चिमी पाकिस्तानसे एक हजारसे अधिक मीलके फासलेपर था। प्रारम्भमें पाकिस्तानकी राजधानी कराची हुई और मुहम्मद अली जिन्ना उसके पहले गवर्नर-जनरल नियुक्त किये गये। पाकिस्तानको 'इस्लामी राज्य' घोषित किया गया और वहां संसदीय लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था स्थापित की गयी। परन्तु १९४८ ई० में जिन्नाकी मृत्यु के बाद संविधानकी धाराओंके अनुसार शासन चलाना कठिन हो गया। पाकिस्तानका पहला संविधान २३ मार्च १९५६ ई० को लागू हुआ, जिसके अनुसार जनरल इसकन्दर मिर्जाको पहला अस्थायी प्रेसीडेंट चुना गया। जनरल इसकन्दर मिर्जाने ७ अक्तूबर १९५८ ई०को पाकिस्तानका संविधान रद्द करके फौजी शासनकी स्थापना कर दी, जो दिसम्बर १९७१ ई० तक चलता रहा। २७ अक्तूबर १९५८ ई० को जनरल अयूब खाने जनरल इसकन्दर मिर्जाको अपदस्थ कर दिया। २५ मार्च १९७० ई० को जनरल याहिया खाने जनरल अयूब खाका स्थान ले लिया। दिसम्बर १९७१ ई० के भारत-पाकिस्तान युद्धमें हारनेके बाद जनरल याहिया खाको शासन-सत्ता जुल्फिकार अली भुट्टोके हाथमें सौंप देनी पड़ी।

पाकिस्तानी शासकोंने पिछले २६ सालोंमें भारतके प्रति संघर्ष और टकरावकी जो नीति बरती, उसके फलस्वरूप दोनो देशोंके बीच चार युद्ध हो चुके हैं—पहला १९४८-४९ ई० में, दूसरा अप्रैल १९६५ ई० में, तीसरा अगस्त १९६५ ई० में और चौथा दिसम्बर १९७१ ई० में।

पाकिस्तानी शासकोंने पूर्वी पाकिस्तानको पश्चिमी पाकिस्तानका उपनिवेश जैसा भाग मानकर उसके प्रति जो भेदभावपूर्ण नीति बरती, उसके फलस्वरूप १८ अप्रैल १९७१ ई० को शेख मुजीबुर्रहमानके नेतृत्वमें उसने पाकिस्तानसे अपना सम्बंध-विच्छेद कर लिया और 'बंगला देश'के नामसे स्वतंत्र राज्य घोषित कर दिया। बंगला देशपर बलात् अधिकार रखनेवाली पाकिस्तानी सेनाओंने १६ दिसम्बर १९७१ ई०को ढाकामें भारतीय सेनाओं और बंगला देशकी मुक्तवाहिनीकी संयुक्त कमानके सामने बिना शर्त आत्मसमर्पण कर दिया। २६ महीने बाद २२ फरवरी १९७४ ई०को पाकिस्तानने बंगला देशको मान्यता प्रदान कर दी।

बंगला देशके निर्माणके फलस्वरूप पाकिस्तानका इस्लामी गणराज्य अब पश्चिमी पाकिस्तान तक सीमित रह गया है। बंगला देश भी भारतकी भांति धर्मनिरपेक्ष

मानी शासनकालमें पाटलिपुत्रका महत्त्व और घट गया और अब पटना (दे०) नगर, जो प्राचीन पाटलिपुत्रके निकट स्थित है, बिहार राज्यकी राजधानी है।

पाटिंगर, एल्ड्रेड–ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें नियुक्त एक अंग्रेज जनरल। उसने १८३८ ई० में फारसके हमलेके विरुद्ध हेरातकी रक्षा की।

पाटिंगर, सर हेनरी–सिंधमें ईस्ट इंडिया कम्पनीके द्वारा नियुक्त पहला ब्रिटिश रेजिडेंट। उसने १८३२ ई० में सिंधके अमीरोंसे संधि-वार्ता की, जिसके फलस्वरूप अंग्रेजोंके लिए दक्षिणी सिंधु नदीमें नावें चलाकर व्यापार करनेका रास्ता खुल गया।

पाणिनि–प्रसिद्ध संस्कृत वैयाकरण। वे चौथी शताब्दी ई० पू० के पूर्व हुए। उनकी 'अष्टाध्यायी' नामक रचना संस्कृतके व्याकरण-ग्रंथोंमें सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है।

पाणिनि–एक संस्कृत कवि, जो वैयाकरण पाणिनिसे भिन्न थे। संस्कृत कवियोंमें उनका नाम आदरसे लिया जाता था और संस्कृत काव्यग्रंथोंमें उनकी कविताओंके उद्धरण मिलते हैं।

पानचाओ–एक चीनी सेनापति, जिसने ७३ ई० और १०२ ई० के बीच किसी समय खोतानमें बढ़कर कदफिसस द्वितीयकी आक्रमणकारी सेनाओंको खदेड़ दिया और उसे चीनी सम्राट हो-ती (८९–१०५ ई०) को कर देनेके लिए विवश किया।

पान यांग–चीनी सेनापति पान-चाओ (दे०)का पुत्र और अपने पिताकी भाँति तुर्किस्तानका चीनी शासक। वह योग्य प्रशासक ही नहीं, इतिहासकार भी था। उसने लिखा है कि १५२ ई० में खोतान चीनी साम्राज्यसे निकल गया। उसका यह वक्तव्य उस धारणासे मिलता है कि कनिष्क (लगभग १२०–१६२ ई०) ने १२५ ई० तथा १६० ई० के बीच खोतान तथा उसके आसपासके क्षेत्रको जीत लिया था।

पानीपत–तीन भाग्यनिर्णायक लड़ाइयाँ यहाँ हुईं, जिन्होंने भारतीय इतिहासकी धारा मोड़ दी। पानीपतकी पहली लड़ाई २१ अप्रैल १५२६ ई० को दिल्लीके सुल्तान इब्राहीम लोदी (दे०) और मुगल आक्रमणकारी बाबरके बीच हुई। इब्राहीमके पास एक लाख फौज थी। उधर बाबरके पास केवल १२००० फौज तथा बड़ी संख्यामें तोपें थीं। रणविद्या, सैन्य-संचालनकी श्रेष्ठता तथा तोपोंके प्रभावशाली प्रयोगके कारण बाबरने इब्राहीम लोदीके ऊपर निर्णयात्मक विजय प्राप्त की। लोदी रणभूमिमें मारा गया। पानीपतकी पहली लड़ाईके फलस्वरूप दिल्ली और आगरापर बाबरका दखल हो गया और उससे भारतमें मुगल राजवंशका प्रचलन हुआ।

पानीपतकी दूसरी लड़ाई ५ नवम्बर १५५६ ई० को अफगान बादशाह आदिलशाह सूर (दे०) के योग्य हिन्दू सेनापति और मंत्री हेमू (दे०) और अकबरके बीच हुई, जिसने अपने पिता हुमायूँ (दे०) से दिल्लीका तख्त पाया था। हेमूके पास अकबरसे कहीं अधिक बड़ी सेना तथा १,५०० हाथी थे। प्रारम्भमें मुगल सेनाके मुकाबलेमें हेमूको सफलता प्राप्त हुई, परंतु संयोगवश एक तीर हेमूकी आँखमें घुस गया और उसने युद्धका पासा पलट दिया। तीर लगनेसे हेमू अचेत होकर गिर पड़ा और उसकी सेना भाग खड़ी हुई। हेमूको गिरफ्तार कर लिया गया और उसे किशोर अकबरके सामने ले जाया गया। अकबरने उसका सिर धड़से अलग कर दिया। पानीपतकी दूसरी लड़ाईके फलस्वरूप दिल्ली और आगरा अकबरके कब्जेमें आ गये। इस लड़ाईके फलस्वरूप दिल्लीके तख्तके लिए मुगलों और अफगानोंके बीच चलनेवाला संघर्ष अंतिम रूपसे मुगलोंके पक्षमें निर्णीत हो गया और अगले तीन सौ वर्षों तक दिल्लीका तख्त मुगलोंके पास रहा।

पानीपतकी तीसरी लड़ाई १४ जनवरी १७६१ ई० को अफगान आक्रमणकारी अहमदशाह अब्दाली (दे०) और मुगल बादशाह शाहआलम द्वितीय (दे०) के संरक्षक और सहायक मराठोंके बीच हुई। इस लड़ाईमें मराठा सेनापति सदाशिव राव भाऊ अफगान सेनापति अब्दालीसे लड़ाईके दाव-पेचोंमें मात खा गया। अवधका नवाब शुजाउद्दौला और रुहेला सरदार नजीब खाँ अब्दालीका साथ दे रहे थे। अब्दालीने घमासान युद्धके बाद मराठा सेनाओंको निर्णयात्मक रूपसे हरा दिया। सदाशिव राव भाऊ, पेशवाके होनहार तरुण पुत्र और अनेक मराठा सरदारोंने युद्धभूमिमें वीरगति पायी। इस हारसे मराठोंकी राज्यशक्तिको भारी धक्का लगा। युद्धके छह महीने बाद ही भग्नहृदय पेशवा बालाजीरावकी मृत्यु हो गयी।

पानीपतकी तीसरी लड़ाईने भारतका भाग्य निर्णय कर दिया जो उस समय अधरमें लटक रहा था। मुगल बादशाह अपने पुराने शत्रु मराठोंकी सहायतासे भी अपनी रक्षा न कर सका। इस हारसे पेशवाका दबदबा समाप्त हो गया और वह मराठा सरदारोंके ऊपर अपना नियंत्रण कायम नहीं रख सका। मराठा संघकी एकता भंग हो जानेसे मुगल साम्राज्यके खंडहरोंपर मराठा राज्यकी स्थापनाका अवसर हाथसे निकल गया। अहमदशाह अब्दाली भी अपनी इस जीतसे कोई फायदा न उठा सका।

यह जीत उसके लिए बड़ी महँगी साबित हुई। इसके बाद ही उसकी विजयी सेनामें विद्रोहका भय उत्पन्न हो गया। अतः दिल्लीके तख्तपर अपना कब्जा मजबूत बनानेसे पहले ही उसे अफगानिस्तान वापस लौट जाना पड़ा।

पानीपतकी तीसरी लड़ाईमें मराठोंको जो क्षति उठानी पड़ी, मुगलोंका जो पराभव शुरू हो गया तथा मुसलमान शासकोंमें जो अनेकता वर्तमान थी, उसके फलस्वरूप भारतमें ब्रिटिश शक्तिके उदयकी दिशामें काफी सहायता मिली।

पामर एण्ड कम्पनी काण्ड—यह कम्पनी साहूकारीकी एक फर्म थी, जिसकी एक शाखा निजाम हैदराबादमें भी थी। फर्मकी एक साझेदार महिला रमबोल्डका अभिभावक गवर्नर-जनरल लार्ड हेस्टिंग्स (१८१३—२३ ई०) था। ब्रिटिश पार्लियामेण्टने कानून बनाकर यूरोपीय लोगों द्वारा देशी रियासतोंमें लेन-देन करनेपर रोक लगा दी थी, फिर भी लार्ड हेस्टिंग्सने रमबोल्डके प्रति अपने स्नेहके कारण फर्मसे निजामको रुपया उधार देनेकी इजाजत दे दी। नये रेजिडेंट चार्ल्स मेटकाफने जब इस अनियमितताकी ओर संकेत किया, तब भी उसने कोई हस्तक्षेप नहीं किया। इस काण्डके कारण लार्ड हेस्टिंग्सको गवर्नर-जनरलके पदसे हटा दिया जानेवाला था, परन्तु राजा जार्ज चतुर्थके हस्तक्षेपसे उसे अपने पदपर बना रहने दिया गया। फिर भी इस घटनाके फलस्वरूप कोर्ट आफ डाइरेक्टर्ससे उसके सम्बन्ध हमेशाके लिए खराब हो गये।

पामर, जनरल सर आर्थर पावर (१८४०—१९०४ ई०)—१८५७ ई० में भारतीय सेनाका एक अफसर नियुक्त हुआ। उसने १८५७—५८ ई० में गदरका दमन करनेमें, १८६३-६४ ई० में मोहमद कबीलेके खिलाफ लड़ाईमें, १८७४-७५ ई० में दफला अभियानमें, १८७८—७९ ई० में अफगान युद्धमें तथा १८९७—९८ ई० में तिरहके युद्धमें भाग लिया। वह १९०० से १९०२ ई० में अवकाश ग्रहण करने तक भारतका प्रधान सेनापति रहा। उसने ब्रिटिश भारतीय सेनामें कई सुधार किये।

पामर्स्टन, लार्ड—एक प्रमुख ब्रिटिश राजनेता, वह १८३० से १८४१ ई० तक इंग्लैण्डका विदेश-मंत्री रहा। १८३३ ई० में रूसने तुर्कीके साथ अनकियार स्केलेसीकी जो संधि की, और जिसके फलस्वरूप रूसने एक सीमा तक तुर्कीपर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया, उसकी उसके ऊपर तीव्र प्रतिक्रिया हुई। पामर्स्टनको भय था कि इस संधिका भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यके विरुद्ध उपयोग किया जायगा। इसलिए वह अफगानिस्तानको ब्रिटिश प्रभाव क्षेत्रमें लानेको उत्सुक था ताकि रूसपर दबाव डालनेके लिए अफगानिस्तानका उपयोग किया जा सके। लार्ड पामर्स्टनकी इस रूस-विरोधी नीतिने लार्ड आकलैंडको जिस नीतिपर चलनेके लिए विवश किया उसके फलस्वरूप पहला अफगान-युद्ध (१८३९—४२ ई०) (दे०) हुआ।

पामीर—२५ ००० फुट ऊँची एक पर्वत-शृंखला, जिसे संसारकी छत कहा जाता है। यह भारतको सोवियत संघसे अलग करती है। अनुमान लगाया जाता है कि आर्योंने इस पर्वत-शृंखलाको पार करके भारतमें प्रवेश किया। ऐतिहासिक कालमें कुषाण राजा कनिष्क (दे०)ने इस पर्वत-शृंखलाको पार करके चीनपर हमला करनेके लिए एक सेना भेजी। चौथी शताब्दी ई० में चीनी यात्री फाहियान इस पर्वतमालाको पार कर भारत आया। सातवीं शताब्दी ईसवीमें ह्युएनत्सांग भारतसे लौटते समय इसी पर्वतमालाको लाँघ कर चीन गया। ६५७ ई० में एक चीनी यात्री वाग ह्युएनत्से, जो भारतमें बौद्ध तीर्थस्थानोंमें चीवरदान करने आया था, पामीरके रास्ते चीन वापस लौटा। मध्य एशियामें रूसी राज्यशक्तिका विस्तार होनेपर बीसवीं शताब्दीमें पामीरको नया सामरिक महत्त्व प्राप्त हो गया। (देखिये, 'पंजदेह की घटना')।

पामीरा—सीरियाके रेगिस्तानमें एक नगर। कुषाणकालमें यह भारत और यूरोपके बीच व्यापारका महत्त्वपूर्ण केन्द्र था।

पारसी—जरथुस्त्रके अनुयायी एवं पारस देशके निवासियोंका एक छोटा-सा समुदाय। सातवीं शताब्दी ई० में जब मुसलमान अरबोंने पारस देशको जीता, वे वहाँसे भाग आये और भारतमें शरण ली। पारसी लोग अपने धर्म और संस्कृतिके अनुरक्षणके लिए बड़े सचेष्ट रहते हैं। वे पहले गुजरातके तटपर संजानमें बस गये, उसके बाद बम्बईमें आ बसे। भारतके अल्पसंख्यक वर्गोंमें पारसी सबसे धनी और सबसे उन्नतिशील माने जाते हैं। दादाभाई नौरोजी (दे०), जो ब्रिटिश पार्लियामेण्टके सदस्य निर्वाचित होनेवाले पहले भारतीय थे, पारसी थे। प्रसिद्ध उद्योगपति टाटा भी पारसी हैं। पारसी लोगोंका ज्योतिषशास्त्रमें भारी विश्वास होता है। उनके विवाह समारोहोंमें पुरोहित लोग पहले जेन्द भाषामें और फिर संस्कृत भाषामें मंत्र पढ़ते हैं।

पार्श्वनाथ—जैनोंके तेईसवें तीर्थंकर (मार्गदाता) जो महावीर स्वामी (दे०)से लगभग दो शताब्दी पहले बनारसके एक राजकुलमें उत्पन्न हुए। उन्होंने जैन धर्मका प्रवर्तन किया और चातुर्याम व्रत—अहिंसा, सत्य, अस्तेय तथा अपरिग्रहका उपदेश दिया। छठी शताब्दी ई०पू० में

महावीरने उनके चार व्रतोंमें ब्रह्मचर्यका पाँचवा व्रत और जोड दिया।

पालपाकी लडाई–नेपाल युद्ध (१८१४–१६ ई०)के दौरान ब्रिटिश भारतीय सेना और गोरखाओंके बीच हुई। इस लडाईमे गोरखाओंने ब्रिटिश भारतीय सेनाको हरा दिया। परतु अतमे गोरखाओंको परास्त कर दिया गया।

पालवंश–बगालमे इस वशका उद्भव लगभग ७५० ई० मे गोपालसे हुआ। कुछ समयसे बगालमे अराजकता फैली हुई थी। इसीका अत करनेके लिए जनताने गोपालको राजा निर्वाचित किया। इस वशके सभी अठारह राजाओंके नामका अत पाल शब्द से होता है, अतएव इस राजवशको पालवश कहा जाता है। इस वशने बगालपर लगभग ७५० से ११५५ ई० तक तथा बिहारमे ११९९ ई० मे मुसलमानोकी विजय तक राज्य किया। पालवशके राजाओकी वशावली, विशेषरूपसे चौदहवे राजा रामपाल (लगभग १०७७–११२० ई०)के बाद अस्त-व्यस्त रूपमे मिलती है। फिर भी अस्थायी रूपसे निम्नोक्त वशावलीको सही माना जा सकता है—(१) गोपाल (७५०–७० ई०), (२) धर्मपाल (७७०–८१० ई०) (३) देवपाल (८१०–५० ई०), (४) विग्रहपाल (अथवा सुरपाल) (८५०–५४ ई०), (५) नारायणपाल (८५४–९०८ ई०), (६) राज्यपाल (९०८–४० ई०), (७) गोपाल द्वितीय (९४०–६० ई०), (८) विग्रहपाल द्वितीय (९६०–८८ ई०), (९) महीपाल (९८८–१०३८ ई०), (१०) नयपाल (१०३८–५५ ई०), (११) विग्रहपाल तृतीय (१०५५–७० ई०), (१२) महीपाल द्वितीय (१०७०–७५ ई०), (१३) सुरपाल द्वितीय (१०७५–७७ ई०), (१४) रामपाल (१०७७–११२० ई०), (१५) कुमारपाल (११२०–२५ ई०), (१६) गोपाल तृतीय (११२५–४० ई०), (१७) मदनपाल (११४०–५५ ई०) तथा (१८) गोविन्दपाल (११५५–५९ ई०)।

पालवशका दूसरा शासक धर्मपाल (दे०) इस वशका सबसे महान् राजा था। उसने अपना राज्य कन्नौज तक विस्तृत किया और प्रतिहारों तथा राष्ट्रकूटोंके साथ त्रिकोणात्मक सघर्षमे अपने राज्यको सुरक्षित रखा। उसके पुत्र एव उत्तराधिकारी देवपाल (दे०)ने भी कई युद्धोंको जीता। वह अपनी राजधानी पाटलिपुत्रसे उठाकर बगाल ले गया। उसकी राजसभामे सुमात्राके राजा बालपुत्रदेवका दूत आया था। देवपाल (८१०–५० ई०)के बाद पालवशकी राज्यशक्ति राजाओंकी निर्बलता तथा गूर्जरप्रतिहार राजाओंके आक्रमणोंके कारण क्षीण होने लगी। नवे राजा महीपाल प्रथमके राज्यकालमे चोलराजा राजेन्द्र (दे०)ने लगभग १०२३ ई० मे गगा तकके प्रदेशोको जीता। रामपाल (१०७७–११२० ई०)के राज्यकालमे अस्थायी रूपसे पालोंकी राज्यशक्ति फिर उत्कर्षको प्राप्त होने लगी। किन्तु बारहवी शताब्दीके मध्य तक सेन राजाओं (दे०)ने पाल राजाओंसे बगाल छीन लिया। बादमे ११९९ ई० मे बख्तियारके पुत्र (दे०) इख्तियारुद्दीन मुहम्मदके नेतृत्वमे मुसलमानोंने बिहारमे भी पालवशको समाप्त कर दिया।

पालवशी राजा बौद्ध थे और उनके राज्यकालमे बौद्ध शिक्षाकेन्द्रोंकी बडी उन्नति हुई। नालन्दा (दे०) तथा विक्रमशिला (दे०)के प्रसिद्ध महाविहारोको उनका सरक्षण प्राप्त था। प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु अतिशा (दे०) दसवे पालराजा नयपालके राज्यकालमे उत्पन्न हुआ, जो तिब्बतके राजाके निमत्रणपर तिब्बत गया था। पालवशी राजा कला तथा वास्तुकलाके महान् प्रेमी थे और उन्होंने धीमान (दे०) तथा विटपाल (दे०) जैसे महान् शिल्पियोको सरक्षण प्रदान किया। पाल-कालकी कोई इमारत शेष नही बची है, परन्तु उन्होंने जो बहुतसे जलाशय खुदवाये, उनमे कई, विशेष रूपसे दीनाजपुर जिलेमे बचे हुए है।

पालवंश (कामरूपका)–बगाल तथा बिहारपर राज्य करनेवाले पालवशसे यह भिन्न था। इसकी उत्पत्ति कामरूपमे लगभग १००० ई० मे ब्रह्मपालसे हुई। कहा जाता है कि उसे जनताने स्वय राजा चुना। उसने जिस राजवशको चलाया, उसमे सात राजा—रत्नपाल, इन्द्रपाल, गोपाल, हर्षपाल, धर्मपाल तथा जयपाल हुए। इन राजाओंने कामरूपपर ग्यारहवी शताब्दीके प्रारम्भसे बारहवी शताब्दीके प्रारम्भ तक राज्य किया। दूसरे राजा रत्नपालने २६ वर्षसे अधिक समय तक राज्य किया। उसने दुर्जयको अपनी नयी राजधानी बनाया। दुर्जयकी पहचान अभी तक नही हो सकी है। उसने 'परमेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज'की पदवी धारण की। अतिम राजा जयपालको सभवत बगालके राजा रामपाल (दे०)ने अपदस्थ कर दिया। रामपालके सम्बन्धमे कहा जाता है कि उसने कामरूपको जीता था।

पिगट, लार्ड–मद्रासका गवर्नर (१७७५–७८ ई०)। मद्रासमे कम्पनीके पदाधिकारियोमे जो भ्रष्टाचार व्याप्त था, उसे वह समाप्त नही तो रोकना अवश्य चाहता था। परन्तु उसके अधीनस्थ भ्रष्टाचारी पदाधिकारी उस ईमानदार गवर्नरसे कही अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुए।

उन्होंने उसे अपदस्थ करके कैदखानेमें डाल दिया। मद्रासके कैदखानेमें ही उसकी मृत्यु हो गयी।

पिंडारी (पेंढारी)—अनियमित सवार, जो मराठा सेनाओंके साथ-साथ चलते थे। उन्हें कोई वेतन नहीं दिया जाता था और शत्रुके देशको लूटनेकी इजाजत रहती थी। यद्यपि कुछ प्रमुख पेंढारी नेता पठान थे, तथापि सभी जातियोंके खूंखार और खतरनाक व्यक्ति उनके दलमें सम्मिलित थे। उन्नीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें उनको शिन्देका संरक्षण प्राप्त था। उसने उनको नर्मदा घाटीके मालवा क्षेत्रमें जमीनें दे रखी थीं। वहां से वे मध्यभारतमें दूर-दूर तक धावे मारते थे और अमीरों तथा गरीबोंको समान रूपसे लूटा करते थे। १८१२ ई० में उन्होंने बुंदेलखंडमें, १८१५ ई० में निजामके राज्यमें तथा १८१६ ई० में उत्तरी सरकारमें लूटपाट की। इस तरह उन्होंने ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यकी शांति और समृद्धिके लिए खतरा उत्पन्न कर दिया। अतएव १८१७ ई० में गवर्नर-जनरल लार्ड हेस्टिंग्सने उनके विरुद्ध अभियानके लिए एक बड़ी सेना संगठित की। यद्यपि पेंढारी-विरोधी अभियानके फलस्वरूप तीसरा मराठा-युद्ध (दे०) छिड़ गया तथापि पेंढारियोंका दमन कर दिया गया। उनके पठान नेता अमीर खांको टोंकके नवाबके रूपमें मान्यता प्रदान कर दी गयी। उसने अंग्रेजोंकी अधीनता स्वीकार कर ली। पेंढारियोंका दूसरा महत्त्वपूर्ण नेता चित्तू था। उसका पीछा किया जानेपर वह जंगलोंमें भाग गया, जहां एक चीतेने उसे खा डाला।

रखे जाते थे। बोर्ड यह आग्रह भी कर सकता था कि कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सकी सहमति न होनेपर भी केवल उसीके आदेश भारत भेजे जायें। गवर्नर-जनरलकी नियुक्ति पहलेकी भाँति कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स करता था, परन्तु इंग्लैण्डका राजा उसे वापस बुला सकता था। गवर्नर-जनरलकी कौंसिलके सदस्योंकी संख्या चारसे घटाकर तीन कर दी गयी, जिनमेंसे एक प्रधान सेनापति होता था। कौंसिलके सहित गवर्नर-जनरलको युद्ध, राजस्व तथा राजनीतिक मामलोंमें बम्बई तथा मद्रास प्रेसीडेंसीपर अधिक नियंत्रण प्रदान कर दिया गया। कौंसिलके सहित गवर्नर-जनरलको बोर्ड आफ कंट्रोलकी सहमतिसे कोर्ट अथवा उसकी गुप्त समितिके द्वारा भेजे गये किसी स्पष्ट निर्देशके बिना युद्धकी घोषणा करने अथवा युद्ध शुरु करनेके उद्देश्यसे कोई संधि वार्ता चलानेसे रोक दिया गया। ऐक्टमें बादमें एक संशोधन कर दिया गया, जिसके द्वारा गवर्नर-जनरलको जब वह आवश्यक समझे, अपनी कौंसिलके निर्णयको अस्वीकार कर देनेका अधिकार दे दिया गया।

पिट, विलियम (कनिष्ठ)-ब्रिटेनका १७८३ ई० से १८०१ ई० तक प्रधान मंत्री। उसने मुख्यरूपसे भारतमें ब्रिटिश

करना स्वीकार नही किया। इससे प्रकट होता है कि उसके बारेमे उसका क्या मूल्याकन था।

पिटके प्रधान मन्त्रित्वकालमे लार्ड कार्नवालिस (दे०) (१७८६–९३ ई०), सर जान शोर (दे०) (१७९३–९८ ई०) तथा लार्ड वेल्जली (दे०) (१७९८–१८०५ ई०) गवर्नर-जनरल रहे। लार्ड कार्नवालिससे पिटके सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण थे और उसने उसके बगालमे स्थायी बदोवस्त करनेके प्रस्तावका समर्थन किया। उसने लार्ड वेल्जलीका भी उसके प्रशासनकालके प्रारम्भिक वर्षोमे समर्थन किया। परन्तु जब लार्ड वेल्जलीने युद्धोका एक अतहीन सिलसिला जारी कर दिया तो पिटने उसका समर्थन करना बद कर दिया। १८०५ ई० मे लार्ड वेल्जलीको वापस बुला कर उसके स्थानपर लार्ड कार्नवालिसको भेजा गया। १८०६ ई० मे पिटकी मृत्यु हो गयी।

पितनिक–लोगोका उल्लेख अशोकके शिलालेख सख्या ५ तथा ८ मे मिलता है। ये लोग उसके साम्राज्यकी पश्चिमी सीमाओपर रहते थे।

पिनहेरो, पादरी एमॅनुएल–एक जेशूइट पादरी। १५९५ ई० मे पादरी जेरोय जैवियरके साथ बादशाह अकबरके दरबारमे गया और उसके राज्यकालके अतिम वर्षोमे वही रहा। उन्हे बादशाहने अपनी प्रजाको बपतिस्मा देकर ईसाई बनानेकी इजाजत दे दी। पिनहेरोने अपने देशको जो पत्र लिखे, उनसे उस युगके इतिहासपर अच्छी रोशनी पडती है।

पियर्स, कर्नल ह्यू–ईस्ट इडिया कम्पनीकी सेवामे नियुक्त एक फौजी अफसर। उसने पहले मैसूर-युद्ध (१७६७–६९ ई०)मे स्थल मार्ग द्वारा बगालसे मद्रास जानेवाली एक सेनाका नेतृत्व किया था।

पीर मुहम्मद–तैमूर (दे०)का पौत्र। उसने १३९७ ई० मे तैमूरकी ...न (दे०) गोविन्दपाल (११...कर कच्छ और

पालवशका दूसरा शासक धर्मपाल (सने तैमूरके हमलेके सबसे महान् राजा था। उसने अपना राज्‍ विस्तृत किया और प्रतिहारो तथा राष्ट्रकू... ...कर। पानी-त्मक सघर्षमे अपने राज्यको सुरक्षित रखा ... बाद हेमू एव उत्तराधिकारी देवपाल (दे०)ने भी क... ...जाना जीता। वह अपनी राजधानी पाटलिपुत्रसे उठाकर ... ...के ले गया। उसकी राजसभामे सुमात्राके राजा बालपुत्र देवका दूत आया था। देवपाल (८१०–५० ई०)के बाद पालवशकी राज्यशक्ति राजाओकी निर्बलता तथा गुर्जर-प्रतिहार राजाओके आक्रमणोके कारण क्षीण होने लगी।

गया है और बैरम खाँ-विरोधी दलके समर्थनसे उसे शीघ्र दरबारमे वापस बुला लिया गया। उसे बैरम खाँकी गति-विधियोपर नजर रखनेके लिए नियुक्त किया गया। १५६० ई० मे बैरम खाँका पतन हो जाने तथा उसकी हत्या कर दिये जानेपर, पीर मुहम्मद खाँको अदहम खाँका सहायक सेनापति बनाकर मालवापर आक्रमण करनेके लिए भेजा गया और मालवाको जीत लिया गया। पीर मुहम्मद खाँने मालवामे बदी बनाये गये मुसलमानोके साथ अत्यन्त क्रूरताका व्यवहार करके अपनेको कलकित किया। अदहम खाँके हटा दिये जानेपर वह मालवाका सूबेदार बनाया गया। इसके बाद उसने खानदेशपर हमला किया, किन्तु उसकी फौजोको खदेड दिया गया। नर्मदाको दुबारा पार करते समय वह डूब कर मर गया।

पीस, डैमिनगोस–एक पुर्तगाली यात्री, जो कृष्णदेव राय (दे०)के राज्यकालमे विजयनगर आया। उसने राजाके स्वभाव तथा उस कालकी आर्थिक तथा सामाजिक दशाका रोचक वर्णन किया है। उसका विश्वास था कि विजयनगर उतना ही बडा है, जितना बडा रोम और यहाँ असख्य लोग निवास करते है। वह उसे ससारका सबसे सम्पन्न नगर मानता था। उसने राजाके महलमे एक कमरा फर्शसे लेकर ऊपर छत तक समूचा हाथीदाँतका बना देखा। राजसभाका शिष्टाचार बडा विशद था और राजाके पास बहुत विशाल सेना थी।

पुरनिया–मैसूर निवासी एक ब्राह्मण, जो अपनी योग्यताके बलपर उन्नति करके टीपू सुल्तान (दे०) (१७८२–९९ ई०)का दीवान बन गया। १७९९ ई० मे उसकी पराजय तथा मृत्युपर विजयी अग्रेजोने मैसूर राज्यके एक हिस्सेमे उसके पुराने हिन्दू राजाके जिस नाबालिग पौत्रको गद्दी पर बिठाया, उसका दीवान पुरनियाको नियुक्त कर दिया। पुरनिया बहुत योग्य प्रशासक सिद्ध हुआ और उसने बालक राजाकी ओरसे राज्यका प्रशासन बडी कुशलतासे किया।

पुरन्दरकी संधि–मार्च १७७६ ई० मे मराठो तथा ईस्ट इडिया कम्पनीके बीच हुई। बम्बई सरकार और अपनेको पेशवा माननेवाले राघोबा (दे०)के बीच १७७५ ई० की सूरतकी सधि (दे०)के फलस्वरूप कम्पनी और मराठोके बीच युद्ध छिड गया था। इस युद्धको रोकनेके लिए कम्पनीने अपने प्रतिनिधि कर्नल अपटनको मराठोसे सधि-वार्ताके लिए भेजा था। पुरन्दरकी सधिके द्वारा अग्रेजोने इस शर्तपर १ राघोबाका साथ छोडना स्वीकार कर लिया कि उन्हे साष्टी-ईमान... अपने अधिकारमे रखने दिया जायगा। कोर्ट आफ

डाइरेक्टर्सने इस सधिको नामजूर कर दिया और मराठोंसे फिर युद्ध छिड गया। यह युद्ध १७८२ ई० तक चलता रहा और साल्वाईकी सधिके द्वारा समाप्त हुआ। अग्रेजोंने साल्वाईमे पुरन्दरकी सधिकी सभी शर्ते स्वीकार कर ली और मराठोंमे सुलह कर ली।

पुराण–धार्मिक अनुश्रुतियो तथा प्राचीन ऐतिहासिक, आख्यानोंके भडार। पुराण अठारह हैं, जिनमेसे वायु, विष्णु, ब्रह्माड, मत्स्य तथा भागवत पुराणोमें राजाओंकी वशावलियाँ मिलती हैं जो अत्यन्त मूल्यवान है। पुराणोका काल-निर्णय कठिन है। पुराणोमें भविष्य, ब्रह्माड तथा मत्स्य पुराण सबसे प्राचीन हैं और उनका रचनाकाल ई० पू० चौथी शताब्दी भी हो सकता है। परन्तु पुराणोमे बहुत-से अश बहुत बादके काल तक जुडते रहे और उन्हें वर्तमान रूप चौथी तथा पाँचवी शताब्दी ई० मे प्राप्त हुआ। पूर्वोक्त पुराणोके अतिरिक्त अन्य तेरह पुराण है—ब्रह्म, पद्म, नारदीय, मार्कण्डेय, आग्नेय, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वाराह, स्कन्द, वामन, कूर्म तथा गरुड पुराण।

पुरी–हिन्दुओका पवित्र तीर्थस्थान, जो उडीसाके समुद्रतटपर स्थित है। यहाँ जगन्नाथजीका विशाल मदिर है, जिसे उडीसाके राजा अवन्तीवर्मा चोलगग (दे०) (१०७६–११४८ ई०)ने बनवाया।

पुरु–इस जनका उल्लेख वेदोमें मिलता है। वे आर्यजातिके अन्तर्गत थे, फिर भी 'वैरीकी भाषा' बोलते थे। आर्योंके अन्य जनो (कबीलो)से उनका युद्ध चलता रहता था। वे अन्य जनोंके साथ सरस्वती नदीके तटपर रहते थे। यह ज्ञात नही है कि ३२६ ई०पू० मे झेलम नदीके तटपर सिकदरकी सेनाओका युद्धभूमिमे मुकाबला करनेवाले राजा पुरुसे प्राचीन पुरुजनका क्या सम्बन्ध था।

पुरु–यूनानी इतिहासकारोने इसका नाम पोरस लिखा है। उनके वर्णनानुसार मकदूनियाके राजा सिकन्दरने ३२६ ई० पू० मे जब पजाबपर आक्रमण किया, उसका राज्य झेलम और चिनाब नदियोंके बीचमे स्थित था। पुरु इस बातका उदाहरण प्रस्तुत करता है कि भारतीय क्षत्रिय राजा शूरवीर और स्वाभिमानी होते थे। पुरुके पडोसी, तक्षशिलाके राजा आम्भिने, जिसका राज्य झेलमके पश्चिममे था, सिकन्दरकी अधीनता स्वीकार कर ली। किन्तु पुरुने सिकन्दरके आगे सिर झुकानेसे इनकार कर दिया और उससे युद्धभूमिमे भेट करनेका निश्चय किया। सिकन्दरने इस बातका पता लगा लिया था कि उसके शत्रुका मुख्य बल हाथी हैं और उसने अपनी सेनाको बता दिया था कि उनका सामना किस रीतिसे करना चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि पुरुने इस बातका पता लगानेकी कोशिश नही की कि यवन सेनाकी शक्तिका क्या रहस्य है। यवन सेनाका मुख्य बल उनके द्रुतगामी अश्वारोही तथा घोडोपर सवार फुर्तीले तीरदाज थे। पुरुको अपनी वीरता और हस्तिसेनाका विश्वास था और उसने सिकन्दरको झेलम नदी पार करनेसे रोकनेकी चेष्टा नही की। सिकन्दरके द्रुतगामी अश्वारोही तथा घोडोपर सवार तीरदाज जब सामने आ गये तब जाकर उसने झेलमके पूर्वी तटपर करींके मैदानमे व्यूहरचना करके उनका सामना किया। उसकी धीरे-धीरे चलनेवाली पदाति सेना सबसे आगे थी, उसके पीछे हस्तिसेना थी। उसने जिस ढगकी वर्गाकार व्यूहरचना की थी उसमे सेनाके लिए तेजीसे गमन करना सम्भव नही था। उसके धनुषधारी सैनिकोंके धनुष इतने बडे थे कि उन्हे चलानेके लिए जमीनपर टेकना पडता था। सिकन्दरने अपनी द्रुतगामी सेनाकी गतिशीलताका पूरा लाभ उठाया और उसकी इस रणनीतिने उसे युद्धमे विजयी बना दिया। पुरु बडी वीरतासे लडा और घायल हो जाने पर भी उसने युद्धभूमिमे पीठ नही दिखायी। यवन सैनिकोंने उसे बदी बना लिया। सिकन्दरने बुद्धिमत्तासे काम लेकर उसे मित्र राजा बना लिया। उसने उसे पूरा राजोचित सम्मान प्रदान किया और उसका राज्य लौटा दिया और शायद पजाबमे जीते गये कुछ राज्य भी उसे सौंप दिये। सिकदरकी वापसीके बाद पुरुकी क्या भूमिका रही, यह ज्ञात नही है। पजाबको यवनोसे चन्द्रगुप्त मौर्य (दे०)ने मुक्त कराया।

पुरुषपुर–आधुनिक पेशावरका प्राचीन नाम, जो महान् कुषाण राजा कनिष्क (दे०)की राजधानी थी।

पुरुषोत्तम–एक हिन्दू दर्शनवेत्ता, जिसको बादशाह अकबरने लगभग १५८० ई०मे फतेहपुर सीकरीके इबादतखानेमे वाद-विवादके लिए आमन्त्रित किया था।

पुरुषोत्तम गजपति–उडीसाका एक राजा (१४७०–९७ ई०)। वह कपिलेन्द्र वश (दे०)का था। उसे विजयनगरके राजा तथा बहमनीके सुल्तानसे युद्ध करना पडा और अपने राज्यकालके प्रारम्भमें वह उनसे पराजित हुआ। उन्होंने उसके राज्यका गोदावरीसे दक्षिणका भाग छीन लिया। परन्तु पुरुषोत्तम गजपतिने अपनी मृत्युसे पूर्व गोदावरी तथा कृष्णा नदीके दोआबपर फिरसे अधिकार कर लिया और कोडविन्दु तक अपने राज्यका विस्तार कर लिया।

पुरोहित–राजाका धार्मिक परामर्शदाता और धर्मानुष्ठाता। हिन्दू राजतत्रमे प्रशासनपर उसका काफी प्रभाव होता था।

पुर्तगाली–वास्को द गामाके नेतृत्वमे ये लोग चार जहाजोंपर

सवार होकर २० मई १४९८ ई० को भारत पहुँचे। वे समुद्रमार्गसे आशा अतरीपका चक्कर लगाकर भारत पहुँचनेवाले पहले यूरोपीय व्यापारी थे। उन्होने अपने जहाजोका लगर कालीकट मे डाला। वहाँके हिन्दू राजाने, जिसे जमोरिन कहते थे, उनका स्वागत किया। वे वहाँसे कोचीन और कन्नानोर गये और सकुशल पुर्तगाल वापस लौट गये। पुर्तगाली भाग्यवशात् बडे अच्छे मौकेपर भारत आये थे, उस समय उत्तरी भारतमे दिल्लीकी सल्तनत और दक्खिनमे बहमनी राज्य दोनो विघटनकी अवस्थामे थे। उस कालमे भारत जिन राज्योमे विभाजित था, उनमे से किसीके पास नौसेना नही थी। किसी राज्यने नौसेना सगठित करनेका विचार तक नही किया था। इसलिए भारतमे पुर्तगालियोके बढावमे सिर्फ वे अरब सौदागर बाधक थे जिनके हाथमे भारतका पश्चिमसे होनेवाला सारा व्यापार था। वास्को द गामा जब १५०२ ई० मे दुबारा आया तब जमोरिनसे उसका सघर्ष हो गया, क्योकि उसने अरब सौदागरोके हाथसे सारा व्यापार छीनकर पुर्तगालियोके हाथमे सौप देनेसे इनकार कर दिया। किन्तु भारतके साथ पुर्तगालियोका व्यापार बढता रहा और १५०५ ई० मे डोम फ्रासिस्को द आलमीदा (दे०)को भारतमे पहला पुर्तगाली वाइसराय (प्रतिनिधि) नियुक्त किया गया। १५०८ ई० मे उसने अरब सागरमे एक नौसैनिक लडाईमे मिस्र और गुजरातके सुल्तानोके एक संयुक्त बेडेको हरा दिया और इस प्रकार समुद्री मार्गोपर पुर्तगाली प्रभुत्व स्थापित कर लिया। इसके फलस्वरूप अगले पुर्तगाली गवर्नर आलबुकर्कको पश्चिमसे हिन्द महासागरमे प्रवेश करनेके सभी मार्गोपर अपने अडडे स्थापित करने तथा अरबोके जहाजोको समुद्रसे मार भगानेमे सफलता प्राप्त हुई। उसने १५१० ई० मे बीजापुरके सुल्तानसे गोआका टापू छीन लिया। आलबुकर्कने १५११ ई० मे मलक्कापर तथा १५१५ ई० मे ओर्मुजपर भी अधिकार कर लिया। इससे पहले अदनपर अधिकार करनेके प्रयत्न मे वह विफल रहा था। पुर्तगालियोने गोआ के साथ-साथ भारतके पश्चिमी तटपर डामन और ड्यू नामक दो और स्थानोपर कब्जा कर लिया और इस प्रकार भारतमे एक प्रकारसे अपना छोटा-सा साम्राज्य स्थापित कर लिया, जिसपर वे लोग अब तक शासन करते रहे। भारतीय बस्तियोपर उनका शासन अत्यन्त दमनकारी रहा। उन्होने विधर्मियोपर, विशेषरूपसे मुसलमानोपर क्रूर अत्याचार किये और उनको दडित करनेके लिए धार्मिक अदालतोकी स्थापना की। पुर्तगाली सख्यामे बहुत थोडे थे जो उनके साम्राज्यके प्रसारमे सबसे बडी कमी थी। आलबुकर्कने इस बाधाको दूर करनेके लिए पुर्तगाली नाविकोको अपहृत भारतीय विवाहिता स्त्रियो तथा कन्याओसे विवाह करनेके लिए प्रोत्साहित किया। उसका ख्याल था कि इस प्रकारसे वर्णसकरोकी एक जाति उत्पन्न करके पुर्तगाली भारतमे अपना शासन बनाये रखनेमे सफल हो जायेंगे, किन्तु उसका यह मनोरथ पूरा न हुआ।

सत्रहवी शताब्दीमे डच और अग्रेज व्यापारी भी भारत पहुँचे। अग्रेज और पुर्तगाली व्यापारियोमे स्थल और समुद्रपर दीर्घकाल तक लडाइयाँ चलती रही, जिनके फलस्वरूप पुर्तगालियोके हाथसे न केवल व्यापार, बल्कि समुद्रके ऊपरसे भी एकाधिकार छिन गया। यद्यपि पुर्तगाली मुगल बादशाहो तथा मराठोके आक्रमणसे अपने भारतीय साम्राज्यकी रक्षा करनेमें सफल रहे, तथापि यह निश्चित था कि उनके भारतीय साम्राज्यका वही परिणाम हुआ होता जो फ्रासीसी साम्राज्यका हुआ और वह ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य द्वारा अवश्य निगल लिया जाता, मगर नेपोलियनके विरुद्ध युद्धमे पुर्तगाल इग्लैण्डका मित्रराष्ट्र था। इस वजहसे फ्रास और हालैडको जबकि उन्नीसवी शताब्दीके प्रारम्भमे भारतमे अपने साम्राज्यसे हाथ धोना पडा, और वे केवल कुछ व्यापारिक केन्द्रोपर अपना कब्जा बनाये रख सके, पुर्तगालने गोआ, डामन और ड्यूपर अपना स्वतत्र साम्राज्य बनाये रखा। स्वतत्र भारत अपने भूखडपर पुर्तगाली साम्राज्यको जारी रखनेकी इजाजत नही दे सकता था, अतएव जब पुर्तगाल द्वारा शातिपूर्ण रीतिसे अपनी भारतीय बस्तियोकी शासन-सत्ता हस्तातरित कर देनेकी दीर्घकालीन समझौता वार्ता विफल हो गयी, तब १९६० ई० मे उनसे वह भूभाग बलपूर्वक आजाद करा लिया गया।

पुलकेशी प्रथम–दक्षिणमे वातापी अथवा बादामीमे चालुक्य वश (दे०)का प्रवर्तक। वह छठी शताब्दीके लगभग मध्यकालमे हुआ था।

पुलकेशी द्वितीय–पुलकेशी प्रथमका पौत्र तथा चालुक्य वश (दे०)का चौथा राजा, जिसने ६०९–४२ ई० तक राज्य किया। वह महाराजाधिराज हर्षवर्धनका समसामयिक तथा प्रतिद्वन्द्वी था। उसने ६२० ई० मे दक्षिणपर हर्षका आक्रमण विफल कर दिया। वह महान् योद्धा था और उसने गुजरात, राजपूताना तथा मालवाको विजय किया। उसने कृष्णा और गोदावरी नदियोके बीच स्थित वेगिका राज्य जीता और अपने भाई कुब्ज विष्णुवर्धन (दे०)को वहाँ अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया।

उसने दक्षिण भारतके चोल, पाड्य तथा केरल राज्योंको अपने अधीन कर लिया, पल्लव राजाओंमे भी दीर्घकाल तक युद्ध किया और लगभग ६०९ ई० मे राजा महेन्द्रवर्माको परास्त कर दिया। उसकी कीर्ति सुदूरवर्ती फारस देश तक पहुँच गयी थी। फारसके शाह खुसरो द्वितीयने ६२५–२६ ई० मे पुलकेशी द्वितीयके द्वारा भेजे गये दूतमडलसे भेंट की थी। इसके वदलेमे उसने भी अपना दूतमडल पुलकेशी द्वितीयकी सेवामे भेजा। अजता-की गुफा सख्या १ मे एक भित्तिचित्रमे फारसके दूतमडलको पुलकेशी द्वितीयके सम्मुख अपना परिचयपत्र प्रस्तुत करते हुए दिखाया गया है। चीनी यात्री ह्यु एन-त्साग ६४१ ई० मे उसकी राजसभामे आया था और उसके राज्यका भ्रमण किया था। उसने पुलकेशी द्वितीयके शौर्य और उसके सामतोकी स्वामिभक्तिकी प्रशसा की है। किन्तु ६४२ ई० मे इस शक्तिशाली राजाको पल्लव राजा नरसिंहवर्मनने एक युद्धमे पराजित कर मार डाला। उसने उसकी राजधानी पर भी अधिकार कर लिया और कुछ समय के लिए उसके वशका उच्छेद कर दिया।

पुलिस, भारतीय—सर्वप्रथम ब्रिटिश भारतमे इस विभागकी स्थापना गवर्नर-जनरल लार्ड कार्नवालिस (१७८६–९३ ई०) ने की। कलकत्ता, ढाका, पटना तथा मुर्शिदाबादमे चार अधीक्षकोंके अधीन पुलिस रखी गयी। क्रमश प्रत्येक जिलेमे एक पुलिस अधीक्षककी नियुक्ति हुई। उसके अधीन प्रत्येक सब-डिवीजनमे एक उप-पुलिस अधीक्षक, प्रत्येक सर्किलमे एक पुलिस इसपेक्टर तथा प्रत्येक थानेमे एक थानाध्यक्ष होता था। थानाध्यक्षके अधीन कई कास्टेबिल होते थे। इन सबको राज्यसे वेतन दिया जाता था और वे सामूहिकरूपसे अपने-अपने क्षेत्रमे शाति और व्यवस्था वनाये रखनेके लिए जिम्मेदार होते थे। गाँवोमे चौकीदार रखे जाते थे जिन्हे सरकार मामूली वेतन देती थी। उनका काम अपने क्षेत्रके वदमाशोपर नजर रखना और कोई दडनीय अपराध होनेपर उसकी सूचना थानाध्यक्षको देना होता था। कलकत्ता, वम्बई तथा मद्रासके प्रेसीडेसी नगरोमे पुलिस कमिश्नरके अधीन एक सयुक्त पुलिसदल होता था। पुलिस कमिश्नर सीधे पुलिस विभागसे सम्वन्धित सचिवके अधीन होता था और कानून तथा व्यवस्था वनाये रखना तथा विभागीय प्रशिक्षण प्रदान करना उसकी जिम्मेदारी होती थी। अव भारतीय प्रशासकीय सेवाके सदस्योकी भाँति पुलिस अधीक्षकोकी भरती भी मुख्यरूपसे अखिल भारतीय प्रतियोगिता परीक्षाके आधारपर होती है, किन्तु अभी तक कोई अखिल भारतीय पुलिस सेवा नही गठित की गयी है।

१८६१ ई० के पुलिस ऐक्टके द्वारा पुलिसको प्रातीय सगठन वना दिया गया और उसका प्रशासन सम्वन्धित प्रातीय सरकारोंके जिम्मे कर दिया गया। प्रत्येक प्रातके पुलिस सगठनका प्रधान पुलिस महानिरीक्षक होता है, जो उसका नियत्रण करता है। सारे देशमे पुलिस सगठनका सवसे वडा दोष यह था कि पुलिस अफसरोमे शिक्षाका अभाव तथा भ्रष्टाचारका वोलवाला रहता था। १९०२ ई० मे पुलिस प्रशासनकी जाँच करनेके लिए एक कमीशन-की नियुक्ति की गयी और उसकी सिफारिशोंके आधारपर पुलिस दलमे सुधार करने और उसका मनोवल ऊँचा उठाने-के लिए कदम उठाये गये। एक खुफिया जाँच विभागकी स्थापना की गयी तथा अतरप्रातीय समन्वयके लिए केन्द्रीय सरकारके गृह विभागके अधीन केन्द्रीय खुफिया विभाग गठित किया गया। स्वतत्रता-प्राप्तिके वाद पुलिस दलमे अधिक शिक्षित व्यक्तियोको आकर्षित करनेके उद्देश्यसे वेतन-मानमे सुधार कर दिया गया है और सुविधा-ओमे काफी वृद्धि कर दी गयी है। पुलिस दलके सदस्योंमे यह भावना उत्पन्न करनेका प्रयास किया गया है कि वे जनताके सेवक हैं, किन्तु इसमे सीमित सफलता ही मिली है।

पुष्यगुप्त—एक वैश्य, जिसे चद्रगुप्त मौर्य (दे०)ने सौराष्ट्रमे अपना राष्ट्रीय प्रतिनिधि नियुक्त किया था, जिसने वहाँकी एक नदीपर वाँध वनाकर प्रसिद्ध सुदर्शन झीलका निर्माण कराया।

पुष्यभूति वंश—छठी शताव्दी ई० मे दिल्लीके निकट थानेश्वरमे पुष्यभूतिसे, जो शिवका उपासक था, इस वशका प्रारम्भ हुआ। इस वशमे तीन राजा हुए—प्रभाकरवर्धन और उसके दो पुत्र राज्यवर्धन तथा हर्षवर्धन। प्रभाकर-वर्धन (दे०)की मृत्युपर उसके सिंहासनपर उसका वडा पुत्र राज्यवर्धन (दे०) वैठा। किन्तु राज्याभिषेकके वाद ही राज्यवर्धनको युद्धोंमे फँस जाना पडा और उसका वध कर दिया गया। तव उसका यशस्वी छोटा भाई हर्षवर्धन (दे०) (६०६–४७ ई०) शासक हुआ, जिसने चालीस वर्ष तक राज्य करके अपनी कीर्तिका विस्तार किया। वह निस्सतान था, अत उसकी मृत्युके साथ पुष्य-भूति वशका अन्त हो गया।

पुष्यमित्र—एक जनजाति, जिसका विकास और निवास अज्ञात है। पाँचवी शताव्दीके प्रारम्भमे कुमारगुप्त प्रथम (दे०)के राज्यकालमे पुष्यमित्रोंने गुप्त साम्राज्यपर आक्रमण कर दिया। युवराज स्कन्दगुप्त (दे०)ने उन्हें

परास्त कर दिया, परन्तु इसके लिए उसे भयकर युद्ध करना पडा और कुछ रातो उसे जमीनपर हाथोका तकिया लगाकर सोना पडा। गुप्त साम्राज्यके पतनका एक कारण पुष्यमित्रोका आक्रमण भी था।

पुष्यमित्र शुंग—मौर्यवशको पराजित करनेवाला तथा शुग-वश (लगभग १८५ ई० पू०) का प्रवर्तक। वह जन्मसे ब्राह्मण और कर्मसे क्षत्रिय था। मौर्यवशके अतिम राजा वृहद्रथने उसे अपना सेनापति नियुक्त कर दिया। वृहद्रथ जब एक सैन्य-प्रदर्शनका निरीक्षण कर रहा था, पुष्यमित्रने उसे मरवा दिया और स्वय सिंहासनपर बैठ गया। उसने ३८ वर्ष तक राज्य किया। यह सरल कार्य नही था। साम्राज्यपर दक्षिण-पूर्वसे उडीसाके राजा खारवेल (दे०)ने तथा उत्तरसे भारतीय यवन राजा मिनाण्डर (दे०)ने आक्रमण किया। पुष्यमित्रने दोनो आक्रमणोको विफल कर दिया, उसने विशाल साम्राज्यको खडित नही होने दिया और अपनी विजयोके उपलक्ष्यमे लम्बे अतरालके बाद अश्वमेध यज्ञ (दे०) का अनुष्ठान किया। अशोकके प्रभावसे अश्वमेध जैसे हिंसाप्रधान यज्ञोकी परिपाटी विलुप्त हो गयी थी। पुष्य-मित्रने हिन्दू धर्मको पुनरुज्जीवित किया और राजभाषाके रूपमे सस्कृतकी फिरसे प्रतिष्ठापना की। प्रसिद्ध सस्कृत वैयाकरण पतजलि उसीके कालमे हुए।

उसका पुत्र एव उत्तराधिकारी अग्निमित्र (दे०) तथा पौत्र वसुमित्र (दे०) दोनो महान् योद्धा थे। कहा जाता है कि पुष्यमित्रोने बहुत-से बौद्ध स्तूपोका ध्वस कराया तथा बौद्ध श्रमणोका सिर कटवाया, किन्तु इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नही है।

पूना—महाराष्ट्रका प्रमुख नगर, जो शिवाजी (दे०) तथा उनके पुत्र एव उत्तराधिकारी शम्भूजी (दे०) की राज-धानी था। शाहू (दे०) अपनी राजधानी यहाँसे उठाकर सतारा ले गया, परन्तु १७४९ ई० मे उसकी मृत्युके बाद पेशवा बालाजी बाजीराव (दे०) ने इसे फिर मराठा राज्य-की राजधानी बना दिया। अतिम पेशवा बाजीराव द्वितीय-के हार जाने तथा अपदस्थ कर दिये जानेके बाद इसका मान घट गया। पूना अब भी महत्त्वपूर्ण नगर है और यहाँ एक विश्वविद्यालय स्थित है। गाधीजीने ब्रिटिश प्रधानमत्री रैमजे मैकडोनाल्डका साम्प्रदायिक निर्णय (दे०)रद्द करानेके लिए १९३२ ई० का प्रसिद्ध उपवास पूनामे ही किया था।

पूनाकी संधि—१८१७ ई० मे पेशवा बाजीराव द्वितीय (दे०) और अग्रेजोके बीच १८०२ ई० की बसईकी सधि (दे०) के स्थानपर की गयी। इस सधिके द्वारा पेशवाने अपने दरबारसे समस्त विदेशी प्रतिनिधियोको निकाल दिया, पूनामे ब्रिटिश सेना रखनेका खर्च पूरा करनेके लिए कुछ क्षेत्र सौंप दिये तथा मराठा सघका नेतृत्व त्याग दिया। बादमे बाजीराव द्वितीयको पश्चात्ताप हुआ कि यह सधि उसके ऊपर जबर्दस्ती थोप दी गयी है। उसने १८१८ ई० मे अग्रेजोके विरुद्ध विद्रोह कर दिया, परन्तु उसे पराजित होकर आत्मसमर्पण करना पडा और १८१८ ई० मे उसे गद्दी से उतार दिया गया।

पूना महिला विश्वविद्यालय—इसकी स्थापना प्रोफेसर धोण्डो केशव कर्वेने १९१७ ई० मे की। इससे भारतमे महिला शिक्षाकी प्रगतिके एक महत्त्वपूर्ण अध्यायका सूत्रपात हुआ।

पूना समझौता—२४ सितम्बर १९३२ ई०को गाधीजीकी रोगशैयापर हुआ। रैमजे मैकडोनाल्डके साम्प्रदायिक निर्णय (दे०)के द्वारा न केवल मुसलमानोको, बल्कि दलित जातिके हिन्दुओको सवर्ण हिन्दुओसे अलग करनेके लिए भी पृथक् प्रतिनिधित्व प्रदान कर दिया गया था। गाधीजीने इसीके विरुद्ध आमरण उपवास आरम्भ कर दिया था। इस समझौतेके द्वारा दलित जातिके प्रति-निधियोको सामान्य निर्वाचन क्षेत्रोके द्वारा, जिनमे सभी गैर-मुसलमानोको वोट देनेका अधिकार था, निर्वाचित करनेका निर्णय किया गया।

पूर्वनन्द—इस शब्दका प्रयोग गलत ढगसे नन्दवशके पूर्ववर्ती राजाओके लिए किया जाता है। पूर्वनन्द कोई वश नही, एक राजा था।

पूर्व मीमांसा—हिन्दूदर्शनका एक सम्प्रदाय। इस सम्प्रदायमे वेदविहित यज्ञ-यागादि कर्मोपर बहुत बल दिया जाता है। मीमासा दर्शनके प्रमुख प्रवक्ता शबरस्वामी, प्रभाकर तथा कुमारिल थे जो चौथी-पाँचवी शताब्दी ई० मे हुए।

पूर्वी गंगवंश—राजराज प्रथमसे इसका प्रचलन हुआ, जो ११वी शताब्दी ई० के मध्यमे कलिंग (उडीसा)का शासक बना। वह वज्रहस्तका पुत्र था। इस वशने १४०२ ई० तक शासन किया। बादमे मुसलमानोने इस वशका उच्छेद किया। इस वशमे कुल १५ राजा हुए, यथा—राजराज प्रथम, अनन्तवर्म्मा चूडगग (१०७८-११४२ ई०), कामार्णव, राघव, राजराज द्वितीय, अनगभीम प्रथम, राजराज तृतीय, अनगभीम द्वितीय, नृसिंह प्रथम, भानुदेव प्रथम, नृसिंह द्वितीय, भानुदेव द्वितीय, नृसिंह तृतीय, भानुदेव तृतीय तथा नृसिंह चतुर्थ (१३८४–१४०२ ई०)। इस वशका द्वितीय राजा अनन्तवर्मा चूडगग बहुत प्रसिद्ध हुआ। उसीने पुरीमे जगन्नाथजीका मन्दिर बनवाया था।

पूर्वी गगवशके अधिकाश राजा कला एव साहित्यके अनुरागी थे। उन्हीकी सरक्षतामे कला एव वास्तुकी उडिया शैली का विकास हुआ। इस वशके शासनमें जितने मन्दिर बनवाये गये, उतने देशमें कही नही बनवाये गये। राजनीतिक दृष्टिमे इस वशके राजा दूरदर्शी नही कहे जा सकते। जब बगालपर मुसलमानोका आक्रमण हुआ और स्वय उडीसाकी सीमापर हमले होने लगे, तब भी अनन्तवर्माके बादके चार राजाओने प्रभावी ढगमे मुसलमानोको खदेडने के लिए आगे कदम नही बढाया। लेकिन १३वी शताब्दी ई० मे बादके गग राजाओने अनेक वर्षो तक मुसलमानोको राज्यमे घुसने नही दिया। अतमे मुस्लिम आक्रमणकारियोने १४०२ ई० मे गगवशका उन्मूलन कर डाला।

पूर्वी बगाल—(दे०) 'बागला देश'।

पृथ्वीराज चौहान (जिसे राय पियौरा भी कहते थे)—सामर, अजमेर और दिल्लीका शासक। उसका मुख्य प्रतिद्वन्द्वी कन्नौजका राजा जयचद्र (दे०)था जिसकी पुत्री सयोगिताने पिताकी इच्छाके विरुद्ध स्वयवर सभामे उसका वरण किया था और पृथ्वीराज लगभग ११७५ ई० मे उसका अपहरण कर लाया था। पृथ्वीराज महान् योद्धा था और उसने ११८२ ई० मे चदेल राजा परमालको हरा कर उसकी राजधानी महोवापर अधिकार कर लिया था। शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीके आक्रमणका उसने डटकर मुकाबला किया और ११९२ ई० मे तराइनकी पहली लडाईमे उसे हरा दिया। किन्तु अगले साल तराइनकी दूसरी लडाईमें वह हार गया तथा मारा गया। उसकी प्रेम तथा युद्ध-कथाओका वर्णन उसके प्रसिद्ध चारण चन्द वरदाईने 'रासो' नामक महाकाव्यमे लिखा है।

पेथिक-लारेंस, लार्ड—भारतमे १९४६ ई० मे जो कैबिनेट मिशन (दे०) आया, उसके अध्यक्ष। वे भारतकी सवैधानिक सुधारोकी मागके प्रवल समर्थक थे। एटली मत्रिमण्डलमे भारतमत्री (१९४५–४७ ई०)की हैसियतमे उन्होंने ब्रिटेनकी उस नीतिके निर्माणमे मुख्य हिस्सा लिया, जिसके फलस्वरूप १९४७ ई० मे भारतको स्वाधीनता प्राप्त हुई।

पेप्सू—अग्रेजी भाषामे पटियाला तथा पूर्वी पजाब राज्य सघका नाम सक्षेप। इस राज्य सघका निर्माण सतलजके किनारे स्थित उन सिख रियासतोको मिला कर किया गया था जिन्होने १८०९ ई० मे अमृतसरकी सधिके द्वारा ब्रिटिश सरक्षण स्वीकार कर लिया था।

पेयटन, एडमिरल—१७४६ ई० मे भारतीय समुद्रमे ला बोर्दने (दे०) के नेतृत्वमे फ्रासीसी जगी बेडेका सामना करनेवाले ब्रिटिश जगी बेडेका कमाडर। फ्रासीसी बेडेके मुकाबलेमे पेयटनको अपना बेडा लेकर भागना पडा, जिसके फलस्वरूप मद्रास (दे०)पर फ्रासीसियोका अधिकार हो गया।

पेरो, जनरल—एक फ्रासीसी भृत्य (भाडेका) सैनिक, जो पहली बार १७८० ई० में भारत आया। १७८१ ई० मे गोहदके राणाने उसे नौकर रख लिया। बादमे वह भरतपुर राज्यकी सेवामे आ गया। १७९० ई० मे दब्वाग (दे०)ने उसे महादजी शिन्देकी सेवामे रख लिया। उसने शिन्देको कई प्रतिद्वन्द्वी राजाओपर विजय प्राप्त करनेमे मदद दी। १७९६ ई० मे दब्वागके अवकाश ग्रहण करनेपर वह शिन्देकी सेनाका सेनापति नियुक्त हुआ। उसने राजपूतानापर शिन्देका आधिपत्य स्थापित किया। किन्तु १८०३ ई० मे जब दूसरा मराठा-युद्ध शुरू हुआ, तब पेरो भारतीय-ब्रिटिश सेनाओंके विरुद्ध कोई सफलता नही प्राप्त कर सका और अलीगढ तथा कोमलकी लडाइयोमे उसे हार खानी पडी। फलस्वरूप दौलतराव शिन्देका पेरोपरसे विश्वास उठ गया और उसने उसकी जगह अम्बाजीको नियुक्त कर दिया। लालवाडी (दे०)मे शिन्देकी सेनाके हारनेके बाद पेरोने यह नौकरी छोड दी और कलकत्ता चला गया। वहा उसने ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी शरण ली। कम्पनीने उसके सकुशल फ्रास लौटनेका प्रबध कर दिया, जहा १८३४ ई० मे उसकी मृत्यु हो गयी।

पेशवा—मूलरूपसे शिवाजीके द्वारा नियुक्त अष्ट प्रधानोमेसे एक। उसे मुख्य प्रधान भी कहते थे। उसका कार्य सामान्य रीतिमे प्रजाहितपर ध्यान रखना था। शाहू (दे०) (१७०८–४८ ई०)के राज्यकालमे बालाजी विश्वनाथ (दे०)ने इस पदका महत्त्व बहुत अधिक बढा दिया। वह १७१३ ई० मे पेशवा नियुक्त हुआ और १७२० ई० मे मृत्यु होने तक इस पदपर रहा। उसने सेनापति तथा राजनीतिज्ञ, दोनो ही रूपोमे जो सफलताए प्राप्त की, उससे दूसरे प्रधानोकी अपेक्षा पेशवाके पदकी मर्यादा बहुत बढ गयी। १७२० ई० मे उसकी मृत्युके बाद उसका पुत्र बाजीराव प्रथम (दे०) पेशवा नियुक्त हुआ, तबसे यह पद बालाजीका एक प्रकारसे खानदानी हक बन गया। बाजीराव प्रथम बीस साल (१७२०–४० ई०)तक पेशवा रहा और उसने निजामपर विजय प्राप्त करके तथा उत्तरी भारतमे विजययात्राए करके पेशवा पदका महत्त्व और बढा दिया। उसकी उत्तरी भारतकी विजययात्राओंके फलस्वरूप मालवा, गुजरात तथा मध्य भारतमे मराठा राज्यशक्ति स्थापित हो गयी तथा मराठा सघकी शक्ति

बहुत बढ गयी। मराठा संघमें शिन्दे, होल्कर, गायकवाड तथा भोसले सम्मिलित थे।

१७४० ई० में बाजीराव प्रथमकी मृत्यु होनेपर उसका पुत्र बालाजी बाजीराव पेशवा बना। १७४९ ई० में महाराज शाहू (दे०) निस्सतान मर गया। इसके फलस्वरूप पेशवाका पद वंशगत होनेके साथ ही मराठा राज्यमें सर्वोच्च मान लिया गया। पेशवा मराठा राज्यकी राजधानी सतारासे हटा कर पूना ले गया। इसके बाद मराठा राजा पेशवाके हाथकी कठपुतली मात्र रह गये और राज्यका वास्तविक इतिहास पेशवाओंके इतिहाससे सम्पृक्त हो गया। बालाजी बाजीरावने १७४० से १७६३ ई० तक शासन किया और वह इतना शक्तिशाली हो गया कि मुगल बादशाह आलमगीर द्वितीय (दे०) (१७५४–५९ ई०) और शाहआलम द्वितीय (दे०) (१७५९–१८०६ ई०) अहमदशाह अब्दालीके हमलेसे अपनी रक्षा करनेके लिए उसपर आश्रित रहे। बाजीरावके पिताने हिन्दूपाद पादशाही-की स्थापना अपना उद्देश्य बनाया था। परन्तु उसने पिताकी इस नीतिको त्याग कर मुगल साम्राज्यके स्थानपर मराठा साम्राज्यकी स्थापना करना अपना उद्देश्य बना लिया और हिन्दू तथा मुसलमान राज्योंको समान रूपसे लूटना शुरू कर दिया। इससे फलस्वरूप महाराष्ट्रके बाहरके सभी प्रदेशोंके लोगोंकी सहानुभूति वह खो बैठा। १७६१ ई० में पानीपतकी तीसरी लडाई (दे०)में अहमदशाह अब्दालीकी सेनासे उसकी जबर्दस्त हारका एक कारण यह भी था। इस लडाईमें मराठोंको भारी क्षति उठानी पडी और उसका परिणाम उनके लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हुआ। इस लडाईके छः महीनेके बाद ही पेशवा बालाजी बाजीराव शोकाभिभूत होकर मर गया।

उसकी मृत्युके बाद पेशवाओंका और उनके साथ-साथ मराठा राज्यशक्तिका पतन आरम्भ हो गया। उसका उत्तराधिकारी माधवराव प्रथम (दे०) (१७६१–७२ ई०) बहुत जल्दी मर गया। अगला पेशवा नारायणराव (दे०) १७७२–७३ ई० में अपने चाचा राघोबाके (दे०) संकेतपर मार डाला गया। उसके बाद १७७३ ई० में कुछ समयके लिए राघोबा पेशवा रहा, परन्तु उसे विवश होकर पेशवाई नारायणरावकी मृत्युके बाद जन्मे उसके पुत्र माधवराव नारायण (दे०) को सौंपनी पडी। माधवराव नारायण १७७४ ई० से १७९६ ई० तक पेशवा रहा। परन्तु राघोबा पेशवा कुल-कलंक साबित हुआ। अपनी स्वार्थपूर्तिके लिए उसने पेशवाको पहले अंग्रेज-मराठा युद्धमें फंसा दिया जो १७७५ ई० से १७८२ ई० तक चलता रहा। इस युद्धके फलस्वरूप मराठा संघपर पेशवाका नियंत्रण और शिथिल पड गया। नाना फडनवीस इस समय पेशवाका प्रधानामात्य था। उसकी नीतिकुशलता तथा योग्यताके कारण अगले १८ सालोंतक दक्षिणमें पेशवाओंकी राज्यशक्ति अखंडित रही, किन्तु, उत्तर भारतमें मराठा राज्यशक्ति स्थापित करनेके सारे प्रयत्न त्याग दिये गये। १८०० ई० में नाना फडनवीसकी मृत्युके साथ पेशवाको बुद्धिमत्तापूर्ण सलाह देनेवाला कोई न मिला। १८०२ ई० में पेशवा बाजीराव द्वितीयने, जो १७९६ ई० में पेशवा बना था, अपने मराठा सरदारों, विशेषरूपसे होल्कर और शिन्दे-के चंगुलसे अपनेको बचानेके लिए अंग्रेजोंके साथ स्वेच्छासे बसईकी संधि (दे०)कर ली। उसने अंग्रेजोंकी आश्रित सेना रखना स्वीकार करके एक प्रकारसे अपनी स्वतंत्रता बेच दी। उसके इस कायरतापूर्ण आचरणपर मराठा सरदारोंमें भारी क्षोभ उत्पन्न हो गया। फलस्वरूप दूसरा मराठा-युद्ध (१८०३–५ ई०) हुआ, और मराठा राज्य-शक्ति और मजबूतीसे अंग्रेजोंके फौलादी पंजेमें कस गयी। अंग्रेजोंका जुआ अपने ऊपर लाद लेनेपर बाजीराव द्वितीय-को शीघ्र पछतावा होने लगा कि उसने भारी गलती की है। उसके द्वारा उस जुएको उतार फेंकनेकी कोशिश करनेपर तीसरा मराठा-युद्ध (दे०) (१८१७–१९ ई०) छिड गया। इस युद्धमें कई लडाइयोंमें पेशवाकी निर्णयात्मक हार हुई और उसे गद्दीसे उतार दिया गया और पेशवाई समाप्त कर दी गयी, फिर भी बाजीराव द्वितीयको ८ लाख रुपयेकी वार्षिक पेन्शनपर कानपुरके निकट बिठूर जाकर रहनेकी इजाजत दे दी गयी। १८५३ ई०में बिठूरमें ही उसकी मृत्यु हुई। अंग्रेजोंने उसके गोद लिये हुए लडके नाना साहब (दे०)को पेन्शन देनेसे इनकार कर दिया। इसके फलस्वरूप उसने प्रथम स्वाधीनता संग्राममें प्रमुख भाग लिया और अंतमें पराजित हो गया।

पेशावर—अविभाजित भारतके उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त-का एक महत्त्वपूर्ण नगर और प्रान्तीय मुख्यालय भी। सामरिक दृष्टिसे नगरकी स्थिति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह खैबर दर्रेकी भारतीय सीमामें पडनेवाले भागकी रक्षा करता है। उत्तर-पश्चिमसे आनेवाले आक्रमणकारी इसी दर्रेको पार करके भारत आते रहे हैं। भारत और उत्तर-पश्चिमके देशोंके बीचका मुख्य वणिक्-पथ भी इसी दर्रेसे होकर जाता है। इसका प्राचीन नाम पुरुषपुर था और ईसवी सन्‌की प्रारम्भिक शताब्दियोंमें यह कुषाण साम्राज्य-की राजधानी था। दसवीं शताब्दीमें इसपर गजनी (दे०) के सुल्तान महमूदका अधिकार हो गया और १८३४ ई०

तक यह अफगानिस्तानके राज्यका एक भाग रहा। १८३४ ई० में इसपर महाराज रणजीतसिंहने अधिकार कर लिया। १८४८ ई० तक यह सिख राज्यका भाग रहा। १८४८ ई०में दूसरा सिख-युद्ध (दे०) छिडनेपर सिखोंने अंग्रेजोंके खिलाफ अफगानिस्तानके अमीर दोस्त मुहम्मदकी सहायता प्राप्त करनेके लिए इसे उनके हाथ सौंप दिया। पंजाबपर अधिकार कर लिये जानेके बाद यह ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यका एक भाग बन गया। अब यह पाकिस्तानमें है।

पैठन–उत्तरी गोदावरी घाटीमें स्थित एक नगर। इसे पहले 'प्रतिष्ठान' कहते थे, जो प्रारम्भिक आंध्र राजाओं (दे०) की राजधानी था।

पैन्तेलियोन–एक भारतीय-यवन राजा, जिसने चौकोर सिक्के चलाये थे। उसका काल लगभग १९०–१८० ई० पू० माना जाता है।

पोकाक, एडमिरल–बंगालकी खाडीमें द-एकके नेतृत्ववाले फ्रांसीसी बेडेके विरुद्ध अंग्रेजी बेडेका नायक, जिसने १७५८ ई० में कारिकलके निकट उसे हरा दिया। इस विजयके फलस्वरूप अंग्रेजोंको लालीके नेतृत्ववाले फ्रांसीसी हमलेके विरुद्ध मद्रासकी रक्षा करनेमें मदद मिली।

पोरस–(दे०), 'पुरु'।

पोर्टो नोवोकी लडाई—१७८१ ई० में मैसूरके हैदरअली और सर आयरकूटके नेतृत्वमें कम्पनीकी फौजोंके बीच की गयी। इसमें हैदरअली हार गया और उसे भारी क्षति उठानी पडी। फलस्वरूप उसकी शक्ति नियन्त्रित कर दी गयी।

पोलक, जनरल–एक योग्य फौजी अफसर। पहले अफगान-युद्धमें उसके नेतृत्वमें सेना पेशावर भेजी गयी, जिसे जलालाबादमें १८४१ ई०में घिरी हुई अंग्रेजी सेनाको मदद पहुचानेका कार्य सौंपा गया था। पोलकने काफी सूझ-बूझका परिचय दिया, उसने जलालाबादका घेरा तोड दिया और वहांसे अंग्रेजी सेनाको निकाल लाया। इसके बाद उसने जगदलक और तेजिनकी दो लडाइयोंमें अफगानोंको हराया और सितम्बर १८४२ ई० में एक विजयी सेना लेकर काबुल जा पहुचा। काबुलमें यूरोपीय बंदियोंको रिहा करने तथा प्रतिशोधके रूपमें बाजारमें आग लगा देनेके बाद, उसने अक्तूबर १८४२ ई० में काबुल खाली कर दिया और इस प्रकार पहले अफगान-युद्ध (दे०)का अंत हो गया।

पोलो, मार्को–वेनिसका एक यात्री, जो १२८८ ई० तथा १२९३ ई० में भारत आया। उसने यहां जो कुछ देखा और पाया उसका विशद वर्णन किया है। उसने लिखा है कि पाड्य देशका राजा बडा न्यायिक था और अपने राज्यका शासन बडी योग्यताके साथ कर रहा था। वहांके लोग अत्यन्त समृद्ध थे और उसके कयाल बंदरगाहमें बहुत अधिक मात्रामें व्यापार होता था। उसने कयालको विशाल तथा सुन्दर नगर बताया है।

पौफम, कर्नल–ईस्ट इंडिया कम्पनीका एक फौजी अफसर। पहले मराठा-युद्ध (दे०) (१७७५–८२ ई०)में उसने १७७९ ई०में बंगालसे स्थल मार्ग द्वारा बम्बई भेजी जानेवाली सेनाका गौडर्ड (दे०)के साथ नेतृत्व किया और १७८० ई० में ग्वालियरका किला सर करके भारी नाम कमाया।

प्रतापरुद्र—उडीसाका प्रसिद्ध राजा। लगभग १५१० ई० में विजयनगरके राजा कृष्णदेव राय (दे०)ने उसे पराजित कर दिया।

प्रतापरुद्र–ओरंगलका काकतीय वंशज (दे०) राजा। दिल्लीके सुल्तान गयासुद्दीन (दे०)के सिपहसालार उलुग खांने १३२३ ई० में उसे हरा दिया और गद्दीसे उतार दिया।

प्रतापसिंह, राणा–राणा उदय सिंहका पुत्र तथा उत्तराधिकारी, जिसने मेवाडपर १५७२ ई०से १९ जनवरी १५९७ ई०में मृत्यु होने तक राज्य किया। वह बडा शूरवीर और सच्चा देशभक्त था। उसने अपनी मातृभूमि मेवाडकी स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिए बादशाह अकबरकी अपनेसे कहीं बडी फौजका मुकाबला किया। अकबरने चित्तौडगढ पहले ही ले लिया था। वह उस समय दुनियाका सबसे दौलतमद बादशाह था। जब राणा प्रतापने अकबरकी अधीनता स्वीकार करनेसे इनकार कर दिया, अकबरने आमेरके राजा मानसिंह तथा आसफ खांके नेतृत्वमें एक बडी शाही फौज भेजी। अप्रैल १५७६ ई०में हल्दीघाट (दे०) में लडाई हुई। राणा बडी वीरतासे लडा, किन्तु उसकी पराजय हुई। राणाने भागकर पहाडोंकी शरण ली। शाही सेनाने उसका पीछा किया और उसके कई किलोंपर अधिकार कर लिया। फिर भी राणा प्रतापने अकबरकी अधीनता स्वीकार नहीं की। वह पहाडियोंमें मारा-मारा फिरता रहा, उसके बच्चे कदमूलपर गुजारा करते रहे, मगर उसने अपना स्वातंत्र्य-युद्ध जारी रखा और १५९७ ई० में मृत्युसे पूर्व अपने कुछ मजबूत गढोंको फिरसे अपने अधिकारमें कर लिया। राजपूतोंमें वही एक ऐसा वीर था जिसने मातृभूमिकी स्वतंत्रताका अपहरण न होने देनेके लिए मुसलमानोंकी विशाल सेनासे युद्ध किया। उसके बाद उसका पुत्र अमरसिंह गद्दीपर बैठा। उसने १६१४ ई० में बादशाह जहाँगीरकी अधीनता स्वीकार कर ली।

प्रतापादित्य–जेसोर (बगाल)का एक वीर भूमिपति (जमीदार)। उसने अकबरको खिराज देनेसे इनकार कर दिया और मुगल सेनाको हरा दिया। अतमे उसे परास्त कर के बदी बना लिया गया। जब वह दिल्ली भेजा जा रहा था, रास्तेमे उसकी मृत्यु हो गयी।

प्रतिहार (अथवा परिहार)–देखिये, 'गूर्जर-प्रतिहार वश'।

प्रबोधचन्द्रोदय–एक मनोभावात्मक सस्कृत रूपक जिसमे वेदात दर्शनका सुन्दर निरूपण किया गया है। यह चदेल राजा कीर्तिवर्मा (दे०)के आश्रयमे लिखा गया था, जो ग्यारहवी शताब्दीके उत्तरार्धमे राज्य करता था।

प्रभाकरवर्धन–थानेश्वरका राजा, जो पुष्यभूतिवश (दे०) का था और छठी शताब्दीके अतमे राज्य करता था। उसकी माता गुप्तवशकी राजकुमारी, महासेनगुप्त नामक थी। उसने अपने पडोसी राज्यो, मालवो, उत्तर-पश्चिमी पजाबके हूणो तथा गुर्जरोके साथ युद्ध करके काफी प्रतिष्ठा प्राप्त की। उसने अपनी पुत्री राज्यश्रीका विवाह कन्नौजके मौखरि राजा ग्रहवर्मासे कर दिया। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु ६०४ ई० मे हुई। उसके बाद उसका सबसे बडा पुत्र राज्यवर्धन उत्तराधिकारी हुआ।

प्रभावती गुप्ता–चन्द्रगुप्त द्वितीय (लगभग ३८०–४१३ ई०) (दे०)की पुत्री। उसका विवाह वाकाटक (दे०) राजा रुद्रसेन द्वितीयसे हुआ था। उसके वंशज कई शताब्दियो तक दक्षिण भारतपर राज्य करते रहे।

प्रवरसेन प्रथम–वाकाटक वश (दे०) का शासक, जो चौथी शताब्दी ई० मे राज्य करता था। उसके राज्यमे मध्य प्रदेश तथा दक्षिणका अधिकाश पश्चिमी भाग था। उसके बारेमे अधिक ज्ञात नही है।

प्रवरसेन द्वितीय–वाकाटक (दे०) राजा रुद्रसेन द्वितीय (दे०)का पुत्र एव उत्तराधिकारी। उसने प्रभावती गुप्ता (दे०)से विवाह किया और लगभग ४१० ई०मे सिहासन-पर बैठा। उसने धीरे-धीरे गुप्त राजाओकी अधीनतासे अपनेको स्वतत्र कर लिया।

प्रसेनजित्–छठी शताब्दी ई० पू० के मध्यकालके आसपास कोशलका राजा और गौतम बुद्ध (दे०) तथा वर्धमान महावीर (दे०)का समसामयिक। दोनोने उसके राज्यमे विहार किया था। प्रसेनजितने मगधके राजा बिम्बिसार (दे०)की बहिनसे विवाह किया था और उसकी बहिन राजा बिम्बिसारको ब्याही थी। इस विवाह-सम्बन्धके बावजूद प्रसेनजितको बिम्बिसार तथा उसके पुत्र एव उत्तराधिकारी तथा पितृघाती अजातशत्रुसे युद्ध करना पडा। अजातशत्रुने उससे काशी ग्राम छीन लिया जो बिम्बिसारकी रानी कोशल देवीको स्नानचूर्ण मूल्यके रूपमे मिला था। इसके बाद ही प्रसेनजितकी मृत्यु हो गयी और कोशल राज्यका अपकर्ष आरम्भ हो गया।

प्रान्तीय स्वशासन–गवर्नमेण्ट आफ इडिया ऐक्ट १९३५ ई० के द्वारा किये गये सवैधानिक परिवर्तनोकी मुख्य विशेषता थी। (दे०, भारतमे ब्रिटिश प्रशासन)।

प्राकृत–सस्कृत भाषाका बोलचालका विकृत रूप। यह पालीसे अधिक मिलती-जुलती है। सम्राट् अशोकके कालमे यह सारे भारतकी बोलचालकी भाषा थी। देहरादून जिलेमे स्थित कालसीसे लेकर मैसूर तक मिलनेवाले उसके सभी शिलालेखोमे इसी भाषाका प्रयोग किया गया है।

प्राग्ज्योतिष–महाभारतमे उल्लिखित आसामके आधुनिक प्रातका पुराना नाम। कुछ लोग प्राग्ज्योतिषपुरकी पहचान दक्षिण आसामकी घाटीमे स्थित गोहाटी नगरसे करते है।

प्राचीन भारतकी कला और वास्तुकला–की गौरवशाली परम्परा और महान् उपलब्धियाँ है। प्रागैतिहासिक कालसे आधुनिक काल तक भारतकी कला और वास्तुकला-मे बहुतसे परिवर्तन हुए हैं। सिन्धु घाटी सभ्यता (लगभग ३०००से १५०० ई० पू०) के जो अवशेष मिले है उनसे मालूम होता है कि उस समय विशाल भवन बनाये जाते थे, जिनमे आधुनिक सुविधाएँ—जैसे बाजार, सार्वजनिक स्नानागार, पानीकी निकासीके लिए नालियाँ और गंदा पानी सोखनेके गड्ढे सभी पक्की ईटोसे बनाये जाते थे। इस प्रकारके निर्माणकार्य मोहन्जोदाडो, हडप्पा और सिन्धु घाटी सभ्यताके दूसरे नगरोमे मिले हैं। उस कालकी मिली मोहरोसे प्रकट होता है कि तक्षणकला और लिपि कला उस समय लोगोको ज्ञात थी। ऐसा प्रतीत होता है कि सिन्धु घाटी सभ्यताके नष्ट हो जानेके बाद पत्थरके मकान बनानेकी कला त्याग दी गयी और ऐतिहासिक काल (लगभग ३२० ई० पू०) शुरू होनेपर भारतीयोंने लकडीके मकान बनाना शुरू कर दिया। चन्द्रगुप्त मौर्य (लगभग ३२२ ई० पू० से २९८ ई० पू०) के महल, जिसकी मेगस्थनीजने बडी प्रशसा की है और जिसे सूसा और एकबतानाके महलोसे अच्छा बताया है, लकडीके बने थे और नगरके चारो ओरके परकोटेमे भी शहतीरोका इस्ते-माल किया गया था। पत्थरका फिरसे प्रयोग चन्द्रगुप्त मौर्यके पौत्र अशोक (लगभग २७०–२३२ ई०पू०) के कालमे शुरू हुआ जिसने प्रस्तर स्तम्भोपर अनेक लेख अकित कराये। इनपर इतनी सुन्दर पालिश की जाती थी

कि वे सदियो तक लौह-स्तम्भ माने जाते रहे। अशोकने स्तूपोके निर्माणमे भी पत्थरका प्रयोग किया। उसका महल भी पत्थरका बना था जो इतना सुन्दर और विशाल था कि करीब ६०० वर्ष बाद जब फाहियेन ४०५–११ ई०मे भारत आया और उसने उसे देखा तो उसने उसे देवो द्वारा निर्मित समझा। अशोकके स्तम्भोका अलकरण उच्चकोटि का है, जिससे पता चलता है कि उस समय पत्थरको तरासने (तक्षण) और पालिश करनेकी कला काफी विकसित हो चुकी थी। कुछ लोगोका अनुमान है कि भारतीय स्थापत्य कलापर यूनानी प्रभाव पडा था।

पत्थरपर आधारित प्राचीन भारतीय वास्तुकलाके नमूने मुख्य रूपसे मदिरोके रूपमे मिलते हैं। उत्तर अथवा दक्षिण भारतमे किसी प्राचीन राजप्रासादके अवशेष अब तक नही मिले है। लेकिन १२० ई० से ११९३ ई० के बीच अनेक हिन्दू, बौद्ध और जैन मदिरोके निर्माणमे पत्थरका प्रयोग किया गया। दुर्भाग्यसे इनमेसे अधिकाश मदिरोको जो उत्तर भारतमे स्थित थे और कलाके उत्कृष्ट नमूने थे, मुसलमान आक्रमणकारियोने नष्ट कर दिया। केवल कुछ ही मदिर मनुष्य और कालके विनाशसे बच गये है। इनमे झासी जिलेमे देवगढके मदिर, कानपुर जिलेके भीतर गाँवके मदिर और छतरपुर जिलेके खजुराहोके मदिर है। इनमेसे दो मदिर उत्तर प्रदेशमे और तीसरा मध्य प्रदेशमे हैं। ये मदिर उत्तरी भारतमे भारतीय वास्तु तथा स्थापत्य कलाके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। प्राचीन भारतीय कला और वास्तुकलाकी महानताको समझनेके लिए हमे दक्षिण भारतकी ओर देखना पडता है, जिसे सही अर्थोमे मदिरोका देश कहा गया है। काजीवरम्, तजोर, तिरुचीपल्ली, मदुरा और रामेश्वरके भव्य मदिर हिन्दू कला और वास्तुकलाके उत्तम उदाहरण हैं। इनके मडपोकी चौडी छते, ऊँचे शिखर और दीवालोपर उत्कीर्ण मानवीय मूर्तियाँ और प्राकृतिक दृश्य भारतीय कलाकी विशेषताएँ प्रदर्शित करते है। अजन्ता, एलोरा और नासिकके गुहा-मदिरोकी चित्रकला अपना सानी नही रखती। प्राचीन भारतकी वास्तुकलाका सबसे सुन्दर नमूना जो आधुनिक कालमे सुरक्षित है, वह एलोराका कैलाश मदिर (७७० ई०) है जिसे एक शिलाखडको तराश कर बनाया गया था। इस मदिरकी दीवालो और फर्शकी पालिश इतनी सुन्दर है कि अनेक शताब्दियाँ बीत जानेपर उसकी चमक बनी हुई है और उसमे स्पष्ट प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। यह ससार भरमे मानवश्रम और शिल्पकलाकी सबसे उत्तम रचना है।

प्राचीन भारतीय कला और वास्तुकला समुद्र पार करके विदेशोमे भी पहुँची थी और उसने हिन्देशिया, हिन्दचीन और कबोडियाकी कला, वास्तुकला तथा स्थापत्यकलाको प्रभावित किया था। जावाके बोरोबुदूरका स्तूप और कम्बोडियाके अकोरवटका मदिर दक्षिण पूर्वी एशियामे भारतीय कलाका सबसे भव्य नमूना है। (**एम० ह्वीलर-दि इडस सिविलीजेशन, ए० के० कुमारस्वामी—हिस्ट्री आफ इडियन ऐंड इडोनेशियन आर्ट; जे० फर्ग्यूसन—हिस्ट्री आफ इडियन ऐंड ईस्टर्न आर्कीटेक्चर; वी० ए० स्मिथ—हिस्ट्री आफ फाइन आर्ट इन इडिया ऐंड सीलोन**)

प्रार्थना समाज—इसकी स्थापना १८६७ ई०मे ब्राह्म समाजके नेता केशवचन्द सेन (दे०) के निर्देशनमे महाराष्ट्रमे की गयी। ब्राह्म समाजियोके विपरीत प्रार्थना समाजके सदस्य अपनेको हिन्दू मानते थे। वे एकेश्वरवादमे विश्वास करते थे और महाराष्ट्रके तुकाराम (दे०) तथा रामदास जैसे महान् सतोकी परम्पराके अनुयायी थे। उन्होने अपना मुख्य ध्यान हिन्दुओमे समाज-सुधारके कार्यो, जैसे सहभोज, अतर्जातीय विवाह, विधवा-विवाह, अछूतोद्धार आदिमे लगाया। प्रार्थना समाजने बहुतसे समाज-सुधारकोको अपनी ओर आकर्षित किया, जिनमे जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे भी थे। मुख्य रूपसे उनके प्रयत्नसे प्रार्थना समाजकी ओरसे 'दक्कन एजूकेशन सोसाइटी' (दक्षिण शिक्षा समिति) (दे०) जैसी लोकोपकारी सस्थाओकी स्थापना की गयी।

प्रिंस आफ वेल्स—अर्थात् युवराज एडवर्डने १९२१ ई०मे भारतकी यात्रा की। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसने युवराजका बहिष्कार किया। युवराजके स्वागत-समारोहोका शाति-पूर्ण रीतिसे बहिष्कार करनेके आदोलनको जो अभूतपूर्व सफलता मिली, उससे अच्छी तरह स्पष्ट हो गया कि भारतमे ब्रिटेनके विरुद्ध कितना असतोष व्याप्त है और भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसका जनतापर कितना प्रभाव है। इसमे ब्रिटिश सरकारकी आँखे खुल गयी।

प्रौढ़ देवराय (अथवा पडियाराव)—विजयनगरके प्रथम राजवशका अतिम राजा। उसे १४८५ ई०मे सालुव नरसिंहने अपदस्थ कर दिया।

प्लिनी—एक प्राचीन यूनानी भूगोलवेत्ता। उसके 'नेचुरल हिस्ट्री' (प्राकृतिक इतिहास) नामक ग्रथमे प्रथम शताब्दी ईसवी सन्के भारतके बारेमे काफी सूचनाएँ प्राप्त होती है। विश्वास किया जाता है कि उसका यह ग्रन्थ ७७ ई०मे प्रकाशित हुआ था।

प्लेग—यह महामारी बम्बईमे १८९६ ई०मे भयकर रूपसे

फैल गयी। इसे रोकनेके लिए लोगोको उनके घरोसे हटाकर अलग कैम्पोमे रखने तथा मरीजोको अस्पताल भेजनेके कडे नियम बनाये गये। इन नियमोका देशवासियो-की भावनाओकी कोई चिंता न करके कठोरतासे पालन कराया गया। इसके फलस्वरूप जनतामे भारी असतोष उत्पन्न हो गया और १८९७ ई० मे प्लेगमे सहायता-कार्य करनेवाले दो अग्रेज अफसरोकी पूनामे हत्या कर दी गयी तथा १८९८ ई० मे बम्बई मे भयानक दगा हो गया। इसके फलस्वरूप सरकारने कडे दमनकारी कानून बनाये और लोकमान्य बाल गगाधर तिलक (दे०) पर राजद्रोहका अभियोग लगाकर उनपर मुकदमा चलाया और दडित किया।

१८९८ ई० मे कलकत्तामे भी प्लेगकी महामारी फैल गयी और इसमे बहुत-सी जाने गयी। इस महामारीके समय रामकृष्ण मिशन (दे०) तथा सिस्टर निवेदिताने बीमारो तथा मरणासन्न व्यक्तियोकी सेवा-सुश्रूषा करके भारी नाम कमाया। धीरे-धीरे प्लेगकी महामारीका प्रसार रोक दिया गया, किन्तु भारतसे इस महामारीका पूर्ण उन्मूलन अभी तक सभव नही हो सका है।

फ

फखरुद्दीन–सुल्तान बल्बनके शासनकालमे दिल्लीका कोतवाल। वह बडा ऐशपरस्त था और प्रतिदिन पोशाक बदलता था। जब बलबनने अमीरोकी शक्तिको कुचलनेके लिए दोआबके दो हजार शमसी घुडसवारोकी भूमिके पट्टोका नियमन और भूमिके पुराने अनुदानोको इस आधारपर रद्द करना शुरू किया कि उन लोगोने सैनिक सेवा प्रदान करना बद कर दिया है, फखरुद्दीन भूस्वामियोके हितोका मुख्य सरक्षक और प्रवक्ता बन गया।

एक दिन फखरुद्दीन सुल्तानके पास गमगीन शक्ल लिये हुए गया। सुल्तानने पूछा कि वह गमगीन क्यो है, तो उसने जवाब दिया कि शमसी घुडसवारोकी जमीन वापस ली जा रही है, अतएव मुझे चिंता हो गयी है कि अब बुढापेमे जिंदगी कैसे कटेगी। इस चतुरतापूर्ण कथनसे सुल्तानको बडी दया आयी। सुल्तानने शमसी घुडसवारो-से जमीन वापस लेनेका आदेश रद्द कर दिया। १२८७ ई० मे बलबनकी मृत्युके पश्चात् फखरुद्दीनने पहले कैकोबादको गद्दीपर बिठाने और फिर १२९० ई० मे उसे गद्दीसे उतारकर जलालुद्दीन खिलजीको उसपर बैठानेमे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। १३०१ ई०मे सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीको सदेह हुआ कि फखरुद्दीनने हाजी मौलाको विद्रोह करनेके लिए उकसाया है, तब उसने उसे सपरिवार मरवा दिया।

फखरुद्दीन अब्दुल अजीज कूफी–नैशापुरका काजी था जिसने एक गुलाम बालक खरीदा और उसे अपने लडकोके साथ धार्मिक एव सैनिक शिक्षा दी। यही बालक आगे चलकर कुतुबुद्दीन ऐबकके नामसे प्रसिद्ध हुआ जो दिल्लीका प्रथम सुल्तान और गुलाम वशका सस्थापक बना। फख-रुद्दीनके लडकोने इस गुलाम बालकको एक व्यापारीके हाथ बेच दिया। इस व्यापारीने उसे गजनीमे बेच दिया।

फखरुद्दीन मुबारक शाह–सुल्तान मुहम्मद तुगलक (१३२५–५१ ई०) के जमानेमे सोनारगाँव (बगाल) के सूबेदार बहराम खाँ (जो तातार खाँके नामसे भी जाना जाता था) का सिलहबख्तर बरदार। १३३६ ई०मे बहराम खाँके मरनेके पश्चात् उसने अपनेको सोनारगाँवका शासक घोषित कर दिया और फखरुद्दीन मुबारक शाहकी पदवी धारण की। इस प्रकार उसने बगालमे स्वतन्त्र सल्तनतकी स्थापना की। उसने लगभग दस वर्ष तक शासन किया। (भट्टसाली, पृष्ठ १५)।

फखरुद्दीन मुहम्मद जूना खाँ–देखिये, 'मुहम्मद तुगलक'।

फजलुलहक, अब्दुल कासिम (१८७३-१९६२)–भूतपूर्व पूर्वी पाकिस्तान (अब बगलादेश)का गवर्नर। उसका जन्म बरीसालमे हुआ। पहले वह डिप्टी मजिस्ट्रेटके पदपर था, किन्तु शीघ्र ही उसे छोडकर कलकत्ता हाईकोर्टमे वकालत शुरू कर दी। उसका जीवन विविधतापूर्ण और विलक्षण रहा। १९०४ ई० मे वह भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसमे शामिल हुआ, किन्तु शीघ्र ही काग्रेसको छोडकर मुस्लिम लीगमे शामिल हो गया और उसका अध्यक्ष भी रहा। गोलमेज सम्मेलन (दे०)के पहले और दूसरे अधि-वेशनोमे उसने मुस्लिम लीगका प्रतिनिधित्व किया। वह १९३७ से ४३ ई० तक अविभाजित बगालका मुख्यमत्री और कृषक प्रजा पार्टीका नेता रहा। देश विभाजनके बाद वह पूर्वी पाकिस्तान चला गया। वहाँपर वह मुख्य-मत्री और गवर्नर भी रहा।

फतेहउल्ला, इमादशाह–जिसने हिन्दू धर्मको छोडकर इस्लाम अपना लिया, चौदहवे बहमनी सुल्तान महमूद (१४८२-१५१८ ई०)के शासनकालमे बरारका सूबेदार। सुल्तानके नाबालिग होने और महमूद खाँकी हत्याके बाद उत्पन्न अराजकता और विघटनकी स्थितिका लाभ उठा कर फतेहउल्ला १४८४ ई० मे बरारका शासक बन

बैठा और उसने 'इमादुलमुल्क'की उपाधि धारण की। इस प्रकार इमादशाही वंशका सूत्रपात हुआ। इस वंशने १५७४ ई० तक बरारमे शासन किया। इसके बाद बरारको अहमदनगरमे मिला लिया गया।

फतेहखाँ—सुल्तान फीरोजशाह तुगलकका सबसे बडा पुत्र (१३५१-८८)। उसकी मृत्यु फीरोजसे पहले ही हो गयी थी। फतेहखाँका बडा लडका गयासुद्दीन तुगलक अपने बाबा सुल्तान फीरोजशाहकी मृत्युके तत्काल बाद गद्दीपर बैठा, किन्तु कुछ ही महीनो बाद उसे अपदस्थ कर उसकी हत्या कर दी गयी। फतेहखाँका दूसरा लडका नसरतशाह तुगलक वंशका उपातिम सुल्तान था, जिसने १३९५ से १३९९ ई० तक शासन किया।

फतेहखाँ—मलिक अम्बरका पुत्र। मलिक अम्बर अहमदनगरके निजामशाहोका वर्षोतक वजीर रहा। फतेहखाँमे अपने बाप जैसी वफादारी नही थी। वह अहमदनगरके उपान्तिम शासक मुरतजा निजामशाह द्वितीयका वजीर था। उसने १६३० ई० मे निजामशाहकी हत्या कर उसके युवा पुत्र हुसेनको अहमदनगरका शासक घोषित कर दिया। १६३१ ई० मे उसने बडी बहादुरीके साथ मुगल-सम्राट् शाहजहाँकी फौजोसे दौलताबाद दुर्गकी रक्षा की। उसके पिता मलिक अम्बरने दौलताबादकी बडी मजबूत किलेबन्दी की थी। १६३३ ई० मे मुगल सम्राट्ने फतेहखाँ को लालच दिया जिससे उसने दौलताबादका दुर्ग मुगलसम्राट्के हवाले कर दिया। शाहजहाँने अहमदनगरके अतिम निजामशाह हुसेनको ग्वालियरके किलेमे आजीवन कैद रखा और फतेहखाँको अपनी सेवामे ले लिया। वह मृत्यु पर्यन्त बादशाहकी सेवामे रहा। (कैम्ब्रिज०, पृष्ठ २६५)

फतेहपुर सीकरी—आगरासे २३ मील पश्चिममे स्थित, यहाँ प्रसिद्ध मुस्लिम फकीर शेख सलीम चिश्ती रहता था। सम्राट् अकबर, जो सतानके लिए अधीर था, अपनी मुराद पूरी होनेके लिए चिश्तीसे दुआ मागने गया। १५६९ ई०मे जब उसकी पहली हिन्दू बेगम जोधाबाईने सीकरीमे पुत्र (भावी सम्राट् जहाँगीर)को जन्म दिया, कृतज्ञ सम्राट्ने शेखके नामपर उसका नाम सलीम रखा और सीकरीको राजधानी बनानेका निश्चय किया ताकि वह स्वय वहाँ रह सके। सीकरीका निर्माण १५७० ई०मे आरभ हुआ और पूरा नगर अनेक आलीशान इमारतोके साथ कुछ ही वर्षोमे बनकर तैयार हो गया। अकबरने १५७३ ई०मे सीकरीसे ही गुजरातको फतह करनेके लिए कूच किया था। इसलिए इसकी सफलताके उपलक्ष्यमे उसने सीकरीका नाम फतेहपुर (विजयनगरी) रखा। तभीसे सीकरी 'फतेहपुर सीकरी'के नामसे प्रसिद्ध हो गयी। लगभग १५ वर्षों तक यह अकबरकी राजधानी बनी रही। इस अल्प अवधिमे नगरीमे अनेक विशाल भवनोका निर्माण किया गया। सभी भवन प्राय लाल पत्थरसे बनाये गये है। इन भवनोमे सलीम चिश्तीका मकबरा, जामा मस्जिद, बुलद दरवाजा, जोधाबाईका महल, हवाखाना, दीवानेखास, बीरबल महल, मरियम और तुर्की सुल्तानोंके महल तथा इबादतखाना (उपासना-गृह) विशेष उल्लेखनीय हैं। इबादतखानाको छोडकर बाकी ये सभी इमारतें आज भी मौजूद हैं और सम्राट् अकबरके ललितकला प्रेमकी भव्य प्रतीक है। (कुमार स्वामी०, खण्ड द्वितीय, पृष्ठ २९७)।

फरायजी आन्दोलन—फरीदपुर (जो अब बगलादेशमे है) के हाजी शरियतुल्लाहने चलाया। यह मुस्लिम पुनरुद्धार आन्दोलन था जिसका उद्देश्य इस्लामका शुद्धीकरण था। इसने फरीदपुर जिले और उसके पास-पडोसके क्षेत्रोमे रहनेवाले मुस्लिम काश्तकारोको भारी सख्यामे आकर्षित किया। यह शान्तिपूर्ण आन्दोलन था जिसने बादको कृषि आन्दोलनका रूप ले लिया। बाद धीरे-धीरे यह ठडा पड गया।

फरिश्ता, मुहम्मद कासिम (१५७०-१६१२)—एक प्रसिद्ध इतिहासकार, जिसने फारसीमे इतिहास लिखा है। उसका जन्म फारसमे कैस्पियन सागरके तटपर अस्त्राबादमे हुआ। वह युवावस्थामे अपने पिताके साथ अहमदाबाद आया और वहाँ १५८९ ई० तक रहा। इसके बाद वह बीजापुर चला गया, जहाँ उसे सुल्तान इब्राहीम आदिलशाह द्वितीयका सरक्षण प्राप्त हुआ। सुल्तानने उससे भारतका इतिहास लिखनेको कहा। यह कार्य उसने १६०९ ई०मे पूरा किया। उसके द्वारा लिखा गया भारतका इतिहास 'तारीखे फरिश्ता'के नामसे विख्यात है। ब्रिग्सने उसकी पुस्तकका अग्रेजीमे अनुवाद 'भारतमे मुसलमानी शक्तिके विकासका इतिहास' नामसे किया है, उसकी मृत्यु १६१२ ई०मे बीजापुरमे हुई। पूर्वी देशोके इतिहासकारोमे वह अधिक विश्वसनीय है। उसका प्रसिद्ध इतिहास ग्रथ आज भी भारतमे मुसलमानोके शासनकाल पर सबसे प्रामाणिक माना जाता है।

फरीद खाँ—देखिये, 'शेरशाह'।

फर्रुखसियर—नवाँ मुगल बादशाह (१७१३-१९) और अजीमुश्शानका पुत्र, जो अपने पिता शाह आलम प्रथम (१७०७-१२)की मृत्युके पश्चात् उत्तराधिकारके

युद्धमे १७१२ ई० मे मारा गया था। फर्रुखसियर वजीर जुल्फिकार खाँकी सहायतासे अपने चाचा बादशाह जहाँदारशाह (१७१२–१३)को, जिसकी बादमे हत्या करा दी गयी, पदच्युत कर खुद दिल्लीके राजसिंहासन पर बैठ गया। इसके कुछ ही दिन बाद फर्रुखसियरने जुल्फिकार खाँको सूलीपर चढवा दिया और हुसेनअली व अब्दुल्ला खाँ नामक दो सैयद भाइयोको अपना विश्वासपात्र बनाया। उसने हुसेन अलीको प्रधान सेनापति और अब्दुल्ला खाँको वजीर बनाया। अपने अल्प शासनकालमे फर्रुखसियरने सिख नेता बदा वैरागीको उसके एक हजार अनुयायियोके साथ गिरफ्तार कर १७१५ ई०मे सबको मरवा डाला।

ईस्ट इडिया कम्पनीने फर्रुखसियरसे बहुत लाभ उठाया। १७१५ ई०मे एक अग्रेजी दूत-मडल, जिसमे विलियम हैमिल्टन नामक शल्यचिकित्सक भी था, उसके दरबारमे आया था। अग्रेज शल्यचिकित्सकने बहादुरशाहकी बीमार पुत्रीको मामूली इलाजसे ठीक कर दिया। फर्रुखसियरने खुश होकर शल्यचिकित्सककी स्वामी ईस्ट इडिया कम्पनीको इनामके तौरपर व्यापारमे महत्त्वपूर्ण रियायते दी और बगालमे उसके लिए तटकर माफ कर दिया। फर्रुखसियर दिमागका कमजोर था। वह सैयद भाइयोके नियत्रणसे मुक्त होना चाहता था। दैवयोगसे उन्हे सम्राट्के षड्यत्रका पता चल गया और उन्होने पहले ही उसको अपदस्थ कर दिया और बादको आँखे निकलवा कर मरवा डाला।

फाउलर, सर हेनरी–१८९४ ई०मे ब्रिटिश सरकारका भारत-मत्री। १८९८ ई०मे उसकी अध्यक्षतामे गठित एक समितिकी सिफारिशपर गिन्नी (सोना) और रुपये (चाँदी) दोनोको ही असीमित विधिमान्य मुद्रा मान लिया गया, जिसकी दर एक शिलिंग चार पेंस प्रति रुपया निर्धारित हुई और टकसालमे केवल सोनेके मुक्त सिक्के ही ढाले जाने लगे।

फाक्स, चार्ल्स जेम्स (१७४९-१८०६)–इंग्लैंडका प्रमुख राजनैतिज्ञ और सासदिक। १७८३ ई०मे उसने लार्ड नार्थके साथ मिलकर इग्लैंडमे एक मत्रिमडलका गठन किया। इसी वर्ष उसने ससदके सामने भारत सबंधी विधेयक पेश किया जिसमे ईस्ट इडिया कम्पनीके कोर्ट आफ प्रोप्राइटर्स और बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स दोनोको ही भग करके सारे राजनीतिक और सैनिक अधिकार चार वर्षोके लिए पहले ससद और बादको महाराज (क्राउन) द्वारा नियुक्त किये जानेवाले सात डायरेक्टरो या कमिश्नरोको हस्तातरित कर देनेका प्रस्ताव था। कामन सभा (हाउस आफ कामन्स)ने तो इस विधेयकको भारी बहुमतसे पास कर दिया किन्तु जार्ज तृतीय द्वारा लार्ड टैम्पिलके जरिये किये जानेवाले विरोधी प्रचारके फलस्वरूप लार्ड सभा (हाउस आफ लार्ड्स) ने उसे ठुकरा दिया। तदनन्तर जार्ज तृतीयने फाक्स और नार्थके मत्रिमडलको बर्खास्त कर दिया। किन्तु फाक्स अपने उदारवादी दृष्टिकोणके कारण भारतीय मामलोमे गहरी दिलचस्पी लेता रहा। १७८८ ई०मे वारेन हेस्टिंग्स (दे०)पर महाभियोग लगानेमे उसका प्रमुख हाथ था।

फारस–और भारतका अत्यन्त प्राचीन कालसे गहरा सम्बन्ध रहा है। विश्वास किया जाता है कि फारसमे जा बसनेवाले आर्य उसी मूलवशके थे जिससे भारतीय आर्योका विकास हुआ। अवेस्ताकी भाषा सस्कृतसे इतनी मिलती-जुलती है कि दोनो एक ही भाषा-परिवारकी मानी जाती हैं। भारतसे फारसका निकट सम्बन्ध छठी शताब्दी ई० पू०मे स्थापित हुआ, जब फारसके शाहशाह साइरस (कुरुष अथवा कुरु) (लगभग ५५८-५३० ई० पू०)ने काबुल नदी तथा सिंधु नदीके बीचका प्रदेश जीत लिया, जिसमे अश्वक आदि गणोका निवास था। डेरियस (दारयवहु) (लगभग ५२२–४८६ ई० पू०)के राज्यकालमे फारसके साम्राज्यकी सीमाओका और विस्तार हुआ और गधार तथा उससे और पूर्वमे सिन्धु नदी तकका प्रदेश उसके अतर्गत आ गया। गधारसे पूर्वके प्रदेशको ईरानी 'हिन्द' कहते थे और वह फारसके साम्राज्यका बीसवाँ प्रात था। गधार और 'हिन्द' डेरियसके पुत्र एव उत्तराधिकारी जरेक्सीज (क्षयार्श) (४८६–४६५ ई० पू०)के राज्यके अन्तर्गत बने रहे। जरेक्सीजने जब यूनान पर चढाई की तब उसकी सेनामे गधार और 'हिन्द'के भी सैनिक लडने गये थे।

फारस और भारतके प्राचीन सम्पर्कके फलस्वरूप उत्तर-पश्चिम भारतमे खरोष्ठी लिपि प्रचलित हो गयी तथा भारतीय वास्तुकलापर भी पारसी प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा। फारसके शाहशाह डेरियस तृतीय (३३५–३३० ई० पू०)को मकदूनियाके राजा सिकन्दरने ३३१ ई० पू० मे गौगामेलकी जिस लडाईमे हराया उसमे भारतीय सेनाओने भी फारसकी सेनाओके साथ युद्ध किया था। इस युद्धके बाद ही डेरियस तृतीयकी मृत्यु हो गयी, जिसके फलस्वरूप सिकन्दर फारसके साम्राज्यका स्वामी हो गया। इसके बाद ही सिकन्दरने

३२७ ई० पू०में पंजाब तथा सिंधपर आक्रमण किया, जिनके ऊपर फारसके साम्राज्यका नियंत्रण शिथिल पड गया था और जहाँ अनेक छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गये थे। सिकन्दरकी मृत्युके बाद पंजाबने फारसके साम्राज्यके नियंत्रणसे अपनेको मुक्त कर लिया, किंतु, फारस और भारतके बीच व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध कायम रहे।

अशोकने पश्चिमके जिन सुदूरवर्ती राज्योंमे धर्म-विजयके लिए बौद्ध भिक्षुओंको भेजा था, वे फारस होकर उन देशोंमे गये थे। फारसमे उस समय मानी धर्म प्रचलित था। बौद्ध भिक्षुओंने इस मानी धर्मको भी प्रभावित किया। अजंताकी गुफा संख्या १ के भित्ति-चित्रसे प्रकट होता है कि फारस और भारतके बीच दौत्य सम्बन्ध बराबर बना रहा। इस भित्तिचित्रमे दिखाया गया है कि फारसके शाह खुसरो द्वितीय द्वारा लगभग ६२७ ई०मे भेजा गया दूत चालुक्य राजा पुल-केशी द्वितीय (६०८–४२ ई०)को अपना परिचय-पत्र प्रस्तुत कर रहा है। सातवीं शताब्दीके मध्यमे अरबोंने जब फारसपर अधिकार करके वहाँ इसलाम धर्मका प्रचार किया, जरथुश्ती पारसियोंका एक दल, जो अपनी जमीन और दौलतकी अपेक्षा अपने धर्मसे अधिक प्रेम करता था, भागकर भारत चला आया और यहाँ उन्हे आश्रय प्राप्त हुआ। इन पारसियोंके वंशज आज भी वर्तमान हैं और भारतके सम्मानित एवं समृद्धिशाली अल्पसंख्क वर्गमें उनकी गणना की जाती है।

भारतपर जिन मुसलमानोंने विजय प्राप्त की, उनमे अधिकांश तुर्क तथा सुन्नी थे। उधर फारसके लोग तथा वहाँके शाह शिया मतावलम्बी थे। इसलिए मुसलमानी शासन-कालमे फारस और भारतके सम्बन्ध-सूत्र शिथिल पड गये। फिर भी फारसके साहसी मुस-लमान अक्सर दौलतकी खोजमे भारत आते रहते थे और उन्हे अक्सर यहाँ आनेपर अमीर बना दिया जाता था। इस प्रकारका एक ईरानी अमीर यूसुफ आदिल शाह था, जिसने बीजापुरका आदिलशाही वंश (१४९०–१६७३ ई०) चलाया। प्रसिद्ध मुसलमान इतिहासकार फरिश्ता (दे०) भी फारसका रहनेवाला था। उसने भारतमे मुसलमानी राज्यशक्तिके उत्थान और पतनका इतिहास लिखा है। दिल्लीके सुलतानोंके दरबारमे फारसी भाषाका प्रयोग होता था और मुगल दरबारमे भी इसी भाषाका प्रयोग जारी रहा। सारे भारतमे मुसलमान शासकोंके दरबारोंमे फारसी भाषा, फारसी पहनावे और फारसी शिष्टाचारका प्रचलन था। दूसरे मुगल बादशाह हुमायूँ (दे०)को फारसके शाह ताहमस्पके दरबारमे शरण मिली थी और उसीकी फौजी सहायता-से उसने दुबारा दिल्लीका तख्त प्राप्त किया। १६४९ ई० मे फारसने कंदहार छीन लिया और शाहजहाँ तथा औरंगजेब द्वारा उसपर दुबारा अधिकार कर लेनेके सारे प्रयत्नोंको विफल कर दिया। फारसने भारतको सबसे जबर्दस्त चोट १७३९ ई०में पहुँचायी जब फारसके शासक नादिरशाह (दे०)ने भारतपर चढाई की, दिल्लीको निर्दयता-पूर्वक लूटा तथा तख्तेताऊस, कोहनूर और बहुत-सी दौलत लेकर फारस लौट गया। १७४७ ई०मे नादिरशाहकी मृत्युके बाद ही अफगानिस्तानमे अहमदशाह दुर्रानीकी राज्यशक्तिके उदयमे फारस और भारतके बीच नवस्थापित राजनीतिक सम्बन्ध फिर भंग हो गया। परन्तु, नादिरशाहके हमलेमे भारतको जो क्षति पहुँची, उससे वह फिर उबर न सका। नादिर-शाहके हमलेने मुगल साम्राज्यको जर्जर कर दिया। १७६१ ई०मे पानीपतकी तीसरी लडाईमे मुगलों तथा मराठोंकी पराजय तथा उसके बाद ही भारतमे ब्रिटिश साम्राज्यका उदय, नादिरशाहके क्रूर हमलेका ही परिणाम था।

उन्नीसवीं शताब्दीमे फारसको लेकर ब्रिटेन और रूसमे काफी प्रतिद्वन्द्विता चली। दोनों ही फारसको अपने संरक्षणमे लेना चाहते थे। फलतः भारत और फारसका राजनीतिक सम्बन्ध ब्रिटेन और रूसकी कूट-नीतिक चालोंसे सम्बद्ध हो गया। १९०७ ई०मे ब्रिटेन और रूसमे समझौता हो गया जिसके द्वारा दोनोंने फारसकी अखंडता बनाये रखनेकी प्रतिज्ञा की। इसके साथ ही वे इस बातपर भी सहमत हो गये कि उत्तरी फारसको रूसी प्रभाव क्षेत्रमे तथा दक्षिण पूर्वी फारसको ब्रिटिश प्रभाव क्षेत्रमे माना जायगा। रूसने यह स्वीकार कर लिया कि फारसकी खाडीमे इंग्लैंडका विशेष स्वार्थ है। इस प्रकार यूरोपके दो सभ्य देशोंने एक स्वतंत्र देशका आपसमे जिस नीतिसे बंदरबाँट कर लेनेका निर्णय लिया, वह उनकी सभ्यताके वास्तविक चेहरेको बेनकाब करनेवाला था। १९३४ ई०से फारसका नाम सरकारी तौरसे बदलकर ईरान कर दिया गया है। ईरान अब शक्तिशाली आधुनिक राष्ट्र बन गया है। भारतीय गण-राज्यमे उनका मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध है।

फारूकी वंश—खानदेशमे १३८८ ई० मे सुलतान फीरोजशाह तुगलक (१३५१–८८) के निजी सेवक मलिक रजा

फारूकीसे प्रचलित, जिसे सल्तानने प्रातके प्रशासनका भार सौंपा था। मलिक रजा फारूकीने ग्यारह वर्षों (१३८८–९९) तक शासन किया। बादको उसका पुत्र मलिक नासिर (१३९९–१४३८) उत्तराधिकारी बना। उसने हिन्दू राजाको परास्त कर असीरगढ किलेपर कब्जा किया, लेकिन पडोसमे स्थित गुजरातके मुस्लिम बादशाह और बहमनी सुल्तान अलाउद्दीन अहमदने फारुकीको हरा कर उसकी पुत्रीसे विवाह कर लिया। इस वशके तीसरे बादशाह आदिल खाँ प्रथम (१४३४–४१) और चौथे बादशाह मुबारक खाँ प्रथम (१४४१-५७) के शासनकालमे कोई उल्लेखनीय घटना नही घटी। किन्तु पाँचवाँ बादशाह आदिल खाँ द्वितीय (१४५७–१५०८) योग्य और शक्तिशाली शासक था जिसने गोडवानापर अपनी प्रभुसत्ता कायम की। आदिल खाँ द्वितीयके कोई पुत्र न था इसलिए गद्दी उसके भाई दाऊद (१५०१–०८)को मिली। दाऊदके पुत्र और उत्तराधिकारी गजनी खाँ को गद्दीपर बैठनेके दस दिनोके अन्दर ही जहर देकर मार डाला गया। इसके बाद फारूकी वश गृहयुद्धका शिकार बन गया, जिसे अहमदनगर और गुजरातके सुल्तानोने और भडकाया। इस आतरिक सघर्षने फारुकी वशको अत्यधिक कमजोर कर दिया और उसके अतिम शासक बहादुर फारूकीने १६०१ ई०मे मुगल सम्राट् अकबरके आगे आत्मसमर्पण कर दिया। इस वशके शासकोने अपनी राजधानी बुरहानपुर तथा थालनेर नगरको सुन्दर मस्जिदो और मकबरोका निर्माण करके सुसज्जित किया था। बुरहानपुरमे ताप्ती नदीपर निर्मित उनके राजप्रासादके ध्वसावशेष स्थापत्य कलाके प्रति उनके प्रेम और कलापूर्ण रुचिके प्रतीक है।

फाहियान (फाहियेन)—एक चीनी तीर्थ-यात्री, जो भारतमे ४०१ से ४१० ई० तक रहा। वह विनय-पिटककी प्रामाणिक प्रति प्राप्त करनेके उद्देश्यसे आया था। फाहियान पश्चिमी चीनसे चलकर गोबी मरुस्थलके दक्षिणमे लाप-नोर होते हुए खोतान आया, जहाँ बौद्ध धर्मकी महायान शाखाका प्रचलन था। वह पामीर पार करते और भयकर कष्टोका सामना करते हुए उदयनोर (स्वात) पहुँचा। उसके बाद तक्षशिला होते हुए पुरुषपुर (पेशावर) पहुँचा। समस्त उत्तरी भारतकी यात्रा करते हुए वह तीन वर्ष पाटलिपुत्रमे तथा दो वर्ष ताम्रलिप्ति (आधुनिक पश्चिमी बगालके मिदनापुर जिलान्तर्गत तमलुक) मे रहा। उस जमानेमे ताम्रलिप्ति प्रसिद्ध बन्दरगाह था।

वह ४१० ई०मे ताम्रलिप्तिसे जलयान द्वारा स्वदेश रवाना हुआ और रास्तेमे श्रीलका तथा जावा रुकता हुआ ४१४ ई०मे चीन वापस लौटा।

फाहियानने भारतमे जो कुछ देखा, उसका बडा रोचक विवरण लिखा है। वह गगा घाटीके मैदानसे बहुत आकर्षित हुआ जिसे उसने मध्यदेशकी सज्ञा दी, जो उस समय गुप्त वशके चन्द्रगुप्त द्वितीय (लगभग ३८०–४१५ ई०)के शासनके अन्तर्गत था। फाहियानने अपने विवरणमे चन्द्रगुप्तका कही उल्लेख नही किया और न कभी उनके दरबारमे ही उपस्थित हुआ। लेकिन वह यहाँके कुशल एव उदार प्रशासनसे बहुत प्रभावित हुआ। उसने लिखा है कि यहाँ लोग बेरोकटोक कही भी आ-जा सकते है। कही किसीको पजीयन अथवा पारपत्रकी आवश्यकता नही होती। अपराधोके लिए मुख्यत अर्थदण्ड दिया जाता है। फाँसीकी सजा नही दी जाती, लेकिन गम्भीर अपराधोके लिए अग-भगका दण्ड दिया जाता है। भूमिके लगानसे राजस्व प्राप्त किया जाता है और सभी राजकीय अधिकारियोको नियमित रूपसे वेतन मिलता है।

मगधके नगर उसे बहुत पसन्द आये। पाटलिपुत्रमे उसने तीन वर्ष रहकर सस्कृत भाषा सीखी और बौद्ध धर्मग्रन्थोका अध्ययन किया। उसके कथनानुसार आम जनता धनी और वैभव-सम्पन्न थी। धर्मार्थक सस्थाएँ बहुत थी। महापथोपर यात्रियोके लिए विश्रामगृह बने हुए थे। एक बहुत अच्छा चिकित्सालय भी था। फाहियानको अशोकका राजप्रासाद, जो उस समय भी वर्तमान था, बहुत पसन्द आया। वह उसकी विशालता और भव्यतासे अति प्रभावित हुआ। उसे प्रतीत हुआ कि यह राजप्रासाद देवो द्वारा निर्मित हुआ होगा, मानव इस प्रकारका कलापूर्ण भवन बना ही नही सकता। उसने बौद्ध तीर्थ-स्थानो यथा बोध-गया, श्रावस्ती, कपिलवस्तु तथा कुशीनगरको लगभग वीरान अथवा उजडा हुआ पाया। उसने लिखा है कि सम्पूर्ण देशमे कोई किसी भी प्राणीकी हत्या नही करता। कोई शराब नही पीता और न कोई प्याज-लहसुन खाता है। इससे प्रकट होता है कि उस जमानेमे लोग बहुत सयमी होते थे और शाकाहारी भोजनके आदी थे। फाहियानके विवरणमे एक महत्त्वपूर्ण बात छूट गयी है। उसने नालदा विहार और विश्वविद्यालयका जिक्र नही किया है। जान पडता है कि फाहियानके स्वदेश वापस हो जानेके बाद इनकी स्थापना हुई।

फिच, जनरल (१८२०-९२)—ब्रिटिश भारतीय फौजका एक अधिकारी, जिसने द्वितीय वर्मा-युद्ध (१८५२ ई०) में भाग लिया था। युद्ध जीत लेनेके वाद उसने नव-नियुक्त कमिश्नर मेजर आर्थर फेरेको वर्माके नये प्रांतमें आवश्यक प्रशासनिक सुधार करनेमें वहुत सहायता दी। १८७८ ई०में उसकी पुस्तक 'वर्मा, पास्ट एण्ड प्रेजेण्ट' (वर्मा अतीत और वर्तमान) प्रकाशित हुई।

फिच, राल्फ—एक अंग्रेज सौदागर जो स्थल मार्गसे १५८३ ई०में भारत आया। उसने उत्तरी भारत, वंगाल, वर्मा, मलक्का और श्रीलंकाकी यात्रा की और १५९१ ई०में सकुशल इंग्लैंड वापस लौट गया। उसने अपना जो यात्रा-विवरण लिखा उसके आधारपर ईस्ट इंडिया कम्पनीने अपनी प्रारम्भिक व्यापारिक योजना तैयार की।

फीरोजखाँ—शेरशाह (१५४०-४५)के एकमात्र पुत्र और उत्तराधिकारी इस्लाम (या सलीम) शाहका इकलौता लडका। इस्लामशाह (१५४५-५४)की मृत्युपर अल्पवयस्क फीरोजखाँको उसके मामा मुबारिजखाँने मार डाला, जो वादको मुहम्मद आदिलशाह (१५५४-५६) के नामसे खुद तख्तपर बैठ गया।

फीरोजशाह—मुगल वादशाह वहादुरशाह द्वितीय (१८३७-५८)का एक सम्वन्धी। उसने भारतीय स्वाधीनता संग्राम (१८५७ ई०)से पहले कुछ दिनों तक ब्रिटिश-विरोधी भावना भडकानेमें प्रमुख भूमिका अदा की थी।

फीरोजशाहका युद्ध—२१ और २२ दिसम्वरको प्रथम सिख-युद्ध (१८४५-४६) के दौरान सिखों और अंग्रेजोंके वीच छेडा गया। २१ दिसम्वरकी रातको ब्रिटिश फौजकी हालत बेहद नाजुक थी, जव उसे खुले मैदानमें पडाव डालना पडा। दूसरे दिन तडके ही युद्ध फिर शुरू हुआ, किन्तु सिख जनरल तेजसिंह द्वारा स्वार्थवश वहादुर सैनिकोंको पीछे हटनेका आदेश दिये जानेके कारण वह अकस्मात् समाप्त हो गया। युद्धमें सिखोंकी हार हुई, किन्तु अंग्रेजोंको जीतका भारी मूल्य चुकाना पडा। ब्रिटिश फौजके २४१५ जवान हताहत हुए जिसमें १०३ अधिकारी भी थे। अधिकारियोंमें गवर्नर-जनरलके पाँच अंगरक्षक मारे गये और चार घायल हो गये। इस लडाईकी समाप्तिसे सिख-अंग्रेज युद्ध समाप्त नहीं हुआ, उसकी समाप्ति दो महीने वाद फरवरी १८४६ ई०में सुवराहानमें अंग्रेजोंकी जीतके साथ हुई। (जे० डी० कनिंघम कृत हिस्ट्री आफ दि सिक्ख्स)।

फीरोजशाह वहमनी (१३९७-१४२२)—वहमनी वंशका आठवाँ सुल्तान। इतिहासकार फरिश्ताके अनुसार उसका शासनकाल वहमनी वंशका सबसे अधिक गौरवशाली काल था। फीरोजशाहने लगभग हर वर्ष पडोसी हिन्दू राज्य विजयनगरपर हमले किये। १४०६ ई०में तो वह वस्तुत. नगरमें घुस गया और उसने विजयनगरके राजा देवराय प्रथम (१४०६-१२)को सन्धि करनेके वदलेमें अपनी लडकी देनेको मजवूर किया। किन्तु १४२० ई०में सुल्तानको कृष्णा नदीके उत्तर पंगलके युद्धमें हिन्दुओंसे करारी मात खानी पडी और वह विलकुल टूटा हुआ घर लौटा। फीरोजने अपने जीवनके शेष दो वर्ष इवादतमें विताये और प्रशासनको तुर्की गुलामोंके हाथोंमें छोड दिया। फीरोज इमारतोंका शौकीन था। उसने राजधानी गुलवर्गको अनेक भव्य इमारतोंसे अलंकृत किया जिनमें प्रमुख एक मस्जिद है जिसका निर्माण उसने स्पेनकी कुर्तुवा (कारडोवा) मस्जिदकी शैलीपर कराया था। उसने राजधानीके दक्षिणमें भीम नदीके तटपर फीरोजावाद नगरमें विशाल प्राचीरयुक्त राजप्रासाद भी वनवाया।

फीरोजशाह खिलजी—देखिये, जलालुद्दीन फीरोजशाह खिलजी।

फीरोजशाह तुगलक—तुगलक वंशके दूसरे सुल्तान मुहम्मद तुगलकका चचेरा भाई और उत्तराधिकारी। उसने मार्च १३५१ में लेकर सितम्वर १३८८ ई०में मृत्यु पर्यन्त शासन किया। उसका पिता रजव सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक (१३२०-२५)का छोटा भाई था। फीरोजशाह शांतिप्रेमी सुल्तान था, जिसकी पहली समस्या ठट्टा (सिंध) से फौजको सकुशल दिल्ली वापस लानेकी थी। यह फौज मुहम्मद तुगलक वहाँ विद्रोहको दवानेके लिए ले गया था किन्तु अचानक उसकी मृत्यु हो गयी। १३६१-६३ ई०में फीरोजने सिंधको नियंत्रणमें लानेकी कोशिश की और एक लम्बी लडाईके वाद उसे वहाँके विद्रोही शासक जाम वावनियाको आत्मसमर्पणके लिए मजवूर करनेमें सफलता मिली। उसने जामको सालाना नजराना देनेके लिए मजवूर किया। सुल्तानने १३५३ और १३५९ ई०में वंगालपर भी पुन आधिपत्य स्थापित करनेकी कोशिशें की किन्तु विफल रहा। फीरोजने दक्षिणमें मुस्लिम वहमनी सुल्तानों और विजयनगरके हिन्दू राजाओंपर पुन. विजय प्राप्त करनेकी कोशिश नहीं की। वे लोग मुहम्मद तुगलक (१३२५-५१)के शासन कालके अंतिम वर्षोंमें दिल्लीके प्रभुत्वको स्वीकार करके स्वतंत्र हो गये थे। फीरोज दिल्ली सल्तनतके विघटनको भी न रोक सका जिसकी शुरुआत उससे पहले-

के सुल्तान मुहम्मद तुगलकके शासनकालमे ही हो गयी थी। फीरोजको एकमात्र सैनिक सफलता जाजनगर (उडीसा) मे मिली, जहाँ उसने १३६० ई० मे फतेह हासिल की।

फीरोजाबाद–एक नगर, जिसे सुल्तान फिरोजशाह तुगलक (१३५१-८८)ने अपनी राजधानी दिल्लीसे दस मील-की दूरीपर बसाया था। यही नाम सुल्तानने १३५३-५४ ई०मे बगालकी चढाईके दौरान वहाँके पहुचा नगर-को भी दिया था।

सुलतान फीरोज कट्टर मुसलमान था और उसने देशका प्रशासन इस्लामके सिद्धान्तोके अनुरूप चलानेका प्रयास किया। फलस्वरूप हिन्दुओको, जो बहुमतमे थे, भारी कठिनाइयोका सामना करना पडा। उनके धार्मिक उत्सवो, सार्वजनिक सभाओ और पूजा-पाठपर प्रतिबंध लगाया गया। इस धार्मिक कट्टरताके बावजूद फीरोज उदार शासक था। उसने अनेक कष्टदायी और अनुचित करोको समाप्त किया, यद्यपि ब्राह्मणोपर भी जजिया कर थोपा गया जो अभी तक इससे मुक्त थे। उसने सिंचाई कार्यको प्रोत्साहन दिया, जौनपुर सहित कई नगरोकी स्थापना की, अनेक बाग-बगीचोको लगाया और वहाँ तमाम मस्जिदोका निर्माण कराया। उसने अग-भग जैसे कठोर दडोको समाप्त किया और एक धर्मार्थ चिकित्सालयकी स्थापना की जहाँ रोगियोको दवाएँ और भोजन मुफ्त दिया जाता था। उसका शासन कठोर नही था। चीजोकी कीमत कम थी। लोग शातिसे रहते थे। किन्तु फीरोजकी यह कोमलता आने-वाली पीढीके लिए घातक सिद्ध हुई। उसने अपनी फौजका गठन सामती परम्पराके आधारपर किया था; वह आमतौरसे वेतनकी जगह अधिकारियोको जागीरे और सिपाहियोको जमीने बाँटता था। वृद्धोके प्रति दयालुता प्रदर्शित करनेके लिए उसने सेनाकी सेवाओको पुश्तैनी बना दिया। इस प्रकार दिल्ली सल्तनतकी फौज कमजोर हो गयी और फीरोजकी मृत्युके दस साल बाद तैमूरने १३९८ ई०मे जब दिल्लीपर आक्रमण किया वह बडी आसानीसे हरा दी गयी। फीरोज जिज्ञासु प्रकृति-का व्यक्ति था। यही वजह थी कि वह टोपरा और मेरठसे दो अशोक-स्तभोको बडी सावधानीसे दिल्ली लाया और उन्हे वहाँ स्थापित किया। उसने दो मुसल-मान इतिहासकारो–जियाउद्दीन बरनी (दे०) और शम्सी शीराज अफीफको सरक्षण प्रदान किया था।

फुलर, सर जे० बैमफील्ड–१९०५ ई० मे वाइसराय लार्ड कर्जन द्वारा बगाल और आसामको मिलाकर बनाये गये पूर्वीप्रातका पहला लेफ्टीनेंट-गवर्नर। फुलर इडियन सिविल सर्विस और भारतीयोकी राष्ट्रीय आकाक्षाओका विरोधी था। इस नये प्रातका प्रशासन चलानेमे उसने जानबूझ-कर हिन्दूविरोधी रवैया अपनाया और बगभग-विरोधी आन्दोलनसे मुसलमानोको अलग करनेके लिए उन्हे सरकारकी 'चहेती बेगम' ऐलान किया। किन्तु इससे आदोलनको दबाया न जा सका। इस आन्दोलनके समर्थकोमे स्कूली छात्रोकी सख्या बहुत बडी थी। छात्रो-को आदोलनसे रोकनेके लिए फुलरने स्कूलोको एक परिपत्र भेजा, जिसमे धमकी दी गयी थी कि अगर छात्रोने राजनीतिक आदोलनमे भाग लिया तो उनको मिलनेवाली राजकीय सहायता बद और उनकी मान्यता रद्द कर दी जायगी। दो स्कूलोको इस आदेशके उल्लघन-का दोषी समझा गया। फुलर उनकी मान्यता रद्द करना चाहता था, किन्तु भारत सरकारने भारत-मत्री लार्ड मोर्लेकी सहमतिसे उससे अनुरोध किया कि वह उक्त दो स्कूलोकी मान्यता समाप्त करनेका अपना प्रस्ताव वापस ले ले। फुलरको इसपर इतना आक्रोश हुआ कि उसने अपना त्यागपत्र दे दिया। उसका इस्तीफा तुरन्त स्वीकार कर लिया गया।

फुलार्टन, कर्नल विलियम–द्वितीय मैसूर-युद्ध (१७७९-८४)के दौरान ईस्ट इडिया कम्पनीकी फौजका एक अफसर। उसने नवम्बर १७८३ ई०मे कोयम्बटूरपर अधिकार किया और वह श्रीरंगपत्तनम्‌पर हमला करने-वाला ही था कि मद्रास सरकारने टीपू सुल्तानके साथ शाति स्थापित करनेके उद्देश्यसे उसे वापस बुला लिया। अवकाश ग्रहण करनेके बाद इग्लैडमे उसने फेलो ऑफ रायल सोसाइटी तथा ससद सदस्यके रूपमे सक्रिय जीवन व्यतीत किया। उसने 'ए व्यू ऑफ इग-लिश इण्टरेस्ट इन इडिया', (भारतमे ब्रिटिश हितोपर एक दृष्टिपात) नामक पुस्तक लिखी। १८०८ ई०मे उसकी मृत्यु हो गयी।

फूट–एक अग्रेज नाटककार, जिसने १७७० ई०मे 'दि नवाब' नामक नाटक लिखा। इसमे ईस्ट इडिया कम्पनीके उन कर्मचारियोका व्यग्य-चित्र प्रस्तुत किया गया था जो बगालसे बेशुमार दौलत इकट्ठा कर स्वदेश लौटनेपर अपने आडबर-युक्त जीवनसे सामाजिक जीवनको दूषित बनाते थे और अपनी सपदासे औरोमे ईर्ष्या पैदा करते थे। इस नाटकने इग्लैडकी जनताको इस बातकी जाच-पडतालके लिए प्रेरित किया कि कम्पनीके अवकाश-

प्राप्त अधिकारियोंके पास जो व्यग्य-पूर्वक 'नवाब'के नामसे सबोधित किये जाने लगे, इतनी दौलत कहाँसे आयी ?

फूनान–कम्बुज राज्यका, जो अब कम्बोडिया कहलाता है, प्राचीन चीनी नाम, जहाँ एक भारतीय प्रवासी ब्राह्मण कौण्डिन्यने सम्भवत ईसाकी पहली शताब्दीमे हिन्दू राज्यकी स्थापना की थी। छठी शताब्दीमे फूनानका पूरी तरह कम्बुज देशमे विलय हो गया।

फेडरेल कोर्ट आफ इंडिया (सघ न्यायालय)–भारतीय शासनविधान १९३५ ई०के अन्तर्गत स्थापित। भारतके प्रथम मुख्य न्यायाधीश सर मौरिस ग्वायरकी अध्यक्षतामे इसने १९३७ ई०से कार्य आरम्भ किया। भारतीय सघ, प्रातो और सघीय राज्योके बीच विवादोके निपटानेका अधिकार एकमात्र इसी अदालतको प्राप्त था। इसके क्षेत्राधिकारमे कुछ अपीलोकी सुनवाई करना भी शामिल था। इसके फैसलेके खिलाफ सिर्फ इग्लैंडकी प्रिवी कौन्सिलमे अपील की जा सकती थी। जनवरी १९५० ई०मे इसका विलय भारतके सर्वोच्च न्यायालयके रूपमे हो गया। (भारतीय शासन विधान, १९३५)।

फेरे, कर्नल–बडोदाके मल्हारराव गायकवाडके दरबारमे ब्रिटिश रेजिडेंट। उसने गायकवाडके विरुद्ध कुशासनके कई आरोप लगाये। एक कमीशन द्वारा इन आरोपोकी जाच किये जानेपर मल्हाररावको फेरेके निर्देशनमे प्रशासनमे सुधार करनेके लिए अठारह महीनेका समय दिया गया। परन्तु यह समय प्रशासनके किसी सुधारके बिना बीत गया। १८७५ ई०मे कर्नल फेरेने मल्हाररावपर आरोप लगाया कि उसने मुझे जहर देनेकी कोशिश की। मल्हारराव पर मुकदमा चलाया गया और अतमे उसे गद्दीसे उतार दिया गया।

फेरे, सर आर्थर–ईस्ट इडिया कम्पनीकी सेवामे फौजका मेजर। बर्मा विजय कर लेनेपर वह विजित प्रदेशोका प्रशासक नियुक्त किया गया। उसने यह दायित्व इतने अच्छे ढगसे सँभाला कि उसे बर्माका पहला चीफ कमिश्नर नियुक्त कर दिया गया, जिसमे ब्रिटिश बर्मा, तेनासरीम, पगू तथा अराकान सम्मिलित थे।

फैजी–शेख मुबारकका पुत्र, अबुलफजलका बडा भाई और अकबरके नवरत्नोमेसे एक। वह श्रेष्ठ कवि और साहित्यकार था। अकबरसे वह पहली बार १५६७ ई०मे मिला। अकबर उसकी विद्वत्ताके सम्बन्धमे पहले ही बहुत कुछ सुन चुका था, अतएव उसने उसकी बडी आवभगत की और अपने दरबारमे सम्मानित स्थान प्रदान किया। २७ जून १५७९ ई०को पहली बार अकबरने पुलपिटपर खडे होकर जो खुतबा पढा, उसकी रचना फैजीने की थी। इस प्रकार अकबरने नये धर्मका प्रवर्तन किया जो 'दीन-इलाही' (दे०) नामसे विख्यात हुआ। १५९१ ई०मे अकबरने फैजीको खानदेश और अहमदनगर अपना दूत बनाकर भेजा। वह खानदेशको अधीन करनेमे सफल हुआ, लेकिन अहमदनगरमे उसे सफलता नही मिली। इस प्रकार राज-दौत्यकर्ममे उसे आशिक सफलता प्राप्त हुई। १५९५ ई०मे उसकी मृत्यु हुई।

फैजुल्ला खाँ–रुहेलखण्ड राज्यके सस्थापक अली मुहम्मद रुहेलाका पुत्र। १७७४ ई०मे हाफिज रहमत खाँकी पराजय और मृत्युके पश्चात् उसे रुहेलखण्डका एक भाग दे दिया गया, जिसमे रामपुर भी शामिल था। बादमे वह कम्पनी सरकारकी अधीनतामे वहाँका शासक बना दिया गया।

फोर्ट विलियम–इस किलेका निर्माण कलकत्तामे १६९६ से १७१५ ई०के दौरान हुआ। इसके बन जानेमे कलकत्ता नगरमे अग्रेजोको सुरक्षा प्राप्त हो गया। १७५६ ई०मे इसपर नवाब सिराजुद्दौलाने कब्जा कर लिया, किन्तु १७५७ ई०मे अग्रेजोका इसपर पुन अधिकार हो गया। बादमे इस किलेको तुडवाकर इसके स्थानपर कस्टम हाउस और जनरल पोस्ट आफिसकी इमारतोका निर्माण कराया गया। आजकल जिस स्थानपर किला है, उसे बादमे चुना गया था।

फोर्ट सेण्ट जार्ज–इस किलेका निर्माण मसुलीपत्तनम् स्थित ईस्ट इडिया कम्पनीकी कौन्सिलके एक सदस्य फ्रासिस डेने १६४० ई०मे चोलमडल तटपर जमीनकी एक पतली पट्टीके ऊपर कराया। यह जमीन पडोसके हिन्दू राजा चन्द्रगिरिसे पट्टेपर मिली थी। इस किलेके चारो ओर आधुनिक मद्रास नगरका विकास हुआ। अग्रेजोने बादमे मसुलीपत्तनम्के स्थानपर इसको अपना मुख्यालय बनाया और अतत इसे मद्रास प्रेसीडेसीकी राजधानी बनाया गया।

फोर्ट सेण्ट डेविड–इस किलेका निर्माण ईस्ट इडिया कम्पनीने १८वी शताब्दीमे कराया। यह पाण्डिचेरीसे कुछ दक्षिणमे चोलमडल तटपर स्थित है। १७४७-४८ ई०मे फ्रासीसियोने अठारह महीनो तक इसपर घेरा डाल रखा। तदनन्तर १७५८ ई०मे काउण्ट दि लालीके नेतृत्वमे एक महीनेकी घेराबदीके बाद इसपर फ्रासीसियोने कब्जा कर लिया, किन्तु १७६० ई०मे विंदवासके युद्धके बाद यह पुनः अग्रेजोके हाथमे आ गया।

फोर्ड, कर्नल–ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी बंगाल सेनाका एक अफसर, जिसे राबर्ट क्लाइवने १७५९ ई०मे दक्षिण भारतमे फ्रांसीसियोंपर प्रहार करनेके लिए भेजा था। वह सफलताके साथ समुद्र तटपर बढ़ता गया और मसुलीपत्तनम्पर कब्जा कर लिया। इस प्रकार उत्तरी सरकारपर फ्रांसीसियोंका नियंत्रण समाप्त हो गया और वह अंग्रेजोंके कब्जेमे आ गया। बादको इसी साल उसने बिदर्राके युद्धमे डचोंको परास्त किया, जिनका मुख्यालय चिनसुरा (बंगाल)मे था। इस पराजयके बाद बंगालसे डचोंका भी सफाया हो गया।

कर्नल फोर्डकी मृत्यु दर्दनाक ढंगसे हुई। १७६९ ई०मे लंदन स्थित कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सने वैंसिटार्ट और स्क्रैफ्टनके साथ उसे कम्पनीकी हर शाखाकी जांच करनेका अधिकार देकर भारत भेजा। किन्तु जिस जहाजमे कर्नल फोर्ड और उसके दोनों साथी यात्रा कर रहे थे, उत्तमाशा अन्तरीप (केप आफ गुडहोप)से रवाना होनेके बाद उसकी कोई खबर नहीं मिली। शायद वह दुर्घटना-ग्रस्त होकर समुद्रमे डूब गया।

फोर्थ, डा०–बंगालकी तत्कालीन राजधानी मुर्शिदाबादके निकट कासिमबाजार स्थित ईस्ट इंडिया कम्पनीकी एक कोठीसे सम्बद्ध अंग्रेज चिकित्सक। १७५६ ई०मे मार्चके उत्तरार्धमे एक दिन जब नवाब अलीवर्दी खां (दे०) गंभीर रूपसे बीमार पड़ा, डा० फोर्थ उसे देखने गया। डा० फोर्थ जिस समय बीमार नवाबसे बातचीत कर रहा था, उसके पौत्र और संभावित उत्तराधिकारी सिराजुद्दौलाने नवाबको सूचना दी कि अंग्रेजोंने मेरे विरुद्ध षड्यंत्र करनेवाली घसीटी बेगमको सहायता देना स्वीकार कर लिया है। मरणासन्न नवाब द्वारा यह पूछे जानेपर कि क्या यह खबर सही है, डा० फोर्थने न केवल उसे गलत बताया, वरन् ईस्ट इंडिया कम्पनीकी तरफसे इस बातकी भी घोषणा की कि बंगालकी राजनीतिमे हस्तक्षेप करनेका कंपनीका कोई इरादा नहीं है। फोर्थकी इस बातपर सिराजुद्दौलाने विश्वास नहीं किया। इस घटनासे पता चलता है कि ईस्ट इंडिया कम्पनीके कर्मचारी कम्पनीके हितोंके संरक्षणके लिए किस तरह झूठ बोलते और छल करते थे।

फोर्बेस, जेम्स (१७४९-१८१९)–भारत आनेवाले उन विशिष्ट अंग्रेजोंमेसे एक, जिन्होंने हिन्दुओंकी प्राचीन जीवनशैली और भारतकी प्राचीन सभ्यताकी काफी सराहना की। वह १७६५ ई०मे ईस्ट इंडिया कम्पनीके एक अधिकारीकी हैसियतसे भारत आया था। १७७८ ई०मे प्रथम मराठा-युद्धके कुछ पहले वह कर्नल कीटिंगका निजी सचिव नियुक्त हुआ। १७८४ ई०मे कम्पनीकी सेवासे अवकाश ग्रहण कर वह स्वदेश वापस लौट गया। भारतसे इंग्लैंड रवाना होनेके समय वह अपने साथ साहित्य, दर्शन, कला और स्थापत्य आदि विभिन्न भारतीय विषयोंके लगभग १५४ ग्रंथ ले गया। उसने १८१३ १५ ई०मे अपने भारत विषयक संस्मरण चार खण्डोंमे 'ओरियण्टल मेमायर्स'के नामसे प्रकाशित किये।

फौजदार–मुगलकालीन भारतका वह अधिकारी, जिसका काम जिले (सरकार)मे कानून एवं व्यवस्था बनाये रखना होता था। यह अधिकारी जिलेमे तैनात फौजी टुकड़ीका नायक होता था। उसके ऊपर छोटी-मोटी बगावतोंको दबाने, डाकू गिरोहोंको भगाने या गिरफ्तार करने और हिंसक अपराधोंकी रोकथाम करनेका दायित्व रहता था। वह राजस्व अधिकारियों अथवा काजियोंको अपनी आज्ञाओंका पालन करवानेमे सहायता प्रदान करता था। वह आमतौरसे जिलेके मुख्यालयमे ही वास करता था।

फौजदारी अदालत–वह अदालत जिसका काम हिंसात्मक अपराधोंके खिलाफ मुकदमोंकी सुनवाई करना है। बंगालमे ब्रिटिश शासनकी शुरुआतके समय फौजदारी अदालत हर जिलेमे होती थी। इस अदालतके फैसलोंके खिलाफ सदर निजामत अदालतमे अपील की जा सकती थी। यह अदालत दीवानी अदालतसे भिन्न है जो केवल सिविल (दीवानी) या राजस्व सम्बन्धी मुकदमोंकी सुनवाई करती है।

फ्रांसिस, सर फिलिप (१७४०-१८१८)–को रेग्युलेटिंग ऐक्टके अन्तर्गत बंगालमे फोर्ट विलियमके गवर्नर-जनरलकी परिषदका सदस्य नामजद किया गया। उसका वार्षिक वेतन १ हजार पौण्ड निर्धारित हुआ। अक्तूबर १७७४ ई०मे कलकत्ता आनेके कुछ समय बाद उसने दो अन्य सहयोगियों-मौनसन और क्लेवरिंगके साथ गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्सकी नीतियों और शासन-प्रणालीका तीव्र विरोध किया। इस प्रकार फ्रांसिस और वारेन हेस्टिंग्समे संघर्ष शुरू हो गया, जिसका अन्त फ्रांसिसकी हारमे हुआ। १७८० ई०मे फ्रांसिस और हेस्टिंग्समे संघर्ष हो गया और इसके बाद अशक्त होकर वह इंग्लैंड चला गया। वहां उसने वारेन हेस्टिंग्सपर महाभियोग लगानेके अभियानको संगठित और संचालित करनेमे प्रमुख भाग लिया। फिलिप बंगालमे लगानके स्थायी बन्दोबस्तका सुझाव देनेवाला पहला अंग्रेज

अधिकारी था। १७९५ ई०मे वारेन हेस्टिंग्सके निर्दोष घोषित किये जानेपर वह वहुत निराश हुआ और १८०७ मे सार्वजनिक जीवनसे अलग हो गया।

फ्रायर, डा० जान—एक ब्रिटिश यात्री जो सत्रहवी शताब्दी-के सातवे दशकमे भारत आया। उसने मुख्यत दक्षिणी भारतकी यात्रा की। इस यात्राका उसने रोचक वर्णन लिखा है। (ए न्यू एकाउण्ट)

फ्रेरे, सर हेनरी वार्टल एडवर्ड (१८१५-८९)—एक प्रख्यात ब्रिटिश प्रशासक, जो १८३४ ई०मे उच्च अधिकारीकी हैसियतसे भारत आया। १८४६ ई०मे वह सतारामे रेजीडेण्ट नियुक्त किया गया और १८४८ ई०मे सतारा-को ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमे मिला लिये जानेपर, जिसका वह विरोधी था, वहाँका कमिश्नर वनाया गया। १८५० ई०मे सिन्धका कमिश्नर वना, जहाँ नौ वर्षो (१८५०–५९) तक वडी सफलताके साथ प्रशासन चलाता रहा। १८५९ से १८६२ ई० तक वह वाइ-सरायकी कार्यकारिणी परिषद्‌का सदस्य रहा और भारतका वित्तीय सतुलन वनाये रखनेमे सहायता की। १८६२ से १८६७ ई० तक वम्वईका गवर्नर रहा। इस दौरान उसने शिक्षाका प्रसार किया, कालेज (जैसे डक्कन कालेज) खुलवाये, रेलोका विस्तार किया, वम्वई नगरनिगमकी स्थापना की और नारीशिक्षाको वढावा दिया। किन्तु वैंक आफ वम्वईकी असफलताके लिए उसकी आलोचना हुई। अवकाश ग्रहण कर इग्लैण्ड चले जानेके वाद वह इडिया कौन्सिल (१८६७–७७) का सदस्य वना। वह अफगानिस्तानमे अग्रसर नीतिका समर्थक था और ब्रिटिश प्रशासनकी स्वेच्छाचारी मनो-वृत्तिका पोषक था। इग्लैडके लिए उसने सवसे वडी सेवा अफ्रीकामे की, किन्तु वहाँ उसकी आक्रामक नीतिके कारण जुलू-युद्ध छिड गया, जिसकी वजहसे उसे इग्लैड वापस वुला लिया गया। उसकी मृत्यु १८८९ ई०मे हुई।

फ्रेंच-ईस्ट इंडिया कम्पनी—इसकी स्थापना १६६४ ई०मे कोलवर्टकी प्रेरणासे फ्रासकी सरकारने की। इसमे सर-कारी पूँजी भी लगायी गयी, किंतु प्रवन्ध-कुशलताके अभावमे प्रथम चार वर्षोके दौरान मद्रासके उपनिवेशी-करणके प्रयास सफल नही हुए। व्यापार कार्यमे उसे इग्लिश और डच कम्पनियोंकी प्रतिद्वन्द्विताका सामना करना पडा, जो भारतके साथ पहलेसे व्यापार कर रही थी और यहाँ अपनी कोठियाँ स्थापित कर चुकी थी। इनके विरोधके वावजूद फ्रासीसी १६६८ ई०मे सूरतमे एक कोठी स्थापित करनेमे सफल हो गये। १६७३ ई० मे उन्होने मद्रासमे ८५ मील दक्षिणमे आधुनिक पाडि-चेरीका स्थान प्राप्त कर लिया और १६९४ ई० मे फ्राकोई मार्टिनको इसका मुख्य अधिकारी नियुक्त कर दिया। उसने इसे शीघ्र ही विकसित कर इतना महत्त्व-पूर्ण वदरगाह वना दिया कि भारतमे यह फ्रेंच ईस्ट इंडिया कम्पनीका मुख्यालय वन गया।

फ्रेंच कम्पनीको १६७४ ई०मे वगालके नवाव शायस्ता खाँसे भागीरथीके किनारे कलकत्ताके निकट, चद्रनगरका स्थान मिल गया, जहाँ १६९०–९२ के दौरान उसने नया व्यापार-केन्द्र स्थापित किया। इस प्रकार पाडिचेरी और चद्रनगरमे फ्रेंच कम्पनी मद्रास और कल-कत्ता स्थित इग्लिश कपनीकी पडोसी और प्रतिद्वन्द्वी वन गयी। परन्तु अठारहवी शताब्दीके प्रथम दो दशको-मे फ्रेंच कम्पनीको व्यापारमे सफलता नही मिली और उसे सूरत स्थित अपनी कोठी वद कर देनी पडी। अगले दो दशकोमे कम्पनीका व्यापार फलने फूलने लगा और उसने १७२१ ई०मे मारीशसमे, १७२५ ई०मे मलावार तटपर माही तथा १७३९ मे चोलमण्डल तट स्थित कारीकलमे अपनी कोठियाँ स्थापित कर ली।

अभी तक फ्रेंच कम्पनीका सारा ध्यान भारतके साथ व्यापार करनेपर ही केन्द्रित था, किन्तु १७४२ ई०मे पाडिचेरीके गवर्नर पदपर डूप्लेकी नियुक्तिके साथ उसकी नीति और उद्देश्यमे परिवर्तन हुआ। इस समय यूरोपमे आस्ट्रियाई उत्तराधिकारका युद्ध (१७४०-४८) चल रहा था और फ्रास व इग्लैड परस्पर सघर्षरत थे। इधर चोलमण्डल तटपर अग्रेजोका कोई जहाजी वेडा तैनात न था, किन्तु फ्रासका जहाजी वेडा तैनात था। इस स्थितिका लाभ उठाकर फ्रासीसियोने सितम्बर १७४६ ई०मे मद्रास पर कब्जा कर लिया। मद्रासमे खदेडे गये इग्लिश कम्पनीके अधिकारियोने कर्नाटकके नवाव अनवरुद्दीनसे अपील की, जिसके शासन क्षेत्रके अन्तर्गत मद्रास आता था। अनवरुद्दीनने मद्रासको फ्रासीसियोसे हस्तगत करनेके लिए विशाल सेना भेजी, मगर फ्रासीसियोकी छोटी-सी सेनाने मैलापुर अथवा सेण्टथोमके युद्धमे नवावकी विशाल वाहिनीको करारी शिकस्त दी और मद्रासपर फ्रासीसियोका कब्जा वना रहा। दो वर्ष वाद यूरोपमे अग्रेजो और फ्रासीसियोके वीच युद्ध एक्स-ला चैपेलकी सन्धिके साथ समाप्त हो गया। इस सन्धिकी शर्तोके अनुसार मद्रास इग्लिश कम्पनीको वापस कर दिया गया।

मैलापुरके युद्धमे नवावकी विशाल सेनापर फ्रासी-

सियोकी विजयने बता दिया कि पुराने तौर-तरीकोसे लडनेवाली टिड्डी दल जैसी भारतीय सेनाको यूरोप-वासियोकी छोटी सी अनुशासित सेना भारतीय सिपाहियो-की मददसे किस तरह परास्त कर सकती है। इस नसीहतका डूप्लेकी नीतियो पर गहरा प्रभाव पडा। अभी तक फ्रासीसियोमे किसी प्रकारकी राजनीतिक महत्त्वकाक्षा न थी। अब डूप्लेने अपनी श्रेष्ठ सेना-शक्तिके आधार पर भारतीय राजनीतिमे सक्रिय भाग लेना और भारतमे अपना साम्राज्य विस्तार करना आरम्भ कर दिया। उसकी पहलकदमी पर फ्रासीसी कम्पनीने १७४८ ई०मे कर्नाटक तथा हैदरावादके उत्तराधिकार सम्बन्धी युद्धोमे भाग लिया। आरम्भमे उसे अच्छी सफलता मिली। उसे अपना एक आदमी हैदराबादके निजामके पदपर बिठानेमे सफलता मिल गयी, जो पूरी तरहसे फ्रासीसी जनरल बुसीकी मुट्ठीमे था। उसने फ्रासीसियोको अपनी सेनाके खर्चके लिए उत्तरी सरकारकी राजस्व-वसूलीका अधिकार प्रदान कर दिया। किन्तु डूप्ले इगलिश कम्पनीको भारतसे बाहर खदेडनेका अपना लक्ष्य पूरा करनेमे विफल रहा। इस दौरान यूरोपमे इग्लैड और फ्रासके बीच शाति कायम रही और फ्रासकी सरकारने इग्लैंडके साथ इस अघोषित युद्धको जिसकी शुरुआत डूप्लेने भारतमे की थी, समाप्त करनेका निश्चय किया। फलत: १७५४ ई०मे डूप्लेको फ्रास वापस बुला लिया गया और इस प्रकार उसका भारतमे फ्रासीसी साम्राज्यकी स्थापनाका स्वप्न अधूरा रह गया।

डूप्लेके फ्रास लौटनेके दो वर्ष बाद यूरोपमे सप्तवर्षीय युद्ध छिड गया और भारत-स्थित इगलिश और फ्रासीसी कम्पनिया पुनः सघर्षरत हो गयी। १७५७ ई०मे अग्रेजोने पहले तो चद्रनगर (बगाल)मे फ्रासीसी बस्तीपर कब्जा कर लिया और उसके बाद ही पलासीके युद्धमे बगालके नवाब सिराजुद्दौलाको परास्त कर और नवाबकी गद्दी पर अपने आश्रित मीर जाफरको बिठाकर बगालपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। १७५८ ई०मे कर्नल फोर्डके नेतृत्वमे अग्रेजी फौजने फ्रासीसियोको उत्तरी सरकारसे बेदखल कर दिया और १७६० ई०मे फ्रासीसियोको विदवासके युद्धमे अग्रेज जनरल सर आयरकूटके हाथो करारी मात खानी पडी। इसके एक वर्ष बाद अग्रेजोने पाडिचेरी पर भी कब्जा कर लिया और इस प्रकार फ्रासीसी ईस्ट इडिया कम्पनीके हाथसे भारतका सारा इलाका छिन गया। १७६३ ई०मे पेरिस-शाति-सधि हुई और सप्तवर्षीय युद्ध समाप्त हुआ। इस सधिके अन्तर्गत फ्रासीसी कम्पनीको पाडिचेरी, चद्रनगर, माही और कारीकालकी बस्तियाँ लौटा दी गयी, किन्तु भारतमे उसका राजनीतिक प्रभुत्व समाप्त हो गया। अब वह इन स्थानो पर केवल व्यापारी सस्थाके रूपमे कार्य कर सकती थी। १९५० ई०मे भारत स्थित इन फ्रेंच बस्तियोका विलयन भारतीय गणराज्यमे कर दिया गया।

फ्रैण्ड आफ इडिया—एक पत्र, जिसका प्रकाशन जान मार्शमेनके निर्देशनमे सिरामपुरके मिशनरियोने १८१८ ई०मे शुरू किया था। यह ईसाई धर्मका प्रचार करनेवाला समाज-सुधारक पत्र था। इसने सती-प्रथा जैसी सामाजिक बुराइयोके उन्मूलनका समर्थन किया। बादमे यह पत्र कलकत्ताके 'स्टेट्समैन'मे विलीन हो गया।

ब

बंकिदेव, अलुपेन्द्र—सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (दे०) के सेनापति मालिक काफूरके आक्रमणके समय भारतके सुदूर दक्षिणी भागमे विद्यमान एक छोटा राजा। काफूरने उसे हराकर उसका राज्य खत्म कर दिया।

बंग-भग—पहली बार १९०५ ई०मे वाइसराय लार्ड कर्जन द्वारा किया गया। उसका तर्क था कि तत्कालीन बगाल प्रात, जिसमे बिहार और उडीसा भी शामिल थे, बहुत बडा है। एक लेफ्टिनेंट-गवर्नर उसका प्रशासन ठीक ढंगसे नही चला पाता, फलस्वरूप पूर्वी बगालके जिलोकी उपेक्षा होती है जहाँ मुसलमान अधिक संख्यामे हैं। अतएव उत्तरी और पूर्वी बगालके राजशाही, ढाका तथा चटगाँव डिवीजनोमे आनेवाले पन्द्रह जिले आसाममे मिला दिये गये और पूर्वी बगाल तथा आसाम नामसे एक नया प्रात बना दिया गया और उसे बगालसे अलग कर दिया गया। बिहार तथा उडीसाको पुराने बगालमे सम्मिलित रखा गया। बगालके लोगो, विशेष रूपसे हिन्दुओमे बग-भगसे भारी क्षोभ फैल गया, क्योकि इसका उद्देश्य था एक राष्ट्रको विभाजित कर देना, बगवासियोकी एकताको भग कर देनेका प्रयास, जातीय परपरा, इतिहास तथा भाषापर घृणित प्रहार। इसको जनताकी राजनीतिक आकाक्षाओको कुचल देनेका एक साधन माना गया। बगवासियोने अपने प्रातका विच्छेद

रोकनेके लिए अंग्रेजी माल, विशेष रूपसे इंग्लैंडके बने वस्त्रोंका बहिष्कार प्रारम्भ कर दिया और १७ अक्तूबर-को, जिस दिन बंगविच्छेद किया गया, राष्ट्रीय शोक-दिवस मनाया गया।

सरकारको यह जन-आन्दोलन रुचिकर नहीं प्रतीत हुआ। उसने उसे विफल बनानेके लिए मुसलमानोंको अपनी ओर मिलानेका चेष्टा की और वचन दिया कि नये प्रांतमें उनको विशेष सुविधाएँ प्राप्त होंगी। इसके साथ ही उसने दमनकारी उपायोंका सहारा लिया और सार्वजनिक स्थानों पर 'वंदेमातरम्'का घोष करना तक दंडनीय अपराध करार दिया गया। दमनके फलस्वरूप जन-असन्तोष और गहरा हो गया और आतंकवादी गतिविधियाँ आरम्भ हो गयीं। अंग्रेज अफसरों तथा उनके भारतीय गुर्गोंकी हत्या करनेके प्रयत्न किये गये। सरकारने दमनचक्र और तेज कर दिया परन्तु, उसका कोई फल नहीं निकला। परिणामस्वरूप दिसम्बर १९११ ई०के दिल्ली दरबारमें शाही घोषणा करके बंग-विच्छेद सम्बन्धी आदेशमें संशोधन कर दिया गया। पूर्वी बंगालके १५ जिलोंको आसामसे अलग करके पश्चिमी बंगालमें फिर संयुक्त कर दिया गया। इसके साथ ही बिहार तथा उड़ीसाको बंगाल प्रांतसे अलग कर दिया गया। संयुक्त बंगालका प्रशासन एक गवर्नरके अधीन हो गया। प्रशासनकी कथित शिथिलता दूर करनेके लिए यह सुझाव लार्ड कर्जनको भी दिया गया था, परन्तु उसने इसे नामंजूर कर दिया था।

बंगालका दूसरी बार विभाजन १९४७ ई०में भारत विभाजनके फलस्वरूप हुआ। भारतको इसी शर्तपर स्वाधीनता प्रदान की गयी कि उसका विभाजन भारत तथा पाकिस्तान नामके दो राज्योंमें कर दिया जाय। फलस्वरूप बंगालके ढाका तथा चटगाँव डिवीजनके सभी जिलों तथा राजशाही एवं प्रेसीडेंसी डिवीजनके कुछ जिलोंको अलग करके पूर्वी पाकिस्तानका निर्माण कर दिया गया। १६ दिसम्बर १९७१ ई०को पूर्वी पाकिस्तान शेष पाकिस्तानसे अलग होकर एक स्वतंत्र सार्वभौम प्रभुसत्ता-सम्पन्न राष्ट्र बन गया, जो अब 'बांगलादेश' कहलाने लगा है।

बंगाल—वह क्षेत्र, जिसके पश्चिममें बिहार, पूर्व में आसाम, उत्तरमें हिमालयकी तराई तथा दक्षिणमें उड़ीसा तथा बंगालकी खाड़ी स्थित है। यह नदियोंका क्षेत्र है, जिसमें मुख्यतया गंगा और ब्रह्मपुत्र तथा उसकी अनेक सहायक नदियाँ बहती हैं। कछारी भूमि होनेसे कृषि-कार्य यहाँ अपेक्षाकृत सरल है। इसके समृद्ध एवं विविध साधनों-से सम्पन्न होनेके कारण पड़ोसी राज्योंके लोग सदासे इसकी ओर आकृष्ट होते रहे हैं। इस क्षेत्रका नाम 'बंगाल' अंग्रेजोंने प्रचलित किया। पहले इसे बंगला कहते थे, जो संस्कृत शब्द 'बंग'का अपभ्रंश है। प्राचीनकालमें बंगसे पूर्व और मध्य बंगाल निर्दिष्ट होते थे। इस शब्दका प्रयोग महाकाव्योंमें भी मिलता है। पश्चिम तथा पश्चिमोत्तर बंगालको तब गौडके नामसे जाना जाता था। बंग और गौड दोनों मौर्य और गुप्त साम्राज्योंमें शामिल थे। गुप्त साम्राज्यका पतन हो जानेपर धर्मादित्य, गोपचन्द्र और समाचारदेव आदि स्थानीय राजाओंने अपनेको स्वाधीन कर लिया।

छठी शताब्दीके मध्यमें गौड शक्तिशाली राज्य हो गया। सातवीं शताब्दीके आरम्भमें वहाँ शशांक नामक अत्यन्त पराक्रमी राजा हुआ, जो हर्षवर्धनका प्रबल प्रतिद्वन्द्वी था। उसकी मृत्युके पश्चात् बंगाल हर्षके साम्राज्यका अंग बन गया। उसके बाद यह कामरूपके भास्कर वर्माके शासनान्तर्गत आ गया। कैसे और कब बंगाल कामरूपके शासनसे मुक्त हुआ, यह विदित नहीं है। फिर भी यह अधिक समय तक स्वतंत्र नहीं रह सका, क्योंकि आठवीं शताब्दीके आरम्भमें कन्नौजके यशोवर्माने इसे रौंद डाला। इस आक्रमणके फलस्वरूप पूरे प्रदेशमें अराजकता व्याप्त हो गयी। जनश्रुतियोंके आधारपर कहा जाता है, कि इसी कालमें यहाँ आदिसूर नामक शासक हुआ। प्रसिद्धि है कि उसने मिथिलासे पाँच ब्राह्मणोंको पाँच ब्राह्मणेतर सेवकोंके साथ बंगाल-में ब्राह्मण धर्मको पुनः प्रतिष्ठित करनेके लिए आमंत्रित किया। ऐसा प्रतीत होता है कि बंगालमें अराजकताकी दशाका अन्त तभी हुआ, जब वहाँकी जनताने गोपाल नामक व्यक्तिको राजा निर्वाचित करके सिंहासनासीन किया। गोपालसे ही प्रसिद्ध पाल राजवंशकी परम्परा चली, जिसके शासनकालमें बंगाल महान् शक्तिशाली और समृद्धिशाली हुआ और बौद्ध संस्कृतिका प्रमुख केन्द्र बना, धर्मपाल तथा अतिशा (दे०), आदि आचार्योंको चीन, तिब्बत जैसे सुदूर देशोंमें बौद्धधर्मके प्रचारके लिए भेजा और अपनी निजी ललितकला और वास्तु शैली विकसित की जिसका प्रतिनिधित्व धीमान (दे०) और बिटपाल (दे०) करते थे।

बारहवीं शताब्दीके मध्य तक पाल राजवंशकी शक्ति-का ह्रास हो गया और उसके स्थान पर सेन राजवंश प्रतिष्ठित हुआ, जो ११९८ और १२०१ ई०के बीच

किसी समय मलिक इख्तियारुद्दीन मुहम्मद खिलजीकी पश्चिमी बंगाल विजय तक कायम रहा। पचास वर्ष बाद मुसलमानोने पूर्वी बंगाल भी जीत लिया, इस प्रकार पूरा प्रदेश दिल्ली सल्तनतका भाग हो गया। किन्तु १३३६ ई०के लगभग फखरुद्दीन मुबारक शाहने पूर्वी बंगालमे बगावत कर दी जो अन्तमे सारे सूबेमे फैल गयी। फलस्वरूप दिल्लीकी सल्तनतसे उसका पूरी तरह्से सम्बन्ध टूट गया। १३४५ से १४९० ई० तक इलियास शाही राजवंश बंगालपर राज्य करता रहा। बीचमे केवल ४ वर्षो (लगभग १४१४–१८ ई०) मे चार हिन्दू राजाओ गणेश, उसके पुत्र जदु, दनुज मर्दन तथा महेन्द्रने अस्थायी रूपसे शासन किया। १४९० ई० मे अलाउद्दीन हुसेन शाहने सैयद राजवंशका सूत्रपात किया। इस वंशके लोग १५३८ ई० तक जब हुमायूँने बंगालको जीता, यहाँ राज्य करते रहे। इसके एक वर्ष बाद ही शेरशाहने हुमायूँको परास्त कर दिया और उसके वंशज १५६४ ई० तक शासन करते रहे, जब सुलेमान करनानीने एक नया राजवंश चलाया। करनानी वंशका अन्तिम शासक दाऊद खाँ १५७६ ई०मे बादशाह अकबरसे हार गया और बंगाल पुनः दिल्लीके प्रभुत्वमे आ गया।

इसके बाद शांति और सम्पन्नताका युग आरम्भ हुआ और बंगालने वाणिज्य-व्यवसायमे इतनी उन्नति की कि उसकी समृद्धिकी विदेशी यात्रियो तकने प्रशंसा की और यूरोपीय व्यावसायिक कम्पनियाँ अपनी व्यापारी कोठियाँ स्थापित करनेके लिए प्रेरित हुई।

सर्व प्रथम बंगालमे पुर्तगाली आये, लेकिन विधिवत् वाणिज्यकी अपेक्षा समुद्री डकैती और गुलामोका सौदा करनेकी तरफ उन्होने अधिक ध्यान दिया। परिणामस्वरूप बंगालके कछारी भूभागमे उनका भारी आतंक छा गया, जिसका निवारण १६३२ ई०मे मुगल सूबेदार कासिम अलीने उनका दमन करके किया। बाद ही क्रमशः डच (हालैण्डवासी), डेन (डेनमार्कवासी), फ्रासीसी और अंग्रेज आ धमके और क्रमशः चिनसुरा, सिरामपुर, चन्द्रनगर और कलकत्तामे, जो सभी हुगलीके तटपर है, जम गये। जबतक मुगल बादशाह सबल बने रहे, बंगालमे उनके सूबेदारोने इन यूरोपीय व्यवसायोको अपने नियंत्रणमे रखा और शांति भंग करनेका उनका साहस नही हुआ। बंगालके सूबेदार मुर्शिद कुली खांके शासन कालमे बिहार और उसके उत्तराधिकारी शुजाउद्दीनके शासन काल (१७२७–३८ ई०) मे उडीसा भी बंगालमे सम्मिलित कर लिया गया। लेकिन शुजाका पुत्र अयोग्य सिद्ध हुआ और १७४० ई०मे अलीवर्दी खाँ द्वारा, जो बिहारमे उसका नायब था, अपदस्थ कर दिया गया।

नवाब अलीवर्दी खाँ दिल्लीसे लगभग स्वतंत्र होकर १७५६ ई०मे अपनी मृत्यु तक बंगालपर शासन करता रहा। उसका उत्तराधिकारी पौत्र सिराजुद्दौला अनुभवहीन और कमजोर शासक साबित हुआ। परिणामस्वरूप वह अंग्रेजोपर नियंत्रण न रख सका, जिन्होने उसकी प्रभुसत्ताकी अवहेलना कर फ्रासीसियोसे युद्ध छेड दिया। वह अन्तमे उस षड्यंत्रका शिकार हो गया जो अंग्रेजोने उसके असन्तुष्ट दरबारियोके साथ मिलकर रचा था। फलस्वरूप जून १७५७ ई०मे पलासीकी लडाईमे सिराज हार गया। वह लडाईके मैदानसे भाग कर मुर्शिदाबाद पहुँचा और विजेताओका प्रतिरोध करनेके लिए सैन्य-संग्रह न कर पानेपर वहाँसे भी भाग निकला। विजयी अंग्रेजोने २८ जून १७५७ ई०को मीर जाफरको, जो सिराजका निकट सम्बन्धी और षड्यंत्रकारियोमे प्रमुख था, नवाबकी गद्दी पर बैठाया। इसके चार दिन बाद ही भगोडे सिराजुद्दौलाका वध कर दिया गया। इस प्रकार बंगालमे मुस्लिम शासनका लज्जास्पद ढंगसे पतन हुआ।

मीर जाफरको भी शीघ्र इस बातका अहसास हो गया कि वह अंग्रेजोके हाथकी कठपुतली मात्र है। उसे भी उन्होने शीघ्र ही अपदस्थ कर उसके दामाद मीर कासिमको गद्दी पर बैठाया। उसके साथ भी अंग्रेजोकी पटरी नही बैठी और उन्होने उससे युद्ध छेड दिया और १७६४ ई०मे बक्सरमे उसकी हार हुई। इसके बाद मीर कासिम विस्मृतिके गर्भमे विलीन हो गया और मीर जाफर, फिरसे नवाब बनाया गया। १७६५ ई०मे मीर जाफर मर गया।

इसी वर्ष अंग्रेजोको दिल्लीके बादशाहसे बंगाल, बिहार और उडीसाकी दीवानी मिल गयी। कम्पनीने पलासीके विजेता राबर्ट क्लाइवको गवर्नर नियुक्त किया। दो वर्ष बाद वह इंग्लैड चला गया और अगले पाँच वर्षो तक बंगालमे अत्यधिक कुशासन रहा। नवाब कम्पनीके स्थानीय अधिकारियोके हाथका खिलौना मात्र रह गया, जिसे जनताकी हितरक्षाका कोई खयाल नही था। इसी बीच बंगालमे भयंकर अकाल पडा, जिसमे एक तिहाई आबादी विनष्ट हो गयी। १७७२ ई०मे कम्पनीकी ओरसे वारेन हेस्टिंग्स बंगालके गवर्नरके रूपमे नियुक्त

हुआ। अगले साल रेगुलेटिंग कानून पास हो जाने पर वह गवर्नर-जनरल बना दिया गया और बम्बई तथा मद्रासकी प्रेसीडेन्सियां उसके अधीन कर दी गयीं। इस प्रकार बंगाल भारतमें बढ़ते हुए ब्रिटिश साम्राज्यका न केवल अंग वरन् उसका केन्द्र-बिन्दु भी बन गया, क्योंकि कलकत्ताको शीघ्र ही भारतीय ब्रिटिश साम्राज्य-की राजधानी बना दिया गया।

प्रशासनीय दृष्टिसे बंगालमें अनेक परिवर्तन हुए। ब्रिटिश प्रशासनके आरम्भमें बिहार और उड़ीसा समेत पूरे प्रदेशमें गवर्नर-जनरल द्वारा कौन्सिलकी सहायतासे शासन चलाया गया। १८५४ में इसको लेफ्टिनेण्ट-गवर्नरके अधीन कर दिया गया। १९०५ ई० में लार्ड कर्जनने प्रदेश दो टुकड़ोंमें विभाजित कर दिया—पश्चिमी बंगाल, बिहार और उड़ीसाकी एक इकाई लेफ्टिनेण्ट-गवर्नरके अधीन बनायी गयी और पूर्वी बंगालकी दूसरी इकाई आसामके साथ मिलाकर अन्य लेफ्टिनेण्ट-गवर्नर-के अधीन बनायी गयी। इस विभाजनपर बंगालके लोगों, विशेषकर हिन्दुओंने जबर्दस्त विरोध प्रकट किया और सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके नेतृत्वमें बहुत ही प्रभावशाली आन्दोलन चलाया, जिसमें स्वदेशी वस्तुओंका उपयोग और ब्रिटिश सामानका बहिष्कार प्रमुख था। ब्रिटिश सरकारने आन्दोलनको बल-प्रयोग द्वारा दबानेके जो भी प्रयास किये उनमें जनरोष भूमिगत हो गया और अर-विन्द घोषके नेतृत्वमें बंगालमें आतंक-वादने अपना सिर उठाया। फलस्वरूप प्रसिद्ध अलीपुर बम काण्डका मुकदमा चला। मुकदमेमें अरविन्द घोष दोषमुक्त कर दिये गये, यद्यपि उनके अनेक साथियोंको आजीवन कारावासकी सजा मिली। अन्तमें ब्रिटिश सरकारने १९११ ई०में बंग भंग रद्द कर पश्चिमी बंगालको पूर्वी बंगालके साथ फिर जोड़ दिया। बिहार, उड़ीसा और आसाम इससे पृथक् कर दिये गये और बंगाल सपरिषद् गवर्नरके शासनके अधीन कर दिया गया।

१९४७ ई०में देशको स्वाधीनता दिलानेके हेतु, बंगाल पुनः दो हिस्सोंमें बाँटा गया। पश्चिमी बंगालके जिलोंको उत्तरी बंगालके कुछ जिलोंसे जोड़कर भारतमें 'पश्चिमी बंगाल' राज्य बनाया गया और पूर्वी बंगालके जिलोंका भाग 'पूर्वी पाकिस्तान'के नामसे गठित हुआ। दिसम्बर १९७१ ई०में पूर्वी पाकिस्तान पश्चिमी पाकि-स्तानसे अलग होकर 'बांगला देश'के नाममें स्वतन्त्र देश बन गया। प्रांतका यह अस्वाभाविक विभाजन यद्यपि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी सहमतिसे हुआ था, फिर भी इसके परिणामस्वरूप लाखों लोगोंको, अधिकांशत पूर्वी बंगालके हिन्दुओंको अपना घर-बार छोड़ना पड़ा, व्यापक हिंसा, लूटपाट, बलात्कारकी तकलीफें उठानी पड़ीं और बचे-खुचे लोग भी बार-बार उत्पीड़नके शिकार होते रहे। इधर कटा-छँटा पश्चिमी बंगालका राज्य पुराने प्रदेशका केवल एक तिहाई भाग रह गया और विभाजनके बाद उसे अनेक समस्याओंका सामना करना पड़ा, जिसमें पूर्वी बंगालके विस्थापित हिन्दुओंके पुनर्वास-की समस्या सबसे जटिल थी।

बंगाल, पहला भारतीय प्रदेश था जिसने ब्रिटिश शासनका स्वागत किया। साथ ही संसदीय शासन और लोकतंत्रके ब्रिटिश राजनीतिक विचारोंको आत्मसात् करनेकी दिशामें भी भारतका यह प्रदेश अग्रणी हुआ। भारतीय राष्ट्रीयताका शंखनाद यहीं फूंका गया और प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन भी यहीं आयोजित किया गया। इस प्रकार बंगालने ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके शुभा-रम्भका मार्ग प्रशस्त किया और उसे अपना पहला अध्यक्ष प्रदान किया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ही अन्तमें भारत-की स्वाधीनता प्राप्त करनेमें सफल रही। गोपाल कृष्ण गोखलेने एक बार यह कह कर बंगालकी प्रशंसा ठीक ही की थी कि 'बंगाल जो आज सोचता है, उसे भारत कल सोचता है।'

बंगालकी दीवानी—१७६५ ई०में बादशाह शाह आलमने ईस्ट इंडिया कम्पनीको प्रदान की। १७६४ ई०में बक्सर-के युद्धमें अवधके नवाबके पराजित हो जानेपर कम्पनीने इलाहाबाद तथा आसपासके क्षेत्रपर अधिकार कर लिया था। कम्पनीने ये क्षेत्र सम्राट्को देकर बदलेमें बंगालकी दीवानी प्राप्त की। इसका अर्थ था कि कम्पनीको बंगाल, बिहार और उड़ीसामें राजस्व वसूल करनेका अधिकार प्राप्त हो गया। बदलेमें कम्पनी बादशाहको २६ लाख रुपया वार्षिक देती थी। साथ ही मुर्शिदाबाद-के नवाबको भी कम्पनी सामान्य प्रशासनके लिए ५३ लाख रुपया देती थी। शेष बचे हुए धनको कम्पनी अपने पास रखती थी। नवाबको दी जानेवाली वार्षिक रकम बादमें घटाकर ३२ लाख रुपया कर दी गयी। कम्पनीको दीवानी मिलनेसे उसे प्रान्तीय प्रशासनमें पहली बार कानूनी हैसियत प्राप्त हो गयी। वैसे १७५७ ई०में पलासीके युद्धमें षड्यन्त्रोंके द्वारा विजय प्राप्त करनेके पश्चात् कम्पनीको शासनका अधिकार प्राप्त हो गया था, किन्तु राजस्वकी वसूलीका अधिकार प्राप्त होने-का अर्थ यह था कि कम्पनीको व्यावहारिक रूपसे प्रान्तीय

शासन करनेका अधिकार है, क्योंकि राजस्वकी वसूलीको सामान्य प्रशासनसे अलग करना कठिन था। प्रशासन हाथमे आ जानेके वावजूद कम्पनीकी कानूनी हैसियत दीवानकी ही रही, जो ब्रिटिश महारानी द्वारा भारतीय शासन अपने हाथमे लेनेके समय तक कायम रही।

बॉकिंघम, जान सिल्क–'कलकत्ता जर्नल'का सम्पादक, जो सरकारी अधिकारियोकी मुक्त कण्ठसे आलोचना किया करता था। अतः कार्यवाहक गवर्नर-जनरल जान एडम्सने उसे १८२३ ई०मे भारतसे निष्कासित कर दिया।

बक्सरकी लडाई–२२ अक्तूबर १७६४ ई०को आरम्भ इस लडाईमे मेजर जनरल हेक्टर मुनरोके नेतृत्वमे कम्पनीकी सेनाने शाह आलम द्वितीय, अवधके नवाब शुजा-उद्दौला तथा बगालके भगोडे नवाव मीर कासिमकी मिली-जुली सेनाको हरा दिया। इस विजयमे भारतमे कम्पनीकी प्रतिष्ठा काफी वढ गयी, जिसके फलस्वरूप होनेवाले समझौतेके अन्तर्गत बादशाहने कम्पनीको बगाल, विहार और उडीसाकी दीवानी सौंप दी। इसके वदलेमे कम्पनीने उसे इलाहाबाद तथा कडाके जिले, जो उसने अवधके नवावसे छीन लिये थे, लौटा दिये और बगाल, विहार तथा उडीसाके राजस्वसे २६ लाख रुपया वार्षिक खिराजके रूपमे देना स्वीकार किया। इस प्रकार बगाल, विहार तथा उडीसामे ईस्ट इडिया कम्पनीकी स्थिति वैधानिक हो गयी।

बख्त खाँ–१८५७ ई०मे दिल्लीके विद्रोही सिपाहियोका नेता, जिसने गदरके दिनोमें दिल्लीकी हलचलोमे प्रमुख रूपसे भाग लिया।

बख्तियारउद्दीन गाजी शाह–पूर्वी बंगालके पहले स्वतन्त्र शासक फखरुद्दीन मुबारक शाहका लडका और उत्तराधिकारी। उसने १३२९ से १३५२ ई० तक राज्य किया। पश्चिमी बगालके सुल्तान शमसुद्दीन इलियास शाह (दे०) ने उसकी गद्दी छीन ली।

बख्तियार खिलजी–इख्तियारुद्दीन मुहम्मदका पिता, जिसने नवद्वीप या नदियाके राजा लक्ष्मणसेनको भगा दिया और इस प्रकार बगालमे मुसलमानी राज्यकी नीव डाली।

बघाट–सतलज पार स्थित एक पहाडी रियासत, जिसे लार्ड डलहौजीने १८५० ई०मे अपने जब्तीके सिद्धान्तके अनुसार जब्त कर लिया। डलहौजीके उत्तराधिकारी लार्ड कैनिंगने अपने पूर्वाधिकारीके निर्णयको वदल कर बघाट रियासत उसके पुराने राजाको लौटा दी।

बटलर, डाक्टर फैनी–प्रथम अग्रेज महिला चिकित्सक, जिसने १८६० ई०मे भारत आकर डाक्टरी शुरू की। उसने महिलाओके लिए सेवाका एक नया आदर्श उपस्थित किया था।

बटलर-समिति रिपोर्ट–१९२९ ई०मे प्रस्तुत की गयी। भारतमे सर्वोच्च (ब्रिटिश) सत्ता और देशी रियासतोके तत्कालीन सम्बन्धोकी जाँच करनेके उपरान्त समितिने दोनोके वित्तीय एव आर्थिक सम्बन्धोको व्यवस्थित करनेके विषयमे अपनी सिफारिशे प्रस्तुत की। इसकी आधारभूत सिफारिश थी कि सर्वोच्च सत्ता और देशी राजाओके वीच ऐतिहासिक सम्वन्धोको ध्यानमे रखकर उन्हें उनकी सहमतिके बिना भारतीय विधान मडलके प्रति उत्तरदायी नयी सरकारसे सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए विवश न किया जाये। रिपोर्टमे देशी राजाओकी ये आशकाएँ प्रतिलक्षित थी कि भारतमे लोकप्रिय शासन प्रचलित होनेसे वे अपने अधिकारोसे वचित हो जायेंगे। भारतीय लोकमतने इस रिपोर्टको प्रतिगामी माना।

बटलर, सर हरकोर्ट–वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषदका सदस्य। वादमे सयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) और बर्माका गवर्नर हुआ। समर्थ प्रशासकके रूपमे उसकी ख्याति वहुत थी और भारत-मन्त्री द्वारा गठित देशी रियासत समिति (इडियन स्टेट्स कमेटी)का १९२७ ई०मे वह अध्यक्ष नियुक्त किया गया। यह समिति देशी रियासतो और सर्वोच्च सत्ताके पारस्परिक सम्वन्धोकी जाँचके लिए नियुक्त की गयी थी। समितिने १९२९ ई०मे रिपोर्ट प्रस्तुत की थी।

बडगांव समझौता–प्रथम मराठा-युद्ध (१७७६–८२ ई०)के दौरान भारतमे ईस्ट इडिया कम्पनीकी सरकारकी ओरसे कर्नल करनाक द्वारा जनवरी १७७९ ई०मे किया गया। कर्नल काकबर्नके नेतृत्वमे अग्रेजोकी एक सेनाने कमिश्नर कर्नल करनाकके साथ पूनाकी ओर कूच किया, किन्तु रास्तेमे उसे पश्चिमी घाट स्थित तेल गाँव नामक स्थानपर मराठोकी विशाल सेनाका मुकावला करना पडा। अग्रेज सेनाकी कई स्थानोपर हार हुई और उसे मराठोने चारो तरफसे घेर लिया। ऐसी स्थितिमे कर्नल करनाक हिम्मत हार गया और उसके जोर देनेपर ही कमांडिग अफसर कर्नल काकवर्नने वडगाँव समझौतेपर हस्ताक्षर किये। इस समझौतेके अनुसार तय हुआ कि कम्पनीकी वम्बई सरकार १७७३ ई०के वाद जीते गये समस्त इलाके मराठोको लौटा देगी और अपने वचनोका पालन करनेकी गारटीके रूपमे कुछ अग्रेज अफसरोको बधकके रूपमे मराठोके सुपुर्द कर देगी, राघोबा (दे०)को, जिसको पेशवाकी गद्दीपर बिठानेके उद्देश्यसे अग्रेजोने लडाई छेडी

थी उसे मराठोंको सौंप देगी, बंगालसे मददके लिए आ रही ब्रिटिश कुमुक वापस लौटा दी जायगी और भडौचसे प्राप्त राजस्वका एक हिस्सा महादजी शिन्देको दिया जायगा। सैनिक स्थिति अंग्रेजोके इतने प्रतिकूल नही थी कि वे इस प्रकारकी शर्तें स्वीकार करते। गवर्नल-जनरलने इस समझौतेको अस्वीकृत कर दिया और समझौता करनेवाले अंग्रेज अधिकारियोको कम्पनीकी नौकरीसे बर्खास्त कर दिया। राघोवाने महादजी शिन्देकी शरण लेकर अपनी प्राणरक्षा की और अंग्रेजोको भी परेशानीसे बचा लिया। अंग्रेजोने बुद्धिमत्ता दिखाते हुए समझौतेकी शर्तोंके अनुसार भडौचसे प्राप्त राजस्वका भाग शिन्देको देकर उसके साथ अच्छे सबध स्थापित कर लिये।

बड गोहाई—आसामके अहोम राजाओके दो शीर्षस्थ अधिकारियोमेसे एकका सरकारी पद नाम, जिसे स्वय राजाके बाद सर्वोच्च अधिकार प्राप्त थे। दूसरा उच्च अधिकारी बूढा गोहाई कहलाता था। इस पदपर पन्द्रह अहोम परिवारोका ही कोई व्यक्ति, जो अहोम अभिजात वर्गमे गिने जाते थे, पदासीन होता था। यह सामान्यत वशानुगत होता था किन्तु राजाको यह अधिकार प्राप्त था कि वह निर्धारित परिवारके किसी भी सदस्यको, जिसे वह पसन्द करे, चुन ले। यदि वह चाहे तो बड गोहाईको बर्खास्त भी कर सकता था। अहोम राज्यके एक भागका प्रशासन बड-गोहाइके अधीन था, जिसे प्रशासनिक, सैनिक तथा न्यायिक अधिकार प्राप्त थे। (ई० गेट कृत हिस्ट्री आफ आसाम)

बड बरुआ—अहोम राजा प्रताप सिंह (१६०३-४१ ई०)के राज्यमे आसामके उत्तरी भागमे स्थित कलियाबडके पूर्वके क्षेत्रके लिए नियुक्त प्रशासकका पदनाम। इस पदपर सबसे पहले राजाके चाचा मोमाई तमूलीकी नियुक्ति हुई थी।

बड्डोवाल—२१ जनवरी १८४६ ई०को यहाँ सिखोके साथ हुई एक मुठभेडमे ब्रिटिश सेना पराजित हो गयी, जिसका नेतृत्व सर हेनरी स्मिथ कर रहा था। एक सप्ताह बाद ही अलीवालके युद्धमे सिख अंग्रेजोसे हार गये।

बड़ोदा—गुजरातका एक महत्त्वपूर्ण नगर, मराठोने सर्व प्रथम इसपर १७०६ ई०मे आक्रमण किया। १७३२ ई०मे पीलाजी गायकवाडने, जो पेशवा बाजीराव प्रथमका अनुयायी और समर्थक था, गुजरातमे अपनी सत्ता कायम की और बडोदाको सदर मुकाम बनाया। पीलाजीके पुत्र एव उत्तराधिकारी दामाजी द्वितीय (१७३२-६८)के प्रशासनकालमे बडोदाका गौरव अधिक बढा और यह गायकवाडोकी राजधानी बन गया। दामाजीने इसे भव्य इमारतो तथा प्रमुख संस्थाओके निर्माण द्वारा आकर्षक बनाया। आजकल यहाँ एक विश्वविद्यालय भी है।

बदनचन्द्र—गौहाटीका (१८१०—२० ई० तक) बड फूकन (सूबेदार)। उसने प्रजाका बडी निर्दयतासे दमन किया और जबरन धन वसूला। अन्तमे स्थिति यहाँ तक पहुँची कि बड गुहाई (प्रधान मत्री) पूर्णानन्दने, जिसके पुत्रके साथ बदनचन्द्रकी लडकी व्याही थी, बदनचन्द्रको उसके पदसे हटा दिया। उसे पकडनेके लिए गौहाटी सिपाही भेजे गये। लेकिन बदनचन्द्रको अपनी पुत्रीसे इसकी सूचना पहले मिल गयी थी और वह सैनिकोके पहुँचनेके पहले वहाँसे चला गया। बदनचन्द्रने इसका बदला लेनेका निश्चय किया। वह भाग कर कलकत्ता पहुँचा और वहाँ उसने गवर्नर-जनरल लार्ड मिंटोसे मिल कर आसाममे अंग्रेजी फौज भेजनेका अनुरोध किया। लेकिन मिंटोने हस्तक्षेप करनेसे इनकार कर दिया।

इसके बाद बदनचन्द्र बर्मी शासकके दरबारमे गया और उसे आसाममे बर्मी फौज भेजनेके लिए राजी कर लिया। इस प्रकार १८१६ ई०मे बर्मी फौज आसामपर हमला करते हुए जोरहाट तक बढ गयी और गौहाटीमे बदनचन्द्रको फिरसे सूबेदार बना दिया। इसी बीच पूर्णानन्दकी मृत्यु हो गयी और बदनचन्द्रने बर्मी सेनाको आसामसे लौट जानेके लिए राजी कर लिया और उसे हर्जानेके रूपमे भारी रकम अदा की। इस प्रकार सफलता पानेके बाद बदनचन्द्र अहंकारी और निरकुश हो गया। उसने अहोम राजाकी माता और अनेक सरदारोको अपना विरोधी बना लिया। इन लोगोकी शह पाकर बदनचन्द्रकी हत्या कर दी गयी। उसने जो नीति अपनायी थी, उसके फलस्वरूप १८१९ ई०मे बर्मियोने आसामको विजय करके उसे अपने राज्यमे मिला लिया।

बदन सिंह—भाऊ सिंहका पुत्र, जिसने अपनी सैनिक कुशलता, कूटनीति और विवाह सम्बन्ध द्वारा आगरा और मथुरा जिलोके पार्श्वमे भरतपुर नामक एक जाट रियासतकी स्थापना की। उसकी जन्म-तिथिका पता नही है, मृत्यु १७५६ ई०मे हुई।

बदर-ए-चाच—मुहम्मद तुगलक (१३२५—५१)का समसामयिक एक इतिहासकार।

बराबर पहाड़ियाँ—गयासे लगभग १५ मील उत्तरमे स्थित। इन पहाडियोमे सात गुफाएं हैं, जिनमेसे चार अशोक मौर्यके नामसे सम्बद्ध हैं। शेष तीनमे, जो नागार्जुनी वर्गकी कहलाती हैं, अशोकके पौत्र दशरथके शिलालेख

है। अशोकके युगमे इन पहाडियोकी ख्याति 'खलाटिका'के नामसे थी। खारवेलके समय इनको लोग गोरथ गिरिके नामसे जानते थे। बादमे इनका प्रवारगिरि नाम प्रचलित हो गया। आधुनिक कालमे पहाडीके अशोक-शिलालेखोवाली गुफाओके भागको 'बराबरकी पहाडियाँ' कहते और दूसरे भागको 'नागार्जुनी पहाडी' कहते है।

बदरीनाथ–उत्तरप्रदेशके पर्वतीय भूभाग गढवालमे स्थित हिन्दुओका प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान। यहाँ नर-नारायणकी प्रतिमा बदरी नारायणके नामसे पूजी जाती है। यहाँसे कुछ दूरपर आद्य शकराचार्य द्वारा स्थापित 'ज्योतिष्पीठ' मठ है। प्रतिवर्ष यहाँ हजारो तीर्थ-यात्री आते हैं।

बदायूँनी–अब्दुल कादिर अल बदायूँनी अकबरका दरबारी इतिहासकार था। वह कट्टर सुन्नी था। उसकी 'मुतखबुत्-तवारीख'मे अकबरके शासनकालका विवरण सुन्नी मुसलमानोके दृष्टिकोणसे प्रस्तुत किया गया है जिससे वह अकबरकी उदार नीतियोकी प्रशसा नही कर सका। इस पुस्तकका अग्रेजी अनुवाद उपलब्ध है। अबुल फजलकी पुस्तक 'अकबर नामा'मे अकबरकी प्रशसा अधिक हैं। बदायूँनीकी पुस्तकसे अकबरके कालका एक सतुलित चित्र प्रस्तुत करनेमे सहायता मिलती है।

बनर्जी, कृष्णमोहन–डेरोजियो (१८०६–३१ ई०)के प्रारभिक शिष्योमेसे एक तथा हिन्दू कालेजके आदर्श स्नातक। जन्म कलकत्ताके एक ब्राह्मण परिवारमे। पश्चिमके बुद्धिवादके प्रभावसे कृष्णमोहन अपना पैतृक धर्म छोडकर ईसाई बन गये। जीवनके अन्तिम दिनोमे वे पादरी बन गये। वे मान्य शिक्षाविद् एव पत्रकार थे, अपने समयके राजनीतिक आन्दोलनोमे भी भाग लेते थे, इडियन असोसियेशनके प्रथम मत्री थे और कलकत्ता विश्वविद्यालय सीनेटके प्रारम्भिक सदस्योमेसे थे।

बनर्जी, (बोनर्जी) डब्लू सी० (१८४४–१९०६)–भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके प्रथम अध्यक्ष और कलकत्ता हाईकोर्टके प्रमुख वकील। वे अग्रेजी चाल-ढालके कट्टर अनुयायी थे, अत स्वय अपने पारिवारिक नाम 'बनर्जी'का अग्रेजीकरण करके उसे 'बोनर्जी' कर दिया और अपने पुत्रका नाम भी 'शेली' रखा, लेकिन हृदयसे वे सच्चे भारतीय थे। इसीलिए भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके १८८५ ई०मे हुए प्रथम अधिवेशनके अध्यक्ष चुने गये। उन्हे दुबारा भी इलाहाबादमे १८९२ ई०मे हुए काग्रेस अधिवेशनका अध्यक्ष बनाया गया। १९०२ ई०मे वे इग्लैड जाकर बस गये। वहाँ १९०६ मे अपनी मृत्यु पर्यन्त भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके आन्दोलनको बढावा देते रहे।

बनर्जी रगलाल–बगला कवि (१८१७–८७ ई०)। अपनी रचनाओ द्वारा उन्होने राष्ट्रीयताकी भावनाका प्रसार किया तथा देशवासियोमे स्वाधीनताकी उत्कट कामना पैदा की। उसकी उदात्त रचना 'पद्मिनी'की यह मार्मिक पक्ति बडी लोक प्रिय थी "स्वाधीनता-हीनताय के बसिते चाय रे, के बसिते चाय?" (ऐसे राज्यमे कौन रहना चाहता है? जहाँ आजादी नही है?)

बनर्जी, सर गुरुदास–(१८४४–१९१८)–कलकत्ता हाईकोर्टके अवर न्यायाधीश। उन्होने अपना जीवन बगालके एक कालेजमे प्रोफेसरके रूपमे आरम्भ किया, किन्तु शीघ्र ही वकालत आरम्भ कर दी और १८७६ ई० मे डी० एल० की डिग्री प्राप्त कर ली। १८८८ ई० मे वे हाईकोर्टके न्यायाधीश बने और १९०४ ई० मे सेवा-निवृत्त हुए। शिक्षाके विकास और प्रसारमे उनकी तीव्र रुचि थी और कलकत्ता विश्वविद्यालयके दो कार्यावधि तक वाइस-चासलर रहे। वे सनातनधर्मी विचारके थे। हिन्दू धर्मपर कई पुस्तके लिखी हैं, जिनमे मुख्य है— बँगलामे 'ज्ञान ओ कर्म' तथा अग्रेजीमे 'फ्यू थाट्स ओन एजूकेशन'।

बनर्जी, सर सुरेन्द्रनाथ–कलकत्ताके ब्राह्मण परिवारमे १८४८ ई० मे जन्म हुआ था। कलकत्ता विश्वविद्यालयसे स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की एव १८६९ ई० मे आई० सी० एस० परीक्षा पास की। इडियन सिविल सर्विसमे १८७१ ई० मे शामिल हुए और सिल्हटमे असिस्टेन्ट मजिस्ट्रेट तथा कलक्टर नियुक्त किये गये। शीघ्र ही उन्हे इस आधारपर बर्खास्त कर दिया गया कि उन्होने अनियमित ढगसे एक मुकदमेमे फैसला दिया था। उन्होने तब बैरिस्टरके रूपमे अपना नाम दर्ज करानेका प्रयास किया, किन्तु उसके लिए उन्हे अनुमति देनेसे इन्कार कर दिया गया, क्योकि वे इडियन सिविल सर्विससे बर्खास्त किये गये थे। उनके लिए यह एक करारी चोट थी और उन्होने महसूस किया कि एक भारतीय होनेके नाते उन्हे यह सब भुगतना पडा है।

बैरिस्टर बननेमे विफल होनेके बाद १८७५ ई० मे भारत लौटनेपर वे प्रोफेसर हो गये, पहले मेट्रोपालिटन इस्टीट्यूशनमे (जो अब विद्यासागर कालेज कहलाता है) और बादमे रिपन कालेज (जो अब सुरेन्द्रनाथ कालेज कहलाता है) मे, जिसकी स्थापना उन्होने की थी। अध्यापकके रूपमे उन्होने अपने छात्रोको देशभक्ति और सार्वजनिक सेवाकी भावनासे अनुप्राणित किया। मेजिनी-के जीवन और भारतीय एकता सदृश विषयोपर उनके

भाषणोंने छात्रोमे बहुत उत्साह पैदा किया। राजनीतिमे भी भाग लेते रहे और १८७६ मे इंडियन असोसियेशन की स्थापना तथा १८८३ मे कलकत्तामे प्रथम अखिल भारतीय राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित करनेमे प्रमुख योगदान किया। एक राष्ट्रीय संगठनकी स्थापनाकी दिशामे यह पहला प्रयास था। १८८५ ई० मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (इंडियन नेशनल कांग्रेस) की स्थापनाके बाद उन्होने अखिल भारतीय राष्ट्रीय सम्मेलन (आल इंडिया नेशनल कान्फ्रेंस) का उसमे विलय करानेमे प्रमुख भाग लिया और उसके बादसे उनकी गिनती कांग्रेसके प्रमुख नेताओमे होने लगी। उन्होने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके १८९५ मे पूनामे हुए ग्यारहवें अधिवेशन और १९०२ मे अहमदाबादमे हुए अठारहवें अधिवेशनकी अध्यक्षता की। उन्होने देश-व्यापी भ्रमण कर बडी बडी सभाओमे भाषण करते हुए राष्ट्रीय एकताकी आवश्यकता और देशके प्रशासनमे भारतीयोको अधिक हिस्सा देनेपर जोर दिया। उन्होने पत्रकारिताके क्षेत्रमे भी कार्य किया और 'दि बंगाली' के यशस्वी सम्पादक रहे। बीसवी शताब्दीके प्रथम दशक तक इस पत्रने जनमतको जाग्रत करनेमे बहुमूल्य योगदान किया। उन्होने १८७८ ई० के वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्टके विरोधका नेतृत्व किया और इलबर्ट बिलके समर्थनमे प्रमुख भाग लिया।

बंगाल लेजिस्लेटिव कौंसिलके १८९३ से १९१३ तक वे सदस्य रहे और बडे साहसके साथ लार्ड कर्जनके कलकत्ता कार्पोरेशन ऐक्टका विरोध किया, जिसका उद्देश्य कार्पोरेशनका सरकारीकरण था। उक्त कानून पास हो जानेपर उन्होने कार्पोरेशनमे भाग लेनेसे इन्कार कर दिया। उन्होने बंगालके विभाजनका भी घोर विरोध किया और इसके विरोधमे जबर्दस्त आन्दोलन चलाया जिससे वे बंगालके निर्विवाद रूपसे नेता मान लिये गये। वे बंगालके 'बिना ताजके बादशाह' कहलाने लगे। बंगालका विभाजन १९११ ई० मे रद्द कर दिया गया, जो सुरेन्द्रनाथ बनर्जीकी बडी जीत थी। लेकिन इस समय तक देशवासियोमे एक नया वर्ग पैदा हो गया था जिसका विचार था कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके वैधानिक आन्दोलन विफल सिद्ध हुए और भारतमे स्वराज्य-प्राप्तिके लिए और प्रभावपूर्ण नीति अपनायी जानी चाहिए। यह वर्ग, जो गरम दल कहलाता था, हिंसात्मक तरीके अपनानेमे भी नही डरता था, उससे चाहे क्रांति ही क्यो न हो जाये। लेकिन सुरेन्द्रनाथ बनर्जीका, जिनकी शिक्षा-दीक्षा अठ्ठारहवीं शताब्दीके अंग्रेजी साहित्य, विशेषकर बर्कके सिद्धातोपर हुई थी, क्रांति अथवा क्रांतिकारी तरीकोंमे कोई विश्वास नही था और वे भारत तथा इंग्लैण्डके बीच पूर्ण अलगावकी बात सोच भी नही सकते थे। इस प्रकार सुरेन्द्रनाथ बनर्जीको, जिन्हें कभी अंग्रेज प्रशासक गरम विचारोका उग्रवादी व्यक्ति मानते थे, अब स्वय उनके देशवासी नरम दलका व्यक्ति मानने लगे थे। सूरत कांग्रेस (१९०७) के बाद वे काँग्रेसपर गरम दलवालोका कब्जा होनेसे रोकनेमे सफल रहे थे, किन्तु इसके बाद शीघ्र ही कांग्रेस गरम दलवालोके नियन्त्रणमे चली गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि माण्टेग्यू-चेम्सफर्ड रिपोर्टके आधारपर जब १९१९ का गवर्नमेण्ट आफ इंडिया एक्ट पास हुआ तो सुरेन्द्रनाथ बनर्जीने तो उसे इस आधारपर स्वीकार कर लिया था कि कांग्रेस अपने आरम्भिक दिनोमे जो माग कर रही थी, वह इस एक्टमे बहुत हद तक पूरी हो गयी है, लेकिन स्वय कांग्रेसने उसे अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेससे सुरेन्द्रनाथ बनर्जीका पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद हो गया। उन्होने कांग्रेसके अन्य पुराने नेताओके साथ लिबरल फेडरेशनकी स्थापना की जो अधिक जन-समर्थन नही प्राप्त कर सका। फिर भी सुरेन्द्रनाथ बनर्जी नयी बंगाल लेजिस्लेटिव कौंसिलके सदस्य निर्वाचित हो गये। १९२१ ई० मे 'सर' की उपाधिसे विभूषित किये गये और बंगाल सरकारके मन्त्री बने। १९२३ ई० मे कलकत्ता म्युनिसिपल बिलको विधान मंडलसे पास कराया, जिससे लार्ड कर्जन द्वारा बनाया गया पूर्ववर्ती कानून निरस्त हो गया और कलकत्ता कार्पोरेशनपर पूर्ण रूपसे लोकप्रिय नियन्त्रण स्थापित हो गया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी १९२० ई० मे शुरू किये गये असहयोग आन्दोलन से सहमत नही थे। फलत स्थानीय स्वशासनके क्षेत्रमे उनकी महत्त्वपूर्ण कानूनी उपलब्धियोके बावजूद उन्हे पहलेकी भाँति देशवासियोका समर्थन नही मिल सका। वे १९२३ के चुनावमे हार गये और तदुपरान्त १९२५ मे अपनी मृत्यु पर्यन्त सार्वजनिक जीवनसे प्राय. अलग रहे। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन जिसकी १८७६ ई० मे सुरेन्द्रनाथ बनर्जीने शुरुआत की थी, इस समय तक बहुत विकसित हो गया था और देशके लिए कानून बनाने तथा देशके प्रशासनमे अधिक हिस्सा दिये जानेकी जिन माँगोके लिए सुरेन्द्रनाथ बनर्जीने पचास वर्षसे भी अधिक समय तक संघर्ष किया था, उन माँगोकी पूर्तिसे

अब देशवासी सतुष्ट नही थे। वे अब स्वाधीनताकी माँग कर रहे थे, जो सुरेन्द्रनाथकी कल्पनासे परे थी। उनकी मृत्यु जिस समय हुई उस समय उनकी गिनती देशके लोकप्रिय नेताओंमे नही होती थी, किन्तु इसमे सन्देह नही कि वे आधुनिक भारतीय राष्ट्रीयताके निर्माताओमेसे थे जिसकी स्वाधीन भारत एक देन है। (एस० एन० बनर्जी, कृत ए नेशन इन मेंकिग)

बनर्जी, हेमचन्द्र—एक बगला कवि (१८३८–१९०३ ई०)। उनकी 'वृत्रसहार', जैसी काव्य रचनाओंने राष्ट्रीय भावनाओका प्रसार किया। उनकी प्रसिद्ध रचना 'भारत-सगीत' (१८७० ई०)ने लोगोको देशकी स्वाधीनताके लिए प्रयत्नशील होनेको प्रेरित किया।

बनारस—देखिये 'वाराणसी'।

बनारसकी सधि—अवधके नवाब शुजाउद्दौला तथा ईस्ट इडिया कम्पनीके बीच १७७३ ई०मे हुई। इसके अनुसार कडा तथा इलाहाबाद जिले, जो १७६५ ई०मे बादशाह शाह आलम द्वितीयको दिये गये थे, उनसे वापस लेकर अवधके नवाबके अधीन कर दिये गये। इसकी एवजमे एकमुश्त पचास लाख रुपये तथा वार्षिक आर्थिक सहायता देना नवाबने स्वीकार किया। शर्त यह थी कि कम्पनी नवाबके सरक्षणके लिए अवधमे अपनी एक सैनिक टुकडी रखेगी।

बनारसकी सधि—राजा चेतसिंह और ईस्ट इडिया कम्पनीके बीच १७७५ ई०मे हुई। इसके द्वारा चेतसिंहने, जो मूलरूपमे अवधके नवाबका सामन्त था, ईस्ट इडिया कम्पनीका प्रभुत्व इस शर्तपर स्वीकार कर लिया कि वह कम्पनीको साढे बाइस लाख रुपयेका वार्षिक नजराना दिया करेगा। सधिमे इस बातका भी उल्लेख था कि कम्पनी उससे अन्य किसी प्रकारकी माँग नही करेगी और न किसी व्यक्तिको उसके अधिकारमें हस्तक्षेप करने अथवा देशकी शाति भग करने दिया जायेगा। इस निश्चित आश्वासनके बावजूद वारेन हेस्टिंग्सने १७७८–८० ई०के वर्षोंमे अतिरिक्त धनकी माँग की। यह घटना 'चेतसिहके मामले'के नामसे विख्यात है।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय—प० मदन मोहन मालवीयके अथक उत्साह और प्रयासोसे १९१५ ई०मे स्थापित हुआ। सप्रति यह भारतके सबसे बडे आवासीय विश्व-विद्यालयोमेसे एक है।

बन्दा (वीर बैरागी)—दसवे गुरु गोविन्द सिंहकी १७०८ ई०मे हत्या हो जानेके बाद सिखोका नेता बना। वह सिखोका आध्यात्मिक नेता नही था किन्तु १७०८ से १७१५ ई० तक अपनी मृत्यु पर्यन्त उनका राजनीतिक नेता रहा। गुरु गोविन्द सिंहके बच्चोको सरहिन्दके फौजदार वजीर खाँने बडी क्रूरताके साथ मार डाला था। वजीर खाँसे बदला लेना बन्दा अपना मुख्य कर्तव्य मानता था। इसे उसने शीघ्रतासे पूरा किया। उसने बडी सख्यामे सिखोको सगठित किया और उनकी मददसे सरहिन्द पर कब्जा कर फौजदार वजीर खाँको मार डाला। उसने यमुना और सतलजके प्रदेशको अपने अधीन कर लिया और मुखीशपुर मे लोहागढ (लोहगढ अथवा लोहगढ) नामक मजबूत किला निर्मित कराया, इसके साथ ही राजाकी उपाधि ग्रहण कर अपने नामसे सिक्के भी जारी करा दिये। कुछ काल बाद सम्राट् बहादुर शाह प्रथम (१७०७–१२) ने शीघ्र ही लोह-गढपर घेरा डाल कर कब्जेमे कर लिया। बन्दा तथा उसके अनेक अनुयायियोको बाध्य होकर बहादुर शाह प्रथमकी मृत्यु तक अज्ञातवास करना पडा। इसके उप-रान्त बन्दाने लोहगढको पुन अपने अधिकारमे कर लिया और सरहिन्दके सूबेमे लूटपाट आरम्भ कर दी। किन्तु १७१५ ई०मे मुगलोने गुरुदासपुरके किलेपर घेरा डाल दिया। बन्दा उसी किलेमे था। मुगलोने किलेपर कब्जा करनेके साथ ही बन्दा तथा उसके अनेक साथियोको भी बन्दी बना लिया। बन्दाको कैदीके रूपमे दिल्ली भेजा गया, जहाँ उसे अमानवीय यत्रणाएँ दी गयी। आँखोंके सामने ही उसके पुत्रको मार डाला गया और स्वय उसे गर्म चिमटोसे नोचकर १७१५ ई०मे हाथीसे कुचलवा दिया गया। बन्दाकी शहादत वर्षो तक सिखोके लिए प्रेरणाका स्रोत रही।

बन्धुल अथवा महाबन्धुल—बर्मी सेनापति, प्रथम आंग्ल-बर्मी-युद्ध (१८२४–२६ ई०) छिडनेपर उसने बगालमे बर्मी सेनाका नेतृत्व किया था। उसे सफलता मिलनेका इतना भरोसा था कि गवर्नर जनरल लार्ड एम्हर्स्टके लिए वह सोनेकी बेडिया अपने साथ लाया था। बधुलने चटगाँव सीमाके निकट एक ब्रिटिश रेजि-मेण्टको हरा दिया। लेकिन अग्रेजोने इस बीच रगूनपर नौसैनिक अभियान करके मई, १८२४ मे कब्जा कर लिया। ब्रिटिश आक्रमणकारियोका सामना करनेके लिए तब बधुलको बर्मा वापस बुला लिया गया, जहाँ सेना-पतिके रूपमे उसने बडे रणकौशलका परिचय दिया, लेकिन रगूनके कब्जेके लिए दिसम्बर १८२४ ई०मे किये गये हमलेमे वह पराजित हो गया। वहाँसे पीछे हटकर डोनाबियूमे लकडकोटके सहारे वह २ अप्रैल

१८२५ ई० तक बहादुरीके साथ शत्रुओका मुकाबला करता रहा। किन्तु अचानक एक राकेट आ लगनेसे उसकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार प्रथम आग्ल-बर्मी युद्ध-मे बर्मा पराजित हो गया।

बन्धुपालित—वायु पुराणके अनुसार कुणालका पुत्र और सम्राट् अशोकका पौत्र। कहा जाता है कि वह अपने पिता-का उत्तराधिकारी हुआ था, किन्तु शिलालेखो अथवा अन्य सूत्रोमे उसके बारेमे कोई जानकारी उपलब्ध नही है।

बन्धुवर्मा—गुप्त सम्राट् कुमार गुप्त प्रथम (४१५–५५ ई०) का पश्चिमी मालवा स्थित दशपुरका सामन्त। उसका उल्लेख ४३७–३८ ई०के मन्दसोर शिलालेखमे हुआ है।

बम्बई—देशका एक प्रमुख औद्योगिक नगर एव महाराष्ट्र प्रदेशकी राजधानी। नगरका बन्दरगाह १८ ५३ उत्तरी अक्षाश और ७२ ५४ पूर्वी देशान्तर रेखावाले अरब सागर तटपर स्थित है। बन्दरगाह भव्य एव प्राकृतिक है, किन्तु अग्रेजोके अधिकार तथा उनके द्वारा इसका विकास किये जानेसे पूर्व इसका कोई महत्त्व नही था, क्योकि सँकरी खाडियो, दलदलो और पहाडियोके कारण यह भारतके आतरिक भूभागसे अलग-अलग था। वर्त-मान नगरकी भूमि तथा बन्दरगाह और पास-पडोसके क्षेत्रोपर पुर्तगाली सेनापति अल्बुकर्क १५१० ई०से कब्जा किये हुए था। १६६१ ई०मे पुर्तगालकी राजकुमारी कैथरीनका विवाह इग्लैडके राजा चार्ल्स द्वितीयके साथ सम्पन्न होनेपर दहेजके रूपमे पुर्तगालियोने इसे भी अग्रेजोको सौप दिया। यह जागीर इतनी बेकारकी मानी गयी कि राजा चार्ल्स द्वितीयने १६६८ ई०मे इसे मात्र १० पौण्ड वार्षिक किराये पर ईस्ट इडिया कम्पनी-को हस्तान्तरित कर दिया। जिराल्ड आगियरके प्रयासो-के फलस्वरूप जो १६६९ से १६७७ ई० तक इसका गवर्नर था, बम्बईका विकास आरम्भ हुआ और शीघ्र ही यह इतना समृद्ध नगर हो गया कि सूरतको पछाड कर अग्रेजोका मुख्य व्यवसाय-भूमि बन गया।

१७७३ ई०के रेग्युलेटिंग ऐक्टने बम्बई प्रेसीडेन्सी-को बगालके तथा उसकी कौन्सिलके सामान्य नियत्रणमे कर दिया था, अत यह केन्द्रीय सरकारकी राजधानी कभी नही बन सका, किन्तु इसका महत्त्व ब्रिटिश राज्य-के प्रसारके साथ-साथ बढता गया। बम्बई प्रेसीडेन्सीमे भारतके पश्चिमी तटका सारा उत्तरी भाग, जिसमे सिन्ध, मालवा और गुजरात भी शामिल था, मिला दिया गया। नगरमे वृद्धि हुई, बन्दरगाह विकसित किया गया और नयी गोदीका निर्माण हुआ। १८६४ ई०मे बम्बई-बडौदा-और सेंट्रल रेलवे लाइनोके बन जाने-पर तथा १८६९ ई०मे स्वेज नहरके चालू हो जानेपर यूरोपसे पूर्वमे आनेवाले जहाजोके लिए भारतमे रुकने लायक यह पहला बदरगाह हो गया। इस प्रकार बम्बई नगर 'भारतका मुख्य प्रवेशद्वार' बन गया। यह सूती वस्त्रोका प्रमुख उत्पादक केन्द्र भी है। धनिक पारसियो-ने इसे अपना बना लिया है और उन्होने इसकी समृद्धिमे भारी योगदान किया है।

भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसका प्रथम अधिवेशन १८८५ ई०मे बम्बईमे ही हुआ था और देशके स्वाधीनता आन्दोलनमे भी बम्बईका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। सिन्धको इससे १९३५ ई०मे पृथक् कर दिया गया। स्वाधीनताके उपरान्त बम्बई राज्य भाषाई आधार पर दो राज्योमे विभाजित हुआ। पहला राज्य महाराष्ट्र बना, जिसकी राजधानी बम्बई है और दूसरा गुजरात, जिसकी राजधानी अहमदाबाद अथवा गाधीनगर है। (सर डब्ल्यू० हण्टर कृत इम्पीरियल गजेटियर जिल्द ७, एस० एम० एडवर्ड्स कृत दि राइज आफ बाम्बे तथा शेपर्ड कृत बाम्बे, १९३२)।

बम्बईका प्लेग—१८९७ ई०मे फैला, जब बम्बई और पूना दोनो नगरोमे गिल्टियाँ निकलनेवाली प्लेग (ताउन)की बीमारी गम्भीर महामारीके रूपमे व्याप्त हो गयी। भय-भीत सरकारने अनावश्यक तथा अत्यधिक कठोर कदम उठाकर न केवल व्याधिग्रस्त लोगोको बस्तीसे अलग हटा दिया, वरन् उन लोगोको भी हटा दिया, जिनके रोग-पीडित होनेका जरा भी सन्देह था। बाल गगाधर तिलक-ने अपने पत्र 'केसरी'मे सरकारके निर्मम आचरणकी तीव्र भर्त्सना की, वैसे तो तिलक महामारी रोकनेके सरकारी प्रयासोके प्रशसक थे, किन्तु उन्होने इस बातकी माग उठायी कि सरकारी कानूनोको लागू करनेमे कठोरता न बरती जाय। उसके तुरन्त बाद अज्ञात आक्रमणकारियोने प्लेग कमिश्नर रैण्ड तथा उसके सहायक आयेर्स्टकी हत्या कर दी। फलत तिलकके विरुद्ध राजद्रोह फैलानेका आरोप लगा कर मुकदमा चलाया गया और उन्हें कारावास-की सजा मिली। इस प्रकार बम्बईके प्लेग (ताउन)के सकट ने तिलकको देशका अग्रणी नेता बना दिया।

बयाना—राजस्थानके भरतपुर जिलेका एक पहाडी किला और पुरानी बस्ती। यहाँ यौधेय गणका एक शिलालेख भी उपलब्ध हुआ है। पिछले समयमे यह स्थान एक मुस्लिम जागीरदारके अधीन हो गया। उस युगमे दिल्ली-

पर अभियान करनेवाली सेनाओके लिए इस किलेपर कब्जा करना महत्त्वपूर्ण माना जाता था ।

बरगोइने, कर्नल—ब्रिटिश पार्लियामेण्टका सदस्य, जिसने मई, १७७३ ई० पार्लियामेण्टमे राबर्ट क्लाइवके विरुद्ध तीव्र आरोप लगाये । उसीके प्रस्तावपर पार्लियामेण्टने पारित किया कि ईस्ट इडिया कम्पनीकी सेना द्वारा भारतमे अधिग्रहीत क्षेत्रो अथवा धनको यदि कम्पनीका कोई कर्मचारी अपनी निजी सम्पत्ति बना लेता है तो उसका यह कार्य गैर-कानूनी है और यह बात प्रमाणित है कि राबर्ट क्लाइवने इस प्रकारसे २,३४,००० पौडकी राशि प्राप्त की है । प्रस्तावमे एक सशोधन यह भी जोड़ दिया गया कि राबर्ट क्लाइवने अपने देशके लिए महान् और सराहनीय सेवाएं की है । राबर्ट क्लाइवको बरगोइनेका प्रस्ताव पारित होनेसे इतना सदमा पहुँचा कि उसने १७७४मे आत्महत्या कर ली ।

बरनी, जियाउद्दीन—प्रसिद्ध मुसलमान इतिहासकार, जो फिरोज शाह तुगलकके समयमे हुआ था । उसकी पुस्तक 'तारीखे फिरोजशाही'मे फिरोज शहशाह तुगलकके शासनका विश्वसनीय वर्णन है । साथ ही इस पुस्तकमे दिल्लीके पूर्ववर्ती सुल्तानोंके शासनके सम्बन्धमे भी काफी जानकारी मिलती है ।

बरबोसा, इडोरडो—जेशुइट यात्री, जो १५६० ई०मे भारत आया । उसने विजयनगरका भ्रमण किया और १५८१ ई०मे उत्तरी भारत तथा बगालकी यात्रा की । वह विजयनगरकी समृद्धि और बगालमे निर्मित उत्कृष्ट वस्तुओसे बहुत प्रभावित हुआ । (मैकलागन कृत जेस्यूट मिशन)

बराड़ (बरार)—प्राचीन राज्य विदर्भका आधुनिक नाम । यह वर्धा नदीकी घाटीमे स्थित है । मौर्योके साम्राज्यका यह एक भाग था । पुष्यमित्र शुङ्गके पुत्र अग्निमित्रके शासनकालमे इसने साम्राज्यसे पृथक् हो जानेका विफल प्रयास किया । बादमे यह चालुक्योके अधीन हो गया, जिनसे इसे अलाउद्दीन खिजलीने जीत लिया । फिर यह मुहम्मद तुगलकके राज्यमे सम्मिलित हो गया तथा बहमनी राज्यकी स्थापनापर उसका अग बन गया । यह १४८४ ई०मे उस समय तक उसका भाग बना रहा जब इमादुल मुल्कने यहाँ एक स्वतत्र राज्य कायम किया । उसने इमाद-शाही राज-वश चलाया, जो १५७४ ई० तक शासक रहा, तदनन्तर बरारको अहमद नगरने आत्मसात् कर लिया । १५९६ ई०मे यह बादशाह अकबरको सौप दिया गया जिसने इसको अलग सूबा बना दिया।

१७१४ ई०की सधिके अनुसार, जो बादशाहोको अपने इच्छानुसार तख्तपर बैठाने और उतारनेवाले सैयद-बन्धु हुसेन अली और पेशवा बालाजी विश्वनाथके बीच हुई थी, बरार मराठोके नियन्त्रणमे चला गया । इसके शीघ्र ही बाद एक जागीरके रूपमे इसे रघुजी भोसलेको अर्पित कर दिया गया । रघुजी विवाह सम्बन्धसे राजा साहूका सम्बन्धी था । कालान्तरमे मराठा राज्यका प्रसार होनेपर रघुजी भोसलेने अपनी जागीरमे नये इलाकोको शामिल कर लिया । तीसरे पेशवा बालाजी बाजी रावके समयमे बरार भोसला राज्यका केन्द्र बन गया ।

द्वितीय आग्ल-मराठा युद्धमे भोसला राजा आरगाँवकी लडाईमे पराजित हो गया और देवगाँव (दिसम्बर, १८०३ ई०)की सधिके अनुसार बरार भोसला राजासे लेकर पुरस्कार-स्वरूप हैदराबादके निजामको सौप दिया गया । निजाम पहले ही अग्रेजोके साथ आश्रित-सधि कर चुका था । वह इस बातके लिए वचनबद्ध था कि अपने राज्यमे ब्रिटिश टुकडीके खर्चके लिए वार्षिक सहायता देगा । किन्तु वर्षो तक निजामने यह धन नही चुकाया । अन्तमे बकायेके भुगतानके लिए उसने बरारका राजस्व जमानतके रूपमे ब्रिटिश भारतीय सरकारको अर्पित कर दिया, किन्तु यह व्यवस्था सन्तोषजनक तरीकेसे नही चल सकी । अतः १९०२ ई०मे निजामने बरारको स्थायी पट्टेपर भारत सरकारको सौप दिया । इस प्रकार यह ब्रिटिश भारतका अग हो गया ।

बरारी घाटकी लडाई—९ जनवरी १७६० ई० मे छेडी गयी । यह स्थान दिल्लीसे दस मील उत्तर स्थित है, जहाँ अहमदशाह अब्दालीने मराठा सेनापति दत्ताजी शिन्देको हरा कर मार डाला । लडाईमे मराठा सेना भाग खडी हुई । इस प्रकार अब्दालीके लिए दिल्लीका मार्ग खुल गया । मराठोकी यह हार एक वर्ष बाद पानीपतकी तीसरी लडाईमे होनेवाली उनकी जबर्दस्त हारका पूर्वाभास थी ।

बरीद, अमीर—बीदरके बरीदशाही राजवशके प्रवर्तक कासिम बरीदका पुत्र तथा उत्तराधिकारी, जिसने यह शाही उपाधि १५२९ ई० मे ग्रहण की ।

बरीदशाही राजवश, (बीदरका)—कासिम बरीदने बहमनी राज्यके पाँच शाखाओमे विभाजित हो जानेके पश्चात् १४९२ ई० मे इसे चलाया । इस राजवशने बीदर तथा उसके पास-पडोसके इलाकोपर १६१९ ई० तक जब बीजापुरके सुल्तानने इसे अपदस्थ कर दिया, शासन किया ।

वरुआ–आसामके अहोम राजाओंका एक पदाधिकारी। उनका स्थान फूकनके बाद होता था। मूलरूपमे ऐसे लगभग बीस अधिकारी होते थे जो उच्च अहोम परिवारोमे से चुने जाते थे। वे प्रशासनके विभिन्न विभागोके प्रधान होते थे। बादमे अहोमोसे इतर प्रजासे भी इनकी नियुक्तियाँ होने लगी। कालान्तरमे धर्म अथवा जातिका ध्यान किये बिना इस पदपर आसीन सभी व्यक्तियोको 'वरुआ' कहा जाने लगा। यह पदनाम उन सभी लोगोने ग्रहण कर लिया जिनके पूर्वज कभी इस पद पर रहे थे। आसामके कुछ मुसलमान परिवारोकी भी उपाधि 'वरुआ' है।

वर्क, एडमड–(१७२९–९७ ई०)–इग्लैण्डका एक प्रमुख सार्वजनिक नेता। इसने साहित्यिक एव राजनीतिक क्षेत्रमे विशेष ख्याति प्राप्त की। अपने समयमे यह ब्रिटिश टोरी या कजरवेटीय विचारधाराका मान्य नेता था। पालियामेण्टके सदस्यकी हैसियतसे उसने भारतके गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्सके विरुद्ध महाभियोग चलानेमे प्रमुख भाग लिया और अपनी सहज उदारताका परिचय देते हुए सत्तारूढ शासनाधिकारियो द्वारा प्रजाके उत्पीडनपर गहरा क्षोभ प्रकट किया। उसकी मुख्य रचनाएँ है 'आन कासिलिएशन विद अमेरिका', 'फ्रेन्च रेवलूशन' तथा 'दि सब्लाइम एण्ड दि ब्यूटीफुल'।

वर्कनहेड, लार्ड–(१८७२–१९३०)–बहुत ही सफल अग्रेज वकील और राजनीतिज्ञ। वह पालियामेण्टका १९०६ से १९१९ ई० तक सदस्य रहा, फिर लार्ड बना दिया गया। वह १९१५–१९ ई० मे एटर्नी जनरल और १९१९–२२ मे लार्ड चासलर तथा १९२४–२८ मे सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इडिया (भारत-मत्री) नियुक्त हुआ। वह उदारवादी (लिवरल) राजनीतिज्ञ था, लेकिन १९२७ ई० मे साइमन कमीशनमे सभी अग्रेज सदस्यो की नियुक्त करनेपर भारतीयोने उसकी तीव्र निन्दा की। साइमन कमीशनकी नियुक्ति १९१९ के गवनमेण्ट आफ इडिया एक्टकी कार्य-व्यवस्थाकी जाँचके लिए की गयी थी।

वर्ड, आर० एम०–भारत सरकारकी सेवामे नियुक्त एक अधिकारी, जो लार्ड विलियम वेण्टिकके शासनकालमे पश्चिमोत्तर प्रदेशमे भूमि बन्दोवस्तका मुख्य प्रभारी था। उसने इस कामको पूरा करनेमे दस वर्ष (१८३०–४०) लगाये और भूमिका अर्द्ध-स्थायी महालवारी बन्दोवस्त किया है। लार्ड कार्नवालिसके शासनकालमे बगालमे प्रचलित इस्तमरारी बन्दोवस्तसे यह बिलकुल भिन्न था।

वर्न, कर्नल–जब १८१६ ई० मे पेशवा बाजीराव द्वितीयने खडकीमे स्थित ब्रिटिश सेनापर अचानक हमला बोला, तब उसके कमाण्डर कर्नल वर्नने पेशवाको पूरी तरह पराजित कर उसकी योजनाको विफल कर दिया।

वर्नियर, फ्रैंको–एक फ्रासीसी विद्वान् डाक्टर। भारतमे वह १६५६ ई० से १६६८ ई० तक रहा, सारे देशका भ्रमण किया और शाहजहाँ तथा औरगजेबके मध्यवर्ती शासनकालोमे उसने भारतमे जो कुछ देखा उसका रोचक विवरण प्रस्तुत किया है। उसने मुगल दरबारके प्रमुख दरबारी दानिशमन्दकी नौकरी कर ली थी। वह दिल्लीमे उस समय मौजूद था, जब शाहजादा दाराको राजधानीकी सडकोपर घुमाया गया। उसके पीछे-पीछे भारी भीड चल रही थी, जो उसके दुर्भाग्यपर विलाप कर रही थी। फिर भी भीडमेसे किसी व्यक्तिको अपनी तलवार निकाल कर दाराको छुडानेका साहस नही हुआ। इस प्रकार वर्नियरने विदेशी होनेपर भी सत्ताधारियोके सम्मुख भारतीय जनताकी निष्क्रियता तथा असहायावस्थाको लक्षित कर लिया था।

वर्नियरने शाहजहाँ तथा औरगजेबके रेखाचित्र भी प्रस्तुत किये है। बगालकी समृद्धिसे वह बहुत प्रभावित हुआ था, परन्तु जनसाधारणकी निर्धनताने उसे अत्यधिक द्रवित भी किया था। दरबारकी शान-शौकत तथा विशाल सेनाका खर्च निकालनेके लिए प्रजापर करोका भारी बोझ लाद दिया गया था। इस विशाल सेनाका उपयोग जनताको दबाये रखनेके लिए किया जाता था। (वी० ए० स्मिथ द्वारा संपादित ट्रैवेल्स आफ वर्नियर)

वर्न्स, जेम्स (१८०१-६२ ई०)–सर अलेक्जेण्डर वर्न्सका बडा भाई, जो १८२१ ई०मे भारत आया और कम्पनीकी सेनामे १८४९ तक सर्जन रहा। वह विद्वान् लेखक भी था। 'हिस्ट्री आफ कच्छ' उसकी रचना है।

वर्न्स, सर अलेक्जण्डर (१८०५–४१)–कम्पनीकी सैनिक सेवामे १६ वर्षकी उम्रमे दाखिल हुआ, फारसी सीखी और एक नीतिज्ञके रूपमे ख्याति प्राप्ति की। उसे १८३० ई०मे दौत्य कार्यके लिए रणजीत सिंहके दरबारमे लाहौर और बादमे अफगानिस्तान, बुखारा और फारस भेजा गया। ऊपरी तौरपर उसकी यात्राका उद्देश्य व्यावसायिक घोषित किया गया था, किन्तु वास्तवमे उसे काबुल मे रूसी एजेन्टकी गतिविधि जाननेके लिए भेजा गया था। भारत लौटनेपर उसने अमीर दोस्त मोहम्मदका समर्थन करनेकी सलाह दी, किन्तु उसकी रायको ठुकरा दिया गया। लार्ड लिटन प्रथम द्वारा अपनायी गयी

आक्रमक नीतिके परिणाम-स्वरूप द्वितीय अफगान-युद्ध (दे०) हुआ। युद्धके दौरान बर्न्स सर डब्ल्यू एच. मैक-नाघटनकी अधीनतामे काबुलमे पोलिटिकल एजेन्ट नियुक्त किया गया, लेकिन २ नवम्बर, १८४०ई०को काबुलमे अफगानोने बगावत कर दी और बर्न्सकी हत्या कर दी। इस प्रकार लार्ड लिटनकी आक्रमक नीतिका दड बर्न्सको भुगतना पडा।

बर्नी, मेजर हेनरी—आवाके दरबारमे १८३० ई०मे नियुक्त होने वाला पहला ब्रिटिश रेजिडेण्ट।

बर्मा—भारतके पूर्वमे स्थित एक विशाल देश, जिसे पटकोई पर्वत शृखला, घने जगलों तथा बगालकी खाडीने भारतसे अलग कर रखा है। ऐसा लगता है, आरम्भिक कालमे भारत और बर्माके बीच कोई राजनीतिक सम्बन्ध नही था, यद्यपि बर्मा उस कालमे भी हिन्दू सस्कृतिसे इतना प्रभावित हो चुका था कि इसके नगरोके नाम जैसे अयृथिया अथवा अयोध्या सस्कृत नामोपर रखे जाने लगे थे। बादमे अशोकके कालमे बौद्ध धर्म और सस्कृतिका बर्मामे इतना अधिक प्रसार हुआ कि आज भी वहाँके बहुसख्यक लोग बौद्ध मतावलम्बी है। मुसलमानोके शासनकालमे बर्मासे भारतका सभी प्रकारका सम्पर्क भग हो गया। स्वय भी वह अनेक छोटे राज्योमे बँटा होनेसे सैनिक-शक्ति-सम्पन्न नही था। १७५७ ई०मे राजा अलोम्प्राने नया बर्मी राजवश चलाया। इस वशके शासको ने न केवल उत्तरी और दक्षिणी बर्माको राज्यमे मिलाया, वरन् उसकी सीमाएँ स्याम, तनासरिम, अराकान तथा मणिपुर तक बढा ली। विजयोसे, विशेषकर १८१६ई०मे आसामकी विजयसे, बर्मी राज्यकी सीमा भारतमे बढते हुए ब्रिटिश साम्राज्यकी सीमाओके सन्निकट आ गयी, जिससे दोनोके बीच शक्ति-परीक्षण अनिवार्य हो गया।

फल-स्वरूप तीन क्रमिक बर्मी-युद्ध हुए और १८८६ ई०मे पूरा देश ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यके अतर्गत आ गया। किन्तु १९३५ ई०के भारतीय शासन विधानके अतर्गत बर्माको भारतसे अलग कर दिया गया। १९४७ ई०से भारत और बर्मा दो स्वाधीन पडोसी मित्र राष्ट्र है।

बर्मा-शासनविधान—ब्रिटिश ससदने १९३२ ई०मे पारित किया, जिसके द्वारा बर्माको भारतसे अलग कर दिया गया। इसके अनुसार बर्माको उसी प्रकारके अधिकार प्रदान किये गये जिस प्रकार भारतको १९२१ ई०के शासनविधानके अन्तर्गत प्रदान किये गये थे।

बर्मी युद्ध—कुल तीन हुए। पहला आग्ल-बर्मी युद्ध दो वर्ष (१८२४–२६ ई०) तक चला। इसका कारण बर्मी राज्यकी न सीमाओका आसपास तक फैल जाना तथा दक्षिणी बगालके चटगाव क्षेत्रपर भी बर्मी अधिकारका खतरा उत्पन्न हो जाना था। लार्ड एम्हर्स्टकी सरकारने, जिसने युद्ध घोषित किया था, आरम्भमे युद्धके सचालन-मे पूर्ण अयोग्यताका प्रदर्शन किया, उधर बर्मी सेनापति बधुलने युद्धके सचालनमे बडी योग्यताका परिचय दिया। ब्रिटिश भारतीय सेनाने बर्मी सेनाको आसामसे मार भगाया, रगूनपर चढाई करके उसपर कब्जा कर लिया। दोनाबूकी लडाईमे बधुल परास्त हुआ और युद्धभूमिमे अकस्मात् गोली लग जानेसे मारा गया। तब अग्रेजोने दक्षिणी बर्माकी राजधानी प्रोमपर कब्जा कर बर्मी सर-कारको यन्दबूकी सधि (१८२६) करनेके लिए मजबूर कर दिया।

सधिके अन्तर्गत बर्मियोने अग्रेजोको एक करोड़ रुपया हर्जानेके रूपमे देना स्वीकार किया, अराकान और तेनासरीमके सूबे अग्रेजोको सौप दिये, मणिपुरको स्वाधीन राज्यके रूपमे मान्यता प्रदान कर दी, आसाम, कचार और जयन्तियामे हस्तक्षेप न करनेका वायदा किया तथा आवामे ब्रिटिश रेजीडेण्ट रखना स्वीकार कर लिया। इसके अलावा बर्मियोको एक व्यावसायिक सन्धि भी करनी पडी, जिसके अन्तर्गत अग्रेजोको बर्मामे वाणिज्य और व्यवसायके अनिर्दिष्ट अधिकार प्राप्त हो गये।

यन्दबू सन्धिके आधारपर राजनीतिक एव व्याव-सायिक मागोके फलस्वरूप १८५२ ई०मे द्वितीय बर्मी-युद्ध छिडा लार्ड डलहौजीने जो उस समय गवर्नर-जनरल था, बर्माके शासकपर सधिकी सभी शर्ते पूरी करनेके लिए जोर डाला। बर्मी शासकका कथन था कि अग्रेज सधिकी शर्तोसे कही ज्यादाकी माग कर रहे है। अपनी माँगोका एक निर्धारित तारीख तक पूरा करानके लिए लाड डलहौजीने कमोडोर लैम्बर्टके नेतृत्वमे एक जहाजी बेडा रगून भेज दिया। ब्रिटिश नौसेनाके अधि-कारीकी तुनुक-मिजाजीके कारण ब्रिटिश फ्रिगेट और एक बर्मी जहाजके बीच गोलाबारी हो गयी। लार्ड डलहौजीने तत्काल अल्टीमेटम भेज दिया और एडमिरल आस्टेनके नेतृत्वमे ब्रिटिश नौसेनाने दक्षिणी बर्मापर आक्रमण कर दिया। रगून, मर्तबान, बेसीन, प्रोम और पेगू पर शीघ्र ही कब्जा हो गया। लार्ड डलहौजी, सितम्बर १८५२ ई०मे स्वय बर्मा पहुँचा। बर्मी राजा उसकी शर्तोको स्वीकार करनेके लिए उद्यत नही हो रहा था। गवर्नर-जनरलकी हैसियतसे डलहौजीने तत्काल

उत्तरी बर्मातक बढना विवेकपूर्ण नही समझा, अतएव उसने दक्षिणी बर्माको भारतमे मिला लिये जानेकी घोषणा कर स्वय अपनी पहलपर युद्ध बन्द कर दिया। पेगू अथवा दक्षिणी बर्मापर कब्जा हो जानेसे बगालकी खाडीके समूचे तटपर अंग्रेजोका नियत्रण हो गया।

तृतीय बर्मी-युद्ध ३८ वर्ष बाद १८८५ ई० मे हुआ। उस समय थिबा ऊपरी बर्माका शासक राजा था और माडले उसकी राजधानी थी। लार्ड डफरिन भारतका गवर्नर-जनरल था। बर्मी शासक जबर्दस्ती दक्षिणी बर्मा छीन लिये जानेमे कुपित था और माडले स्थित ब्रिटिश रेजिडेण्ट तथा अधिकारियोको उन मध्ययुगीन शिष्टाचारोको पूरा करनेमे झुँझलाहट होती थी जो उन्हे थिबासे मुलाकातके समय पूरी करनी पडती थी। १८५२ ई० की पराजयसे पूरी तरह चिढे हुए थिबाने फ्रासीसियोका समर्थन और सहयोग प्राप्त करनेका प्रयास शुरू कर दिया। उस समय तक फ्रासीसियोने कोचीन चीन तथा उत्तरी बर्माके पूर्वमे स्थित टोन्किनमे, अपना विशाल साम्राज्य कायम कर लिया था। फ्रासीसियोके साथ बर्मियोके मेलजोल तथा थिबाकी सरकार द्वारा एक अंग्रेज फर्मपर, जो उत्तरी बर्मामे लट्ठेका रोजगार करती थी, भारी जुर्माना कर देनेके कारण भारत सरकारने १८८५ ई०मे तृतीय बर्मी-युद्धकी घोषणा कर दी। युद्धके लिए अंग्रेजोने तैयारियाँ पूरी तरहसे कर रखी थी, जबकि थिबाकी फ्रासीसियोसे सहायता प्राप्त करनेकी आशा मृग-मरीचिका सिद्ध हुई। युद्ध घोषणा ९ नवम्बर १८८५ ई०को की गयी और बीस दिनोमे ही माडलेपर कब्जा हो गया। राजा थिबा बन्दी बना लिया गया, उसे अपदस्थ कर उत्तरी बर्माको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमे मिला लिया गया और दक्षिणी बर्माको मिलाकर एक नया सूबा बना दिया गया, रगूनको उसकी राजधानी बनाया गया। इस प्रकार ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य पूर्वोत्तरमे अपनी चरम सीमा तक प्रसारित हो गया। (**सर ए० फेरे, हिस्ट्री आफ बर्मा; जी० ई० हार्वे, हिस्ट्री आफ बर्मा**)

बलबन, सुल्तान गयासुद्दीन–गुलाम वशका नवाँ सुल्तान (१२६६–८७)। बलबन मूलतः सुल्तान इल्तुतमिशका तुर्की गुलाम था। अपनी योग्यता और गुणोके कारण वह धीरे-धीरे ऊँचे पदो और प्रतिष्ठाको प्राप्त करता गया। उसकी पुत्री सुल्तान नसीरुद्दीन (१२४६–६६ ई०)को ब्याही थ. जिसने उसे अपना मत्री तथा सहायक नियुक्त किया। सुल्तानके सहायकके रूपमे बलबन अपने दामादके नामपर १२६६ ई०मे उसकी मृत्यु तक दिल्ली सल्तनतका प्रशासन चलाता रहा। उसके बाद वह स्वय सिंहासनपर बैठ गया और सुल्तान गयासुद्दीनकी उपाधि धारण की। उसने बडी योग्यतासे शासन किया। विद्रोही तुर्की अमीरोको कुचल कर, मेवाती सदृश्य लुटेरोको कठोर दड देकर, निष्पक्ष न्याय व्यवस्था, जिसमे छोटे-बडेके साथ कोई भेद भाव नही होता था तथा एक बहुत ही कार्यकुशल गुप्तचर व्यवस्था सगठित कर, जो उसके राज्यमे होनेवाली सभी बातोसे उसे अवगत रखती थी, बलबनने राज्यमे शान्ति-व्यवस्था पुनः कायम की।

बलवर्मा–आर्यावर्तका एक राजा, जिसका राज्य प्रयाग स्तम्भलेखके अनुसार समुद्रगुप्त (३३०–८० ई०) ने बलपूर्वक उन्मूलित कर दिया। बलवर्मा अथवा उसके राज्यकी अबतक पहचान नही हो सकी है।

बलराम सेठ–जसवत राव होल्कर (१७९८–१८११)का मत्री। जसवतरावकी मृत्यु हो जानेपर बलराम सेठने होल्करकी उपपत्नी (रखैल) तुलसी बाईका समर्थन किया और तृतीय आग्ल-मराठा युद्ध (१८१७–१८ ई०) छिडने तक उसे सत्तासीन रखा। उसके बाद दोनो विस्मृतिके गर्भमे विलीन हो गये।

बलहारा–सस्कृत शब्द 'वल्लभ'का अरबी रूपान्तर, जिसका प्रयोग अरब लेखकोने मान्यखेट अथवा मालखेडके राष्ट्रकूट राजाओके लिए किया है। यह पदवी कदाचित् राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष प्रथमके लिए प्रयुक्त होती थी, जिसने लगभग ६२ वर्ष (८१५–७७ ई०) तक राज्य किया था।

बलि–कर अथवा अतिरिक्त अधिभार, यह उपजके छठे हिस्से (भाग)के अतिरिक्त लगाया जाता था। मौर्य शासक भूमिकरके रूपमे इसे इकट्ठा करते थे।

बलूचिस्तान–भारतीय उपमहाद्वीपके पश्चिममे किरथर पर्वत-श्रृखलाके उस पार स्थित। भौगोलिक दृष्टिसे यह भारतके बाहर है लेकिन राजनीतिक दृष्टिसे प्रायः भारतीय साम्राज्यका भाग रहा है। इसे सिकन्दरने जीता था, तदनन्तर सेल्यूकसने चन्द्रगुप्त मौर्य (३२२ ई०पू०–२९८ ई०पू०) को सौप दिया और यह मौर्य साम्राज्यका अग बन गया। उसके बाद यह काफी लम्बे अर्से तक किसी भी भारतीय शासनतन्त्रके अतर्गत नही रहा। १५९५ ई०मे इसे अकबरने जीत कर मुगल साम्राज्यका अग बना लिया। अठारहवी शताब्दीके अन्तमे यह अफगानिस्तानका आश्रित राज्य बन गया।

१८३९ ई०मे अफगानिस्तानपर आक्रमण करनेके लिए

ब्रिटिश भारतीय सेना इस क्षेत्रसे गुजरी, और १८४३ ई० तक यह ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यके नियंत्रणमें आ गया। १८४७ ई०में इसकी राजधानी क्वेटाको औपचारिक रूपमें अंग्रेजोंने अधिकृत कर लिया। १९४७ ई०में भारतके विभाजनके उपरान्त बलूचिस्तान पश्चिम पाकिस्तानका भाग बन गया।

बलोचपुरकी लड़ाई—१६२३ ई० में जहाँगीरकी शाही फौजों और उसके पुत्र शाहजहाँके बीच, जिसने बादशाहके विरुद्ध बगावत कर दी थी, हुई। अन्तमें शाहजहाँ पराजित हो गया और उसे दक्षिणकी ओर भागना पड़ा।

बल्लाल सेन—बंगालके सेन वंशका (१११८–७९ ई०) प्रमुख शासक। उसने उत्तरी बंगालपर विजय प्राप्त की और कदाचित् मगधके पालोंके विरुद्ध भी अभियान चलाया और बंगालमें पालवंशके शासनका अंत कर दिया। वह विद्वान् और संस्कृतका ख्यातिप्राप्त लेखक था। उसकी दो कृतियाँ—दानसागर और अद्भुत सागर आज भी उपलब्ध हैं, जिनके द्वारा उसने बंगालमें सनातन धर्मको पुनरुज्जीवित किया। उसे बंगालके ब्राह्मणों और कायस्थोंमें 'कुलीन प्रथा' का प्रवर्तक माना जाता है।

बसई (बेसीन)—बम्बईके निकट, भारतका पश्चिमी तटवर्ती एक बन्दरगाह, जिसपर १६ वीं शताब्दीके आरम्भमें पुर्तगालियोंने अधिकार कर लिया। मराठोंने लगभग १७७० ई०में इसे पुनः प्राप्त कर लिया। ईस्ट इंडिया कम्पनी इसको अपने कब्जेमें करना चाहती थी। इस उद्देश्यसे बम्बईकी सरकारने १७७२ ई०में पेशवा नारायणरावकी मृत्युके उपरान्त मराठोंकी घरेलू राजनीतिमें हस्तक्षेप शुरू कर दिया। इस कारण अन्तमें प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध (१७७५-८२ ई०)में हुआ, जिसके बाद भी बसई पर मराठोंका ही अधिकार रहा।

बसईकी संधि—दिसम्बर ३१, १८०२ ई०को पेशवा बाजीराव द्वितीय और अंग्रेजोंके बीच हुई, जिसके द्वारा पेशवाने ईस्ट इंडिया कम्पनीका आश्रित होना स्वीकार कर लिया। यह एक सामान्य प्रतिरक्षात्मक समझौता था, जिसका उद्देश्य भारतमें ईस्ट इंडिया कम्पनीके इलाकों और पेशवाके राज्यक्षेत्रकी पारस्परिक सुरक्षा प्रदान करना था। कम्पनीने पेशवाके इलाकेमें कमसे कम ६ बटालियन सैनिक रखने तथा पेशवाकी उसके सभी शत्रुओंसे रक्षा करनेका उत्तरदायित्व ग्रहण कर लिया। बदलेमें पेशवाने कम्पनीको २६ लाख रुपयेकी वार्षिक आर्थिक सहायता देना, तथा अपनी सेवामें अंग्रेजोंके शत्रु यूरोपियनोंको न रखना, सूरतसे अपने सारे दावोंको छोड़ देना, किसी विदेशी ताकतसे बिना ब्रिटिश सरकारकी सलाहके कोई सम्बन्ध न रखना और निजाम तथा गायकवाड़से अपने विवादोंमें अंग्रेजोंको मध्यस्थ बनाना स्वीकार किया।

इस संधिके तुरन्त बाद ब्रिटिश भारतीय सेनाने पेशवा बाजीराव द्वितीयको पूनामें उसकी गद्दीपर पुनः प्रतिष्ठित कर दिया। किन्तु उक्त संधिका वास्तविक परिणाम यह निकला कि पेशवाने अपनी स्वाधीनताके साथ ही साथ मराठा सरदारोंकी स्वाधीनताकी भी बलि चढ़ा दी। मराठोंने, विशेष कर शिन्दे और होल्करने इस संधिपर बहुत आक्रोश प्रकट किया। उनके विरोध तथा स्वयं पेशवा द्वारा इसकी अवहेलना किये जानेके परिणामस्वरूप द्वितीय मराठा-युद्ध (१८०३–५ ई० में) हुआ और अन्तमें मराठोंको ब्रिटिश प्रभुसत्ता स्वीकार करनेके लिए विवश होना पड़ा।

बहलोल लोदी—१४५१ से ८९ ई० तक दिल्लीका सुल्तान। वह लोदी कबीलेका अफगान था, इसलिए लोदी उसका उपनाम बन गया। १४५१ ई०में जब सैयद राजवंशके सुल्तान आलम शाहने दिल्लीका तख्त छोड़ा, उस समय बहलोल लाहौर और सरहिन्दका सूबेदार था। उसने अपने वजीर हमीद खाँकी मददसे दिल्लीके तख्तपर कब्जा कर लिया। वह दिल्लीका पहला अफगान सुल्तान था, जिसने लोदी राजवंशकी शुरुआत की। बहलोलके सुल्तान बननेके समय दिल्ली सल्तनत नाम मात्रकी थी। बहलोल शूरवीर, युद्धप्रिय और महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसने जौनपुर, मेवात, सम्भल तथा रेवाड़ीपर अपनी सत्ता फिरसे स्थापित की और दोआबके सरदारोंका दमन किया। उसने ग्वालियरपर भी कब्जा कर लिया। इस प्रकार उसने दिल्ली सल्तनतका पुराना दबदबा एक प्रकारसे फिरसे कायम कर दिया। वह गरीबोंसे हमदर्दी रखता था और विद्वानोंका आश्रयदाता था।

दरबारमें शालीनता और शिष्टाचारके पालनपर जोर देकर तथा अमीरोंको अनुशासनमें बाँध करके उसने सुल्तानकी प्रतिष्ठाको काफी ऊँचा उठा दिया। उसने दोआबके विद्रोही हिन्दुओंका कठोरताके साथ दमन किया, बंगालके सूबेदार तोगरल खाँको हराकर मार डाला और उसके प्रमुख समर्थकोंको बंगालकी राजधानी लखनौतीके मुख्य बाजारमें फाँसीपर लटकवा दिया। उपरांत अपने पुत्र बुगरा खाँको बंगालका सूबेदार नियुक्त करके

यह चेतावनी दे दी कि उसने भी यदि विद्रोह करनेका प्रयास किया तो उसका भी हश्र वही होगा जो तोगरल खाका हो चुका है ।

वलवनने अपना ध्यान सल्तनतकी सुरक्षापर केन्द्रित किया, जिसके लिए उस समय पश्चिमोत्तर सीमापर मगोलोसे खतरा था। वे किसी भी समय भारतपर आक्रमण कर सकते थे । अत: वलवनने अपने वडे लडके मुहम्मद खाको मुल्तानका हाकिम नियुक्त किया और स्वय भी सीमाके आसपास ही पडाव डाल कर रहने लगा। उसका डर वेबुनियाद नही था । मगोलोने १२७९ ई०मे भारतपर आक्रमण करनेका प्रयास किया, किन्तु शाहजादा मुहम्मद खाने उन्हे पीछे खदेड दिया। १२८५ इ०मे पुन: आक्रमण कर वे मुल्तान तक वढ आये, और शाहजादेपर हमला करके उसे मार डाला । सुल्तानके लिए, जो अपने वडे वेटेको वहुत ही प्यार करता था और यह उम्मीद लगाये बैठा था कि वह उसका उत्तराधिकारी होगा, यह भीषण आघात था । वलवनकी अवस्था उस समय अस्सी वर्ष हो चुकी थी और पुत्र-शोकमे उसकी मृत्यु हो गयी । उसकी गणना दिल्लीके सबसे शक्तिशाली सुल्तानोमे होती है। (वरनी कृत तारिखे फिरोज शाही)

वसी (वुसी), मारकुइस डि–एक प्रमुख फ्रासीसी सेनापति, जिसने कर्नाटकमे हुए आग्ल फ्रासीसी युद्धोमे हिस्सा लिया। उसका पूरा नाम चार्ल्स जोसेफ पार्टस्सियर, मारकुइस डि वुसी था । १७५१ इ० मे डूप्लेके आदेशानुसार वह नये निजाम मुजफ्फरजगको पदासीन करने उसकी राजधानी औरगाबाद ले गया । मुजफ्फरजग की मृत्युके वाद सलावतजगके गद्दीनशीन होनेपर वुसी नये निजामका परामर्शदाता वना । उसकी सरकारका उसने सात वर्षो तक वडी कुशलताके साथ सचालन किया । १७५३ इ० मे वुसीने निजाम सलावतजगको सलाह दी कि वह फ्रासीसी सेनाका खर्च चलानेके लिए, जो निजामके शत्रुओसे उसकी रक्षा करनेके लिए तैनात की गयी थी और जिसके आधारपर निजामके दरवारमे फ्रासीसी प्रभुत्व स्थापित हो गया था, उत्तरी सरकारका राजस्व उसके सुपुर्द कर दे। तीसरा आग्ल-फ्रासीसी युद्ध (१७५६–६३ ई०) शुरू होनेपर १७५८ ई० मे काउण्ट डि लाली (दे०) ने वुसीको निजामके दरवारसे वापस वुला लिया, जिससे निजामके दरवारमे फ्रासीसी प्रभुत्व समाप्त हो गया । सर आयरकूटके नेतृत्वमे अग्रेजी सेनाने फ्रासीसियोको १७६० ई० मे विन्दवासकी लडाई (दे०) मे हरा कर उत्तरी सरकारपर भी कब्जा कर लिया । इस लडाईमे वुसी वन्दी वना लिया गया । वादमे रिहा होकर वह फ्रास वापस लौट गया ।

१७८३ ई० मे उसे अग्रेजोके विरुद्ध हैदरअलीकी सहायता करनेके लिए पुन भारत भेजा गया । इस समय तक वुसी वृद्ध हो चला था और वीमार रहता था। उसके आनेके पहले ही हैदरअलीकी मृत्यु हो गयी । ऐसी परिस्थितिमे वह घटनाक्रमको प्रभावित नही कर सका और अन्तमे सेवानिवृत्त होकर फ्रास लौट गया । निजाम सलावतजगके परामर्शदाताके रूपमे उसे प्रचुर धन प्राप्त हुआ था । उसके आधारपर उसने अपना शेष जीवन सुखसे विताया ।

वहमनी राज्य और राजवश–दक्षिणमे वहमनी राज्य और राजवशका आरम्भ दिल्लीके सुल्तान मुहम्मद तुगलक (१३२५–५१ ई०) के एक अधिकारी हसन (उपनाम जफरशाह) ने १३४७ ई० मे किया । तुगलकके अत्याचारो और उसकी सनकोके कारण दक्षिणके मुसलमान अमीरोने विद्रोह कर दिया । हसनने इस विद्रोहका फायदा उठाया और वहा अपना राज्य स्थापित कर लिया । हसन अपनेको फारसके वीर योद्धा बहमनका वशज मानता था, इसीलिए उसका वश वहमनी कहलाने लगा । तख्तपर वठनेके वाद हसनने अलाउद्दीन वहमन शाहका खिताब धारण कर लिया और अपनी राजधानी कुलवर्गा अथवा गुलवगमे बनायी । उसने ११ वर्ष (१३४७-५८ ई०) शासन किया । उसकी मृत्युके समय वहमनी राज्य उत्तरमे पेनगगासे दक्षिणमे कृष्णा नदीके किनारे तक और पश्चिममे गोवासे पूर्वमे भोगिर तक फैल गया था ।

वहमनी राजवशमे हसनके अतिरिक्त १३ अन्य सुल्तान हुए थे । इनमे मुहम्मद प्रथम (१३५८–७३ ई०) मुजाहिद (१३७३–७७ ई०), दाउद (१३७८ ई०), मुहम्मद द्वितीय (१३७८–९७ ई०), ग्यासुद्दीन (१३९७ ई०), शम्सुद्दीन (१३९७ ई०), फिरोज (१३९७–१४२२ ई०) अहमद द्वितीय (१४२२–३५ ई०), अलाउद्दीन (१४३५–५७ ई०), हमायू (१४५७–६१ ई०), निजाम (१४६१–६३ ई०), मुहम्मद तृतीय (१४६३–८२) और महमूद (१४८२–१५१८ ई०) शामिल है ।

वहमनी सल्तनतकी अपने पडोसी विजयनगरके हिन्दू राज्यसे लगातार अनवन चलती रही । विजयनगर राज्य उस समय तुगभद्राके दक्षिण और कृष्णाके उत्तरी क्षेत्रमे फैला हुआ था और उसकी पश्चिमी सीमा वहमनी राज्यसे मिली हुई थी । विजयनगर राज्यके दो

मजबूत किले मुगदल और रायचूर बहमनी सीमाके निकट स्थित थे। इन किलोपर बहमनी सल्तनत और विजयनगर राज्य दोनो दाँत लगाये हुए थे। इन दोनो राज्योमे धर्मका अन्तर भी था। बहमनी राज्य इस्लामी और विजयनगर राज्य हिन्दू था। बहमनी सल्तनतकी स्थापनाके बाद ही इन दोनो राज्योमे लडाइयाँ शुरू हो गयी और वे तवतक चलती रही, जबतक बहमनी सल्तनत कायम रही। बहमनी सुल्तानो द्वारा पडोसी हिन्दू राज्यको नष्ट करनेके सभी प्रयास निष्फल सिद्ध हुए, यद्यपि इन युद्धोमे अनेक बार बहमनी सुल्तानोकी विजय हुई और रायचूरके दोआब पर विजयनगरके राजाओंके मुकाबलेमे बहमनी सुल्तानोका अधिकार अधिक समय तक रहा।

बहमनी सुल्तानोमे तख्तके लिए प्रायः रक्तपात होता रहा। चार सुल्तानोको कत्ल कर दिया गया, दो अन्यको गद्दीसे जबरन उतार कर अंधा कर दिया गया। १४ सुल्तानोमेसे केवल पाँच अपनी मौतसे मरे। नवे सुल्तान अहमदने राजधानी गुलबर्गासे हटाकर बीदर बनायी, जहाँ उसने अनेक आलीशान इमारतोका निर्माण कराया।

बहमनी राज्यकी आबादीमे मुसलमान अल्पसख्यक थे, इसलिए सुल्तानोने राज्यके बाहरके मुसलमानोको वहाँ आकर बसनेके लिए प्रोत्साहित किया। परिणाम स्वरूप बहुतसे विदेशी मुसलमान वहाँ जाकर बस गये जो अधिकतर शिया थे। उनमेसे बहुतसे लोगोको राज्यके महत्त्वपूर्ण पदोपर नियुक्त किया गया। विदेशी मुसलमानोके बढते हुए प्रभावसे ईर्ष्यालु होकर दक्खिनी और अबीसीनियाई मुसलमान, जो ज्यादातर सुन्नी थे, उनसे शत्रुता रखने लगे। दसवें सुल्तान अलाउद्दीन द्वितीय (१४३५–५७ ई०) के शासनकालमें दक्खिनी और विदेशी मुसलमानोके सघर्षने अत्यन्त उग्र रूप धारण कर लिया। १४८१ ई० मे १३ वें सुल्तान मुहम्मद तृतीयके राज्यकालमें मुहम्मद गवाँको फाँसी दे दी गयी जो ग्यारहवें सुल्तान हुमायूँके समयमे बहमनी सल्तनतका वडा वजीर था और उसने राज्यकी बडी सेवा की थी। मुहम्मद गवाँकी मौतके बाद बहमनी सल्तनतका पतन शुरू हो गया। अगले और आखिरी सुल्तान महमूदके राज्यकालमें बहमनी राज्यके पाँच स्वतन्त्र राज्य बरार, बीदर, अहमदनगर, गोलकुडा और बीजापुर बन गये, जिनके सूबेदारोने अपनेको स्वतन्त्र सुल्तान घोषित कर दिया। इन पाँचो राज्योने १७ वी शताब्दी तक अपनी स्वतन्त्रता बनाये रखी। तब इन सबको मुगल साम्राज्यमे मिला लिया गया।

बहमनी सल्तनतसे भारतको कोई खास फायदा नही पहुँचा। कुछ बहमनी सुल्तानोने इस्लामी शिक्षाको प्रोत्साहन दिया और राज्यके पूर्वी भागमे सिचाईका प्रबन्ध किया। लेकिन उनकी लड़ाइयो, नरसहार और आगजनीमे प्रजाको बहुत नुकसान पहुँचा। इस सल्तनतमे साधारण प्रजाकी दशा बहुत दयनीय थी, जैसा कि रूसी व्यापारी एथानासियस निकितिनने लिखा है, जिसने बहमनी राज्यका चार वर्ष (१४७०–७४ ई०) तक भ्रमण किया। उसने लिखा है कि भूमिपर जनसख्याका भार अत्यधिक है, जबकि अमीर लोग समृद्धि और ऐश्वर्यका जीवन बिताते है। वे जहाँ कही जाते है, उनके लिए चादीके पलग पहलेसे ही रवाना कर दिये जाते है। उनके साथ बहुतसे घुडसवार और सिपाही, मशालची और गवैये चलते है। बहमनी सुल्तानोने गाविलगढ और नरनालमें मजबूत किले बनवाये और गुलबर्गा एव बीदरमें कुछ मस्जिदे भी बनवायी। बहमनी सल्तनतके इतिहाससे प्रकट होता है कि हिन्दू आबादीको सामूहिक रूपसे जबरन मुसलमान बनानेका सुल्तानोका प्रयास किस प्रकार विफल सिद्ध हुआ। (मीडोज टेलर–(मैन्युअल आफ इण्डियन हिस्ट्री, किंग-हिस्ट्री आफ दि बहमनी किंगडम् और निकितिन–इण्डिया इन दि फिफटींथ सेंचुरी)

बहराम ऐबा–उपनाम किशलू खाँ। वह सुल्तान मुहम्मद तुगलक (१३२५–५१ ई०) के शासनकालमें उच्च, सिन्ध और मुल्तानका नाजिम था। १३२९ ई० में बहराम ऐबाने सुल्तानके विरुद्ध उस समय विद्रोह किया जब वह देवगिरिमें था। सुल्तानने वहाँसे मुल्तानकी ओर कूच किया और बहरामको पराजित करके बदी बना लिया। सुल्तानने उसका सिर काट कर शहरके फाटकपर टंगवा दिया जिससे किसीको फिर विद्रोह करनेका साहस न हो।

बहराम खाँ–सुल्तान मुहम्मद तुगलकका दूध-भाई। सुल्तानने उसे गयासुद्दीन बहादुर शाहके साथ पूर्वी बगालका सूबेदार बनाया। जब गयासुद्दीनने सुल्तानके विरुद्ध विद्रोह किया, बहराम खाने उसे पराजित कर मार डाला। इसके बाद बहराम पूर्वी बगालका एकमात्र सूबेदार बन गया। १३३६ ई०मे उसकी मृत्यु हो गयी और उसके बाद ही पूर्वी बगाल दिल्ली सल्तनतसे स्वतन्त्र हो गया।

बहाई सम्प्रदाय–बहाउल्लाह (१८१७–९२)के द्वारा प्रचलित। उसका जन्म फारस (ईरान)मे हुआ था, परन्तु शाहके आदेशसे उसे देशसे निर्वासित कर दिया गया। इस सम्प्रदायके मुख्य सिद्धात है ईश्वर अज्ञेय है, वह केवल

अपने पैगम्वरो द्वारा अपनेको व्यक्त करता है, इलहाम किसी एक युगतक सीमित नही है, वह हर युगमे होता रहता है, हर हजार वर्षके वाद पैगम्वरोका जन्म होता रहता है, वर्तमान युगके लिए ईश्वरीय आदेश है कि समस्त मानवजातिको एक मजहव तथा एक विश्व व्यवस्था के अंतर्गत संगठित कर दो। इस सम्प्रदायका सवसे पहला मुखिया उसका सस्थापक वहाउल्लाह था। उसके वाद यह पद उसके वशजोको उत्तराधिकारके रूपमे प्राप्त होता रहा। कट्टर मुसलमान वहाई सम्प्रदायको नास्तिकोका सम्प्रदाय मानते हैं, फिर भी भारत तथा पाकिस्तान सहित ४० देशोमे इस सम्प्रदायके अनुयायी मिलते है। इस सम्प्रदायकी ओरसे अंग्रेजीमे 'दि वहाई वर्ल्ड' नामका एक पत्र भी प्रकाशित होता है।

वहाउद्दीन गुरशास्प–सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक (१३२०–२५ ई०)का भाजा। जिस समय सुल्तान मुहम्मद तुगलक १३२५ ई०मे गद्दीपर वैठा, वहाउद्दीन दक्षिणमे सागरका हाकिम था। उसने मुहम्मद तुगलकको दिल्लीका सुल्तान माननेसे इन्कार कर इसके विरुद्ध १३२६–२७ ई०मे विद्रोह कर दिया। वह पराजित करके वदी वना लिया गया और उसी रूपमे दिल्ली भिजवा दिया गया, जहाँ जीवित दशामे ही उसकी खाल खिचवा ली गयी और उसके शवको दिल्लीमे घुमाया गया, ताकि राजद्रोह करनेवालोको चेतावनी मिल जाय।

वहादुर पुरकी लडाई–फरवरी १६५८ ई०मे दारा शिकोहके सवसे वडे लडके सुलेमान और वादशाह शाहजहाँके दूसरे लडके शुजाके वीचमे हुई। शुजाने शाहजहाँकी वीमारीकी खवर मिलते ही अपनेको वगालका स्वतन्त्र शासक घोपित कर दिया। इस लडाईमे शहजादा शुजा पराजित हुआ और वह वगाल वापस लौट गया।

वहादुर शाह–गुजरातका सुल्तान (१५२६–३७ ई०)। उसने मालवाके सुल्तानको पराजित कर उसके राज्यको १५३१ ई०मे अपने राज्यमे मिला लिया। उसने मेवाड-पर भी चढाई और १५३४ ई०मे चित्तौडपर कब्जा कर लिया। लेकिन एक वर्ष वाद मुगल वादशाह हुमायूँने उसे पराजित कर दिया। वहादुर शाहने गोवा भागकर अपनेको वचाया। कुछ समय वाद हुमायूँ गुजरातसे लौट गया और उसके वाद वहादुर शाहने फिरसे अपने राज्यपर अधिकार जमा लिया। मुगलोके आक्रमणके कारण उसने पुर्तगालियोको वेसीन सौप कर उनसे सन्धि कर ली। जब वहादुर शाहने अपने राज्यपर पूरी तरह फिरसे दखल कर लिया तव उसमे और पुर्तगालियोमे उन्हें दी गयी रियायतोको लेकर मतभेद पैदा हो गया, जिन्हे दूर करनेके लिए पुर्तगालियोने वहादुर शाहको पुर्तगाली गवर्नर नूनो डा० कुन्हासे फरवरी १५३७ ई०मे उसके जहाजपर जाकर मुलाकात करनेपर सहमत कर लिया। लेकिन पुर्तगालियोने वहादुर शाहको धोखा देकर जहाजसे गिरा कर डुवो दिया और उसके साथियोको मार डाला।

वहादुर शाह–१६वी शताव्दीके अन्तमे खानदेशका शासक। १६०० ई०मे वादशाह अकवरने जिस समय असीर गढके किलेका घेरा डाला, उस समय वहादुर शाहने वडी योग्यतासे ६ महीने तक किलेकी रक्षा की, लेकिन वादमे वादशाह अकवर द्वारा व्यक्तिगत सुरक्षाका आश्वासन पाकर वह मुगल खेमेमे जाकर सुलहकी वातचीत करनेके लिए राजी हो गया। लेकिन अकवरने अपने वायदेको तोडकर वहादुर शाहको नजरवन्द कर लिया और उसे किलेमे अपने आदमियोको आत्म-समर्पण करनेका लिखित आदेश भेजनेके लिए वाध्य किया। अकवरने इस तरह छलसे किलेपर कब्जा कर लिया।

वहादुर शाह प्रथम–दिल्लीका सातवाँ मुगल वादशाह (१७०७–१२ ई०)। वह औरगजेवका दूसरा लडका था, जो १७०७ ई०मे उसके उत्तराधिकारीके रूपमे गद्दीपर वैठा। औरगजेवके मरनेके वाद उत्तराधिकारके युद्धमे उसके उस समय दो जीवित भाई–आजम और कामवख्श पराजित हुए और मारे गये। शाहजादेके रूपमे वहादुर प्रथम मुअज्जम कहलाता था। वह शाह आलमके नामसे भी प्रसिद्ध है। तख्तपर वैठनेके वाद उसने वहादुर शाह का खिताव धारण किया, लेकिन वह अपने पहले नाम शाह आलम अथवा आलम शाहके नामसे भी पुकारा जाता था। उसके पिताने अपने जीवन कालमे उसके साथ अच्छा व्यवहार नही किया था, कुछ वर्षोतक तो उसे पिताकी कैदमे भी रहना पडा। कठोर दमनके कारण उसका व्यक्तित्व कुठित हो चुका था और गद्दीपर वैठनेके समय सकटकी स्थितिमे मुगल साम्राज्यकी रक्षा करने अथवा उसे सुदृढ वनानेकी क्षमता उसमे नही थी। फिर भी उसने पाच वर्षके अपने अल्प-कालीन शासनमे मुगल साम्राज्यको फिरसे सुदृढ वनानेका प्रयास किया। उस समय मुगल साम्राज्यको मुख्य रूपमे तीन शत्रुओसे खतरा था, यथा,–राजपूत, मराठा और सिख। उसने राजपूतोको रियायते देकर उनसे सुलह कर ली। शम्भूजीके पुत्र साहू-को रिहा कर मराठोकी शत्रुताको मिटानेका प्रयास किया। साहूके महाराष्ट्र लौटनेके वाद मराठोमे फूट पैदा हो गयी और गृह-युद्ध छिड जानेके कारण कुछ समयके लिए वे

दिल्लीके मुगल साम्राज्यको परेशान करनेकी स्थितिमे नही रहे। लेकिन बादशाहने सिखोके विरुद्ध सख्तीसे काम लिया और उनको तथा उनके नेता वीर बन्दा वैरागीको पराजित करके उन्हे कुछ समयके लिए कुचल दिया। लेकिन इसके बाद ही १७१२ ई०मे बहादुर शाह प्रथमकी मृत्यु हो गयी।

बहादुर शाह द्वितीय—दिल्लीका १९ वाँ और अंतिम मुगल बादशाह (१८३७–५८ ई०)। अपने पिता और पूर्ववर्ती बादशाह अकबर द्वितीयकी भाँति बहादुर शाह द्वितीय भी ईस्ट इडिया कम्पनीसे पेंशन पाता रहा और अपनी स्थितिमे किसी तरहका सुधार नही कर पाया। १८५७ ई०मे सिपाही-विद्रोह शुरू होनेके समय बहादुर शाह ८२ वर्षका वृद्ध था, और स्वय निर्णय लेनेकी क्षमता खो चुका था। विद्रोहियोने उसको आजाद हिन्दुस्तानका बादशाह बनाया। इस कारण अग्रेज उससे कुपित हो गये और उन्होने उससे शत्रुवत् व्यवहार किया। सितम्बर १८५७ मे अग्रेजोने दुबारा दिल्ली पर कब्जा कर लिया और बहादुर शाह द्वितीयको गिरफ्तार कर उसपर मुकदमा चलाया तथा उसे रगून निर्वासित कर दिया, जहाँ ८७ वर्षकी अवस्थामे १८६२ ई०मे उसकी मृत्यु हो गयी। जिस दिन बहादुर शाह द्वितीय पकडा गया, उसी दिन उसके दो बेटो और पोतेको भी गिरफ्तार करके गोली मार दी गयी। इस प्रकार बादशाह अकबरके वशका अत हो गया।

बहार खाँ लोहानी—१६वी शताब्दीके प्रथम चतुर्थांशमे बिहारका स्वतत्र अफगान शासक। उसने फरीद खाँको १५२२ ई०मे अपनी सेवामे नियुक्त किया, जो बादमे शेर शाह के नामसे प्रसिद्ध हुआ। बहार खाँने फरीद खाँ को 'शेर खाँ'का खिताब दिया था, क्योकि उसने बिना किसी हथियारके शेरको मार डाला था। बहार खाँने शेरखाँको अपना नायब बनाया और अपने नाबालिग लडके जलाल खाँका उस्ताद भी नियुक्त किया। इस प्रकार बहार खाँने शेर खाँके भावी उत्कर्षका पथ प्रशस्त कर दिया।

बागला देश—पहले पूर्वी बगाल और पूर्वी पाकिस्तानके नामोसे विख्यात। इसमे ढाका, राजशाही तथा चटगाँव डिवीजनोके अन्तर्गत १५ जिले है। पूर्वी बगालको लार्ड कर्जनने सर्वप्रथम बगालसे अलग करके पूर्वी बगाल एव आसामका नया प्रात बनाया। बगालकी जनताने इसका घोर विरोध किया। बगालियोके विचारमे उनकी विकासशील राष्ट्रीय भावनाको कुचलनेके लिए बग-भग किया गया था। सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके नेतृत्वमे बग-भग-विरोधी जबर्दस्त आदोलन शुरू हुआ। जगह-जगह सभाएँ आयोजित की गयी, प्रदर्शन किये गये, अग्रेजी मालका बहिष्कार किया गया और स्वदेशी वस्तुओके प्रयोगको प्रोत्साहन प्रदान किया गया। जब इन विरोध-प्रदर्शनोका लार्ड कर्जनपर असर पडता न दिखाई दिया, तब बगालमे आतकवादी आन्दोलन शुरू हो गया। अग्रेज सरकारने एक ओर आदोलनकारियोका कठोर दमन प्रारम्भ किया, दूसरी ओर उसने मुसलमानोको हिन्दुओके विरुद्ध भडकाना शुरू किया, क्योकि पूर्वी बगालमे मुसलमानोका भारी बहुमत था। लार्ड कर्जनके ब्रिटेन वापस चले जानेके बाद १९१२ ई०मे बग-भग रद्द कर दिया गया और पूर्वी बगालको पश्चिमी बगालमे पुन मिला कर पूर्ववत् एक प्रान्त बना दिया गया।

१९४७ ई०मे भारतको स्वाधीनता प्रदान किये जानेपर जब देशका बँटवारा हुआ, तब पूर्वी बगालको पुन पश्चिमी बगालसे अलग करके पाकिस्तानका अग बना दिया गया, और उसे 'पूर्वी पाकिस्तान' कहा जाने लगा। दिसम्बर १९७१ ई०मे 'पूर्वी पाकिस्तान' पाकिस्तानसे अलग होकर सार्वभौम प्रभुता-सम्पन्न स्वतत्र देश बन गया और उसका नाम बदलकर 'बागला देश' रख दिया गया।

बासवाडा—राजपूताना और गुजरातकी सीमापर स्थित एक राजपूत रियासत, जहाँ उदयपुरके राणाओकी एक शाखाका राज्य था। इसने ईस्ट इडिया कम्पनीकी अधीनता स्वीकार कर ली और १८१८ ई०मे आश्रित सधि द्वारा ब्रिटिश सरक्षण प्राप्त कर लिया।

बाघ—मध्य भारतमे ग्वालियरके निकट स्थित यह स्थान शैलगृहोमे उत्कीर्ण भित्ति-चित्रोके लिए प्रसिद्ध है। ये भित्ति-चित्र अजता शैलीके है, परन्तु स्थानकी दुर्गमताके कारण उतने प्रसिद्ध नही है।

बाजबहादुर—मालवाका शासक, जो अकबरके सेनापति अदहम खाँ और पीरमुहम्मदसे १५६१–६२ ई०मे पराजित हो गया। बाजबहादुरने शीघ्र ही मालवा पुन प्राप्त कर लिया और मुगलोके साथ कुछ समय तक लडाई जारी रखी, किन्तु अन्तमे पुन पराजित हुआ और मालवासे भगा दिया गया। उसे कुछ समयके लिए मेवाडके राणाके यहाँ शरण मिली। किन्तु फरवरी १५६८ ई०मे चितौडके पतनके पश्चात् उसने बादशाह अकबरको आत्म-समर्पण कर दिया। रूपमतीके साथ जुडे हुए उसके प्रेम सम्बन्धने कहानीका रूप ले लिया

है। वह सुरुचि-पूर्ण व्यक्ति था और उसने मालवाकी राजधानी माडूमे कुछ अच्छी इमारते बनवायी। बादमे बादशाह अकबरकी सेवामे गायकके रूपमे उसने बडी ख्याति अर्जित की।

बाजीराव प्रथम–मराठा राज्यका दूसरा पेशवा (१७२०–४० ई०), जिसकी नियुक्ति उसके पिता बालाजी विश्वनाथके उत्तराधिकारीके रूपमे राजा साहू (दे०) ने की थी। साहूने राजकाजसे अपनेको करीब-करीब अलग कर लिया था और मराठा राज्यके प्रशासनका पूरा काम पेशवा बाजीराव प्रथम देखता था। वह महान् राजनयक और योग्य सेनापति था। उसने अपनी दूर-दृष्टिसे देख लिया था कि मुगल साम्राज्य छिन्न भिन्न होने जा रहा है और उसने महाराष्ट्र क्षेत्रसे बाहरके हिन्दू राजाओंकी सहायतासे मुगल साम्राज्यके स्थानपर हिन्दू-पद-पादशाही स्थापित करनेकी योजना बनायी थी। इसी उद्देश्यसे उसने मराठा सेनाओंको उत्तर भारत भेजा जिससे पतनोन्मुख मुगल साम्राज्यकी जडपर अंतिम प्रहार किया जा सके। उसने १७२३ ई०मे मालवापर आक्रमण किया और १७२४ ई०मे स्थानीय हिन्दुओंकी सहायतासे गुजरात जीत लिया।

लेकिन मराठा सरदारोंका एक वर्ग उत्तर भारतमे मराठा शक्तिके प्रसारकी इस नीतिका विरोधी था, जिसका नेतृत्व सेनापति त्र्यम्बक राव दाभाडे कर रहा था। बाजीरावने धभोईके युद्धमे दाभाडेको पराजित कर उसका वध कर दिया। १७३१ ई०मे निजामके साथ की गयी एक सन्धिके द्वारा पेशवाको उत्तर भारतमे अपनी शक्तिका प्रसार करनेकी छूट मिल गयी और दक्षिण भारतमे निजामको इसी प्रकारकी छूट मिल गयी। बाजीराव प्रथमका अब महाराष्ट्रमे कोई प्रतिद्वन्द्वी नही रह गया था और राजा साहूका उसके ऊपर केवल नाम मात्रका नियंत्रण था। इन परिस्थितियोमे बाजीराव प्रथमने पेशवा पदको पैतृक उत्तराधिकारीके रूपमे अपने परिवारके लिए सुरक्षित कर दिया और उत्तर भारतमे मराठा शक्तिके प्रसार की अपनी योजनाओंको फिरसे आगे बढाया। उसने आमेरके राजपूत राजा और बुन्देलोसे गठबंधन कर लिया। १७३७ ई०मे उसकी विजयी सेनाएँ दिल्लीके पास पहुँच गयी। मुगल बादशाह मुहम्मदशाह (१७१९–४८ ई०) ने घबडा कर हैदराबादके निजामको बुलाया जिसने मराठोमे की गयी १७३१ ई० वाली सधिका उल्लघन कर बाजीराव प्रथमका बढाव रोकनेके लिए अपनी सेना उत्तर भारतमे भेज दी। पेशवाने निजामकी सेनाको भोपालके निकट युद्धमे पराजित कर दिया और उसे फिर सन्धि करनेको मजबूर किया, जिसके द्वारा मराठोको केवल मालवाका क्षेत्र ही नही, वरन नर्मदा और चम्बलके बीचका क्षेत्र भी मिल गया। इस सन्धिकी पुष्टि मुगल-बादशाहने की और हिन्दुस्तानके बडे हिस्से पर मराठोंका आधिपत्य हो गया।

१७३९ ई०मे बाजीराव प्रथमने पुर्तगालियोसे साष्टी और बसईका इलाका छीन लिया। लेकिन बाजीराव प्रथमको अनेक मराठा सरदारोके विरोधका सामना करना पड रहा था, विशेषरूपसे उन सरदारोका जो क्षत्रिय थे और ब्राह्मण पेशवाकी शक्ति बढनेसे ईर्ष्या करते थे। बाजीराव प्रथमने पुश्तैनी मराठा सरदारोंकी शक्ति कम करनेके लिए अपने समर्थकोमेसे नये सरदार नियुक्त किये और उन्हे मराठो द्वारा विजित नये क्षेत्रोका शासक नियुक्त किया। इस प्रकार मराठा मडलकी स्थापना हुई जिसमे ग्वालियरके शिन्दे, बडोदाके गायकवाड, इन्दौरके होल्कर और नागपुरके भोसला शासक शामिल थे। इन सबके अधिकारमे काफी विस्तृत क्षेत्र था। इन लोगोने बाजीराव प्रथमका समर्थन कर मराठा शक्तिके प्रसारमे सहयोग दिया। लेकिन इनके द्वारा जिस सामन्तवादी व्यवस्थाका बीजारोपण हुआ, उसके फलस्वरूप अन्तमे मराठोंकी शक्ति छिन्न-भिन्न हो गयी। यदि बाजीराव प्रथम कुछ समय और जीवित रहता तो सम्भव था कि वह इसे रोकनेके लिए कुछ उपाय करता। लेकिन १७४० ई०मे उसकी ४२ वर्षकी आयुमे मृत्यु हो गयी, जिससे हिन्दू-पद-पादशाहीकी स्थापनाके लक्ष्यको गहरी क्षति पहुँची। (**डफ ग्राट–हिस्ट्री आफ मराठाज; एच० एन० सिन्हा–राइज आफ दि पेशवाज**)

बाजीराव द्वितीय–आठवाँ और अन्तिम पेशवा (१७९६–१८१८)। वह राघोबाका पुत्र था, उसने अंग्रेजोकी सहायतासे पेशवाका पद प्राप्त किया और उसके लिए कई मराठा क्षेत्र अंग्रेजोको दे दिये। बाजीराव द्वितीय स्वार्थी और अयोग्य शासक था तथा महत्त्वाकांक्षी होनेके कारण अपने प्रधान मंत्री नाना फडनवीससे ईर्ष्या करता था। नाना फडनवीसकी मृत्यु १८०० ई०मे हो गयी और बाजीराव सत्ता खुद सँभालनेके लिए आतुर हो उठा। लेकिन वह सैनिक गुणोसे रहित और व्यक्तिगत रूपसे कायर था और समझता था कि केवल छल कपटसे अपने लक्ष्यको प्राप्त किया जा सकता है। नाना फडनवीसकी मृत्युके बाद उसके रिक्त पदके लिए दौलतराव शिन्दे और जसवन्तराव होल्करमे प्रतिद्वन्द्विता शुरू हो

गयी। बाजीराव द्वितीय छल कपटसे इन दोनोको अपने नियंत्रणमे रखना चाहता था, जिससे मामला और उलझ गया। शिन्दे और होल्करने पेशवाको अपने नियंत्रणमे लेनेके लिए पूनाके फाटकोके बाहर युद्ध शुरू कर दिया। बाजीराव द्वितीयने शिन्देका साथ दिया लेकिन होल्करकी सेनाने उन दोनोकी संयुक्त सेनाओंको पराजित कर दिया।

भयभीत पेशवा बाजीराव द्वितीयने १८०१ ई०मे बसई भागकर अंग्रेजोकी शरण ली और वही एक अंग्रेजी जहाजपर बसईकी सन्धि (३१ दिसम्बर, १८०२) पर हस्ताक्षर कर दिये। इसके द्वारा उसने ईस्ट इंडिया कम्पनीका आश्रित होना स्वीकार कर लिया। अंग्रेजोने बाजीराव द्वितीयको राजधानी पूनामे पुन सत्तासीन करनेका वचन दिया और पेशवाकी रक्षाके लिए उसने राज्यमे पर्याप्त सेना रखनेकी जिम्मेदारी ली। इसके बदलेमे पेशवाने कम्पनीको इतना मराठी इलाका देना स्वीकार कर लिया जिससे कम्पनीकी सेनाका खर्च निकल आये। उसने यह भी वायदा किया कि वह अपने यहाँ अंग्रेजोसे शत्रुता रखनेवाले अन्य यूरोपीय देशके लोगोको नौकरी पर नही रखेगा। इस प्रकार बाजीराव द्वितीयने अपनी रक्षाके लिए अंग्रेजोके हाथ अपनी स्वतंत्रता बेच दी। मराठा सरदारोने बसईकी सन्धिके प्रति रोष प्रकट किया, क्योकि उन्हे लगा कि पेशवाने अपनी कायरताके कारण उन सभीकी स्वतंत्रता बेच दी है। अत उन लोगोने इस आपत्तिजनक सन्धिको खत्म करानेके लिए युद्धकी तैयारीकी। परिणाम-स्वरूप द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्ध (दे०) (१८०३–६ ई०) हुआ, जिसमे अंग्रेजोकी जीत हुई और मराठा क्षेत्रोपर उनकी प्रभु-सत्ता स्थापित हो गयी।

पेशवा बाजीराव द्वितीयने शीघ्र सिद्ध कर दिया कि वह केवल कायर ही नही, वरन् विश्वासघाती भी है। वह अंग्रेजोके साथ हुई सन्धिके प्रति भी सच्चा साबित नही हुआ। सन्धिके द्वारा लगाये गये प्रतिबन्ध उसे रुचिकर नही थे। उसने मराठा सरदारोमे व्याप्त रोष और असन्तोषसे फायदा उठाकर अंग्रेजोके विरुद्ध दुबारा मराठोको संगठित किया। नवम्बर १८१७मे बाजीराव द्वितीयके नेतृत्वमे संगठित मराठा सेनाने पूनाकी अंग्रेजी रेजीडेन्सीको लूट कर जला दिया और खडकी स्थित अंग्रेजी सेनापर हमला कर दिया, लेकिन वह पराजित हो गया। तदनन्तर वह दो और लडाइयो—जनवरी १८१८ मे कोरे गाँव और एक महीने बाद आष्टीकी लडाई—मे पराजित हुआ। उसने भागनेकी कोशिश की, लेकिन ३ जून १८१८ ई०को उसे अंग्रेजोके सामने आत्म-समर्पण करना पडा। अंग्रेजोने इसबार पेशवाका पद ही समाप्त कर दिया और बाजीराव द्वितीयको अपदस्थ करके बंदीके रूपमे कानपुरके निकट बिठूर भेज दिया, जहाँ १८५३ ई०मे उसकी मृत्यु हो गयी। मराठोकी स्वतंत्रता नष्ट करनेके लिए वह सबसे अधिक जिम्मेदार था।

बाण—थानेश्वर और कन्नौजके पुष्यभूति-वंशज राजा हर्षवर्धन (६०६–४७ ई०)का दरबारी कवि। उसकी रचना 'हर्ष-चरित'मे जो लगभग ६२० ई०मे लिखी गयी, हर्षके शासन-कालके आरंभिक वर्षोका विवरण मिलता है। उसकी दूसरी रचना 'कादम्बरी' संस्कृत गद्य साहित्यका प्रसिद्ध गौरवपूर्ण ग्रंथ है।

बादरायण—ब्राह्मण ग्रन्थोके बाद सूत्र कालके प्रसिद्ध मनीषी और लेखक। उन्हीके 'ब्रह्मसूत्र'के आधारपर शंकराचार्यने अद्वैतवादी (एकेश्वरवाद) वेदान्त दर्शनकी स्थापना की।

बादल—मेवाडका वीर राजपूत योद्धा, जिसका नाम दूसरे वीर योद्धा गोराके साथ जुड गया है। बादल और गोराने थोडेसे राजपूत सैनिकोके साथ सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीकी बहुत बडी सेनाका बहादुरीसे मुकाबला किया, जिसने चित्तौडपर आक्रमण किया था। अन्तमे बादलने युद्ध क्षेत्रमे वीरगति पायी और सुल्तानकी सेना चित्तौड पर चढ गयी। चित्तौड किलेमे राजपूत महिलाएँ रानी पद्मनीके साथ जल कर सती हो गयी, मुसलमान सैनिक उनका स्पर्श न कर सके। पद्मिनीके सुन्दरतासे आकृष्ट होकर ही अलाउद्दीनने चित्तौडपर आक्रमण किया था।

बादशाहनामा—इस ऐतिहासिक ग्रंथमे औरंगजेबके राज्यका अधिकृत विवरण मिलता है, जिसे अब्दुल हमीदने लिखा था।

बादामी—बीजापुर जिलेके वातापी नामक प्राचीन नगरका आधुनिक नाम। यह चालुक्य राजाओकी राजधानी था। यहाँ अनेक गुप्त मन्दिर तथा पाषाण मन्दिर है, जो अपनी वास्तुशैली तथा भव्य मूर्तियोके लिए प्रसिद्ध है।

बापा—चित्तौडके प्रसिद्ध गुहिलौत राजवंशका प्रवर्तक। इसी वंशमे राणा संग्राम सिंह तथा राणाप्रताप सिंह सहित मेवाडके अनेक प्रसिद्ध शूर वीर शासक हुए है।

बाबर—दिल्लीका प्रथम मुगल बादशाह (१५२६–३० ई०)। उसका पितृकुल तैमूर जो तैमूरलंगके नामसे प्रसिद्ध है, और मातृकुल चंगेज खाँसे सम्बन्धित था। बाबरका जन्म १४८३ ई० मे हुआ। ११ वर्षकी उम्रमे ही वह फरगना मे अपने पिताकी छोटी-सी जागीरका मालिक बना। फरगना अब चीनी तुर्किस्तानमे है। आरम्भमे बाबरको

अनेक कष्ट झेलने पडे, लेकिन वह महत्त्वाकांक्षी और साहसी था। यद्यपि वह फरगनासे शीघ्र ही निकाल दिया गया, लेकिन १५०४ ई० मे कावुलपर अधिकार जमानेमे सफल हो गया। उस समय उसकी उम्र केवल २१ वर्षकी थी। इसके वाद वावरने समरकद जीतनेका निष्फल प्रयास किया, जो उसके पूर्वज तैमूरकी राजधानी रह चुका था। इसके वाद उसने वहाँसे दक्षिण पूर्वकी ओर भारतमे अपना भाग्य आजमानेका निश्चय किया। उस समय भारतकी राजनीतिक स्थिति उसके मसूवोको पूरा करनेकी दृष्टिसे अनुकूल थी। दिल्लीकी सल्तनत विघटनकी ओर थी, दक्षिण भारत दिल्लीसे स्वतन्त्र हो चुका था। उत्तरमे कश्मीर, मालवा, गुजरात और वगाल व्यावहारिक रूपसे विभिन्न अफगान सुल्तानोंके अधीन स्वतन्त्र राज्य वन गये थे। राजपूतानेके क्षत्रिय शासक भी स्वतन्त्र हो गये थे और मेवाड का राणा सग्राम सिंह उत्तर भारतमे फिरसे हिन्दू राज्य स्थापित करनेका स्वप्न देख रहा था। पजाव दौलत खाँ नामके विद्रोही अमीरके आधिपत्यमे था और इब्राहीम लोदी (१५१५–२६ ई०) के तख्तके लिए स्वय उसका चाचा आलमखाँ दावेदार था। इस प्रकार वावरके आक्रमणके समय भारतमे कोई शक्तिशाली केन्द्रीय सत्ता नही रह गयी थी। उस समय अनेक छोटे छोटे राज्य वर्तमान थे जो आपसमे लडते रहते थे और उनकी इस आतरिक फूटसे वावरको वहुत मदद मिली।

दौलत खाँ और आलम खाँने तो इस उम्मीदमे वावर-को भारतपर आक्रमण करनेका न्योता दिया कि वह तैमूरकी भाँति दिल्लीकी सल्तनतको धाराशायी कर वापस चला जायगा और दिल्लीके तख्तपर इनमेसे कोई अपना अधिकार जमा लेगा। इस पृष्ठभूमिमे वावर १५२४ ई० मे पजावमे दाखिल हुआ और लाहौरपर अधिकार कर लिया। इसके वाद उसने भारतमे रुकनेका इरादा जाहिर किया। इससे दौलत खाँ और आलम खाकी आशाओपर पानी फिर गया और उन्होने उसका साथ छोड दिया। इस प्रकार अकेला पड जानेपर वावरको कावुल लौटना पडा, लेकिन अगले वर्ष वह वहुत वडी सेना लेकर फिर भारत आ धमका। उसने दौलत खाँका दमन किया और २१ अप्रैल १५२६ ई० को पानीपतकी पहली लडाईमे सुल्तान इब्राहीम लोदीको परास्त कर उसे मार डाला। इस विजयके वाद वावर दिल्ली और आगराका शासक वन गया। उसके अधिकारको भारतके विभिन्न भागोके अफगान सरदार अथवा मेवाडके राणा-सग्राम सिंह माननेको तैयार नही थे। लेकिन राजपूतो और अफगानोने एकसाथ इसका प्रतिरोध नही किया और वावरको उनसे अलग अलग निपटनेका मौका मिल गया।

वावरने राणाको १६ मार्च १५२७ ई० को खानवाके युद्धमे परास्त किया। इसके वाद उसने यमुना नदी पार कर चन्देरीके किलेको सर कर लिया। इस प्रकार उसने राजपूतोंके प्रतिरोधको प्रभावशाली ढगसे कुचल दिया। दो वर्ष वाद वावरने वगाल और विहारके अफगान सर-दारोको (६ मई १५२९ ई० को) घाघराके युद्धमे पराजित कर दिया। यह लडाई पटनाके निकट घाघरा और गगाके सगमके पास हुई थी। इन तीन लडाइयोको जीतनेके वाद वावर अफगानिस्तानसे वगालकी सीमा तक और हिमालयसे ग्वालियर तकके क्षेत्रका शासक हो गया। इस प्रकार वावरने भारतमे मुगल साम्राज्यकी स्थापना की। लेकिन शीघ्र ही २६ दिसम्वर १५३० ई० को वावरकी मृत्यु हो गयी और उसे इतना समय नही मिला कि वह अपने साम्राज्यकी शासन-व्यवस्थाको सुधार कर उसे मजवूत वना सकता, जैसा कि वादमे उसके पौत्र अकवर (१५५६–१६०५ ई०) ने किया।

वावर केवल कुशल योद्धा ही नही था जिसने दिल्ली पर अधिकार कर अपना साम्राज्य स्थापित किया, वरन् वह साहित्य प्रेमी भी था, जैसा कि उसके सस्मरणोसे सिद्ध होता है जो उसने तुर्की भाषामे लिखे और जिनका वादमे अकवरके आदेशसे फारसीमे अनुवाद कराया गया। (लेन और मूल कृत 'वावर')

वाम्बे-वर्मा ट्रेडिंग कार्पोरेशन—एक अग्रेजी व्यापारी कम्पनी, जो उत्तरी आसाममे लट्ठोका रोजगार करती थी। १८८४ ई० मे वर्माकी सरकारने, जो उस समय राजा थिवा द्वारा शासित थी, कम्पनीके ऊपर विभिन्न अभि-योगोमे २,३०,००० पौडका जुर्माना कर दिया। वर्मा और भारतकी ब्रिटिश सरकारके सम्बन्ध पहलेसे ही तनावपूर्ण थे। भारत सरकारकी इस माँगको कि इस मामलेको वाइसरायकी मध्यस्थताके लिए सौप दिया जाना चाहिए, वर्मा सरकार द्वारा ठुकरा देना तृतीय वर्मी युद्ध (१८८५–८६ ई०) का प्रत्यक्ष कारण वन गया जिसके फलस्वरूप उत्तरी वर्मा अग्रेजोके कब्जेमे आ गया था।

बायजीद—वगालके शासक सुलेमान करनानी (१५६९–७२ ई०) का पुत्र जो अपने पिताका उत्तराधिकारी वना। किन्तु शीघ्र ही वगालपर मुगल वादशाह अकवर-

का कब्जा हो गया और वह उडीसा भाग गया, जहाँ उसकी मृत्यु हो गयी।

वायजीद शाह–बंगाल (१४१२–१४ ई०) का नाममात्रका शासक, जिसे कदाचित् राजा गणेशने अपदस्थ कर दिया था।

वारकर, सर रावर्ट–वारेन हेस्टिंग्सके शासनकालमें ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें था और बादमें तरक्की कर प्रधान सेनापति बन गया। उसकी उपस्थितिमें १७ जून १७७२ ई०को अवधके नवाब शुजाउद्दौला और रुहेलोंके नेता हफीज रहमत खांके बीच सन्धिपर हस्ताक्षर हुए थे। इस सन्धिमें यह उल्लिखित था कि यदि मराठे रुहेलखंड पर आक्रमण करते हैं तो अवधका नवाब मराठोंको निष्कासित करनेमें रुहेलोंकी सहायता करेगा और बदलेमें रुहेले उसे चालीस लाख रुपया देंगे। रावर्ट वारकर सन्धिपर हस्ताक्षर होनेका केवल साक्षी था, उसने कम्पनी अथवा वारेन हेस्टिंग्सकी तरफसे सन्धिके क्रियान्वयनके सम्बन्धमें कोई आश्वासन नहीं दिया था। बादमें सन्धिका उल्लंघन होनेपर अंग्रेजोंको उसे लागू करनेके लिए रुहेलखंडमें अपनी सेना भेजनी पड़ी।

वारटोली, एफ०–एक (जेसुयिट) पादरी और लेखक, जो अकबर बादशाह (१५५६–१६०५ ई०)के शासनकालमें भारत आया और उसने यहाँ जो कुछ देखा, उसका वृतान्त लिख छोड़ा। दीन-इलाही धर्मके सम्बन्धमें जिसका प्रवर्तन अकबरने किया था, उसके विचार बड़े ही रोचक हैं। उसके अनुसार इस नये धर्ममें मुहम्मद साहबकी कुरान ब्राह्मणोंके धर्म ग्रंथों और कुछ हदतक बाइबिल्की उन बातोंको ग्रहण किया गया था, जिनसे बादशाहके धार्मिक एकीकरण संबंधी उद्देश्यकी पूर्ति होती थी।

वारथेमा, एल० डि०–एक विदेशी यात्री जो १५०३ और १५०८ ई०के बीच भारत आया तथा गुजरातसे बंगाल तक भ्रमण करता रहा। उसने बंगालमें निर्मित वस्तुओंकी उत्कृष्टताकी बहुत प्रशंसा की है। उसके विचारमें बंगाल कपास, चीनी, अनाज तथा हर प्रकारके गोश्तके लिए संसारका सबसे सम्पन्न देश था।

वारनेट, कमाडोर कुर्टिस–१७४० ई०में आस्ट्रियाई उत्तराधिकारका युद्ध छिड़नेके समय ईस्ट इंडिया कम्पनीके जहाजी बेड़ेका कमांडर। उसने हिन्द महासागर स्थित फ्रांसीसी जहाजों पर कब्जा कर लिया। लेकिन लाबारदोनेके नेतृत्वमें फ्रांसीसी बेड़ेके मद्रास पहुँचने पर वारनेटने उसका मुकाबला नहीं किया और वह हुगलीकी तरफ रवाना हो गया। वारनेटकी इस निष्क्रियताके फलस्वरूप फ्रांसीसियोंको मद्रास पर घेरा डालकर कब्जा करनेका मौका मिल गया।

वारबक शाह–बंगालके स्वतंत्र सुल्तान नसीरउद्दीन महमूदका पुत्र (१४४२–६०)। उसका मूल नाम रुकनुद्दीन था, जिसने बंगाल पर १४६० से ७४ ई० तक १४ वर्ष शासन किया। उसकी राजसत्ताके आधार-स्तम्भ हब्शी (अबीसीनियाई) गुलाम थे, जिनमेंसे कुछको उसने ऊँचे ओहदों पर नियुक्त कर रखा था। वह बुद्धिमान् शासक था और प्रशासनका संचालन शरीयत (इस्लामी कानून)के अनुसार करता था।

वारबक शाह–मूल रूपसे बंगालके नवाब जलालउद्दीन फतहशाह (१४८१–८६)का एक हब्शी (अबीसीनियाई) गुलाम। उसने जलालउद्दीनके विरुद्ध बगावत की और असन्तुष्ट अबीसीनियाई गुलामोंका सरगना बनकर अपने मालिकको मार डाला और स्वयं १४८६ ई०में वारबक शाह और सुल्तान शाहजादाके नामसे गद्दीपर बैठा। लेकिन इन्दिल खाँ नामक दूसरे अबीसीनियाई गुलामने शीघ्र ही उसकी हत्या कर गद्दीपर खुद कब्जा कर लिया।

वारबक शाह–सुल्तान बहलोल लोदी (दे०)का बड़ा पुत्र। १४८६ ई०में सुल्तानने उसे जौनपुरमें राज प्रतिनिधि नियुक्त किया। १४८९ ई०में पिताकी मृत्यु हो जानेपर छोटे भाई सिकन्दर लोदीने उसकी उपेक्षा कर दिल्लीके तख्तपर अधिकार कर लिया। सिकन्दर लोदीने तीन वर्ष बाद उसे जौनपुरसे भी निकाल दिया जहाँ वह स्वतन्त्र हो कर शासन करनेका प्रयास कर रहा था।

वारवेल रिचर्ड–बंगालमें १७५८ ई०से ईस्ट इंडिया कंपनीकी सेवामें नियुक्त। १७७३ ई०में रेग्युलेटिंग ऐक्टके अनुसार वह गवर्नर-जनरलकी कौंसिलका सदस्य नियुक्त हुआ। वह कौंसिलके अन्य सदस्योंके विरुद्ध वारेन हेस्टिंग्सका समर्थक था। हेस्टिंग्स जबतक गवर्नर-जनरल रहा, वह बराबर उसके प्रशासनका समर्थक बना रहा।

वार्लो, सर जार्ज–ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवाके लिए भारत आया। लार्ड वेलेजली (१७९५–१८०५ ई०)के प्रशासनकालमें पदोन्नति कर वह कौंसिलका सदस्य बन गया। अक्तूबर १८०५ ई०में लार्ड कार्नवालिसकी मृत्युके समय उसे कौंसिलका वरिष्ठ सदस्य होनेके नाते कार्यकारी गवर्नर-जनरल नियुक्त कर दिया गया। उस पदपर वह १८०७ ई० तक रहा। वह अपने पूर्वाधिकारी लार्ड कार्नवालिस द्वारा अपनायी गयी अहस्तक्षेपकी नीतिका

अनुगामी बना रहा। इसके परिणामस्वरूप उसने राजपूत राजाओंको मराठोंकी दयापर छोड दिया, जिन्होने राजपूतानापर आक्रमण कर मनमानी लूट-खसोट की। इससे कम्पनी सरकारकी प्रतिष्ठा बहुत गिर गयी। उसके प्रशासन-कालमे वेल्लोरमे सिपाहियोने विद्रोह कर दिया जिसे सख्तीके साथ दबा दिया गया। उसकी अहस्तक्षेपकी नीतिसे खर्चमे कमी हुई और वार्षिक बचत होने लगी। इससे कम्पनीके डाइरेक्टर तो खुश हुए, किन्तु उसकी दुर्बल नीतियोसे भारत तथा इग्लैंडके अग्रेज इतने नाराज हुए कि गवर्नर-जनरलके पदपर उसकी नियुक्तिकी पुष्टि नही की गयी और लार्ड मिण्टो प्रथमको उसके स्थान पर भेज दिया गया।

बालपुत्रदेव–सुवर्णद्वीपके शैलेन्द्र वशका एक राजा, जिसने नालन्दामे एक विहार बनवाया और मगध तथा बगालके राजा देवपाल (८३९–७८ ई०)के पास राजदूत भेज कर प्रार्थना की कि नालन्दा स्थित विहारके खर्चके लिए पाँच गाँव प्रदान कर दिये जायँ।

बाल श्री रानी–सातवाहन नरेश गौतमीपुत्र (१०२ ई०) की माता। रानी बालश्रीने नासिकमे एक शिलालेख उत्कीर्ण कराया था, जिसपर उसके आत्मज गौतमीपुत्रकी विजयोका उल्लेख है।

बालाजी बाजीराव–तृतीय पेशवा (१७४०–६१ ई०)। अपने पिता बाजीराव प्रथमके उत्तराधिकारीके रूपमे १७४० ई०मे पेशवा बना। उसके पदारूढ होनेके समय मुगल साम्राज्यके स्थानपर हिन्दू राज्यकी स्थापनाके लिए स्थिति बहुत अनुकूल थी। भारतपर बाहरी आक्रमण हो रहे थे और १७३९ ई०मे नादिरशाह द्वारा दिल्ली निर्दयतापूर्वक उजाडी जा चुकी थी। मुगल साम्राज्यकी साख इतनी ज्यादा इससे पहले कभी नही गिरी थी। उपरात अहमदशाह अब्दालीके बारबारके हमलोसे वह और भी कमजोर हो गया। अहमदशाह अब्दालीने पजाबपर कब्जा कर लिया, दिल्लीको लूटा और अपने प्रतिनिधिके रूपमे नाजीबुद्दौलाको रख दिया, जो मुगल बादशाहके ऊपर व्यावहारिक रूपमे हुकमत करने लगा। इस प्रकार यह प्रकट था कि भारतके हिन्दुओमे यदि एकता स्थापित हो सके तो वे मुगल-साम्राज्यको समाप्त करनेमे समर्थ हो सकते हैं। इसपर भी पेशवा बालाजी बाजीराव अवसर से लाभ नही उठा सका। वह मराठा शक्तिकी प्रधानताके विचारसे इतना अभिभूत था कि मुगल साम्राज्यके स्थान पर हिन्दू पद-पादशाही स्थापित करनेकी अपने पिताकी योजना त्याग कर उसके स्थान पर मराठा साम्राज्य स्थापित करनेका स्वप्न देखने लगा। इस प्रकार मराठा साम्राज्यवाद हिन्दू राष्ट्रवादका पर्याय नही रह गया। बालाजी बाजीरावने भारतके अन्दरूनी और बाहरी मुसलमानोके विरुद्ध समग्र हिन्दू साधनोको सगठित करनेकी बात कभी सोची ही नही। उसकी सकुचित योजनाके अनुरूप मराठा साम्राज्यवादकी स्थापनाके लिए मराठोकी सख्या चूँकि बहुत कम थी, इसलिए उसे गैर-मराठा भाडेके सैनिकोको भर्ती कर अपनी सेनाको शक्तिशाली बनानेकी नीति अपनानी पडी। फलत उसकी सेना अपनी सरचनामे 'राष्ट्रीय' नही रह गयी और लूट-खसोटके अलावा वह किसी उच्चतर प्रेरणासे प्रेरित नही हो सकी।

बालाजी बाजीरावने हलके हथियारोसे सुसज्जित फुर्तीली पैदल सेनाका प्रयोग करनेकी पुरानी मराठा रणनीतिमे भी परिवर्तन कर दिया। वह पहलेकी अपेक्षा अधिक वजनदार हथियारोसे लैस घुडसवारो और भारी तोपखानेको अधिक महत्त्व देने लगा। पेशवा स्वय अपने सरदारोको पडोसके राजपूत राजाओके इलाकोमे लूट-खसोट करनेके लिए प्रोत्साहित करता रहता था, इस प्रकार वह अपने पुराने मित्रोकी सहायतासे वचित हो गया, जो उसके पिता बाजीराव प्रथमके लिए बडे उपयोगी सिद्ध हुए थे। उसने एक ही साथ दो मोर्चोपर–दक्षिणमे निजामके विरुद्ध और उत्तरमे अहमदशाह अब्दालीके विरुद्ध लडनेकी भी गलती की। आरम्भमे तो उसे कुछ सफलता मिली, उसने निजामको १७५० ई० मे उदगिरकी लडाईमे हरा दिया और बीजापुरका पूरा प्रदेश तथा औरगाबाद और बीदरके बडे भागोको निजामसे छीन लिया। मराठा शक्तिका सुदूर दक्षिणमे भी प्रसार हुआ। उन्होने मैसूरके हिन्दू राजाको हरा कर बेदनूरपर आक्रमण कर दिया। किन्तु उनके बढावको मैसूर राज्यके मुसलमान सेनापति हैदरअलीने रोक दिया, जिसने बादमे वहाँके हिन्दू राजाको भी अपदस्थ कर दिया।

उत्तरमे बालाजी बाजीरावको पहले तो अच्छी सफलता मिली, उसकी सेनाने राजपूतोकी रियासतोको मनमाने ढगसे लूटा, दोआबको रौद कर उसपर कब्जा कर लिया, मुगल बादशाहसे गठबधन करके दिल्लीपर दबदबा जमा लिया, अब्दालीके नायब नाजीबुद्दौला को खदेड दिया और पजाबसे अब्दालीके पुत्र तैमूरको निष्कासित कर दिया। इस प्रकार मराठोका दबदबा अटक तक फैल गया। किन्तु मराठोकी यह सफलता अल्पकालिक

सिद्ध हुई। अब्दालीने १७५६ ई० मे पुन भारतपर आक्रमण किया और मराठोको जनवरी १७६० ई० मे बरारीघाटकी लडाईमे हराया और पजावको पुन प्राप्त कर दिल्लीकी तरफ बढा।

इस बीच मराठोकी लूटमारसे न केवल रुहेले और अवधके नवाब वरन् राजपूत, जाट और सिख भी विरोधी बन गये थे। रुहेले और अवधके नवाब तो अब्दालीसे जा मिले, राजपूत, जाट और सिखोने तटस्थ रहना पसन्द किया। फलत. अब्दालीकी फौजका दिल्ली-की तरफ बढाव शाहआलम द्वितीयके लिए उतना ही बडा खतरा था जितना मराठोके लिए, अतः दोनोने आपसमे सधि कर ली। पेशवा बालाजी बाजीरावने सदाशिवराव भाऊके सेनापतित्वमे एक बडी सेना अब्दाली-को रोकनेके लिए भेजी। पेशवाओने अभी तक उत्तर भारतमे जितनी सेनाएँ भेजी थी, उनमे यह सबसे विशाल थी। मराठोने दिल्लीपर कब्जा तो कर लिया, पर वह उनके लिए मरुभूमि साबित हुई, क्योकि वहाँ इतनी बडी सेनाके लिए रसद उपलब्ध नही थी। अत: वे पानीपतकी तरफ बढ गये। १४ जनवरी १७६१ ई० को अब्दालीके साथ पानीपतका तीसरा भाग्यनिर्णायक युद्ध हुआ। मराठोकी बुरी तरहसे हार हुई। पेशवाका युवा पुत्र विश्वासराव, जो नाममात्रका सेनापति था, भाऊ, जो वास्तवमे सेनाकी कमान सम्भाल रहा था तथा अनेक मराठा सेनानी मैदानमे खेत रहे। उनकी घुडसवार और पैदल सेनाके हजारो जवान मारे गये। वास्तवमे पानीपतका तीसरा युद्ध समूचे राष्ट्रके लिए भयकर वज्रपात सिद्ध हुआ। पेशवा बालाजी बाजीराव की, जो भोगविलासके कारण पहले ही असाध्य रोगसे ग्रस्त हो गया था, २३ जून, १७६१ ई० को मृत्यु हो गयी। (जी० डफ–हिस्ट्री आफ मराठाज; जे० एन० सरकार–फाल आफ दि मुगल एम्पायर)

बालाजी विश्वनाथ–प्रथम पेशवा, (१७१३–२० ई०), जिसका जन्म एक निर्धन परिवारमे हुआ था। उसने अपना जीवन राजा साहूके सेनापतिके अधीन एक कार-कुनके रूपमे आरम्भ किया। अपनी प्रशासकीय और सैनिक सगठन-क्षमतासे वह राजा साहूकी नजरोमे चढ गया और उसने १७१३ ई० मे उसे पेशवा नियुक्त कर दिया। वैधानिक रूपसे पेशवा राजाके आठ मन्त्रियोमेसे एक होता था और उसका दर्जा निश्चय ही पत प्रतिनिधि (दे०) के नीचे था, किन्तु अपनी योग्यतासे बालाजी विश्वनाथने शीघ्र ही पेशवाको मराठा प्रशासनका वास्तविक प्रधान बना दिया। उसने मराठा राज्यकी शक्ति और प्रतिष्ठामे भारी वृद्धि की। १७१४ ई० मे उसने मुगल बादशाहसे एक सधि की, जिसके अन्तर्गत दस लाख रुपये वार्षिक खिराज देनेके बदले उसे शाही सेवाके निमित्त १५,००० घुडसवार सेना तथा दक्षिण-मे शांति व्यवस्था कायम रखनेका अधिकार प्राप्त हो गया।

इस नीतिसे पेशवाने मराठोके लिए न केवल उन इलाकोको पुन प्राप्त कर लिया, जो कभी शिवाजी (दे०) के अधिकारमे थे और बादमे मुगलो द्वारा छीन लिये गये थे, वरन् मराठी-भाषी जिले—खानदेश, गोडवाना, बरार तथा हैदराबाद व कर्नाटक के कुछ हिस्से भी प्राप्त कर लिये। साथ ही उसने मराठा सरकारके लिए मुगल साम्राज्यके दक्खिनके छहसूबामे चौथ और सरदेश-मुखी एकत्र करनेका अधिकार भी प्राप्त कर लिया। बाद-मे दिल्लीकी सरकारके अनुरोधपर पेशवाने एक बडी मराठा सेना मुगल राजधानीमे सैयद बन्धुओकी सत्ता बनाये रखनेके लिए भेजी, जो दिल्लीकी बादशाहतके भाग्यविधाता बन गये थे। इस प्रकार बालाजी विश्व-नाथने मुगल बादशाहकी प्रभुताको नाममात्रके लिए मान्यता देकर न केवल मराठोके राज्य क्षेत्रका विस्तार किया तथा उन्हे दक्षिणके समस्त मुगलाई इलाकोमे चौथ व सरदेशमुखीकी वसूलीका अधिकार दिलाया, वरन् मुगल सल्तनतकी राजस्व-वसूलीमे सहभागी बनाकर उन्हे, उसकी राजनीतिक सत्तामे भी भागीदार बना दिया। इसपर कृतज्ञ राजा साहूने बालाजी विश्वनाथकी १७२० ई० मे मृत्यु होनेपर उसके पुत्र बाजीराव प्रथम को उसका पेशवाका पद प्रदान कर दिया। (जी० डफ०–हिस्ट्री आफ मराठाज तथा जे० एन० सरकार–फाल आफ दि मुगल एम्पायर)

बालादित्य प्रथम–देखिये, नरसिंह गुप्त।

बालादित्य द्वितीय–गुप्त राजा भानु गुप्तका उपनाम था।

बाली–मलाया द्वीप-समूहके अन्तर्गत एक द्वीप। यह दक्षिण पूर्वी एशियाके उन स्थानोमे एक है, जहाँ ईसवी सन्के आरम्भकी शताब्दियोमे हिन्दुओने अपने उपनिवेश बनाये और भारतीय सभ्यता, सस्कृति और धर्मका प्रसार किया। बाली द्वीपमे अब भी हिन्दू धर्मका प्रचार है।

बाल्डविन, स्टेनली (१८६७–१९४७)–इग्लैण्डका १९२३-२९ ई०मे और पुन १९३५–३७ ई०मे प्रधान मत्री। उसने १९१९ ई०के भारतीय शासन विधानकी कार्य-प्रणालीकी जाँचके लिए १९२८ ई०मे सात सदस्यीय

'साइमन कमीशन' नियुक्त किया। कमीशनके सभी सदस्य अंग्रेज थे। भारतके मामलोंकी जाँचके कार्यसे सभी भारतीयोको अलग रखनेकी नीतिमे भारतमे उस समय बडा असन्तोष और आक्रोश पैदा हो गया था।

विट्टिग अथवा विट्टिदेव–देखिये 'विष्णुवर्धन'।

विट्ठल नाथ–प्रसिद्ध वैष्णव सन्त वल्लभाचार्य (जन्म १४४९ ई०)के सुयोग्य पुत्र जो अपने पिताके गोलोक वासके बाद उनकी गद्दीपर बैठे। उन्होने हिन्दीमे 'चौरासी वैष्णवनकी वार्ता' नामसे प्रसिद्ध ग्रथकी रचना की।

विठूर–उत्तर प्रदेशमे कानपुरके निकटवर्ती एक छोटा कस्बा। १८१८ ई०मे अग्रेजोमे पराजित हो जानेके पश्चात् अतिम पेशवा बाजीराव द्वितीयने आठ लाख रुपयेकी वार्षिक पेशनके सहारेपर यहाँ एकान्तवास किया। १८५३ ई०मे उसकी मृत्यु हो जानेके बाद विठूर पेशवाके पुत्र नाना साहबका वासस्थल बना रहा। १८५७ ई०मे सिपाही-विद्रोह आरम्भ हो जानेपर उन्होने अपनेको 'पेशवा' घोषित कर दिया और अग्रेजोसे पराजित होने तथा पलायन करनेके लिए विवश होनेमे पूर्व तक यहाँ अपना दरबार लगाते रहे।

वितिक्ची–मुगल प्रशासन कालमे यह सूबेके हिसाब-किताबका प्रभारी अधिकारी होता था।

विन्दुसार (३०० ई०पू०–२७३ ई०पू०)–मौर्य राजवशके प्रवर्तक चन्द्रगुप्त मौर्यका पुत्र और उत्तराधिकारी। उसकी गतिविधियोके बारेमे बहुत कम जानकारी है। इस तथ्य से कि उसने 'अमित्रघात'की पदवी ग्रहण की थी, अनुमान होता है कि उसने अपने अनेक शत्रुओका घात किया था और उसके शासन-कालमे सभवत कलिंगको छोडकर दक्षिण भारत मौर्य साम्राज्यमे सम्मिलित कर लिया गया था। उसने अपने साम्राज्यके पश्चिममे स्थित यवन (यूनानी) राज्योसे मैत्री-सम्बन्ध कायम रखे। उसके दरबारमे डायमेकस नामक यूनानी राजदूत रहता था। उसका उत्तराधिकारी उसका प्रसिद्ध पुत्र अशोक था।

विम्बसार–मगधका राजा, जिसके शासन-कालमे मगध राज्यका उत्कर्ष आरम्भ हुआ। उसने अग (पूर्वी विहार) को अपने राज्यमे मिला लिया, कोशल तथा वैशालीसे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये और आधुनिक पटना जिलेमे स्थित राजगृहको अपनी नयी राजधानी बनाया। उसके शासनकालमे मगध एक समृद्ध राज्य बन गया। जैनोके अतिम तीर्थङ्कर वर्धमान महावीर तथा बौद्ध धमके प्रवर्तक गौतम बुद्ध उसके समकालीन थे। सिंहली दत कथाओके अनुसार विम्बसार गौतम बुद्धके निर्वाणके साठ वर्ष पूर्व सिंहासनारूढ हुआ था। गौतम बुद्धका निर्वाण काल ४८६ ई० पू० माना जाता है। इस आधारपर विम्बसार लगभग ५४६ ई० पू०मे सिंहासनारूढ हुआ। जन-श्रुतियोके अनुसार वृद्धावस्थामे उसके पुत्र एव उत्तराधिकारी अजातशत्रुने उसकी हत्या कर दी। पुराणोके अनुसार विम्बसार शैशुनाग वश (दे०)का पाचवा राजा था, परतु सिंहली ग्रथो तथा अश्वघोषके साक्ष्यके अनुसार वह हर्यक वश (दे०) का था। वह मगधका प्रथम महान सम्राट था। (राय चौधरी, पृ० ११५)

विलग्रमी, सैयद हुसेन–निजामकी रियासतका शिक्षा निदेशक। लार्ड कर्जनके द्वारा १९०२ ई०मे नियुक्त शिक्षा आयोगके दो भारतीय सदस्योमेसे एक यह भी थे। (दूसरे सदस्य सर गुरुदास बनर्जी थे)। भारत-मत्री लार्ड मार्लेने इडियन कौसिलमे जिन दो सदस्योको नियुक्त किया था, उनमे यह भी एक थे (अन्य सदस्य सर के० जी० गुप्त थे)।

विल्हण–कश्मीरमे जन्मा कल्याणीके चालुक्य राजा विक्रमादित्यका दरबारी कवि। उसने 'विक्रमाक-चरित' नामक रचनामे अपने सरक्षकके युद्धो और आखेट यात्राओका वर्णन किया है। उक्त पुस्तककी प्रतिलिपि बुल्हरको एक जैन पुस्तकालयमे उपलब्ध हुई थी और उसने उसका सम्पादन भी किया था।

विल्हापुरकी लड़ाई–पेशवा बाजीराव प्रथम और उसके प्रतिद्वन्द्वी मराठा राज्यके पुश्तैनी सेनापति त्र्यम्बक राव दाभाडेके बीच पहली अप्रैल १७३१ ई०को हुई। दाभाडेको कोल्हापुर राज्य तथा निजामुलमुल्ककी सहायता प्राप्त थी, फिर भी वह पराजित हुआ और मारा गया। इस विजयसे बाजीराव प्रथमका मराठा राज्यमे कोई प्रतिद्वन्द्वी नही रह गया और पेशवा ही व्यवहारत उसका वास्तविक शासक बन गया।

विशनदास–एक ख्यातिप्राप्त हिन्दू चित्रकार, जिसे सम्राट् जहाँगीरका सरक्षण प्राप्त था।

विश्नाग–पुर्तगाली यात्री फर्नाओ नूनिजने विजयनगरके लिए इस नामका प्रयोग किया है। इस यात्रीने १५३५ ई०मे विजयनगरकी यात्रा की थी।

विहार–आधुनिक कालमे उस प्रदेशका नाम, जिसके पूर्वमे पश्चिमी बगाल और पश्चिममे उत्तर प्रदेश है। इसमे प्राचीन कालके अग (भागलपुर मडल), वृज्जि (तिरहुत मडल) तथा मगध (पटना तथा गया मडल), राज्य शामिल है। कालान्तरमे अग और वृज्जिका मगधमे विलीनीकरण हो गया। विहारका आधुनिक राज्य बारहवी शताब्दीके अन्त तक मगधके नामसे ही सम्बोधित किया

जाता था, जब इसे मुसलमानोने रौद डाला और बख्तियार खिलजीके पुत्र इख्तियारउद्दीनने दिल्ली सल्तनतके अधीन कर दिया। आक्रमणकारी मुसलमानोने सर्वत्र फैले हुए बौद्ध विहारोको किले समझा और तबसे यह सूबा बिहार नामसे सम्बोधित किया जाने लगा। अकबरके साम्राज्यका यह अलग सूबा था, किन्तु १७१९ ई०के लगभग मुर्शीद कुली खाँकी सूबेदारीके समय यह बगालमे मिला दिया गया। इस प्रकार विहारका बगालके साथ प्रशासकीय सयोजन १९११ ई० तक चलता रहा। पश्चात् इसमे उडीसाको शामिल कर गवर्नरके शासनाधीन एक पृथक् सूबा बनाया गया। भारतीय गणतत्रमे भी यह पृथक् राज्य है, यद्यपि उडीसाको इससे अलग कर दिया गया है।

१९५१ ई०की जनगणनाके अनुसार इसका क्षेत्रफल ७०,३६८ वर्ग मील और जनसख्या ४,०२,१८,९१६ है। इसकी राजधानी पटनाके साथ, जहाँ प्राचीन नगर पाटलिपुत्रकी स्मृतियाँ जुडी हुई है, वहाँ जमदेशपुर टाटानगर आधुनिक कालके इस्पात और लोहा उद्योगका मुख्य केन्द्र है। इस राज्यसे गुजरती हुई गगाने इसे दो भागोमे विभाजित कर दिया है। यहाँ चावल, गेहूँ, मक्का, गन्ना, तम्बाकू तथा तिलहनकी अच्छी उपज होती है और कोयला, लोहा तथा अबरक जैसे खनिज प्रचुरतासे उपलब्ध है। भारतकी औद्योगिक प्रगतिके साथ ही विहारकी भी प्रगति निश्चित है, क्योकि यहाँ लोहा और कोयलाकी प्रचुरता है। यहाँकी अनेक नदियोको बाँधोसे नियत्रित करके बाढोकी रोक-थाम की जा रही है और भारी मात्रामे विद्युत शक्ति भी उपलब्ध होने लगी है। जो विहार अशोक महान्का जन्म-स्थल था, वह भारतीय गणतत्रके प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादका भी जन्म-स्थल है।

बिहारीमल—आमेरका राजा, जो राजनीतिमे यथार्थवादका अनुगामी था। वह राजपूतानाके उन राजपूत शासकोमे अग्रणी था, जिन्होने मुगलोका विरोध करनेकी नीतिकी निरर्थकता समझ ली थी। उसने बाबरकी और उसके उपरात हुमायूँकी अधीनता स्वीकार कर ली। १५५५ ई०मे उसकी भेट अकबरसे हुई, जिसने उसका समुचित सत्कार किया। १५६१ ई०मे अजमेरके जागीरदारने बिहारीमलपर आक्रमण करके उसके कुछ इलाकोको दबा लिया और इसके पुत्रको बधकके रूपमे अपने पास रख लिया। विहारीमलने अपने राज्यको बचानेके लिए अकबरकी अधीनता स्वीकार कर ली और अपनी पुत्रीका विवाह उसके साथ करके मैत्री-सम्बन्धको और मजबूत बना लिया। यह सम्बन्ध सुखद सिद्ध हुआ और यही राजकुमारी अकबरके ज्येष्ठ पुत्र जहाँगीरका माँ बनी। राजा बिहारीमलने अपने पुत्र भगवानदास तथा दत्तक पौत्र मानसिंहके साथ बादशाह अकबरकी नौकरी कर ली और इन सबको ऊँचे मनसब दिये गये। इस प्रकार बिहारीमलने अपनी नीतिसे आमेर (जयपुर)को मुगलोकी लूटमार तथा बरबादीसे बचा कर जयपुर रियासतको राजपूतानेकी सबसे धनी और कलाकौशलपूर्ण रियासत बना दिया।

बिहारी लाल—तुलसी दासके बाद सत्रहवी शताब्दीका सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त हिन्दी कवि। इसने अपनी रचना 'सतसई' १६६२ ई०मे पूरी की।

बीकानेर—राजस्थानका एक नगर तथा पुरानी रियासत। इसे राठौर सरदार बीकाजीने स्थापित किया था। दिल्लीसे यह ढाई सौ मील दूर थार रेगिस्तानकी सीमापर स्थित है। १५७० ई० मे यह राज्य सम्राट् अकबरकी अधीनतामे आया और १८१८ ई० मे अग्रेजोका आश्रित बननेतक मुगल साम्राज्यका हिस्सा रहा। बीकानेर ऊँटोके लिए प्रसिद्ध है। प्रथम विश्वयुद्धमे बीकानेरके महाराज गगासिहने बीकानेरी ऊँटोका रिसाला सगठित किया था जो सोमालीलैण्डमे बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। महाराज बीकानेरको इसके पुरस्कार-स्वरूप पुराने राष्ट्रसघ (लीग आफ नेशन्स) मे भारतका प्रतिनिधि नियुक्त किया गया था। महाराज बीकानेर नरेन्द्रमडल (चेम्बर आफ प्रिन्सेज)के आरम्भसे ही एक महत्त्वपूर्ण सदस्य रहे। स्वाधीनताके उपरान्त बीकानेर रियासत भारतमे विलीन हो गयी।

बीजापुर—दक्षिणमे भीमा और कृष्णाके दोआबमे स्थित एक मध्यकालीन मुस्लिम राज्य। पन्द्रहवी शताब्दीके अन्तमे जब बहमनी सल्तनत पाँच शाखाओमे विभक्त हो गयी, तब उनमे यह सबसे महत्त्वपूर्ण शाखा बनी। पाँचो सल्तनतोमे यह सबसे दक्षिणमे थी। इस राज्यकी स्थापना यूसुफ आदिलशाहने की थी, जो मूल रूपमे गुलाम था, लेकिन अपनी योग्यताके बलपर बीजापुरमे बहमनी सुल्तानोका हाकिम बना दिया गया। १४८९ ई० मे उसने अपनेको स्वतन्त्र घोषित कर आदिलशाही राजवशके अन्तर्गत बीजापुरको पृथक् राज्य बना लिया। इसके नौ सुल्तान हुए, यथा—यूसुफ (१४९०–१५१०), इस्माईल (१५१०–३४), मल्लू (१५३४–३५), इब्राहीम प्रथम (१५३५–५७), अली (१५५७–८०), इब्राहीम

द्वितीय (१५८०–१६२६), मुहम्मद (१६२६–५६), अली द्वितीय (१६५६–७६) तथा सिकन्दर (१६७१–८८)।

बीजापुरको आरम्भसे ही अपने पडोसियों, विशेषकर हिन्दू राज्य विजयनगरसे सघर्ष करना पडा। गोआका बन्दरगाह, जो बीजापुर राज्यमे स्थित था, १५१० ई० मे पुर्तगालियोंके अधिकारमे चला गया। १५३६ ई० मे बीदर, अहमदनगर तथा गोल्कुडाने मिलकर बीजापुरपर आक्रमण कर दिया, लेकिन उन्हें परास्त होना पडा। इसका बदला लेनेके लिए बीजापुरके सुल्तानने विजयनगरसे समझौता कर लिया और दोनो राज्योंकी मिली-जुली सेनाने अहमदनगरमे लूटपाट की। लेकिन छह वर्ष बाद बीजापुरका बीदर, अहमदनगर तथा गोलकुडाके साथ विजयनगरके विरुद्ध गठबधन हो गया और १५६५ ई० मे तालीकोटकी लडाईमे विजयनगर राज्यको नष्ट कर दिया गया। लेकिन १५७० ई० मे बीजापुरका सुल्तान अहमदनगरके सुल्तान, कालीकटके जमोरिन तथा अचिनके राजाकी सहायताके बलपर भी पुर्तगालियोंको खदेड कर गोआको पुन प्राप्त करनेमे विफल रहा। सत्रहवी शताब्दीमे बीजापुरको दो शत्रुओंका सामना करना पडा—मुगल बादशाह, जिसने उत्तरसे चढाई बोल दी थी तथा शिवाजी, जिनके नेतृत्वमे मराठा शक्तिका उत्कर्ष हो रहा था। सातवें सुल्तानने शाहजहांको वार्षिक खिराज देनेका वायदा कर मुगलोंसे समझौता कर लिया किन्तु न तो वह और न उसके उत्तराधिकारी शिवाजी का बढाव रोक सके। शिवाजीकी शक्तिका उदय होनेसे बीजापुर सल्तनत काफी कमजोर हो गयी। अन्तमे १६८६ ई० मे नवे आदिलशाही सुल्तान सिकन्दर (१६७१–८८ ई०) के शासनकालमे बीजापुरको बाध्य होकर मुगल बादशाह औरगजेबके आगे १८ महीनेके घेरेके बाद आत्मसमर्पण कर देना पडा। सुल्तान सिकन्दर, को कैदखानेमे डाल दिया गया, जहाँ पन्द्रह वर्ष बाद उसकी मृत्यु हो गयी। उसके पतनके बाद बीजापुरका स्वाधीन अस्तित्व समाप्त हो गया।

बीजापुर सल्तनतके सस्थापक शिया मतावलम्बी थे। यह परपरा सल्तनतके चौथे सुल्तान इब्राहीम प्रथम (१५३५–५७) के शासनकाल तक चली। सुल्तान इब्राहीम प्रथम पुन सुन्नी मतावलम्बी हो गया। लेकिन उसका पुत्र और उत्तराधिकारी अली (१५५७–८०) फिर शिया हो गया। आदिलशाही सुल्तान सामान्यत सहिष्णु थे। यूसुफ आदिलशाहने एक मराठी महिलासे शादी की थी, जो उसके पुत्र और उत्तराधिकारी इस्माईल आदिलशाहकी मॉं बनी। हिन्दुओंको उत्तरदायित्वपूर्ण पदोंपर नियुक्त किया जाता था और राज्य-का हिसाब-किताब और पत्र-व्यवहार मराठीमे लिया जाता था। आदिलशाह सुल्तान कला और साहित्यका सरक्षक था। प्रसिद्ध इतिहासकार मुहम्मद कासिम उपनाम फरिश्ताने छठे सुल्तान इब्राहीम द्वितीय (१५८०–१६२६ ई०)की सरक्षतामे अपने ग्रथोंकी रचना की थी। बीजापुरमे एक अच्छा पुस्तकालय था, जिसकी कुछ पुस्तकें अब भी ब्रिटिश सग्रहालयमे उपलब्ध हैं।

बीजापुरमे ललित कला तथा वास्तुकला की एक शैली विकसित हुई। इस कालकी इमारतें अपनी अति-कल्पना और भव्यताके लिए प्रसिद्ध हैं। सुल्तान यूसुफ अली, इब्राहीम द्वितीय तथा मुहम्मद शाहने अनेक इमारतें बनवायी। बीजापुर नगरका विशाल परकोटा, जिसकी परिधि सवा छह मील है, मस्जिद, जिसमे एक साथ पाँच हजार लोग नमाज पढ सकते है, सभाकक्ष जिसे गगनमहल कहते हैं, इब्राहीम द्वितीयकी कब्र तथा मुहम्मद शाहका मकबरा, जिसकी गुम्बज ससारकी दूसरी सबमे बडी गुम्बज है, बीजापुरकी सतकालीन भव्यताके कुछ बचे हुए कीर्तिस्तम्भ हैं। (सेवेल–ए फारगाटेन एम्पायर; मिडोज टेलर–मैन्यूअल आफ इण्डियन हिस्ट्री; हेनरी कजिन्स–बीजापुर एण्ड इट्स आर्कीटेक्चरल रयेन्स, विद एन हिस्टोरिकल आउटलाइन आफ आदिल शाह डाईनेस्टी)

बीदर–दक्षिण (आन्ध्र) का एक पुराना नगर, जो आधुनिक हैदराबाद नगरसे ज्यादा दूर नही है। यह प्राचीन हिन्दू राज्य वारगलके अन्तर्गत था। इसे पहले अला-उद्दीन खिलजीने रौंद डाला और बादमे सुल्तान ग्यास-उद्दीन तुगलकके शासनकालमे उसके पुत्र जूना खाँने इसे दिल्लीकी सल्तनतके अधीन कर दिया। १३४७ ई० मे बहमनी सल्तनतकी स्थापना होनेपर बीदर उसका अग बन गया और नवें सुल्तान अहमद शाहके शासनकाल-मे उसकी राजधानी हो गया। १४९२ ई०मे बहमनी सल्तनतके छिन्न-भिन्न होनेपर जब कासिम बरीदने स्वतत्र बीदर सल्तनतकी स्थापना की, तब यह उसकी राजधानी बनाया गया। १५६५ ई०मे विजयनगरके विरुद्ध बीजापुर, अहमदनगर और गोलकुडाके सम्मि-लित अभियानमे यह भी शामिल था और तालीकोटकी लडाईमे इन सबने सम्मिलित रूपसे विजय प्राप्त की

लेकिन १६१६ ई०मे इसपर बीजापुर सल्तनतने कब्जा कर लिया और इसकी स्वतन्त्रता समाप्त हो गयी। बरीदशाही सुल्तानो द्वारा निर्मित कुछ उल्लेखनीय इमारतोके अवशेष बीदरमे आज भी मौजूद है। (सिडोज टेलर–मैन्युअल आफ इण्डियन हिस्ट्री)

बीबीगढ़—कानपुरमे स्थित एक इमारत, जिसमे १८५७ ई० के सिपाही-विद्रोहके दौरान २११ अग्रेज स्त्री-पुरुषो और बच्चोको, जिन्होने २६ जूनको आत्मसमर्पण किया था, १५ जुलाईको नाना साहब और तात्या टोपेके आदेशानुसार मार डाला गया और उनके शवोको करीबके कुएमे फेक दिया गया। इससे पूर्व बनारस तथा इलाहाबादमे अग्रेजोने गाँवके गाँव फूँक दिये थे। यह उसीके बदलेकी काररवाई थी। इसके फलस्वरूप ब्रिटिश सेनाओने भी भारतीयोपर नृशस अत्याचार किये।

बीरबल, राजा—एक राजपूत सरदार,जो स्वेच्छासे बादशाह अकबरकी सेवामे आ गया और उसका मुँह-लगा स्नेह-पात्र बन गया था। अकबरने उसे 'राजा'की पदवी दी। बीरबल उतना प्रतिभाशाली सेनापति नही था, जितना प्रतिभाशाली कवि। अकबरने उसे 'कविराय' की उपाधिसे सम्मानित किया था। वह १५८६ ई० मे पश्चिमोत्तर सीमाके यूसुफजाई कबीलेपर चढाई करनेके लिए मुगल सेनाका नायक बनाकर भेजा गया और युद्धमे मारा गया।

बुक्क प्रथम—सगमका पुत्र, अपने भाई हरिहर प्रथमके साथ १३३६ ई० मे उसने विजयनगरकी स्थापना की। हरिहर प्रथमके निधनके बाद १३५४ ई० से १३७७ ई० तक मृत्युपर्यन्त वह विजयनगरका शासन करता रहा। उसके जीवनका अधिकाश भाग बहमनी सुल्तानोसे युद्ध करनेमे व्यतीत हुआ। उसने अपना एक दूतमडल चीन भी भेजा था।

बुक्क द्वितीय—बुक्क प्रथमका पौत्र। विजयनगरके राजसिहासनपर बैठाये जानेपर उसके भाई विरूपाक्षने इसका विरोध किया था। वह केवल दो वर्ष (१४०४–०६ ई०) राज्य कर सका।

बुद्ध, गौतम—बौद्ध धर्मके सुप्रसिद्ध सस्थापक। बस्ती जिले (उत्तर प्रदेश) के पास आधुनिक नेपाल राज्यमे स्थित कपिलवस्तुके क्षत्रिय राजपरिवारमे उनका जन्म हुआ। उनके पिताका नाम शुद्धोधन और माताका नाम माया देवी था। शिशु-जन्मके उपरात माताकी मृत्यु हो गयी और बालकका नाम सिद्धार्थ रखा गया। उनका लालन-पालन उनकी मौसी और विमाता प्रजापति गौतमीने किया। उनके गोत्रका नाम गौतम था, शाक्य जातिमे उत्पन्न होनेके कारण वे शाक्य सिह और बादमे शाक्य मुनि कहलाये। सोलह वर्षकी उम्रमे उनका विवाह यशोधरासे (जिन्हे भद्द कच्छना, सुभद्रका, बिम्बा अथवा गोपा भी कहते है) कर दिया गया। अगले तेरह वर्षोतक सिद्धार्थने अपने पिताके महलमे राजसी जीवन व्यतीत किया। किसी दिन भ्रमणके समय वृद्धावस्था, रोग तथा मृत्युके दर्शन हो जानेपर उन्होने सासारिक सुखोकी निस्सारताका अनुभव इतनी तीव्रतासे किया कि जिस रात उनके पुत्रका जन्म हुआ, उसी रात पिताके ऐश्वर्यपूर्ण राजप्रासाद, प्रिया एव सुन्दर पत्नी तथा नये पुत्रका परित्याग कर दिया। उन्होने परिव्राजक भिक्षुका जीवन अपना कर उस मार्गकी खोज शुरू कर दी जिससे रोग, वृद्धावस्था तथा मृत्युकी पीडासे छुटकारा पाया जा सके। इस महान् त्यागके समय गौतमकी अवस्था केवल २६ वर्ष थी।

प्रथम एक वर्ष तक उन्होने दर्शनका अध्ययन किया, किन्तु उससे उनकी शकाओका कोई समाधान नही हुआ। तत्पश्चात् अगले पाँच वर्षो तक उन्होने इस आशामे कि मुक्तिका मार्ग प्राप्त हो सकेगा, कठोर तप किया। लेकिन वह निष्फल ही रहा। तब एक दिन जब वे आधुनिक बोध गयामे नैरञ्जना नदीके तटपर पीपल वृक्षके नीचे ध्यानावस्थामे बैठे हुए थे, बुद्धत्व लाभ हुआ। इसके बाद वे बुद्धके नामसे विख्यात हो गये और उन्होने आजीवन सत्यका जिस रूपमे साक्षात्कार किया था, उसका उपदेश करनेका सकल्प किया। उन्होने वाराणसीके निकट सारनाथके मृगवनमे अपना पहला धर्मोपदेश किया, जहाँ पाँच भिक्षु उनके अनुयायी हो गये। उपरात अगले ४५ वर्षों तक बुद्ध उत्तर प्रदेश तथा बिहारमे पदयात्रा करके धर्मोपदेश करते रहे। उन्होने जाति-पातिका कोई भेदभाव किये बगैर राजपुत्रोसे लेकर किसानो तकको अपना अनुयायी बनाया, भिक्षु सघमे सगठित किया, उसके नियम निश्चित किये और सहस्त्रो नर-नारियोको अपना मतावलम्बी बनाया। उनके द्वारा प्रवर्तित धर्म बादमे बौद्ध धर्मके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उनका, निर्वाण ८० वर्षकी आयुमे देवरिया जिलेके कुशीनगर अथवा कसियामे हुआ। उनके निर्वाणकी तिथि जन्मतिथिके सदृश अभी तक सही निश्चित नही हो सकी है, यद्यपि यह सभी स्वीकार करते हैं कि वे मगधके राजा बिम्बसार तथा अजातशत्रुके समकालीन थे और अजातशत्रुके शासनकालमे ही उनकी मृत्यु हुई। चीनकी

जनश्रुतिके अनुसार बुद्धका निधन ४८६ ई० पू० मे हुआ था। इस प्रकार उनका जन्म अस्सी वर्ष पूर्व ५६६ ई० पू० मे सिद्ध होता है। धर्मसंस्थापकके रूपमे गौतम बुद्धका स्थान अप्रतिम है। सर्वप्रथम वे निश्चित रूपसे ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। दूसरे, उन्होने लोकोत्तर पुरुष होनेका कोई दावा नही किया और अपनी पूजाको सब प्रकारसे हतोत्साहित किया। उनका मात्र इतना दावा था कि मुझे सम्यक् सम्बोधि-लाभ हुआ है। इस सम्बन्धमे भी उनकी यह मान्यता थी कि पुरुषार्थ करनेपर किसी-को भी बोधि-लाभ हो सकता है। तीसरे, वे पहले धर्म-संस्थापक थे, जिन्होने भिक्षु संघ संगठित किया और शातिमय तरीकेसे समता, प्रेम और दयाके संदेशका प्रचार करके लोगोको अपने धर्ममे दीक्षित किया। उन्होने सर्वोपरि बुद्धिवादको स्थान दिया और अपने अनुयायियोको समझाया कि वे किसी वातको उस समय तक सत्यके रूपमे स्वीकार न करें, जब तक वह तर्क-संगत न हो। उन्होने विश्व-बन्धुत्वका केवल उपदेश ही नही दिया, वरन् आजीवन उसका आचरण किया और उन सभीको विना जाति या वर्णके भेदभावके, अपने शिष्योके रूपमे स्वीकार किया जो उनका धर्मोपदेश सुननेके लिए तैयार थे। इस प्रकार उन्होने एक ऐसे धर्मकी संस्थापना की, जो भारतकी सीमाएँ लाँघकर चारो ओरके देशोमे फैल गया। फलत वह संसारके महान् धर्मोमे अन्यतम माना जाता है। (ओल्टेनबर्ग—बुद्ध; ई० जे० थामस—लाइफ आफ बुद्ध; एडविन आर्नोल्ड—लाइट आफ एशिया)

बुद्ध गुप्त—गुप्त राजवंशकी मुख्य शाखाका अन्तिम सम्राट् (४७६–९५ ई०)। इसने गुप्त साम्राज्यकी अखण्डता बनाये रखनेका भारी प्रयास किया। इसकी मृत्युके बाद तोरमाण तथा उसके पुत्र मिहिरगुलके नेतृत्वमे हूणोके आक्रमणके कारण गुप्त साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया।

बुद्धराज—कलचूरि वंशका एक राजकुमार। विश्वास किया जाता है कि वह राज्यवर्द्धनका समकालीन था और राज्यवर्द्धनने उससे अपनी अधीनता स्वीकार करवा ली थी। उसके बारेमे बहुत कम जानकारी प्राप्त है। (रायचौधरी, पृष्ठ ६०७ का फुटनोट)

बुद्धवर्मा—काचीका एक पल्लव नरेश, जिसने चोलोको पराजित किया। शिलालेखोमे उसका उल्लेख हुआ है, जिससे अनुमान किया जाता है कि विष्णुगोपके बाद वह छठा राजा था। उसके बारेमे अधिक कुछ जानकारी नहीं है। (रायचौधरी, पृष्ठ ५०१)

बुन्देलखण्ड—उस भूखण्डका नाम, जिसके उत्तरमे यमुना और दक्षिणमे विन्ध्य पर्वत-शृखला, पूर्वमे बेतवा और पश्चिममे होस अथवा तमसा नदी है। बुन्देलोका नाम तब प्रसिद्धिमे आया, जब उन लोगोने यहाँ अपना राज्य चौदहवी शताब्दीमे स्थापित किया। इससे पूर्व यह प्रदेश जुझौती अथवा जजाकभुक्ति नामसे जाना जाता था और चन्देलो द्वारा नवीसे चौदहवी शताब्दीतक शासित होता रहा। राज्यके प्रमुख नगर थे—खजुराहो जिला छतरपुर, महोबा-जिला हमीरपुर तथा कालञ्जर, जिला बाँदा। खजुराहोमे आज भी अनेक भव्य वास्तुकृतियाँ अवशिष्ट है। कालजरमे राज्यकी सुरक्षाके लिए एक मजबूत किला था। शेरशाह इस किलेकी घेराबन्दीके समय १५४५ ई० मे यही मारा गया था। बुन्देलखण्डका अधिकाश भूभाग अब उत्तर प्रदेशमे है, किन्तु कुछ भाग मध्यप्रदेशमे भी मिला दिया गया है।

बुन्देला—देशज मूलके राजपूतोका एक गोत्र, जो चौदहवी शताब्दीके मध्यमे जमुनाके दक्षिण और विन्ध्य पर्वत-शृखलाके उत्तरमे पडनेवाले प्रदेशमे शक्तिसम्पन्न हो गये थे। इससे पहले यह क्षेत्र जेजाकभुक्तिके नामसे प्रसिद्ध था, जिसपर चन्देले शासन करते थे। बुन्देले युद्ध-प्रिय लोग थे और जिस भूमिपर वे शासन करते थे, वह उनके नामसे बुन्देलखण्ड कहलाने लगी। बुन्देलोने अकबर-की अधीनता स्वीकार कर ली थी, किन्तु बादमे औरंग-जेबके शासनकालमे बुन्देला सरदार छत्रसाल पूर्वी मालवामे अपने लिए एक स्वतत्र राज्य कायम करनेमे सफल हो गया, जिसकी राजधानी पन्ना थी। बादमे इस राज्यने अंग्रेजोको अपना प्रभु स्वीकार कर लिया।

बुरहान-ए-मासिर—बहमनी सल्तनतके सुल्तानोका एक इतिहास-वृत्तान्त है। फरिश्ताके इतिहासमे इसमे अधिक प्रामाणिक विवरण है। इसे सईद अली तबातबाने लिखा था। लेखक अहमदनगरके सुल्तान बुरहान निजाम शाह द्वितीयकी सेवामे था, जिसके नामपर ही पुस्तकका नाम-करण किया गया है। इतिहासको पूरा करनेमे उसे छह वर्ष (१५९१–९६) लगे थे। इसमे बहमनी शाही खानदान तथा अहमदनगरके सुल्तानोका विवरण है।

बुरहान निजामशाह प्रथम—अहमदनगरके निजामशाही खान-दानका दूसरा सुल्तान। ४५ वर्ष (१५०८–५३ ई०)के लम्बे शासनकालमे वह मुख्यत पडोसके राज्यो, विशेष कर हिन्दू राज्य विजयनगरसे युद्ध करनेमे व्यस्त रहा। १५३० ई०मे उसने बीजापुरके मुसलमान शासकके विरुद्ध विजयनगरके हिन्दू राजासे सधि कर ली, लेकिन यह सधि

अधिक दिनो तक नही टिकी। बुरहान मूलतः सुन्नी था, लेकिन जीवनके अन्तिम दिनोमे वह शिया हो गया था।

बुलन्द दरवाजा–अकबरने फतेहपुर सीकरीमे १५७५–७६ ई०मे इसका निर्माण कराया। यह तोरणद्वार कदाचित् उसकी गुजरातकी विजयकी स्मृतिके रूपमे बनाया गया था। सगमरमर और लाल पत्थरसे निर्मित यह दरवाजा फतेहपुर सीकरी स्थित बड़ी मस्जिदके मार्गपर विद्यमान है।

बून, चार्ल्स–बम्बईका गवर्नर (१७१५–२२), जिसने नगरके चारो तरफ एक दीवार बनवायी थी और व्यापारिक कोठी तथा व्यवसायकी सुरक्षाके लिए बन्दरगाहपर कम्पनीकी ओरसे तैनात सशस्त्र जहाजोकी संख्यामे वृद्धि कर दी थी।

बूढा गोहाँई–आसामके अहोम राजाओके अधीन दो सर्वोच्च अधिकारियोमेसे एकका पदनाम। दूसरे अधिकारीका पदनाम बड-गोहाँई था। अधिकारीका चयन अहोम राजा एक विशेष परिवारके सदस्योमेसे करते थे और व्यावहारिक रूपमे यह पद वशानुक्रममे उत्तराधिकारमे प्राप्त होता रहता था। (गेट–हिस्ट्री आफ आसाम, पृ० २३५-३६)

बूरन–पिण्डारियो (पेंढारियो) का एक सरदार, जो १८१२ ई०से १८१८ ई० तक लूटमारके कार्योमे प्रमुख भाग लेता रहा। लार्ड हेस्टिंग्स द्वारा १८१७–१८ ई०मे पिण्डारियोके विरुद्ध आयोजित किये गये अभियानमे वह मारा गया।

बूसेस, फादर–एक ईसाई पादरी। भारत आनेपर वह बादशाह शाहजहाँके सबसे बडे शाहजादे दाराशिकोहका अन्तरग मित्र हो गया था।

बृहद्रथ–मगधके प्राचीनतम, राजवशका प्रवर्तक। वह जरासन्धका पिता था और उसके वशने मगधपर छठी शताब्दी ई० पू० तक शासन किया।

बृहद्रथ–मगधके मौर्यवशका अन्तिम राजा, जिसे लगभग १८५ ई० पू०मे ब्राह्मण मत्री पुष्यमित्रने अपदस्थ कर दिया था। फलस्वरूप मौर्य राजवशका अन्त हो गया।

बृहस्पति–भारतका एक प्राचीन राजनयज्ञ एव स्मृतिकार। उसकी कृति बृहस्पति स्मृति गुप्तकालकी रचना मानी जाती है, जो अभीतक अन्य ग्रन्थोमे उद्धरण रूपमे ही उपलब्ध है।

बृहस्पति मित्र–कलिङ्गके राजा खारवेलके हाथी गुम्फा शिलालेखमे यह नाम 'बहसतिमित'के रूपमे मिलता है। शिलालेखमे इसको राजगृहका राजा बताया गया है। कुछ विद्वानोने उसकी पहचान मगधके राजा पुष्यमित्रसे की है, जिसने १८५ ई० पू०के लगभग शुग राजवश सस्थापित किया। किन्तु यह मान्यता सन्देहसे मुक्त नही है। (रायचौधरी० पृष्ठ ३७३ तथा ४१८ के फुटनोट)

बूँदी–एक छोटी सी राजपूत रियासत, जो मेवाडके समीप है। इसके शासकने काफी वर्षो तक अपनेको स्वाधीन रखा, किन्तु बादमे अकबरकी अधीनता स्वीकार कर ली। मुगल साम्राज्यके अध पतनपर यह कुछ समयके लिए मराठा सरदार होल्करके नियत्रणमे चली गयी, किन्तु द्वितीय मराठा-युद्ध (१८०३–०६ ई०) मे होल्करकी पराजय हो जानेपर उसका नियत्रण समाप्त हो गया। फिर भी मराठोका आतक बना रहा। अत १८१८ ई० मे बूँदीने ईस्ट इडिया कम्पनीसे आश्रित-सधि कर ली। १९४७–४८ मे भारतीय गणतत्रमे विलीन होनेसे पूर्व तक यह रियासत ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यके अतर्गत रही।

बूबूजी खानम–बीजापुरके सुल्तान यूसुफ आदिलशाह (१४८९–१५१० ई०) की मराठा पत्नी। वह मराठा सरदार मुकुन्द रावकी बहिन थी, जिसे यूसुफ आदिलशाहने अपने शासनकालके आरम्भमे ही पराजित कर दिया था। तदनन्तर मुकुन्दरावने आदिलशाहके साथ उसका विवाह कर दिया। वह द्वितीय आदिलशाही सुल्तान इस्माइल तथा तीन शाहजादियोकी माँ बनी। इन शाहजादियोका विवाह पडोसके मुसलमान राज्योके शाही परिवारोके साथ कर दिया गया।

बेगमें, अवधकी–नवाब आसफउद्दौलाकी माँ और दादी। १७७५ ई० मे अवधकी गद्दीपर बैठनेके बाद आसफउद्दौलाने ईस्ट इडिया कम्पनीके साथ फैजाबादकी सधि की, जिसके अन्तर्गत उसने अवधमे ब्रिटिश सेना रखनेके लिए एक बडी धनराशि देना स्वीकार किया। अवधका प्रशासन भ्रष्ट और कमजोर था, अत नियत धनराशि न दे सकनेके कारण नवाबपर कम्पनीका बकाया चढ गया। १७८१ ई० तक मैसूर, मराठो तथा चेत सिंहसे हुई लडाइयोके कारण कम्पनीको रुपयोकी बड़ी आवश्यकता थी। गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्सने नवाब अवधसे बकायेकी रकमको चुकता कर देनेके लिए जोर डाला, लेकिन नवाबने भुगतान करनेमे अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए कहा कि मैं भुगतान उस समय कर सकता हूँ जब मुझे उस बडी जागीर तथा दौलतपर अधिकार दिलवा दिया जाय जो मेरी माँ और दादीने हथिया ली है।

अवधकी वेगमे आसफउद्दौलाको २५०,००० पौंडकी धनराशि पहले दे चुकी थी, १७७५ ई० में ब्रिटिश रेजीडेन्ट मिडिल्टनके समझानेपर ३००,००० पौंड उन्होने पुनः दिया। इससे कम्पनीका पावना अदा कर दिया गया। कलकत्ता स्थित कौंसिलने वेगमोको आश्वासन था कि भविष्यमे उनसे धनकी माँग नही की जायेगी। वारेन हेस्टिंग्सने इस प्रकारका वचन देनेका विरोध किया था, किन्तु कौंसिलके अन्दर मतदानमे वह पराजित हो गया था। इसके वाद ही १७८० ई० मे चेतसिंह काड (दे०) हुआ।

हेस्टिंग्स अवधकी वेगमोसे नाराज था, क्योंकि १७७५ ई० मे उन्होने कौंसिलमे उसके विरोधियोका समर्थन प्राप्त किया था। अतः १७८१ ई० मे नवाव अवधने जव वकाया भुगतान करनेमे उस समय तक अपनी असमर्थता व्यक्त की जव तक उसे अपनी माँ और दादीकी दौलत न दिला दी जाय तो हेस्टिंग्सने तत्काल उसके अनुरोधको स्वीकार कर ब्रिटिश रेजिडेन्ट मिडिल्टनको आदेश दिया कि वह वेगमोपर वकाये की धनराशिका भुगतान करनेके लिए दवाव डाले। चूंकि रेजिडेन्ट मिडिल्टनने जोर जवर्दस्ती करनेमे समुचित तत्परता नहीं दिखायी, अत उसके स्थानपर ब्रिस्टोको नियुक्त कर दिया गया जिसने वेगमोके उच्च पदस्थ कर्मचारियोंको कैदमे डलवा दिया, उनको वेडियाँ डलवा दी, उनका भोजन भी वन्द करवा दिया था और कदाचित उनको कोडे भी लगवाये। उन्हे इतनी कठोर यातनाएँ दी गयी कि उनकी दुर्दशा देखकर स्वय नवाव भी विचलित होने लगा, किन्तु हेस्टिंग्स टससे मस नही हुआ और कोई समझौता-वार्ता चलाने अथवा दया प्रकट करनेकी मनाही कर दी। आखिरमे वेगमोको वाध्य होकर रुपया देना पडा, जिसके सम्बन्धमे कलकत्ता स्थित कौंसिलने १७७५ ई० मे उन्हें गारन्टी दी थी कि अव उनसे धनकी कोई माँग नही की जायगी। सारा मामला निःसन्देह घिनावना, क्षुद्रतापूर्ण और राज्यकी आवश्यकताओको देखते हुए भी अनुचित था। हेस्टिंग्सकी वादमे दी गयी यह दलील वडी लचर थी कि चेतसिंहसे साँठगाँठके कारण वेगमोने ब्रिटिश सरक्षण प्राप्त करनेका अधिकार खो दिया था, तथा कलकत्ताकी कौंसिल द्वारा दी गयी गारन्टी समाप्त हो गयी थी। वारेन हेस्टिंग्सने वेगमोके खिलाफ द्वेषवश काररवाई की थी और यह विस्मयकारी है कि लार्ड सभाने उसे वेगमोपर अत्याचार करनेके आरोपसे दोपमुक्त कर दिया। उसने निःसन्देह उनपर अत्याचार किया था, यद्यपि इस प्रकार जोर-जवर्दस्तीसे प्राप्त की गयी धनराशिका उपयोग कम्पनीकी ही सेवामे किया गया था। (पी० ई० रावर्ट्स—हिस्ट्री आफ दि ब्रिटिश रूल इन इण्डिया, तथा सर अल्फ्रेड ल्याल—वारेन हेस्टिंग्स)

वेचर, रिचर्ड—अठारहवी शताब्दीके छठे दशकमे ईस्ट इडिया कम्पनीका वगाल स्थित एक अधिकारी, जिसने २४ मई, १७६४ ई० को कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स, लन्दनकी गुप्त समितिको एक रिपोर्ट भेजी। रिपोर्टमे १७७० ई०के भयावह अकालके पूर्व वगालमे व्याप्त शोचनीय स्थिति का व्यौरा दिया गया था। उसने लिखा था कि कम्पनीने जवसे दीवानीके अधिकार प्राप्त किये हैं, लोगोकी हालत पहलेसे ज्यादा खराब हो गयी है। जो वगाल निरकुश और स्वेच्छाचारी शासनमे भी फल-फूल रहा था, वह अव विनाशके कगारपर है। किन्तु रिपोर्टकी व्यावहारिक दृष्टिसे उपेक्षा कर दी गयी।

वेडेन पावेल, लार्ड—ससार भरमें वालचर (व्वाय स्काउट्स) आन्दोलनका प्रतिष्ठापक। प्रारम्भमे इसमे भारतीयोको शामिल नही किया गया था, भारतकी यात्रा करनेके वाद वेडेन पावेलने प्रयास करके इस आन्दोलनमे रगभेद की नीतिको खत्म करा दिया।

वेण्टिक, लार्ड विलियम कवेण्डिश—वगालका अन्तिम गवर्नर-जनरल (१८२८—३३ ई०) और भारतके गवर्नर-जनरलो मे पहला (१८३३—३५ ई०)। वह पहले मद्रासके गवर्नरकी हैसियतमे भारत आया, लेकिन १८०६ ई० मे वेल्लोरमे सिपाही विद्रोह हो जानेपर उसे वापस बुला लिया गया। इक्कीस वर्षोंके वाद लार्ड एम्हर्स्ट द्वारा त्यागपत्र दे देनेपर उसे गवर्नर-जनरल नियुक्त किया गया और उसने जुलाई १८२८ ई० मे यह पद ग्रहण किया। उसके सात वर्षके प्रशासनकालमे कोई युद्ध नहीं हुआ और प्रायः शाति वनी रही। यद्यपि उसने युद्धके द्वारा कोई नया प्रदेश नही जीता, तथापि १८३० ई० मे कछार (आसाम) के उत्तराधिकारियोका आपसमें कोई निर्णय न होनेपर उसपर कब्जा कर लिया गया, इसी प्रकार १८३४ ई० मे शासकीय अयोग्यताके कारण दक्षिणका कुर्ग इलाका एव १८३५ ई० मे आसामका जयन्तिया परगना ब्रिटिश भारतमे मिला लिया गया, क्योंकि उसके शासकने उन आदमियोको सौंपनेसे इकार कर दिया था जो ब्रिटिश नागरिकोको उडा ले गये थे और कालीदेवीके आगे उनकी वलि चढ़ा दी थी।

सामान्यत, लार्ड वेण्टिकने देशी रियासतोंके मामलोंमे

हस्तक्षेप न करनेकी नीतिका अनुसरण किया। लेकिन १८३१ ई० मे मैसूर नरेशके लम्बे कुशासनके कारण उसके राज्यको ब्रिटिश प्रशासनके अन्तर्गत ले लिया गया। बेण्टिक भारतीय साम्राज्यके विभिन्न प्रातोकी स्वय जानकारी रखनेके उद्देश्यसे बहुत अधिक दौरे किया करता था। १८२९ ई० मे वह मलय प्रायद्वीप गया और उसकी राजधानी पेनागसे सिंगापुर स्थानान्तरित कर दी। इग्लैण्डकी सरकारके निर्देशपर उसने सिंध-के अमीरोसे व्यावसायिक सधियाँ की, जिसके फलस्वरूप सिन्धुका जलमार्ग अग्रेजोकी जहाजरानीके लिए खुल गया। १८३१ ई० में उसने पजाबके महाराज रणजीत सिंहसे सधि की, जिसके फलस्वरूप अग्रेजो और महाराज-के बीच स्थायी मैत्री स्थापित हो गयी। महाराजने सतलज और ऊपरी सिन्धके मार्गसे व्यापारको प्रोत्साहित करना स्वीकार कर लिया। उसके द्वारा एक गलत नीति-का सूत्रपात इस रूपमे हो गया कि अमीर दोस्त मोहम्मद-से अफगानिस्तानकी राजगद्दी प्राप्त करनेके लिए निर्वासित शाह शुजाको प्रोत्साहित किया गया। इस गलत नीतिके फलस्वरूप १८३८–४२ ई० मे प्रथम अफगान-युद्धमे अग्रेजोको भारी क्षति उठानी पडी और सिंधको अग्रेजी राज्यमे मिला लिया गया।

बेण्टिकके शासनका महत्त्व उसके प्रशासकीय एव सामाजिक सुधारोके कारण है, जिनके फलस्वरूप वह बहुत लोकप्रिय हुआ। इनका आरम्भ सैनिक और असैनिक सेवाओमे किफायतशारी बरतनेसे हुआ। उसने राजस्व, विशेषकर अफीमके एकाधिकारसे होनेवाली आयमे भारी वृद्धि की। फलतः जिस वार्षिक बजटमे घाटे होते रहते थे, उनमें बचत होने लगी। उसने भारतीय सेनामे प्रचलित कोडे लगानेकी प्रथाको समाप्त कर दिया। भारतीय नदियोमें स्टीमर चालू किये, आगरा क्षेत्रमे कृषि भूमिका बन्दोबस्त कराया, जिससे राजस्वमे वृद्धि हुई, तथा किसानो द्वारा दी जानेवाली मालगुजारी-का उचित निर्धारण कर उन्हे अधिकारोके अभिलेख दिलवाये। बेण्टिकने लार्ड कार्नवालिसकी भारतीयोको कम्पनीकी निम्न नौकरियोको छोडकर ऊंची नौकरियोसे अलग रखनेकी गलत नीतिको उलट दिया और भारतीयोकी सहायक जज जैसे उच्च पदोपर नियुक्तियाँ की। जिला मजिस्ट्रेट तथा जिला कलक्टरके पदको मिलाकर एक कर दिया, प्रादेशिक अदालतोको समाप्त कर दिया, भारतीयोकी नियुक्तियाँ अच्छे वेतनपर डिप्टी मजिस्ट्रेट जैसे प्रशासकीय पदोपर की तथा डिवीजनल कमिश्नरो (मडल आयुक्त) के पदोकी स्थापना की। इस प्रकार उसने भारतीय प्रशासकीय ढांचेको उसका आधुनिक रूप प्रदान किया।

लार्ड बेण्टिकके सामाजिक सुधार भी कुछ कम महत्वके नही थे। १८२९ ई० मे उसने सती प्रथाको समाप्त कर दिया। कर्नल स्लीमनके सहयोगसे उसने ठगीका भी उन्मूलन किया। उस समय ठगोका देशव्यापी गुप्त सगठन था, वे देश भरमे घूमा करते थे और भोले-भाले यात्रियोकी रुमालसे गला घोटकर हत्या कर दिया करते थे और उनका सारा मालमत्ता लूट लेते थे। १८३२ ई० मे धर्म-परिवर्तनसे होनेवाली सभी अयोग्यताओको समाप्त कर दिया गया। १८३३ ई० मे कम्पनीके अधिकार पत्रको अगले बीस वर्षोके लिए नवीन कर दिया गया। इससे कम्पनी चीनके व्यवसायपर एकाधिकार-से वचित हो गयी। वह अब मात्र प्रशासकीय सस्था रह गयी। नये चार्टर एक्ट द्वारा अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। बगालके गवर्नर-जनरलका पद नाम बदलकर भारतका गवर्नर-जनरल कर दिया गया। गवर्नर-जनरल की कौसिलकी सदस्य सख्या बढाकर चार कर दी गयी तथा यह सिद्धात निर्दिष्ट किया गया कि कोई भी भारतीय, मात्र अपने धर्म, जन्म अथवा रगके कारण कम्पनी-के अन्तर्गत किसी पदसे, यदि वह उसके लिए योग्य हो, वचित नही किया जायेगा। १८३२ ई० के चार्टर एक्ट-मे यह निर्देश दिया गया था कि भारतीयोमे शिक्षाका प्रसार करनेके लिए उचित कदम उठाये जाने चाहिए। अत लार्ड विलियम बेण्टिकने आदेश दिया कि भविष्यमे सरकार द्वारा सचालित स्कूलोमे शिक्षाका माध्यम अग्रेजी होनी चाहिए और भारतीयोमे पश्चिमी शिक्षाका प्रसार करनेके लिए और अधिक धन खर्च किया जाना चाहिए। लार्ड विलियम बेंटिकने १८३५ ई० मे कलकत्ता मेडिकल कालेजकी स्थापना की। उसी वर्ष मार्चके महीनेमे वह अपने उच्च पदसे सेवा-निवृत हो गया। लार्ड विलियम बेण्टिकने अपने प्रशासनकालमे जिस उदारता तथा सहानुभूतिका परिचय दिया, उसके फलस्वरूप भारतीयोमे उसे अपने किसी भी पूर्वाधिकारीकी अपेक्षा अधिक लोकप्रियता मिली। (**थार्न्टन–हिस्ट्री आफ इण्डिया; मार्शमैन–हिस्ट्री आफ इण्डिया; डी० बूलगर० डी०–लाइफ आफ लार्ड बेण्टिक**)

बेथ्यून, जान इलियट ड्रिन्कवाटर (१८०६–६२)–भारत-की सर्वोच्च परिषद्‌का विधि-सदस्य। उसने भारतीयो, विशेषकर महिलाओके लिए शिक्षा-प्रसारके कार्यमे

काफी रुचि ली और कलकत्तामें उच्च वर्गकी भारतीय लड़कियोंमें पश्चिमी शिक्षाका प्रसार करनेके लिए बेथ्यून स्कूलकी स्थापना की। आगे चलकर इस संस्थाका स्तर पर्याप्त ऊँचा उठ गया और आजकल कलकत्ताका यह प्रसिद्ध बालिका महाविद्यालय हो गया है।

बेदारा (बिदर्रा) की लड़ाई—नवम्बर, १७५९ ई०में छिड़ी। कलकत्तासे कुछ मील दूर चिनसुरामें रहनेवाले डच लोग अंग्रेजोंको अपदस्थ करना चाहते थे। उन्होंने नवाब मीरजाफरके साथ साँठ-गाँठकर जावा-स्थिति अपनी बस्तियोंसे सैनिक सामग्री मँगानेका प्रयास किया। राबर्ट क्लाइवने जो उस समय बंगालका गवर्नर था, डचोंके इरादेका पूर्वानुमान लगाकर उन्हें चिनसुराके निकट बेदाराकी लड़ाईमें पराजित कर दिया। इससे डचोंकी प्रभुताकी सभी सम्भावनाएँ नष्ट हो गयी और बंगालमें अंग्रेजोंका कोई यूरोपीय प्रतिस्पर्द्धी शेष नहीं रह गया।

बेनफील्ड, पाल—एक सूदखोर अंग्रेज महाजन जिसने कर्नाटकके नवाबपर ईस्ट इंडिया कम्पनीके प्रभुत्वकालके आरम्भिक वर्षोंमें नवाबको व्याजकी अत्यधिक ऊँची दरोंपर ऋण दिया था। बेनफील्डका बोर्ड आफ कन्ट्रोलके अध्यक्ष विलियम डुंडासपर काफी प्रभाव था। डुंडासने कार्यकारी गवर्नर-जनरल सर जान मैक्फर्सनको प्रभावित कर उससे आदेश दिलवा दिया कि नवाबपर लदे कर्जका भुगतान बिना जाँच-पड़तालके बेनफील्ड तथा अन्य लोगोंका कर्नाटकके राजकोषसे करा दिया जाय। कर्ज लगभग पचास लाख पौंडका था। यह भ्रष्टाचारका लज्जाजनक दृष्टान्त था जो डण्डासके आदेशपर किया गया।

बेबादल खाँ—आगराका प्रसिद्ध और उत्कृष्ट जौहरी। बादशाह शाहजहाँके आदेशपर तख्त-ए-ताऊसका निर्माण उसीकी देखरेखमें हुआ था।

बेरीगाजा—पश्चिम समुद्र तटवर्ती नगर भड़ौचका यूनानी नाम। इसका प्राचीन नाम भृगुकच्छ था। प्राचीनकालमें यह व्यस्त बन्दरगाह था। यहाँसे पश्चिममें मैडागास्कर और पूर्वमें पूर्वी द्वीपसमूह तक जहाज जाते थे।

बेली, कर्नल—ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेनाका एक अधिकारी। दूसरे आंग्ल-मैसूर युद्धके दौरान नवाब हैदरअलीके पुत्र टीपूने काँजीवरम्के निकट कर्नल बेली और उसके ३७२० सिपाहियोंको घेर लिया। उसके बहुतसे सैनिक मारे गये और बेली बन्दी बना लिया गया। बादमें उसको रिहा कर दिया गया, लेकिन इस पराजयके बाद उसे किसी महत्त्वपूर्ण पदपर नियुक्त नहीं किया गया।

बेली, बटरवर्थ—लार्ड एम्हर्स्टके प्रशासनकालमें गवर्नर-जनरलकी कौंसिलका वरिष्ठ सदस्य। मार्च १८२८ ई० में एम्हर्स्ट द्वारा त्यागपत्र दे देनेपर जुलाई १८२८ ई० तक, जब लार्ड विलियम बेण्टिकने गवर्नर-जनरलका कार्यभार सम्हाला था, यह कार्यकारी गवर्नर-जनरल रहा। उसके अल्प प्रशासनकालमें कोई उल्लेखनीय घटना नहीं घटी।

बेसनगर—पूर्वी मालवा-स्थित प्राचीन नगर विदिशाका आधुनिक नाम। शुंग राजाओंके शासनकालमें इसका बहुत महत्त्व था और बादमें भी अनेक वर्षो तक यह स्थानीय शासकोंकी राजधानी बना रहा। यहाँके शासकोंने भारतकी पश्चिमोत्तर सीमापर स्थित यवन (यूनानी) शासकोंके साथ राजनीतिक सम्बन्ध बना रखे थे। यहाँ भगवान वासुदेवके सम्मानमें तक्षशिलाके राजा एंटिआलकिडसके राजदूत हेलियोडोरोस द्वारा लगभग १३५ ई० पू० में एक गरुड़ध्वज स्थापित कराया गया था।

बेसीन—बर्मामें इरावदी नदीके पश्चिमोत्तर कोणमें स्थित एक बन्दरगाह, जिसको ब्रिटिश भारतीय सेनाने द्वितीय बर्मी-युद्ध के समय मई, १८५२ ई० में अपने अधिकारमें कर लिया था।

बेसेन्ट, श्रीमती एनी (१८४७-१९३३ ई०)—थियोसोफिकल विचारधाराकी सुप्रसिद्ध प्रचारिका। लन्दनके विलियम पेजउडकी पुत्री, अक्तूबर १८४७ ई०में जन्म। बीस वर्षकी उम्रमें रेवरेंड फ्रैंक बेसेंटके साथ उनका विवाह हुआ, किन्तु यह विवाह-सम्बन्ध सुखदायी नहीं सिद्ध हुआ। अतः श्रीमती बेसेण्टने १८७३ ई०में अपने पतिसे सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। अगले ग्यारह वर्षो तक चार्ल्स ब्राडलाके घनिष्ठ सम्पर्कमें रहकर वे राजनीतिक तथा स्वतन्त्र विचारोंकी प्रचारिका बन गयी। इस दिशामें उन्होंने अनेक व्याख्यान दिये और 'अजैक्स'के उपनामसे लेख लिखे। धीरे-धीरे उनके विचार क्रान्तिकारी समाजवादकी ओर मुड़ गये। फलस्वरूप १८८९ ई०में उनके तथा चार्ल्स ब्राडलाके बीच गम्भीर मतभेद उत्पन्न हो गया। तदनन्तर उनकी दृढ़ निष्ठा थियोसफी (ब्रह्मविद्या) में हो गयी, वे हेलेने ब्लावत्सकीके निकट सम्पर्कमें आयीं और भारतको उन्होंने अपना घर बना लिया। उन्होंने बनारसमें सेन्ट्रल हिन्दू कालेज नामसे विशाल शिक्षाकेन्द्र स्थापित किया। १९०७ ई०में वे थियोसोफिकल सोसायटीकी अध्यक्ष निर्वाचित हुई। १९१६ ई०में उन्होंने इंडियन होमरूल लीगकी स्थापना की और उसकी प्रथम अध्यक्ष बनीं। १९१७ ई०में भारतीय राष्ट्रीय

काग्रेसके कलकत्ता अधिवेशनकी अध्यक्ष बनायी गयी। बादमे उन्होने अपनेको यद्यपि काग्रेसके गरमदलसे अलग कर लिया था, तथापि भारत सरकार उन्हे खतरनाक व्यक्ति मानती थी और १९१७ ई०मे उन्हें कुछ समयके लिए नजरबद भी रखा गया। 'मान्टेग्यू सुधारो'की घोषणा होनेपर श्रीमती बेसेन्टने पहले उनका समर्थन किया, किन्तु थोडे समयके वाद उन्होने उग्र राष्ट्रवादियो-के दृष्टिकोणका जोरदार समर्थन आरम्भ कर दिया। इसी बीच उन्होने अपने धर्मपुत्र जे० कृष्णमूर्तिको भावी विश्व-गुरुके रूपमे प्रतिष्ठित किया और नये अध्यात्मवादी दलकी स्थापना की। १९२६-२७ ई०मे श्रीमती एनी बेसेन्टने कृष्णमूर्तिके साथ इग्लैड और अमेरिकाका व्यापक भ्रमण किया और अपने जोशीले भाषणोमे उनके नये मसीहा होनेके दावेका समर्थन किया। भारत लौटने पर बालक कृष्णमूर्तिके पिताके साथ उनकी मुकदमेवाजी शुरू हो गयी। इस काडसे उनकी प्रतिष्ठाको काफी धक्का लगा। १९३३ ई०मे भारतमे उनका निधन हुआ। अपनी भाषण-पटुता, सगठन-क्षमता और स्वाधीनता-प्रेमके कारण वे भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलनकी अग्रगामी नेता बन गयी, यह निश्चय ही एक अग्रेज महिलाके लिए अभूतपूर्व सम्मान था। प्रतिभा-सम्पन्न लेखिका और स्वतन्त्र विचारकके नाते उन्होने ब्रह्म विद्यापर प्रचुर रूपमे लिखा है। उन्होने अपनी आत्मकथा १८९३ ई०मे प्रकाशित की थी, और १९०२ ई०मे प्रकाशित 'रिलीजस प्राबलेम इन इडिया' (भारतमे धार्मिक समस्या)उनकी अन्तिम महान् साहित्यिक कृति थी। 'हाऊ इडिया राट फार फ्रीडम'मे उन्होने भारतको अपनी मातृभूमि बताया है।

बेस्ट, कप्तान—अग्रेजोके लडाकू जहाज 'ड्रैगॉन'का कप्तान। नवम्बर १६१२ ई०मे एक अन्य छोटे जहाज 'ओसिया-न्दर'के सहारे उसने हिन्द महासागरमे पुर्तगाली वेडेको, जिसमे चार वडे और पचीस छोटे जहाज थे, हरा दिया। इसी घटनासे भारतीय राजनीतिमे अग्रेजी जहाजी वेडेका दवदवा छा गया, क्योकि इस लड़ाईकी खवरसे मुगल बादशाह जहाँगीरका यह पुराना ख्याल जाता रहा कि यूरोपियन शक्तियोमे पुर्तगाली सबसे शक्तिशाली हैं।

बैक्ट्रिया (बाख्त्री)—हिन्दू कुश और आक्सस नदीके बीच-का क्षेत्र। यह क्षेत्र सीरियाके सिल्यूकीडियन साम्राज्य-का अग था, लेकिन २०२ ईसा पूर्वमे यहाँ युथिडिमास नामक यवन राजाने अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया। उसके उत्तराधिकारी डेमेट्रिअसने अफगानिस्तान और पजाबके क्षेत्रको जीत लिया। यूनानी इतिहासकारोने उसे भारतका राजा लिखा है। उसने बैक्ट्रियाके यवनो और पश्चिमोत्तर भारतके लोगोमे निकट सम्पर्क स्थापित कर दिया। शीघ्र ही उत्तर-पश्चिमी भारतके विभिन्न भागोमे भारतीय-यवन राजाओके छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गये, जिनमे मेनाण्डर सबसे अधिक विख्यात है। बैक्ट्रियाके साथ इस सम्पर्कके परिणामस्वरूप भारतीय कलापर यवन प्रभाव पड़ा और मूर्तिकलाकी गधार-शैलीका विकास हुआ।

बैजावाई महारानी—दौलतराव सिंधिया (दे०) की पत्नी। १८२७ ई०मे दौलतरावकी मृत्युके बाद वह नाबालिग उत्तराधिकारी जनकोजीरावकी सरक्षिका बनी। वह बडी महत्त्वाकाक्षी महिला थी और सारा राज्य-प्रबध अपने नियत्रणमे रखना चाहती थी। इसी वजहसे राज्य-प्रबधमे छल-कपट और गडबडी बढ गयी और उसके परिणाम-स्वरूप १८३३ ई०मे उसको राज्यसे निकाल दिया गया।

बैरकपुरका विद्रोह—बैरकपुर छावनीमे दो बार विद्रोह हुआ। पहला १८२४ ई०मे और दूसरा १८५७ ई०मे हुआ। यह छावनी हुगलीके किनारे कलकत्तासे १५ मील उत्तर स्थित थी। यहाँ गवर्नर-जनरलका देहाती निवास-स्थान था और कम्पनीकी कुछ रेजीमेन्टे भी यहाँ रहती थी। १८२४ ई०मे भारतीय सेनाका एक दस्ता प्रथम आग्ल-बर्मी युद्ध (१८२४-२६ ई०)मे लडनेके लिए भेजा जानेवाला था। भारतीय सेनाके सिपाही जो इस दस्तेमे थे, उन्हें उस समयके नियमोके अनुसार अपनी यात्राकी व्यवस्था खुद करनी थी जो यदि असम्भव नही तो भी बहुत कठिन कार्य था। लेकिन इस कठिनाईको दूर करने-के लिए कुछ नही किया गया। इसके अलावा हिन्दू सिपाही समुद्री यात्रासे भयभीत रहते थे, क्योकि उनका विश्वास था कि समुद्री यात्रा करनेसे वे जातिच्युत हो जायेगे। अतः ४७ वी नेटिव इन्फेन्टरी तथा बैरकपुर स्थित कुछ अन्य रिसालोने परेडके मैदानमे आदेशोका पालन करनेसे इकार कर दिया। पर अग्रेज तोपचियो तथा इसके बदूकधारी ब्रिटिश रिसालोको उनपर गोली वर्षाका आदेश दिया गया, जिससे परेडके मैदानमे बूचड-खानेका दृश्य उपस्थित हो गया। इस घटनासे ईस्ट इडिया कम्पनीकी सेनाके भारतीय सैनिकोमे अग्रेजोके विरुद्ध भारी कटुता फैल गयी। बैरकपुरमे सिपाहियोकी दूसरी बगावत २९ मार्च, १८५७ ई०को हुई, जब मगल पाडे नामक ३४ वी नेटिव इन्फेन्टरीके एक सिपाहीने अपनी रेजिमेन्टके यूरोपीय एड्जुटेन्टको परेड मैदानपर

सभी सहयोगियोके सामने काट डाला और कोई सिपाही अपने स्थानसे हिला तक नही। तत्काल ब्रिटिश सैनिकोंको वुलाया गया और विद्रोहियोको या तो मार डाला गया या उन्हें कठोर रूपमे दडित किया गया। इस वगावतसे वैरकपुर स्थित भारतीय सिपाहियोमे काफी उत्तेजना फैल गयी और अन्तमे उसने व्यापक सिपाही-विद्रोहका रूप ग्रहण कर लिया, जिससे ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यकी नीव हिल गयी।

वैरम खाँ–वादशाह हुमायूँका सहयोगी तथा उसके नावालिग पुत्र अकवरका वली अथवा सरक्षक। १५५६ ई० मे हुमायूँकी मृत्यु होनेपर वैरम खाँने अकवरको उसका उत्तराधिकारी तथा दिल्लीका वादशाह घोषित कर दिया, लेकिन शीघ्र ही दिल्ली उसके हाथसे निकल गयी। वैरम खाँके सेनापतित्वमे ही १५५६ ई० मे पानीपतकी दूसरी लडाईमे अकवरकी विजय हुई और दिल्लीके तख्तपर उसका अधिकार हुआ। इसके वाद चार वर्ष वाद तक वैरम खाँ अकवरका सरक्षक रहा और इस अवधिमे मुगल सेनाओने ग्वालियर, अजमेर और जौनपुर राज्योको जीत कर मुगल साम्राज्यमे उन्हे शामिल कर लिया। वैरम खाँने मालवा जीतनेकी तैयारियाँ भी शुरू कर दी। परन्तु इस वीच वहुतसे दरवारी और स्वय अकवर उसके विरुद्ध हो चुका था। अकवर १८ वर्षका हो चुका था और उसके हाथकी कठपुतली वनकर नही रहना चाहता था। अत १५६० ई० मे उसने वैरम खाँको वर्खास्त कर दिया। वैरम खाँने पहले तो उसकी आज्ञा चुपचाप मान ली और मक्का जानेकी तैयारियाँ शुरू कर दी, परन्तु इसके वाद ही उसने वगावतका झडा वुलन्द कर दिया। अकवरने उसे परास्त कर दिया और उसके साथ दयाका वर्ताव किया। उसने उसे मक्का जानेकी इजाजत दे दी। परन्तु १५६१ ई० मे मक्का जाते समय मार्गमे पाटन (गुजरात) मे एक पठानने उसकी हत्या कर दी। वादमे उसका पुत्र अब्दुर्रहमान अकवरका प्रमुख दरवारी वना।

वैर्ड, सर डेविड–लार्ड वेलेजली (१७९८–१८०५ ई०) के शासनकालमे कम्पनीकी सेनाका उच्च अधिकारी। १८०१ ई० मे वैर्डके नेतृत्वमे अग्रेजी सेना लालसागर भेजी गयी जिससे मिस्रसे फ्रासीसियोको निकालनेमे मदद पहुँचायी जा सके। वैर्डके काहिरा पहुँचनेके पहले ही फ्रासीसियोने सिकन्दरियामे आत्मसमर्पण कर दिया था। लेकिन वैर्डने सेनाका सचालन वडी योग्यतासे किया, इस वजहसे उसे 'सर' की उपाधिसे विभूपित किया गया।

वोइन, वेनोय द (१७५१-१८३०)–सेवाय (फ्रास) मे जन्म। सैनिकका पेशा ग्रहण कर उसने १७७८ ई० मे ईस्ट इडिया कम्पनीकी मद्रासी पलटनमे नौकरी कर ली। कुछ समय वाद यहाँसे निकल कर महादजी शिन्देके यहाँ नौकर हो गया और शिन्देकी सेनाओको यूरोपीय युद्ध-कलाकी शिक्षा देने लगा। इस कार्यके लिए उसे वहुत अधिक वेतन मिलता था। वोइनकी ही सहायतासे शिन्दे ने जून १७९० ई० मे पाटनका युद्ध जीता और मेडताके युद्ध (सितम्वर १७९० ई०) मे पठानो, राजपूतो और मुगलोको एक साथ पराजित किया। इसके वाद वह शिन्देका सेनाध्यक्ष हो गया। उसने लखेरीके युद्ध (सितम्वर १७९३ ई०) मे होलकरको पराजित किया। १७९४ ई० मे महादजी शिन्देकी मृत्युके पश्चात् वोइनने उसके उत्तराधिकारी दौलतराय शिन्देकी सेवा शुरू की, लेकिन स्वास्थ्य खराव हो जानेके कारण दिसम्वर १७९५ ई० मे त्यागपत्र दे दिया। दूसरे वर्ष वह लदन होकर फ्रास गया तथा वही वस गया। १८३० ई० मे मृत्युके उपरान्त उसने २ करोड फ्रैंककी सम्पत्ति छोडी।

वोगाज कोई–एशिया माइनरमे एक स्थान, जहाँ महत्त्वपूर्ण पुरातत्त्व सम्वन्धी अवशेष प्राप्त हुए हैं। वहाँके शिलालेखोमे जो चौदहवी शताब्दी ई० पू० के वताये जाते हैं, इन्द्र, दशरथ, आर्त्ततम आदि आर्यनामधारी राजाओका उल्लेख है और इन्द्र, वरुण और नासत्य आदि आर्य देवताओसे सधियोका साक्षी होनेकी प्रार्थना की गयी है। इस प्रकार वोगाज कोईसे आर्योके निष्क्रमण मार्गोंका सकेत मिलता है। (हाल–हिस्ट्री आफ इजिप्ट)

वोग्ले, जार्ज–ईस्ट इडिया कम्पनीका वगालमे स्थित एक अधिकारी, जिसे १७७४ ई० मे गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्सने व्यावसायिक सुविधाएँ प्राप्त करनेके लिए पहले पहल तिव्वत भेजा था। उसे अपने उद्देश्यमे नगण्य सफलता मिली।

वोदापाया- वर्माका राजा (१७७९–१८१९ ई०) जिसने १७८५ ई० मे अराकानको और १८१३ ई० मे मणिपुरको अपने राज्यमे मिला लिया तथा १८१६ ई० मे आसामपर चढाई की। तदनन्तर उसने ब्रिटिश भारत सरकारसे चटगाँव, ढाका तथा मुर्शिदावाद समर्पित कर देनेकी माँग की, किन्तु स्यामियोके हाथो पराजित हो जानेसे उसकी महत्त्वाकाक्षाओपर लगाम लग गयी और १८१९ ई० मे उसकी मृत्यु हो गयी। लार्ड हेस्टिंग्सने, जो उस समय गवर्नर-जनरल था, वर्मी राजाका पत्र इस टिप्पणीके साथ वापस कर दिया कि कदाचित् यह नकली

है। इस प्रकार कुछ समयके लिए आँग्ल-बर्मी युद्ध टल गया।

बोध गया—बिहारके आधुनिक गया नगरसे ६ मील दक्षिण नैरजना नदीके तटपर स्थित। यहाँ बोधि वृक्षके नीचे सिद्धार्थ गौतमको बोधि प्राप्त हुई जिससे वे 'बुद्ध' कहे जाने लगे। बौद्धोका यह पवित्र तीर्थ स्थान है। आठवें स्तम्भ-लेखके अनुसार सम्राट् अशोक अपने राज्यभिषेक-के दसवे वर्ष यहाँ आया था। अशोकने बोध गयामे एक विहार भी निर्मित कराया। कालातरसे यह स्थान बौद्धोके लिए तीर्थ बन गया और भारतसे बाहरके बौद्ध तीर्थ-यात्रियोका भी यहाँ आना आरम्भ हो गया। समुद्रगुप्त (३३५–७५ ई०) के शासनकालमे सिंहलद्वीप-के राजा मेघवर्णने भी गुप्त सम्राट्की अनुमतिसे यहाँ एक विहार निर्मित कराया था। लेकिन ४०५–११ ई० मे भारत-भ्रमण करनेवाले चीनी यात्री फाह्यानने इस स्थानको जगलोसे घिरा हुआ पाया। सातवी शताब्दीके आरम्भमे इस स्थानपर और सकट उस समय आया जब गौड अथवा मध्य बगालके राजा शशाकने जो बौद्ध धर्म से द्वेष करता था, पवित्र बोधिवृक्षको कटवा कर जलवा दिया। बादमे ह्युएनसागके अनुसार मगधके स्थानीय राजा पूर्णवर्मा द्वारा, जिसे अशोकका बशज बताया गया है, यहाँ दूसरा वृक्ष लगाया गया। इस स्थानकी अब समुचित देखरेख होती है, यहाँ अच्छा विश्रामालय बन गया है और देश देशान्तरोसे बौद्ध तीर्थयात्री यहाँ निरन्तर आते रहते है। (स्मिथ०—पृष्ठ ३०३, ३१६, ३६७)

बोधिसत्त्व—बौद्धोके महायान सम्प्रदायके अनुसार जो अर्हत बुद्धपदवी पानेके अधिकारी होनेपर भी महाकरुणासे प्रेरित होकर सबके दु.खनाशके लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देते हैं, वे 'बोधिसत्व' कहलाते है। महा-यानियोमे बुद्धोके साथ-साथ बोधिसत्त्वोकी पूजा और भक्तिका विशेष स्थान है। (सर सी० ईलियट कृत हिन्दुइज्म एण्ड बुद्धिज्म)

बोप देव—सस्कृतका एक प्रसिद्ध वैयाकरण और कवि जो देवगिरिके पश्चात्कालीन यादव नरेशोके समय विद्यमान था। उसका रचा हुआ 'मुग्धबोध' सस्कृत व्याकरणका मानक ग्रथ माना जाता है।

बोरोबुदुर—जावा द्वीपका सर्वाधिक प्रसिद्ध बौद्ध स्तूप, जिसे ७५०–८५४ ई० मे शैलेन्द्र राजवशके एक शासक-ने बनवाया था। इसके निर्माताका नाम ज्ञात नही है और न इसके निर्माणकी तिथि ज्ञात है। बोरोबुदुर स्तूप आज भी शैलेन्द्र राजाओके वैभवपूर्ण युगके स्मारकके रूपमे विद्यमान है। इसे ससारका आठवाँ आश्चर्य माना जा सकता है। इसकी वास्तुशैलीपर भारतीय प्रभाव सुस्पष्ट है। यह एक पहाडीकी चोटीपर स्थित है।

इसमे ९ खड है जो उत्तरोत्तर एक दूसरेसे छोटे बनाये गये हैं। शीर्षस्थ खडपर घटेकी आकृतिका स्तूप है। इसका आकार अति विशाल है। सबसे नीचेके चौकोर खडकी लम्बाई १३१ गज है। बुद्धकी अनेक मूर्तियाँ इसके शिलापट्टोपर उत्कीर्ण है। प्रदक्षिणा-मार्गके शिला-पट्टोपर बुद्धके जीवनकी अनेक घटनाएँ उत्कीर्ण है, जिनमेसे कुछ 'ललित विस्तर' से ली गयी है। यह स्तूप जावा और उसके पडोसके द्वीपोपर शासन करनेवाले भारत वशी राजाओकी वास्तुशिल्पीय परिकल्पनाकी भव्यताका उत्कृष्ट उदाहरण है। (आर० सी० मजूमदार—सुवर्णद्वीप, जिल्द दो तथा ए० के० कुमार स्वामी—हिस्ट्री आफ इडियन एण्ड इडोनेशियन आर्ट)

बोर्ड आफ कन्ट्रोल—भारतमे ईस्ट इडिया कम्पनीके प्रशासन-को ब्रिटिश सरकार द्वारा नियन्त्रित करनेके लिए १७८४ ई०के पिटके इडिया ऐक्टके अन्तर्गत गठित। प्रिवी कौंसिल-के मेम्बरोमेसे छ. व्यक्ति इसके सदस्य हुआ करते थे, जिन्हे इस कार्यके लिए कोई पारिश्रमिक नही दिया जाता था। उनमेसे ही एक इसका अध्यक्ष होता था, जिसे निर्णायक मताधिकार प्राप्त था। बोर्डको नियुक्तियाँ करने अथवा वाणिज्य सम्बन्धी मामलोमे हस्तक्षेप करने-का कोई अधिकार नही था। लेकिन भारत सरकारके समस्त असैनिक अथवा सैनिक मामलो तथा राजस्वसे सम्बन्धित समस्त मामलोकी देख-रेख, निर्देश और उनके नियत्रणका अधिकार उसीके हाथमे था। कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सके द्वारा ईस्ट इडिया कम्पनीको जो खरीते भेजे जाते थे, उनपर इसकी सहमति प्राप्त होना आव-श्यक था। वह बोर्ड आफ डाइरेक्टर्सकी बिना स्वीकृतिके स्वय भी आदेश भेज सकता था। बोर्ड आफ कन्ट्रोलका प्रथम अध्यक्ष हेनरी डुण्डास, पिटका एक मित्र तथा उसके मत्रिमडलका सदस्य था। डुण्डासके बुद्धिमत्तापूर्ण कार्योके फलस्वरूप अध्यक्ष पदको शीघ्र ही सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इडिया (भारत-मत्री) के समकक्ष बना दिया। इस प्रकार शनै-शनै भारतके प्रशासनपर बोर्ड आफ कन्ट्रोलकी सत्तामे काफी वृद्धि हो गयी। गदरके उपरान्त जब १८५९ के कानूनके अन्तर्गत भारतका प्रशासन ब्रिटिश राजसत्ताको हस्तान्तरित किया गया, तब बोर्ड आफ कन्ट्रोलको समाप्त कर दिया गया। उसका अध्यक्ष सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इडिया (भारत-

मत्री) हो गया और बोर्डका विलयन उसकी भारत परिषद्मे कर दिया गया। लार्ड एलनबरा बोर्ड आफ कट्रोलका अन्तिम अध्यक्ष था। (सर सी० इलबर्ट—गवर्नमेण्ट आफ इंडिया, बी० कीथ—कास्टीट्यूशनल हिस्ट्री आफ इंडिया)

बोर्ड आफ ट्रेड—ईस्ट इंडिया कम्पनीके वरिष्ठ अधिकारियोका एक सगठन, जो भारतके प्रशासनके साथ-साथ कम्पनीकी व्यापारिक कारवाइयोको भी नियत्रित करता था। इसके सभी मेम्बर व्यक्तिगत रूपसे व्यापारमे रुचि लेते थे, उनके प्रत्यक्ष अथवा परोक्षके समर्थनसे ईस्ट इंडिया कम्पनीके सभी कर्मचारी निजी व्यवसाय करने लगे, जिससे देश और साथ ही कम्पनीको भी काफी आर्थिक क्षति होती थी। लार्ड कार्नवालिसके आरम्भिक कार्योमे इसको नियत्रित करनेका काम सबसे महत्त्वपूर्ण था। उसने पहले इसके भ्रष्ट सदस्योको निकाल दिया और इसका पुनर्गठन कर ऐसे सदस्योको उसमे रखा जिनका प्रशासनसे कोई सरोकार नही था। इस प्रकार बोर्ड कम्पनीके केवल व्यावसायिक कार्योकी ही देखरेख करता था। धीरे-धीरे इसका महत्त्व कम होता गया क्योकि कम्पनीके व्यापारिक अधिकार सीमित थे और १८३३ ई०मे व्यावसायिक सगठनके रूपमे ईस्ट इंडिया कम्पनीके समाप्त किये जानेपर यह भी समाप्त हो गया।

बोर्ड आफ रेवेन्यू (राजस्व परिषद्)—इसका गठन १७७२ ई०मे वारेन हेस्टिंग्सने उस समय किया जब ईस्ट इंडिया कम्पनी दीवानीका कार्य कर रही थी। दो नायब दीवानोके पद समाप्त कर दिये गये और आरम्भमे गवर्नर तथा उसकी परिषद्ने राजस्व परिषद्के रूपमे कार्य शुरू किया, किन्तु १७८७ ई०मे इसे पुनर्गठित किया गया। गवर्नरकी परिषद्का एक सदस्य इसका अध्यक्ष तथा कम्पनीके कुछ वरिष्ठ अधिकारी सदस्य बनाये गये। लार्ड कार्नवालिसने सर जान शोरकी नियुक्ति राजस्व परिषद्के अध्यक्षके रूपमे की और उसको बगालमे भू-राजस्वकी दीर्घकालिक प्रणाली शुरू करनेके बारेमे रिपोर्ट प्रस्तुत करनेकी जिम्मेदारी सौंपी। शोर बन्दोबस्तके विरुद्ध था किन्तु लार्ड कार्नवालिसके अनुरोधपर बगालमे भू-राजस्वकी स्थायी प्रणाली चालू करायी गयी। इस व्यवस्थासे कलकत्ता स्थित राजस्व-परिषद्का महत्त्व बढ गया और एक सुयोग्य अधिकारीकी अधीनतामे उसने अपना कार्य भी जारी रखा। राजस्व परिषद् आज भी कार्यरत है और उसका प्रभारी अधिकारी वरिष्ठ प्रशासकोमेसे ही होता है। इसका सम्बन्ध मुख्यत मालके मामलोमे ही रहता है।

बोलन दर्रा—सिन्धुके मैदानको अफगानिस्तान स्थित कलात और कन्धारके क्षेत्रोसे जोडनेवाला सकीर्ण मार्ग। इसपर कब्जा रखना उन अनेक कारणोमे मुख्य माना जाता था जिनमे उन्नीसवी शताब्दीमे आग्ल-अफगान सम्बन्ध प्रभावित होते थे।

बोस, आनन्द मोहन (१८४७-१९०६ ई०)—अपने समयके प्रमुख जनसेवी। मेमनसिंह जिलेके मध्यवर्गीय हिन्दू परिवारमे जन्म। शिक्षा प्रेसीडेन्सी कालेज कलकत्तामे हुई। १८६७ ई०मे गणितमे प्रथम श्रेणीमे प्रथम स्थान प्राप्त कर 'प्रेमचन्द रायचन्द छात्रवृत्ति' पायी। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयमे १८७३ ई०मे रैंगलर होनेवाले प्रथम भारतीय। १८७४ ई०मे बैरिस्टर बनकर स्वदेश लौट आनेपर इन्होने अपनी बहुमुखी प्रतिभाका राजनीतिज्ञ, शिक्षाविद् और धार्मिक सुधारकके रूपमे देशकी सेवामे उत्सर्ग कर दिया। वे इंडियन एसोसियेशनके, जिसकी स्थापना कलकत्तामे १८७६ ई०मे की गयी थी, प्रथम सस्थापक सचिव थे।

१८८३ ई०मे भारतीय राष्ट्रीय सम्मेलनका प्रथम अधिवेशन कलकत्तामे सपन्न करानेमे उन्होने प्रमुख योगदान किया जिससे १८८५ ई०मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसकी स्थापनाका मार्ग प्रशस्त हुआ। वे आजीवन काग्रेसके प्रमुख सदस्य रहे और १८९८ ई०मे मद्रासमे होनेवाले काग्रेसके चौदहवे अधिवेशनकी अध्यक्षता की। उन्होने बग-भग विरोधी आन्दोलनमे प्रमुख भाग लिया और स्वदेशी आन्दोलन चलानेका सुझाव देनेवालोमे वे अग्रणी थे। मृत्युसे कुछ महीने पूर्व उनका अन्तिम सार्वजनिक कार्य, १६ अक्तूबर, १९०५ ई० को कलकत्तामे फेडरेशन हालका शिलान्यास करना था। शिक्षाविदके रूपमे उन्होने देशकी जो सेवा की, कलकत्ताका सिटी कालेज और मेमनसिंह स्थित आनन्द मोहन कालेज उसका साक्षी हैं। वे अत्यधिक धर्मभीरु और बुद्धिवादी दृष्टिकोणसे सम्पन्न व्यक्ति थे। जीवनके आरम्भिक दिनोमे वे ब्रह्मसमाजी हो गये, उन्होने ब्रह्म समाज आन्दोलनके विकासमे प्रमुख भाग लिया। वे साधारण ब्रह्म समाजके प्रथम अध्यक्ष भी हुए और इस सगठनका लोकतात्रिक विधान उन्हीकी देन है। (एच० सी० सरकार—ए लाइफ आफ आनन्द मोहन बोस)

बोस, सर जगदीश चन्द्र (१८५८-१९३७ ई०)—ख्यातिप्राप्त भारतीय वैज्ञानिक, वनस्पति विज्ञान तथा भौतिक

शास्त्री, जन्म बगालके ढाका जिलेमे। शिक्षा सेण्ट जेवियर्स कालेज, कलकत्ता और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयमे, जहाँसे उन्होने १८८४ ई०मे उच्च सम्मानके साथ डिग्री प्राप्त की। १८९६ ई०मे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयसे वे डी० एस सी० हुए तथा प्रेसीडेन्सी कालेज कलकत्तामे भौतिक विज्ञानके १८८५ ई०से १९१५ ई० तक प्रोफेसर रहे। १९१७ ई०मे कलकत्तामे बोस शोध-सस्थान (बोस रिसर्च इस्टीट्यूट) की स्थापना की और १९३७ ई०मे मृत्यु पर्यन्त वे उसके डाइरेक्टर रहे।

भारतीय वैज्ञानिकोमे वे अग्रगण्य थे। उन्हें अपने वैज्ञानिक शोध कार्योमे भारी विघ्न-बाधाओका सामना करना पडा। उन्होने भौतिक विज्ञानमे विद्युत्-विकिरणके क्षेत्रमे और पूर्ण जीव एव वनस्पति विज्ञानके क्षेत्रमे महत्त्वपूर्ण अन्वेषणकार्य किया। उन्होने पौधो पर निद्रा, हवा, भोजन और औषधियोका प्रभाव सिद्ध करनेके लिए नये प्रयोगात्मक तरीके अपनाये और नये उपकरणोका आविष्कार किया। उन्होने प्रदर्शित किया कि पौधो और जन्तुओके ऊतको (टिशुओ) की प्रतिक्रियाओमे कितनी समानता है। उनकी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ है—'रिस्पॉन्स इन दि लिविंग एण्ड दि नान लिविंग' (१९०२), 'प्लान्ट रिस्पान्सेज' (१९०६) तथा 'मोटर मेकनिज्म आफ प्लान्ट्स' (१९२८), (पी० गेड्डेस—दि लाइफ एण्ड वर्क आफ सर जगदीश चन्द्र बोस तथा सर जे० सी० बोस)

बोस, सुभाषचन्द्र—नेताजीके नामसे विख्यात, मध्यवर्गीय सम्भ्रात बगाली परिवारमे २३ जनवरी, १८९७ ई०को कटक, उड़ीसामे जन्म। वे १९१९ ई०मे बी० ए० परीक्षा पास कर इग्लैंड चले गये। १९२० ई०मे इडियन सिविल सर्विस परीक्षामे बैठे और योग्यताक्रमसे उनका चौथा स्थान आया, लेकिन फिर उससे त्यागपत्र दे दिया। १९२१ ई०मे स्वदेश लौटने पर वे चित्तरजन दास (दे०) और गाधीजीकी प्रेरणासे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसमे शामिल हो गये। उनका राजनीतिक जीवन भारतकी स्वाधीनताके लिए अग्रेजोके विरुद्ध एक लम्बे सघर्षकी कहानी है। उन्हे पहली बार दिसम्बर १९२१ ई०मे ६ महीनेकी जल हुई और उसके बाद तो उन्हें ग्यारह बार कारावास दड मिला। उन्होने १९२४ ई०मे कलकत्ता कार्पोरेशनके मुख्य अधिकारीके रूपमे अपनी विलक्षण संगठन-क्षमताका परिचय दिया। अक्तूबर १९२४ ई०से १६ मई १९२७ ई० तक उन्हे माडलेमे न्यू बगाल आर्डिनेन्सके अन्तर्गत नजरबद रखा गया।

वे काग्रेसमे नरम विचारधाराके विरोधी थे और १९२८ ई०मे ही कलकत्तामे हुई काग्रेसकी विषय-समितिकी बैठकमे उन्होने औपनिवेशिक स्वराज्य सम्बन्धी प्रस्तावका विरोध किया था। वे भारतमे ब्रिटिश शासनको किसी भी रूपमे जारी रखनेके प्रबल विरोधी थे और ब्रिटिश सरकारने उन्हे बराबर विभिन्न तरीकोसे जेलमे बदी बना कर रखा। १९३८ ई०मे वे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके हरिपुरा अधिवेशनके अध्यक्ष चुने गये और १९३९ ई०मे महात्मा गाधीके विरोधके बावजूद काग्रेसके त्रिपुरी अधिवेशनके अध्यक्ष निर्वाचित हुए। उन्होने अधिवेशनमे अपने अध्यक्षीय भाषणमे सुझाव दिया कि स्वाधीनताकी राष्ट्रीय माँग एक निश्चित समयके अन्दर पूरी करनेके लिए ब्रिटिश सरकारके सामने रखी जाये, और ब्रिटिश सरकार द्वारा निर्धारित अवधि तक माँग पूरी न करने पर सविनय-अवज्ञा तथा सत्याग्रह आन्दोलन शुरू कर देना चाहिए। किन्तु काग्रेस वर्किंग कमेटीके बहुसख्यक सदस्योके, जो महात्मा गाधीके कट्टर अनुयायी थे, निरन्तर विरोधके फलस्वरूप उन्हें अप्रैल १९३९ ई०मे अध्यक्ष पदसे त्यागपत्र दे देना पडा।

उसके बाद उन्होने दोहरा सघर्ष किया। एक तरफ तो उनका सघर्ष ब्रिटिश भारत सरकारसे था जिसे वे हर तरीकेसे उखाड फेंकना चाहते थे और दूसरी ओर महात्मा गाधीकी अहिंसा नीतिकी समर्थक पार्टीसे था। उन्होने अहिंसाको एक साधनके रूपमे ही स्वीकार किया, साध्यके रूपमे नही। उस समय द्वितीय विश्वयुद्ध पूरे जोरपर था और सुभाषचन्द्र इस बातके पक्षमे थे कि भारतको अन्तर्राष्ट्रीय स्थितिका पूरा पूरा लाभ उठाना चाहिए और भारतके लिए सम्मानजनक शर्तोपर इग्लैंडके शत्रुओसे सशस्त्र सहायता प्राप्त करनी चाहिए। स्वाभाविक रूपसे ब्रिटिश सरकार उन्हे सबसे खतरनाक व्यक्ति मानने लगी और उन्हे पुलिसकी कडी निगरानीमे घरमे ही नजरबन्द कर दिया।

किन्तु सुभाषचन्द्र २६ जनवरी १९४१ ई०को चुपकेसे अपने घरसे निकल भागे और स्थल मार्गसे काबुल और वहाँसे जर्मनी पहुँच गये। अगले वर्ष दक्षिणपूर्व एशिया स्थित भारतीयोके एक सम्मेलनमे उन्हे आजाद हिन्द फौज तथा इडियन इडिपेन्डेन्स लीगकी जिम्मेदारी सम्भालनेके लिए आमन्त्रित किया गया। तदनुसार १९४३ ई० मे सुभाषचन्द्र बोस एक पनडुब्बीमे सवार होकर जर्मनीसे सिंगापुर पहुँचे, जहाँसे उस समय तक अग्रेजी सेना हट आयी थी। उन्होने तत्काल उन भारतीय सैनिकोको

संगठित किया जिन्हे पीछे हटते हुए अग्रेजोने मलय प्रायद्वीपमे छोड दिया था। उनके द्वारा सगठित सेना 'आजाद हिन्द फौज'के नाममे प्रसिद्ध हुई।

२१ अक्तूबर १९४३ ई०को उन्होंने अस्थायी आजाद हिन्द सरकार गठित करनेका अपना प्रसिद्ध घोषणापत्र जारी किया और इसके बाद भारतको स्वाधीन करनेके लिए पूर्वकी तरफसे ब्रिटिश भारतीय क्षेत्रपर आक्रमण कर दिया। उन्होने बर्माकी सीमापर आजाद हिन्द फौजके अभियानका स्वय नेतृत्व किया और मणिपुर स्थित कोहिमा तक बढ आये। किन्तु हथियारो और गोला-बारूदकी कमी, विशेष रूपसे हवाई जहाजोके अभावके कारण उन्हें १९४४ ई०मे मणिपुरके मोर्चेसे पीछे हटनेके लिए बाध्य होना पडा।

इस बीच जापान पराजित हो गया और नेताजी सुभाषचन्द्र बोसको किसी प्रकारसे कोई सहायता करनेकी स्थितिमे नही रह गया। अतः उन्हें सिगापुरसे एक विमान द्वारा जापानके लिए रवाना होना पडा, किन्तु उनका विमान थैहोकू नामक स्थानपर गिर कर नष्ट हो गया और इस दुर्घटनामे नेताजी सुभाषचन्द्र बोसका १८ अगस्त, १९४५ ई०को प्राणात हो गया, फिर भी उनका तूफानी जीवन निरर्थक नही गया। उन्होने देशवासियोमे अग्रेजोको भारतसे निकाल बाहर करने और स्वाधीनता प्राप्त करनेकी उद्दाम इच्छा जाग्रत कर दी, जिसके फलस्वरूप १९४७ ई०मे देश स्वतन्त्र हो गया। (सुभाषचन्द्र बोस कृत आटोबायोग्राफी; पी० डी० सग्गी कृत लाइफ एण्ड वर्क आफ नेताजी सुभाषचन्द्र बोस)

बोस्कावन, एडमिरल एडवर्ड—जून १७४८ ई०मे एक सगठित जहाजी बेडेके साथ फ्रासीसियोसे बदला लेनेके लिए आया, जिन्होने मद्रास पर कब्जा कर लिया था। बोस्कावेनने पाडिचेरी पर घेरा डाल दिया, किन्तु उसने यह कारवाई ऐसी ढिलाईके साथ की जिससे पाडिचेरामे फ्रासीसी फौजें वर्षाऋतु तक डटी रही। वर्षाऋतु प्रारम्भ हो जानेपर उसे अपना बेडा हटा लेना पडा। १७४८ ई०मे एक्सला चैपेलकी सधि द्वारा युद्धकी समाप्तिपर वह अपना बेडा लेकर इग्लैंड वापस चला गया।

बौद्धधर्म—की स्थापना गौतम बुद्धने ई० पू० छठी शताब्दीके उत्तरार्धमे की। यह मूलरूपसे पुनर्जन्म तथा कर्मके सिद्धातोपर आधृत है जिनको तत्कालीन भारतीय दार्शनिक इतना सत्य मानते थे कि उनके लिए प्रमाणकी आवश्यकता नही थी। कर्मवादकी मान्यताके अनुसार जीवके पूर्वजन्मके अच्छे और बुरे कर्मोके अनुसार उसकी वर्तमान जीवन-दशा निश्चित होती है। पुनर्जन्मवादके अनुसार मृत्यु होनेपर शरीर नष्ट हो जाता है, किन्तु आत्मा अमर होनेके कारण मुक्ति प्राप्त होनेतक नये जन्म लेता रहता है। परन्तु बौद्धधर्म हिन्दुओके आत्मवादको नही मानता। उसकी मान्यताके अनुसार एक जन्मका कर्मभव दूसरे जन्मके उपपत्तिभवको व्यवस्थित करता है।

बौद्धधर्म चार आर्य सत्योपर आधृत है (१) ससार दुःखमय है, (२) दुःखोका कारण है, (३) दुःखका नाश होता है; तथा (४) दुःखोके नाशके लिए उपाय भी है। बौद्धधर्मकी मान्यताके अनसार दुःखोका मूल कारण तृष्णा है, अतः तृष्णाके क्षयमे भवचक्र तथा दुःखोमे मुक्ति मिलती है। तृष्णाके क्षयके लिए अष्टाग मार्गका उपदेश दिया गया है—

(१) सम्यक् दृष्टि अर्थात् चार आर्य सत्यो तथा भवचक्रके कारणोका ज्ञान, (२) सम्यक् सकल्प अर्थात सासारिक विषयो, राग द्वेष तथा हिंसाके परित्यागके लिए दृढ सकल्प, (३) सम्यक् वाक् अर्थात् मिथ्या, अनुचित तथा दुर्वचनोका परित्याग, (४) सम्यक् कर्म अर्थात् हिंसा, पर-द्रव्यका अपहरण तथा वासनाकी पूर्तिकी इच्छाका परित्याग, (५) सम्यक् आजीविका अर्थात् न्यायपूर्ण जीविका, (६) सम्यक् व्यायाम अर्थात् बुराइयोका नाश करके अच्छे कर्मके लिए उद्यत रहना; (७) सम्यक स्मृति अर्थात् लोभादिको रोककर चित्त-शुद्धि, तथा (८) सम्यक् समाधि अर्थात् चित्तकी एकाग्रता।

अष्टाग मार्गको मध्य मार्ग भी कहा गया है, क्योकि यह दोनो अन्तो (छोरो) लोकमे आसक्ति तथा काय-क्लेशसे बचनेका उपदेश देता है। इस मार्गपर चलनेसे निर्वाणकी प्राप्ति होती है, जिसे बौद्धधर्ममे जीवनका परम लक्ष्य माना गया है।

बौद्धधर्म वेद-वचनको प्रमाण नही मानता। वह वैदिक कर्मकाण्ड, बलि, दान तथा स्तोत्र पाठमे होनेवाले किसी फलको स्वीकार नही करता तथा व्यावहारिक रूपमे ईश्वरके अस्तित्वमे भी विश्वास नही करता। उसकी मान्यताके अनुसार चार आर्य सत्योको अगीकार कर लेने तथा अष्टाग मार्गपर चलनेसे तृष्णाका क्षय होता है, जिससे इसी जीवनमे निर्वाणकी प्राप्ति होती है तथा पुनर्जन्मसे छुटकारा मिल जाता है। बौद्धधर्मका द्वार वर्ण तथा जातिके भेदभावके बिना सभीके लिए खुला है। उसकी मान्यताके अनुसार भिक्षु जीवन अगीकार कर लेनेसे निर्वाण प्राप्तका मार्ग सरल हो जाता है, किन्तु

शास्त्री, जन्म बंगालके ढाका जिलेमे। शिक्षा सेण्ट जेवियर्स कालेज, कलकत्ता और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयमे, जहाँसे उन्होने १८८४ ई०मे उच्च सम्मानके साथ डिग्री प्राप्त की। १८९६ ई०मे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयसे वे डी० एस सी० हुए तथा प्रेसीडेन्सी कालेज कलकत्तामे भौतिक विज्ञानके १८८५ ई०से १९१५ ई० तक प्रोफेसर रहे। १९१७ ई०मे कलकत्तामे बोस शोध-संस्थान (बोस रिसर्च इंस्टीच्यूट) की स्थापना की और १९३७ ई०मे मृत्यु पर्यन्त वे उसके डाइरेक्टर रहे।

भारतीय वैज्ञानिकोमे वे अग्रगण्य थे। उन्हें अपने वैज्ञानिक शोध कार्योमे भारी विघ्न-बाधाओका सामना करना पडा। उन्होने भौतिक विज्ञानमे विद्युत्-विकिरण-के क्षेत्रमे और पूर्ण जीव एवं वनस्पति विज्ञानके क्षेत्रमे महत्त्वपूर्ण अन्वेषणकार्य किया। उन्होने पौधो पर निद्रा, हवा, भोजन और औषधियोका प्रभाव सिद्ध करनेके लिए नये प्रयोगात्मक तरीके अपनाये और नये उपकरणोका आविष्कार किया। उन्होने प्रदर्शित किया कि पौधो और जन्तुओके ऊतको (टिशुओ) की प्रतिक्रियाओमे कितनी समानता है। उनकी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं—'रिस्पॉन्स इन दि लिविंग एण्ड दि नान लिविंग' (१९०२), 'प्लान्ट रिस्पान्सेज' (१९०६) तथा 'मोटर मेकनिज्म आफ प्लान्ट्स' (१९२८), (प्रो० गेड्डेस—दि लाइफ एण्ड वर्क आफ सर जगदीश चन्द्र बोस तथा सर जे० सी० बोस)

बोस, सुभाषचन्द्र—नेताजीके नामसे विख्यात, मध्यवर्गीय सम्भ्रान्त बंगाली परिवारमे २३ जनवरी, १८९७ ई०को कटक, उडीसामे जन्म। वे १९१९ ई०मे बी० ए० परीक्षा पास कर इंग्लैंड चले गये। १९२० ई०मे इंडियन सिविल सर्विस परीक्षामे बैठे और योग्यताक्रमसे उनका चौथा स्थान आया, लेकिन फिर उससे त्यागपत्र दे दिया। १९२१ ई०मे स्वदेश लौटने पर वे चित्तरंजन दास (दे०) और गांधीजीकी प्रेरणासे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसमे शामिल हो गये। उनका राजनीतिक जीवन भारतकी स्वाधीनताके लिए अंग्रेजोके विरुद्ध एक लम्बे संघर्षकी कहानी है। उन्हे पहली बार दिसम्बर १९२१ ई०मे ६ महीनेकी जेल हुई और उसके बाद तो उन्हे ग्यारह बार कारावास दंड मिला। उन्होने १९२४ ई०मे कलकत्ता कार्पोरेशनके मुख्य अधिकारीके रूपमे अपनी विलक्षण संगठन-क्षमताका परिचय दिया। अक्तूबर १९२४ ई०से १६ मई १९२७ ई० तक उन्हे माडलेमे न्यू बंगाल आर्डिनेन्सके अन्तर्गत नजरबंद रखा गया।

वे कांग्रेसमे नरम विचारधाराके विरोधी थे और १९२८ ई०मे ही कलकत्तामे हुई कांग्रेसकी विषय-समितिकी बैठकमे उन्होने औपनिवेशिक स्वराज्य सम्बन्धी प्रस्तावका विरोध किया था। वे भारतमे ब्रिटिश शासनको किसी भी रूपमे जारी रखनेके प्रबल विरोधी थे और ब्रिटिश सरकारने उन्हे बराबर विभिन्न तरीकोसे जेलमे बंदी बना कर रखा। १९३८ ई०मे वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके हरिपुरा अधिवेशनके अध्यक्ष चुने गये और १९३९ ई०मे महात्मा गांधीके विरोधके बावजूद कांग्रेसके त्रिपुरी अधिवेशनके अध्यक्ष निर्वाचित हुए। उन्होने अधिवेशनमे अपने अध्यक्षीय भाषणमे सुझाव दिया कि स्वाधीनताकी राष्ट्रीय मॉंग एक निश्चित समयके अन्दर पूरी करनेके लिए ब्रिटिश सरकारके सामने रखी जाये, और ब्रिटिश सरकार द्वारा निर्धारित अवधि तक मॉंग पूरी न करने पर सविनय-अवज्ञा तथा सत्याग्रह आन्दोलन शुरू कर देना चाहिए। किन्तु कांग्रेस वर्किंग कमेटीके बहुसंख्यक सदस्योके, जो महात्मा गांधीके कट्टर अनुयायी थे, निरन्तर विरोधके फलस्वरूप उन्हें अप्रैल १९३९ ई०मे अध्यक्ष पदसे त्यागपत्र दे देना पडा।

उसके बाद उन्होने दोहरा संघर्ष किया। एक तरफ तो उनका संघर्ष ब्रिटिश भारत सरकारसे था जिसे वे हर तरीकेसे उखाड फेंकना चाहते थे और दूसरी ओर महात्मा गांधीकी अहिंसा नीतिकी समर्थक पार्टीसे था। उन्होने अहिंसाको एक साधनके रूपमे ही स्वीकार किया, साध्यके रूपमे नही। उस समय द्वितीय विश्वयुद्ध पूरे जोरपर था और सुभाषचन्द्र इस बातके पक्षमे थे कि भारतको अन्तर्राष्ट्रीय स्थितिका पूरा पूरा लाभ उठाना चाहिए और भारतके लिए सम्मानजनक शर्तोपर इंग्लैंडके शत्रुओसे सशस्त्र सहायता प्राप्त करनी चाहिए। स्वाभाविक रूपसे ब्रिटिश सरकार उन्हे सबसे खतरनाक व्यक्ति मानने लगी और उन्हे पुलिसकी कडी निगरानीमे घरमे ही नजरबन्द कर दिया।

किन्तु सुभाषचन्द्र २६ जनवरी १९४१ ई०को चुपकेसे अपने घरसे निकल भागे और स्थल मार्गसे काबुल और वहाँसे जर्मनी पहुँच गये। अगले वर्ष दक्षिणपूर्व एशिया स्थित भारतीयोके एक सम्मेलनमे उन्हे आजाद हिन्द फौज तथा इंडियन इंडिपेन्डेन्स लीगकी जिम्मेदारी सम्भालनेके लिए आमंत्रित किया गया। तदनुसार १९४३ ई० मे सुभाषचन्द्र बोस एक पनडुब्बीमे सवार होकर जर्मनीसे सिंगापुर पहुँचे, जहाँसे उस समय तक अंग्रेजी सेना हट आयी थी। उन्होने तत्काल उन भारतीय सैनिकोको

सगठित किया जिन्हे पीछे हटते हुए अग्रेजोने मलय प्रायद्वीपमे छोड दिया था। उनके द्वारा सगठित सेना 'आजाद हिन्द फौज'के नाममे प्रसिद्ध हुई।

२१ अक्तूबर १९४३ ई०को उन्होने अस्थायी आजाद हिन्द सरकार गठित करनेका अपना प्रसिद्ध घोषणापत्र जारी किया और इसके वाद भारतको स्वाधीन करनेके लिए पूर्वकी तरफसे ब्रिटिश भारतीय क्षेत्रपर आक्रमण कर दिया। उन्होने वर्माकी सीमापर आजाद हिन्द फौजके अभियानका स्वय नेतृत्व किया और मणिपुर स्थित कोहिमा तक वढ आये। किन्तु हथियारो और गोला-वारूदकी कमी, विशेष रूपसे हवाई जहाजोके अभावके कारण उन्हें १९४४ ई०मे मणिपुरके मोर्चेसे पीछे हटनेके लिए वाध्य होना पडा।

इस वीच जापान पराजित हो गया और नेताजी सुभाषचन्द्र वोसको किसी प्रकारसे कोई सहायता करनेकी स्थितिमे नही रह गया। अतः उन्हें सिंगापुरसे एक विमान द्वारा जापानके लिए रवाना होना पडा, किन्तु उनका विमान थैहोकू नामक स्थानपर गिर कर नष्ट हो गया और इस दुर्घटनामे नेताजी सुभाषचन्द्र वोसका १८ अगस्त, १९४५ ई०को प्राणात हो गया, फिर भी उनका तूफानी जीवन निरर्थक नही गया। उन्होने देशवासियोमे अग्रेजोको भारतसे निकाल वाहर करने और स्वाधीनता प्राप्त करनेकी उद्दाम इच्छा जाग्रत कर दी, जिसके फलस्वरूप १९४७ ई०मे देश स्वतत्र हो गया। (सुभाषचन्द्र वोस कृत आटोवायोग्राफी; पी० डी० सग्गी कृत लाइफ एण्ड वर्क आफ नेताजी सुभाषचन्द्र वोस)

वोस्कावन, एडमिरल एडवर्ड–जून १७४८ ई०मे एक सगठित जहाजी वेडेके साथ फ्रासीसियोसे वदला लेनेके लिए आया, जिन्होने मद्रास पर कब्जा कर लिया था। वोस्कावेनने पाडिचेरी पर घेरा डाल दिया, किन्तु उसने यह कारवाई ऐसी ढिलाईके साथ की जिससे पाडिचेरीमे फ्रासीसी फौजें वर्षाऋतु तक डटी रही। वर्षाऋतु प्रारम्भ हो जानेपर उसे अपना वेडा हटा लेना पडा। १७४८ ई०मे एक्सला चैपेलकी सधि द्वारा युद्धकी समाप्तिपर वह अपना वेडा लेकर इग्लैंड वापस चला गया।

वौद्धधर्म–की स्थापना गौतम वुद्धने ई० पू० छठी शताब्दीके उत्तरार्धमें की। यह मूलरूपसे पुनर्जन्म तथा कर्मके सिद्धातोपर आधृत है जिनको तत्कालीन भारतीय दार्शनिक इतना सत्य मानते थे कि उनके लिए प्रमाणकी आवश्यकता नही थी। कर्मवादकी मान्यताके अनुसार जीवके पूर्वजन्मके अच्छे और वुरे कर्मोके अनुसार उसकी वर्तमान जीवन-दशा निश्चित होती है। पुनर्जन्मवादके अनुसार मृत्यु होनेपर शरीर नष्ट हो जाता है, किन्तु आत्मा अमर होनेके कारण मुक्ति प्राप्त होनेतक नये जन्म लेता रहता है। परन्तु वौद्धधर्म हिन्दुओके आत्मवादको नही मानता। उसकी मान्यताके अनुसार एक जन्मका कर्मभव दूसरे जन्मके उपपत्तिभवको व्यवस्थित करता है।

वौद्धधर्म चार आर्य सत्योपर आधृत है '(१) ससार दुःखमय है, (२) दुःखोका कारण है, (३) दुःखका नाश होता है; तथा (४) दुःखोके नाशके लिए उपाय भी है। वौद्धधर्मकी मान्यताके अनसार दुःखोका मूल कारण तृष्णा है, अत. तृष्णाके क्षयसे भवचक्र तथा दुःखोमे मुक्ति मिलती है। तृष्णाके क्षयके लिए अष्टाग मार्गका उपदेश दिया गया है—

(१) सम्यक् दृष्टि अर्थात् चार आर्य सत्यो तथा भवचक्रके कारणोका ज्ञान, (२) सम्यक् सकल्प अर्थात सासारिक विषयो, राग द्वेष तथा हिंसाके परित्यागके लिए दृढ सकल्प, (३) सम्यक् वाक् अर्थात् मिथ्या, अनुचित तथा दुर्वचनोका परित्याग, (४) सम्यक् कर्म अर्थात् हिंसा, पर-द्रव्यका अपहरण तथा वासनाकी पूर्तिकी इच्छाका परित्याग, (५) सम्यक् आजीविका अर्थात् न्यायपूर्ण जीविका, (६) सम्यक् व्यायाम अर्थात् वुराइयोका नाश करके अच्छे कर्मके लिए उद्यत रहना, (७) सम्यक् स्मृति अर्थात् लोभादिको रोककर चित्त-शुद्धि, तथा (८) सम्यक् समाधि अर्थात् चित्तकी एकाग्रता।

अष्टाग मार्गको मध्य मार्ग भी कहा गया है, क्योकि यह दोनो अन्तो (छोरो) लोकमे आसक्ति तथा काय-क्लेशसे वचनेका उपदेश देता है। इस मार्गपर चलनेसे निर्वाणकी प्राप्ति होती है, जिसे वौद्धधर्ममे जीवनका परम लक्ष्य माना गया है।

वौद्धधर्म वेद-वचनको प्रमाण नही मानता। वह वैदिक कर्मकाण्ड, वलि, दान तथा स्तोत्र पाठसे होनेवाले किसी फलको स्वीकार नही करता तथा व्यावहारिक रूपमे ईश्वरके अस्तित्वमे भी विश्वास नही करता। उसकी मान्यताके अनुसार चार आर्य सत्योको अगीकार कर लेने तथा अष्टाग मार्गपर चलनेसे तृष्णाका क्षय होता है, जिससे इसी जीवनमे निर्वाणकी प्राप्ति होती है तथा पुनर्जन्मसे छुटकारा मिल जाता है। वौद्धधर्मका द्वार वर्ण तथा जातिके भेदभावके विना सभीके लिए खुला है। उसकी मान्यताके अनुसार भिक्षु जीवन अगीकार कर लेनेसे निर्वाण प्राप्तका मार्ग सरल हो जाता है, किन्तु

गृहस्थ, श्रावक भी निर्वाण-प्राप्तिका अधिकारी बन सकता है। बौद्ध-भिक्षुओंको पुरोहितोंके समकक्ष नही रखा जा सकता क्योंकि वे पौरोहित्य कार्य नही करते। ब्राह्मणोकी भाँति उनको भी बुद्धजीवीकी कोटिमे ही रखा जा सकता है। उनके भोजन तथा निवासकी व्यवस्था श्रद्धालु गृहस्थ (श्रावक) करते हैं। बौद्धधर्मका पालन करनेके लिए किसी मन्दिरमे जानेकी आवश्यकता नही पडती। उसका सगठन भिक्षु सघपर आधारित है जो विहारोमे निवास करता है और बुद्धकी शिक्षाओंका उपदेश देता है। बौद्ध लोग गौतम बुद्धको ईश्वर न मानकर महापुरुष मानते हैं, जिन्होंने सत्यका साक्षात्कार किया था और जिनके उपदेशोपर चलनेसे बुद्धत्वकी प्राप्ति होती है बौद्धधर्मका प्रसार प्रारम्भमे गौतम बुद्धने उत्तरप्रदेश तथा बिहारमे गगाके मैदानमे किया। उनके निर्वाणके लगभग २५० वर्ष बाद सम्राट् अशोकने बौद्धधर्म अगीकार किया तथा भिक्षुओंको धर्मप्रचारके लिए देश-देशातरोमे भेजा, जिसके फलस्वरूप बौद्धधर्मका प्रसार धीरे-धीरे सारे विश्वमे हो गया और वह विश्वधर्म बन गया।

कालान्तरमे बौद्धधर्मका उसके जन्मस्थान भारतमे लोप हो गया। उसके ह्रासके अनेक कारण थे। बौद्ध-विहारोमे धीरे-धीरे अतुल सम्पत्ति एकत्र हो गयी जिससे भिक्षुओंके जीवनमे शिथिलाचारका प्रवेश हो गया और बहुतसे अवाछनीय तथा अयोग्य व्यक्ति भी भिक्षु जीवनकी ओर आकर्षित होने लगे। गृहस्थोकी तुलना मे भिक्षुओंकी सख्या बहुत अधिक हो गयी और बौद्धधर्म क्रमिक रूपसे निवृत्ति एव आचार-प्रधान धर्मसे प्रवृत्ति-प्रधान महायानमे परिवर्तित हो गया। बादमे उसमे तन्त्रवादके रूपमे खुले व्यभिचारका प्रवेश हुआ। उधर शकराचार्य (दे०) और कुमारिल भट्ट (दे०) सदृश विद्वानोने हिन्दू धर्मको नवोन्मेष प्रदान किया। अन्तमें मुसलमानोंके आक्रमणके फलस्वरूप भारतसे बौद्धधर्मका पूर्ण लोप हो गया, हालाकि ससारकी एक तिहाई जनसख्या आज भी बौद्ध धर्मावलम्बी है। (एस० राधाकृष्णन् कृत हिस्ट्री आफ इडियन फिलासफी खड १ राइस डेविड्स कृत बुद्धिज्म; थामस कृत हिस्ट्री आफ बुद्धिस्ट थाट; सर चार्ल्स ईलियट कृत हिन्दुइज्म एण्ड बुद्धिज्म, तीन खडोमे; ई० कौजे कृत बुद्धिज्म, इट्स इसेन्स एण्ड डेवलपमेण्ट)

बौद्ध सगीति–का आयोजन चार बार हुआ। पहली संगीति (महासभा) गौतम बुद्धके निर्वाणके बाद ही राजगृह (आधुनिक राजगिरि)मे हुई। इसमे बौद्ध स्थविरो (थेरो) ने भाग लिया और बुद्धके प्रमुख शिष्य महाकस्यप (महाकश्यप)ने उसकी अध्यक्षता की। चूँकि बुद्धने अपनी शिक्षाओंको लिपिबद्ध नही किया था, इस लिए सगीतिमे उनके तीन शिष्यो—महापण्डित महाकाश्यप, सबसे वयोवृद्ध उपालि तथा सबसे प्रिय शिष्य आनन्दने उनकी शिक्षाओंका सगायन किया। तत्पश्चात उनकी ये शिक्षाएँ गुरु-शिष्य परम्परासे मौखिक चलती रही, उन्हे लिपिबद्ध बहुत बादमे किया गया।

एक शताब्दी बाद बुद्धोपदिष्ट कुछ विनय-नियमोके सम्बन्धमे भिक्षुओंने विवाद उत्पन्न हो जानेपर वैशालीमे दूसरी सगीति हुई। इस सगीतिमे विनय-नियमोको कठोर बनाया गया और जो बुद्धोपदिष्ट शिक्षाएँ अलिखित रूपमे प्रचलित थी उनमे सशोधन किया गया।

बौद्ध अनुश्रुतियोके अनुसार बुद्धके परिनिर्वाणके २३६ वर्ष बाद सम्राट् अशोकके सरक्षणमे तीसरी सगीति हुई, जिसकी अध्यक्षता प्रसिद्ध बौद्ध ग्रथ 'कथावत्थु'के रचयिता तिस्स मोग्गलीपुत्रने की। विश्वास किया जाता है कि इस सगीति मे त्रिपिटक (दे०)को अन्तिम रूप प्रदान किया गया। यदि इसे सही मान लिया जाय कि अशोकने अपना सारनाथवाला स्तम्भ-लेख इस सगीतिके बाद उत्कीर्ण कराया, तब यह मानना उचित होगा कि इस सगीतिके निर्णयोको इतने अधिक बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणियोने स्वीकार नही किया कि अशोकको धमकी देनी पडी कि सघमे फूट डालनेवालोको कडा दण्ड दिया जायगा।

चौथी और अतिम सगीति कुषाण सम्राट् कनिष्कके शासनकाल (लगभग १२०–१४४ ई०) मे हुई। इस सगीतिमे त्रिपिटकका प्रामाणिक भाष्य तैयार किया गया, जिसे ताम्रपत्रोपर उत्कीर्ण कराकर कुडल वन-विहारमे स्तूपका निर्माण कराकर उसीमे सुरक्षित रख दिया गया। इन ताम्रपत्रोको अभी तक उपलब्ध नही किया जा सका है। (कर्न—मैनुएल आफ बुद्धिज्म; राइस डेविड्स–बुद्धिज्म; इडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, मार्च १९५९)

बौद्ध साहित्य–की रचना गौतम बुद्धके निर्वाणके बाद हुई। गौतम बुद्धने अपने उपदेशोको लिपिबद्ध नही किया। उनके निर्वाणके बाद ही राजगृहमे प्रथम सगीतिमे उनके तीन प्रमुख शिष्यो, आनन्द, उपालि तथा कश्यपने उनकी शिक्षाओंका सर्वप्रथम सगायन किया। विश्वास किया जाता है कि त्रिपिटकमे बुद्धके इन्ही वचनोका सग्रह है। अनेक शताब्दियो तक इन बुद्ध-वचनोका सगायन होता रहा और वे गुरु-शिष्य परम्परासे केवल

[म]ौखिक रूपमे प्रचलित रहे । ई० पू० ८० मे सिहलद्वीपके [र]ाजा वट्टगामणिके शासनकालमे इनको सर्वप्रथम लिपि-[ब]द्ध किया गया । त्रिपिटकमे सुत्तपिटक, विनयपिटक [त]था अभिधम्मपिटककी गणना होती है । सुत्तपिटकमे [ब]ुद्धके उपदेशो और सवादोका सग्रह है । विनयपिटकमे भिक्षु सघके आचार-विचार एव नियमोका तथा अभि-धम्मपिटकमे बौद्धधर्मके आध्यात्मिक एव दार्शनिक विचारोका सग्रह है । सुत्तपिटकके पाँच बडे विभाग है, जो 'निकाय'के नामसे प्रसिद्ध है । इनके अन्तर्गत धम्म-पद, थेरगाथा, थेरीगाथा तथा जातक आदि ग्रन्थ है । विनयपिटक भी तीन विभागोमे विभक्त है । अभिधम्म-पिटकके सात विभाग है, जिनमें धम्मसगणि मूल ग्रन्थ माना जाता है ।

इस समय त्रिपिटक साहित्य चार भाषाओमे मिलता है । उसका पाली सस्करण मुख्य रूपसे सिहलद्वीप, वर्मा तथा स्याममे प्रचलित है । नेपाल तथा मध्य एशियाके बौद्ध केन्द्रोमे उसका सस्कृत रूपान्तर प्रचलित है। उसका चीनी भाषामे अनुवाद सस्कृतसे हुआ तथा ईसवी सन्‌की नवी तथा ग्यारहवी शताब्दीके बीच भोट भाषामे रूपा-न्तर हुआ । उसका जापानी रूपातर १०० जिल्दोमे उप-लब्ध है, जिनमेसे प्रत्येकमे एक हजार पृष्ठ है ।

त्रिपिटकके अतिरिक्त नागसेन रचित 'मिलिन्दपन्हो' (लगभग १४७ ई०पू०) तथा बुद्धघोष रचित 'विशुद्धि-मग्ग' बौद्धोके प्रमुख धर्मग्रन्थ है । (**ताकाकुशु कृत एंशेन्शियल्स आफ बुद्धिस्ट फिलासफी**)

[ब]ौद्धोमे सम्प्रदाय-भेद—इस कारण हुआ कि गौतम बुद्धके जीवनकालमे उनकी शिक्षाओको लिपिबद्ध नही किया गया था । फलत उनके परिनिर्वाणके बाद ही भिक्षु-भिक्षुणियोके आचार-नियमो तथा उनके वचनोके अभि-प्रायको लेकर उनके शिष्योमे वाद-विवाद होने लगा । उनके परिनिर्वाणके एक शताब्दीके अन्दर ही बौद्धोमें अनेक निकायो (सम्प्रदायो) का आविर्भाव हो चुका था, जिनमे दो मुख्य निकाय बादमे हीनयान और महा-यानके नामसे प्रसिद्ध हुए । हीनयान निकायका साहित्य पाली भाषामे तथा महायानका सस्कृत भाषामे निबद्ध होनेके कारण हीनयानको पाली निकाय तथा महामानको सस्कृत निकाय भी कहते हैं। हीनयान मुख्य रूपसे श्रीलका (सिंहल द्वीप) तथा बर्मामे प्रचलित होनेके कारण बहुधा दक्षिणी बौद्धधर्म भी कहा जाता है । इसी प्रकार महायान मुख्यरूपसे नेपाल, चीन, तिब्बत, मगोलिया, कोरिया तथा जापानमे प्रचलित होनेके कारण उत्तरी बौद्ध धर्म भी कहा जाता है । हीनयान और महा-मान, दोनो ही यान (मार्ग) बौद्धधर्मके निकाय होनेके कारण कुछ लोग उसके साथ 'हीन' तथा 'महा' विशेषण का प्रयोग उचित नही मानते और इसीलिए वे हीनयान को स्थविरो (थेरो) का मार्ग अथवा स्थविरवाद (थेर-वाद) कहना पसद करते हैं ।

बौद्धधर्ममे सम्प्रदाय-भेद किस कालमे हुआ, यह निश्चित रूपसे ज्ञात नही है । महायानका आविर्भाव अचानक नही हुआ, वरन् उसका विकास अनेक शता-ब्दियोमे क्रमिक रीतिसे हुआ । कुछ लोग महायानका उद्‌गम महासघिक और सर्वास्तिवादी निकायोसे मानते है, जो ई० पू० ३५० मे वर्त्तमान थे । अशोक (लगभग ई० पू० २७३–२३१) के शिलालेखोमे महायानके अस्तित्वका कोई सकेत नही मिलता । कनिष्क (राज्या-रोहण लगभग १२० ई०) के शासनकालमे चौथी बौद्ध धर्मसगीति (धर्म महासभा) हुई । उस समय भी महायान का विशेष प्रचार नही था, हालाकि नागार्जुनने, जो कनिष्कका समकालीन एव आश्रित था, अपनी 'कारिका' मे हीनयानके मतोका खडन किया है । ईसवी सन्‌की चौथी शताब्दीमे जब फाहियान भारत आया था तो उसने सभी स्थानोपर हीनयानी भिक्षुओके विहारोके साथ-साथ महायानी भिक्षुओके विहार भी पाये थे । अतः महायानका विकास ईसवी सन् की दूसरी और चौथी शताब्दीके मध्य हुआ होगा । इसी कालमे बहुतसे विदेशियोने भी बौद्धधर्म ग्रहण किया । इस आधारपर यह मत प्रतिपादित किया जाता है कि महायानका विकास इनकी प्रवृत्तियोको ध्यानमें रख कर हुआ । परन्तु यह मत भी युक्तिसगत प्रतीत होता है कि महायानका विकास भारतीय बौद्धोकी आध्यात्मिक तथा दार्शनिक प्रवृत्तियोके आधारपर हुआ, हालाकि बादके युगोमें यह भारतकी अपेक्षा भारतके बाहरके देशोमे अधिक लोकप्रिय हुआ ।

हीनयान और महायान निकायमे व्यापक सिद्धान्त-भेद है । हीनयान वादियोके अनुसार सिद्धार्थ गौतम बुद्धपद लाभ करनेवाले एकमात्र बुद्ध थे, जिन्होने स्वय निर्वाण लाभ किया और जिनकी शिक्षाओका अनुसरण करनेसे अन्य लोग भी इस जीवन अथवा परवर्ती जीवनमे निर्वाण-लाभ कर सकते है । इस मार्गमे बुद्ध अथवा बुद्ध प्रतिमाओकी पूजा अर्चना तथा भक्तिका कोई स्थान नही है, क्योकि हीनयानी बुद्धको ईश्वर न मानकर महापुरुष मानते है, जिन्होने अपने पुरुषार्थसे बुद्धत्व लाभ कर भवचक्र-

के कारणभूत कर्मबीजोको दग्ध कर दिया था। प्रत्येक व्यक्ति उन्हीकी भाँति अपने पुरुषार्थसे तृष्णाका क्षय करके तथा अष्टागिक मार्गके अनुकूल सम्यक् जीवन अपना करके निर्वाण लाभ कर सकता है। महायानियोके अनुसार असख्य बुद्धोमे सिद्धार्थ गौतम भी बुद्धावतार थे। अतीतकालमे भी अनेक बुद्ध हो चुके है और अनागतकाल मे भी होगे। केवल इस लोकमे ही नही, गगा नदीकी बालूके कणोकी भाँति अनन्त लोकोमे कोटि कल्पोके अन्तर पर बुद्धोका अवतार और धर्मोपदेश होता रहता है। यह लोक अनताकाशमे धूलके कणके समान तथा अनतकाल प्रवाहमे एक क्षणके समान है, इस कल्पमे भावी बुद्ध मैत्रेय होगे। अतीतकालके बुद्ध और अनागत बुद्ध सर्वशक्तिमान् देवाधिदेव हैं जो मनुष्योकी प्रार्थना तथा स्तुतिपाठसे अनुग्रहशील होते है तथा फूल-धूप-दीपादिके अर्पणसे प्रसन्न होते हैं।

अततोगत्वा चीनमे अमिद अथवा अमिताभ बुद्धकी पूजा प्रचलित हो गयी, जिनका प्रारम्भिक बौद्ध ग्रथोमे कोई उल्लेख नही मिलता। यह माना जाता है कि वे सुखावती लोकमे निवास करते हैं। उनके श्रद्धालु भक्तो द्वारा कामना की जाने लगी कि मरणोपरान्त उनका जन्म उन्हीके लोकमे हो। निर्वाण तथा गौतम बुद्धको भुला दिया गया। महायानी बौद्ध साधकके जीवनका उद्देश्य व्यक्तिगत निर्वाण प्राप्त करना नही होता। वह बोधि प्राप्त कर लेनेपर अपने व्यक्तिगत निर्वाणके लिए नही, बल्कि विश्वके सभी प्राणियोके निर्वाणके लिए उद्योग करता है। ऐसे साधकको 'बोधिसत्व' कहते है। इस प्रकार महायानमे बुद्धो और बोधिसत्वोकी पूजा प्रचलित हो गयी। मन्दिरोमे उनकी प्रतिमाओकी प्रतिष्ठापना होने लगी और विविध विधि-विधानोसे उनकी वदना और पूजा होने लगी।

बुद्धके जीवनकाल, जातक कथाओमे वर्णित पूर्वजन्मो तथा ललितविस्तर जैसे बादके ग्रथोमे वर्णित उनके जीवनकी विविध घटनाओके आधारपर बौद्ध स्थापत्यके अतर्गत मूर्तियोका निर्माण प्रचुर मात्रामे होने लगा। बौद्ध धर्मग्रथोका प्रणयन सस्कृतमे होने तथा बुद्धो एव बोधिसत्वोकी मूर्ति पूजा प्रचलित होनेसे धीरे-धीरे महायान बौद्धधर्म और हिन्दूधर्मके बीच अतर मिटने लगा और अततोगत्वा बौद्धधर्म हिन्दूधर्ममे समाहित हो गया। हीनयान और महायानमे सिद्धात-भेद होते हुए भी दोनो बुद्धोपदिष्ट मार्ग है और दोनो ही बुद्धकी शिक्षाओपर आधारित हैं। दोनोका विकास अपने ढगसे अलग-अलग भूमियोपर तथा अलग-अलग वातावरणमे हुआ है। (ईलियट—हिन्दुइज्म एण्ड बुद्धिज्म; वी० ए० स्मिथ—आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इडिया, मैक्ग्रेगर—इंट्रोडक्शन टू महायान फिलासफी; सुजुकी—डेवलपमेण्ट आफ महायान बुद्धिज्म; एन० दत्त—एस्पेक्ट्स आफ महायान बुद्धिज्म)

ब्रजभाषा—हिन्दीकी एक बोली। वल्लभाचार्यके शिष्य कवियोने, जो अष्टछापके नामसे सामूहिक रूपमे प्रसिद्ध हैं, इसका उपयोग किया और लोकप्रिय बनाया। वल्लभाचार्यके शिष्योमे सबसे प्रमुख सूरदास थे, जिन्होने सूरसागरकी रचना की। सूरसागरमे विशेष रूपसे कृष्णकी बाल-लीलाओका पद्योमे वर्णन है। प्रसिद्ध भक्त कवि मीराबाईने भी ब्रजभाषामे गीतोकी रचना की थी।

ब्रजभूमि—यमुनाके तटवर्ती उस क्षेत्रका नाम, जिसमे मथुरा और वृन्दावन स्थित है। वैष्णव भक्तोने कृष्ण और राधाकी लीला-भूमिके रूपमे इसका वर्णन किया है।

ब्रह्म—परमात्माकी सज्ञा। ब्राह्मण दार्शनिकोने परमात्माको, जो अन्तर्यामी और घट-घटव्यापी पथ-दर्शक है, इस सज्ञासे सम्बोधित किया है। उपनिषदो और वेदान्त दर्शनमे ब्रह्म-स्वरूपकी चर्चा है। शकराचार्यने अपनी रचनाओमे ब्रह्मवादकी विस्तारसे व्याख्या की है।

ब्रह्मजीत गौड़—शेरशाह (१५३०–४५ ई०) की सेवामे नियुक्त एक हिन्दू सेनापति।

ब्रह्मणस्पति—ऋग्वेदमे वर्णित एक देवता, जो प्रार्थनाका अधिपति है।

ब्रह्मपाल—कामरूपके पाल राजवशका प्रवर्तक, जो लगभग १००० ई० मे हुआ। सालस्तम्भ राजवशका उच्छेद होनेपर, ब्रह्मपालको, जो सालस्तम्भ राजवशसे सम्बन्धित था, जनताने उसकी योग्यताके कारण कामरूपका शासक चुना। उसके वशमे आठ राजा हुए, सभीके नामोके अन्तमे 'पाल' शब्द जुडा हुआ है। ये बगालके समकालीन पाल राजाओसे भिन्न है। ब्रह्मपाल राजवशका बारहवी शताब्दीके पूर्वार्धमे अन्त हो गया। (बी० के० बरुआ कृत ए कल्चरल हिस्ट्री आफ आसाम, पृष्ठ ३३-३५)

ब्रह्मपुत्र—एक विशाल नदी, जो तिब्बतसे, जहाँ इसे सागपो कहते है, निकल कर भारतमे आती है। इसकी लम्बाई १८०० मील है। आसाम प्रदेशसे गुजरती हुई यह पहले पूर्वसे पश्चिम और फिर दक्षिणकी तरफ बहकर बगालमे गगासे मिलती है। प्राचीन नगर प्राग्ज्योतिषपुर, (आधुनिक गोहाटी), कामरूप राज्यकी राजधानी, ब्रह्मपुत्रके तटपर बसा हुआ था।

ब्रह्मसभा—एक एकेश्वरवादी सगठन, जिसकी स्थापना राजा-

राम मोहन रायने १८२८ ई० मे कलकत्तामे की । इसका उद्देश्य उन सभी लोगोको एक मचपर लाना था जो एकेश्वरवादमे विश्वास करते थे और मूर्तिपूजाका खडन करते थे । आरम्भमे इसकी बैठके किरायेके मकान-मे होती थी और इसके प्रथम मन्त्री थे श्री ताराचन्द्र चक्रवर्ती । शनिवारको इसकी साप्ताहिक सभाएँ होती थी, जिनमे ब्राह्मणो द्वारा वेद-पाठ किया जाता था । शीघ्र ही इन सभाओमे बडी सख्यामे लोग भाग लेने लगे, अत राजा राम मोहन रायने १८३० ई० मे इसके सदस्योसे एकत्र किये गये चन्देसे चितपुर रोडपर एक मकान खरीद कर ट्रस्टियोकी समितिको सौंप दिया । अब यह माना जाता है कि ब्रह्मसभाने ही ब्रह्मसमाजकी स्थापनाका मार्ग प्रशस्त किया है, यद्यपि दोनो सगठनोमे मौलिक अन्तर था । उदाहरणार्थ, ब्रह्मसभाके सदस्य, ब्राह्मसमाजके सदस्योके विपरीत अपनेको हिन्दू घोषित करते थे और धार्मिक कामो तथा विवाहो आदिमे वर्ण-व्यवस्थाको मानते थे ।

ब्रह्म-समाज आन्दोलन—का श्रीगणेश राजा राम मोहन राय द्वारा १८२८ ई० मे स्थापित ब्रह्मसभामे हुआ । ब्रह्मसभा-का उद्देश्य असाम्प्रदायिक आधारपर एकेश्वरवादका प्रचार करना था । वह विभिन्न सामाजिक सुधारो, जैसे जाति-पाँतिका उन्मूलन, अन्तर्जातीय विवाहका प्रचलन तथा महिलाओका उद्धार और उनमे शिक्षाप्रसारके पक्ष-मे थी । राम मोहन रायके इग्लैण्ड प्रस्थान करने और वहा उनकी मृत्यु हो जानेके फलस्वरूप ब्रह्मसभा निष्प्राण हो गयी, किन्तु महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर (१८१७–१९०५ ई०) ने १८४३ ई०मे इसका नेतृत्व सँभाल कर और 'तत्त्वबोधिनी' पत्रिका द्वारा इसके सिद्धातोका प्रचार करके इसे नवजीवन प्रदान किया । उस समय इस आदोलनका उद्देश्य हिन्दूधर्मके एकेश्वरवादी स्वरूपका प्रचार करना था । ब्रह्मसभाके सदस्य वेदोको अपौरुषेय मानते थे तथा जाति-पाँतिके उन्मूलन, अतर्जातीय विवाह आदि सामा-जिक सुधारोके विरुद्ध थे । परतु नवयुवक वर्गने, जिसका नेतृत्व प्रारम्भमे अक्षयकुमार सेन और बादमे केशवचन्द्र सेनने किया, वेदोके अपौरुषेय होनेमे शका प्रकट की और ब्रह्मसभाके सदस्यो द्वारा जाति-पाँतिको न मानने तथा अन्य सामाजिक सुधारोका समर्थन करनेपर जोर दिया । देवेन्द्रनाथ ठाकुरने उनकी इस माँगको स्वीकार नही किया और १८६५ ई० मे केशवचन्द्र सेन और उनके अनुयायियोको सभी पदोसे हटा दिया । इस प्रकार ब्रह्म-समाज आदोलनमे गहरी फूट पड गयी । तत्पश्चात् देवेन्द्रनाथ और उनके अनुयायियोने आदि ब्राह्मसमाज गठित किया जो हिन्दुओके शुद्ध एकेश्वरवादका प्रतिपादक और सामाजिक सुधारोका विरोधी था । नवयुवक वर्ग-ने केशवचन्द्र सेनके नेतृत्वमे ब्राह्मसमाजकी स्थापना की, जो १८७८ ई० तक खूब फला-फूला । १८७८ ई० मे केशवचन्द्रसेन और उनके अनुयायियोमे कुछ सिद्धातोपर मतभेद हो जाने और मुख्यरूपसे उनकी अवयस्क कन्याका हिन्दू रीत्यानुसार महाराज कूच विहारसे विवाह होनेके कारण, ब्राह्मसमाजमे पुनः फूट पड गयी और विरोधी दलने साधारण ब्राह्मसमाजकी स्थापना की । केशवचन्द्र सेन और उनके समर्थकोने भी 'नवविधान' नामक नया सगठन खडा कर दिया । इस प्रकार ब्राह्मसमाजी इस समय तीन दलोमे विभक्त है—आदि ब्राह्मसमाज, साधा-रण ब्राह्मसमाज तथा नवविधान । तीनो दलोके उपासना-गृह अलग-अलग है ।

ब्राह्मसमाज आदोलनका सूत्रपात तो कलकत्तामे हुआ, परन्तु शीघ्र ही उसका प्रचार सारे बगालमे तथा बगाल-के बाहर उत्तर प्रदेश, पजाब तथा मद्रास तक हो गया । सभी प्रातीय समाज साधारण ब्राह्मसमाजसे सम्बद्ध है । महाराष्ट्रमे इसका नाम 'प्रार्थना समाज' रखा गया ।

बादमे ब्राह्मसमाज आदोलनका जोर काफी कम पड गया । किन्तु इस आदोलनने देशकी बहुमूल्य सेवा की । यह आदोलन पर्दा प्रथा मिटाने, विधवा-विवाह प्रचलित करने, अतर्जातीय विवाहको वैध ठहरानेवाला कानून बनवाने, जाति-पाँतिके बधनोको शिथिल करने, हिन्दुओ-को ईसाई बननेसे रोकने तथा उच्च शिक्षाका, विशेषरूपसे महिलाओमे शिक्षाका प्रचार करनेमे सहायक सिद्ध हुआ । किन्तु इसे हिन्दुओमे एकेश्वरवादका प्रचार करने तथा मूर्ति-पूजा समाप्त करानेमे बहुत थोडी सफलता मिली । (शिवनाथ शास्त्री रचित हिस्ट्री आफ दि ब्राह्म समाज, खंड १-२)

ब्रह्मर्षि देश—मनुने थानेश्वरके आस-पासके क्षेत्र, पूर्वी राजस्थान, गगा और यमुनाके दोआब तथा मथुरा जिले-के अचलको यह नाम दिया है ।

ब्रह्मा—एक हिन्दू देवता । विष्णु और शिवके साथ त्रिदेवोमे इनकी गणना होती है । ये सृष्टिकी रचना करते हैं और वेदोमे इन्हें विधाता, हिरण्यगर्भ तथा प्रजापति कहा गया है ।

ब्रह्मावर्त—इससे उस प्रदेशका बोध होता था जो सरस्वती और दृषद्वती नदियोके बीचमे स्थित था । सप्रति दोनो नदियाँ लुप्त हो चुकी है, अत इस प्रदेशकी सीमाओकी सही-सही पहचान नही हो सकती ।

ब्राइडन, डा०–एक अंग्रेज सर्जन (शल्य चिकित्सक) जो प्रथम अफगानिस्तान युद्ध (१८३९–४२ ई०) (दे०) में अफगानिस्तानपर चढाई करनेवाली ब्रिटिश सेनामें नियुक्त था। युद्धमें उसकी रेजिमेंटके सभी आदमी मारे गये और १३ जनवरी १८४२ ई० को जलालाबाद वापस पहुँचने तथा अफगानोंके हाथ ब्रिटिश सेनाकी पराजयका सवाद देनेवाला वह अकेला अंग्रेज बचा था।

ब्राउन, रेवरेण्ड डेविड–ब्रिटेनसे शुरू-शुरूमें बगाल आनेवाले मिशनरियोंमेंसे एक। उस समय ईसाई मिशनरियोंको कम्पनीके इलाकोंमें लोगोंका धर्मपरिवर्तन करनेकी अनुमति नही थी। अत डेविड ब्राउन कलकत्तामें ईस्ट-इडिया कम्पनीका चैपलेन बन गया।

ब्रासियर, कैप्टन–ईस्ट इडिया कम्पनीकी सेवामें नियुक्त एक सैनिक अधिकारी, जो मई-जून १८५७ ई० में विद्रोही सिपाहियोंके विरुद्ध सिखोंकी छोटी-सी पलटनके साथ इलाहाबादके किलेकी रक्षा उस समय तक बडी सूझ-बूझसे करता रहा, जब तक कि नीलके नेतृत्वमें ११ जूनको ब्रिटिश सेना वहाँ पहुँच नही गयी।

ब्राहुई–बलूचिस्तानकी एक छोटी-सी जनजाति, जो द्रविड भाषा बोलती है। उसका अस्तित्व इस बातका द्योतक है कि द्रविड लोग जो आजकल मुख्यतः दक्षिणमें ही पाये जाते हैं, कभी समूचे भारतमें फैले थे और बलूचिस्तानसे होकर मैसोपोटामिया जाते हुए मार्गमें अपना एक छोटा-सा वर्ग यहाँ छोड गये।

ब्राह्मण ग्रंथ–वेदोंका ही एक विवरणात्मक विभाग। मंत्र-भाग अथवा सहिताभाग जबकि पद्यमें है, ब्राह्मण-भाग गद्यमें है। दोनोंको ही वेद कहा गया है और अपौरुषेय माना गया है। ब्राह्मण ग्रथोंमें यज्ञानुष्ठानके सम्बन्धमें विस्तृत विवरण, नाना विषयोंके उपाख्यान तथा प्राचीन राजाओं और ऋषियोंकी गाथाए मिलती हैं। (मैकडोनेल एवं कीथ कृत वैदिक इडेक्स)

ब्राह्मण जाति–जाति-व्यवस्थाके अन्तर्गत हिन्दुओंमें सबसे ऊँची जाति गिनी जाती है। सनातनी हिन्दुओंके विचारानुसार ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति विराट् पुरुषके मुखसे हुई, उन्हें मनुष्योंमें देवता बताया गया है। इस प्रकार चारों वर्णोंमें उन्हें सर्वाधिक महत्ता प्रदान की गयी है। अन्य विचारानुसार जाति-व्यवस्था विविध व्यवसायोंपर आधारित थी। जो वर्ग सामान्य रूपसे पौरोहित्य कार्य एव वेदाध्यापन करता था, उसकी गणना ब्राह्मण वर्णमें की जाने लगी। हिन्दू वर्ण-व्यवस्थामें मूलत क्षत्रियोंको, जो राजन्य (राजा) होते थे, ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ माना जाता था। परवर्ती कालमें हिन्दू वर्ण-व्यवस्थामें ब्राह्मणोंने क्षत्रियोंसे भी ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया। (देखिये, जाति-व्यवस्था)

ब्राह्मण-धर्म–हिन्दू धर्मका प्रारम्भिक रूप, जो ईसा पूर्व छठी शताब्दीमें बौद्ध एव जैन धर्म जैसे ब्राह्मणोत्तर धर्मोंके उदयसे पूर्व प्रचलित था।

ब्राह्मणपाल–भारतकी पश्चिमोत्तर सीमापर स्थित उद्भाण्डपुर (वैहाण्ड)के हिन्दू शाही वशके राजा जयपालका पौत्र एव आनन्दपालका पुत्र। १००८ ई०में इसने गजनीके सुल्तान महमूदके विरुद्ध वैहाण्डकी लडाईमें अपने पिताकी सेनाका नेतृत्व किया था, किन्तु युद्धमें पराजित हुआ और मारा गया।

ब्राह्मी लिपि–आधुनिक देवनागरी लिपिका प्राचीन रूप, जिसका प्रयोग सस्कृत तथा उत्तरी एव पश्चिमी भारतकी अन्य भाषाओंको लिखनेमें होता था। अशोकके शिलालेख, (पश्चिमोत्तर सीमा क्षेत्रके शिलालेखोंको छोडकर), ब्राह्मी लिपिमें अकित हैं।

ब्रिटिश प्रशासन तन्त्र–भारतमें धीमी गतिसे विकसित हुआ, जिसे दो कालोंमें विभाजित किया जा सकता है। पहला १७७३ ई० से १८५८ ई० तक और दूसरा १८५८ ई० से १९४७ ई० तक। इसका केन्द्रबिन्दु १७७३ ई०का रेग्युलेटिंग एक्ट था और चरमबिन्दु स्वाधीन भारतका वर्तमान प्रशासन है। रेग्युलेटिंग एक्टके पास होनेके पूर्व ईस्ट इडिया कम्पनीकी भारतमें तीन व्यापारिक कोठियां कलकत्ता, मद्रास और बम्बईमें थीं। प्रत्येक कोठी एक अध्यक्षके अधीन थी। प्लासीकी लडाई (१७५७ ई०) तथा उसके बादकी घटनाओंके फलस्वरूप ईस्ट इण्डिया कम्पनीको बगाल और बिहारपर शासन करनेका अधिकार प्राप्त हो गया। जो प्रबन्ध व्यवस्था एक व्यावसायिक एव व्यापारिक सस्थाका प्रशासन चलानेके लिए की गयी थी, वह एक राज्यका प्रशासन चलानेके लिए, जिसके बढनेकी सम्भावना थी, स्वाभाविक रीतिसे अनुपयुक्त समझी गयी। फलत इग्लैण्डकी पार्लियामेंटने १७७३ ई०में रेग्युलेटिंग एक्ट (दे०) पास किया। इसके द्वारा भारतीय प्रशासन ईस्ट इण्डिया कम्पनीके हाथोंमें छोड दिया गया, किन्तु इसके साथ ही भारतीय राज्यपर कम्पनीके प्रशासनकी ससदीय देख-रेखका भी प्राविधान कर दिया गया। भारतमें कम्पनीके अधीन सभी इलाकोंमें एकाएक प्रशासनिक व्यवस्थाका सूत्रपात बगालका प्रशासन गवर्नर-जनरल तथा उसकी चार सदस्यीय परिषद्में निहित करके, युद्ध तथा शान्तिसे सम्बन्धित मामलोंमें

प्रेसीडेन्सियोंको उसके अधीन करके किया गया। मद्रास और बम्बई, प्रेसीडेन्सियोंका प्रशासन भी गवर्नर तथा उसकी परिषद्में निहित कर दिया गया। एक्टमें गवर्नर-जनरल तथा उसकी परिषद्के सदस्योंके नाम उल्लिखित थे। चूंकि सभीका कार्यकाल पाँच वर्ष निर्धारित कर दिया गया था, उनको अपना कार्यकाल पूरा होनेसे पहले वापस बुला लेनेकी भी व्यवस्था थी और सभी निर्णय बहुमतसे लेनेका प्राविधान था, अत आरम्भसे ही इस प्रशासनिक व्यवस्थामें एक व्यक्तिके निरकुश शासनको असम्भव बना दिया गया था और उसका सचालन पारस्परिक विचार-विमर्श और सहमतिके आधारपर ही हो सकता था। इसके अतिरिक्त रेग्युलेटिंग एक्टके अन्तर्गत कलकत्तामें एक सर्वोच्च न्यायालय स्थापित किया गया, जिसमें एक मुख्य न्यायाधीश और तीन अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति की गयी और सभीको ऊँचा वेतन दिया गया। सभी नियुक्तियाँ ब्रिटिश सरकार द्वारा की गयी थी और सर्वोच्च न्यायालयका अधिकार-क्षेत्र कलकत्ता स्थित सभी ब्रिटिश नागरिकों तथा ईस्ट इडिया कम्पनीके सभी अधिकारियों तक विस्तृत था। इस प्रकार एक्टके द्वारा ईस्ट इडिया कम्पनीके प्रशासित क्षेत्रोंमें कानूनका शासन स्थापित करनेका प्रयास किया गया।

इसके बावजूद रेग्यूलेटिंग एक्ट, अनेक दृष्टियोंसे त्रुटिपूर्ण था, जैसा कि १७७३-८४ ई०की अवधिमें प्रथम गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्स तथा उसकी चार सदस्यीय परिषद् द्वारा इसके कार्यान्वित किये जानेपर प्रकट हुआ। इसके द्वारा भारतमें कम्पनीके प्रशासनपर पार्लियामेंटका नियन्त्रण प्रभावकारी ढगसे लागू करना सम्भव नहीं हो सका। गवर्नर-जनरलको परिषद्की रायके विरुद्ध कार्य करनेका अधिकार न होनेसे उसे परिषद्में पक्षपातपूर्ण अडङ्गोंका सामना करना पडता था। सुदूरवर्ती मद्रास और बम्बई प्रेसीडेन्सियोंपर देख-रेख रखनेका जो अधिकार गवर्नर-जनरल तथा उसकी परिषद्में निहित किया गया था, वह इतना अस्पष्ट था कि इन दोनों प्रेसीडेन्सियोंके अधिकारी गवर्नर-जनरल तथा उसकी परिषद्की पूर्व स्वीकृतिके बिना ही युद्ध शुरू कर देते थे। सर्वोच्च न्यायालयको कम्पनीके शीर्षस्थ अधिकारियोंके विरुद्ध भी मुकदमोंकी सुनवायी करनेका अधिकार दे दिये जानेसे न्यायपालिका और कार्यकारिणीमें टकरावकी सूरत पैदा हो गयी। इन त्रुटियोंको दूर करनेके लिए १७८४ ई० में पिट्का इडिया एक्ट पास हुआ। इसके द्वारा भारतीय प्रशासनपर ब्रिटिश सरकार और कम्पनीका सयुक्त नियन्त्रण स्थापित कर दिया गया। इसके द्वारा इग्लैण्डमें बोर्ड आफ कन्ट्रोल (दे०) गठित करके भारत स्थित कम्पनीके इलाकोंके प्रशासनपर पार्लियामेण्टका नियन्त्रण अधिक प्रभावी बना दिया गया। बोर्ड आफ कण्ट्रोलमें प्रिवी कौंसिलके ६ सदस्य होते थे, जिन्हें कोई वेतन नहीं दिया जाता था। इन ६ सदस्योंमेंसे ही एकको बोर्डका अध्यक्ष बना दिया जाता था, जिसे निर्णायक मत डालनेका भी अधिकार प्राप्त था। बोर्डको नियुक्तियाँ करने अथवा कम्पनीके व्यावसायिक मामलोंमें हस्तक्षेप करनेका कोई अधिकार न था। ये दोनों जिम्मेदारियाँ ईस्ट इण्डिया कम्पनीके कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स (दे०) पर छोड दी गयी थी। किन्तु बोर्ड आफ कण्ट्रोलको ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्रोंके असैनिक, सैनिक तथा आर्थिक प्रशासनसे सम्बन्धित सभी मामलोंमें देख-रेख करने, निर्देश देने और नियन्त्रण रखनेका अधिकार प्राप्त था।

भारत स्थित कम्पनीके अधिकारियोंको बिना बोर्ड आफ कण्ट्रोलकी सहमतिके कोई आदेश सीधे नहीं भेजा जा सकता था। बोर्डको यह अधिकार भी प्राप्त था कि वह यदि कोई आदेश देना उचित समझे तो उसे बोर्ड आफ डाइरेक्टर्सकी स्वीकृतिके बिना भी जारी कर सकता था। हेनरी जान डुण्डास बोर्ड आफ कण्ट्रोलका प्रथम अध्यक्ष था और उसके कुशल मार्ग-निर्देशनमें बोर्ड आफ कण्ट्रोल भारतीय प्रशासनका वास्तविक सूत्रधार बन गया। भारतमें गवर्नर-जनरलकी स्थिति सुदृढ करनेके लिए उसकी परिषद्के सदस्योंकी सख्या चारसे घटाकर तीन कर दी गयी और प्रधान सेनापतिको भी उसका सदस्य बना दिया गया। गवर्नर-जनरल तथा उसकी परिषद्का बम्बई और मद्रास प्रेसीडेन्सियोंके प्रशासनोंपर नियन्त्रण अधिक प्रभावी बना दिया गया। दो वर्ष पश्चात् एक पूरक कानून द्वारा गवर्नर जनरलको विशेष मामलोंमें परिषद्के बहुमतके निर्णयकी अवहेलना कर देनेका अधिकार भी प्रदान कर दिया गया। भारतके ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्रोंका प्रशासन अब सपरिषद् गवर्नर-जनरलमें निहित कर दिया गया। इसीके अनुसार १८३४ ई०में उसका पद नाम बदलकर बंगाल स्थित फोर्ट विलियमके गवर्नर-जनरलके बजाय भारतका गवर्नर-जनरल कर दिया गया।

भारतीय प्रशासन पर बोर्ड आफ कण्ट्रोलके माध्यमसे ब्रिटिश पार्लियामेण्ट और कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सके माध्यमसे ईस्ट इडिया कम्पनीका दोहरा नियन्त्रण १८५७ ई०के गदरतक कायम रहा। फिर भी व्यावहारिक रूपमें

ब्रिटिश पार्लियामेण्टका नियन्त्रण अधिक प्रभावी था। यह मुख्यतः बोर्ड आफ कण्ट्रोलके प्रथम अध्यक्ष डुण्डासके कुशल और विवेकपूर्ण निर्देशनके फलस्वरूप सम्भव हो सका। उसने अपने लम्बे कार्यकालमें बोर्ड आफ कण्ट्रोल-को राजनीतिक निर्णयोंके लिए सर्वोपरि सत्ताके रूपमें प्रतिष्ठित कर दिया तथा बोर्डके सारे अधिकारोंको अपने हाथोंमें केन्द्रित करके बोर्डके अध्यक्षपदको वस्तुत. भारत-मन्त्रीके पदका समकक्ष बना दिया।

उक्त दोनों कानूनोंको पास करके ब्रिटिश पार्लिया-मेण्टने वस्तुत. भारतीय प्रशासनका नैतिक उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके अधिकार-पत्रका प्रत्येक बीस वर्षके बाद नवीनीकरण किया जाता था। फलतः इन अवसरोंका लाभ उठाकर ब्रिटिश पार्लि-यामेण्टने भारतीय प्रशासन व्यवस्थामें समयानुकूल आवश्यक परिवर्तन करना आरम्भ कर दिया। १८१३ ई० के चार्टर एक्ट द्वारा भारतसे व्यापार करनेके लिए इग्लैण्डकी जनताको भी आंशिक रूपसे छूट दे दी गयी और ईस्ट इडिया कम्पनीका व्यापारिक रूप बडी हद तक समाप्त कर दिया गया। १८३३ ई० के चार्टर ऐक्ट द्वारा भारतीय व्यापारपर कम्पनीका एकाधिकार बिलकुल समाप्त कर दिया गया और उसे भारतका प्रशासन चलाने-के लिए ब्रिटिश सरकारका राजनीतिक प्रतिनिधि बना दिया गया। इस एक्टके द्वारा गवर्नर-जनरलकी परिषद्में चौथा सदस्य बढा दिया गया और उसे कानून बनानेका अधिकार प्रदान कर दिया गया। प्रधान सेनापतिकी सदस्यता यथापूर्व जारी रखी गयी। इस ऐक्टके द्वारा एक विधि आयोगकी भी नियुक्ति की गयी, जिसने अन्त-तोगत्वा भारतमें दीवानी और फौजदारीके मामलोंमें एक सामान्य सार्वजनिक कानूनका प्रचलन किया। अन्तमें १८५३ ई० के चार्टर ऐक्ट द्वारा इडियन सिविल सर्विस-में भरतीके लिए खुली प्रतियोगिताकी प्रणाली चालू की गयी। इससे इडियन सिविल सर्विसके भारतीयकरणका मार्ग प्रशस्त हुआ, जिसमें तब तक केवल अग्रेज ही भर्ती होते थे। इस ऐक्टके द्वारा कानूनोंका निर्माण करनेके लिए गवर्नर-जनरलकी परिषद्में अतिरिक्त ६ सदस्य बढानेकी व्यवस्था की गयी। इस कार्यके लिए परिषद्में प्रारम्भमें जो ६ सदस्य नामाकित किये गये, वे नि सन्देह सभी अग्रेज थे। फिर भी इस व्यवस्थासे ही भारतमें विधान मडलकी शुरूआत सभव हो सकी।

१८५३ ई०के चार्टर कानूनके पास होनेके चार वर्ष बाद सिपाही-विद्रोह शुरू हो जानेसे भारतमें कम्पनीके शासनकी जडें हिल गयी। विद्रोहको कम्पनीकी सेनाओं-ने दबा दिया। किन्तु भारतमें कम्पनीके प्रशासनकी कमजोरियाँ स्पष्ट रूपसे दृष्टिगोचर हो गयी। फलत ब्रिटिश पार्लियामेण्टने १८५८ ई०में भारतमें उत्तम शासन व्यवस्थाके लिए कानून पास करके भारतीय प्रशासनका नियंत्रण ब्रिटिश राजसत्ताको हस्तातरित कर दिया। कानूनमें प्रावधान किया गया कि भारतका शासन अब ब्रिटिश सम्राट्के नामसे उसके मन्त्रियोंमेंसे एक मन्त्री द्वारा चलाया जायगा और उसकी सहायताके लिए एक पन्द्रह सदस्यीय परिषद् गठित की जायगी। गवर्नर-जनरलको वाइसराय (राज प्रतिनिधि)का नया पदनाम दिया गया, कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स (दे०)को तोड दिया गया, बोर्ड आफ कन्ट्रोल (दे०)का नाम बदल कर भारत-परिषद् कर दिया गया और उसका अध्यक्ष जो ब्रिटिश मन्त्रिमडलका सदस्य होता था, भारत-मन्त्री कहा जाने लगा। भारतीय प्रशासन पद्धतिमें परिवर्तनकी घोषणा महारानीके घोषणापत्र (दे०)द्वारा की गयी, जो १ नवम्बर १८५८ ई०को जारी हुई। इस घोषणापत्रमें उन सधियों तथा करारोंकी जो ईस्ट इडिया कम्पनीने भारतीय राजाओंसे किये थे, पुष्टि की गयी, आम माफी दी गयी और घोषित किया गया कि "सभी लोगोंको वे चाहे जिस जाति अथवा धर्मके हो, मुक्त रूपसे और निष्पक्ष भावसे ब्रिटिश सम्राट्की सेवामें, उन कार्योंके लिए जिनके लिए वे अपनी शिक्षा, योग्यता और ईमानदारी-के आधार पर उपयुक्त सिद्ध होंगे, नौकरी दी जायगी।"

भारतीय प्रशासन व्यवस्थामें अगला महत्त्वपूर्ण परि-वर्तन १८६१ ई०के इडियन कौंसिल ऐक्ट द्वारा किया गया। इस कानूनके द्वारा वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्में पाँचवा साधारण गैर-सरकारी (यूरोपीय) सदस्य बढा दिया गया, वाइसरायके अधिकारोंमें पर्याप्त वृद्धि कर दी गयी और उसे कार्यकारिणी परिषद्के कार्य-सचालनके लिए नियम बनानेके अधिकार प्रदान कर दिये गये। इन अधिकारोंका प्रयोग करके कैनिंगने, जो उस समय वाइसराय था, कार्यकारिणी परिषद्के प्रत्येक सदस्यके जिम्मे अलग-अलग विभाग कर दिये। उसे अधिकार दिया गया कि वह अपने विभागके छोटे मामलों-को स्वय और अधिक महत्त्वके मामलोंको वाइसरायसे विचार विमर्श करनेके उपरान्त निपटा सकता था। सामान्य नीतिके प्रश्न अथवा अन्य विभागोंसे भी सबधित मामले निर्णयके लिए कार्यकारिणी परिषद्में रखे जाते थे। विभागोंके बँटवारेकी इस पद्धतिसे समयकी काफी

वचन हुई और यह न केवल ब्रिटिश शासनकालमें चलती रही, वरन् कुछ परिवर्तनोंके साथ इसे स्वाधीन भारतमें भी अंगीकार कर लिया गया है।

१८६१ ई०के इंडियन कौंसिल ऐक्ट (भारतीय परिषद् कानून)के द्वारा भारतकी विधायनी प्रणालीमें भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये थे। सिपाही-विद्रोहमें प्रकट हो गया था कि भारतीय प्रशासन तंत्रमें ऐसी व्यवस्था आवश्यक है जिसके द्वारा भारतीय लोकमतको जाना जा सके। अतः १८६१ ई०के कानूनमें इस बातका प्राविधान किया गया कि विधायी कार्योंके लिए वाइसरायकी परिषद्की सदस्य संख्या ६ से १२ तक बढ़ा दी जाये और इनमेंसे आधे सदस्य गैरसरकारी होने चाहिए। यद्यपि विधि-निर्माणके अधिकार विभिन्न रीतियोंसे सीमित कर दिये गये थे, तथापि यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया था कि गैरसरकारी भारतीयोंको कानून बनानेमें, जिनसे वे शासित होते हैं, शामिल किया जाना चाहिए। तीन भारतीयों यथा महाराजा पटियाला, राजा बनारस तथा ग्वालियरके सर दिनकर रावको लेजिस्लेटिव कौंसिल अर्थात् वाइसरायकी विधान परिषद्में मनोनीत किया गया।

१८६१ ई०के इंडियन कौंसिल्स ऐक्टके द्वारा बम्बई और मद्रास सरकारोंको भी प्रांतकी शांति और उत्तम शासन व्यवस्थाके लिए कानून बनानेके सीमित अधिकार प्रदान कर दिये गये और इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए गवर्नरकी कार्यकारिणी परिषदकी सदस्य संख्या चारसे आठ तक बढ़ा दी गयी जिनमेंसे कम से कम आधे गैर सरकारी होने थे।

१८६१ ई०के ऐक्टमें गवर्नर-जनरल तथा उसकी परिषद्को इसी प्रकारकी विधान परिषदें न केवल शेष तीन सूबों यथा बङ्गाल, पश्चिमोत्तर प्रदेश (बादमें संयुक्त प्रांत अथवा उत्तर प्रदेश) तथा पंजाबमें गठित करने वरन् अन्य उन नये सूबोंमें भी गठित करनेका अधिकार दिया गया जो इस कानूनके अन्तर्गत बादमें निर्मित हों। विधान परिषदें बंगालमें १८६२ ई०में, पश्चिमोत्तर प्रदेशमें १८८६ ई०में तथा पंजाबमें १८९८ ई०में गठित हुई। १८६१ ई०के ऐक्टमें यद्यपि कानून बनानेमें गैरसरकारी भारतीयोंसे विचार-विमर्श करनेके सिद्धान्तको स्वीकार कर लिया गया था, तथापि सरकारके नियंत्रणको शिथिल करनेका इरादा लेशमात्र भी नहीं था. बल्कि प्रवृत्ति इसके विपरीत दिशामें थी, जैसा कि १८७० ई०के इंडियन कौंसिल ऐक्टमें प्रकट हुआ। इस ऐक्टने द्वारा गवर्नर-जनरल तथा उसकी कार्यकारिणीको न केवल विधान परिषद्से परामर्श लिये बिना ही कानून बनानेका अधिकार प्राप्त हो गया, वरन् वाइसरायको यह अधिकार भी दे दिया गया कि भारत स्थित ब्रिटिश साम्राज्यके हितमें अथवा उसकी सुरक्षा और शान्तिके लिए यदि वह आवश्यक समझे तो वह अपनी कार्यकारिणी द्वारा बहुमतसे किये गये निर्णयोंकी भी अवहेलना कर सकता था। वाइसरायको इस प्रकार मुगलोंकी भाँति पूर्ण स्वेच्छाचारी शासक बना दिया गया। १८७४ ई०में वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्में एक साधारण छठा सदस्य बढ़ाया गया। उसके जिम्मे सार्वजनिक-निर्माण विभाग कर दिया गया।

इस बीच भारतीय लोकमत उत्तरोत्तर जागृत होता जा रहा था। पश्चिमी शिक्षाके प्रसारके फलस्वरूप सार्वजनिक मंचों और समाचारपत्रोंके माध्यमसे जनता अपनी भावनाओंको प्रकट करने लगी थी। कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बईमें लार्ड कैनिंगके शासनकालमें विश्वविद्यालयोंकी स्थापना हो चुकी थी। १८६९ ई०में स्वेज नहरके खुल जाने और १८७० ई०में इंग्लैंड और भारतके बीच सीधा तार-सम्बन्ध स्थापित हो जानेसे दोनों देशोंके बीचकी दूरी कम हो गयी और बड़ी संख्यामें भारतीय इंग्लैंड जाने लगे और वहाँ पर प्रचलित उदार राजनीतिक भावनासे अनुप्राणित होकर वे स्वदेश लौटने लगे। इसके फलस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (दे०)की स्थापना हुई, जिसका प्रथम अधिवेशन बम्बईमें १८८५ ई०में हुआ। शिक्षित भारतीयोंने अभूतपूर्व राष्ट्रीय एकताका परिचय देते हुए दृढ़तापूर्वक न केवल यह माँग की कि देशकी नौकरियोंमें उन्हें अधिक स्थान दिया जाय वरन् इस बातकी भी माँग की कि समुचित संख्यामें जनताके निर्वाचित प्रतिनिधियोंको विधान परिषद्में शामिल कर उनके अधिकार-क्षेत्रको बढ़ाया जाय; उन्हें परिषद्में वार्षिक बजटपर बहस करने तथा प्रश्नोत्तरों द्वारा सरकारसे सूचनाएँ प्राप्त करनेका अधिकार प्राप्त हो।

प्रबुद्ध लोकमतके दबावके फलस्वरूप ब्रिटिश पार्लियामेण्टने १८९२ ई० में इंडियन कौंसिल्स ऐक्ट बनाया, जिसके फलस्वरूप गवर्नर-जनरलकी विधान परिषद तथा प्रादेशिक गवर्नरोंकी परिषदोंके गैर-सरकारी सदस्योंकी संख्यामें वृद्धि कर दी गयी। यद्यपि कुछ सदस्योंका सरकार द्वारा मनोनयन जारी रखा गया, तथापि उनमेंसे कुछ को परोक्षरूपसे निर्वाचित करनेका भी प्राविधान कर दिया गया। ऐक्टके द्वारा विधान परिषदों-

को वार्षिक बजटपर बहस करने तथा प्रश्नो द्वारा सूचनाएँ प्राप्त करनेका भी अधिकार प्राप्त हो गया। निर्वाचनके सिद्धातको स्वीकार कर और विधान परिषदो-को कार्यकारिणीपर कुछ नियत्रण प्रदान कर, इडियन कौंसिल एक्ट १८९२ ई० ने भारतमे शासन-सुधारोका मार्ग प्रशस्त कर दिया।

भारतीय लोकमत प्रशासन व्यवस्थाको और अधिक उदार बनानेके लिए निरन्तर दबाव डालता रहा। अगला महत्त्वपूर्ण परिवर्तन १९०९ ई० के भारतीय शासन विधान द्वारा किया गया। इसे मार्ले मिन्टो सुधार कहते है। इस कानूनमे योग्य भारतीयोको पहलेकी अपेक्षा अधिक सख्यामे सरकारमे शामिल करनेका प्राविधान किया गया। इसके फलस्वरूप एक भारतीय (सर सत्येन्द्र प्रसन्न सिन्हा, बादमे रायपुरके लार्ड सिन्हा) की वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्मे तथा बगालकी कार्य-कारिणी परिषद्मे राजा किशोरीलाल गोस्वामीकी नियुक्ति हुई थी। इसी प्रकार मद्रास और बम्बई प्रातोकी कार्यकारिणी परिषदोमे भी भारतीयोकी नियुक्तिया की गयी। १९०९ ई० के कानूनमे विधानपरिषदोकी सरचना तथा उनके कार्योमे भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। केन्द्रीय विधान परिषद्की सदस्य सख्या बढाकर साठ और बडे प्रातोकी विधान परिषदोमे निर्वाचित गैर-सरकारी सदस्योकी अनुपातिक सख्या बढा दी गयी, यद्यपि बहुमत मनोनीत सरकारी एव गैरसरकारी सदस्यो-का ही बनाये रखा गया। सदस्योका निर्वाचन पहलेकी भाँति परोक्ष पद्धतिसे ही होता था, अब साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वका भी सूत्रपात कर दिया गया। निर्वाचन क्षेत्र पहलेकी तुलनामे अधिक व्यापक बना दिये गये। विधान परिषदोको बजटपर बहस करने और उनपर तथा सेना, विदेशी मामले तथा देशी रजवाडोके प्रश्नोको छोडकर, अन्य प्रश्नोपर प्रस्ताव लानेकी भी अनुमति प्रदान कर दी गयी। प्रस्ताव सिफारिशके ही रूपमे होते थे और उन्हे स्वीकार करनेके लिए सरकार बाध्य नही थी, इस प्रकार १९०९ ई० का कानून भारतमे उत्तर-दायी सरकारकी शुरुआतकी दिशामे एक महत्त्वपूर्ण कदम था, फिर भी इस कानूनके द्वारा भारतमे उत्तरदायी शासन प्रणालीकी स्थापना नही हुई और भारतीय प्रशा-सन पहलेकी भाँति पूर्णरूपसे ब्रिटिश पार्लियामेन्टके प्रति उत्तरदायी बना रहा।

अतः १९०९ ई० के शासन-सुधारोसे भारतीय राजनीतिक आकाक्षाएँ सन्तुष्ट नही हो सकी और असतोष बढता रहा। उसके बाद प्रथम विश्वयुद्ध छिड गया और भारतने अपनी राजभक्तिका परिचय देते हुए युद्धमे इग्लैण्डका साथ दिया और अपनी सरकारकी नीतियोके निर्धारणमे अधिक आवाजकी माँग की। भारतीयोकी माँगोको सन्तुष्ट करनेके लिए ब्रिटिश सरकारने २० अगस्त १९१७ ई० को भारत मत्री श्री एड्विन मान्टेग्यू-के माध्यमसे घोषणा की कि "सम्राट्की सरकारकी यह नीति है कि प्रशासनकी प्रत्येक शाखामे भारतीयोको अधिक स्थान दिया जाय तथा स्वायत्तशासी सस्थाओको क्रमिक रूपसे विकसित किया जाये ताकि ब्रिटिश साम्रा-ज्यके अभिन्न अगके रूपमे भारतमे उत्तरोत्तर उत्तरदायी सरकारकी स्थापना हो सके।" यह एक युगान्तरकारी घोषणा थी जिसके द्वारा भारतमे ससदीय पद्धतिकी उत्तरदायी सरकारकी स्थापनाका वचन दिया गया था। इस नीतिके अनुसरणमे १९१९ ई० का भारतीय शासन विधान पास किया गया जो १९२१ ई० से लागू हुआ।

१९१९ ई० के भारतीय शासन विधानने भारतीय प्रशासन और भारतमत्रीके सम्बन्धोमे कोई प्रभावी परि-वर्तन नही किया। यद्यपि भारतमत्रीकी परिषद्मे भार-तीयोकी नियुक्तिका पथ प्रशस्त कर दिया गया, तथापि परिषद्को यथापूर्व भारतमत्रीके अधीनस्थ रखा गया। भारतमत्रीका भारतीय प्रशासनपर पूर्ण नियत्रण, केवल प्रातोनि हस्तान्तरित विभागोके प्रशासनको छोडकर, पूर्ववत् बना रहा। भारतमत्रीको केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारोके एजेटकी हैसियतसे किये जानेवाले कार्योसे मुक्त कर दिया गया। यह दायित्व एक नये अधिकारी, हाईकमिश्नर, को सौंपा गया जिसकी नियुक्ति भारत सरकार करती थी। इसके अतिरिक्त भारतमत्री तथा उपमत्रीका वेतन तथा उसके विभागका व्यय, जो तब तक भारतीय राजस्वसे वहन किया जाता था, आगेसे ब्रिटिश पार्लियामेन्ट द्वारा स्वीकृत ब्रिटेनके बजटसे वहन किये जानेका प्राविधान किया गया। इस प्रकार भारतपर ब्रिटिश पार्लियामेण्टका नियत्रण और सुदृढ बना दिया गया।

१९१९ ई० के विधानमे भारतकी प्रशासकीय व्य-वस्थामे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल यथापूर्व भारतमत्री तथा पार्लियामेन्टके प्रति उत्तरदायी बना रहा, किन्तु उसकी कार्यकारिणी परिषद्का आकार बढा दिया गया और यह परम्परा प्रचलित की गयी कि उसके तीन सदस्य भारतीय होगे। इस प्रकार भारतीय प्रशासनको प्रभावित करनेकी दृष्टि-

से भारतीयोकी स्थिति पहलेकी अपेक्षा सुधर गयी। केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारोके कार्योको यथासम्भव स्पष्ट रूपसे विभाजित कर दिया गया और उनके आयके स्रोतोको भी निर्धारित कर दिया गया।

केन्द्रीय विधानमडलको भी पूरी तरहसे नया रूप दिया गया। उसे दो सदनोमे विभक्त कर दिया गया। अपर सदनका नाम कौंसिल आफ स्टेट (राज्यसभा) तथा निम्न सदनका नाम केन्द्रीय लेजिस्लेटिव असेम्बली (विधानसभा) रखा गया। कार्यकारिणी परिषदके सदस्योको गवर्नर-जनरल इन दोनोमेसे किसी एक सदनमे मनोनीत कर सकता था। यद्यपि साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वकी प्रणाली कायम रखी गयी, तथापि प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणालीके सिद्धान्तको मान्यता प्रदान कर दी गयी और दोनो सदनोमे निर्वाचित सदस्योका बहुमत हो गया। मताधिकार सम्पत्ति सम्बधी योग्यतापर आधारित था जो कौंसिल आफ स्टेटके लिए निम्न सदन की अपेक्षा अधिक ऊँची थी, किन्तु अनुचित रूपसे प्रतिबधात्मक नही थी।

केन्द्रीय विधानमडलको विधि-निर्माणके क्षेत्रमे तथा वित्तीय मामलोमे विस्तृत अधिकार प्रदान कर दिये गये, किन्तु साथ ही गवर्नर-जनरलको प्रमाणीकरण तथा अध्यादेश जारी करनेके अधिकार प्रदान करके उसके इन अधिकारोको काफी हद तक सीमित भी कर दिया गया। दोनो सदनोके अधिकार समान थे, किन्तु अनुदानोको स्वीकार या अस्वीकार करनेका अधिकार केवल निम्न सदनको था। इस प्रकार भारतके इतिहासमे पहली बार एक निर्वाचित ससदकी स्थापना हुई, जिसे प्रशासनको काफी हद तक नियन्त्रित करनेका अधिकार प्राप्त था।

१९१९ ई० के शासन-विधान नेप्रादेशिक शासन-व्यवस्थामे भी व्यापक परिवर्तन कर दिये। सभी १० प्रातोको, जिनमे उस समय ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य विभक्त था, गवर्नरोवाला प्रात बना दिया गया। इन प्रातोका शासन गवर्नर कार्यकारिणी-परिषदकी सहायतासे चलाते थे, जिनमे कुछ गैरसरकारी भारतीय सदस्योकी नियुक्तिका प्राविधान कर दिया गया। गवर्नरकी नियुक्ति सम्राट् द्वारा होती थी। उसे व्यापक अधिकार तथा विशेषाधिकार प्राप्त थे। वास्तवमे प्रातीय शासनकी वास्तविक सत्ता उसी के हाथमे केन्द्रित थी। फिर भी नये विधानके अनुसार प्रातोमे पहली बार वैधशासनका प्रचलन किया। प्रशासकीय विभागोको दो भागोमे विभक्त कर दिया गया। पुलिस, न्याय, भूमि राजस्व आदि विभागोको आरक्षित विषयोके अतर्गत रखा गया तथा हस्तान्तरित विषयोके अतर्गत स्वायत्त-शासन, शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, आबकारी आदि विभागोको कर दिया गया। आरक्षित विषयोके सम्बन्धमे प्राविधान किया गया कि इन विभागोका प्रशासन गवर्नर कार्यकारिणी परिषद्के सदस्योके परामर्श और सहायतासे चलायेगा जो पहलेकी भाँति गवर्नर-जनरल तथा भारत-मन्त्रीके प्रति उत्तरदायी होगे। किन्तु हस्तान्तरित विषयोका प्रशासन गवर्नर द्वारा अपने मन्त्रियोके परामर्श तथा सहायतासे चलानेका प्राविधान किया गया। इन मन्त्रियोकी नियुक्ति गवर्नर प्रातीय विधानमडलके निर्वाचित सदस्योमेसे ही कर सकता था। मन्त्री अपने पदपर गवर्नरकी खुशीपर बने रह सकते थे, किन्तु उनके लिए विधानमडलका विश्वास बनाये रखना अनिवार्य था। विश्वास खो देनेपर उन्हे बर्खास्त कर दिया जाता था।

प्रातोमे विधान मडलोको व्यापक अधिकार प्रदान किये गये। उनके बहुसख्यक सदस्य गैरसरकारी होते थे, जो प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणालीके आधारपर निर्वाचित किये जाते थे। साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व तथा नामजदगीकी प्रणालीको कायम रखा गया, किन्तु प्रातीय विधान मंडलोके अधिकार काफी बढा दिये गये। उनमे किसी भी प्रातीय विषयके सम्बन्धमे विधेयक प्रस्तुत किया जा सकता था, किन्तु आरक्षित विषयोसे सम्बन्धित विधेयकको उसके प्रतिकूल मतदानके बावजूद कानून बनाया जा सकता था, यदि गवर्नर यह प्रमाणित कर दे कि वह प्रातकी शाति एव व्यवस्थाके लिए आवश्यक है। लेकिन हस्तान्तरित विषयोसे सम्बन्धित विधेयक केवल उसकी अनुमतिसे ही स्वीकृत हो सकते थे। इसी प्रकार प्रातका पूरा बजट प्रातीय विधान मडलमे प्रस्तुत किया जाना और उस पर विधान मडलमे बहस होना आवश्यक था, किन्तु हस्तान्तरित विषयोसे सम्बन्धित अनुदानोपर जबकि उसकी स्वीकृति आवश्यक थी, आरक्षित विषयोमे सम्बन्धित अनुदानको अस्वीकृत हो जानेपर भी गवर्नर अपने विशेषाधिकारसे प्रमाणित करके पास कर सकता था। इस प्रकार विधि-निर्माण एव वित्तीय मामलोमे प्रातीय विधान मडलोके अधिकार, यद्यपि आरक्षित विषयोंके सम्बन्धमे काफी सीमित थे, तथापि पहलेकी तुलनामे काफी विस्तृत हो गये थे। केन्द्रीय एव प्रातीय विधान मडलोमे व्यापक मताधिकारके आधारपर प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणालीकी शुरुआत तथा उन्हें बहस करने और निर्णय लेनेके व्यापक अधिकार प्रदान किया जाना

को वार्षिक बजटपर बहस करने तथा प्रश्नो द्वारा सूचनाएँ प्राप्त करनेका भी अधिकार प्राप्त हो गया। निर्वाचनके सिद्धातको स्वीकार कर और विधान परिषदो-को कार्यकारिणीपर कुछ नियन्त्रण प्रदान कर, इडियन कौसिल एक्ट १८९२ ई० ने भारतमे शासन-सुधारोका मार्ग प्रशस्त कर दिया।

भारतीय लोकमत प्रशासन व्यवस्थाको और अधिक उदार बनानेके लिए निरन्तर दबाव डालता रहा। अगला महत्त्वपूर्ण परिवर्तन १९०९ ई० के भारतीय शासन विधान द्वारा किया गया। इसे मार्ले मिन्टो सुधार कहते है। इस कानूनमे योग्य भारतीयोको पहलेकी अपेक्षा अधिक सख्यामे सरकारमे शामिल करनेका प्राविधान किया गया। इसके फलस्वरूप एक भारतीय (सर सत्येन्द्र प्रसन्न सिन्हा, बादमे रायपुरके लार्ड सिन्हा) की वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्मे तथा बगालकी कार्य-कारिणी परिषद्मे राजा किशोरीलाल गोस्वामीकी नियुक्ति हुई थी। इसी प्रकार मद्रास और बम्बई प्रातोकी कार्यकारिणी परिषदोमे भी भारतीयोकी नियुक्तिया की गयी। १९०९ ई० के कानूनमे विधानपरिषदोकी सरचना तथा उनके कार्योमे भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। केन्द्रीय विधान परिषद्की सदस्य सख्या बढाकर साठ और बडे प्रातोकी विधान परिषदोमे निर्वाचित गैर-सरकारी सदस्योकी अनुपातिक सख्या बढा दी गयी, यद्यपि बहुमत मनोनीत सरकारी एव गैरसरकारी सदस्यो-का ही बनाये रखा गया। सदस्योका निर्वाचन पहलेकी भाँति परोक्ष पद्धतिसे ही होता था, अब साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वका भी सूत्रपात कर दिया गया। निर्वाचन क्षेत्र पहलेकी तुलनामे अधिक व्यापक बना दिये गये। विधान परिषदोको बजटपर बहस करने और उनपर तथा सेना, विदेशी मामले तथा देशी रजवाडोके प्रश्नोको छोडकर, अन्य प्रश्नोपर प्रस्ताव लानेकी भी अनुमति प्रदान कर दी गयी। प्रस्ताव सिफारिशके ही रूपमे होते थे और उन्हे स्वीकार करनेके लिए सरकार बाध्य नही थी, इस प्रकार १९०९ ई० का कानून भारतमे उत्तर-दायी सरकारकी शुरुआतकी दिशामे एक महत्त्वपूर्ण कदम था, फिर भी इस कानूनके द्वारा भारतमे उत्तरदायी शासन प्रणालीकी स्थापना नही हुई और भारतीय प्रशा-सन पहलेकी भाँति पूर्णरूपसे ब्रिटिश पार्लियामेन्टके प्रति उत्तरदायी बना रहा।

अतः १९०९ ई० के शासन-सुधारोसे भारतीय राजनीतिक आकाक्षाएँ सन्तुष्ट नही हो सकी और असतोष बढता रहा। उसके बाद प्रथम विश्वयुद्ध छिड गया और भारतने अपनी राजभक्तिका परिचय देते हुए युद्धमे इग्लैण्डका साथ दिया और अपनी सरकारकी नीतियोके निर्धारणमे अधिक आवाजकी माँग की। भारतीयोकी माँगोको सन्तुष्ट करनेके लिए ब्रिटिश सरकारने २० अगस्त १९१७ ई० को भारत मन्त्री श्री एड्विन मान्टेग्यू-के माध्यमसे घोषणा की कि "सम्राट्की सरकारकी यह नीति है कि प्रशासनकी प्रत्येक शाखामे भारतीयोको अधिक स्थान दिया जाय तथा स्वायत्तशासी सस्थाओको क्रमिक रूपसे विकसित किया जाये ताकि ब्रिटिश साम्रा-ज्यके अभिन्न अगके रूपमे भारतमे उत्तरोत्तर उत्तरदायी सरकारकी स्थापना हो सके।" यह एक युगान्तरकारी घोषणा थी जिसके द्वारा भारतमे ससदीय पद्धतिकी उत्तरदायी सरकारकी स्थापनाका वचन दिया गया था। इस नीतिके अनुसरणमे १९१९ ई० का भारतीय शासन विधान पास किया गया जो १९२१ ई० से लागू हुआ।

१९१९ ई० के भारतीय शासन विधानने भारतीय प्रशासन और भारतमन्त्रीके सम्बन्धोमे कोई प्रभावी परि-वर्तन नही किया। यद्यपि भारतमन्त्रीकी परिषद्मे भार-तीयोकी नियुक्तिका पथ प्रशस्त कर दिया गया, तथापि परिषद्को यथापूर्व भारतमन्त्रीके अधीनस्थ रखा गया। भारतमन्त्रीका भारतीय प्रशासनपर पूर्ण नियन्त्रण, केवल प्रातोके हस्तान्तरित विभागोके प्रशासनको छोडकर, पूर्ववत् बना रहा। भारतमन्त्रीको केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारोके एजेटकी हैसियतसे किये जानेवाले कार्योसे मुक्त कर दिया गया। यह दायित्व एक नये अधिकारी, हाईकमिश्नर, को सौपा गया जिसकी नियुक्ति भारत सरकार करती थी। इसके अतिरिक्त भारतमन्त्री तथा उपमन्त्रीका वेतन तथा उसके विभागका व्यय, जो तब तक भारतीय राजस्वसे वहन किया जाता था, आगेसे ब्रिटिश पार्लियामेन्ट द्वारा स्वीकृत ब्रिटेनके बजटसे वहन किये जानेका प्राविधान किया गया। इस प्रकार भारतपर ब्रिटिश पार्लियामेण्टका नियन्त्रण और सुदृढ बना दिया गया।

१९१९ ई० के विधानमे भारतकी प्रशासकीय व्य-वस्थामे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल यथापूर्व भारतमन्त्री तथा पार्लियामेन्टके प्रति उत्तरदायी बना रहा, किन्तु उसकी कार्यकारिणी परिषद्का आकार बढा दिया गया और यह परम्परा प्रचलित की गयी कि उसके तीन सदस्य भारतीय होगे। इस प्रकार भारतीय प्रशासनको प्रभावित करनेकी दृष्टि-

से भारतीयोंकी स्थिति पहलेकी अपेक्षा सुधर गयी। केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारोंके कार्योंको यथासम्भव स्पष्ट रूपसे विभाजित कर दिया गया और उनके आयके स्रोतोंको भी निर्धारित कर दिया गया।

केन्द्रीय विधानमंडलको भी पूरी तरहसे नया रूप दिया गया। उसे दो सदनोंमें विभक्त कर दिया गया। अपर सदनका नाम कौंसिल आफ स्टेट (राज्यसभा) तथा निम्न सदनका नाम केन्द्रीय लेजिस्लेटिव असेम्बली (विधानसभा) रखा गया। कार्यकारिणी परिषदके सदस्योंको गवर्नर-जनरल इन दोनोंमेंसे किसी एक सदनमें मनोनीत कर सकता था। यद्यपि साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वकी प्रणाली कायम रखी गयी, तथापि प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणालीके सिद्धान्तको मान्यता प्रदान कर दी गयी और दोनों सदनोंमें निर्वाचित सदस्योंका बहुमत हो गया। मताधिकार सम्पत्ति सम्बधी योग्यतापर आधारित था जो कौंसिल आफ स्टेटके लिए निम्न सदन की अपेक्षा अधिक ऊँची थी, किन्तु अनुचित रूपसे प्रतिबंधात्मक नहीं थी।

केन्द्रीय विधानमंडलको विधि-निर्माणके क्षेत्रमें तथा वित्तीय मामलोंमें विस्तृत अधिकार प्रदान कर दिये गये, किन्तु साथ ही गवर्नर-जनरलको प्रमाणीकरण तथा अध्यादेश जारी करनेके अधिकार प्रदान करके उसके इन अधिकारोंको काफी हद तक सीमित भी कर दिया गया। दोनों सदनोंके अधिकार समान थे, किन्तु अनुदानोंको स्वीकार या अस्वीकार करनेका अधिकार केवल निम्न सदनको था। इस प्रकार भारतके इतिहासमें पहली बार एक निर्वाचित संसदकी स्थापना हुई, जिसे प्रशासनको काफी हद तक नियंत्रित करनेका अधिकार प्राप्त था।

१९१९ ई० के शासन-विधान नेप्रादेशिक शासन-व्यवस्थामें भी व्यापक परिवर्तन कर दिये। सभी १० प्रांतोंको, जिनमें उस समय ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य विभक्त था, गवर्नरोंवाला प्रांत बना दिया गया। इन प्रांतोंका शासन गवर्नर कार्यकारिणी-परिषदकी सहायतासे चलाते थे, जिनमें कुछ गैरसरकारी भारतीय सदस्योंकी नियुक्तिका प्राविधान कर दिया गया। गवर्नरकी नियुक्ति सम्राट् द्वारा होती थी। उसे व्यापक अधिकार तथा विशेषाधिकार प्राप्त थे। वास्तवमें प्रांतीय शासनकी वास्तविक सत्ता उसी के हाथमें केन्द्रित थी। फिर भी नये विधानके अनुसार प्रांतोंमें पहली बार द्वैधशासनका प्रचलन किया। प्रशासकीय विभागोंको दो भागोंमें विभक्त कर दिया गया। पुलिस, न्याय, भूमि राजस्व आदि विभागोंको आरक्षित विषयोंके अंतर्गत रखा गया तथा हस्तान्तरित विषयोंके अंतर्गत स्वायत्त-शासन, शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, आबकारी आदि विभागोंको कर दिया गया। आरक्षित विषयोंके सम्बन्धमें प्राविधान किया गया कि इन विभागोंका प्रशासन गवर्नर कार्यकारिणी परिषद्के सदस्योंके परामर्श और सहायतासे चलायेगा जो पहलेकी भाँति गवर्नर-जनरल तथा भारत-मंत्रीके प्रति उत्तरदायी होंगे। किन्तु हस्तान्तरित विषयोंका प्रशासन गवर्नर द्वारा अपने मन्त्रियोंके परामर्श तथा सहायतासे चलानेका प्राविधान किया गया। इन मंत्रियोंकी नियुक्ति गवर्नर प्रांतीय विधानमंडलके निर्वाचित सदस्योंमेंसे ही कर सकता था। मंत्री अपने पदपर गवर्नरकी खुशीपर बने रह सकते थे, किन्तु उनके लिए विधानमंडलका विश्वास बनाये रखना अनिवार्य था। विश्वास खो देनेपर उन्हें बर्खास्त कर दिया जाता था।

प्रांतोंमें विधान मंडलोंको व्यापक अधिकार प्रदान किये गये। उनके बहुसंख्यक सदस्य गैरसरकारी होते थे, जो प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणालीके आधारपर निर्वाचित किये जाते थे। साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व तथा नामजदगीकी प्रणालीको कायम रखा गया, किन्तु प्रांतीय विधान मंडलके अधिकार काफी बढ़ा दिये गये। उनमें किसी भी प्रांतीय विषयके सम्बन्धमें विधेयक प्रस्तुत किया जा सकता था, किन्तु आरक्षित विषयोंसे सम्बन्धित विधेयकको उसके अतिकूल मतदानके बावजूद कानून बनाया जा सकता था, यदि गवर्नर यह प्रमाणित कर दे कि वह प्रांतकी शांति एवं व्यवस्थाके लिए आवश्यक है। लेकिन हस्तान्तरित विषयोंसे सम्बन्धित विधेयक केवल उसकी अनुमतिसे ही स्वीकृत हो सकते थे। इसी प्रकार प्रांतका पूरा बजट प्रांतीय विधान मंडलमें प्रस्तुत किया जाना और उस पर विधान मंडलमें बहस होना आवश्यक था, किन्तु हस्तान्तरित विषयोंमें सम्बन्धित अनुदानोंपर जबकि उसकी स्वीकृति आवश्यक थी, आरक्षित विषयोंसे सम्बन्धित अनुदानको अस्वीकृत हो जानेपर भी गवर्नर अपने विशेषाधिकारसे प्रमाणित करके पास कर सकता था। इस प्रकार विधि-निर्माण एवं वित्तीय मामलोंमें प्रांतीय विधान मंडलोंके अधिकार, यद्यपि आरक्षित विषयोंके सम्बन्धमें काफी सीमित थे, तथापि पहलेकी तुलनामें काफी विस्तृत हो गये थे। केन्द्रीय एवं प्रांतीय विधान मंडलोंमें व्यापक मताधिकारके आधारपर प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणालीकी शुरुआत तथा उन्हें बहस करने और निर्णय लेनेके व्यापक अधिकार प्रदान किया जाना

१९१९ ई०के शासन-विधानकी महत्त्वपूर्ण विशेषता थी। इस शासन-विधानने अनेक प्रतिबंधोंके बावजूद ब्रिटिश भारतको संसदीय लोकतांत्रिक शासन-प्रणालीके पथपर निश्चित रूपसे अग्रसर कर दिया।

फिर भी १९१९ ई०के शासन-विधानसे, जो १९२१ ई०में कार्यान्वित हुआ, भारतीयोंकी राष्ट्रीय आकांक्षाओंको सन्तुष्ट नहीं किया जा सका। भारतीय लिबरलोंने इन शासन सुधारोंको स्वीकार कर लिया और उन्हें कार्यान्वित करनेका भी प्रयास किया; किन्तु भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने उन्हें नितांत अपर्याप्त मान कर अस्वीकार कर दिया। महात्मा गांधी, जो उस समय तक कांग्रेसके मान्य नेता बन गये थे और खिलाफत आन्दोलन (दे०) का भी नेतृत्व कर रहे थे, असहयोग आन्दोलन शुरू कर दिया। यह आंदोलन शीघ्र ही सारे देशमें फैल गया। किन्तु १९२४ ई० तक खिलाफत आन्दोलनकारी कांग्रेससे अलग हो गये और ब्रिटिश सरकार भी पशु-बलके आधारपर असहयोग आन्दोलनका दमन करनेमें सफल हो गयी। फिर भी कांग्रेसने झुकना तो दूर, अपने १९२७ ई०के मद्रास अधिवेशनमें भारतका लक्ष्य 'पूर्ण स्वाधीनता' घोषित किया। अपनी इस घोषणाको उसने और अधिक स्पष्ट शब्दोंमें १९२९ ई०के लाहौर अधिवेशनमें दोहराया। १९३० ई०में महात्मा गांधीने सविनय-अवज्ञा आन्दोलन (दे०) आरम्भ कर दिया। ब्रिटिश सरकारने पुन कठोर दमनकी नीति अपनायी, महात्मा गांधी सहित सभी कांग्रेस नेताओंको कैद कर लिया और हजारों लोगोंको जेलोंमें ठूंस दिया। फलस्वरूप सविनय-अवज्ञा आन्दोलन धीरे-धीरे शिथिल पड गया, किन्तु देशमें असंतोष बना रहा। असन्तुष्ट भारतको सन्तुष्ट करनेकी आशामें ब्रिटिश पार्लियामेण्टने १९३५ ई०में नया भारतीय शासन विधान पास किया, जिसके द्वारा भारतीय प्रशासनतंत्रमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। १९३५ ई०के शासन-विधानमें भारत सरकारको पहलेकी भाँति वाइसराय तथा गवर्नर-जनरलको भारत मंत्रीके प्रति उत्तरदायी बनाकर ब्रिटिश पार्लियामेण्टके अधीन रखा गया। इसके साथ उसमें तत्कालीन भारतीय शासन-विधानकी सभी विशेषताओं, जैसे विधान मंडलोंमें जनताका प्रतिनिधित्व, द्वैध शासन, मंत्रियोंका उत्तरदायित्व, प्रांतोंको स्वशासन साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व एवं विशेषाधिकारोंको यथापूर्व कायम रखा गया। उसके अतिरिक्त इस विधानमें दो नयी विशेषताएँ थीं—यथा, केन्द्रमें संघशासन तथा प्रदेशोंमें जिन्हें स्वशासन प्रदान कर दिया गया था, लोकप्रिय उत्तरदायी सरकार। दो नये प्रांत, यथा सिन्ध तथा उडीसा गठित किये गये और इन दोनोंको पश्चिमोत्तर सीमा-प्रांतके साथ गवर्नर वाला प्रांत बना दिया गया। बर्माको ब्रिटिश भारतसे पृथक् कर दिया गया। इस प्रकार ब्रिटिश भारतमें तब ११ गवर्नरोंवाले प्रांत तथा ४ चीफ कमिश्नरों द्वारा शासित क्षेत्र यथा दिल्ली, अजमेर-मारवाड, कुर्ग, अंडमान तथा निकोबार द्वीपसमूह तथा ब्रिटिश बलूचिस्तान थे।

१९३५ ई०के शासन-विधानकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता संघीय शासन-प्रणाली थी। उसमें सभी भारतीय प्रांतों तथा सभी देशी रियासतोंकी एक संघीय इकाई बनानेका प्रस्ताव किया गया था। केन्द्रमें द्विसदनीय विधानमंडल तथा गवर्नर-जनरलकी कार्यकारिणी परिषद्में द्वैध शासनकी व्यवस्था की गयी थी। गवर्नर-जनरलको अधिकार दिया गया था कि वह अपनी कार्यकारिणी परिषद्में दो सदस्योंको मनोनीत करके सुरक्षा तथा विदेशी मामलोंके आरक्षित विभागोंको उनके जिम्मे कर दे। अन्य सभी विभाग हस्तांतरित विभागोंके अन्तर्गत कर दिये गये थे और यह प्राविधान किया गया था कि उनका शासन चलानेके लिए गवर्नर-जनरल मंत्रियोंकी नियुक्ति करेगा, जो विधान मंडलके प्रति उत्तरदायी होंगे। गवर्नर-जनरलको पहलेकी ही भाँति यह विशेषाधिकार प्राप्त था कि संघीय विधानमंडलमें प्रतिकूल मतदान होनेके बावजूद वह प्रमाणित करके किसी विधेयकको कानूनका रूप दे सकता था। इसके साथ ही वह ६ महीनेकी अवधिके लिए अध्यादेश भी जारी कर सकता था। संघीय विधानमंडलके दोनों सदनोंके बहुसंख्यक सदस्योंके मतदाताओं द्वारा सीधे निर्वाचित किये जानेकी व्यवस्था की गयी थी, किन्तु संघमें शामिल होनेवाली देशी रियासतोंको निचले सदनके एक तिहाई प्रतिनिधियोंको तथा ऊपरी सदनके दो बटा पाँच प्रतिनिधियोंको मनोनीत करनेका अधिकार प्रदान किया गया था। इस प्रकार सम्पूर्ण भारतके प्रतिनिधियोंके एक ही सदनमें बैठनेकी व्यवस्था पहली बार की गयी थी।

१९३५ ई०के शासन विधानमें प्रांतोंमें द्वैध शासन समाप्त करके लोकप्रिय सरकारोंकी स्थापना की गयी। सभी विभागोंका प्रशासन मंत्रियोंके जिम्मे कर दिया गया, जिनकी नियुक्ति गवर्नरोंके हाथमें थी, लेकिन वे लोकप्रिय निर्वाचित विधान-सभाओंके प्रति उत्तरदायी होते थे। साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व बरकरार रखा गया और ६ प्रांतोंमें द्विसदनीय विधान मंडलोंकी व्यवस्था की गयी। प्रत्येक प्रांतके निचले सदनमें जनता द्वारा निर्वाचित

प्रतिनिधि होते थे। सभी वयस्क स्त्री पुरुषोको जो थोड़ी सम्पत्ति भी रखते थे, मताधिकार प्रदान कर दिया गया था।

१९३५ ई०का शासन-विधान भारतको औपनिवेशिक स्वराज्यका दर्जा दिलानेकी दिशामे एक महत्त्वपूर्ण कदम था, किन्तु इसके द्वारा जो शासन व्यवस्था स्थापित की गयी थी, वह कुछ महत्त्वपूर्ण मामलोमे औपनिवेशिक स्वराज्यके दर्जेके अनुकूल नही थी। प्रथमत, केन्द्रमे द्वैध शासन होनेके कारण कार्यकारिणीका एक भाग भारतके लोगो द्वारा हटाया नही जा सकता था और वह ब्रिटिश पार्लियामेण्टके प्रति उत्तरदायी था। दूसरे, वाइसरायके प्रमाणित करके तथा अध्यादेशो द्वारा कानून बनानेके विशेषाधिकार वास्तविक औपनिवेशिक स्वराज्यके प्रतिकूल थे और इनसे सिद्ध होता था कि भारत अब भी इग्लैण्ड पर आश्रित है। तीसरे, यह प्राविधान कि भारतीय सघीय विधानमडल द्वारा पास किये गये कानूनोपर गवर्नर-जनरल अपनी स्वीकृति प्रदान करनेमे इकार कर सकता है अथवा आरक्षित रख सकता है और भारत-मत्रीके परामर्शपर ब्रिटिश राजसत्ता उसे अस्वीकृत कर सकती है, भारतके पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्यके दर्जेका उपभोग करनेके मार्गमे सबसे गम्भीर रुकावट थी।

ऐसी परिस्थितियोमे १९३५ ई०के शासन-विधानके सम्बन्धमे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसने आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाया। विधानके सघीय भागका क्रियान्वयन देशी राजाओके सहयोगपर निर्भर करता था और चूँकि इस भागका स्वागत नही हुआ था, अत विधानका केवल प्रातीय विभाग ही १९३७ ई०मे कार्यान्वित किया गया। सभी पार्टियोने चुनावमे भाग लिया और सभी प्रातोमे लोकप्रिय सरकारोकी स्थापना हो गयी, किन्तु केन्द्रमे पुरानी प्रणालीकी अनुत्तरदायी कार्यकारिणी और आशिक लोकप्रिय विधायिका, जो कि १९१९ ई० के विधानके अनुसार गठित की गयी थी, कार्य करती रही। दो वर्ष पश्चात् द्वितीय विश्व-युद्ध शुरू हो गया, जिसका भारतकी राजनीतिक स्थितिपर जबर्दस्त प्रभाव पडा। प्रारम्भमे ब्रिटेनकी पराजयोके बाद उसके द्वारा शत्रुओका जबर्दस्त मुकाबला, जापानियोका आक्रमण, युद्धमे अमेरिकी हस्तक्षेप तथा भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस और मुस्लिम लीगके बीच गम्भीर मतभेदोके फलस्वरूप भारतमे अत्यधिक तनावपूर्ण राजनीतिक स्थित पैदा हो गयी। कुछ लोगोका विचार था कि ब्रिटेनके खतरेसे लाभ उठाकर भारतको अपनी आजादीके लिए दबाव डालना चाहिए, किन्तु महात्मा गाधीने घोषित किया कि 'हम ब्रिटेनका विनाश करके अपनी आजादी नही प्राप्त करना चाहते है।' इन परिस्थितियोमे ब्रिटिश सरकारने वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्की सदस्य सख्या बढाकर १५ कर दी, जिनमेसे ११ सदस्य भारतीय होनेवाले थे। इस प्रकार ब्रिटिश सरकारने भारतीय प्रशासनके काफी बडे हिस्से पर भारतीयोका नियत्रण स्थापित कर और सर स्टैफर्ड क्रिप्सको भारतीय समस्याका समाधान ढूढनेके लिए भारत भेजनेकी घोषणा की। लेकिन भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस तत्काल पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान करनेके लिए आन्दोलन करती रही। चूँकि ब्रिटिश सरकारने स्वेच्छासे इस मागको स्वीकार नही किया, अतएव काग्रेसने महात्मा गाधीके नेतृत्वमे अग्रेजोसे तत्काल भारत छोड देनेकी माग की और १९४२ मे देशव्यापी सविनय-अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ कर दिया। महात्मा गाधीद्वारा अहिंसाका आग्रह करनेके बावजूद आन्दोलनके दौरान काफी हिंसात्मक घटनाएँ घटी। ब्रिटिश सरकार पशुबलका प्रयोग करके आन्दोलनका दमन करनेमे सफल हो गयी और अन्तमे युद्धमे भी जीत गयी। किन्तु १९४२ ई०की बगावत और १९४६ ई०मे नौसेनाके विद्रोहने यह प्रकट कर दिया कि ब्रिटेन अब बहुसख्यक भारतीयोकी सहमतिसे अपना शासन कायम नही रख सकता है। उसने अप्रैल १९४६ ई०मे कैबिनेट मिशनको भारत भेजा, उसकी विफलता तथा उसके बाद भारत-व्यापी साम्प्रदायिक दगोने इस विश्वासको और भी सुदृढ कर दिया। विश्वयुद्धमे जीत जानेके बावजूद ब्रिटेन इतना थक और दिवालिया हो गया था कि वह यह समझ गया कि मात्र शक्तिके बलपर वह भारतको अपने कब्जेमे नही रख सकता है। भारतको यदि तत्काल आजाद न किया गया तो वह न केवल उसे खो बैठेगा वरन् उसके साथ मैत्रीपूर्ण व्यावसायिक सम्बन्ध भी कायम नही रख सकेगा। व्यावसायिक सम्बन्धोपर ब्रिटेनकी आर्थिक व्यवस्था एव वित्तीय सम्पन्नता निर्भर करती है। ऐसी परिस्थितिमे ब्रिटिश राजनीतिज्ञोने अभूतपूर्व दूरदर्शिता और साहसका परिचय देते हुए १५ अगस्त १९४७ ई०को भारतको स्वाधीनता प्रदान कर दी, देशका भारत और पाकिस्तानके रूपमे दो भागोमे विभाजन कर दिया। ब्रिटेनकी 'फूट डालो और शासन करो'की नीतिके फलस्वरूप भारतमे हिन्दुओ और मुसलमानोके बीचकी खाई इतनी चौडी हो गयी थी कि देशका विभाजन अनिवार्य हो गया था। इस प्रकार १७७३

ई०के रेग्युलेटिंग एक्ट द्वारा जिस भारतीय प्रशासनतत्रकी नीव डाली गयी, उसकी चरम परिणति भारतकी स्वाधीनताके रूपमे हुई। (सर सी० इलबर्ट—दि गवर्नमेण्ट आफ इडिया तथा ए० बी० कीथ—कान्स्टीच्यूशनल हिस्ट्री आफ इडिया)

ग्रेथवेट, कर्नल—एक ब्रिटिश सैनिक अधिकारी, जो १७८१ ई०के द्वितीय आग्ल-मैसूर युद्धमे हैदरअलीकी सेनासे पराजित हो गया।

ब्लावत्स्की, मैडम हेलेना पेत्रव्ना (१८३१-९१)—एक प्रतिभाशाली रूसी महिला, जो भारतके प्राचीन अध्यात्मवादकी बहुत प्रशसक थी और १८७५ ई०मे उन्होने ब्रह्मविद्या-समाज (थियोसोफिकल सोसाइटी)की स्थापना की। १८७९ ई०मे वे भारत आयी और मद्रासके निकट अडयारमे थियोसोफिकल सोसाइटीके प्रधान कार्यालयकी स्थापना की। उनके प्रमुख प्रकाशनोमे 'आइसिस' 'अनवेल्ड' 'सिक्रेट डाक्ट्रिन' तथा 'दि वायस आफ साइलेन्स' है। (ए० पी० क्लीथर—एच० पी० ब्लावत्स्की. हरसेल्फ)

ब्लेकेट, सर बसील—लार्ड इर्विन (१९२६–३१ ई०)के शासनकालमे वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्का वित्त-सदस्य। सर बसीलने रुपयेका विनिमय मूल्य १ शिलिंग ६ पेस स्थिर किया, जिसकी भारतीयोने तीव्र आलोचना की।

ब्लैकहोल (कालकोठरी)—कलकत्ता स्थित फोर्ट विलियममे १८ फुट लम्बा और १४ फुट दस इच चौडा एक कमरा। २० जून १७५६ ई०को नवाब सिराजुद्दौलाने किलेपर कब्जा करके अनेक अग्रेजोको वन्दी बना लिया। वी० जेड० हालवेलके अनुसार, जिसके ऊपर उस समय किलेकी रक्षाका भार था, अग्रेज वन्दियोकी सख्या १४६ थी। उन सबको रातमे किलेकी काल-कोठरीमे वद कर दिया गया, जिसके फलस्वरूप दम घुटनेसे रातमे १२३ वन्दियोकी मृत्यु हो गयी। इस घटनाको क्रूर नृशसता माना गया और सिराजुद्दौलाको इसके लिए जिम्मेदार ठहराया गया। ठोस सबूतोके आधारपर इस घटनाकी सचाईपर सन्देह प्रकट किया जाता है और सम्भव है कि यह कोरी कपोल-कल्पना हो। जो कुछ भी हो, सिराजुद्दौला इस घटनाके लिए जिम्मेदार नही था। (मिल—हिस्ट्री आफ इडिया, विद विल्सन नोट्स, जिल्द ३, १८५८ ई० का संस्करण, ए० के० मैत्र कृत बंगला पुस्तक सिराजुद्दौला; सी० लिटिल—दि ब्लैक होल ट्रेजडी)

भ

भगदत्त—कामरूपका पौराणिक राजा, जिसका उल्लेख महाभारतमे भी मिलता है। ऐतिहासिक कालमे कामरूपके राजा पुष्यवर्मा (लगभग ३३०—६४६ ई०)के वशज अपनेको भगदत्त कुलोत्पन्न मानते थे। ८ वी शताव्दीमे कामरूपका राजा हर्ष हुआ। उसने अपनी पुत्री राज्यमतीका विवाह नेपालके राजासे किया था। नेपालके एक शिलालेखमे राजा हर्षको भी भगदत्त-कुलोपन्न वताया गया है। (इ० ए०, खण्ड ९, पृ० १७९)

भगवद्गीता महाभारतके भीष्मपर्वका अश। सनातनी हिन्दुओकी मान्यताके अनुसार इसमे पाण्डव-वीर अर्जुनको दिया गया भगवान् कृष्णका उपदेश सगृहीत है। इसका रचनाकाल अभी तक निश्चित रूपमे निर्धारित नही हो सका है। स्वामी विवेकानन्दके विचारसे इसकी रचना वुद्धसे पूर्व हो चुकी थी। पश्चिमके विद्वान् इसका रचनाकाल चौथी शताव्दी ईसवी मानते है। यह हिन्दू धर्मका सर्व-श्रेष्ठ और सर्वमान्य ग्रथ है, जिसमे निष्काम कर्म और भक्तिका उपदेश दिया गया है।

भगवानदास—आमेर (जयपुर)का शासक, जिसके पिता राजा बिहारीमलने स्वेच्छासे मुगल वादशाह अकवरका आधिपत्य स्वीकार कर उससे अपनी पुत्रीका विवाह कर दिया। अकवरकी सेवामे आकर भगवानदासने अच्छी पदोन्नति की और मुगल सेनाके आक्रमणका नेतृत्व कर कश्मीरपर विजय प्राप्त की, जिससे वह मुगल साम्राज्यका अग वन गया। राजा भगवानदास ख्याति-प्राप्त हिन्दी कवि भी थे।

भग्ग (भर्ग) गण—प्राक्-मौर्यकालमे सुसुमार गिरिपर निवास करता था।

भट्ट कुल—जिसने वालाजी विश्वनाथ भट्टको उत्पन्न किया, जो राजा साहूके अष्ट प्रधानोमेसे एक था। उसने पेशवा अथवा मुख्य प्रधानके पदकी प्रतिष्ठा वढा कर उसे मराठा राज्यका सर्वेसर्वा वना दिया। उसने इस पदको अपने परिवारमे पुश्तैनी कर दिया। सभी पेशवा उसके वशज थे।

भण्डि—राज्यवर्धन (दे०)की मृत्युके समय कन्नौजका प्रमुख राजपुरुष, जिसने हर्ष (दे०)को सिंहासनासीन करनेमे प्रधान भूमिका पूरी की।

भत्ता—एक पारिभाषिक शब्द। यह एक प्रकारका अतिरिक्त वेतन था जो वगालमे ईस्ट इडिया कम्पनीके सैनिक अधिकारियोको दिया जाता था। इसकी रकम मीरजाफरने

दूसरी बार बगालका नवाब बननेपर दुगुनी कर दी, लेकिन १७६६ ई०मे ईस्ट इडिया कम्पनीके डाइरेक्टरोने इसे बन्द कर देनेका निर्णय किया। जब बगालके गर्वनर क्लाइवने तत्कालीन भत्ता बन्द करनेके निर्णयको कार्यान्वित किया, तब कम्पनीके भारत स्थित अग्रेज सैनिक अधिकारियोने इसके कार्यान्वयनको रोकनेके प्रयासमे अपने कमीशन सामूहिक रूपमे त्याग दिये। यह व्यवहारत एक प्रकारका विद्रोह था, किन्तु क्लाइवने स्थितिका मुकाबला बडी सूझ-बूझके साथ किया और अधिकारी भी झुक गये। १७६५ ई० मे यह भत्ता उस समय पुन चालू कर दिया गया जब अग्रेज अधिकारियोने सयुक्त रूपसे इसके पुन. चालू किये जानेका अनुरोध किया। किन्तु लार्ड विलियम बेण्टिक (१८२८–३५ ई०)के प्रशासन-कालमे डाइरेक्टरोके आदेशानुसार इसे अन्तिम रूपसे समाप्त कर दिया गया।

भद्रक—शुग राजवशका पाचवाँ राजा। उसकी पहचान पभोसाके शिलालेखमे वर्णित राजा उदक अथवा औद्रकसे की जाती है, लेकिन यह अभी निश्चित नही है। उसके बारेमे और अधिक जानकारी प्राप्त नही है। (रायचौधरी, पृ० ३९३-९४)

भद्रबाहु—श्रुत केवली जैन मुनियोमे अन्तिम, जो सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्यके समकालीन थे। चन्द्रगुप्तके शासनकी अन्तिम अवधिमे बारह वर्षीय अकाल पडा, जिससे सारे साम्राज्यमे त्राहि-त्राहि मच गयी, अन्तमे चन्द्रगुप्त सिंहासन त्याग कर भद्रबाहुके नेतृत्वमे अन्य जैन मुनियोके साथ दक्षिण भारतके कर्नाटक देशस्थ श्रवण बेलगोला नामक स्थानपर चला गया। भद्रबाहुने पूर्णायुका भोग कर अतमे पण्डितमरणकी जैन विधिके अनुसार अनशन करके देहत्याग किया। उन्होने दक्षिण भारतमे जैन-धर्मका अच्छा प्रचार किया। उनका उल्लेख श्रीरगपट्टम्मे प्राप्त लगभग ६०० ई०के दो शिलालेखोमे मिलता है। श्रवण बेलगोला स्थित जैन मठके गुरु, जो दक्षिण भारतके सभी जैन साधुओके आचार्य माने जाते हैं, अपनेको भद्रबाहुकी शिष्य परम्परामे बतलाते है। (जैकोबी–सैक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट)

भद्रव्यास—एक भारतीय वीर, जिसने पूर्वी पंजाबके बाख्त्री यवन राज्यको नष्ट करनेमे प्रमुख योगदान किया था। (राय चौधरी, पृ० ४२९)

भद्रसाल—नन्दवशके अन्तिम राजाका सेनापति, जिसे चन्द्रगुप्त मौर्यने सिंहासनपर अधिकार करनेके लिए काफी रक्तपातके बाद पाटलिपुत्र (पटना)मे हराया था।

भरत—अनेक वैदिक राजाओ, ऋषभदेवके छोटे पुत्र, दुष्यत-शकुन्तलाके पुत्र तथा रामचन्द्रजीके अनुजका नाम। उत्तरमे हिमालयसे लेकर दक्षिणमे हिन्दमहासागर तक विस्तृत उपमहाद्वीप भारतवर्षके नामसे विख्यात है, क्योकि इसमे भरतके वशज रहते है। (विष्णु पुराण, खण्ड २ पृष्ठ ३.१)

भरतपुर—एक नगर और भूतपूर्व देशी राज्य, जिसकी स्थापना अठ्ठारहवी शताब्दीके पूर्वार्द्धमे जाट सरदार बदनसिंहने की। उसके दत्तक पुत्र और उत्तराधिकारी सूरजमलके शासनकालमे भरतपुर राज्यकी सीमा आगरा, धौलपुर, मैनपुरी, हाथरस, अलीगढ, इटावा, गुरगाव तथा मथुरा तक फैल गयी थी। इस प्रकार यह केन्द्रीय भारतमे एक शक्तिशाली सत्ताके रूपमे सगठित हो गया। बादमे इसका क्षेत्र कम हो गया। भरतपुरमे एक बहुत ही मजबूत दुहरा किला बना हुआ है। पानीपतकी तीसरी लडाई (१७६१ ई०)मे इसके शासक सूरजमलने मराठोका साथ नही दिया। इसकी ख्याति और प्रतिष्ठा उस समय और बढ गयी जब १८०५ ई०मे द्वितीय आग्ल-मराठा युद्धके दौरान इसने लार्ड लेकके नेतृत्वमे लड रही ब्रिटिश सेनाको मार भगाया और किलेपर कब्जा करनेके प्रयासको विफल कर दिया। फलत भरतपुरका किला अभेद्य माना जाने लगा। फिर भी भरतपुरके राजाने अग्रेजोके साथ आश्रित रहनेकी सन्धि कर ली और १८२४ ई० तक उनके साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बने रहे। किन्तु प्रथम आग्ल-बर्मी युद्धके दौरान अग्रेजी सेनाकी पराजयोसे प्रोत्साहित होकर भरतपुरके सिंहासनके एक दावेदार, दुर्जन सालने स्वर्गीय राजाके अल्पवयस्क पुत्र तथा अपने चचेरे भाईको सिंहासनपर बैठानेके ब्रिटिश भारत सरकारके निर्णयको सशस्त्र चुनौती दी। किन्तु लार्ड काम्बरमियरके नेतृत्वमे ब्रिटिश सेनाने १८२६ ई०मे भरतपुरके किलेको सरलतामे जीत लिया। दुर्जन सालको निर्वासित कर दिया गया और अग्रेजो द्वारा मनोनीत कुँवरको गद्दीपर बैठाया गया। भरतपुर तबसे ब्रिटिश साम्राज्यका एक निष्ठावान् अधीनस्थ राज्य बना रहा। स्वाधीनता-प्राप्तिके उपरान्त इसे भारतीय गणराज्यमे मिला लिया गया।

भरहुत—मध्य भारतमे स्थित। यह स्थान शुग-कालीन (१८५ ई० पू०–७३ ई० पू०)। आरम्भिक बौद्ध वास्तु एव मूर्तिकलाके लिए प्रसिद्ध है।

भरहुत स्तूप—सर जान मार्शलकी रायमे शुगकाल (१८५–७३ ई० पू०) का सबसे प्राचीन अवशेष। भरहुत मध्य-

प्रदेश राज्यमे विलीन रीवॉं रियासतके क्षेत्रमे अवस्थित है'। यह स्तूप उस स्थानपर बनाया गया था, जहाँ मगध और प्रयागके मार्ग मालवा और दक्षिणको जानेवाली सडकोसे मिलते थे। यह ईंट और पत्थरका बना हुआ है। इसके चारो तरफ एक वेदिका थी, जिसमे चार तोरण द्वार थे। इसके दो तोरण द्वारोपर उत्कीर्ण अभिलेखोमे डाहलके राजाओकी तीन पीढियोका उल्लेख है, जो शुगोके सामन्त थे। बौद्धधर्मके लुप्त हो जानेपर पडोसके गाँवोके लोगोने स्तूपको तोड-फोड डाला। इसके अवशेषोका पता कनिघम साहबने चलाया। उनके ही प्रयाससे पूर्वी तोरण द्वार तथा वेदिकाके जो बचे हुए स्तम्भ रहे उन्हे कलकत्ता ले जाकर भारतीय सग्रहालयमे रख दिया गया। पूर्वी तोरणद्वार तेईस फुट ऊँचा था। स्तूपके स्तम्भो, सूचियो, उष्णीषो आदि पर बुद्धके जीवन तथा जातकोके अनेक दृश्योके चित्र मिलते हैं। **(कैम्ब्रि०, खण्ड १, पृष्ठ ६२४–२५)**

भर्तृदमन–उज्जैनका महाक्षत्रप (२८९–९५ ई०), जो रुद्रसेन (मृत्यु २७४ ई०) का पुत्र था। वह बडे भाई विश्वसिंह (मृत्यु २८८ ई०) के बाद शासनारूढ हुआ। उसका पुत्र विश्वसूर केवल क्षत्रप कहलाता था। ऐसा लगता है, भर्तृदमनकी मृत्युके बाद महाक्षत्रयका पद अस्थाई-रूपसे अप्रचलित हो गया। पश्चिमोत्तर भारतपर सासानी बादशाहो लगभग (२९३–३५० ई०) के आक्रमणोके बाद सम्भवत., महाक्षत्रप पद समाप्त कर दिया गया।

भर्तृहरि–एक प्रसिद्ध सस्कृत कवि, जो ईसाकी सातवी शताब्दीमे विद्यमान थे। उनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति 'शतकत्रय' के साथ ही भट्टि काव्य भी कही जाती है, जिसकी रचना उन्होने मुख्यत सस्कृत व्याकरण पढानेके उद्देश्यसे की थी। मैकडोनेलके अनुसार, विदित होता है कि भर्तृहरि कविके अतिरिक्त वैयाकरण, तथा तत्त्वज्ञानी थे। **(मैकडोनेल–हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर)**

भवनाग–भारशिवोका एक शासक। वाकाटक नरेशोके अनेक शिलालेखोमे इसका उल्लेख है। गुप्त साम्राज्यके उत्कर्षके पूर्व इसका अभ्युदय हुआ था और इससे एक राजवश भी प्रचलित हुआ, जिसका शासन क्षेत्र गगा तक फैल गया। भारशिवोने दस अश्वमेध यज्ञ किये थे। **(रायचौधरी०, पृष्ठ ४८०)**

भवभूति–सस्कृतका दाक्षिणात्य कवि तथा नाटककार, जिसकी प्रसिद्ध रचना 'उत्तररामचरित' तथा 'मालतीमाधव' है। कहा जाता है कि वह आठवी शतीके आरम्भ मे कन्नौजपर शासन करनेवाले यशोवर्माका दरबारी कवि था।

भाग–भूमि-कर, जो कृषिउपजमेसे राजाके हिस्सेके रूपमे लिया जाता था और उपजका सामान्यत षष्ठाश होता था। इसकी मात्रामे हेर-फेर भी होता रहता था। उदाहरणार्थ, अशोकने महात्मा बुद्धकी जन्मस्थली लुम्बिनी ग्राममे इसे घटाकर मात्र आठवाँ भाग कर दिया था।

भागभद्र, काशीपुत्र–विदिशाका एक राजा, जिसके राज्याभिषेकके चौदहवे वर्षमे तक्षशिलाके यवन राजा एण्टीआल्की डसका राजदूत हेलियोडोरस भेट करने आया। **(स्मिथ०, पृष्ठ २३८ नोट ३; रायचौधरी०, पृष्ठ ३९४)**

भागवत–विदिशाका एक राजा, जिसके राज्याभिषेकके बारहवे वर्षमे विदिशा अथवा बेसनगरमे गरुडस्तम्भ निर्मित किया गया। यह राजा बेसनगरके राजा भागभद्रसे भिन्न है, जिसका उल्लेख हेलियोडोरस द्वारा स्थापित गरुडस्तम्भमे किया गया है। **(रायचौधरी०, पृष्ठ ३९४)**

भागवत–एक वैष्णव सम्प्रदाय, जिसके अनुयायी विष्णु, वासुदेव अथवा कृष्णकी पूजा करते है। इस सम्प्रदायका प्रादुर्भाव उत्तर वैदिककालमे माना गया है। आगे चलकर इसका प्रभाव अधिक व्यापक हो गया और भारतमे बसे यवनो (यूनानियो) का भी इसकी ओर झुकाव हुआ। तक्षशिलाके यवन राजा एण्टीयाल्कीडसके राजदूत हेलियोडोरसने, जिसने १४० और १३० ई० पू० के बीच बेसनगर अथवा विदिशामे एक गरुड स्तम्भ निर्मित कराया, अपनेको गर्वके साथ 'परम-भागवत' घोषित किया है।

भागवत लोग वैष्णवके नामसे भी प्रसिद्ध थे और वासुदेवकी भक्तिको भगवान्का अनुग्रह और कर्म-फलसे मुक्ति पानेका आधार मानते थे। गुप्त-शासकोके कालमे इस सम्प्रदायका महत्त्व काफी बढ गया। कुछ गुप्त सम्राटोने भी अपनेको 'भागवत' कहा है। कतिपय चालुक्य शासक भी अपनेको भागवत मतावलम्बी बताते थे। बादामी गुहाके प्रसिद्ध मन्दिरोके आधारपर सिद्ध होता है कि छठी शताब्दीमे भागवत सम्प्रदायका दक्षिणमे प्रचार था। इस सम्प्रदायके धार्मिक एव दार्शनिक सिद्धातोका प्रतिपादन करनेवाले प्रमुख वैष्णवाचार्योमे सबसे ज्यादा प्रसिद्धि रामानुज और मध्वको मिली। पूर्वी भारतमे इस सम्प्रदायके सर्वाधिक लोकप्रिय व्याख्याता श्री चैतन्य महाप्रभु हुए। **(राय चौधरी–अर्ली हिस्ट्री आफ दि वैष्णव सेक्ट)**

भानुगुप्त—प्रारम्भिक गुप्त सम्राटोमेसे एक, जिसका समय ५१० ई० के लगभग निश्चित किया गया है। उसकी पहचान सम्राट् बालादित्यसे की गयी है, जिसने ह्वेनसागके अनुसार हूणोके नेता मिहिरकुलको पराजित किया था।

भाऊ साहब—देखिये, 'सदाशिव राव'।

भानुदेव—गग राजवशका एक राजा, जो दक्षिण भारतपर हुए अलाउद्दीनके आक्रमणसे पूर्व उडीसापर शासन कर रहा था। १२९४ ई० के लगभग मुस्लिम आक्रमणोके फलस्वरूप उसका राज्य नष्ट हो गया।

भारत—एशिया महाद्वीपके दक्षिणी भागमे स्थित तीन प्राय-द्वीपोमे मध्यवर्ती और सबसे बडा प्रायद्वीप। यह त्रिभुजाकार है। हिमालय पर्वत-शृखलाको इस त्रिभुजका आधार और कन्याकुमारीको उसका शीर्षविन्दु कहा जा सकता है। इसके उत्तरमे हिमालय तथा दक्षिणमे हिन्द महासागर स्थित है। ऊँचे-ऊँचे पर्वतोने इसे उत्तर-पश्चिममे अफगानिस्तान तथा उत्तर-पूर्वमे वर्मासे अलग कर दिया है। यह स्वतन्त्र भौगोलिक ईकाई है। इसका क्षेत्रफल १७,०६,५०० वर्ग मील तथा १९५१ ई०की गणनाके अनुसार जनसख्या ४४,६८,६६,३०० है (१९७१ ई०की जनगणनाके अनुसार जनसख्या अब ५४,६९,५५,९४१ है।—स०)। प्राकृतिक दृष्टिसे इसे तीन क्षेत्रोमे विभक्त किया जा सकता है—हिमालयका क्षेत्र, उत्तरका मैदान जिससे होकर सिंधु, गगा और ब्रह्मपुत्र नदियाँ बहती हैं, दक्षिणका पठार, जिसे विंध्य पर्वतमाला उत्तरके मैदानसे अलग करती है। इसकी विशाल जनसख्या दो सौ से अधिक बोलियाँ बोलती है और ससारके सभी मुख्य धर्मोको माननेवाले यहाँ मिलते हैं। अग्रेजीमे इस देशका नाम 'इडिया' सिन्धुके फारसी रूपातरणके आधार पर यूनानियो द्वारा प्रचलित 'हिडस' नाममे पडा। मूल रूपसे इस देशका नाम प्रागैतिहासिक कालके राजा भरतके आधार पर भारतवर्ष है। अब इसका क्षेत्रफल सकुचित हो गया है और इस प्रायद्वीपके दो छोटे-छोटे क्षेत्रो-पाकिस्तान तथा बगलादेशको इससे पृथक् करके शेष भू-भागको भारत कहते हैं। 'हिन्दुस्थान' नाम सही तौरसे केवल गगाके उत्तरी मैदानके लिए प्रयुक्त किया जा सकता है जहाँ हिन्दी बोली जाती है। इसे भारत अथवा इडियाका पर्याय नही माना जा सकता।

भारतकी आधारभूत एकता उसकी विशिष्ट सस्कृति तथा सभ्यता पर आधारित है। यह इस बातसे प्रकट है कि हिन्दू धर्म सारे देशमे फैला हुआ है, सस्कृतको सब देवभाषा स्वीकार करते है, जिन सात नदियोको पवित्र माना जाता है उनमे सिंधु पजाबमे बहती है और कावेरी दक्षिणमे, इसी प्रकार जिन सात पुरियोको पवित्र माना जाता है उनमे हरिद्वार उत्तर प्रदेशमे स्थित है और काची सुदूर दक्षिणमे। भारतके सभी सार्वभौम राजाओकी आकाक्षा रही है कि उनके राज्यका विस्तार आसेतु हिमालय हो। परन्तु इतने बडे देशको, जो वास्तवमे एक उपमहाद्वीप है और क्षेत्रफलमे पश्चिमी रूसको छोडकर सारे यूरोपके बराबर है, एक राजनीतिक इकाई बनाये रखना अत्यन्त कठिन है। वास्तवमे उन्नीसवी शताब्दीके मध्यमे ब्रिटिश शासनकी स्थापनासे पूर्व सारा देश, बहुत थोडे कालको छोडकर, कभी एक साम्राज्यके अतर्गत नही रहा। ब्रिटिश शासन-कालमे सारे देशमे एक समान शासन-व्यवस्था करके तथा अग्रेजीको सारे देशमे प्रशासन और शिक्षाकी समान भाषा बनाकर पूरे देशको एक राजनीतिक इकाई बना दिया गया। परन्तु यह एकता एक शताब्दीके अदर भग हो गयी। १९४७ ई०मे जब भारत स्वाधीन हुआ, उसे विभाजित करके सिन्ध, उत्तर पश्चिमी सीमाप्रात, पश्चिमी पजाब (यह भाग अब 'पाकिस्तान' कहलाता है), पूर्वी तथा उत्तरी बगाल (यह भाग अब 'बागलादेश' कहलाता है) उससे अलग कर दिया गया।

भारतका इतिहास प्रागैतिहासिक कालसे आरम्भ होता है। ३००० ई० पू० तथा १५०० ई० पू० के बीच सिन्धु घाटी (दे०)मे एक उन्नत सभ्यता वर्तमान थी, जिसके अवशेष मोहन जोदडो और हडप्पा (दे०)मे मिले हैं। विश्वास किया जाता है कि भारतमे आर्योका प्रवेश बादमे हुआ। आर्योने पाया कि इस देशमे उनसे पूर्वके जो लोग निवास कर रहे थे, उनकी सभ्यता यदि उनसे श्रेष्ठ नही तो किसी रीतिसे निकृष्ट भी नही थी। आर्योसे पूर्वके लोगोमे सबसे बडा वर्ग द्रविड़ो (दे०)का था। आर्यो द्वारा वे क्रमिक रीतिसे उत्तरसे दक्षिण खदेड दिये गये, जहाँ दीर्घकाल तक उनका प्राधान्य रहा। बादमे उन्होने आर्योका प्रभुत्व स्वीकार कर लिया, उनसे विवाह सम्बन्ध स्थापित कर लिये और अब वे महान् भारतीय राष्ट्रके अग है। द्रविडोके अलावा देशमे और मूल जातियाँ थी, जिनमेसे कुछका प्रतिनिधित्व मुण्डा, कोल, भील आदि जनजातियाँ करती हैं जो मोन-ख्मेर वर्गकी भाषाएँ बोलती हैं। भारतीय आर्योका प्राचीनतम साहित्य हमे वेदो (दे०)मे विशेष रूपसे ऋग्वेद (दे०)मे मिलता है, जिसका रचनाकाल कुछ विद्वान् तीन हजार ई० पू० मानते हैं। वेदोमे हमे उस कालकी सभ्यताकी एक झाँकी

मिलती है। आर्योंने इस देशको कोई राजनीतिक एकता नही प्रदान की, यद्यपि उन्होने उसे एक पुष्ट दर्शन और धर्म प्रदान किया, जो हिन्दू धर्मके नामसे प्रख्यात है और कम से कम चार हजार वर्षसे अक्षुण्ण है।

प्राचीन भारतीयोंने कोई तिथि क्रमानुसार इतिहास नही सुरक्षित रखा है। सबसे प्राचीन सुनिश्चित तिथि जो हमे ज्ञात है, ३२६ ई० पू० है, जब मकदूनियाके राजा सिकन्दरने भारतपर आक्रमण किया। इस तिथिसे पहलेकी घटनाओंका तारतम्य जोड कर तथा साहित्यमे सुरक्षित ऐतिहासिक अनुश्रुतियोका उपयोग करके भारतका इतिहास सातवी शताब्दी ई० पू० तक पहुँच जाता है। उस कालमे भारत काबुलकी घाटीसे लेकर गोदावरी तक षोडश जनपदोमे विभाजित था, जिनके नाम निम्नोक्त प्रकारके थे :—

अग (पूर्वी विहार), मगध (दक्षिणी विहार), काशी (बनारस), कोशल (अवध), वृजि (उत्तरी विहार), मल्ल (गोरखपुर), चेदि (बुन्देलखड), वत्स (इलाहाबाद), कुरु (थानेश्वर तथा दिल्ली क्षेत्र), पचाल (बरेली तथा बदायूँ क्षेत्र), मत्स्य (जयपुर), शौरसेन (मथुरा), अश्मक (गोदावरीके तटपर), अवन्ती (मालवा), गधार (पेशावर क्षेत्र) तथा कम्बोज (कश्मीर तथा अफगानिस्तान)। इन राज्योमे आपसमे बराबर लडाई होती रहती थी। छठी शताब्दी ई० पू०के मध्यमे बिम्बिसार (दे०) तथा अजातशत्रु (दे०) के राज्यकालमे मगधने काशी तथा कोशलपर अधिकार करनेके बाद अपनी सीमाओंका विस्तार आरम्भ किया। इन्ही दोनो मगध राजाओंके राज्यकालमे वर्धमान महावीर (दे०)ने जैन धर्म तथा गौतम बुद्ध (दे०)ने बौद्ध धर्मका उपदेश दिया। बादके कालमे मगध राज्यका विस्तार जारी रहा और चौथी शताब्दी ई० पू०के अतमे नन्द राजाओंके शासनकालमे उसका विस्तार बगालसे लेकर पजाबमे व्यास नदीके तट तक सारे उत्तरी भारतमे हो गया।

यूनानी इतिहासकारो द्वारा वर्णित 'प्रेसिआई' (दे०) देशका राजा इतना शक्तिशाली था कि सिकन्दरकी सेनाएँ व्यास पार करके 'प्रेसिआई' देशमे नही घुस सकी और सिकन्दर, जिसने ३२६ ई० मे पजाबपर हमला किया, पीछे लौटनेके लिए विवश हुआ। वह सिन्धु नदीके मार्गसे वापस लौटा। इस घटनाके बाद ही मगधपर मौर्यवश (दे०) शासन करने लगा। इस वशके सस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य (लगभग ३२२ ई० पू०—२९८ ई० पू०) ने पजाबमे सिकन्दर जिन यूनानी अधिकारियोको छोड गया था उन्हे निकाल बाहर किया और बादमे एक युद्धमे सिकन्दरके सेनापति सेल्यूकसको हरा दिया। सेल्यूकसने हिन्दूकुश तकका सारा प्रदेश वापस लौटा कर चन्द्रगुप्तसे सधि कर ली। चन्द्रगुप्तने सारे उत्तरी भारतपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। उसने सम्भवत दक्षिण भी विजय कर लिया। वह अपने इस विशाल साम्राज्यपर अपनी राजधानी पाटलिपुत्र (दे०) से शासन करता था। उसकी राजधानी पाटलिपुत्र वैभव और समृद्धिमे सूसा और एकबताना नगरियोको भी मात करती थी। उसका पौत्र अशोक (दे०) था, जिसने कलिंग (उडीसा) को जीता। उसका साम्राज्य उत्तरमे हिमालयके पादमूलसे लेकर दक्षिणमे पन्नार नदी तक तथा उत्तर-पश्चिममे हिन्दूकुशसे लेकर उत्तर-पूर्वमे आसामकी सीमा तक विस्तृत था। उसने अपने विशाल साम्राज्यके समग्र साधनोको मनुष्यो तथा पशुओंके कल्याण-कार्यो तथा बौद्धधर्मके प्रसारमे लगाकर अमिट यश प्राप्त किया। उसने बौद्धधर्मके प्रसारके लिए भिक्षुओंको मिस्र, मकदूनिया तथा कोरिन्थ (प्राचीन यूनानकी विलास नगरी) जैसे दूर-दूर स्थानोमे भेजा और वहाँ लोकोपकारी कार्य कराये। उसके प्रयत्नोसे बौद्धधर्म विश्वधर्म बन गया, परन्तु उसकी युद्धसे विरत रहनेकी शातिपूर्ण नीतिने उसके वशकी शक्ति क्षीण कर दी और लगभग आधी शताब्दीके बाद पुष्यमित्र (दे०) ने उसका उच्छेद कर दिया। पुष्यमित्रने शुङ्गवश (लगभग १८५ ई० पू०—७३ ई० पू०) की स्थापना की, जिसका उच्छेद कण्ववश (लगभग ७३ ई० पू०—२८ ई० पू०) ने कर दिया।

मौर्यवशके पतनके बाद मगधकी शक्ति घटने लगी और सातवाहन (दे०) राजाओंके नेतृत्वमे मगध साम्राज्यसे दक्षिण अलग हो गया। सातवाहन वशका आध्र (दे०) वश भी कहते है और उसने ५० ई० पू० से २२५ ई० तक राज्य किया। भारतमे एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकारके अभावमे बैक्ट्रिया और पार्थियाके राजाओंने उत्तरी भारतपर आक्रमण शुरू कर दिये। इन आक्रमणकारी राजाओमे मिनाण्डर (दे०) सबसे विख्यात है। इसके बाद ही शक (दे०) राजाओंके आक्रमण शुरू हो गये और महाराष्ट्र, सौराष्ट्र तथा मथुरा शक क्षत्रपोके शासनमे आ गये। इस तरह भारतकी जो राजनीतिक एकता भग हो गयी थी, वह ईसवी पहली शताब्दी मे कदफिसस प्रथम (दे०) द्वारा कुषाण वश (दे०) की

शुरुआतसे फिर स्थापित हो गयी। इस वशने तीसरी शताब्दी ईसवीके मध्य तक उत्तरी भारतपर राज्य किया।

इस वशका सबसे प्रसिद्ध राजा कनिष्क (लगभग १२०–१४४ ई०) था, जिसकी राजधानी पुरुषपुर अथवा पेशावर थी। उसने बौद्धधर्म ग्रहण कर लिया और अश्वघोष (दे०), नागार्जुन (दे०) तथा चरक (दे०) जैसे भारतीय विद्वानोको सरक्षण दिया। कुषाणवशका अज्ञात कारणोसे तीसरी शताब्दीके मध्य तक पतन हो गया। इसके बाद भारतीय इतिहासका अंधकार युग आरम्भ होता है जो चौथी शताब्दीके आरम्भमे गुप्तवश (दे०) के उदयसे समाप्त हुआ।

लगभग ३२० ई० मे चन्द्रगुप्तने गुप्तवशको प्रचलित किया और पाटलिपुत्रको फिरसे अपनी राजधानी बनाया। गुप्त वशमे एकके बाद एक चार महान् शक्तिशाली राजा हुए, जिन्होने सारे उत्तरी भारतमे अपना साम्राज्य विस्तृत कर लिया और दक्षिणके कई राज्योपर भी प्रभुत्व स्थापित किया। उन्होने हिन्दूधर्मको राज्यधर्म बनाया, बौद्धधर्म और जैनधर्मके प्रति सहिष्णुता बरती और ज्ञान-विज्ञान, साहित्य, कला, वास्तुकला और चित्रकला-की उन्नति की। इसी युगमे कालिदास (दे०), आर्य-भट (दे०) तथा वराहमिहिर (दे०) हुए। रामायण, महाभारत, पुराणो तथा मनुसहिताको भी इसी युगमे वर्तमान रूप प्राप्त हुआ। चीनी यात्री फाह्यानने ४०१ से ४१० ई० के बीच भारतकी यात्रा की और उसने उस कालका रोचक वर्णन किया है। उसका मत है कि उस कालमे देशमे पूरा रामराज्य था। स्वाभाविक रूपसे गुप्त युगको भारतीय इतिहासका स्वर्ण युग माना जाता है और उसकी तुलना एथेन्सके पेरीक्लीज युगसे की जाती है। (पेरीक्लीज (लगभग ४९२–५२९ ई० पू०) एथेन्सका महान् राजनेता तथा सेनापति था। उसके प्रशासनकाल (४६०–४२९ ई० पू०) मे एथेन्स उन्नतिके शिखरपर पहुँच गया।)

आतरिक विघटन तथा हूणोके आक्रमणोके फलस्व-रूप छठी शताब्दीमे गुप्त साम्राज्यका पतन हो गया। परन्तु सातवी शताब्दीके प्रारम्भमे हर्षवर्धन (दे०) ने एक दूसरा साम्राज्य खडा कर दिया, जिसकी राजधानी कन्नौज थी। यह साम्राज्य सारे उत्तरी भारतमे विस्तृत था। दक्षिणमे चालुक्य राजा पुलकेशी द्वितीयने उसका साम्राज्य नर्मदाके तटसे आगे बढनेसे रोक दिया था। चीनी यात्री ह्युएनत्साग (दे०) उसके राज्यकालमे भारत आया था और उसने अपने यात्रा-वर्णनमे लिखा है कि हर्षवर्धन बडा प्रतापी और शक्तिशाली राजा है। वह ६४७ ई० मे निस्सतान मर गया और उसके बाद सारे उत्तरी भारतमे फिर अव्यवस्था फैल गयी।

इस अव्यवस्थाके फलस्वरूप बहुतसे युद्धप्रिय राज-वशोका उदय हुआ, जो अपनेको राजपूत (दे०) कहते थे। इनमे पजाबका हिन्दूशाही राजवश, गुजरातका गुर्जर प्रतिहार वश (दे०) अजमेरका चौहान वश (दे०), कन्नौजका गहडवाल वश (दे०) तथा मगध और बगाल का पाल वश (दे०) था। दक्षिणमे भी सातवाहन वशके पतनके बाद इसी प्रकार सत्ताका विघटन हो गया। उडीसाके गगवश (दे०) जिसने पुरीका प्रसिद्ध जगन्नाथ मन्दिर बनवाया, वातापीके चालुक्यवश (दे०), जिसके राज्यकालमे अजता (दे०) के कुछ गुफा-चित्र बने तथा काचीके पल्लववशने, जिसकी स्मृति उस कालमे बनवाये गये कुछ प्रसिद्ध मन्दिरोमे सुरक्षित है, दक्षिणको आपस-मे बाँट लिया और परस्पर युद्धोमे एक दूसरेका नाश कर दिया। इसके बाद मान्यखेट अथवा मालखेडके राष्ट्रकूट वश (दे०)का उदय हुआ, जिसका उच्छेद पुन चालुक्य वशकी एक नवीन शाखाने कर दिया, जिसने कल्याणी (दे०) को अपनी राजधानी बनाया। उसका उच्छेद देवगिरिके यादव वश (दे०) तथा द्वारसमुद्रके होमसल (दे०) वशने कर दिया। सुदूर दक्षिणमे चेर (दे०), पाड्य (दे०) और चोल राज्योका उदय हुआ, जिनमेसे अतिम राज्य सबसे अधिक चला। वह ९०० से १२०० ई० तक वर्तमान रहा। इस तरह सारे भारतमे अनैक्य व्याप्त हो गया।

इस बीच ७१२ ई० मे भारतमे इस्लामका प्रवेश हो चुका था। मुहम्मद-इब्न-कासिमके नेतृत्वमे मुसलमान अरबोने सिंधपर हमला किया और वहाँके ब्राह्मण राजा दाहिरको हरा दिया। इस तरह भारतकी भूमिपर पहली बार इस्लामके पैर जम गये और बादकी शताब्दियोके हिन्दू राजा उसे फिर हटा नही सके। परन्तु सिंधपर अरबोका शासन वास्तवमे निबल था और ११७६ ई० मे शहाबुद्दीन मुहम्मदगोरी (दे०) ने उसे आसानीसे उखाड दिया। इससे पूर्व सुबुक्तगीन (दे०) के नेतृत्वमे मुसल-मानोने हमले करके पजाब छीन लिया था और गजनीके सुल्तान महमूदने (दे०) ने ९९७ से १०३० ई० के बीच भारतपर सत्रह हमले किये और हिन्दू राजाओकी शक्ति कुचल डाली। फिर भी हिन्दू राजाओने मुसलमानी आक्रमणका जिस अनवरत रीतिसे प्रबल प्रतिरोध किया, उसका महत्त्व कम करके नही आँकना चाहिए।

मिलती है। आर्योने इस देशको कोई राजनीतिक एकता नही प्रदान की, यद्यपि उन्होने उसे एक पुष्ट दर्शन और धर्म प्रदान किया, जो हिन्दू धर्मके नामसे प्रख्यात है और कम से कम चार हजार वर्षसे अक्षुण्ण है।

प्राचीन भारतीयोने कोई तिथि क्रमानुसार इतिहास नही सुरक्षित रखा है। सबसे प्राचीन सुनिश्चित तिथि जो हमे ज्ञात है, ३२६ ई० पू० है, जब मकदूनियाके राजा सिकन्दरने भारतपर आक्रमण किया। इस तिथिसे पहलेकी घटनाओका तारतम्य जोड कर तथा साहित्यमे सुरक्षित ऐतिहासिक अनुश्रुतियोका उपयोग करके भारतका इतिहास सातवी शताब्दी ई० पू० तक पहुँच जाता है। उस कालमे भारत काबुलकी घाटीसे लेकर गोदावरी तक षोडश जनपदोमे विभाजित था, जिनके नाम निम्नोक्त प्रकारके थे :—

अग (पूर्वी विहार), मगध (दक्षिणी बिहार), काशी (बनारस), कोशल (अवध), वृजि (उत्तरी बिहार), मल्ल (गोरखपुर), चेदि (बुन्देलखड), वत्स (इलाहाबाद), कुरु (थानेश्वर तथा दिल्ली क्षेत्र), पचाल (बरेली तथा बदायूँ क्षेत्र), मत्स्य (जयपुर), शौरसेन (मथुरा), अश्मक (गोदावरीके तटपर), अवन्ती (मालवा), गधार (पेशावर क्षेत्र) तथा कम्बोज (कश्मीर तथा अफगानिस्तान)। इन राज्योमे आपसमे बराबर लडाई होती रहती थी। छठी शताब्दी ई० पू०के मध्यमे बिम्बिसार (दे०) तथा अजातशत्रु (दे०) के राज्यकालमे मगधने काशी तथा कोशलपर अधिकार करनेके बाद अपनी सीमाओका विस्तार आरम्भ किया। इन्ही दोनो मगध राजाओके राज्यकालमे वर्धमान महावीर (दे०)ने जैन धर्म तथा गौतम बुद्ध (दे०)ने बौद्ध धर्मका उपदेश दिया। बादके कालमे मगध राज्यका विस्तार जारी रहा और चौथी शताब्दी ई० पू०के अतमे नन्द राजाओके शासनकालमे उसका विस्तार बगालसे लेकर पजावमे व्यास नदीके तट तक सारे उत्तरी भारतमे हो गया।

यूनानी इतिहासकारो द्वारा वर्णित 'प्रेसिआई' (दे०) देशका राजा इतना शक्तिशाली था कि सिकन्दरकी सेनाएँ व्यास पार करके 'प्रेसिआई' देशमे नही घुस सकी और सिकन्दर, जिसने ३२६ ई० मे पजावपर हमला किया, पीछे लौटनेके लिए विवश हुआ। वह सिन्धु नदीके मार्गसे वापस लौटा। इस घटनाके बाद ही मगधपर मौर्यवश (दे०) शासन करने लगा। इस वशके सस्थापक चद्रगुप्त मौर्य (लगभग ३२२ ई० पू०—२९८ ई० पू०) ने पजावमे सिकन्दर जिन यूनानी अधिकारियोको छोड गया था उन्हें निकाल बाहर किया और बादमे एक युद्धमे सिकन्दरके सेनापति सेल्यूकसको हरा दिया। सेल्यूकसने हिन्दूकुश तकका सारा प्रदेश वापस लौटा कर चन्द्रगुप्तसे सधि कर ली। चद्रगुप्तने सारे उत्तरी भारतपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। उसने सम्भवत दक्षिण भी विजय कर लिया। वह अपने इस विशाल साम्राज्यपर अपनी राजधानी पाटलिपुत्र (दे०) से शासन करता था। उसकी राजधानी पाटलिपुत्र वैभव और समृद्धिमे सूसा और एकवताना नगरियोको भी मात करती थी। उसका पौत्र अशोक (दे०) था, जिसने कलिंग (उडीसा) को जीता। उसका साम्राज्य उत्तरमे हिमालयके पादमूलसे लेकर दक्षिणमे पन्नार नदी तक तथा उत्तर-पश्चिममे हिन्दूकुशसे लेकर उत्तर-पूर्वमे आसामकी सीमा तक विस्तृत था। उसने अपने विशाल साम्राज्यके समग्र साधनोको मनुष्यो तथा पशुओके कल्याण-कार्यो तथा बौद्धधर्मके प्रसारमे लगाकर अमिट यश प्राप्त किया। उसने बौद्धधर्मके प्रसारके लिए भिक्षुओको मिस्र, मकदूनिया तथा कोरिन्थ (प्राचीन यूनानकी विलास नगरी) जैसे दूर-दूर स्थानोमे भेजा और वहाँ लोकोपकारी कार्य कराये। उसके प्रयत्नोसे बौद्धधर्म विश्वधर्म बन गया, परन्तु उसकी युद्धसे विरत रहनेकी शातिपूर्ण नीतिने उसके वशकी शक्ति क्षीण कर दी और लगभग आधी शताब्दीके बाद पुष्यमित्र (दे०) ने उसका उच्छेद कर दिया। पुष्यमित्रने शुङ्गवश (लगभग १८५ ई० पू०—७३ ई० पू०) की स्थापना की, जिसका उच्छेद करावश (लगभग ७३ ई० पू०—२८ ई० पू०) ने कर दिया।

मौर्यवशके पतनके बाद मगधकी शक्ति घटने लगी और सातवाहन (दे०) राजाओके नेतृत्वमे मगध साम्राज्यसे दक्षिण अलग हो गया। सातवाहन वशको आध्र (दे०) वश भी कहते है और उसने ५० ई० पू० से २२५ ई० तक राज्य किया। भारतमे एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकारके अभावमे वैक्ट्रिया और पार्थियाके राजाओने उत्तरी भारतपर आक्रमण शुरू कर दिये। इन आक्रमणकारी राजाओमे मिनाण्डर (दे०) सबसे विख्यात है। इसके बाद ही शक (दे०) राजाओके आक्रमण शुरू हो गये और महाराष्ट्र, सौराष्ट्र तथा मथुरा शक क्षत्रपोके शासनमे आ गये। इस तरह भारतकी जो राजनीतिक एकता भग हो गयी थी, वह ईसवी पहली शताब्दी मे कडफिसस प्रथम (दे०) द्वारा कुषाण वश (दे०) की

शुरुआतसे फिर स्थापित हो गयी। इस वंशने तीसरी शताब्दी ईसवीके मध्य तक उत्तरी भारतपर राज्य किया।

इस वंशका सबसे प्रसिद्ध राजा कनिष्क (लगभग १२०–१४४ ई०) था, जिसकी राजधानी पुरुषपुर अथवा पेशावर थी। उसने बौद्धधर्म ग्रहण कर लिया और अश्वघोष (दे०), नागार्जुन (दे०) तथा चरक (दे०) जैसे भारतीय विद्वानोंको संरक्षण दिया। कुषाणवंशका अज्ञात कारणोंसे तीसरी शताब्दीके मध्य तक पतन हो गया। इसके बाद भारतीय इतिहासका अंधकार युग आरम्भ होता है जो चौथी शताब्दीके आरम्भमें गुप्तवंश (दे०) के उदयसे समाप्त हुआ।

लगभग ३२० ई० में चन्द्रगुप्तने गुप्तवंशको प्रचलित किया और पाटलिपुत्रको फिरसे अपनी राजधानी बनाया। गुप्त वंशमें एकके बाद एक चार महान् शक्तिशाली राजा हुए, जिन्होंने सारे उत्तरी भारतमें अपना साम्राज्य विस्तृत कर लिया और दक्षिणके कई राज्योंपर भी प्रभुत्व स्थापित किया। उन्होंने हिन्दूधर्मको राज्यधर्म बनाया, बौद्धधर्म और जैनधर्मके प्रति सहिष्णुता बरती और ज्ञान-विज्ञान, साहित्य, कला, वास्तुकला और चित्रकला-की उन्नति की। इसी युगमें कालिदास (दे०), आर्य-भट (दे०) तथा वराहमिहिर (दे०) हुए। रामायण, महाभारत, पुराणों तथा मनुसंहिताको भी इसी युगमें वर्तमान रूप प्राप्त हुआ। चीनी यात्री फाह्यानने ४०१ से ४१० ई० के बीच भारतकी यात्रा की और उसने उस कालका रोचक वर्णन किया है। उसका मत है कि उस कालमें देशमें पूरा रामराज्य था। स्वाभाविक रूपसे गुप्त युगको भारतीय इतिहासका स्वर्ण युग माना जाता है और उसकी तुलना एथेन्सके पेरीक्लीज युगसे की जाती है। (पेरीक्लीज (लगभग ४९२–५२९ ई० पू०) एथेन्सका महान् राजनेता तथा सेनापति था। उसके प्रशासनकाल (४६०–४२९ ई० पू०) में एथेन्स उन्नतिके शिखरपर पहुँच गया।)

आंतरिक विघटन तथा हूणोंके आक्रमणोंके फलस्व-रूप छठी शताब्दीमें गुप्त साम्राज्यका पतन हो गया। परन्तु सातवीं शताब्दीके प्रारम्भमें हर्षवर्धन (दे०) ने एक दूसरा साम्राज्य खडा कर दिया, जिसकी राजधानी कन्नौज थी। यह साम्राज्य सारे उत्तरी भारतमें विस्तृत था। दक्षिणमें चालुक्य राजा पुलकेशी द्वितीयने उसका साम्राज्य नर्मदाके तटसे आगे बढनेसे रोक दिया था। चीनी यात्री ह्युएनत्सांग (दे०) उसके राज्यकालमें भारत आया था और उसने अपने यात्रा-वर्णनमें लिखा है कि हर्षवर्धन बडा प्रतापी और शक्तिशाली राजा है। वह ६४७ ई० में निस्संतान मर गया और उसके बाद सारे उत्तरी भारतमें फिर अव्यवस्था फैल गयी।

इस अव्यवस्थाके फलस्वरूप बहुतसे युद्धप्रिय राज-वंशोंका उदय हुआ, जो अपनेको राजपूत (दे०) कहते थे। इनमें पंजाबका हिन्दूशाही राजवंश, गुजरातका गुर्जर-प्रतिहार वंश (दे०) अजमेरका चौहान वंश (दे०), कन्नौजका गहड़वाल वंश (दे०) तथा मगध और बंगाल का पाल वंश (दे०) था। दक्षिणमें भी सातवाहन वंशके पतनके बाद इसी प्रकार सत्ताका विघटन हो गया। उड़ीसाके गंगवंश (दे०) जिसने पुरीका प्रसिद्ध जगन्नाथ मन्दिर बनवाया, वातापीके चालुक्यवंश (दे०), जिसके राज्यकालमें अजंता (दे०) के कुछ गुफा-चित्र बने तथा कांचीके पल्लववंशने, जिसकी स्मृति उस कालमें बनवाये गये कुछ प्रसिद्ध मन्दिरोंमें सुरक्षित है, दक्षिणको आपस-में बाँट लिया और परस्पर युद्धोंमें एक दूसरेका नाश कर दिया। इसके बाद मान्यखेट अथवा मालखेडके राष्ट्रकूट वंश (दे०)का उदय हुआ, जिसका उच्छेद पुराने चालुक्य वंशकी एक नवीन शाखाने कर दिया, जिसने कल्याणी (दे०) को अपनी राजधानी बनाया। उसका उच्छेद देवगिरिके यादव वंश (दे०) तथा द्वारसमुद्रके होयसल (दे०) वंशने कर दिया। सुदूर दक्षिणमें चेर (दे०), पाड्य (दे०) और चोल राज्योंका उदय हुआ, जिनमेंसे अंतिम राज्य सबसे अधिक चला। वह ९०० से १३०० ई० तक वर्तमान रहा। इस तरह सारे भारतमें अनैक्य व्याप्त हो गया।

इस बीच ७१२ ई० में भारतमें इस्लामका प्रवेश हो चुका था। मुहम्मद-इब्न-कासिमके नेतृत्वमें मुसलमान अरबोंने सिंधपर हमला किया और वहाँके ब्राह्मण राजा दाहिरको हरा दिया। इस तरह भारतकी भूमिपर पहली बार इस्लामके पैर जम गये और बादकी शताब्दियोंके हिन्दू राजा उसे फिर हटा नहीं सके। परन्तु सिंधपर अरबोंका शासन वास्तवमें निर्बल था और ११७६ ई० में शहाबुद्दीन मुहम्मदगोरी (दे०) ने उसे आसानीसे उखाड दिया। इससे पूर्व सुबुक्तगीन (दे०) के नेतृत्वमें मुसल-मानोंने हमले करके पंजाब छीन लिया था और गजनीके सुल्तान महमूदने (दे०) ने ९९७ से १०३० ई० के बीच भारतपर सत्रह हमले किये और हिन्दू राजाओंकी शक्ति कुचल डाली। फिर भी हिन्दू राजाओंने मुसलमानी आक्रमणका जिस अनवरत रीतिसे प्रबल प्रतिरोध किया, उसका महत्त्व कम करके नहीं आँकना चाहिए।

फारस तथा पश्चिम एशियाके दूसरे राज्योकी तरह मुसलमानोको भारतमे शीघ्रतासे सफलता नही मिली। यद्यपि सिंधपर अरब मुसलमानोका शीघ्रतासे कब्जा हो गया, परन्तु वहाँसे वे लगभग चार शताब्दियोतक आगे नही बढ पाये। उत्तर-पश्चिमके मुसलमान आक्रमण-कारियोको भी भारतने लगभग तीन शताब्दियोतक रोक रखा। शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीका दिल्ली जीतनेका पहला प्रयास विफल हुआ और पृथ्वीराज (दे०)ने ११९१ ई०मे तराईकी पहली लडाईमे उसे हरा दिया। वह ११९३ ई०मे तराईकी दूसरी लडाईमे ही पृथ्वीराज-को हरानेमे सफल हुआ। इस विजयके बाद शहाबुद्दीन और उसके सेनापतियोने उत्तरी भारतके दूसरे हिन्दू राजाओको भी हरा दिया और वहाँ मुसलमानी शासन स्थापित कर दिया। इस तरह तेरहवी शताब्दीके प्रारभ-मे दिल्लीके सुल्तानोकी अधीनतामे उत्तरी भारतकी राजनीतिक एकता फिरसे स्थापित हो गयी।

दक्षिण एक और शताब्दी तक स्वतन्त्र रहा, किन्तु सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (दे०)के राज्यकालमे दक्षिण भी दिल्ली सल्तनतके अधीन हो गया और इस तरह चौदहवी शताब्दीमे कुछ कालके लिए सारे भारतका शासन फिर एक केन्द्रीय सत्ताके अन्तर्गत हो गया। परतु दिल्ली सल्तनतका शीघ्र विघटन शुरू हो गया और १३३६ ई०मे दक्षिणमे हिन्दुओका एक विशाल राज्य स्थापित हुआ, जिसकी राजधानी विजयनगर थी। वगाल (१३३८ ई०), जौनपुर (१३९३ ई०), गुजरात तथा दक्षिणके मध्यवर्ती भागमे भी वहमनी सल्तनत (१३४७ ई०)के नामसे स्वतन्त्र मुसलमानी राज्य स्थापित हो गये। १३९८ ई०मे तैमूर (दे०)ने भारतपर हमला किया और दिल्लीपर कब्जा कर लिया और उसे लूटा। उसके हमलेसे दिल्लीकी सल्तनत जर्जर हो गयी।

दिल्लीकी सल्तनत वास्तवमे कमजोर थी, क्योकि सुल्तानोने अपनी विजित हिन्दू प्रजाका हृदय जीतनेका कोई प्रयास नही किया। वे धार्मिक दृष्टिसे अत्यन्त कट्टर थे और उन्होने बलपूर्वक हिन्दुओको मुसलमान बनानेका प्रयास किया। इससे हिन्दू प्रजा उनसे कोई सहानुभूति नही रखती थी। इसके फलस्वरूप १५२६ ई० मे वाबर (दे०)ने आसानीसे दिल्लीकी सल्तनतको उखाड फेंका। उसने पानीपतकी पहली लड़ाईमे अन्तिम सुल्तान इब्राहीम लोदीको हरा दिया और मुगल वश (दे०)को प्रतिष्ठित किया, जिसने १५२६ से १८५८ ई० तक भारतपर शासन किया। तीसरा मुगल बादशाह अकबर (दे०) असाधारण रूपसे योग्य और दूरदर्शी शासक था। उसने अपनी विजित हिन्दू प्रजाका हृदय जीतनेकी कोशिश की और विशेष रूपसे युद्धप्रिय राज-पूत राजाओको अपने पक्षमे करनेका प्रयास किया। अकबरने धार्मिक सहिष्णुता तथा मेल-मिलापकी नीति वरती, हिन्दुओपरसे जजिया उठा लिया और राज्यके ऊँचे पदोपर बिना किसी भेद-भावके सिर्फ योग्यताके आधारपर नियुक्तियाँ की। राजपूतो और मुगलोके सह-योगसे उसने अपना साम्राज्य कन्दहारसे आसामकी सीमा तक तथा हिमालयकी तलहटीसे लेकर दक्षिणमे अहमद-नगर तक विस्तृत कर दिया। उसके लडके जहाँगीर (दे०) तथा पौत्र शाहजहाँ (दे०)के राज्यकालमे मुगल साम्राज्यका विस्तार जारी रहा। शाहजहाने ताज(दे०) का निर्माण कराया, परन्तु कन्दहार उसके हाथसे निकल गया। अकबरके प्रपौत्र औरगजेब (दे०)के राज्यकालमे मुगल साम्राज्यका विस्तार अपने चरम शिखरपर पहुँच गया और कुछ कालके लिए सारा भारत उसके अन्तर्गत हो गया। परन्तु औरगजेबने जान-बूझकर अकबरकी धार्मिक सहिष्णुताकी नीति त्याग दी और हिन्दुओको अपने विरुद्ध कर लिया। उसने हिन्दुस्तानका शासन सिर्फ मुसलमानोके हितमे चलानेकी कोशिश की और हिन्दुओको जवर्दस्ती मुसलमान बनानेका विफल प्रयत्न किया। इससे राजपूताना, बुन्देलखड तथा पजावके हिन्दू उसके विरुद्ध खडे हो गये। महाराष्ट्रमे शिवाजी (दे०) ने १७०७ ई०मे औरगजेबकी मृत्युसे पूर्व ही एक स्वतन्त्र हिन्दू राज्य स्थापित कर दिया। औरगजेब अन्तिम महान् मुगल बादशाह था। उसके उत्तराधिकारी अत्यन्त निर्बल और अयोग्य थे, उनके वजीर विश्वासघाती थे। फारसके नादिरशाह (दे०)ने मुगल बादशाहतपर सबसे साघातिक प्रहार किया। उसने १७३९ ई०मे भारतपर चढाई की, दिल्लीपर कब्जा कर लिया और उसे निर्दयता-पूर्वक लूटा। उसके हमलेसे मुगल साम्राज्य पूरी तरह जर्जर हो गया और इसके बाद शीघ्रतासे उसका विघटन हो गया। अवध, बगाल तथा दक्षिणके मुसलमान सूबे-दारोने अपनेको लगभग स्वतन्त्र कर लिया। राजपूत राजा भी अर्द्ध-स्वतन्त्र हो गये। पेशवा बाजीराव प्रथम (दे०)के नेतृत्वमे मराठोने मुगल साम्राज्यके खडहरोपर हिन्दू पद पादशाहीकी स्थापनाका प्रयास किया।

परतु यह सम्भव नही हो सका। फिरगी लोग समुद्री मार्गोसे भारतकी जमीनपर पैर जमा चुके थे। अकबरसे लेकर औरगजेब तक मुगल बादशाहोने भारतके इस नये

मार्गका महत्त्व नही समझा। इनमेसे कोई इन नवागतुकोकी राजनीतिक महत्त्वाकाक्षाओंका अनुमान नही लगा सका और उनके जगी बेडेका मुकाबला करनेके लिए एक शक्तिशाली भारतीय जगी बेडा तैयार करनेकी आवश्यकताको अनुभव नही कर सका। इस तरह भारतीयोकी ओरसे किसी प्रतिरोधका सामना किये बगैर सबसे पहले पुर्तगाली भारत पहुँचे। उसके बाद डच, अंग्रेज, फ्रांसीसी आये। सोलहवी शताब्दीमे इन फिरंगियोमे आपसमे लडाइयाँ होती रही, जो अधिकाश समुद्रमे हुई। डच और अंग्रेजोने मिलकर सबसे पहले पुर्तगालियोकी सामुद्रिक शक्ति समाप्त कर दी। इसके बाद डच लोगोको पता चला कि उनके लिए भारतकी अपेक्षा मसालेवाले द्वीपोसे व्यापार करना अधिक लाभदायी है। इस तरह भारतमे सिर्फ अंग्रेजो और फ्रासीसियोके बीच प्रतिद्वन्द्विता हुई।

अठारहवी शताब्दीके शुरूमे अंग्रेजोकी ईस्ट इडिया कम्पनीने बम्बई, मद्रास तथा कलकत्तापर कब्जा कर लिया। उधर फ्रासीसियोकी ईस्ट इडिया कम्पनीने माहे, पाडिचेरी तथा चन्द्रनगरपर कब्जा कर लिया। उन्हें अपनी सेनाओमे भारतीय सिपाहियोको भरती करनेकी भी इजाजत मिल गयी। वे इन भारतीय सिपाहियोका उपयोग न केवल अपनी आपसी लडाइयोमे करते थे, बल्कि इस देशके राजाओके विरुद्ध भी करते थे। इन राजाओकी आपसी प्रतिद्वन्द्विता और कमजोरीने इनकी राजनीतिक महत्त्वाकाक्षाको जाग्रत कर दिया और उन्होने कुछ देशी राजाओके विरुद्ध दूसरे देशी राजाओसे सधियाँ कर ली। १७४४-४९ ई०मे मुगल बादशाहकी प्रभुसत्ताकी पूर्ण उपेक्षा करके उन्होने आपसमे कर्नाटककी पहली लड़ाई (दे०) छेडी। एक सालके बाद कर्नाटककी दूसरी लडाई (दे०) शुरू हुई, जिसमे फ्रासीसी गवर्नर डूप्ले (दे०)ने पहली लडाईसे सबक लेते हुए न केवल कर्नाटकके प्रशासनपर, बल्कि निजामके राज्यपर भी फ्रासका राजनीतिक नियन्त्रण स्थापित करनेकी कोशिश की। परन्तु अंग्रेजोने उसकी महत्त्वाकाक्षा पूरी न होने दी। अंग्रेजोको बगालमे भारी सफलता मिली थी। बादशाह औरगजेबकी मृत्युके केवल पचास वर्ष बाद, १७५७ ई०मे राबर्ट क्लाइव (दे०)के नेतृत्वमे अंग्रेजोने नवाब सिराजुद्दौला (दे०)के विरुद्ध विश्वासघातपूर्ण राजद्रोहात्मक षड्यन्त्र रचकर पलासीकी लडाई (दे०) जीत ली और बगालको एक प्रकारसे अपनी मुट्ठीमे कर लिया। उन्होने बगालकी गद्दीपर एक कठपुतली नवाब मीरजाफर को बिठा दिया। इसके बाद एकके बाद, तेजीसे कई घटनाएँ घटी।

अहमद शाह अब्दाली (दे०)ने १७४८ से १७६० ई० के बीच भारतपर कई चढाइयाँ की और १७६१ ई० मे पानीपतकी तीसरी लडाई (दे०) जीत कर मुगल साम्राज्यका फातिहा पढ दिया। उसने दिल्लीपर दखल करके उसे लूटा। पानीपतकी तीसरी लडाईमे सबसे अधिक क्षति मराठोको उठानी पडी। कुछ समयके लिए उनकी बाढ रुक गयी और इस प्रकार वे मुगल बादशाहोकी जगह ले लेनेका मौका खो बैठे। यह लडाई वास्तवमे मुगल साम्राज्यके पतनकी सूचक है। इसने भारतमे मुगल साम्राज्यके स्थानपर ब्रिटिश साम्राज्यकी स्थापनामे मदद दी। अब्दालीको पानीपतमे जो फतह मिली, उससे न तो वह स्वय कोई लाभ उठा सका और न उसका साथ देनेवाले मुसलमान सरदार। इस लडाईने वास्तविक फायदा अंग्रेजी ईस्ट इडिया कम्पनीने उठाया। इसके बाद कम्पनीको एकके बाद दूसरी सफलताएँ मिलती गयी।

बगालके साधनोसे बलशाली होकर अंग्रेजोने १७६० ई०मे वाण्डीवाशकी लडाईमे फ्रासीसियोको हरा दिया और १७६२ ई०मे पाडिचेरी ले लिया। इस प्रकार उन्होने भारतमे फ्रासीसियोकी राजनीतिक शक्ति समाप्त कर दी। १७६४ ई०मे अंग्रेजोने बक्सरकी लडाईमे बादशाह बहादुरशाह (दे०) और अवधके नवाबकी सम्मिलित फौजोको हरा दिया और १७६५ ई०मे बादशाहसे बगाल, बिहार तथा उडीसाकी दीवानी (दे०) प्राप्त कर ली। इसके फलस्वरूप ईस्ट इडिया कम्पनीको पहली बार बगाल, बिहार तथा उडीसाके प्रशासनका कानूनी अधिकार मिल गया। कुछ इतिहासकार इसे भारतमे ब्रिटिश राज्यका प्रारम्भ मानते हैं। १७७३ ई० मे ब्रिटिश पार्लियामेण्टने एक रेग्युलेटिंग ऐक्ट (दे०) पास करके भारतमे ब्रिटिश प्रशासनको व्यवस्थित रूप देनेका प्रयास किया। इस ऐक्टके अन्तर्गत भारतमे कम्पनीके क्षेत्रोका प्रशासन गवर्नर-जनरलके अधीन कर दिया गया। उसकी सहायताके लिए चार सदस्योकी कौंसिल गठित की गयी। ऐक्टमे बगालके गवर्नरको गवर्नर-जनरलका पद प्रदान कर दिया गया और कलकत्तामे एक सुप्रीम कोर्टकी भी स्थापना की गयी। वारेन हेस्टिंग्स, जो उस समय बगालका गवर्नर था, १७७३ ई० मे पहला गवर्नर-जनरल बनाया गया।

१७७३ ई० से १९४७ ई० तकका काल, जब

भारतमे ब्रिटिश शासन समाप्त हुआ और भारत स्वाधीन हुआ, दो भागोमे बाँटा जा सकता है। पहला, कम्पनीका शासनकाल, जो १८५८ ई० तक चला और दूसरा, १८५८ से १९४७ ई०का काल, जब भारतका शासन सीधे ब्रिटेनके द्वारा होने लगा।

कम्पनीके शासन कालमे भारतका प्रशासन एकके बाद एक बाईस गवर्नर-जनरलो (दे०)के हाथमे रहा। इस कालके भारतीय इतिहासकी सबसे उल्लेखनीय घटना यह है कि कम्पनी युद्ध तथा कूटनीतिके द्वारा भारतमे अपने साम्राज्यका उत्तरोत्तर विस्तार करती रही। मैसूर (दे०)के साथ चार लडाइयाँ, मराठो (दे०)के साथ तीन, बर्मा (दे०) तथा सिखो (दे०)के साथ दो-दो लडाइयाँ तथा सिंधके अमीरो (दे०), गोरखो (दे०) तथा अफगानिस्तानके साथ एक-एक लडाई छेडी गयी। इनमेसे प्रत्येक लडाईमे कम्पनीको एक या दूसरे देशी राजाकी मदद मिली। उसने जिन फौजोसे लडाई की उनमे अधिकाश भारतीय सिपाही थे और लडाईका खर्च पूरी तरह भारतीय करदाताको उठाना पडा। इन लडाइयोके फलस्वरूप १८५७ ई० तक सारे भारतपर कम्पनीका प्रभुत्व स्थापित हो गया। दो-तिहाई भारत सीधे कम्पनीके शासनमे आ गया और शेष एकतिहाईपर देशी राज्योका शासन बना रहा। परन्तु उन्होने कम्पनी-का सार्वभौम प्रभुत्व स्वीकार कर लिया और अधीनस्थ तथा आश्रित मित्र राजाके रूपमे अपनी रियासतका शासन चलाते रहे।

इस कालमे सती प्रथा (दे०)का अन्त कर देनेके समान कुछ सामाजिक सुधारके भी कार्य किये गये अग्रेजीके माध्यमसे पश्चिमी शिक्षाके प्रचारकी दिशामे कदम उठाये गये, अग्रेजी देशकी राजभाषा बना दी गयी, सारे देशमे समान जाब्ता दीवानी और जाब्ता फौजदारी कानून लागू कर दिया गया जिससे सारे देशमे एकता की नयी भावना पैदा हो गयी। परन्तु शासन स्वेच्छाचारी बना रहा और वह पूरी तरह अग्रेजोके हाथमे रहा। १८३३ ई०के चार्टर ऐक्ट (दे०)के विपरीत ऊँचे पदोपर भारतीयोको नियुक्त नहीं किया गया। भापसे चलनेवाले जहाजो और रेलगाडियोका प्रचलन, ईसाई मिशनरियो द्वारा आक्षेपजनक रीतिसे ईसाई धर्मका प्रचार, लार्ड डलहौजी (दे०) द्वारा जब्तीका सिद्धात (दे०) लागू करके अथवा कुशासनके आधारपर कुछ पुरानी देशी रियासतो-की जब्ती तथा ब्रिटिश भारतीय सेनाके भारतीय सिपा-हियोकी शिकायते—इन सब कारणोने मिलकर सारे भारतमे एक गहरे असन्तोषकी आग धधका दी, जो १८५७-५८ ई०मे गदर (दे०)के रूपमे भडक उठी।

अधिकाश देशी राजाओने अपनेको गदरसे अलग रखा। देशकी अधिकाश जनताने भी इसमे कोई हिस्सा नही लिया। फलस्वरूप कम्पनीको बलपूर्वक गदरको कुचल देनेमे सफलता मिली, परन्तु गदरके बाद ब्रिटिश पार्लियामेण्टने भारतपर कम्पनीका शासन समाप्त कर दिया। भारतका शासन अब सीधे ब्रिटेनके द्वारा किया जाने लगा। महारानी विक्टोरियाने एक घोषणा-पत्र (दे०) जारी करके अपनी भारतीय प्रजाको उसके कुछ अधिकारो तथा कुछ स्वाधीनताओके बारेमे आश्वासन दिया।

इस प्रकार भारतमे ब्रिटिश शासनका दूसरा काल (१८५८-१९४७ ई०) आरम्भ हुआ। इस कालका शासन एकके बाद इकत्तीस गवर्नर-जनरलोके हाथमे रहा। गवर्नर-जनरलको अब वाइसराय (ब्रिटिश सम्राट्-का प्रतिनिधि) कहा जाने लगा। लार्ड कैनिंग (दे०) पहला वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल नियुक्त हुआ। इस कालके भारतीय इतिहासकी सबसे प्रमुख घटना है—भारतमे राष्ट्रवादी भावनाका उदय और १९४७ ई० मे भारतकी स्वाधीनताके रूपमे उसकी अतिम विजय। १८५७ ई० मे कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बईमे विश्व-विद्यालयोकी स्थापनाके बाद शिक्षाका प्रसार होने तथा १८६९ ई० मे स्वेज नहर खुलनेके बाद इग्लैण्ड तथा यूरोपसे निकट सम्पर्क स्थापित हो जानेसे भारतमे नये मध्यवर्गका विकास हुआ। यह मध्यवर्ग पश्चिमी दर्शन शास्त्र, राजनीतिशास्त्र तथा अर्थशास्त्रके विचारोसे प्रभावित था और ब्रिटिश शासनमे भारतीयोको जो नीचा दर्जा मिला हुआ था, उससे रुष्ट था। ब्रिटिश शासनमे स्थापित शातिके फलस्वरूप यह वर्ग सारे भारत-को एक देश तथा समस्त भारतीयोको एक कौम मानने लगा और ब्रिटेनकी भाँति ससदीय शासन प्रणालीकी स्थापना उसका लक्ष्य बन गया। वह एक ऐसे सगठनकी आवश्यकता अनुभव करने लगा जो समस्त भारतीय राष्ट्रका प्रतिनिधित्व कर सके। इसके फलस्वरूप १८८५ ई० मे बम्बईमे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसकी स्थापना हुई जिसमे देशके समस्त भागोसे ७१ प्रतिनिधियोने भाग लिया। काग्रेसका दूसरा अधिवेशन १८८६ ई० मे कल-कत्तामे हुआ जिसमे सारे देशसे निर्वाचित ४३४ प्रति-निधियोने भाग लिया। इस अधिवेशनमे माग की गयी—कि भारतमे केन्द्रीय तथा प्रातीय विधानमडलोका

विस्तार किया जाय और उसके आधे सदस्य निर्वाचित भारतीय हों। कांग्रेस हर साल अपने अधिवेशनोंमें अपनी मांगें दुहराती रही। लार्ड डफरिन (दे०) ने कांग्रेसपर व्यंग्य करते हुए उसे ऐसे अल्पसंख्यक वर्गका प्रतिनिधित्व करनेवाली संस्था बताया जिसे सिर्फ खुर्दबीनसे देखा जा सकता है। लार्ड लैंन्सडाउन (दे०) ने उसके प्रति पूर्ण उपेक्षाकी नीति बरती, लार्ड कर्जन (दे०) ने उसका खुलेआम मजाक उड़ाया तथा लार्ड मिन्टो द्वितीय (दे०) ने १९०९ के इंडियन कौंसिल ऐक्ट द्वारा स्थापित विधानमंडलोंमें मुसलमानोंको अनुपातसे अनुचित रीतिसे अधिक प्रतिनिधित्व देकर उन्हें फोड़ने तथा कांग्रेसको तोड़नेकी कोशिश की, फिर भी कांग्रेस जिन्दा रही।

कांग्रेसको पहली मामूली सफलता १९०९ में मिली जब इंग्लैण्डमें भारतमंत्रीके निर्देशनमें काम करनेवाली भारत परिषद्में दो भारतीय सदस्योंकी नियुक्ति पहली बार की गयी, वाइसरायकी एक्जीक्यूटिव कौंसिलमें पहली बार एक भारतीय सदस्यकी नियुक्ति की गयी तथा इंडियन कौंसिल ऐक्टके द्वारा केन्द्रीय तथा प्रांतीय विधानमंडलोंका विस्तार कर दिया गया तथा उनमें निर्वाचित भारतीय प्रतिनिधियोंका अनुपात पहलेसे अधिक बढ़ा दिया गया। इन सुधारोंके प्रस्तावक लार्ड मार्लेने हालांकि भारतमें संसदीय संस्थाओंकी स्थापना करनेका कोई इरादा होनेसे इन्कार किया, फिर भी ऐक्टमें जो व्यवस्थाएँ की गयी थीं, उनका उद्देश्य उसी दिशामें आगे बढ़नेके सिवा और कुछ नहीं हो सकता था। १९११ ई० में लार्ड कर्जन द्वारा १९०५ ई० में किया गया बंगालका विभाजन रद्द कर दिया गया और १९१२ ई० में भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यकी राजधानी कलकत्तासे उठाकर दिल्ली ले जायी गयी। दो साल बाद पहला विश्वयुद्ध (दे०) छिड़ गया और भारतने ब्रिटेनका पूरा साथ दिया। भारतने युद्धको जीतनेके लिए ब्रिटेनकी फौजोंसे, धनसे तथा सामग्रीसे मदद की। भारत आशा करता था कि इस राजभक्ति प्रदर्शनके बदले युद्धसे होनेवाले लाभोंमें उसे भी हिस्सा मिलेगा।

भारतके लिए स्वशासनकी मांग करनेमें पहली बार भारतीय मुसलमान भी हिन्दुओंके साथ संयुक्त हो गये और अगस्त १९१७ ई० में ब्रिटिश सरकारने घोषणा की कि भारतमें ब्रिटिश शासनकी नीति यह है कि 'शासनकी प्रत्येक शाखामें भारतीयोंको अधिकाधिक स्थान दिया जाय तथा स्वायत्त शासनका क्रमिकरूपसे विकास किया जाय ताकि ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत भारतमें उत्तरदायी सरकारकी उत्तरोत्तर स्थापना हो सके।' इस घोषणाके अनुसार १९१९ का गवर्नमेन्ट आफ इंडिया ऐक्ट पास किया गया। इस ऐक्टके द्वारा विधान मंडलोंका विस्तार कर दिया गया और अब उनके बहुसंख्यक सदस्य भारतीय जनताके निर्वाचित प्रतिनिधि होने लगे। ऐक्टके द्वारा केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारोंके कार्योंका विभाजन कर दिया गया और प्रांतोंमें द्वैधशासन प्रणाली लागू करके कार्यपालिकाको आंशिक रीतिसे विधानमंडलके प्रति उत्तरदायी बना दिया गया। इस ऐक्टके द्वारा भारतने सुनिश्चित रीतिसे प्रगति की। भारतके इतिहासमें पहली बार एक ऐसी संस्थाकी स्थापना की गयी, जिसके द्वारा ब्रिटिश भारतके निर्वाचित प्रतिनिधि सरकारी आधारपर एकत्र हो सकते थे, पहली बार उनका बहुमत स्थापित कर दिया गया था और अब वे सरकारके कार्योंकी निर्भयतापूर्वक आलोचना कर सकते थे।

इन सुधारोंसे पुराने कांग्रेसजन संतुष्ट हो गये, परन्तु नवयुवकोंका दल, जिसे मोहनदास करमचंद गांधी (दे०) के रूपमें एक नया नेता मिल गया था, संतुष्ट नहीं हुआ। इन सुधारोंके अन्तर्गत केन्द्रीय कार्यपालिकाको केन्द्रीय विधानमंडलके प्रति उत्तरदायी नहीं बनाया गया था और वाइसरायको बहुत अधिक अधिकार प्रदान कर दिये गये थे। अतएव उसने इन सुधारोंको अस्वीकृत कर दिया। उसके मनमें जो आशंकाएँ थीं, वे गलत नहीं थीं, यह १९१९ के ऐक्टके बाद ही पास किये गये रौलट ऐक्ट (दे०) जैसे दमनकारी कानूनों तथा जलियाँवाला बाग हत्याकांड (दे०) जैसे दमनमूलक कार्योंसे सिद्ध हो गया। कांग्रेसने १९२० ई० में अपने नागपुर अधिवेशनमें अपना ध्येय पूर्ण स्वराज्यकी स्थापना घोषित कर दिया और अपनी मांगोंको मनवानेके लिए उसने अहिंसक असहयोगकी नीति अपनायी। चूंकि ब्रिटिश सरकारने उसकी मांगें स्वीकार नहीं कीं और दमनकारी नीतिके द्वारा वह असहयोग आंदोलनको दबा देनेमें सफल हो गयी, इसलिए कांग्रेसने दिसम्बर १९२९ ई० में लाहौर अधिवेशनमें अपना लक्ष्य पूर्ण स्वाधीनता निश्चित किया और अपनी मांगको मनवानेके लिए उसने १९३० में सत्याग्रह आन्दोलन (दे०) शुरू कर दिया।

सरकारने पहलेकी तरह आन्दोलनको दबानेके लिए दमन और समझौतेके दोनों रास्ते अख्तियार किये और १९३५ का गवर्नमेण्ट आफ इंडिया ऐक्ट (दे०) पास

किया। इस ऐक्टके द्वारा ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतोंके लिए सम्मिलित रूपसे एक संघीय शासनका प्रस्ताव किया गया, केन्द्रमें एक प्रकारके द्वैध शासनकी स्थापना की गयी तथा प्रांतोंको स्वशासन प्रदान कर दिया गया। ऐक्टका प्रांतोंसे सम्बन्धित भाग लागू कर दिया गया तथा अप्रैल १९३७ ई०में प्रांतीय स्वशासनका श्रीगणेश कर दिया गया। परन्तु ऐक्टके संघ सरकारसे सम्बन्धित भागके लागू होनेसे पहले ही सितम्बर १९३९ ई०में द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हो गया जो १९४५ ई० तक जारी रहा। यह विश्वव्यापी युद्ध था और ब्रिटेनको अपने सारे साधन उसमें झोंक देने पड़े। भारतने ब्रिटेनका साथ दिया और भारतके पास जन और धनकी जो विशाल शक्ति थी उससे लाभ उठाकर तथा अमरीकाकी सहायतासे ब्रिटेन युद्ध जीत गया। गांधीजीके अमित प्रभाव तथा अहिंसामें उनकी दृढ निष्ठाके कारण भारतने यद्यपि ब्रिटिश सम्बन्धको बनाये रखा, फिर भी यह स्पष्ट हो गया कि भारत अब ब्रिटिश साम्राज्यकी अधीनतामें नहीं रहना चाहता।

कुछ ब्रिटिश अफसरोंने भारतको स्वाधीन होनेसे रोकनेके लिए अंतिम दुरभिसंधि की और मुसलमानोंकी भारतका विभाजन करके पाकिस्तानकी स्थापनाकी मांगका समर्थन करना शुरू कर दिया। इसके फलस्वरूप अगस्त १९४६ ई०में सारे देशमें भयानक साम्प्रदायिक दंगे शुरू हो गये, जिन्हें वाइसराय लार्ड वेवेल (दे०) अपने समस्त फौजी अनुभवों तथा साधनोंके बावजूद रोकनेमें विफल रहा। यह अनुभव किया गया कि भारतका प्रशासन ऐसी सरकारके द्वारा चलाना संभव नहीं है जिसका नियंत्रण मुख्य रूपसे अंग्रेजोंके हाथमें हो। अतएव सितम्बर १९४६ ई०में लार्ड वेवेलने पंडित जवाहरलाल नेहरूके नेतृत्वमें भारतीय नेताओंकी एक अंतरिम सरकार गठित की। ब्रिटिश अधिकारियोंकी कृपापात्र होनेके कारण मुस्लिम लीगके दिमाग काफी ऊँचे हो गये थे। उसने पहले तो एक महीने तक अंतरिम सरकारसे अपनेको अलग रखा, इसके बाद वह भी उसमें सम्मिलित हो गयी।

भारतका संविधान बनानेके लिए एक भारतीय संविधान सभाका आयोजन किया गया। १९४७ ई०के शुरूमें लार्ड वेवेलके स्थान पर लार्ड माउन्टबेटेन वाइसराय नियुक्त हुआ। उसे पंजाबमें भयानक साम्प्रदायिक दंगोंका सामना करना पड़ा, जिनको भड़कानेमें वहांके कुछ ब्रिटिश अफसरोंका हाथ था। वह प्रधान-मंत्री एटलीके नेतृत्वमें ब्रिटेनकी सरकारको यह समझानेमें सफल हो गया कि भारतका भारत और पाकिस्तानके रूपमें विभाजन करके उसे स्वाधीनता प्रदान करनेसे शांतिकी स्थापना संभव हो सकेगी और ब्रिटेन भारतमें अपने व्यापारिक हितोंको सुरक्षित रख सकेगा। ३ जून १९४७ को ब्रिटिश सरकारकी ओरसे घोषणा कर दी गयी कि भारतका भारत और पाकिस्तानके रूपमें विभाजन करके उसे स्वाधीनता प्रदान कर दी जायगी। ब्रिटिश पार्लियामेण्टने १५ अगस्त १९४७ ई०को इंडिपेंडेंस आफ इंडिया ऐक्ट पास कर दिया। इस तरह भारत उत्तर पश्चिमी सीमाप्रांत, बलूचिस्तान, सिंध, पश्चिमी पंजाब, पूर्वी बंगाल तथा उत्तरी बंगालके मुसलिम बहुल भागोंसे रहित हो जानेके बाद, सात शताब्दियोंकी विदेशी पराधीनताके पश्चात्, स्वाधीनताके एक नये पथपर अग्रसर हुआ।

स्वाधीन भारतको जिन समस्याओंका सामना करना पड़ा, वे सरल नहीं थीं। उसे सबसे पहले साम्प्रदायिक उन्मादको शांत करना था। भारतने जानबूझकर धर्मनिरपेक्ष राज्य बनना पसंद किया। उसने आश्वासन दिया कि जिन मुसलमानोंने पाकिस्तानको निर्गमन करनेके बजाय भारतमें रहना पसन्द किया है उनको नागरिकताके पूर्ण अधिकार प्रदान किये जायेंगे, हालांकि पाकिस्तान जानबूझकर अपने यहांसे हिन्दुओंको निकाल बाहर करने अथवा जिन हिन्दुओंने वहाँ रहनेका फैसला किया था, उनको एक प्रकारसे द्वितीय श्रेणीका नागरिक बना देनेकी नीति पर चल रहा था। लार्ड माउन्टबेटेनको स्वाधीन भारतका पहला गवर्नर-जनरल बनाये रखा गया और पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा अंतरिम सरकारमें उनके कांग्रेसी सहयोगियोंने थोड़ेसे हेरफेरके साथ पहले भारतीय मंत्रिमंडलका निर्माण किया। इस मंत्रिमंडलमें सरदार पटेल तथा मौलाना अबुलकलाम आजादको तो सम्मिलित कर लिया गया था, परन्तु नेताजीके बड़े भाई शरतचन्द्र बोसको छोड़ दिया गया। ३० जनवरी १९४८ ई०को एक पागल हिन्दूने राष्ट्रपिता महात्मा गांधीकी हत्या कर दी। सारा देश शोकके सागरमें डूब गया। नौ महीनेके बाद श्री जिन्ना जो पाकिस्तानके पहले गवर्नर-जनरल बन गये थे, उनकी भी मृत्यु हो गयी। उसी वर्ष लार्ड माउन्टबेटेनने भी अवकाश ग्रहण कर लिया और श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी भारतके पहले और अंतिम गवर्नर-जनरल नियुक्त हुए।

अधिकांश देशी रियासतोंने, जिनके सामने भारत

अथवा पाकिस्तानमे विलयनका प्रस्ताव रखा गया था, भारतमे विलयनके पक्षमे निर्णय किया, परन्तु, दो रियासतो–कश्मीर तथा हैदराबादने कोई निर्णय नही किया। पाकिस्तानने बलपूर्वक कश्मीरकी रियासतपर अधिकार करनेका प्रयास किया, परन्तु अक्तूबर १९४७ ई०मे कश्मीरके महाराजने भारतमे विलयनकी घोषणा कर दी और भारतीय सेनाओको वायुयानोसे भेजकर श्रीनगर सहित कश्मीरकी घाटी तक जम्मूकी रक्षा कर ली गयी। पाकिस्तानी आक्रमणकारियोने रियासतके उत्तरी भागपर अपना कब्जा बनाये रखा और इसके फलस्वरूप पाकिस्तानसे युद्ध छिड गया। भारतने यह मामला सयुक्त राष्ट्र सघमे उठाया और सयुक्त राष्ट्र सघने जिस क्षेत्रपर जिसका कब्जा था, उसीके आधारपर युद्ध-विराम करा दिया। वह आज तक इस प्रश्नका कोई निपटारा नही करा सका है। हैदराबादके निजामने अपनी रियासतको स्वतन्त्रताका दर्जा दिलानेका षड्यन्त्र रचा, परन्तु भारत सरकारकी पुलिस काररवाईके फलस्वरूप वह १९४८ ई०मे अपनी रियासतका भारतमे विलयन करनेके लिए मजबूर हो गये।

भारतीय सविधान सभा द्वारा २६ नवम्बर १९४९ मे पास किया गया भारतका सविधान अधिनियम २६ जनवरी १९५० को लागू कर दिया गया। इस सविधानमे भारतका लोकतान्त्रिक गणराज्य घोषित किया गया था और सघात्मक शासनकी व्यवस्था की गयी थी। डा० राजेन्द्रप्रसादको पहला राष्ट्रपति चुना गया और बहुमत पार्टीके नेताके रूपमे पडित जवाहरलाल नेहरूने प्रधानमन्त्रीका पद ग्रहण किया। इस पदपर वे २७ मई १९६४ ई०, अपनी मृत्यु तक बने रहे। नवोदित भारतीय गणराज्यके लिए उनका दीर्घकालीन प्रधानमन्त्रित्व बडा लाभदायी सिद्ध हुआ। उससे प्रशासन तथा घरेलू एव विदेश नीतियोमे निरतरता बनी रही। पडित नेहरूने वैदेशिक मामलोमे गुट-निरपेक्षताकी नीति अपनायी और चीनसे राजनयिक सम्बन्ध स्थापित किये। फ्रासने १९५१ ई० मे चद्रनगर शातिपूर्ण रीतिमे भारतको हस्तातरित कर दिया। १९५६ ई० मे उसने अन्य फ्रेच बस्तियाँ (पाडिचेरी, कारीकल, माहे तथा युन्नान) भी भारतको सौप दी। पुर्तगालने फ्रासका अनुकरण करने और शातपूर्ण रीतिसे अपनी पुर्तगाली बस्तियाँ (गोआ, दमन और दिव) छोडनेसे इनकार कर दिया। फलस्वरूप १९६१ ई०मे भारतको बलपूर्वक इन बस्तियोको ले लेना पडा। (अब १९७५ ई० मे पुर्तगाली शासनने वास्तविकताको समझकर इसको वैधानिक मान्यता दे दी है।–स०) इस तरह भारतका एकीकरण पूरा हो गया।

पडित नेहरूने १९५१ ई० मे भारतको नियोजित अर्थ व्यवस्था तथा उद्योगीकरणके मार्गपर आगे बढानेके लिए २,०६९ करोड रुपयेकी प्रथम पचवर्षीय योजना प्रस्तुत की। भारतने बालिग मताधिकार स्वीकार कर लिया और उसके आधारपर उसका पहला आम चुनाव शांतिपूर्वक सम्पन्न हुआ। १९५३ ई० मे भाषावार आधारपर आध्रको मद्रासमे अलग करके नया राज्य बना दिया गया। इसी आधारपर पूर्वी पजाबको पजाब तथा हरियाणाके दो राज्योमे विभाजित कर दिया गया है। जून १९५४ ई० मे चीनके प्रधानमत्री चाऊ एन लाई भारतकी यात्रापर आये। अगले अक्तूबरमे पडित नेहरूने चीनकी यात्रा की। पचशीलके समझौतेपर हस्ताक्षर होनेसे भारत और चीनके मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध अपनी पराकाष्ठापर पहुँच गये। १९५५ ई० मे भारतने अप्रैलमे होनेवाले बाडुग सम्मेलनमे प्रमुख भूमिका अदा करके अतरराष्ट्रीय राजनीतिमे अपना प्रभाव बढाया। जूनमे पडित नेहरूने सोवियत सघकी यात्रा की, जहाँ उनका बहुत उत्साहके साथ स्वागत किया गया। नवम्बरमे सोवियत नेताओ, ख्रुश्चेव तथा बुलगानिनने भारतकी यात्रा की और उनका जनताके द्वारा अपूर्व स्वागत किया गया।

१९५६ ई० मे भारतने ४८०० करोड रुपयेकी अपनी द्वितीय पचवर्षीय योजना आरम्भ की। उसने बर्मा, श्रीलका तथा इडोनेशियाके साथ मिलकर ब्रिटिश फौजोको मिस्रसे हटा लेनेकी माँग की, जहाँ प्रेसीडेंट नासिरने स्वेज नहरका राष्ट्रीयकरण कर दिया था। अतरराष्ट्रीय राजनीतिमे भारतकी प्रतिष्ठा उस समय उच्च शिखरपर थी। १९५७ ई० मे बालिग मताधिकारके आधारपर भारतीय गणराज्यका दूसरा आम चुनाव हुआ। पडित नेहरूके नेतृत्वमे काग्रेस पार्टीको पुन केन्द्रमे तथा केरलको छोडकर अन्य सभी राज्योसे बहुमत प्राप्त हो गया। केरलमे कम्युनिस्टोके नेतृत्वमे मन्त्रिमडल गठित हुआ, परतु पडित नेहरूके नेतृत्वमे केन्द्रने उसपर अपना नियत्रण बनाये रखा। १९५८ ई० मे इडियन रिफाइनरीज लि० की स्थापनाके साथ भारतने बड़े उद्योगोके क्षेत्रमे अपने कदम बढाये। उसने विज्ञानके क्षेत्रमे भी प्रगति की और प्रथम पारमाणविक भट्ठी (रिऐक्टर) निर्मित किया। परतु भारतने पारमाणविक बम बनानेसे इन्कार कर दिया और परमाणु शक्तिका

केवल शातिपूर्ण कार्योमे प्रयोग करनेके अपने निश्चयकी घोषणा की ।

१९५९ ई० मे चीनने तिब्बतपर हमला किया और पडित नेहरूकी सरकार मौन दर्शक बनी रही । दलाई लामा तथा हजारो तिब्बतियोने भाग कर भारतमे शरण ली और पडित नेहरूकी सरकारने उन्हे तत्परतासे शरण प्रदान की । चीनने इसे अमित्रतापूर्ण कार्य माना और १९५९ ई० मे उत्तर-पूर्वी सीमा क्षेत्रमे लागजूपर तथा हिमालय क्षेत्रके लद्दाख प्रदेशमे भारतीय क्षेत्रोपर बल-पूर्वक अधिकार करके भारतके प्रति अपने आक्रामक रवैयेको उजागर कर दिया । तीन साल बाद चीनने भारतके उत्तरी तथा पूर्वी सीमा क्षेत्रोपर अकारण बडा हमला बोल दिया । भारतीय सेना मित्र माने जानेवाले देशके इस हमलेके लिए तैयार नही थी, फिर भी उत्तर-मे उसने अपने पैर मजबूतीसे जमाये रखे, परन्तु उत्तर-पूर्वी मोर्चेपर वह बहुत थोडा अथवा नगण्य प्रतिरोध कर सकी और चीनी फौजे आसामकी सीमाके निकट पहुच गयी । इससे भारतको बहुत अपमानित होना पडा । इससे भी बडा अपमान उसे तब उठाना पडा जब चीनने १९६३ ई० मे एकागी युद्धविरामकी घोषणा कर दी, लडाई रोक दी और भारतके जिन क्षेत्रोको वह लेना चाहता था, उनको अपने अधिकारमे रखा । इससे पडित नेहरूको, जो १९५० ई० से चीनके प्रति मैत्रीपूर्ण नीति बरत रहे थे, भारी निराशा हुई और इसके शीघ्र ही बाद १९६४ ई० मे उनकी मृत्यु हो गयी ।

पाकिस्तान भारतके लिए भारी चिंताका विषय बना रहा । उसने १९४७ ई० मे ही पाकिस्तानी सैनिकोको कबीलेवालोके वेशमे कश्मीरमे भेजा था और वह कश्मीर-के प्रश्नको भारतके साथ अपने विवादका मुख्य विषय बनाये हुए था । इसके फलस्वरूप सितम्बर १९६५ ई० मे भारत और पाकिस्तानके बीच तीन सप्ताहका युद्ध छिड गया । यह युद्ध सयुक्त राष्ट्रसघ तथा सोवियत सघके हस्तक्षेपसे समाप्त हुआ । सोवियत सघने ताशकद-मे पाकिस्तानके प्रेसीडेट अयूब खॉ तथा भारतके प्रधान-मन्त्री लालबहादुर शास्त्री (दे०) का एक सम्मेलन किया । दोनो राष्ट्राध्यक्षोने एक सयुक्त घोषणा प्रका-शित करके सभी विवादास्पद प्रश्नोको शातिपूर्ण रीतिसे तय करने तथा अपनी सेनाओको युद्ध-पूर्वकी स्थितिपर वापस लौटा लेनेपर सहमति व्यक्त की । ११ जनवरी १९६६ ई० को ताशकद समझौतेपर हस्ताक्षर करनेके कुछ घटे बाद ही लालबहादुर शास्त्रीकी मृत्यु हो गयी । पश्चात् पडित जवाहरलाल नेहरूकी पुत्री श्रीमती इदिरा गाधी उनके स्थानपर भारतकी प्रधानमत्री चुनी गयी ।

भारतका विभाजन–स्वाधीनता प्रदान किये जानेसे पूर्व १९४७ ई०मे किया गया । मुसलमानोकी हठपूर्ण माँग तथा अग्रेजोकी 'फूट डालो और शासन करो'की पुरानी नीति ही इसका मूल थी । भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस तथा मुसलिम लीगके नेताओकी सहमतिसे भारतके विविध प्रातोमे रहनेवाले बहुसख्यक लोगोके धर्मके आधार पर भारतका विभाजन भारत और पाकिस्तानमे कर दिया गया। उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रात, पश्चिमी पजाब, सिंध तथा पूर्वी बगालको मिलाकर एक नया राज्य बना जो 'पाकि-स्तान' कहलाया । पाकिस्तानने अपनेको इसलामी राज्य घोषित किया । शेष भारतको धर्मनिरपेक्ष भारतीय गण-राज्य घोषित कर दिया गया ।

१९४७ ई०मे भारतके विभाजनके फलस्वरूप लाखो लोगोको भारी मुसीबते झेलनी पडी और करोडो लोगो-को देशके विभाजनपर भारी दुःख हुआ । फिर भी भारतके लोगोने देशके विभाजनको अनिवार्य मानकर स्वीकार कर लिया । १६ दिसम्बर १९७१ ई०को पाकिस्तानका भी विभाजन हो गया और पूर्वी पाकिस्तान पाकिस्तानसे अलग होकर 'बागला देश'का नया राज्य बन गया ।

भारतका सविधान–२६ नवम्बर १९४९ ई०को सविधान सभा द्वारा पास किया गया और २६ जनवरी १९५० ई०से लागू हुआ । यह एक भारी-भरकम दस्तावेज है, जिसमे २२ भागोके अतर्गत ३९५ धाराएँ तथा नौ अनु-सूचियाँ हैं । भारतका सविधान एक अभिलिखित तथा सरलतासे परिवर्तनशील सविधान है । इसके द्वारा देशमे सार्वभौम, सघीय, लोकतात्रिक धर्मनिरपेक्ष और ससदीय गणतत्रकी स्थापना की गयी है । इसकी प्रस्तावनामे कहा गया है—"हम भारतवासी भारतको एक सार्वभौम लोकतान्त्रिक गणतन्त्र बनाने, सभी नागरिकोको सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, धर्म, पथ और पूजाकी स्वतत्रता, स्तर और अवसरकी समानता दिलाने तथा व्यक्तिगत सम्मान और राष्ट्रीय एकताका ध्यान रखते हुए उनमे भ्रातृत्व भावना बढाने-का पावन सकल्प करते है और यह सविधान बनाते, स्वीकार करते और अपनेको प्रदान करते है ।"

जैसा कि एक अनुसूचीमे उल्लेख है, यह सविधान देशके लिए सघीय शासनकी व्यवस्था करता है और

उन सभी व्यक्तियोको नागरिकता प्रदान करता है, जिनका जन्म भारतमे हुआ है या जिनके मॉ-बापमेसे कोई भारतमे पैदा हुआ है या सविधान लागू होनेके पाँच वर्ष पहलेसे जो भारतमे रह रहे है। यह सविधान देशके नागरिकोको कुछ मौलिक अधिकार देता है जिनकी रक्षाके लिए देशकी सबसे बडी अदालत सर्वोच्च न्यायालयमे सीधे अपील की जा सकती है। ये मौलिक अधिकार है—समानता अस्पृश्यता-विनाश, विचार-अभिव्यक्ति और बोलनेकी स्वतन्त्रता, शातिपूर्ण ढगसे सम्मेलन और सभा करनेकी स्वतन्त्रता, सघ व सगठन बनानेकी स्वतन्त्रता, भारतके किसी भागमे आने-जाने और रहनेकी स्वतन्त्रता, धनोपार्जन और सम्पत्ति रखनेकी स्वतन्त्रता तथा कोई भी व्यवसाय व धधा और व्यापार करनेकी स्वतन्त्रता। सविधानमे कुछ नीति-निर्देशक सिद्धान्त भी है, जो यद्यपि न्यायालयके आदेशसे लागू नही कराये जा सकते तथापि देशमे कल्याणकारी राज्यके विकास हेतु प्रशासकीय कार्योमे केन्द्र और राज्योका पथ-प्रदर्शन करते हैं।

सविधानमे केन्द्र और राज्योके लिए पृथक् शासन व्यवस्था है। केन्द्रीय कार्यपालिकाके सारे अधिकार निर्वाचित राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और प्रधानमन्त्रीके नेतृत्ववाली मन्त्रिपरिषद्मे निहित है। राष्ट्रपतिका कार्यकाल पाँच वर्ष है। वह दुबारा फिर चुना जा सकता है। उसको १० हजार रु० मासिक वेतन और इसके अलावा कुछ भत्ते मिलते हैं। प्रधानमन्त्रीकी नियुक्ति राष्ट्रपति करता है और वही बादको प्रधानमन्त्रीकी सलाहसे अन्य मन्त्रियोकी नियुक्ति भी करता है। सविधान राष्ट्रपतिको कार्यपालिका और न्यायपालिका सम्बन्धी बहुत व्यापक अधिकार प्रदान करता है, परन्तु ब्रिटिश शासन प्रणालीके अनुरूप राष्ट्रपति इन अधिकारोका प्रयोग मन्त्रियोकी सलाह और स्वीकृतिसे ही कर सकता है। मन्त्रियोका कार्यकाल राष्ट्रपतिकी इच्छा पर निर्भर है, किन्तु ये मन्त्री ससदके प्रति उत्तरदायी होते है। राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाकर उसे ससदके बहुमत द्वारा हटाया जा सकता है। केन्द्रकी विधायिका शक्ति ससदमे निहित है। उसके दो सदन होते है—एक राज्य सभा और दूसरी लोकसभा।

राज्यसभामे २३८ प्रतिनिधि होते हैं जिनमे १२ राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जाते है और शेषका निर्वाचन राज्य-विधानमडलोके निर्वाचित सदस्यो द्वारा राज्योकी आबादीके अनुपातमे होता है। लोकसभाकी शक्ति पाँच सौ सदस्योकी है, जिनमेसे सभी वयस्क मताधिकारके आधार पर पाच वर्षोके लिए चुने जाते है। ससदके दोनो सदनोके अधिकार वित्त-विधेयकको छोडकर परस्पर समन्वयकारी है। वित्त-विधेयक सिर्फ लोकसभामे ही पेश हो सकता है। राज्यसभा उसमे सशोधनके लिए सुझाव दे सकती है, किन्तु लोकसभा इन सुझावोको मानने न माननेके लिए स्वतन्त्र है।

केन्द्रीय न्यायपालिकाके अधिकार सर्वोच्च न्यायालयमे निहित है, जिसमे एक प्रधान न्यायाधीश तथा १३ अन्य न्यायाधीश होते है। इन न्यायाधीशोकी नियुक्ति राष्ट्रपति करता है और ये ६५ वर्षकी उम्र तक अपने पदोपर कार्य कर सकते है। सर्वोच्च न्यायालयको मूल क्षेत्राधिकार तथा पुनर्विचाराधिकार, दोनो ही प्रकारका अधिकार प्राप्त है और वह किसी भी कानूनकी सवैधानिकतापर निर्णय दे सकता है। हाँ, उसकी उपयुक्तता परखनेका उसे अधिकार नही है।

राज्योमे कार्यपालिकाके अधिकार राज्यपाल तथा मुख्यमन्त्री और उसकी मन्त्रिपरिषद्मे निहित है। राज्यपालकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा पाँच वर्षोके लिए की जाती है। राज्यपालका वेतन ५५०० रु० मासिक है। मुख्यमन्त्रीके नेतृत्वमे मन्त्रिपरिषद्की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है जो राज्य विधानमडलोके प्रति उत्तरदायी होती है। राज्योकी विधायिका दो सदनोवाले एक विधानमडलमे निहित होती है। इनमे उच्च सदन अर्थात् विधानपरिषद्के सदस्य अप्रत्यक्ष रूपसे निर्वाचित होते है और निम्न सदन यानी विधान सभाके सदस्य प्रत्यक्ष रूपसे जनता द्वारा चुने जाते है। कुछ राज्यो जैसे आध्र, बिहार, मध्यप्रदेश, मद्रास, महाराष्ट्र, मैसूर, पजाब, उत्तरप्रदेश और पश्चिमी बगालमे दो सदनोवाले विधानमडल हैं जब कि अन्य राज्योमे प्रत्यक्ष रूपसे निर्वाचित सदस्योवाली विधान सभाएँ ही है।

राज्योकी न्यायपालिका उच्च न्यायालयोमे निहित है, जिनमे एक मुख्य न्यायाधीश तथा कई अन्य न्यायाधीश होते हैं। इनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होती है और ये ६२ वर्ष की उम्र तक अपने पदपर बने रह सकते हैं। सविधानमे सशोधनके लिए अबतक दो दर्जनसे अधिक अधिनियम पारित हो चुके है और आगे भी आवश्यकता पडने पर पारित होते रहेगे। इस प्रकार इस सविधानने भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसकी आकाक्षाओको आशासे अधिक पूरा करते हुए देशमे ऐसी सरकारकी स्थापना की है, जो जनताके लिए है और जनता द्वारा ही चलायी जाती है।

भारतके यवन राज्य–इनका आरम्भ अफगानिस्तान तथा उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रांतमे अशोकके देहावसान (लगभग २३२ ई० पू०)के बाद किसी समय हुआ। सीरियाके महान् राजा एन्टीओकसने २०६ ई० पू०के आसपास हिन्दूकुशको पार कर काबुलकी घाटीमे राज्य करनेवाले सुभगसेन नामक एक भारतीय राजाको हराया और हर्जानेके रूपमे उससे अपरिमित धन और बहुत-से हाथी प्राप्त करके स्वदेश वापस चला गया। उसके बाद ही बैक्ट्रियाके यवन राजा डेमेट्रियस (दे०)ने पंजाबका काफी भाग जीत लिया। एक दूसरे यवन राजा युक्रेटीयसने डेमेट्रियससे बैक्ट्रियाका राज्य छीन लिया। भारतके उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रांतमे उस कालमे बहुत-से छोटे-छोटे यवन सामन्त राज्य करते थे, जिनका परिचय हमे उनके द्वारा जारी किये गये नाना प्रकारके सिक्कोसे मिलता है। इनमे सबसे प्रसिद्ध राजा मिनान्डर था, जो भारतमे काफी भीतर तक घुस आया था। उसने बौद्ध धर्म अंगीकार कर लिया और उसकी पहचान प्रसिद्ध बौद्ध ग्रंथ 'मिलिन्द पन्हो' (मिलिन्दके प्रश्न) मे उल्लिखित राजा मिलिन्दसे की जाती है। एक दूसरा यवन राजा एन्टिआल्कीडस था जो तक्षशिलामे राज्य करता था। उसने अपने दूत हेलियोडोरस (दे०)को शुंग राजा भागभद्रकी राजसभामे भेजा था। हेलियोडोरस भागवत धर्मका अनुयायी बन गया था और उसने बेसनगरमे वासुदेवके गरुड-स्तम्भका निर्माण कराया था। अंतिम यवन राजा हरमाओस था, जिसका राज्य ईसवी सन्‌की पहली शताब्दीमे कुषाण राजा कदफिसस प्रथम (दे०) ने छीन लिया।

भारत परिषद् (इण्डिया कौंसिल)–भारतीय शासन विधान १८५८ ई०के अन्तर्गत स्थापित। इस विधानके अनुसार भारतका शासन ईस्ट इंडिया कम्पनीके हाथोसे लेकर ब्रिटिश सम्राट्के अधीन कर दिया गया। बोर्ड आफ कंट्रोल और उसके अध्यक्षका पद समाप्त कर उसके स्थानपर 'कौन्सिल आफ इंडिया' अथवा भारत परिषद्की स्थापना की गयी। इसका अध्यक्ष ब्रिटिश सरकारके भारतीय मामलोके मन्त्री—(भारत-मन्त्री)को बनाया गया। इस कौन्सिलमे १५ सदस्य थे, जिनकी नियुक्ति पहले तो जीवन भरके लिए की गयी, लेकिन बादको उसकी अवधि १०से १५ वर्षोके बीच कर दी गयी। कौन्सिलमे उन्ही सदस्योकी नियुक्ति की जाती, जिन्हे भारतीय गतिविधियोका ज्ञान होता था। कौन्सिलसे यह अपेक्षा की जाती थी कि वह भारत-मन्त्रीको परामर्श दे और उसपर नियन्त्रण रखे। अत उसे विशेष अधिकार प्रदान किये गये तथा भारतीय राजस्वके व्यय और विनियोजन एव वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्के साधारण सदस्योकी नियुक्तिके लिए उनकी स्वीकृति आवश्यक कर दी गयी। १८६९ ई०के विधान द्वारा इसके सदस्योका कार्यकाल घटाकर दस वर्ष कर दिया गया (जिसे भारत-मन्त्रीकी मर्जीसे बढाया जा सकता था) और कौन्सिलका स्तर परामर्शदात्री सस्थाका कर दिया गया। पूरी १९वी शताब्दी तक इसके सदस्य सिर्फ ब्रिटिश लोग ही बनाये जाते थे। १९०७ ई०मे पहली बार दो भारतीयो—श्री कृष्णगोविन्द गुप्त और सैयद हुसेन बिल्ग्रामीको इसका सदस्य नियुक्त किया गया। १९१९ ई०के विधान द्वारा कौन्सिलके सदस्योकी सख्या घटाकर १२ कर दी गयी और कार्यकाल पाँच वर्ष। अब कौन्सिल पहलेसे अधिक भारत-मन्त्रीके अधीन हो गयी। १९३५ ई०के भारतीय शासन विधानके अनुसार, अप्रैल १९३७ से इंडिया कौसिल (भारत परिषद्)को खत्म कर दिया गया। जब तक यह कौसिल रही, तब तक भारतीयोने इसे बराबर प्रतिक्रियावादी सस्थाके रूपमे घृणाकी दृष्टिसे देखा, जिसका काम भारतीय हितोकी कीमतपर ब्रिटिश स्वार्थोकी रक्षा करना था।

भारत-भूमिके निवासी–इनको चार मुख्य विभागो अथवा नस्लोमे बाँटा जाता है, यथा (१) भारतीय आर्य, (दे०) जो लम्बे गोरवर्ण, लम्बी नासिकावाले तथा सस्कृतसे उद्भूत भाषाओके बोलने वाले है, (२) द्रविण, (दे०), जो दक्षिण भारतमे बडी सख्यामे सस्कृत मूलसे भिन्न है तथा तमिल, तेलुगु, कन्नड और मलयालम भाषाएँ बोलते है, (३) आदिवासी, जो भील, कोल और मुण्डा लोगोकी भाँति छोटे, कृष्णवर्ण तथा चपटी नाकवाले हैं। उनकी बोलियोकी न कोई वर्णमाला है और न लिखित साहित्य ही, (४) मगोल जातिके वशज, जो गोरखाओ, भोटियो और खासी लोगोकी भाँति दाढी-मूँछ रहित, पीतवर्ण, छोटी आँखो तथा गालोपर उभरी हुई हड्डियोवाले लोग है। अन्तिम दो विभागोके लोग नवप्रस्तर युगके आग्नेयवशी लोगोकी सन्ताने है। इन चारो नसलोके लोग भारतवर्षमे अनेकानेक शताब्दियोसे निवास करते रहे हैं, और उनमे, विशेषत आर्यो, द्रविडो तथा मगोलोके वशजोमे, परस्पर विवाह सम्बन्ध भी होते रहे है। फलत उनमे ऐसा रक्त-सम्मिश्रण हो गया है कि भेद करना कठिन है। भारतकी अन्य सस्थाओकी भाँति आधुनिक भारतीय जातियाँ भी एक ऐसे सम्मिश्रणकी

परिणति है, जिसकी प्रक्रिया दीर्घकालसे इस देशमे चलती रही है।

भारत रक्षा कानून—प्रथम विश्वयुद्धके समय १९१४ ई०मे बना। इसके अन्तर्गत भारत सरकारको युद्धके दौरान लोगोको गिरफ्तार करने, नजरबन्द करने तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रतापर प्रतिबन्ध लगानेके व्यापक अधिकार प्राप्त हो गये। भारतीयोने इस कानूनको व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका हनन करनेवाला और कठोर दमन चक्रका प्रतीक माना।

भारतवर्ष—वह देश जहाँ राजा भरत (दे०)के वशज रहते हैं। यह उत्तरमे हिमालयसे लेकर दक्षिणमे हिन्द महासागर तक विस्तृत है (विष्णुपुराण, खड २,३ .१)। इसका आधुनिक नाम भारत है।

भारतीय आर्य—उन आर्यो (दे०)की एक शाखा, जिनके सम्बन्धमे अनुमान लगाया जाता है कि उन्होने ईसा पूर्व लगभग दो हजार वर्ष पहले किसी अनिश्चित कालमे उत्तर-पश्चिम दिशामे भारतमे प्रवेश किया। वे यायावर थे और सबसे पहले पजाबमे बसे। इसके बाद वे इस देशमे रहनेवाले लोगोसे, जिन्हे वे दास या दस्यु कहते थे, दीर्घकालीन युद्ध करते हुए गगाकी घाटीसे होकर उत्तरी भारतमे आगे बढे। अन्तमे उन्होने विजयी होकर इस देशके आदिम लोगोको अपने वशमे किया। जिस धर्मका विकास वे लोग करते आ रहे थे, उसकी झाँकी वेदो (दे०)मे मिलती है। वेदोसे हमे उनके राजनीतिक और सामाजिक सगठनका भी परिचय मिलता है।

वे जनो या कबीलोमे विभक्त थे। प्रत्येक जनका शासन एक मुखिया करता था जो 'राजा' कहलाता था। जनोमे आपसमे लडाइयाँ होती रहती थी, परन्तु अनार्य शत्रुओके विरुद्ध वे एक हो जाते थे। राजा वशगत होता था और उसकी आयका स्रोत था—विजित कबीलो द्वारा दी जानेवाली बलि (कर) तथा प्रजासे मिलनेवाली भेट। उसके मुख्य अधिकारी थे—सेनानी (सेनाका मुखिया), ग्रामणी (गाँवका मुखिया) तथा पुरोहित। प्रजा समिति तथा सभाके माध्यमसे राज्यकार्यमे हाथ बँटाती थी। समितिमे जनपदकी सम्पूर्ण जनता एकत्र होती थी। सभा पितर अथवा वृद्ध लोगोकी सस्था थी। सामाजिक व्यवस्था पितृ-सत्तात्मक थी और पिता परिवारका मुखिया होता था। अधिकतर एक विवाह प्रचलित था, परन्तु बहु-विवाह भी होते थे। सामाजिक जीवनमे स्त्रियोको ऊँचा स्थान प्राप्त था और गृह प्रबध उन्हीके हाथमे था। कुछ स्त्रियाँ इतनी विदुषी होती थी कि मन्त्रो तककी रचना करती थी। आधुनिक अर्थमे जाति-व्यवस्था प्रचलित नहीं थी, परन्तु वर्ण-व्यवस्था वर्तमान थी, जिसके अन्तर्गत जनताका वर्गीकरण ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा विशः (वैश्य)मे किया जाता था।

आर्य गाँवोमे निवास करते थे, उनके पुर अथवा नगर नही थे। उनकी आजीविकाका मुख्य साधन था—पशुपालन और कृषि। उनमे चर्मकार, रथकार (बढई) आदि व्यवसाय भी प्रचलित थे। व्यापार बैलो तथा सुवर्ण आभूषणोके द्वारा किया जाता था। उनका मुख्य भोजन घी, शाक और फल था। यज्ञमे बलि दिये गये पशुओका मास भी खाया जाता था। सोम और सीमित सुरापान प्रचलित था। द्यूत-क्रीडा और रथोकी दौड मनोरजनके मुख्य साधन थे। आर्योने विजित अनार्योको भी अपनी वर्ण-व्यवस्थामे सम्मिलित कर लिया और उनका वर्गीकरण शूद्रोमे किया जाने लगा। आर्य प्रकृतिकी विविध शक्तियोको साधारणत, देवता मानकर उनकी उपासना करते थे। वे द्यौ (आकाश), वज्र (बिजली) तथा सूर्यकी शक्तियोके रूपमे वरुण, इन्द्र, सूर्य आदि की पूजा करते थे। आर्योके देवताओकी सख्या विशाल थी और उनकी उपासनाके लिए जटिल कर्मकाण्डके ज्ञाता पुरोहितोकी आवश्यकता पडती थी। आर्योमे यह विश्वास भी प्रचलित था कि मूलत ईश्वर एक और सर्वव्यापक है, यद्यपि उसके नाम भिन्न-भिन्न है। आर्य बडे उद्यमी और पुरुषार्थी थे और उनके विचारो तथा सस्थाओका विकास अनेक युगोमे हुआ। महान् हिन्दू सभ्यता और सस्कृति उन्हीकी देन है।

भारतीय कानून कमीशन—इसकी स्थापना १८३३ ई०मे लार्ड मैकालेकी अध्यक्षतामे की गयी। इसने कई वर्ष तक कार्य किया और उसीके आधारपर १८६० ई०मे भारतीय दण्ड विधान तथा १८६१ ई०मे जाब्ता दीवानी और जाब्ता फौजदारी तैयार किये गये। इस तरह ब्रिटिश भारतमे समान कानूनी व्यवस्थाकी स्थापना हुई।

भारतीय दण्ड विधान—गवर्नर-जनरल लार्ड विलियम बेण्टिक (१८२८–३५ ई०) द्वारा नियुक्त कानून कमीशनने इसका प्रणयन किया। मैकाले (दे०) इस कमीशनका प्रमुख सदस्य था। इस कानूनको १८६० ई०मे लागू किया गया। फलस्वरूप समूचे ब्रिटिश भारतमे समान दण्ड-विधान लागू हो गया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस—भारतीयोके सबसे बडे इस राजनीतिक सगठनकी स्थापना २८ दिसम्बर १८८५ ई०को

की गयी। इसका पहला अधिवेशन बम्बईमे कलकत्ता हाईकोर्टके बैरेस्टर उमेशचन्द्र बनर्जीकी अध्यक्षतामें हुआ। कहा जाता है कि वाइसराय लार्ड डफरिन (१८८४–८८ ई०)ने काग्रेसकी स्थापनाका अप्रत्यक्ष रीतिसे समर्थन किया। यह सही है कि एक अवकाश-प्राप्त अग्रेज अधिकारी एलन आक्टेवियन ह्यूम काग्रेसका जन्मदाता था और १९१२ ई०मे उसकी मृत्यु हो जाने-पर काग्रेसने उसे अपना "जन्मदाता और सस्थापक" घोषित किया था। गोखलेके अनुसार १८८५ ई०मे ह्यूम-के सिवा और कोई व्यक्ति काग्रेसकी स्थापना नही कर सकता था। परन्तु वस्तुस्थिति यह प्रतीत होती हे, जैसाकि *सी० वाई० चिन्तामणिका मत है, राजनीतिक उद्देश्योसे* राष्ट्रीय सम्मेलनका विचार कई व्यक्तियोके मनमे उठा था और वह १८८५ ई०मे चरितार्थ हुआ।

काग्रेसके प्रारम्भिक वर्षोमे उसके समर्थक खुले आम कहते थे कि इस सगठनसे भारतमे ब्रिटिश साम्राज्यकी नीव मजबूत होगी। इसीलिए सरकार उसपर कृपा-दृष्टि रखती थी और वाइसराय लार्ड डफरिनने भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके दूसरे अधिवेशनके प्रतिनिधियोको गार्डन पार्टी दी थी। यह अधिवेशन १८८६ ई०मे कलकत्तामे हुआ। इसी रीतिसे मद्रासके गवर्नरने काग्रेसके तीसरे अधिवेशनके प्रतिनिधियोका स्वागत किया था। यह अधिवेशन १८८७ ई०मे मद्रासमे हुआ। परतु यह उसी समय स्पष्ट होने लगा था कि काग्रेसका विकास लार्ड डफरिनकी आशाओके अनुरूप नही होने जा रहा है, वल्कि वह वास्तवमे एक राष्ट्रीय सस्थाके रूपमे विक-सित होती जा रही है और वह उन अधिकारो और सिद्धातोका समर्थन करती है जो उसके विचारमे भारतीय राष्ट्रके राजनीतिक विकासमे सहायक हो सकते है। इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय कागेस शीघ्र ही सरकारका कोपभाजन बन गयी और भारतीय जनतामे अधिकाधिक लोकप्रिय होती गयी।

शीघ्र ही उसे भारतीय राष्ट्रकी आवाज माना जाने लगा और उसने अपनी स्थापनाके बासठ वर्षोके बाद ही राष्ट्रको स्वाधीनता दिला दी। यह एक ऐसी उपलब्धि है जिसपर कोई भी सगठन उचित रीतिसे गर्व कर सकता हे। परतु इस महान लक्ष्यकी प्राप्तिसे पूर्व भारतीय राष्ट्रीय कागेसको कडी अग्नि-परीक्षासे गुजरना पडा। काग्रेसके पहले अधिवेशनमे प्रतिनिधियोकी सख्या जहाँ ७१ थी, दूसरे कलकत्ता अधिवेशनमे बढकर ४३६ हो गयी और बम्बईमे होने वाले पाँचवे अधिवेशनमे बढकर १८८९ हो गयी। यह आवश्यक समझा गया कि सारे देशमे विविध राजनीतिक सार्वजनिक सस्थाओसे चुने जानेवाले प्रति-निधियोकी अधिकतम सीमा १००० निर्धारित कर दी जाय। काग्रेसके अधिवेशनोमे पहुँचनेवाले दर्शकोकी सख्या भी उत्तरोत्तर बढती गयी और प्रतिनिधियो-को ठहरानेकी व्यवस्था करना तथा अधिवेशनमे सबके बैठनेकी व्यवस्था करना एक कठिन समस्या बन गयी, जिसे सतोषजनक रीतिसे हल करना सरल कार्य नही था। प्रतिनिधियो तथा दर्शकोकी उत्तरोत्तर बढती सख्यासे यह निर्विवाद रूपसे स्पष्ट हो गया कि काग्रेस राष्ट्रीय सस्था है, यद्यपि मुसलमान लोग सामान्य रीतिसे अपनेको उससे अलग रख रहे थे।

समय बीतनेके साथ काग्रेसके उद्देश्यो और उनको प्राप्त करनेके उपायोमे परिवर्तन होता गया। काग्रेसके पहले अधिवेशनमे केवल नौ प्रस्ताव पास किये गये, जिनके द्वारा माँग की गयी कि (१) एक शाही कमीशनके द्वारा, जिसमे भारतको भी उचित रीतिसे प्रतिनिधित्व प्राप्त हो, भारतीय प्रशासनकी जाँच की जाय, (२) इडिया कौसिल (भारत परिषद)को तोड दिया जाय, (३) केन्द्रीय तथा प्रातीय लेजिस्लेटिव कौसिलोका विस्तार करके उनमे यथेष्ट अनुपातमे निर्वाचित सदस्योको लिया जाय और उन्हे वार्षिक बजटपर विचार करने तथा प्रश्न पूछनेका अधिकार दिया जाय, (४) इडियन सिविल सर्विसकी परीक्षा इग्लैण्ड और भारतमे एक साथ ली जाय और उसमे प्रवेश करनेवालोकी अधिकतम उम्र १९ वर्षसे बढाकर २३ वर्ष कर दी जाय, (५) फौजी खर्च घटाया जाय, (६) चुगी फिरसे लगायी जाय और बढा हुआ फौजी खर्च यदि घटाया न जा सके तो उसकी पूर्तिके लिए लाइसेस करका विस्तार किया जाय, (७) बर्माको, जिसपर अधिकार कर लेनेकी निंदा की गयी, अलग कर दिया जाय, (८) उक्त प्रस्तावोको सभी प्रातोकी सभी राजनीतिक सस्थाओको भेजा जाय ताकि वे उनके क्रियान्वयनकी माँग कर सके, (९) अगले साल बडे दिन पर कलकत्तामे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसका अधिवेशन फिर बुलाया जाय।

उक्त प्रस्तावके अनुसार भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसका दूसरा अधिवेशन १८८६ ई०मे बडे दिनपर कलकत्तामे हुआ। इसके बाद प्रति वर्ष बडे दिनपर उसका अधि-वेशन भारतके किसी न किसी बडे नगरमे होता रहा। १९३७ ई०मे पहली बार उसका अधिवेशन एक गाँव (फैजपुर)मे हुआ। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भारतीय

राष्ट्रीय काग्रेस प्रारम्भमे अपने प्रस्तावोके क्रियान्वयनके लिए ब्रिटिश सरकारकी सद्-भावनापर पूरी तरहसे निर्भर रहती थी। उसके प्रस्ताव प्रार्थनाके रूपमे पेश किये जाते थे। काग्रेसको ब्रिटेनपर पूरा विश्वास था और वह उसके राजनीतिक सिद्धातो तथा सस्थाओके प्रति आदर भाव रखती थी।

बहुत वर्षा तक काग्रेसके नेताओका विश्वास रहा कि अग्रेज लोग इतने न्यायप्रिय हैं कि यदि भारतीयोकी शिकायते उनके सामने रख दी जायें तो वे अवश्य दूर कर दी जायेगी। इसी विश्वासके आधारपर वैधानिक आदोलन चलाकर जूरीके द्वारा मुकदमोकी सुनवाईकी प्रथाका विस्तार करने, न्याय कार्यको प्रशासन कार्यसे पृथक् करने, शस्त्र कानून रद्द करने, सामान्य तथा तकनीकी शिक्षाका विस्तार करने, केन्द्रीय तथा प्रातीय विधान मडलोका विस्तार करके उनमे निर्वाचित भारतीय प्रतिनिधि बढाने तथा उन्हे देशके वित्तीय तथा सामान्य प्रशासनपर नियत्रणका अधिक अधिकार प्रदान करके देशमे स्वशासनका विकास करनेकी माँग की गयी। ब्रिटिश जनताको सूचना देनेके उद्देश्यसे १८८८ ई०मे लदनमे एक प्रचार एजेसी खोली गयी। बादमे इस कार्यके लिए भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसकी ब्रिटिश कमेटीकी स्थापना की गयी, जो साप्ताहिक 'इडिया'का प्रकाशन करती थी।

परतु इन सब प्रयत्नोका कोई फल नही निकला और ब्रिटिश सरकारने १८९२ ई०के इडियन कौसिल ऐक्ट (दे०)को छोडकर और कोई सुधार नही किया। उसने काग्रेस तथा उसके प्रस्तावोकी पूर्ण उपेक्षा की। इससे काग्रेसके अनुयायियोमे निराशाकी भावना फैली। देशके अदर काग्रेसके प्रचारके फलस्वरूप काग्रेसके अनुयायियोकी सख्या प्रति वर्ष बढती जा रही थी और धीरे-धीरे ब्रिटिश सरकारकी विरोधी भावना बढने लगी। काग्रेसजनोका एक वर्ग वैधानिक आदोलनमे अपना विश्वास खो बैठा। वह प्रति वर्ष सरकारको प्रार्थनाएँ भेजनेकी पद्धतिकी खिल्ली उडाता था, जिनको सरकार रद्दीकी टोकरीमे फेक देती थी। इस वर्गका नेतृत्व बाल गगाधर तिलक, अरविन्द घोष, विपिन चन्द्र पाल तथा लाला लाजपतराय कर रहे थे। उसका कहना था कि सिर्फ जबान चलानेसे शासन सुधार नही प्राप्त होगे, उनके लिए ठोस काररवाई करनेकी आवश्यकता है। उसका कहना था कि सिर्फ स्वायत्तशासी सस्थाओके विस्तारसे देश सतुष्ट नही हो सकता, देश प्रशासनपर वास्तविक नियत्रण चाहता है। उसने आत्म-सहायता और जनताको जाग्रत करनेकी आवश्यकतापर बल दिया।

इस बीच भारत सरकारने कई प्रतिगामी कार्य किये, जैसे टकसालोमे जनताकी चाँदीसे सिक्कोकी ढलाई बद कर देना, विनिमय दरमे होनेवाली हानिकी पूर्तिके लिए भत्ता देना, इडियन यूनीवर्सिटीज ऐक्ट (दे०) तथा बगभग (दे०) (१९०५)। इसके साथ कई वाइसरायोने ऐसे वक्तव्य दिये जो बुद्धिमत्तापूर्ण नही थे, जैसे "भारतको तलवारके बलपर जीता रखा गया है और उसीके बलपर कब्जेमे रखा जायगा" (लार्ड एलगिन) तथा "भारतमे सच्चाईका आदर नही किया जाता और वास्तवमे सच्चाई कभी भारतीय आदर्श नही रहा है" (लार्ड कर्जन)।

इन सब बातोसे भारतीयोमे, विशेषरूपसे काग्रेसजनोके नये और नवयुवक वर्गमे गहरा आक्रोश भर गया। पुराने और नये काग्रेसजनो, नरमदल और गरमदलवालो, वैधानिक आदोलनमे विश्वास करनेवालो और उग्र राष्ट्रीयतावादियोमे मतभेद पहलीबार १९०५ ई० मे बनारसमे गोपालकृष्ण गोखलेकी अध्यक्षतामे होनेवाले काग्रेस अधिवेशनमे प्रकट हुए। अध्यक्षकी ओरसे रखे गये प्रस्तावमे "भारतीय विधानमडलोका और विस्तार और सुधार करने" की प्रार्थना की गयी थी। इसके विरोधमे नवयुवक वर्गने माँग की कि भारतमे ऐसी सरकार होनी चाहिए जो स्वायत्तशासी हो और ब्रिटिश नियत्रणसे पूर्णतया मुक्त हो। अध्यक्षका प्रस्ताव पास हो गया। अगले साल १९०६ ई० मे कलकत्तामे होनेवाले अधिवेशनमे मतभेद फिर प्रकट हुए। अध्यक्ष दादाभाई नौरोजी (दे०) ने दोनो दलोमे समझौता करानेका प्रयास किया। उन्होने अपने अध्यक्षीय भाषणमे घोषणा की कि भारतको "ब्रिटेन अथवा उपनिवेशो जैसा स्वराज्य" मिलना चाहिए। परन्तु यह समझौता भ्रामक सिद्ध हुआ और अगले साल १९०७ ई० की सूरत काग्रेसमे नरमदल और गरमदलवालोमे खुला सघर्ष हुआ और काग्रेस अधिवेशन भग हो गया। अगले साल (१९०८ ई० मे) इलाहाबाद अधिवेशनमे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसका सविधान तैयार किया गया। इसकी पहली धारामे कहा गया था कि काग्रेसका ध्येय "सवैधानिक उपायोसे एक ऐसी शासनप्रणालीकी स्थापना करना है जो ब्रिटिश साम्राज्यके स्वशासन-युक्त सदस्योके अनुरूप हो।" इसको काग्रेसकी नीतिके रूपमे स्वीकार कर लिया गया और भविष्यमे ऐसा कोई व्यक्ति काग्रेस अधिवेशन-

के लिए प्रतिनिधि नही चुना जा सकता था जिसने इस प्रस्तावको लिखितरूपसे स्वीकार न कर लिया हो। मार्ले-मिन्टो सुधारोकी रिपोर्टपर आधारित १९०९ ई० के इडियन कौंसिल ऐक्ट (दे०) तथा १९११ ई० मे बग-भग रद्द कर दिये जानेसे नरम दलवालोकी स्थिति मजबूत हो गयी और १९१६ ई० तक काग्रेस उनके नियत्रणमे रही।

परतु मार्ले मिन्टो सुधार इतने सीमित थे कि शीघ्र ही उनके विरुद्ध असतोष उत्पन्न होने लगा। इस बीच देशकी अदरूनी तथा अतरराष्ट्रीय घटनाओके फलस्वरूप भारतीय मुसलमानोका एक वर्ग भी स्वशासनकी माँग करने लगा। अभी तक भारतीय मुसलमानोने काग्रेसके नेतृत्वमे चलाये गये राष्ट्रीय आदोलनसे अपनेको अलग रखा था। परतु १९०९ ई० के इडियन कौंसिल ऐक्ट-मे मुसलमानोको खुश रखनेके उद्देश्यसे प्रदान किये गये साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वके बावजूद, मुसलिम लीगने १९१३ ई० मे स्वशासनकी प्राप्ति अपना उद्देश्य घोषित कर दिया। १९१६ ई० मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस और मुसलिम लीगका अधिवेशन लगभग साथ-साथ लखनऊमे हुआ, जिसमे शासन-सुधारोकी सयुक्त योजना तैयार की गयी। इस सयुक्त माँगके जवाबमे तथा प्रथम विश्वयुद्ध (दे०) के फलस्वरूप उत्पन्न परिस्थितियोके दबावसे ब्रिटेनने १९१८ ई० मे माटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारो (दे०) की घोषणा की। शीघ्र ही इनके आधारपर १९१९ ई० का गवर्नमेन्ट आफ इडिया ऐक्ट (दे०) तैयार किया गया, जिसमे विधानमडलोमे प्रत्यक्ष चुनावके आधारपर जनताको प्रतिनिधित्व प्रदान करनेका सिद्धात स्वीकार कर लिया गया और आशिक रीतिसे प्रातीय स्वशासनकी स्थापना कर दी गयी। इन सुधारोको स्वीकार करनेके प्रश्नपर काग्रेसमे दो दल हो गये। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और तेजबहादुर सप्रू जैसे पुराने काग्रेसजनोके नेतृत्वमे नरमदलवालोने सुधारोको स्वीकार कर लिया और उन्हे क्रियान्वित करनेका निश्चय किया। दूसरी ओर राष्ट्रीयतावादियोने, जो अब काग्रेसमे बहुमतमे थे, सुधारोको अपर्याप्त माना और १९१८ ई० के अधिवेशनमे काग्रेसने उन्हे अस्वीकार कर दिया। नरमदलवाले अब काग्रेससे अलग हो गये, जिसके निर्माणमे उन्होने बहुत परिश्रम किया था और उसके लिए अनेक कुर्बानियाँ की थी।

इसी समय काग्रेसको मोहनदास करमचद गाधी (दे०) के रूपमे एक नया नेता मिल गया और जिसके निर्देशनमे १९२० ई० के नागपुर अधिवेशनमे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसने अपना ध्येय सभी उचित तथा शातिपूर्ण उपायोसे पूर्ण स्वराज्यकी प्राप्ति घोषित किया और अपनी माँगोको मनवानेके लिए सरकारके प्रति अहिंसक असहयोगकी नीति बरतनेका निश्चय किया। इस प्रकार काग्रेसके ध्येय और उसके उपायोमे भारी परिवर्तन आ गया।

काग्रेसको अब पहलेसे कही अधिक जन-समर्थन प्राप्त होने लगा और उसने एक ऐसा साधन प्राप्त कर लिया, जिसका प्रयोग करके वह अपनी माँगोको मनवा सकती थी। १९२१ ई० मे गाधीजीके नेतृत्वमे काग्रेसने मुसलमानोके द्वारा चलाये जा रहे खिलाफत आदोलन (दे०) का समर्थन किया और एक सालमे स्वराज्य दिलानेका वादा करके असहयोग आदोलन आरम्भ कर दिया। प्रिंस आफ वेल्सके आगमनपर उसका बायकाट किया गया और हिन्दुओ तथा मुसलमानोके सयुक्त असहयोगसे सरकारको किस रीतिसे पगु बनाया जा सकता है, इसका अपूर्व प्रदर्शन हुआ। सरकारने तीव्र दमन किया और आदोलन गाधीजी के इच्छानुसार पूर्णरूपसे अहिंसक नही रह सका। तुर्कीमे घटनेवाली घटनाओके फलस्वरूप खिलाफत आदोलन मृत हो गया और असहयोग आदोलन बद कर दिया गया। परन्तु काग्रेसका आदोलन चलता रहा और १९२९ ई० के लाहौर अधिवेशनमे पूर्ण स्वाधीनताकी प्राप्ति काग्रेसका लक्ष्य घोषित किया गया।

काग्रेसने अपने लक्ष्यकी पूर्तिके लिए अप्रैल १९३० ई० मे सत्याग्रह आदोलन (दे०) आरम्भ कर दिया। मुसलिम लीगने सत्याग्रह आदोलनमे शरीक होनेसे इनकार कर दिया। सरकारने फिर दमनका सहारा लिया। उसने गाधीजी और काग्रेसके दूसरे बहुतसे नेताओको जेलोमे बद कर दिया और काग्रेस आदोलन पुन स्थगित कर दिया गया। परतु दमनके जोरसे स्वाधीनताकी आकाक्षाको नही कुचला जा सका और १९३९ ई० मे द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू होनेपर यह अच्छी तरह प्रकट हो गया कि ब्रिटेन युद्ध जीतनेके लिए भारतके साधनोपर कितना अधिक निर्भर है। गाधीजीके नेतृत्वमे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसने ब्रिटेनके शत्रुराष्ट्रोका खुला समर्थन करनेसे साफ इनकार कर दिया और इस बातकी प्रतीक्षा करना उचित समझा कि ब्रिटेनमे एक दिन सद्बुद्धिका उदय होगा और वह स्वेच्छासे भारतकी राजनीतिक माँगोको स्वीकार कर लेगा, परन्तु सुभाषचन्द्र

बोस (दे०) के नेतृत्वमें काग्रेसजनोंका एक वर्ग ब्रिटेनके शत्रु राष्ट्रोसे फौजी गठबधन कर लेनेके पक्षमे था। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस कलकत्तामे अपने घरमे नजरबद थे। एक दिन वे चुपकेसे भाग निकले और स्थल-मार्गसे जर्मनी जा पहुँचे। अनेक साहसिक घटनाओंके बाद वे सिंगापुर पहुँचे और वहाँ १९४२-४३ ई०मे अंग्रेजोंने बर्मा खाली करते समय जिन ६०,००० भारतीय सेनाओं-को जापानियोंके हाथ बदीके रूपमे छोड दिया था, उनकी सहायतासे आजाद हिन्द फौजका सगठन किया, अपनी अध्यक्षतामे एक अस्थायी आजाद हिन्द सरकारकी रचना की और जापानियोंकी सहायतासे भारतको बल-पूर्वक आजाद करनेके लिए उसकी पूर्वी सीमाओंपर फौजी आक्रमण कर दिया। परन्तु १९४४ ई०मे उनका प्रयास विफल हुआ। गाधीजीने १९४२ ई०में अंग्रेजोंके विरुद्ध जो 'भारत छोडो' आन्दोलन छेडा था, वह भी विफल रहा।

१९४५ ई० तक ब्रिटेन फिर विजयी हो चुका था और प्रतीत होता था कि वह फिर पुराना साम्राज्यवादी रवैया अख्तियार कर लेगा। परन्तु युद्धने ब्रिटनको जन और धनकी भारी क्षति पहुँचायी थी, वह पूरी तरहसे जर्जर और पंगु हो चुका था। वह यद्यपि भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसका दमन करनेमें सफल हो गया था, तथापि भारत-मे ब्रिटिश विरोधी भावनाओं एव गतिविधियोंने इतना प्रबल रूप धारण कर लिया था कि ब्रिटेनके लिए इसके सिवा कोई चारा नही रह गया कि वह काग्रेसकी माँगो-को स्वीकार करके ही भारतपर अपना अधिकार बनाये रख सकता है। काग्रेसने १९४६ ई०के मेरठ अधिवेशनमे पुनः स्वाधीनताकी माँग दोहरायी और अतमे अगस्त १९४७ ई०मे भारत और पाकिस्तान (दे०)के रूपमे देशके विभाजनकी भारी कीमत चुका कर अपनी मागें मनवा ली। इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसने बासठ वर्ष पूर्व अपनी स्थापनाके अवसर पर अपना जो ध्येय निश्चित किया था, उससे अधिक प्राप्त कर लिया। इस समय काग्रेस ही भारत सरकारका सचालन कर रही है। उसके कार्यकालमे भारतको सघीय लोकतांत्रिक गणतत्रा-त्मक सविधान प्रदान किया गया और अनेक शताब्दियों-की विदेशी दासताके फलस्वरूप देश गरीबी, अज्ञान तथा सामाजिक एव आर्थिक असमानताके जिन अभिशापोंसे ग्रस्त था, उनसे छुटकारा दिलानेका बीडा उठाया गया है। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस आज भी भारतकी प्रमुख राजनीतिक पार्टी है।

भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस लोकतांत्रिक सगठन है जो सारे देशमें फैला हुआ है। १८ वर्ष या इससे अधिक उम्रका कोई भी व्यक्ति २५ पैसा वार्षिक चदा देकर उसका प्राथमिक सदस्य बन सकता है और २० वर्षसे अधिक उम्रका कोई भी प्राथमिक सदस्य खादी पहनने आदिकी कुछ शर्तें पूरी करने पर उसका पूर्ण तथा सक्रिय सदस्य बन सकता है। सबसे नीचे ग्राम या मोहल्ला काग्रेस कमेटी होती है, उसमे ऊपर जिला काग्रेस कमेटी होती है। प्रत्येक प्रदेशमे अपनी सभी जिला काग्रेस कमेटियोंके कार्योंका पर्यवेक्षण और नियत्रण करनेके लिए एक प्रदेश काग्रेस कमेटी होती है। सभी प्रदेश काग्रेस कमेटियाँ अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीके अधीन होती हैं, जिसके सदस्य सभी राज्योंसे चुने जाते हैं। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसका कार्य समूचे वर्ष चलता रहता है और उसका निर्देशन वर्किंग कमेटी करती है, जिसके अध्यक्षका चुनाव दो वर्षके लिए होता है। ऊपरसे ऐसा प्रतीत होता है कि सगठनके अन्दर कार्योंका काफी विकेन्द्रीकरण है, परन्तु अनुभवोंसे सिद्ध होता है कि आवश्यकता पडने पर यह सगठन अपने कार्योंमे केन्द्रीयकरणकी भारी क्षमता रखता है।

नीचे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके १८८५ ई०मे होने-वाले पहले अधिवेशनसे लेकर १९४७ ई० तकके अधि-वेशन स्थानों तथा अध्यक्षोंकी सूची दी जा रही है, जिससे उसका राष्ट्रीय एव अखिल भारतीय रूप प्रकट होता है।

सन् स्थान अध्यक्ष

१८८५—बम्बई—उमेशचन्द्र बनर्जी
१८८६—कलकत्ता—दादाभाई नौरोजी
१८८७—मद्रास—सैयद बदरुद्दीन तैयबजी
१८८८—इलाहाबाद—जार्ज यूल
१८८९—बम्बई—सर विलियम वेडरबर्न
१८९०—कलकत्ता—सर फीरोजशाह मेहता
१८९१—नागपुर—आनन्द चार्लू
१८९२—इलाहाबाद—उमेशचद्र बनर्जी
१८९३—लाहौर—दादाभाई नौरोजी
१८९४—मद्रास—अलफ्रेड वेब
१८९५—पूना—सुरेन्द्रनाथ बनर्जी
१८९६—कलकत्ता—मोहम्मद रहीमतुल्ला सयानी
१८९७—अमरावती—सी० शकरन नायर
१८९८—मद्रास—आनन्द मोहन बसु
१८९९—लखनऊ—रमेशचन्द्र दत्त
१९००—लाहौर—नारायण गणेश चन्द्रावरकर

१९०१–कलकत्ता–दीनशा ईदलजी वाचा
१९०२–अहमदाबाद–सुरेन्द्रनाथ बनर्जी
१९०३–मद्रास–लालमोहन घोष
१९०४–बम्बई–सर हेनरी काटन
१९०५–बनारस–गोपालकृष्ण गोखले
१९०६–कलकत्ता–दादाभाई नौरोजी
१९०७–सूरत–रासबिहारी घोष (अधिवेशन भग)
१९०८–मद्रास–रासबिहारी घोष
१९०९–लाहोर–मदनमोहन मालवीय
१९१०–इलाहाबाद–सर विलियम वेडरबर्न
१९११–कलकत्ता–बिशन नारायण दर
१९१२–पटना–रघुनाथ नृसिंह मुधलकर
१९१३–कराची–नवाब सैयद मोहम्मद बहादुर
१९१४–मद्रास–भूपेन्द्रनाथ बसु
१९१५–बम्बई–सत्येन्द्र प्रसन्न सिंह
१९१६–लखनऊ–अम्बिकाचरण मुजुमदार
१९१७–कलकत्ता–श्रीमती एनी बेसेंट
१९१८–बम्बई (विशेष)–सैयद हसन इमाम
१९१९–अमृतसर–पडित मोतीलाल नेहरू
१९२०–कलकत्ता (विशेष)–लाला लाजपत राय
१९२०–नागपुर–चक्रवर्ती विजयराघवाचार्य
१९२१–अहमदाबाद–हकीम अजमल खाँ
१९२२–गया–चित्तरजन दास
१९२३–कोकोनडा–मौलाना मोहम्मद अली
१९२३–दिल्ली (विशेष)–अबुल कलाम आजाद
१९२४–बेलगाँव–मोहनदास करमचद गाधी
१९२५–कानपुर–श्रीमती सरोजिनी नायडू
१९२६–गौहाटी–श्रीनिवास आयगर
१९२७–मद्रास–डा० मुख्तर अहमद अन्सारी
१९२८–कलकत्ता–पडित मोतीलाल नेहरू
१९२९–लाहौर–पडित जवाहरलाल नेहरू
१९३०–कोई अधिवेशन नही हुआ
१९३१–कराची–वल्लभभाई पटेल
१९३२–दिल्ली–सेठ रणछोरलालदास अमृतलाल
१९३३–कलकत्ता–श्रीमती नेली सेनगुप्त
१९३४–बम्बई–राजेन्द्र प्रसाद
१९३५–कोई अधिवेशन नही हुआ
१९३६–लखनऊ–पडित जवाहरलाल नेहरू
१९३७–फैजपुर–पडित जवाहरलाल नेहरू
१९३८–हरीपुरा–सुभाषचद्र बोस
१९३९–त्रिपुरी–सुभाषचद्र बोस
१९४०–रामगढ–मौलाना अबुलकलाम आजाद
१९४१–१९४५–कोई अधिवेशन नही हुआ
१९४६–... पडित जवाहरलाल नेहरू
१९४६–... आचार्य जयरामदास दौलतराम कृपालानी
१९४७–... राजेन्द्र प्रसाद

स्वाधीनता पानेके बाद १९४८ ई० मे काग्रेसका अधिवेशन जयपुरमे पट्टाभि सीतारमैयाकी अध्यक्षतामे हुआ, १९५० ई० मे नासिकमे पुरुषोत्तमदास टडनकी अध्यक्षतामे, १९५१ ई०मे नयी दिल्लीमे पडित जवाहरलाल नेहरूकी अध्यक्षतामे, जिन्होने हैदराबाद (१९५३) तथा कल्याणी अधिवेशनोकी भी अध्यक्षता की, १९५५ ई० मे अवाडीमे उच्छृङ्गराय नवलराय ढेबरकी अध्यक्षतामे, जिन्होने अमृतसर (१९५६ ई०) तथा गोहाटी (१९५८ ई०) अधिवेशनोकी भी अध्यक्षता की, १९५९ ई० मे नागपुरमे श्रीमती इदिरा गाधीकी अध्यक्षतामे, १९६० ई० मे बगलोरमे तथा १९६१ ई० मे गुजरातमे नीलम सजीव रेड्डीकी अध्यक्षतामे, १९६२ ई० मे भुवनेश्वरमे तथा १९६३ ई० मे पटनामे दामोदरन सजीवैयाकी अध्यक्षतामे तथा १९६४ ई० मे भुवनेश्वरमे तथा १९६५ ई० मे दुर्गापुरमे के० कामराजकी अध्यक्षतामे हुआ। अवाडी अधिवेशन (१९५५ ई०) मे काग्रेसने देशमे लोकतान्त्रिक आधारपर समाजवादी राज्यकी स्थापनाकी नीति स्वीकार की, जिसे उसने भुवनेश्वर अधिवेशन (१९६५ ई०) मे दोहराया।

भारतीय वर्णमाला–सबसे प्राचीन भारतीय लिपिमालाके नमूने पिपरहवाके स्तूप और अशोक (२७३ ई० पू० से २३२ ई० पू०) के शिलालेखोमे मिलते हे। उस लिपिको ब्राह्मी लिपि कहा जाता है और भारतकी सभी आधुनिक लिपियाँ उसीसे विकसित हुई हे। ब्राह्मी लिपिका विकास कैसे हुआ, यह अब तक रहस्य हे। एक मत है कि पश्चिमी एशियामे जो लिपियाँ प्रचलित थी, उन्हीसे ब्राह्मी लिपिका विकास हुआ। दूसरा मत है कि प्राचीन ब्राह्मी लिपिका विकास सिन्धके मोहनजोदडो और हडप्पाके प्रागैतिहासिक अवशेषोमे प्राप्त माहरो या मुद्राओपर अकित चित्र लिपिसे हुआ। पश्चिमोत्तर भारतमे अशोकके शिलालेख खरोष्ठी लिपिमे मिले है और अफगानिस्तानके हालमे उसके जो दो शिलालेख मिले है, उनमे खरोष्ठी ओर अरमइक ग्रीक, दोनो लिपियोका प्रयोग है। इस प्रकार ईसा-पूर्व तीसरी शताब्दीमे भारतमे ब्राह्मी, खरोष्ठा और अरमइक, तीनो लिपियोका प्रयोग होता था, और उनमेसे ब्राह्मी लिपि

पूरे भारतमे प्रचलित थी और वादकी अधिकाश भारतीय लिपियाँ उसीसे विकसित हुई है। ईसाकी सातवी शताब्दीमे जव तिब्बतमे राजा स्रोङ् गम्पन् स्गमन्पो (६२९–६९८ ई०) का राज्य था, उस समय वौद्धधर्मने तिव्वत अथवा भोट देशमे प्रवेश किया और उसके साथ ही भारतीय वर्णमाला और लिपि भी वहाँ पहुँची जो भोट वर्णमालाका आधार वनी।

भारतीय शासन विधान–१८५८, १९०९, १९१९ तथा १९३५ ई० के शासन-विधानोका विवरण 'ब्रिटिश भारतीय प्रशासनतन्त्र'के अन्तर्गत देखिये।

भारतीय सविधान सभा–इसकी स्थापनाका अधिकार ब्रिटिश पार्लियामेन्टने १६ मई १९४६ ई० की कैबिनेट मिशन (दे०) योजनामे स्वीकार किया। इस योजनाके अतर्गत सविधान सभाका गठन किया गया, जिसमे सभी प्रातो तथा देशी रियासतोका प्रतिनिधित्व करनेवाले ३८१ सदस्य थे। परन्तु मुसलिम लीग उसकी वैठकोमे शामिल नही हुई और इसीलिए भारतीय सविधान सभा दिसम्बर १९४६ ई० मे होनेवाले अधिवेशनमे कोई कार्य नही कर सकी। ब्रिटिश पार्लियामेन्टकी ओरसे भारतके पाकिस्तान तथा भारत नाममे दो स्वतत्र राज्योमे विभाजन करनेकी योजनाके आधारपर जव १९४७ ई० मे इडियन इडिपेन्डेन्स एक्ट पास किया गया, तव सविधान सभाका भी विभाजन कर दिया गया। पाकिस्तानमे शामिल क्षेत्रोका प्रतिनिधित्व करनेवाले सदस्योको लेकर पाकिस्तान सविधान सभाका गठन कर दिया गया। शेप सदस्य भारतीय सविधान सभाके सदस्य वने रहे। लम्वी वहसके वाद डा० राजेन्द्रप्रसाद (दे०)की अध्यक्षतामे भारतीय सविधान सभाने २६ नवम्वर १९४९ ई० को भारतका सविधान अधिनियम पास कर दिया।

इस अधिनियममे निर्धारित किया गया कि भारत सार्वभौम सत्ता-सम्पन्न लोकतात्रिक गणराज्य होगा और उसके राज्यक्षत्रमे गवर्नरोके द्वारा शासित प्रात, देशी रियासते तथा चीफ कमिश्नरोके द्वारा शासित प्रात सम्मिलित होगे। सविधान सभाने भारतीय विधानमडलकी हैसियतसे कार्य करते हुए निर्णय किया कि भारतीय गणराज्य ब्रिटिश राष्ट्रमडलका सदस्य वना रहेगा। भारतीय सविधान सभाने जो सविधान तैयार किया था, उसमे भारतमे एक निर्वाचित राष्ट्रपतिके अधीन सघात्मक लोकतात्रिक गणराज्यकी स्थापना स्वीकृत की गयी थी। इस सविधानको २६ जनवरी १९५० ई० को एक घोपणाके द्वारा स्वीकार किया गया और उसी दिनसे लागू कर दिया गया। उसीके उपलक्ष्यमे प्रतिवर्ष २६ जनवरीका भारतमे 'गणराज्य दिवस' मनाया जाता है।

भारतीय सवैधानिक सुधारोकी रिपोर्ट–इसमे १९१७–१८ ई० मे नियुक्त भारतमत्री एडविन माटेग्यू तथा वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्डकी सिफारिशे निहित थी। १९१९ ई० का गवर्नमेण्ट आफ इडिया ऐक्ट इसी रिपोटपर आधारित था। इस ऐक्टमे केन्द्रीय तथा प्रातीय विधानमडलोका विस्तार कर दिया गया तथा द्वैध-शासन प्रणाली (दे०) के द्वारा प्रातोका प्रशासन आशिक रूपसे उत्तरदायी वना दिया गया।

भारतीय सभ्यता और धर्मका विदेशोमे विस्तार–'वृहत्तर भारत' भारतके प्राचीन इतिहासका एक गौरवपूर्ण अध्याय है। दूसरे देशोके साथ भारतका सम्पर्क प्रागेतिहासिक कालमे भी था। ऐतिहासिक कालमे देशके वाहर भारतीय सस्कृतिका प्रसार सवसे पहले तीसरे मौर्य सम्राट् अशोक (लगभग २७३ से २३२ ईसा-पूर्व) ने किया, जिसने वौद्ध धर्म प्रचारकोको पश्चिममे अफगानिस्तानके रास्ते फारस, सीरिया, मिस्र और मेसीडोनिया (मकदूनिया) तथा दक्षिणमे श्रीलका तक भेजा। अशोकने अपने अभिलेखोमे दावा किया है कि उसके धर्म-विजय सवधी प्रयासोके फलस्वरूप इन सभी देशोमे वहुतसे लोगोने वौद्ध धर्म अपनाया और उसने इन सभी देशोमे मनुष्य और पशुओ दोनोके लिए अस्पताल खुलवाये। अशोकका यह दावा सही था, इसके प्रमाण उपलब्ध है। यूनानी इतिहासकारोने इस वातका उल्लेख किया है कि ईसवी सन्की प्रारभिक शताब्दियोमे भारतीय व्यापारी अपने जहाजोपर सवार होकर विविध भारतीय वदरगाहोसे विदेश यात्रापर जाते थे और अरव सागर पार करके पश्चिमी देशोके साथ व्यापार करते थे। उन्होने सोकोत्रामे अपना उपनिवेश स्थापित किया था और रोम तथा उसके साम्राज्यके साथ उनका प्रगाढ व्यापारिक सवध था।

लगभग इसी समय, विशेप रीतिसे कुपाणोके शासन कालमे वौद्ध धर्मका भारतसे वाहर मध्य एशियामे प्रसार हुआ और ताशकद, खोतन और यारकद भारतीय सस्कृतिके केन्द्र वन गये। गोमति-विहार और कूचा या कूची नगर भारतीय सस्कृतिके सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण केन्द्र थे। सर आरेल स्टीनकी गवेषणाओके फलस्वरूप एशियामे भारतीय सस्कृतिके अनेक अवशेष प्राप्त हुए है। मध्य

एशियासे भारतीय बौद्ध धर्म और संस्कृतिका प्रसार ईसवी सन् की प्रारंभिक-शताब्दियोके दौरान चीनमे हुआ और लगभग एक हजार वर्षोतक भारत तथा चीनके बीच घनिष्ठ सांस्कृतिक संबंध कायम रहे। भारी संख्यामे भारतीय बौद्ध भिक्षु चीन गये, वहाँ बसे तथा उन्होने चीनी विद्वानोकी मददसे न केवल बौद्ध धर्म वरन् ज्ञानकी विभिन्न शाखाओ, जैसे–व्याकरण, छंदशास्त्र, काव्यशास्त्र, कला और चिकित्सा शास्त्रकी सैकडो पुस्तकोका संस्कृतसे चीनी भाषामे अनुवाद किया। ये भारतीय भिक्षु संस्कृत भाषाके पंडित थे, अत चीनी विद्वानोने इनसे संस्कृत सीखी।

इन बौद्ध भिक्षुओंमे सबसे पहले कश्यप मातग और धर्मरक्ष ६७ ई०के आस-पास चीन गये थे। इनके अलावा चीन जानेवाले अन्य कई भारतीय भिक्षुओके नाम चीनी इतिहास ग्रथोंमे सुरक्षित है। इनमेंसे कुछ प्रमुख है—कुमारजीव (८०१–१३ ई०), बोधिधर्म (लगभग ५२०–६ ई०) गुणवर्मा (४२४–६० ई०) और अमोघवज्र (७४६–७४ ई०)। इसी तरह बौद्धधर्मके पवित्र ग्रथोकी खोजमे और बौद्ध तीर्थोकी यात्रा करनेके लिए चीनी भिक्षु भी भारी संख्यामे भारत आये। वे वापसीमे अपने साथ सैकड़ो संस्कृत ग्रथ चीन ले गये और उनका चीनी भाषामे अनुवाद किया। भारत आनेवाले चीनी यात्रियोमे सबसे अधिक प्रसिद्ध फाहियान और ह्युएनत्साग है, जो क्रमश ईसवी सनकी ५ वी और ७ वी शताब्दियोमे भारत आये थे। इस आवागमनके फलस्वरूप बौद्ध धर्मका महायान रूप चीनियोमे इतना अधिक प्रचलित हो गया कि यह वस्तुत चीनका राष्ट्रीय धर्म बन गया। चीनसे बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृति कोरिया पहुँची और कोरियासे जापान।

बौद्ध धर्मका नेपाल और तिब्बतमे भी प्रसार हुआ। भारतीय बौद्ध भिक्षुओमे पद्मसभव और अतिशा दीपकर श्रीज्ञान (१०४२–५४ ई०)के नाम तिब्बतवासी आज भी बहुत श्रद्धाके साथ लेते हैं। पद्मसभव आठवी शताब्दीके मध्यमे तिब्बत गये और वहाँ लामा धर्मकी स्थापना की। तिब्बतने भारतीय धर्म ग्रहण करनेके साथ साथ उसकी लिपिको भी ग्रहण किया।

श्रीलकामे अशोकके धर्म प्रचारकोको भारी सफलता मिली। द्वीप-वासियोने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया और श्रीलका शीघ्र ही बौद्ध संस्कृतिका केन्द्र बन गया। यही बौद्ध त्रिपिटकोको पहली बार लिपिबद्ध किया गया।

भारतीय संस्कृति तथा हिन्दू एव बौद्ध धर्मका प्रसार श्रीलकाके अतिरिक्त बर्मा, मलय प्रायद्वीप, सुमात्रा, जावा (यवद्वीप) और मलयद्वीपसमूह तथा वहाँसे उत्तरकी ओर स्याम, कम्बुज (कम्बोडिया) और अनाममे भी हुआ। इन देशोमे केवल भारतीय भिक्षु और व्यापारी ही नही पहुँचे, वरन् भारतीयोने वहाँ अपने उपनिवेश भी बसाये, जिनपर हिन्दू राजा शासन करते थे। इन राज्योके शासक अपनेको भारतके क्षत्रिय राजाओका वशज बताते थे। इन राज्योमे चम्पा (आधुनिक अनाम और हिन्द चीन), कम्बुज (जो अब कम्बोडियाके नामसे जाना जाता है), और सुमात्रामे श्री विजय राज्य, जिसकी राजधानी परबनम थी, उल्लेखनीय थे। ये हिन्दू राज्य ईसवी तीसरी शताब्दीसे बारहवी शताब्दी तक खूब फलेफूले। इनके राजा या तो हिन्दू या फिर बौद्ध धर्मके अनुयायी थे। उन्होने संस्कृत भाषामे अपनी प्रशास्तिया लिखवायी है। उन्होने शिव, ब्रह्मा और बुद्धके साथसाथ ब्राह्मण तथा बौद्ध धर्मके अन्य देवी-देवताओकी मूर्तिया स्थापित की और अनेक भव्य मंदिरोका निर्माण कराया।

इन मदिरोमे जावाके बोरोबुदूर और प्राम्बानाम मंदिर तथा कम्बोडियाके अकोरवटके मंदिर आज भी अपने समस्त कला वैभवके साथ विद्यमान है। ये मन्दिर दक्षिण-पूर्व एशियामे हिन्दू सभ्यताकी महान उपलब्धियोके ज्वलत प्रतीक हैं। चम्पा राज्य अनामवासियोके हमलोके कारण १४७१ ई०मे नष्ट हो गया। कम्बुजका पतन भी लगभग इसी समय स्यामकी शक्तिके प्रदुर्भावके साथ हुआ और मलय-द्वीपसमूहका हिन्दू राज्य एक शताब्दी पहले वहाँके अतिम शासक द्वारा इस्लाम-धर्म ग्रहण कर लेनेके कारण समाप्त हो गया। तथ्य यह है कि तेरहवी शताब्दीमे भारतपर मुसलमानो की विजयके बाद दक्षिण-पूर्व एशियाकी ओर भारतीयोका प्रसार बंद हो गया और दोनो क्षेत्रोके बीच संपर्क टूट गया। दक्षिण-पूर्व एशियाके देश इसके बाद शताब्दियो तक पुर्तगालियो, फ्रांसीसियो और डचोके शोषणके शिकार रहे। (आर० सी० मजूमदार कृत चम्पा एण्ड स्वर्णद्वीप, बी० आर० चटर्जी कृत इण्डियन इन्फ्लुएंस आन कम्बोज, डी० जी० ई० हाल कृत हिस्ट्री आफ साउथ ईस्ट एशिया, सर ए० स्टीन कृत ऐंशियेण्ट खोतान, इनरमोस्ट एशिया, रुईंस आफ डेजर्ट के थे।)

भास—'अर्थ शास्त्र'के लेखक कौटिल्यका पूर्ववर्ती संस्कृत नाटककार। विश्वास किया जाता है कि उसने 'चारु दत्त' 'प्रतिमा' और स्वप्न-वासवदत्ता' आदि तेरह नाटकोकी रचना की थी। स्वप्नवासवदत्तामे शैशुनाग वशी राजा

दर्शक (लगभग ४६७ ई० पू०)का उल्लेख है। इन नाटकोंका, जिनका बादके युगोंमें लोप हो गया था, बीसवीं शताब्दीके आरम्भमें केरलीय गणपति शास्त्रीने पता लगाया। (**गणपति शास्त्री : दि ड्रामाज आफ़ भास तथा इंडियन एन्टीक्वरी, १९१६, पृष्ठ १८९–९५**)

भास्कर पण्डित–मराठा शासक रघुजी भोंसलाका सेनापति, जिसने १७४३–५१ ई०में नवाब अलीवर्दी खांके शासन कालमें बंगालपर आक्रमण किया। खुली लड़ाईमें उसका मुकाबला करनेमें असमर्थ होनेपर नवाब अलीवर्दी खाँने भास्कर पण्डितको कासिम बाजा के निकट मानकड़ाहमें एकान्तमें मिलनेके लिए बुलाया और वहां उनकी हत्या करवा दी। लेकिन भास्कर पण्डितकी हत्या से मराठोंकी चढ़ाइयाँ बंद नहीं हुई। फलतः १७५१ ई०में उड़ीसा सौंप कर तथा बारह लाख रुपये वार्षिक चौथ देना स्वीकार कर नवाबको मराठोंके साथ सन्धि करनी पड़ी। भास्कर पण्डितके आक्रमणोंसे बंगालमें अत्यधिक आतंक फैल गया था और उसके बारगीरों (स्वयंसेवक अश्वारोही सैनिकों)की लूटमारको आज भी बंगालके लोग याद करते हैं। (**सरकार–हिस्ट्री आफ बंगाल, भाग दो, पृष्ठ ४५५-६१**)

भास्कर वर्मा–कामरूप (आसाम)के आरम्भिक राजाओंमें सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त, जिसने लगभग ६०० से ६५० ई० तक शासन किया। ईसाकी चौथी शताब्दीमें यह पुष्यवर्मा द्वारा स्थापित राजवंशका अन्तिम किन्तु सर्वाधिक महान् शासक था। इसका उल्लेख बाणके 'हर्षचरित' और ह्वेनत्सांगकी "ट्रैवल्स एण्ड लाईफ" में हुआ है। निधानपुर ताम्र दानपत्रमें भी उनका कीर्तिगान है, जिसमें समयका कोई निर्देश नहीं किया गया है, ६४६ ई०में हर्षवर्धनकी मृत्यु हो जानेके उपरान्त ही कदाचित् उसे जारी किया गया था। बाण तथा ह्वेनत्सांगने भास्कर वर्माका उल्लेख 'कुमार' के नामसे किया है। उसकी हर्षवर्धनके साथ एक संधि हुई थी। यह संधि कदाचित् बंगालके राजा शशांक (दे०) की शक्तिको रोकनेके लिए की गयी थी। लेकिन इस बातका कहीं उल्लेख नहीं है कि उन्होंने कभी मिलकर शशांकपर आक्रमण किया था। यह तथ्य कि भास्कर वर्माने निधानपुर दानपत्र कर्णसुवर्ण स्थित शिविरसे जारी किया था, जिसकी पहचान मुर्शिदाबाद स्थित रंगमाटीसे की गयी है, निश्चितरूपमें सिद्ध करता है कि किसी समय उसने कामरूप राज्यकी सीमा बंगालमें मुर्शिदाबाद जिले तक प्रसारित कर दी थी।

वह विद्वानोंका संरक्षक था। यद्यपि वह व्यक्तिगत रूपमें सनातनी हिन्दू धर्म मतावलम्बी था तथापि उसने अपने दरबारमें बौद्ध चीनी यात्री ह्वेनत्सांगको आमन्त्रित किया और उसका बड़े सम्मानके साथ स्वागत किया था। बादमें सम्राट् हर्षवर्धनके आदेशपर भास्कर वर्मा राजमहलके निकट स्थित हर्षवर्धनके शिविरमें चीनी यात्रीके साथ साथ गया था और वहाँसे अपने मित्र सम्राट्की सभाओंमें कन्नौज और प्रयागमें सम्मिलित हुआ। वह हर्षकी मृत्यु (६४८ ई) के बाद कई वर्ष जीवित रहा, और चीनी वृत्तांतोंके अनुसार समस्त पूर्वी भारतका स्वामी बन गया। चीनी राजदूत वाग ह्युएनत्सेने जब हर्षके सिंहासन पर अधिकार कर लेनेवाले उसके मंत्री अर्जुनको दंड देनेके लिए कन्नौज पर आक्रमण किया, तब भास्कर वर्माने साज-सामान देकर उसकी पर्याप्त सहायता की थी। भास्कर वर्मा निःसन्तान था। उसकी मृत्यु (६५० ई०) के उपरान्त कामरूप राज्यपर नये सालम्तम्भ राजवंशका शासन स्थापित हो गया। (**के० बरुआ–अर्ली हिस्ट्री आफ कामरूप, पी० भट्टाचार्य–कामरूप शासनावली तथा एस० भट्टाचार्य–डेट आफ दि निधानपुर ग्रान्ट, जर्नल आफ इंडियन हिस्ट्री–जिल्द ३१, अगस्त, १९५३, पृष्ठ ११२–१७**)

भास्कराचार्य–ख्यातिप्राप्त गणितज्ञ और ज्योतिषाचार्य, जन्म १११४ ई०में दक्षिण देशवर्ती सह्याद्रि शृंखलाके पादमूलमें स्थित बीजापुरमें। उनके पिता चूडामणि महेश्वर भी ज्योतिषी थे, जिनसे उन्होंने गणित और खगोल-शास्त्र सीखा। छत्तीस वर्षकी अल्पावस्थामें उन्होंने अपनी प्रसिद्ध रचना 'सिद्धान्तशिरोमणि' लिखी। यह पुस्तक दो भागोंमें विभाजित है–अंकगणित तथा बीजगणित, प्रथम भागको लीलावती भी कहते हैं। यह पुस्तक पद्यमय है और दर्शाती है कि गणित विज्ञानमें हिन्दुओंने कितनी उन्नति की थी। (**एच० बनर्जी–लीलावती तथा, बी० बी० दत्त–कन्ट्रीब्यूशन्स आफ दि हिन्दूज टू मैथमेटिक्स**)

भितरी–बनारससे पूर्व गाजीपुर जिलेमें स्थित। यहाँ पाँचवें गुप्त सम्राट् स्कन्दगुप्त (४५५–६७ ई०) ने एक स्तम्भ निर्मित कराया था जिसके शीर्षपर विष्णुकी मूर्ति थी। मूर्ति अब लुप्त हो चुकी है, लेकिन स्तम्भ अब भी खड़ा है और इस पर संस्कृतमें एक विस्तृत अभिलेख अंकित है। अभिलेखमें स्कन्दगुप्तकी वंशावली तथा पुष्यमित्रों तथा हूणोंसे हुए युद्धोंका भी विवरण है। अभिलेखके अनुसार स्कन्दगुप्त कुमारगुप्त प्रथम (४१३-५५ ई०) का पुत्र और उत्तराधिकारी था। १८८९ ई० में कुमारगुप्त द्वितीयकी एक मोहर भितरीमें मिली थी।

इस मोहर पर स्कन्दगुप्तका कोई उल्लेख नही है और पुरगुप्तको कुमारगुप्त प्रथमका पुत्र तथा उत्तराधिकारी बतलाया गया है। भितरीमे प्राप्त अभिलेख तथा मोहर-की पररपर प्रतिकूल बातोका समाधान करनेके लिए यह अनुमान किया जाता है कि पुरगुप्त स्कन्दगुप्तका सौतेला भाई था और वह स्कन्दगुप्तकी मृत्युके उपरान्त सिंहासनारूढ हुआ था। (फ्लीट–गुप्ता इसक्रिपशन्स, नम्बर १३; बनर्जी–क्रॉनालोजी आफ दि लेट इम्पीरियल गुप्ताज, अनल्स आफ भण्डारकर रिसर्च इस्टीच्यूट, 'जिल्द १, भाग १, १९१९ तथा रायचौधरी० पृ० ५७२-८५)

भिन्नमाल–उत्तर गुजरातके निकट पुरानी सिरोही रियासत-मे स्थित एक प्राचीन नगर। गुर्जर प्रतिहारोके काल (नवी शताब्दी)मे यह शासनका प्रमुख केन्द्र-था।

भिलसा–प्राचीन नगर विदिशाका आधुनिक नाम। इसके निकट कुछ स्तूपोके अवशेष है जिन्हे जनश्रुतियोके अनु-सार अशोक द्वारा स्थापित बताया जाता है। मुसलमानो-के जमानेमे यह फूलता-फलता नगर था। यहाँ एक किला था जिससे मालवा प्रदेशमे भिलसा सामरिक महत्त्वका स्थान माना जाता था। इस पर सुल्तान इल्तुतमिशने १२३४ ई०मे कब्जा कर लिया था। पश्चात् १२९२ ई०मे इस पर अलाउद्दीनका कब्जा हो गया और इसके फलस्वरूप उसके लिए दक्षिण भारतपर चढाई करनेका मार्ग प्रशस्त हो गया।

भीतरगाव–उत्तर प्रदेशके कानपुर जिलेमे अवस्थित, जहाँ गुप्तकालका एक मन्दिर है। इसे चन्द्रगुप्त द्वितीयके कालका बताया जाता है। इस मन्दिरकी मृन्मय मूर्तियाँ दृष्टव्य है। यह मंदिर गुप्त-कालीन कला और वास्तु-रचनाकी भव्यताका उत्कृष्ट नमूना है।

भीम अथवा भीमसेन–महाभारतकी कथाओके नायक पाँच पाण्डव राजकुमारोमे दूसरा। पाण्डुके पाँचो पुत्रोमे शारी-रिक दृष्टिसे यह सबसे अधिक बलवान था और महा-भारतमे इसके शक्ति-प्रदर्शनकी अनेक घटनाएँ वर्णित है।

भीम–कैवर्त जातिमे उत्पन्न और दिव्योक अथवा दिव्य (दे०)का भतीजा एव उत्तराधिकारी। उसने बगालके राजा महीपाल द्वितीयके विरुद्ध विद्रोहका नेतृत्व किया और उत्तरी बगालमे स्वाधीन राज्यकी स्थापना की। भीम-का शासन थोडे ही समय रहा, क्योकि महीपालके छोटे भाई रामपालने १०८४ ई०मे उसका राज्य छीन लिया।

भीम–उद्भाण्डपुरके हिन्दू शाहीय वशका चौथा राजा। उसकी दौहित्री (पुत्रीकी पुत्री) कश्मीरकी ख्यातिप्राप्त रानी दिद्दा थी। उसके शासनकालमे गजनीका सुल्तान सबुक्तगीन (९७७–९७ ई०) काफी शक्तिशाली हो गया। उसके राज्य-प्रसारको रोकनेमे भीमका उत्तराधिकारी जयपाल विफल रहा।

भीमदेव प्रथम–गुजरातके चालुक्य अथवा सोलकी वशका राजा। उसके शासनकालमे महमूद गजनवीने सोमनाथ-के शिव-मन्दिरपर आक्रमण किया और राजा उसको रोकने तथा मन्दिरकी रक्षा करनेमे असफल रहा। महमूद गजनवीने १०२५ ई० मे मन्दिरको नष्ट कर दिया। उसके लौट जानेपर राजा भीमने पुराने मन्दिरके स्थानपर, जो ईटो और लकडीका बना हुआ था, पत्थर-का नया मन्दिर बनवाना शुरू कर दिया।

भीमदेव द्वितीय–गुजरातके सोलकी अथवा चालुक्यवशका पश्चात्कालीन राजा, जिसने ११७८ ई० मे शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीके आक्रमणको विफल कर दिया। इस विजयके फलस्वरूप पूरा गुजरात एक शता०दीसे अधिक समय तक मुसलमानोके अधिकारमे जानेसे सुरक्षित रहा। इतनेपर भी भीमदेवकी राजधानी अन्हिलवाडपर कुतुबुद्दीनने ११९७ ई० मे आक्रमण और लूटमार कर ही डाली। भीमदेव द्वितीय उन गिने-चुने हिन्दू राजाओ-मे से एक था जो कुछ समय तक भारतमे मुसलमानोकी प्रगति रोकनेमे समर्थ हुए थे।

भीमसेन–एक हिन्दू इतिहासकार, जो औरगजेब (१६५६–१७०७ ई०) के शासनकालमे विद्यमान था। उसने फारसीमे 'नुस्खा ए दिलकुशा' नामक ग्रथ लिखा है। उसका जन्म दक्षिणमे बुरहानपुरमे हुआ, अतः भीमसेन बुरहानपुरी कहलाता था। उसके ग्रथसे देशकी आर्थिक स्थितिके बारेमे काफी जानकारी मिलती है।

भील–भारतकी एक आदिवासी जाति, जिसका उल्लेख वैदिक साहित्यमे निषादोके रूपमे किया गया है। ये लोग जो भाषा बोलते है, उसकी गणना आग्नेय भाषा परिवारमे की जाती है।

भुइयाँ–पूर्वी बगाल तथा आसामके छोटे-मोटे जमीदारोकी पदवी। उनकी सख्या बारह बतायी जाती है। यह जाति-बोधक शब्द नही है, वरन् जमीदारोके समूहका वाचक है। ये लोग इतने धनिक और शक्तिशाली हो गये थे कि अर्धस्वाधीन शासकोकी तरह कार्य करते थे और एक दूसरेसे स्वतत्र थे। पूर्वी बगालमे ढाका, मैमनसिंह, फरीदपुर, बरिसाल तथा कोमिल्ला जिलोके बड़े भागपर उनका अधिकार था। आसाममे उनकी जमीदारियाँ ब्रह्मपुत्र नदीके दोनो तटोपर पश्चिममे कामता राज्य और पूर्वमे चुटिया राज्यके बीचके क्षेत्र

मे विस्तृत थी। बगालमे सोलहवी शताब्दीमे अकबरने उनका दमन किया। आसाममे पहले तो राजा नरनारायण (१५४०–८४) ने उनको वशमे किया और बादमे उनकी जमीदारियाँ अहोम शासकोके राज्यमे विलीन कर दी गयी। 'भुइयाँ' शब्द आसाम और बगालमे अब सामान्य पारिवारिक पदवी मात्र रह गयी है और इसका प्रयोग जाति-धर्मके भेदभावके बिना होता है। (जे० एन० सरकार–हिस्ट्री आफ बगाल, खण्ड दो तथा गेट–हिस्ट्री आफ आसाम)

भुक्ति–गुप्त साम्राज्यकी एक प्रशासकीय इकाई। इसका प्रयोग सामान्यत प्रातका बोध करानेके लिए होता था। एक भुक्तिको अनेक विषयो अथवा मडलोमे बाँटा जाता था। भुक्तिके शासकको 'उपरिक' अथवा 'उपरिक महाराज' कहते थे।

भुवनेश्वर–उडीसाका एक प्राचीन नगर, जो अब इसकी राजधानी है। यहाँ प्रारम्भिक कलिंग शैलीके मदिर-वास्तुके कुछ उत्कृष्ट नमूने मिलते है, उदाहरणार्थ लिङ्गराज और राजरानीके मन्दिर, जिन्हे कडा अथवा केसरीवशके राजाओने बनवाया था। (आर० डी० बनर्जी–हिस्ट्री आफ उडीसा, जिल्द एक)

भूटान–पूर्वी हिमालयमे एक स्वाधीन राज्य, जो तिब्बत और भारतके बीच स्थित है। इसकी सीमा भारतके साथ लगभग दो सौ मील तक फैली हुई है। इसके पूर्वमे अबोर और मिशमी जनजातियोका निवास है और पश्चिममे सिक्किम अवस्थित है। यह पर्वतीय प्रदेश है जिसे सहजरूपमे तीन भागोमे बाँटा जा सकता है, दक्षिणी भाग जो भारतसे सटा हुआ है, पर्वतीय है और यहाँ भारी वर्षा होती है। मध्य भाग घाटियोका प्रदेश है और वर्षा मामूली होती है। इसमे कृषि सम्भव है। इसी क्षेत्रमे अधिकाश लोग रहते है। उत्तरी भाग पर्वतोसे आच्छादित है। इसके कुछ शिखर २४००० फुट तक ऊँचे है। इस क्षेत्रमे न तो मनुष्योका निवास है और न कृषि ही होती है। भूटानमे अनेक नदियाँ बहती है, जिनमे मानस, तोरसा और सकोशसे भारतीय भलीप्रकारसे परिचित है। लकडीके बहुमूल्य लट्ठे यहाँ बहुतायतसे तैयार होते है और वन्य-पशुओ जैसे हाथी, गैडा, बाघ, तेन्दुआ और अरनाभैंसाका यह घर है।

भूटान नाम भारतीय शब्द भोटान्तका अपभ्रश है, जिसका अर्थ है भोट देश अर्थात् तिब्बतका अन्त। यहाँके बहुसख्यक लोग जिन्हें भोटिया कहते है, तिब्बती मूलके है और वे बौद्धधर्मके उस रूपको मानते है जो बहुत कुछ तिब्बतके लामाओके मतसे मिलता-जुलता है। तिब्बतकी तरह भूटानमे भी पुरोहितोको 'लामा' कहते है। लामाओके सम्बन्धमे विश्वास किया जाता है कि उनके पास अलौकिक शक्ति होती है, अतः लोग उनका आदर करते है और उनसे भयभीत भी रहते है। भूटानमे सामन्ती व्यवस्था है। सारी सत्ता नौ सरदारो पेन्लेपोके हाथमे है जो पैंतालीस मकानोमे, जिन्हे फोग कहते है, रहते है और सशस्त्र अनुचर रखते है। राजा पूरे देशका प्रधान होता है और सिद्धान्तः उसका निर्वाचन परिषद् करती है, किन्तु व्यावहारिक रूपमे सरदारो (पेन्लेपो) मे जो सबसे ज्यादा शक्तिशाली होता है उसीके द्वारा वह मनोनीत किया जाता है। १९०७ ई० से भूटानका राज्यपद पश्चिमी क्षेत्रके पेन्लेप (सरदार) के परिवारमे पुश्तैनी हो गया है।

भूटानके प्रारम्भिक इतिहासके बारेमे बहुत कम जानकारी है। कहा जाता है, भारतमूलक कुछ राजाओने भूटानमे नवी शताब्दी तक शासन किया था। उसके बाद तिब्बतियोने उन्हे बाहर निकाल दिया। किसी मुसलमान शासकने भूटानपर कभी शासन नही किया। ब्रिटिश-भारतके साथ इसका सम्बन्ध १७७२ ई० मे उस समय कायम हुआ, जब एक भूटानी सेनाने कूच-बिहारपर आक्रमण किया और राजाको बन्दी बना कर ले गयी। तत्कालीन गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्सने एक सैन्यदल भेजा, जिसने आक्रमणकारियोको खदेड दिया और १७७४ ई० मे सधि हुई। वारेन हेस्टिंग्सने वाणिज्य सम्बन्ध विकसित करनेके लिए १७७४ ई० मे जार्ज बोग्ले तथा तत्पश्चात् सैम्युअल टर्नरको राजदूतके रूपमे भूटान भेजा, लेकिन दोनो ही असफल रहे। १८२६ ई० मे आसामपर ब्रिटिश भारतका कब्जा हो जानेपर ही घनिष्ठ सम्बन्ध कायम हो सका। कैप्टन राबर्ट पेम्बर्टनका दूतमडल भूटानको इस बातके लिए राजी करनेमे विफल हो गया कि वह दारग जिला स्थित दुआर क्षेत्र भारतको समर्पित कर दे। भूटानने इसपर गैरकानूनी ढगसे १८४१ ई०मे कब्जा कर लिया था। ब्रिटिश सरकारने भूटानको एक हजार रुपये वार्षिक सहायता उस समय तक देना स्वीकार किया था जब तक कि दुआर क्षेत्रमे शांति कायम रहती है। लेकिन भूटानियोके आक्रमण इतनेपर भी बन्द न हुए और १८६३ ई०मे भूटान सरकारने ब्रिटिश राजदूत सर ऐशले ईडेनके साथ दुर्व्यवहार किया, परिणामस्वरूप १८६५ ई०मे ब्रिटिश सेनाने भूटानपर आक्रमण कर दिया। पहले तो ब्रिटिश सेना

देवनागिरिकी लडाईमे पराजित हो गयी, किन्तु बादमे उसने भूटानियोको परास्त कर दिया। उन्हे बगाल और आसामका सम्पूर्ण दआर (तराई) क्षेत्र अग्रेजोको सौप कर सधि करनेके लिए बाध्य किया गया, इसके वदलेमे उनको वार्षिक आर्थिक सहायता देना स्वीकृत हुआ। उसके बादसे भूटान और भारतका सम्बन्ध घनिष्ठ होता गया। १९१० ई०मे यह समझौता हुआ कि वैदेशिक मामलोमे भूटान सरकार ब्रिटिश भारत सरकारकी सलाहके अनुसार चलेगी और भूटानके आन्तरिक प्रशासनमे ब्रिटिश भारत सरकार कोई हस्तक्षेप नही करेगी। वार्षिक भत्ता भी बढाकर एक लाख रुपया कर दिया गया।

इस सधिके बाद ही चीनी सरकारने दावा किया कि भूटान उसका करद राज्य है। लेकिन भारतकी ब्रिटिश सरकारने चीनको सूचित कर दिया कि भूटान स्वतत्र राज्य है और उसकी वैदेशिक नीति भारतीय ब्रिटिश सरकार द्वारा सचालित होती है, जो भूटानके मामलोमे किसी प्रकारके चीनी हस्तक्षेपको सहन नही करेगी।

स्वाधीन हो जानेके उपरान्त भारतने भूटानके साथ नयी सधि की, जिसके द्वारा उसकी वार्षिक आर्थिक सहायता बढाकर पाँच लाख रुपये कर दी गयी, देवनगिरिका क्षेत्र भूटानको सौप दिया गया। इसके वदलेमे भूटानने वचन दिया कि उसके वैदेशिक सम्बन्ध पूर्ववत् भारतके परामर्शसे ही सचालित होगे। (रोनाल्डशे—लैण्ड्स आफ दि थण्डरवोल्ट तथा सर चार्ल्स बालटिवेट, पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट)

भूति वर्मा—महाभूति वर्मा अथवा भूतवर्मा भी सम्बोधित किया जाता है। कामरूपके पुष्यवर्मा द्वारा प्रवर्तित राजवशका आरम्भिक राजा, जिसने शताब्दीके मध्यमे शासन किया। बादगगा चट्टान शिलालेखके अनुसार, जिसपर गुप्त युगकी तिथि अकित कही जाती है और जो ५५४ ई०के समकक्ष है, भूतिवर्माने अश्वमेध यज्ञ किया था। इससे प्रकट होता है कि उसने गुप्तोके अधिराज्यका परित्याग कर दिया था। उसने भारी सख्यामे ब्राह्मणोको कोशिकी नदीके निकट चन्द्रपुरी परगनेमे पट्टे लिखकर भूमि प्रदान की, जिनका उसके उत्तराधिकारी भास्करवर्माने नवीनीकरण किया। (एफ० आर० ए० एस० आठ, पृष्ठ १३८–१३९ तथा दस, पृष्ठ ६४–६७, भट्टाचार्य—कामरूपशासनावली, पृष्ठ २७)

भूमक—महाराष्ट्रमे क्षहरात कुलका पहला क्षत्रप, जिसकी राजधानी नासिक थी। उसके शासनका पता केवल सिक्कोसे चलता है, उसका वास्तविक समय निश्चित नही है। अनुमानसे वह ईसाकी प्रथम शताब्दीके आरम्भिक वर्षोका निर्धारित किया गया है।

भूमिकर—देखिये, 'मालगुजारी'।

भूमि व्यवस्था—भारतके अलग-अलग भागोमे यह अलग-अलग प्रकारकी है। भारतीय राजाओके शासनकालमे किसानोको किन शर्तोपर भूमि-खेती करनेके लिए दी जाती थी, इसका ठीकसे पता नही है। मुसलमानी शासनकालमे अकबरसे पूर्व भूमि-व्यवस्थाका कोई सुनिश्चित रूप नही था। अकबरने सीधे रैयत (किसान) से मालगुजारीकी वसूलीका बदोवस्त किया, इसलिए यह 'रैयतवारी व्यवस्था' कहलायी। रैयतको नकद अथवा उपजके रूपमे भूमिकर अदा करनेकी छूट थी, यद्यपि उसे नकद भुगतान करनेके लिए प्रोत्साहित किया जाता परतु अठारहवी शताब्दीमे, जब मुगल बादशाहोकी शक्ति उत्तरोत्तर क्षीण होने लगी, भूमिकरकी वसूलीका कार्य वशगत बन गया और किसानोसे भूमिकरकी वसूली, जो एक सरकारी कर्त्तव्य था, अधिकार माना जाने लगा और भूमिकरकी वसूली करनेवाला अपनेको भूमिका मालिक अथवा 'जमीदार' समझने लगा। इस प्रकार उसने वह अधिकार प्राप्त कर लिया, जो उसे पहले कभी नही प्राप्त था।

मुगलोके उत्तराधिकारीके रूपमे अग्रेजोने विशेषरूपसे बगाल, बिहार तथा उडीसामे कुछ दुर्भाग्यपूर्ण प्रयोगोके बाद जमीदारोको जमीनका मालिक स्वीकार कर लिया और स्थायी वन्दोवस्त कर दिया, जिसके अतर्गत जमीदारोको इस शर्तपर जमीनका मालिक मान लिया गया कि वे सरकारको प्रतिवर्ष एक निश्चित तिथिपर मालगुजारी अदा कर दिया करे। यह मालगुजारी रैयतसे मिलनेवाले अनुमानित लगानका ९० प्रतिशत होती थी। जमीदारोको यह छूट दे दी गयी कि वे रैयतको जितने समयके लिए चाहे उतने समयके लिए काश्त करनेको दे दे। बादमे कानून बनाकर रैयतसे मनमाने तरीकेसे लगान बढाते जाने तथा अनुचित रीतिसे वेदखली करनेके विरुद्ध उसको सुरक्षा प्रदान करनेकी कोशिश की गयी, परतु उसको अपनी काश्तकी जमीनपर कोई मालिकाना हक नही प्रदान किया गया। हाँ, यदि वह जमीदारको अतिरिक्त शुल्क अथवा धन देकर जमीन खरीद ले तो बात दूसरी थी।

बगाल, बिहार तथा उडीसामे सन् १७९३ ई० मे

स्थापित यह जमींदारी व्यवस्था भारतके स्वाधीनता प्राप्तिके बाद तक जारी रही। हालमे यह व्यवस्था समाप्त कर दी गयी है, परन्तु अभी जमीन जोतनेवालोको जमीनपर मालिकाना हक देनेकी दिशामे कानून बनाया जाना शेष है। (अब अधिकांश राज्योंमें इस प्रकारके कानून बन गये हैं।—स०)

दूसरी 'रैयतवारी व्यवस्था' उन्नीसवी शताब्दीके प्रारम्भमे मद्रास तथा बम्बई प्रांतोमे जारी की गयी। इसके अंतर्गत सरकार सीधे रैयत अथवा किसानसे बदोबस्त करती है, जो जमीनका मालिक बन जाता है। परंतु उसे यह मालिकाना हक थोडे समयके लिए प्रदान किया गया था। बादमे यह समय तीस वर्ष निर्धारित कर दिया गया, जिसके बाद नयी पैमाइश करके नयी शर्तोंपर नया बदोबस्त करनेकी व्यवथा थी। इस व्यवस्थाके अंतर्गत भूमिकी उपजकी आधी मात्रा सरकारी भाग नियत की गयी। इस प्रकार इस व्यवस्थाके अंतर्गत काश्तकारको केवल सीमित लाभ हुआ। उसे निर्धारित अवधिके लिए भूमिकी सुरक्षा प्राप्त हो गयी, परंतु इसके लिए उसे अत्यधिक ऊँची दरपर भूमिकर देनेके लिए बाध्य होना पडा।

तीसरी 'महालवारी व्यवस्था' उत्तर प्रदेशमे की गयी। इसके अंतर्गत महाल (कई गाँवो) के आधारपर बदोबस्त किया गया और महालके सभी गाँवोको सामूहिक रूपसे मालगुजारीका देनदार बना दिया गया। महालके गाँवोके मुखिया हर काश्तकारसे उसकी काश्तके आधारपर उसकी देनदारी निर्धारित करते थे। इसके लिए जमीनकी सावधानीसे पैमाइश की जाती थी। महालवारी प्रथाके साथ-साथ उत्तरप्रदेशमे 'ताल्लुकदारी प्रथा' भी प्रचलित थी। इस प्रथाके अंतर्गत ताल्लुकेदारको अपने ताल्लुकेका मालिक मान लिया गया और अपनी रैयतपर उसे पूरा अधिकार प्रदान किया गया। इस प्रथामे और बंगालकी जमीदारी प्रथा अथवा स्थायी बदोबस्तमे इतना ही अंतर था कि यह स्थायी नही थी।

पाँचवी 'मामलतदारी प्रथा' गुजरात तथा दक्खिनमे प्रचलित थी। इसके अंतर्गत मामलातदार प्रत्येक गाँवके देसाई अथवा पटेलसे तय कर लेते थे कि उनका गाँव कितनी मालगुजारीका देनदार है और इसके बाद तय की गयी रकमकी वसूलीका भार उसके ऊपर छोड देते थे। धीरे-धीरे सारे बम्बई प्रांतमे मामलतदारी व्यवस्थाके स्थानपर रैयतवारी व्यवस्था लागू कर दी गयी।

ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमे विभिन्न प्रकारकी भूमि-व्यवस्थाका एक ही तात्पर्य था और वह था सरकार और काश्तकारोके बीच मध्यवर्तियोको कायम रखना। इन मध्यवर्तियोको देशके भिन्न-भिन्न भागोमे भिन्न-भिन्न नामोसे पुकारा जाता था, ऐसे लोगो द्वारा एक प्रकारके सामंतवादी वर्गका निर्माण किया गया जिनके समर्थनपर सरकार टिकी हुई थी। स्वाधीनता प्राप्तिके बाद भारतीय गणराज्यने समाजवादी व्यवस्थाका निर्माण अपना आदर्श बनाया है, जिसके लिए सामंतवादके सभी अवशेषोका उन्मूलन आवश्यक है। किन्तु अभी तक समाजवादी आधारपर भूमिका, विशेषरीतिसे कृषि-योग्य भूमिका वितरण करनेकी दिशामे बहुत थोडा कार्य हुआ है, ताकि भूमिको वास्तविक रूपसे जोतनेवाला व्यक्ति ही उस भूमिका मालिक हो जाय। (अब इस दिशामें काफी प्रगति हुई है।—स०)

भृगु—एक ऋषि, जिन्हे मानव-धर्मशास्त्र अथवा मनुस्मृतिकी रचनाका श्रेय दिया जाता है। इनका स्थितिकाल २०० ई० पू० से २०० ई० के बीच किसी समयमे माना जाता है।

भृगुकच्छ—प्राक् मौर्यकालका एक महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह, बादके वर्षोमें भी इसका महत्त्व बना रहा। इसका आधुनिक नाम भडौच है।

भोसला—उस परिवारका नाम, जिसमे शिवाजी उत्पन्न हुए थे। इस परिवारकी एक शाखा बादमे नागपुरमे जाकर बस गयी और भोसलाराज परिवारके नामसे प्रसिद्ध हुई।

भोई राजवंश—ने १५४२–५९ ई० तक उडीसाका शासन किया। इस वंशका प्रवर्तक गोविन्द माना जाता है, जो उडीसाके पूर्ववर्ती शासक प्रतापरुद्र (१४९७–१५४० ई०) का मंत्री था। गोविन्द भोई अथवा लेखकवर्गका था और उसका घराना इसी कारण भोई राजवंश कहलाया। इसमे केवल तीन राजा हुए, यथा गोविन्द, उसका पुत्र तथा पौत्र और उनका शासन केवल अट्ठारह वर्ष तक चला।

भोग कुल—बौद्ध अनुश्रुतियोके अनुसार वज्जीसंघमे सम्मिलित था जिसकी राजधानी वैशाली (दे०) थी। (सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट, खण्ड ४५, पृ० ७१ का नोट)

भोगवर्मा—कन्नौजका एक मौखरि सामन्त। उत्तरकालीन गुप्त सम्राट आदित्यसेन (७७२–७३ ई०) की पुत्रीसे इसका विवाह हुआ था, फलस्वरूप यह अपने श्वसुरका सहायक बन गया। (राय चौधरी० पृष्ठ ६१०)

भोज—प्राचीन साहित्यमे इसका प्रयोग तीन अर्थोंमे हुआ

है, प्रथम शासकीय पदवीके रूपमे, जो दक्षिणके मूर्धाभिषिक्त राजाओके लिए प्रयुक्त होती थी, द्वितीय जनपदके रूपमे, जैसा कि अशोकके शिलालेख सख्या १३ मे प्रयुक्त हुआ है जो कदाचित् बरारमे था, और तीसरे, व्यक्तिवाचक सज्ञाके रूपमे, जैसा कि कन्नौज और मालवाके अनेक राजाओका नाम था ।

भोज प्रथम–कन्नौजका गुर्जर प्रतिहारवशज राजा, जिसने पचास वर्ष (८४०–९०० ई०) पर्यन्त शासन किया । उसका मूलनाम मिहिर था और भोज कुलनाम अथवा उपनाम । वह अत्यधिक प्रतापी शासक था और उसका राज्य उत्तरमे हिमालय, दक्षिणमे नर्मदा, पूर्वमे बगाल और पश्चिममे सतलज तक विस्तृत था, जिसे सही अर्थोमे साम्राज्य कहा जा सकता था । भोज प्रथम विशेषरूपसे विष्णुके वाराह अवतारका उपासक था, अत उसने अपने सिक्कोपर आदि-वाराहको उत्कीर्ण कराया था । वह वीर सेनानी था, जिसने अरबोको न केवल सिंधमे ही रोक रखा, वरन् कश्मीरके राजा शकरवर्मा, भडोचके राष्ट्रकूट राजा ध्रुव तथा बगालके पाल राजाओके साथ अनेक युद्ध किये ।

सम्राट भोज प्रथम बडा विद्यानुरागी था । अरब यात्री सुलेमानने, जो उसके राज्यमे आया था, अपने विवरणमे लिखा है कि सम्राट् भोज प्रथमके पास एक शक्तिशाली सेना है, जिसमे सर्वश्रेष्ठ अश्वारोही और ऊँटोकी बडी फौज शामिल है। वह अत्यत वैभव-सपन्न राजा था और भारतमे कोई प्रदेश डाकुओसे इतना सुरक्षित नही था जितना उसका राज्य । इससे प्रकट होता है कि भोज प्रथम अति कुशल प्रशासक था । (आर० सी० मजूमदार –एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, त्रिपाठी–हिस्ट्री आफ कन्नौज)

भोज द्वितीय–भोज प्रथमका पौत्र, जिसने प्रतिहार राज्यपर दो तीन वर्ष (९०८–१० ई०) की अल्प अवधि पर्यन्त ही शासन किया ।

भोज परमार–मालवाके परमार अथवा पंवार वशका यशस्वी राजा, जिसने १०१८–६० ई० तक शासन किया था । उसकी राजधानी धार थी । उसने 'नवसाहसाक' अर्थात् 'नव विक्रमादित्य' पदवी धारण की । जनश्रुति है कि उसने पुरुष्को (तुर्कों) को भी पराजित किया । वह विद्याका पोषक, कवियोका सरक्षक और स्वय भी बहुमुखी विद्वान् था । उसने सस्कृतमे छन्द, अलकार, योगशास्त्र, गणित ज्योतिष तथा वास्तुकला आदि विषयोपर गंभीर पुस्तके लिखी थी । उसने भोजपुरमे विशाल सरोवरका निर्माण कराया, जिसका क्षेत्रफल २५० वर्गमीलसे भी अधिक विस्तृत था । यह सरोवर पन्द्रहवी शताब्दी तक विद्यमान था, जब उसके तटबन्धोको कुछ स्थानीय शासकोने काट दिया । अपने शासनकालके अतिम वर्षोंमे उसे पराजयका अपयश भोगना पडा । गुजरातके चालुक्यराज तथा चेदि-नरेशकी सयुक्त सेनाओने लगभग १०६० ई०मे उसे पराजित कर दिया । इसके बाद ही उसकी मृत्यु हो गयी ।

भोटविष्टि–एक तरहकी बेगार, जो गुप्तोके शासनकालमे सीमावर्ती भोट देशमे ली जाती थी ।

भोटिया–गूजरोकी भांति एक घुमतू जाति, जिसमे सातवी और आठवी शताब्दी ईसवीमे बहुतसे विदेशी आक्रमणकारी हिन्दू-धर्म ग्रहण करनेके बाद समाविष्ट हो गये ।

भोपाल–मध्य प्रदेशमे स्थित प्रमुख नगर । इसे बादशाह अकबरने रानी दुर्गावतीके गोडवाना राज्यसे अलग करके जागीर बना दिया । कुछ काल तक यह एक नवाबके अधीन रहा, पश्चात् १७६१ ई०के बाद वह अर्ध-स्वतत्र हो गया । लेकिन १८१७ ई०मे इसका शासक अंग्रेजोके साथ सहायक सधि करनेके लिए बाध्य हुआ । १९४८ ई०मे भोपाल रियासत भारतीय गणराज्यमे मिला ली गयी एव सप्रति यह मध्यप्रदेशकी राजधानी है ।

म

मगलूरकी संधि–ईस्ट इडिया कम्पनी और मैसूरके टीपू सुल्तानके बीच १७८४ ई०मे हुई । इस सधिके फलस्वरूप दूसरे मैसूर-युद्ध (दे०)का अन्त हो गया, जो १७८१ ई० मे शुरू हुआ था । इस सधिके द्वारा दोनो पक्षोने एक दूसरेके छीने गये इलाके वापस लौटा दिये ।

मगोल–छोटी आंख, पीली चमडीवाली एक जाति, जिसके दाढी-मूंछ नही होती । मगोलोके कई समूह विविध समयोमे भारतमे आये और उनमेसे कुछ यही बस गये । चगेज खाँ (दे०), जिसके भारत पर हमला करनेका खतरा १२११ ई०मे उत्पन्न हो गया था, मगोल था । इसी प्रकार तैमूर भी, जिसने भारत पर १३९८ ई०मे हमला किया, मगोल था । परन्तु चगेज खाँ और उसके अनुयायी मुसलमान नही थे, तैमूर और उसके अनुयायी मुसलमान हो गये थे । मगोल लोग ही मुसलमान बननेके बाद 'मुगल' कहलाने लगे । १२११ ई०मे चगेज खाँ तो

सिंध नदीसे वापस लौट गया, किंतु उसके वाद मगोलोने और कई आक्रमण किये। दिल्लीके वलवन (दे०) और अलाउद्दीन खिलजी (दे०) जैसे शक्तिशाली सुल्तानोको भी मगोलोका हमला रोकनेमे एडी-चोटीका पसीना एक कर देना पडा। १३९८ ई०मे तैमूरके हमलेने दिल्लीकी सल्तनतकी नीवे हिला दी और मुगल वशकी स्थापनाका मार्ग प्रशस्त कर दिया, जिसने अठारहवी शताब्दीमे व्रिटिश शासनकी स्थापना होने तक इस देशमे राज्य किया।

मण्डी, पीटर–यूरोपीय यात्री जो जहाँगीरके शासनकालमें भारत आया। उसने भारतका वडे ही रोचक शब्दोमें आँखो देखा विवरण प्रस्तुत किया है, जो तत्कालीन भारतकी समाजिक और आर्थिक दशापर विशेष प्रकाश डालता है।

मदसोर–मालवाका एक प्राचीन नगर, जो प्रसिद्ध पुरानी राजधानी उज्जयिनीसे अधिक दूर नही है। सभवत महाकवि कालिदास (दे०)का निवास इसी नगरमे था। निश्चय ही राजा यशोधर्मा (लगभग ५३ ई०)की राजधानी यही थी। यशोधर्माने हूण राजा मिहिरगुल (दे०) को परास्त किया और आसाम तकके प्रदेशोको जीता।

मसूर अली खाँ (१८२९–८४ ई०)–वगालका अतिम नवाव नाजिम। इससे पहले मुर्शिदावादके नवावोको १९ तोपोकी सलामीका हक मिला हुआ था। उन्हे दीवानी अदालतोमे हाजिर नही होना पडता था। ये समस्त अधिकार उससे छीन लिये गये, उसके वेतन और भत्ते मे भी कमी कर दी गयी। मसूर अली खाँ स्वय इग्लैंड गया और वहाँ हाउस आफ कामन्समे अपील की, परतु वह नामजूर हो गयी। फलस्वरूप १८८० ई०मे उसने अपने पदसे त्यागपत्र दे दिया।

मंसूर, ख्वाजा शाह–वादशाह अकवरका पहला दीवान और विश्वासपात्र, किन्तु उसने अकवरके भाई मिर्जा हकीमसे मिलकर उसके खिलाफ साजिश की और १५८१ ई०मे उसे अकवरके हुक्मसे फाँसी दे दी गयी।

मअवर–मुसलमान इतिहासकारो द्वारा दिया गया कारोमडल तटका नाम। इसे अलाउद्दीन खिलजी (दे०) ने जीता, परन्तु १३३४ ई०मे यह अहसानशाहके अधीन स्वतत्र राज्य वन गया।

मकाओ–चीनके तटके समीप एक पुर्तगाली बस्ती, जिसे १८०९ ई०मे ईस्ट इडिया कम्पनीने छीन लिया। (अव भी यह द्वीप पुर्तगाल सरकारके अधीन है।–स०)

मक्का–पैगम्वर मुहम्मद साहवका जन्म-स्थान। मुसलमानोके लिए अरवका यह पवित्र तीर्थस्थान है और प्रतिवर्ष भारतसे हजारो मुसलमान वहाँ जाते है।

मगध–दक्षिण विहारके पटना तथा गया जिलोका एक जनपद। यह अत्यत प्राचीन राज्य था और इसका उल्लेख वेदोमे भी मिलता है। ऐतिहासिक कालमे इसपर जिस राजवशका शासन था, उसीमे विम्विसार हुआ जो जैन धर्मके प्रवर्तक वर्धमान महावीर तथा वौद्ध धर्मके प्रवर्तक गौतम बुद्धका समसामयिक था। विम्विसार दोनोका उपासक था। उसने अग अथवा पूर्व विहार (भागलपुर जिला) पर अधिकार करके तथा कोशल और वैशालीके राजघरानोसे विवाह सम्वन्ध करके मगध राज्यका विस्तार किया। विम्विसारके पुत्र तथा उत्तराधिकारी अजातशत्रुने वैशाली (तिरहुत)को अपने राज्यमे सम्मिलित कर लिया, कोशलको पराजित किया तथा गगा और सोन नदीके सगमपर स्थित पाटलिग्राममे दुर्ग वनवाया। विम्विसारके राजवशके वादके राजाओने इसी दुर्गके चारो ओर पाटलिपुत्र अथवा कुसुमपुर नगर वसाया। एक और वादका राजा राजधानी गिरिव्रजसे उठा कर पाटलिपुत्र ले आया। इस प्रकार मगध राज्यके साथ पाटलिपुत्रका नाम जुड गया।

राजा महापद्मनन्दकी राजधानी भी पाटलिपुत्र थी। उसने विम्विसारके राजवशका उच्छेदन किया और मगध राज्यका विस्तार पूर्वमे कलिग (उडीसा)से लेकर पश्चिममे पजावमे व्यास नदी तक किया। 'प्रेसिआई'के राजा (यूनानी इतिहासकारोने मगधके राजाका उल्लेख इसी नामसे किया है)की सेनाओसे मुठभेड होनेके भयसे ही सिकन्दरकी सेनाओने व्यास नदीसे आगे वढनेसे इनकार कर दिया और सिकन्दरको वापस लौटना पडा। मौर्य राजा चन्द्रगुप्त (दे०)ने नन्द वशका उच्छेद कर दिया और चौथी शताब्दी ई० पू०के उत्तरार्द्धमे मगध साम्राज्यको देशकी सवसे मुख्य राज्यशक्ति वना दिया। मगध साम्राज्यका विस्तार पश्चिममे हिन्दूकुशसे लेकर पूर्वमे कलिग तक हो गया। वह सभवत दक्षिणमे भी विस्तृत था। चन्द्रगुप्तके पौत्र अशोक (दे०) ने कलिग विजय करके उसे अपने साम्राज्यमे मिला लिया। इसके वाद ही अशोक वौद्ध धर्मका अनुयायी हो गया और अपने विशाल साम्राज्यके समस्त साधनोको सभी मनुष्योके कल्याण तथा वौद्ध धर्मके प्रचारके लिए प्रयुक्त करने लगा। इस प्रकार मगधने एक नये राज्यादर्शकी प्रतिष्ठापना की और भारतीय इतिहासको नयी एकता प्रदान की।

मगधकी राजधानी पाटलिपुत्र इतनी भव्य नग

कि उसकी प्रशंसा न केवल चन्द्रगुप्तकी राजसभाके यवन (यूनानी) राजदूत मेगास्थेनीजने की है, वरन् चीनी यात्री फाहियान (दे०)ने भी की है, जोकि पाचवीं शताब्दी ई० मे भारत आया था। इस बीच शुंग तथा कण्व वंशके अधीन मगधकी राज्यशक्ति क्षीण हो गयी, परंतु चौथी शताब्दी ई०मे गुप्त वंश (दे०)की स्थापनाके बाद वह फिर उत्कर्षको प्राप्त हो गया और मगध साम्राज्य सारे उत्तरी भारतमे विस्तृत हो गया। सुदूर दक्षिणमें कांची तकके राजा उसके प्रभुत्वको स्वीकार करते थे। छठी शताब्दीके अंतमे मगध फिर अपकर्षको प्राप्त हो गया। नवीं शताब्दीमें राजा धर्मपाल (दे०)के राज्यकालमे फिर थोड़े समयके लिए उसका उत्कर्ष हुआ। बारहवीं शताब्दीके अंतमे मगधको मुसलमानोंने जीत लिया। वह उनकी सल्तनतका एक सूबा बन गया और विहारोंकी अधिकताके कारण समूचे सूबेको 'विहार' कहा जाने लगा।

मणिपुर–भारतके उत्तर-पूर्वी भागमे एक छोटा-सा राज्य। यह आसामके दक्षिणमे स्थित है। इसकी राजधानी इम्फाल, इसका क्षेत्रफल ८,६२० वर्ग मील तथा जनसंख्या लगभग ६ लाख है। परंपरागत अनुश्रुतियोंके आधारपर इसका सम्बन्ध महाभारतमे वर्णित राज्यसे और इसके राजवंशका सम्बन्ध पंच पाण्डवोंमेंसे तीसरे भाई अर्जुनसे जोड़ा जाता है। परंतु महाभारतमें वर्णित मणिपुर कलिंगके निकट अवस्थित था और उसकी पहचान आधुनिक मणिपुर राज्यसे करना उचित नहीं है। इसका इतिहास भी १७१४ ई०से पूर्व नहीं पाया जाता। उस समय इसपर गरीब निवाज नामक एक राजा राज्य करता था। वह सुयोग्य हिन्दू शासक था। उसने सुचारु रीतिसे शासन किया, परंतु उसके उत्तराधिकारियोंको बर्मियोंसे युद्ध करना पड़ा जो बार-बार राज्यपर हमले करते रहते थे। अंतमे १८२५ ई०में बर्मियोंने इसपर अधिकार कर लिया। परंतु इस क्षेत्रमे बर्मियोंका राज्य-विस्तार होनेके फलस्वरूप आंग्ल-बर्मी युद्ध (दे०) छिड़ गया जो यन्दबूकी संधि (दे०)के द्वारा समाप्त हुआ। इसके फलस्वरूप मणिपुर राज्य उसके राजा गम्भीर सिंहको वापस मिल गया।

ब्रिटिश भारतीय सरकार अब मणिपुरके साथ अर्द्ध-स्वतंत्र रक्षित राज्य जैसा व्यवहार करने लगी, जिसका शासन उसके राजाके हाथमे था। परंतु १८९० ई०मे शासनारूढ़ राजाको उसके भाई टिकेन्द्रजीतके कहनेसे जो राज्यकी सेनाका प्रधान सेनापति भी था, गद्दीसे उतार दिया गया। एक नये राजाको गद्दीपर बैठाया गया। ब्रिटिश सरकारने नये राजाको मान्यता प्रदान कर दी, किंतु टिकेन्द्रजीतको राज्यसे निष्कासित कर देनेका फैसला भी किया। लेकिन आसामका चीफ कमिश्नर मि० क्विन्टन जब निष्कासन आज्ञाको क्रियान्वित करने मणिपुर गया, उसपर विश्वासघात पूर्ण हमला किया गया और मार डाला गया। फलतः एक भारतीय-ब्रिटिश सेना भेजी गयी, जिसने सरलतापूर्वक राज्यपर अधिकार कर लिया, टिकेन्द्रजीतको बंदी बना लिया और उसे और उसके द्वारा गद्दीपर बैठाये गये गुड्डा राजाको फाँसी दे दी गयी तथा एक नये राजाको गद्दीपर बैठाया गया। नया राजा नाबालिग था, इसलिए राज्यका प्रशासन मध्यकालके लिए पोलिटिकल एजेंटने सँभाल लिया। १९४८–४९ ई०मे भारतीय गणराज्यमे विलयन होने तक यह भारतकी एक अधीनस्थ देशी रियासत थी।

मणिमेखलै–तमिलका एक महाकाव्य। इसकी रचना सत्तानारनेकी जो मदुरामे अन्नका व्यापारी था। यह एक बौद्ध रचना है, जिसमे धार्मिक दृष्टिसे मणिमेखलैकी जीवनकथा वर्णित है। इसका रचनाकाल निश्चित नहीं है, परन्तु संभवतः यह पाँचवीं शताब्दी ई०की रचना है।

मत्स्य–एक प्राचीन राज्य, जो आधुनिक राजपूतानाके पूर्वी भागमे स्थित था। उसकी राजधानी विराटनगर अथवा बैराट आधुनिक जयपुर राज्यमे स्थित थी। इसका उल्लेख वेदोंमे मिलता है और महाभारतमे वर्णित कौरवों और पांडवोंके युद्धकी कथामे इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऐतिहासिक कालमे यह राज्य मगध साम्राज्यका एक भाग था। इसकी राजधानी बैराटके निकट अशोक (दे०)का एक महत्त्वपूर्ण शिलालेख प्राप्त हुआ है।

मत्स्यपुराण–हिन्दुओंके प्राचीन अट्ठारह पुराणों (दे०)मे से एक। इसका मूल भाग काफी पुराना है और चौथी शताब्दी ई०मे वर्तमान था, उसका वर्तमान रूप बादका है। इसमे प्राचीन भारतीय राजाओंकी वंशावलियाँ दी गयी है। आधुनिक शोधोंसे प्रमाणित हुआ है कि ये वंशावलियाँ अधिकांशमें प्रामाणिक है।

मथुरा–उत्तर प्रदेशमे यमुनाके तटपर स्थित एक प्राचीन नगर। धर्मनिष्ठ हिन्दू लोग इसे अत्यन्त पवित्र मानते है, क्योंकि विष्णुके अवतार कृष्णकी उपासनासे इसका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। विश्वास किया जाता है कि कृष्णावतार यहीं हुआ था। ईसवी सन्‌की आरम्भिक शताब्दियोंमे यह कला, वास्तुकला तथा मूर्तिकलाका महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया था। यह जैनों तथा बौद्धोंका भी केन्द्र था। चीनी यात्री फाहियान (दे०) ने, जो

पाँचवी शताब्दी ई० मे भारत आया था, मथुरा तथा उसके आस पास बीस बौद्ध विहार देखे थे। यह नगर अनेकानेक भव्य भवनोंसे शोभायमान और अत्यन्त सम्पन्न था।

मथुराकी सम्पन्नताकी कथाएँ सुनकर सुल्तान महमूद-के मुँहमें पानी भर आया। उसने १०२८ ई० मे इस नगरको लूटा, यहाँके मन्दिरोको नष्ट कर दिया और बहुत-सी दौलत उठा ले गया। परन्तु हिन्दुओने धर्म-भावनासे प्रेरित होकर इस नगरका पुनर्निर्माण कर डाला। बुंदेला राजा वीर सिंह (दे०)ने जहाँगीरके राज्यकालमे यहाँ एक बहुत ही भव्य मन्दिर बनवाया। यह इतना ऊँचा था कि मुगलो की राजधानीसे दिखाई पडता था और १६७० ई० मे बादशाह औरंगजेबके हुक्मसे इसे नष्ट कर दिया गया। अठारहवी शताब्दीमे जाट सरदार सूरजमलने मथुराको अपनी राजधानी बनाया। १७५७ ई०मे अहमद शाह अब्दालीने इस नगरपर चढाई की। परन्तु मथुरामे तैनात अब्दालीकी सेनामे हैजा फल जानेसे उसके सैनिक इतने भयभीत हो गये कि १७६१ ई० मे पानीपतकी तीसरी लडाईके बाद जब अब्दालीने अपने सैनिकोको इस नगरको लूटनेका आदेश दिया, उन्होने इनकार कर दिया और अब्दाली इस नगरकी दौलतको लूटे बिना ही वापस लौट जानेके लिए विवश हो गया। तीसरे मराठा-युद्धके बाद इस नगरको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमे मिला लिया गया।

मदनमोहन मालवीय–देखिये, मालवीय, मदनमोहन।

मदरसा, कलकत्ता–वारेन हेस्टिंग्स (दे०)ने १७८१ ई० मे अरबी और फारसीकी शिक्षा देनेके लिए इसकी स्थापना की। सर डेनिसन रास जैसे कितने ही प्रमुख प्राच्यविद्या-विद् कलकत्ता मदरसामे शिक्षक रहे है।

मदीना–अरब देशका दूसरा प्रधान नगर। ६२२ ई० मे मुहम्मद साहबने मक्कासे मदीनाकी हिजरत की और मुसलमानी हिजरी सवत् उसी वर्षसे आरम्भ हुआ।

मदुरा–दक्षिण भारतका एक बहुत प्राचीन नगर, जो ईसवी सन्की प्रथम शताब्दीमे पाण्डव राज्यकी राजधानी था। कौटिल्यके अर्थशास्त्रमे मदुराके सुन्दर सूती कपडो तथा मोतियोका उल्लेख है। इस नगरकी सम्पन्नताका प्रमाण १३११ ई०मे मिलता है, जब सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (दे०) की मुसलमान सेनाने इसपर दखल किया और इसे लूटा। उसका विजयी सेनापति यहाँसे ५१२ हाथी, पाँच हजार घोडे तथा पाँच सौ मन हीरे, मोती, पन्ना, माणिक आदि रत्न लूट ले गया। बादमे यह विजयनगर साम्राज्यका भाग बन गया। उसके पतनपर यह नायक (दे०) राजवशकी राजधानी बना। इस नगरमे अनेक भव्य देव मन्दिर है जिनमें सुन्दरेश्वर तथा मीनाक्षीके मन्दिर सबसे प्रमुख है। मदुरामे सूती कपडे अब भी विख्यात है।

मद्रास–इस नगरकी स्थापना अग्रेजोने की। १६४० ई०मे ईस्ट इडिया कम्पनीके फ्रासिस डे (दे०) ने हिन्दू राजासे पट्टेपर यहाँकी जमीन प्राप्त की। राजाने उसे इस जमीन-पर किला बनानेकी भी अनुमति दे दी। बादमे राजा चन्द्रगिरि तथा गोलकुण्डाके सुल्तानने भी उसके दानकी पुष्टि कर दी। उस स्थानपर किलेका निर्माण कर लिया गया और उसे फोर्ट सेण्ट जार्ज कहने लगे। १६४२ ई० मे कारोमण्डल तटपर ईस्ट इडिया कम्पनीकी मुख्य बस्ती मसुलीपट्टम्के बजाय मद्रास हो गयी। १६५३ ई०मे इसे स्वतन्त्र एजेसी और बादमे प्रेसीडेसीका दर्जा मिल गया। हैदराबादके निजाम तथा कर्नाटकके नवाब, दोनोसे इसके अच्छे सम्बन्ध रहे और एक व्यापारिक केन्द्रके रूपमे इसकी उन्नति हुई। १६८८ ई० मे मद्रासमे म्युनिसिपल प्रशासनकी स्थापना की गयी। १७२६ ई०मे न्याय कार्य-के लिए एक मेयरकी अदालत स्थापित की गयी।

पहले अग्रेज-फ्रासीसी युद्धके समय १७४६ ई० मे फ्रासीसियोने इस नगरपर कब्जा कर लिया, परन्तु एक्स-ला-शैमेलेकी सन्धिके अनुसार यह १७४८ ई० मे ईस्ट इडिया कम्पनीको लौटा दिया गया। नवाब सिराजुद्दौला (दे०) के कलकत्तापर अधिकार कर लेनेपर १७५६ ई०मे क्लाइव और वाटसनके नेतृत्वमे कम्पनीकी कुछ फौजे मद्राससे भेजी गयी और उन्होने आसानीसे कलकत्तापर फिरसे कब्जा कर लिया। १७७३ ई०के रेग्युलेटिंग ऐक्टमे कम्पनीके मद्रास क्षेत्रको बगाल सरकारके नियन्त्रणमे कर दिया गया। यह नियन्त्रण बहुत ढीला-ढाला था। पिट-के इडिया ऐक्ट (दे०)मे मद्रासको पूरी तौरसे बगालके फोर्ट विलियमके गवर्नर-जनरलके अधीन कर दिया गया। दक्खिनमे ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्रका विस्तार होनेपर मद्रास प्रेसीडेसीके क्षेत्रका भी विस्तार हुआ और अन्तमे उडीसा-की सीमासे लेकर केप कमोरिन तक भारतका सारा पूर्वी तट इसके अन्तर्गत आ गया।

१८५७ ई०मे मद्रासमे एक विश्वविद्यालयकी स्थापना की गयी। स्वामी विवेकानन्दकी महत्ता सबसे पहले मद्रासमे स्वीकार की गयी। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके इतिहासमें मद्रासका महत्त्वपूर्ण स्थान है। काग्रेसका तीसरा अधिवेशन १८८७ ई०मे मद्रासमे हुआ। बादके

वर्षोंमे कांग्रेसके कई अधिवेशन यहाँ हुए। भारतको पहला भारतीय गवर्नर-जनरल चक्रवर्ती राजगोपालाचारी मद्रासने प्रदान किया। हालमे मद्रास प्रेसीडेंसीको भाषा-वार आधारपर आंध्र और मद्रासके दो राज्योमे विभा-जित कर दिया गया है। इस तरह मद्रास प्रेसीडेंसीसे उसके तेलुगु-भाषी उत्तरी क्षेत्रको निकाल दिया गया है और अब उसमे उसका तमिल-भाषी दक्षिणी क्षेत्र है। (मद्रास राज्यको अब तमिलनाडु कहते हैं।—स०)

मध्यप्रदेश—सम्प्रति उस प्रदेशका नाम जो ब्रिटिश शासन कालमे मध्य प्रांत तथा बरार कहलाता था। हिन्दू राज्य कालमे वह क्षेत्र जेजाकमुक्ति अथवा जुझौती (दे०) राज्यके अन्तर्गत था। खजुराहो, महोबा तथा कालजरके प्राचीन नगर इसी प्रदेशमे है। इन नगरोमे वास्तुकलाकी जो कृतियाँ मिलती हैं, उनसे चन्देल राजाओ (दे०)के उत्कर्षका प्रमाण मिलता है।

मध्य भारत—उत्तरमे चम्बल, दक्षिणमे नर्मदा, पश्चिममे गुजरात तथा पूर्वमे बुन्देलखण्डके बीचका क्षेत्र है। यहाँ अतीतकालमे अनेक प्रसिद्ध हिन्दू राज्य विकसित हुए। इसकी उज्जयिनी, धारा आदि नगरिया प्रसिद्ध थी। पाँचवी शताब्दी ई०मे जब चीनी यात्री फाहियान (४०१—१० ई०) आया था यहाँ खूब समृद्धि थी। इसका बादका इतिहास गुर्जर-प्रतिहारो (दे०) के इतिहाससे जुडा मिलता है।

मध्यमिका—राजस्थानमे चित्तौडके निकट एक प्राचीन नगरी। इसे अब 'नगरी' कहते है। एक 'दुरात्मा वीर यवन'ने इस नगरीको घेर लिया था, जो सम्भवतः यवन राजा मिनाण्डर (दे०) था। तीसरी शताब्दी ई० पू०मे यह महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता था। इसके खडहरोमे मौर्यकालीन भवनके कुछ चिह्न तथा शुङ्गकालके दो शिलालेख प्राप्त हुए हैं। इनमे अश्वमेध तथा वाजपेय यज्ञोका उल्लेख है।

मनरो, सर टामस (१७६१—१८२७ ई०)—ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामे नियुक्त एक पदाधिकारी, जो जिला-धीशके पदसे क्रमश मद्रासका गवर्नर बना और १८२०से १८२७ ई० तक बडी ही योग्यतासे उक्त प्रेसीडेन्सीका शासन-भार सँभाले रहा। उसने मद्रास प्रदेशमे भूमिकर सम्बन्धी, रैयतवारी प्रथा प्रचलित की। उसने सहायक प्रथासे सम्बन्धित जो रिपोर्ट प्रस्तुत की, वह उसकी राज-नीतिक सूक्ष्म दृष्टिकी परिचायक है।

मनरो, सर हेक्टर (१७२६—१८०५ई०)—ईस्ट इंडिया कपनी-की सेवामे भारतमे नियुक्त सेनापति, जिसने १७६४ ई० मे बक्सरका प्रसिद्ध युद्ध जीत कर विशेष यश प्राप्त किया। किन्तु १७८० ई०मे हैदर अलीके सम्मुख वह लज्जात्मक ढगसे अपना तोपखाना कांजीवरम्के तालाबमे फेक कर मद्रास भाग आया। १७८२ ई०मे उसने अवकाश ग्रहण किया।

मनसबदार—मुगल शासनकालमे बादशाह अकबरके समयसे उसे कहते थे जिसे कोई मनसब अथवा ओहदा मिलता था। मनसबदार राज्यका वेतनभोगी पदाधिकारी होता था। उसे राज्यकी फौजी सेवाके लिए निश्चित सख्यामे फौज देनी पडती थी। मनसबदारी प्रथा मुगलकालकी सैनिक नौकरशाही प्रथाकी रीढ थी। अकबरने इसे व्यवस्थित रूप प्रदान दिया। सभी मुल्की तथा फौजी पदाधिकारियोको तैंतीस मनसबोमे बाँट दिया गया। सबसे छोटा मनसब १० सवारोका और सबसे बडा १० हजार सवारोका होता था। उन्हे अपने मनसबके अनु-सार तनख्वाह दी जाती थी। ७,०००, ८००० तथा १०,००० के सबसे ऊँचे मनसब शाहजादोके लिए सुर-क्षित थे। बादशाह स्वय मनसबदारकी नियुक्ति करता था, उसे तरक्की देता था, उसे निलम्बित या पदच्युत करता था। प्रत्येक मनसबदारका वेतन नियत था और उसे उस वेतनसे एक निश्चित सख्यामे घुडसवार, हाथी तथा असबाब ढोनेवाले जानवर रखने पडते थे।

परतु मनसबदार इन शर्तोका शायद ही कभी पालन करते थे। मनसबदारोकी बेईमानी रोकनेके लिए अकबर-ने उनके घोडोको दागनेकी प्रथा आरम्भ की और अपने राज्यकालके ग्यारहवे वर्षमे जात और सवारका दोहरा वर्गीकरण शुरू किया। जात मनसबदारके ओहदेका सूचक होता था और सवारसे सकेत मिलता था कि उसे कितनी सेना रखनी होगी। मनसबदार वशगत नही बनाये जाते थे। मनसबदार नियुक्त होनेके लिए किसी विशेष योग्यताकी आवश्यकता नही पडती थी। मन-सबदारोको काफी ऊँचा वेतन दिया जाता था। अनुमान लगाया जाता है कि ५०० के मनसबदारको अपने अधीन सेना रखनेका सब खर्च काट देनेके बाद १००० रु० मासिक निजी वेतन बच रहता था। १०,०००के मनस-बदारका निजी वेतन १८००० रु० प्रतिमास बैठता था। अकबर मनसबदारोको नकद वेतन देनेके पक्षमे था, परतु बादमे मनसबदारोके ओहदेके अनुरूप आयवाली जागीरें देनेकी प्रथा चल पडी। इसके फलस्वरूप मुगलशासन व्यवस्था निर्बल पड गयी।

मनु—एक ऋषि और हिन्दू धर्मशास्त्रके रचयिता। उनकी

मनुसंहितामे हिन्दुओके सभी धार्मिक तथा लौकिक कर्तव्योका निरूपण है।

मनुसंहिता–हिन्दू धर्मशास्त्रका सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ। इसमे सभी धार्मिक, सामाजिक, नैतिक कर्तव्योका विवेचन है। अंगरेजीमे इसका अनुवाद सर विलियम जोसने 'लाज आफ मनु' नामसे किया है। इसका रचनाकाल ईसवी प्रथम शताब्दीके आसपास माना जाता है। सभवत यह काल इससे पूर्व था, बादमे नही।

मयूरशर्मा–मैसूरमे राज्य करनेवाले कादम्बवश (दे०) का प्रवर्तक। वह जातिसे ब्राह्मण किंतु कर्मसे क्षत्रिय था। उसने कांचीके पल्लववशके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और सम्भवत चौथी शताब्दी ई० मे कादम्बवशका आरम्भ किया। उसने दक्षिण भारतमे विस्तृत क्षेत्रोको जीता।

मराठा युद्ध–भारतमे अंग्रेजोके साथ १७७५–८२ ई०, १८०३–०५ ई० तथा १८१७–१९ ई० मे हुए। पहला मराठा युद्ध (१७७५-८२ ई०) पेशवा नारायण राव (दे०) के चाचा राघोवाके फलस्वरूप हुआ। राघोवा नारायणराव की मृत्युके बाद उत्पन्न उसके पुत्र एव उत्तराधिकारी माधवराव नारायणको पेशवाकी गद्दीसे हटाना चाहता था। इसके लिए उसने ईस्टइडिया कम्पनीको साष्टी तथा बसई देनेका वादा करके अंग्रेजोका समर्थन प्राप्त करनेकी कोशिश की। कम्पनीने भी साम्राज्य-लिप्साके वशीभूत हो मराठोके उत्तराधिकार युद्धसे लाभ उठानेकी चेष्टा की। पहला मराठा-युद्ध लम्बा चला और अंग्रेजोके लिए अगौरवपूर्ण सिद्ध हुआ।

कर्नल कैमकके नेतृत्वमे ब्रिटिश सेनाने बडगाँव (१७७९ ई०) मे आत्मसमर्पण कर दिया और अंग्रेजोने एक समझौता करके राघोवाको सौप देनेका वचन दे दिया। परन्तु वारेन हेस्टिंग्स (दे०) ने, जो उस समय गवर्नर-जनरल था, इस समझौतेको नामजूर कर दिया और युद्ध पुन शुरू हो गया। यद्यपि लेस्ली तथा गोडर्डके नेतृत्वमे एक हिन्दुस्तानी एव अंग्रेज सेना १७७९ ई० मे बगालसे मध्य भारत होकर सूरत तक पहुँचनेमे सफल हो गयी तथा १७८० ई० मे मेजर पौफमने ग्वालियरपर अधिकार कर लिया, फिर भी अंग्रेज कोई निर्णयात्मक विजय नही प्राप्त कर सके और न मराठा सेना अंग्रेजोको निर्णयात्मक रूपसे हरा सकी। ऐसी परिस्थितिमे अंग्रेजोने महादजी शिन्देको मध्यस्थ बनाकर साल्वाईकी सधि (१७८२ ई०) (दे०) के द्वारा युद्ध समाप्त कर दिया। इसके द्वारा अंग्रेजोने अपने कठपुतली राघोवाकी पेन्शन नियत करा दी और दोनो पक्षोने एक दूसरेके जीते हुए इलाके लौटा दिये। मराठोने साष्टी कम्पनीको सौंप दिया।

इस प्रकार मराठो और अंग्रेजो, दोनोको अपनी-अपनी शक्ति और कमजोरीका पता चल गया और अगले बीस वर्षो तक उनके बीच शांति रही। मराठा सरदारोमे आपसी ईर्ष्या-द्वेष और प्रतिद्वन्द्विता चलती रही और २५ अक्तूबर १८०२ ई० को तत्कालीन पेशवा बाजीराव द्वितीयको अपने चगुलमे करनेके लिए शिन्दे और होल्करमे पूनाके बाहर युद्ध हुआ। बाजीराव द्वितीय कायर और षड्यन्त्रकारी था और उसे राज्यके हितकी कोई चिंता नही थी। जिस समय पूनाका युद्ध चल ही रहा था, वह प्रतिद्वन्द्वी मराठा सरदारोके चगुल से अपनेको बचानेके लिए पूनासे भागकर बसई अंग्रेजोकी शरणमे चला गया। वहाँ उसने ३१ दिसम्बर १८०२ ई० को बसईकी लज्जाजनक सधि (दे०) कर ली, जिसके द्वारा उसने पेशवा पद फिरसे प्राप्त करनेका मनोरथ बनाया था। इस प्रकार बाजीराव द्वितीयने मराठा राज्यकी स्वतन्त्रता बेच दी और वह अंग्रेजोके द्वारा पुनः पूनाकी गद्दीपर आसीन कर दिया गया। परतु मराठा सरदारो, विशेषरूपसे शिन्दे, भोसले और होल्करने इस व्यवस्थाको स्वीकार नही किया और फलस्वरूप दूसरा मराठा-युद्ध (दे०) (१८०३–०५ ई०) छिड गया।

मराठा सरदारोमे पुन एकता नही स्थापित हो सकी। गायकवाड अंग्रेजोसे मिल गया। यद्यपि शिन्दे और होल्कर सयुक्त हो गये, तथापि होल्करने उनका साथ नही दिया, यद्यपि वह भी बसईकी सधिका उतना ही विरोधी था जितना शिन्दे और भोसले। परिणाम यह हुआ कि इस सकटकालमे भी मराठे अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे अंग्रेजोका मुकाबला करनेमे असमर्थ रहे। फिर उनके पास कोई महान् सेनापति तथा रणविद्या-विशारद नही था। फलत दक्खिनमे सर आर्थर वेल्जली (भावी ड्यूक आफ वेलिंग्टन) के नेतृत्वमे ब्रिटिश सेनाने सितम्बर १८०३ ई० मे असईकी लडाईमे शिन्दे और भोसलेकी सयुक्त सेनाको हरा दिया। इसके बाद नवम्बरमे उसने आरगाँवकी लडाईमे भोसलेको इस प्रकार निर्णयात्मक रीतिसे परास्त कर दिया कि अगले महीने उसने अंग्रेजोसे देवगाँवकी सधि कर ली। इस सधिके द्वारा उसने कटक अंग्रेजोको दे दिया और एक प्रकारसे उनका आश्रित हो गया।

इस बीच उत्तरी भारतमे लार्ड लेकके नेतृत्वमे ब्रिटिश सेनाने अलीगढ और दिल्लीपर कब्जा कर लिया

और अंतमें लासवाडीकी लड़ाईमें शिन्देको इस प्रकार निर्णयात्मक रीतिसे पराजित किया कि वह ३० दिसम्बर १८०३ ई० को सुर्जी अर्जुनगाँवकी संधि करनेके लिए विवश हुआ। इससे पूर्व आरगाँवकी लड़ाईमें भी शिन्दे हारा था। सुर्जी अर्जुनगाँवकी संधिके द्वारा शिन्देने गंगा और यमुनाके बीचका सारा प्रदेश अंग्रेजोंको सौंप दिया, मुगल बादशाह, पेशवा तथा निजामके ऊपर नियंत्रण करनेका अपना सारा दावा त्याग दिया, अंग्रेजोंकी स्वीकृतिके बिना किसी फिरंगीको नौकर न रखनेके लिए राजी हो गया तथा एक प्रकारसे अंग्रेजोंका आश्रित बन गया।

होल्कर अभी तक युद्धसे अलग रहा था। जब उसके प्रतिद्वन्द्वी शिन्देकी शक्ति अंग्रेजोंने नष्ट कर दी, तब वह मूर्खतावश १८०४ ई० में अकेले अंग्रेजोंके विरुद्ध युद्धमें उतर पड़ा। प्रारम्भमें राजपूतानामें उसे अंग्रेजोंके विरुद्ध कुछ सफलता मिली, परंतु अक्तूबरमें वह दिल्लीको न ले सका और नवम्बर १८०४ ई० में दीगकी लड़ाईमें हार गया। भरतपुरका राजा होल्करकी ओरसे युद्ध कर रहा था। लार्ड लेकने ग्वालियरका किला छीननेकी कोशिश की, परंतु सफल न हो सका। उसकी इस विफलताके फलस्वरूप इंग्लैण्डमें युद्धको जारी रखनेके विरुद्ध भावना जोर पकड़ती गयी और १८०५ ई० में लार्ड वेल्जलीको वापस बुला लिया गया। उसके उत्तराधिकारीने होल्करसे जिन अनुकूल शर्तोंपर संधि कर ली, उनकी वह पहले आशा नहीं कर सकता था। होल्करने चम्बलके उत्तरमें सारे प्रदेशपर अपना दावा छोड़ दिया और अपने राज्यका अधिकांश भाग पुनः प्राप्त कर लिया (१८०६ ई०)।

दूसरे अंग्रेज-मराठा युद्धके परिणामसे न तो किसी मराठा सरदारको संतोष हुआ, न पेशवाको। उन सबको अपनी सत्ता और प्रतिष्ठा छिन जानेसे खेद हुआ। पेशवा बाजीराव द्वितीय षड्यंत्रकारी मनोवृत्तिका तो था ही, उसने अविचारपूर्ण रीतिसे अंग्रेजोंको जो सत्ता सौंप दी थी, उसे फिरसे प्राप्त करनेकी आशासे १८१७ ई० में अंग्रेजोंके विरुद्ध मराठा सरदारोंका संगठन बनानेमें नेतृत्व किया और इस प्रकार तीसरे मराठा-युद्ध (१८१७–१९ ई०) का सूत्रपात किया। परन्तु इस बार गवर्नर-जनरल लार्ड हेस्टिंग्सके नेतृत्वमें भारतकी ब्रिटिश सेनाएं बहुत शक्तिशाली सिद्ध हुईं। युद्धके आरंभमें ही उन्होंने सामरिक कौशलका परिचय देते हुए शिन्देको इस तरह अलग कर दिया कि वह युद्धमें कोई भाग न ले सका। भोसलेको १८१७ ई० में सीताबर्डी और नागपुरकी लड़ाइयोंमें और होल्करको उसी वर्ष महीदपुरकी लड़ाईमें पराजित किया गया। पेशवाको, जिसने युद्धका सूत्रपात किया था, पहले १८१७ ई० में खड़कीकी लड़ाईमें परास्त किया गया, इसके बाद जनवरी १८१८ ई० में कोरेगाँवकी लड़ाइयोंमें और एक महीनेके बाद आष्टीकी लड़ाईमें पुनः हराया गया। इस अंतिम हारके फलस्वरूप पेशवाने जून १८१८ ई० में अंग्रेजोंके आगे आत्मसमर्पण कर दिया। इस प्रकार तीसरे मराठा युद्धमें अंग्रेजोंकी पूर्ण विजय हुई। उन्होंने अब पेशवाका पद तोड़ दिया और बाजीराव द्वितीयको कानपुरके निकट बिठूरमें जाकर रहनेकी अनुमति दे दी। उन्होंने उसकी पेन्शन बाँध दी और उसका सारा साम्राज्य अब अंग्रेजोंके नियंत्रणमें आ गया। भोसलेका नर्मदासे उत्तरका सारा इलाका अंग्रेजोंने ले लिया और शेष इलाका रघुजी भोसले द्वितीय (दे०) के एक नाबालिग पौत्रके हवाले कर दिया गया और उसे आश्रित राजा बना लिया गया। इसी प्रकार होल्करने नर्मदाके दक्षिणके समस्त जिले अंग्रेजोंको सौंप दिये, राजपूत राज्योंपर अपना समस्त आधिपत्य त्याग दिया, अपने क्षेत्रमें एक आश्रित सेना रखना स्वीकार कर लिया और अंग्रेजोंकी कृपापर राज्य करने लगा। इस प्रकार पंजाब तथा सिंधको छोड़कर समस्त भारतमें अंग्रेजोंकी सार्वभौम सत्ता स्थापित हो गयी।

मराठा–देखिये, 'महाराष्ट्र'।

मराठा शासन तथा सैन्य व्यवस्था–हिन्दू तथा मुसलमान शासन एवं सैन्य व्यवस्थाका मिश्रित रूप। इसका सूत्रपात शिवाजी (दे०) ने किया, जिन्होंने स्वतंत्र मराठा राज्यकी स्थापना की। इसमें समस्त राज्यशक्ति राजाके हाथमें रहती थी। वह अष्टप्रधानोंकी सहायतासे शासन करता था, जिनकी नियुक्ति वह स्वयं करता था। अपनी इच्छानुसार वह जब चाहे उन्हें अपने पदसे हटा सकता था। अष्टप्रधानोंका नेता पेशवा कहलाता था। उसका पद प्रधानमंत्रीके समान था। अन्य सात वित्त, लेखागार, पत्राचार, वैदेशिक मामले, सेना, धार्मिक कृत्य एवं दान तथा न्याय विभागोंके प्रधान होते थे। धार्मिक तथा न्याय विभागोंके प्रधानोंको छोड़कर बाकी अष्टप्रधान सैन्य अधिकारी भी होते थे। जब वे सैन्य सेवामें रहते थे, उनका प्रशासकीय कार्य उनके नायब करते थे।

अष्टप्रधानोंके नायबोंकी नियुक्ति भी राजा करता था। मालगुजारीकी वसूलीका कार्य पटेलोंके हाथमें था।

भूमिकी उपजका एक तिहाई भाग मालगुजारीके रूपमे वसूल किया जाता था। भूमिका विस्तृत सर्वेक्षण किया जाता था और उर्वरताके अनुसार उसका चार श्रेणियोंमे वर्गीकरण किया जाता था। विदेशी अथवा मुगल नियन्त्रणमे जो भूमि होती थी, उसपर दो प्रकारके कर लिये जाते थे। एकको 'सरदेशमुखी' कहते थे। यह मालगुजारीके एक-दसवें भागके बराबर होता था। दूसरा 'चौथ' कहलाता था। यह मालगुजारीके एक-चौथाई भागके बराबर होता था। चौथ देनेवालेको लूटा नही जाता था, इसलिए महाराष्ट्रसे बाहरके लोगोकी दृष्टिमे मराठा शासन व्यवस्था लूट-खसोटपर आधारित मानी जाती थी। मराठा साम्राज्यके विस्तारके साथ लूट-खसोटकी यह प्रवृत्ति बढती गयी और स्वराज्यकी भावनाके आधारपर सारे देशपर मराठा शासन स्थापित होनेमे बाधक सिद्ध हुई।

शिवाजीने शासन-व्यवस्थाके साथ-साथ सेनाकी भी व्यवस्था की। सेनामे मुख्यरूपसे पैदल सैनिक तथा घुडसवार होते थे। यह सेना छापामार युद्ध तथा पर्वतीय क्षेत्रोमे लड़नेके लिए बहुत उपयुक्त थी। राजा स्वय प्रत्येक सैनिकका चुनाव करता था। वेतन या तो नकद दिया जाता था या जिला प्रशासनको सुपुर्द कर दिया जाता था। शिवाजीने वेतनके लिए जागीरे देनेकी प्रथा नही चलायी। सेनामे कडा अनुशासन रखा जाता था और सैनिकोको शिविरमे स्त्रियोंको साथ रखनेकी अनुमति नही थी। सैनिक लूटका सारा माल राज्यको सौंप देते थे। सेनाको भारी शस्त्रास्त्र अथवा शिविरोके लिए भारी असबाब लेकर नही चलना पडता था। शिवाजीने घुडसवारोको दो श्रेणियोंमे बाँट रखा था। 'बरगीरियो' को घोडे तथा शस्त्रास्त्र राज्यकी ओरसे मिलते थे। 'सिलहदारो' को घोडो और शस्त्रास्त्रोकी व्यवस्था स्वय करनी पडती थी। सेनाका नियन्त्रण करनेके लिए क्रमिक रीतिसे नायको, जुमलादारो, हजारियो और पंजहजारियोकी नियुक्ति की जाती थी। इन सबके ऊपर और एक सरनौबत घुडसवार सेनाके ऊपर होता था। समस्त सेनाके ऊपर सेनापति रहता था। महाराष्ट्रके पर्वतीय क्षेत्रमे किलोका बहुत महत्त्व था और शिवाजीने अपने राज्यके सभी महत्त्वपूर्ण दर्रोपर किले स्थापित कर दिये थे और उनमे सैनिको तथा रसदकी उत्तम व्यवस्था की थी। मराठोका सारा मुल्की तथा सैनिक प्रशासन राजाके प्रत्यक्ष नियन्त्रणमे रहता था। फलस्वरूप राजाके ऊपर बहुत अधिक कर्त्तव्य-भार पड जाता था। बादके मराठा शासक अपने उत्तरदायित्वोको सुचारु रीतिसे वहन नही कर पाये। फलस्वरूप मराठा शासन एव सैन्य व्यवस्थामे शिथिलता आ गयी और जब उसको अंग्रेजोकी आधुनिक सैन्य-व्यवस्थाका मुकाबला करना पडा, वह विफल सिद्ध हुई।

मराठा सघ—इसका सूत्रपात दूसरे पेशवा बाजीराव प्रथम (१७२०–४० ई०) के शासनकालमे हुआ। एक ओर सेनापति दाभाडेके नेतृत्वमे मराठा क्षत्रिय सरदारोके विरोध तथा दूसरी ओर उत्तर तथा दक्षिणमे मराठा साम्राज्यका शीघ्रतासे विस्तार होनेके कारण पेशवा बाजीराव प्रथमको अपने उन स्वामीभक्त समर्थकोपर अधिक निर्भर रहना पडा, जिनकी सैनिक योग्यता युद्धभूमिमे प्रमाणित हो चुकी थी। फलस्वरूप उसने अपने बडे-बडे क्षेत्र इन समर्थकोके अधीन कर दिये। उसके समर्थकोमे रघुजी भोसले, रानोजी शिन्दे, मल्हारराव होल्कर तथा दाभाजी गायकवाड मुख्य थे। इन नेताओने मिलकर मराठासघका निर्माण किया। बाजीराव प्रथम (१७२०–४० ई०) तथा उसके पुत्र बालाजी बाजीराव (१७४०–६१ ई०) के शासनकालमे इस सघपर पेशवाका कडा नियन्त्रण रहा। फलस्वरूप मराठा सेनाओने दिल्ली तथा पजाब तक विजय यात्राएँ की। परतु १७६१ ई० मे पानीपतकी तीसरी लडाईमे पेशवाकी सेनाकी जबर्दस्त हार तथा उसके बाद ही पेशवा बालाजी बाजीरावकी मृत्यु हो जाने तथा उसके बाद पेशवाईके लिए होनेवाले उत्तराधिकार युद्धके कारण मराठासघके महत्त्वाकाक्षी सरदारोपर पेशवाका नियत्रण ढीला पड गया। फलस्वरूप मराठासघ मराठा राज्यके विघटनका एक प्रमुख कारण बन गया। मराठासघके सरदारोके आपसी ईर्ष्या-द्वेष तथा उनकी प्रतिद्वन्द्विताके कारण, विशेषरूपसे होल्कर तथा शिन्देकी प्रतिद्वन्द्विताके कारण, उनके लिए सयुक्त होकर कार्य करना असभव हो गया। यह मराठा साम्राज्य, स्वतन्त्रताके ह्रास तथा पतनका मुख्य कारण बना।

मरुद्वृधा—ऋग्वेदके नदीसूक्तमे जिन दस नदियोंके नाम आये है, उनमेसे एक इसकी पहचान मरुवर्दवन नदीसे की जाती है जो कश्मीर-जम्मू राज्यकी मरुघाटीसे बहती है और चिनाबमे मिल जाती है। अन्य नौ नदियोंके नाम है—गगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री (सतलज), परुष्णी (रावी), असिक्नी (चिनाब), वितस्ता (झेलम), आर्जीकीया (काशी) तथा सुषोमा (सोहन)। अतिम दो नदियाँ रावलपिंडी जिलेमे है। मरुद्वृधा नदीके उल्लेखसे प्रकट

होता है कि ऋग्वेद-कालीन आर्य कश्मीर तथा जम्मूके अंतरग भागोसे परिचित थे।

मर्व—अफगानिस्तानकी उत्तर-पश्चिमी सीमासे लगभग १५० मील उत्तर एक नगर। १८८४ ई०मे रूसने इसपर अधिकार कर लिया। इग्लैडमे कुछ लोग इसे झूठमूठ बडे सामरिक महत्त्वका नगर बता रहे थे। मर्वके पतनसे अग्रेजोमे अफगानिस्तानपर, और परोक्ष अथवा अपरोक्ष रीतिसे भारतपर रूसी हमलेका भय छा गया। इसपर इग्लैंड और रूसमे युद्ध छिड जानेका खतरा उत्पन्न हो गया। परतु अमीर अब्दुर्रहमान (दे०)के धैर्य और अग्रेज तथा रूसी राजनेताओके कूटनीतिक कौशलमे यह युद्ध टल गया। (देखिये, 'पजदेह की घटना')

मलय—आधुनिक मलय प्रायद्वीप, जिसका भारतसे दीर्घ-कालीन सम्बन्ध रहा है। इसके नामसे प्रतीत होता है कि इसका कोई सम्बन्ध प्रसिद्ध मालव गणसे रहा है, किंतु इस विषयमे कोई सूचना उपलब्ध नही है। बौद्ध जातक कथाओ तथा टालेमीके भूगोलसे सकेत मिलता है कि भारतीयोमे यह स्वर्णद्वीप अथवा स्वर्णभूमिके रूपमे विख्यात था और मलय भारतके बीच खूब व्यापार होता था। मलय प्रायद्वीप तथा कम्बोडियामे प्रारम्भिक पाँचवी शताब्दी ई०के सस्कृत शिलालेख प्राप्त हुए है। दक्षिण-पूर्व एशियामे शैलेन्द्र वश (दे०)के राजाओने जिस विशाल साम्राज्यकी स्थापना की थी, उसमे मलय भी सम्मिलित था। इन राजाओका वगाल तथा भारतसे निकट सम्पर्क था। तेरहवी शताब्दी ई०मे, जब भारतमे मुसलमानी शासनकी स्थापान हुई, मलय और भारतके सास्कृतिक सम्बन्ध टूट गये।

मलिक अम्बर—एक हब्शी गुलाम जो पदोन्नति करके अहमद नगरका वजीर बन गया। वहाँ का राज्य-प्रबध अनेक वर्षो तक उसके हाथमे रहा। उसने पहली बार १६०१ ई०मे नामवरी हासिल की, जब उसने दक्षिण-पूर्वी बरारमे मुगल सेनाको हरा दिया। मुगल सेना दौलताबादपर अधि-कार करना चाहती थी जो अहमदनगर सल्तनतकी राज-धानी थी। १६०१ ई०मे राजधानी यही स्थानातरित कर दी गयी थी। वह जितना योग्य सिपहसालार था, उतना ही योग्य राजनेता भी था। उसीके उद्योगसे अहमद नगर पर कब्जा करनेके जहाँगीरके सारे प्रयत्न विफल हो गये। उसने अहमद नगर राज्यकी उत्तम शासन व्यवस्था की। इसके अलावा उसने राज्यमे मालगुजारीकी व्यवस्था भी बडे सुन्दर ढगसे की। सारी कृषि-योग्य भूमिको उर्वरताके आधारपर चार श्रेणियोमे विभाजित कर दिया गया और लगान स्थायी रूपसे निश्चित कर दिया गया, जो नकद लिया जाता था। लगानकी वसूली राज्यके अधिकारी गाँवके पटेलसे करते थे। मलिक अम्बरकी मृत्यु १६२६ ई०मे बुढापेमे हुई। उसकी मृत्युके बाद ही अहमद नगर सल्तनतको मुगल साम्राज्यमे सम्मिलित किया जा सका।

मलिक अयाज—गुजरातके सुल्तान महमूद बेगडा (दे०) (१४५९–१५११ ई०)के सामुद्रिक बेडेका अधिनायक। उसने १५०८ ई०मे मिस्री सामुद्रिक बेडेके सहयोगसे, जिसका अधिनायकत्व अमीर हुसेन कर रहा था, चौलके निकट सामुद्रिक लडाईमे पुर्तगालियोको हरा दिया। परन्तु अगले साल ड्यूके निकट एक सामुद्रिक लडाईमे पुर्तगालियोने उसे हरा दिया और उसका बेडा नष्ट कर दिया।

मलिक अहमद—अहमद नगरके निजाम-शाही वशका प्रवर्तक। वह कुछ वर्षोतक बहमनी वशके सुल्तान महमूद (दे०) के अधीन पूनाके निकट जुन्नारका हाकिम रहा। १४९० ई०मे उसने बगावतका झडा बुलद कर दिया और एक स्वतत्र राज्यका शासक बन बैठा। उसने अहमद निजाम शाहकी उपाधि धारण की और अहमद नगरको राज-धानी बनाया। उसने १४९९ ई०मे देवगिरि अथवा दौलताबाद जीत लिया और अपने राज्यको सुदृढ बनाया। उसकी मृत्यु १५०८ ई०मे हुई। उसके द्वारा स्थापित निजामशाही वशके वशज अहमद नगरपर १६३७ ई० तक शासन करते रहे। पश्चात् उसका राज्य मुगल साम्राज्यमे सम्मिलित कर लिया गया।

मलिक काफूर—देखिये, 'काफूर'।

मलिक गाजी शाहना—सुल्तान फीरोज तुगलक (१३५१–८८ ई०)का मुख्य वास्तु-शिल्पी। सुल्तान फीरोज तुगलकको इमारतें बनवानेका अधिक शौक था। उसीके निर्देशमे मलिक गाजी शाहनाने फीरोजाबाद और जौनपुरके नये नगरोका, मुसलमान यात्रियोके लिए १२० सरायोका तथा अनेक नहरोका निर्माण कराया। इन नहरोमेसे एक नहर—पुरानी जमना नहर अब तक काम कर रही है और मलिक गाजी शाहनाके निर्माण-कौशलका प्रमाण प्रस्तुत करती है।

मलिक मकबूल—सुल्तान मुहम्मद तुगलक (१३२५–५१ई०) के राज्यकालमे वारगलका सूबेदार। लगभग १३४० ई०में हरिहर और बुक्कने मलिक मकबूलको वारगलसे निकाल दिया और बादमे विजय नगर राज्य (दे०)की स्थापना की।

मलिक मोहम्मद जायसी—बादशाह हुमायूँका (१५३०–५६

ई०)का सम-सामयिक अवधीका कवि। मुसलमान होते हुए भी उसने हिन्दी भाषामे रचना की।

मलिक शाहू लोदी–मुल्तानका एक अफगान सरदार सुल्तान मुहम्मद तुगलक (१३२५–३१ ई०)के राज्यकालके उत्तरार्धमे उसने बगावत कर दी, परन्तु उसे पराजित कर दिया गया और वह अफगानिस्तान भाग जानेके लिए विवश हुआ।

मलिक हसन–मूल रूपमे ब्राह्मण, जो मुसलमान बन गया और उसका नाम हसन रखा गया। बहमनी सुल्तान मुहम्मद तृतीय (१४६३–८२ ई०)के शासन-कालमे वह तेलगानाका सूबेदार था। वह दक्खिनी मुसलमान अमीरोंके उस दलका प्रमुख सदस्य था जो विदेशी मुसलमान अमीरोंके दलके नेता महमूद गवाँ (दे०)का विरोधी था। उसने उस षड्यन्त्रमे प्रमुख भाग लिया जिसके फलस्वरूप १४८१ ई०मे महमूद गवाँका वध कर दिया गया।

मल्लगण–गौतम बुद्ध (दे०)के समय पावा तथा कुसीनारामे निवास करता था। बौद्ध किंवदंतियोंमे इस गणके लोगोंका प्राय उल्लेख हुआ है।

मल्लिकार्जुन–विजयनगरके राजा देवराय द्वितीय (दे०)का पुत्र तथा उत्तराधिकारी। उसने १४४७ से १४६५ ई० तक राज्य किया। मल्लिकार्जुन अपने सामंतोंको वशमे रखनेमे असफल रहा। उधर बहमनी सुल्तान अलाउद्दीन तथा उडीसाके राजा कपिलेश्वरने उसके राज्यपर आक्रमण कर दिया। फलस्वरूप उसकी राज्यशक्ति क्षीण होने लगी। कुछ समय बाद चन्द्रगिरिके नरसिंह सालुव (दे०)ने उसका सिंहासन छीन लिया। नरसिंह सालुव उसीका सामंत था।

मल्लू–बीजापुरका तीसरा सुल्तान। उसने १५३४ ई०मे केवल छः महीने शासन किया। वह बडा पापी था, इसीलिए उसे अंधा बना कर गद्दीसे उतार दिया गया।

मल्हार राव होल्कर–इंदौरके होल्कर वंशका प्रवर्तक-प्रारंभमे वह पेशवा बाजीराव प्रथम (१७२०–४० ई०)की सेवामे रहा। उसकी स्वामि-भक्तिके फलस्वरूप मध्य भारतमे एक बडा क्षेत्र उसके शासनमे कर दिया गया। उसके उत्तराधिकारी इस क्षेत्रका शासन करते रहे। १९४८ ई०मे उसके राज्यका भारतीय गणराज्यमे विलयन कर लिया गया।

मसुलीपट्टम्–भारतके पूर्वी समुद्रतटका एक नगर तथा बंदरगाह। ईस्ट इंडिया कम्पनीने १६११ ई०मे यहाँ एक कोठी स्थापित की। फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनीने भी १६६९ ई०मे यहाँ अपनी कोठी स्थापित की। पहले कर्नाटक-युद्ध (दे०) मे फ्रासीसियोंने इसपर अधिकार कर लिया, परन्तु तीसरे कर्नाटक-युद्ध (दे०)मे कर्नल फोर्ड (दे०)ने इसे छीन लिया। १७५९ ई०मे यह अंग्रेजोंको सौंप दिया गया।

मसुली पट्टम्की संधि–१७६८ ई०मे अंग्रेजो और हैदराबाद के निजामके बीच हुई। इसके द्वारा अंग्रेजोंने निजामको बालाघाटका शासक स्वीकार कर लिया। अंग्रेजोंने १७६६ ई०मे मैसूरके साथकी गयी एक संधि तथा पुन १७८४ ई०की मंगलूरकी संधिके द्वारा इस प्रदेशपर मैसूरका आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। यह इस बातका उदाहरण है कि ईस्ट इंडिया कम्पनी भारतमे किस प्रकार छल-कपटकी कूटनीति खेल रही थी। लार्ड कार्नवालिसने १७८८–८९ ई०मे कम्पनीके द्वारा दिये गये वचनोंसे मुकर जानेकी कोशिश की। इसके फलस्वरूप तीसरा मैसूर-युद्ध (दे०) (१७९०–९२ ई०)मे हुआ।

महमूद–बीदर (दे०)का सुल्तान जिसने कृष्णदेव राय(दे०) के सिंहासनपर बैठनेके बाद ही विजयनगरपर हमला कर दिया। कृष्णदेवरायने उसकी सेनाओंको पीछे खदेड दिया और युद्ध भूमिमे वह घायल भी हो गया।

महमूद खिलजी–मालवाके सुल्तान महमूद गोरी (१४३२–३६ ई०) (दे०)का वजीर उसने अपने मालिकको जहर देकर मार डाला और १४३६ ई०मे उसकी गद्दी छीन ली। उसने १४३६ ई०से १४६९ ई०मे अपनी मृत्यु तक शासन किया और मालवामे खिलजी वंश चलाया। उसका जीवन पडोसी राजाओं–गुजरातके सुल्तान, मेवाडके राणा कुम्भा तथा निजाम शाह बहमनीसे युद्ध करनेमे बीता। उसने राज्यका काफी विस्तार किया तथा कई सुन्दर इमारतें बनवायी, जिनमे राजधानी माडूमे निर्मित एक सतखडी मीनार भी थी।

महमूद खिलजी द्वितीय (१५१२–३१ ई०)–मालवाके खिलजी वंशका अंतिम सुल्तान। गुजरातके सुल्तान बहादुर शाह (१५२६–३७ ई०) (दे०)ने उसे हरा दिया और उसका राज्य अपने राज्यमे मिला लिया।

महमूद, गजनीका सुल्तान–अमीर सुबुक्तगीनका लडका, जो उसके बाद ९९६–९७ ई०मे गजनीकी गद्दीपर बैठा। उसने अपनी स्वतन्त्र सत्ताकी सूचना देनेके लिए सुल्तानकी पदवी धारण की और १०३० ई०मे अपनी मृत्यु तक राज्य किया। उसने अपने राज्यकालमे भारतपर कई चढाइयाँ की (इनकी संख्या आम तौरसे सत्रह मानी जाती है)। उसका पहला हमला १००१ ई०मे जयपाल (दे०) पर हुआ, जिसे उसने पेशावरके निकट हराया। सात साल

बाद उसने जयपालके उत्तराधिकारी अनगपालको हराया। इन सफलताओके फलस्वरूप पजाब एक प्रकारसे उसके अधिकारमे आ गया। अगले वर्षोंमे उसने थानेश्वर, मथुरा तथा कन्नौजपर चढाई की और ग्वालियर तथा कालजरको अपने अधीन किया। १०२६ ई०मे उसने काठियावाड (सौराष्ट्र)पर चढाई की और सोमनाथके मदिरका शिवलिंग तोड डाला और नगर एव मदिरकी सम्पत्ति लूट ली। उसने भारतपर अंतिम चढाई १०२७ ई०मे मुल्तानपर की। सुल्तान महमूद बहुत ही योग्य सिपहसालार था। वह विद्वानोका आदर करता था और कला तथा वास्तुकलाका प्रेमी था। उसने अपनी राजधानी गजनीमे कई खूबसूरत इमारते बनवायी तथा झीलो, पुस्तकालयो आदिका निर्माण कराया। उसने पजाबको अपने राज्यमे मिला लिया और शेष भारतके राजवशोकी शक्ति क्षीण कर दी।

महमूद गवाँ, ख्वाजा—एक ईरानी सरदार, जिसे ग्यारहवे बहमनी सुल्तान हुमायूँ (१४५७–६१ ई०)ने नौकर रख लिया। उसने धीरे-धीरे उच्च पद प्राप्त कर लिया। हुमायूँके नाबालिग लडके निजाम (१४६१–६३ ई०) के राज्यकालमे उसने और पदोन्नति की। निजामकी ओरसे उसकी मा शासन चला रही थी। शासन-कार्यके लिए उसने दो मुख्य सलाहकार नियुक्त किये, जिनमेसे एक महमूद गवाँ था। १४१३ ई०मे अचानक निजामकी मृत्यु हो गयी और उसका भाई मुहम्मद गद्दीका वारिस बना। मुहम्मद शाहने १४३६ से १४८२ ई० तक राज्य किया। उसके राज्यकालमे महमूद गवाँको बडा वजीर बना दिया गया। उसने सुयोग्य सिपहसालार और राजनेताके रूपमे बहमनी राज्यके विस्तारमे सबसे अधिक योगदान किया।

वह विद्वानोका बहुत आदर करता था और कला तथा वास्तुकलाका प्रेमी था। उस समय बीदर बहमनी राज्यकी राजधानी थी। उसने वहाँ एक विद्यालय तथा पुस्तकालयकी स्थापना की। दक्खिनी मुसलमान अमीर उससे दुश्मनी रखते थे। अतमे वे उसके खिलाफ षड्यन्त्र रचनेमे सफल हो गये। उन्होने उसके नामकी जाली चिट्ठियाँ बना कर सुल्तान मुहम्मद शाहको विश्वास दिला दिया कि वह विश्वासघात करके विजय नगरके राजासे मिल गया है। सुल्तानके हुक्मसे १४८१ ई०मे उसका बध कर दिया गया। इस अन्यायपूर्ण कृत्यसे बहमनीके सुल्तानोकी राज्य-सत्ताको भारी क्षति पहुँची और शीघ्र बहमनी राज्य कई टुकडोमे बँट गया।

महमूद गोरी (१४३२–३६ ई०)—मालवाके गोरी वशका तीसरा और अंतिम शासक। वह नितात अयोग्य शासक था और बहुत अधिक शराब पीता था। १४३६ ई०मे उसके वजीरने उसको जहर देकर मार डाला।

महमूद, जौनपुरका सुल्तान—शर्की वशका तीसरा सुल्तान। उसने १४३६ से १४५८ ई० तक राज्य किया। वह सफल शासक था और उसने जौनपुरमे कुछ खूबसूरत मसजिदे बनवायी।

महमूद तुगलक (१३९४–१४१३ ई०)—दिल्लीके तुगलक वशका अंतिम सुल्तान। उसके राज्यकालमे अनवरत सघर्ष चलते रहे और दुरवस्था चरम सीमापर पहुँच गयी। उसके राज्यकालके पूर्वार्द्धमे लम्बा उत्तराधिकार-युद्ध १३९९ ई० तक चलता रहा, जब उसका प्रतिद्वन्द्वी सुल्तान नसरत शाह पराजित हुआ और मारा गया। उसके राज्यकालके उत्तरार्द्धमे दिल्ली सल्तनत टूटने लगी। जौनपुर, गुजरात, मालवा और खानदेश स्वतत्र मुसलिम राज्य बन गये। दूसरी ओर ग्वालियरमे एक स्वतत्र हिन्दू राज्यकी स्थापना हुई। दोआबके हिन्दुओमे बराबर विद्रोह होता रहा। इन्ही परिस्थितियोमे १३९८ ई०मे तैमूर (दे०)ने भारतपर चढाई कर दी। सुल्तान महमूद तुगलकके राज्यमे इतनी अव्यवस्था थी कि आक्रमणकारी दिल्लीकी सीमाओ तक पहुँच गया और उसका कोई प्रतिरोध नही किया गया। तैमूरकी सेनाओने मुल्तानकी सेनाको गहरी शिकस्त दी और महमूद गुजरात भाग गया। तैमूरकी विजयी सेना दिल्लीमे घुस आयी और पन्द्रह दिन निर्दयतापूर्वक लूट-पाट और राजधानीका विध्वस करती रही। तैमूरके वापस लौट जानेके बाद भारत भीषण अकाल तथा महामारीसे ग्रस्त रहा। दिल्लीकी सल्तनतकी हालत अब एक सडती लाश जैसी थी। तैमूरकी सेनाके चले जानेके बाद सुल्तान महमूद तुगलक दिल्ली वापस लौट आया और वह सल्तनतको विनाशसे नही बचा सका। १४१३ ई०मे उसकी मृत्यु होनेपर तुगलक वशका अत हो गया।

महमूद बेगडा (अथवा बिगढा)—गुजरातका छठाँ सुल्तान। वह तेरह वर्षकी उम्रमे गद्दीपर बैठा और बावन वर्ष (१४५९–१५११ ई०) तक सफलतापूर्वक राज्य करता रहा। वह अपने वशका सबसे प्रमुख सुल्तान था। उसने बडोदाके निकट चापानेर तथा जूनागढ जीत लिया तथा अहमद नगरके सुल्तानको हराया। उसने भारतीय समुद्रोमे पुर्तगालियोसे भी युद्ध किया और १५०८ ई०मे चौलकी लडाईमे एक पुर्तगाली जगी बेडेको हरा दिया। अगले

वर्ष १५०६ ई०मे पुर्तगालियोने उसका बेडा डुबा दिया। फिर भी उसने अपने राज्यकालमे पुर्तगालियोको दिवपर कब्जा करने नही दिया। उसने बडी शानदार मूँछे बढा रखी थी और इतना अधिक खाता था कि उसके बारेमे सारे देशमे तरह-तरहकी कपोल कथाएँ प्रचलित हो गयी। एक इटालवी यात्री लुडोविको डी वारदेमा उसके राज्यमे आया था। उसने भी इन कथाओका उल्लेख किया है।

महमूद शाह बहमनी (१४८२–१५१८ ई०)–बहमनी राज्यका अन्तिम शासक तथा सुलतान मुहम्मद तृतीयका उत्तराधिकारी। गद्दीपर बैठनेकेसमय उसकी उम्र बारह साल की थी। उसने छब्बीस वर्षतक राज्य किया। वह सर्वथा शक्तिहीन था। उसके राज्यकालमे बीजापुर, गोलकुण्डा, बरार तथा अहमद नगर बहमनी सल्तनतसे अलग हो गये। १५१८ ई०मे उसकी मृत्युके समय केवल बीदरका शासक उसकी नाममात्रकी अधीनता स्वीकार करता था।

महलवारी प्रथा–देखिये, 'भूमि व्यवस्था'।

महसूद–अफगानोका एक कबीला। डूरैण्ड सीमारेखा (दे०) के अनुसार उसको भारतीय सीमाके अन्तर्गत रखा गया। इस कबीलेके लोग लडाकू और झगडालू होते है। उन्हे शान्त रखनेके लिए ब्रिटिश भारतीय सरकारको जब-तब दण्डात्मक कारवाई करनी पडती थी।

महाक्षत्रप–इनकी दो शाखाएँ थी, यथा पश्चिमी क्षत्रप कुल, जिसका प्रवर्तन भूमकने महाराष्ट्रमे किया और उज्जयिनीका महाक्षत्रप कुल, जिसे चष्टन (बस्टन अथवा मष्टन)ने प्रचलित किया था। इन दोनो कुलोके प्रवर्तक शक आक्रान्ताओके सरदार थे। पश्चिमी क्षत्रप कुलके आरम्भकी तिथि निश्चित नही है। कदाचित् उसकी राजधानी नासिक थी और केवल दो शासको, भूमक और नहपानके ही नाम ज्ञात है। दोनोमे किसी की भी तिथि निश्चित नही है। विद्वानोने भूमकका काल ईसाकी प्रथम शताब्दीका प्रारम्भिक वर्ष माना है और नहपानका काल दूसरी शताब्दीका प्रारम्भिक वर्ष। पश्चिमी भारतके शक क्षत्रपोमे नहपान सबसे प्रतापी था। उसका उल्लेख कई अभिलेखोमे किसी अनिश्चित सवत् की तिथियोके साथ हुआ है। कुछ विद्वानोने उक्त तिथियोको शक सवत्की तिथियाँ स्वीकार किया है और उसका राज्यकाल ११९ ई०से १२४ ई० तक ठहराया है। उसने क्षत्रपके रूपमे शासन आरम्भ किया और उपरान्त महाक्षत्रप बना। नहपानने पश्चिमी भारतके एक विस्तृत भू-भागपर राज्य किया और प्रभूत दान दिया। किन्तु सातवाहन शासक गौतमी पुत्र श्री सातकर्णी (दे०) ने उसे परास्त करके पश्चिमी क्षत्रपोके वशका अन्त कर दिया।

उज्जयिनीके महाक्षत्रपोने दीर्घकाल तक शासन किया। इस वशका प्रवर्तक यशोमोतिकका पुत्र चस्तन अथवा चष्टन था। यशोमोतिकके नामसे ही स्पष्ट है कि वह शक था। उसका शासनकाल लगभग १३० ई०मे आरम्भ हुआ और उसके वशज ३८८ ई० तक राज्य करते रहे। इस वशका सबसे महान शासक चष्टनका पौत्र रुद्रदामा प्रथम (दे०) (१३०–१५० ई०) था। उसने पश्चिमी भारतके एक विस्तृत भू-भागपर राज्य किया और उसकी उपलब्धियाँ गिरनार नामक पर्वतपर उत्कीर्ण एक संस्कृत अभिलेखमे वर्णित है। अभिलेखके अनुसार उसने सुदर्शन तालके उस बाँधका पुनर्निर्माण कराया जो सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त मौर्य (दे०)के शासनकालमे निर्मित हुआ था। रुद्रदामाके उपरान्त उसका ज्येष्ठ पुत्र दामघसद प्रथम शासक हुआ और उपरान्त उसका पुत्र जीवनदामा तथा दामघसदका भाई रुद्रसिह सिहासनासीन हुए।

रुद्रसिहके उपरान्त उसके तीन पुत्र रुद्रसेन प्रथम, सघदामा और दामसेन शासक हुए और दामसेनके उपरान्त उसके तीन पुत्र यशोदामा, विजयसेन और दामजदश्री क्रमश सिहासनासीन हुए। उपरान्त रुद्रसेन द्वितीय, विश्वमित्र, भर्तृदामा, रुद्रदामा द्वितीय और रुद्रसेन तृतीय (३४८–३७८ ई०)ने शासन किया। रुद्रसेन तृतीयके उत्तराधिकारी कदाचित् सिहसेन, रुद्रसेन चतुर्थ और सत्यसिह थे। सत्यसिहका पुत्र और उत्तराधिकारी रुद्रसिह तृतीय इस वशका अन्तिम शासक था। उसे गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्यने पराजित और अपदस्थ किया। उज्जयिनीके महाक्षत्रपोका इतिहास इस दृष्टिसे रोचक है कि वह दर्शाता है कि उस कालका एक विदेशी शासक वश कितनी शीघ्रतासे ही भारतीय एव हिन्दू धर्मानुयायी बन गया तथा उसने संस्कृतको अपनी राजभाषा स्वीकार कर लिया।

महात्मा गाधी–देखिये, 'गाधी, मोहनदास करमचन्द'।

महानन्दी–शैशुनाग वशका अन्तिम राजा। उसका राज्यकाल पाँचवी शताब्दी ई० पू० अन्तिम भाग अथवा चौथी शताब्दी ई० पू०का था। उसके राज्यकालके बारेमे कुछ अधिक ज्ञात नही है।

महापद्म–मगधके नन्द वशका आद्यपुरुष। पुराणोके अनुसार वह शैशनाग वशके अन्तिम राजा महानन्दीका शूद्र

परम्परा समाप्त हो गयी परन्तु उस समय तक मराठा राज्यका शासन पेशवाओं (दे०)के हाथमें आ गया था। पेशवाओंने पूनाको राजधानी बना कर १८१८ ई० तक महाराष्ट्रपर शासन किया। १८१८ ई०में अंतिम पेशवा बाजीराव द्वितीय अंग्रेजोंसे हार गए और गद्दीसे उतार दिया गया। परन्तु इसके बाद भी मराठा भारतीय राजनीतिमें एक मुख्य शक्ति बने रहे। मराठा शासक बडोदाके गायकवाड, ग्वालियरके शिन्दे, इन्दौरके होल्कर तथा नागपुरके भोंसले ब्रिटिश भारतीय सरकारके प्रत्यक्ष तथा इंग्लैण्डके राजाके अप्रत्यक्ष आधिपत्यमें, आश्रित राजाकी हैसियतसे मध्य तथा दक्षिणी भारतके काफी बडे भागपर राज्य करते रहे। १९४८–४९ ई०में इन सब देशी रियासतोंका भारतीय गण राज्यमें विलयन हो गया।

महावंश–श्रीलंका (सिंहल)का इतिहास ग्रन्थ। यह राजा महानामके राज्यकालमें लिखा गया जिसने ४५८ ई०से ४८० ई० तक राज्य किया। श्रीलंकाका प्राचीन इतिहास दर्शाते समय स्थान-स्थानपर भारत तथा उसके इतिहासका उल्लेख किया गया है। वास्तवमें अशोक तथा श्रीलंकामें बौद्ध धर्मके प्रचारके बारेमें विस्तृत सूचना महावंशमें ही प्राप्त की गयी है।

महावत खाँ–मुगल कालकी एक उपाधि। यह विविध समयोंमें विविध व्यक्तियोंको प्रदान की गयी जिसे प्राप्त करनेवाले एक व्यक्तिने सबसे अधिक ख्याति और प्रतिष्ठा पायी, वह जमानवेग नामक योग्य सैनिक था। बादशाह जहाँगीरने तख्तनशीन होनेके बाद ही १६०५ ई०में उसे यह उपाधि प्रदान की। प्रारम्भमें वह बहुत ही स्वामिभक्त और योग्य सिपहसालार सिद्ध हुआ। उसे राणा अमर सिंहसे युद्ध करनेके लिए मेवाड भेजा गया। उसने कई घमासान लडाइयोंमें उसे हराया। मेवाडसे लौटनेपर उसे दक्खिन भेजा गया। उसे वहाँके बागी सूबेदार खानखानाको अपने साथ राजधानी लानेका काम सौंपा गया। यह कार्य उसने बडे युक्तिकौशलके साथ सफलतापूर्वक सम्पन्न किया।

जैसे-जैसे जहाँगीरपर नूरजहाँका प्रभाव बढता गया, वैसे-वैसे महावत खाँपर जहाँगीरकी कृपादृष्टि कम होती गयी। मलका नूरजहाँके पिता और भाई, दोनों महावत खाँके विरोधी थे। अगले बारह साल तक बादशाहने महावत खाँको कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं सौंपा। इससे वह हताश होने लगा। फिर भी शाहजादा खुर्रमने जब जहाँगीरके खिलाफ बगावत की, तो महावत खाँ उसे दबानेके लिए शाही फौज लेकर गया। उसने बागी शाहजादेको पहले दक्खिनमें बिलोचपुरके युद्धमें और फिर इलाहाबादके निकट डमडमकी लडाईमें हराया। इन विजयोंसे मलका नूरजहाँका उसके प्रति विरोध भाव और बढ गया और उसे काबुलकी सूबेदारीसे हटाकर बंगाल भेजा गया। इससे महावत खाँ इतना भडक उठा कि उसने १६२६ ई०में दिल्लीका तख्त उलट देनेकी कोशिश की। जहाँगीर जिस समय काबुल जा रहा था, वह उसे अपनी हिरासतमें ले लेनेमें सफल हो गया। परन्तु नूरजहाँ महावत खाँसे कहीं अधिक चालाक थी। उसने शीघ्र बादशाहको हिरासतसे छुडा लिया और दरबारमें महावत खाँका प्रभाव समाप्त हो गया।

महावत खाँ हताश होकर शाहजादा खुर्रमसे मिल गया, जिसने १६२६ ई०में बगावत कर दी। परन्तु उसके साथ जहाँगीरका कोई युद्ध नहीं हुआ। १६२७ ई०में जहाँगीरकी मृत्यु हो गयी। शाहजहाँके तख्तपर बैठनेपर महावत खाँको उच्च पदोंपर नियुक्त किया गया और उसे खानखानाकी पदवी दी गयी। महावत खाँने दिल्लीकी गद्दीके लिए होनेवाले उत्तराधिकार युद्धमें शाहजहाँका समर्थन किया, बुन्देलखंडमें एक बगावतको कुचला, दौलताबादपर घेरा डाला और उसपर दखल कर लिया। इस प्रकार उसने अहमदनगरको पूरी तौरसे मुगल साम्राज्यके अधीन बना दिया। यह महावत खाँकी अंतिम सफलता थी। वह मुगलोंका बहुत ही योग्य सिपहसालार था। उसने बीजापुरको भी जीतनेकी कोशिश की, परंतु विफल रहा। इसके लिए बादशाहने उसकी तबीह की। इस अपमानसे वह बहुत दुःखी हुआ और १६३४ ई०में उसकी मृत्यु हो गयी।

महावीर–अथवा वर्धमान महावीर, जो जैन धर्मके प्रवर्तक थे। उनका जन्म उच्च क्षत्रिय कुलमें हुआ था जो वैशाली तथा मगधके राजवंशसे सम्बन्धित था। उनका पहला नाम वर्धमान रखा गया। उनकी जन्मतिथि तथा निर्वाण तिथि निश्चित रूपसे ज्ञात नहीं है, परन्तु इतना निश्चित है कि जन्म बिम्बिसार (दे०) के राज्यकालमें हुआ और निर्वाण बिम्बिसारके पुत्र अजातशत्रु (दे०)के राज्यकालमें, गौतम बुद्धका निर्वाण होनेसे कुछ पहले हुआ। वे कुछ वर्ष गृहस्थ जीवनमें रहे। तीस वर्षकी अवस्थामें उन्होंने गृह त्याग किया और नग्न अनागार श्रमण बन गये। उन्होंने बारह वर्ष तक दुष्कर तप किया, जिसके फलस्वरूप उन्हें पूर्ण ज्ञानकी प्राप्ति हुई, जिसे 'केवल ज्ञान' कहते हैं। इसके बाद वे केवली (केवल ज्ञानके धारक), निर्ग्रन्थ (ग्रन्थियोंसे रहित), जिन (इन्द्रियजेता) तथा

महावीर कहलाने लगे। अगले तीस वर्षों तक वे देशमे चारों ओर ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए सद्धर्मका उपदेश देते रहे। उन्होंने जिस धर्मका उपदेश दिया, उसे आजकल जैनधर्म कहते हैं। उन्होंने राजा अजातशत्रुके राजकालमे ७२ वर्षकी अवस्थामे बिहारके पटना जिला स्थित पावापुरीमे निर्वाण प्राप्त किया। निर्वाणकी तिथि अनिश्चित है।

महिला जागरण–का सूत्रपात मुख्य रूपसे बीसवी शताब्दीमे हुआ। यद्यपि प्राचीन कालमे भारतीय महिलाओमे शिक्षाका व्यापक प्रचार था तथापि उन्नीसवी शताब्दीमे पहुँचने तक उनमे अनेक सामाजिक कुरीतियाँ बद्धमूल हो चुकी थी, यथा, सती प्रथा, जन्मते ही कन्याओंकी हत्या कर देना, बाल-विवाह, विधवाओंकी दयनीय दशा, पर्दा प्रथा तथा बहु-विवाह प्रथा। सती प्रथा तथा शिशु-हत्या उन्नीसवी शताब्दीके द्वितीय चतुर्थांशमे कानून बनाकर बन्द कर दी गयी। प० ईश्वरचन्द्र विद्यासागरकी प्रेरणासे कानून बनाकर सहवास की आयु बढा दी गयी तथा हिन्दू विधवाओंके पुनर्विवाहको वैध करार दे दिया गया। महिलाओंके उत्थानके मार्गमे सबसे बडी बाधा उनके बीच फैली निरक्षरता थी। ईसाई मिशनरियो, ब्राह्म-समाज तथा आर्य समाज जैसी समाज-सुधारक संस्थाओ तथा उदारमना भारतीयोंके प्रयाससे क्रमिक रीतिसे महिलाओमे अशिक्षाका उन्मूलन किया गया। १८४९ ई०मे लडकियोंकी शिक्षाके लिए बेथ्यून कालेजकी स्थापना की गयी। इसके बाद इस प्रकारकी अनेक महिला शिक्षा-संस्थाएँ खोली गयी। मानवशास्त्र, चिकित्सा, विज्ञानादिकी शिक्षा संस्थाओमे सहशिक्षाकी व्यवस्था की गयी। प्रो० कर्वेने पूनामे एक महिला विश्वविद्यालयकी स्थापना की।

देशकी राजनीतिमे उदारतावादी प्रवृत्तियोंका समावेश होनेके साथ विधान मण्डलोंके लिए जन-प्रतिनिधियोंको चुननेमे महिलाओंको भी मताधिकार प्राप्त होने लगा। इस समय प्रत्येक वयस्क पुरुषको ही नही, वरन प्रत्येक वयस्क महिलाको भी समान मताधिकार प्राप्त है। इस दिशामे स्वतन्त्र भारत इग्लैण्ड तथा कई यूरोपीय देशोसे आगे निकल गया है। एक प्रख्यात भारतीय महिला इग्लैण्ड तथा सोवियत सघमे राजदूतके पदपर रह चुकी है, यही नही उन्होंने सयुक्त राष्ट्र-सघमे भी भारतका प्रतिनिधित्व किया है। एक अन्य विख्यात भारतीय महिला इस समय भारतकी प्रधान-मन्त्री है। एक अन्य प्रख्यात महिला भारतके एक प्रमुख राज्यमे राज्यपालके पदको सुशोभित कर रही है। स्वतन्त्र भारतमे कानून बनाकर हिन्दुओमे बहु-विवाहपर रोक लगा दी गयी है तथा पिताकी सम्पत्तिमे पुत्रीको भी उत्तराधिकार प्रदान कर दिया गया है। मुसलमान स्त्रियोंको छोडकर अन्य सभी भारतीय स्त्रियोंको अब उतनी ही स्वतन्त्रता प्राप्त है जितनी भारतीय पुरुषोंको। राष्ट्रकी प्रगतिके पथपर अग्रसर करनेमे भारतीय महिलाएँ भी अब पुरुषोंके साथ कन्धेसे कधा भिडाकर महत्त्वपूर्ण योगदान कर रही है। **(कई राज्योमे महिलाएँ मुख्य-मन्त्रीके पदको सुशोभित कर चुकी हैं। भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा भारतीय पुलिस सेवामे भी अनेक महिलाएँ उच्च पदोपर आसीन है। –स०)**

महिला सिपाही–इनकी भरती अठारहवी शताब्दीकी अन्तिम तिमाहीमे हैदराबादके निजामने की। कहा जाता है कि इन्होंने १७९५ ई० मे मराठो और निजामके बीच कुर्दलाके युद्धमे भाग लिया था। बताया जाता है कि ये महिला सिपाही दिलेरीमे निजामी फौजके पुरुषवर्गसे कमजोर नही साबित हुई।

महीपाल प्रथम (लगभग ९७८–१०३० ई०)–बगालके पालवंशका नवाँ राजा। उसके राज्यकालमे पाल राज्य टूटने लगा था, क्योंकि दक्षिण-पश्चिमी बगालपर सेन वश तथा पूर्वी बंगालपर चन्द्र वशका राज्य हो गया। अन्तमे १०२३ ई० मे चोल राजा राजेन्द्रने बगालपर चढाई की और गगा तट तकके प्रदेशोको जीत लिया। कलचूरि राजा गागेयदेवने भी उसके राज्यपर आक्रमण किया। इसके बावजूद वह देवपालके बाद पालवंशका सबसे बडा शासक हुआ। उसने बनारस, नालन्दा, उत्तरी तथा पश्चिमी बगालमे अनेक जनोपयोगी निर्माण कार्य कराये।

महीपाल द्वितीय–पाल राजा महीपाल प्रथम (दे०) का प्रपौत्र। वह राजा विग्रहपालके तीन पुत्रोमे सबसे बडा था, अतः पिताके बाद वही उत्तराधिकारी हुआ। परन्तु उसने बहुत थोडे समय (लगभग १०७०–७५ ई०) तक राज्य किया। उसका शासन अत्यन्त निर्बल था और विद्रोही कैवर्त नेता दिव्यसे युद्धमे वह पराजित हुआ और मारा गया।

महेन्द्र पाल– (लगभग ८९०–९१० ई०)–गूर्जर-प्रतिहार राजा मिहिर भोज (दे०) का पुत्र तथा उत्तराधिकारी। उसने सौराष्ट्रसे लेकर अवध तक फैले अपने पिताके विशाल साम्राज्यको न केवल अखडित रखा, बल्कि पाल राजाओंको मगधसे निकाल बाहर किया और पश्चिम

बंगालपर चढाई की, जहाँ उसका एक शिलालेख मिलता है। वह विद्वानोंका बडा आदर करता था और उनका आश्रयदाता था। संस्कृतके प्रसिद्ध नाटक 'कर्पूरमंजरी'का रचयिता राजशेखर उसका गुरु और राजसभाका सम्मानित सदस्य था।

महेन्द्र, राजकुमार—सम्राट् अशोक (दे०) का पुत्र अथवा भाई। उसने अपनी बहिन संघमित्राके साथ लगभग २५१ ई० पू०में सिंहल (श्रीलंका) की यात्रा की और वहाँ बौद्ध धर्मका प्रचार किया। उसने राजा तिस्स, राज परिवारके सदस्यों तथा बहुतसे सामान्य नागरिकोंको बौद्धधर्ममें दीक्षित किया। अशोकके किसी शिलालेखमें उसके नामका उल्लेख नहीं है, परन्तु सिंहली इतिहास ग्रन्थों—दीपवंश, महावंश तथा श्रीलंका स्थित अनुराधापुरमें उसकी स्मृतिमें सिंहलियों द्वारा स्थापित महाविहारमें उसके अस्तित्व और महान सफलताओंका पता चलता है। उसकी मृत्यु सिंहलमें ही २०४ ई० पू०में हुई।

महेन्द्रवर्मा प्रथम (लगभग ६००–२५ ई०)—काँचीके पल्लव राजा सिंहविष्णुका पुत्र तथा उत्तराधिकारी। उसने अनेक मन्दिरों तथा गुफाओंका निर्माण कराया, आर्काट और अर्कोनमके बीच महेन्द्रवाडीके नामसे नये नगरकी स्थापना की और उसके निकट एक विशाल जलाशयका निर्माण कराया। लगभग ६१० ई० में चालुक्य राजा पुलकेशी द्वितीय (दे०) ने उसे पराजित कर दिया और वेङ्गि उससे छीन लिया। वह प्रारम्भमें जैन धर्मानुयायी था, पर बादमें शैव हो गया।

महेन्द्रवर्मा द्वितीय—पल्लव राजा महेन्द्रवर्मा (दे०) का पौत्र तथा नरसिंहवर्मा प्रथम (दे०) का पुत्र तथा उत्तराधिकारी। लगभग ६६८ ई० में वह सिंहासनपर बैठा और केवल छ साल राज्य किया। चालुक्य राजा विक्रमादित्यसे वह बुरी तरह पराजित हो गया।

महोबा—उत्तर प्रदेशके हमीरपुर जिलेका एक पुराना नगर। यह चंदेलवंश (दे०) के राजाओंकी राजधानी रहा। उन्होंने नवीं शताब्दीसे तेरहवीं शताब्दी ई० तक राज्य किया। उस समय यह क्षेत्र जेजाक भुक्ति अथवा जुझौती कहलाता था। चंदेल राजाओंने महोबामें कई सुन्दर मन्दिरोंका निर्माण कराया। इन मंदिरोंके ध्वसावशेष उस कालकी श्रेष्ठ वास्तुकला तथा मूर्तिकलाका परिचय देते हैं।

माण्टगोमरी, सर राबर्ट (१८०९–८७ ई०)—१८२८ ई० में कम्पनीकी सेवामें नियुक्त हुआ। वह पहले उत्तर पश्चिमी सीमाप्रांतमें और फिर पंजाबमें रहा। पंजाबपर दखल हो जानेके बाद वह उसके प्रशासकीय बोर्डका सदस्य हो गया। गदर छिडनेपर उसने अपनी ओरसे भारी पहलकदमी की और लाहौर तथा मियाँमीरमें अपनी जिम्मेदारीपर कई हिन्दुस्तानी पलटनोंसे हथियार ले लिये। उसने मुलतान, फीरोजपुर तथा काँगडाको भी आनेवाले संकटकी चेतावनी दे दी। वह १८५९ ई० से १८६५ ई० तक पंजाबका लेफ्टिनेंट-गवर्नर रहा। उसने प्रान्तमें शान्ति और व्यवस्थाकी स्थापना करनेमें बडी योग्यता प्रदर्शित की। भारतसे अवकाश ग्रहण करनेपर वह इंग्लैण्डमें इंडिया कौंसिल (भारत परिषद्) का सदस्य हो गया और १८८७ ई० में अपनी मृत्यु तक उसी पदपर रहा।

माटेग्यू, एडविन सैमुएल (१८७९–१९२४ ई०)—लायड जार्जके मंत्रिमंडलमें १९१७ ई० से १९२२ ई० तक भारतमंत्री। २० अगस्त १९१७ ई० को उसने कामन्स सभामें घोषणा की कि भारतमें क्रमिक रीतिसे उत्तरदायी सरकारकी उपलब्धि ब्रिटिश सरकारकी नीति है। इस नीतिको क्रियान्वित करनेके लिए उसने १९१७–१८ ई० में भारतकी यात्रा की, वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्डके साथ सारे देशका दौरा किया और भारतके सवैधानिक सुधारोंकी रिपोर्ट तैयार करनेमें मुख्य भाग लिया। इसी रिपोर्टमें प्रतिपादित सिद्धांतोंके आधारपर १९१९ ई० का गवर्नमेन्ट आफ इंडिया ऐक्ट तैयार किया गया। उसकी निजी डायरी उसकी मृत्युके छ साल बाद १९३० ई० में प्रकाशित हुई। इस डायरीसे रिपोर्टकी राजनीतिक पृष्ठभूमिपर अच्छा प्रकाश पडता है।

माटेग्यू और प्रधानमंत्री लायड जार्जमें इस बातको लेकर मतभेद था कि भारतीय जनमतको ब्रिटिश सरकारकी तुर्की सम्बंधी नीतिको किस सीमा तक प्रभावित करनेकी अनुमति दी जानी चाहिए। १९२२ ई० में उसने मंत्रिमंडलकी अनुमतिके बिना ही संधिके विरुद्ध भारतको प्रतिवाद प्रकाशित करनेका अधिकार दे दिया। लायड जार्जने इसे परंपराका उल्लंघन माना और माटेग्यूसे इस्तीफा माग लिया। १९२२ ई० में आम चुनावमें अपनी सीट हार जानेपर उसके राजनीतिक जीवनका अंत हो गया। १९२४ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी।

माटेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट—भारतमें सवैधानिक सुधारोंके विषयमें १९१८ ई० में तैयार की गयी।

इसी रिपोर्टके आधारपर १९१९ का गवर्नमेण्ट आफ इंडिया ऐक्ट (दे०, 'भारतमें ब्रिटिश प्रशासन')

तैयार किया गया, जिसमे केन्द्रीय सरकार तथा प्रातीय सरकारके कार्योका स्पष्ट विभाजन किया गया, सभी विधानमडलोमे प्रत्यक्ष निर्वाचनके आधारपर चुने गये जन-प्रतिनिधियोका बहुमत स्थापित कर दिया गया, वाइसरायकी एक्जीक्यूटिव कौंसिलका विस्तार करके उसमे और अधिक भारतीय सदस्योकी नियुक्ति की गयी तथा प्रातोमे द्वैध शासन (दे०) का सूत्रपात किया गया।

माडू–मालवा (दे०) का एक नगर। मालवाके गोरीवशके सुल्तान हुशगशाह (१४०५–३५ ई०) ने इसे अपनी राजधानी बनाया। यह पहाडीकी चोटीपर स्थित दुर्ग था, जिसका परकोटा लगभग २५ मील लम्बा था। इस दुर्ग-नगरमे अनेक सुन्दर मसजिदो तथा महलो–जैसे, जामी मसजिद, हिंडोला महल, जहाजमहल, बाज-बहादुर और रूपमतीके महलके ध्वसावशेष मिलते है। बाजबहादुर और रूपमतीके महल बलुआ पत्थर और सगमरमरके बने है। बादशाह जहाँगीरको यह नगर बडा पसद आया और वह १६१७ ई० मे यहाँ ठहरा। उसने यहाँकी कुछ इमारतोकी मरम्मत भी करायी थी।

माउण्टबेटेन, लुई, लार्ड–जन्म १६०० ई० मे विण्डसरमे बैटेनवर्गके प्रिंस लुई तथा महारानी विक्टोरियाकी पौत्री, हेसकी राजकुमारी विक्टोरियाका पुत्र। १६१३ ई० मे उसने ब्रिटिश नौसेनामे प्रवेश किया और योग्यता तथा चुस्तीके कारण द्वितीय विश्वयुद्धमे नौसेनाका उच्च कमाडर नियुक्त हुआ। १६४३ ई० मे उसे दक्षिण-पूर्वी एशियामे मित्रराष्ट्रीय सेनाओका सर्वोच्च कमाडर नियुक्त कर दिया गया। वह इस पदपर १६४६ ई० तक रहा। उसने जापानके विरुद्ध युद्धका सफलतापूर्वक सचालन किया, जिसके फलस्वरूप बर्मापर फिरसे अधिकार कर लिया गया।

वह १६४७ ई० मे भारतका वाइसराय नियुक्त हुआ। उसने १५ अगस्त १६४७ ई० को भारतका भारत तथा पाकिस्तानके रूपमे विभाजन करके ब्रिटिश हाथोसे भारतीय हाथोमे सत्ता हस्तानरणके कार्यमे भारी युक्तिकौशल, चुस्ती तथा राजनीतिक सूझ-बूझका परिचय दिया। वह भारतके नये राज्यका गवर्नर-जनरल नियुक्त हुआ। इस हैसियतसे उसने देशी राजाओको अपनी रियासतोको भारत-सघ अथवा पाकिस्तानमे विलयन करनेके लिए प्रेरित करनेमे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। बादमे जब पाकिस्ताननै सीमापातके कबीलेवालोको कश्मीरपर हमला करनेमे मदद दी, उसने भारत सरकारको विवाद सयुक्त राष्ट्रसघकी सुरक्षा परिषद्मे पेश करनेकी सलाह दी और इस प्रकार भारत तथा पाकिस्तानके बीच कश्मीर-विवाद उत्पन्न करनेमे मदद की। १६४८ ई० मे भारतके गवर्नर-जनरलके पदसे अवकाश ग्रहण करनेपर ब्रिटिश नौ-सेनाके उच्चपदोपर रहा। १६५५ से १६६५ ई० तक वह ब्रिटेनका प्रधान नौ-सेनाध्यक्ष रहा।

माधवराव–पेशवा बालाजीरावका दूसरा लडका, जो उसके मरनेपर १७६१ ई० मे पेशवा बना। उस समय उसकी उम्र केवल १७ वर्ष थी। पानीपतकी तीसरी लडाईमे मराठोकी जबर्दस्त हारके बाद ही वह पेशवा बना। प्रारम्भमे उसका चाचा रघुनाथराव उसकी ओरसे शासन करता रहा, परतु शीघ्र ही उसने शासन-सूत्र अपने हाथमे ले लिया। धीरे-धीरे उसने पानीपत-की हारके फलस्वरूप पेशवाकी खोयी हुई सत्ता और प्रतिष्ठा फिरसे स्थापित कर दी। निजामको दो बार पराजयका मुँह देखना पडा और पेशवाकी शक्ति तोड देनेका उसका प्रयत्न विफल रहा। मैसूरका हैदरअली (दे०) भी, जिसने दक्षिणमे मराठोके इलाकोपर दखल करना शुरू कर दिया था, दो बार पराजित हुआ बरारका भोसले राजा भी, जो पेशवाके विरुद्ध निजाम और हैदरअलीसे गठबधन किये हुए था, पराजित हुआ और उसने पेशवाकी अधीनता स्वीकार कर ली। पेशवा माधवरावको सबसे बडी सफलता उत्तरी भारतमे मिली, जहाँ १७७१–७२ ई० मे उसकी सेनाने मालवा तथा बुदेलखडपर फिरसे अधिकार कर लिया, राजपूत राजाओसे चौथ वसूल की, जाटो और रुहेलोका दमन किया, दिल्लीपर फिरसे दखल कर लिया और भगोडे मुगल बादशाह शाहआलम द्वितीय (१७५६–१८०६ ई०) को, जो इलाहाबादमे ईस्ट इडिया कम्पनीकी पेन्शनपर रह रहा था, फिरसे दिल्लीके तख्तपर बैठाया। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि पानीपतकी तीसरी लडाई (दे०) के फलस्वरूप मराठोकी शक्तिको जितनी क्षति पहुँची थी, उस सबकी भरपाई कर ली गयी है। इसी समय अचानक १७७२ ई० मे महान् पेशवा माधवरावका देहान्त हो गया। जैसा कि ग्राण्ट डफने लिखा है 'मराठा साम्राज्यके लिए पानीपतका मैदान उतना घातक सिद्ध नही हुआ जितना इस श्रेष्ठ शासकका असामयिक देहावसान।'

माधवराव नारायण (जिसे माधव तृतीय भी कहते है)–पेशवा नारायणराव (दे०) के मरनेके बाद पैदा हुआ और १७७४ ई० मे पिताका उत्तराधिकारी बना। उस

समय वह शिशु था, इसलिए शासनकार्य चलानेके लिए एक समिति नियुक्त कर दी गयी और नाना फडनवीस उसका प्रधान नियुक्त हुआ। माधवरावका दादा (उसके पिता नारायणरावका चाचा) राघोबा ईस्ट इंडिया कम्पनीसे षड्यंत्र करके स्वयं पेशवा बननेका प्रयत्न करने लगा। इसके फलस्वरूप पहला मराठा-युद्ध (१७७५-८२ ई०) हुआ जिसका अंत सालबाईकी संधि (१७८२ ई०) से हुआ। इस संधिके फलस्वरूप पेशवाका राज्य अखंडित रहा। पेशवाके बालक होनेके कारण सत्तापर अधिकार प्राप्त करनेके लिए महादजी शिन्दे और नाना फडनवीसमें गहरी प्रतिद्वन्द्विता चली, जिससे मराठोंकी शक्ति क्षीण हो गयी। १७९४ ई० में महादजी शिन्देकी मृत्यु होनेपर यह आपसी प्रतिद्वंद्विता समाप्त हुई। अगले साल (१७९५ ई० में) मराठोंने खर्डा (दे०) की लड़ाईमें निजामको पराजित किया। परंतु तरुण पेशवा माधवराव नारायण नाना फडनवीसकी कड़ी निगरानीमें रहनेके कारण जिन्दगीसे ऊब गया था और १७९५ ई० में उसने आत्महत्या कर ली।

माधवराव शिन्दे–ग्वालियर (दे०) का १८८६ से १९२५ ई० तक शासक रहा। वह उदार शासक था और उसने रियासतके शासन-प्रबंधमें कुछ उपयोगी सुधार किये।

माधवाचार्य–सुप्रसिद्ध वेद-भाष्यकार सायणका भाई। वह प्रकांड विद्वान् और प्रसिद्ध धर्म-शास्त्रकार था। उसने अनेक ग्रंथोंकी रचना की। वह विजयनगर (दे०) के दूसरे राजा बुक्क (राज्यारोहण १३५४ ई०) का मंत्री भी था।

माधवाचार्य–हुगली जिलेके त्रिवेणी स्थानका निवासी एक बंगाली कवि। वह अकबरका समसामयिक और 'चंडी-मंगल' का रचयिता था। मालूम पड़ता है कि उसे मुगल बादशाहका कुछ सीमा तक आश्रय प्राप्त था।

मानवबलि–यह सामाजिक कुप्रथा उड़ीसाकी कुछ जनजातियोंमें प्रचलित थी। लार्ड हार्डिंज प्रथम (१८४४–४८ ई०) के शासनकालमें इस सामाजिक कुरीतिको मिटानेकी दिशामें कदम उठाये गये और जान कैंपबेलके नेतृत्वमें १८४७ से लेकर १८५४ ई० के बीच इसे मिटा दिया गया।

मानसिंह–ग्वालियरके तोमरवंशी राजपूतोंमें सबसे प्रसिद्ध राजा। उसने १४८६ ई० से १५१७ ई० तक राज्य किया। वह महान् योद्धा तथा भवन-निर्माता था। जब तक वह जीवित रहा उसने दिल्लीके सुलतानोंके साथ-साथ जौनपुर तथा मालवाके मुसलमान शासकोंको अपने राज्यसे दूर रखा और ग्वालियरकी स्वतंत्रता बनाये रखी। मृगनयनी उसकी प्रिय रानी थी। दोनोंने ग्वालियरको संगीत आदि कलाओंका एक महान् केन्द्र बना दिया। भारतके सर्वोत्तम गायकों और वादकोंका ग्वालियरमें जमघट लगा रहता था। मानसिंहने ग्वालियरका भव्य महल बनवाया। उसका विशाल पूर्वी द्वार उसके निर्माताके विशाल व्यक्तित्वका प्रतीक है।

मानसिंह, कुँवर एवं राजा–आमेरके राजा बिहारीमल (दे०) का गोद लिया हुआ पौत्र। १५६२ ई० में राजा बिहारीमलने बादशाह अकबरकी अधीनता स्वीकार कर ली और अपनी लड़की उसे व्याह दी। उसी समय कुँवर मानसिंहने भी बादशाहकी सेवा स्वीकार कर ली। मानसिंहने १६१४ ई० में दक्खिनमें मृत्यु होने तक मुगल साम्राज्यकी बहुमूल्य सहायता की। वह महान् सेनापति था और उसने मुगलोंको अनेक युद्धोंमें चतुर्दिक् विजय दिलायी। उसे काबुल तथा बंगाल जैसे महत्त्वपूर्ण सूबोंकी सूबेदारी सौंपी गयी। उसने अफगानोंको पराजित कर उनसे मुगलोंकी अधीनता स्वीकार करायी। वह मुगल साम्राज्यका एक प्रमुख समर्थक हिन्दू था।

मानसेल, चार्ल्स जी०–पंजाबपर १८४९ ई०में अधिकार करनेके बाद उसका शासन-प्रबंध करनेके लिए लार्ड डलहौजीने जो बोर्ड नियुक्त किया था, उसका सदस्य। वह १८५१ ई०तक बोर्डका सदस्य रहा।

मान्यखेट–आधुनिक नाम मालखेड, जो आंध्रप्रदेशका ऐतिहासिक नगर है। राजा अमोघ वर्ष (लगभग ८१५-७७ ई०) ने इसे राष्ट्रकूटोंकी राजधानी बनाया। इस नगरमें अनेक जैन मंदिर हैं।

मान्सन, कर्नल सर जार्ज (१७३०–७६ ई०)–कम्पनीकी सेवामें एक फौजी अफसर बनकर १७५८ ई०में भारत आया। १७६० ई०में जब पांडिचेरीका घेरा डाला गया, वह सहायक कमांडर था। १७७४ ई०में वह रेग्युलेटिंग ऐक्ट (दे०)के अंतर्गत गवर्नर-जनरलकी कौंसिलका सदस्य नियुक्त किया गया। वह आमतौरसे वारेन हेस्टिंग्सके विरुद्ध अपने दो सहयोगियों फ्रांसिस और क्लेवरिंगका साथ दिया करता था। वारेन हेस्टिंग्स उसे अपना खतरनाक विरोधी मानता था। किन्तु सितम्बर १७७६ ई०में उसने इस्तीफा दे दिया और इसके बाद ही बंगाल, हुगली (दे०)में उसकी मृत्यु हो गयी।

मामल्लपुरम्–नगरकी स्थापना पल्लव राजा नरसिंह वर्मा (लगभग ६२५–४५ ई०) ने की। इसे अब महाबलिपुरम् कहते हैं। नगरकी सबसे आश्चर्यजनक कृति 'सात

रथ हे, जो चट्टानोको तराश कर बनाये गये हे। प्रत्येक रथपर शिल्पकलाके सुंदर नमूने देखनेको मिलते हैं। संभवतः दक्षिण-पूर्व एशियाके चम्पा (दे०), कम्बोडिया (दे०) आदि देशोमे वास्तुकलाकी जो कृतियाँ मिलती है, उनकी प्रेरणा मामल्लपुरम्‌की कृतियोंसे ली गयी थी।

मामुलनार–एक प्राचीन तमिल कवि, जो मोर्यो (दे०)के चार शताब्दी बाद हुआ। उसने अपनी रचनाओमे दक्षिण भारतमे विख्यात मौर्योकी राजशक्तिका बार-बार उल्लेख किया है।

मारवाड–देखिये, 'जोधपुर'।

मार्टिन, रेवरेंड हेनरी–भारतमें सबसे पहले जो अंग्रेज ईसाई पादरी पहुँचे, उनमेसे एक। जिस समय वह आया, ईस्ट इंडिया कम्पनी ईसाई पादरियोको अपने क्षेत्रमे रहनेकी अनुमति नही देती थी। कम्पनीको भय था कि उनके द्वारा ईसाई धर्मका प्रचार करनेसे भारतीय लोग कम्पनीके विरुद्ध भडक उठेगे। इसलिए हेनरी मार्टिन बंगालमे ईस्ट इंडिया कम्पनीका चैपलिन (गिरजाघरमे धार्मिक कृत्य सम्पादन करनेवाला) नियुक्त हो गया। वह उन्ही धार्मिक कृत्योको सम्पादित करता था जो उसके पदके अनुरूप थे। १८१३ ई०मे ईसाई पादरियो द्वारा धर्म प्रचारपर लगी पाबंदी उठा ली गयी।

मार्तंड मंदिर–कश्मीरमे राजा ललितादित्य (दे०)ने बनवाया। उसने कश्मीरपर ७२४ ई०से ७६० ई० तक राज्य किया।

मार्ले, जान (१८३८–१९२८ ई०)–१९०५ से १९१० ई० तक भारत-मन्त्री रहा। १९०७ ई०मे उसने जहाँ एक ओर भारतमे आतंकवादियोके विरुद्ध कडी कारवाई करनेका समर्थन किया, वही दूसरी ओर लंदनमे भारत-मन्त्रीकी कौंसिलमे दो भारतीयो तथा वाइसरायकी एक्जीक्यूटिव कौंसिलमे एक भारतीयकी नियुक्ति करके शिक्षित भारतीयोको सतुष्ट करनेका यत्न किया। उसने भारतमे संसदीय शासन-व्यवस्थाकी स्थापना करनेका कोई सरकारी इरादा होनेसे इनकार किया, किंतु १९०९ ई०का गवर्नमेण्ट आफ इंडिया ऐक्ट पास करके भारतके संविधानमे काफी परिवर्तन कर दिया। यह मार्ले-मिण्टो सुधार कानूनके नामसे विख्यात हे। इसके अंतर्गत भारतीय संविधानमे पहलेसे अधिक बड़ी संख्यामे निर्वाचित जन-प्रतिनिधियोकी व्यवस्था की गयी, विधान-मंडलोमे प्रश्न पूछने, बजटपर बहस करने तथा प्रस्ताव पेश करनेका अधिकार दे दिया गया। लार्ड मिण्टो द्वितीय (दे०)के साथ-साथ वह भी भारतीय विधान-मंडलोमे साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वकी प्रणाली आरम्भ करनेके लिए जिम्मेदार था। दस वर्ष बाद, भारतमन्त्रीके पदसे हट जानेके पश्चात् उसने माटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारो (दे०)को असामयिक बताया था। वह युद्ध-विरोधी था और १९१४ ई०मे प्रथम विश्वयुद्ध छिडनेपर उसने सार्वजनिक जीवनसे अवकाश ग्रहण कर लिया। वह प्रसिद्ध लेखक भी था और १९२३ ई०मे मृत्युसे पहले उसकी गणना सबसे वयोवृद्ध अँग्रेजी साहित्यकारोमे की जाने लगी थी। अंग्रेजी भाषामे उसकी मुख्य पुस्तके 'ग्लैडस्टोनका जीवन' (१९०३ ई०), 'वाल्टेयर' (१८७२ ई०), 'रूसो' (१८७३ ई०), 'काबडेन' (१८८१ ई०), 'बर्क' (१८७९ ई०), 'वालपोल' (१८८९ ई०), 'क्रामवेल' (१९०० ई०) तथा १९१७ ई०मे प्रकाशित उसके 'संस्मरण' (दो खड) हैं।

मार्ले-मिन्टो सुधार–देखिये, 'भारतमे ब्रिटिश प्रशासन'।

मार्शमैन, जान–एक अंग्रेज ईसाई पादरी जो बैप्टिस्ट मिशनका सदस्य था। वह श्रीरामपुरमे बस गया जो उस समय डच लोगोके कब्जेमे था। उसने 'फ्रेंड आफ इंडिया' नामक एक अंग्रेजी पत्र निकाला, जिसका उद्देश्य ईसाई धर्मका प्रचार तथा समाज-सुधार था। वह भारतमे शिक्षा-प्रचारपर बल देता था और कलकत्तामे एक विश्वविद्यालयकी स्थापनाके प्रस्तावका समर्थक था।

मालगुजारी–अथवा भूमिकर, अत्यन्त प्राचीन कालसे भारतमे सरकारकी आयका मुख्य स्रोत रहा हे। राज्यको भूमिकी उपजका एक भाग करके रूपमे लेनेका अधिकार है, यह सिद्धान्त भारतमे सदासे सर्वमान्य रहा है। मौर्य, गुप्त आदि हिन्दू राजाओके शासनकालमे भूमिकी उपजका एक छठाँ भाग करके रूपमे लिया जाता था। मुसलमानी शासन कालमे भूमिकर बहुधा मनमाने ढंगसे बढा दिया जाता था। अकबरने मालगुजारीकी दर भूमिकी उपजका एक तिहाई भाग निश्चित कर दी और समूचे मुगल शासन-कालमे यही दर वैध मानी जाती थी। परतु व्यवहार रूपमे मालगुजारीकी दर तथा मालगुजारीकी वसूलीकी व्यवस्थामे अनगिनत उलट-फेर होते रहते थे।

ब्रिटिश शासन-कालमे मुगल कालकी व्यवस्था कुछ आवश्यक संशोधनोके साथ स्वीकार कर ली गयी। सिद्धात रूपमे मालगुजारीकी दर भूमिकी उपजका कमसे कम एक तिहाई भाग निर्धारित रखी गयी और उसे सरकारकी आयका मुख्य स्रोत माना गया। परन्तु अंग्रेजोंने मुगलोकी अपेक्षा समय-समयपर भूमिकी पैमाइश करानेकी कही अधिक विशद् व्यवस्था की। भूमिकी पैमाइश सबसे

पहले सोलहवीं शताब्दीमें शेरशाह सूर (दे०) ने करायी थी। उसने भूमिकी समस्त पैदावार और नकदीमें उसका मूल्य निश्चित कर दिया और सरकारके भागका समस्त भूमि-कर नकदीमें वसूल करनेकी व्यवस्था की। ब्रिटिश शासन कालमें भूमि-कर घटानेकी दिशामें कोई कदम नहीं उठाया गया। भारतीय गणराज्यकी वर्तमान सरकारने भूमिकरकी ब्रिटिश व्यवस्था कायम रखी है, यद्यपि सरकार और किसानोंके बीच जमींदार तालुकेदार, जोतदार आदि मध्यवर्तियोंको हटाने और किसानको अपनी जोतका मालिक बनानेकी दिशामें तेज कदम उठाये गये हैं।

मालव–मालवगणका पश्चाद्वर्ती निवासस्थान। मालवगण प्राचीन कालमें भी विख्यात था। यूनानी इतिहासकारोंने सम्भवतः इसे ही मल्लोईकी संज्ञा दी है। सिकन्दरके आक्रमणके समय हाइड्राओटिस (इरावती अथवा आधुनिक रावी) नदीके दक्षिणी भागमें उसके दाहिने तटपर गणका वास था। जब सिकन्दरने इस गणके नगरोंपर हमला किया, उन्होंने सिकन्दरको जख्मी कर दिया। आक्रमणकारी यवन सेनाने इस गणको पराजित कर दिया और उसके हजारों निरपराध नर-नारियोंको मार डाला। किसी अनिश्चित कालमें यह गण अवन्तीमें आ बसा और उसके नामपर यह क्षेत्र मालव अथवा मालवा कहा जाने लगा। उज्जयिनी मालव की राजधानी बनी। प्रारम्भमें उज्जयिनीमें गणतन्त्रात्मक शासन था, बादमें राजतन्त्रात्मक शासनकी स्थापना हुई। ईसवी सन्‌की प्रारम्भिक शताब्दियोंमें यहाँ शक क्षत्रपोंका शासन स्थापित हुआ। चौथी शताब्दी ई०में उन्होंने समुद्र गुप्तकी सार्वभौम सत्ता स्वीकार कर ली। समुद्रगुप्तके पुत्र एवं उत्तराधिकारी चन्द्रगुप्त द्वितीयने इसे गुप्त साम्राज्यमें सम्मिलित कर लिया। पांचवीं शताब्दीके प्रारम्भमें चीनी यात्री फाहियान (दे०) ने मालवाकी यात्रा की थी। उसने यहाँके लोगोंको सम्पन्न पाया। यहाँकी जलवायु उसे बहुत स्वास्थ्यप्रद लगी और यहाँके सुशासनसे वह बहुत प्रभावित हुआ। गुप्त साम्राज्यके पतनके बाद मालवापर हूणोंका आधिपत्य हो गया। लगभग ५२८ ई०में राजा यशोधर्माने हूणोंको परास्त किया और मालवगणकी प्रसिद्ध तथा प्राचीन नगरी उज्जयिनीको अपनी राजधानी बनाया।

उज्जयिनी हिन्दुओंकी न केवल एक पवित्र नगरी है, वरन् वह विद्याका केन्द्र भी रही है। इसका नाम परम्परागत रूपमें महान् राजा विक्रमादित्य (दे०) और इसके प्रसिद्ध राजकवि कालिदासके साथ जुड़ा हुआ है। मालवागणका यह क्षेत्र धीरे-धीरे मालवाके सुशासित राज्यमें विकसित हो गया। बादकी शताब्दियोंमें यह राज्य पहले चालुक्य राज्य और फिर गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्यका एक भाग रहा। १३०१ ई०में सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीने इसे दिल्लीकी सल्तनतमें सम्मिलित कर लिया। १४०१ ई०में यह स्वतन्त्र मुस्लिम राज्य बन गया। १५३१ ई०में इसे गुजरातके सुल्तानने अपने अधीन कर लिया, परन्तु इकतालीस वर्षों बाद अकबरने १५७२-७३ ई०में इसपर चढ़ाई करके इसे मुगल साम्राज्यमें सम्मिलित कर लिया। १७३८ ई०में यह मराठोंके अधिकारमें आ गया और इसपर शिन्दे (दे०) शासन करने लगा। तीसरे मराठा-युद्ध (दे०)में शिन्देके पराभवके बाद यह ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया गया।

मालविकाग्निमित्र–महाकवि कालिदासका प्रसिद्ध संस्कृत नाटक, जिसकी रचना सम्भवतः पाँचवीं शताब्दी ई०में हुई। इस नाटककी कथावस्तु प्रथम शुंग राजा पुष्यमित्र (दे०) तथा उसके पुत्र अग्निमित्र तथा अग्निमित्र और मालविकाकी प्रेमकथापर आधारित है। इस नाटकसे ऐतिहासिक महत्त्वकी कुछ सामग्री प्राप्त होती है।

मालवीय, पंडित मदनमोहन (१८६१–१९४६ ई०)–प्रमुख राष्ट्रीय नेता, शिक्षाविद् तथा समाजसुधारक। उनका जन्म प्रयागमें हुआ। १८८५ ई०में वे एक स्कूलमें अध्यापक हो गये, परन्तु शीघ्र ही वकालतका पेशा अपना कर १८९३ ई०में इलाहाबाद हाईकोर्टमें वकीलके रूपमें अपना नाम दर्ज करा लिया। उन्होंने पत्रकारिताके क्षेत्रमें भी प्रवेश किया और १८८५ तथा १९०७ ई०के बीच तीन पत्रों—हिन्दुस्थान, इंडियन यूनियन तथा अभ्युदयका सम्पादन किया। जीवनकालके प्रारम्भमें ही वे राजनीतिमें रुचि लेने लगे और १८८६ ई०में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके दूसरे अधिवेशनमें सम्मिलित हुए। दो बार १९०९ तथा १९१८ ई०में कांग्रेसके अध्यक्ष हुए। १९०२ ई०में यू० पी० लेजिस्लेटिव कौंसिलके सदस्य और बादमें लेजिस्लेटिव असेम्बलीके सदस्य चुने गये। वे ब्रिटिश सरकारके निर्भीक आलोचक थे और उन्होंने पंजाबकी दमन नीतिकी तीव्र आलोचना की, जिसकी चरम परिणति जलियाँवालाबाग हत्याकाण्ड (दे०) में हुई। वे कट्टर हिन्दू थे, परन्तु शुद्धि (हिन्दू धर्म छोड़कर दूसरा धर्म अपना लेनेवालोंको पुनः हिन्दू बना लेने) तथा अस्पृश्यता-निवारणमें विश्वास करते थे। वे तीन बार

हिन्दू महासभाके अध्यक्ष चुने गये। उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि १९१५ ई०मे बनारसमें हिन्दू विश्वविद्यालय-की स्थापना है। विश्वविद्यालयकी स्थापनाके लिए उन्होंने सारे देशका दौरा करके देशी राजाओं तथा जनतासे चंदाकी भारी राशि इकट्ठा की थी।

मावली–शिवाजी (दे०)के समयमें पश्चिमी घाटोंमें रहनेवाली एक पहाड़ी जाति, जो बहुत पिछड़ी हुई थी। मावली युवक अत्यन्त वीर, परिश्रमी तथा अपने नये नेताके स्वामिभक्त थे। वे अपने क्षेत्रके सभी पहाड़ी मार्गों तथा भूमिके एक-एक चप्पेसे परिचित थे। अपनी तरुणावस्थामें उन्हींके साथ रहनेके कारण शिवाजीने अपने देशकी भूमिका घनिष्ठ परिचय प्राप्त कर लिया।

मासिरे-आलमगीरी–यह रचना मुहम्मद साकीने की। यह एक प्रकारसे बादशाह औरंगजेब (१६५८–१७०७ ई०) के समय और जीवनपर प्रकाश डालनेवाला समसामयिक इतिहास-ग्रंथ है।

मासूद–गजनीके सुल्तान महमूद (दे०)का लड़का। वह प्रसिद्ध विद्वान् तथा इतिहासकार अबु रिहान मुहम्मदका, जो अल-बरूनी (दे०)के नामसे विख्यात है, संरक्षक था।

मास्की–आंध्रप्रदेशके रायचूर जिलेमें एक छोटा-सा गाँव। सम्राट् अशोकके प्रथम लघु शिलालेखकी एक प्रति १९१६ ई०में मास्कीमें मिली थी। अशोकका मास्की शिलालेख इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि यह एक मात्र शिलालेख है जिसमें दूसरे शिलालेखोंकी भाँति उसका नाम देवानांप्रियके साथ-साथ अशोक भी दिया हुआ है। इस शिलालेखसे प्रमाणित हो जाता है कि राजा देवानांप्रिय प्रियदर्शी तीसरा मौर्य सम्राट् अशोक था। जार्ज टर्नोरने १८३७ ई०में केवल अनुमानसे देवानांप्रिय प्रियदर्शीकी पहचान अशोकसे की थी।

माहम अनगा–बादशाह अकबरके बचपनमें उसकी मुख्य अनका (दूधमाता) थी और अदहम खाँकी माँ थी। वह हरमके अन्दर उस दलमें सम्मिलित थी जो बैरम खाँ (दे०)के राज्यका सर्वेसर्वा बने रहनेका विरोधी था। उसने अकबरको बैरम खाँके हाथसे सल्तनतकी बागडोर छीननेके लिए प्रोत्साहित करनेमें महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। १५६० ई०में अकबर बैरम खाँको आगरामें छोड़कर दिल्ली अपनी बेवा माँके पास चला आया। अगले दो साल तक माहम अनकाका उसके ऊपर बहुत अधिक प्रभाव रहा। १५६१ ई०में उसने अकबरके कोपसे अपने बेटे अदहम खाँको बचाया। परन्तु अगले साल जब अदहम खाँने अतगा खाँ, वजीरकी हत्या कर डाली तो वह उसकी रक्षा नहीं कर सकी। अकबरके हुक्मसे उसे बाँध कर किलेके परकोटेसे नीचे फेंक दिया गया, जिससे वह मर गया। अपने बेटेके शोकमें माहम अनगा (अनका)की भी शीघ्र मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्युसे अकबर हरमके प्रभाव से मुक्त हो गया।

मिंगन्ती–चीनके प्रारम्भिक हान वंशका एक सम्राट् (५८-७५ ई०)। उसने ६२ ई०में स्वप्नमें बुद्धका दर्शन किया और उनके धर्मके बारेमें जानकारी प्राप्त करनेके लिए राजदूत भारत भेजे। वे कुछ बौद्ध ग्रंथ, मूर्तियाँ तथा दो भारतीय बौद्ध भिक्षुओं—काश्यप मातंग (दे०) तथा गोवर्धन (दे०)को लेकर चीन वापस लौटे। दोनों भारतीय भिक्षु चीनमें बस गये, उन्होंने कुछ बौद्ध ग्रंथोंका चीनी भाषामें अनुवाद किया तथा कुछ चीनियोंको बौद्ध धर्ममें दीक्षित किया। इस प्रकार सम्राट् मिंगन्तीने सबसे पहले चीनमें बौद्ध धर्मका प्रवेश कराया।

मिण्टो, अर्ल, प्रथम (१७५१–१८१४ ई०)–भारतका १८०७ से १८१३ ई० तक गवर्नर-जनरल। वह अहस्तक्षेपकी नीतिका समर्थक था और उसके शासन कालमें भारत किसी बड़े युद्धमें नहीं फँसा। परन्तु उसने कई राजनीतिक सफलताएँ प्राप्त कीं। उसने १८०९ ई०में शक्ति प्रदर्शनके द्वारा पेंढारी नेता अमीर खाँको बरारमें हस्तक्षेप करनेसे रोक दिया। उसकी सबसे बड़ी राजनीतिक सफलता पंजाबके महाराज रणजीत सिंहके साथ १८०९ ई०में की गयी अमृतसरकी संधि (दे०) थी, जिसके द्वारा सतलज पंजाबके सिख राज्य तथा ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यकी सीमा मान ली गयी। भारतपर फ्रांस और रूसके सम्मिलित हमलेको रोकनेके लिए लार्ड मिण्टोने १८०८ ई० में सर जान माल्कमको दूत बनाकर फारस भेजा और उसी साल माउण्ट स्टुअर्ट एल्फिन्स्टनको अफगानिस्तानके अमीर शाहशुजाके पास भेजा। फ्रांस और रूसके खतरेको दूर करनेके उपायोंके बारेमें दोनों राज्योंसे समझौता हो गया। १८१० ई०में फ्रांस और रूसकी दोस्ती टूट जानेसे यह खतरा दूर हो गया। परन्तु फ्रांसके हमलेका भय बना रहा और लार्ड मिण्टो प्रथमने १८१० ई०में पश्चिममें बोर्बन तथा मारिशसके फ्रांसीसी द्वीपोंको तथा पूर्वमें डच लोगों द्वारा अधिकृत अम्बोयना तथा मसालेवाले द्वीपोंको तथा १८११ ई०में जावा द्वीपको जीत लिया। इस प्रकार लार्ड मिण्टो प्रथमने फ्रांस तथा पूर्वी द्वीप-समूहके उसके अधीनस्थ राज्योंके बढ़ावपर प्रभावशाली ढंगसे रोक लगा दी।

मिण्टो, अर्ल, द्वितीय (१८४५–१९१४ ई०)—लार्ड कर्जन (दे०)के बाद १९०५ से १९१० ई० तक भारतका वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल। वह लार्ड मिण्टो प्रथमका प्रपौत्र था। लार्ड कर्जनने भारतमे जो सकटपूर्ण स्थिति उत्पन्न कर दी थी उसका सामना करनेमे तथा तत्कालीन भारत-मन्त्री लार्ड मार्लेके साथ मिल-जुलकर कार्य करनेमे उसने काफी युक्ति-कौशलका परिचय दिया। लार्ड कर्जन और प्रधान सेनापति लार्ड किचनर (दे०) एक दूसरेसे झगडा कर बैठे थे। उसने लार्ड किचनरसे झगडा रफा किया और अफगानिस्तानके अमीरके सम्बन्धोमे काफी सुधार किया। अमीर उससे मिलनेके लिए कलकत्ता आया।

किन्तु लार्ड मिण्टो द्वितीयके सामने सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य राष्ट्रीयतावादी विचारधाराको सतुष्ट करना था। लार्ड कर्जनके वग-भगके अविवेकपूर्ण आदेशसे भारतमे राष्ट्रीय जागरण की जबर्दस्त हिलोर उठने लगी थी और आतकवादी गतिविधियोमे भी काफी वृद्धि हो गयी थी। लार्ड मिण्टो द्वितीयने आतकवादी गतिविधियोका दमन करने तथा समाचार पत्रोका मुँह बन्द करके न्याय और व्यवस्थाको बनाये रखनेके लिए कडे कदम उठाये। उसने रेग्युलेशन ३ के अन्तर्गत राष्ट्रीयतावादी नेताओका निष्कासन करके तथा बिना मुकदमा चलाये लोगोको नजरबन्द करके उग्र राष्ट्रीय आन्दोलनका दमन करनेकी कोशिश की। इसके साथ ही उसने भारतमे नरम विचारधाराके नेताओको सतुष्ट करनेके लिए कुछ कदम उठाये। उसने भारत-मन्त्रीकी कौन्सिलमे पहली बार दो भारतीयोको नियुक्त करना तथा वाइसरायकी एक्जीक्यूटिव कौन्सिलमे पहली बार एक भारतीयकी नियुक्ति करना स्वीकार कर लिया। इसके साथ ही उसने गवर्नमेण्ट आफ इडिया ऐक्ट, १९०९ ई० (जिसे मार्ले-मिण्टो सुधार ऐक्ट भी कहते है) पास करवा कर महत्त्वपूर्ण शासन-सुधार भी किये। इस ऐक्टके द्वारा विधान-मडलोके प्रत्यक्ष निर्वाचनकी प्रथा शुरू करने तथा प्रान्तीय एव केन्द्रीय विधान मण्डलोमे निर्वाचित प्रतिनिधियोकी सख्या बढाकर भारतमे क्रमिक रीतिके स्वशासनका विस्तार करनेकी नीतिका सूत्रपात किया गया।

लार्ड मिण्टो द्वितीयने हिन्दुओके बढते राजनीतिक प्रभावको रोकनेके लिए जान-बूझकर मुसलमानोको प्रोत्साहन देनेकी नीति अपनायी, विधान मण्डलोमे मुसलमानोको साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व देनेकी माँगको कानूनी मान्यता प्रदान की, १९०६ ई०मे मुसलिम लीगकी प्रतिष्ठापनाको बल प्रदान किया और इस प्रकार भावी साम्प्रदायिक वैमनस्यका बीज बो दिया।

मिताक्षरा—सस्कृत भाषामे धर्मशास्त्रका (याज्ञवल्क्य स्मृतिका व्याख्यान-रूप) प्रसिद्ध ग्रथ है। इसका प्रणयन विज्ञानेश्वरने किया, जो चालुक्योकी राजधानी कल्याणीमे विक्रमादित्य चालुक्य (दे०) (१०७६–११२६ ई०) के राज्यकालमे रहता था। बगाल तथा आसामके अतिरिक्त शेष भारतमे हिन्दू कानूनके विषयमे मिताक्षराको प्रमाण माना जाता है। उत्तराधिकारके सम्बन्धमे इसमे यह आधारभूत सिद्धात प्रतिपादित किया गया है कि हिन्दू परिवारमे समस्त पैतृक सम्पत्तिमे पुत्र पिताका सहभागी होता है और उसे अपनी स्वीकृतिके अतिरिक्त अन्य किसी रीतिसे उत्तराधिकारसे वचित नही किया जा सकता।

मिथ्रियातस प्रथम—पार्थियाका राजा (लगभग १७१ ई० पू०–१३६ ई० पू०)। उसने तक्षशिलाका राज्य, जो सिंधु तथा हाइडसपीस (झेलम) नदियोके बीच स्थित था, अपने राज्यमे मिला लिया।

मिदनापुर—पश्चिम बगालका एक नगर तथा जिला। इसका कुछ भाग बगालकी खाडीके तटपर स्थित है। प्राचीन ताम्रलिप्ति जलपट्टन, जहाँसे चीनी यात्री फा-हियान (दे०) पोतपर सवार होकर चीन वापस गया, अब तामलुक नगर कहलाता है और मिदनापुर जिलेमे समुद्र तटसे ६० मीलकी दूरीपर स्थित है। १७६० ई०मे नवाब मीरकासिम (१७६०–६३ ई०)ने बगालका नवाब बनाये जानेपर मिदनापुर जिलेके साथ-साथ बर्दवान तथा चटगाँव जिला ईस्ट इडिया कम्पनीको दे दिया था।

मिनहाजे-सिराज (पूरा नाम मिनहाजुद्दीन)—एक प्रसिद्ध इतिहासकार। वह सुल्तान नासिरुद्दीन (दे०) (१२४६–६६ ई०)के अधीन एक उच्च पदासीन था। उसने उसीके नामपर अपने ग्रथका नाम तबकाते-नासिरी रखा। दिल्लीके प्रारम्भिक सुल्तानोका वह लगभग समसामयिक रहा और उसका ग्रथ काफी प्रामाणिक माना जाता है। 'तबकाते-नासिरी'का अग्रेजी भाषामे अनुवाद रैवर्टीने किया।

मिनाण्डर—एक यूनानी नाटककार। विण्डिशके सदृश कुछ यूरोपीय विद्वानोका मत है कि मिनाण्डर तथा उसीकी भाँतिके अन्य यूनानी नाटककारोने भारतीय संस्कृत नाटकोको प्रभावित किया था, क्योकि दोनोमे सुस्पष्ट साम्य मिलता है। परन्तु यह प्रश्न विवादास्पद माना जाता है।

मिनाण्डर (मिलिन्द)–पंजाबपर लगभग १६० ई० पू०से १४० ई० पू० तक राज्य करनेवाले यवन राजाओंमें सबसे अधिक उल्लेखनीय। इसके विविध प्रकारके बहुत-से सिक्के उत्तर भारतके विस्तृत क्षेत्रोंमें, यहाँ तक कि यमुनाके दक्षिणमें भी मिलते हैं। सम्भव है कि गार्गी संहितामें जिस दुरात्मा वीर यवन राजा द्वारा प्रयागपर अधिकार करके कुसुमपुर (अर्थात् पाटलिपुत्र) में भय उत्पन्न करनेका उल्लेख है, वह मिनाण्डर हो। बौद्ध अनुश्रुतियोंके अनुसार उसने बौद्ध धर्मकी शरण ले ली। प्रसिद्ध बौद्ध ग्रंथ 'मिलिन्दपन्हो' (मिलिन्दके प्रश्न) में बौद्ध भिक्षु नागसेनके साथ उसके संवादात्मक प्रश्नोत्तर दिये हुए हैं।

मियानीकी लड़ाई–१८४३ ई० में सर चार्ल्स नेपियरके नेतृत्वमें ब्रिटिश भारतीय सेना और सिंधके अमीरोंके बीच हुई। अमीरोंकी जबर्दस्त हार हुई और सिंधको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया गया।

मिर्जा–अकबरके चचेरे बन्धुगण। १५७३ ई०में मिर्जाओंने गुजरातमें बादशाह अकबरके विरुद्ध विद्रोहका झंडा बुलन्द कर दिया। अगले साल बादशाहने स्वयं उनका दमन किया।

मिर्जा अबू तालिब खाँ–समुद्र-यात्रा करके इंग्लैण्ड जाने वाला पहला भारतीय मुसलमान, जो १७८५ ई०में इंग्लैंड पहुँचा।

मिर्जा गुलाम अहमद (१८३९–१९०८ ई०)–इस नामके अहमदिया सम्प्रदायका संस्थापक। उसका सदर मुकाम पंजाबमें कादियान नामक स्थान था। इस परम्पराके अनुयायी 'कादियानी' इसीलिए कहे जाते हैं।

मिर्जा गुलाम हुसेन–भारतके मुसलमान इतिहासकारोंमेंसे एक। वह अट्ठारहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें वर्तमान था और कई महत्त्वपूर्ण पदोंपर रहा। उसके ग्रंथ 'सल्यारुल-मुतअख्खिरीन' में मुगल साम्राज्यके अन्तिमकाल तथा भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यके उदयके प्रारम्भिक वर्षोंका सामयिक विवरण मिलता है।

मिर्जा नजफ खाँ–एक ईरानी सरदार जो दिल्ली आया और मुगलोंकी नौकरी करने लगा। वह पदोन्नति करते हुए १७७२ ई० में शाह आलमके दिल्ली वापस लौटनेपर उसका बड़ा वजीर नियुक्त हुआ और १७८२ ई० में मृत्यु होने तक इसी पदपर रहा। इस अवधिमें दिल्ली साम्राज्यकी हुकूमत उसीके हाथमें रही। उसने सिखोंका हमला विफल कर दिया, जाटोंका दमन किया, आगरापर फिरसे दखल कर लिया और मराठोंको दिल्लीसे दूर रखा। दिल्लीमें उच्च पद प्राप्त करनेवाला वह अंतिम विदेशी मुसलमान था।

मिर्जा मुहम्मद–देखिये, 'सिराजुद्दौला'।

मिर्जा (अथवा मीर) शाह–कश्मीरका पहला मुसलमान सुल्तान। वह सूरतसे आया था और अपनी योग्यताके कारण कश्मीरके हिन्दू राजाका मंत्री हो गया। १३४६ ई० में उसने गद्दी छीन ली, शम्सुद्दीनका नाम धारण किया और एक राजवंश चलाया, जो १५४१ ई० तक कश्मीरपर राज्य करता रहा।

मिर्जा हैदर–कश्मीरका १५४० से १५५१ ई० तक शासक। वह बादशाह हुमायूँका मुगल रिश्तेदार था और उसीके नामपर कश्मीरका शासन करता था। किन्तु हुमायूँकी अधीनता वह नाममात्रके लिए मानता था। व्यवहार रूपमें वह स्वतंत्र था। १५५१ ई० में कश्मीरी अमीरोंने उसका तख्त छीन लिया। चार साल बाद कश्मीरका शासन-सूत्र चक लोगोंके हाथमें पहुँच गया। १५८६ ई० में बादशाह अकबरने कश्मीरपर विजय प्राप्त कर ली।

मिलिन्द-पन्हो (मिलिन्दके प्रश्न)–एक प्रसिद्ध बौद्धग्रंथ, जिसमें यवन राजा मिलिन्द और बौद्ध भिक्षु नागसेन (दे०) के बीच प्रश्न और उत्तरके रूपमें बौद्ध दर्शन और धर्मकी विवेचना की गयी है। मिलिन्दकी पहचान भारतीय यवन (यूनानी) राजा मिनाण्डर (दे०) से की जाती है। विश्वास किया जाता है कि मिनाण्डरने बौद्धधर्म अंगीकार कर लिया था। इस ग्रंथका रचनाकाल तीसरी शताब्दी ई० से पूर्व माना जाता है।

मिल्डेनहाल, जान–एक अंग्रेज व्यापारी, जो १५९९ ई० में स्थलमार्गसे भारत आया। वह पूर्वमें सात वर्ष रहा और बादशाह अकबरसे उसके राज्यकालके अंतिम दिनोंमें मिला। उसकी बादशाहसे आमने-सामने बातचीत हुई। परन्तु वह अकबरसे या उसके पुत्र जहाँगीरसे अंग्रेजोंके लिए कोई व्यापारिक सुविधा प्राप्त करनेमें विफल रहा। १६१४ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। वह बेईमान तथा धूर्त था, परन्तु व्यापारकी खोजमें भारत आनेवाले अंग्रेजोंका अगुआ था।

मिहिरगुल (अथवा मिहिरकुल)–हूण राजा तोरमाण (दे०) का पुत्र तथा उत्तराधिकारी, जो पाँचवीं शताब्दी ई० के अंतिम दशकोंमें गुप्त साम्राज्यकी पश्चिमी सीमापर तथा मध्यवर्ती भारतपर राज्य करता था। मिहिरगुल लगभग ५०० ई० में गद्दीपर बैठा। उसका साम्राज्य भारतसे बाहर अफगानिस्तान तक विस्तृत था।

वह बड़ा अत्याचारी था और उसने बौद्धोंका क्रूरतापूर्वक दमन किया। उसकी राजधानी पजाबमे साकल अथवा सियालकोट थी। लगभग ५२८ ई० मे मगधके राजा बालादित्य और मदसोरके राजा यशोधर्माने मिलकर उसे पराजित कर भगा दिया। मिहिरगुल हार कर कश्मीर भाग गया, जहाँ वह स्वय राजा बन गया। परतु वह बहुत थोडे समय राज्य कर सका।

मीडोज, जनरल सर विलियम—तीसरे मैसूर-युद्ध (दे०) (१७९० ई०) मे टीपू सुल्तानपर चढाई करनेवाली ब्रिटिश सेनाका कमाडर। उसे टीपूके डिण्डिगुल, कोयवतूर, पालघाट आदि ठिकानोको छीन लेनेमे सफलता मिली, परतु उसकी विजय निर्णायात्मक नही कही जा सकती थी। अतएव १७९१ ई० मे कार्नवालिसने स्वय सेनाकी मुख्य कमान सँभाल ली और जनरल मीडोज उसके अधीन कार्य करता रहा।

मीर कासिम—अग्रेजोने १७६० ई० मे इसके ससुर मीर जाफरको गद्दीसे उतार कर इसे बगालका नवाब बनाया। मीर कासिमने नवाबी पानेके लिए कम्पनीको बर्दवान, मिदनापुर तथा चटगाँवके तीन जिले सौंप दिये, कलकत्ता कौंसिलको २० लाख रुपया नकद दिया तथा मीर जाफरका सारा कर्जा बेबाक कर देनेका वादा किया। मीर कासिम मीर जाफरसे अधिक योग्य तथा अधिक दृढ व्यक्ति था। उसने मालगुजारीकी वसूलीके नियम अधिक कठोर बना दिये और राज्यकी आय लगभग दूनी कर दी। उसने फौजका भी सगठन किया और कलकत्ताके अनुचित हस्तक्षेपसे अपनेको दूर रखनेके लिए राजधानी मुर्शिदाबादसे उठाकर मुगेर ले गया।

कम्पनीके अधिकारी मीर जाफर (दे०) (१७५७–६० ई०) के समयसे बिना चुगी दिये अवैध व्यापारके द्वारा बहुत बेजा फायदा उठा रहे थे। मीर जाफरने इस अवैध व्यापारको बद करनेका निश्चय किया। उसने कलकत्ता कौंसिलके तत्कालीन अध्यक्ष वैन्सीटार्ट (दे०) से समझौता किया कि फिरगी व्यापारियोके निजी मालपर नवाबको दूसरोसे ली जानेवाली ४० प्रतिशत चुगीके स्थानपर ९ प्रतिशत चुगी लेनेका अधिकार होगा। परतु कलकत्ता कौंसिलने इस समझौतेको रद्द कर दिया और सिर्फ नमकपर २॥ प्रतिशत चुगीके लिए राजी हुई। कलकत्ता कौंसिलके इस अनौचित्यपूर्ण निर्णयपर नवाब मीर कासिम इतना क्रुद्ध हुआ कि उसने भारतीय और फिरगी सभी व्यापारियोको बिना चुगी दिये व्यापार करनेकी अनुमति दे दी।

इस तरह यह स्पष्ट हो गया कि कम्पनीके कर्मचारियो द्वारा अपने अवैध व्यापारको जारी रखनेके आग्रह और नवाब मीर कासिम द्वारा अपनेको खुदमुख्तार बनानेके दृढ निश्चयके बीच कोई समझौता नही हो सकता था, फलत नवाब तथा कम्पनीके बीच युद्ध अनिवार्य हो गया। युद्धकी दिशामे पहला कदम पटनामे कम्पनीके मुख्याधिकारी मि० एलिसने उठाया। उसने पटनापर दखल कर लेनेकी कोशिश की, जो विफल कर दी गयी और युद्ध छिड गया। किन्तु मीर कासिममे कोई सैनिक प्रतिभा नही थी। उसके पास योग्य सिपहसालार भी नही था। ऐसी परिस्थितिमे वह कटवा, घेरिया तथा उधुवानालाकी लडाइयोमे कम्पनीकी फौजसे हार गया। अग्रेजी फौज जब उसकी राजधानी मुगेरके निकट पहुँची तो वह पटना भाग गया। वहाँ उसने समस्त अग्रेज बदियोको मार डाला तथा जगत सेठ जैसे उसके जो भी पूर्व विरोधी हाथ पडे, उन्हें भी मौतके घाट उतार दिया। इसके बाद वह अवध भाग गया और वहाँ उसने नवाब शुजाउद्दौला तथा भगोडे बादशाह शाह आलम द्वितीयसे कम्पनीके विरुद्ध गठबधन कर लिया। परतु अग्रेजोने २२ अक्तूबर १७६४ ई० को बक्सरकी लडाईमे तीनोको हरा दिया। शुजाउद्दौला जान बचा कर रुहेलखड भागा, बादशाह शाह आलम द्वितीय अग्रेजोकी शरणमे आ गया और मीर कासिम दर-दरकी खाक छानता हुआ कई साल बाद भारी मुफलिसीमे दिल्लीमे मर गया।

मीर जाफर—बगालका १७५७ से १७६० ई० तक और फिर १७६३ से १७६५ ई० तक नवाब। वह बगालके नवाब अलीवर्दी खाँ (दे०)का बहनोई था और मुर्शिदाबादके दरबारमे बहुत अधिक प्रभाव रखता था। अलीवर्दीके पौत्र तथा उत्तराधिकारी नवाब सिराजुद्दौला (दे०) को उसकी स्वामिभक्तिमे सन्देह था और उसने उसे बख्शी (दे०) के पदसे हटा दिया। इससे मीरजाफर और फिरट हो गया और उसने सिराजुद्दौलाको गद्दीसे हटाने तथा खुद नवाब बननेके लिए असतुष्ट दरबारियोके साथ षड्यन्त्र रचा, जिसमे जगत सेठ (दे०) भी सम्मिलित था। षड्यन्त्रकारियोके नेताके रूपमे मीरजाफरने १० जून १७५७ ई०को कलकत्तामे अग्रेजोसे एक सधि की। इस सधिके द्वारा मीर जाफरने वचन दिया कि वह अग्रेजोकी सहायतासे बगालका नवाब बन गया तो सिराजुद्दौलाने अलीनगरकी सधि (९ फरवरी १७५७ ई०)के द्वारा उन्हें जो सुविधाएँ रखी है, उनकी पुष्टि कर देगा, अग्रेजोसे

रक्षात्मक सधि करेगा, फ्रासीसियोको बगालसे निकाल देगा, १७५६ ई०मे कलकत्ता छीने जानेके बदले ईस्ट इडिया कम्पनीको १० लाख पोड हर्जाना देगा और इसका आधा रुपया कलकत्ताके अग्रेज निवासियोको देगा। मीर जाफरने गुप्त सधि करके अग्रेजी सेना, नौसेना तथा कौसिलके सदस्योको भी काफी अधिक धन देनेका वादा किया।

इस सधिके अनुसार २३ जून १७५७ ई०को पलासीकी लडाईमे मीर जाफर तथा उसके सहयोगी षड्यत्नकारियोने कोई हिस्सा नही लिया और अग्रेज बडी आसानीसे लडाई जीत गये। सिराजुद्दौला युद्ध-भूमिसे भाग गया, परन्तु उसे शीघ्र बदी बना लिया गया और मीर जाफरके पुत्र मीरनने उसका बध कर दिया। इसके बाद मीर जाफर बगालका नया नवाब बना दिया गया। गद्दीनशीन होनेपर उसने १० जून १७५७ ई०की सधिके द्वारा जितने भी वादे किये थे सब पूरे कर दिये। इसके अतिरिक्त उसने कम्पनीको चौबीस परगनेकी जमीदारी भी दे दी। उसने १५ जून १७५७ ई०को कम्पनीके साथ एक और सधि की, जिसके द्वारा उसने दो नयी धाराओसे अपनेको बाँध लिया। इन धाराओमे कहा गया था (१) "अग्रेजोके दुश्मन मेरे दुश्मन होगे, चाहे भारतीय हो या यूरोपीय, (२) जब कभी मै अग्रेजोसे सहायताकी माँग करूँगा, उसका खर्च दूँगा।"

मीर जाफरने इस तरह बगालपर एक प्रकारसे अग्रेजोका राजनीतिक तथा सैनिक प्रभुत्व स्वीकार कर अपनी नवाबीका अगौरवपूर्ण अध्याय आरम्भ किया। उसने १७५६ ई०मे कलकत्तापर दखल करनेसे अग्रेजोको जो क्षति उठानी पडी थी उसके लिए १,७७,००,००० रु० हर्जाना देकर, अग्रेजी सेना, नौसेना तथा अधिकारियोको १,१२,५०,००० रु० देकर (जिसमे २३,४०,००० रु० सिर्फ क्लाइवको दिये गये) तथा चौबीस परगनेकी सारी मालगुजारी कम्पनीको सौप कर राज्यको दीवालिया बना दिया। वह अपनी फौजकी तनख्वाहे देनेमे भी असमर्थ हो गया। इस प्रकार मीर जाफर अग्रेजोपर अधिकाधिक निर्भर होता गया और शीघ्र ही अपनी स्थितिसे बेचैन हो उठा। अतएव उसने अग्रेजोके विरुद्ध डच लोगोसे षड्यत्न रचना शुरू कर दिया। परन्तु अग्रेजोने बिदर्रामे डच लोगोको हरा दिया। १७६० ई०मे मीर जाफरका सरक्षक क्लाइव इग्लैड चला गया और इसके बाद मीर जाफरका लडका तथा भावी उत्तराधिकारी मीरन बिजली गिरनेसे मर गया। इसके फलस्वरूप मीर जाफरके उत्तराधिकारीका प्रश्न उठ खडा हुआ। क्लाइवके उत्तराधिकारियोने क्लाइवका ही अनुकरण किया और १७६० ई०मे क्लाइवके गुड्डे मीर जाफरको गद्दीसे हटा कर उसके दामाद मीर कासिम (दे०)को नया नवाब बना दिया।

मीर जाफरने बिना कोई प्रतिरोध किये १७६०ई०मे नवाबी छोड दी, परन्तु १७६३ ई०मे अग्रेजो और नवाब मीर कासिममे युद्ध छिड जानेपर उसे फिर नवाब बना दिया गया। पुन नवाबी प्राप्त करनेसे पूर्व मीर जाफरने अग्रेजोसे एक सधि की, जिसके द्वारा उसने अपनी फौजोकी सख्या सीमित करना, राजधानी मुर्शिदाबादमे स्थायी ब्रिटिश रेजिडेट रखना, अग्रेजोके नमकके व्यापारपर केवल २ प्रतिशत चुँगी लेना, कम्पनीको युद्धके खर्चके तौरपर ३५ लाख रुपया देना, अग्रेजी सेना तथा नौसेनाके सदस्योको भेटके तौरपर ३७॥ लाख रुपया देना तथा मीर कासिमसे युद्धमे जिन लोगोको व्यक्तिगत रूपसे क्षति उठानी पडी उन्हे हर्जाना देना स्वीकार कर लिया। अतएव पुन· नवाबी मिलनेपर मीरजाफरका आर्थिक स्थिति पहलेसे भी अधिक शोचनीय हो गयी। उसका राजनीतिक भविष्य लगभग समाप्त हो गया। उसे अफीमकी लत थी और कुष्ठ रोगसे पीडित था। १७६५ ई०मे उसकी कलकपूर्ण मृत्यु हो गयी। बगालमे मुसलमानी शासनके पतनके लिए जो भारतीय मुसलमान जिम्मेदार थे, उनमे मीरजाफर प्रमुख था।

मीर जुमला मीर मुहम्मद सईद--एक ईरानी व्यापारी, जो प्रारम्भमे गोलकुडामे हीरेका व्यापार करता था। बादमे वह गोलकुडाके सुलतान अब्दुल्ला कुतुबशाह (१६२६-७२ ई०)की सेवामे जाकर क्रमश उसका वजीर बन गया। वह राजनेताके साथ साथ महान सिपहसालार भी था। उसकी सपत्ति, शक्ति तथा प्रतिष्ठाके कारण गोलकुडाका सुल्तान उससे ईर्ष्या करने लगा और वह उसे दडित करना चाहता था। मीर जुमलाने मुगलोसे साजिश करके, शाहजादा औरगजेबकी सहायतासे, जो उस समय गोलकुडापर हमला करनेवाली मुगल सेनाका नेतृत्व कर रहा था, १६५६ ई०मे दक्खिनमे बादशाह शाहजहाँकी सेवा स्वीकार कर ली। इसके बाद ही वह शाहजहाँका बडा वजीर नियुक्त हो गया।

शाहजहाँ (दे०) के लडकोमे उत्तराधिकार युद्ध छिडनेपर, मीर जुमलाने औरगजेबका पक्ष लिया और उसे धर्मकी लडाई (दे०) जीतनेमे भारी मदद दी। १६६० ई०मे औरगजेबने उसे बगालका सूबेदार नियुक्त

किया, जहाँ पहुँच कर उसने शुजा (दे०) को प्रांतसे बाहर खदेड़ दिया। बादमें उसने आसामपर चढ़ाई की, अहोम राजाको अपनी राजधानी छोड़कर भागने तथा १६६२ ई०की सन्धि करनेके लिए विवश किया। इस सन्धिके द्वारा अहोम राजा हर्जानेके रूपमें एक बड़ी रकम देने तथा दक्षिणी आसामका बहुत-सा भाग मुगलोंको सौंप देनेके लिए राजी हो गया। आसामके जंगलोंमें वापस लौटते समय मुगल सेनाको भारी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी और मीर जुमला बीमार पड़ गया। वह जनवरी १६६३ ई०में ढाका वापस लौटते समय रास्तेमें ही मर गया।

मीर जुमला, शरीयतुल्ला खाँ—एक तूरानी जो बादशाह फर्रुखशियरके राज्यकाल (१७१३–१९ ई०)के पूर्वार्द्धमें ढाका तथा पटनामें काजी रहा। वह षड्यन्त्रकारी मनोवृत्तिका था और उसने फर्रुखशियरको सैयद बन्धुओं (दे०)से लड़ानेकी कोशिश की। बादमें वह सैयद बन्धुओंसे मिल गया और उनके नीचतापूर्ण कार्योंमें मदद करने लगा।

मीरन—नवाब मीर जाफर (दे०) (१७५७–६० ई०) का लड़का तथा भावी उत्तराधिकारी। नवाब सिराजुद्दौला (दे०) पलासीकी लड़ाईमें हारनेके बाद जब भागा तो उसने उसे गिरफ्तार कर लिया और मुर्शिदाबाद वापस लाकर १७५७ ई०में उसकी हत्या कर डाली। इसके बाद ही बिजली गिरनेसे मीरनकी मृत्यु हो गयी।

मीरनपुर कटराकी लड़ाई—अवधके नवाब शुजाउद्दौलाकी और रुहेलोंके बीच १७७४ ई०में हुई। एक अंग्रेजी पलटन भी शुजाउद्दौलाकी मददपर थी। शुजाउद्दौलाने रुहेलोंको हरा दिया और उनका राज्य अवधमें मिला लिया।

मीरन बहादुर शाह—ताप्तीकी घाटीमें स्थित खानदेशका शासक। १५९० ई०में उसने अकबरकी अधीनता स्वीकार कर ली, परन्तु बादमें अपने इस कार्यपर पश्चाताप करके उसने विद्रोह कर दिया। १५९९ ई०में अकबरने स्वयं सेना लेकर खानदेशपर चढ़ाई की और असीरगढ़पर कब्जा करके मीरन बहादुरशाहको अधीन बनाया। खानदेशको मुगल साम्राज्यमें सम्मिलित कर लिया गया।

मीरपुर परिवार—सिंधके अमीरोंके परिवारोंमेंसे एक। १८४३ ई०में मियानी (दे०)की लड़ाईमें सिंधके अमीरोंके अन्य परिवारोंके साथ यह परिवार भी हारा और निर्वासित कर दिया गया।

मीर फतह अली खाँ तालपुर—जिसने १७८३ ई०में सिंधके ऊपर अहमद शाह अब्दालीके उत्तराधिकारियोंका नियंत्रण समाप्त कर दिया और सिंधको एक प्रकारसे स्वतंत्र राज्य बना दिया। उसकी मृत्यु १८०२ ई०में हुई। उसके उत्तराधिकारी, जो मध्यवर्ती सिंधपर शासन करते थे चार परिवारोंमें विभक्त हो गये। वे हैदराबादपुरमें रहते थे। मीरपुर तथा खैरपुरमें रहनेवाले अपने सम्बन्धियोंकी भाँति वे सब सिंधके अमीर कहलाते थे।

मुअज्जम, शाहजादा—देखिये, 'बहादुरशाह प्रथम'।

मुईनुद्दीन चिश्ती (ख्वाजा)—एक प्रसिद्ध मुसलमान (सूफी) संत। अकबर और जहाँगीर बहुधा उसके अजमेर-स्थित मजारकी जियारतके लिए जाया करते थे।

मुकर्रब खाँ—मूल नाम शेख हसन, जहाँगीरका विशेष विश्वासपात्र पदाधिकारी था। १६०७ ई०में वह शाही दूतके रूपमें गोआके पुर्तगालियोंके पास भेजा गया, किन्तु इस दौत्यकर्मका कोई परिणाम न निकला। उपरान्त मुकर्रब खाँ की नियुक्ति सूरतके प्रान्तीय शासकके रूपमें हुई, जहाँ उसने अंग्रेजोंको पुर्तगालियोंसे युद्ध करनेके लिए उत्साहित किया। नाविक युद्धमें अंग्रेजोंने पुर्तगालियोंपर विजय पायी किन्तु स्वयं मुकर्रब खाँ ने, जिसके पास कोई नौ-सेना न थी, जब पुर्तगालियोंसे सुलहका प्रस्ताव किया, तब उसे उस समय अत्यधिक अपमानकी घूँट पीनी पड़ी, जब उन्होंने उसका प्रस्ताव ठुकरा दिया।

मुकर्रब खाँ—मूल नाम शेख नियाम। औरंगजेबका एक उत्साही सैनिक पदाधिकारी था। उसे खान जमा की उपाधि दी गयी थी। १६८९ ई०में जब उसे सूचना मिली कि मराठा शासक शम्भूजी अपने प्रधान-मन्त्री कवि कलशके साथ संगमेश्वरकी यात्रा कर रहा है, वह कोल्हापुरमें था। उसने शीघ्रतासे कूच करके शम्भूजीके पड़ावको घेर लिया तथा मराठा शासकको उसके प्रधान मन्त्री कवि कलश तथा सारे लाव-लश्करके साथ बन्दी बना लिया।

मुक्तापीड—देखिये, 'ललितादित्य मुक्तापीड'।

मुकुन्द राव—एक मराठा सरदार जो बीजापुरके सुल्तान यूसुफ आदिलशाह (दे०) (१४९०-१५१० ई०) के द्वारा पराजित हुआ। उपरान्त उसने सुलतानको अपनी बहिन ब्याह कर सन्धि कर ली। ब्याहके बाद उसकी बहनका नाम बूबजी खानम पड़ा और वह दूसरे सुल्तान, इस्माइलकी माँ बनी।

मुखर्जी, आशुतोष (१८६४–१९२४)—बंगालके ख्यातिलब्ध बैरिस्टर और शिक्षाविद्। मध्यम वर्गके बंगाली ब्राह्मण परिवारमें जन्म हुआ और विद्यार्थी जीवनमें ही

नाम कमानेके उपरांत १८८८ ई०मे कलकत्ता हाईकोर्टमें वकालत प्रारम्भ की। १९०४ ई०से हाईकोर्टके न्यायाधीश और १९२० ई०से स्थानापन्न मुख्य न्यायाधीश रहनेके बाद १९२३ ई०मे उन्होने अवकाश ले लिया। वे यद्यपि राजनीतिसे दूर रहे, फिर भी वे १८९९ ई०मे बंगाल विधान परिषद्के सदस्य मनोनीत किये गये। उन्होने शिक्षाके क्षेत्र मे, जिसके लिए उन्होने अपना समस्त जीवन अर्पित कर दिया था, उन्होने बंगालकी जो महती सेवा की, उसके आधार पर उन्हे आधुनिक बंगालका निर्माता कहा जा सकता है। २५ वर्षकी अल्पआयुमे वे कलकत्ता विश्वविद्यालयके सिनेटके सदस्य हुए और उपरान्त चार सत्रावधि तक उसके उपकुलपति रहे।

उस विश्वविद्यालयसे उनका जीवनकी अंतिम घडी तक सम्बन्ध बना रहा। लार्ड कर्जनने भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम, भारतमे उच्च शिक्षाका प्रसार रोकनेके उद्देश्यसे बनाया था, किंतु आशुतोष मुखर्जीने उसीके माध्यमसे बंगालमे उच्चशिक्षाका प्रसार कर दिया और कलकत्ता विश्वविद्यालयको परीक्षा की व्यवस्था करनेवाली संस्था मात्रसे उठाकर उच्चतम स्नातकोत्तर शिक्षण देनेवाली संस्था बना दिया। उन्होने केवल कला-संकायमे ही विभिन्न विषयोमे एम० ए० की कक्षाएँ नही खोली, प्रयोगात्मक एवं प्रयुक्त विज्ञानो (Applied Sciences) के प्रशिक्षण हेतु भी स्नातकोत्तर शिक्षाका प्रबन्ध किया, जिसके लिए इसके पूर्व कोई प्राविधान न था। उन्होने कलकत्ता विश्वविद्यालयके लिए महाराज दरभंगा, सर तारकनाथ पालित एवं रास बिहारी घोषसे प्रचुर दान प्राप्त किया और इस धनराशिसे उन्होने विश्वविद्यालयमे पुस्तकालय और विज्ञान कालेजोके विशाल भवनोका निर्माण कराया जो प्रयोगशालाओसे युक्त थे। इस प्रकार उन्होने देशमे शिक्षाकी धाराको एक नया मोड दिया। उन्होने बंगला तथा भारतीय भाषाओको एम० ए० की उच्चतम डिग्रीके लिए अध्ययनका विषय बनाया। उनकी वेशभूषा और आचार-व्यवहारमे भारतीयता झलकती थी। कदाचित् वह प्रथम भारतीय थे, जिन्होने रॉयल कमीशन (सैडलर समिति)के सदस्यकी हैसियतसे सम्पूर्ण भारतमे धोती और कोट पहन कर भ्रमण किया। वह कभी इंग्लैण्ड नही गये और उन्होने अपने जीवन तथा कार्य-कलापोसे सिद्ध कर दिया कि किस प्रकार एक सच्चा भारतीय अपने विचारोमे सनातनपंथी, कार्योमे प्रगतिशील तथा विश्वविद्यालयके हेतु अध्यापकोके चयनमे अन्तर्राष्ट्रीयतावादी हो सकता है। उन्होने कलकत्ता विश्वविद्यालयमे भारतीय ही नही, अंग्रेज, जर्मन और अमरीकी प्रोफेसरको भी रखा और उसे पूर्व का अग्रगण्य विश्वविद्यालय बना दिया।

मुखर्जी, धनगोपाल--प्रसिद्ध बंगाली साहित्यकार जो अमेरिकामे जाकर बस गये। उन्होने अंग्रेजी भाषामे कई पुस्तके लिखी, जिनमे 'मेरे भाईका व्यक्तित्व' (Portrait of My Brother) नामक पुस्तकमें उन्होने अपने भाई और बंगालके सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता जदु गोपालकी जीवनी दी है। उनकी रचनाओने उन्हे साहित्यके क्षेत्रमे अच्छी ख्याति प्रदान की।

मुगल राजवंश--राज बाबरसे आरम्भ, जिसने १५२६ ई०मे अन्तिम लोदी सुल्तान इब्राहीम लोदीको पानीपतके प्रथम युद्धमे पराजित किया। इस विजयसे बाबरका दिल्ली और आगरापर अधिकार हो गया। १५२७ ई०मे बाबरने मेवाडके शासक राणा साँगाको खनुआके युद्धमे पराजित कर राजपूतोके प्रतिरोधका भी अन्त कर दिया। अततः १५२८ ई०मे उसने घाघराके युद्धमे अफगानोको पराजित कर अपना शासन बिहार और बंगाल तक विस्तृत कर लिया। इन विजयोने बाबरको उत्तरी भारतका सम्राट् बना दिया। उसके द्वारा प्रचलित मुगल राज्यवंशने भारतमे १५२६ से १८५८ ई० तक राज्य किया।

मुगल राज्यवंशमे उन्नीस शासक हुए, जिनमे प्रथम छः बाबर (१५२६-३०), हुमायूँ (१५३०-४० तथा १५५५-५६), अकबर (१५५६-१६०५), जहाँगीर (१६०५-२७), शाहजहाँ (१६२७-५८) तथा औरंगजेब (१६५८--१७०७) प्राय. महान् मुगल सम्राट् गिने जाते हैं। इनमेसे अकबरने सम्पूर्ण उत्तरी भारत तथा दक्षिणके खानदेश और बरारको अपने अधिकार क्षेत्रमे ले लिया था। साम्राज्य-विस्तारकी यह प्रक्रिया उसके बादवाले तीन शासकोके कालमे भी चलती रही। फलत औरंगजेबके राज्यकालमे मुगल साम्राज्यका विस्तार हिमालयके निचले भूभागोसे लेकर कन्याकुमारी तक सम्पूर्ण भारतमे हो गया। किन्तु उसके समय घटित घटनाओसे यह भी स्पष्ट हो गया कि उसने अजगरकी भाँति अपनी पाचनशक्तिसे अधिक निगलनेका प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त उसने जान-बूझकर धार्मिक उदारताकी उस नीतिके परित्यागका भी दुस्साहस किया, जिसपर अकबरका विशाल साम्राज्य आधारित था। इस प्रकार औरंगजेबने भारतवर्षको इस्लाम-प्रधान साम्राज्यका रूप देनेका प्रयास किया, जिसके फलस्वरूप

हिन्दुओंके विद्रोह हुए, जिनका सूत्रपात महाराष्ट्रमें शिवाजीने किया था और पंजाबमें सिखों, बुन्देलखण्ड और राजपूतानेके राजपूतों तथा जाटोंमें भी, जो अकबर-के स्वामिभक्त समर्थक थे, विद्रोहकी अग्नि भड़क उठी।

दूसरी ओर पुर्तगाल, हालैण्ड, इंग्लैण्ड और फ्रांसके व्यापारियोंकी उपस्थितिने और भी कठिनाइयाँ उत्पन्न कीं, क्योंकि उनकी राजनीतिक अभिलाषाएँ, व्यापार सम्बन्धी गतिविधियोंके आवरणमें ढकी हुई थीं और उनकी सामरिक सामग्री एवं संगठन तथा जहाजीशक्ति मुगलोंकी अपेक्षा कहीं श्रेष्ठतर थी। अन्ततः उत्तराधिकारके युद्ध जहाँगीरके राज्यकालके अन्तिम वर्षोंसे मुगलवंशके शासनपर मर्मान्तक विपत्तिके रूपमें बराबर घहराने लगे, जिनमें राजशक्तिमें विशेष दुर्बलता आ गयी। परिणामस्वरूप अन्तिम तेरह मुगलशासक, जो उत्तरकालीन मुगल सम्राट् कहे जाते हैं, अयोग्य शासक सिद्ध हुए। अठारहवीं शताब्दीसे क्रमशः उनकी राज्य-सीमाएँ क्षीण होती गयीं। नादिरशाह दुर्रानीके १७३९ ई० वाले तथा अहमदशाह अब्दालीके १७५१ से १७६१ ई० तक होनेवाले आक्रमणोंने इस क्रमको विशेष गति प्रदान की।

बहादुरशाह प्रथम अथवा शाह आलम (१७०७-१२), जहाँदार शाह (१७१२-१३), फर्रुखशियर (१७१३-१९), रफीउद्दर्जात (१७१९), रफीउद्दौलत (१७१९), नेकुस्सियर (१७१९), इब्राहीम (१७१९), मुहम्मदशाह (१७१९-४८), अहमदशाह (१७४८-५४) आलमगीर द्वितीय (१७५४-५९), शाहआलम द्वितीय (१७५९-१८०६), अकबर द्वितीय (१८०६-३७) और बहादुर शाह द्वितीय (१८३७-५८) उत्तर-कालीन मुगल सम्राट् माने जाते हैं। जिस मुगल वंशकी प्रतिष्ठा बाबर द्वारा पानीपतके प्रथम युद्धके उपरान्त हुई तथा जिसकी परिपुष्टि अकबरने पानीपतके १५५६ ई० वाले युद्धमें की, उसे १७६१ ई०के तृतीय पानीपत युद्धसे भीषण आघात लगा, जिसमें अवधके नवाब शुजाउद्दौलाकी सहायतासे अहमदशाह अब्दालीने मुगल सम्राट् शाह आलम द्वितीय और उसके संरक्षक एवं सहायक मराठोंको पराजित किया। इतने पर भी उसका क्षीणप्राय अस्तित्व अपनी शक्ति एवं प्रभुताके कारण नहीं, अपितु उसके सम्भाव्य उत्तराधिकारियों, स्वतंत्र हो जानेवाले मुस्लिम सूबेदारों, विद्रोही हिन्दू राज्यों और चतुर अंग्रेज व्यापारियोंकी पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विताके कारण, किसी प्रकार बना रहा। अन्ततः अंग्रेजोंने अपने हिन्दू और मुसलमान प्रतिद्वन्द्वियोंके आपसी ईर्ष्या-द्वेष एवं संघर्षोंका अनुचित लाभ उठाकर मुगल वंशके स्थानपर अपना साम्राज्य स्थापित कर दिया। अन्तिम मुगल सम्राट् बहादुरशाह द्वितीय, जो प्रायः अपने राज्यकालके प्रारम्भमें ही अंग्रेजोंका एक प्रकारसे पेंशन-प्राप्त शासक बन गया था, १८५८ ई०के तथाकथित सिपाही-विद्रोहमें सहयोग देनेके कारण सिंहासनसे उतार कर रंगून भेज दिया गया और १८६२ ई०में वहीं उसकी मृत्यु हो गयी।

मुगल शासन-प्रणाली—मुगल राजवंशके तृतीय सम्राट् अकबर (१५५६–१६०५ ई०) ने इसका संगठन किया, क्योंकि उसके पिता हुमायूँ और पितामह बाबरको न इतना अवसर ही मिला और न उनमें इस कार्य हेतु पर्याप्त क्षमता ही थी। इस शासन-व्यवस्थाका केन्द्रबिन्दु सम्राट् होता था, जिसकी शक्ति असीमित थी और उसका आदेश ही कानून था। सम्राट् ही राज्यकी सर्वोच्च सत्ता, राज्यका प्रमुख, सेनाका सर्वोच्च संचालक, न्यायका स्रोत और मुख्य कानून-निर्माता था। इन समस्त शक्तियोंका सफलतापूर्वक संचालन करने हेतु सम्राट्के लिए यह आवश्यक था कि वह शारीरिक दृष्टिसे बलवान और मानसिक दृष्टिसे जागरूक हो। किन्तु मुगल शासन-व्यवस्थामें, जो वंशानुक्रमकी परंपरापर आधारित थी, इस प्रकारके शक्तिशाली शासकोंकी अटूट परंपरा असंभव प्रायः थी। अतः छः पीढ़ियों तक शक्तिशाली सम्राटोंकी शासन-अवधिके उपरान्त मुगल शासन-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी।

मुगल सम्राटोंके कई मंत्री होते थे, जिनमेंसे क्रमशः चार मुख्य थे। दीवान—माल और वित्त विभागका प्रधान—मीर बख्शी, सैनिक विभागका प्रधान—मीर सामान कारखानों एवं भाण्डारोंका अध्यक्ष तथा सदरुस्सदर—धार्मिक और न्याय विभागोंका अध्यक्ष। इन चार मन्त्रियोंके अतिरिक्त राज्यके कई अन्य मुख्य पदाधिकारी भी होते थे, जो व्यावहारिक रूपमें मन्त्रियोंके पदोंके समकक्ष थे, किन्तु इन मन्त्रियों द्वारा किसी मन्त्रिमण्डलकी संरचना नहीं होती थी तथा उनकी नियुक्ति एवं पदच्युति सम्राट्की इच्छापर निर्भर रहती थी। साथ ही मुगल शासन-प्रणालीमें ऐसी कोई सभा या समिति न थी, जो कानूनी तौरपर मुगल सम्राटों तक उसकी मुसलमान और हिन्दू प्रजाकी भावनाओंको पहुँचा सके। इस प्रकार मुगल शासन-व्यवस्थामें शासनके दोषोंको दूर करनेवाली किसी ऐसी सुधारक संस्थाका सर्वथा अभाव था, जैसी इंग्लैण्डके तत्कालीन ट्यूडर और स्टुअर्ट

राजाओंके कालमे पार्लियामेण्टके रूपमे वर्तमान थी। ऐसी सुधारक सस्थाके अभावमे मुगल शासन-व्यवस्था सम्राटोकी स्वेच्छाचारितापर तब तक चलती रही जब तक वे मानसिक रूपसे अपने कर्तव्योके प्रति जागरूक रहे। उपरान्त जब मुगल शासक दुर्बल हो गये, यह शासन-प्रणाली ऐसे महत्त्वाकाक्षी और अनैतिक मत्रियो-के हाथोका खिलौना बन गयी, जो अपनी स्वेच्छासे सम्राटोको स्थानापन्न एव पदच्युत करते थे।

मुगल शासन-प्रणाली नौकरशाही पद्धतिपर आधारित थी, जिसमे नागरिक और सैनिक विभागोमे कोई भेद नही था। सभी उच्चाधिकारी मनसबदारोकी तैंतीस कोटियोमे श्रेणीबद्ध थे, जो दससे लेकर दस हजार तक सैनिकोके नायक होते थे। इनमेसे सभीको फौजदारी और दीवानीके अधिकार प्राप्त थे और प्रत्येकको नकद वेतन दिया जाता था। आगे चलकर उन्हे यह वेतन जागीर अथवा किसी भू-भागकी मालगुजारी वसूल करने-के अधिकारके रूपमे दिया जाने लगा। मनसबदारी प्रथा मुगल शासन-व्यवस्थाकी नीव थी और उसीके द्वारा कर्मचारियोके ओहदे और उनका वेतन निश्चित होता था। यह प्रथा कुछ-कुछ ब्रिटिश शासनकालकी इडियन सिविल तथा मिलटरी सर्विसके अनुरूप थी। मौलिक अतर केवल इतना ही था कि १८५३ ई० के उपरान्त इडियन सिविल सर्विसके सदस्योके समान इसके सदस्यो-का चयन किसी सार्वजनिक परीक्षाके द्वारा नही होता था, वरन् अकबर सदृश उदार शासकोके कालमे भी, इसमे मुख्यतः मुसलमानो और वह भी विदेशी मुसल-मानोकी भर्ती की जाती थी। इस प्रकार मुगलोकी केन्द्रीय शासन-व्यवस्था, जो मूलत सैनिक प्रथापर आधारित और विदेशियो द्वारा सचालित थी, कभी जनताका समर्थन प्राप्त न कर सकी।

मुगलोने एक ऐसी प्रान्तीय शासन-व्यवस्थाको विकसित किया, जो दिल्लीकी सल्तनत कालीन व्यवस्था-से सुधरी हुई थी। अकबरने अपने साम्राज्यका विभाजन १५ सूबोमे किया था, जिनकी सख्या साम्राज्य विस्तारके साथ, जहाँगीरके राज्यकालमे १७ और औरगजेबके शासनकालमे २१ हो गयी। प्रत्येक सूबेका पुन कई सरकारोमे विभाजन होता था, जो ब्रिटिशकालीन जिलो के समकक्ष थे। प्रत्येक सरकारका कई परगनोमे उप-विभाजन होता था, सरकारका कई परगनोमे उपविभा-जन होता था, जिन्हे ग्रामोका समूह कहा जा सकता है। मुगलोकी प्रातीय शासन-व्यवस्था केन्द्रके ही अनुरूप थी। केवल एक महत्त्वपूर्ण अतर था। प्रान्तीय शासन-व्यवस्था-का सर्वोच्च अधिकार, नाजिम या सिपहसालार अथवा सूबेदारमे, जो शासनका अधिशासी था, तथा दीवानमे जो प्रान्तके माल विभागका अधिष्ठाता था, विभाजित रहता था। इनमेसे दोनोकी ही नियुक्ति सम्राट् द्वारा होती थी और दोनो उसीके प्रति उत्तरदायी थे। दोनो एक दूसरेकी गतिविधिपर भी ध्यान रखते थे। फलत प्रान्तोमे विद्रोह यदि असभव नही तो कठिन अवश्य था।

दीवानके अतिरिक्त सूबेदारको बख्शी नामक पदा-धिकारीमे, जो सैनिकोका वेतन-वितरक होता था तथा न्यायकर्त्ता काजी और सदरसे भी सहायता मिलती थी। प्रत्येक सरकारमे एक फौजदार नियुक्त था, जो अपने क्षेत्रमे शान्ति एव सुव्यवस्था बनाये रखनेके अतिरिक्त फौजदारीके मुकदमोमे न्याय करता था तथा पुलिस और स्थानीय सैनिक दस्तेका नायक भी होता था। प्रत्येक महत्त्वपूर्ण नगरमे कोतवाल नामक एक अधिशासी नियुक्त रहता था। प्रत्येक प्रान्तमे केन्द्रीय शासन द्वारा प्रत्यक्ष एव गुप्त रूपसे वाकयानवीस (सूचना-वाहक) नियुक्त थे, जिनका कार्य केन्द्रीय सरकारको प्रान्तोमे होनेवाली सभी घटनाओकी सूचना देना था। केन्द्रमे इन सूचनाओपर ध्यानपूर्वक विचार होता था और वे नियमित रूपसे सम्राट्के सम्मुख रखी जाती थी। इस व्यवस्थासे प्रान्तीय शासकोकी विद्रोही प्रवृत्तियोपर अतिरिक्त नियत्रण रहता था।

मुगल सम्राटोकी आयका मूलस्रोत भूमिकर था। आयके अन्य साधन सीमाकर, टकसाल, युद्धोमे विजित सम्पत्ति तथा हर्जानेकी राशि, भेट-उपहार, एकाधिकार (मुगलराज्य सैनिक तथा अन्य उपभोग्य वस्तुओका प्रमुख निर्माता था) और चुगीके थे। पूरे उत्पादनका एक तिहाई भाग भूमिकरके रूपमे निर्धारित था और कर-सग्रह राज्य द्वारा नियुक्त वैतनिक अधिकारियो द्वारा प्रजासे सीधा वसूल किया जाता था।

भूमिका विभाजन उर्वराशक्तिके आधारपर चार श्रेणियोमे किया गया था और प्रत्येक श्रेणीकी सही-सही उपजका पता लगानेके लिए विशेष व्यवस्था की गयी थी। भूमिकर यद्यपि नकदी और उपज दोनो ही रूपोमे लिया जाता था, किन्तु नकदी प्रथाको प्रोत्साहन प्राप्त था। उपजका नकदी मूल्याकन पिछले ३ या १० वर्षोके प्रचलित मूल्योके आधारपर सावधानीसे किया जाता था। इसपर भी सम्पूर्ण राज्यमे समान व्यवस्था प्रचलित न थी। सिन्धके निचले काँठे और कश्मीर सदृश भू-

भागोंमें राज्यका अंश खड़ी फसलके वास्तविक विभाजनके उपरान्त निर्धारित किया जाता था। मुलतानसे लेकर बिहार तकके विस्तृत भू-भागोंमें एक अन्य विशिष्ट प्रथा प्रचलित थी, जिसके अन्तर्गत भूमिके सर्वेक्षण और समान स्तरके मानदण्डसे पैमायश तथा उपजके अनुसार श्रेणी-निर्धारण एवं औसत उपज और उसके आधारपर एक तिहाई अंशके नकद मूल्यका निर्धारण होता था, किन्तु बंगालमें कानूनगो नामक राजस्व अधिकारियोंकी रिपोर्टके आधारपर राज्यका अंश निर्धारित होता था।

मुगल सेनाके मुख्य अंग अश्वारोही, पदाति, तोपखाना और जहाजी बेड़ा थे। इन चारों अंगोंमें अश्वारोही दल सबसे महत्त्वपूर्ण था। पैदल सेना, जिसमें नगरों एवं गाँवोंसे यथा अवसर भर्ती की जाती थी, प्रायः नगण्य थी। तोपखाना भारतमें बनी अथवा विदेशोंसे आयात की गयी तोपोंसे सुसज्जित था। यद्यपि मुगल तोपखाना तत्कालीन हिन्दू राज्योंके तोपखानोंसे श्रेष्ठ था, तथापि वह यूरोपीय शक्तियोंसे निम्न स्तरका था। उसकी तोपें न तो उतनी दूर तक मार कर सकती थीं और न उसके गोले निशानेपर उतने सही गिरते थे। मुगलोंकी जल-सेनामें बड़ी और छोटी नावें थीं, जो नदियोंके यातायातका संरक्षण करती थीं। वे समुद्रोंकी यात्राओंके हेतु नितान्त अनुपयुक्त थीं। वस्तुतः अकबर और औरंगजेब सहित समस्त मुगल-शासकोंने व्यापार तथा आक्रमणके विचारसे समुद्री मार्गके महत्त्वको कभी नहीं समझा और इसी कारण उन्होंने एक ऐसी विशाल जल-सेनाका निर्माण नहीं किया, जो यूरोपीय शक्तियोंसे समुद्रोंमें लोहा ले सके और उन्हें भारत भूमिपर उतरने से रोके।

मुगलशासक जल-सेनाके लिए एक यूरोपीय जातिके मुकाबलेमें दूसरी जातिकी सहायतापर निर्भर रहे और इस प्रकार अततोगत्वा स्वयं उनके शिकार बन गये। इसी प्रकार मनसबदारी प्रथामें भी, जिसपर मुगल सैन्य-शक्ति संगठित थी, झूठे आँकड़े भरे जाने लगे और उनमें नियमित प्रशिक्षण एवं अनुशासनका अभाव हो गया। इसके अतिरिक्त युद्धके लिए प्रयाण करते समय तथा युद्ध-भूमिमें मुगल सेनाके साथ इतना अधिक लाव-लश्कर रहता था कि औरंगजेबके कालमें ही वह द्रुतगामी और हलके शस्त्रास्त्रसे सज्जित मराठा सेनाओंका मुकाबला नहीं कर पाती थी। १७३९ ई० में नादिरशाह दुर्रानी द्वारा और उपरान्त अहमदशाह अब्दाली द्वारा उसे बारम्बार पराजय उठानी पड़ी और अन्ततः उसका दुःखद पराभव हुआ।

अन्तमें यह बताना उचित है कि मुगल सैनिक-शक्ति और क्षमतामें इस कारण भी ह्रास हुआ कि उसने अपनी विजयोंसे मिलनेवाली शिक्षाओंकी पूर्ण अवहेलना की। शस्त्रास्त्रोंकी श्रेष्ठताने ही बाबरको पानीपत और खनुआमें तथा अकबरको हल्दीघाटीके युद्धोंमें विजय दिलायी थी, किन्तु १८ वीं शताब्दीमें यह सैनिक श्रेष्ठता अंग्रेजोंके हाथों चली गयी, जिनके हथियारों और सैन्य-संगठनकी शक्तिके समक्ष कोई भी भारतीय सेना नहीं ठहर पाती थी। इस प्रकार मुगल सैनिक-व्यवस्थाकी विफलता एक ऐसा दृष्टान्त प्रस्तुत करती है जिसकी अवहेलना भारतीय गणतंत्रकी सरकारको अपनी सुरक्षाकी दृष्टिसे कभी नहीं करनी चाहिए। राज्यका अस्तित्व तभी संभव है, जब वह अपने शस्त्रास्त्र और सैन्य सामग्रीका समयानुकूल आधुनिकीकरण करता रहे।

मुजफ्फर जंग–निजामुल-मुल्क चिन-किलिच खाँका दौहित्र (नवासा)। निजामकी मृत्युके उपरान्त १७४८ ई० में वह अपने मामा नासिर जंगके स्थानपर हैदराबादकी गद्दीका दावेदार बना। उसने डूपलेके अधीन फ्रांसीसियोंका समर्थन प्राप्त किया तथा उसे चन्दा साहब सदृश मित्र भी मिला, जो अर्काटकी गद्दीका दावेदार था। प्रारम्भमें युद्धका परिणाम उसके विपरीत रहा परन्तु १७५० ई० में नासिर जंगकी हत्या कर दी गयी और फ्रांसीसियोंकी सहायतासे मुजफ्फर जंगको निजामत मिल गयी, जिसके बदले उन्हें विशेष सुविधाएँ प्रदान की गयीं। किन्तु १७५१ ई०में हुई एक आकस्मिक मुठभेड़में मुजफ्फर जंग भी मारा गया और हैदराबादकी गद्दी उसके तीसरे मामा सलावत जंगके अधिकारमें आ गयी।

मुज्तहिद होनेकी घोषणा–(धार्मिक विषयोंमें भी विवेकपूर्ण निर्णयकर्ता होनेकी घोषणा) बादशाह अकबर द्वारा १५७९ ई०में की गयी। एक व्यवस्था-पत्रके द्वारा अल्लाहकी शान और इसलामके प्रचारके लिए बादशाहको इसलाम धर्मसे सम्बन्धित किसी भी विवादमें अन्तिम निर्णयकर्ता घोषित कर दिया गया। इस व्यवस्था-पत्रके द्वारा मुगल बादशाहको मुज्तहिद बना दिया गया और उसकी शक्ति बहुत अधिक बढ़ गयी।

मुजाहिद–बहमनी वंशका तृतीय सुल्तान। वह अत्यधिक मदिरा पान करता था, फलतः उसका चचेरा भाई दाऊद उसका वध करके सिंहासनपर बैठ गया। दाऊद भी

अपने सिंहासनारोहणसे एक वर्षके भीतर ही एक गुलाम द्वारा मार डाला गया।

मुडीमैन कमेटी–भारत सरकार द्वारा १९२४ ई०मे नियुक्त की गयी। उसका सरकारी नाम सुधार जाँच कमेटी था किन्तु सामान्य रूपसे वह अपने अध्यक्ष सर अलेक्जेण्डर मुडीमैनके नामपर मुडीमैन कमेटी कही जाती थी। मुडीमैन उस कालमे भारत सरकारका गृह सदस्य था। कमेटीके सदस्योमे सर तेज बहादुर सप्रू जैसे प्रमुख गैर-सरकारी व्यक्ति भी थे। उसका कार्य १९१९ के गवर्नमेण्ट आफ इडिया ऐक्टके अनुसार १९२१ ई० में जो सविधान सुधार प्रचलित किया गया था उसके दोषोकी जाँच करना था। कमेटीने दिसम्बर १९२४ ई०मे रिपोर्ट प्रस्तुत की। सदस्योने दो प्रकारकी राय व्यक्त की थी। बहुमतसे ऐक्टमे केवल मामूली परिवर्तन करनेकी सिफारिश की गयी थी। परन्तु अल्पसख्क गैर-सरकारी भारतीय सदस्योने द्वैध शासन (दे०)की अपरोक्ष रीतिसे निन्दा करते हुए ऐक्टमे आधारभूत परिवर्तन करनेकी सिफारिश की थी। इन सिफारिशोपर कोई काररवाई नही की गयी।

मुतब्बर खाँ–औरगजेबके राज्यकालके अन्तिम वर्षोमे उसकी सेनाका एक पदाधिकारी। उसने नासिक जिलेमे मराठोके कई पहाडी दुर्गोपर अधिकार करनेमे विशेष योग्यता दिखलायी और फिर कोकणकी ओर बढकर कल्याण आदि कई स्थलोपर अधिकार कर लिया। इस प्रकार वह पश्चिमी समुद्र-तटीय प्रदेशोको मुगल शासनके अधीन करानेमे सफल हुआ। मुतब्बर खाँ कल्याणमे कई वर्षों तक रहा और उक्त नगरमे कई सुन्दर इमारते बनवायी।

मुदकीकी लड़ाई–१८४५ ई०मे अग्रेजो और सिखोके बीच हुई। इसमे सिखोकी हार हुई।

मुदगल–कृष्णा और तुगभद्रा नदियोके दोआबमे स्थित परकोटेसे घिरा एक नगर। इसके लिए बहमनी (दे०) और विजयनगर साम्राज्यो (दे०)के बीच बराबर लडाई होती रहती थी और वह किसी एक राज्यके अधीन हो जाता था और कभी दूसरे राज्यके अधीन। अन्तमे विजयनगरके राजा अच्युत राय (दे०) (१५२९–४२ ई०) से इसे बीजापुरके सुल्तान इस्माइल आदिलशाह (दे०) (१५१०-३४ ई०)ने अन्तिम रूपसे छीन लिया।

मुद्रा प्रणाली–भारतमे इसका इतिहास बहुत पुराना है। सबसे पुराने भारतीय सिक्के चाँदी या ताँबेके हुआ करते थे। इनका आकार सामान्यत चौकोर या आयत होता था। ऐसे सिक्के ईसापूर्व कमसे कम चाथी शताब्दीके है जिनका प्रचलन कई शताब्दियो बाद तक बना रहा। ईसापूर्व दूसरी शतीमे भारतीय सिक्कोपर यूनानी प्रभाव पडने लगा और उनमे तदनुरूप कुछ सुधार किया गया। भारतीय-बाख्त्री नरेशोने अधिक सुन्दर सिक्के जारी किये जिनपर ग्रीक और प्राकृत भाषाओमे लेख अकित थे। ईसा बाद प्रथम शताब्दीसे कुषाण राजाओ (दे०)ने सोने और ताँबेके सिक्के जारी किये, जिनके एक पार्श्वपर बलि चढाते हुए एक राजाकी छवि अकित होती थी और दूसरे पार्श्वपर तत्कालीन सभी धर्मोके देवी-देवताओकी आकृति। इस प्रकारके सिक्के बाद की कई शताब्दियो तक उत्तरी भारतमे प्रचलित रहे। गुप्त सम्राटोने चौथी ई० मे सुधरी हुई किस्मके सिक्के भारी सख्यामे जारी किये, उनके ऊपर सस्कृत भाषाके लेखके साथ-साथ सिक्का चलानेवाले राजाका नाम और उसकी विभिन्न भाव मुद्राएँ अकित होती थी। उदाहरणके लिए समुद्रगुप्तके जो सोनेके सिक्के मिले है, उनमे उसे पर्यंकपर बैठकर वीणा बजाते हुए अथवा अश्वमेध करते हुए चित्रित किया गया है। पश्चिमी क्षत्रपोने चाँदीके सिक्के चलाये, जिनपर नाम सहित उनकी आवक्ष प्रतिमा अकित होती थी।

छठी शताब्दीमे हूणोके आक्रमणके परिणामस्वरूप सिक्कोमे ह्रास हुआ। किन्तु दसवी शताब्दीमे गाधारके शाही शासकोने फिर शुद्ध चाँदीके सिक्का ढालने शुरू कर दिये। इन्ही सिक्कोकी नकल बादको भारतके तुर्क विजेताओने की। दिल्लीके सुल्तानोने अपने समयमे विभिन्न प्रकारके सिक्के जारी किये। इनमे १७८ ग्रेन वाले सोने और चाँदीके टक (रुपये) मुख्य थे। ये आकारमे बडे और मोटे थे जिनके एक तरफ 'कलमा' और दूसरी तरफ सिक्का प्रचलित करनेवाले बादशाह व सिक्का ढालनेवाली टकसालका नाम और तिथि अकित रहती थी। मुहम्मद तुगलकने वित्तीय सकटपर विजय पानेके उद्देश्यसे स्वर्ण मुद्राओके स्थानपर ताँबेके सिक्के प्रचलित किये। यह प्रयोग विफल रहा और भारतमे किसी अन्य मुस्लिम शासकने इस प्रकारकी प्रतीक मुद्राका प्रचलन नही किया। किन्तु सिक्कोका गुण-स्तर शेरशाहके समय तक गिरता गया। शेरशाहने सोने और चाँदीके टक (अथवा रुपया) जारी करके मुद्रा प्रणालीको फिर स्थिरता प्रदान की। शेरशाहने चाँदीके रुपये और ताँबे के सिक्केके बीच १ : ६४ का अनुपात निर्धारित किया। चाँदीका यह सिक्का एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तनके साथ सम्पूर्ण मुगल शासनकालमे भारतीय मुद्राप्रणालीका मान-

दण्ड माना जाता रहा। औरंगजेब (दे०) ने 'कलमा'के स्थानपर टकसालका नाम और मुद्रा जारी करनेकी तिथि अंकित की। औरंगजेबके उत्तराधिकारियोंने भी इसी प्रथाका अनुगमन किया।

सिक्कोंके मामलेमें अंग्रेजोंने भी १८३५ ई० तक मुगलोंकी परम्पराका ही पालन किया। सिर्फ शाहआलम द्वितीयके शासनके उन्नीसवें वर्षमें ही उन्होंने एक नया सिक्का जारी किया। इन सिक्के पर पुराने लेखोंको हटा कर अंग्रेज सम्राट्का चित्र अंकित किया गया। आगे चलकर विभिन्न मूल्योंके चांदी और तांबेके सिक्के जारी किये गये और जालसाजी रोकनेके लिए पर्याप्त उपाय किये गये। प्रथम विश्वयुद्धके कालमें सोनेके सिक्कोंका प्रचलन बन्द करना पड़ा और दूसरे विश्वयुद्धमें चाँदीके रुपये तथा अन्य छोटे सिक्कोंमें चाँदीकी मात्रा कम कर दी गयी। चाँदीके रुपयेके स्थानपर एक रुपयेका प्रतीक रूप कागजी नोट चलाया गया जो वैध-मुद्रा बन गया। भारत जबसे आजाद हुआ है, वह बराबर नये सिक्के जारी करता रहा है। ये सिक्के न तो सोने-चाँदीके हैं और न तांबे के। एक रुपयेसे नीचे एक पैसे तक ये सिक्के मिश्रित धातुके हैं। दशमिक प्रणालीके अनुसार एक रुपया और एक पैसेका अनुपात १ : १०० निर्धारित किया गया। इन सिक्कोंपर स्वतन्त्र भारतके नये पदके अनुरूप नये राजचिह्न उत्कीर्ण किये गये। स्वतन्त्र भारत-ने एक रुपये और उससे ऊपरके विभिन्न मूल्योंके कागजी नोट छापनेकी परम्परा भी जारी रखी। (ए० कनिंघम कृत क्वायंस आफ एन्शियेंट इण्डिया, क्वायंस आफ मेडीवल इंडिया, वी० ए० स्मिथ कृत कैटेलाग आफ इंडियन क्वायंस; जे० एलन कृत क्वायंस आफ दि गुप्ताज)

मुद्राराक्षस–एक संस्कृत नाटक, जिसकी रचना विशाखदत्त ने की। विशाखदत्तका सही-सही काल ज्ञात नहीं है, किन्तु यह माना जाता है कि वह गुप्तकालके उत्तरार्धमें हुआ। इस नाटकमें चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा आर्य चाणक्य-की सहायतासे अन्तिम नन्द राजासे मगधका राजसिंहासन छीन लिये जानेकी ऐतिहासिक घटना का उल्लेख है।

मुनीम खाँ–हुमायूंका वीर और साहसी पदाधिकारी जो अकबरके प्रारंभिक शासन कालमें काबुलमें ऊँचे पदपर आसीन था। बैरम खाँके पतनके उपरान्त उसे खानखाना पदपर नियुक्त किया गया। मुनीम खाँने बंगालमें १५७३ ई० में मुगल सैनिक अभियानका संचालन किया और वहाँके अफगान शासक दाऊद (दे०)को १५७५ ई०में पराजित कर उसकी अधीनता स्वीकार करनेपर विवश किया। किन्तु कुछ ही समय उपरान्त बीमारीके कारण उसकी मृत्यु हो गयी।

मुनीम खाँ–सुलतान बेगका पुत्र और तत्कालीन अफगानिस्तान सूबेके प्रान्तीय शासक शाहजादा मुअज्जमका राजस्व-मंत्री। १७०७ ई०में अपने पिता औरंगजेबकी मृत्यु-के समय शाहजादा मुअज्जम जमरूदमें था। मुनीम खाँने बड़ी ही तत्परतासे शाहजादा मुअज्जमको यथेष्ट धनराशि दी और यातायातके साधनों तथा सैन्यदल संग्रहीत करनेमें सहायता पहुँचायी। इससे वह जमरूदसे शीघ्र ही आगरा आनेमें समर्थ हुआ और अपने आपको बहादुरशाहके नामसे सम्राट् घोषित कर दिया। उपरान्त मुनीम खाँने कामबख्श (दे०)को पराजित किया जो युद्ध-क्षेत्रमें ही मारा गया, १७१० ई०में बन्दा बहादुर तथा विद्रोही सिखोंको पराजित करनेमें बड़ा हाथ रहा। यद्यपि बहादुरशाह मुनीमखाँका विशेष रूपसे कृतज्ञ था, तथापि उसको प्रधान-मन्त्रीका पद न मिला और उसे राजस्व-मन्त्री-के पदसे ही संतोष करना पड़ा।

मुन्नी बेगम–बंगालके नवाब मीरजाफरकी विधवा। प्रारम्भमें वह एक नर्तकी थी, जिससे मीर जाफरने विवाह कर लिया। वारेन हेस्टिंग्सने उसे नवाबके हरमकी अधि-ष्ठाता नियुक्त किया और बादमें उसे अल्पवयस्क नवाब मुबारकुद्दौलाका अभिभावक बना दिया। १७७५ ई०में नंदकुमारने वारेन हेस्टिंग्सपर यह दोषारोपण किया कि उसने इन नियुक्तियोंके बदले लम्बी धनराशि घूसके रूपमें ली है। किन्तु इन अभियोगोंकी कोई जाँच न हुई और मुन्नी बेगम अपने पदपर यथापूर्व बनी रही।

मुबारक शाह–दिल्लीका निवासी एक आर्मीनियाई ईसाई। बादशाह जहाँगीर उससे परिचित था। बादशाहके कहनेसे उसने अपनी लड़कीका विवाह कैप्टेन हाकिन्स (दे०) से कर दिया था।

मुबारकशाह शर्की–जौनपुरका पहला सुल्तान। उसने केवल तीन वर्ष (१३९९–१४०२ ई०) तक शासन किया।

मुबारक शेख–देखिये, 'शेख मुबारक'।

मुबारकुद्दौला–बंगालका एक नाबालिग नवाब। १७७५ ई० में नंदकुमार (दे०) ने आरोप लगाया कि वारेन हेस्टिंग्स-ने मुन्नी बेगमको नाबालिग नवाबका अभिभावक नियुक्त करनेके लिए उससे घूसके रूपमें बड़ी रकम ली है। इन आरोपोंकी कभी पूरी तरहसे जाँच नहीं की गयी।

मुमताज महल–नूरजहाँके भाई आसफ खाँकी पुत्री, जो जहाँगीरके शासनकालमें भारी धनवान् और शक्तिशाली सरदार था। उसका [illegible] नाम [illegible] बेगम था

और १६१२ ई०मे जहाँगीरके पुत्र खुर्रम (उपरात सम्राट् शाहजहाँ) से विवाह हुआ और उसका नाम मुमताज महल (रनिवासका रत्न) रखा गया । यह विवाह सम्बध अत्यन्त सुखद रहा । शाहजहाँ और मुमताजके १४ बच्चे हुए, जिनमे दारा, शुजा, औरगजेब और मुराद—चार पुत्र थे । १६३१ ई० मे मुमताज महलकी मृत्यु प्रसवकालमे बुरहानपुरमे हो गयी । उसका शव आगरा लाया गया, जहाँ शाहजहाँने उसकी कब्रपर ताजमहल (दे०) नामक विश्वविख्यात अद्वितीय स्मारक बनवाया ।

मुराद बख्श–शाहजहाँ और मुमताज महलका सबसे छोटा पुत्र । जन्म १६२४ ई०मे हुआ । युवावस्था प्राप्त होनेपर वह वीर साहसी एव युद्ध-प्रिय युवक सिद्ध हुआ । उसने काँगडा घाटीमे एक विद्रोहको दबाया और बलख पर अधिकार कर लिया, यद्यपि बादमे उसे वहाँसे लौट-आना पडा । १६५७ ई०मे जब शाहजहाँ अस्वस्थ हुआ, मुराद गुजरातका प्रान्तीय शासक था । वह दुस्साहसी और अधीर था । अपने सबसे बडे भाई दाराको उत्तराधिकारसे वञ्चित रखनेके लिए दृढप्रतिज्ञ होकर उसने सूरतको लूटा और अपनेको सम्राट् घोषित कर दिया तथा अपने नामसे सिक्के भी ढलवाये । किन्तु शीघ्र ही बडे भाई औरगजेबके समझानेपर उसने इस आधारपर उसका साथ दिया कि साम्राज्यका विभाजन औरगजेब और उसके मध्य होगा । फलत उसने अपनी सेनाओंको औरगजेबकी सेनाओमे सम्मिलित कर दिया और धर्मट तथा सामूगढके युद्धोमे प्राप्त होनेवाली विजयोमे यशका भागीदार बना । अतिम युद्धके उपरात शीघ्र ही दोनो भाई आगराकी ओर बढे । वहाँ मुरादको औरगजेबके वचनोसे शका उत्पन्न हुई जिससे वह औरगजेबके विरुद्ध अपनी शक्ति-वृद्धिमे प्रयत्नशील हुआ । किन्तु धूर्त औरगजेबने मुरादको अपने डेरेमे बुलाया और वही बन्दी बना लिया । वह ग्वालियरके दुर्गमे रखा गया, जहाँ गुजरातके भूतपूर्व दीवानकी हत्याके अभियोगमे अदालतके निर्णयानुसार उसे फाँसी दे दी गयी ।

मुराद, शाहजादा–अकबरका सलीमा बेगमसे १५७० ई०मे उत्पन्न द्वितीय पुत्र । वह काबुल तथा दक्षिणमे कई महत्त्वपूर्ण पदोपर आसीन हुआ तथा दक्षिणमे अहमदनगर सल्तनतसे बरार प्रान्तको प्राप्त करनेमे सफल रहा । मुराद अत्यधिक मदिरा पीता था, फलस्वरूप १५९९ ई०मे उसकी मृत्यु हो गयी ।

मुरारि राव–दक्खिनकी ओर स्थित गूटीका एक मराठा सरदार । उसने चाँदा साहबके विरुद्ध पहले कर्नाटक-युद्ध (दे०)मे अग्रेजो तथा क्लाइवकी सहायता की । १७५२ ई०मे त्रिचनापल्लीका घेरा खत्म करवानेमे तथा उसी वर्ष चाँदा साहबको हरानेमे वह क्लाइवका दाहिना हाथ बना रहा ।

मुर्तजा अली–कर्नाटकका नवाब । १७४३ ई०मे निजाम आसफ जाहने उसे गद्दीसे उतार कर अनवरुद्दीनको कर्नाटकके सिंहासनपर बैठा दिया ।

मुर्तजा निजाम शाह, प्रथम–अहमदनगरके निजामशाही वशका चौथा सुल्तान, जिसने १५६५ से १५८६ ई० तक राज्य किया । अपने राज्यकालके प्रथम ६ वर्षोमे उसने सारा शासन-प्रबन्ध अपनी माताके हाथोमे छोड रखा । बादमे उसने यथेष्ट सक्रियता दिखलायी और बरारको विजय कर लिया, किन्तु बीदरपर अधिकार करनेमे वह असफल रहा । उपरात वह अपना मानसिक सतुलन खो बैठा और उसके पुत्र हुसैनने, जो उसके बाद सिंहासनासीन हुआ, उसका वध कर दिया ।

मुर्तजा निजाम शाह द्वितीय–अहमदनगरका दसवाँ सुल्तान । उसने १६०३ से १६३० ई० तक शासन किया । शासन-प्रबधमे मलिक अम्बर (दे०) उसका प्रधान सहायक था । उसके राज्यका अधिकाश भू-भाग मुगलोने छीन लिया, जिनके साथ उसका युद्ध बराबर चलता रहा । १६३० ई०मे उसके मन्त्री फतेह खाँ (दे०)ने उसका वध कर दिया । फतेह खाँ अम्बरका पुत्र था और १६२६ ई०मे अपने पिताके मरनेपर उसके पदपर आरूढ हुआ था ।

मुर्शिद कुली खाँ–रुस्तमे जंगकी उपाधिसे विभूषित, मुर्शिद कुली जाफर खाँ (दे०)के दामाद एव उत्तराधिकारी नवाब शुजाउद्दीनका उडीसामे नायब । १७४० ई०मे जब अलीवर्दी खाँने मुर्शिद कुली जाफर खाँके वशजोको मार कर उनसे बगालकी गद्दी छीन ली, तब भी वह उडीसामे पदासीन रहा । १७४१ ई०मे अलीवर्दी खाँने उसे पराजित कर उडीसासे खदेड दिया ।

मुर्शिद कुली जाफर खाँ–फारसका निवासी, जो मुगलोकी सेवामे आनेपर दीवान बनाकर औरगजेबके साथ दक्षिण भेजा गया । १६५६ ई०मे उसकी पदोन्नति समस्त दक्षिणके दीवानके रूपमे हुई । इस पदपर रह कर उसने यथासभव एक ही प्रकारके मापदड द्वारा भूमिकी पैमाइश, अनुमानित उपजपर कर-निर्धारण एव भूमिकरकी नकद या उपजके रूपमे वसूली आदि सिद्धातोंके आधारपर दक्षिणमे राजस्व-सग्रह तथा भूमि-व्यवस्थाको सुनियोजित किया । राजस्व नकदीमे देना ही श्रेष्ठ माना गया ।

दक्षिणमे उसे इतनी सफलता प्राप्त हुई कि १७०१ ई०मे बगालका दीवान नियुक्त किया गया । वहाँ भी

उसने प्रांतके वित्तीय विभागको इतने सुचारु रूपमे सचालित किया कि उसे सूबेदारकी अधीनतामे स्वतन्त्र कर दिया गया और प्रांतीय राजधानी ढाकासे समस्त राजस्व सबधी कार्यालयोको यही स्थानपर ले जानेकी अनुमति दे दी गयी। यही स्थान आगे मुर्शिदाबाद कहलाया। औरगजेबकी मृत्युके उपरांत वह बगाल, बिहार और उडीसाका सूबेदार नियुक्त किया गया। इन भू-भागोपर १७२६ ई० मे मृत्युपर्यन्त वह सुचारु रूपसे शासन करता रहा।

मुर्शिदाबाद—बगालमे भागीरथी नदीके तटपर स्थित नगर। इसकी नीव १७०४ ई०के प्रारभमे मुर्शिद कुली जाफर खाँने डाली। प्रारभमे यह नगर केवल दीवानका मुख्य कार्यालय था। किन्तु जब मुर्शिद कुली खाँ क्रमश पदोन्नति करके दीवानमे बगालका नवाब बन गया, तब मुर्शिदाबाद भी उन्नति करके बगालकी राजधानी बन गया। यह नगर १७७३ ई०, तक बगालकी राजधानी रहा, जब उसका यह गौरव कलकत्ताने छीन लिया। नगरमे नवाबका महल अत्यत भव्य है। यह हजार दुआरीके नामसे विख्यात है। इसका निर्माण १८३७-४० ई०के मध्य हुआ। जहाँ पद्मा नदी मुर्शिदाबाद जिले और बगला देशकी सीमाओको विभक्त करती है, वहाँ भागीरथी नदीने इस जिलेको दो भागोमे बाँट दिया है। पश्चिमी भाग राढ कहलाता है, जो कुछ ऊँचाईपर है और जहाँ हिन्दुओकी जनसख्या अधिक है। इसका पूर्वी भाग बगडी कहलाता है, जिसकी भूमि नीची है और जहाँ मुसलमानोकी सख्या अधिक है। यहाँ कोई बड़े-बड़े उद्योग धधे तो नही है, किन्तु यहाँके आमके बाग प्रसिद्ध है।

मुलतान—आधुनिक पाकिस्तानमे चिनाब नदीके तटपर स्थित पश्चिमी पजाबका एक महत्त्वपूर्ण नगर। यह सिन्धसे पजाब जानेवाले राजमार्गपर है। सैनिक दृष्टिसे इसकी स्थिति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सुल्तान महमूद (गजनी) (दे०) ने उसे जीत कर अपने राज्यमे मिला लिया था। उपरान्त उसे शहाबुद्दीन गोरी (दे०) ने गजनवियोसे छीन लिया, जो शताब्दियो तक दिल्ली साम्राज्यका एक भाग रहा। अहमदशाह अब्दाली (दे०) ने उसे जीतकर अफगानिस्तानमे सम्मिलित कर लिया, परन्तु १८१८ ई० मे महाराजा रणजीतसिह (दे०)ने उसे अफगानोसे छीन लिया। उस प्रदेशके सिख सूबेदार मूलराजने १८४८–४९ ई०मे अग्रेजोके विरुद्ध विद्रोह कर दिया, जो अन्तमे द्वितीय सिख-युद्ध (दे०)मे परिणत हो गया। इसमे अग्रेजोकी विजय हुई और मुलतान ब्रिटिश साम्राज्यमे मिला लिया गया।

मुस्लिम लीग—ढाकाके नवाब सलीमउल्लाके प्रयाससे १९०६ ई० मे स्थापना हुई। इसकी योजना उस प्रोत्साहनके आधारपर हुई थी, जो लार्ड मिण्टो द्वितीयकी सरकार द्वारा मुसलमानोको दिया गया था। प्रारम्भसे ही इस सस्थाका ध्येय भारतीय मुसलमानोके राजनीतिक हितोकी रक्षा, समर्थन और परिवर्द्धन था और यह ब्रिटिश सरकारके समर्थनपर सदैव आधारित रही, क्योकि सरकार भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसका प्रतिकार करनेके लिए, जिसमे हिन्दुओकी सख्या अधिक थी, इसे उपयोगी समझती थी। मुस्लिम लीगने केवल एक बार १९१६ ई०मे लखनऊ समझौतेके आधार पर भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसका समर्थन करनेके अतिरिक्त कभी भारतीयोके राजनीतिक अधिकारोकी माँग नही की। किन्तु दोनोका यह सहयोग शीघ्र ही समाप्त हो गया और मुस्लिम लीग पुन मुसलमानोके हितोकी रक्षाके लिए ब्रिटिश सरकारकी सहायता और समर्थनपर निर्भर करने लगी। इस सस्थाकी मुख्य दलील थी कि स्वतन्त्र भारतकी जनता द्वारा चुनी गयी जनतान्त्रिक व्यवस्थामे मुसलमान, हिन्दू बहुमत द्वारा शासित होगे। अतएव देशके अतीत कालके इतिहासकी शिक्षाओको भुलाकर तथा इस सत्यकी उपेक्षा कर कि भारतमे ब्रिटिश राज्य हिन्दुओके मुसलमानी शासनके विरोधस्वरूप नही, अपितु मुसलमानोकी सहायतासे स्थापित हुआ, मुस्लिम लीगने भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके विरुद्ध अग्रेजोका साथ दिया, जब कि काग्रेस सभी भारतीय हिन्दुओ और मुसलमानोके राजनीतिक अधिकारोका समर्थन करती थी।

समयकी गतिके साथ इस शताब्दीके तीसरे दशक तक, जब ब्रिटिश राज्यकी सत्तामे कुछ दुर्बलताके लक्षण प्रकट होने लगे थे, मुस्लिम लीगमे इतनी हिन्दू-विरोधी भावना भर गयी कि उसने नारा लगाना आरम्भ कर दिया कि देशको विभाजन करके मुस्लिम-बहुल भागमे पाकिस्तान और हिन्दू-बहुल भागमे हिन्दुस्तानकी स्थापना की जानी चाहिए। यह अल्पदृष्टि-युक्त एव पूर्णत साम्प्रदायिक माँग अग्रेजोके द्वारा स्वीकार कर ली गयी, और उन्होने भारत छोडते समय देशका विभाजन करके सम्प्रदायवादी भारतीय मुसलमानोको पाकिस्तान प्रदान कर दिया। देशके इस विभाजनसे हिन्दू और मुसलमान दोनोको अत्यधिक कष्ट सहन करना पडा और भयकर रक्तपात हुआ। इस प्रकार विभाजित और दुर्बल भारत देशवासियोको मुस्लिम लीगकी देन है।

मुहम्मद अली—कर्नाटकके नवाब अनवरुद्दीन (दे०) का

पुत्र। १७४९ ई०मे ग्राम्बूरके युद्धमे चन्दा साहब, मुजफ्फर जग और फासीसियोकी सम्मिलित सेनाग्रोने जब उसके पिताको पराजित किया तो उसने भाग कर त्रिचनापल्लीके दुर्गमे शरण ली। वहाँसे अग्रेजोकी सहायताके बलपर उसने अपने शत्रुओंको पराजित किया और १७५२ ई० मे वह कर्नाटकका वास्तविक शासक बन बैठा। उसकी सत्ता पूर्णतया मद्रासमे स्थित अग्रेजी सेनाके समर्थनपर निर्भर थी और अपनी मृत्यु पर्यन्त वह कर्नाटकमे अग्रेजोके कठपुतली शासकके रूपमे राज्य करता रहा।

मुहम्मद अली, मौलाना—प्रसिद्ध मुसलमान विद्वान और नेता। उन्होने कुरानका सबसे प्रामाणिक अनुवाद किया। अपने भाई शौकत अलीके साथ मिलकर मौलानाने प्रथम महायुद्धके समाप्त होनेके बाद भारतके राष्ट्रीय आन्दोलनमे महत्त्वपूर्ण हिस्सा लिया। वे खिलाफत आन्दोलनके नेता थे। यह आन्दोलन प्रथम महायुद्धके बाद अग्रेजोकी तुर्की साम्राज्यको भग कर देनेकी नीतिके विरोधमे चलाया गया था। उन्होने महात्मा गाधी द्वारा सचालित असहयोग आन्दोलन (१९२०–२४ ई०) मे भी हिस्सा लिया। १९२३ ई० मे उनको भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसका अध्यक्ष बनाया गया, लेकिन जब महात्मा गाँधीने १९३० ई०मे दुबारा असहयोग आन्दोलन शुरू किया तो वे उससे अलग हो गये। मृत्यु पर्यन्त वे राष्ट्रीयतावादी मुसलमान नेता बने रहे।

मुहम्मद आदिलशाह (१६२६–५६)—बीजापुरके आदिलशाही वशका सातवाँ सुल्तान। उसका दीर्घकालीन शासन, मराठो तथा मुगलोके निरन्तर आक्रमणोके लिए उल्लेखनीय है। उसे १६३६ ई० मे शाहजहाँकी अधीनता स्वीकार करनी पडी। उसका राज्य दक्षिण-भारतमे आसमुद्र विस्तृत था और अत्यन्त शक्तिशाली एव वैभवपूर्ण था।

मुहम्मद आदिलशाह सूर—शेरशाह (दे०) का भतीजा और सूर वशका तृतीय शासक। उसने दिल्लीमे केवल दो वर्षो तक (१५५४–५६ ई०) शासन किया और १५५६ ई० मे मुगेरके युद्धमे मारा गया। वह हेमू (दे०) का आश्रयदाता था और शासनका सारा भार उसके हाथोमे सौप दिया था।

मुहम्मद कुतुब—गोलकुण्डाके पाँचवे सुल्तान मुहम्मद कुलीका भतीजा और दामाद। १६२१ ई० मे सुल्तानकी मृत्युके उपरान्त वह शासक हुआ और १६२६ ई० तक अपनी मृत्युपर्यन्त शासन करता रहा।

मुहम्मद कुली—गोलकुण्डाके कुतुबशाही वशका पाँचवाँ शासक। १५८० ई० से १६१२ ई० तक वह राज्य करता रहा। उसकी अधिकाश शक्तिका अपव्यय कर्नाटक, उडीसा और बस्तरके भू-भागोपर अधिकार करनेमे हुआ। उसने मुगल साम्राज्यका विस्तार रोकनेके लिए दक्षिणी राज्योका सघ बनानेकी बात नही सोची। हयात बख्श बेगम नामक उसकी एक पुत्री थी, जिसका विवाह उसके भतीजे तथा उत्तराधिकारी मुहम्मद कुतुब (दे०) के साथ हुआ था।

मुहम्मद खिलजी—(बख्तियार खिलजीका पुत्र) देखिये, इख्तियारुद्दीन खिलजी।

मुहम्मद गोरी (उपनाम शहाबुद्दीन गोरी या मुईजुद्दीन गोरी)—भारतमे मुसलमानी राज्य और दिल्ली सल्तनतका सस्थापक। वह गोरके शासक गयासुद्दीनका भाई था, जिसने उसे ११३७ ई० मे, विजित भारतीय प्रदेशोका शासक नियुक्त किया। मुहम्मद गोरी महान् विजेता और कुशल सैन्य-सचालक था। ११७५ ई० मे उसने मुलतान और अगले ही वर्ष उच्चपर विजय प्राप्त की। ११७८ ई० मे गुजरातके चालुक्य शासक भीमदेव द्वितीय द्वारा खदेड दिये जानेपर उसने ११८६ ई० मे खुसरो मलिक (दे०) को पराजित करके पजाबपर अधिकार कर लिया। इस प्रकार उत्तरी भारतके मैदानी भू भागोमे बढनेके लिए उसका पथ प्रशस्त हो गया। किन्तु उसका प्रथम प्रयास विफल रहा, क्योकि ११९१ ई० मे तराइनके प्रथम युद्धमे उसे दिल्ली और अजमेरके चौहान शासक पृथ्वीराजके नेतृत्वमे सगठित राजपूत राजाओंसे परास्त होना पडा। मुहम्मद गोरीने युद्ध-क्षेत्रसे भाग कर अपने प्राण बचाये, किन्तु दूसरे ही वर्ष उसने पुन चढाई की और पृथ्वीराजसे तराइनके मैदानमे ही उसका द्वितीय युद्ध हुआ। इस बार गोरीने अपनी सेनामे १०,००० धनुर्धर अश्वारोहियोको सम्मिलित करके पृथ्वीराजकी भारी-भरकम भारतीय सेनाके मुकाबलेमे अपनी शक्तिमे भारी वृद्धि कर ली थी। फलत पृथ्वीराज पराजित हुआ और युद्धक्षेत्रमे ही मारा गया।

तराइनके द्वितीय युद्धकी विजयके फलस्वरूप दिल्लीके निकट तक उत्तरी भारतपर गोरीका अधिकार हो गया और ११९३ ई० मे उसके गुलाम और सिपहसालार कुतुबुद्दीन ऐबक (दे०) ने दिल्लीको भी जीत लिया। दूसरे ही वर्ष गोरीने कन्नौजके शासक जयचन्द्रको चन्दावरके युद्धमे पराजित कर मार डाला। अगले कुछ वर्षो तक मुहम्मद गोरी भारतकी अपेक्षा गजनीके पर्वतीय क्षेत्रोमे ही अधिक व्यस्त रहा और कुतुबुद्दीन

(दे०) तथा उसके अधीनस्थ सरदार मुहम्मद खिलजी गंगाकी घाटी, बिहार और बंगालमें उसका विजय-अभियान चलाते रहे। १२०३ ई० में सुलतान गयासुद्दीनकी मृत्युके उपरान्त मुहम्मद गोरी, गोर-गजनी और उत्तरी भारतका शासक बना। किन्तु वह अधिक दिनों तक शासन न कर सका, क्योंकि १२०६ ई० में लाहौरमें गजनी जाते समय विद्रोही खोक्करोंने छूरा मार कर उसकी हत्या कर दी। मुहम्मद गोरीकी सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि उसने भारतमें मुसलमानी राज्यकी स्थापना की, जो अगले ६०० वर्षों तक यहाँ कायम रहा।

मुहम्मद बिन कासिम—एक नवयुवक अरब सेनापति, जिसे ईराकके प्रान्तपति अल हज्जाजने, जो उसका चाचा और श्वसुर भी था, सिन्धके शासक दाहिरको दण्ड देनेके लिए भेजा था। मुहम्मद बिन कासिमने देवलको ध्वस्त करके नेरुनपर अधिकार कर लिया और सिन्धु नदी पार करके दाहिरको ७१२ ई० में राओरके युद्धमें पराजित कर मार डाला। उपरान्त उसने राओरके दुर्गको ध्वस्त करके राजधानी आलोर तथा मुल्तानपर भी अधिकार कर लिया। पश्चात् उसने सिन्धघाटीके सम्पूर्ण निचले काँठेमें अरब शासन स्थापित कर दिया। शासकके रूपमें भी उसने यथेष्ट कुशलताका परिचय दिया और समस्त नव-विजित प्रदेशमें एक ऐसी शासन-व्यवस्था स्थापित की, जिससे राज्यमें शान्ति रहे। किन्तु खलीफा सुलेमानने असतुष्ट होकर उसे शासक पदसे हटा दिया और विरोधियोंके हाथों उसका वध करा दिया।

मुहम्मद बिन तुगलक—१३२५ से १३५१ ई० तक तुगलक वंशका शासक। वह तुगलक वंशकी नींव डालनेवाले गयासुद्दीन तुगलकका पुत्र और उत्तराधिकारी था। कुछ विद्वानोंके अनुसार गयासुद्दीनकी आकस्मिक मृत्यु मुहम्मद तुगलकके षड्यन्त्रसे हुई थी। मुहम्मद तुगलकका व्यक्तित्व अत्यंत जटिल था। अपनी सनक-भरी योजनाओं, क्रूरताओं और दूसरोंके सुख-दुखके प्रति पूर्ण उपेक्षा भावके कारण उसे पागल और रक्त-पिपासु भी कहा जाता है। वह दिल्लीके सभी सुल्तानोंसे अधिक विद्वान् और सुसंस्कृत तथा योग्य सेनापति था और अधिकांश युद्धोंमें उसे विजय प्राप्त हुई। बहुत कम अवसरोंपर उसे पराजयका मुह देखना पड़ा। उसमें ज्ञानार्जनकी अदम्य लालसा रहती थी। उसने मुसलमान होते हुए भी मुल्लाओंकी उपेक्षा करके राज्यका शासन-प्रबंध करनेका प्रयास किया और कुछ ऐसी मौलिक योजनाएँ प्रचलित की, जो साम्राज्यके हितमें थी। इसीलिए कुछ विद्वानोंने उसे असाधारण प्रतिभाशाली शासक माना है जिसके विचार अपने युगसे काफी आगे बढ़े हुए थे, और इसीलिए वह प्रतिक्रियावादियोंका शिकार हुआ। कदाचित् सत्यता दोनों ही मतोंमें है। वास्तवमें मुहम्मद तुगलक न तो पागल था और न असाधारण प्रतिभाशाली शासक ही। वह अवश्य मौलिक योजनाएँ बनाता था परन्तु उसमें व्यावहारिकता और धैर्यकी कमी थी। इसलिए उसे असफलताएँ ही हाथ लगी।

मुहम्मद तुगलकका शासनकाल महत्त्वपूर्ण उपलब्धियोंसे आरम्भ हुआ। १३२७ ई० में उसके चचेरे भाईने दक्षिणमें और १३२८ ई० में मुलतानके हाकिमने विद्रोह कर दिया, परतु दोनों ही विद्रोह दबा दिये गये। उपरात वारंगल, मअबर और द्वारसमुद्रको जीत कर दिल्ली सल्तनतकी सीमा मदुरा तक विस्तृत कर दी गयी। सभी प्रान्तोंके राजस्व-संबंधी कागज-पत्र दुरुस्त कराये गये, स्थान-स्थानपर अस्पताल और खैरातखाने खोले गये और इब्नबतूता (दे०) सहित अनेक विद्वानोंको राज्याश्रय प्रदान करके सब तरहसे सम्मानित किया गया। परन्तु जैसे-जैसे शासनकाल लम्बा होता गया वैसे-वैसे कठिनाइयोंमें वृद्धि होने लगी। १३२७ ई० में सुल्तानने आदेश दिया कि राजधानीका स्थानान्तरण दिल्लीसे देवगिरि किया जाय, जो साम्राज्यके केन्द्रमें पड़ता था। देवगिरिका नाम बदलकर दौलताबाद रखा गया। सुल्तानने दिल्लीसे दौलताबाद जानेवालोंको अनेक सुविधाएँ भी प्रदान की, किन्तु उसकी यह योजना इस हठधर्मीके कारण असफल रही कि उसने राजकर्मचारियोंके साथ दिल्लीके साधारण नागरिकोंको भी वहा जानेके लिए विवश किया। १३३० ई० में सुल्तानने प्रतीकात्मक मुद्राप्रणालीका प्रचलन किया, जैसी कि आजकल विश्वके समस्त देशोंमें प्रचलित है। उसने ताँबेके सिक्के चलाये, जिनका मूल्य सोने-चाँदीके सिक्कोंके बराबर ठहराया गया। उसकी यह योजना भी विफल रही, क्योंकि उसने जाली सिक्कोंकी रोकथामका समुचित प्रबंध नहीं किया।

१३३२ ई० में उसने फारसपर आक्रमण करनेके लिए विशाल सेनाका संग्रह किया, जिसपर अत्यधिक धन व्यय हुआ। इसके बाद यह योजना त्याग दी गयी। उपरात उसने कूर्माचल अथवा कुमायूँ (न कि चीन जैसा फरिश्ता का कथन है) को जीतनेके लिए सेना भेजी, यद्यपि इस अभियानमें वह कुछ पर्वतीय राजाओंका दमन करने-

मे अवश्य सफल हुआ परतु इसमे धन-जनकी अत्यधिक हानि हुई। आर्थिक कठिनाइयोके कारण सुलतानको करोकी दरे, विशेषकर दोआवके भू-भागमे, अत्यधिक बढा देनी पडी थी। जब लोग कर अदा नही कर पाते थे तो उन्हे वन्य पशुओकी भाँति खदेड-खदेड कर मारा जाता था। साम्राज्यके कई भागोमे दुर्भिक्ष फैल गया और सुलतानके अत्याचार और भी बढ गये। फलस्वरूप १३३४–३५ मे मअबरमे विद्रोह हुआ जो बादमे दक्षिण-के अन्य भू-भागो, उत्तरी भारत, बगाल, गुजरात और सिंधमे भी फैल गया। १३५१ ई० मे जब सुलतान सिधमे विद्रोहका दमन करनेमे व्यस्त था तभी विषमज्वर-के कारण उसकी मृत्यु हो गयी।

मुहम्मद रजा खाँ–१७६५ ई० मे नवाब मीर जाफरकी मृत्युके उपरान्त ईस्टइडिया कम्पनीकी कलकत्ता कौसिल-के समर्थनसे बगालका नायब नवाब नियुक्त किया गया। मीर जाफरके द्वितीय पुत्र नजमुद्दौलाके सिंहासनारोहण-के समय यह शर्त रखी गयी थी कि बगालका शासन नये नवाब द्वारा न होकर मुहम्मद रजा खाँके द्वारा हो। इस प्रकार रजा खाँ नाममात्रको नये नवाब नजमुद्दौला के नामपर, परन्तु वास्तविक रूपसे ईस्ट इडिया कम्पनी-की ओरसे नियुक्त शासक था। उसकी नियुक्तिसे बगालमे मुसलमानी शासनका व्यावहारिक रूपसे अत हो गया। उपरान्त कम्पनीने उसे उपदीवान नियुक्त किया, जिससे बगाल सूबेके फौजदारी, शान्ति और सुरक्षा विभागोके अतिरिक्त राजस्व विभागका नियत्रण भी उसके हाथोमे आ गया। इस प्रकार उसके माध्यमसे बगालका सामान्य शासन कम्पनीके नियत्रणमे हो गया। रजा खाँने यथेष्ट धनोपार्जन किया। बगालके १७६९–७० ई० के भीषण अकालमे, जब प्राय एक तिहाई आबादीका नाश हो गया, उसने अकालग्रस्त लोगोकी दुर्दशापर बिलकुल ध्यान नही दिया। १७७२ ई० मे कम्पनीने उसे उपदीवानके पदसे हटाकर राजस्व विभाग स्वय अपने हाथोमे ले लिया। उसपर गबनके अभियोग-मे मुकदमा भी चलाया गया, पर वह निर्दोष सिद्ध हुआ। वह सदर निजामत (अदालत) का प्रधान बना रहा, पर लार्ड कार्नवालिसके शासनकालमे उससे यह पद भी छीन लिया गया।

मुहम्मदशाह–मुगलवशका २४ वाँ बादशाह, जिसने १७१९ से १७४८ ई० तक राज्य किया। सैयद बन्धुओ (दे०) ने उसे सिंहासनासीन किया था और उसने उनको फाँसी देकर उनसे अपना पिण्ड छुडाया। इस कृत्यसे उसे शासनपर पूर्ण नियत्रण पा लेनेकी आशा थी किन्तु १७२४ ई० मे दक्षिणके विद्रोह और उपरान्त बगाल, अवध और रुहेलखण्डके विद्रोहोके कारण वह मुगल साम्राज्यको छिन्न भिन्न होनेसे न रोक सका। १७३८ ई० मे उसे बाजीराव पेशवा प्रथमको मालवा प्रान्त भी दे देना पडा। इन क्षतियोके कारण मुगल साम्राज्य इतना दुर्बल हो गया कि जब १७३९ ई० मे नादिरशाह-ने भारतपर आक्रमण किया और दिल्लीको बुरी तरह लूटा, मुहम्मदशाह उसका कोई समुचित प्रतिकार न कर सका और उसका शासन साम्राज्यके एक छोटेसे भागपर ही सीमित रह गया। एक सफलता उसे अवश्य मिली। मृत्युके कुछ ही समय पूर्व १७४८ ई० मे जब अहमद-शाह अब्दालीने भारतपर पहला आक्रमण किया, मुहम्मदशाहने उसे खदेड दिया।

मुहम्मदशाह प्रथम–बहमनी वशका द्वितीय सुलतान, जिसने १३५८ से १३७३ ई० तक शासन किया। उसके शासन-का अधिकाश समय दक्षिणके विजयनगर और उत्तरमे वारगलके काकतीय हिन्दू राजवशोसे युद्धोमे ही बीता। वह कठोर शासक था और अपने सारे राज्यमे उसने चोरी-डकैती, लूटमारकी अराजकताको पूर्णतया दबा दिया। उसने नयी शासन-व्यवस्था चलायी जिसका सचालन केन्द्रके आठ मत्रियो द्वारा होता था। उसने महलके रक्षकोकी गारदका पुनर्गठन किया। उसने प्रातो-के वार्षिक शाही दौरेकी प्रथा भी प्रचलित की, जिससे उनपर प्रभावशाली नियत्रण बना रहे। उसकी मृत्यु अत्यधिक मद्यपानके कारण हुई।

मुहम्मदशाह द्वितीय–बहमनी वशका पाँचवाँ सुलतान, जिसने १३७८ से १३९७ ई० तक राज्य किया। मुहम्मद-शाह शान्तिप्रिय और विद्या-प्रेमी था और उसने अन्य राज्योसे कोई युद्ध नही किया। उसने कई मस्जिदे बनवायी और अनाथोके लिए नि:शुल्क विद्यालयोकी स्थापना की। वह विद्वानोका आश्रयदाता था। बहमनी शासकोसे भिन्न उसकी मृत्यु प्राकृतिक कारणोसे हुई।

मुहम्मदशाह तृतीय–बहमनी राज्यका तेरहवाँ (१४६३–८२ ई०) सुलतान। सिंहासनासीन होनेके समय उसकी उम्र केवल ९ वर्षकी थी और राज्यका सारा प्रबध बडे ही व्यवस्थित रूपसे उसके मत्री मुहम्मद गवाँ (दे०) द्वारा सचालित होता था, जिसने कोकण और गोवाके हिन्दू शासकोको पराजित किया था। मुहम्मदशाह (तृतीय) ने १४७८ ई० मे उडीसाको ध्वस्त कर डाला और १४८१ ई० मे सुदूर दक्षिणके काँची या काजीवरम् नगर-

को भी लूटा। यद्यपि उसका शासनकाल सैनिक सफलताओंसे पूर्ण था, परन्तु उसका अन्त दुःखद हुआ। मुहम्मदशाह अत्यधिक मद्यपान करता था और जाली चिट्ठियोंके आधारपर मुहम्मद गवाँकी स्वामिभक्तिपर सदेह उत्पन्न कराकर १४८१ ई० मे उसका वध करा दिया गया। इन जाली चिट्ठियोंका शीघ्र ही भडाफोड हो गया किन्तु अगले ही वर्ष शोक और मदिरापानके कारण सुलतानकी मृत्यु हो गयी।

मुहम्मद, शाहजादा—सुल्तान गयासुद्दीन बलबनका पुत्र और उत्तराधिकारी। जब मगोलोंने १२८५ ई० मे पजाबपर आक्रमण किया, वह मुलतानका प्रान्तीय शासक था। मगोलोंसे युद्धमे उसकी मृत्यु हो गयी। मरणोपरान्त उसे 'शहीद' की उपाधि प्रदान की गयी।

मुहम्मद साहब (इस्लामके पैगम्बर)—जन्म ६ठी शताब्दीके अन्तिम वर्षोंमे अरबके मक्का नामक नगरमे। उन्होंने अरब देशवासियोंमे एक नये धर्मका प्रचार किया, जिसका आधार-भूत सिद्धान्त मानव जातिमे बन्धुत्व भाव और एकेश्वरवाद था। इस धर्मके अनुयायी स्वय मुहम्मद साहबको ईश्वरका दूत (पैगम्बर) मानते थे। प्रारम्भमे मक्काके निवासियोंने मुहम्मद साहबकी शिक्षाओंपर ध्यान न दिया और उनके इतने विरुद्ध हो गये कि ६२२ ई० मे उन्हें जन्मभूमि छोड़कर निकटस्थ मदीनामे शरण लेनी पडी। यह घटना हिजरतके नामसे विख्यात है और मुसलमानी सन् अथवा हिजरी सन् इसी घटनापर आधारित है।

हजरत मुहम्मद केवल विलक्षण धर्म-प्रचारक ही नहीं, बल्कि अत्यत व्यवहार-कुशल राजनीतिज्ञ भी थे। उन्होंने मक्काके अपने बन्धु-बान्धवोंसे सुलह करके काबाको अपने नये धर्मका भी पवित्र तीर्थस्थान मान लिया और इसके बाद मक्का लौट आये। मक्का और मदीनाके लोगोंके सयुक्त समर्थनसे उन्हे अपने नवीन धर्मके प्रचारमे द्रुत सफलता प्राप्त हुई और सभीने उन्हें पैगम्बर स्वीकार कर लिया। वे लौट कर मक्कामें १० वर्ष रहे। इन थोडेसे वर्षोंमे सम्पूर्ण अरबदेशने उनके धर्मको स्वीकार कर लिया और वे अरब-निवासियोंका एकछत्र धार्मिक और राजनीतिक नेतृत्व करने लगे। उन्होंने अरबनिवासियोंको इस प्रकार एकताके सूत्रमे बाध दिया कि ६३२ ई० मे उनकी मृत्युके उपरान्त केवल ८० वर्षोंमे ही उनके अनुयायियोंने अपना नूतन धर्म फारस, सीरिया, पश्चिमी तुर्किस्तान, मिस्र, दक्षिणी स्पेन, सिन्ध और भारतके भू-भागो तक फैला कर अपनी विजयपताका चतुर्दिक फहरायी। इस प्रकार अरबमे हजरत मुहम्मदके आविर्भावके फलस्वरूप भारतमे भी एक नवीन-धर्म और राजनीतिक शक्तिका उदय हुआ।

मुहम्मद सुल्तान, शाहजादा—औरंगजेबका ज्येष्ठ पुत्र। औरगजेबने उसे शासनके कई महत्त्वपूर्ण पदोपर नियुक्त किया था। मुहम्मद राजपूतोंमे भी सर्वप्रिय था। इस कारण उसे अपने शकालु पिताका कोपभाजन बनना पडा। १६७९ ई० मे पिताकी मृत्युके बहुत पहले ही उसकी मृत्यु हो गयी।

मुहम्मद हकीम, मिर्जा, शाहजादा—हुमायूँ (दे०) का द्वितीय पुत्र और अकबरका छोटा भाई। पिताकी मृत्युके समय उसकी अवस्था ११ वर्षकी थी और वह केवल नाममात्रको काबुल प्रदेशका शासक मान लिया गया था। बडे होनेपर उसे अत्यधिक मदिरापानकी लत पड गयी तथापि वह कट्टर मुसलमान बना रहा। अकबरकी धार्मिक उदारताकी नीतियोंमे जब मुल्ला लोग उसके खिलाफ भडक उठे तो उसने इस अवसरसे लाभ उठाना चाहा और १५८० ई०मे पजाबपर आक्रमण कर दिया। अकबरने स्वय विशाल सेना लेकर उसका सामना किया। हकीम भाग खडा हुआ और उसे अकबरकी अधीनता फिरसे स्वीकार करनी पडी। उपरात हकीम अपनी मृत्यु-पर्यन्त (१५८५ ई० तक) काबुल प्रदेशपर शासन करता रहा।

मूलराज—एक सिख सरदार, जो १८४७ ई०मे मुलतानका प्रान्तीय शासक था। अपने जिलेकी राजस्वमे प्राप्त होनेवाली आयमे कमी हो जानेके कारण उसे आर्थिक कठिनाइयोंमे फँसना पडा। लाहौरके दरबारमे जब उसपर एक करोड़से भी अधिक अप्राप्त धनराशि भेजनेके लिए दबाव डाला गया, उसने त्यागपत्र दे दिया। जब उसका उत्तराधिकारी, दो नवयुवक अग्रेज पदाधिकारियोंके साथ वहाँ पहुँचा तब कदाचित् मूलराजके उकसानेस उन दोनों अग्रेजोकी हत्या कर दी गयी। उपरात मूलराजने विद्रोह कर दिया। यह विद्रोह थोडे ही दिनोंमे द्वितीय सिख-युद्धमे (दे०) के रूपमे परिणत हो गया। १८४९ ई०मे अग्रेजोने मूलराजपर आक्रमण किया और वह बन्दी बना लिया गया। उसके अभियोगकी सुनवाई सैनिक न्यायालयमे हुई और उसे आजीवन कालेपानीका दण्ड दिया गया। उसकी मृत्यु देशसे बाहर हुई।

मूलराज—दसवी शताब्दीके मध्य गुजरातमे अन्हिलवाड (अणहिलवाड) के सोलकी (चालुक्य) राज्यवशका प्रवर्तक। उसका शासनकाल प्राय ९४२ ई०मे ९९७ ई०

तक रहा। कदाचित् वह कन्नौजके शासक महिपाल (९१०–९४० ई०)का पुत्र था। परन्तु उसने स्वतंत्र राज्यसत्ता स्थापित की। अन्तमें अजमेरके चौहान शासक विग्रहराज द्वितीय द्वारा वह युद्धमें मार डाला गया।

मृच्छकटिक—राजा शूद्रक द्वारा लिखित संस्कृत साहित्यका एक नाटक। शूद्रकके बारेमें हमें और कोई जानकारी प्राप्त नहीं है। मृच्छकटिक (मृत्-शकटिक या मिट्टीकी गाड़ी) में गुप्तकालिक उज्जयिनीका एक चित्र मिलता है। विश्वास किया जाता है कि इसकी रचना छठी शताब्दी ई०में की गयी। संस्कृत साहित्यके नाटकोंमें इस नाटकको बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त है और इसका वही सम्मान है जो अंग्रेजी साहित्यमें शेक्सपियरके नाटकोंका।

मेण्डोसा, डोम एण्ड्रियाज डी—१६०९ ई०में लगभग पाँच महीने तक भारत स्थित पुर्तगाली प्रतिनिधि रहा। बादशाह जहाँगीरने कैप्टेन विलियम हाकिन्सके कहनेसे अंग्रेजोंकी ईस्ट इंडिया कम्पनीको जो सुविधाएँ प्रदान की थी, उसने उनका विरोध करनेकी गुस्ताखी की। जहाँगीरने उन सुविधाओंको रद्द कर दिया, किन्तु पुर्तगालियों और मुगलोंके बीच लड़ाई छिड़ गयी, जो पुर्तगाली पादरी पिन्हेरोकी मध्यस्थतासे बन्द हुई। इसके फलस्वरूप मेण्डोसाको वापस बुला लिया गया।

मेगस—इसका उल्लेख अशोक (दे०)ने अपने शिलालेखमें मकके नामसे किया है। उसका राज्य एण्टियोकस (अन्तियोक)के राज्यके बाद था। मेगस साइरिनिका राजा था और उसने ३०० ई० पू०से २५० ई० पू० तक राज्य किया। उक्त शिलालेखमें बताया गया है कि अशोकने उसके राज्यमें धर्म विजय की अर्थात् बहुतसे लोगोंको बौद्धधर्मका अनुयायी बनाया।

मेगस्थनीज—यूनानी (यवन) राजदूत, जिसे सेल्युकस निकेटरने लगभग ३०२ ई० पू० पाटलिपुत्रमें चन्द्रगुप्त मौर्यकी राजसभामें भेजा था। उसने उत्तर-पश्चिमी सीमांतसे मगधके पाटलिपुत्र तक समस्त उत्तरी भारतकी यात्रा की और जो कुछ देखा और सुना, उसका वर्णन अपने 'इंडिका' नामक ग्रंथमें किया। मूल ग्रंथ अब अप्राप्य है, किन्तु एरियन, डियोडोरस आदि बादके यूनानी इतिहासकारोंने अपने ग्रंथोंमें उसके उद्धरण लिये हैं और आधुनिक कालमें मैक्क्रिन्डलने उनका सङ्कलन किया है। मौर्यकालीन भारतके बारेमें जानकारीके लिए मेगस्थनीजका वृत्तांत महत्त्वपूर्ण स्रोत-ग्रंथ है, क्योंकि इसमें पहली बार उस कालका तिथिवार विवरण मिलता है। इसमें अनेक त्रुटियाँ हैं फिर भी यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है।

मेघदूत—संस्कृत भाषामें महाकवि कालिदास (दे०) लिखित खंडकाव्य। कुबेरके कोपसे रामगिरिपर निर्वासित एक यक्षको वर्षाऋतुके आगमनपर अपनी अलकापुर-वासिनी विरहिणी प्रियाका स्मरण हो आता है और वह मेघको दूत बनाकर प्राणवल्लभाके पास प्रेममय कुशल सन्देश भेजता है। इस खंडकाव्यमें भारतके दक्षिणी छोरसे उत्तरी छोर तक मेघकी यात्रा और विरहिणी प्रियाका वियोग वर्णन सर्वथा अनूठा है। शब्दलाघव, रसमाधुर्य और संवेदनशीलताकी दृष्टिसे यह रचना महाकवि कालिदासकी कृतियोंमें सर्वोत्तम मानी जाती है।

मेघवर्ण—सिंहल (श्रीलंका)का राजा (लगभग ३५२–७९ ई०) और द्वितीय गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त (लगभग ३३०–८० ई०)का समसामयिक। राजा मेघवर्णने एक दूत-मंडल महाराजाधिराज समुद्रगुप्तके दरबारमें भेजा था और बोध गया (दे०)के उत्तरमें सिंहली यात्रियोंके ठहरनेके लिए एक भव्य विहार बनवानेके लिए उसकी अनुमति प्राप्त की थी। समुद्रगुप्तके प्रयाग स्तम्भलेखमें उत्कीर्ण हुआ है कि उसे सैंहलकसे आदर-सूचक उपहार प्राप्त हुए थे।

मेटकाफ, सर चार्ल्स, बादमें लार्ड—(१७८५–१८४६ ई०) मार्च १८३५ से मार्च १८३६ ई० तक भारतका गवर्नर-जनरल। जन्म कलकत्तामें हुआ। यह मेजर थामसन मेटकाफका पुत्र था, जो भारतमें ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें एक फौजी अफसर था। शिक्षा ईटनमें हुई और वह १८०१ ई०में लिपिककी हैसियतसे कम्पनीकी सेवामें आया और १८०८ ई० तक विभिन्न राजनीतिक पदोंपर रहा। उस वर्ष उसे महाराज रणजीत सिंहके दरबारमें विशेष दूत बनाकर लाहौर भेजा गया। उसने १८०९ ई०में अमृतसरकी संधि (दे०) के द्वारा पहली महान् राजनीतिक सफलता प्राप्त की। इस संधिके पूर्वकी सभी सिख रियासतोंको ब्रिटिश संरक्षणमें दे दिया।

वह १८१० ई०में ग्वालियरमें, १८११ से १८१९ ई० तक दिल्लीमें तथा १८२० से १८२२ ई० तक हैदराबादमें रेजिडेंट रहा। १८२७ ई०से १८३४ ई० तक गवर्नर-जनरलकी कौंसिलका सदस्य रहा। १८३४ ई०में आगराका गवर्नर नियुक्त हुआ और १८३४ से १८३५ ई० तक भारतका कार्यवाहक गवर्नर-जनरल रहा। उसने भारतके समाचार पत्रोंपर लगी पाबंदियां हटा कर उन्हें स्वाधीनता प्रदान की। इससे कम्पनीके डाइरेक्टर उससे नाखुश हो गये और उन्होंने गवर्नर-जनरलके पदपर उसकी पुष्टि नहीं की। इसके बजाय

उसे पश्चिमोत्तर प्रांत (अब उत्तर प्रदेश)का लेफ्टिनेंट-गवर्नर बना दिया गया जिस पदपर वह १८३६ से १८३८ ई० तक रहा। इसके बाद मद्रासका गवर्नर बनाये जानेपर उसे भारी निराशा हुई और त्यागपत्र दे दिया। अवकाश ग्रहण करके इंग्लैंड लौट जानेके बाद वह जमायका और कनाडाका गवर्नर नियुक्त हुआ। १८४५ ई०मे उसे 'पिअर की पदवी प्रदान की गयी। १८४६ ई०मे उसकी मृत्यु हो गयी। वह एक सफल राजनेता था और अनेक ऊँचे-ऊँचे पदोपर रहा। इन सभी पदोपर वह अत्यन्त सफल हुआ। समाचार पत्रोंको स्वाधीनता प्रदान करनेसे वह भारतीयो मे बहुत लोकप्रिय हो गया और उन्होने कलकत्तामे उसके सम्मानमे मेटकाफ हालका निर्माण कराया।

मेदिनीराय–मेवाडके राणा संगामसिंह (दे०) का एक स्वामिभक्त सामन्त। बाबरने जब १५२८ ई०मे चन्देरीके किलेपर हमला किया, किला उसीके अधीन था। युद्धमे मेदिनीराय मारा गया और मुगलोने किला फतह कर लिया।

मेयो, लार्ड–१८६९ से १८७२ ई० तक भारतका वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल। वह बडा मिलनसार तथा राजनीतिज्ञ था। अमीर शेर अली (दे०) उससे १८६९ ई० मे अम्बालामे मिला और उसका प्रशसक बन गया। अमीर अली चाहता था कि ब्रिटिश सरकार उससे निश्चित संधि कर ले और उसके पुत्र अब्दुल्ला जानको उत्तराधिकारी स्वीकार कर ले। परन्तु लार्ड मेयोने अफगानिस्तानके सम्बन्धमे अपने पूर्वाधिकारी लार्ड लारेन्सकी अहस्तक्षेपकी नीतिका अनुसरण किया।

लार्ड मेयोने जब प्रशासन भार सँभाला, भारतकी आर्थिक स्थिति बडी खराब थी। सरकारके बजटमे भारी घाटा रहता था और पूर्वानुमान विश्वसनीय नही होते थे। लार्ड मेयोने नमक करमे वृद्धि, सरकारी खर्चोमे कटौती, केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारोके बीच धनके बँटवारेकी नयी प्रणाली शुरू करके देशकी वित्तीय व्यवस्थामे काफी सुधार किया। फलस्वरूप घाटेका बजट बचतके बजटमे परिवर्तित हो गया। उसके शासनकालमे १८७० ई०मे भारतमे पहली जनगणना हुई। उसने देशके सांख्यिकी सर्वेक्षणकी व्यवस्था की और वाणिज्य तथा कृषि विभागकी स्थापना की। १८७२ ई०मे जब वह अंडमान द्वीपके पोर्ट ब्लेयरका दौरा कर रहा था, एक पठान कैदीने उसकी हत्या कर दी।

मेरठ–पश्चिमी उत्तर प्रदेशमे स्थित एक नगर। १८५७ ई०मे यहाँ छावनी थी और १० मई १८५७ को गदरकी शुरूआत यहीसे हुई। विद्रोही सिपाही छावनीकी जेलोमे घुस गये, अपने बंदी साथियोको छुडा लिया, गोरे अफसरोको मार डाला और दूसरे दिन दिल्लीकी ओर कूच कर दिया। इस प्रकार १८५७ ई०का सिपाही विद्रोह आरम्भ हो गया।

मेव–दिल्लीके दक्षिणमे बसनेवाली एक बलिष्ठ जाति। ये पहले हिन्दू थे, जिन्होने दिल्लीमे नव-स्थापित मुस्लिम सल्तनतके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। फलस्वरूप १२६० ई०मे बलबनने, जो अपने दामाद सुल्तान नासिरुद्दीन (दे०) की ओरसे शासन कर रहा था, मेवोपर चढाई कर दी, बहुतोका संहार कर डाला और उनका देश लूट लिया। उनके ढाई सौ नेताओको बंदी बनाकर दिल्ली ले जाया गया और हाथियोके पैरोके नीचे डाल कर मार डाला गया। बहुतोकी खाल उधेडवाकर भूसा भर दिया गया और दिल्लीके हर फाटकपर उन्हें लटका दिया गया। मेव वीर इन बर्बरताओसे दमित नही हुए और मुसलमान आक्रमणकारियोका विरोध जारी रखा। अतएव १२६० ई०के अंतमे बलबनने दूसरी बार उनपर चढाई की। इस बार उसने उनपर अचानक धावा बोला, १२,००० मेव स्त्री, पुरुष एवं बालकोको पकड लिया और उन सबको मार डाला। मेव लोग बडे बहादुर थे और उन्हे मुस्लिम बर्बरताका शिकार होना पडा।

मेवाड़–देखिये, 'उदयपुर'।

मेसोपोटामियाकी लडाई–प्रथम विश्वयुद्ध (१९१४–१८ ई०)के फलस्वरूप, जिसमे तुर्कोने मध्य यूरोपकी शक्तियोका साथ दिया। मेसोपोटामियापर उस समय तुर्कोका शासन था। इसलिए १९१५ ई०मे मेसोपोटामियामे ब्रिटिश तथा भारतीय सेनाए भेजी गयी। इन सेनाओका सीमित उद्देश्य (१) आंग्ल-ईरानी तेलकूपो की रक्षा करना, (२) बसरा तथा फारसकी खाडीके मोहानेपर उसके आसपासके क्षेत्रपर अधिकार करना तथा (३) उस क्षेत्रके अरबोको विद्रोह करनेके लिए भडकाना था। यह सेना ब्रिटिश भारतीय सरकारने संगठित करके भेजी थी। प्रारम्भमे इसे भारी सफलता मिली। यह मेसोपोटामियाके अंदर घुस गयी और सितम्बर १९१५ ई० मे इसने कूटपर कब्जा कर लिया। इसके बाद इसने बगदादपर चढाई करनेका फैसला किया, परतु इसे सिटेशाहफनसे वापस कूट खदेड दिया गया और इसके बाद कूटको घेर लिया गया। कूटका घेरा ८ दिसम्बर १९१५ ई०से २४ अप्रैल १९१६ ई० तक चला जबकि उसका

पतन हो गया। जनरल टाउनशेंडके नेतृत्वमे ६,००० ब्रिटिश तथा भारतीय सेनाओने आत्मसमर्पण कर दिया।

इस युद्धमे २४,००० सैनिक हताहत हुए। इस पराजयके बाद ही उसके कारणोकी जांचके लिए शाही कमीशन नियुक्त किया गया। उसकी सिफारिशोंके अनुसार अधिक बड़े पैमानेपर फौजी तैयारियाँ की गयी, नये जनरलोंकी नियुक्ति की गयी, और दिसम्बर १९१६ ई० मे नयी चढाई शुरू हुई। २६ फरवरी १९१७ ई०को कूटपर दुबारा अधिकार कर लिया गया और ११ मार्च १९१७ ई०को बगदादपर भी अधिकार कर लिया गया। विजयी जनरल माड नवम्बर १९१७ ई०मे हैजेसे मर गया, किंतु उसके उत्तराधिकारी जनरल सर विलियम मार्शलने युद्ध सरगर्मीसे जारी रखा, किर्कुकमे तुर्क सेनाओको पराजित किया और १९१८ ई०के युद्धविरामसे पहले मोसुलपर कब्जा कर लिया। इस प्रकार मेसोपोटामियाकी लम्बी लडाईमे अतमे ब्रिटिश तथा भारतीय सेनाओकी विजय हुई।

मैकडोनाल्ड, जेम्स रैमजे (१८६६-१९३७ ई०)—दो बार इग्लैंडका प्रधान-मन्त्री हुआ, पहली बार १९२४ मे, फिर १९२९ से १९३५ ई० तक। उसका पिता एक मजदूर था। जेम्स रैमजे मैकडोनाल्डने १८ वर्षकी अवस्थामे १२ शिलिंग ६ पेंसके साप्ताहिक वेतनपर क्लर्कीसे जीवन आरम्भ किया और क्रमिक रीतिसे उन्नति करके इगलैंडका प्रधान-मन्त्री बन गया। वह १८९४ ई०मे मजदूर दलमे सम्मिलित हो गया और १९०६ ई०मे पहली बार ब्रिटिश पार्लियामेण्टका सदस्य निर्वाचित हुआ। उसने एक प्रकारसे पार्लियामेण्टरी मजदूर पार्टीकी स्थापना की और १९११ ई०मे उसका नेता चुना गया। उसने १९१४ ई०मे ब्रिटेनकी युद्धनीतिका समर्थन करनेसे इनकार कर दिया, जिसके लिए सार्वजनिक रूपसे उसकी तीव्र निन्दा की गयी। १९१८ ई०मे वह पार्लियामेण्टका चुनाव हार गया और १९२२ ई० तक पदविहीन रहा। १९२२ ई०मे वह पुनः पार्लियामेण्टका सदस्य चुना गया और इग्लैंडके मजदूर दलने रूसकी तरह हिंसाके मार्गसे नही, बल्कि ससदीय मार्गसे समाजवादकी स्थापनाके लिए प्रयत्न करना स्वीकार कर लिया। दूसरे शब्दोमे वह ससदीय एव लोकतात्रिक समाजवादका समर्थक था। युद्धोत्तर काल मे, उसने यूरोपमे शाति-स्थापनाका प्रयास किया और १९२४ ई०मे हर्जानेके प्रश्नपर दीर्घकालीन विवाद तय करनेमे भी महत्त्वपूर्ण योगदान किया। उसने पहला मन्त्रिमडल जनवरी १९२४ ई०मे बनाया जो मुश्किलसे ग्यारह महीने चला। उसका दूसरा मन्त्रिमडल १९२९ से १९३१ ई० तक चला। १९३१ ई०मे उसको राष्ट्रीय सरकारका रूप दे दिया गया।

वह भारतके मामलोमे बराबर दिलचस्पी लेता रहा और दो बार भारतकी यात्रा की, पहली बार १९१० ई०मे ओर दूसरी बार १९१३-१४ ई० मे। उसने १९११ ई०मे भारतके सम्बन्धमे अपनी पहली पुस्तक लिखी, जिसका शीर्षक था—'भारतका जागरण'। राष्ट्रीय विचारोके भारतीयोने यह पुस्तक बहुत पसन्द की। आठ साल बाद उसने भारतके विषयमे अपनी दूसरी पुस्तक लिखी, जिसका शीर्षक था—'गवर्नमेण्ट आफ इडिया'। भारतके सावैधानिक विकासकी समस्या तय करनेके लिए इग्लैंडमे जो गोलमेज सम्मेलन (दे०) हुआ, उसकी उसने अध्यक्षता की। इस समस्याके साथ साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वकी समस्या घनिष्ठ रूपसे सम्बन्धित थी। जब इस प्रश्नपर भारतके दो मुख्य सम्प्रदायोमे समझौता नही हो सका, तीसरे गोलमेज सम्मेलनकी समाप्तिपर उसने अपना साम्प्रदायिक निर्णय दिया, जिसमे दलित जातियोके हिन्दुओके लिए पृथक् साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वकी सिफारिश की गयी थी। इसके विरोधमे गाधीजीने अनशन शुरू कर दिया और पूना समझौता (दे०) हुआ। रैमजे मैकडोनाल्डने पूना समझौतेके अनुसार अपने साम्प्रदायिक निर्णयमे सशोधन कर दिया। भारतके सम्बन्धमे उसका यह अन्तिम कार्य था।

मैकडोनेल, सर एन्थोनी—वाइसराय लार्ड कर्जनने १९०० ई०मे जो अकाल कमीशन नियुक्त किया था उसका अध्यक्ष। (दे०, 'अकाल कमीशन')।

मैकनाघटेन, सर विलियम हे (१७९३-१८४१ ई०)—१८०९ ई०मे कम्पनीकी फौजी सेवामे आया, कई प्राच्य भाषाऐं सीखी और १८३३ ई०मे राजनीतिक विभागका सेक्रटरी बना दिया गया। उसने जून १८३८ ई०मे रणजीतसिंह तथा शाहशुजासे त्रिपक्षीय सधि की। फिर वह अफगानिस्तानके शाहशुजाके दरबारमे ब्रिटिश राजदूत नियुक्त होकर कदहार तथा गजनीके मार्गसे काबुलको भेजी जानेवाली ब्रिटिश सेनाके साथ गया और उसके सामने शाहशुजाको फिरसे गद्दीपर बिठलाया गया। मैकनाघटेनको पुरस्कार-स्वरूप १८४० ई०मे 'बैरन' बना दिया गया, परन्तु इसके बाद ही अफगानिस्तानमे फिर अशाति फैल गयी। अफगानोने विद्रोह कर दिया और

२ नवम्बर १८४१ ई०को बर्न्स (दे०)को मार डाला। इसके बाद भी मैकनाघटेनने मूर्खताका प्रदर्शन करते हुए अफगानोंसे संधि कर ली और बंधकके रूपमें बंदी बनाये गये व्यक्तियोंको लौटा दिया। संतुष्टीकरणकी इस नीतिसे अफगान और उद्दंड हो गये। उन्होंने दोस्त मोहम्मदके लड़के अकबर खाँके नेतृत्वमें अंग्रेजोंके विरुद्ध बगावत कर दी और २३ दिसम्बर १८४१ ई०को जब मैकनाघटेन अकबर खाँसे मिलनेके लिए गया, उसने उसकी हत्या कर दी। मैकनाघटेन अफगान-युद्ध (१८३९–४२ ई०)-की समूची नीतिके लिए अधिकांश रूपमें जिम्मेदार था और अंतमें अपनी इस गलत नीतिके कारण स्वयं अपनी जानसे हाथ धो बैठा।

मैकफर्सन, सर जान (१७४५–१८२१)–भारतका फरवरी १७८५ ई०से सितम्बर १७८६ ई०तक गवर्नर-जनरल। वह १७६७ ई०में एक जहाजका खजाची तथा भंडारी बनकर भारत आया और १७७० ई०में मद्रासमें ईस्ट इंडिया कम्पनीका लिपिक हो गया। १७७७ ई०में उसे नौकरीसे निकाल दिया गया, परन्तु कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सने उसकी नौकरी फिरसे बहाल कर दी और वह धीरे-धीरे उन्नति करके गवर्नर-जनरलके पद तक पहुँच गया, यद्यपि उस पदपर केवल बीस महीने रहा। उसके प्रशासन कालमें भ्रष्टाचारका बोलबाला हो गया था।

मैकमोहन, सर हेनरी–जन्म १८६२ ई० में। १८८५ ई०में भारतके फौजी स्टाफमें नियुक्त हुआ और १८९० ई०में राजनीतिक विभागमें स्थानांतरित कर दिया गया। १८९३ ई०में सर मार्टिमर डूरैण्डके साथ काबुल गया और बादमें बलूचिस्तान तथा अफगानिस्तानके बीच सीमा चिह्नांकित करायी। उसने १९०३ ई०में फारस और अफगानिस्तानके बीचकी सीमा तय करनेमें भी भाग लिया। उसका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य उत्तर-पूर्वमें भारत और तिब्बत तथा चीनके बीच सीमा निर्धारित करना था।

मैकमोहन सीमारेखा–उत्तर-पूर्वी सीमा एजेंसी तथा तिब्बत एवं चीनके बीचकी सीमा-रेखा। इसका निर्धारण सर हेनरी मैकमोहन (दे०)ने किया।

मैकार्टनी, लार्ड–१७८१ ई०में मद्रासका गवर्नर होकर आया। वह उद्यमी एवं ईमानदार व्यक्ति था। उसने मद्रासके आंतरिक प्रशासनमें काफी सुधार किया। वह शांति-स्थापनाके लिए अत्यधिक उत्सुक था और उसने १७८४ ई०में मंगलूरकी संधि करके दूसरा मैसूर-युद्ध समाप्त कर दिया। इस संधिके द्वारा दोनों पक्षोंने एक दूसरेके जीते हुए क्षेत्र और युद्धबंदी वापस लौटा दिये। उसने १७८५ ई०में कर्नाटकमें जिसे नवाबने कम्पनीको सौंप दिया था, मालगुजारी वसूल करनेके उपायके सम्बन्धमें मतभेद हो जानेपर, इस्तीफा दे दिया। १७८५ ई० में वारेन हेस्टिंग्सके इस्तीफा देनेपर गवर्नर-जनरलके पदके लिए उसके नामपर विचार नहीं किया गया और वह भारत वापस नहीं लौटा।

मैकाले, थामस बैबिंगटन, बैरन (१८००–५९)–प्रसिद्ध अंग्रेजी कवि, निबन्धकार, इतिहासकार तथा राजनीतिज्ञ। १८२६ ई०में वह बैरिस्टर बना, परन्तु उसने बैरिस्टरी करनेकी अपेक्षा सार्वजनिक जीवन पसंद किया। वह १८३० ई०में ब्रिटिश पार्लियामेण्टका सदस्य चुना गया, और १८३४ ई०में गवर्नर-जनरलकी एक्जीक्यूटिव कौंसिलका पहला कानून-सदस्य नियुक्त होकर भारत आया। भारतका प्रशासन उस समय तक 'जातीय द्वेष तथा भेदभावपर आधारित तथा दमनकारी' था। उसने ठोस उदार सिद्धांतोंपर प्रशासन चलानेकी कोशिश की। उसने भारतमें समाचारपत्रोंकी स्वाधीनताका आन्दोलन किया, कानूनके समक्ष यूरोपीयों और भारतीयोंकी समानताका समर्थन किया, अंग्रेजीके माध्यमसे पश्चिमी ढंगकी उदार शिक्षा-पद्धति आरम्भ की और दंड विधानका मसविदा तैयार किया जो बादमें भारतीय दंड संहिताका आधार बना।

अवकाश ग्रहण करनेके बाद भी वह भारतके मामलोंमें दिलचस्पी लेता रहा और १८५५ ई०में इंडियन सिविल सर्विसमें प्रवेशके लिए प्रतियोगिता परीक्षा आरम्भ करनेके पक्षमें ब्रिटिश पार्लियामेण्टमें भाषण किया। वह आजीवन साहित्य सेवा करता रहा और १८५७ ई०में उसे 'पियर' की पदवी प्रदान की गयी। दो साल बाद १८५९ ई०में उसकी मृत्यु हो गयी। उसने अंग्रेजी भाषामें अनेक पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें 'आर्मीडा' (१८३३ ई०), 'प्राचीन रोमके गीतिकाव्य' (१८४२ ई०), 'निबन्ध' (१८२५–४३ ई०) तथा चार खंडोंमें 'इंग्लैंडका इतिहास' (१८४८-५८ ई०) सबसे महत्त्वपूर्ण हैं। अंतिम पुस्तक बहुत अधिक बिकी और उससे २० हजार पौंडकी आय हुई। इसका यूरोपकी विविध भाषाओंमें अनुवाद हुआ है।

मैक्समूलर–(१८२३–१९०० ई०) अपने युगका सबसे महान् प्राच्यविद्याविद्। जर्मनीमें जर्मन माता-पितासे जन्म। मैक्समूलरने १८४१ ई० में लाइपजिग (विश्वविद्यालय) में संस्कृतका अध्ययन प्रारम्भ किया, फलतः तुलनात्मक

भाषाविज्ञान एवं तुलनात्मक धर्मके प्रति उसकी रुचि बढ़ती गयी। १८४५ ई०मे उसने ऋग्वेदका अनुवाद एवं सम्पादन प्रारम्भ किया। इसी सन्दर्भमे वह इंग्लैण्ड जा कर बस गया और ब्रिटिश नागरिकता प्राप्त कर ली। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालयने ऋग्वेदके मुद्रण एवं प्रकाशन-का भार अपने ऊपर ले लिया। वह वही १८६२ ई०मे तुलनात्मक भाषा-विज्ञानका अध्यापक भी नियुक्त हुआ, यद्यपि १८६० ई०मे विदेशी होनेके कारण उसे संस्कृतके प्राध्यापक पदसे वंचित कर दिया गया था। ऋग्वेदके अतिरिक्त उसके अन्य निबन्ध 'चिप्स फ्राम ए जर्मन वर्क-शाप' नामक ग्रथमे संग्रहीत है। १८५९ ई०मे संस्कृत-साहित्यका इतिहास लिखा और पूर्वकी धार्मिक पुस्तकों (Sacred Books of the East) को ५१ जिल्दोंमे सम्पादित किया। उसकी अन्य रचनाओमे 'भाषाका विज्ञान' (Science of Language) तथा 'धर्मकी वैज्ञानिक भूमिका' (Introduction to the Science of Religion) मुख्य है। उसने तुलनात्मक भाषा-विज्ञानका अध्ययन प्रारम्भ किया और केल्टिक, संस्कृत एवं फारसी सदृश आर्यभाषाओकी मूलभूत एकताका प्रतिपादन किया। यूरोपको प्राचीन भारतीयोंकी साहित्यिक तथा सांस्कृतिक उपलब्धियोंसे अवगत कराया।

मैत्रक वंश—एक राजपूत वंश। इस वंशके नायक सेनापति भटार्कने पाँचवी शताब्दीके अतमे पूर्वी सौराष्ट्रवर्ती वलभी (दे०)मे एक राजवंशका आरम्भ किया। मैत्रक वंशकी एक शाखा छठी शताब्दीके उत्तरार्धमे मो-ला-पो अर्थात् पश्चिमी मालवामे चली आयी और विंध्यक्षेत्रमे अपनी राज्यशक्तिका विस्तार किया। सातवी शताब्दीमे मैत्रक राजा ध्रुवसेन द्वितीयने (जिसे ध्रुवभट भी कहते है) कन्नौजके महाराजाधिराजकी एक पुत्रीसे विवाह किया। उसके पुत्र धरसेन चतुर्थ (६४५–४९ ई०)ने 'परमभट्टा-रक परमेश्वर चक्रवर्ती'की पदवी धारण की। लगभग ७७० ई०मे अरबोने मैत्रक वंशका उच्छेदन कर दिया, जिन्होंने ७१२ ई०मे सिंधपर अधिकार कर लिया था।

मैनरिक्वे, सेबस्तियान—एक स्पेनिश पादरी, जो सत्रहवी शताब्दीके तीसरे दशकमे भारत आया। उसने १६३२ ई०मे शाहजहाँकी फौजो द्वारा हुगली स्थित पुर्तगाली कोठीपर घेरा डाले जाने तथा उसपर अधिकार कर लिये जानेका पूरा विवरण लिखा है।

मैनुकी, निक्कोलो—वेनिसका एक यात्री, जो सत्रहवी शताब्दी-मे भारत आया। वह औरगजेबके लगभग पूरे शासन-काल (१६५९–१७०७ ई०)मे भारत रहा। उसने 'स्टोरिया डो मोगोर' नामक एक विशालकाय ग्रथमे मुगल भारतका वृत्तात लिखा है। यह ग्रथ चार खडोमे है।

मैलकम, सर जान (१७६९–१८३३)—ईस्ट इडिया कम्पनी-का एक प्रमुख अधिकारी, जिसने १७८२ ई०मे कम्पनी-की सेवा आरम्भ की और १७८३ ई०मे भारत आया। वह १८३० ई०मे अवकाश ग्रहण करने तक भारतमे रहा। वह १७९२ ई०मे श्रीरंगपट्टमके घेरेके समय तथा १७९९ ई०मे उसपर अधिकार किये जानेके समय उप-स्थित था। १८०३ ई०मे दूसरा मराठा-युद्ध (दे०) शुरू होनेके समय तक वह उच्च राजनीतिक पदोंपर रहा। दूसरे मराठा-युद्धमे उसने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की और पराजित शिन्देके साथकी जाने वाली सुर्जी-अर्जुन-गाँवकी सन्धिका प्रारूप बनाया। इसके बाद उसने होलकर (दे०) के साथ चलनेवाले युद्धमे लार्ड लेककी अधीनतामे कार्य किया। उसने तीसरे मराठा-युद्ध (दे०) (१८१७–१८ ई०)मे भी प्रमुख भाग लिया, महीदपुर (दे०)की लडाई जीती और पेशवा बाजीराव द्वितीयको गद्दी छोडने-के लिए विवश किया। गद्दी त्याग देनेपर पेशवाको जीवन भरके लिए पेन्शन प्रदान कर दी गयी। इसके बाद उसे मध्य भारतके प्रशासनका भार सौंपा गया। मालवा भी इसीमे सम्मिलित था। १८२७ ई०मे उसे बम्बई प्रातका गवर्नर बनाया गया। इस पदसे उसने १८३० ई०मे अवकाश ग्रहण किया। वह अच्छा लेखक भी था और उसने कई ऐतिहासिक पुस्तके लिखी है। इनमे अग्रेजीमे लिखी 'सिखोका एक शब्दचित्र' तथा 'मध्य भारत' शीर्षक पुस्तके उल्लेखनीय है।

मैलापुर—मद्रासके निकट स्थित है। प्राचीन ईसाई अनु-श्रुतियोके अनुसार संत थामसने मैलापुरमे शहादत पायी थी। किन्तु अनुश्रुतियोकी पुष्टिमे कोई ऐतिहासिक प्रमाण नही मिलता।

मैसन, चार्ल्स—उन्नीसवी शताब्दीके दूसरे दशकमे पंजाबके महाराज रणजीत सिंहसे मिला। उसने रणजीत सिंहकी आकृति तथा आदतोका रोचक वर्णन किया है। उसने कोई तारीख नही दी है, फिर भी जहा-तहाँ मनोरजक विवरण लिखे है।

मैसूर—भारतीय गणतत्रमे सम्मिलित एक राज्य तथा नगर, जो मैसूर (अब कर्नाटक) राज्यकी राजधानी भी है। इस राज्यकी सीमा उत्तर-पश्चिममे बम्बई, पूर्वमे आन्ध्र-प्रदेश दक्षिण पूर्वमे तमिलनाडु और दक्षिण-पश्चिममे केरल राज्योसे घिरी हुई है। इसका इतिहास अत्यंत प्राचीन

है। इसके प्राचीनतम शासक कदम्ब वंशके थे, जिनका उल्लेख टॉलमीने किया है। कदम्बोंको, चेरों, पल्लवों और चालुक्योंसे युद्ध करना पड़ा। १२ वीं शताब्दीमें जाकर मैसूरका शासन कदम्बोंके हाथोंसे होयसलोंके हाथोंमें आया, जिन्होंने द्वारासमुद्र अथवा आधुनिक हलेबिडको अपनी राजधानी बनाया था। होयसल राजा रामचन्द्रसे ही अलाउद्दीनने मैसूर जीत कर अपने राज्यमें सम्मिलित किया था। उपरान्त मैसूर विजयनगर राज्यमें सम्मिलित कर लिया गया और उसके विघटनके उपरान्त १६१० ई०में वह पुनः स्थानीय हिन्दू राजाके अधिकारमें आ गया।

इस राजवंशके चौथे उत्तराधिकारी चिक्क देवराजने मैसूरकी शक्ति और सत्तामें उल्लेखनीय वृद्धि की। किन्तु १८ वीं शताब्दीके मध्यमें उसका राजवंश हैदरअली द्वारा अपदस्थ कर दिया गया और उसके पुत्र टीपू सुल्तानने १७९९ ई० तक उसपर राज्य किया। टीपूकी पराजय और मृत्युके उपरान्त विजयी अंग्रेजोंने मैसूरको संरक्षित राज्य बनाकर वहाँ एक पंच-वर्षीय बालक कृष्णराज वाडियरको सिंहासनपर बैठाया। कृष्णराज अत्यन्त अयोग्य शासक सिद्ध हुआ, फलत १८३१ ई०में ब्रिटिश सरकारने शासन-प्रबंध अपने हाथोंमें ले लिया, परन्तु १८६७ ई०में कृष्णके उत्तराधिकारी चाम राजेन्द्रको पुन. शासन सौंप दिया। उस समयसे इस सुशासित राज्यका १९४७ ई०में भारतीय संघमें विलयन कर दिया गया। मैसूर अति सुन्दर परिष्कृत नगर है। वहाँ एक विश्वविद्यालय भी है, जिसकी स्थापना १९१६ ई०में हुई थी।

मैसूर-युद्ध—अंग्रेजों और हैदरअली तथा उसके पुत्र टीपू सुल्तानके बीच समय-समयपर हुए। ३२ वर्षों (१७६७से १७९९ ई०) के मध्य युद्ध छेड़े गये। **प्रथम मैसूर युद्ध** १७६७ से १७६९ ई०के बीच हुआ, जिसका कारण मद्रासमें अंग्रेजोंकी आक्रामक नीतियाँ थीं। १७६६ ई०में जब हैदर अली मराठोंसे एक युद्धमें उलझा था, मद्रास-के अंग्रेज अधिकारियोंने निजामकी सेवामें एक ब्रिटिश सैनिक टुकड़ी भेज दी जिसकी सहायतासे निजामने मैसूरके भूभागोंपर आक्रमण कर दिया। अंग्रेजोंकी इस अकारण शत्रुतासे हैदर अलीको बड़ा क्रोध आया। उसने मराठोंसे सन्धि कर ली, अस्थिर बुद्धि निजामको अपनी ओर मिला लिया और निजामकी सहायतासे कर्नाटकपर, जो उस समय अंग्रेजोंके नियंत्रणमें था, आक्रमण कर दिया। इस प्रकार प्रथम मैसूर-युद्धका सूत्रपात हुआ। वह युद्ध दो वर्षों तक चलता रहा और १७६९ ई०में जब हैदर अली का अचानक धावा मद्रासके किलेकी दीवालों तक पहुँच गया, उसका अन्त हुआ। मद्रास कौंसिलके सदस्य भयाकुल हो उठे और उन्होंने हैदर अली द्वारा रखी गयी सुलहकी शर्तें स्वीकार कर लीं। इसके अनुसार दोनों पक्षोंने जीते गये भू-भाग लौटा दिये और हैदर अली तथा अंग्रेजोंके बीच एक रक्षात्मक सन्धि हो गयी।

द्वितीय मैसूर-युद्ध—अंग्रेजोंने १७६९ ई०की सन्धिकी शर्तोंके अनुसार आचरण न किया और १७७० ई०में हैदर अलीको, समझौतेके अनुसार उस समय सहायता न दी जब मराठोंने उसपर आक्रमण किया। अंग्रेजोंके इस विश्वासघातसे हैदर अलीको अत्यधिक क्षोभ हुआ। उसका क्रोध उस समय और भी बढ गया, जब अंग्रेजोंने हैदर अलीकी राज्य सीमाओंके अंतर्गत माहीकी फ्रांसीसी बस्तीपर आक्रमण कर अधिकार कर लिया। उसने मराठा और निजामके साथ १७८० ई०में त्रिपक्षीय सन्धि कर ली जिससे द्वितीय मैसूर-युद्ध प्रारंभ हुआ।

अंग्रेजोंने निजामको अपनी ओर फोड लिया और १७८२ ई०में सालबाईकी सन्धि करके मराठोंसे युद्ध समाप्त कर दिया। फिर भी हैदर अली भग्नोत्साह न होकर युद्ध करता रहा और एक विशाल सेना लेकर कर्नाटकमें घुस गया, उसे नष्ट-भ्रष्ट कर डाला तथा मद्रासके चारों ओरके इलाके उजाड डाले। उसने बेलीके अधिनायक-त्व वाली अंग्रेजी फौजकी एक टुकड़ीको घेर लिया। परन्तु १७८१ ई०में वह सर आयरकूट द्वारा पोर्टोनोवो, पोलिलूर और शोलिंगलूरके तीन युद्धोंमें पराजित हुआ, क्योंकि उसे फ्रांसीसियोंसे प्रत्याशित सहायता न मिल सकी। फिर भी वह डटा रहा और १७८२ ई०में उसके पुत्र टीपूने कर्नल ब्रेथवेटके नायकत्ववाली ब्रिटिश सेनासे तंजौरमें आत्म-समर्पण करा लिया।

इस युद्धके बीच ही हैदर अलीकी मृत्यु हो गयी। किन्तु उत्तराधिकारी टीपू सुल्तानने युद्ध जारी रखा और बेदनूरपर अंग्रेजोंके आक्रमणको असफल करके मंगलोर जा घेरा। अब मद्रासकी सरकारने समझ लिया कि आगे युद्ध बढाना उसकी सामर्थ्यके बाहर है। अत उसने १७८४ ई०में सन्धि कर ली, जो मंगलोरकी सन्धि कह-लाती है और जिसके आधारपर दोनों पक्षोंने एक दूसरेके भूभाग वापस कर दिये।

तृतीय मैसूर-युद्ध (१७९०–९२ ई०) उसका कारण भी अंग्रेजोंकी दोहरी नीति थी। १७६९ ई०में हैदर

अली और १७८४ ई० में टीपू सुल्तानके साथ की गयी सन्धिकी शर्तोंके विरुद्ध अंग्रेजोंने १७८८ ई०में निजामको इस आशयका पत्र लिखा कि हम लोग टीपू सुल्तानसे उन भूभागोंको छीन लेनेमें आपकी सहायता करेंगे जो निजामके राज्यके अंग रहे हैं। अंग्रेजोंकी इस विश्वास-घाती नीतिको देखकर टीपूके मनमें उनके शत्रुतापूर्ण अभिप्रायके सम्बन्धमें कोई संशय न रहा। अतः उसने १७८९ ई०में अचानक ट्रावनकोर (तिरुवांकुर)पर आक्रमण कर दिया, और उस भू-भागको तहस-नहस कर डाला। अंग्रेजोंने इस आक्रमणको युद्धका कारण बना लिया और पेशवा तथा निजामसे इस शर्तपर गुटबन्दी कर ली कि वे दोनों विजित प्रदेशोंका बराबर भागोंमें बँटवारा कर लेंगे। इस प्रकार प्रारंभ हुआ तृतीय मैसूर-युद्ध १७९० से १७९२ ई० तक चलता रहा।

इस युद्धमें तीन संघर्ष हुए। १७९० ई०में तीन अंग्रेजी सेनाएँ मैसूरकी ओर बढ़ीं, उन्होंने डिंडीगल, कोयम्बतूर तथा पालघाटपर अधिकार कर लिया, फिर भी उनको टीपूके प्रबल प्रतिरोधके कारण कोई महत्त्वकी विजय प्राप्त न हो सकी। इस विफलताके कारण स्वयं लार्ड कार्नवालिसने, जो गवर्नर-जनरल भी था, दिसम्बर १७९० ई०में प्रारंभ हुए अभियानका नेतृत्व अपने हाथमें ले लिया। वेल्लोर और अम्बरकी ओरसे बढ़ते हुए कार्नवालिसने मार्च १७९१ ई०में बंगलोरपर अधिकार कर लिया और टीपूकी राजधानी श्रीरंग-पट्टनम्‌की ओर बढ़ा। लेकिन टीपूकी नियोजित ध्वंसक भूनीतिके कारण अंग्रेजोंकी सेनाको अनाजका एक दाना न मिल सका और कार्नवालिसको अपनी तोपें कीलकर पीछे लौटना पड़ा। तीसरा अभियान, जो १७९१ ई०की गर्मियोंमें प्रारंभ हुआ, अधिक सफल रहा। अंग्रेजी सेनाओंका नेतृत्व करते हुए कार्नवालिसने पुनः टीपूकी कई पहाड़ी चौकियोंपर अधिकार कर लिया और १७९२ ई०में एक विशाल सेनाके साथ श्रीरंग-पट्टनम्‌पर घेरा डाल दिया। राजधानीकी बाह्य प्राचीरोंपर शत्रुओंका अधिकार हो जानेपर टीपूने आत्मसमर्पण कर दिया और मार्च १७९२ ई०में श्रीरंगपट्टनम्‌की सन्धिके द्वारा युद्ध समाप्त हुआ। इसके अनुसार टीपूने अपने दो पुत्रोंको बंधकके रूपमें अंग्रेजोंको सौंप दिया और तीन करोड़ रुपये युद्धके हरजानेके रूपमें दिये, जो तीनों मित्रों (अंग्रेज-निजाम-मराठा) में बराबर बाँट लिये गये। साथ ही टीपूने अपने राज्यका आधा भाग भी सौंप दिया, जिसमेंसे अंग्रेजोंने डिंडीगल, बारा महाल, कुर्ग और मलाबार अपने अधिकारमें रख कर टीपूके राज्यका समुद्रसे संबंध काट दिया और उन पहाड़ी दर्रोंको छीन लिया, जो दक्षिण भारतके पठारी भूभागके द्वार थे। मराठोंको वर्धा (वरदा) और कृष्णा नदियों तथा निजामको कृष्णा और पनार नदियोंके बीचके भू-खण्ड मिले।

चतुर्थ मैसूर युद्ध (मार्चसे मई १७९९ ई०)—अल्प-कालिक, परन्तु भयानक सिद्ध हुआ। इसका कारण टीपू सुल्तान द्वारा अंग्रेजोंके आश्रित बन जानेके सन्धि प्रस्तावको अस्वीकार कर देना था, तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड वेलेजलीको टीपूकी ब्रिटिश-विरोधी गतिविधियोंका पूर्ण विश्वास हो गया था। उसे पता चला कि १७९२ ई०की पराजयके उपरांत टीपूने फ्रांस, कुस्तुनतुनियाँ और अफगानिस्तानके शासकोंके साथ इस अभिप्रायसे सन्धिका प्रयास किया था कि भारतसे अंग्रेजोंको निकाल दिया जाय। वेलेजलीने टीपू द्वारा आश्रित सन्धिके प्रस्तावको अस्वीकार करना युद्धका कारण बना लिया। उसने निजाम और पेशवाके साथ इस आधारपर एक गठबंधन किया कि युद्धमें जो लाभ होगा, उसका तीनोंमें बराबर बँटवारा हो जायगा। अंग्रेजोंकी तीन सेनाएँ क्रमशः जनरल हेरिस, जनरल स्टीवर्ट और गवर्नर-जनरलके भाई वेलेजली (जो आगे चलकर ड्यूक आफ वेलिंगटन हुआ) के नेतृत्वमें तीन दिशाओंसे टीपूके राज्यकी ओर बढ़ीं। दो घमासान युद्धोंमें टीपूकी पराजय हुई और उसे श्रीरंगपट्टनम्‌के दुर्गमें शरण लेनी पड़ी। दुर्ग १७ अप्रैलको घेर लिया गया और ४ मई १७९९ ई० को उसपर अधिकार हो गया। वीरतापूर्वक दुर्गकी रक्षा करते हुए टीपू युद्धमें मारा गया। उसके पुत्रने आत्म-समर्पण कर दिया। विजयी अंग्रेज टीपूके राज्यको बराबर-बराबर तीन भागोंमें अपने मित्रोंमें नहीं बाँटना चाहते थे, अतः उन्होंने मैसूरके मुख्य और मध्यवर्ती भागपर कृष्णराजको सिंहासनासीन किया, जो मैसूरके उस पुराने राजाका वंशज था, जिसे हैदरअलीने अपदस्थ किया था। टीपूके राज्यके बचे हुए भू-भागोंमेंसे कनारा (कन्नड), कोयम्बतूर और श्रीरंगपट्टनम् कम्पनीके राज्यमें मिला लिये गये। मराठोंने, जिन्होंने इस युद्धमें कोई भी सक्रिय भाग न लिया था, हिस्सा लेना अस्वीकार कर दिया। निजामको टीपूके राज्यका उत्तर पूर्ववाला कुछ भू-भाग मिला, जिसे उसने १८०० ई०में कम्पनीको सौंप दिया। इस प्रकार चतुर्थ मैसूर-युद्धकी समाप्तिपर मैसूरका सम्पूर्ण राज्य अंग्रेजोंके नियंत्रणमें आ गया।

मोअस–एक शक अथवा पार्थियन राजा, जो लगभग ९० ई० पू०में आर्कोशिया तथा पंजाबपर राज्य करता था। उसका नाम केवल सिक्कोंमें ज्ञात होता है।

मोग्गलिपुत्त तिसन–अर्थात् मोग्गलि (मौद्‌गलायन) का पुत्र तिस्स (तिष्य) एक सिंहली भिक्षु। सिंहली ग्रंथ महावंशके अनुसार उसने अशोकको बौद्धधर्ममें दीक्षित किया। उत्तरी भारतमें प्रचलित बौद्ध अनुश्रुतियोंके अनुसार मौर्य सम्राट्को बौद्ध धर्ममें दीक्षित करनेका श्रेय बनारसके एक गंधी, गुप्तके पुत्र स्थविर उपगुप्तको प्राप्त था। कुछ लोगोंका मत है कि दोनों व्यक्ति एक ही हैं।

मोनसेरेत, पादरी अन्तोनियो–एक जेसूइट साधु, जो बादशाह अकबरके निमंत्रण पर गोआके पुर्तगाली अधिकारियों द्वारा १५८० ई०में मुगल दरबारमें भेजा गया। साधु मोनसेरेत और उसके सहयोगी अकविना दोनोंका अकबरने भारी स्वागत किया। उसने अपने दूसरे पुत्र मुरादको पुर्तगाली भाषा सीखनेके लिए साधु मोनसेरेतके सुपुर्द कर दिया। वह कई वर्ष तक अकबरके दरबारमें रहा और उसने लेटिन भाषामें जेसूइट मिशनका पूरा वृत्तांत लिखा, जिसका वह सदस्य था। यह विवरण अत्यंत महत्त्वपूर्ण है और अकबरके राज्यकालके बारेमें एक समसामयिक स्रोत-ग्रंथ है।

मोपला–मलाबारमें बसनेवाले कट्टर मुसलमानोंका एक समुदाय। विश्वास किया जाता है कि नवीं शताब्दी ई० में जो अरब भारत आकर बस गये और यहीं शादी कर ली, वे उन्हींके वंशज हैं। वे अक्सर अपने हिन्दू पडोसियोंसे झगडा कर बैठते थे। १९२५ ई०में भी उन्होंने भारी विद्रोह कर दिया था।

मोहेन जोदरो–सिंध (अब पाकिस्तानमें) के लरकाना जिलेमें खोद निकाला गया प्राचीन ध्वंसावशेष। इस स्थानपर एक प्रागैतिहासिक सभ्यताके स्मृति-चिह्न मिले हैं, जो लगभग २५०० ई०पू० से १५०० ई०पू० में सिंधु नदीकी घाटीमें वर्तमान थी।

मौखरि वंश–ईशानवर्माने ५५४ ई०में अथवा उसके आसपास एक गुप्त राजाको परास्त कर इस वंशका आरम्भ किया तथा महाराजाधिराजकी पदवी धारण की। उसका राज्य उत्तर प्रदेशके पूर्वी भाग तथा मगधके गया क्षेत्रमें विस्तृत था। अगले पचीस वर्षोंतक उत्तरी गंगाके मैदानमें मौखरि वंशकी प्रधान सत्ता रही। ईशानवर्माके बाद सर्ववर्मा, अवन्तिवर्मा तथा ग्रहवर्मा उसके उत्तराधिकारी हुए। ग्रहवर्मा इस वंशका अंतिम राजा था। उसने थानेश्वरके प्रभाकरवर्धनकी पुत्री राज्यश्रीसे विवाह किया। उसकी राजधानी कन्नौज थी। ग्रहवर्माको मालवाके राजा देवगुप्त ने लगभग ६०६ ई०में पराम्त कर मार डाला। वह निस्संतान था, अतएव उसके वंशका अंत हो गया और कन्नौज उसके साले हर्षवर्धन (६०६–४७ ई०) के अधिकारमें आ गया।

मौर्य वंश–३२२ ई०पू० में चन्द्रगुप्त मौर्य (दे०) से इसका आरम्भ हुआ, जब मकदूनियाके राजा सिकन्दरकी ३२३ ई०पू० में मृत्यु हो चुकी थी। उसने तक्षशिलाके स्नातक आचार्य चाणक्यकी सहायतासे मगध नामक नंदवंशके अंतिम राजाका वध कर दिया। चन्द्रगुप्तकी राजधानी भी पाटलिपुत्र हुई और उसने २९८ ई०पू० तक राज्य किया। इस अवधिमें उसने पंजाब तथा तक्षशिलासे यवनों (यूनानियों) को मार भगाया और अपना साम्राज्य पूरे उत्तरी भारत तथा पश्चिममें सौराष्ट्रतक विस्तृत कर लिया। लगभग ३०५ ई०पू० में उसने सेलेउकसका आक्रमण विफल कर दिया, जिसे सिकन्दरके साम्राज्यका पूर्वी भाग प्राप्त हुआ था। सेल्यूकस चन्द्रगुप्त मौर्यसे पराजित होनेके बाद हिन्दूकुशके उस पारतकके अपने सभी पूर्वी प्रदेश देकर उससे संधि कर लेनेके लिए विवश हुआ। उसने अपनी कन्याका विवाह चन्द्रगुप्तसे कर दिया और अपना राजदूत मेगस्थनीज (दे०) उसकी राजसभामें भेजा। मेगस्थनीजने उस कालके भारतका रोचक वृत्तांत लिखा है।

चन्द्रगुप्तकी माताका नाम मुरा था। इस आधारपर उसका राजवंश 'मौर्य' कहलाता है। चन्द्रगुप्तके बाद उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी बिन्दुसार (दे०) ने २९८ ई०पू० से २७३ ई०पू० तक राज्य किया। उसने 'अमित्रघात' (शत्रुओंके घातक) की पदवी धारण की और सम्भवत दक्षिण भारत भी विजय किया।

तीसरा मौर्य सम्राट् बिन्दुसारका पुत्र अशोक (दे०) था, जिसने लगभग २७३ ई०पू०से २३२ ई०पू० तक राज्य किया। सम्भवत अशोकको मगधका सिंहासन प्राप्त करनेके लिए युद्ध करना पडा, क्योंकि राज्याभिषेक राज्यारोहणके चार वर्ष बाद हुआ। राज्याभिषेकके आठवें वर्षमें उसने भारी रक्तपातके बाद कलिंग विजय किया। इस युद्धमें होनेवाले नरसंहारने अशोककी मानसिक वृत्ति बदल दी और भारी खेदसे अभिभूत होकर उसने बौद्ध धर्म अंगीकार कर लिया और युद्धको तिलांजलि दे दी। बौद्ध होनेके बाद उसने शेष राज्यकाल विशाल साम्राज्यके समस्त साधनोंको केन्द्रीभूत करके

भारत और भारतसे बाहर बौद्ध धर्मका प्रचार करने तथा मनुष्यों और पशुओंके हितमें सड़कें बनवाने, कुए खुदवाने, धर्मशालाएं बनवाने, प्याऊ बिठाने, चिकित्सालय खुलवाने आदिमें बिताया। उसने सारे भारतमें शिलाओं तथा स्तम्भोंपर अनेक लेख खुदवाये जिनमें प्रजाको दया, दान, सत्य, माता-पिताकी सेवा, गुरुओंका आदर, प्राणियोंकी अहिंसा तथा सब मतोंके प्रति सहिष्णुताका उपदेश दिया गया है। उसने बौद्ध भिक्षुओंको धर्म-प्रचारके लिए सिंहल (श्रीलंका) तथा पश्चिमके देशोंमें भेजा, जिसके फलस्वरूप बौद्ध धर्मका विश्वव्यापी प्रसार हुआ।

अशोकके उत्तराधिकारी योग्य नहीं सिद्ध हुए और उसकी मृत्युपर साम्राज्य सम्भवत उसके एक पुत्र जालौक तथा पौत्र दशरथके बीच विभाजित हो गया। इनमेंसे किसीमें बौद्ध धर्मके प्रति अशोक जैसा अनुराग नहीं दिखाई पड़ा और ऐसा प्रतीत होता है कि अशोककी मृत्युके बाद ही बौद्ध धर्मको मिलनेवाला राज्याश्रय समाप्त हो गया। अशोकके उत्तराधिकारी राजा शक्तिहीन थे और उनमें से अंतिम राजा बृहद्रथकी लगभग १८५ ई०पू० में उसके ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्रने हत्या कर डाली, जिससे शुंगवंशका आरम्भ हुआ।

य

यग-हस्बैण्ड, सर फ्रांसिस (१८६३–१९४२)—वाइसराय लार्ड कर्जन (दे०) की आज्ञा द्वारा १९०३–१९०४ ई०में यग-हस्बैण्डके नेतृत्वमें एक ब्रिटिश भारतीय अभियान-दल तिब्बत गया। यङ्ग-हस्बैण्ड जुलाई १९०३ ई०में तिब्बती क्षेत्रके अन्तर्गत सिक्किम सीमान्तसे १५ मील उत्तरकी ओर स्थित खम्बजेंग पहुँचा। किन्तु तिब्बतियोंने अंग्रेज अतिक्रमणकर्ताओंके साथ तबतक सन्धिवार्ता करनेसे इन्कार कर दिया जब तक वह उनके सीमान्तके उस पार न चला जाय। फलत यग-हस्बैण्ड भारत सरकारके अनुमोदनसे तिब्बतके अन्दर ग्यान्तसे तक बढ़ गया और तिब्बतकी सेनाको गुरु नामक स्थानपर परास्त कर दिया। चूँकि तिब्बती अब भी सन्धि-वार्ताके लिए तैयार न थे, अत यग-हस्बैण्ड तिब्बतमें और आगे बढ़ गया और दूसरी विशाल तिब्बती सेनाको करो-ला-दर्रेके निकट युद्धमें परास्त किया और अभियान-पूर्वक तिब्बतकी राजधानी ल्हासामें ३ अगस्त १९०४ ई०को प्रविष्ट हो गया। यग-हस्बैण्डकी विजयोंके फलस्वरूप तिब्बतियोंको सन्धि वार्ताके लिए बाध्य होना पड़ा, फलस्वरूप ७ सितम्बर १९०४ ई०को ल्हासाकी सन्धि (दे०) उनपर आरोपित की गयी और सोलह दिन बाद विजयोल्लासके साथ यग-हस्बैण्ड वापस लौट आया। ल्हासाकी सन्धिके अन्तर्गत, जो बादमें संशोधित की गयी, तिब्बतको तीन वर्षमें पचीस लाख रुपये क्षतिपूर्ति रूपमें देने पड़े, तीन वर्ष तकके लिए चुम्बीघाटीको छोड़ना पड़ा और एक ब्रिटिश एजेण्टको ग्यान्तसेमें रहनेकी अनुमति देनी पड़ी। यग-हस्बैण्डकी वापसीपर वाइसराय लार्ड कर्जनने उसकी बड़ी आवभगत की। (जी० एफ० सीवर—फ्रांसिस यग-हस्बैण्ड)

यजुर्वेद—चार वेदोंमेसे एक। यजुर्वेद संहिता (दे०) में यज्ञ क्रियाओंके मन्त्र और विधियां संग्रहीत हैं। इसमें केवल ऋग्वेदसे लिये हुए मन्त्र ही नहीं मिलते, किन्तु यज्ञानुष्ठानमें सम्पादित की जानेवाली समस्त क्रियाओंका विधान भी मिलता है। यजुर्वेद दो हैं, यथा—

(अ) कृष्ण यजुर्वेद
(आ) शुक्ल यजुर्वेद

तैत्तिरीय ब्राह्मण, मैत्रायणी ब्राह्मण और काठक ब्राह्मण (दे०) कृष्ण यजुर्वेदसे सम्बन्धित हैं और वाजसनेय ब्राह्मण तथा शतपथ ब्राह्मण शुक्ल यजुर्वेदसे सम्बद्ध है। निम्नलिखित उपनिषद् भी यजुर्वेदसे सम्बद्ध है—तैत्तिरीय, कठ, श्वेताश्वतर, बृहदारण्यक, ईश, प्रश्न, मुण्डक और माण्डूक्य। यजुर्वेदमें यज्ञों और कर्मकाण्डका प्राधान्य है।

यज्ञश्री, गौतमी पुत्र (१७०–२०० ई०)—उत्तरकालीन सातवाहन (दे०) राजाओंमें सबसे प्रतापी। उसने पश्चिमी अंचलवर्ती क्षत्रपोंसे सातवाहनोंकी भूमि पुन छीन ली, जिसपर उन्होंने आधिपत्य जमा रखा था। उसने चाँदी, काँसे तथा सीसेके अनेक सिक्के प्रचलित किये, जिनमेंसे कुछ सिक्कोंपर पोतका चित्र बना हुआ था। इससे सूचित होता है, उसका राज्य समुद्र पारके देशों तक विस्तृत था।

यदु—गणका उल्लेख ऋग्वेदमें हुआ है। उत्तरकालीन साहित्यिक अनुश्रुतियोंके अनुसार यदु लोग पश्चिमी भारतमें प्रभासके निकट बस गये थे। कृष्ण, जिन्हें विष्णुका अवतार माना जाता है यदु गणके ही थे।

यन्दबूकी सन्धि—यह १८२६ ई०में सम्पन्न हुई। इससे प्रथम बर्मा-युद्ध (दे०) की समाप्ति हुई। इस सन्धिके द्वारा

बर्माने अंग्रेजोंको एक करोड रुपया हर्जाना देना स्वीकार किया, अराकान और तेनासरीमके प्रान्त उन्हें सौंप दिये आसाम, कछार और जयन्तियामें किसी प्रकारका हस्तक्षेप न करनेका वायदा किया (ये क्षेत्र अन्ततोगत्वा ब्रिटिश शासनके अन्तर्गत चले गये) और आवामें ब्रिटिश रेजीडेण्ट रखना भी स्वीकार कर लिया।

यम–एक वैदिक देवता, जिसके लोकमें पितरोंकी आत्माओंका निवास माना जाता है। वह जीवोंको उनके शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार पुरस्कार और दण्ड प्रदान करता है, इसीलिए वह 'धर्मराज' भी कहलाता है।

यवन–हिन्दू लेखकोंने मूलतः यह शब्द विदेशी यूनानियोंके लिए इस्तेमाल किया, किन्तु बादको यह शब्द मुसलमानोंके लिए भी प्रयुक्त होने लगा। व्युत्पत्तिकी दृष्टिसे यह 'योन' शब्दसे बना है, जो आयोनियाका पर्याय है और मूलतः उसका तात्पर्य आयोनियाके निवासियोंसे है। (सरकार०–पृ० ३२१–२७)

यवन बाख्त्री राजवंश–इसका प्रवर्तन ईसा-पूर्व तीसरी शताब्दीमें बैक्ट्रिया (बाख्त्री)के यूनानी (यवन) क्षत्रप डियोडोरसने किया, जो सीरिया (शाम) के यूनानी राजाकी अधीनताको त्याग कर स्वतन्त्र राजा बन बैठा। यह नया वंश ईसा-पूर्व १५५ में समाप्त हो गया। इस वंशमें कई राजा हुए। इनमें डेमेट्रियस (लगभग २००-१९० ई० पू०) ने उत्तर भारतका काफी बड़ा भाग अपने आधिपत्यमें कर लिया, जिसमें सम्भवतः काबुल, पंजाब और सिंध भी शामिल था, लेकिन डेमेट्रियसको शीघ्र ही युक्रेटीदसने पराजित कर दिया, बादमें युक्रेटीदसको उसके पुत्र अपोलोडोटसने मार डाला। अपोलोडोटसको उसके भाई हेलियोक्लीजने मारा। इस प्रकार यवन बाख्त्री राजवंशका अन्त हो गया। इस कालके लगभग ४० विभिन्न यवन राजाओंके नामके सिक्के पाये गये हैं। इससे सिद्ध होता है कि पश्चिमोत्तर भारतकी सीमापर बहुतसे छोटे-छोटे यवन राज्य रहे होंगे। इन यवन राजाओंमें मिनान्डरका नाम बहुत प्रसिद्ध है। उसने बौद्ध धर्म अपना लिया था। 'मिलिन्दपन्हो' नामक प्रसिद्ध बौद्ध धर्म ग्रन्थमें उल्लिखित मिलिन्द यही मिनान्डर है।

यवन बौद्ध मूर्तिकला–बहुधा मूर्तिकलाकी इस शैलीको 'गांधार शैली' कहते हैं। इस शैलीकी बौद्ध मूर्तियोंपर यूनानी कलाका प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इस शैलीकी बुद्धकी मूर्तियाँ यूनानी देवता अपोलोसे मिलती-जुलती हैं। इसी प्रकार यक्ष कुबेरकी मूर्ति यूनानी देवता जीयससे मिलती जुलती है। इन मूर्तियोंको जो परिधान पहनाया गया है, वह भी यूनानी ढंगका और आमतौरपर पारदर्शी है। सामान्यतः यूनानी देवी-देवताओंको भारतीय बौद्धोंकी पोशाक और आकृतिमें दिखाकर बौद्ध नामकरण कर दिया गया है। यवन बौद्ध मूर्तिकला (गांधार शैली) वस्तुतः यूनानी-रोमन कला है जो ईसाकी आरम्भिक शताब्दियोंमें लघु एशिया तथा रोमन साम्राज्यमें प्रचलित थी। द्वितीय शताब्दीमें, जबकि पश्चिमोत्तर भारतमें कुषाण राजा कनिष्क तथा हुविष्कका शासन था, इस गांधार शैलीकी मूर्तिकलाका बहुत प्रचलन था।

यशोधरपुर––कम्बुज देश (कम्बोडिया) की प्राचीन राजधानी। नगरका आधुनिक नाम 'अंकोरथम' है। राजा यशोवर्मा (८८९–९०८ ई०) ने इसकी नींव डाली थी। आकारमें नगर चौकोर तथा प्रत्येक ओर दो मील लम्बा था। यह ३३० फुट चौड़ी परिखा से घिरा हुआ और ऊँचे प्राकारसे परिवेष्टित था। यह सुन्दर इमारतों और मन्दिरोंसे सुसज्जित था, जिनमें १५० फुट ऊँचा बयोन मन्दिर सर्वाधिक सुन्दर था। यशोधरपुर अपने समयमें संसारके सबसे सुन्दर नगरोंमें गिना जाता था।

यशोधरा–राजकुमार सिद्धार्थ गौतम बुद्ध (दे०) की पत्नी, जो उनके एकमात्र पुत्र राहुलकी माता बनी। उनके नाम भद्द कच्चा, सुभद्रका, बिम्बा और गोपा भी मिलते हैं।

यशोधर्मा–मालवाका राजा। हूण नेता मिहिरकुल (दे०) को ५२८ ई०में परास्त कर उसने भारतीय इतिहासमें अपना ख्यातिपूर्ण स्थान बनाया। मिहिरकुलको हरानेमें नरसिंहगुप्त बालादित्य (दे०) ने सम्भवतः उसे सहायता पहुँचायी। उसके पूर्वजों और उत्तराधिकारियोंके विषयमें कुछ पता नहीं है। उसकी निश्चित शासन-अवधि भी ज्ञात नहीं है, किन्तु विश्वास किया जाता है कि उसने छठी शताब्दीके पूर्वार्धमें शासन किया था। मन्दसोरमें उसने दो कीर्ति-स्तम्भोंकी स्थापना की और उनपर अंकित अभिलेखोंके अनुसार वह ब्रह्मपुत्रसे पश्चिमी समुद्रतक और हिमालयसे त्रावनकोर प्रदेशके पश्चिमी घाटमें स्थित महेन्द्रगिरितक सम्पूर्ण भारतपर शासन करता था। यशोधर्माकी इन प्रशस्तियोंमें किये गये दावोंके अनुमोदनमें कोई ऐसा स्वतन्त्र एवं पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं है, जिसके द्वारा यह सिद्ध होता हो कि वह महान योद्धा और विजेता राजा था।

यशोमती–थानेश्वरके राजा प्रभाकरवर्धन (दे०) की रानी, जो प्रख्यात सम्राट् हर्षवर्धन (दे०) की माता थी।

यशोवर्मा–कम्बुज (कम्बोडिया) का राजा, जिसने ८८६ से ९०८ ई० तक शासन किया। वह बडा शक्तिशाली था। उसने यशोधरपुर (दे०) नामक प्रख्यात नगरकी नींव डाली। यशोवर्माके अभिलेख बहुत बड़ी सख्यामे प्राप्त हुए है। इनका मूल पाठ दो लिपियोमे उपलब्ध है, एक तो कम्बुज देशकी लिपिमे, दूसरा उत्तरी भारत-मे प्रचलित देवनागरी लिपिमे। दोनो पाठोकी भाषा सस्कृत है।

यशोवर्मा–जेजाकभुक्ति (दे०) अर्थात् आधुनिक बुन्देलखण्ड-का एक चन्देल राजा। उसका शासनकाल लगभग दसवी शताब्दी है। उसने प्रतिहार (दे०) से कालजरका किला छीन लिया और प्रतिहार राजा देवपाल (दे०) को परास्त कर उससे विष्णुकी बहुमूल्य प्रतिमा ले आया, जिसकी स्थापना उसने खजुराहो (दे०) के स्वनिर्मित मन्दिरमे की थी। वह सम्भवत ९५० ई०मे स्वर्गवासी हुआ और धग उसका उत्तराधिकारी बना।

यशोवर्मा–कन्नौजका एक राजा, जो आठवीं शताब्दीके प्रथम चतुर्थांशमे शासन करता था। ७३१ ई०मे उसने एक दूतमण्डल चीन भेजा। १० वर्षके बाद कश्मीरके राजा ललितादित्य मुक्तापीड (दे०) ने उसका सिंहासन छीन लिया तथा उसका वध कर डाला। 'मालतीमाधव' नाटकके रचयिता प्रसिद्ध सस्कृत कवि भवभूति (दे०) और प्राकृत भाषाके प्रसिद्ध कवि वाक्पतिका वह आश्रय-दाता था।

यशस्कर–कश्मीरका एक ब्राह्मण राजा। दसवी शताब्दीमे ब्राह्मणोकी एक सभामे उसे सिंहासनारूढ किया गया। उसका शासन अल्पकालिक रहा।

याकूत, जलालुद्दीन–एक हब्शी गुलाम जो रजिया सुलताना (दे०) का कृपापात्र बन गया। उसकी पदोन्नति करके उसे शाही घुडसालका प्रधान अधिकारी बना दिया। रजियाने उसपर और कृपा-दृष्टि भी की। इससे दरबार-के अमीर उससे ईर्ष्या करने लगे। असतुष्ट अमीरोने भटिण्डाके सूबेदार अल्तूनियाके नेतृत्वमे बेगमके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। युद्धमे याकूत परास्त हुआ तथा मारा गया और रजिया सुलतानाको कैद कर लिया गया।

याकूब–कश्मीरके सुल्तान यूसुफशाह (दे०) का पुत्र व वारिस। वह १५८६ ई०मे पिताके साथ मुगलो द्वारा परास्त हुआ और इस प्रकार राज्यसे वचित हो गया।

याकूब-इब्न-लेस–सिंधका प्रथम स्वतन्त्र मुसलमान शासक। ८७१ ई०मे खलीफाने इस प्रान्तका स्वामित्व भेंटके स्वरूप उसे प्रदान कर दिया।

याकूब खाँ–अमीर शेर अली (दे०) का पुत्र और उत्तरा-धिकारी। १८७९ ई०मे पिताकी मृत्यूपरात अग्रेजोने उसे अफगानिस्तानका अमीर मान लिया। याकूब खाँने १८७९ ई०मे अग्रेजोके साथ गदमक (दे०) की सधि की, जिसके द्वारा उसने अपने वैदेशिक सम्बन्ध अग्रेजोके परामर्शसे सचालित करना स्वीकार कर लिया। अग्रेजोने इसके बदलेमे विदेशी आक्रमणकारियोसे उसकी सुरक्षा करने और ६ लाख रुपया वार्षिक सहायता देनेका वचन दिया। उसके देशवासियोको इस प्रकार अपने देशकी स्वतन्त्रता अग्रेजोके हाथ बेच देना पसन्द नहीं आया और इस सन्धिके दो मास बाद ही अफगानोने अमीर और उसके अग्रेज सरक्षक, काबुलके अग्रेज रेजीडेण्ट कवाग्नरीके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और समस्त अग-रक्षको सहित उसको मार डाला। इसके परिणामस्वरूप अफगानो और अग्रेजोके बीच नयी जग छिड गयी। याकूब खाँको काबुलसे खदेड दिया गया और उसने भागकर अग्रेजोकी शरण ली। बादमे उसे राज-बन्दीके रूपमें देहरादून भेजा गया, जहाँ वह १९२३ ई०मे मृत्युपर्यन्त रहा। (देखिये, दूसरा अफगान-युद्ध)

याज्ञवल्क्य–एक प्रसिद्ध ऋषि। प्राचीन जनश्रुतियोके अनु-सार वे मिथिलाके राजर्षि जनककी, जो अपने अध्यात्म-ज्ञानके लिए प्रसिद्ध थे, राजसभामे उपस्थित होकर उनसे ब्रह्मचर्चा किया करते थे। प्राचीन ब्रह्मवेत्ता ऋषियोमे उनका स्थान बहुत ऊँचा माना जाता है और उपनिषदोमे भी उनका उल्लेख मिलता है।

यादव राजवंश–का प्रवर्तन भिल्लम द्वारा ११९१ ई०मे हुआ। उसने देवगिरि (दौलताबाद) को अपनी राजधानी बनाया। भिल्लमका पौत्र सिंघण इस वशका सबसे प्रतापी राजा था। वह १२१० ई०मे सिंहासनपर बैठा। उसने गुजरात और पासपडोसके अन्य राज्योको जीता और कुछ समयके लिए यादव वशका प्रताप चालुक्योसे भी बढ गया। किन्तु उनका यह उत्कर्ष अधिक दिना तक स्थिर न रह सका। १२९४ ई०मे जब यादव राजा रामचद्रदेव (दे०) शासन कर रहा था, सुल्तान अला-उद्दीन खिलजी (दे०) ने उसके राज्यपर आक्रमण कर दिया। उसने राजधानी देवगिरिको लूटा और राजासे छः सौ मन मोती, दो सौ मन हीरे, माणिक्य, मरकत मणियाँ, नीलम, बहुत-सा स्वर्ण और बहुतसे हाथी उपहारमे प्राप्त करके उसकी जान बख्श दी।

१३०९ ई०मे अलाउद्दीनके सेनानायक मलिक काफूर (दे०) के नेतृत्वमे मुसलमानोने फिर यादव राज्य-

पर आक्रमण किया। रामचन्द्रदेवने (दे०), जो उस समय भी राज्य कर रहा था, सुल्तानकी अधीनता स्वीकार करके अपने प्राणोंकी रक्षा की। वह यादव वंशका अंतिम स्वतंत्र शासक था। उसकी मृत्युके बाद उसके जामाता और उत्तराधिकारी हरपालदेवने १३१९ मे दिल्लीके सुल्तानके विरुद्ध विद्रोह कर दिया, परन्तु वह परास्त हुआ। उसे जीवित पकड़कर बंदी बना लिया गया। सुल्तानने जीते जी उसकी खाल खिंचवा ली और सिर काट दिया। उसकी मृत्युके साथ यादव वंशका अंत हो गया। यादव वंशके राजा हिन्दू धर्म, संस्कृत भाषा तथा साहित्यके संरक्षक थे। प्रसिद्ध धर्मशास्त्रकार हेमाद्रि रामचन्द्रदेवके कालमे ही हुआ।

यमुनाचार्य—दक्षिण भारतके तमिल (द्रविड) देशमे उत्पन्न वैष्णव संप्रदायके प्रमुख विद्वान्, जो बारहवी शताब्दीमे विद्यमान वैष्णवाचार्य रामानुज (दे०) के उपदेशकर्त्ता माने जाते है।

यास्क—निरुक्तके प्राचीन-कालिक ख्याति-प्राप्त रचयिता। निरुक्तकी गणना छः वेदांगो (दे०) मे होती है। यास्कका काल अनिश्चित है, किन्तु वह यशस्वी वैयाकरण पाणिनि (दे०) का पूर्वकालिक माना जाता है।

याहिया-बिन-अहमद सरहिन्दी—दिल्ली सल्तनतका एक प्रारम्भिक मुसलमान इतिहासकार।

यिल्दिज, ताजुद्दीन—सुल्तान इल्तुतमिश (दे०) का प्रतिद्वन्द्वी। मूलतः वह तुर्क गुलाम था। कुतबुद्दीनका देहान्त होनेपर यिल्दिजने गजनीपर अधिकार कर लिया और अपनेको दिल्लीके तख्तका हकदार घोषित किया। १२१४ ई०मे यिल्दिजने थानेश्वर तथा पंजाबको विजित कर लिया और इल्तुतमिशमे अपनी अधीनता स्वीकार करानेका प्रयत्न किया, परन्तु १२१६ ई०मे तराइनके युद्धमे वह इल्तुतमिशसे परास्त हुआ। यिल्दिजको बन्दी बनाकर बदायूं भेज दिया गया।

युक्रेटीदस—बैक्ट्रियाका एक यूनानी सेनापति, जो १७५ ई० पूर्वमे वहाँका शासक बन गया। उसने डेमेट्रियसको जो अपनेको भारतीयोंका राजा कहता था, १६० ई० पू०से १५६ ई० पू० तक चलनेवाले लम्बे युद्धमे पराजित किया और अपना राज्यक्षेत्र पश्चिमी भारतके कुछ भाग तक प्रसारित किया। जब वह १५६ ई० पू०मे भारतमे बैक्ट्रिया वापस जा रहा था, सम्भवत उसके पुत्र अपोलोडोटसने उसे रास्तेमें मार डाला। भारतमे युक्रेटीदसके राज्यविस्तारका यह फल हुआ कि उसके बाद पश्चिमोत्तर भारतमे अनेक छोटे-छोटे यवन राज्य स्थापित हो गये, जिनमेसे एकका शासक मिनाडर (मिलिन्द) बहुत प्रसिद्ध हुआ।

युथिडिमास—बैक्ट्रियाका तृतीय राजा। उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी डेमेट्रियसने सम्भवतः १८५ ई० पू०मे भारतपर हमला किया, लेकिन शुङ्ग राजा पुष्यमित्र (लगभग १८५ ई० पू०)ने उसे परास्त कर दिया।

युधिष्ठिर—पाच पाण्डव राजकुमारोमे सबसे ज्येष्ठ, जिसकी कौरवोंके साथ युद्धकी कथा ही महाभारतकी मुख्य कथा है। वह सत्यवादी और न्यायप्रिय था, इसीलिए उसे 'धर्मराज' कहा जाता था।

युहशि जाति—एक घुमक्कड जनजाति, जो मूलत पश्चिमी चीनमे रहती थी। १७४ ई०पू० और १६० ई०पू० के बीच उन्हे उस क्षेत्रसे खदेड दिया गया और उन्होने गोबी रेगिस्तानकी ओर प्रस्थान किया। जैक्सर्टीजकी घाटीमे पहुँचकर उन्होने वहाँसे शकोंको मार भगाया, जो वहाँ अधिकार किये हुए थे। परन्तु वू सुनने यूहशियोंको वहाँसे भी मार भगाया और वे अन्ततः आक्ससकी घाटी तथा बैक्ट्रिया पहुंचे। कालान्तरमे यूहशियोने अपनी घुमक्कडीवृत्ति त्याग दी और पाँच राज्योमे विभक्त होकर बैक्ट्रियामे बस गये। एक शताब्दीके उपरान्त लगभग ४० ई०मे युहशि जातिकी एक शाखा कुषाणोने कुजुल कदाफिससके नेतृत्वमे युहशि जातिकी अन्य शाखाओंपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया और उत्तरी पश्चिमी भारतपर अधिकार कर लिया। उनका नेता भारतीय इतिहासमे कथफिश प्रथमके नामसे विख्यात हुआ जो कुषाण राजवंशका था। (**सैकगवर्न०**)

यूदेमास—एक यूनानी सेनापति जिसे सिकन्दरने पश्चिमी पंजाबमे यूनानी सेनाका नेतृत्व करनेके लिए फिलिप्पोजके स्थानपर नियुक्त किया और जो ३२४ ई० पू०मे भारतीयो द्वारा मारा गया। यूदेमास सिंधुघाटीके दक्षिणी भागमे ३१७ ई० पू० तक रहा, जबकि चन्द्रगुप्त मौर्यने सिन्धुघाटीके उत्तरी भागसे ३२२ ई० पू०मे ही यूनानियोको मार भगाया था। यूदेमास स्वदेश वापस लौटनेपर सिकन्दरके सेनापतियोके बीच चलनेवाले गृहयुद्धमे फँस गया और इसके बाद भारतसे उसका कोई सम्बन्ध न रहा।

यूनाइटेड ईस्ट इण्डिया कम्पनी आफ नीदरलैण्ड—हालैण्ड सरकारके सहयोगसे डचो द्वारा १६०२ ई०मे संगठित। उसका प्रधान कार्यालय बटावियामे था। उसने मसालेवाले द्वीपोंके साथ मसालेके लाभदायक व्यापारपर अपना ध्यान केन्द्रित किया और अंग्रेजोको 'जावा' और 'मलक्का'

द्वीपोंसे बाहर निकाल दिया। भारतमें भी १६०९ ई०में उसने अपनी कोठियाँ मद्रासके उत्तर, पुलीकटमें और बादमें मछलीपट्टम् और सूरतमें स्थापित कीं। मसालेके व्यापारपर एकाधिकार दृढ़ बनाया। बंगालमें चिन्सुरामें बस गये और पलासीके युद्धके पश्चात् बंगालमें अंग्रेजोंके बढ़ते हुए राजनीतिक प्रभावके कारण उनसे ईर्ष्या करने लगे। फलतः रावर्ट क्लाइवने उनपर नवम्बर १७५९ ई० में आक्रमण किया तथा बिदारि (दे०) के युद्धमें उन्हें परास्त कर दिया। इसके पश्चात् डचोंने भारतमें राजनीतिक शक्ति प्राप्त करनेके लिए अंग्रेजोंसे कोई प्रतिद्वन्द्विता नहीं की और अपना ध्यान केवल व्यापारपर केन्द्रित रखा। इंग्लैण्ड और फ्रांसके बीच युद्ध प्रारम्भ होनेपर १७८१ ई०में इंग्लैण्ड और हालैण्डके बीच भी युद्ध घोषित कर दिया गया और भारतमें डचों द्वारा अधिकृत समस्त क्षेत्र अंग्रेजोंके अधिकारमें आ गया। अंग्रेजोंने १८१० ई०में जावापर भी अधिकार कर लिया। किन्तु १८१६ ई०में उसे डचोंको लौटा दिया।

यूनाइटेड कम्पनी—'ईस्ट इंडिया कम्पनी' को 'यूनाइटेड कम्पनी' नाम तब दिया गया, जब १७०८ ई०में उसकी प्रतिद्वन्द्वी 'द इंगलिश कम्पनी, ट्रेडिंग टु द ईस्ट इंडीज', से उसे मिला दिया गया। इसके बाद भी 'यूनाइटेड कम्पनी' 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' (दे०) के नामसे ही प्रसिद्ध रही।

यूनानी (यवन)—भारतीय इतिहासपर इनका बहुत अधिक प्रभाव है। इस बातका निश्चित प्रमाण है कि भारतपर सिकन्दरके आक्रमण (ईसा पूर्व ३२७–३२६) से शताब्दियों पहले भारत और यूनानके बीच सम्पर्क स्थापित था। सुप्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक पैथागोरसने, जो ईसापूर्व छठी शताब्दीके अन्तमें वर्तमान था और पुनर्जन्मके सिद्धान्तका प्रतिपादन करता था, निश्चय ही भारतके सांख्य-दर्शनसे यह सिद्धान्त लिया था। ऐसा उल्लेख मिलता है कि एक भारतीय विद्वान् एथेंसमें यूनानी दार्शनिक सुकरात (ईसा पूर्व ४६९–३९९) से मिला था और उससे दर्शनपर बहस की थी। अफलातून अथवा प्लेटो (ईसा पूर्व ४२७–३४७) भारतीय दर्शनके कर्म-सिद्धान्तसे परिचित था। इसी प्रकार भारतीय दर्शन और इलीटिक्स तथा थेल्स द्वारा प्रतिपादित यूनानी दर्शनमें जो अद्भुत साम्य मिलता है उससे जाहिर है कि सिकन्दरके पहले भारतीय और यूनानी दार्शनिकोंके बीच निकट सम्पर्क हुए बिना वह नहीं घटित हो सकता। सिकन्दरने भारतपर अकारण आक्रमण करके यहाँ बहुत-सा रक्त बहाया, उसके साथ बहुतसे यूनानी भी भारत आये। यद्यपि सिकन्दरके मरनेके साथ भारतपर उसका प्रभुत्व समाप्त हो गया तथापि भारत और यूनानियोंका सम्पर्क जारी रहा। सेनापति सेल्यूकसने सिकन्दरके मरनेके बाद साम्राज्यके पूर्वी भागपर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया और ईसा पूर्व ३०५ में उसने भी भारतपर आक्रमण किया, लेकिन भारतीय सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य (दे०) (ईसापूर्व ३२२–२९८) ने उसे पराजित कर दिया और उसकी लड़कीसे विवाह कर लिया।

सेल्यूकसने चन्द्रगुप्तके दरबारमें मेगस्थनीज नामका दूत भेजा। चन्द्रगुप्तके बाद बिन्दुसारने सीरियाके यूनानी राजा एँटियोकससे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध कायम किया और उसको पत्र लिखकर एक यूनानी दार्शनिक भारतमें भेजनेके लिए अनुरोध किया। बिन्दुसारके पुत्र अशोकने भी सीरिया, मिस्र, मकदूनिया और इपिरसके यूनानी राजाओंसे सम्पर्क कायम किया। इन सभी देशोंमें अशोकने बौद्ध भिक्षुओंको भेजा और वहाँ चिकित्सालय आदि खुलवाये और जड़ी-बूटियोंके पेड़ लगवाये। कहा जाता है, इन देशोंमें बहुतसे लोगोंने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। भारतमें भी बहुतसे यूनानी लोग अशोककी सेवामें नियुक्त थे। उसने तुशाष्प नामक यूनानीको सौराष्ट्रका क्षत्रप नियुक्त किया था। अफगानिस्तानमें, जो उन दिनों अशोकके साम्राज्यके अन्तर्गत था, बहुतसे यूनानी रहते थे। शायद इसलिए कन्दहारके निकट जो शिलालेख मिला है, उसे अशोकने दो भाषाओं—यूनानी और अरमइकमें लिखवाया था। अशोकके बाद पश्चिमोत्तर भारतमें बहुतसे छोटे-छोटे यवन राज्य स्थापित हो गये, जो प्रथम शताब्दी ईसवीमें कुषाण साम्राज्यकी स्थापना होनेतक वर्तमान रहे। इसी जमानेमें भारतीयों और यूनानियोंके बीच निकट सांस्कृतिक संबंध स्थापित हुआ और हजारों यूनानियोंने या तो बौद्ध धर्म या ब्राह्मण धर्म (हिन्दू धर्म) ग्रहण कर लिया।

यूनानी राजा मिनान्डर (मिलिन्द) ने बौद्ध धर्मकी दीक्षा ली और यूनानी राजदूत हेलियोडोरस (हलधर) ने वैष्णव धर्म अंगीकार किया और वासुदेवके सम्मानमें बेसनगरमें गरुडस्तम्भकी स्थापना की। इसी कालमें मूर्ति कलाकी गांधार शैलीका विकास हुआ और बुद्धकी असंख्य कलात्मक मूर्तियोंका निर्माण हुआ, जिनपर यूनानी प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। वस्तुतः भारत और यूनान दोनोंने एक दूसरेको प्रभावित किया। यूनानने भारतसे दर्शन, धर्म, गणित और अन्य विज्ञान लिये।

बदलेमे भारतने यूनानसे वास्तु कला, मुद्रा-निर्माण कला, साहित्य तथा ज्योतिष विद्या ली।

यूरोपीय यात्री, आरम्भिक—उन यूनानी यात्रियोसे भिन्न थे जो ३२७ ई०पू० मे भारतपर सिकन्दरके आक्रमणके बाद भारत आये और जिन्होने अपना यात्रा-विवरण भी प्रस्तुत किया। ये लोग अपनेको यूरोपीय नही कहते थे। यूरोपीय यात्रियोमे प्रथम था वेनिस (इटली) निवासी मार्कोपोलो, जो १२८८ और १२९३ ई०मे भारत आया था। इसके बाद १४२० ई०मे इटालियन यात्री निकोलो कोन्टी विजयनगर आया था। ५० वर्ष बाद रूसी यात्री अफानासी निकितनने १४७० से १४७४ ई० तक बहमनी राज्यकी यात्रा की। १५२२ ई०मे पुर्तगाली यात्री डोमिंगोज पायस विजयनगर आया। १३ वर्ष पश्चात् दूसरा पुर्तगाली यात्री फर्नाओ नूनिज भी विजयनगर आया। टामस स्टेफेन्स पहला अग्रेज था जो भारत आया। वह गोवा स्थित जेशुइट कालेजका रेक्टर था। उसने अपने पिताको जो पत्र लिखे, उनसे इग्लैण्डमे भारतके प्रति बडी दिलचस्पी पैदा हुई।

तत्पश्चात् १५८३ ई०मे अग्रेज व्यापारी फिच अपने दो साथियोके साथ भारत आया। वह सात वर्ष तक भारतमे रहा। १५९२ ई०मे इग्लैण्ड वापस जाकर उसने भारतका आँखो देखा हाल प्रकाशित किया। इससे इग्लैण्डके निवासियोमे भारतके प्रति दिलचस्पी और भी बढ़ गयी। १५९९ ई०मे तीसरा अग्रेज यात्री जान मिडनाल अथवा मिल्डेनहाल स्थल मार्गसे भारत आया और सात वर्ष तक यहाँ रहा। वह अकबरके दरबारमे आगरा भी गया। चूँकि उस समयतक उत्तमाशा अन्तरीप (द० अफ्रीका) होकर यूरोप और भारतके बीच समुद्री रास्तेकी जानकारी हो चुकी थी, अतएव इस रास्ते बहुतसे यूरोपीय यात्री भारत आने लगे। इन लोगोमे कैप्टन विलियम हाकिन्स भी था। हाकिन्स भारतमे १६०८ से १६१४ ई० तक रहा। उसने भारतका रोचक विवरण प्रस्तुत किया है। सर टामस रो तथा पादरी एडवर्ड टेरी १६१५ से १६१९ ई० तक भारतमे रहे। फ्रैंक्वाय बर्नियर तथा जीन बैप्टिस्ट टैवर्नियर भारतमे शाहजहाँ (१६२७–६० ई०) के शासन-कालमे आये और उस समयका दिलचस्प विवरण प्रस्तुत किया है।

यूले, जार्ज—उन विरल गैर-सरकारी अग्रेज व्यापारियोमेसे एक, जो भारतकी राजनीतिक महत्त्वाकाक्षाओमे सहानुभूति रखते थे। वह भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसका समर्थक था और १८८८ ई०मे इलाहाबादमे सम्पन्न उसके चौथे अधिवेशनका सभापतित्व उन्होने किया था।

यूसुफ आदिल खाँ (शाह)—बीजापुर (दे०)के आदिलशाही वशका प्रवर्तक। वह तुर्कीके सुल्तान मुराद द्वितीयका पुत्र माना जाता है। उसे सुरक्षाकी दृष्टिसे गुप्त रूपसे फारस लाया गया, और वहाँ दासके रूपमे बहमनी सुल्तान मुहम्मद शाह तृतीय (दे०) के मन्त्री मुहम्मद गवाँ (दे०) के हाथ बेच दिया गया। यूसुफ अपनी योग्यताके आधारपर अपना मार्ग प्रशस्त करके, उच्च पदपर पहुँच गया और बहमनी सुल्तानके द्वारा बीजापुरका हाकिम बना दिया गया, जहाँ वह १४८९–९० ई०मे स्वतन्त्र शासक बन बैठा और मृत्युपर्यन्त वहाँका शासन किया। उसकी मृत्यु १५१० ई०मे हुई। उससे बीजापुरके आदिलशाही वशकी नीव पडी, जिसने १६८६ ई०तक शासन किया, अन्तिम सुल्तान सिकन्दरको सम्राट् औरगजेबने परास्त करके बदी बनाया और अपदस्थ कर दिया। यूसुफ आदिलशाह वीर एव सहिष्णु शासक था। उसने हिन्दुओको ऊँचे पदोपर नियुक्त किया। वह शिया मतका था। उसने एक मराठा स्त्रीसे विवाह किया, जिसका नाम बूबूजी खानम रखा गया। वह उसके पुत्र और उत्तराधिकारी इस्माइल शाहकी माता बनी। वह गोवा बन्दरगाहके महत्त्वको भली प्रकार समझता था और वहाँ अक्सर निवास करता था। १५१० ई०मे पुर्तगाली एडमिरल एल्बुकर्कने सुल्तानके स्थानीय अधिकारियोकी लापरवाहीसे लाभ उठाकर बन्दरगाहपर कब्जा कर लिया, परन्तु यूसुफ आदिलशाहने छः मास बाद उसे पुनः हस्तगत कर लिया। वह विद्वानो और गुणीजनोका सरक्षक था। ७४ वर्ष की अवस्थामे उसका देहावसान हुआ।

युसुफजई कबीला—एक लड़ाकू प्रकृतिका पठान कबीला। इस कबीलेके लोगोने अकबरके विरुद्ध विद्रोह कर दिया जो दबा दिया गया। १६६७ ई०मे वे फिर मुगल बादशाह औरगजेबके विरुद्ध उठ खडे हुए और मुगल सूबेदार अमीर खाँको १६७२ ई० मे अली मस्जिद नामक स्थानपर मार डाला। बादशाहने स्वय पेशावरमे उपस्थित होकर विद्रोहको कुचला, फिर भी वे क्षुब्ध बने रहे। ब्रिटिश शासनकालमे भी वे जब-तब विद्रोह कर बैठते थे।

यूसुफ शाह—कश्मीरका मुसलमान शासक। अकबरने १५८६ ई०मे उसके राज्यपर आक्रमण करके उसे परास्त कर दिया कश्मीरको मुगल साम्राज्यमे सम्मिलित कर लिया।

यूसुफ शाह–१४७४ से १४८१ ई०तक बगालका शासक। उसने शम्सुद्दीन अबुल मुजफ्फर यूसुफ शाहकी उपाधि धारण की थी। वह अपने पिता बर्बक शाहका उत्तराधिकारी बना। वह सद्गुणी, धर्मपरायण, योग्य और विद्वान व्यक्ति था। उसने सिलहटको विजित कर अपने राज्यमे मिला लिया।

येन-काओ-चिग अथवा येन-युडशि राजा कथफिश द्वितीय (दे०) का मूल नाम।

योगदर्शन–भारतीय षड्दर्शनोमेसे एक, जिसके प्रचारक पतजलि माने जाते है। योगदर्शन व्यावहारिक आचरणका दर्शन है। यह चित्तवृत्तियोके निरोधका उपाय बतलाता है, जिससे मोक्षकी प्राप्ति होती है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये योगके आठ अग है। योगदर्शन ईश्वरमे विश्वास करता है जो सर्वापेक्षया उत्तम अर्थात् निरतिशय परमगुरु, सर्वज्ञ, सर्वकर्ता है। योगी अभ्यासके द्वारा समाधिस्थ होनेपर अनुभव करता है कि इस दृश्यमान जगत्से परे भी अनेक ब्रह्माड है जो स्थूल इन्द्रियोसे ग्राह्य नही है। इस प्रकार हम जिसे अलौकिक समझते है, वह योगीको सर्वथा स्वाभाविक अनुभूत होता है। योगी समाधिस्थ होकर परम सुख (ब्रह्मानन्द) मे लीन हो जाता है। यही कारण है कि अति प्राचीन कालसे आजतक योगमार्ग मुमुक्षुओको आकर्पित करता रहा है।

योगवासिष्ठ रामायण–सस्कृतका प्रसिद्ध अध्यात्म-ग्रथ। शाहजादा दाराशिकोह (दे०) ने इसका फारसी भाषामे अनुवाद किया था।

योन–अशोकके अभिलेखोमे उल्लिखित एक सीमावर्ती जनपद। इस जनपदके बहुतसे लोगोको अशोकने बौद्ध धर्मानुयायी बनाया था। लोग मूलत यूनानियोके वशज थे और अशोकके साम्राज्यातर्गत होनेके कारण उसकी प्रजा बन गये थे। हालमे कदहारमे अशोकका एक शिलालेख मिला है जो दो लिपियोमे है। इससे भी इस बातकी पुष्टि होती है कि उसके साम्राज्यातर्गत यवन (योन) लोग भी बसते थे।

योधेय–गणके लोग, सम्भवत क्षत्रिय थे। इनका उल्लेख समुद्रगुप्त (दे०) के प्रयाग स्तम्भलेखमे मालव, मद्रक आदि गणराज्योके साथ हुआ है, जिन्हे समुद्रगुप्तने करदान तथा आज्ञापालनके लिए बाध्य किया था। पहले ये लोग सम्भवत. सतलज की घाटीमे रहते थे परन्तु बादमे शूरसेन क्षेत्रतक फैल गये। (बी० सी० ला—सम एन्शियेण्ट मिड-इण्डियन क्षत्रिय ट्राइब्स)।

यौवनश्री–पाल राजा विग्रहपाल तृतीय (दे०) की एक रानी। यह चेदि देशके राजवशकी राजकुमारी थी।

र

रग प्रथम–विजयनगर (दे०) के चतुर्थ आरविडु वशके शासक तिरुमलका पुत्र और उत्तराधिकारी। तिरुमल रामराजका भ्राता था, जो १५६५ ई०के तालीकोट (दे०)के युद्धमे मारा गया। इस युद्धके परिणामस्वरूप विजयनगर राज्यकी सीमाएँ अत्यधिक सकुचित हो गयी और इसी बचे-खुचे भागपर रग प्रथमने प्राय १५७३ ई० से १५८५ ई० तक राज्य किया।

रग द्वितीय–विजयनगर (दे०)के चतुर्थ राजवशका अन्तिम शासक। उसने १६४२ से १६४६ ई० तक शासन किया, पर उन दिनो विजयनगरके शासकोकी स्थिति सामतोके समान हो गयी थी। यद्यपि उसके १६८४ ई० तकके अभिलेख प्राप्त है तथापि इनसे उसके शासनकालकी राजनीतिक घटनाओकी कोई जानकारी नही मिलती।

रघुजी भोसला–नागपुरके भोसला शासकोमे प्रथम। जन्म एक मराठा ब्राह्मण परिवारमे। वैवाहिक सम्बन्धसे वह राजा-शाहूका सम्बन्धी भी था। वह पेशवा बाजीराव प्रथम (दे०) के प्रतिद्वन्द्वी दलका नेता था। पेशवाने उसे बरार प्रान्तमे मराठा शक्ति सघटित करनेका पूर्ण अधिकार दे रखा था।

रघुजी महान् योद्धा और बाजीराव प्रथम द्वारा सगठित मराठा सघका महत्त्वपूर्ण सदस्य था। उसने भारतके पूर्वीय क्षेत्रवर्ती उडीसा और बगाल तकके भू-भागोको अपने आक्रमणोसे आतकित कर दिया और बगालके नवाब अलीवर्दी खाँ (दे०)से उडीसापर मराठोका अधिकार सधि द्वारा मनवा लिया। उसके वशजोने नागपुरको राजधानी बनाकर बरार प्रान्तपर १८५३ ई० तक राज्य किया और उसी वर्ष लार्ड डलहौजी (दे०) ने पुत्रहीन रघुजी तृतीयकी मृत्युके उपरान्त बरारको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमे मिला लिया।

रघुजी द्वितीय–रघुजी भोसला (प्रथम)का पौत्र, जिसने १७८८ ई०से १८१६ ई०तक राज्य किया। वह द्वितीय मराठा-युद्ध (दे०)मे भी सम्मिलित था, किन्तु असई (अगस्त १८०३) और आर गाँव (नवम्बर १८०३)के युद्धोमे पराजित होनेके कारण दिसम्बर १८०३ ई०मे उसे

अंग्रेजोंसे अलग संधि करनी पड़ी, जो देवगाँवकी संधिके नामसे विख्यात है। संधिकी शर्तोंके अनुसार उसे भारतके पूर्वी समुद्रतटके कटक और बालासोर जिले तथा मध्य भारतमें वारधा नदीके पश्चिमका अपने राज्यका समस्त भू-भाग अंग्रेजोंको दे देना पड़ा। यद्यपि उन्होंने अंग्रेजोंके साथ विधिवत् सहायक संधि नहीं की, तथापि अपने तथा निजाम और पेशवाके बीच होनेवाले विवादोंमें अंग्रेजोंकी मध्यस्थता स्वीकार कर ली। साथ ही अंग्रेजोंकी पूर्व अनुमतिके बिना किसी यूरोपीयको अपने यहाँ नौकरीमें न रखने और नागपुरमें अंग्रेज रेजीडेण्ट रखनेकी शर्तोंको भी स्वीकार कर लिया। आगे चलकर पिंडारियोंने उसके राज्यमें काफी लूटमार की और तबाही फैलायी। १८१६ ई०में तृतीय मराठा-युद्ध (दे०) प्रारंभ होनेके पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गयी। तत्पश्चात् उसका अयोग्य पुत्र परसोजी भोंसला (दे०) नागपुरका शासक बना।

रघुजी भोंसला, तृतीय (१८१८–५३)–एक दुर्बल शासक, जिसे अंग्रेजोंने नागपुरके सिंहासनपर अपनी स्वार्थ-सिद्धिके लिए आसीन किया। उसकी कमजोरीका लाभ उठाकर अंग्रेजोंने, भोंसला राज्यके नर्मदा नदीके उत्तर-स्थित समस्त भू-भागपर अपना अधिकार कर लिया। १८५३ ई०में उसकी निस्संतान मृत्यु हुई और गोद प्रथाके अन्तकी नीतिके अनुसार लार्ड डलहौजीने उसके शेष राज्यको भी ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया।

रघुनन्दन (स्मार्त भट्टाचार्य)–प्रख्यात धर्मशास्त्रकार। जन्म सोलहवीं शताब्दीमें बंगालके नवद्वीप (नदिया) नामक स्थानपर। वे चैतन्यदेव (दे०) के समकालीन थे। पिताका नाम हरिहर भट्टाचार्य था। उन्होंने नव्य स्मृति और 'अष्टाविंशति तत्त्व' नामक प्रसिद्ध ग्रंथोंकी रचना की, जिनका बंगालके हिन्दुओंके सामाजिक तथा धार्मिक जीवनपर गंभीर प्रभाव पड़ा। अपने स्मृति-सम्बन्धी प्रगाढ़ ज्ञानके कारण वे स्मार्त भट्टाचार्यके नामसे भी विख्यात हैं।

रघुनाथराव (उपनाम राघोबा)–द्वितीय पेशवा बाजीराव प्रथम (दे०)का द्वितीय पुत्र, जो कुशल सेना-नायक था। अपने बड़े भाई बालाजी बाजीराव (दे०)के पेशवा कालमें उसने होल्करके सहयोगसे उत्तरी भारतमें बृहत् सैनिक अभियान चलाया। १७५८ ई०में उसने अहमदशाह अब्दाली (दे०)के पुत्र तैमूरशाह (दे०)को पराजित कर सरहिन्दपर अधिकार कर लिया तथा पंजाबपर अधिकार करके मराठों (हिन्दुओं)की सत्ता अटक तक संस्थापित कर दी, किन्तु राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टियोंसे उक्त उपलब्धियाँ लाभकर सिद्ध न हुईं। तैमूरशाहको पंजाबसे खदेड़नेके कारण उसके पिता अहमदशाह अब्दालीने १७५९ ई० में भारतपर आक्रमण करके पंजाबसे मराठा शक्तिका उन्मूलन कर दिया। उपरांत १७६१ ई० में पानीपतके तृतीय युद्ध (दे०) में मराठोंको गहरी पराजय दी। इस युद्धमें भीषण नरसंहार हुआ, पर रघुनाथ राव किसी प्रकार बच निकला।

रघुनाथ राव अत्यधिक महत्त्वाकांक्षी था। बड़े भाई बालाजी बाजीरावकी मृत्युके उपरान्त उसके पुत्र (और अपने भतीजे) माधव राव (दे०) के पेशवा बननेपर वह क्षुब्ध हो गया किन्तु नवयुवक पेशवा (माधवराव) योग्य एवं चतुर निकला। उसने रघुनाथ रावकी समस्त चालोंको विफल कर दिया। किन्तु १७७२ ई०में माधवरावकी सहसा मृत्यु हो जानेके उपरान्त जब उसका छोटा भाई नारायण राव (दे०) पेशवा हुआ तो रघुनाथ राव अपनी महत्त्वकांक्षाको अंकुशमें न रख सका। उसने १७७३ ई०में षड्यंत्र करके नवयुवक पेशवाको अपनी आँखोंके सामने ही मरवा डाला। मृत्युके समय नारायण रावका कोई पुत्र न था। अतएव रघुनाथ राव पेशवा पदका अकेला दावेदार रह गया और १७७३ ई०में उसे पेशवा घोषित भी कर दिया गया।

किन्तु नाना फड़नवीसके नेतृत्वमें मराठोंके एक शक्तिशाली दलने पूनामें उसके पदासीन होनेका सबल विरोध किया। इस दलको नारायण रावके मरणोपरान्त १७७४ ई०में एक पुत्र उत्पन्न होनेसे और भी अधिक सहारा मिला। रघुनाथ रावके विरोधियोंने अविलम्ब नवजात शिशु माधवराव नारायणको पेशवा घोषित कर दिया। उन्होंने एक संरक्षक समिति बना ली तथा बालक पेशवाके नामपर समस्त मराठा राज्यका शासन सँभाल लिया। इस प्रकार रघुनाथ राव अब अकेला पड़ गया और उसे महाराष्ट्रसे निकाल दिया गया। अपनी महत्त्वाकांक्षाओंपर पानी फिर जानेसे रघुनाथ रावकी समस्त देशभक्ति कुण्ठित हो गयी और उसने बम्बई जाकर अंग्रेजोंसे सहायताकी याचना की तथा १७७५ ई०में उनसे संधि भी कर ली, जो सूरतकी संधिके नामसे विख्यात है। संधिके अन्तर्गत अंग्रेजोंने रघुनाथ रावकी सहायताके लिए २५०० सैनिक देनेका वचन दिया, परन्तु इनका समस्त व्यय-भार रघुनाथ रावको ही वहन करना था। इसके बदलेमें रघुनाथ रावने साल्टी और बसई तथा भड़ौंच और सूरत जिलोंकी आयका कुछ भाग

सूझ-बूझका परिचय दिया और अंग्रेजो मे १८०९ ई० मे चिरस्थायी मैत्री सन्धि कर ली, जो अमृतसरकी सन्धिके नामसे विख्यात है। इसके अनुसार उसने लुधियानापर-से अधिकार हटा लिया और अपने राज्यक्षेत्रको सतलज नदीके उत्तर और पश्चिम तक ही सीमित रखना स्वीकार किया। साथ ही उसने सतलज की दक्षिणवर्ती रियासतोके झगडोमे हस्तक्षेप न करनेका वचन दिया। परिणामस्वरूप ये सभी रियासते अंग्रेजोके सरक्षणमे आ गयी।

रणजीत सिंहने अब दूसरी दिशामे विजय यात्राएँ आरम्भ करते हुए १८११ ई० मे कांगडा तथा १८१३ ई०-मे अटकपर अधिकार कर लिया और अफगानिस्तानके भगोडे शासक शाहशुजाको शरण दी। शाहशुजासे ही १८१४ ई० मे उसने प्रसिद्ध कोहेनूर हीरा प्राप्त किया था। उपरान्त १८१८ ई० मे उसने मुल्तान और १८१९ ई०मे काश्मीरको जीतकर १८२३ ई०मे पेशावरको अपनी अधीनता स्वीकार करनेपर बाध्य किया और १८३४ ई० मे पेशावरके किलेपर भी अधिकार कर लिया। उसकी दृष्टि सिन्धपर भी लगी थी परन्तु इस दिशामे अंग्रेज पहलेसे घात लगाये हुए थे, क्योंकि वे रणजीत सिंह की विस्तारवादी नीतिसे सशकित थे।

रणजीत सिंह यथार्थवादी राजनीतिज्ञ था, जिसे सभव और असभव की भली परख थी। इसी कारण उसने १८३१ ई० मे अंग्रेजोसे पुन सधि की, जिसमे चिरस्थायी मैत्रीसधिकी शर्तोको दुहराया गया। इस प्रकार रणजीत सिंहने न तो अंग्रेजोसे कभी कोई युद्ध किया और न उनकी सेनाओंको किसी भी बहानेसे अपने राज्यके अन्दर घुसने दिया। ५९ वर्षकी उम्रमे १८३९ ई० मे अपनी मृत्युके समय तक उसने एक ऐसे सुगठित सिख राज्यका निर्माण कर दिया था, जो पेशावरसे सतलज तक और कश्मीरसे सिन्ध तक विस्तृत था। किन्तु इस विस्तृत साम्राज्यमे वह कोई मजबूत शासन-व्यवस्था प्रचलित न कर सका और न सिखोमे वैसी राष्ट्रीय भावनाका सचार कर सका, जैसी शिवाजीने महाराष्ट्रमे उत्पन्न कर दी थी। फलत उसकी मृत्युके केवल १० वर्ष उपरान्त ही यह साम्राज्य नष्ट हो गया। फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि अफगानो, अंग्रेजो तथा अपने कुछ सहधर्मी सिख सरदारोके विरोधके बावजूद रणजीत सिंहने जो महान सफलताएँ प्राप्त की, उनके आधारपर उसकी गणना उन्नीसवी शताब्दीके भारतीय इतिहासकी महान विभूतियोमे की जानी चाहिए।

रफी उद्दाराजात—सातवें मुगल सम्राट् बहादुरशाह (दे०) (शाह आलम प्रथम) का पौत्र तथा शाहजादा रफीउश्शान का पुत्र, जो मुगल वशका दसवॉं बादशाह था। १७१९ ई० मे सैयद बन्धुओने (दे०) ने फर्रुखशियर (दे०) की हत्या करके रफी उद्दाराजातको बादशाह बनाया किन्तु कुछ ही महीनोके उपरान्त सैयद बन्धुओने उसे भी गद्दीसे उतार कर उसकी हत्या कर दी।

रफीउद्दौला—सैयद बन्धुओने इसके छोटे भाई रफी उद्दाराजातके उपरान्त १७१९ ई०मे इसे दिल्लीके सिंहासनपर आसीन किया। यह ग्यारहवाँ मुगल बादशाह था। अपने भाईकी भॉति यह भी सैयद बधुओके हाथोकी कठपुतली था और सिंहासनासीन होनेके थोडे ही दिनोके उपरान्त उन्होने इसे गद्दीसे उतार दिया।

रमण, सर चन्द्रशेखर व्यकट—अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त वैज्ञानिक। इनकी गणना भौतिकी शास्त्रके मूर्धन्य विद्वानो-मे की जाती है। आधुनिक युगमे डॉ० रमणने समस्त विश्वमे भारतीय विद्वानो तथा अन्वेषकोकी प्रतिष्ठामे वृद्धि की है। १८८८ ई०मे दक्षिण भारतमे जन्म लेकर उन्होने १९०७ ई०से १९१७ ई० तक भारतीय वित्त विभागमे कार्य किया। उनकी प्रतिभा छिपी न रह सकी। सर आशुतोष मुखर्जी महोदयका ध्यान इनकी ओर गया और वे इन्हे १९१७ ई०मे विद्याके क्षेत्रमे खीच लाये। मुखर्जी महोदयने उनको कलकत्ता विश्व-विद्यालयके भौतिकी विभागमे 'पालित प्राध्यापक के पद-पर प्रतिष्ठित किया और वही कार्य करते हुए १९२८ ई०मे उन्होने प्रकाश-किरणोकी सूक्ष्म रचनाके सम्बन्धमे महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक अनुसधान किया, जिसे उन्हीके नाम पर 'रमन्स इम्पेक्ट' की सज्ञा दी गयी।

१९३० ई०मे उन्हे रायल एशियाटिक सोसाइटीका सदस्य मनोनीत होनेका गौरव प्राप्त हुआ और उसी वर्ष उन्हे भौतिकीमे नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ। वर्षों तक वे कलकत्ता स्थित वैज्ञानिक प्रगति सस्थानके अध्यक्ष रहे और कलकत्ता विश्वविद्यालयमे अवकाश ग्रहण कर लेनके उपरान्त बगलोरमे स्थित 'विज्ञान सस्थान' (इन्स्टीट्यूट आफ साइस)के निदेशक रहे।

बगलोरमे ही उन्होने रमण अनुसधान केन्द्र स्थापित किया। यूरोप और अमेरिकाके कई विश्वविद्यालयोमे विशिष्ट रूपमे आमन्त्रित व्याख्यानदाता भी होते रहे। १९३० ई०मे रायल सोसाइटीने उन्हें 'मेटेल्काड पदक' प्रदान किया और १९४१ ई०मे अमेरिकाके फ्रैंकलिन इन्स्टीट्यूट द्वारा 'फ्रैंकलिन पदक' प्रदान किया

गया। १९५८ ई०में उन्हे सोवियत रूस द्वारा 'लेनिन पुरस्कार' प्राप्त हुआ। अंग्रेजोके शासन-कालमे जब भारतीयोको अनुसधानके क्षेत्रमे पर्याप्त साधन उपलब्ध न थे, श्रीरमणने अपनी वैज्ञानिक उपलब्धियोसे देशका गौरव बढाया और सिद्ध किया कि भारतीय भी विश्वके वैज्ञानिक क्षेत्रमे अपना महत्त्वपूर्ण योग दे सकते है।

रमेशचन्द्र दत्त–जन्म १८४८ ई०, कलकत्ता, रामबागानके दत्त परिवारमे। इन्होने इडियन सिविल सर्विसके भारतीयकरणका एव समाज-सुधार तथा राष्ट्रवादके विकासमे महत्त्वपूर्ण योगदान किया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा बिहारीलाल गुप्तके साथ लदन मे उन्होने भारतीय सिविल सर्विसकी परीक्षा १८६९ ई० मे पास की। इसके दो वर्ष पश्चात् वे सिविल सर्विसमे आये। भारतीय होनेके नाते उन्हे बहुत दिन तक तरक्की नही दी गयी। अन्तमे १८९४ ई० मे उन्हे उडीसाके एक डिवीजनका कमिश्नर नियुक्त किया गया। तीन वर्ष पश्चात् अवकाश ग्रहण कर वे गायकवाड बडोदाके दीवान नियुक्त हो गये। उन्होने रियासतके प्रशासनको उदार बनाने तथा उसके आधुनिकीकरणके लिए अनेक महत्त्वपूर्ण कदम उठाये। उन्होने राष्ट्रीय आन्दोलनमे भी भाग लिया और लखनऊमे १८९९ ई० मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसकी अध्यक्षता की।

वे उच्च कोटिके विद्वान् और लेखक थे। उन्होने 'प्राचीन भारतीय सभ्यता' नामक पुस्तक अंग्रेजीमे लिखी जो अपने ढगकी पहली रचना थी। इन्होने 'ब्रिटिश भारतका आर्थिक इतिहास" (१७५७–१९०० ई०) दो खण्डोमे लिखा, जिसमे बताया गया है कि अंग्रेजोने १५० वर्षोमे भारतका किस प्रकार शोषण किया। इन्होने रामायण और महाभारतका भी अनुवाद अंग्रेजीमे किया, ऋग्वेदका अनुवाद बगला भाषामे किया। इसके अलावा देशमे राष्ट्रवादी भावनाका प्रसार करनेके लिए बगला भाषामे अनेक उपन्यास लिखे, जिनमे 'जीवन प्रभात' 'राजपूत जीवन सध्या', 'बग विजेता', माधवी कंकण' और 'ससार' प्रमुख है। ((ए० दत्त कृत लाइफ आफ रमेशचन्द्र दत्त) ।

रहमतअली चोधरी–एक सुशिक्षित भारतीय मुसलमान, जिसने सर्वप्रथम १९३३ ई०मे कैम्ब्रिजमे 'पाकिस्तान' शब्दकी रचना की। पाकिस्तानका विचार कवि इकबालकी उस विचारधाराका परिवर्द्धित रूप था, जिसमे उन्होने मुसलिम-बहुल प्रान्तोके एक सघकी कल्पना की थी। इन प्रान्तोमे उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश, बलूचिस्तान, सिन्ध, पजाब और कश्मीर आते थे। आगे चलकर मुहम्मद अली जिन्नाने इसी विचारधाराको अपनाया और १९४७ ई०मे पाकिस्तानके स्वप्नको चरितार्थ कर दिया।

राक्षस–विशाखदत्तके 'मुद्राराक्षस' (दे०) नामक सस्कृत नाटकके अनुसार नन्दवशके अन्तिम शासकका मन्त्री और जातिका ब्राह्मण। नन्दोका नाश करके चन्द्रगुप्त मौर्य (दे०) ने मौर्य वशकी नीव डाली और नाटकके अनुसार चन्द्रगुप्त के सहायक चाणक्य (कोटिल्य) ने राक्षसको उसका मन्त्री बननेपर विवश किया।

राक्षस–इस जातिका उल्लेख सस्कृत साहित्यमे अनेकशः आया है। रामायणके अनुसार वे लकाके निवासी थे और रावण (दे०) उनका राजा था। उनकी सभ्यता विशेष विकसित थी, जैसा कि रामायणमे उनकी राजधानी लकाके वर्णनसे स्पष्ट है।

राघोबा–देखिये, 'रघुनाथ राव'।

राजगोपालाचारी, चक्रवर्ती–इस ख्यातिलब्ध भारतीय राजनीतिज्ञका जन्म दक्षिण भारतमे १८७९ ई०मे हुआ। १९०० ई०मे इन्होने वकालत प्रारम्भ की परन्तु शीघ्र ही छोड दी। महात्मा गाधीके सम्पर्कमे आकर राजगोपालाचारी उनके अनुयायी बन गये और उपरान्त उनकी पुत्रीका विवाह महात्मा गाधीके पुत्र देवदाससे होनेके कारण दोनो परिवारोमे वैवाहिक सम्बन्ध भी हो गया। वे असहयोग आन्दोलनमे भाग लेकर कई बार जेल-यात्री हुए तथा १९२१–२२ ई०मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके महामन्त्री और कार्यकारिणी समितिके सदस्य बने। उन्होने सुभाषचन्द्र बोसके लगातार दूसरी बार भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके अध्यक्ष चुने जानेका विरोध किया। १९३७ ई०से १९३९ ई० और पुनः १९५२ ई० मे १९५४ ई०तक वे मद्रास प्रान्तके मुख्य मन्त्री रहे। अंग्रेजोसे देशकी स्वतन्त्रता प्राप्तिके लिए उन्होने पाकिस्तानके निर्माणका समर्थन किया।

१९४६–४७ ई०की अन्तरिम सरकारमे वे केन्द्रीय मन्त्री और १९४७–४८ ई०मे पश्चिम बगालके प्रथम भारतीय राज्यपाल हुए। १९४८ से १९५० ई०तक भारतवर्षके प्रथम भारतीय गवर्नर-जनरल होनेका श्रेय भी उन्हे प्राप्त हुआ। भारतीय गणतन्त्रके नये सविधानके लागू होनेपर १९५०–५१ ई०मे वे गृहमन्त्री भी रहे। उपरात वे नेहरु मन्त्रिमडलके सदस्य नही रहे तथा भारतीय राष्ट्रीय काग्रेससे भी दूर होते गये। १९५९ ई० मे स्वतन्त्र पार्टीकी स्थापनामे उनका प्रमुख हाथ रहा। राजगोपालाचारी केवल चतुर राजनीतिज्ञ और कुशल

वक्ता ही नहीं, अपितु अच्छे लेखक भी थे। १९६७ ई० में उनकी मृत्यु हो गयी।

राजगृह–बिहारमें पटना जिलेके अन्तर्गत आधुनिक राजगीर नामक छोटेसे नगरका प्राचीन नाम। इसका निर्माण राजा बिम्बिसार (ई०पू० छठी शताब्दी) (दे०) तथा उसके पुत्र अजातशत्रु (दे०) ने कराया था। बुद्ध-के महानिर्वाणके कुछ ही महीनों उपरान्त यहींपर प्रथम बौद्ध संगीति (दे०) हुई थी। आजकल यह स्थान गरम-जलके स्रोतोंके कारण अधिक प्रसिद्ध है। इस नगरके समीप ही पौराणिक शासक जरासन्धकी राजधानीके ध्वंसावशेष उपलब्ध हुए हैं।

राजतरंगिणी–इस सुप्रसिद्ध संस्कृत ग्रंथकी रचना कश्मीरके विख्यात विद्वान् कल्हण (दे०) ने की जो बारहवीं शताब्दीमें हुआ था। इस ग्रंथमें अति प्राचीनकालसे चले आ रहे कश्मीरके राजाओंका पद्यबद्ध इतिहास है। यद्यपि राजतरंगिणीमें वर्णित इतिहास भागमें परम्परागत जनश्रुतियों तथा अलौकिक घटनाओंका बाहुल्य है, पर जैसे-जैसे कल्हण अपने युगके निकट आते गये, वैसे ही वैसे उनका वर्णन विश्वसनीय होता गया है। बारहवीं शताब्दीकी स्थानीय घटनाओंके वर्णनकी ऐतिहासिक यथार्थता तो अब सभी विद्वानोंको मान्य है। समस्त संस्कृत साहित्यमें राजतरंगिणी सदृश ऐतिहासिक दृष्टिसे रचा गया अन्य ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

राजन्य–प्राचीन कालमें इस शब्दका प्रयोग क्षत्रियों और राजपुत्रोंके लिए होता था। सम्राट् अशोकके अभिलेखों-में भी राजन्य शब्दका प्रयोग हुआ है।

राजपूत–सातवीं शताब्दीमें सम्राट् हर्षवर्धनकी मृत्युसे लेकर १२वीं शताब्दीके अन्तमें मुसलमानोंकी भारत-विजयतकके लगभग ५०० वर्षोंके कालमें भारतवर्षके इतिहासमें राजपूतोंने सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। यह शब्द राजपुत्रका अपभ्रंश है। पश्चात्कालीन ग्रंथोंमें राजपूतोंकी ३६ शाखाओंका उल्लेख मिलता है, जिनमेंसे गुर्जर-प्रतीहार (परिहार), चाहान (चाहमान), सोलंकी (चालुक्य), परमार, चन्देल, तोमर, कलचुरि, गहड़वाल (गाहडवाल, गहरवार या राठौर), राष्ट्रकूट और गुहिलोत (सिसोदिया) सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं। वीरता, उदारता, स्वातंत्र्य-प्रेम देशभक्ति जैसे सद्गुणोंके साथ उनमें मिथ्या कुलाभिमान तथा एकताबद्ध होकर कार्य करनेकी क्षमताके अभावके दुर्गुण भी थे। मुसल-मानोंके आक्रमणके समय राजपूत हिन्दू धर्म, संस्कृति और परम्पराओंके रक्षक बनकर सामने आते रहे।

राजपूतोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें किंचित् विवाद है और यह इस कारण और भी जटिल हो गया है कि प्रारम्भमें राजन्य वर्ग और युद्धोपजीवी लोगोंको क्षत्रिय कहा जाता था और राजपूत (राजपुत्र) शब्दका प्रयोग सातवीं शताब्दीके उपरान्त ही प्रचलित हुआ। जन-श्रुतियोंके अनुसार राजपूत उन सूर्यवंशी एवं चन्द्रवंशी (सोमवंशी) क्षत्रियोंके वंशज हैं, जिनकी यशोगाथा रामायण और महाभारतमें वर्णित है किन्तु अभिलेखोंसे ज्ञात होता है कि गुहिलोत या सिसोदिया शाखा, जिसमें मेवाड़के स्वनामधन्य राणा हुए और जो अपनेको राम-चन्द्रजीका वंशज मानती है वस्तुतः एक ब्राह्मण द्वारा प्रवर्तित हुई थी। इसी प्रकार गुर्जर-प्रतीहार शाखा भी, जो अपनेको रामचन्द्रजीके लघु भ्राता लक्ष्मणका वंशज मानती है, कुछ अभिलेखोंके अनुसार गुर्जरोंसे आरम्भ हुई थी, जिन्हें विदेशी माना जाता है और जो हूणोंके साथ अथवा उनके कुछ ही बाद भारतमें आकर गुजरात-में बस गये थे। आभिलेखिक प्रमाणोंसे शकों और भारतीय राज्यवंशोंमें वैवाहिक सम्बन्ध सिद्ध होते हैं।

शकोंके उपरान्त जितनी भी विदेशी जातियाँ पाँचवीं और छठी शताब्दीमें भारत आयीं, उनको हिन्दुओंने नष्ट न करके शकों और कुषाणोंकी भाँति क्रमशः अपनेमें आत्मसात् कर लिया। तत्कालीन हिन्दू समाजमें उनकी स्थिति उनके पेशेके अनुसार निर्धारित हुई और उनमेंसे शस्त्रोपजीवी तथा शासक वर्ग क्षत्रिय माना जाकर राजपूत कहलाने लगा। इसी प्रकार भारतकी मूल-निवासी जातियोंमेंसे गोंड, भर, कोल आदिके कुछ परिवारोंने अपने बाहुबलसे छोटे-छोटे राज्य स्थापित कर लिये। इनकी शक्ति और सत्तामें वृद्धि होने तथा क्षत्रियोचित शासनकर्मी होनेके फलस्वरूप इनकी भी गणना क्षत्रियोंमें होने लगी और ये भी राजपूत कहलाये। चन्देलोंके गोंड राजपरिवारोंसे, गहड़वालोंके भरोंसे और राठौरोंके गहड़वालोंसे घनिष्ठ वैवाहिक सम्बन्ध थे। सत्य तो यह है कि हिन्दू समाजमें शताब्दियों तक जाति-का निर्धारण जन्म और पेशे दोनोंसे होता रहा है। इस सिद्धान्तके अनुसार क्षत्रियों अथवा राजपूतोंका वर्ग वस्तुतः देशका शस्त्रोपजीवी तथा शासक वर्ग था जो हिन्दू धर्म और कर्मकाण्डमें आस्था रखता था। इसी कारण राजपूतोंके अन्तर्गत विभिन्न नसलोंके लोग मिलते हैं।

राजपूतोंने मुसलमान आक्रमणकारियोंसे शताब्दियों तक वीरतापूर्वक युद्ध किया। यद्यपि उनमें परस्पर एकता-

के अभावके कारण भारतपर अतत. मुसलमानोका राज्य हो गया, तथापि उनके तीव्र विरोधके फलस्वरूप इस कार्यमे मुसलमानोको बहुत समय लगा। दीर्घकालतक मुसलमानोका विरोध और उनसे युद्ध करते रहनेके कारण राजपूत शिथिल हो गये और उनकी देशभक्ति, वीरता तथा आत्म-बलिदानकी भावनाएँ कुठित हो गयी। यही कारण है कि भारतमे अग्रेजी राज्यकी स्थापनाके विरुद्ध किसी भी महत्त्वपूर्ण राजपूत राज्य अथवा शासकने कोई युद्ध नही किया। इसके विपरीत १८१७ और १८२० ई०के बीच सभी राजपूत राजाओने स्वेच्छासे अग्रेजोकी सर्वोपरि सत्ता स्वीकार करके अपनी तथा अपने राज्यकी सुरक्षाका भार उनपर छोड दिया। (विन्सेण्ट स्मिथ कृत अर्ली हिस्ट्री आफ इडिया, गौरीशकर हीरानन्द ओझा कृत राजपूतानेका इतिहास तथा ए० सी० बनर्जी कृत दि राजपूत स्टेट्स एण्ड दि ईस्ट इडिया कम्पनी)

राजपूताना–इस प्रदेशका आधुनिक नाम राजस्थान है, जो उत्तर भारतके पश्चिमी भागमे अरावलीकी पहाड़ियो-के दोनो ओर फैला हुआ है। इसका अधिकाश भाग मरुस्थल है। यहाँ वर्षा अत्यल्प और वह भी विभिन्न क्षेत्रोमे असमान रूपमे होती है। राजपूतोकी राजनीतिक सत्ता रहनेके कारण इस प्रदेशका नाम राजपूताना पडा। भारतमे मुसलमानोका राज्य स्थापित होनेके पूर्व राज-स्थानमे कई शक्तिशाली राजपूत जातियोके वश शासन कर रहे थे और उनमे सबसे प्राचीन चालुक्य और राष्ट्र-कूट थे। उपरान्त कन्नोजके राठौरो (राष्ट्रकूट), अजमेर-के चौहानो, अन्हिल वाडके सोलकियो, मेवाड़के गुहिलोतो या सिसोदियो और जयपुरके कछवाहोने इस प्रदेशके भिन्न-भिन्न भागोमे अपने राज्य स्थापित कर लिये। राजपूत जातियोमे फूट और परस्पर युद्धोके फलस्वरूप वे शक्तिहीन हो गये। यद्यपि इनमेसे अधिकाशने बारहवी शताब्दीके अतिम चरणमे मुसलमान आक्रमण-कारियोका वीरतापूर्वक सामना किया तथापि प्राय सम्पूर्ण राजपूतानेके राजवशोको दिल्ली सल्तनतकी सर्वोपरि सत्ता स्वीकार करनी पडी।

फिर भी मुसलमानोकी यह प्रभुसत्ता राजपूत शासकोको सदैव खटकती रही और जब कभी दिल्ली सल्तनतमे दुर्बलताके लक्षण अनुभूत होते, वे अधीनतासे मुक्त होनेको प्रयत्नशील हो उठते। १५२० ई० मे बाबर-के नेतृत्वमे मुगलोके आक्रमणके समय राजपूताना दिल्ली-के सुल्तानोके प्रभावसे मुक्त हो चला था और मेवाडके राणा सग्राम सिह (राणा साँगा) ने बाबरके दिल्लीपर अधिकारका विरोध किया। १५२६ ई० मे खानुआके युद्धमे राणाकी पराजय हुई और मुगलोने दिल्लीके सुल्तानोका राजपूतानेपर नाममात्रको बचा प्रभुत्व फिरसे स्थापित कर लिया। किन्तु राजपूतोका विरोध शान्त न हुआ। अकबरकी राजनीतिक सूझ-बूझ और दूरदर्शिता-का प्रभाव इनपर अवश्य पडा और मेवाडके अतिरिक्त अन्य सभी राजपूत शासक मुगलोके समर्थक और भक्त बन गये। अतमे जहाँगीरके शासनकालमे मेवाडने भी मुगलोकी अधीनता स्वीकार कर ली। औरगजेबके सिहासनारूढ होने तक राजपूतानेके शासक मुगलोके स्वामिभक्त बने रहे। परन्तु औरगजेबकी धार्मिक असहिष्णुताकी नीतिके कारण दोनो पक्षोमे युद्ध हुआ। बादमे एक समझौतेके फलस्वरूप राजपूतानेमे शान्ति स्थापित हुई।

प्रतापी मुगलोके पतनसे भी राजपूतानेके राजपूत शासकोका कोई लाभ न हुआ, क्योंकि १७५६ ई० के लगभग राजपूतानेमे मराठोका शक्ति-विस्तार आरभ हो गया। १८वी शताब्दीके अतिम दशकोमे भारतकी अव्यवस्थित राजनीतिक दशामे उलझने तथा मराठो एव पिण्डारियोकी लूटमारसे त्रस्त होनेके कारण राजपूतानेके शासकोका इतना मनोबल गिर गया कि उन्होने अपनी सुरक्षा हेतु अग्रेजोकी शरण ली। भारतीय गणतत्रकी स्थापनाके उपरान्त कुछ राजपूत रियासतें मार्च १९४८ ई० मे और कुछ एक वर्ष बाद भारतीय सघमे सम्मिलित हो गयी। इस प्रदेशका आधुनिक नाम राजस्थान और इसकी राजधानी जयपुर है। राजप्रमुख (अब राज्यपाल) का निवास तथा विधानसभाकी बैठके भी जयपुरमे ही होती है ('राजपूत' भी देखिये)।

राजराज प्रथम–चोल सम्राट् जिसने ९८५ से १०१८ ई० तक राज्य किया। इतिहासमे वह राजराज महान्‌के नामसे विख्यात है। सर्वप्रथम उसने चेर राज्य (केरल) पर अधिकार किया और उपरान्त कई युद्धोमे विजय प्राप्त करके दक्षिण भारतका सर्वशक्तिमान सम्राट् हो गया। उसके विशाल साम्राज्यमे केवल मद्रास (तमिल-नाड) और मैसूर ही नही सम्मिलित थे बरन उसने लम्बे सैनिक अभियानोके उपरान्त १००५ ई० मे श्रीलका-पर भी अधिकार कर लिया। उसके पास विशाल और सुव्यवस्थित नौ सेना भी थी जिसकी सहायतासे उसने कलिंग और पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्रोके अनेक द्वीप-समूहोपर भी अपने राज्यकालके २९ वे वर्षमे अधिकार कर लिया।

राजराज द्वितीय–उत्तरकालीन चोलवंशका शासक और कुलोत्तुंग चोल (दे०) द्वितीयका पुत्र तथा उत्तराधिकारी। उसने ११८६ ई० से ११९३ ई० तक राज्य किया। उसके शासनकालके पूर्व ही चोलोंका पतन आरंभ हो गया था और सीधी वंश-परंपरामें वह उस वंशका अंतिम सम्राट् था।

राजवल्लभ सेन (१६९८–१७६३)–पलासीके युद्धके समय यह बंगालके प्रभावशाली व्यक्तियोंमें गिना जाता था। जन्म बंगालके फरीदपुर जिलेके एक वैद्य परिवारमें। अपनी योग्यताके बलपर वह बंगालके नवाब सिराजुद्दौला (दे०) की चाची घसीटी बेगम (दे०) का दीवान हो गया। नवाब अलीवर्दी खाँने उसको राजाकी उपाधि दी, परन्तु इन उपकारोंको भुला करके वह अलीवर्दी खाँके पौत्र एवं उत्तराधिकारी सिराजुद्दौलाका विरोधी बन गया और मीरजाफर तथा कुछ असंतुष्ट पदाधिकारियों सहित नवाबके खिलाफ अंग्रेजोंके षड्यंत्रमें सम्मिलित हो गया। उसका पुत्र कृष्णदास बंगालके नवाबकी सेवामें नियुक्त था। उसने ढाकामें सरकारी धनकी लम्बी राशिका गबन किया और भागकर कलकत्तामें अंग्रेजोंकी शरण ली। सिराजुद्दौला द्वारा १७५६ ई०में कलकत्तापर आक्रमण और अधिकार कर लेनेका एक कारण नवाबके न्याय दंडसे भागे हुए कृष्णदासका अंग्रेजोंकी शरण लेना भी था।

इस प्रकार पिता और पुत्र दोनों ही नवाबके कोपभाजन बने परन्तु उनकी षड्यंत्रकारी योजना सफल रही। पलासीके युद्धमें सिराजुद्दौलाकी पराजय हुई और विजयी अंग्रेजोंने मीर जाफरको बंगालका नवाब बनाया। राजवल्लभकी नियुक्ति नवाब मीरजाफरके परामर्शदाताओंमें हुई। आगे चलकर उसे ढाकाका सूबेदार नियुक्त किया गया। किन्तु मीरजाफरका शीघ्र ही पतन हो गया और मीर कासिम (दे०) बंगालका नवाब हुआ। मीर कासिम भी सिराजुद्दौलाकी भाँति अंग्रेजोंके विरुद्ध था। उसे राजवल्लभके ऊपर अंग्रेजोंके पक्षपाती होनेका सन्देह हुआ। फलतः उसे गंगामें डुबा कर मरवा दिया गया।

राजशेखर–संस्कृत भाषाका प्रसिद्ध कवि और नाटककार। जन्म दक्षिण भारतमें। कन्नौजके गुर्जर प्रतिहार-शासकोंका राजाश्रय प्राप्त था। वह प्रतिहार शासक महेन्द्रपाल (लगभग ८९०-९१० ई०) का गुरु था। यद्यपि उसने कई ग्रंथोंकी रचना की, तथापि चार नाटक–बालरामायण, विद्धशाल भंजिका, बाल भारत (उपनाम प्रचण्ड पाण्डव) तथा कर्पूरमंजरी ही उपलब्ध हैं। 'कर्पूरमंजरी' प्राकृत भाषामें है। काव्य-शास्त्रीय प्रसिद्ध ग्रंथ 'काव्यमीमांसा' राजशेखरकी उत्तम कृति है। इसके अतिरिक्त 'भुवनकोष' की भी उसने रचना की, परन्तु यह ग्रंथ उपलब्ध नहीं। उसके 'हर-विलास' नामक एक अन्य ग्रंथका भी उल्लेख मिलता है, पर वह भी अप्राप्य है। उसका विवाह चाहमान वंशकी राजकुमारी अवन्ति सुन्दरीसे हुआ था, जो स्वयं विदुषी महिला थी।

राजसिंह–आठवीं शताब्दीमें प्रचलित पल्लववंशका शासक और महान वास्तु-निर्माता। उसने अपनी राजधानी काँची और महाबलिपुरम्‌में अनेक मंदिरों और रथोंका निर्माण कराया था।

राजसिंह–मेवाड़का एक राणा, जिसने मुगलोंकी सेवामें रत मारवाड़ नरेश जसवंत सिंहके अबोध पुत्र अजीतसिंह और उसकी विधवा पत्नीको शरण दी। इस कारण वह औरंगजेबका कोपभाजन बन गया। औरंगजेब द्वारा हिन्दुओंपर पुनः जजिया कर लगाये जानेका उसने विरोध किया और उससे युद्ध ठान लिया। यह युद्ध १६७९ से १६८१ ई० तक चला और राणाने इसका संचालन इतनी सफलतासे किया कि औरंगजेबको उससे संधि करनी पड़ी। संधिके अनुसार राणाके पुत्र और उत्तराधिकारी जयसिंहने अपने राज्यके कुछ भाग मुगलोंको दे दिये और औरंगजेबने उससे जजिया वसूल करनेका विचार त्याग दिया।

राजाधिराज, प्रथम–चोलवंशज प्रतापी सम्राट् राजेन्द्र प्रथम (दे०) का पुत्र और उत्तराधिकारी। १०१८ से १०४४ ई० तक वह युवराजके पदपर रहा और १०४४ से १०५४ ई० तक राज्य किया। अपने पिताकी भाँति वह भी सीमावर्ती राज्यों, विशेषतः कल्याणीके चालुक्योंसे संघर्ष करता रहा। कोप्पमके युद्ध (१०५४ ई०)में वह चालुक्य सम्राट् सोमेश्वर प्रथम आहवमल्लके हाथों मारा गया।

राजाधिराज द्वितीय–उत्तरकालीन चोलशासक, जिसने ११६३ ई० से ११७९ ई० तक राज्य किया।

राजाराम–छत्रपति शिवाजीका द्वितीय पुत्र। जब इसका बड़ाभाई शम्भुजी मुगलों द्वारा बन्दी बना कर मार डाला गया और उसका पुत्र शाहूजी भी १६८९ ई० में औरंगजेबका बंदी हो गया, तब राजाराम कर्नाटकमें जिंजी नामक किलेमें चला गया और वहींसे उसने औरंगजेबके विरुद्ध मराठोंके स्वातंत्र्य-युद्धका नेतृत्व किया। इस प्रकार १६८९ ई० में वह मराठोंका वास्तविक शासक

बनकर मुगलोका वीरतापूर्वक सामना करने लगा। उसने ८ वर्षो तक उनके आक्रमणोसे जिजीकी रक्षा की। तदुपरान्त जब १६९८ ई० मे मुगलोका उसपर अधिकार हो गया तब वह सतारा भाग आया और मृत्युपर्यन्त (१७००,ई० मे मृत्यु) मुगलोके विरुद्ध मराठोके स्वतन्त्रता-युद्धका नेतृत्व करते हुए, उनका शासक बना रहा।

राजाराम–जाटोका पराक्रमी नेता। १६८५ ई० मे उसने औरगजेबके विरुद्ध विद्रोह किया तथा १६८८ ई० मे सिकन्दरामे बादशाह अकबरके मकबरेको लूटा। किन्तु १६९२ ई० मे वह मुगलो द्वारा पराजित हुआ और मार डाला गया।

राजा विक्रम (विक्रमादित्य)–भारतीय जनश्रुतियो तथा दतकथाओमे राजाविक्रम (विक्रमादित्य) का मुख्य स्थान है। इसके सबधमे 'बैतालपचीसी' (सस्कृत-बेताल-पचविशतिका) मे अनक कहानियाँ है, किन्तु इसकी ऐतिहासिकता अभी निश्चित रूपसे स्थापित नही हो पायी है। विश्वास किया जाता है कि गुप्तवशके तृतीय सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्यकी उपलब्धियाँ ही इन दत कथाओमे अतिरजित होकर वर्णित है।

राजेन्द्र प्रथम–चोलसम्राट् राजराज महान्‌का पुत्र और उत्तराधिकारी। उसने १०१२ से १०४४ ई० तक राज्य किया। अपने पिताकी भाँति राजेन्द्र प्रथमने भी कई महत्त्वपूर्ण युद्धोमे विजय प्राप्त की। अपनी सबल एव व्यवस्थित नौसेनाके सहयोगसे उसने बर्माके निचले भू-भागो तथा अण्डमान और निकोबार द्वीप-समूहोपर १०२५-२७ ई० मे अधिकार कर लिया। १०२३ ई० मे उसने बगालपर आक्रमण कर वहाँके तत्कालीन शासक महीपालको पराजित किया और गगाके तटो तक अपनी विजयपताका फहरायी। किसी भी दक्षिण भारतीय राजाके लिए यह अभूतपूर्व विजय थी। इसके उपलक्ष्यमे उसने 'गगैकोण्ड'की उपाधि धारण की। साथ ही उसने नयी राजधानीका निर्माण भी कराया, जिसका नाम गगैकोण्डचोलपुरम् रखा गया। राजेन्द्रने वहाँ एक विशाल राजप्रासाद, सुन्दर मदिर तथा विस्तृत सरोवरका निर्माण कराया, जिसमे गगानदीसे पवित्र जल लाकर भरा गया था। राजेन्द्रका कल्याणीके चालुक्योमे सदैव सघर्ष चलता रहा और कई युद्धोमे उसने चालुक्य सम्राट् जयसिंहको परास्त किया।

राजेन्द्र द्वितीय–चोलसम्राट् राजेन्द्र प्रथमका द्वितीय पुत्र, जिसने १०५२ से १०६४ ई० तक राज्य किया। १०५४ ई०के कोप्पमके प्रसिद्ध युद्धमे जब उसका बडा भाई राजाधिराज (दे०) कल्याणीका शासक सोमेश्वर आहवमल्ल द्वारा मारा गया, तब वही, युद्धक्षेत्रमे ही राजेन्द्र द्वितीयने अपना 'वीराभिषेक' करके चोलोकी पराजयको विजयमे परिणत कर दिया। राजेन्द्रने चोलोकी सत्ता और उनके विस्तृत साम्राज्यको पूर्ववत् बनाये रखा।

राजेन्द्र तृतीय (कुलोत्तुग चोल प्रथम)–इसका वास्तविक नाम कुलोत्तुग था। उसकी माता चोलसम्राट् राजेन्द्र प्रथमकी पुत्री अम्मगा देवी थी, जिसका विवाह पूर्वी चालुक्य वशके राजकुमार राजराज प्रथमसे हुआ था। विजयालय वशके अन्तिम सम्राट् अधिराजेन्द्र (दे०) की १०७० ई० मे मृत्यु हो जानेपर कुलोत्तुग राजेन्द्र तृतीयके नामसे चोलसिंहासनपर बैठा और १०७० से ११२२ ई० तक शासक रहा। परवर्ती चोलचालुक्य शासकोमे उसका स्थान सर्वोपरि है। उसके वशजोने ११७३ ई० तक राज्य किया, तदुपरान्त चोलवशका पतन हो गया।

राजेन्द्र प्रसाद–भारतीय गणराज्यके प्रथम राष्ट्रपति। जन्म १८८४ ई०मे जीरादेई, जि० छपरा, बिहारमे हुआ, तथा कलकत्ता विश्वविद्यालयमे शिक्षा प्राप्त की। उन्होने अपना जीवन वकीलके रूपमे आरम्भ किया और शीघ्र ही पटना हाईकोर्टके बडे वकीलोमे उनकी गणना होने लगी। १९१७ ई०मे चम्पारन आन्दोलनकी जाँचके सिलसिलेमे गाधीजीसे उनकी प्रथम भेट हुई। अतमे उन्होने १९२० ई०मे अपनी चलती हुई वकालतपर लात मार दी और असहयोग आन्दोलनमे सम्मिलित हो गये। वे अनेक वर्षोतक बिहार कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष रहे। १९२२ ई०मे कांग्रेसके महामन्त्री नियुक्त हुए, तथा १९३४, १९३९ तथा १९४७ ई०मे कांग्रेस अध्यक्ष चुने गये। वे महात्मा गाधीके पक्के अनुयायी थे और अनेक वर्षोतक कांग्रेस वर्किंग कमेटीके सदस्य रहे। १९४७ ई० मे वे नेहरू मन्त्रिमण्डलमे सम्मिलित हुए, १९४६ मे १९४९ ई०तक भारतीय सविधान सभाके अध्यक्ष रहे और भारतका सविधान बनानेमे महत्त्वपूर्ण योगदान किया। अपनी सज्जनता, धैर्यशीलता, खरी ईमानदारीके कारण वे १९५० ई०मे भारतीय गणराज्यके प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। उन्हे १९५२ तथा तत्पश्चात् १९५७ ई०मे पुनः इस पदपर चुना गया। उन्होने १९६२ ई०मे अपने पदसे अवकाश ग्रहण किया और इसके शीघ्र बाद पटनामे उनकी मृत्यु हो गयी।

राज्यपाल–कन्नौजका उत्तरकालीन प्रतिहार शासक। मातृभूमिकी रक्षा हेतु उसने गजनीके शासक अमीर सुबुक्तगीनके आक्रमणके समय भटिण्डाके शाही शासक जयपाल

(दे०) का साथ दिया, परन्तु दोनोंकी सम्मिलित सेनाएं परास्त हुई। १०१९ ई०में सुल्तान महमूद गजनवीने उसके राज्यपर आक्रमण किया और राज्यपालने महमूदकी अधीनता स्वीकार कर ली। समीपवर्ती हिन्दू राजाओंको उसका यह आचरण कायरतापूर्ण लगा और शीघ्र ही उन्होंने चन्देल शासक विद्याधरके नेतृत्वमें उसके राज्यपर आक्रमण कर दिया। युद्धमें राज्यपाल मारा गया।

राज्यमती–शालस्तम वंशके शासक हर्षदेवकी पुत्री। हर्षदेव आठवीं शताब्दीमें कामरूपका शासक था। राज्यमतीका विवाह नेपालके महाराज जयदेवसे हुआ था।

राज्यश्री–थानेश्वरके शासक प्रभाकरवर्धन (दे०) की पुत्री और सम्राट् हर्षवर्धनकी भगिनी। उसका विवाह कन्नाजके मौखरि वंशज शासक ग्रहवर्मासे हुआ था। पिताकी मृत्युके उपरान्त ही मालवाके शासकने आक्रमण कर ग्रहवर्माको मार डाला और राज्यश्रीको बन्दी बना कर कन्नौजके कारागारमें डाल दिया। इसकी सूचना मिलते ही उसके ज्येष्ठ अग्रज राज्यवर्धनने उसे कारागारसे मुक्त करानेके लिए कन्नौजकी ओर प्रस्थान किया। यद्यपि उसने मालव शासक देवगुप्तको पराजित करके मार डाला पर वह स्वयं देवगुप्तके सहायक और बंगालके शासक शशांक (दे०) द्वारा मारा गया। इसी उथल-पुथलमें राज्यश्री कारागारसे निकल भागी और विंध्याचलके जंगलोंमें शरण ली। इस बीच उसका कनिष्ठ अग्रज हर्षवर्धन राज्यवर्धनका उत्तराधिकारी बन चुका था। उसने राज्यश्रीको विन्ध्यके जंगलोंसे उस समय ढूँढ निकाला, जब वह निराश होकर चितामें प्रवेश करने ही वाली थी। हर्ष उसे कन्नाज लौटा लाया और आजीवन उसको सम्मान दिया। उसने कन्नौजमें ही अपने विशाल साम्राज्यका शासन-कार्य किया, चीनी यात्री ह्वेनत्सांगके अनुसार वह प्रायः राज्यश्रीसे राज्यकार्यमें परामर्श लेता था।

राढीय ब्राह्मण–जनश्रुतियोंके अनुसार उन पाँच ब्राह्मणोंकी सन्तान हैं, जिन्हें राजा आदि शूर (दे०) ने कन्नौजसे ले जाकर राढ़ अर्थात् पश्चिम बंगालके उस भू-भागमें बसाया था, जो आजकल बर्दवान, हुगली और वीरभूम जिलोंके अन्तर्गत है।

राधाकृष्णन्, डा०, सर्वपल्ली–भारतके भूतपूर्व राष्ट्रपति। उनका जन्म दक्षिण भारतमें १८८८ ई०में हुआ और शिक्षक जीवन मद्रासके प्रेसीडेन्सी कालेजके दर्शन शास्त्रके आचार्यके रूपमें प्रारम्भ हुआ। शीघ्र ही उन्होंने पाश्चात्य विद्वानोंके सम्मुख हिन्दू जीवन-दर्शन प्रस्तुत करके अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर ली। १९२१ से १९३६ ई०तक कलकत्ता विश्वविद्यालयमें दर्शनशास्त्रके 'किंग जार्ज पंचम प्रोफेसर'के पदपर आसीन होकर भारतीय दर्शनशास्त्रियोंमें अग्रगण्य हुए और उपरान्त आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयमें पूर्वी देशोंके धर्म और दर्शनके 'स्पाल्डिंग प्रोफेसर'के गौरवपूर्ण पदपर उनकी नियुक्ति हुई। इस पदपर वे १९३६ से १९३९ ई०तक रहे। उपरान्त काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके उपकुलपति नियुक्त हुए और १९३९ से १९४८ ई० तक इस पदपर कार्य करते रहे। इस प्रकार राजनीति एवं सार्वजनिक कार्योंमें सक्रिय भाग लेनेके पूर्व उन्होंने शिक्षाजगत्‌के कई महत्त्वपूर्ण पदोंपर कार्य किया।

उन्हें १९४९ ई०में भारतीय राजदूत बनाकर सोवियत रूस भेजा गया, जहाँ १९५२ ई०तक कार्य करते रहे। रूस भेजे जानेवाले वे दूसरे राजदूत थे। परिचय पत्र देनेपर मास्कोमें मार्शल स्तालिनने उनका विशेष आदर तथा सम्मान किया और इस प्रकार भारत तथा सोवियत रूसमें परस्पर मैत्रीपूर्ण सम्बन्धोंका सूत्रपात किया। रूससे लौटनेपर श्री राधाकृष्णन् भारतीय गणतन्त्रके उपराष्ट्रपति चुने गये और उक्त पदका कार्यभार उन्होंने इतनी कार्यपटुता एवं योग्यतासे संभाला कि १९६२ ई० में वही भारतके राष्ट्रपति चुने गये। उन्होंने चीन और अमेरिका सहित विश्वके अनेक देशोंका भ्रमण किया और अपनी प्रकाण्ड विद्वत्ता, सरल स्वभाव तथा प्रभावशाली वक्तृत्वकलासे समस्त देशोंमें भारतको गौरवान्वित किया। उनकी अन्तिम रूस यात्राके फलस्वरूप सोवियत रूसने भारतको और भी अधिक सामरिक सहायता देनेकी घोषणा की। उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं, जिनमें 'भारतीय दर्शनशास्त्रका इतिहास' सबसे प्रसिद्ध है। (१६, अप्रैल १९७५ को इनका देहान्त हुआ)।

राधाकान्त देव, राजा, सर (१७९४–१८६७ ई०)–उन्नीसवीं शताब्दीमें बंगालके सनातनी हिन्दुओंके ख्यातिलब्ध नेता। वे पूर्वी और पाश्चात्य विद्याओंके उदारचेता पोषक थे। उन्होंने यथेष्ट धन व्यय करके 'शब्द कल्पद्रुम' नामक संस्कृतका प्रसिद्ध कोश संकलित किया, जिसमें उनकी व्यक्तिगत प्रतिभा एवं विद्वत्ताका परिचय मिलता है। साथ ही उन्होंने डेविड हेयर साहबको कलकत्तेमें हिन्दू स्कूलकी स्थापनामें पूर्ण सहयोग प्रदान किया, जिसमें भारतीय विद्यार्थियोंको पाश्चात्य विद्याओं, विशेषतः अंग्रेजीकी शिक्षा दी जाती थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने स्कूल बुक सोसायटीकी स्थापनामें भी प्रमुख भाग लिया,

जिससे विद्यार्थियोको ऐसी सस्ती पाठ्य पुस्तके उपलब्ध हो सके, जो जनसाधारणमे शिक्षाके प्रसार हेतु उपयोगी सिद्ध हो। वे सामाजिक सुधार, ब्राह्म-समाज और सती प्रथापर प्रतिबन्ध लगानेके विरोधी थे और इस हेतु उन्होने इग्लैण्डकी पार्लियामेन्टको जनताके हस्ताक्षरोसे युक्त एक याचिका भेजनेकी भी व्यवस्था की थी। वे उन कट्टर हिन्दुओके प्रतीक थे, जिन्हे पाश्चात्य सभ्यताके उपयोगी तत्त्व स्वीकार होते हुए भी अपनी प्राचीन सामाजिक रीतियोमे घोर आस्था थी।

रानाडे, महादेव गोविन्द (१८४२–१९०४)—विख्यात जनसेवी, समाज-सुधारक एव विद्वान्। जन्म महाराष्ट्रके ब्राह्मण परिवारमे। उन्होने अपने विद्यार्थी जीवनसे ही अपनी मेधाका परिचय देना आरम्भ कर दिया। शिक्षा समाप्तिके उपरान्त उन्होने वकालत प्रारम्भ की। शीघ्र ही बम्बई हाईकोर्टके जज हो गये। तत्कालीन बम्बई प्रेसीडेन्सीके अधिकाश समाज सुधारक आन्दोलनोमे उन्होने प्रमुख भाग लिया। उनकी गणना पाश्चात्य सभ्यता तथा सस्कृतिके सम्पर्कमे आये हुए नयी पीढीके भारतीयोमे की जाती है। वे बम्बईके प्रार्थना-समाजके सक्रिय एव निष्ठावान् सदस्य थे और उसके लक्ष्यो एव उद्देश्योकी पूर्तिमे सतत प्रयत्नशील रहे। विधवा पुनर्विवाह समिति एव डेक्कन एजूकेशन सोसाइटीके सस्थापकोमे प्रमुख थे।

रानाडेने भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस (दे०) की स्थापनाका भी समर्थन किया तथा १८८५ ई०के बम्बईमे आयोजित उसके प्रथम अधिवेशनमे भाग लिया। उन्होने काग्रेसके वार्षिक अधिवेशनोके साथ ही सामाजिक सम्मेलनके आयोजनकी प्रथा चलायी। उनके विचारसे मानव जातिकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एव धार्मिक प्रगति परस्पर एक दूसरेपर आधारित है, इसीलिए उन्होने एक ऐसे व्यापक सुधार आन्दोलनपर बल दिया, जो मनुष्यकी सर्वांगीण उन्नतिमे सहायक हो सके। उनका विचार था कि सामाजिक सुधारोकी सफलता केवल पुरानी रूढ़ियोके विनाशसे नही बल्कि रचनात्मक कार्यसे ही सभव है। उन्होने भारतमे समाज सुधार आन्दोलनको नयी दिशा दी। रानाडे प्रकाण्ड विद्वान् थे। उनकी रचनाओमे विधवा पुनर्विवाह, मालगुजारी कानून, राजा राम मोहनरायकी जीवनी, मराठोंका उत्कर्ष, धार्मिक एव सामाजिक सुधार मुख्य हैं।

राबर्ट्स, लार्ड फेडरिक स्ले (१८३२–१९१४)—१८५२ ई० मे बगालके रिसालेमे नियुक्त। १८५७ ई०के सिपाही-विद्रोह (दे०)मे असाधारण वीरता दिखानेपर उसको 'विक्टोरिया क्रास' नामक सर्वोच्च सैनिक पदक प्रदान किया गया। १८१८ ई०के द्वितीय अफगान-युद्ध (दे०) कालमे वह कुर्रम क्षेत्रमे नियुक्त था और १८७९ ई०मे सेनाका नेतृत्व करते हुए काबुल तक पहुँच गया। वहाँ उसने याकूब खाँ (दे०) को आत्मसमर्पण करनेपर विवश कर भारत भेज दिया। किन्तु १८८० ई०के जुलाई मासमे मैवन्दके प्रसिद्ध युद्धमे अग्रेजोकी पराजयके उपरान्त वह अपनी सेनाओ सहित काबुलसे कन्दहार तकका ३१३ मीलका कठिन मार्ग केवल बाईस दिनोमे तय कर कन्दहार पहुँचा और अयूब खाँको सितम्बर १८८० ई०मे पराजित कर अग्रेजोकी सामरिक प्रतिष्ठा पुनः स्थापित की। १८८१ ई०मे उसने दक्षिण अफ्रीकाके युद्धोमे भाग लिया और वहाँसे लौटकर मद्रासका और बादमे भारतका सेनाध्यक्ष नियुक्त हुआ। इस पदपर उसने १८८५ से १८९३ ई० तक कार्य किया और इग्लैडकी सरकारने उसे लार्डकी उपाधिसे विभूषित किया। लार्ड राबर्ट्स बोअर युद्धमे भी सेनाध्यक्ष रहा और १९०० ई०मे उसमे विजय प्राप्त की। प्रथम महायुद्धमे जब भारतीय सैनिक फ्रासमे लडनेके लिए भेजे गये थे, तब उनके निरीक्षणार्थ वह फ्रास गया और वही न्यूमोनियाके प्रकोपसे उसकी मृत्यु हो गयी।

राम—रामायण महाकाव्यके मुख्य नायक और कोशलके महाराज दशरथ और रानी कौशल्याके पुत्र। रामका आदर्श जीवनचरित हिन्दू धर्म और सस्कृतिका प्राण है। समस्त हिन्दू समाज उन्हे भगवान् (विष्णु)का अवतार मानता और उनकी पूजा करता है।

रामका पुल—अग्रेजोके शासन कालमे 'सेतुबध रामेश्वर' शब्दका अग्रेजी रूपान्तर 'रामका पुल' हो गया था। भारतके अन्तिम छोरपर स्थित रामेश्वरम्से लका तकके समुद्रमे जो पत्थरोके बडे-बडे खण्ड डूबे पडे है, उन्हे ही सेतुबध कहा जाता है। परपरागत कथाओ और रामायणके अनुसार इस पत्थरके पुलका निर्माण रामकी वानर सेनाने किया था। इसी पुलके द्वारा रामने अपनी वानर सेना सहित लंकामे प्रवेश कर राक्षसराज रावणका वध तथा सीताका उद्धार किया था।

रामकृष्ण परमहस (१८३४–८६)—उच्च श्रेणीके सन्त एव आधुनिक युगमे हिन्दुओके महान् अध्यात्मवादी पथप्रदर्शक। इसीलिए अनेक व्यक्ति उन्हे ईश्वरका अवतार मानते है। उनका जन्म पश्चिमी बगालके हुगली जिलेके एक दूरस्थ ग्राममे एक निर्धन पुरोहित परिवारमे हुआ।

उन्हें किसी प्रकारकी भी विधिवत् शिक्षा न मिली और अल्पायुमें वे कलकत्ताके निकट दक्षिणेश्वर स्थित काली माताके मन्दिरमें पुजारीके रूपमें रहने लगे। वर्षोंकी लम्बी साधनाके फलस्वरूप उनमें दैवी गुणोंका समावेश हो गया। बुद्धि अलौकिक हो गयी और गहन दार्शनिक सिद्धान्तोंको सरल भाषामें व्यक्त करनेकी क्षमता उत्पन्न हुई। सभी धर्मोंके मूलभूत तत्त्वोंमें उनकी गहरी निष्ठा थी और उनकी धार्मिक सहिष्णुता तथा आध्यात्मिकतासे प्रभावित होकर ब्राह्म-समाजके गण्यमान नेता केशव चन्द्र सेन तथा अनेक जिज्ञासु नवयुवक उनके प्रति आकर्षित हुए। इन नवयुवकोंमें नरेन्द्रनाथ दत्त प्रमुख थे, जो आगे चलकर स्वामी विवेकानन्दके नामसे विख्यात हुए।

स्वामी रामकृष्णका कथन था कि जिस प्रकार एक ही तत्त्व जैसे जल, विभिन्न भाषाओंमें आप, आब, ऐय आदि भिन्न-भिन्न शब्दोंमें व्यक्त होता है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न लोग उसी सर्वशक्तिमान् ईश्वरकी अल्ला, हरि, यीशु, कृष्ण आदि भिन्न-भिन्न नामोंसे आराधना करते हैं। वह एकमें अनेक है, जो सगुण भी है और जिसकी कल्पना हम चाहे विराट् विश्वदेवके रूपमें करें अथवा विभिन्न प्रतीकों द्वारा। इसके अतिरिक्त उनका विचार था कि मनुष्य चाहे कितनी भी उच्च श्रेणीका अथवा श्री-सम्पन्न हो, यदि दया करनेके विचारसे किसी दूसरे व्यक्तिकी सहायता करता है तो वह तुच्छ है। उनके विचारसे करुणा और दया तो मनुष्य मात्रमें दैवी देन है। उसके बीच उपकारकी भावना लाना हीनता है। अतएव व्यक्तिको सविनय मनुष्यमात्रकी सेवा करना अपना धर्म मानना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक मनुष्यमें परमात्माका अंश विद्यमान है और इस विचारधारामें मनुष्यकी सेवा ही परमात्माकी सेवा है। उनके विचारसे ब्रह्मज्ञान मनुष्य मात्रकी निःस्वार्थ सेवासे ही सम्भव है और यही हिन्दू धर्मका सार है। उनकी मृत्युके उपरान्त उनके प्रिय शिष्य स्वामी विवेकानन्दने उनकी शिक्षाओं और उपदेशोंको सम्पूर्ण भारत वर्ष, अमेरिका और इंग्लैंड आदि देशों तक पहुँचाया। उपर्युक्त विचार ही रामकृष्ण मिशन (दे०)के आधारभूत सिद्धान्त हैं और अब यह एक अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संगठित संस्था बन गयी है।

रामकृष्ण मिशन—की स्थापना स्वामी विवेकानन्दने १ मई १८९७ ई०में की। उनका उद्देश्य ऐसे साधुओं और सन्यासियोंको संगठित करनेका था, जो रामकृष्ण परमहंसकी शिक्षाओंमें गहरी आस्था रखें, उनके उपदेशोंको जनसाधारण तक पहुँचा सकें और संतप्त, दुःखी एवं पीड़ित मानव जातिकी निःस्वार्थ सेवा कर सकें। इस प्रकारके संगठन द्वारा वे वेदान्त दर्शन (दे०)के 'तत् त्वमसि' सिद्धान्तको व्यावहारिक रूप देना चाहते थे। रामकृष्ण मिशन विकासोन्मुख संस्था है और इसके सिद्धान्तोंमें वैज्ञानिक प्रगति तथा चिन्तनके साथ प्राचीन भारतीय अध्यात्मवादका समन्वय इस दृष्टिसे किया गया है कि यह संस्था भी पाश्चात्य देशोंकी भाँति जनकल्याण करनेमें समर्थ हो। इसके द्वारा स्कूल, कालेज और अस्पताल चलाये जाते हैं और कृषि, कला एवं शिल्पके प्रशिक्षणके साथ-साथ पुस्तकें एवं पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती हैं। इसकी शाखाएँ समस्त भारत तथा विदेशोंमें हैं। इस संस्थाने भारतके वेदान्तदर्शनका सन्देश पाश्चात्य देशों तक प्रसारित करनेके साथ ही भारतीयोंकी दशा सुधारनेकी दिशामें भी प्रशंसनीय कार्य किया है।

रामगुप्त—गुप्तवंशके प्रतापी सम्राट् समुद्र गुप्तका पुत्र और उत्तराधिकारी। प्रारम्भमें इसकी ऐतिहासिकतापर विद्वानोंमें मतभेद था, किन्तु आभिलेखिक प्रमाणोंकी प्राप्तिसे उसका समुद्रगुप्तका उत्तराधिकारी होना सिद्ध हो गया है। विशाखदत्त कृत 'देवीचन्द्रगुप्तम्' नामक नाटकके अनुसार रामगुप्त दुर्बल शासक था और प्राण-रक्षा हेतु उसने अपनी पत्नी ध्रुवदेवीको एक शकजातीय आक्रमणकारीको सौंप देना स्वीकार कर लिया था, किन्तु उसके छोटे भाई चन्द्रगुप्त (उपरान्त चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य)ने स्त्रीवेशमें जाकर शकराजको मार डाला और रानीकी रक्षा कर ली। तत्पश्चात् चन्द्रगुप्तने अपने बड़े भाई (रामगुप्त)को मार कर ध्रुवदेवीसे विवाह कर लिया और स्वयं सिंहासनारूढ हो गया। रामगुप्तकी ऐतिहासिकता अब सभी विद्वानोंको मान्य है।

रामचन्द्र—विजयनगरके देवराय द्वितीय (दे०)का पुत्र और उत्तराधिकारी। १४२२ ई०में उसने केवल कुछ ही महीनों तक राज्य किया।

रामचन्द्र देव—देवगिरिका यादव वंशीय शासक और कृष्णका पुत्र। पिता की मृत्युके समय वह अल्पायु था, अतएव उसका चाचा महादेव शासक बना। महादेवकी मृत्युके उपरान्त जब उसका पुत्र अम्यण सिंहासनासीन हुआ, तब रामचन्द्रने १२७१ ई०में उसका वध कर स्वयं पैतृक राज्य ग्रहण कर लिया। उसका राज्यकाल १२७१ से १३०९ ई०तक रहा। १२९२ ई०में, दिल्लीमें सिंहासनासीन होनेसे ४ वर्ष पूर्व अलाउद्दीन खिलजीने, रामचन्द्रके राज्यपर आक्रमण किया। इसमें रामचन्द्रकी पराजय

हुई और उसे अत्यधिक धनराशि देकर सन्धि करनी पडी। साथ ही उसे एलिचपुरकी वार्षिक आय भी कर रूपमे देनेको बाध्य होना पडा।

बादमे रामचन्द्रने उक्त वार्षिक धनराशि देना बद कर दिया, तब सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (१२९५-१३१६ ई०) ने १३०७ ई० मे अपने सेनानायक मालिक काफूरके नेतृत्वमे उसके राज्यपर आक्रमण हेतु विशाल मुस्लिम सेना भेजी। रामचन्द्र की पुन. पराजय हुई और उसने सन्धिकी प्रार्थना की। उसे दिल्ली ले जाया गया और वहाँ सुल्तान अलाउद्दीनने उसके साथ सहृदयतापूर्ण व्यवहार किया और उसका राज्य वापस लौटा दिया। अगले दो वर्षो तक रामचन्द्र देवने दिल्ली सल्तनतके अधीनस्थ शासकके रूपमे राज्य किया और नियमित रूपमे निश्चित वार्षिक कर दिल्ली भेजता रहा। १३०७ ई०मे सुल्तान द्वारा वारगल (दे०) पर किये गये आक्रमणमे रामचन्द्रने उसकी सहायता की थी।

रामचरित–सन्ध्याकर नन्दी द्वारा सस्कृत भाषामे रचित गीति काव्य। इसकी रचना उसने राजा मदनपाल (दे०) (११४०-५५ ई०)के राज्यकालमे की। मदनपालका पिता बगाल और विहारके पालवशीय शासक रामपालका महासन्धि विग्रहिक था, जिसने १०७७ से ११२० ई०-तक राज्य किया। रामचरित विलक्षण कृति है, यह द्वयर्थक रचना है। विलोम पाठ द्वारा गूढार्थ करनेपर प्रकट रूपमे इसमे रामायणकी कथा है, किन्तु इसमे पालशासक रामपाल देवके राज्यकालका इतिहास विदित होता है। इस विलक्षण ग्रथकी हस्तलिखित प्रति महामहोपाध्याय पण्डित हरप्रसाद शास्त्रीको नेपालमे १८९७ ई०मे प्राप्त हुई। (हरप्रसाद शास्त्री–मेमायर्स आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बगाल, जिल्द ३, सख्या १; रमेशचन्द्र मजूमदार बगालका इतिहास, अंगरेजी, जिल्द १)।

रामचरित मानस–महाकवि गोस्वामी तुलसीदास (१५३२-१६२३ ई०)का सबसे प्रसिद्ध ग्रथ। इस ग्रथमे रामचन्द्रजीके जीवनका, जनसुलभ हिन्दी भाषामे वर्णन किया गया है। 'रामचरित मानस' भारतमे हिन्दी भाषा-भाषियोका पूज्य धर्मग्रन्थ हो गया है और इसे वही स्थान प्राप्त है, जो ईसाई धर्ममे बाइबिल को।

रामदास, समर्थ गुरु–शिवाजी महाराज (१६२७-८० ई०)के गुरु। शिवाजीके चरित्र निर्माण और उनकी जीवनधारापर समर्थ गुरु रामदासका गभीर प्रभाव पडा। उन्होने अपने योग्य शिष्यके मस्तिष्कमे मराठो को एकताके सूत्रमे आबद्ध करनेका विचार भलीभाँति बैठा दिया, जिससे हिन्दुओपर मुसलमानो द्वारा किये जानेवाले अत्याचारो, गो-ब्राह्मण, देवी मूर्तियो और मदिरो का नष्ट होनेसे बचाया जा सके तथा हिन्दू धर्मकी रक्षा हो। समर्थ गुरुरामदासकी प्रेरणासे ही शिवाजीने अपने द्वारा सस्थापित मराठा राज्य को धार्मिक आधार दिया। इनकी उपदेश-वाणी 'दासबोध' नामसे प्रसिद्ध है।

रामनगरका युद्ध–द्वितीय सिख-युद्धके दौरान १८४८ ई०-मे अग्रेजो और सिखोके बीच हुआ। इसमे दोनो पक्षो की अत्यधिक हानि हुई और युद्ध अनिर्णीत रहा।

रामनारायण–अठारहवी शताब्दीके मध्यकालमे विद्यमान, बगालका प्रमुख व्यक्ति। प्लासी युद्धके उपरान्त रावर्ट्-क्लाइवकी दृष्टि उसपर पडी, और वह उसका कृपापात्र हो गया। मीर जाफर (दे०)के शासनकालमे उसे विहारका प्रबन्ध सौपा गया और उसका मुख्य कार्यालय पटना हुआ। पटनापर जब शाहजादा अली गाहर (उपरान्त शाह आलम द्वितीय) (दे०)ने आक्रमण किया, रामनारायणने नगरकी रक्षा करनेमे विशेष योग्यता दिखायी। किन्तु मीर जाफरके उपरान्त जब मीर कासिम नवाब हुआ, उसे रामनारायणकी स्वामि-भक्तिपर सदेह हो गया। मीर कासिमने उसे सेवामुक्त करके १७६३ ई०मे अंग्रेजोका पक्षपाती एवं देशद्रोही होनेके कारण मरवा दिया।

रामनारायण तर्करत्न (१८२२–८६)–आधुनिक बगला भाषाका प्रथम नाटककार। वह सस्कृतका भी अच्छा विद्वान् था और २७ वर्षो तक (१८५५–८२)कलकत्ताके सस्कृत कालेजमे प्राचार्य रहा। उसने बगला और सस्कृतमे कई नाटक लिखे। उसका १८५४ ई०मे प्रकाशित 'कुलीनकुल सर्वस्व' बँगला भाषाका सर्वप्रथम नाटक माना जाता है। वह समाज-सुधारक भी था। अन्य रचनाएँ वेणी संहार, रत्नावली, अभिज्ञान शाकुन्तल तथा नवनाटक बँगलामे और 'आर्यशतकम्' तथा 'दक्षयज्ञम्' सस्कृतमे है।

रामपाल–बगाल तथा विहारका १४वाँ पालवशीय शासक, जिसने लगभग ४२ वर्षो (१०७७–११२० ई०) तक राज्य किया। रामपालसे पूर्व उसका ज्येष्ठ भ्राता महीपाल द्वितीय शासक था, किन्तु कैवर्तोके मुखिया दिव्य (दे०)अथवा दिव्योकके नेतृत्वमे जनता द्वारा विद्रोह करनेपर उसे सिहासन और जीवनसे भी हाथ धोना पडा। कुछ समय उपरान्त दिव्यका उत्तराधिकारी भीम सिंहासनासीन हुआ, किन्तु रामपालने उसे अपदस्थ करके

परिवारके सभी सदस्यों सहित उसका वध करा डाला। तदुपरान्त रामपालने राज्यमे फैली अव्यवस्थाको दूर करके सर्वत्र शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित की। उसने आसाम और उडीसापर विजय प्राप्त की और कन्नौजके गडहवाल शासकको बिहारकी ओर साम्राज्य-विस्तार करनेसे सफलतापूर्वक रोका। सन्ध्याकर नन्दीने अपने विलक्षण काव्य-ग्रन्थ 'रामचरित' मे रामपालकी उपलब्धियोका वर्णन किया है।

राममोहन राय, राजा–देखिये राय, राजा राममोहन।

रामराजा–शिवाजी तृतीयका पुत्र और राजाराम (दे०) का पौत्र। राजाराम छत्रपति शिवाजी (प्रथम) का द्वितीय पुत्र था। रामराजाको शाहूजी (दे०) ने गोद ले लिया और उसकी मृत्युके उपरान्त रामराजा ही सताराका शासक हुआ। रामराजा दुर्बल शासक सिद्ध हुआ और मराठा राजनीतिमे उसका प्रभाव नगण्य-प्राय था।

राम राय (राम राजा)–विजयनगर राज्यके शासक सदाशिव राय (१५४२–६५ ई०) के शासनकालमे रामराय ही वास्तविक रूपमे राज्यका सारा कार्य करता था। वह कुशल एव योग्य राजनीतिज्ञ था। उसने विजयनगर साम्राज्यके खोये हुए गौरवको पुन स्थापित करनेका दृढ निश्चय किया। विजयनगरका प्रतिद्वन्द्वी बहमनी राज्य पाँच भागोमे बँट चुका था और रामरायने उन पाँचो सल्तनतोके आन्तरिक झगडोमे हस्तक्षेप करनेकी नीति अपनायी। १५५८ ई० मे उसने बीजापुर और गोलकुण्डाके सुलतानोकी सहायतासे अहमदनगरपर आक्रमण कर दिया और उसे ध्वस्त कर दिया। उसके दुर्व्यवहारसे क्रुद्ध होकर बरारके अतिरिक्त अन्य बहमनी सुल्तानोने विजयनगरके विरुद्ध एक सघकी स्थापना की और उसपर आक्रमण कर दिया। तालीकोटके प्रसिद्ध युद्धमे बहमनी सुल्तानोने रामरायको पराजित करके मार डाला और विजयनगरको ध्वस्त कर दिया।

रामसिंह–आमेरके राजा जयसिह (दे०)का पुत्र, जिसने शिवाजी प्रथमको बादशाह औरगजेबके कारागारसे निकल भागनेमे मदद दी। जयसिहसे व्यक्तिगत सुरक्षाका आश्वासन प्राप्त होनेपर ही शिवाजीने बादशाहके दरबारमे जाना स्वीकार किया था, परतु वहाँ पहुँचनेपर उन्हे छल-बलसे कारागारमे डाल दिया गया। तब रामसिंहने उन्हे कारागारसे निकल भागनेमे मदद दी।

रामसिंहने अपनी राजपूत सेना सहित दाराका पक्ष लेकर सामूगढ (दे०) के युद्धमे असाधारण वीरता दिखायी थी किंतु उसे पराजित होना पडा। १६८८ ई० मे उसने आसामके अहोम शासक गदाधर सिंह (दे०) के विरुद्ध मुगल सेनाका नेतृत्व किया, किंतु गोहाटीके निकट नौका-युद्धमे पराजित होकर वापस लौट आया।

रामानन्द–भक्तिमार्गके उत्तरकालीन प्रचारकोमे इनका स्थान महत्त्वपूर्ण है। वे चौदहवी शताब्दीमे हुए थे। उनका जन्म प्रयागमे हुआ और उन्होने उत्तरी भारतके समस्त तीर्थस्थलोकी यात्रा करके जीवनके अंतिम वर्ष दक्षिण भारतमे व्यतीत किये। वे श्रीरामके अनन्य भक्त थे और उन्होने वर्ण, जाति आदिके भेदभावसे दूर रहकर जन सामान्यकी बोलचालकी भाषा हिन्दीमे भक्तिमार्गका उपदेश दिया। उनके बारह प्रमुख शिष्योमे कबीरके अतिरिक्त पद्मावती नामक महिला भी थी।

रामानुजाचार्य–इनकी गणना प्रख्यात दार्शनिको और दक्षिण भारतीय वैष्णव सम्प्रदायके महान् आचार्योमे होती है। वे बारहवी शताब्दीमे हुए। उनकी शिक्षा-दीक्षा दक्षिणके प्रसिद्ध विद्या-केन्द्र काँचीमे हुई थी और तिरुचिरापल्ली (त्रिचनापल्ली) के निकट श्रीरगम् उनका निवास-स्थान था। तिरुचिरापल्ली उन दिनो चोल शासक अधिराजेन्द्र (दे०) के राज्यमे था, जो कट्टर शैव था। चोल सम्राट्के उत्पीडनके कारण रामानुज स्वामी होयसल वशके जैन धर्मावलम्बी शासक-बिट्टिगके राज्यमे मैसूर चले आये और वहाँ उन्होने बिट्टिगको वैष्णव धर्मावलम्बी बना लिया। बिट्टिगने अपना नाम परिवर्तित करके विष्णुवर्धन (दे०) रखा और अपने शासनकाल (१११९–११४१ ई०मे) बेल्लूर तथा हलेबिडके भव्य मन्दिरोका निर्माण कराकर उनमे विष्णुकी मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की। कुछ समयके उपरान्त रामानुज स्वामी पुन. श्रीरगम् वापस लौटे और वही उनका देहावसान हुआ। रामानुज शकराचार्यके अद्वैतवादके प्रमुख आलोचक थे और उनका मत विशिष्टाद्वैत मतके नामसे विख्यात है।

रामायण–सस्कृत साहित्यमे दो अतिप्रसिद्ध महाकाव्य है-रामायण और महाभारत। रामायणकी प्राचीनता निर्विवाद है। इसकी रचना वाल्मीकिने की थी। सस्कृत साहित्यमे इसे आदि-काव्य माना जाता है। कुछ विद्वानोका अनुमान है कि रामायणकी रचना मूल महाभारत (जय या भारत) के उपरान्त हुई और इसका रचनाकाल सभवत ईसवी सन्की प्रारम्भिक शताब्दी है। किन्तु जिस रूपमे महाभारत आज दिन उपलब्ध है उससे निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि रामायणकी

रचना उसके पूर्व ही हुई होगी । रामायणमे रामचन्द्रजी-की कथा है जो अयोध्याके राजा दशरथके ज्येष्ठ पुत्र थे । कैकेयीके प्रति प्रतिज्ञाबद्ध पिताके वचनोकी पूर्ति हेतु राम अपनी पत्नी सीता और भ्रातृभक्त लक्ष्मणके साथ अवधका राज्य तथा सिंहासनका अधिकार छोडकर १४ वर्षोके लिए वनको चले गये । सीताका रावण द्वारा हरण, हनुमानकी सहायतासे सीताकी खोज, रावणका वध और सीताकी अग्नि-परीक्षा आदिके अनेक प्रसग इस महाकाव्यमे वर्णित है । रामके अनुकरणीय चरित्र और हिन्दुओके मान्य आदर्शोका रामायणमे विशद् वर्णन है ।

रायगढ–महाराष्ट्रका प्रसिद्ध दुर्ग, जिसका निर्माण छत्रपति शिवाजीने कराया था । १६७४ ई०मे शिवाजीका स्वतत्र शासक (छत्रपति) के रूपमे इसी दुर्गमे विधिवत् राज्याभिषेक हुआ था । उपरान्त १६८६–९० ई०मे औरगजेबने इसपर अधिकार कर लिया ।

रायचूर–अति प्राचीन कालसे ही कृष्णा और तुगभद्रा नदियोके बीचका उपजाऊ भू-भाग रायचूर दोआबके नाम से प्रसिद्ध रहा है और रायचूरका नगर इन्ही दोनो नदियोके बीच एक दुर्ग द्वारा सुरक्षित है । सामरिक महत्ताके कारण यह नगर शताब्दियोतक बहमनी और विजयनगरके राज्योके बीच सघर्षका कारण रहा । अधिकाशतया इसपर बहमनी वशका ही अधिकार रहा, पर १५२० ई०मे विजयनगरके प्रसिद्ध शासक कृष्णदेव राय (दे०) ने बीजापुरके शासक इस्माइल आदिलशाहको परास्त करके रायचूरपर अधिकार कर लिया । तबसे लेकर १५६५ ई०मे विजयनगर राज्यके नष्ट होनेतक इसपर विजयनगरका अधिकार रहा ।

राय दुर्लभ (दुर्लभ राय)–बगालके नवाब सिराजुद्दौलाकी सेवामे निरत एक सेनानायक । मीरजाफर नामक एक दूसर सेनानायकसे मिलकर इसने नवाब सिराजुद्दौलाके विरुद्ध इस विचारसे एक षड्यत्र रचा कि अग्रेजोकी सहायतासे नवाबको पदच्युत करके मीर जाफरको बगालकी गद्दीपर बैठाया जाय । इसी षड्यत्रके फलस्वरूप पलासीका युद्ध (दे०) हुआ, जिसमे राय दुर्लभ और मीरजाफरने नवाबके साथ विश्वासघात किया और युद्धमे निश्चेष्ट रहे । फलत अग्रेजोको युद्धमे सफलता मिली और मीर जाफर बगालका नवाब तथा राय दुर्लभ उसका दीवान नियुक्त हुआ । किन्तु शीघ्र ही उससे मीर जाफर अप्रसन्न हो गया और राबर्ट क्लाइव (दे०) के हस्तक्षेपसे ही उसके प्राण बचे । राय दुर्लभकी जिस समय मृत्यु हुई, लोग उसको विस्मृत कर चुके थे ।

राय पिथौरा–देखिये 'पृथ्वीराज ।

राय, महाराज कृष्णचन्द्र (१७२८–८२)–जन्म बगालमे नदियाके एक सभ्रान्त जमीदार परिवारमे । वे हिन्दू धर्म और सस्कृत साहित्यके महान् पोषक थे । उन्होने अनेक पण्डितो, मन्दिरो तथा धर्मार्थ पुण्यशालाओको प्रभूत दान दिया । उन्होने नवाब सिराजुद्दौलाके विरुद्ध षड्यत्रकारियोको अग्रेजोसे सहायता लेनेका परामर्श दिया था, किन्तु पलासीके युद्धमे उन्होने स्वय कोई सक्रिय भाग नही लिया । उनके वशजोमे सातवी पीढीके महाराज क्षौणीशचन्द्र हुए जो बगालके गवर्नरकी कार्यकारिणी परिषद्के १९२४ से १९२८ ई०तक सदस्य थे ।

राय, राजा राममोहन (१७७२–१८३३)–भारतवर्षमे आधुनिक युगके जन्मदाता । जन्म पश्चिमी बंगालके हुगली जिलेके राधानगर स्थलपर ब्राह्मण परिवारमे । शिक्षा-दीक्षा घरपर ही हुई । सस्कृत, अरबी और फारसीका समुचित ज्ञान प्राप्त कर लेनेके उपरान्त २२ वर्षकी अवस्थामे उन्होने अग्रेजी पढना प्रारम्भ किया । वे कई भाषाओके ज्ञाता थे । हिन्दू, मुसलमान तथा ईसाई धर्मग्रथोके अध्ययनका उनके धार्मिक विचारोपर गम्भीर प्रभाव पडा । १८०४ ई०से १८१४ ई०तक ईस्ट इडिया कम्पनीकी सेवामे रहे और अन्तिम पाँच वर्षो (१८०९–१४) मे उन्होने रगपुर (अब बगला देशमे) मे तत्कालीन जिलाधीश डिग्बी महोदयके सरिश्तेदारके रूपमे कार्य किया । १८१४ ई०मे उन्होने कम्पनीकी सेवासे अवकाश ले लिया और १८१५ ई०मे कलकत्ता आकर वही स्थायी रूपसे रहने लगे ।

१८०३ ई०मे राम मोहनरायने फारसी भाषामे एक इश्तिहार प्रकाशित किया, जिसमे उन्होने सभी धर्मोमे प्रचलित अधविश्वासो और मूर्तिपूजा आदिका विरोध किया । रगपुरके प्रवासकालमे उनके धार्मिक विचार जनसाधारणके सम्मुख प्रकट होने लगे थे, किन्तु १८१५ ई०मे स्थायी रूपसे जब वे कलकत्तामे रहने लगे, तभीसे उन्होने अपने धार्मिक विचारोका नियमित रूपसे पूर्ण निष्ठापूर्वक प्रचार प्रारम्भ किया, जिन्होने १८२८ ई०मे ब्रह्मवादका रूप धारण किया । उन्होने एकेश्वरवादका प्रचार किया, हिन्दुओके बहुदेववादका, विविध कर्मकाडो तथा मूर्तिपूजाका खडन किया । उनके विचारानुसार उपनिषदो और वेदान्तशास्त्रोमे ही हिन्दू धर्मका सच्चा स्वरूप उपलब्ध है और केवल निर्गुण ब्रह्मकी उपासना ही अभीष्ट है । उनका यह सिद्धान्त हिन्दू धर्मशास्त्रोपर ही आधारित था, फिर भी स्वाभाविक था कि तत्कालीन

कट्टरपंथी हिन्दू समाज उनका घोर विरोध करता। फलत राममोहन रायको सामाजिक बहिष्कार तथा विभिन्न उत्पीडनोंको सहना पडा। उनका धर्म निर्गुण एकात्मवाद अर्थात् ब्रह्मवाद था। उसमे पैगम्बरों तथा मूर्तिपूजाका कोई स्थान न था। अतएव उन्हे केवल हिन्दुओका ही नही वरन् मुसलमानो और कट्टर ईसाइयोंके भी तीव्र विरोधका सामना करना पडा। उन्हे धमकियाँ और प्रलोभन दिये गये, किन्तु उन्होंने धीरता और साहससे काम लिया। वे अपने धार्मिक विश्वास तथा सिद्धान्तो पर अटल रहे। उन्होंने यह कभी अस्वीकार नही किया कि मैं हिन्दू हूँ। उनका ध्येय हिन्दू धर्मानुयायी रहकर ही उसमे सुधार करना था।

राजा राम मोहनराय मुख्यत चिन्तनशील व्यक्ति थे। उनका उद्देश्य समस्त सामाजिक कुरीतियोंको मिटाना था। इसी कारण उन्होंने जाति प्रथा, बहु विवाह, सतीप्रथा, स्त्रीसमाजमे अज्ञान और विधवाओंके पुनर्विवाहपर प्रतिबन्ध तथा सामान्य जनसमुदायके हेतु वैज्ञानिक शिक्षा-प्रणालीके अभाव आदिका घोर विरोध किया। वे इन समस्त बुराइयोंको हटानेके पक्षमे थे और उनको अपने प्रयासोंमे प्रायः सभी दिशाओ, विशेषत शिक्षाके क्षेत्रमे, यथेष्ट सफलता मिली। स्वय संस्कृतके विद्वान् होते हुए भी वे अपने समस्त समकालीन विद्वानोकी अपेक्षा पाश्चात्य भाषाओ, विज्ञान एव दर्शनके ज्ञानपर विशेष बल देते थे, जिससे पूर्व एव पश्चिमके समन्वित ज्ञानसे लाभ उठाकर भारतीयोंकी नयी पीढीका विकास हो सके।

राजनीतिके क्षेत्रमे भी समस्त भारतीयोंमे राममोहन राय अग्रणी थे। स्वाधीनताके प्रति अटूट प्रेम और देशवासियोंमे अपना शासन स्वय कर लेनेकी क्षमता लाना उनके राजनीतिक दृष्टिकोणके मुख्य सिद्धान्त थे। उन्होंने सवैधानिक रीतिसे राजनीतिक आन्दोलनोंको चलानेका मार्ग बताया और इस दृष्टिसे उन्हे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके बीज-वपनका श्रेय दिया जा सकता है। उन्होंने तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड हेस्टिंग्स द्वारा प्रचलित किये गये प्रेस सम्बन्धी निर्देशो और १८२७ ई०के जूरी ऐक्ट (अधिनियम) के विरुद्ध याचिकाएँ प्रस्तुत करके उनका विरोध किया। जूरी अधिनियमकी विडबना यह थी कि हिन्दुओ और मुसलमानोको केवल ईसाइया (चाहे वे भारतीय हो अथवा यूरोपीय) के ही नही बल्कि अपने धर्मानुयायियोंके मुकदमोमे भी जूरीके रूपमे अभियोगोंकी सुनवाई करनेका अधिकार न था और ईसाइयोको हिन्दुओ और मुसलमानोंके वादोंकी सुनवाईमे जूरी बननेका अधिकार था। उन्होंने कर-मुक्त जमीनोंपर कर लगानेके सरकारी प्रस्ताव, ईस्ट इण्डिया कम्पनीके एकाधिकार तथा विशेषाधिकारोंकी अवधि बढानेका भी विरोध किया। उनकी प्रबल इच्छा थी कि भूमिकर कम किया जाये, ताकि कृषकोंकी दशामे सुधार हो। वे चाहते थे कि देशका औद्योगिक विकास हो तथा अग्रेजोकी राजनीतिक प्रभुता और औद्योगिक उन्नतिके कारण भारतकी सम्पदाका प्रतिवर्ष इग्लैण्ड निर्गमन बन्द हो।

राममोहन राय मानव स्वतन्त्रताके प्रेमी थे और उसे जाति, धर्म अथवा क्षेत्रके आधारपर प्रतिबधित करनेके विरुद्ध थे। १८२१ ई०मे नेपुल्सकी क्रान्तिकी असफलता का उन्हे उतनी ही मात्रामे दुःख हुआ जितनी मात्रामे १८२३ ई०की स्पेनिश अमेरिकन राज्य क्रान्ति और १८३० ई०की फ्रासकी राज्य-क्रान्तिकी सफलतासे प्रसन्नता हुई। १८३० ई०से इग्लैण्डमे होनेवाले सुधार आन्दोलनकी प्रगतिमे वे विशेष रुचि लेते रहे और १८३२ ई०मे प्रथम सुधार अधिनियम पारित होनेपर उन्हे विशेष प्रसन्नता हुई। उस समय वे इंग्लैण्डमे ही थे। १८३० ई०मे वे तत्कालीन मुगल सम्राट् अकबर द्वितीय (१८०६–३७) (ई०) की याचिका इंग्लैण्डके शासक और वहाँकी ससद (पार्लियामेण्ट) के सम्मुख प्रस्तुत करने गये थे। मुगल सम्राट्ने उन्हे राजाकी उपाधि दी थी। इग्लैण्डमे अपने तीन वर्षोंके प्रवासकालमे (१८३०–३३ ई०) उन्होंने मुगल सम्राट्का ही प्रतिनिधित्व नही किया, वरन् पाश्चात्य जगतमे नवीन भारतका भी प्रतिनिधित्व किया। उन्होंने अपने लेखो और भाषणो द्वारा इग्लैण्डको भारतीय आत्माका परिचय दिया। उन्होंने इग्लैण्ड तथा फ्रासमे जहाँ वे १८३२ ई०मे गये थे, अनेक गण्यमान विद्वानोंके सम्मुख योग्यतापूर्वक भारतीय दृष्टिकोणको प्रस्तुत किया और उनके विचारोंका सभी लोगोने समुचित आदर भी किया। किन्तु इतना कठिन परिश्रम उनके स्वास्थ्यके हेतु अत्यन्त अहितकर सिद्ध हुआ और २७ सितम्बर १८३३ ई०को ब्रिस्टलमे उनकी मृत्यु हो गयी।

राममोहन राय कुशल लेखक भी थे। उन्होंने फारसी, अग्रेजी और बगलामे कई पुस्तकें लिखी। बंगला साहित्यमे तो उनकी सशक्त लेखनीका योगदान इतना महत्त्वपूर्ण है कि उन्हे आधुनिक बगला गद्य साहित्यका जन्मदाता कहा जाता है। उन्होंने फारसीमे 'तुहफातुल मुवाहिदीन' और 'मनाजरतुल आदियान' नामक दो

जो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके सूरत अधिवेशन (१९०७) के अध्यक्ष चुने गये थे। इस अधिवेशनमें नरमदल और गरमदल वालोंके बीच तीव्र संघर्ष हुआ और अधिवेशन भंग हो गया। इसके बाद कांग्रेसका अगला अधिवेशन मद्रासमें हुआ। उसकी अध्यक्षता भी रासबिहारी घोषने की। वे बहुत बड़े दानी भी थे। उन्हींके दानसे कलकत्ता विश्वविद्यालयमें स्नातकोत्तर शिक्षाकी व्यवस्था संभव हो सकी थी।

राहुल—गौतमबुद्धका पुत्र। बाल्यावस्थामें ही उसके पिता (गौतमबुद्ध) ने उसे प्रव्रज्या देकर बौद्ध भिक्षु बना लिया था।

रिपन, लार्ड जार्ज फ्रेडरिक सैमुअल राबिन्सन (१८२७–१९०९ ई०)—१८८० से १८८४ ई० तक भारतका गवर्नर-जनरल तथा वाइसराय। ग्लैडस्टोनकी भाँति रिपनका भी राजनीतिक दृष्टिकोण उदार था, जिसके कारण वह लोकप्रिय शासक सिद्ध हुआ। भारतमें आते ही सर्वप्रथम उसने द्वितीय अफगान-युद्ध (दे०) समाप्त करा दिया और अब्दुर्रहमानको अफगानिस्तानका अमीर मानकर वहाँसे समस्त ब्रिटिश सेनाएँ वापस बुला लीं। भारतके आन्तरिक शासनमें सुधार करनेके विचारसे उसने उदार दृष्टिकोण अपनाया। फलस्वरूप शराब, स्पिरिट, शस्त्र और गोलाबारूद सदृश कुछ थोड़ीसी वस्तुओंको छोड़कर उसने मुक्त व्यापार प्रणालीको प्रचलित किया तथा नमकपर लगे करमें भी कमी कर दी। उसने ब्रिटिश सरकारको इस बातपर राजी करनेका असफल प्रयास किया कि जिन जिलोंका सर्वेक्षण हो चुका हो वहाँ वस्तुओं की मूल्यवृद्धिको छोड़कर अन्य किसी दशामें करवृद्धि न की जाय।

उसने प्रत्येक तहसीलमें ऐसी स्थानीय परिषदोंका निर्माण कराया, जिनमें जनता द्वारा चुने प्रतिनिधि सरकारी अनुदानसे प्राप्त धनराशिको स्थानीय सड़कों आदि की मरम्मत, पहरेकी व्यवस्था तथा अन्य सार्वजनिक आवश्यकताओंकी पूर्तिमें लगा सकें। उसने जिलाबोर्डोंकी स्थापना करके उन्हें शिक्षा, सार्वजनिक निर्माण तथा अन्य सार्वजनिक कार्योंका प्रबन्ध-भार सौंप दिया। जिन नगरोंमें नगरपालिकाओंका गठन हो चुका था वहाँ उसने गैर-सरकारी अध्यक्ष चुने जानेकी प्रथा चलायी। लार्ड लिटन (दे०) द्वारा १८७८ ई० में पारित वर्नाक्यूलर प्रेस-ऐक्ट रद्द कर दिया, जिससे देशी भाषाओंमें प्रकाशित होनेवाले समाचार-पत्रोंको भी अंग्रेजी पत्रोंकी भाँति स्वतंत्रता प्राप्त हुई। उसने शिक्षाक्षेत्रमें हण्टर कमीशनके सुझावोंके आधारपर प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयोंमें सुधार सम्बन्धी नीतिको स्वीकृति दे दी। १८८१ ई०में रिपनने मैसूरके बँटवारेको मान्यता दी और राज्यका शासन वहाँके राजाको इस शर्तपर सौंप दिया कि शासन-कार्य सुचारु एवं उत्तम रीतिसे चलाया जाय।

१८८१ ई०में ही भारतीय कारखानोंके श्रमिकोंकी स्थिति सुधारनेके लिए एक कानून बना, जिसके द्वारा नाबालिग बालकों की सुरक्षा हेतु अनेक कार्यके घंटोंके निर्धारण एवं खतरनाक मशीनोंके चारोंओर बचाव हेतु समुचित रक्षा-व्यवस्था तथा निरीक्षकोंकी नियुक्तिका प्रावधान किया गया। किन्तु सुधारोंकी दृष्टिमें उसका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य १८८३ ई०का इल्बर्टबिल (दे०) था, जिसके द्वारा न्यायके क्षेत्रमें रंगभेदको दूर करनेका प्रयास किया गया था। इस बिलके द्वारा भारतीय न्यायाधीशोंको भी यूरोपीय न्यायाधीशोंकी भाँति यूरोपियनोंके फौजदारी वादोंकी सुनवाईका अधिकार दिये जानेका सुझाव था। किन्तु इस बिल (प्रस्ताव) का यूरोपियन तथा एंग्लोइंडियन समुदाय द्वारा इतना अधिक विरोध हुआ कि बिलकी धाराओंमें विशेष परिवर्तन करके ही उसे पारित किया गया और रंगभेद बना रहा। फिरभी ऐसा प्रस्ताव रखने मात्रसे भारतीय जनतामें लार्ड रिपन की लोकप्रियता काफी बढ़ गयी। १८८४ ई०में त्यागपत्र देकर प्रस्थान करते समय भारतीयोंने उसे सैकड़ों अभिनन्दन-पत्र देकर सम्मानित किया और शिमलासे बम्बई तककी यात्राके दौरान स्थान-स्थानपर उसे भावभीनी विदाई दी गयी।

रीडिंग, लार्ड रूफस डेनियल आइजक्स (१८६०–१९३५)—१९२१ से १९२५ ई०तक भारतका वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल। उसने तत्कालीन भारतीय राजनीतिक परिस्थितियोंसे हिन्दू-मुस्लिम मतभेदोंका यथेष्ट लाभ उठाया और महात्मा गांधीको कारागार भेजकर असहयोग आन्दोलनको दबानेमें सफलता प्राप्त की। भारतीय वैधानिक समस्याओंके समाधानमें उसका कोई ठोस योगदान नहीं था।

रीमाकोस या डायमेचस—एक यूनानी राजदूत, जिसे सीरियाके सम्राट्ने द्वितीय मौर्य सम्राट् बिन्दुसार (दे०) (३०० से २७३ ई०पू०) के दरबारमें भेजा था।

रुक्नुद्दीन—दिल्लीके सुलतान इल्तुतमिशका पुत्र। इल्तुतमिश द्वारा अपनी पुत्री रजियाको उत्तराधिकारी चुननेके बावजूद दरबारके अमीरोंने १५३६ ई०में रुक्नुद्दीनको ही शासक बनाया। किन्तु वह अयोग्य शासक निकला।

कुछ ही महीनोंके शासनके उपरान्त सिंहासनसे उतार कर उसका वध कर दिया गया ।

रुक्नुद्दीन इब्राहीम–दिल्लीके खिलजी वंशीय सुल्तान जलालुद्दीन खिलजीका उसकी बेगम मलकाजहाँसे उत्पन्न छोटा पुत्र । जलालुद्दीन खिलजीकी हत्या उसके भतीजे और दामाद अलाउद्दीन खिलजी द्वारा करा दिये जाने के उपरान्त मलकाजहाँके प्रभावमें रुक्नुद्दीन ही जुलाई १२९६ ई०में सुल्तान घोषित हुआ । तत्पश्चात् अलाउद्दीनने उसे सिंहासनसे च्युत कर बन्दी बना लिया और उसकी आँखें भी निकलवा लीं । इस तरह नवम्बर, १२९६ ई०में अलाउद्दीन खिलजी दिल्लीका सुल्तान बना ।

रुक्नुद्दीन बरबक–बंगालका शासक, जिसने १४६० से १४७४ ई०तक राज्य किया । उसने अपने यहाँ बहुत-से हब्शियों (अबीसीनियासे लाये गये गुलामों) को सेवा कार्यमें लगा रखा था । इनमेंसे कुछ गुलाम शासनके उच्चपदोंपर भी नियुक्त थे । उसकी गणना चतुर और न्यायप्रिय शासकोंमें होती है ।

रुद्रदामा प्रथम–सौराष्ट्रके शकक्षत्रप जयदामाका पुत्र और इस शाखाके प्रवर्तक चष्टनका पौत्र । उसकी राजधानी उज्जयिनी (उज्जैन) थी । रुद्रदामा प्रथमने प्रायः १२८ से १५० ई०तक राज्य किया । वह इस वंशका सबसे प्रतापी शासक था । उसने अपने सम्बन्धी वासिष्ठी पुत्र पुलुमावि द्वितीयको पराजित करके पूरे सौराष्ट्रके अतिरिक्त मालवा, कच्छ, सिन्ध, कोंकण तथा अन्य भू-भागोंपर भी अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया । १५० ई० के लगभग उसने गिरनारके निकट सुदर्शन झीलका जीर्णोद्धार कराया । प्रारम्भमें इस झीलका निर्माण सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्यने कराया था और उसके पौत्र अशोकने इसमेंसे कई नहरें निकलवायी थीं ।

रुद्रदामा द्वितीय–परवर्ती पश्चिमी क्षत्रपोंका एक शासक । मूल क्षत्रप शाखासे उसका सम्बन्ध स्थापित करना कठिन है । उसने सम्भवतः ३०१ से ३०५ ई०तक राज्य किया तो भी केवल नामके अतिरिक्त उसका कोई विशेष ऐतिहासिक विवरण उपलब्ध नहीं है ।

रुद्रदेव–उत्तरी भारतका एक शासक, जिसका उल्लेख प्रयोग स्तम्भ-लेखमें हुआ है । समुद्रगुप्त (दे०) ने अपने राज्यकालके प्रारम्भमें ही उसको पराजित करके उसका राज्य अपने साम्राज्यमें मिला लिया था । रुद्रदेव और उसकी राज्य सीमाओंका ठीक निर्धारण नहीं हो सका है ।

रुद्रम्मा देवी (रुद्रम्बा देवी अथवा रुद्रम् देवी)–वारंगलके काकतीय वंशज शासक गणपति (दे०) की पुत्री । उसने प्रायः १२५९ से १२९५ ई० तक राज्य किया । उसे कदाचित् अपने पिताके जीवनकालमें ही शासक नियुक्त कर दिया गया था । मार्कोपोलो (दे०) नामक प्रसिद्ध यात्रीने उसीके शासनकालके मध्य १३ वीं शताब्दीके अन्तिम दशकमें उसके राज्यमें भ्रमण किया तथा वह उसकी सुव्यवस्थित शासन-प्रणालीसे अत्यधिक प्रभावित हुआ था ।

रुद्रसिंह–चौथी शताब्दीमें पश्चिमी क्षत्रप वंशके रुद्रसिंह द्वितीय तथा रुद्रसिंह तृतीय, दो शासक हुए । रुद्रसिंह द्वितीयने प्रायः ३०४ ई०से राज्य किया था । उपरान्त इस क्षत्रप (शक) वंशका अन्तिम शासक रुद्रसिंह तृतीय हुआ, जिसे चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्यने पराजित कर शकोंका नाश कर दिया । सिक्कोंपर प्राप्त तिथिकी गणनाके अनुसार उसका ३८८ ई०तक राज्य करना सिद्ध होता है ।

रुद्रसेन प्रथम–वाकाटक वंशीय सम्राट् प्रवरसेनका पौत्र तथा उत्तराधिकारी । उसने प्रायः ३३५ से ३४० ई० तक राज्य किया ।

रुद्रसेन द्वितीय–वाकाटक शासक पृथ्वीषेण प्रथमका पुत्र और उत्तराधिकारी तथा रुद्रसेन प्रथमका पौत्र । इसके समय वाकाटकोंकी शक्ति बढ़ी हुई थी । अतएव गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीयने अपनी पुत्री प्रभावती गुप्ताका विवाह उसके साथ कर दिया, किन्तु दुर्भाग्यवश केवल ३८५ से ३९० ई० तक सफलतापूर्वक राज्य करनेके उपरान्त रुद्रसेनकी मृत्यु हो गयी ।

रुम्मिनदेई (लुम्बिनी)–नेपालकी तराईमें एक छोटा-सा गाँव । यह नेपालके बिथरी जिले और उत्तर प्रदेशके बस्ती जिलेकी सीमाके निकट है । अनुश्रुतियोंके अनुसार बुद्धका जन्म लुम्बिनी ग्राममें हुआ था । यहाँपर सम्राट् अशोकका एक स्तम्भ पाया गया है । स्तम्भ-लेखके अनुसार सम्राट् अशोकने अपने राज्याभिषेकके बीसवें वर्षमें लुम्बनी ग्रामकी यात्रा की और वहाँ भगवान् बुद्धके जन्म स्थानपर उक्त स्तम्भकी स्थापना करायी ।

रुहेलखण्ड–अवधके उत्तर पश्चिम, गंगानदीके उत्तर और कुमायूँकी पहाड़ियोंके दक्षिणमें स्थित भू-भाग । १७४० ई०में अफगानोंकी रोहिल्ला नामक जाति द्वारा अधिकार कर लेनेके कारण इसका नाम रुहेलखण्ड पड़ा । यद्यपि इस भू-भागमें हिन्दू बहुसंख्यक थे, तथापि शासन रुहेलोंका था । पानीपतके तृतीय युद्ध (दे०) (१७६१ ई०) में रुहेलोंने अहमदशाह अब्दालीका साथ दिया और १०

वर्षोंके बाद जब मराठोंका पुनरुत्कर्ष हुआ उन्हे, मराठोंसे भय होने लगा। इस कारण उन्होंने अवधके तत्कालीन नवाब शुजाउद्दौलासे १७७२ ई०मे सुरक्षात्मक सधि की जिसके अनुसार मराठोंके आक्रमणके समय नवाब द्वारा सैनिक सहायता किये जाने और बदलेमे रुहेलोकी ओरसे नवाबको ४० लाख रुपयोकी धनराशि देना स्वीकार किया गया।

१७७३ ई०मे मराठोंने रुहेलखण्डपर आक्रमण करना चाहा, पर रुहेलोंके सहायतार्थ अग्रेजोके एक सैनिक दस्ते सहित नवाबकी सेनाओंको आते देख वे पीछे हट गये। बादमे नवाबने १७७२ ई०की सधिके अनुसार रुहेलोंसे ४० लाख रुपयोकी धनराशि माँगी। किन्तु रुहेलोंने इस बहानेसे उक्त धनराशि देना अस्वीकार कर दिया कि मराठे स्वय लौट गये और नवाबकी सेनाको कोई युद्ध नही करना पडा। इसपर रुष्ट होकर नवाबने १७७३ ई०मे अग्रेजोसे एक सन्धि की जो बनारसकी सधिके नामसे विख्यात है। इसके अनुसार अग्रेजोने नवाबको एक सैनिक टुकडीकी सहायता देना स्वीकार किया, जिसके बलपर वह रुहेलोसे उक्त धनराशि प्राप्त करनेमे समर्थ हो। इस प्रकार अग्रेजी सेनाके बलपर नवाबने १७७४ ई०मे आक्रमण करके रुहेला शासक हाफिज रहमत खाँको मीरनपुर कटराके युद्धमे मार डाला और केवल रामपुरके छोटे भू भागको छोडकर समस्त रुहेलखडपर अधिकार कर लिया।

अवधके नवाब और रुहेलोंके युद्धमे अग्रेजी सेनाके इस प्रकारके अनुचित हस्तक्षेप की इग्लैंड (पार्लियामेन्ट)-मे तीव्र आलोचना हुई। तत्कालीन गवर्नर-जनरल वारेन-हेस्टिग्सके विरुद्ध लगाये गये आरोपोमे एक आरोप इस अनौचित्यका भी था। यद्यपि वारेन हेस्टिग्स इन आरोपोसे मुक्त कर दिया गया तथापि उसकी अत्यधिक भर्त्सना हुई। नवाब भी अधिक दिनो तक रुहेलखंडपर अपना अधिकार न रख सका और जब लार्ड वेलेजली गवर्नर-जनरल बनकर आया तब १८०१ ई०मे रुहेलखण्ड अग्रेजोको दे दिया गया।

रूप गोस्वामी–प्रारम्भमे बगालके शासक हुसैन शाह (दे०) (१४९३ से १५१८ ई०) का मन्त्री। रूप गोस्वामी अपनी सन्त प्रकृति और विद्वताके कारण अधिक विख्यात है। उन्होने ब्रजभूमिमे निवास करते हुए लगभग २५ ग्रन्थोकी रचना की, जिनमे 'विदग्धमाधव' तथा 'ललित-माधव' अत्यधिक प्रसिद्ध है। (यदुनाथ सरकार कृत हिस्ट्री आफ बगाल, द्वितीय भाग)।

रूपमती–मालवाके शासक बाजबहादुरकी विख्यात प्रेमिका। दोनोंकी प्रेम कथा हिन्दुओ और मुसलमानो की परपरागत गाथाओमे विशेषरूपसे वर्णित है। माडूमे स्थित दो सुन्दर इमारते रुपमती और बाजबहादुरके महलोंके नामसे विख्यात है।

रेग्यूलेटिंग ऐक्ट–१७७३ ई०मे इग्लैण्डकी पार्लियामेन्ट द्वारा पारित विधेयक। इसका मुख्य ध्येय उन भारतीय भू-भागोकी शासन-व्यवस्थामे सुधार करना था, जो ईस्ट इडिया कम्पनीके अधिकारमे आ चुके थे। ऐक्टके अनुसार कम्पनीका नया सविधान बनाया गया, जिसकी मुख्य धाराएँ थी कि कम्पनीके निर्देशक ४ वर्षोके लिए चुने जाँय, उनमेसे एक चौथाई प्रतिवर्ष अवकाश ले, तथा वे कमसे कम एक वर्ष निदेशकके पदसे पृथक् रहे। कम्पनीके निदेशक प्रतिवर्ष इग्लैण्डके सर्वोच्च राजकोषाधिकारी (चासलर आफ एक्सचेकर) के सम्मुख ऐसे समस्त पत्र व्यवहार प्रस्तुत करें, जो भारतमे होनेवाली आयसे सबधित हो। इसके साथही वे इग्लैण्डके एक मत्री को भारतकी सैनिक एव शासन-व्यवस्थाके विवरणमे अवगत करायें। इसके अन्तर्गत बगालमे गवर्नर-जनरलकी नियुक्ति की गयी, जिसकी सहायताके लिए चार सदस्योकी कौंसिलका गठन हुआ और उसके बहुमतको ही मान्यता देनेका प्रावधान रखा गया। समितिमे बहुमत न होनेपर गवर्नर-जनरल को निर्णायक मत देनेका अधिकार दिया गया। साथही यह अधिकार भी दिया गया कि वे बम्बई और मद्रास प्रेसीडेन्सीकी सरकारोकी गतिविधियो और देशी राज्योमे उनके सबधोपर नियत्रण रखे।

इसके अनुसार वारेन हेस्टिंग्स गवर्नर-जनरल तथा सर जॉन क्लैवरिंग, मानसन, फिलिप फासिस और रिचर्ड बारवेल कौंसिलके सदस्य बनाये गये। इनका कार्यकाल पाँच वर्षोका नियत किया गया और भविष्यमे इनकी नियुक्ति होना कम्पनी द्वारा निश्चित हुआ। गवर्नर-जनरलका २५,००० पौण्ड और परामर्शदात्री समितिके सदस्योका १०,००० पौण्ड वार्षिक वेतन भी स्वीकृत हुआ। कलकत्तामे एक सर्वोच्च न्यायालयका गठन किया गया, जिसमे एक मुख्य न्यायाधीश तथा तीन सहायक न्यायाधीश नियुक्त हुए। सर एलिजा इम्पी मुख्य न्यायाधीश बने और उन्हे ८,००० पाण्ड वार्षिक वेतन देना स्वीकृत हुआ। यद्यपि रेग्यूलेटिंग ऐक्टका मुख्य ध्येय शासनके समस्त कार्योमे एकही व्यक्तिके आधिपत्य एव नानाशाहीको रोकना था, तथापि इसमे कई दोष थे।

सर्व प्रथम दोष यह था कि कम्पनी द्वारा बंगालके वास्तविक शासनको अपने हाथोमे लेनेके पश्चात् भी बंगालके नवाबकी सत्ता बनी ही रही, जिससे विधि-विधान संबन्धी प्रभुता कम्पनीके हाथोमे न रहकर बंगालके नवाबके हाथोमे ही रही। ऐक्टका दूसरा दोष यह था कि कौसिलका बहुमत यदि गवर्नर जनरलके विरुद्ध रहा तो शासन-संचालनमे गतिरोध उत्पन्न हो सकता था। गवर्नर-जनरल और कौसिलका मद्रास और बम्बईकी प्रेसीडेन्सियोपर नियंत्रण भी सीमित था। फलत दोनोही प्रेसीडेन्सिया गवर्नर-जनरल तथा उसकी कौसिलकी पूर्व अनुमति लिये बिना ही, देशी राज्योसे युद्धमे फस गयी। सर्वोच्च न्यायालयकी अधिकार-सीमाकी भी कोई स्पष्ट व्याख्या ऐक्टमे न थी, जिसका परिणाम भविष्यमे अत्यधिक अहितकर सिद्ध हुआ।

रेमाँ–एक प्रसिद्ध फ्रासीसी सेनानायक। हैदराबादके निजामने १७९५ ई०मे अपनी सेनाका पुनर्गठन करनेके लिए उसकी नियुक्ति की। कुछ अन्य फ्रासीसी पदाधिकारियोकी सहायतासे उसने यह कार्य बडी कुशलतासे सम्पन्न किया, किन्तु १७९८ ई०मे निजामने गवर्नर-जनरल लार्ड वेलेजलीके दवाव डालनेपर उसे पद मुक्त कर दिया। निजाम शत्रुओंसे अपनी रक्षाके लिए अंग्रेजोसे सहायतासंधि करना चाहता था। लार्ड वेलेजलीने यह शर्त रखी कि निजाम पहले अपनी सेवामे नियुक्त सभी फ्रासीसियोको निकाल दे।

रेले, भारतमे–लार्ड हार्डिंज (१८४४–४८ ई०) के शासन-कालमे इसकी प्रारम्भिक योजना तैयार हुई, किन्तु रेल पटरी बिछानेका कार्य डलहौजी (१८४८–५६ ई०)के शासन-कालमे बडी कठिनतासे इंग्लैण्डकी सरकारकी अनुमति मिलनेपर १८५३ ई०मे प्रारभ हुआ। पहले इस कार्यकी प्रगति धीमी थी। तथाकथित सिपाही-विद्रोहके समय बंगालमे कलकत्तेसे रानीगंज तक और बम्बई प्रेसीडेन्सीमे बम्बईसे थाणा तक, कुल २०० मील ही रेल-लाइन बिछायी जा सकी। ये दोनो लाइने छोटी होते हुए भी इतनी उपयोगी सिद्ध हुई कि १८५९ ई०मे देशभरमे ५,००० मील लम्बी रेल लाइने बिछानेकी स्वीकृति दे दी गयी। प्राइवेट ब्रिटिश कम्पनियोने इस कार्यमे आवश्यक पूँजी लगाना स्वीकार किया। सरकारने उन्हे कमसे कम पाँच प्रतिशत वार्षिक लाभकी गारन्टी प्रदान की। इसके साथही इससे अधिक लाभको सरकार तथा कम्पनियोके बीच बाँट लेनेका निश्चय हुआ। सरकारकी ओरसे इस कार्यमे कम्पनियोकी हानिको पूरा करनेका वचन भी दिया गया। इसके बदलेमे भारत सरकारने इन कम्पनियोका नियंत्रण, कार्यविधि एव व्यय आदिकी जाँचका अधिकार अपने हाथोमे सुरक्षित रखा। साथही यह शर्त भी रखी गयी कि २५ वर्षोके उपरात सरकार चाहे तो उन कम्पनियोको खरीद सकती है।

सैनिकोको कम रेल भाडेकी सुविधा और डाककी निःशुल्क सेवा भी इसी अनुबन्धके अन्तर्गत थी। फिर भी इस व्यवस्थामे कई दोष थे, जिनके कारण ऐसी आर्थिक हानियोका भार भी सरकारपर आ पडा, जिन्हे वह अनुबन्धकी शर्तोके अधीन रोकनेमे असमर्थ थी। इस व्यवस्थासे लाभ यह हुआ कि भारतवर्षमे यंत्रचालित यातायात व्यवस्थाका प्रारभ हुआ और इसीके द्वारा सम्पूर्ण देशमे सरकारी रेलोका जाल बिछा देनेका पथ प्रशस्त हुआ। डलहौजीने सम्पूर्ण भारतवर्षमे एकही प्रकारकी रेल लाइन बिछानेका विचार किया था परन्तु योजनाके कार्यान्वित होनेपर तीन प्रकारकी लाइने बिछी–बडी लाइन, छोटी लाइन और तीसरी सरकारी लाइन। १८७० ई०से प्रारभ होनेवाले दशकमे भारत सरकारने स्वय रेल बिछाने और चलानेका कार्य प्रारभ किया।

बीसवी शताब्दीके प्रारभतक भारतीय रेलोकी व्यवस्था तीन प्रकारकी थी। कुछ रेले कम्पनियोके व्यक्तिगत प्रबन्धमे चलती थी, कुछ सरकारी प्रबन्धमे तथा कुछ सरकारी रेले होनेपर भी उनका प्रबन्ध कम्पनियोके हाथमे था। इसके बाद नयी कम्पनियोको रेल लाइन बिछानेका कार्य देना प्राय. बन्द कर दिया गया और पुरानी कम्पनियोके पट्टे समाप्त होनेपर सरकार उन कम्पनियोकी रेले खरीदती गयी। सभी रेलोपर समान नियंत्रण-व्यवस्थाकी आवश्यकता दिन-प्रति दिन अनुभव की जाने लगी थी, अत १९०५ ई०मे रेलवे बोर्डकी स्थापना की गयी। प्रथम महायुद्धके उपरान्त रेलवे बोर्डका पुनर्गठन हुआ और रेलको राज्य-प्रबन्धमे लानेमे शीघ्रता की गयी। १९२५–२६ ई०से रेलवेका अलग बजट बनाया जाने लगा। समस्त रेलोको सरकारी स्वामित्व और प्रबन्ध-व्यवस्थामे लानेके कार्यकी गति क्रमिक रीतिसे तेज कर दी गयी तथा नयी रेलवे-लाइन बिछानेका कार्य भी तेजीसे आगे बढाया गया। फलतः स्वतन्त्रता-प्राप्तिके समय सम्पूर्ण देशमे ४३००० मील लम्बी रेलकी लाइने हो गयी, किन्तु विभाजनके बाद भारतीय गणतंत्रमे ३५३९५ मील लम्बी रेल लाइने बची है।

वर्तमान रेले प्राय: प्रतिदिन ४० लाख यात्री और ३ लाख ७० हजार टन माल देशभरमे ढोती है। इस

कार्यमें १२०० करोड रुपयोंकी पूँजी लगायी गयी है और ११ लाख व्यक्ति सेवारत हैं। भारतीय रेलोंसे सरकार-की साधारण आयमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही है। १९५५-५६ ई०में ३६ करोड, १९६०-६१ में ५६ करोड, १९६१-६२ में ८६ करोड, और १९६२-६३ में ८२ करोड रुपयोंका लाभ हुआ। रेलोंका भारतीय अर्थ-व्यवस्थापर भी विशेष प्रभाव पडा है। इनसे दुर्भिक्ष या अकालके समय स्थिति सँभालने और उद्योग केन्द्रोंतक कोयला पहुँचानेका कार्य सरल हो गया है। रेल व्यवस्थासे कपास, जूट और चीनी उद्योगोंको विशेष सहायता मिली है। देशके दूरस्थ भागोंमें कृषि-जन्य वस्तुओंको बाजारमें उचित मूल्यपर बेचना सुगम हो गया है। रेलोंके द्वारा भारतमें उद्योगीकरणकी प्रक्रिया द्रुतगतिसे आगे बढ रही है। रेलोंका राजनीतिक महत्त्व भी कम नहीं। इनके द्वारा लोग देशके एक भागसे दूसरे भागतक सरलता, कम खर्च तथा शीघ्रतासे आ-जा सकते हैं और उससे देशकी एकताकी चेतना बलवती होती है।

रेवेल, जेम्स—१७६४ ई०में नियुक्त बंगालका भू-सर्वेक्षण अधिकारी, जिसने १७७९ ई०में बंगालका मानचित्र प्रस्तुत किया। वह भारतीय भूगोल शास्त्रका जन्मदाता माना जाता है। उसने १७८३ ई०में अंग्रेजीमें संस्मरण तथा 'भारतका मानचित्र' और 'भारतीय उप महाद्वीपमें ब्रिटिश सेनाकी गतिविधियाँ' नामक पुस्तकें लिखीं।

रैफल्स, सर टामस स्टैम्फोर्ड (१७८१-१८२६)—प्रसिद्ध अंग्रेज प्रशासक, जिसने पूर्वी एशियामें यथेष्ट नाम कमाया। सिंगापुरकी नींव उसीने डाली थी। प्रारंभमें वह ईस्ट इण्डिया कम्पनीमें लिपिक मात्र था। १८०५ ई०में उसे सहायक सचिव नियुक्त करके पेनांग भेजा गया और वहीं-पर उसने १८०७ ई०में सचिव पद प्राप्त किया। १८०८ ई०में उसने मलक्काका महत्त्व बताते हुए वहाँपर कम्पनीका अधिकार बनाये रखनेका प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। पहले कम्पनीने उक्त स्थल छोड देनेका निश्चय कर लिया था। उसके प्रतिवेदनके आधारपर कम्पनीने अपना पहला आदेश वापस ले लिया। १८१० ई०में उसने भारतके तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड मिण्टो प्रथमको जावा द्वीपकी व्यापारिक महत्ता स्पष्ट करते हुए उसपर अधिकार कर लेनेकी सलाह दी।

जावा उन दिनों फ्रांसीसियोंके अधिकारमें था। अत वहाँपर अधिकार स्थापित कर लेनेकी योजना बनानेके लिए उसे मलक्का भेजा गया। उसने यह कार्य योग्यता-पूर्वक सम्पन्न किया और १८११ ई०में जावाको जीतनेके उपरान्त उसे ही वहाँका लेफ्टिनेण्ट-गवर्नर नियुक्त किया गया। रैफल्सने १८११ ई०से १८१६ ई० तक सुचारु रूपसे उसका शासन किया और स्थानीय करोंमें कमी करनेके पश्चात् भी वहाँसे कम्पनीको होनेवाली आयमें आठ गुना वृद्धि कर दी। १८१८ ई०से १८२३ ई० तक वह सुमात्राका शासक रहा और वहाँ भी उसे पूर्ववत् सफलता मिली।

इसी बीच २९ जनवरी १८१९ ई०को उसने आधुनिक सिंगापुर तथा आसपासके भू-भागोंपर भारतीय अंग्रेजी सरकारकी अनुमतिसे अधिकार करके उक्त नगर-की नींव डाली और वहाँके बन्दरगाहकी सुरक्षाका समुचित प्रबंध किया। सामरिक एवं व्यापारिक दृष्टिसे अत्यंत महत्त्वपूर्ण इस नगरके विकासका श्रेय उसीको है, क्योंकि इसके द्वारा ही हिन्द महासागरसे प्रशान्त महा-सागर तकके जलमार्गपर अंग्रेजोंका नियंत्रण स्थापित हो सका। रैफल्स विद्वान् भी था और उसने १८१७ ई०में 'जावाका इतिहास' नामक पुस्तककी रचना की। उसे जीव-वैज्ञानिक अध्ययनमें भी विशेष रुचि थी। उसने १८२५-२६ ई०में लन्दन स्थित 'प्राणिविज्ञान समिति' (जुओलाजिकल सोसाइटी) की संस्थापनामें विशेष सहायता दी। उसे एफ० आर० एस० तथा एल० एल० डी० की उपाधियाँ भी प्रदान की गयी थीं।

रैयत—'रैयत' और 'रियाया' शब्दोंका प्रयोग ऐसे कृषकोंके लिए होता था, जो किसी जमींदारके असामी थे अथवा उसकी भूमिपर कृषि करके उसे निश्चित लगान देते थे।

रैयतवारी प्रथा—देखिये, 'भूमि व्यवस्था'।

रोज, सर ह्यू—प्रसिद्ध ब्रिटिश सेनानायक, जिसे तथाकथित सिपाही-विद्रोह (दे०)का दमन करनेके लिए भारत भेजा गया। १८५७ ई०के अन्तमें वह भारत आया और मऊ-की सैनिक छावनीको अपना मुख्य कार्यालय बना कर मध्य भारतमें सफल सैनिक अभियान चलाया। १८५८ ई०के प्रारंभमें उसने अलीगढपर अधिकार कर लिया, सागरको मुक्त किया तथा तात्या टोपे (दे०)को बेतवाके युद्धमें परास्त कर झाँसीके किलेपर भी अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् कोंचके युद्धमें विद्रोही सिपाहियोंके एक दलको परास्त किया। उसकी इन सफलताओंसे ऐसा जान पडा कि केवल छह महीनोंमें ही मध्य भारतमें विद्रोहको कुचल दिया जायगा, किन्तु इसी बीच झाँसीकी रानी (दे०)और तात्या टोपेने, जिनका पीछा अंग्रेजी सेना कर रही थी, ग्वालियरपर अधिकार कर लिया और वहाँकी तोपें हस्तगत करके नाना साहबको पेशवा

घोषित कर दिया। इससे विद्रोहियोमे नव-स्फूर्ति आ गयी और विद्रोहकी अग्नि दक्षिणकी ओर बढनेकी सम्भावना दिखने लगी। सर ह्यू रोजने अपने सैनिकोका मनोबल बढाते हुए ग्वालियरपर आक्रमण कर दिया और विद्रोहियोको लगातार दो युद्धोमे परास्त किया। इनमेसे एक युद्धमे झाँसीकी रानी पुरुष वेशमे युद्ध करती हुई वीर-गतिको प्राप्त हुई। जून १८५८ ई०मे रोजने ग्वालियरपर पुन अधिकार कर लिया और मध्य भारतके विद्रोहको शान्त करके अपनी सैन्य-सचालन-क्षमताका परिचय दिया।

रोनाल्डशे, अर्ल—(१९१७ ई०से १९२२ ई०)—तक बगालका गवर्नर। देखिये, **जेट लैण्ड, लार्ड**।

रोशन आरा, बेगम—शाहजहाँ बादशाह और मुमताज महलकी दूसरी पुत्री। उत्तराधिकारके युद्धमे उसने चारो भाइयोमेसे औरगजेबका पक्ष लिया और राजधानीमे होनेवाली समस्त गतिविधियोकी सूचना गुप्त रूपमे औरगजेबको भेजकर उसे सिहासन प्राप्त करनेमे सहायता दी। वह दाराकी कट्टर शत्रु थी और उसे काफिर करार करके उसका बध कर देनेके पक्षमे थी।

रो, सर टामस—इग्लैडके शासक जेम्स प्रथम द्वारा राजदूत नियुक्त होकर १६१५ ई०मे बादशाह जहाँगीरके दरबारमे भेजा गया। वह सूरतके बन्दरगाहपर उतरा और अजमेरमे जहाँगीरके दरबारमे उपस्थित हुआ। रो सुशिक्षित तथा दूतकार्यमे निपुण व्यक्ति था। भारतके सम्राट्की ओरसे अग्रेजोको व्यापारिक सुविधा एव सुरक्षा दिलानेके हेतु सधि करनेके लिए उसको यहाँ भेजा गया था। रो शीघ्र ही जहाँगीरका कृपापात्र बन गया। वह अजमेर, माडू तथा अहमदाबादके दरबारोमे ३० वर्षो तक रहा। यद्यपि पूर्वोक्त आशयकी सधि करानेमे उसे सफलता नही मिल सकी, तथापि उसके ही प्रयाससे ही अग्रेजी कम्पनीका मुगल साम्राज्यके कई नगरोमे व्यापारिक कोठियाँ स्थापित करनेकी अनुमति अवश्य मिल गयी। इसके साथ ही मुगल प्रशासकोकी दृष्टिमे अग्रेजोकी प्रतिष्ठा भी बढ गयी।

रो, हालैण्ट और पुर्तगाल निवासियोकी सैन्यबलपर आधारित व्यापार-नीतिके विरुद्ध था। फलत उसने इग्लैण्टकी कम्पनीको यही परामर्श दिया कि वह अपनी गतिविधियोको केवल वाणिज्य एव व्यवसाय तक ही सीमित रखे। उसने कम्पनीकी बडे मनोयोगसे सेवा की और १६१९ ई०मे भारतसे स्वदेश लौट गया।

रौलेट ऐक्ट—१९१९ ई०मे ब्रिटिश भारतकी केन्द्रीय विधान परिषद्के सभी गैर सरकारी भारतीय सदस्यो द्वारा विरोध करनेपर भी दो अधिनियम पारित किये गये, जो 'रौलट ऐक्ट' कहलाये। रौलट कमेटी द्वारा १९१७ ई०मे प्रस्तुत प्रतिवेदनमे दिये गये सुझावोको कार्यान्वित करनेके उद्देश्यसे ये दोनो अधिनियम पारित किये गये थे। कमेटीने कानूनोमे कठोरता लानेकी सस्तुति इस तर्कके साथ की थी कि उसे देशमे व्यापक रूपसे विध्वसक कार्यवाहियोके प्रमाण मिले है। दोनो अधिनियमोमेसे एकके द्वारा प्रेसपर व्यापक एव कठोर नियत्रण लगानेकी व्यवस्था थी और दूसरे अधिनियम द्वारा राजनीतिक बन्दियोके सम्बन्धमे बिना जूरीके केवल जज द्वारा ही निर्णयकी व्यवस्था थी। इसके साथ ही प्रान्तीय सरकारो द्वारा ऐसे व्यक्तियोको नजरबन्द रखना न्याय-सगत माना गया, जिनपर विध्वसक कार्योमे भाग लेनेका सदेह हो।

रौलेट ऐक्ट (अधिनियम) बननेसे समस्त देशमे तीव्र असतोष फैल गया और हडताले हुई। कुछ स्थलोपर दगे भी हुए। अन्तमे जालियावाला बाग (दे०) का पाशविक हत्याकाण्ड हुआ, जिसके फलस्वरूप १९२० ई०मे असहयोग आन्दोलन आरम्भ हुआ। ये समस्त उपद्रव अधिकारियोकी अदूरदर्शिताके प्रतिफल थे, क्योकि ऐसी कोई आशका न थी, जिसके लिए इतने कडे अधिनियमोको पारित करनेकी आवश्यकता होती, जैसा कि इस तथ्यसे सिद्ध है कि सरकारको दोनो अधिनियमो द्वारा जो व्यापक अधिकार प्राप्त हुए थे, उनको प्रयोगमे लानेकी कभी आवश्यकता नही पडी।

ल

लक्ष्मण—रामायणके नायक रामके छोटे भाई। चौदह वर्षके वनवास कालमे वे बडे भाईके साथ रहे और आजीवन अपने बडे भाईका अनुगमन किया। प्रतिहार (दे०) राजा अपनेको उन्हीका वशज कहते थे।

लक्ष्मण सेन—बगालके राजा बल्लालसेनका पुत्र तथा उत्तराधिकारी। वह या तो ११८४–८५ ई०मे या कुछ वर्ष पहले ११७८-७९ ई०मे गद्दीपर बैठा। उसने अपने राज्यकालके प्रारम्भिक वर्षोमे कामरूप (आसाम) को अपने अधीन किया और बनारसके गाहड्वाल राजाको हराया। वह विद्वानोका आश्रयदाता था। गीतगोविन्दके

रचयिता जयदेव तथा पवनदूतके रचयिता धोई उसके राजकवि थे। प्रसिद्ध हिन्दू धर्मशास्त्रकार हलायुधका भी वह आश्रयदाता था।

परन्तु बादके जीवनमे वह पुरुषार्थहीन हो गया था। अपनी राजधानी नदियामे वह जिस समय दोपहरको भोजन कर रहा था, मलिक इख्तियारुद्दीन मुहम्मद खिलजीने या तो ११९९ ई०मे या १२०२ ई०मे अचानक हमला कर दिया। मुसलमान इतिहासकारोंके अनुसार खिलजी सरदार अपने साथ केवल अठारह घुड़सवार ले गया था। उसने अचानक नदियापर हमला बोल दिया। लक्ष्मण सेन (जिसका नाम मुसलमान इतिहासकारोंने राय लखमनिया लिखा है) अपने महलके चोर दरवाजेसे भाग गया और पूर्वी बंगाल चला गया, जहाँ उसके वंशजोंने अगले पचास वर्षोंतक अपना स्वतंत्र राज्य कायम रखा।

लक्ष्मणावती—देखिये, 'गौड'।

लक्ष्मनिया राय—देखिये, 'लक्ष्मण सेन'।

लक्ष्मीकर्ण—चेदि (बुन्देलखंड) के कलचुरि राजा गांगेय देव (दे०) का पुत्र तथा उत्तराधिकारी, जिसने लगभग १०४०–१०७० ई०तक राज्य किया। लक्ष्मीकर्णने समूचे दक्षिणी दोआबको जीता, बंगालके पाल राजासे संधि कर कलिंगतक राज्यका विस्तार कर लिया। परन्तु गुजरात, मालवा तथा दक्षिणके राजाओंने मिलकर उसे युद्धमें परास्त कर दिया और मार डाला।

लक्ष्मीबाई—झाँसीकी रानी, (दे०) जो इस बातसे बहुत कुपित थी कि १८५३ ई०मे उसके पतिके मरनेपर लार्ड डलहौजीने जब्तीका सिद्धान्त लागू करके उसका राज्य हड़प लिया। अतएव सिपाही-विद्रोह शुरू होनेपर वह विद्रोहियोंमे मिल गयी और सर ह्यू रोजके नेतृत्वमें अंग्रेजी फौजका डटकर वीरतापूर्वक मुकाबिला किया। जब अंग्रेजी फौज किलेमे घुस गयी, लक्ष्मीबाई किला छोड़कर कालपी चली गयी और वहाँसे युद्ध जारी रखा। जब कालपी छिन गयी तो रानी लक्ष्मीबाईने तात्या टोपे (दे०) के सहयोगसे शिन्देकी राजधानी ग्वालियरपर हमला बोला, जो अपनी फौजके साथ कम्पनीका वफादार बना हुआ था। लक्ष्मीबाईके हमला करनेपर वह अपने प्राणोंकी रक्षाके लिए आगरा भागा और वहाँ अंग्रेजोंकी शरण ली। लक्ष्मीबाईकी वीरता देखकर शिन्देकी फौज विद्रोहियोंमे मिल गयी। रानी लक्ष्मीबाई तथा उसके सहयोगियोंने नाना साहब (दे०) को पेशवा घोषित किया और महाराष्ट्रकी ओर धावा मारनेका मनसूबा बाँधा, ताकि मराठोंमे भी विद्रोहाग्नि फैल जाय। इस संकटपूर्ण घड़ीमे सर ह्यू रोज तथा उसकी फौजने रानी लक्ष्मीबाईको और अधिक सफलताएँ प्राप्त करनेसे रोकनेके लिए जीतोड़ कोशिश की। उसने ग्वालियर फिरसे ले लिया और मुरार तथा कोटाकी दो लड़ाइयोंमे रानीकी सेनाको पराजित किया। १७ जून १८५८ ई० की लड़ाईमे रानी, जो एक घुड़सवारकी पोशाकमे थी, मारी गयी। विद्रोही सिपाहियोंके सैनिक नेताओंमे रानी सबसे श्रेष्ठ और बहादुर थी और उसकी मृत्युसे मध्य भारतमे विद्रोहकी रीढ़ टूट गयी।

लखनऊ—उत्तर प्रदेशमे गोमतीके तटपर स्थित एक प्रमुख नगर। यह अवधके नवाबोंकी राजधानी रहा है। उन्होंने यहाँ कई सुन्दर महल तथा मसजिदे बनवायी। गदर (दे०) के समय लखनऊने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। कुछ समयतक इसपर विप्लवियोंका अधिकार रहा। नवम्बर १८५७ ई०मे सर कालिन कैम्पबेलके नेतृत्वमे एक ब्रिटिश सेनाने इसपर फिर अधिकार कर लिया। यहाँ एक विश्वविद्यालय भी स्थित है और अब यह उत्तर प्रदेशकी राजधानी है।

लखनऊ समझौता—१९१६ ई०मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुसलिम लीगके बीच हुआ। इसके द्वारा मुसलिम लीगने पृथक् निर्वाचन क्षेत्र तथा दोनों सम्प्रदायोंके बीच सीटोंके न्यायोचित बँटवारेके आधारपर भारतको स्वराज्य दिलानेके लिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसको सहयोग देना स्वीकार कर लिया।

लखनौती—देखिये, 'गौड'।

लगमान (अथवा लमगान)—अफगानिस्तानमे जलालाबाद और काबुल नदीके उत्तरी तटपर स्थित स्थानीय नगर। उसके पास ही पुले दुरन्तामे आरामाई भाषामे अशोकका एक शिलालेख मिला है। इससे प्रमाणित होता है कि लगमान अशोकके साम्राज्यके अंतर्गत था। उसके लगभग एक हजार वर्ष बाद यह जयपाल (दे०) के राज्यमे सम्मिलित था। लगभग ९९० ई०मे अमीर सुबुक्तगीनने इसे जयपालसे छीन लिया। इसके बाद से यह अफगानिस्तानके राज्यका एक भाग है।

ललितादित्य—कश्मीरके कर्कोट वंश (दे०) का राजा। जिसने ७२४ से ७६० ई०तक राज्य किया। उसने अनेक युद्धोंमे विजय प्राप्त की, कन्नौजके यशोवर्मा (दे०) को पराजित किया और तिब्बतियों तथा सिन्धु नदीके तटपर तुर्कोंपर भी विजय प्राप्त की। उसने बंगालके एक राजाको भी हराया। उसने अनेक विहारों, मन्दिरों तथा

भवनोका निर्माण कराया, जिनमे मार्तण्ड-मदिर सबसे विख्यात है।

लवणसेन–बगालके राजा देवपाल (लगभग ८१०–८५० ई०) का सेनापति। कहा जाता है कि उसने आसाम और कलिंगको जीता।

लाखा–१३८२ से १४१८ ई०तक मेवाडका राणा।

ला, जीन–एक फ्रेंच सैनिक जो अठारहवी शताब्दीके मध्यमे भारत आया। उसका परिचय शाहजादासे हो गया जो बादमे बादशाह शाह आलम द्वितीय (१७५९–१८०६ ई०) हुआ। उसने ससमरणोमे शाहजादेके बारेमे अपने विचार व्यक्त किये है।

लाड मलिका–चुनारके हाकिम ताज खाँकी पत्नी। १५२८ ई०मे उसके सौतेले पुत्रने उसके पतिकी हत्या कर दी। विधवा होनेके बाद उसने शेरखाँ (बादमे शेरशाह) से शादी कर ली और न केवल चुनारके किलेपर, बल्कि उसके खजानेपर भी उसका कब्जा करवा दिया। इस प्रकार उसने शेरशाहको उसके विजय पथपर अग्रसर किया, जिसके फलस्वरूप १५४० ई०मे वह दिल्लीका बादशाह बन गया।

ला बोर्दने–भारतमे पहला आग्ल-फ्रासीसी युद्ध (दे०) छिड़नेके समय मारीशसका फ्रासीसी गवर्नर। उसमे नेतृत्वकी सहज क्षमता थी। भारतीय समुद्रोमे कोई फ्रासीसी जगी बेडा न होनेपर उसने फ्रासीसी व्यापारिक जहाजो और देशी नौकाओका एक बेडा तैयार किया और कारोमडलके तटपर पहुँचा। उसने पेयटन (दे०) के नेतृत्ववाले ब्रिटिश जगी बेडेको बगालकी खाड़ीकी ओर भगा दिया और सितम्बर १७४५ ई०मे मद्रासपर अधिकार कर लिया। फ्रासीसियोकी यह एक उल्लेखनीय सफलता थी, परतु ला बोर्दने इसके बाद ही डूप्लेसे झगडा कर बैठा। एक तूफानने उसके बेडेको तितर-बितर कर दिया। फिर भी १७४८ ई०मे एक्स-ला शैपेलेकी सधि होनेतक मद्रास फ्रासीसी कब्जेमे रहा। १७४८ ई०की सधिके अनुसार मद्रास अग्रेजोको वापस मिल गया, १७५९ ई०मे अवकाश ग्रहण करनेपर ला बोर्दनेने अपने ससमरण प्रकाशित कराये।

लायडजार्ज, डेविड (१८६३–१९४५ ई०)–ब्रिटेनका एक राजनेता, जिसने प्रथम विश्वयुद्धमे अपने देशको विजयी बनाया। वह छ साल (१९१६–२२ ई०) तक ब्रिटेनका प्रधान-मत्री रहा। १९४४ ई०मे उसे 'पिअर'की पदवी प्रदान की गयी। वह लिबरल विचारधाराका नेता था और कोषागार-मत्रीकी हैसियतसे उसने ब्रिटेनमे कल्याणकारी राज्यकी स्थापनाके लिए भूमिका तैयार की। उसने प्रधान-मत्रीकी हैसियतसे १९१८ ई०मे इग्लैंडको विजयी बनाया। वह सोलह वर्ष (१९०६–२२ ई०) तक ब्रिटिश राजनीतिपर हावी रहा और बीसवी शताब्दीके प्रथम चतुर्थाशमे शाति तथा युद्धकालमे ब्रिटेनका भाग्य-निर्णय यदि किसी एक व्यक्तिके हाथमे रहा तो वह व्यक्ति लायड जार्ज था। उसने भारतके सवैधानिक विकासमे भी महत्त्वपूर्ण योगदान किया। अगस्त १९१७ की प्रसिद्ध घोषणा उसीके प्रधान मत्रित्वकालमे हुई, जिसमे कहा गया था कि क्रमिक रीतिसे स्वशासन की प्राप्ति भारतमे ब्रिटिश शासनका लक्ष्य है। इस घोषणाके बाद ही उसने १९१९ ई०का गवर्नमेन्ट आफ इडिया ऐक्ट पास कराया और इस प्रकार भारतको ससदीय लोकतत्रके मार्गपर आगे बढाया।

लारेंस, कर्नल स्ट्रिन्जर (१६९७-१७७५ ई०)–एक प्रसिद्ध अग्रेज जनरल, जिसने १७४८ ई० मे भारतमे ईस्ट इडिया कम्पनीकी फौजमे नौकरी की। उसने कुड्डलूरपर फ्रासीसी हमला विफल कर दिया, परन्तु बादमे फ्रासीसियोने उसे बंदी बना लिया और एक्स-ला-शैपेले (दे०) की सधिके बाद वह रिहा हुआ। १७४९ ई० मे देवीकोट छीननेके समय राबर्ट क्लाइव उसका अधीनस्थ अफसर था, उसी समयसे दोनो जीवन भरके मित्र बन गये। स्ट्रिन्जर लारेसने राबर्ट क्लाइवकी जीवन-दिशाको मोड देनेमे भारी सहायता की। १७५२ ई० मे जब लारेसके नेतृत्वमे एक कुमुक त्रिचनापल्ली भेजी गयी, क्लाइव अधीनस्थ अफसरके रूपमे उसके साथ था।

उसने क्लाइवको हर प्रकारसे प्रोत्साहन प्रदान किया और युद्धके अन्तमे उसको आवश्यकतासे अधिक श्रेय प्रदान किया। क्लाइवको जबकि बगाल भेज दिया गया, वह दक्षिणमे बना रहा। विन्दवाश (दे०)की लडाईमे अग्रेजोकी विजयमे उसका भी हाथ था। पाडिचेरीके फ्रासीसी गवर्नर काउण्ट डी लाली (दे०)ने १७५८–५९-ई०मे जब फोर्ट सेंट जार्जपर घेरा डाला, वह वहाँकी सेनाओका कमाण्डर था। उसने लालीकी फौजोको खदेड दिया। उसने १७६६ ई०मे अवकाश ग्रहण किया। वह वीर और पराक्रमी अफसर था और कर्नाटकके युद्धो (दे०)मे अग्रेजोकी विजयमे उसका भारी योगदान रहा।

लारेंस, लार्ड जान (१८११-७९ ई०)–भारतका १८६४–१८६९ ई० तक वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल। वह सर हेनरी लारेंस (दे०)का छोटा भाई था और कम्पनीकी नौकरीके लिए १८३० ई० मे कलकत्ता आया था।

वह सबसे पहले दिल्लीका असिस्टेंट कलक्टर नियुक्त हुआ और फिर उन्नीस वर्ष (१८३०-४९ई०) तक वहांका मजिस्ट्रेट तथा कलक्टर रहा। इस अवधिमे उसने मालगुजारी व्यवस्थापर विशेष ध्यान दिया। वह स्थायी बन्दोवस्तके पक्षमे था, रैयतपर ताल्लुकेदारोंके अत्याचारोका विरोधी था और रैयतकी स्थिति सुधारना (दे०) चाहता था। प्रथम सिक्ख-युद्ध (दे०)मे पजावमे लडनेवाली भारतीय-ब्रिटिश सेनाको दिल्ली क्षेत्रसे रसद भिजवानेमे इसने विशेष तत्परता दिखायी। इसके पुरस्कार-स्वरूप उसे ३५ वर्षकी अवस्थामे ही जलंधर-दोआवका कमिश्नर बना दिया गया। १८५३ ई०मे वह पजावका चीफ कमिश्नर नियुक्त हुआ। उसने पजावके प्रशासनको ३२ जिलो तथा ३६ अधीनस्थ रियासतोमे बाँटा, पुलिस दल सगठित किया, एक जिलेको दूसरे जिलेसे मिलानेवाली सडको तथा नहरोका निर्माण कराया, न्यायकी व्यवस्था की और अपराध-सख्या कम की। गदर छिडनेपर उसने पजावी सेनाकी सहायतासे हिन्दुस्तानी सिपाहियोंके हथियार ले लिये। उसने पजाव सेनाकी सख्या १२,००० से बढाकर ५९००० कर दी, पजावको अंग्रेजोका वफादार बनाये रखा और दिल्लीकी मददके लिए सिक्ख पलटन भेजी। २० सितम्बर १८५८ को दिल्लीपर अधिकार कर लिया गया।

गदरके समय उसकी सेवाओंके उपलक्ष्यमे उसे बैरन बना दिया गया और आजीवन पेन्शन प्रदान की गयी। बादमे इसके पुरस्कार स्वरूप उसे १८६४ ई०मे भारतका वायसराय तथा गवर्नर-जनरल नियुक्त किया गया। उसने अगले पाँच वर्षतक भारतका प्रशासन बडी योग्यताके साथ चलाया। उसने सामान्यजनोकी अवस्था सुधारनेका प्रयास किया और भारतीयोमे शिक्षा-प्रसारकी योजनाओमे रुचि ली। वह उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रातमे अग्रसर नीतिके विरुद्ध था। उसने १८६३ई०मे अफगानिस्तानके अमीर दोस्त मुहम्मद (दे०)की मृत्यु होनेपर उसकी गद्दीके लिए छिड़जानेवाले गृह-युद्धमे अहस्तक्षेपकी नीति बरती और इस प्रकार सरकारको अफगानिस्तानके आन्तरिक मामलोंमे उलझनेसे बचाया। बादमें उसकी यह नीति त्याग दिये जानेके फलस्वरूप दूसरा अफगान-युद्ध (दे०) हुआ। इस युद्धमे धन-जनकी भारी क्षति हुई और यह प्रमाणित हो गया कि उसकी अहस्तक्षेपकी नीति उचित थी।

लारेंस, सर हेनरी माटगोमरी (१८०६-५७ई०)—एक प्रसिद्ध ब्रिटिश सैनिक तथा राजनेता। उसने ब्रिटिश शासनको विशेष रीतिसे पजावमे मजबूत बनानेमे योगदान किया। वह श्रीलकामे पैदा हुआ था, १८२३ ई०मे बगाल आर्टिलरी (तोपची पलटन)मे भर्ती हुआ और प्रथम बर्मी-युद्ध (दे०)प्रथम अफगान-युद्ध (दे०) तथा प्रथम सिक्ख-युद्ध (दे०)मे भाग लिया। वह पजावको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमे सम्मिलित करनेके विरुद्ध और इसके पुनर्निर्माणकी नीतिके पक्षमे था। वह लाहौरमे ब्रिटिश रेजीडेंट तथा महाराज दिलीपसिंहके बालिग होनेतक शासन कार्य चलानेके लिए गठित परिषद्का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। १८४९ ई०मे दूसरे सिक्ख-युद्ध (दे०)के बाद, जिसके फलस्वरूप पंजाब ब्रिटिश भारतमे मिला लिया गया, वह नये प्रान्तके प्रशासन बोर्डका अध्यक्ष नियुक्त किया गया। उसके जिम्मे राजनीतिक मामले रखे गये तथा उसके भाई जान लारेंसको, जो उससे छ साल छोटा था, प्रातके वित्तीय प्रशासनका भार सौंपा गया। हेनरी का मत था कि सिक्ख सरदारोको आजीवन पेन्शन तथा जागीरें देकर उनके साथ उदारतापूर्ण व्यवहार करना चाहिये, परतु जानका मत था कि प्रातके राजस्वको घटाकर तथा जमीदारोके अधिकारोको नियन्त्रित करके सामान्य लोगोकी अवस्था सुधारनी चाहिए। तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड डलहौजीने जानकी नीति ठीक समझी और हेनरीका तबादला ब्रिटिश रेजीडेंटके रूपमे राजपूताना कर दिया गया। राजपूतानामे कार्य करते समय उसने भारतकी सेनामे सुधार करनेकी आवश्यकतापर बल दिया ओर गदरकी सम्भावनाके विरुद्ध चेतावनी दी, परन्तु, उसकी बातोपर ध्यान नहीं दिया गया। मार्च १८५७ ई० मे वह लखनऊ भेजा गया और दो महीने बाद मई १८५७ ई० मे गदर शुरू हो गया। लखनऊ विप्लवियोका केन्द्र बन गया और २९ जूनको लखनऊ रेजीडेन्सीपर घेरा डाल दिया गया। उसने रेजीडेन्सीकी रक्षाकी व्यवस्था की। २ जुलाईको एक गोला उसके ऊपर आकर गिरा, जिससे वह घायल हो गया। दो दिन बाद उनकी मृत्यु हो गयी।

लालकुर्ती आन्दोलन—इसका प्रारम्भ, उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेशमे अब्दुल गफ्फार खाँने १९३० ई०मे किया। यह आन्दोलन अंग्रेजोंके विरुद्ध था और इसमे भारतीय राष्ट्रवाद तथा इस्लामके विश्व-बधुत्वके सिद्धान्तोका सम्मिश्रण था। यद्यपि यह आन्दोलन अहिंसात्मक था, पर सीमान्तके पठानोके स्वभावमे हिंसा और प्रतिशोधकी भावनाओ के प्रबल होनेके कारण उसका अहिंसात्मक स्वरूप सरकारकी दृष्टिमे सदैव सदिग्ध बना रहा। फिर भी सीमान्त

प्रदेशके निवासियोपर इस आन्दोलनका कुछ काल तक विशेष प्रभाव रहा और इसीसे काग्रेस दलको प्रान्तीय विधान सभाके चुनावमे सफलता मिली। १९४७ ई०मे स्वतन्त्रता-प्राप्ति एवं देशके विभाजनके समय वहाँ काग्रेस दल सत्तारूढ था। सीमान्त प्रदेशके पाकिस्तानका भाग बन जानेके उपरात लालकुर्ती आन्दोलनने नया रूप धारण किया और पख्तूनिस्तानकी स्थापनाकी माग रखी, जिसमे सीमान्तके कबीलाई इलाकोका एक स्वतन्त्र राज्य बनानेका सुझाव था। किन्तु पाकिस्तानकी नयी सरकारने इस आन्दोलनको गैर-कानूनी घोषित कर दिया।

लालमोहन घोष (१८४९–१९०९)—एक बैरिस्टर, जो कलकत्ता हाईकोर्टमे वकालत करते थे। जब १८७७ ई०मे ब्रिटिश सरकारने आई० सी० एस०की परीक्षामे बैठनेकी वयसीमा २१ से घटाकर १९ करनेका विचार किया, जिससे कि भारतीयोका उसमे प्रवेश कठिन हो जाय तो इडियन एसोसिएशन, कलकत्ताने भारतीयोकी ओरसे एक स्मृतिपत्र तैयार किया और १८७९–८० ई०मे एक प्रतिनिधि मडल लालमोहन घोषके नेतृत्वमे ब्रिटेन भेजा। घोषने भारतीयोका पक्ष प्रभावशाली ढगसे प्रस्तुत किया जिसका प्रभाव ब्रिटिश जनतापर पडा। उन्हीके आग्रहपर ब्रिटिश सरकारने विधिविहित सिविल सर्विसका निर्माण किया। इस सफलतासे उत्साहित होकर वे पुनः ब्रिटेन गये और ब्रिटिश आम चुनावमे उदार दलके प्रत्याशीके रूपमे खडे हुए। वे चुनाव तो नही जीत सके लेकिन उनके प्रयत्नोसे भारतीय राष्ट्रीय आदोलनको बल मिला। वे पक्के सविधानवादी थे और ब्रिटिश सरक्षणमे औपनिवेशिक स्वराज्यके पक्षमे थे। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसको उनसे बहुत बल प्राप्त हुआ।

लालसिंह—एक सिक्ख सरदार, जो १८४३ ई०मे पजाबके महाराज दिलीप सिंहकी राजमाता रानी जिन्दा कौरका वजीर नियुक्त हुआ। दो साल बाद प्रथम सिक्ख-युद्ध शुरू होनेपर उसने सिक्ख सेनाका नेतृत्व सँभाल लिया, परतु उसके अहदीपनके कारण मुदकी (१८४५ ई०) तथा फीरोज शाह (इस गाँवका वास्तविक नाम फीरूशहर था, जिसे अग्रेजीमे फीरोजशाह लिख दिया गया। —स०) की लडाइयोमे तथा अतमे सुबराहानकी लडाई (१८४६ ई०)मे सिक्खोकी हार हुई, जिसके फलस्वरूप प्रथम सिक्ख-युद्ध समाप्त हो गया। लाहौरकी सधि (१८४६ ई०) के द्वारा लाल सिंह वजीर बना रहा। परन्तु यह सदेह किया गया कि ब्रिटिश कठपुतली, कश्मीरके राजा गुलाब सिंह (दे०) के ऊपर किये गये हमलेके पीछे उसका हाथ था, इसलिए उसे पदच्युत कर दिया गया।

लालसोट की लडाई—महादजी शिन्दे और मुगल सेनाके बीच १७८७ ई०मे छेडी गयी, जिसमे शिन्दे पराजित हुआ। इसके फलस्वरूप कुछ समयके लिए शिन्देका उत्कर्ष रुक गया।

लाला लाजपत राय (१८५६–१९२८ ई०)—पजाबमे जन्म, पेशेसे वकील और धर्मसे आर्य-समाजी थे। उन्होने काग्रेसके उत्कर्षमे मुख्य सहयोग दिया और लोकमान्य तिलक (दे०) तथा विपिन चद्र पाल (दे०)के साथ उसे नरम दलके पथसे हटा कर गरम दलके पथपर चलाया। इसलिए ब्रिटिश सरकार उनपर कुपित हो गयी और १९०७ ई०मे उन्हें रेग्यूलेशन ३ के अतर्गत बर्मा निर्वासित कर दिया। वे १९१९ ई०मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके कलकत्ता अधिवेशनके अध्यक्ष बने तथा असहयोग आदोलनमे सम्मिलित हो गये और १९२८ ई०मे साइमन कमीशनके बहिष्कार आदोलनमे प्रमुख भाग लिया। ३० अक्तूबरको पुलिसने बेतोसे उनकी पिटाई की, जिससे २७ नवम्बरको उनकी मृत्यु हो गयी। उन्होने अग्रेजीमे कई पुस्तकें लिखी, जिनमेसे 'दु खी भारत'मे इस देशके ब्रिटिश प्रशासनकी कडी निन्दा की गयी थी। वे देशके प्रमुख राजनीतिक नेताओमे गिने जाते थे और करोडो देशवासी उनके प्रति असीम प्रेम और श्रद्धाका भाव रखते थे। नयी दिल्लीमे उनके नामपर लाजपत नगरकी स्थापना की गयी है।

लाली कावर्ट डी—एक फ्रासीसी जनरल, जिसका पिता आयरिश था। फासकी सरकारने उसे डूप्ले (दे०) के स्थानपर गवर्नर बना कर भेजा। वह १७५८ ई०मे पाडिचेरी पहुँचा और आते ही फोर्ट सेट डेविड अग्रेजोसे छीन लिया। परतु इसके अलावा उसे भारतमे और कोई सफलता नही मिली। वह वीर, ईमानदार तथा कुशल सेनापति था, परतु जल्द उत्तेजित हो जानेवाला तथा दूसरोकी सलाह न माननेवाला था। उसने तजौरके राजाको पुराना कर्ज चुकानेको विवश करनेके लिए उसके राज्यपर आक्रमण कर दिया, परतु आक्रमण विफल रहा। इससे भारतमे फ्रासीसियोकी प्रतिष्ठाको भारी धक्का लगा। इसके बाद उसने मद्रासपर घेरा डालकर उसपर दखल करनेकी कोशिश की। उसने हैदराबादमे निजामके दरबारसे बुसी (दे०)को वापस बुला लिया। मद्रासपर घेरा डालना सफल नही हुआ। बुसीके चले आनेसे निजामके दरबारमे फ्रासीसियोका प्रभाव समाप्त हो

गया। अंग्रेजोंने उत्तरी सरकारपर अधिकार कर लिया, जो अब तक फ्रांसीसियोंके कब्जेमें थी। अंतमें अंग्रेजोंने १७६० ई०में विन्दवासकी लड़ाईमें लालीको हरा दिया और १७६१ ई०में पांडिचेरी उससे छीन लिया। अंग्रेजोंने युद्धमें बन्दी बनाकर उसे इंग्लैण्ड भेज दिया। इस बीच फ्रांसमें लालीके विरुद्ध गम्भीर आरोप लगाये गये और लाली पेरोलपर छूट कर फ्रांस पहुँचा। वहाँ उसे अपराधी करार देकर मृत्यु दण्ड दिया गया और १७६३ ई० में उसे फांसी दे दी गयी।

लासवाड़ीकी लड़ाई—दूसरे मराठा-युद्ध (दे०) के दौरान १८०३ ई०में हुई। इस लड़ाईमें लार्ड लेकके नेतृत्वमें ब्रिटिश सेनाने शिन्देकी मराठा सेनाको बुरी तरह पराजित कर दिया।

लाहौर—रावीके दाहिने तटपर बसा, पुराने पंजाबकी राजधानी। यह प्राचीन नगर है और हिन्दू अनुश्रुतियोंके अनुसार इसे रामायणके नायक रामके पुत्र लवने बसाया था। इस नगरको संभवतः ईसवी सन्‌की प्रारम्भिक शताब्दियोंमें बसाया गया था और सातवीं शताब्दी ई० में यह इतना महत्त्वपूर्ण था कि उसका उल्लेख चीनी यात्री ह्युएन-त्सांगने किया है। इसपर पहले गजनी और फिर गोरके शासकोंने और फिर दिल्लीके सुल्तानोंने अधिकार कर लिया। मुगल कालमें महत्त्वपूर्ण नगर हो गया और शाही निवासस्थान बन गया। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ, सभीको इस नगरमें रहना अच्छा लगता था, इससे यह सुन्दर नगर बन गया था, जहाँ किला, अनेक खूबसूरत बाग थे। इसका शाहदरा बाग जहाँगीरने और शालीमार बाग शाहजहाँने लगवाया। १७०७ से १७९९ ई०के बीच इस नगरपर बार-बार हमले हुए। पहले नादिर शाह (दे०) ने और फिर अहमद शाह अब्दाली (दे०) ने हमला कर इसपर दखल कर लिया। १७६८ ई०में इसपर सिक्खोंका अधिकार हो गया और १७९९ ई० में यह रणजीत सिंहके अधिकारमें आ गया। रणजीत सिंहने इसे अपनी राजधानी बनाया। १८४९ ई० में दूसरे सिक्ख-युद्ध (दे०)की समाप्तिपर इसे ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया गया और १९४७ ई० तक पंजाबकी राजधानी रहा। देशका विभाजन होनेपर यह पश्चिमी पाकिस्तानकी राजधानी बना। अब पाकिस्तानकी राजधानी रावलपिण्डी है।

लिंगायत (अथवा वीर शैव) सम्प्रदाय-स्थापना बारहवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें बासवने की, जो बिज्जल कलचूर्य (दे०)का मंत्री था। इस सम्प्रदायके लोग शिव लिंगकी पूजा करते हैं, इसलिए वे लिंगायत कहलाते हैं। वे वेदोंको प्रमाण नहीं मानते, पुनर्जन्मके सिद्धान्तमें विश्वास नहीं करते, बाल-विवाहके विरोधी तथा विधवा विवाहके समर्थक हैं। वे ब्राह्मणोंकी श्रेष्ठताको स्वीकार नहीं करते। लिंगायत सम्प्रदाय अब भी कन्नड देशमें बहुत शक्तिशाली है।

लिच्छवि गण—बिहारमें गंगाके उत्तर मुजफ्फरपुर जिलेमें स्थित एक जनवर्ग, जिसकी राजधानी वैशाली (आधुनिक बसाढ़के निकट) एक विशाल नगरी थी, जिसकी परिधि दस अथवा बारह मील थी। नगरी गगनचुम्बी अट्टालिकाओंसे शोभायमान थी। लिच्छवियोंका एक कुलीन गणतंत्रात्मक राज्य था, जिसमें सभी उच्च कुलोंके मुखियों (राजाओं) को बराबरके अधिकार प्राप्त थे। गौतम बुद्धके समकालीन समाजमें उनको अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। विश्वास किया जाता है कि बुद्धने अपने भिक्षु संघका संगठन लिच्छवियोंके गणराज्यके आदर्शोंके अनुसार ही किया था। ब्राह्मण ग्रंथोंमें लिच्छवियोंको हीन जातिका क्षत्रिय बताया गया है।

वास्तवमें लिच्छवि संभवतः किसी पहाड़ी कबीले अथवा कुलके थे, जिनको क्रमिक रीतिसे आर्योंके सामाजिक संगठनमें सम्मिलित कर लिया गया। छठी शताब्दी ई० पू० से चौथी शताब्दी ई० तक लिच्छवियोंको अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं प्रतिष्ठापूर्ण स्थान प्राप्त रहा। चौथी शताब्दी ई०में लिच्छवि कुमारी कुमार देवीके साथ विवाह होनेके कारण मगधके चन्द्रगुप्त प्रथमको गुप्त साम्राज्यकी स्थापना करनेमें सहायता मिली, द्वितीय गुप्त सम्राट समुद्र गुप्त अपनेको लिच्छवि-दौहित्र घोषित करनेमें गर्वका अनुभव करता था। चौथी शताब्दीमें गुप्त साम्राज्यके उत्कर्षके बाद लिच्छवियोंका नाम मिट गया।

लिटन, लार्ड, प्रथम—भारतका (१८७६ से १८८० ई० तक) वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल। वह विद्वान् शासक था और उसका व्यक्तित्व बाहरसे देखते ही विशिष्ट प्रतीत होता था। परंतु उसका प्रशासन-काल उज्ज्वल नहीं कहा जा सकता। जिस समय उसने शासन-भार सँभाला, देशमें भयंकर अकाल फैला था। सारा दक्षिण भारत दो वर्ष, १८७६ से १८७८ ई० तक भयंकर रूपसे पीड़ित रहा। दूसरे वर्ष अकाल मध्य-भारत तथा पंजाबमें भी फैल गया। इसने लगभग पचास लाख व्यक्तियोंको अपने अंकमें समेट लिया। सरकारने अकालके मुँहसे लोगोंकी जानें बचानेके लिए जो उपाय किये वे अपर्याप्त थे।

अकालके ही समय वाइसरायने १८७७ई०मे दिल्ली-मे एक अत्यन्त शानदार दरवार किया जिसमे महारानी विक्टोरियाको भारतकी सम्राज्ञी घोषित किया गया। वादमे उसने जनरल रिचर्ड स्ट्रैचीकी अध्यक्षतामे अकालके कारणो तथा सहायताके प्रश्नपर विचार करनेके लिए अकाल कमीशन नियुक्त किया। इसकी रिपोर्टके आधार पर एक अकाल कोडका निर्माण किया गया जिसमे भविष्यमे अकालका सामना करनेके लिए कुछ ठोस सिद्धान्त निर्धारित किये गये।

लार्ड लिटनके शासन-कालमे सारे ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतोमे एक समान नमक-कर निर्धारित किया गया। इससे नमककी तस्करी वद हो गयी और सिंधु नदीपर स्थित अटकसे लेकर दक्षिणमे महानदी तक २५०० मीलकी दूरीमे नागफनीकी कँटीली झाडी चुगीके वाडके रूपमे खडीकी गयी थी, उसे हटाना सभव हो गया। वस्तुत लकाशायरकी सूती कपडा मिलोके हितमे परतु प्रकट रूपमे मुक्त व्यापारके नाम लार्ड लिटनने अपनी एक्जीक्यूटिव कौसिलकी अवहेलना करके, सूती कपडोके आयातपर लगाया गया ५ प्रतिशत कर हटा दिया और इस प्रकार भारतके सूती वस्त्र उद्योगका विस्तार रोक दिया। १८७८ ई०मे उसने भारतीयो द्वारा अपने देशी भाषाके पत्रोमे सरकारके कार्योकी प्रतिकूल आलोचनाओ-को रोकनेके लिए वर्नाकुलर प्रेस ऐक्ट (दे०) पास किया। यह प्रतिक्रियावादी कानून था जिसे चार वर्ष वाद उसके उत्तराधिकारी लार्ड रिपनने रद्द कर दिया।

लार्ड लिटनका सबसे दुर्भाग्यपूर्ण और अनुचित कार्य था १८७८ ई०मे अफगानिस्ताके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर देना। दूसरा अफगान-युद्ध (१८७८—८८ ई०) (दे०) साम्राज्यवादी उद्देश्योकी पूर्तिके लिए छेडा गया था और इसमे धन और जनकी भारी हानि हुई। इस युद्धका भारी खर्चा अधिकाशमे भारतीय कर-दाताको उठाना पडा जो लार्ड लिटनके प्रशासनपर एक काला धब्बा छोड गया।

लिटन, लार्ड, द्वितीय—१९२२ ई०मे वगालका गवर्नर होकर भारत आया और १० अप्रैलसे ७ अगस्त १९२५ तक कार्यवाहक वाइसरायके रूपमे कार्य किया। इस प्रकार जिस पदको कई वर्षो पूर्व उसके पिताने सुशोभित किया था, उसे उसने भी सुशोभित किया। उसने पुन वगाल-के गवर्नरका पद सँभाल लिया और १९२७ ई०मे अव-काश ग्रहण किया। उसके प्रशासन-कालमे कलकत्ता विश्वविद्यालयके ऊपर सरकारी नियत्रणके प्रश्नपर सर आशुतोष मुखर्जीसे एक विवाद हुआ, जिससे उसके प्रशा-सनकी प्रतिष्ठा नही वढी।

लिनलिथगो, लार्ड—भारतका (१९३६ से १९४३ ई० तक) वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल। उसने १९३६ के गव-र्नमेन्ट आफ इडिया ऐक्ट (दे०)के पास होनेके वाद पद-ग्रहण किया, जिसमे ब्रिटिश भारतकी स्वशासन युक्त प्रातीय सरकारो तथा देशी रियासतोकी एक सघ सरकार वनानेकी व्यवस्था की गयी थी। अभी तक देशी रिया-सतोका सीधा सवन्ध ब्रिटिश सम्राट्से था। लार्ड लिन-लिथगोने केन्द्रमे प्रस्तावित सघ सरकार तथा प्रातोमे उत्तरदायी स्वशासन-युक्त सरकारोकी स्थापना करके समूचे ऐक्टको क्रियान्वित करनेका प्रयास किया। प्रातीय चुनाव १९३७ ई०मे सम्पन्न हुए, जिनमे ग्यारहमेसे पाँच प्रातोमे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसको स्पष्ट वहुमत प्राप्त हुआ तथा दो अन्य प्रातोमे भी वह सरकार वना सकनेकी स्थितिमे थी। इन परिस्थियोमे नये सविधानके प्रातोसे सम्वधित भागको क्रियान्वित कर दिया गया। किन्तु प्रस्तावित सघ सरकारमे देशी रियासतोको सम्मिलित करनेके प्रश्नपर वार्ता चलानेमे काफी समय लग गया। इस वीच १९३९ ई०मे द्वितीय विश्व-युद्ध शुरू हो गया और सविधानके सघ सरकारसे सम्वन्धित भागका क्रिया-न्वयन स्थगित कर दिया गया।

द्वितीय विश्व-युद्ध छिड जानेपर लार्ड लिनलिथगो पर दोहरा कार्यभार आ पडा। एक ओर तो उसे भारतमे जनमतको अपने पक्षमे वनानेका प्रयास करना पडा जो अत्यत विक्षुब्ध हो गया था, दूसरी ओर उसे भारतमे ब्रिटेनके पक्षमे युद्ध-प्रयत्नोको सगठित करना पडा। युद्धमे इग्लैण्डके विरुद्ध जापानके कूद पडनेसे उसकी कठिनायाँ और वढ गयी। १९४१ ई०मे जापानने मलयेशियापर आक्रमण कर सिंगापुरपर अधिकार कर लिया। इन प्रतिकूल परिस्थितियोके वावजूद लार्ड लिनलिथगोने भारतको न केवल आवश्यक युद्ध-सामग्री भेजनेका केवल अड्डा वना दिया वल्कि ब्रिटिश भारतीय सेनाकी शक्ति १,७५,००० से बढा कर वीस लाखसे अधिक कर दी और इन सेनाओको दक्षिण पूर्व एशिया तथा पश्चिम एशियाके युद्ध क्षेत्रोमे भेज दिया, जिसकी वजहसे ब्रिटिश पराजय धीरे-धीरे ब्रिटिश विजयमे परवर्तित हो गयी। परतु युद्ध-प्रयत्नोके फलस्वरूप जहाँ एक ओर खर्चमे उत्तरोत्तर भारी वृद्धि होती गयी, वही दूसरी ओर वगालमे सर्वक्षार नीतिका अनुसरण करनेके कारण १९४३ ई०मे भयकर अकाल पड़ गया। लार्ड लिनलिथगोकी सरकार

इस अकालका सामना करनेमे असफल रही और शीघ्र ही लार्ड लिनलिथगोका स्थान लार्ड वेवेल (दे०) ने ग्रहण कर लिया जिसने अपने फौजी अनुभव और चुस्तीसे काम कर स्थितिका सामना किया।

लार्ड लिनलिथगोने क्षुब्ध भारतीय जनमतको कौशल-पूर्ण ढगसे शात रख कर भारतमे आतरिक शाति वनाये रखनेका जो प्रयत्न किया, उसमे उसे आशिक सफलता मिली। अक्तूवर १९३९ ई०मे उसने घोषणा की कि भारतके सवैधानिक विकासका लक्ष्य औपनिवेशिक स्वराज्यकी स्थापना हे। उसने भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस तथा मुसलिम लीगकी माँगोकी परस्पर विरोधी वातोपर जोर देकर तथा भारतको क्रिप्स-प्रस्ताव स्वीकार कर लेनेके लिए राजी करनेके उद्देश्यसे १९४२ ई०मे सर स्ट्रैफर्ड क्रिप्स (दे०) को भारत आमत्रित करके देशके अदर कोई खुली वगावत नही होने दी। फिर भी ब्रिटिश सरकारने भारतको स्वाधीनता प्रदान करनेकी कोई निश्चित तिथिकी घोषणा करनेसे वार-वार इनकार करके महात्मा गाधीको 'भारत छोडो आदोलन' शुरू करनेके लिए विवश कर दिया। महात्मा गाधीने माग की कि ब्रिटेनको तुरत भारतपर अपनी प्रभुसत्ताका परित्याग करके यहाँसे चले जाना चाहिए। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसने भी इस माँग-का समर्थन किया। जवावमे लार्ड लिनलिथगोने महात्मा गाधीको कैद कर लिया और समूची काग्रेस वर्किंग कमेटी-को नजरवद कर दिया। लार्ड लिनलिथगोने १९४३मे भारतसे अवकाश ग्रहण किया और चार वर्ष वाद भारतको स्वाधीन कर दिया गया। इससे प्रकट होता है कि उसने वल-प्रयोगके द्वारा भारतमे ब्रिटेनकी प्रभुसत्ताको वनाये रखनेका जो प्रयत्न किया, वह कितना व्यर्थ था।

लियाकत अली खां—मुसलिम लीगका एक नेता तथा मि० जिन्ना (दे०)का दाहिना हाथ। वह १९४६ ई०मे गठित अतरिम सरकारमे अर्थ-सदस्य नियुक्त किया गया। जव १९४७ ई०मे भारतका विभाजन करके पाकिस्तानकी स्थापना की गयी, वह उसका पहला प्रधान-मत्री वनाया गया। उसने भारत और पाकिस्तानमे अल्पसख्यकोके साथ किये जाने वाले व्यवहारके सम्वन्धमे पडित नेहरूसे एक समझौता किया। पाकिस्तानकी स्थापनाके वाद ही एक सार्वजनिक सभामे भाषण करते समय उसकी हत्या कर दी गयी। हत्यारेकी भी घटना-स्थलपर ही हत्या कर दी गयी। इसके फलस्वरूप हत्याके कारणका पता नही चल सका और न हत्यारेकी निश्चित रीतिसे शिनाख्त ही हो सकी।

लियाकत हुसेन—एक सच्चा राष्ट्रीयतावादी मुसलमान, जिसने वग-भग (१९०६–१९१२ ई०) (दे०)के विरुद्ध आदोलनमे प्रमुख भाग लिया।

ली कमीशन—इसकी नियुक्ति भारत-मत्री द्वारा १९२३ ई० मे की गयी। इसका उद्देश्य उच्च सिविल सर्विसके वेतन एव भत्तेके प्रश्नकी तथा साथ-साथ उसके भारतीयकरण-के प्रश्नकी पडताल करना था। इसकी अध्यक्षता लार्ड लीने की। इसके सदस्योमे तीन भारतीय भी थे। कमीशनने अपनी रिपोर्ट मार्च १९२४ ई०मे प्रस्तुत की। कमीशनने इडियन सिविल सर्विसके वुनियादी वेतनमे कोई वडा परिवर्तन नही प्रस्तावित किया। उसने उसके समुद्र पारके वेतनमे भारी वृद्धि, फर्लो छुट्टीकी अधिक सुविधाएँ तथा इग्लैण्ड आने-जानेका पहले दर्जेका किराया देनेकी सिफारिश की। कमीशनकी सिफारिशोके आधार-पर इडियन सिविल सर्विसके सदस्योके वेतनमे वारह प्रतिशत वृद्धि होती थी।

भारतीय-करणके प्रश्नपर ली कमीशनने सिफारिश की कि अगले पन्द्रह वर्षोमे सर्विसके सदस्योमे ३० प्रतिशत यूरोपीय तथा ५० प्रतिशत भारतीयका लक्ष्य होना चाहिए। इसके लिए २० प्रतिशत उच्च पदोपर नियु-क्तियाँ प्रातीय सिविल सर्विसोसे पदोन्नति कर की जानी चाहिए तथा सीधी भर्तीमे लिये जानेवाले सदस्योमे आधे भारतीय तथा आधे यूरोपीय होने चाहिए। ली कमीशनकी रिपोर्टका इम्पीरियल (केन्द्रीय) लेजिस्लेटिव असेम्वलीमे तीव्र विरोध किया गया, फिर भी सरकारने उसे स्वीकार कर लिया। इसके फलस्वरूप उच्च सिविल सर्विसोके सदस्योके वेतन और भत्तेमे काफी वृद्धि हो गयी, प्रगति वहुत धीमी रही।

लीड्स—एक अग्रेज जौहरी, फिच (दे०)के साथ १५८३ ई०मे भारत आया था और मुगल सरकारकी तावेदारी कर ली थी।

लीन्वायर—१७२० ई०से कई वर्षोतक पाडेचेरीका फ्रासीसी गवर्नर। उसने पाडेचेरीको व्यापारिक केन्द्रके रूपमे विकसित करनेमे भारी योगदान किया। वह राजनीतिक महत्त्वाकाक्षाओ अथवा विजय अभिलाषासे प्रेरित नही था।

लीलावती—भास्कराचार्यके वृहद ग्रथ 'सिद्धान्तशिरोमणि'-का एक भाग, जिसकी रचना ११५० ई०मे हुई। इसमे गणित तथा वीजगणितके सिद्धान्तोका विवेचन हे। लीलावतीका फारसी अनुवाद (दे०) अकवरके दरवारी फैजीने किया था।

लुम्बिनीग्राम–कपिलवस्तु (दे०)के निकट स्थित, जहाँ लगभग ५६६ ई० पू० गौतमबुद्ध (दे०)का जन्म हुआ था। अशोकने अपने राज्याभिषेकके बीसवें वर्षमे इस स्थानकी यात्रा की थी और बुद्धके जन्मस्थानपर एक शिला-स्तम्भ स्थापित किया था। इस स्थानको अब रुम्मिनदेई कहते है और यह नेपालकी तराईमे है। अशोकका शिला-स्तम्भ वहाँ अब भी वर्तमान है। इस स्थानकी पवित्रता-को ध्यानमे रख कर अशोकने इसे सभी प्रकारकी बलि (कर)से मुक्त कर दिया था और भूमिकर भूमिकी-उपजके छठे भागके बजाय आठवाँ भाग निर्धारित किया था।

लुत्फुन्निसा–बंगालके नवाब सिराजुद्दौला (दे०) (१७५६–५७ ई०)की बेगम। पलासीकी लड़ाई (१७५७ ई०) के बाद नवाबके मुर्शिदाबादसे भागनेके समय उसके साथ थी। नवाबकी हत्या कर दिये जानेके बाद वह शोकपूर्ण-जीवन बिताने लगी।

लेक, लार्ड गेरार्ड (१७४४-१८०८ ई०)–एक प्रसिद्ध ब्रिटिश जनरल, जिसने दूसरे मराठा-युद्ध (दे०)का नेतृत्व किया। फ्रांस तथा आयरलैंडकी ब्रिटिश सेनामे कई वर्ष तक योग्यताके साथ सेवा करनेके बाद वह १८०० ई०-मे भारतकी ईस्टइंडिया कम्पनीकी सेवामे प्रधान सेनापति नियुक्त हुआ। वह १८०२ ई०मे कलकत्ता पहुँचा। उसे कम्पनीकी सेनामे सुधार करनेका बहुत थोडा समय मिला। इसी बीच दूसरा मराठा-युद्ध शुरू हो गया। उसने उत्तरी भारतमे ब्रिटिश सेनाकी कमान संभाल ली। यहाँपर उसका मुख्य शत्रु शिन्दे था जिसको उसने कोपल-की लडाईमे हरा दिया। उसने अलीगढपर चढाई की, दिल्ली तथा आगरापर कब्जा कर लिया तथा लासवाडी (दे०) (१८०३ ई०)की लडाईमे निर्णयात्मक विजय प्राप्त की, इसके फलस्वरूप शिन्दे अंग्रेजोसे संधि करनेके लिए विवश हो गया।

लेकने इसके बाद होल्कर (दे०) से युद्ध किया और १८०४ ई०मे उसे फर्रुखाबादमे हराया। परंतु वह १८०५ ई० मे भरतपुरका किला नही ले सका और उसे वहाँके राजासे संधि कर लेनी पडी। तदनुसार भरतपुर-का किला और उसके आस-पासके क्षेत्रपर राजाका ही अधिकार बना रहा। इसके बाद लेकने होल्करका पंजाब तक पीछा करते हुए उसे संधि करनेके लिए विवश किया। युद्धकी इन शानदार सफलताओके उपलक्ष्यमे लेकको 'पिअर' की पदवी प्रदान की गयी, परन्तु इसके कुछ समय बाद ही उसकी मृत्यु हो गयी।

लेजिस्लेटिव असेम्बली–अथवा केन्द्रीय असेम्बलीकी स्था-पना १९१९ ई० के गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया ऐक्टके द्वारा केन्द्रीय भारत सरकारके लिए की गयी। इस ऐक्टके द्वारा केन्द्रीय विधान मंडलके दो सदन कर दिये गये। उच्च सदनको कौंसिल आफ स्टेट (राज्य परिषद्) कहते थे। केन्द्रीय असेम्बलीमे १०६ निर्वाचित तथा ४० मनोनीत सदस्य होते थे, जिनमे २५ सरकारी होते थे। उसका मताधिकार क्षेत्र कौंसिल आफ स्टेटसे अधिक विस्तृत तथा कार्यकाल तीन वर्ष था। केन्द्रीय असेम्बली-को वित्त तथा कानूनोपर सामान्य नियत्रण प्राप्त था। परतु गवर्नर-जनरल अपने विवेकसे, यदि वह किसी व्यय अथवा कानूनको ब्रिटिश भारतकी सुरक्षा अथवा शातिके लिए आवश्यक समझे तो इसे केन्द्रीय असेम्बलीके विरोध-के बावजूद अधिकृत अथवा पास कर सकता था।

लेजिस्लेटिव कौंसिल–१८६१ ई०के इडियन कौंसिल्स ऐक्ट-के द्वारा स्थापित केन्द्रीय सरकार तथा प्रातीय सरकारोंके विधान मण्डलका नाम। यह नामकरण १९१९ ई०तक प्रचलित रहा। १९१९ ई०के गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया ऐक्टके द्वारा गवर्नर-जनरलकी लेजिस्लेटिव कौंसिलके दो सदन बना दिये गये। उच्च सदनको कौंसिल आफ स्टेट (राज्य परिषद्) कहते थे। निम्न सदनको लेजि-स्लेटिव असेम्बली अथवा केन्द्रीय असेम्बली कहते थे। इस ऐक्टके पास होनेके बाद सिर्फ प्रातीय विधान मंडलो-को लेजिस्लेटिव कौंसिल कहा जाने लगा। भारतीय गणराज्यके संविधानके अन्तर्गत प्रातीय विधान मण्डलके उच्च सदनको विधान परिषद् तथा निम्न सदनको विधान सभा कहते है। (दे० ब्रिटिश प्रशासनके अन्तर्गत)

लेफ्टिनेंट गवर्नरका पद–बगालमे लार्ड डलहौजीने १८५४ ई०मे स्थापित किया। जबतक बगालका प्रशासन सीधे गवर्नर-जनरलके अधीन रहा, उसकी बहुधा उपेक्षा होती रहती थी, क्योकि भारतमे ब्रिटिश साम्राज्यके विस्तारके साथ गवर्नर जनरलका कार्य-भार बहुत बढ गया था। १९१२ ई०मे बग भग रद्द कर दिये जानेके बाद बगालके लेफ्टिनेण्ट-गवर्नरका पद तोड दिया गया। तबसे प्रातका प्रशासन गवर्नरके अधीन हो गया।

लेस्पिने, बेलेंगर डी–एक फ्रेंच सैनिक, जो फ्रासीसी सामु-द्रिक बेडेके साथ १६७२ ई०मे भारत आया। उसने फ्रांकोइस मार्टिन (दे०) के साथ वलिकोंडापुरम्के मुसलमान हाकिमसे १६७३ ई०मे पाडिच्चेरीका स्थान प्राप्त किया। इस प्रकार पाडिचेरी नगर की स्थापना-मे उसका भी हाथ था।

लेस्ली, कर्नल ब्रेडफोर्ड—बंगालमें नियुक्त एक अंग्रेज सिविल इंजीनियर। उसने १८७४ ई०में कलकत्ता और हुगलीके बीच हुगली पुलका तथा १८८१ ई०में नैहाटीमें हुगली नदीके ऊपर जुबिली पुलका निर्माण किया।

लैंग, सैमुएल (१८१०-९७ ई०)—अर्थशास्त्र विषयकी पुस्तकोंका एक अंग्रेज लेखक और रेल प्रशासनका विशेषज्ञ। वह १८६० से १८६२ ई०तक वाइसरायकी एक्जीक्यूटिव कौंसिलका अर्थ-सदस्य रहा। अपने पूर्वाधिकारी जेम्स विलसनके कार्योंको आगे बढ़ाते हुए उसने गदरके फलस्वरूप असंतुलित हो गयी भारतीय अर्थव्यवस्थाको सतुलित बनाया। उसने खर्चोंमें भारी कमी की, नमक-कर बढ़ा दिया, १० प्रतिशतकी सामान्य दरमें सीमा-शुल्क लगा दिया तथा कृषिसे इतर सभी आमदनियोंपर आय-कर लगा दिया।

लैम्बर्ट, कमोडोर—इसे लार्ड डलहौजीने जंगी जहाजका कमांडर बनाकर बर्माके राजा पगानके पास भेजा और माँग की कि बर्मा सरकारकी वजहसे अंग्रेज व्यापारियोंको जो हानि उठानी पड़ी है उसका वह हर्जाना दे। लैम्बर्टका 'स्वभाव 'जल्दी भभक उठने' का था। वह इस बातसे एकदम आग बबूला हो गया कि रंगूनके बर्मी गवर्नरने उसके कुछ नौसैनिक प्रतिनिधियोंसे मिलनेमें इन्कार कर दिया। उसने रंगूनकी नाकेबन्दीकी घोषणा कर दी और बर्माके राजाका एक जहाज पकड़ लिया। इसपर बर्मियोंने लैम्बर्टके जहाजपर गोलाबारी शुरू कर दी। लैम्बर्टके आदेशसे जहाजपरसे भी जवाबी गोलाबारी की गयी। लार्ड डलहौजीने इस घटनाको बर्मी सरकारसे हर्जानेके तौरपर एक बड़ी रकम माँगनेका बहाना बनाया। बर्मी सरकारके इन्कार कर देनेपर दूसरा बर्मा-युद्ध (दे०) छिड़ गया।

लैंसडौन, मार्क्विस आफ—भारतका (१८८८ से १८९४ ई०तक) वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल। उसके प्रशासनकालमें भारतमें शांति रही। सिर्फ स्वतन्त्र मणिपुर राज्यमें थोड़े समयके लिए बगावत हुई, जिसके लिए राज्यके प्रधान सेनापति टिकेन्द्रजीतको जिम्मेदार ठहराया गया। बगावतको कुचल दिया गया और टिकेन्द्रजीतको फाँसी दे दी गयी। कुछ समयमें चाँदीका भाव गिरता जा रहा था और लार्ड लैंसडौनके प्रशासनकालमें इतनी मंदी आ गयी कि १८९३ ई०में टकसालोंमें चांदी और सोनेके सिक्कोंका निर्बाध रीतिसे ढालना बन्द कर दिया गया और सोना और चाँदीको रुपयेसे बदलनेके लिए भाव प्रति गिन्नी दस रुपयेके बजाय पन्द्रह रुपया कर दिया गया। इसके फलस्वरूप रुपयेकी विनिमय दर १ शिलिंग ४ पेंस निर्धारित की गयी, जिससे भारतको भारी हानि हुई।

लार्ड लैंसडौनने भारतके उत्तर-पूर्वी तथा उत्तर-पश्चिमी सीमांतोंपर 'अग्रसर नीति' कुछ सीमातक जारी रखी। बर्मापर की गयी ब्रिटिश विजयको चीनने मान्यता प्रदान कर दी। सिक्किमका स्वतन्त्र राज्य १८८८ ई० में ब्रिटिश संरक्षणमें ले लिया गया और तिब्बतके साथ उसकी सीमाका निर्धारण कर दिया गया। चटगाँवके उत्तर-पूर्वके पर्वतीय क्षेत्रमें रहनेवाले लुशाइयों, उससे और पूर्वके चिन लोगों तथा इरावदी नदीके उसपार स्थित शान राज्योंको ब्रिटिश प्रभाव-क्षेत्रमें सम्मिलित कर लिया गया। उत्तर-पश्चिममें क्वेटासे बोलन दर्रेतक सामरिक महत्त्वकी रेलवे लाइनका निर्माण किया गया, जिससे कंदहार तक बढ़ना सुगम हो गया। अफगान सीमापर गिलगिटके निकट हुंजा और नगरके दो छोटे-छोटे राज्योंको १८९२ ई०में ले लिया गया। उसी वर्ष चित्रालकी घाटीके मार्गपर स्थित कलात राज्यको ब्रिटिश संरक्षणमें ले लिया गया।

उत्तर-पश्चिममें ब्रिटिश शासनके इस विस्तारसे अफगानिस्तानका अमीर अब्दुर्रहमान चिंतित हो उठा और उसे अंग्रेजोंकी नीयतमें सन्देह होने लगा। अतमें १८९२ ई०में लार्ड लैंसडौनके कहनेसे अमीर अब्दुर्रहमान सर मार्टिमर डूरैण्डको अफगानिस्तानमें ब्रिटिश राजदूतके रूपमें रखनेके लिए राजी हो गया। डूरैण्ड बिना किसी रक्षक दलको साथ लिये अफगानिस्तान गया और अमीर अब्दुर्रहमानसे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करनेमें सफल हुआ। उसने कुछ विवादास्पद क्षेत्रोंके सम्बन्धमें अमीरसे समझौता कर लिया और अन्तमें अफगानिस्तान और भारतके बीच जिन क्षेत्रोंमें सीमांकन करना सम्भव था, वहाँ सीमांकन करनेमें सफल हो गया। यह सीमा-रेखा उसके नामपर 'डूरैण्ड सीमा-रेखा' कहलाती है।

लोदी वंश—इसकी स्थापना दिल्लीमें बहलोल लोदीने १४५१ ई०में की, जिसने दिल्लीकी सल्तनतपर १४५१ से १५२६ ई०तक शासन किया। इस वंशमें तीन सुल्तान बहलोल लोदी (१४५१–१४८९ ई०), सिकन्दर लोदी १४८९–१५१७ ई०) तथा इब्राहीम लोदी (१५१७–२६ ई०) हुए। इस वंशको बाबरने समाप्त कर दिया। उसने १५२६ ई०में पानीपतकी पहली लड़ाईमें इब्राहीम लोदीको पराजित कर मार डाला।

लोहर वंश—इसकी स्थापना कश्मीरमें १००३ ई०में संग्राम-

राजने की। उसे अपनी चाची रानी दिद्दा (दे०) से कश्मीरका सिंहासन प्राप्त हुआ था। उस समयतक कश्मीरका राज्य अतःपुरके पड्यन्त्रोसे इतना निर्बल हो गया था कि उत्तरी भारतपर मुसलमानोको अधिकार करनेसे रोकनेके लिए वह कुछ नही कर सका। अतमे १३३९ ई०मे एक मुसलमान सरदार शाह मिर्जा (दे०) ने, जो १३१५ ई०मे कश्मीरके अतिम लोहर राजाकी नौकरी करने लगा था, लोहर वशका उन्मूलन कर दिया।

लोहानी–एक अफगान कबीला, जो दरिया खाँ लोहानीके नेतृत्वमे बिहारमे बस गया। सुल्तान इब्राहीम लोदी (१५१७–२६ ई०) (दे०) के राज्यकालमे उसके साथ इतना निष्ठुरतापूर्ण व्यवहार किया गया कि उसने दिल्लीके खिलाफ बगावत कर दी और बिहारमे अपना स्वतत्र राज्य स्थापित कर लिया। बादमे बाबर (१५२६–३० ई०) ने उसे १५२९ ई०मे घाघराकी लडाईमे हरा कर अपने अधीन किया।

ल्हासा–तिब्बतकी राजधानी, जिसकी स्थापना ६३९ ई०मे राजा स्रोग-त्सान गम्पो (६२९–६९८ ई०) ने एक झील मे पत्थर भरवा कर की। यह नगर चीनसे भारत आनेके मार्गपर स्थित है। तिब्बती लोगोके अनुरोध करनेपर अनेक बौद्ध भिक्षु भारतसे यहाँ आये, जिनमे अतिशा (दे०) सबसे प्रसिद्ध था। बादमे तिब्बती लोग इस बातको नापसन्द करने लगे कि अग्रेज लोग ल्हासा आयें। परतु १९०४ ई०मे सर फासिस यगहस्बैण्ड (दे०) के नेतृत्वमे एक ब्रिटिश सेना तिब्बतमे जबर्दस्ती घुस गयी और यूरोपीय लोगोके लिए ल्हासा नगरका द्वार खोल दिया।

ल्हासाकी सधि–१९०४ ई०मे सर फासिस यगहस्बैण्ड द्वारा तिब्बतपर थोपी गयी, जो एक ब्रिटिश सेना लेकर तिब्बतमे घुस गया था। इस सन्धिमे निम्न शर्ते थी; (१) भारत और तिब्बतके बीच व्यापारको बढाने तथा प्रोत्साहन देनेके लिए यातुङ्ग, ग्यान्त्से तथा गरतोकमे व्यापारिक केन्द्रोकी स्थापना की जायगी, (२) ग्यान्त्सेमे एक ब्रिटिश व्यापारिक दूत नियुक्त किया जायगा जिसे ल्हासा तक जानेका अधिकार होगा, (३) तिब्बत ७५ वर्ष तक प्रति वर्ष एक लाख रुपया हर्जाना देगा, (४) जब तक सारा हर्जाना चुकता नही कर दिया जायगा चुम्बी घाटीपर ब्रिटिश फौजोका अधिकार रहेगा, (५) तिब्बती क्षेत्रका कोई भाग किसी विदेशी ताकतको हस्तातरित नही किया जायगा; (६) किसी विदेशी ताकत या प्रजाको रेलवे लाइन बिछाने, सडक बनाने, तारके खम्भे खडे करने अथवा खानोसे उत्खनन करनेकी कोई सुविधा तब तक नही प्रदान की जायगी जब तक अग्रेजोको वही सुविधा नही दी जायगी। सन्धिकी शर्ते बहुत कठोर थी, अतएव उनका तीव्र विरोध हुआ। परिणामस्वरूप हर्जानेकी रकम ७५ लाखसे घटाकर २५ लाख कर दी गयी, चुम्बी घाटीपर अधिकार रखनेकी अवधि घटाकर तीन वर्ष कर दी गयी तथा ब्रिटिश व्यापारिक दूतके इच्छानुसार ल्हासा तक जानेके अधिकारकी बात निकाल दी गयी। १९०६ ई०मे चीनने इस सन्धिका अनुमोदन कर दिया। चीन और इग्लैण्ड दोनो तिब्बतकी अखण्डताका सम्मान करनेपर सहमत हो गये।

व

वजीर अली–अवधके नवाब आसफुद्दौला (१७७५–९७ ई०) का अवैध पुत्र। १७९७ ई०मे पिताकी मृत्युके बाद उसे अवधका नवाब बनाया गया, परन्तु दूसरे ही वर्ष ब्रिटिश सरकारने उसे पदच्युत कर दिया और उसके स्थानपर उसके चाचा सादत अली (१७९८–१८१४ ई०) को नवाब बनाया। बादमे वजीर अलीने ब्रिटिश रेजिडेट मि० चेरीकी हत्या करा दी और विद्रोहका प्रयास किया, किन्तु उसे दबा दिया गया।

वजीर खाँ–सरहिन्दका मुगल फौजदार, जो गुरु गोविन्दसिह (दे०) के विरुद्ध लडा और जिसने उनके दो नाबालिग पुत्रोकी हत्या कर दी। १७०८ ई०मे गुरु गोविन्द सिहके मरणोपरान्त वीरबदाने सरहिन्दपर आक्रमण किया और वजीर खा को परास्त कर मार डाला।

वजीरी–अविभाजित भारतके उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रातका एक कबीला, जो ब्रिटिश शासन-कालमे भारत-अफगान सीमाको विभाजित करनेवाली डूरड रेखाके इस पार रहता था। वजीरी लोग स्वतन्त्रता-प्रिय और लडाकू प्रकृतिके होते है और उनको अपने अधीन रखनेके लिए भारतकी अग्रेज सरकारको अनेक बार उनके विरुद्ध फौजी काररवाई करनी पडी।

वझिष्क–सम्भवतः कुषाण सम्राट् कनिष्क (दे०) का पिता था।

वनपाल, राणा–सन्तूर नामक छोटेसे राज्यका शासक, जिसने सुल्तान नासिरुद्दीन (१२४६–६६) के विद्रोही

और बयाना पूर्वी राजस्थानके शासक कुतलग खाँ को शरण दी थी। लेकिन कुतलग खाँ सुलतानके प्रतिनिधि बलबनसे वहाँ भी हार गया और उसे भागना पड़ा।

वनवासी (जिसे जयन्ती अथवा वैजयन्ती भी कहते हैं)–बम्बई राज्यके दक्षिणी भागमे तुङ्गभद्राके उत्तरी तटपर स्थित प्रसिद्ध नगर। ई० तीसरी शताब्दीके मध्यमे सातवाहनोकी शक्ति क्षीण होनेके बाद इस नगरका उत्कर्ष हुआ और कदम्ब राजवश (दे०) की राजधानीके रूपमे सुविख्यात हुआ, जिन्होने इस क्षेत्रमे तीसरी शताब्दीसे लेकर छठी शताब्दी तक शासन किया। यह नगर जयन्ती अथवा वैजयन्तीके नामसे भी जाना जाता है। कदम्ब वशके पतनके बाद इसकी भी अवनति हो गयी।

वराहमिहिर–प्रसिद्ध हिन्दू खगोलवेत्ता, जो ५०७ से ५८७ ई०के मध्य हुआ। अनुश्रुति है कि वह उज्जैन (दे०) के प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्यके दरबारमे था। उसके ग्रथोमे बहुतसे यूनानी नाम मिलते हैं, जिससे पता चलता है कि वह यूनानी ज्योतिष सिद्धान्तोसे परिचित था।

वरुण–एक वैदिक देवता। आकाश अथवा द्यौ के देवताओमे उनका मुख्य स्थान था। ऋग्वेद तथा अथर्ववेदमे वरुणकी कई स्तुतियाँ मिलती हैं।

वर्थेमा लुडोविको डि–एक इतालवी यात्री सुलतान महमूद बेगडाके राज्यकाल (१४५९–१५११ ई०)मे उसने गुजरातका भ्रमण किया। उसने अपने यात्रा-विवरणमे सुलतान की आदतोके विषयमे अनेक विचित्र एव अनोखी बाते लिखी हैं।

वर्धमान महावीर–देखिये, 'महावीर'।

वर्नाक्यूलयर प्रेस ऐक्ट–वाइसराय लिटन (दे०) द्वारा १८७८ ई०मे पास हुआ। इस ऐक्टने भारतीय भाषाओमे प्रकाशित समाचार पत्रोपर नियन्त्रण लगा दिया। किन्तु यह अग्रेजीमे प्रकाशित समाचार पत्रोपर लागू नही हुआ। फलस्वरूप भारतीयोने बडा विद्रोह किया। यह १८८२ ई० मे लार्ड रिपन (दे०) द्वारा निरस्त कर दिया गया।

वलजाह नवाब–देखिये, 'मुहम्मद अली'।

वली उल्लाह शाह–(१७०३–६२) दिल्ली का एक प्रसिद्ध मुसलमान धर्माचार्य। उसनें कुरानका फारसीमे अनुवाद किया और इस्लाममे सुधारका आन्दोलन चलाया। उसके शिष्य बरेलीके सैय्यद अहमदने अन्तत वहाबी आन्दोलन (दे०) मे भाग लिया।

वल्लभी–(वल्लभी) नगर एव राज्यका नाम। लगभग पाँचवी शताब्दीमे इसकी नीव मैत्रको (दे०) ने डाली थी। इस राज्यके अन्तर्गत मूलत पूर्वी काठियावाड आता था। वल्लभी नगर अब बालाघाट गाँव बन गया है। इसका प्रथम राजा द्रोण सिंह था, जिसने महाराज की पदवी धारण करके छठी शताब्दीके प्रारम्भमे शासन किया। इस राजवशकी एक शाखा मोला-पो अर्थात् पश्चिमी मालवामे स्थापित हुई। राजा शीलादित्य, धर्मादित्य इसी शाखाका था, जिसने सातवी शताब्दीके प्रथम दशकमे शासन किया। शीलादित्यके भतीजे ध्रुवसेन (जो ध्रुवभट भी कहलाता था) के शासनकालमे दोनो शाखाएँ सयुक्त हो गयी। ध्रुवसेनका विवाह हर्षवर्धनकी पुत्रीसे हुआ था।

हर्षवर्धनकी मृत्युके उपरान्त वल्लभी राज्य उत्तरोत्तर शक्तिशाली होता गया, किन्तु ७७० ई० मे अरबोंने उसे ध्वस्त कर डाला। वल्लभी नगर धन-धान्यसे सुसम्पन्न था और वहाँ अनेक ख्यातिप्राप्त बौद्ध आचार्य रहते थे। यह विद्याका महान् केन्द्र था और सातवी शताब्दीमे नालन्दाके समान प्रसिद्ध था। दूर-दूरसे विद्यार्थी विद्याध्ययनके लिए यहाँ आते थे। चीनी यात्री ह्युएनसाँग भी यहाँ आया था।

वल्लाल सेन–बगालके सेन वश (दे०) का दूसरा राजा (लगभग ११५८-७९ ई०)। वह अपने पिता विजयसेनका उत्तराधिकारी बना। उसने सम्भवत. मगधराज गोविन्दपालको परास्त किया और मिथिलापर भी चढाई की। उसके राज्यके अन्तर्गत वग, वारेन्द्र, राढ, बाग्डी और मिथिला आते थे। उसने अनेक सामाजिक सुधार किये और बगालमे वर्णाश्रम धर्मकी पुन प्रतिष्ठा करनेके लिए कुलीन-प्रथाका प्रचार किया। वह उद्भट विद्वान् तथा प्रसिद्ध लेखक था। उसने दो ग्रथोकी रचना की–दानसागर और अद्भुत सागर। दानसागरमे विभिन्न प्रकारके दानोका उल्लेख है और अद्भुतसागरमे शकुनो-अपशकुनो और पूर्वलक्षणोका वर्णन है।

वसिष्क–कुषाण सम्राट् कनिष्क (दे०) का ज्येष्ठ पुत्र। उसकी मृत्यु पिताके जीवनकालमे ही हो जानेसे कनिष्कके बाद उसका कनिष्ठ पुत्र हुविष्क (दे०) उसका उत्तराधिकारी बना।

वसुमित्र–प्रख्यात बौद्ध दार्शनिक तथा लेखक, कनिष्क (दे०) का समकालिक। उसने चौथी बौद्ध सगीति (दे०) का सभापतित्व किया था, जो कनिष्कके राज्यकालमे कश्मीरमे सम्पन्न हुई। महाविभाषा उसकी प्रमुख रचना है।

वहाबी आन्दोलन—पाश्चात्य संस्कृति और शासनके विरुद्ध भारतीय मुसलमानोंका एक आन्दोलन। उन्नीसवीं-शताब्दीके पूर्वार्धमें इसका प्रारम्भ हुआ और इसका प्रमुख केन्द्र उत्तरी पेशावरमें स्थित सितना नामक स्थान था। नवीन अनुयायियोंकी भर्तीके लिए इसके केन्द्र पटना और बंगालके कुछ स्थानोंमें स्थापित किये गये और गुप्त रीतिसे इसका प्रसार समग्र भारतमें कर दिया गया। ब्रिटिश सैनिकोंने १८५८ ई० में वहाबियोंको सितनासे खदेड़ दिया, अतः वे मल्कामें जम गये और १८६३ ई० में सारे पंजाबमें उनका आंदोलन फैल जानेका खतरा उत्पन्न हो गया। सर नेवाइल चैम्बरलेनके नेतृत्वमें ब्रिटिश सेनाने दिसम्बर १८६३ ई० मल्कापर अधिकार करके उसे नष्ट भ्रष्ट कर डाला और वहाबी आन्दोलनको कुचल दिया।

वागह्यू एनत्से—एक चीनी राजदूत जिसने ६४३ ई०, ६४६-४७ ई० और ६५७ ई० में तीन बार भारत-भ्रमण किया। उसकी पहली यात्राके समय सम्राट् हर्षवर्धन जीवित था, किन्तु जब वह दूसरी बार आया, उसके राजधानी पहुँचनेके पहले ही सम्राट्का निधन हो चुका था। हर्षकी मृत्युपरात उसके मंत्री अर्जुनने सिंहासनपर अधिकार कर लिया। उसने चीनी दूतमंडलपर भी आक्रमण कर दिया और अंगरक्षकोंकी हत्या कर उसकी सम्पत्तिको लूट लिया। किन्तु वाग ह्यएनत्से तिब्बत भाग जानेमें सफल हुआ, जहाँके राजा स्रोङ्गचन्-साम् पो (दे०) ने उसे शरण दी और अपनी सेना उसके साथ कर दी। इस सेनाकी सहायतासे वागह्यएनत्सेने तिरहुतपर आक्रमण किया और अर्जुनको परास्त करके बंदी बना लिया। इसके बाद वह विजयी बनकर चीन वापस लौट गया। ह्वनाग एनत्से ६५७ ई० में तीसरी और अंतिम बार तीर्थाटनके लिए भारत आया। उसने वैशाली एवं बोध गया सरीखे बौद्ध तीर्थस्थलोंपर वस्त्रदान किया और अफगानिस्तान होकर पामीरके मार्गसे स्वदेश लौट गया।

वाइसराय—१८५८ ई०में इंग्लैण्डकी सम्राज्ञी द्वारा भारतका शासन-प्रबन्ध अपने हाथमें लेनेके बाद भारतके गवर्नर-जनरलकी सरकारी पद संज्ञा 'वाइसराय' (राज-प्रतिनिधि) कर दी गयी। लार्ड कैनिंग, जो उस समय गवर्नर-जनरल था, १ नवम्बर १८५८ ई० को प्रथम वाइसराय बना। गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया ऐक्ट १९३५ द्वारा इस पदका नया नामकरण 'सम्राटका प्रतिनिधि' कर दिया गया। लार्ड लिनलिथिगो अन्तिम वाइसराय था।

वाकाटक राजवंश—चौथी शताब्दीके प्रारम्भमें बुन्देलखण्ड और पेनगंगाके बीच विंध्यशक्तिके पुत्र प्रवरसेन प्रथम द्वारा प्रवर्तित। प्रवरसेन शक्तिशाली राजा था जिसने बरारपर अधिकार कर लिया। उसकी मृत्युके बाद उसका राज्य सम्भवतः बँट गया। दक्षिणी भाग उसके पुत्र शिवसेन और उत्तरी भाग उसके पौत्र रुद्रसेन प्रथमके अधिकारमें चला गया। रुद्रसेन प्रथमका पुत्र और उत्तराधिकारी पृथ्वीसेन प्रथम, समुद्रगुप्त (दे०) का समकालिक था। कारण जो भी रहा हो, समुद्रगुप्तने पृथ्वीसेनको तनिक भी क्षति नहीं पहुँचायी।

पृथ्वीसेनके पुत्र और उत्तराधिकारी रुद्रसेन द्वितीयका विवाह तृतीय गुप्त सम्राट चंद्रगुप्त द्वितीयकी पुत्री प्रभावती गुप्तके साथ हुआ और वह सम्भवतः गुप्तोंका माडलिक राजा था। प्रभावती गुप्ताके तीन पुत्र थे, यथा दिवाकर सेन, दामोदर सेन और प्रवर सेन द्वितीय, जो सम्भवत एक दूसरेके बाद सिंहासनपर बैठे। अंतिम राजाके विषयमें जो लगभग ४१० ई० में सिंहासनपर आसीन हुआ, अनुमान किया जाता है कि धीरे धीरे उसने गुप्त सम्राट्के आधिपत्यसे अपनेको स्वतंत्र कर लिया। बादमें पाँचवी शताब्दीके उत्तरार्धमें वाकाटक नरेशोंका अस्थायी रूपसे मालवापर आधिपत्य स्थापित हो गया और अन्तिम राजा हरिसेनने दक्षिणापथ तक राज्य विस्तार कर लिया। परन्तु सातवीं शताब्दीके प्रारम्भमें वाकाटक वंशका अंत हो गया। अजन्ताकी कुछ गुफाएँ उनके उत्कर्षकालमें निर्मित हुईं। (राय चौधरी० पृ० ५४१)

वाजिद अली शाह—अवधका अन्तिम नवाब (१८४७-५६ ई०)। कुशासनके आरोपमें वह १८५६ ई० में लार्ड डलहौजी (दे०) द्वारा पदच्युत कर दिया गया और उसे निर्वासित कर कलकत्ता भेज दिया गया, जहाँ वह मृत्युपर्यन्त रहा। इस कालमें उसको पेंशनके रूपमें बारह लाख रुपये मिलते रहे।

वाटसन, एडमिरल—ईस्ट इण्डिया कम्पनीके अधीन एक नौ-सेना अधिकारी, जो १७५४ ई० में भारत आया और १७५६ ई० तक मद्रासके समुद्र क्षेत्रमें तैनात रहा। फिर उसे पाँच युद्धपोतों तथा पाँच रसदके जलपोतोंके साथ कलकत्ता (दे०) पर पुनः अधिकार करनेमें क्लाइवकी सहायताके लिए बंगाल भेज दिया गया। नवाब सिराजुद्दौला (दे०) ने कलकत्तासे अंग्रेजोंको निकाल बाहर कर दिया था। वाटसनने बिना विरोधके, जनवरी १७५७ ई० में कलकत्तापर पुनः अधिकार कर

लिया और कुछ दिन बाद हुगलीपर भी अधिकार कर लिया। इसके उपरान्त मार्च १७५७ ई० मे इसने गगामे अपना बेड़ा चद्रनगर (दे०) तक ले जाकर फ्रांसीसी दुर्गपर गोलाबारी की, जिसे अन्तत. आत्मसमर्पणके लिए बाध्य होना पडा। इसके बाद नवाब सिराजुद्दौलाको अपदस्थ करनेके लिए क्लाइवने जो षड्यत्र रचा उसमे वह भी सम्मिलित हो गया। परन्तु उसने अमीचन्द (दे०) को दिखानेके लिए नकली सधि-पत्रपर हस्ताक्षर करनेसे इन्कार कर दिया, अत. राबर्ट क्लाइवने उसके जाली हस्ताक्षर बना दिये।

वातापी (अथवा बादामी)–चालुक्य वशकी राजधानी पुलकेशी प्रथमने छठी शताब्दीमे डाली। यह आधुनिक बम्बई राज्यके बीजापुर जिलेमे स्थित था।

वायपुराण–अठारह पुराणो (दे०)मे से प्राचीनतम पुराण। सभवत चतुर्थ शताब्दी ईसवीमे इसे वर्तमान रूप प्राप्त हुआ। इसमे दी गयी प्राचीन राजवशावलियाँ अन्य पौराणिक वशावलियो की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय तथा पूर्ण मानी जाती है।

वारगल–एक नगर और राज्यका भी नाम, जिसकी यह राजधानी था। यह काकतीय वश (दे०) के राजाओके शासनाधीन था और १३१० ई०मे अलाउद्दीन खिलजीने इसपर चढाई की और अन्तत. इसे दिल्ली सल्तनतमे मिला लिया।

वाराणसी–आधुनिक बनारस, जो गगाके उत्तरी तटपर उसकी दो सहायक नदियो, वरुणा और असीके बीचमे स्थित है। यह गगाके अर्धचन्द्राकार मोडके किनारे फैला हुआ है। इसका उल्लेख सर्वप्रथम अथर्ववेदमे काशी राज्य की राजधानीके रूपमे हुआ है। सनातनी हिन्दू सामान्यतः इसे काशीके ही नाम से पुकारते है। अति प्राचीनकालमे हिन्दुओकी सात पवित्र नगरियोमेसे एकके नामसे इसकी प्रसिद्धि रही है। काशीका राज्य कालातरमे कोशलके बडे राज्यमे विलीन हो गया किन्तु काशी अथवा वाराणसी नगर भारतीय इतिहासमे, पवित्र नगरी तथा प्रमुख विद्या-केन्द्रके रूपमे सदा ही फलता-फूलता रहा। गौतमबुद्धके समयमे वाराणसी धर्म, सस्कृति और ज्ञानका इतना महत्त्वपूर्ण केन्द्र था कि बुद्धने अपना प्रसिद्ध प्रथम धर्मोपदेश धर्मचक्र-प्रवर्तन यहाँ ही किया था। जैन भी इसे विद्याका महत्त्वपूर्ण केन्द्र मानते है और यह दावा करते है कि उनके धर्मप्रवर्तक स्वामी पार्श्वनाथ वाराणसीके ही एक राजकुमार थे। मध्यकालके प्रारम्भमे वाराणसी कन्नौजके गहडवाल राजाओकी अधीनतामे था और मुसलमानो द्वारा कन्नौज जीत लेनेपर यह भी उनके नियत्रणमे चला गया और दिल्लीकी सल्तनतका एक हिस्सा बन गया। बादमे १७७५ ई० तक अवधके नवाबके राज्यका अग बना रहा, जब स्थानीय हिन्दू राजा चेतसिह (दे०) ने ईस्ट इडिया कम्पनीसे सधि कर अपने ऊपर उसका सार्वभौम प्रभुत्व स्वीकार कर लिया। १७८१ ई०मे राजा चेतसिह को गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्सने अपदस्थ कर दिया और वाराणसी तबसे ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यका अभिन्न अग बन गया।

तीर्थ-केन्द्रके रूपमे वाराणसीका मुख्य आकर्षण विश्वनाथ (शिव) मन्दिर है। यह ज्ञात नही है कि सर्व-प्रथम इस देव मदिरकी स्थापना किसने की और मूल मन्दिर कैसा था। सभवत प्राचीन देवस्थान विश्वेश्वर मन्दिरके पिछवाडे था। बादमे स्थापित मुख्य मन्दिरको १६६९ ई०मे औरगजेबने ढहा दिया और उसके स्थानपर नष्ट हुए मन्दिरके मलबेसे एक मस्जिद बनवायी। आधुनिक मन्दिरका निर्माण अहल्याबाई होलकरके प्रयाससे बादमे हुआ। वाराणसी न केवल विद्या-केन्द्र वरन् औद्योगिक केन्द्र भी है। इसके सूती वस्त्र अपनी उत्कृष्टताके लिए कौटिलीय अर्थशास्त्रके कालमे भी (तीसरी शताब्दी ई० पू०) प्रसिद्ध थे। वाराणसी आज भी रेशमी, जरी, धातुके काम तथा सूती वस्त्रोके लिए प्रसिद्ध है। वाराणसीको, जिसकी प्राचीन भारतीय सस्कृति और धार्मिक जीवनके केन्द्रके रूपमे दीर्घकालसे प्रसिद्धि रही है, आजभी भारतके शैक्षिक मानचित्रमे प्रमुख स्थान प्राप्त है। यहाँ अनेक आधुनिक शिक्षा सस्थाएँ है जिसमे बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय सर्वाधिक प्रसिद्ध है। हालके वर्षोमे राजनीतिक क्षेत्रमे वाराणसीका अधिक महत्त्व नही रहा है किन्तु इसी नगरमे गोपालकृष्ण गोखलेकी अध्यक्षतामे काग्रेसका इक्कीसवाँ अधिवेशन हुआ था, जिसमे देशके लिए पूर्ण स्वाधीनताकी माँग करनेवाले गरमदलका आविर्भाव हुआ था।

वाल्मीकि–प्रचेताके वशज एक ऋषि। पारपरिक रूपसे यह विश्वास किया जाता है कि वे सस्कृतके प्रसिद्ध महाकाव्य रामायण (दे०) के रचयिता थे। उन्हे सस्कृत भाषाका आदि-कवि माना जाता है।

वासव–कल्याणीके कलचुरि वशी राजा बिज्जलका मत्री। राजा बिज्जलने ११६७ ई०मे सिहासन त्याग दिया, वासव लिंगायत अथवा वीरशैव सम्प्रदायका प्रवर्तक था।

वासिष्ठी-पुत्र श्री पुलमावि–एक सातवाहन राजा, जिसने

१३० ई० के बाद सिंहासन ग्रहण किया। गोदावरीपर स्थित पैठान अथवा प्रतिष्ठान उसकी राजधानी थी। उसने एक विशाल राज्यपर, जो कृष्णा-गोदावरी क्षेत्र और महाराष्ट्र तक विस्तृत था, शासन किया।

वासिष्ठी-पुत्र सातकर्णि—एक सातवाहन राजा। वंशानुक्रममे उसकी ठीक स्थितिका निर्धारण नही हो सका है। सम्भवत यह वही सातवाहन राजा था जिसने प्रभावशाली महाक्षत्रप रुद्रदामा (दे०) की पुत्रीसे व्याह किया था। वह अपने श्वसुर द्वारा दोबारा परास्त हुआ, किन्तु निकट सम्बन्धी होनेके कारण रुद्रदामाने उसका सर्वनाश नही किया।

वासुदेव—एक देवता, जिसकी उपासना ईसापूर्व चतुर्थ शताब्दीमे पाणिनिके कालमे प्रचलित होनेके प्रमाण मिलते है। वासुदेव विष्णुके अवतार माने जाते है।

वासुदेव—पाटलिपुत्रके कण्ववंशका प्रवर्तक। कण्ववंशी राजा शुंगो (दे०) के उत्तराधिकारी थे। वासुदेव ब्राह्मण था, जो अन्तिम शुंग सम्राट् देवभूति अथवा देवभूमिका मन्त्री रहा। देवभूति (दे०) की हत्या के बाद वह ७३ ई०पू० मे सिंहासनारूढ हुआ। उसके द्वारा प्रवर्तित राजवंशमे चार राजा हुए, यथा वासुदेव, जिसने नौ वर्ष शासन किया, उसके बाद उसका पुत्र भूमिमित्र, फिर उसका पुत्र नारायण और अंतमे नारायणका पुत्र सुशर्मा। २८ ई०पू०मे सातवाहन वंशके प्रवर्तक सिमुक (दे०) ने सुशर्माको पदच्युत कर दिया।

वासुदेव प्रथम—कुषाण वंश (दे०) का अन्तिम महान शासक। सम्भवतः इसने १५५ से १७७ ई०तक शासन किया। सिंध, पंजाब तथा उत्तर प्रदेशमे उसके बहुसख्यक सिक्के मिले है। किंतु उसका कोई अभिलेख मथुराके बाहर नही मिला, जिससे इंगित होता है कि उसका राज्यक्षेत्र अत्यन्त सीमित था। उसके नामसे प्रकट है, वह बौद्ध धर्मका अनुयायी न होकर ब्राह्मण धर्मका अनुयायी था। वह सम्भवतः शिवभक्त था, जिसकी प्रतिमा उसके अनेक सिक्कोपर मिलती है। वासुदेव प्रथमके उपरान्त कुषाण साम्राज्यका शीघ्रतासे पतन हो गया। वासुदेव प्रथमकी मृत्युके बाद अन्तिम कुषाण राजाओके विषयमे कुछ पता नही चलता, केवल कुषाण राजाओके नामोका पता चलता है, यथा वासुदेव द्वितीय और वासुदेव तृतीय।

वास्कोडिगामा—पहला पुर्तगाली, बल्कि पहला यूरोपीय नाविक, जो उत्तमाशा अन्तरीपको पार कर मई १४९८ ई०मे कालीकट पहुँचा। तत्कालीन हिन्दू राजा जमोरिनने उसका अच्छा सत्कार और स्वागत किया, यद्यपि तुर्की और अरब व्यापारियोने उसका यथाशक्ति विरोध किया। इसके बावजूद वास्कोडिगामा कोचीन और कन्नौरकी यात्रा करनेमे सफल हुआ। अगस्त १४९९ ई०मे वह समुद्रके रास्ते सकुशल लिस्बन वापस पहुँच गया। इस प्रकार उसने यूरोप और भारतके बीच सीधे समुद्री मार्गका आविष्कार किया।

विक्टोरिया, साम्राज्ञी (१८१९–१९०१)–१८३७ ई०मे ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैण्डकी महारानीके रूपमे सिंहासनपर आरूढ हुई। १८७७ ई०मे वह भारतकी सम्राज्ञी घोषित की गयी। भारतका शासन-प्रबन्ध १८५८ ई०मे ईस्ट इण्डिया कम्पनीके हाथसे निकलकर ब्रिटिश राजसत्ताको सौप दिया गया। इसकी जो उद्‌घोषणा, महारानीके नामसे की गयी, उससे वह भारतीयोमे जनप्रिय हो गयी, क्योकि ऐसा विश्वास किया जाता था कि उद्‌घोषणामे जो उदार विचार व्यक्त किये गये थे वे उनके निजी उदार विचारोके प्रतिबिम्ब (दे०) स्वरूप थे। महारानी विक्टोरियाने कभी भारत-भ्रमण नही किया और भारतीय प्रशासनका सचालन सवैधानिक शासककी हैसियतसे करते हुए उन्ही नीतियोका अनुमोदन किया जिसकी सिफारिश उनके उत्तरदायी मन्त्रियोने की। फिर भी उन्होने भारतीयोके बीच बडी लोकप्रियता अर्जित की और १९०१ ई०मे जब उनकी मृत्यु हुई, तो सारे भारतमे शोक मनाया गया।

विक्टोरिया मेमोरियल (कलकत्तामे)–यह लार्ड कर्जन (दे०) द्वारा अभिकल्पित होकर साकार रूपमे प्रतिष्ठित हुआ। उसने भारतमे ब्रिटिश शासनकी नीवको मजबूत करनेके खयालसे एक विशाल स्मारक बनानेका विचार किया। यह संगमरमरकी भव्य इमारत है, जो कलकत्ताके मैदानमे निर्मित की गयी है। परन्तु इसमे ताज (दे०) की सुन्दरता और भव्यता नही है। सभवतः कर्जन इसका निर्माण करके ताजमहलको मात देना चाहता था।

विक्रमशिला—प्रसिद्ध बौद्ध विद्यापीठ। यह बिहारमे भागलपुर जिलेके पठारघाट नामक स्थानमे स्थित था। पाल राजा देवपाल (दे०) ने विक्रमशिलामे पहले महाविहारकी स्थापना की जो क्रमश विद्याका प्रमुख केन्द्र बन गया। यहीसे प्रख्यात बौद्ध भिक्षु (दे०) अतिश (दीपकर श्रीज्ञान) १०३८ ई०मे तिब्बत गया था।

विक्रम सवत्—ईसा पूर्व ५८ और ५७ के मध्यसे प्रचलित एक वर्षगणना। ऐसा माना जाता है कि इसकी स्थापना

विक्रमादित्य (दे०) नामक राजाने की थी। (देखिये, संवत्, प्राचीन भारतीय)

विक्रमांक या विक्रमादित्य–कल्याणीका एक चालुक्य राजा (१०७६–११२६), जो पराक्रमी योद्धा तथा साहित्यका संरक्षक था। उसके दरबारी कवि बिल्हणने 'विक्रमांक-चरित'के नामसे उसकी जीवनी लिखी है। प्रसिद्ध धर्मशास्त्रकार 'मिताक्षरा'के रचयिता विज्ञानेश्वरको भी उसका संरक्षण प्राप्त था। उसने 'विक्रमादित्य'की उपाधि धारण की थी।

विक्रमादित्य–एक उपाधि, जिसे अनेक प्राचीन भारतीय राजाओंने धारण किया। देवकथाओंके अनुसार विक्रमादित्य उज्जयिनीका राजा था, जिसके दरबारमें नवरत्न रहते थे। इनमें कालिदास (दे०) भी थे। कहा जाता है, वह बड़ा पराक्रमी था और उसने शकोंको परास्त किया था। ईसा पूर्व ५८–५७ में प्रारम्भ विक्रम संवत् राजा विक्रमादित्यका चलाया हुआ माना जाता है। परन्तु इतिहासमें ईसा पूर्व प्रथम शताब्दीके उत्तरार्द्धमें पश्चिमी भारतमें शासन करनेवाले ऐसे किसी पराक्रमी राजाका उल्लेख नहीं प्राप्त होता जिसने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की हो।

इतिहाससे प्रमाणित होता है कि विक्रमादित्य उपाधि अनेक शक्तिशाली सम्राटोंने धारण की, यथा चन्द्रगुप्त द्वितीय (३८०–४१४ ई०), उसके पुत्र स्कन्दगुप्त (४५५–६७ ई०), और अनेक चालुक्य राजाओंने, यथा विक्रमादित्य प्रथम (६५५–८० ई०), विक्रमादित्य द्वितीय (७३३–४६ ई०), त्रिभुवनमल्ल (१००६–१६ ई०) तथा विक्रमादित्य अथवा विक्रमांक (१०७६–११२५ ई०)। इन राजाओंमें तृतीय गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय, जिसने शक क्षत्रपोंको परास्त किया, उज्जैन जिसकी राजधानी थी और जिसका शासनकाल बौद्धिक उपलब्धियों तथा चतुर्दिक समृद्धिके कारण प्रसिद्ध है, और जिसके कालमें सम्भवतः कालिदास भी हुआ था, उसीको मूल राजा विक्रमादित्य मानना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। बादमें विक्रमादित्यको लेकर अनेक दंतकथाएँ प्रचलित हो गयी। (भण्डारकर–हिस्ट्री आफ दक्कन)

विग्रहराज–अजमेरके चौहान वंशके चार राजाओंने यह नाम धारण किया। इन चारमेंसे विग्रहराज द्वितीयने दसवीं शताब्दीके तृतीय चतुर्थांशमें शासन किया और विग्रहराज चतुर्थने बारहवीं शताब्दीके मध्यमें। उसने अपने पैतृक राज्यको पर्याप्त रूपसे विस्तृत किया। वह संस्कृत साहित्यका संरक्षक और स्वयं नाटककार था, जिसने 'हरकेलि नाटक'की रचना की। वह पृथ्वीराज या रायपिथौरा (दे०) का चाचा और पूर्ववर्ती था।

विजगापट्टम्–कारोमण्डल तटका एक बन्दरगाह। अठारहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें अंग्रेजोंने वहाँ एक व्यापारिक कोठी स्थापित की। बादको यह भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यका एक भाग बन गया। १९४२ ई०में जापानियोंने इसपर बम वर्षा की, किन्तु उससे अधिक क्षति नहीं पहुँची। अब इस बन्दरगाहको काफी विकसित कर दिया गया है, और यहाँ जहाज-निर्माणका कार्य भी होता है।

विजय नगर–एक नगर, साथ ही एक राज्यका भी नाम, जिसकी नींव दक्षिणी भारतमें तुंगभद्रा नदीके पार लगभग १३३६ ई०में संगमके पुत्र हरिहर और बुक्कने रखी। नगरका निर्माण १३४३ ई०में पूरा हुआ और दस वर्षमें ही राज्यका विस्तार दक्षिण भारतके पूर्वी समुद्रसे पश्चिमी समुद्र तक हो गया। हरिहर प्रथमने अपनी मृत्यु पर्यन्त १३५४–५५ ई० तक शासन किया। इसके बाद उसके भाई बुक्क प्रथमने बाइस वर्ष (१३५५–७७ ई०) तक शासन-संचालन किया। इन शासकोंमेंसे किसीने भी राजपदवी धारण नहीं की। बुक्क प्रथमके पुत्र और उत्तराधिकारी हरिहर द्वितीयने १३७७ ई०से महाराजाधिराज-की पदवीके साथ १४०४ ई० तक शासन किया।

विजय नगरके राजा 'राय' कहलाते थे, जिन्होंने कई क्षेत्रोंमें सफलता और गौरवके साथ १५६५ ई० तक शासन किया। विजयनगरमें तीन राजवंशोंके राजा हुए, यथा, संगम राजवंशके अन्तर्गत हरिहर द्वितीय (१३७७–१४०४ ई०), उसका पुत्र बुक्क द्वितीय (१४०४–१४०६ ई०), रामचन्द्र (१४२२ ई०), वीर विजय (१४२२–२५ ई०), देवराज द्वितीय (१४२५–४७ ई०), मल्लिकार्जुन (१४४७–६५ ई०), विरूपाक्ष (१४६५–८५ ई०) और प्रौढदेव राय (१४८५ ई०) राजाओंने राज्य किया। सालुव राजवंशकी स्थापना सालुव नरसिंह द्वारा संगम वंशके विध्वंसके बाद की गयी। यह संगम राजवंशके अन्तिम राजाओंका मंत्री था। नरसिंहने १४८६–१४९२ ई० तक शासन किया और उसका पुत्र इम्मादी नरसिंह (१४९२ से १५०३ ई०) उत्तराधिकारी बना, जो सालुव या द्वितीय राजवंशका दूसरा और अन्तिम राजा था। इसको तत्कालीन मंत्री नरसिंह नायकने पदच्युत कर एक नये राजवंशकी स्थापना की, जो तुलुव राजवंश कहा जाता है। इसके अन्तर्गत छ राजा हुए, यथा नरेश नायक (१५०३ ई०), उसका पुत्र वीर नरसिंह (१५०३–१५०९ ई०), कृष्ण देव राय (१५०९–२९ ई०), अच्युत

(१५२९–४२ ई०), व्यंकट (१५४२ ई०) और सदाशिव (१५४२–६५ ई०)। तालीकोटके युद्धके उपरान्त इस वंशका भी उच्छेद हो गया। इस वंशके विनाशके साथ ही विजय नगर राजधानी भी विनष्ट हो गयी और सदाशिव वेनुगोंडा भाग गया, जहाँ १५७० ई०मे तिरुमल्ल द्वारा वह पदच्युत कर दिया गया।

तिरुमल्लसे चौथा राजवंशका आरंभ हुआ। इसने १५७० से १६४२ ई० तक शासन किया। पहले इन लोगोकी राजधानी पेनुगोण्डा थी, उसके बाद चन्द्रगिरि हो गयी।

व्यावहारिक रूपसे 'विजयनगर' राज्यका इतिहास विजय नगरके विनाशके साथ ही साथ समाप्त हो जाता है। राज्यके पतनका कारण, सीमाके मुसलमान बहमनी राज्यसे निरन्तर युद्ध था। धार्मिक विरोधके कारण उत्पन्न द्वेषभावके अतिरिक्त रायचूर दोआब भी दोनो राज्योके बीच संघर्षका कारण बना रहा और साधारणतया बहमनी सुल्तान ही इसका लाभ उठाते रहे। केवल कृष्णदेव राय (दे०)के शासनकाल (१५०९–२९ ई०) मे, जो सबसे प्रतापी राजा था, विजयनगर राज्य लाभमे रहा। उसने मुसलमान पडोसियोसे रायचूर छीन कर बीदर तथा बीजापुरके सुल्तानोको भी परास्त किया। उसने अपने प्रभुत्वका विस्तार मद्रास राज्य तक ही नही, अपितु मैसूर तक कर लिया, किन्तु ये उपलब्धियाँ स्थायी न रह सकी। बीजापुर, गोलकुण्डा, अहमद नगर और बीदरके सुल्तानोके संयुक्त प्रयाससे विजयनगर १५६५ ई० मे तालीकोटके युद्धके पश्चात् विनष्ट हो गया। सदाशिवको दूरस्थ राज्य पेनूगोण्डा भाग कर अपने प्राण बचाने पडे।

अपने उत्कर्ष-कालमे विजय नगर अत्यन्त समृद्ध और धन-धान्य संपूर्ण नगर था। उसकी किलेबंदी अत्यंत मजबूत थी। निकोलो काण्टी (१४२० ई०), अब्दुरज्जाक (१४४३ ई०), पैस (१५२२ ई०) और नूनिज जैसे विदेशी यात्रियोने उसका भूरि-भूरि प्रशंसा की है। अब्दुर रज्जाकने यहाँ तक लिखा है कि "यह नगर ऐसा है, जिसके समान धरतीपर दूसरा नगर न तो आँखोसे देखा गया है और न कानोसे सुना गया है। यह एक दूसरेके भीतर सात परकोटोसे घिरा था।' नगरकी आबादी अत्यंत धनी थी और यह सब प्रकारके धन धान्यसे पूर्ण था। फिर भी यह दुर्दैव ही कहा जायगा कि जब मुसलमान आक्रमणकारियोने तालीकोटकी विजयके बाद नगरको ध्वस्त करना शुरू किया, तब यहाँके नागरिकोने न तो किसी प्रकारका प्रतिरोध किया और न संगठित होकर उसका सामना ही किया। इससे संकेत मिलता है कि राज्यके धन-वैभव संपन्न होनेके बावजूद जनतामे शासक वर्गके प्रति किसी प्रकारका प्रेम या अपनत्व नही था।

विजय नगरके राजा संस्कृत साहित्य और विद्याके पोषक थे। वेदोके सुप्रसिद्ध भाष्यकार सायण (दे०) और उनके भाई माधवाचार्य विजयनगरके राजाओके मंत्री थे। विजयनगरके शासक ललित कलाओके भी महान पोषक थे और उन्होने अनेक भव्य मन्दिरो तथा भवनोका निर्माण कराया। उनके राज्यकालमे विजयनगरमे वास्तुकला, चित्रकला तथा तक्षण कलाकी विशिष्ट शैलीका विकास हुआ। **(आर०, ए सेवेल कृत फारगाटन इम्पायर तथा बी० ए० सालेटोर कृत सोशल एण्ड पोलिटिकल लाइफ इन विजयनगर इम्पायर)**

विजय प्रथम (वीर विजय)–विजयनगर (दे०) के प्रथम राजवंशका शासक। उसने कुछ समय तक अपने पुत्र देवराय द्वितीय (दे०)के साथ मिलकर शासन किया, जिसका प्रारम्भ १४२५ ई० मे हुआ। किन्तु शीघ्र ही देवरायने शासनकी सारी बागडोर सँभाल ली।

विजय द्वितीय–केवल एक वर्षके लिए विजयनगरका राजा रहा (१४४६–४७ ई०)।

विज्जल कालचूर्य–दक्षिणमे कल्याणीके चालुक्य वंशका अपने पुत्रोकी सहायतासे उच्छेद करके ११५६ से ११६७ ई०के बीच स्वयं सिंहासनारूढ हो जानेवाला एक शासक। ११६७ ई० मे उसने स्वयं सिंहासन त्याग दिया। विज्जलने कलचूरि वंशका सूत्रपात किया। वह जैन धर्मानुयायी था। उसके ब्राह्मण मंत्री बासवने लिंगायत अथवा वीर शैव सम्प्रदायकी स्थापना की।

विज्ञानेश्वर–एक यशस्वी धर्म शास्त्रकार। ये विक्रमादित्य चालुक्यके शासन काल (१०७६–११२६ ई०) मे चालुक्योकी राजधानी कल्याणीमे रहते थे। उनकी रचना 'मिताक्षरा' बंगाल और आसामको छोड कर सारे भारतवर्षमे हिन्दू उत्तराधिकार नियमका सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है जो याज्ञवल्क्य स्मृतिका भाष्य है। बंगाल और आसाममे रघुनन्दन (दे०) था 'दायभाग' प्रचलित है।

वितस्ताकी लड़ाई–यह पुरु (दे०) और मकदूनिया (यूनान) के राजा सिकन्दर (अलक्सान्दर)के बीच हुई। पुरुका राज्य हाईडस्पीस (झेलम अथवा वितस्ता) और असिक्नी (चनाब) नदियोके बीच था। संभवत जुलाई ३२५ ई० पू० मे सिकन्दरने अकारण उसके राज्यपर हमला कर

दिया। पुरु आरम्भिक लडाईमे हार गया, क्योंकि यूनानी सेनाओने चुपचाप बिना किसी युद्धके नदी पार कर ली। पुरु मुख्य रूपमे हाथियोंकी सेनापर निर्भर था। उसने हाथियोके पीछे ३०,००० पैदल सैनिक, ४०० अश्वारोही सैनिक तथा ३०० रथ लगा रखे थे। सिकन्दरको मुख्य रूपसे अपनी घुड़सवार सेना और घोडेपर सवार तीरन्दाजोका भरोसा था। पुरु बडी वीरतासे लडा, पर यूनानी सेनाके अधिक फुर्तीली होनेके कारण सिकन्दरकी विजय हुई। पुरु युद्धमे घायल हुआ और बन्दी बना लिया गया। विजयी यवन राजा सिकन्दरने उसके साथ सम्मानपूर्ण व्यवहार किया और उसका राज्य लौटा दिया। बादमे पुरुने सिकन्दरको पजाबके दूसरे राज्योको जीतनेमे मदद दी।

विदर्भ–आधुनिक बरार (दे०) का प्राचीन नाम।

विदिशा–एक प्राचीन नगर, जो अब भिलसाके नामसे विख्यात है और आधुनिक मध्यप्रदेशमे साँचीके निकट स्थित है।

विद्यासागर, पडित ईश्वरचन्द्र–एक प्रख्यात शिक्षाविद् और समाज-सुधारक (१८२०–९१), जो बगाल, मिदनापुर जिलेके एक निर्धन ब्राह्मण परिवारमे उत्पन्न हुए। गवर्नमेट सस्कृत कालेज कलकत्तामे शिक्षा प्राप्त कर वे बादको १८५१ ई०मे उसीमे प्रोफेसर हो गये और वहीसे १८५८ ई०मे उन्होने प्राचार्यके रूपमे अवकाश प्राप्त किया। मूलतः वे सस्कृतके विद्वान् थे, किन्तु बादमे अग्रेजी सीखी, जिसके वे आचार्य हो गये। १८४८ ई० मे उन्होने सर्वप्रथम 'वैताल पचविंशति' नामक प्रथम बगला गद्य रचना प्रकाशित की। इसके उपरान्त अन्य बगला गद्य रचनाएँ प्रकाशित करायी जिसके परिणामस्वरूप उन्हे बगला गद्य साहित्यका पिता कहा जाता है। वे परम्परानिष्ठ हिन्दू थे, अत ऐसे राजकीय समारोहोमे भाग नही लेते थे, जिनमे धोती, चद्दर और चप्पल पहन कर जाना वर्जित था। सामाजिक जीवन सम्बन्धी उनके विचार उदार और प्रगतिशील थे। उनकी सबसे बडी उपलब्धि ब्रिटिश शासनपर जोर डाल कर हिन्दू विधवा पुनर्विवाह कानून पास करवाना था। वे बडे दानशील और परोपकारी और स्वाभिमानी थे। उन्होने अनेक स्कूलोके साथ-साथ 'मेट्रोपोलिटन कालेज' की भी नीव डाली जो अब 'विद्यासागर कालेज' कलकत्ताके नामसे प्रसिद्ध है और जहाँ हिन्दू विद्यार्थी नाम मात्रके शुल्कपर उसी प्रकार शिक्षा ग्रहण करते थे जिस प्रकार गवर्नमेन्ट कालेजोमे मुसलमान विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे। वे सस्कृति निष्ठ ब्राह्मण होते हुए भी पाश्चात्य शिक्षाके प्रबल समर्थक थे और गवर्नमेन्ट सस्कृत कालेज, कलकत्ताको केवल सस्कृत पढाई तक ही सीमित रखनेके विरोधी थे। उन्होने पाश्चात्य दर्शन तथा व्यावहारिक विज्ञानके अध्ययनको विद्यालय पाठ्यक्रममे सम्मिलित करनेपर बल दिया, जिससे देशवासी भौतिक ज्ञानके क्षेत्रमे पीछे न रहे। वे बगलाके उन सपूतोमे थे, जिन्होने उन्नीसवी शताब्दीमे बगलाके पुनर्जागरणमे प्रमुख योगदान किया।

विन, चार्ल्स डब्लू० डब्लू०–बोर्ड आफ कट्रोलका अध्यक्ष, १८२७ ई०मे जूरी ऐक्ट पास किया, जिसके द्वारा भारतकी न्याय-व्यवस्थामे धार्मिक भेदभाव प्रचलित किया गया। इस ऐक्टमे व्यवस्था थी कि यूरोपीय तथा भारतीय ईसाई जूरी बन कर ईसाइयो तथा गैर-ईसाइयोके मुकदमोकी सुनवाई कर सकते है, परतु गैर-ईसाइयोके, जैसे हिन्दू या मुसलमान जूरी बन कर ईसाइयोके मुकदमेकी सुनवाई नही कर सकते। राजा राममोहन रायने कानूनकी इस धाराके विरुद्ध याचिका प्रस्तुत की और अतत यह धारा निरस्त कर दी गयी।

विनय पिटक–'त्रिपिटक'के नामसे प्रसिद्ध बौद्ध आगम ग्रथोमेसे एक। विनय पिटकके अतिरिक्त अन्य पिटक ग्रथ सुत्तपिटक और अभिधम्म पिटक है। विनय पिटकमे बौद्ध भिक्षुओके आचार-नियमो (विनय)का वर्णन है। यह तीन भागोमे विभक्त है—सुत्तविभग, परिवार और खन्धक। सुत्तविभगमे पातिमोक्ख (प्रातिमोक्ष) सम्मिलित है जिसमे उन अपराधोका वर्णन है जिनके करनेसे भिक्षु व भिक्षुणी पतित हो जाते है और उनके प्रायश्चित का विधान है। खन्धक भी दो भागोमे विभक्त है—महावग्ग और चुल्लवग्ग।

विनियम ३ (१८१८ ई० का)–भारतीयोका मुँह बन्द करनेके लिए अग्रेज सरकार द्वारा १८१८ ई०मे प्रचलित। इस कानूनके अन्तर्गत सरकार ऐसे किसी भी व्यक्तिको अनिश्चित कालके लिए कारागारमे डाल सकती थी, जिसपर उसे सन्देह हो कि उस व्यक्तिके कार्योसे भारतमे अग्रेज सरकारकी सुरक्षा और उसके हितोको हानि पहुँचेगी। प्रारम्भमे इसका उद्देश्य सशस्त्र विद्रोहोको दबाना था, परन्तु बीसवी शताब्दीके पूर्वार्द्धमे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके आन्दोलनको दबानेमे इसका विशेष प्रयोग किया गया। लाला लाजपतराय, कृष्णकुमार मित्र, सुभाषचन्द्र बोस आदि कितने ही देशभक्त इस कानूनके अन्तर्गत बन्दी बनाये गये और उन्हें बर्मा निर्वासित किया गया।

विन्दवासका युद्ध–सर आरकूट (दे०)के नेतृत्वमे अंग्रेजी सेना और काउण्ट डिलाली (दे०)के नेतृत्वमे फ्रासीसी सेनाके बीच १७६० ई०मे हुआ। इस युद्धमे फासीसी निर्णायक रूपसे परास्त हो गये। वुसी (दे०) बन्दी बन गया और लाली पाण्डिचेरी भाग गया, जहाँ उसे जनवरी १७६१ ई०मे आत्म-समर्पण करनेके लिए विवश किया गया। इस प्रकार विन्दवासके युद्धसे अंग्रेजोकी विजयने लम्बे समयसे चले आनेवाले आग्ल-फासीसी युद्धका पटाक्षेप कर दिया। इससे भारतमे फ्रासकी सत्ता सदाके लिए समाप्त हो गयी।

विस–कथसिस द्वितीयका नाम था।

विरूपाक्ष प्रथम–विजय नगरके शासक हरिहर द्वितीय (दे०) का पुत्र। १४०४ ई०मे पिताकी मृत्युके बाद उसने सिंहासनपर अधिकार कर लिया, परन्तु शीघ्र ही अपने भाई वुक्क द्वितीय (दे०) द्वारा अपदस्थ कर दिया गया।

विरूपाक्ष द्वितीय–विजय नगरके प्रथम राजवशका उपान्तिम राजा। दुराचारी होनेके कारण उसके सबसे बडे पुत्रने उसका वध कर दिया, जो स्वय बादमे अपने छोटे भाई प्रौढ देवराय द्वारा मार डाला गया। प्रौढ देवराय सगम राजवशका अन्तिम शासक था।

विल्किन्स, विलियम–वारेन हेस्टिंग्सके शासन-कालमे बगालमे ईस्ट इडिया कम्पनीकी सेवामे नियुक्त एक अंग्रेज अधिकारी, जो सस्कृत और फारसीका अच्छा विद्वान् था, जिसे गवर्नर-जनरलने प्राच्यविद्याओके अध्ययनके लिए उत्साहित किया। उसने भगवद् गीताका अंग्रेजीमे अनुवाद किया था।

विलसन, जेम्स–वाइसरायकी कार्यकारिणी परिपद्का प्रथम वित्तीय सदस्य। वह १८५९ ई०मे इस परिषद्का सदस्य बना किन्तु नौ महीने काम करनेके बाद अचानक उसकी मृत्यु हो गयी। वह सुयोग्य लेखाविद् और विल व्यवस्थापक था। अत उसने भारतमे वित्तीय शासन-पद्धतिका पुनर्गठन किया, अर्थ-व्यवस्थाको सुनिश्चित रूप-रेखा प्रदान की, पाँच वर्षके लिए आयकर लागू किया तथा वार्षिक बजट व लेखा विवरण तैयार करनेकी प्रथा चलायी।

विलसन, सर आर्कडेल–एक अंग्रेज सेना नायक, जिसने भारतमे अंग्रेजी राजकी सराहनीय सेवा की। सिपाही-विद्रोह भडक उठनेके तुरन्त बाद उसके दो ज्येष्ठ सैन्य अधिकारियोकी हैजेसे मृत्यु हो जाने तथा तीसरे अधिकारीके अस्वस्थ हो जानेपर उसे ब्रिटिश सेनाका कमाण्डर बन जाना पडा। दिल्लीकी पहाडी उस समय भी ब्रिटिश सेनाके कब्जेमे थी, किन्तु उसकी सख्या कम होनेके कारण वह विद्रोहियोको दिल्लीपर अधिकार करनेसे रोकनेमे समर्थ नही हुई और स्वय विप्लवियोके घेरेमे फँस गयी, किन्तु विलसन तव तक निर्भीकतासे मोर्चेपर डटा रहा, जब तक निकोलसन (दे०) दल बल सहित वहाँ सहायतार्थ पहुँच नही गया। छः दिन तक आमने-सामनेके भीषण युद्धके बाद सितम्बर १८५८ ई०को निकोलसनकी सहायतासे उसने दिल्लीको पुन हस्तगत कर लिया।

विलसन, होरेस हेमन–एक अंग्रेज इतिहासकार और प्राच्य सस्कृति प्रेमी तथा सस्कृत भाषाविद्। १८१६ ई०से १८३२ ई०तक वह कलकत्ताकी टकसालमे काम करता रहा और बाईस वर्ष (१८११–१८३३) बगालमे रॉयल एशियाटिक सोसाइटीके सचिव पदपर रहा। वह इस नीतिके विरुद्ध था कि जनताके धनको केवल पाश्चात्य शिक्षा दीक्षाके प्रसारमे व्यय किया जाय, जिसे मैकालेका वरदहस्त प्राप्त था। उसके रचे हुए अनेक ग्रन्थ है, यथा ऐग्लो सस्कृत डिक्शनरी, 'थेटर आफ दि हिन्दूज' और प्रसिद्ध सस्कृत नाटकोका अंग्रेजीमे अनुवाद, यथा मृच्छकटिक, मालतीमाधव, उत्तररामचरित, विक्रमोर्वशीय, रत्नावलि तथा मुद्राराक्षस। भारतीयोके मध्य शिक्षा-प्रसारमे उसकी बडी रुचि थी, अत अनेक वर्षोतक वह 'कमेटी आफ पब्लिक' एजुकेशन कलकत्ताका सदस्य रहा।

विलिग्डन, लार्ड–लार्ड इरविन (दे०)के उत्तराधिकारीके रूपमे १९३१ से १९३५ ई०तक भारतका वाइसराय और गवर्नर-जनरल। १९१३ से १९१९ ई०तक बम्बईका गवर्नर रहा और १९२४ ई०मे भारत-सरकारके प्रतिनिधिके रूपमे राष्ट्रसघमे भाग लिया। उसे भारतके राष्ट्रीय आन्दोलनके साथ तनिक भी सहानुभूति न थी। उसने भारतीय राजनीतिमे लुई १४वे की भाँति उदारवादी निरकुश शासकके रूपमे कार्य किया। उसने समझौता करनेकी उस नीतिको त्याग दिया, जिसका अनुसरण उसका पूर्ववर्ती लार्ड इरविन कर रहा था। जैसे ही गाधीजी गोलमेज काग्रेसके दूसरे सत्रमे भाग लेकर लन्दनसे वापस आये, १९३२ ई०मे उन्हें जेलमे बन्द कर दिया गया और सविनय-अवज्ञा आन्दोलनको बडी कठोरताके साथ दवा दिया गया। उसने भारतीय नेताओके विरोधके बावजूद भारतपर १९३५ ई०का शासन विधान लादनेका प्रयास किया, किन्तु वह इस कार्यमे सफल नही हो सका।

विवेकानन्द, स्वामी (१८६३–१९०२)–प्रसिद्ध हिन्दू-सन्यासी और उपदेशक। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त व्यक्ति थे। वे कलकत्ताके मध्यम वर्गीय बगाली परिवारमे उत्पन्न हुए थे और उनका मूल नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। जब वे कलकत्ता विश्वविद्यालयसे बी० ए०की उपाधि प्राप्त कर कानूनका अध्ययन कर रहे थे उसी बीच रामकृष्ण परमहस (दे०)के शिष्य बनकर ससार-त्यागी सन्यासी हो गये, और हिमालयसे कन्या कुमारी तक समग्र भारतका भ्रमण किया। राजाओ और जनसाधारण द्वारा उनका सर्वत्र हार्दिक स्वागत हुआ।

१८९३ ई०मे वे शिकागो, सयुक्त राज्य अमेरिकामे हो रहे विश्वधर्म सम्मेलनमे भाग लेनेके लिए गये। उसमे अपने प्रथम भाषणसे ही उन्होने सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया और फिर अमेरिकामे अनेक स्थानोपर उन्होने भाषण किये, जिसके फलस्वरूप उनकी कीर्ति फैलने लगी और अनेक लोग उनके प्रशसक बन गये। अनेक अमरीकी नर-नारी उनके शिष्य हो गये और रामकृष्ण परमहसकी शिक्षाका अध्ययन करनेके लिए अमेरिकामे अनेक केन्द्र स्थापित हुए। १८९६ ई०मे वे अमेरिकासे इग्लैण्ड गये जहाँ उनका बहुसख्यक अग्रेज स्त्री पुरुषोने, जिनमे मार्गरेट नोबुल (सिस्टर निवेदिता) (दे०)भी शामिल थी, सोत्साह भावभीना स्वागत किया। सिस्टर निवेदिता उनकी शिष्या बन गयी। १८९६ ई०मे भारत लौटनेपर उनका भव्य स्वागत किया गया।

उन्होने अपने देशवासियोके धार्मिक एव सामाजिक विचारोपर गहरा प्रभाव डाला। उन्होने श्रीरामकृष्ण परमहसकी सार्वभौम धार्मिक शिक्षाओके साथ-साथ सामाजिक सेवा, तथा दीन-दुखियोकी सेवापर बल दिया तथा देशवासियोमे फैला अज्ञान दूर करके उनकी आर्थिक उन्नति करने, नैतिक चरित्र ऊँचा उठाने तथा आत्मत्यागकी भावना पैदा करनेका प्रयास किया। इस कार्यके लिए उन्होने रामकृष्ण मिशनका सगठन किया, जिसका स्थायी केन्द्र बेलूरमे 'बेलूर मठ'के नामसे स्थापित किया गया। सम्पूर्ण भारतका पुनः भ्रमण करनेके बाद वे १८९९ ई०मे दुबारा अमेरिका गये और सैन-फ्रैंसिस्कोमे वेदान्त अध्ययन केन्द्र तथा रामकृष्ण मिशनकी शाखा खोली।

अमेरिकासे वापस आते समय उन्होने यूरोपके अनेक देशोका भ्रमण किया और स्वदेश आकर बनारसमे एक स्कूल और अस्पताल सहित रामकृष्ण मिशनकी शाखा स्थापित की। अथक परिश्रम, सन्यासीके कष्ट-साध्य जीवन और रामकृष्ण मिशन सगठनके भविष्यकी चिन्ताओके कारण उनका स्वास्थ्य जर्जर हो गया, फलत उन्तालिस वर्षकी अल्पायुमे १९०२ ई०मे वे ब्रह्मलीन हो गये। उनके भाषणो एव रचनाओको एकत्र करके रामकृष्ण मिशनने आठ जिल्दोमे प्रकाशित किया है। प्रत्येक जिल्दमे मुद्रित सामग्रीके ६०० पृष्ठ हैं। उनकी रचनाओमे ज्ञानयोग, राजयोग और भक्तियोग सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रथ है, जो अग्रेजी भाषामे लिखे गये हैं। उन्होने 'प्राच्य और पाश्चात्य' नामसे एक पुस्तक बगला भाषामे भी लिखी। यह कृति उनके गहन चिंतन तथा धार्मिक एव सामाजिक आदर्शोका परिचय देती है। वे कुशल पत्र-लेखक भी थे और उनके सैकडो पत्र प्रकाशित हुए है। उनकी डायरी दुर्भाग्यवश अभी तक प्रकाशित नही हो सकी है।

विवेकानन्दका गौरव इस बातमे है कि उन्नीसवी शताब्दीमे जब भारतको पिछडा हुआ देश माना जाता था और यह समझा जाता था कि उसे यूरोपसे बहुत कुछ सीखना है तब उन्होने यूरोपवासियोके हृदयमे यह बात उतारी कि भारतकी सस्कृति उज्ज्वल और उसका धर्म उदार है, जिससे यूरोपको, और ससारको बहुत कुछ सीखना है। इस प्रकार उन्होने भारत-वासियोमे नवस्फूर्ति तथा आत्मसम्मानकी नवीन भावना भर दी। चक्रवर्ती राजगोपालाचार्यने ठीक ही कहा है—"स्वामी विवेकानन्दने हिन्दुत्त्वकी रक्षा कर भारतकी रक्षा कर ली। यदि रामकृष्ण परमहस न होते तो हमने अपने धर्मको भुला दिया होता और स्वतत्रताकी प्राप्ति न कर पाते। सारा देश स्वामी विवेकानन्दका ऋणी है।" (**वर्क्स आफ स्वामी विवेकानन्द**, आठ जिल्दोमे, **लाइफ आफ स्वामी विवेकानन्द**, उनके भारतीय और यूरोपीय शिष्यो द्वारा, रमेशचन्द्र मजुमदार द्वारा सम्पादित **स्वामी विवेकानन्द सेन्टनरी वाल्यूम**)।

विश्वयुद्ध और भारत–१९१४ ई०मे प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ होनेके समय भारतीयोका अपने देशके शासनपर कोई नियत्रण नही था। भारतके ब्रिटिश शासकोने इग्लैण्डको सौ करोड रुपयोका अनुदान दिया और बहुत बडी सख्यामे भारतीय सैनिको तथा मजदूरोको विविध युद्ध मोर्चोपर भेजा। उन्होने अपने कर्त्तव्योका पालन इतनी निष्ठासे किया और ब्रिटेनकी अतिम विजयमे इतना महत्त्वपूर्ण योगदान किया कि अग्रेजोको स्वीकार करना पडा कि "भारतकी सहायताके बिना युद्ध बहुत लम्बा चलता। विजयश्रीका बहुत कुछ श्रेय भारतको प्राप्त है।" ब्रिटिश

राजनेताओंने बार-बार घोषणा की थी कि छोटे राज्यों-की सुरक्षाके लिए युद्ध किया जा रहा है और ब्रिटेनके मित्रराष्ट्र, संयुक्त राज्य अमेरिकाके राष्ट्रपति विलसन-ने भी घोषणा की थी कि युद्धका उद्देश्य छोटे राष्ट्रोको आत्मनिर्णयका अधिकार प्रदान करना है। इस प्रकारकी घोषणाओंसे भारतीयोकी राजनीतिक महत्त्वाकाक्षाका उद्दीप्त होना स्वाभाविक था।

प्रथम विश्वयुद्धकी समाप्ति मित्रराष्ट्रोकी विजयके साथ हुई। युद्धके बाद ही यह बात स्पष्ट हो गयी कि ब्रिटेन अपनी उदार घोषणाओंको पूर्णत क्रियान्वित करनेका कोई इरादा नही रखता। ब्रिटेनने भारतको जो कुछ प्रदान किया वह १९१९ ई०का भारतीय शासन-विधान था। इसकी प्रस्तावनामे घोषित किया गया था कि भारतमे ब्रिटिश शासनका उद्देश्य स्वशासित सस्थाओंकी क्रमिक रीतिसे प्रतिष्ठापना करना है ताकि वहाँ अततः उत्तरदायी सरकारकी स्थापना हो सके। किन्तु इसके बावजूद १९१९ ई०के शासन-विधानमे केवल प्रातोमे द्वैध शासन और केन्द्रीय तथा प्रातीय विधान मडलोमे भारतीयोको अधिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। इन सीमित सवैधानिक सुधारोसे भारतीयोकी आशाओं और आकाक्षाओंको तुष्ट नही किया जा सका और भारतमे राष्ट्रीय आदोलन अबाध गतिसे चलता रहा। १९२० ई०मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसने असहयोग आदोलन आरम्भ कर दिया और प्रत्युत्तरमे अग्रेजोने भारतमे दमन-नीतिका अनुसरण किया। आर्थिक क्षेत्रमे प्रथम विश्व युद्धने ब्रिटेनको अनुभव करा दिया कि यह उसके स्वयके हितमे है कि भारतमे उद्योगोका विकास किया जाय। फलतः उसने क्रमिक रीतिसे भारतीय उद्योगोको सरक्षण देनेकी नीति अपनायी, जिससे इस्पात, सूती वस्त्र तथा चीनी उद्योग लाभान्वित हुए।

सितम्बर १९३९ ई०में जब द्वितीय विश्व-युद्ध छिडा तब १९१४ ई०की अपेक्षा भारतमे राजनीतिक चेतना कही अधिक जाग्रत हो चुकी थी। भारतीय राष्ट्रवादियोका एक वर्ग इस पक्षमे था कि ब्रिटेनकी कठिनाइयोसे लाभ उठाकर भारतके राजनीतिक हितोको अग्रसर किया जाय। कुछ लोग तो जर्मनी और जापानके साथ, जो अग्रेजोके प्रधान शत्रु थे, गठबधन करने और उनकी सैनिक सहायतासे भारतमे अग्रेजी राज्यका अत करनेके पक्षमे भी थे। परन्तु महात्मा गाधीके आदर्शवादी नेतृत्वमे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसकी इस प्रकारकी अव-सरवादी नीति स्वीकार नही हुई। गाधीजीके मार्गदर्शन-मे काग्रेसने युद्ध-प्रयत्नोमे भाग न लेनेका निश्चय किया। किंतु भारतके ब्रिटिश शासकोने ब्रिटेनके सहायतार्थ विपुल धन भेजा और भारतीय सेनाए विविध युद्ध-मोर्चो-पर लडनेके लिए भेजी गयी। भारतीय सेनाएँ विशेष रूपसे दक्षिण-पूर्व एशिया भेजी गयी, जहाँ जापानी तेजीसे आगे बढ रहे थे। जापानी सेनाओंने न केवल मलय प्रायद्वीपपर, वरन बर्मापर भी अधिकार कर लिया और उत्तर-पूर्वी सीमात राज्य मणिपुर तक आ धमकी जिससे आसामके लिए खतरा पैदा हो गया। अग्रेज बर्मा से हटते समय वहाँ बहुत बडी भारतीय सेना छोड आये थे, जिसे विजेता जापानियोने बदी बना लिया।

नेताजी सुभाषचद्र बोस युद्धमे ब्रिटेनकी सहायता करनेके प्रश्नपर काग्रेसी नीतिके विषयमे महात्मा गाधी-से खुला मतभेद रखते थे। वे चाहते थे कि ब्रिटेनकी कठिनाइयोसे पूरा-पूरा लाभ उठाया जाय और अग्रेजोकी जेलसे बचनेके लिए वे जर्मनी भाग गये। वहाँसे जापान होते हुए वे बर्मा पहुँचे जहाँ उन्होने उन भारतीय सैनिकोकी सहायतासे, जिन्हे अग्रेज छोड आये थे, 'आजाद हिन्द फौज'का गठन किया तथा बर्मामे आजाद हिन्द सरकारकी स्थापना करके अपनेको उसका अतरिम अध्यक्ष घोषित किया। उन्होने जापानियोसे गठबधन करके आजाद हिन्द फौजको लेकर दिल्लीपर धावा मारने और वहाँ लाल किलेपर राष्ट्रीय ध्वज फहरानेकी योजना बनायी। किंतु उनकी आजाद हिन्द फौज, जिसके पास पर्याप्त हथियार और रसद नही थी और जो वायु सेनासे भी लैस नही थी, केवल मणिपुरके निकट कोहिमा तक पहुँच सकी और भारतीय ब्रिटिश सेनाने, जो उसके मुकाबलेमे सख्यामे कही अधिक थी और बेहतर हथि-यारोसे लैस थी और जिसके पास रसदकी कोई कमी नही थी, उसे पीछे खदेड दिया। इसके बाद ही हिरो-शिमापर अमरीका द्वारा एटमबम गिराये जानेके बाद जापानको भी आत्मसमर्पण कर देना पडा और नेताजीका विदेशी सहायतासे बाहरसे आक्रमण करके भारतको आजाद करानेका प्रयास विफल हो गया।

ब्रिटेन और उसके मित्रराष्ट्रोको युद्धमे पूर्ण विजय प्राप्त हुई, किंतु गाधीजीके नेतृत्वमे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसको तुष्ट नही किया जा सका था। ब्रिटेनने भारत-की राजनीतिक आकाक्षाओंको तुष्ट करनेके लिए घोषणा की कि उसे समय आनेपर औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान किया जायगा। इसके साथ ही भारतीयोमे फूट डाल कर उन्हे कमजोर बनानेकी नीयतसे उसने मुसलमानोकी

साम्प्रदायिक महत्त्वाकांक्षाओंको भी प्रोत्साहित किया। कांग्रेस न केवल अपनी पूर्ण स्वाधीनताकी मांगपर डटी रही, वरन् उसे पूरा करानेके लिए उसने 'भारत छोड़ो' आंदोलन भी आरम्भ कर दिया। इस आंदोलनको व्यापक जन-समर्थन मिला। अंग्रेज-विरोधी भावना न केवल भारतीय शासनतंत्रकी सभी शाखाओंमें, वरन् भारतीय नौसेना तकमें व्याप्त हो गयी। युद्धमें ब्रिटेन विजयी अवश्य हुआ था, किंतु धन-जनकी अपार क्षतिके फलस्वरूप वह अत्यन्त जर्जर हो गया था। अत उसने अगस्त १९४७ ई०में भारतको स्वाधीनता प्रदान करके यहाँसे हट जानेका निश्चय किया।

विश्वविद्यालय अधिनियम—लार्ड कर्जन (दे०) के शासन-कालमें १९०४ ई०में पारित। इसके अन्तर्गत एक आयोग गठित हुआ जिसकी अध्यक्षता वाइसरायकी कार्यकारिणी समितिके कानून-सदस्य थामस रेलेने की। इस अधिनियम-में सभासदों (सीनेटके सदस्यों) और विशिष्ट सदस्योंकी संख्या सीमित तथा सीनेटके मनोनीत सदस्योंको बहुमतमें करके भारतीय विश्वविद्यालयोंपर सरकारी नियंत्रण और कठोर बना दिया गया। अत इस अधिनियमके विरोधमें व्यापक आन्दोलन हुआ। लेकिन इस अधि-नियममें एक गुण था। इसका उद्देश्य भारतीय विश्व-विद्यालयोंको, जो तब तक केवल परीक्षा लेनेवाले संस्थान थे, शिक्षण संस्थाओंमें बदल देना था, विशेषकर उनमें स्नातकोत्तर शिक्षणकी व्यवस्था करना था। उसमें विश्वविद्यालयोंमें प्रोफेसरों और प्राध्यापकोंकी नियुक्ति और प्रयोगशालाओं तथा संग्रहालयोंकी व्यवस्थाका प्राविधान किया गया। सर आशुतोष मुखर्जी १९०६ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालयके उपकुलपति बने। उनके निर्देशनमें कलकत्ता विश्वविद्यालयने इस अधिनियमसे लाभ उठाया और जनताके अर्थदानसे शिक्षण विभाग खोला जिसमें केवल बंगालमें ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण भारतमें उच्च शिक्षाके प्रसारमें बहुत सहायता मिली। १८५७ ई०में कलकत्तामें प्रथम भारतीय विश्वविद्यालय-की स्थापना हुई। तदनन्तर बम्बई और मद्रासमें भी विश्वविद्यालयोंकी स्थापना शीघ्र ही हुई।

विश्वविद्यालय, भारतीय—लंदन विश्वविद्यालयको आदर्श बनाकर १८५७ ई०में सर्वप्रथम कलकत्ता, मद्रास और बम्बईमें विश्वविद्यालय स्थापित किये गये। प्रारम्भमें ये विश्वविद्यालय केवल परीक्षा-केन्द्रके रूपमें थे, लेकिन १९१३ ई०में सर हरकोर्ट बटलरने, जो वाइसरायकी कार्यकारिणी समितिका प्रथम शिक्षा-सदस्य था, एक प्रस्ताव पारित किया, जिसमें शिक्षण और आवासीय विश्वविद्यालय स्थापित करनेकी व्यवस्था की गयी थी। प्रांतोंमें नयी जागृतिके साथ-साथ साम्प्रदायिक चेतनाके प्रसारके फलस्वरूप बीसवीं शताब्दीके द्वितीय चतुर्थांशमें पटना, लखनऊ, अलीगढ़, बनारस, आगरा, दिल्ली, नागपुर, वाल्टेयर, ढाका, मैसूर, हैदराबाद, चिदम्बरम्, त्रिवेन्द्रम्, गौहाटी और पूनामें विश्वविद्यालय स्थापित हुए। इनमेंसे कुछ आवासीय और अधिकांश शिक्षण विश्वविद्यालय हैं।

वर्तमान समयमें रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा १९२१ ई०में स्थापित 'विश्वभारती'को मिलाकर साठसे अधिक विश्वविद्यालय भारतमें हैं। इनकी संख्या प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है। एक स्वायत्तशासी निकाय जिसको 'विश्व-विद्यालय अनुदान आयोग' कहा जाता है, गठित किया गया है और यह भारतमें उच्च विश्वविद्यालयिक शिक्षा-के लिए भारत सरकार जो धन देती है, उसको भारतीय विश्वविद्यालयोंमें वितरित करता है।

विश्व सिंह—१५१५ ई०के लगभग कोच राज्यका संस्थापक, जिसकी राजधानी आधुनिक कूचविहार थी। उसके द्वारा संचालित राजवंशके राजालोग कूचविहारमें आधुनिक कालतक शासन करते रहे हैं। (गेट, हिस्ट्री आफ आसाम, अध्याय चार)

विश्वास राव—पेशवा बालाजी बाजीरावका सबसे बड़ा पुत्र और उत्तराधिकारी। सत्रह वर्षकी अवस्थामें वह मराठा सेनाका प्रधान सेनापति नियुक्त हुआ और अहमद शाह अब्दालीका आक्रमण रोकनेके लिए उत्तरी भारत भेजा गया। किन्तु सेनाका वास्तविक नियंत्रण उसके चाचा सदाशिव राव भाऊके हाथोंमें था। इस अभियान-का अंत १३ जनवरी १७६१ ई०को पानीपतके तृतीय युद्धमें हुआ, जिसमें विश्वास राव मारा गया और मराठोंकी भारी पराजय हुई।

विष्णु—हिन्दुओंका एक प्रधान देवता, जिनकी वैष्णव उपा-सना करते हैं। ब्रह्मा और महेश्वर (शिव) के साथ इनकी गणना हिन्दुओंके त्रिदेवमें होती है।

विष्णु गुप्त—देखिये, 'कौटिल्य'।

विष्णुपुराण—हिन्दुओंके अठारह पुराणोंमेंसे एक, जो अन्य सब पुराणोंमें प्राचीन माना जाता है। यह पुराणके पाँचों लक्षणोंसे युक्त है और इसमें सृष्टि, मनुष्यों, देवों, विविध मन्वन्तरों और प्राचीन राजवंशोंका इतिहास मिलता है। इसमें विशेष रूपसे विष्णुकी महिमाका वर्णन है।

विष्णुवर्धन (विहि देव या विहिग)–द्वारसमुद्रका होयसल राजा (१११०–४१ ई०)। इसने अनेक युद्ध किये और अपने राज्यका विस्तार किया। वह नाममात्रके लिए चालुक्योका अधीनस्थ बना रहा। तत्कालीन धार्मिक इतिहासमे उसने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। प्रारम्भमे वह जैन मतावलम्बी था किन्तु प्रख्यात वैष्णव आचार्य रामानुजके प्रभावसे वह वैष्णव मतावलम्बी हो गया। मत-परिवर्तनके बाद उसने अपना पहलेका नाम विहिदेव या विहिग त्याग कर विष्णुवर्धन नाम धारण किया। उसने वैष्णव धर्मके प्रचारके लिए अनेक भव्य मन्दिरोका निर्माण कराया। इनमेसे कुछ आज भी वेलूर और हलेविडमे विद्यमान है। इनमे सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हलेविडके होयसलेश्वर मदिरका है, जिसमे ग्यारह सज्जा पट्टियाँ है। प्रत्येक पट्टी सात सौ फुट या अधिक लम्बी है और हाथी, सिंह, अश्वारोही, वृक्षलता, पशु-पक्षी आदि विविध अलकरणोसे युक्त हे। कुछ आलोचकोंका विचार है कि यह मदिर मानव श्रम और कौशलका सर्वाधिक अनूठा उदाहरण है।

वीर नरसिह–विजयनगरका एक राजा (१५०५–१५०९ ई०), जिसने विजयनगरके सालुव या द्वितीय वशके अन्तिम राजा इमादी नरसिहको मारकर सिहासनपर अधिकार कर लिया। उसका सौतेला भाई कृष्णदेवराय (दे०) उसका उत्तराधिकारी बना, जो विजयनगर राज्यका सबसे महान शासक था।

वीरनारायण–गोडवानाका राजा। उसकी नाबालिगी अवस्थामे राज्यपर अकबरका आक्रमण हुआ और आक्रमणकारियोका मुकाबला पहले उसकी साहसी माँ रानी दुर्गावतीने किया। युद्धमे उसकी मृत्यु हो जानेके बाद वीर नारायणने अल्पवयस्क होते हुए भी मुगलोके विरुद्ध तबतक युद्ध जारी रखा जबतक लडाईमे वह शहीद नही हो गया।

वीर बल्लाल–द्वारसमुद्रका एक होयसल राजा, जो प्रसिद्ध वैष्णव शासक विष्णुवर्द्धन (दे०) का पौत्र था। उसका राज्य मैसूरके उत्तरतक विस्तृत था। उसने देवगिरिके यादवोको परास्त कर होयसलोको दक्षिण भारतकी एक प्रमुख शक्ति बना दिया।

वीर शैव (सप्रदाय)–देखिये 'लिंगायत मत।

वीरसिह बुन्देला–बुन्देलोका सरदार, शाहजाद। सलीमके उकसानेपर उसने १६०२ ई०मे अकबरके विश्वसनीय मित्र और परामर्शदाता अबुल फजलकी हत्या कर दी। सम अबुल फजलसे घृणा करता था और उससे डरता भी था। बादमे, जहाँगीरके नामसे सलीमके सिंहासनारूढ होनेपर वीरसिंहको पुरस्कार-स्वरूप तीन हजार घुडसवारोकी मनसबदारी मिली।

वीरसिंहने ही मथुरामे ३३ लाख रुपयेकी लागतसे कृष्णजन्म-भूमिके खँडहरोमे केशवदेवका एक भव्य मन्दिर निर्मित कराया। उसका पुत्र जुझार सिंह उसके बाद जागीरका उत्तराधिकारी हुआ। उसका मथुरा स्थित मन्दिर इतना ऊँचा था कि उसका शिखर आगराके शाही किलेसे देखा जा सकता था। इससे औरगजेबका विद्वेष जाग्रत हो उठा। उसके आदेशसे १६७० ई०मे मन्दिरको धूलमे मिला दिया गया और उसके स्थानपर मस्जिद खडी की गयी।

वीसलदेव–अजमेरका चौहान राजा। पजाबके राजा आनन्दपाल (दे०) के अनुरोधपर उसने १००८ ई०मे सुल्तान महमूदके आक्रमणका प्रतिरोध करनेके लिए एकत्र भारतीय राजाओकी सेनाका नेतृत्व किया। किन्तु युद्धमे उसे परास्त होना पड़ा।

वुड, सर चार्ल्स–१८५४ से १८५८ ई०तक बोर्ड ऑफ कण्ट्रोलका अध्यक्ष। इसी हैसियतसे उसने १८५४ ई०का प्रसिद्ध खरीता भेजा, जिसमे शिक्षाके क्षेत्रमे भारत सरकारकी नीतिका निर्धारण किया गया। इस नीतिके अन्तर्गत विद्यालयोको सहायक अनुदान देनेकी व्यवस्थाका सूत्रपात किया गया और कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रासमे विश्वविद्यालयोकी स्थापनाकी अनुमति प्रदान की गयी। इस खरीतेमे इस बातपर बल दिया गया कि शिक्षा भारतीय भाषाओके माध्यम द्वारा दी जानी चाहिये, राजकीय शिक्षण सस्थाओमे दी जानेवाली शिक्षा धर्मनिरपेक्ष होनी चाहिये। सर चार्ल्सवुडके खरीतेके फलस्वरूप सम्पूर्ण भारतमे शैक्षणिक सस्थाओ–प्राथमिक स्कूलोसे लेकर उच्च माध्यमिक स्कूलो, कालेजो और विश्वविद्यालयोकी स्थापनाकी व्यवस्था की गयी।

वृजि–एक प्राचीन गण, जो लिच्छिवियोके नामसे अधिक प्रख्यात था। उनके नामके आधारपर उस प्रदेशका नाम भी वृजि पडा जो आजकल बिहारका मुजफ्फरपुर जिला कहलाता हे। वृजियो की राजधानी वैशाली (दे०) थी। उन्होने एक कुलीन गणतत्रकी स्थापना की, इस गणतत्रका शासन कुछ कुलोके हाथमे था। प्रत्येक कुलको शासनका समान अधिकार प्राप्त था। उनकी शासन-व्यवस्था इतनी प्रभावशाली थी कि गौतमबुद्धने वृजिसघके अनुरूप ही अपने भिक्षुसघका सगठन किया। ई० पू०

पाँचवीं शतीमें अजातशत्रुने वृज्जियोंको पराजित किया, किन्तु इसके बाद भी ईसवी चौथी शताब्दीके प्रारम्भ तक भारतीय इतिहासमें उनका सम्मानपूर्ण स्थान बना रहा। चन्द्रगुप्त प्रथम (दे०) ने लिच्छिवि राजकुमारी 'कुमारदेवी'से विवाह करके ही मगध राज्यका प्रताप बढ़ाया और शक्तिशाली गुप्त राजवंशकी नीव डाली।

वेंकट–विजयनगरके अरविन्दु अथवा चौथे वंशका तीसरा राजा, जो १५६५ ई०में नष्ट हो गया। उसने पेनूगोण्डासे हटाकर चन्द्रगिरिमें राजधानी बनायी। उसके शासनका श्रीगणेश १५८५ ई० में हुआ और उसके अन्त होनेकी तिथि अनिश्चित है। वह तेलुगु कवि और वैष्णव लेखकोंका उदार संरक्षक था।

वेंकट प्रथम–विजयनगरके तुलुव वंशका एक राजा। वह १५४२ ई०में अपने पिता अच्युतका उत्तराधिकारी बना, किन्तु सिंहासनारूढ होनेके बाद ही वह मार डाला गया।

वेंकटाद्रि–राम राजाका एक भाई। सदाशिव (१५४२–६५)-के शासनकालमें विजयनगरका व्यावहारिक राजा वेंकटाद्रि ही था। कुशल सेनानायक होते हुए भी वह १५६५ ई०में तालीकोटा (दे०) के युद्धमें पराजित हो गया।

वेङ्गि राज्य–गोदावरी और कृष्णा नदियोंके बीच स्थित, जिसे चौथी शताब्दी ई०में समुद्रगुप्त (दे०) ने जीता था। उस समय सम्भवतः एक पल्लव राजा इसका शासक था। ६११ ई०में यह चालुक्य राजा पुलकेशी द्वारा विजित हुआ, जिसने अपने भाई कुब्ज विष्णुवर्धनको यहाँका उपशासक नियुक्त किया। उसकी राजधानी गोदावरी जिसमें स्थित पिष्ठपुर (आधुनिक पीठापुरम्) थी। चार वर्ष बाद कुब्जावर्द्धनने वेङ्गिको स्वतन्त्र राज्य बनाकर पूर्वी चालुक्य (दे०) वंशकी नीव डाली, जो १०७० ई० तक सत्तारूढ रहा। इसके बाद यह राज्य चोल राज्यमें सम्मिलित कर लिया गया।

वेडरबर्न, सर विलियम–एक प्रसिद्ध आई० सी० एस० अफसर। इंडियन सिविल सर्विससे अवकाश ग्रहण करनेके बाद उसने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी स्थापनामें उत्साहके साथ योगदान किया और दिसम्बर १८८५ ई०में बम्बईमें सम्पन्न कांग्रेसके प्रथम अधिवेशनमें भाग लिया। इसके उपरान्त १८८९ तथा १९१० ई० में सम्पन्न कांग्रेसके दो अधिवेशनोंका सभापतित्व भी उसने किया और मृत्युपर्यन्त भारतीयोंकी राष्ट्रीय आकांक्षाओंका समर्थन किया।

वेद–हिन्दुओंके सबसे प्राचीन धर्मग्रंथ और सम्भवत विश्वकी प्राचीनतम पुस्तक। सनातनी हिन्दू वेदोंको नित्य, शाश्वत और अपौरुषेय मानते हैं। वैदिक मन्त्रोंके साथ जिन ऋषियोंके नाम मिलते हैं, वे उनके रचयिता नहीं, द्रष्टा थे। वेदोंकी गणना 'श्रुति' (जो सुना गया हो) में की जाती है, क्योंकि उन्हें गुरु-शिष्य परंपरामें सुनकर कंठस्थ किया जाता था। वेद चार हैं। यथा, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। वेद हिन्दू धर्मके मूलाधार हैं। वर्तमान हिन्दू धर्म मूल वैदिक धर्मसे काफी परिवर्तित हो चुका है, फिर भी वेदोंको अब भी प्रमाण माना जाता है। प्रत्येक वेद चार भागोंमें विभक्त है। यथा, संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्। संहिता-भागमें मंत्रोंका संग्रह मिलता है और वह सूक्तोंमें विभाजित है। उदाहरणार्थ, ऋग्वेद संहितामें १०२८ सूक्त हैं जो १० मंडलोंमें विभक्त हैं। ब्राह्मण भागमें यज्ञानुष्ठानका विस्तृत विवरण मिलता है और वह प्रायः गद्यमें होता है। मुख्य ब्राह्मण-ग्रंथोंमें ऋग्वेदसे सम्बन्धित ऐतरेय और कौषीतकि, सामवेदसे सम्बन्धित ताण्ड्य और जैमिनीय, यजुर्वेदसे सम्बन्धित तैत्तिरीय और शतपथ और अथर्ववेदसे सम्बन्धित गोपथ ब्राह्मण हैं।

आरण्यक-ग्रंथ अरण्य (वन) में रहनेवाले वानप्रस्थ लोगोंके द्वारा पढ़े जानेके योग्य हैं। इनमें कर्मकांडकी अपेक्षा आध्यात्मिक रहस्योंका विवेचन अधिक मिलता है। आरण्यक-ग्रंथ ब्राह्मण-ग्रंथोंके ही भाग हैं, इसीलिए प्रत्येक ब्राह्मण-ग्रंथके साथ उसका आरण्यक भी उसी नामसे मिलता है।

उपनिषद् ग्रंथोंमें ब्रह्मविद्याका प्रतिपादन किया गया है। वे प्रायः गद्यमें हैं। उनके उपदेशोंको कर्मकांड-प्रधान धर्मकी प्रतिक्रिया माना जाता है। उनमें परम तत्त्वका विवेचन है, जिसका ज्ञान मोक्ष-प्राप्तिके लिए आवश्यक माना जाता था।

चारों वेदोंमें ऋग्वेद सबसे प्राचीन माना जाता है, उसका निर्माण-काल अभी तक ठीक-ठीक निर्धारित नहीं हो सका है। कुछ विद्वान् उसका निर्माण-काल ईसवी सन्‌से ४००० वर्ष पूर्व मानते हैं। अन्य विद्वानोंका मत है कि उसका निर्माण-काल बिहिस्तान अभिलेख (दे०) अथवा जरथुस्त्रको अपना पैगम्बर माननेवाले ईरानियोंके धर्मग्रंथ अवेस्तासे ५०० वर्षसे अधिक प्राचीन नहीं हो सकता। जो भी हो, इतना मानना होगा कि ऋग्वेद हिन्दुओंका प्राचीनतम ग्रंथ है और उससे हमें प्राचीन भारतीय आर्योंके धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक जीवनके बारेमें प्राचीनतम जानकारी मिलती है। (बाल गंगाधर तिलक कृत ओरियन; ए० बी० कीथ कृत रिलीजन एण्ड फिलासफी आफ दि वेदाज; आर० सी० मजूमदार कृत

विष्णुवर्धन (विहि देव या विहिग)–द्वारसमुद्रका होयसल राजा (१११०–४१ ई०)। इसने अनेक युद्ध किये और अपने राज्यका विस्तार किया। वह नाममात्रके लिए चालुक्योका अधीनस्थ बना रहा। तत्कालीन धार्मिक इतिहासमे उसने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। प्रारम्भमे वह जैन मतावलम्बी था किन्तु प्रख्यात वैष्णव आचार्य रामानुजके प्रभावसे वह वैष्णव मतावलम्वी हो गया। मत-परिवर्तनके बाद उसने अपना पहलेका नाम विहिदेव या विहिग त्याग कर विष्णुवर्धन नाम धारण किया। उसने वैष्णव धर्मके प्रचारके लिए अनेक भव्य मन्दिरो-का निर्माण कराया। इनमेसे कुछ आज भी वेलूर और हलेविडमे विद्यमान है। इनमे सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हलेविडके होयसलेश्वर मदिरका है, जिसमे ग्यारह सज्जा पट्टियाँ है। प्रत्येक पट्टी सात सौ फुट या अधिक लम्बी है और हाथी, सिह, अश्वारोही, वृक्षलता, पशु-पक्षी आदि विविध अलकरणोसे युक्त है। कुछ आलोचकोका विचार है कि यह मदिर मानव श्रम और कौशलका सर्वाधिक अनूठा उदाहरण है।

वीर नरसिंह–विजयनगरका एक राजा (१५०५–१५०९ ई०), जिसने विजयनगरके सालुव या द्वितीय वशके अन्तिम राजा इमादी नरसिंहको मारकर सिंहासनपर अधिकार कर लिया। उसका सौतेला भाई कृष्णदेवराय (दे०) उसका उत्तराधिकारी वना, जो विजयनगर राज्य-का सबसे महान शासक था।

वीरनारायण–गोडवानाका राजा। उसकी नावालिगी अवस्थामे राज्यपर अकबरका आक्रमण हुआ और आक्रमणकारियोका मुकाबला पहले उसकी साहसी माँ रानी दुर्गावतीने किया। युद्धमे उसकी मृत्यु हो जानेके बाद वीर नारायणने अल्पवयस्क होते हुए भी मुगलोके विरुद्ध तबतक युद्ध जारी रखा जबतक लडाईमे वह शहीद नही हो गया।

वीर बल्लाल–द्वारसमुद्रका एक होयसल राजा, जो प्रसिद्ध वैष्णव शासक विष्णुवर्द्धन (दे०) का पौत्र था। उसका राज्य मैसूरके उत्तरतक विस्तृत था। उसने देवगिरिके यादवोको परास्त कर होयसलोको दक्षिण भारतकी एक प्रमुख शक्ति बना दिया।

वीर शैव (सप्रदाय)–देखिये 'लिंगायत मत।

वीरसिंह बुन्देला–बुन्देलोका सरदार, शाहजाद। सलीमके उकसानेपर उसने १६०२ ई०मे अकबरके विश्वसनीय मित्र और परामर्शदाता अबुल फजलकी हत्या कर दी। सम अबुल फलीजलसे घृणा करता था और उससे डरता भी था। बादमे, जहाँगीरके नामसे सलीमके सिंहासना रूढ होनेपर वीरसिंहको पुरस्कार-स्वरूप तीन हजार घुडसवारोकी मनसबदारी मिली।

वीरसिंहने ही मथुरामे ३३ लाख रुपयेकी लागतसे कृष्णजन्म-भूमिके खँडहरोमे केशवदेवका एक भव्य मन्दिर निर्मित कराया। उसका पुत्र जुझार सिंह उसके बाद जागीरका उत्तराधिकारी हुआ। उसका मथुरा स्थित मन्दिर इतना ऊँचा था कि उसका शिखर आगराके शाही किलेसे देखा जा सकता था। इससे औरगजेबका विद्वेष जाग्रत हो उठा। उसके आदेशसे १६७० ई०मे मन्दिरको धूलमे मिला दिया गया और उसके स्थानपर मस्जिद खडी की गयी।

वीसलदेव–अजमेरका चौहान राजा। पजावके राजा आनन्दपाल (दे०) के अनुरोधपर उसने १००८ ई०मे सुल्तान महमूदके आक्रमणका प्रतिरोध करनेके लिए एकत्र भारतीय राजाओकी सेनाका नेतृत्व किया। किन्तु युद्धमे उसे परास्त होना पडा।

वुड, सर चार्ल्स–१८५४ से १८५८ ई०तक बोर्ड ऑफ कण्ट्रोलका अध्यक्ष। इसी हैसियतसे उसने १८५४ ई०का प्रसिद्ध खरीता भेजा, जिसमे शिक्षाके क्षेत्रमे भारत सरकारकी नीतिका निर्धारण किया गया। इस नीतिके अन्तर्गत विद्यालयोको सहायक अनुदान देनेकी व्यवस्था-का सूत्रपात किया गया और कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रासमे विश्वविद्यालयोकी स्थापनाकी अनुमति प्रदान की गयी। इस खरीतेमे इस बातपर बल दिया गया कि शिक्षा भारतीय भाषाओके माध्यम द्वारा दी जानी चाहिये, राजकीय शिक्षण सस्थाओमे दी जानेवाली शिक्षा धर्मनिरपेक्ष होनी चाहिये। सर चार्ल्सवुडके खरीतेके फलस्वरूप सम्पूर्ण भारतमे शैक्षणिक सस्थाओ–प्राथमिक स्कूलोसे लेकर उच्च माध्यमिक स्कूलो, कालेजो और विश्वविद्यालयोकी स्थापनाकी व्यवस्था की गयी।

वृजि–एक प्राचीन गण, जो लिच्छिवियोके नामसे अधिक प्रख्यात था। उनके नामके आधारपर उस प्रदेशका नाम भी वृजि पडा जो आजकल विहारका मुजफ्फरपुर जिला कहलाता है। वृजियो की राजधानी वैशाली (दे०) थी। उन्होने एक कुलीन गणतत्रकी स्थापना की, इस गणतत्रका शासन कुछ कुलोके हाथमे था। प्रत्येक कुलको शासनका समान अधिकार प्राप्त था। उनकी शासन-व्यवस्था इतनी प्रभावशाली थी कि गौतमबुद्धने वृजिसघके अनुरूप ही अपने भिक्षुसघका संगठन किया। ई० पू०

पाँचवी शतीमे अजातशत्रुने वृज्जियोको पराजित किया, किन्तु इसके बाद भी ईसवी चौथी शताब्दीके प्रारम्भ तक भारतीय इतिहासमे उनका सम्मानपूर्ण स्थान बना रहा। चन्द्रगुप्त प्रथम (दे०) ने लिच्छिवि राजकुमारी 'कुमारदेवी'से विवाह करके ही मगध राज्यका प्रताप बढाया और शक्तिशाली गुप्त राजवशकी नीव डाली।

वेंकट—विजयनगरके अरविन्दु अथवा चौथे वशका तीसरा राजा, जो १५६५ ई०मे नष्ट हो गया। उसने पेनूगोण्डासे हटाकर चद्रगिरिमे राजधानी बनायी। उसके शासनका श्रीगणेश १५८५ ई० मे हुआ और उसके अन्त होनेकी तिथि अनिश्चित है। वह तेलुगु कवि और वैष्णव लेखकोंका उदार सरक्षक था।

वेंकट प्रथम—विजयनगरके तुलुव वशका एक राजा। वह १५४२ ई०मे अपने पिता अच्युतका उत्तराधिकारी बना, किन्तु सिंहासनारूढ होनेके बाद ही वह मार डाला गया।

वेंकटाद्रि—राम राजाका एक भाई। सदाशिव (१५४२–६५)-के शासनकालमे विजयनगरका व्यावहारिक राजा वेकटाद्रि ही था। कुशल सेनानायक होते हुए भी वह १५६५ ई०मे तालीकोटा (दे०) के युद्धमे पराजित हो गया।

वेङ्गिका राज्य—गोदावरी और कृष्णा नदियोके बीच स्थित, जिसे चौथी शताब्दी ई०मे समुद्रगुप्त (दे०) ने जीता था। उस समय सम्भवतः एक पल्लव राजा इसका शासक था। ६११ ई०मे यह चालुक्य राजा पुलकेशी द्वारा विजित हुआ, जिसने अपने भाई कुब्ज विष्णुवर्धनको यहाँका उपशासक नियुक्त किया। उसकी राजधानी गोदावरी जिसमे स्थित पिठपुर (आधुनिक पीठापुरम्) थी। चार वर्ष बाद कुब्जावर्द्धनने वेङ्गिको स्वतन्त्र राज्य बनाकर पूर्वी चालुक्य (दे०) वशकी नीव डाली, जो १०७० ई० तक सत्तारूढ रहा। इसके बाद यह राज्य चोल राज्यमे सम्मिलित कर लिया गया।

वेडरबर्न, सर विलियम—एक प्रसिद्ध आई० सी० एस० अफसर। इडियन सिविल सर्विससे अवकाश ग्रहण करनेके बाद उसने भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसकी स्थापनामे उत्साहके साथ योगदान किया और दिसम्बर १८८५ ई०मे बम्बईमे सम्पन्न काग्रेसके प्रथम अधिवेशनमे भाग लिया। इसके उपरान्त १८८९ तथा १९१० ई० मे सम्पन्न काग्रेसके दो अधिवेशनोका सभापतित्व भी उसने किया और मृत्युपर्यन्त भारतीयोकी राष्ट्रीय आकाक्षाओका समर्थन किया।

वेद—हिन्दुओके सबसे प्राचीन धर्मग्रथ और सभवत विश्वकी प्राचीनतम पुस्तक। सनातनी हिन्दू वेदोको नित्य शाश्वत और अपौरुषेय मानते हैं। वैदिक मन्त्रोके साथ जिन ऋषियोके नाम मिलते है, वे उनके रचयिता नही, द्रष्टा थे। वेदोकी गणना 'श्रुति' (जो सुना गया हो) मे की जाती है, क्योकि उन्हे गुरु-शिष्य परपरामे सुनकर कठस्थ किया जाता था। वेद चार हैं। यथा, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। वेद हिन्दू धर्मके मूलाधार है। वर्तमान हिन्दू धर्म मूल वैदिक धर्मसे काफी परिवर्तित हो चुका है, फिर भी वेदोको अब भी प्रमाण माना जाता है। प्रत्येक वेद चार भागोमे विभक्त है। यथा, सहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्। सहिता-भागमे मन्त्रोका सग्रह मिलता है और वह सूक्तोमे विभाजित है। उदाहरणार्थ, ऋग्वेद सहितामे १०२८ सूक्त है जो १० मडलोमे विभक्त है। ब्राह्मण भागमे यज्ञानुष्ठानका विस्तृत विवरण मिलता है और वह प्राय. गद्यमे होता है। मुख्य ब्राह्मण-ग्रथोमे ऋग्वेदसे सम्बन्धित ऐतरेय और कौषीतकि, सामवेदसे सम्बन्धित ताण्ड्य और जैमिनीय, यजुर्वेदसे सम्बन्धित तैत्तिरीय और शतपथ और अथर्ववेदसे सम्बन्धित गोपथ ब्राह्मण हैं।

आरण्यक-ग्रथ अरण्य (वन) मे रहनेवाले वानप्रस्थ लोगोके द्वारा पढे जानेके योग्य है। इनमे कर्मकाडकी अपेक्षा आध्यात्मिक रहस्योका विवेचन अधिक मिलता है। आरण्यक-ग्रथ ब्राह्मण-ग्रथोके ही भाग है, इसीलिए प्रत्येक ब्राह्मण-ग्रथके साथ उसका आरण्यक भी उसी नामसे मिलता है।

उपनिषद् ग्रथोमे ब्रह्मविद्याका प्रतिपादन किया गया है। वे प्रायः गद्यमे है। उनके उपदेशोको कर्मकाड-प्रधान धर्मकी प्रतिक्रिया माना जाता है। उनमे परम तत्त्वका विवेचन है, जिसका ज्ञान मोक्ष-प्राप्तिके लिए आवश्यक माना जाता था।

चारो वेदोमे ऋग्वेद सबसे प्राचीन माना जाता है, उसका निर्माण-काल अभी तक ठीक-ठीक निर्धारित नही हो सका है। कुछ विद्वान् उसका निर्माण-काल ईसवी सन्से ४००० वर्ष पूर्व मानते है। अन्य विद्वानोका मत है कि उसका निर्माण-काल विहिस्तान अभिलेख (दे०) अथवा जरथुस्त्रको अपना पैगम्बर माननेवाले ईरानियोके धर्मग्रथ अवेस्तासे ५०० वर्षसे अधिक प्राचीन नही हो सकता। जो भी हो, इतना मानना होगा कि ऋग्वेद हिन्दुओका प्राचीनतम ग्रथ है और उससे हमे प्राचीन भारतीय आर्योके धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक जीवनके बारेमे प्राचीनतम जानकारी मिलती है। (बाल गंगाधर तिलक कृत ओरियन, ए० बी० कीथ कृत रिलीजन एण्ड फिलासफी आफ दि वेदाज, आर० सी० मजूमदार कृत

विष्णुवर्धन (विहि देव या विहिग)—द्वारसमुद्रका होयसल राजा (१११०–४१ ई०)। इसने अनेक युद्ध किये और अपने राज्यका विस्तार किया। वह नाममात्रके लिए चालुक्योका अधीनस्थ बना रहा। तत्कालीन धार्मिक इतिहासमे उसने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। प्रारम्भमे वह जैन मतावलम्बी था किन्तु प्रख्यात वैष्णव आचार्य रामानुजके प्रभावसे वह वैष्णव मतावलम्बी हो गया। मत-परिवर्तनके बाद उसने अपना पहलेका नाम विहिदेव या विहिग त्याग कर विष्णुवर्धन नाम धारण किया। उसने वैष्णव धर्मके प्रचारके लिए अनेक भव्य मन्दिरोका निर्माण कराया। इनमेसे कुछ आज भी बेलूर और हलेविडमे विद्यमान है। इनमे सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हलेविडके होयसलेश्वर मदिरका है, जिसमे ग्यारह सज्जा पट्टियाँ है। प्रत्येक पट्टी सात सौ फुट या अधिक लम्बी है और हाथी, सिंह, अश्वारोही, वृक्षलता, पशु-पक्षी आदि विविध अलकरणोसे युक्त है। कुछ आलोचकोका विचार है कि यह मदिर मानव श्रम और कौशलका सर्वाधिक अनूठा उदाहरण है।

वीर नरसिंह—विजयनगरका एक राजा (१५०५–१५०६ ई०), जिसने विजयनगरके सालुव या द्वितीय वशके अन्तिम राजा इमादी नरसिंहको मारकर सिंहासनपर अधिकार कर लिया। उसका सौतेला भाई कृष्णदेवराय (दे०) उसका उत्तराधिकारी बना, जो विजयनगर राज्यका सबसे महान शासक था।

वीरनारायण—गोडवानाका राजा। उसकी नाबालिगी अवस्थामे राज्यपर अकबरका आक्रमण हुआ और आक्रमणकारियोका मुकाबला पहले उसकी साहसी माँ रानी दुर्गावतीने किया। युद्धमे उसकी मृत्यु हो जानेके बाद वीर नारायणने अल्पवयस्क होते हुए भी मुगलोके विरुद्ध तबतक युद्ध जारी रखा जबतक लडाईमे वह शहीद नही हो गया।

वीर बल्लाल—द्वारसमुद्रका एक होयसल राजा, जो प्रसिद्ध वैष्णव शासक विष्णुवर्द्धन (दे०) का पौत्र था। उसका राज्य मैसूरके उत्तरतक विस्तृत था। उसने देवगिरिके यादवोको परास्त कर होयसलोको दक्षिण भारतकी एक प्रमुख शक्ति बना दिया।

वीर शैव (सम्प्रदाय)—देखिये 'लिंगायत मत।

वीरसिंह बुन्देला—बुन्देलोका सरदार, शाहजाद। सलीमके उकसानेपर उसने १६०२ ई०मे अकबरके विश्वसनीय मित्र और परामर्शदाता अबुल फजलकी हत्या कर दी। सम अबुल फलीजलसे घृणा करता था और उससे डरता भी था। बादमे, जहाँगीरके नामसे सलीमके सिंहासनारूढ होनेपर वीरसिंहको पुरस्कार-स्वरुप तीन हजार घुडसवारोकी मनसवदारी मिली।

वीरसिंहने ही मथुरामे ३३ लाख रुपयेकी लागतसे कृष्णजन्म-भूमिके खँडहरोमे केशवदेवका एक भव्य मन्दिर निर्मित कराया। उसका पुत्र जुझार सिंह उसके बाद जागीरका उत्तराधिकारी हुआ। उसका मथुरा स्थित मन्दिर इतना ऊँचा था कि उसका शिखर आगराके शाही किलेसे देखा जा सकता था। इससे औरगजेबका विद्वेष जाग्रत हो उठा। उसके आदेशसे १६७० ई०मे मन्दिरको धूलमे मिला दिया गया और उसके स्थानपर मस्जिद खडी की गयी।

वीसलदेव—अजमेरका चौहान राजा। पजावके राजा आनन्दपाल (दे०) के अनुरोधपर उसने १००८ ई०मे सुल्तान महमूदके आक्रमणका प्रतिरोध करनेके लिए एकत्र भारतीय राजाओकी सेनाका नेतृत्व किया। किन्तु युद्धमे उसे परास्त होना पडा।

वुड, सर चार्ल्स—१८५४ से १८५८ ई०तक बोर्ड ऑफ कण्ट्रोलका अध्यक्ष। इसी हैसियतसे उसने १८५४ ई०का प्रसिद्ध खरीता भेजा, जिसमे शिक्षाके क्षेत्रमे भारत सरकारकी नीतिका निर्धारण किया गया। इस नीतिके अन्तर्गत विद्यालयोको सहायक अनुदान देनेकी व्यवस्थाका सूत्रपात किया गया और कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रासमे विश्वविद्यालयोकी स्थापनाकी अनुमति प्रदान की गयी। इस खरीतेमे इस बातपर बल दिया गया कि शिक्षा भारतीय भाषाओके माध्यम द्वारा दी जानी चाहिये, राजकीय शिक्षण संस्थाओमे दी जानेवाली शिक्षा धर्मनिरपेक्ष होनी चाहिये। सर चार्ल्सवुडके खरीतेके फलस्वरूप सम्पूर्ण भारतमे शैक्षणिक सस्थाओ-प्राथमिक स्कूलोसे लेकर उच्च माध्यमिक स्कूलो, कालेजो और विश्वविद्यालयोकी स्थापनाकी व्यवस्था की गयी।

वृजि—एक प्राचीन गण, जो लिच्छिवियोके नामसे अधिक प्रख्यात था। उनके नामके आधारपर उस प्रदेशका नाम भी वृजि पडा जो आजकल बिहारका मुजफ्फरपुर जिला कहलाता है। वृजियो की राजधानी वैशाली (दे०) थी। उन्होने एक कुलीन गणतत्रकी स्थापना की, इस गणतत्रका शासन कुछ कुलोके हाथमे था। प्रत्येक कुलको शासनका समान अधिकार प्राप्त था। उनकी शासन-व्यवस्था इतनी प्रभावशाली थी कि गौतमबुद्धने वृजिसघके अनुरूप ही अपने भिक्षुसघका संगठन किया। ई० पू०

पाँचवी शतीमे अजातशत्रुने वृज्जियोंको पराजित किया, किन्तु इसके वाद भी ईसवी चौथी शताब्दीके प्रारम्भ तक भारतीय इतिहासमे उनका सम्मानपूर्ण स्थान बना रहा। चन्द्रगुप्त प्रथम (दे०) ने लिच्छिवि राजकुमारी 'कुमारदेवी'से विवाह करके ही मगध राज्यका प्रताप बढाया और शक्तिशाली गुप्त राजवशकी नीव डाली।

वेंकट—विजयनगरके अरविन्दु अथवा चौथे वशका तीसरा राजा, जो १५६५ ई०मे नष्ट हो गया। उसने पेनूगोण्टासे हटाकर चद्रगिरिमे राजधानी वनायी। उसके शासनका श्रीगणेश १५८५ ई० मे हुआ और उसके अन्त होनेकी तिथि अनिश्चित हे। वह तेलुगु कवि और वैष्णव लेखकोंका उदार सरक्षक था।

वेंकट प्रथम—विजयनगरके तुलुव वशका एक राजा। वह १५४२ ई०मे अपने पिता अच्युतका उत्तराधिकारी वना, किन्तु सिंहासनारूढ होनेके वाद ही वह मार डाला गया।

वेंकटाद्रि—राम राजाका एक भाई। सदाशिव (१५४२–६५)-के शासनकालमे विजयनगरका व्यावहारिक राजा वेकटाद्रि ही था। कुशल सेनानायक होते हुए भी वह १५६५ ई०मे तालीकोटा (दे०) के युद्धमे पराजित हो गया।

वेङ्गिका राज्य—गोदावरी और कृष्णा नदियोंके वीच स्थित, जिसे चौथी शताव्दी ई०मे समुद्रगुप्त (दे०) ने जीता था। उस समय सम्भवतः एक पल्लव राजा इसका शासक था। ६११ ई०मे यह चालुक्य राजा पुलकेशी द्वारा विजित हुआ, जिसने अपने भाई कुब्ज विष्णुवर्धनको यहाँका उपशासक नियुक्त किया। उसकी राजधानी गोदावरी जिसमे स्थित पिठपुर (आधुनिक पीठापुरम्) थी। चार वर्ष वाद कुब्जावर्द्धनने वेङ्गिको स्वतन्त्र राज्य वनाकर पूर्वी चालुक्य (दे०) वशकी नीव डाली, जो १०७० ई० तक सत्तारूढ रहा। इसके वाद यह राज्य चोल राज्यमे सम्मिलित कर लिया गया।

वेडरबर्न, सर विलियम—एक प्रसिद्ध आई० सी० एस० अफसर। इडियन सिविल सर्विससे अवकाश ग्रहण करनेके वाद उसने भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसकी स्थापनामे उत्साहके साथ योगदान किया और दिसम्वर १८८५ ई०मे वम्वईमे सम्पन्न काग्रेसके प्रथम अधिवेशनमे भाग लिया। इसके उपरान्त १८८९ तथा १९१० ई० मे सम्पन्न काग्रेसके दो अधिवेशनोका सभापतित्व भी उसने किया और मृत्युपर्यन्त भारतीयोकी राष्ट्रीय आकाक्षाओका समर्थन किया।

वेद—हिन्दुओंके सवसे प्राचीन धर्मग्रथ और सभवत विश्वकी प्राचीनतम पुस्तक। सनातनी हिन्दू वेदोको नित्य, शाश्वत और अपौरुषेय मानते है। वैदिक मन्त्रोके साथ जिन ऋषिओके नाम मिलते है, वे उनके रचयिता नही, द्रष्टा थे। वेदोकी गणना 'श्रुति' (जो सुना गया हो) मे की जाती है, क्योकि उन्हे गुरु-शिष्य परपरासे सुनकर कठस्थ किया जाता था। वेद चार हैं। यथा, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। वेद हिन्दू धर्मके मूलाधार हैं। वर्तमान हिन्दू धर्म मूल वैदिक धर्मसे काफी परिवर्तित हो चुका हे, फिर भी वेदोको अव भी प्रमाण माना जाता है। प्रत्येक वेद चार भागोमे विभक्त है। यथा, सहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्। सहिता-भागमे मन्त्रोका सग्रह मिलता है और वह सूक्तोमे विभाजित है। उदाहरणार्थ, ऋग्वेद सहितामे १०२८ सूक्त है जो १० मडलोमे विभक्त है। ब्राह्मण भागमे यज्ञानुष्ठानका विस्तृत विवरण मिलता है और वह प्रायः गद्यमे होता हे। मुख्य ब्राह्मण-ग्रथोमे ऋग्वेदसे सम्वन्धित ऐतरेय और कौषीतकि, सामवेदसे सम्वन्धित ताण्डय और जैमिनीय, यजुर्वेदसे सम्वन्धित तैत्तिरीय और शतपथ और अथर्ववेदसे सम्वन्धित गोपथ ब्राह्मण है।

आरण्यक-ग्रथ अरण्य (वन) मे रहनेवाले वानप्रस्थ लोगोके द्वारा पढे जानेके योग्य है। इनमे कर्मकाण्डकी अपेक्षा आध्यात्मिक रहस्योका विवेचन अधिक मिलता हे। आरण्यक-ग्रथ ब्राह्मण-ग्रथोके ही भाग हैं, इसीलिए प्रत्येक ब्राह्मण-ग्रथके साथ उसका आरण्यक भी उसी नामसे मिलता है।

उपनिषद् ग्रथोमे ब्रह्मविद्याका प्रतिपादन किया गया है। वे प्राय' गद्यमे है। उनके उपदेशोको कर्मकाड-प्रधान धर्मकी प्रतिक्रिया माना जाता हे। उनमे परम तत्त्वका विवेचन हे, जिसका ज्ञान मोक्ष-प्राप्तिके लिए आवश्यक माना जाता था।

चारो वेदोमे ऋग्वेद सवसे प्राचीन माना जाता है, उसका निर्माण-काल अभी तक ठीक-ठीक निर्धारित नही हो सका है। कुछ विद्वान् उसका निर्माण-काल ईसवी सन्से ४००० वर्ष पूर्व मानते है। अन्य विद्वानोका मत है कि उसका निर्माण-काल विहिस्तान अभिलेख (दे०) अथवा जरथुस्त्रको अपना पैगम्वर माननेवाले ईरानियोके धर्मग्रथ अवेस्तासे ५०० वर्षसे अधिक प्राचीन नही हो सकता। जो भी हो, इतना मानना होगा कि ऋग्वेद हिन्दुओका प्राचीनतम ग्रथ हे और उससे हमे प्राचीन भारतीय आर्योके धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक जीवनके वारेमे प्राचीनतम जानकारी मिलती है। (वाल गगाधर तिलक कृत ओरियन; ए० वी० कीथ कृत रिलीजन एण्ड फिलासफी आफ दि वेदाज; आर० सी० मजूमदार कृत

दि वेदिक एज, कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, खंड १; आर० सी० दत्त कृत ऋग्वेद संहिता))

वेदांग—वेदोंके पूरक या सहायक अंग। ये ग्रंथ सूत्र-शैलीमें लिखे गये हैं और छः विषयोंका निरूपण करते हैं, यथा—शिक्षा (ध्वनि शास्त्र), कल्प (धार्मिक आचार), व्याकरण, छन्द, निरुक्त (व्युत्पत्ति शास्त्र) तथा ज्योतिष।

वेदान्त—उपनिषदोंमें प्रतिपादित दर्शन। वेदका अंतिम भाग होनेसे उपनिषद-ग्रंथोंको वेदान्त भी कहा गया है और इसीलिए उसमें प्रतिपादित दर्शन सामान्यरूपसे वेदान्त-दर्शन कहा जाता है। इसका प्रतिपादन मुख्य रूपसे बादरायणने अपने ब्रह्मसूत्रमें किया है और उसके सबसे प्रसिद्ध व्याख्याकार शंकराचार्य (दे०) हैं। उन्होंने अपने अद्वैतवादी वेदान्त-दर्शनका सार निम्न श्लोकार्द्धमें दे दिया है—

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।

(ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है, यह जगत मिथ्या है। जीव और ब्रह्ममें कोई भेद नहीं है।)

उनके कथनानुसार ईश्वरकी उपासना करने अथवा उसका ध्यान करनेसे स्वर्ग-सुखकी प्राप्ति हो सकती है, किंतु, मोक्ष की प्राप्ति उसीको होती है जो ब्रह्म विद्याको जानता है, जो जानता है कि जीवात्मा और ब्रह्म एक है।

भिन्न-भिन्न आचार्योंने वेदान्तसूत्रों की व्याख्या भिन्न-भिन्न रीतिसे की है। उदाहरणके लिए रामानुजाचार्य (दे०) ने शंकराचार्यके अद्वैतवादके स्थानपर विशिष्टाद्वैत-वादका प्रतिपादन किया है। उनके मतानुसार विष्णु अथवा नारायण ही परब्रह्म है जो जगतके प्रत्येक पदार्थमें तथा सभी जीवात्माओंमें परिव्याप्त है। उनकी भक्ति तथा सत्कर्म करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है। मुक्तिका अर्थ है ईश्वरका सामीप्य-लाभ करके उसके वैकुंठलोकमें नित्य वास करना। उनका यह मत विशिष्टाद्वैत कहलाता है। वेदांत दर्शनके यही दो मुख्य सम्प्रदाय है, शंकरका अद्वैत-वाद तथा रामानुजका विशिष्टाद्वैतवाद। इनके अलावा निम्बार्काचार्य तथा मध्वाचार्य आदिने भी उसकी भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ की है।

वेन्तुरा, जनरल—एक इटालियन सेनानायक, जो महाराज रणजीत सिंह (दे०) की सेवामें नियुक्त था। उसने सिक्ख पैदल सेनाका पुनर्गठन किया। रणजीत सिंहने उसके साथ बड़ी उदारताका व्यवहार किया और उसे सूबेदार बना दिया तथा जागीर भी प्रदान की। किन्तु १८३९ ई०में रणजीत सिंहकी मृत्यु हो जानेपर वह पंजाब छोड़कर चला गया। (एन० के० सिन्हा कृत रणजीत सिंह)।

वेरेलेस्ट, हेनरी—बंगालका गवर्नर (१७६७-६९ ई०)। सामान्य योग्यताका व्यक्ति होते हुए भी वह पदोन्नति प्राप्त करनेके गुर जानता था। वह कम्पनीकी सेवामें लिपिकके रूपमें बंगाल आया, किन्तु गवर्नर राबर्ट क्लाइव (दे०) के दूसरे कार्यकालमें उसकी चार सलाह-कारोंकी प्रवर समितिका सदस्य बन गया। १७६७ ई० में क्लाइवके अवकाश ग्रहण करनेपर वह उसका उत्तरा-धिकारी बना। निजी व्यापार चलानेके अतिरिक्त वह गवर्नरके रूपमें प्रतिवर्ष २७०९३ पौण्डका वेतन भी लेता था। उसके प्रशासन-कालमें प्रजाको दोनों हाथसे लूटा गया। फलतः १७६९-७० ई० में बंगालमें भयंकर दुर्भिक्ष (दे०) फैला जिसके परिणाम-स्वरूप एक तिहाई जनसंख्या नष्ट हो गयी।

वेलेजली, आर्थर (बादमें ड्यूक आफ वेलिंगटन) (१७६९-१८५२)—भारतके गवर्नर-जनरल लार्ड वेलेजली (दे०) का छोटा भाई। वह १७९७ ई० में अर्थात् अपने भाईके आगमनसे एक वर्ष पहले फौजी अधिकारीके रूपमें भारत आया और १८०५ ई० तक कम्पनीकी सैन्य सेवामें रहा। उसने तत्कालीन युद्धोंमें, विशेष रूपसे दूसरे मराठा-युद्ध (दे०) में भाग लिया, जिसमें उसने १८०३ ई० में असई (दे०) तथा आरगाँव (दे०) के युद्धोंमें मराठोंको पराजित करके विशेष नामवरी पायी। उसने भोंसलाके साथ देवगाँव (दे०) की संधि तथा शिन्देके साथ सुर्जी-अर्जुनगाँव (दे०) की संधि करनेमें विशेष कूटनीतिक चातुर्यका परिचय दिया। भारतसे वापस लौटनेपर उसने स्पेनके प्रायद्वीपके युद्धमें विजय प्राप्त करके तथा वाटरलूके युद्धमें नैपोलियनको पराजित करके विशेष ख्याति प्राप्त की। १८२८ ई० में वह कुछ समयके लिए इंग्लैण्डका प्रधानमंत्री बन गया। मृत्युपर्यन्त सैनिक मामलोंमें तथा भारतके मामलोंमें उससे बराबर परामर्श लिया जाता रहा। उसकी मृत्यु १८५२ ई० में हुई।

वेलेजली, मारक्विस रिचर्ड कोली—१७९८ ई० से १८०५ ई० तक भारतका गवर्नर-जनरल। वह भारतके ब्रिटिश शासकोंमें सबसे महान् माना जाता है। उसने युद्धोंके द्वारा तथा शांति रीतिसे राज्योंका अधिग्रहण करके भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यका अभूतपूर्व विस्तार किया। उसने अहस्तक्षेप (दे०) की नीति त्याग कर भारतीय राजाओंको अंग्रेजोंका आश्रित बना देनेके उद्देश्यसे

आक्रामक नीति अपनायी। उसने भारतीय राजाओको अंग्रेजोंसे आश्रित सधि (इसे सहायक सधि भी कहते हैं) करनेके लिए विवश किया। जो भारतीय राजे इस सधिको स्वीकार कर लेते थे उन्हे कम्पनी सरकार आश्वासन देती थी कि वह उनकी सभी भीतरी तथा वाहरी शत्रुओसे रक्षा करेगी। इसके वदलेमे उन्हे अपने राज्यमे अंग्रेजी सेना तथा अपने दरवारमे अंग्रेज रेजिडेट रखनेके लिए राजी होना पडता था। इसके साथ ही उन्हे प्रतिज्ञा करनी पडती थी कि वे अंग्रेजोके सिवाय अन्य किसी विदेशी ताकतसे कोई सम्बन्ध नही रखेंगे और ब्रिटिश सरकारकी पूर्ण अनुमतिके विना किसी विदेशीको नौकर नही रखेंगे।

निजामने इस आश्रित सधिको स्वीकार कर लिया और इस प्रकार वह शातिपूर्ण रीतिसे अंग्रेजोका पूर्णतया आश्रित वन गया। मैसूरके टीपू सुलतान (दे०) ने इस प्रकारकी सधि करनेसे इन्कार कर दिया। फलत: वेलेजलीने चौथा मैसूर-युद्ध (दे०) छेड दिया, जिसमे टीपू परास्त होकर वीरगतिको प्राप्त हुआ। उसकी मृत्युके उपरात मैसूर तथा उसके आसपासके इलाकोको छोडकर उसका समस्त राज्य ब्रिटिश साम्राज्यमे मिला लिया गया। मैसूरकी गद्दीपर एक हिन्दू राजाको विठा दिया गया और उसे भी आश्रित सधि करनेके लिए विवश किया गया।

पेशवा वाजीराव द्वितीयने वसई (दे०) की सधिके द्वारा अंग्रेजोका आश्रित वनना स्वीकार कर लिया, परतु अन्य मराठा सरदारोने आश्रित सधि स्वीकार नही की। फलत वेलेजलीने दूसरा मराठा-युद्ध (दे०) छेड दिया, जिसके परिणाम-स्वरूप भोसला, शिन्दे तथा होलकरके राज्योका अधिकाश भाग ब्रिटिश साम्राज्यमे मिला लिया गया। इस प्रकार मध्य भारत, मालवा, गुजरात तथा दिल्ली ब्रिटिश शासनके अतर्गत आ गये। वेलेजलीने कुशासनका आरोप लगाकर कर्नाटक, तजौर तथा अवधके एक वडे भू-भागको भी ब्रिटिश साम्राज्यमे मिला लिया।

वेलेजलीकी अनवरत युद्धो तथा राज्यविस्तारकी नीतिसे नाराज होकर कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सने १८०५ ई० मे उसे वापस बुला लिया। परतु इसमे सदेह नही कि वेलेजलीने अपने कार्यकालकी समाप्तिपर भारतमे अंग्रेजोका सार्वभौम प्रभुत्व स्थापित कर दिया था और पजाव तथा सिंधको छोडकर सारा भारत ब्रिटिश साम्राज्यके अतर्गत आ गया था।

वेल्लोरमे भारतीय सैनिकोका विद्रोह—भारतीय सेनाके प्रारम्भिक निष्फल विद्रोहोमेसे एक। १८०६ ई० मे वेल्लोरमे तैनात भारतीय सैनिकोने कुछ नये नियमोके विरुद्ध वेल्लोरमे विद्रोह कर दिया। यह नये नियम उनके धार्मिक विश्वासोका अतिक्रमण करते थे। इस विद्रोहको अल्पकालमे ही वलपूर्वक दवा दिया गया, परन्तु इससे मिलनेवाली शिक्षाकी अवहेलना की गयी, जिसका आगे चलकर भयानक परिणाम निकला।

वेवेल, लार्ड (पहले सर आर्कीवाल्ड) (१८८३-१९५० ई०)—लार्ड लिनलिथगो (दे०) के उत्तराधिकारीके रूपमे १९४३ ई० से १९४७ई०तक भारतमे गवर्नर-जनरल रहा। १९४१ से १९४३ ई०तक वह भारतीय सेनाका प्रधान सेनापति भी रहा और जापानियोपर विजय प्राप्त कर उन्हे वर्मा और भारतसे निकाला। उसका पहला प्रयास था युद्ध स्तरपर वगालके अकालका सामना करना और खाद्य स्थितिको सम्हालना। युद्धकी समाप्तिपर उसने कोशिश की कि १९३५ के भारतीय शासन विधानके अनुसार भारतकी शासन सत्ता शातिपूर्ण ढगसे भारतीयोको हस्तान्तरित कर दी जाय, किन्तु अंग्रेजोकी नीयतके वारेमे भारतीयोके मनमे घुसे हुए सदेहोने उसका कार्य कठिन वना दिया। इसके साथ ही काग्रेस और मुसलिम लीगके परस्पर अविश्वासके कारण भी उसके मार्गमे कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गयी।

वेवेलने काग्रेस और लीगके नेताओकी अनेक वैठके आयोजित की, फरवरी १९४६ ई०मे वम्वईके नाविक-विद्रोहका दमन किया, कैविनेट मिशन (दे०) का स्वागत किया और उसकी योजनाके विफल होनेपर काग्रेसकी सहायतासे जवाहरलाल नेहरू (दे०) के नेतृत्वमे अन्तरिम सरकार (दे०) का गठन किया।

मुस्लिम लीगने इसका विरोध किया और १६ अगस्त १९४६ ई०को 'प्रत्यक्ष काररवाई दिवस' मनाया, जिसके फलस्वरूप भारतमे भीषण साम्प्रदायिक दगे हुए और वेवेल उन्हे शीघ्रतासे दवानेमे असफल रहा। फलत. १९४७ ई०मे लार्ड वेवेलको वापस वुला लिया गया और उसकी जगह लार्ड माउटवेटन (दे०) को भेजा गया। १९५० ई०मे इग्लैण्डमे वेवेलका देहान्त हो गया।

वैशाली—गौतमबुद्ध (दे०) के कालका एक प्रसिद्ध नगर, जो लिच्छिवि (दे०) गणकी राजधानी था। इसके भग्नावशेष गगाके उत्तरी किनारेपर हाजीपुरके निकट वसाढगाँवमे तथा उसके आसपास पाये जाते है। अपने उत्कर्षकालमे यह समृद्ध नगर था और दस वारह मील

घेरेमे फैला था। गौतम बुद्ध अनेक बार इस नगरमे पधारे थे। मगधके राजा अजातशत्रु (दे०) द्वारा विजित होनेपर यह उसके अधिकारमे आ गया। पाँचवी शताब्दी तक इस नगरका महत्त्व बना रहा। उस कालमे गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (दे०) के राज्यपालका कार्यालय इसी नगरमे था।

वैश्य—हिन्दुओकी वर्ण-व्यवस्थामे इनका तीसरा स्थान है। इस वर्णके लोग मुख्यतया वाणिज्य-व्यवसाय और कृषि करते थे। (एन० के० दत्त कृत कास्ट्स इन इण्डिया)

वैष्णव मत—का प्रचार चार महान आचार्यो—निम्बार्काचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य तथा वल्लभाचार्यने किया। उनकी उपासना-पद्धति भले ही भिन्न-भिन्न हो, परतु वे सभी एक ईश्वरमे विश्वास करते है, जिसकी उपासना वे राम, कृष्ण अथवा वासुदेवके नामसे करनेका उपदेश देते हैं। वे यज्ञादिके स्थानपर अपने उपास्यदेवकी भक्तिके द्वारा मुक्ति प्राप्त करनेपर बल देते है। वे ईश्वर, जीव तथा प्रकृतिमे भेद करते है। जीव माया (प्रकृति) मे लिप्त रहता है तथा ईश्वरके अनुग्रहसे मुक्ति प्राप्त कर लेता है। निम्बार्काचार्यके शिष्य उत्तरी भारतमे, विशेष रूपसे मथुरामे बडी सख्यामे मिलते है जो कृष्ण और राधाके उपासक है। रामानुजाचार्य (दे०) के शिष्य दक्षिण भारतमे बडी सख्यामे है जहाँ आलवार सतोने भक्ति मार्गका प्रचार पहले ही कर दिया था। रामानुजाचार्य नारायणको परब्रह्म मानते है। उनकी शिक्षाएँ अधिकाशतया भगवद्गीतापर आधारित है। वे ईश्वरको सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान तथा दयाका सागर मानते है। वे ईश्वरके सामीप्य-लाभको ही मुक्ति मानते हैं और उनका कथन है कि ईश्वरको माननेसे ही मुक्तिकी प्राप्ति होती है। माधवाचार्यका सम्प्रदाय विशेष रूपसे दक्षिण कन्नड़मे प्रचलित है। वे ईश्वरको पिता-स्वरूप और जीवात्माओको पुत्र-पुत्री स्वरूप मानते है। उनका उपासनाका मार्ग अत्यन्त सात्त्विक है। वल्लभाचार्यके शिष्य गुजरात तथा व्रजक्षेत्रमे बडी सख्यामे मिलते है। वे निवृत्ति मार्गके बजाय प्रवृत्ति मार्गका उपदेश देते है। उनका मार्ग ईश्वरके अनुग्रह (अथवा पुष्टि) पर आधारित होनेके कारण पुष्टि-मार्ग कहलाता है।

उत्तर भारतमे वैष्णव धर्मके सबसे बडे प्रचारक रामानन्द (दे०) थे जो १४वी शताब्दीमे हुए। उन्होने अपने मतका प्रचार करनेके लिए 'भाषा'का सहारा लिया, जातिगत भेद-भावोकी उपेक्षा की और सभीको ईश्वरकी भक्ति करनेका समान रूपसे अधिकारी माना। वह नारायण या कृष्णके स्थानपर रामको ही परब्रह्म मानते थे। रामानन्दने सभी जातियोमे अपने शिष्य बनाये। उनके १२ मुख्य शिष्योमे कबीर (दे०) मुसलमान जुलाहे थे तथा रैदास चमार थे। बगाल तथा उडीसामे चैतन्य महाप्रभु (दे०) तथा आसाममे शकरदेव (दे०) ने वैष्णव मतका प्रचार किया। दोनोके उपासनामार्गमे एक आधारभूत भेद है। चैतन्यने जबकि कृष्ण और राधाकी प्रेमलीलाको भक्तके आदर्शके रूपमे प्रस्तुत किया, शकरदेवने कृष्णके बाल-गोपाल रूपकी उपासनापर बल दिया।

वैष्णव धर्मके प्रचारने देशी भाषाओमे साहित्यके विकासमे विशेष रूपसे सहायता पहुँचायी, जैसाकि जयदेव (दे०), विद्यापति, चण्डीदास (दे०), मीराबाई तुलसीदास (दे०), कृत्तिवास तथा शकरदेव (दे०) की रचनाओसे प्रकट है।

व्यकाजी (वेकाजी)—छत्रपति शिवाजी (दे०) का सौतेला छोटा भाई। वह बीजापुर राज्यकी एक जागीरका स्वामी था, जो सुल्तानकी ओरसे उसके पिता शाहजीको दी गयी थी। उसकी माताका नाम तुकाबाई था। महाराष्ट्र मे स्वराज्यकी स्थापनाके लिए अपने अग्रज शिवाजीकी उसने तनिक भी सहायता नही की।

व्याघ्रराज—दक्षिणापथके महाकान्तार नामक राज्यका स्वामी, जिसका उल्लेख समुद्रगुप्त (दे०)के प्रयाग-स्तम्भ लेखमे हुआ है। वह दक्षिण भारतके उन राजाओमेसे एक था जिनको गुप्त सम्राट्ने बन्दी बनानेके बाद कृपापूर्वक उन्मुक्त कर दिया था।

व्यास (वेदव्यास)—एक प्रसिद्ध ऋषि। उन्हे महाभारत, अठारह पुराणो तथा वेदान्त सूत्रका रचयिता माना जाता है। उनका अस्तित्व केवल साहित्यिक अनुश्रुतियोसे प्रमाणित होता है, जो इतनी प्राचीन है कि उनकी अवहेलना नही की जा सकती। यह सम्भव है कि महर्षि व्यासकी प्रसिद्धिके कारण बादके बहुतसे लेखकोने अपनी रचनाएँ उनके नामसे प्रचलित कर दी।

व्यास—सिन्धुकी एक सहायक नदी, जिसे वैदिक कालमे विपाशा पुकारते थे। यूनानी लेखकोने इसे हिपासिस सम्बोधित किया है। यह लाहौरके निकट सतलज अथवा शतद्रु नदीमे मिलती है। सिकन्दरकी सेनाएँ पूर्वमे इस नदीके तट तक आयी थी।

ह्वीलर, कर्नल—बगालमे कम्पनीकी सेवामे नियुक्त एक सैन्य अधिकारी। मोनसोनकी मृत्युके बाद वह १७७६ ई०मे

वारेन हेस्टिंग्स (दे०)की कौंसिलका सदस्य नियुक्त हुआ। ह्वीलरने पहले फ्रांसिसका समर्थन किया, किन्तु बादमे वारेन हेस्टिंग्सको पूरा सहयोग एव समर्थन दिया।

ह्वीलर, मेजर-जनरल—कम्पनीकी सेवामे नियुक्त एक सैन्य अधिकारी। सिपाही-विद्रोहके समय वह कानपुरकी छावनीका कमाण्डर था। उसकी अवस्था ७५ वर्षकी थी। जब विद्रोहियोने कानपुरपर आक्रमण किया, तो वह जून १८५७ ई०मे तीन सप्ताहतक मोर्चा लेता रहा। बादको उसने इस आश्वासनपर आत्म समर्पण कर दिया कि अग्रेज सैनिकोको सुरक्षित रूपमे इलाहाबाद चले जाने दिया जायगा। किन्तु अग्रेज सैनिक जब नावोपर सवार होकर रवाना होने लगे तो विद्रोहियोने उनपर हमला कर दिया और जनरल ह्वीलरके सहित उन सबको मौतके घाट उतार दिया।

श

शकरदेव—देवगिरिके यादव शासक रामचन्द्र देवका उत्तराधिकारी। दिल्लीके सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीको नियमित रूपसे कर न दे सकनेके कारण सुल्तानकी सेनाओने १३१२ ई०मे उसके राज्यपर आक्रमण कर दिया। शकरदेव पराजित हुआ और मारा गया। तदुपरान्त उसका राज्य दिल्ली सल्तनतमे सम्मिलित कर लिया गया।

शकरदेव—आसामके विख्यात वैष्णव धर्म-सुधारक। जन्म लगभग १४४९ ई० मे और मृत्यु १५६९ ई०मे हुई। उन्होने जन-साधारणमे वैष्णव धर्मके उदात्त रूपका प्रचार किया तथा तत्कालीन आसाममे अत्यधिक प्रचलित हिंसात्मक यज्ञो एव बलि प्रथाके स्थानपर भक्तिकी धारा बहायी। उन्हे कूच विहारके शासक नर-नारायण (दे०) का सरक्षण प्राप्त था। फलत उन्होने बडपेटाको ही अपना केन्द्र बनाया। आसाम प्रदेशमे उनके द्वारा प्रचारित भक्ति मार्गने बडी लोकप्रियता प्राप्त की। शकरदेव उच्चकोटिके कवि और नाटककार भी थे। उनके गीत और नाटक आज भी आसाममे अत्यधिक लोकप्रिय है।

शकराचार्य—उत्तर गुप्त कालके सबसे महान् दार्शनिक है। जन्म दक्षिण भारतके कालटी नामक ग्रामके एक ब्राह्मण परिवारमे ८वी शताब्दीमे। वे उपनिषदो, भगवद्गीता तथा बादरायणके ब्रह्म-सूत्रोपर रचे गये अपने भाष्यके लिए प्रसिद्ध है। उन्होने बादरायणके ब्रह्मसूत्रके ही आधारपर अपने अद्वैत सिद्धान्तका प्रतिपादन किया। अपने सिद्धान्तोके प्रतिपादनार्थ उन्होने सम्पूर्ण भारतका भ्रमण किया। वे महान् सगठनकर्ता भी थे। उन्होने मैसूरमे शृगगिरि, काठियावाडमे द्वारका, उडीसामे जगन्नाथपुरी और हिमालयमे बद्रीनाथके प्रसिद्ध पीठोकी स्थापना की। ये चारो पीठ अब भी विद्यमान है तथा लाखो हिन्दुओको धार्मिक प्रेरणा देते है। अल्पायुमे ही उनका देहान्त हो गया, परन्तु आज भी हिन्दू समाज उनका स्मरण बडी श्रद्धा और भक्तिके साथ करता है।

शम्भुजी, राजा—शिवाजी प्रथमका पुत्र और उत्तराधिकारी, जिसने १६८० मे १६८९ ई० तक राज्य किया। उसमे अपने पिताकी कर्मठता और दृढ सकल्पका अभाव था। वह विलास-प्रिय था किन्तु उसमे शौर्यकी कमी न थी। लगभग ९ वर्षोतक वह निरन्तर औरगजेबकी विशाल सेनाओका सफलतापूर्वक सामना करता रहा। अपनी गलतीसे रत्नगिरिके निकट सगमेश्वर नामक स्थलपर वह अपने मत्री कुलश सहित ११ फरवरी १६८९ ई०को मुगलो द्वारा बन्दी बना लिया गया। लगभग एक मास उपरान्त औरगजेबने निर्दयतापूर्वक उसका वध करवा डाला।

शम्भुजी कावजी—शिवाजी प्रथमका विश्वास-पात्र अनुचर। जब शिवाजी अफजल खाँसे भेट करने गये थे तब वह उनके साथ था। भेटके समय जब शिवाजीने अफजलको बघनखसे साघातिक रूपसे घायल कर दिया, तभी शम्भुजी कावजीने उसका सिर काट लिया।

शक—मध्य एशियाके निवासी यायावर जातिके लोग। दूसरी शताब्दी ई० पू० मे युइशि कबीलेके लोगो द्वारा मध्य एशियासे निष्कासित होनेपर दक्षिणकी ओर भागनेके लिए विवश हुए। उन्होने कई झुण्डोमे भारतमे प्रवेश किया और प्रथम शताब्दी ई० पू०के अत तक वे गधार, पजाब, मथुरा, कठियावाड और दक्षिणमे महाराष्ट्र तकके भू-भागोमे फैल गये। शक शासकोने 'क्षत्रप' और 'महाक्षत्रप' (दे०) की उपाधियाँ धारण की और प्रारभमे वे पार्थियन शासको तथा उपरात कुषाणो (दे०) की सार्वभौम सत्ता स्वीकार करते रहे। भारतीय ग्रथकारोने प्रारभमे उनकी गणना विदेशियो तथा यवनोमे की, किन्तु उपरात शक लोग स्थानीय हिन्दू समाजमे पूर्णतया घुलमिल कर भारतीय हो गये। पश्चिमी भारतमे शकोने शताब्दियो तक राज्य किया। काठियावाड तथा उज्जैनके आसपासके क्षेत्र उनके अधिकारमे रहे। अन्तिम शक शासक

रुद्रसिंह तृतीयको गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्यने लगभग ३८८ ई०मे परास्त कर शक सत्ताका अन्त कर दिया ।

शक संवत्—इसका प्रारभ ७८ ई० माना जाता है । साधारणतया कुषाण शासक कनिष्ठ प्रथमको ही इस सवत्को चलानेका श्रेय प्राप्त है, पर कुछ विद्वानोने इस मतकी आलोचना की है और उसे किसी अन्य शासक द्वारा चलाया गया माना है । फिर भी समस्त व्यवहृत भारतीय सवतो (दे०) मे शक सवत् अत्यधिक प्रचलित रहा है और भारतीय गणतत्रने इसे ही राष्ट्रीय सवत्के रूपमे स्वीकार किया है ।

शकुतला नाटक (मूल नाम—अभिज्ञान शाकुन्तल)—महाकवि कालिदास (दे०) द्वारा रचित ख्यातिलब्ध नाटक । महाकवि गेटे तथा अन्य पाश्चात्य विद्वानोने इस नाटककी भूरि-भूरि प्रशसा की है और इसे विश्वकी सर्वश्रेष्ठ रचनाओमेसे एक माना है ।

शत्रुजय—गुजरातका एक प्रसिद्ध नगर । यहाँ दसवी और ग्यारहवी शताब्दीमे चालुक्य वशके शासको द्वारा निर्मित अनेक भव्य जैन मदिर है ।

शम्सुद्दीन (कश्मीरका सुलतान)—स्वातका निवासी एक साहसी व्यक्ति । उसका प्रारभिक नाम शाह मिर्जा या शाहमीर था । उसने कश्मीर जाकर वहाँके हिन्दू शासकके यहाँ नौकरी कर ली । बादमे वह पदोन्नति करके मत्री बन गया और लगभग १३४६ ई०मे वहाँके हिन्दू शासकको सिहासनसे उतार कर कश्मीरका शासक बन बैठा । उसने १३४९ ई० मे अपनी मृत्यु-पर्यन्त बडी कुशलतासे शासन किया और उसीसे कश्मीरमे मुसलमान सुल्तानोके उस वशकी शुरुआत हुई, जिसने १५८६ ई०मे अकबर द्वारा कश्मीर जीत लेने तक वहाँ राज्य किया ।

शम्सुद्दीन अतगा खाँ—इसको बादशाह अकबरने १५६१ ई० मे प्रधान-मत्री नियुक्त किया । किन्तु अकबरकी दूध-माँ महम अनका और उसके पुत्र अदहम खाँको यह नियुक्ति नागवार हुई । एक दिन अदहम खाँ आगा खाँके कार्यालयमे घुस गया और कटारसे वार करके उसकी हत्या कर दी, पश्चात उस दुष्टने स्वय अकबरके ऊपर भी आक्रमण किया । किन्तु अकबरने उसे एक ही मुक्केके प्रहारसे धराशायी कर दिया । तदुपरान्त किलेकी दीवारसे नीचे फेक कर उसे मार डाला गया ।

शम्सुद्दीन बहमनी—बहमनी वशका सातवाँ सुलतान । अपने भाई गयासुद्दीनके उपरान्त १३९७ ई०मे वह सिहासनासीन हुआ, किन्तु कुछ काल उपरान्त ही उसे गद्दीसे उतार और अन्धा करके कारागारमे डाल दिया गया ।

शम्सुद्दीन मुजफ्फर शाह—अबीसीनियाका निवासी, जिसका मूल नाम सीदी बदर था । बगालमे इलियासवशके अन्तिम शासक नासिरुद्दीन महमूद द्वितीयके राज्यकालमे वह उच्च पदाधिकारी बना । १४९० ई०मे अपने स्वामी नासिरुद्दीन द्वितीयकी हत्या करके स्वय गद्दीपर बैठा और उसने शम्सुद्दीन मुजफ्फर शाहकी उपाधि धारण की । वह अत्याचारी शासक सिद्ध हुआ और समूचे राज्यमे अराजकता फैल गयी । स्थिति असह्य हो जानेपर बगालके सरदारोने उसके मत्री अलाउद्दीन हुसैनके नेतृत्वमे शम्सुद्दीनको १४९३ ई० मे लगभग चार महीने तक राजधानी गौडमें घेरे रखा परन्तु इसी बीच उसकी मृत्यु हो गयी ।

शम्से-सिराज, अफीफ—फारसीमे 'तारीखे फीरोजशाही' नामक ग्रथका रचयिता, जिसमे सुल्तान फीरोजशाह तुगलक (दे०) के राज्यकालकी ऐतिहासिक घटनाओका समसामयिक वर्णन है । शम्सेसिराज फीरोजशाहकी सेवामे उच्च पदाधिकारी था । उसका विवरण सुल्तानके राज्यकालका आधिकारिक इतिहास माना जा सकता है ।

शरत्चन्द्र दास (१८४९–१९१७)—बगालके एक निर्धन परिवारमे जन्म और सामान्य स्कूल-अध्यापककी भाँति जीवनारभ । उन्हे दुस्साहसिक कार्य करना और ज्ञान अर्जित करना बहुत प्रिय था । इसीका फल था कि उन्होने १८७९ ई०मे तिब्बतकी यात्रा की । यह उस समय की बात है जब किसी भी गैर-तिब्बतीका तिब्बतमे प्रवेश निषिद्ध था । सर फ्रासिस यगहसबैण्ड जब तिब्बत गये, उससे २५ वर्ष पहलेकी यह घटना है । इस प्रकार शरत्चन्द्रको ही यह सौभाग्य प्राप्त है कि उन्होने आधुनिक युगमे लोगोको तिब्बत और उसकी राजधानी ल्हासाके बारेमे जानकारी दी । वे १८८१ ई०मे पुन तिब्बत गये । इसके बाद १८८४ मे सिक्किम तथा १८८५ मे पेकिंग भी गये । उन्होने तिब्बती भाषा सीखी और सुम्पा खाम्पो लिखित 'पाग साम फोन जाग' पुस्तकका अनुवाद अग्रेजीमे किया । उन्होने अग्रेजीमे सुप्रसिद्ध पुस्तक 'इडियन पडित्स इन लैण्ड आफ स्नो' (हिमाच्छादित देशमे भारतीय पडित) लिखी । इसी पुस्तकसे दुनियाको मालूम हुआ कि मध्ययुगमे किस प्रकार भारतीय बौद्ध भिक्षु तिब्बत गये और किस प्रकार वहाँ उन्होने भारतीय धर्म एव सस्कृतिका प्रसार किया । शरत् चद्रने तिब्बती-अग्रेजी कोश (१९०२) की भी रचना की जो एक मानक ग्रथ माना जाता है ।

शरिय तुल्ला, हाजी–बगला देशके फरीदपुर जिलेका मुसलमान नेता, जिसने १९ वी शताब्दीके प्रारभमे पूर्वी बगालमे इस्लाम धर्ममे सुधार करनेके लिए आन्दोलन किया। उनका यह आन्दोलन फरायजी आन्दोलनके नामसे विख्यात हुआ। तदुपरात इसने कृषक आन्दोलन का रूप धारण कर लिया, किन्तु साधारणतया यह शान्तिमय रहा। उनकी गणना पूर्वी बगालके मुसलमानोमे सुधार वादी आन्दोलनके अग्रणी व्यक्तियोमे की जाती है।

शशांक–बगालका यशस्वी शासक, जिसने उस प्रदेशकी सीमाओके वाहर अपना राज्य विस्तार किया। उसका वश अज्ञात है और गुप्तवशके साथ उसको सम्बन्धित करना केवल अनुमान मात्र है। उसकी उत्पत्ति चाहे जिस वशमे भी हुई हो, इतना निश्चय है कि ६०६ ई० के पूर्व ही वह गौड अथवा बगालका शासक बन चुका था और उसकी राजधानी कर्णसुवर्ण थी, जिसकी पहचान मुर्शिदावाद जिलेके अतर्गत रागामाटी नामक कसबेसे की गयी है। यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि दक्षिणी और पूर्वी बगाल उसके राज्यके अतर्गत थे अथवा नही, पर पश्चिममे उसका राज्य मगध तक और दक्षिणमे उडीसाकी चिलका झील तक अवश्य था। पश्चिमकी ओर साम्राज्य-विस्तार करनेके प्रयासमे शशाकको मौखरि शासकोसे सघर्ष करना आवश्यक हो गया और उसने मौखरियोके शत्रु और मालवाके शासक देवगुप्तसे सधि कर ली।

देवगुप्तने अपने मौखरि प्रतिद्वन्द्वी ग्रहवर्माको पराजित करके मार डाला और अपने मित्रके सहायतार्थ आगे बढकर शशाकने कन्नौजपर अधिकार कर लिया। इसपर राजवर्धन (दे०)ने, जो उन्ही दिनो थानेश्वरका शासक हुआ था और जिसकी वहन राज्यश्री ग्रहवर्माके मारे जानेके फलस्वरूप विधवा हो गयी थी, शशाकपर आक्रमण कर दिया। घटनाओका क्रम क्या रहा, निश्चय करना कठिन है, पर राज्यवर्धनको शशाक अथवा उसके अनुचरोने मार डाला। राज्यवर्धनके इस प्रकार मारे जानेपर उसके भ्राता और उत्तराधिकारी हर्षवर्धनने कामरूपके शासक भास्कर वर्मासे सन्धि कर ली, जो शशाककी शक्तिसे भयभीत तथा और उसके विरुद्ध हर्षवर्धनकी सहायताका आकाक्षी था। इस प्रकार दोनो ओरसे आक्रमणकी आशकासे शशाकको पीछे हटकर अपनी राजधानी वापस जाना पडा और दोनो शत्रुओने उसके विजित राज्यको विशेष क्षति पहुँचायी।

हर्ष और भास्कर वर्माको भी शीघ्र ही अपने-अपने राज्योकी स्थिति सँभालनेके लिए वापस जाना पडा और शशाकका गौड, मगध और चिलका झील तक उत्कल (उडीसा)पर अधिकार मृत्यु पर्यन्त बना रहा। उसकी मृत्यु ६१९ ई०के उपरान्त किन्तु ६३७ ई०के पूर्व कभी हुई होगी। उसके सिक्कोमे स्पष्ट है कि वह शिवका उपासक था किन्तु चीनी यात्री ह्युएनत्साग द्वारा वर्णित उसके बौद्ध धर्मसे विद्वेष और बौद्धोपर अत्याचारकी कहानियोमे कितनी सत्यता है, यह निश्चय कर पाना कठिन है। (र० च० मजूमदार कृत हिस्ट्री आफ बगाल, प्रथम भाग)

शहरयार–सम्राट् जहाँगीरका सबसे छोटा पुत्र। उसने नूरजहाँकी, उसके प्रथम पति शेर अफगनसे उत्पन्न पुत्रीसे विवाह किया था। इसी कारण नूरजहाँने १६२७ ई०मे जहाँगीरकी मृत्युके उपरान्त उसे ही दिल्लीके सिहासनपर वैठाना चाहा। यद्यपि जहाँगीरकी मृत्युके उपरान्त उसे लाहौरमे वादशाह घोषित कर दिया गया तथापि शहरयारमे व्यक्तिगत प्रतिभा एव योग्यताका अभाव था। शाहजहाँके श्वसुर आसफ खाँने शहरयारको शीघ्र ही पराजित करके वन्दी बना लिया और शाहजहाँके मार्गका काँटा सदाके लिए दूर कर देनेके विचारसे अधा कर दिया।

शहाबुद्दीन–देखिये, 'मुहम्मद गोरी'।

शहाबुद्दीन–अकबरकी दूध-माँ, महम अनकाका सम्बन्धी। अकबरके सिहासनारोहणके समय वह दिल्लीका हाकिम था। वह उन दरबारियोमेसे एक था, जिन्होने अकबरको वैरम खाँके विरुद्ध भडकाया था, जिसके फलस्वरूप वैरम खाँको १५६० ई०मे पदच्युत कर दिया गया।

शहाबुद्दीन गोरी–१४०१ से १४०५ ई० तक मालवाका सुल्तान। वह दिल्लीके प्रथम मुसलमान सुल्तान शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीका वशज था। १३९८ ई०मे तैमूरके आक्रमणके फलस्वरूप दिल्लीकी सल्तनतमे अव्यवस्था फैली, जिसका लाभ उठाकर शहाबुद्दीनने, जो उन दिनो मालवाका शासक था, अपनेको मालवाका स्वतत्र शासक घोषित कर दिया और धारको राजधानी बनाया। उसके वशजोने १४३२ ई०तक मालवामे शासन किया।

शाक्य–गण छठी शताब्दी ई०पू०मे नेपालकी तराई और भारत-नेपालकी सीमाके भू-भागोमे निवास करता था। इनकी राजधानी कपिलवस्तु (दे०)थी। शाक्योमे प्रमुख गौतमबुद्ध (दे०)के पिता शुद्धोदन थे। शाक्य लोग अपनेको सूर्यवशी तथा इक्ष्वाकुके वशज मानते थे।

शाक्य मुनि–का शाब्दिक अर्थ है शाक्य जातिमे उत्पन्न

रुद्रसिंह तृतीयको गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्यने लगभग ३८८ ई०मे परास्त कर शक सत्ताका अन्त कर दिया।

शक संवत्–इसका प्रारभ ७८ ई० माना जाता है। साधारणतया कुषाण शासक कनिष्ठ प्रथमको ही इस सवत्को चलानेका श्रेय प्राप्त है, पर कुछ विद्वानोंने इस मतकी आलोचना की है और उसे किसी अन्य शासक द्वारा चलाया गया माना है। फिर भी समस्त व्यवहृत भारतीय सवतो (दे०) मे शक सवत् अत्यधिक प्रचलित रहा है और भारतीय गणतत्रने इसे ही राष्ट्रीय सवत्के रूपमे स्वीकार किया है।

शकुतला नाटक (मूल नाम–अभिज्ञान शाकुन्तल)–महाकवि कालिदास (दे०) द्वारा रचित ख्यातिलब्ध नाटक। महाकवि गेटे तथा अन्य पाश्चात्य विद्वानोंने इस नाटककी भूरि-भूरि प्रशसा की है और इसे विश्वकी सर्वश्रेष्ठ रचनाओमेसे एक माना है।

शत्रुजय–गुजरातका एक प्रसिद्ध नगर। यहाँ दसवी और ग्यारहवी शताब्दीमे चालुक्य वशके शासको द्वारा निर्मित अनेक भव्य जैन मदिर है।

शम्सुद्दीन (कश्मीरका सुलतान)–स्वातका निवासी एक साहसी व्यक्ति। उसका प्रारभिक नाम शाह मिर्जा या शाहमीर था। उसने कश्मीर जाकर वहाँके हिन्दू शासकके यहाँ नौकरी कर ली। बादमे वह पदोन्नति करके मत्री बन गया और लगभग १३४६ ई०मे वहाँके हिन्दू शासकको सिहासनसे उतार कर कश्मीरका शासक बन बैठा। उसने १३४९ ई० मे अपनी मृत्यु-पर्यन्त बड़ी कुशलतासे शासन किया और उसीसे कश्मीरमे मुसलमान सुल्तानोके उस वशकी शुरुआत हुई, जिसने १५८६ ई०मे अकबर द्वारा कश्मीर जीत लेने तक वहाँ राज्य किया।

शम्सुद्दीन अतगा खाँ–इसको बादशाह अकबरने १५६१ ई० मे प्रधान-मत्री नियुक्त किया। किन्तु अकबरकी दूध-माँ महम अनका और उसके पुत्र अदहम खाँको यह नियुक्ति नागवार हुई। एक दिन अदहम खाँ आगा खाँके कार्यालयमे घुस गया और कटारसे वार करके उसकी हत्या कर दी, पश्चात उस दुष्टने स्वय अकबरके ऊपर भी आक्रमण किया। किन्तु अकबरने उसे एक ही मुक्केके प्रहारसे धराशायी कर दिया। तदुपरान्त किलेकी दीवारसे नीचे फेंक कर उसे मार डाला गया।

शम्सुद्दीन बहमनी–बहमनी वशका सातवाँ सुलतान। अपने भाई गयासुद्दीनके उपरान्त १३९७ ई०मे वह सिहासनासीन हुआ, किन्तु कुछ काल उपरान्त ही उसे गद्दीसे उतार और अन्धा करके कारागारमे डाल दिया गया।

शम्सुद्दीन मुजफ्फर शाह–अबीसीनियाका निवासी, जिसका मूल नाम सीदी बदर था। बगालमे इलियासवशके अन्तिम शासक नासिरुद्दीन महमूद द्वितीयके राज्यकालमे वह उच्च पदाधिकारी बना। १४९० ई०मे अपने स्वामी नासिरुद्दीन द्वितीयकी हत्या करके स्वय गद्दीपर बैठा और उसने शम्सुद्दीन मुजफ्फर शाहकी उपाधि धारण की। वह अत्याचारी शासक सिद्ध हुआ और समूचे राज्यमे अराजकता फैल गयी। स्थिति असह्य हो जानेपर बगालके सरदारोने उसके मत्री अलाउद्दीन हुसैनके नेतृत्वमे शम्सुद्दीनको १४९३ ई० मे लगभग चार महीने तक राजधानी गौडमे घेरे रखा परन्तु इसी बीच उसकी मृत्यु हो गयी।

शम्से-सिराज, अफीफ–फारसीमे 'तारीखे फीरोजशाही' नामक ग्रथका रचयिता, जिसमे सुल्तान फीरोजशाह तुगलक (दे०) के राज्यकालकी ऐतिहासिक घटनाओका समसामयिक वर्णन है। शम्सेसिराज फीरोजशाहकी सेवामे उच्च पदाधिकारी था। उसका विवरण सुल्तानके राज्यकालका आधिकारिक इतिहास माना जा सकता है।

शरत्चन्द्र दास (१८४९–१९१७)–बगालके एक निर्धन परिवारमे जन्म और सामान्य स्कूल-अध्यापककी भाँति जीवनारभ। उन्हे दुस्साहसिक कार्य करना और ज्ञान अर्जित करना बहुत प्रिय था। इसीका फल था कि उन्होने १८७९ ई०मे तिब्बतकी यात्रा की। यह उस समय की बात है जब किसी भी गैर-तिब्बतीका तिब्बतमे प्रवेश निषिद्ध था। सर फ्रासिस यगहसबैण्ड जब तिब्बत गये, उससे २५ वर्ष पहलेकी यह घटना है। इस प्रकार शरत्चन्द्रको ही यह सौभाग्य प्राप्त है कि उन्होने आधुनिक युगमे लोगोको तिब्बत और उसकी राजधानी ल्हासाके बारेमे जानकारी दी। वे १८८१ ई०मे पुन तिब्बत गये। इसके बाद १८८४ मे सिक्किम तथा १८८५ मे पेकिंग भी गये। उन्होने तिब्बती भाषा सीखी और सुम्पा काहन लिखित 'पाग साम फोन जाग' पुस्तकका अनुवाद अग्रेजीमे किया। उन्होने अग्रेजीमे सुप्रसिद्ध पुस्तक 'इडियन पडित्स इन लैण्ड आफ स्नो' (हिमाच्छादित देशमे भारतीय पडित) लिखी। इसी पुस्तकसे दुनियाको मालूम हुआ कि मध्ययुगमे किस प्रकार भारतीय बौद्ध भिक्षु तिब्बत गये और किस प्रकार वहाँ उन्होने भारतीय धर्म एव सस्कृतिका प्रसार किया। शरत् चद्रने तिब्बती-अग्रेजी कोश (१९०२) की भी रचना की जो एक मानक ग्रथ माना जाता है।

मुनि अथवा तपस्वी, किन्तु इसका प्रयोग मुख्यत. गौतम बुद्धके लिए होता है ।

शायस्ता खाँ—औरगजेबका मामा । १६६० ई०मे औरगजेबने उसे विशेप रूपसे शिवाजीका दमन करनेके लिए दक्षिणका सूवेदार नियुक्त किया । प्रारभमे शायस्ता खाँको कुछ सफलता मिली, किन्तु वर्षाकालमे जव वह पूना लौट गया तब शिवाजीने रात्रिमे अचानक उसपर आक्रमण कर दिया । बडी कठिनतासे शायस्ता खाँने अपने प्राणोकी रक्षा की, किन्तु उसे अपनी तीन अगुलियोसे हाथ धोना पडा तथा उसका पुत्र भी मारा गया । उपरान्त उसका तवादला वगालको कर दिया गया, जहाँ उसने ३० वर्षो तक विशेष सफलतापूर्वक शासन किया। उसने वगालके समुद्रतटवर्ती भू-भागोमे लूटमार करनेवाले पुर्तगाली समुद्री डाकुओका दमन किया और अराकानके राजासे चिरगाँव जिला भी छीन लिया । १६९४ ई०मे ९० वर्षसे भी अधिक आयुमे वह आगरेमे मर गया ।

शारदा-कानून—राय साहव हरविलास शारदा द्वारा प्रस्तुत एक विधेयक । १९२९ ई०मे यह भारतीय विधान मडल द्वारा पारित किया गया । इस कानूनका उद्देश्य विवाह्की उम्र बढा करके वाल-विवाह रोकना था ।

शालिवाहन—इसका उल्लेख परपरागत भारतीय लोककथाओमे विशेषरूपसे मिलता है, किन्तु मुद्राओ तथा अभिलेखीय प्रमाणोके अभावमे उसकी ऐतिहासिकता सिद्ध नही होती । दक्षिणके अनेक सातवाहन राजाओकी कृतियाँ उसके साथ सम्बद्ध हो गयी है और देशके कुछ भू भागोमे शक सवत् भी उन्हीके द्वारा चलाया हुआ माना जाता है ।

शालिशुक—परवर्ती मौर्य शासकोमेसे एक, जो सम्राट् अशोकके पौत्र सम्प्रति (दे०)के उपरान्त सिहासनारूढ हुआ । उसे अनाचारी और अत्याचारी शासक कहा गया हे ।

शास्त्री, लालवहादुर (१९०४–१९६६ ई०)—मई, १९६४ से ११ जनवरी १९६६ ई०को मृत्युपर्यन्त भारतके प्रधान-मत्री । जन्म उत्तर प्रदेशके वाराणसी जिलेमे एक निर्धन परिवारमे । वे स्वावलम्बी व्यक्ति थे और अपनी योग्यता, गुण तथा चरित्रवलके आधारपर अध्यापकके निम्नपदसे उठकर पण्डित जवाहरलाल नेहरूके उपरान्त भारतके प्रधान-मत्री पदपर आसीन हुए । मात्र १९ महीनोके कार्यकालमे उनकी उपलब्धियाँ कुछ कम न थी, जिनके प्रमाणस्वरूप उन्हे मरणोपरान्त 'भारतरत्न'की सर्वोच्च, उपाधि ससम्मान प्रदान की गयी । सीधे-सादे, शान्त प्रकृति एव पक्के गाधीवादी देशभक्त थे । यद्यपि वे कदमे छोटे थे, परन्तु उनका कृतित्व महान् था । उन्होने भारतकी खाद्य समस्या एव विपम आर्थिक स्थितिको ही सुलझानेका प्रयास नही किया, अपितु चीनके साथ चल रही युद्ध जैसी स्थितिमे भी यथासभव सुधार किया । उन्हें पाकिस्तानके साथ दो युद्ध करने पडे । पहली वार पाकिस्तानने कच्छपर तथा दूसरी वार जम्मू और कश्मीरपर अधिकार करनेकी चेष्टा की ।

जम्मू तथा कश्मीरपर पाकिस्तानी आक्रमणोके फलस्वरूप उन्होने वडी वीरता और दृढतापूर्वक भारतका नेतृत्व किया और इस युद्धमे पाकिस्तानको मुँहकी खानी पडी । इसके साथ ही उन्होने चीनी सेनाओको भी युद्धमे भाग लेनेसे रोक रखा । उन्होने कच्छ-विवादको अन्तर्राष्ट्रीय पचनिर्णयसे सुलझाना स्वीकार कर लिया तथा कश्मीरके मोर्चेपर भी सयुक्त राष्ट्रसघका युद्ध-विरामका अनुरोध स्वीकार कर लिया, हालाकि भारतका पलडा भारी था । तदुपरान्त रूसके आमत्रणपर पाकिस्तानके साथ शान्तिपूर्ण समझौतेकी सम्भावनाओपर विचार करनेके लिए ताशकन्द गये । वहाँ रूसकी मध्यस्थतासे पाकिस्तानके राष्ट्रपति अयूव खाँके साथ एक समझौता सम्पन्न हुआ जो 'ताशकन्द घोषणापत्र'के नामसे विख्यात है । अत्यधिक परिश्रम और मानसिक तनावके कारण ताशकन्दमे घोषणापत्रपर हस्ताक्षर करनेके कुछ ही घण्टोके उपरान्त ११ जनवरी १९६६ ई०को उनका देहान्त हो गया । भारत और पाकिस्तानके वीच स्थायी शाति स्थापित करनेके प्रयासमे लालवहादुर शास्त्रीने अपने प्राणोकी वलि चढा दी ।

शास्त्री, श्रीनिवास (१८६९–१९४९)—इस शताब्दीके दूसरे दशकमे उदार (लिवरल) दलके प्रमुख नेता और प्रगल्भ वक्ता । उन्होने अपना जीवन शिक्षक रूपमे प्रारभ किया और १९०७ ई०मे वे 'सर्वेन्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी'के सदस्य वन गये । १९१३ ई०मे उन्होने भारतके राजनीतिक क्षेत्रमे प्रवेश किया और मद्रासकी विधान परिषद्के सदस्य हुए । अपनी प्रभावशालिनी वक्तृत्वशक्तिके कारण वे शीघ्र ही काग्रेसी सदस्योमे अग्रगण्य हो गये और उन्होने रौलट ऐक्ट (दे०) का घोर विरोध किया । १९२० ई०मे वे तत्कालीन राज्य परिषद्के सदस्य बने और इम्पीरियल कान्फ्रेन्स तथा लीग आफ नेशन्सकी वैठकोमे भारतके प्रतिनिधि रहे । उन्होने अफ्रीकाके प्रवासी भारतीयोकी समस्याओको सुलझानेका गहन प्रयास किया और कुछ दिनोतक वे

भारतीय सरकार द्वारा वहाँ एजेन्ट जनरलके रूपमे भी नियुक्त रहे। १९३५ से १९४० ई०तक वे अन्नामलाइ विश्वविद्यालयके उपकुलपति रहे। शास्त्री जी महान् लेखक थे और उनके अंग्रेजीमे रचित 'हिन्दू बालिकाओंके यौवनोपरान्त विवाह' (Post-Pubertv Marriage of Hindu girls) नामक ग्रथसे उनके समाज सुधार सबधी विचारोपर प्रकाश पड़ता है।

शाहजहाँ—दिल्लीके मुगल वशका पाँचवाँ बादशाह (१६२८–५८), जिसका मूल नाम शाहजादा खुर्रम था। वह अपने पिता जहाँगीरके राज्यकालके प्रारम्भिक वर्षोंमे उसका विशेष कृपापात्र था, क्योंकि उसके (शाहजहाँ) बडे भाई खुसरोसे जहाँगीर इस कारण अप्रसन्न था कि अकबरकी मृत्युके समय खुसरो दिल्लीकी गद्दीपर बैठनेके लिए उसका (जहाँगीरका) प्रतिद्वन्द्वी हो गया था। १६१२ ई०मे शाहजादा खुर्रमने नूरजहाँ (दे०) के भाई आसफ खाँकी, जो मुगल दरबारका सबसे धनी और शक्तिशाली सरदार था, पुत्री अर्जमन्द बानू बेगम (दे०) से विवाह कर लिया। किन्तु जब उसके सबसे छोटे भाई शहरयार-का विवाह नूरजहाँकी पहले पतिसे उत्पन्न पुत्रीसे हो गया तब शाहजहाँ (खुर्रम) सम्राज्ञीका कृपापात्र न रहा, क्योंकि नूरजहाँ शहरयारको जहाँगीरका उत्तराधिकारी बनाना चाहती थी। अब शाहजादा खुर्रम और जहाँगीर-मे मनमुटाव हो गया। जब अक्तूबर १६२७ ई०मे जहाँगीरकी मृत्यु हुई तब खुर्रम दक्षिण भारतमे और प्राय विद्रोहकी स्थितिमे था। किन्तु उसके राजधानी आनेतक उसके श्वसुर आसफ खाँने उसके हितोकी रक्षा की। फरवरी १६२८ ई०को शाहजहाँकी उपाधि धारण करके वह गद्दीपर बैठा। उसने १६५८ ई० (जिस वर्ष उसके विद्रोही पुत्र औरगजेबने उसे सिंहासनसे च्युत कर दिया) तक राज्य किया। १६६६ ई०मे बन्दीकी स्थितिमे उसकी मृत्यु हुई।

शाहजहाँ समस्त मुगल सम्राटोमे सबसे अधिक वैभवशाली था। सिंहासनासीन होनेके शीघ्र ही बाद उसने १ करोड रुपयेकी लागतसे मयूर सिंहासन (दे०) बनवाया। उपरान्त उसने आगरमे, जो १६४८ ई०तक उसकी राजधानी थी, जुम्मा मस्जिद और मोती मस्जिद, लाल किला, दीवाने आम, दीवाने खास तथा ताजमहल-का निर्माण कराया। ताजमहलके निर्माणमे २२ वर्ष लगे। अपने ३० वर्षोंके शासन-कालमे उसने दक्षिण भारतमे मुगल साम्राज्यका विस्तार किया। अहमदनगर पूर्ण रूपमे साम्राज्यमे मिला लिया गया और बीजापुर तथा गोलकुण्डाको अधीनता स्वीकार करनेपर विव होना पडा। साथ ही उसने १६३८ ई०मे कदहारपर पु अधिकार कर लिया, किन्तु १६४९ ई०मे फारसने उसप पुन अपने आधिपत्यमे कर लिया। यद्यपि शाहजह तीन बार क्रमश. १६४९, १६५२ तथा १६५३ ई०मे उ पुन जीतनेका प्रयास किया, पर वह असफल रहा।

१६४८ ई०मे शाहजहाँने आगराके बदले दिल्लीक अपनी राजधानी बनाया और वहाँ भी दीवाने आम औ दीवाने खास सहित एक भव्य महलका निर्माण कराया दीवाने खास बेलबूटो आदिमे इतने सुन्दर रूपमे चित्रि है कि उसपर अकित उक्ति "यदि पृथ्वीपर कही स्वर्ग, तो वह यही है, यही है, यही है।" पूर्ण रूपसे चरिता होती है। किन्तु शाहजहाँके अन्तिम दिन बडे ही दुःखम थे। १६५७ ई०मे वह गभीर रूपसे अस्वस्थ हुआ औ ऐसा जान पडा कि अन्त निकट है। शीघ्र ही उसके चार पुत्रों—दारा, शुजा, औरगजेब और मुरादमे उत्तरा धिकारका युद्ध प्रारम्भ हो गया। दाराको शाहजहाँक साहाय्य प्राप्त था और उधर औरगजेब तथा मुराद इस समझौतेपर परस्पर एक हो गये कि साम्राज्यका दोनोमे बँटवारा हो जायगा। शुजा ही अकेला लडता रहा। पहले उसे शाही सेनाओने फरवरी १६५८ ई०मे बहादुर पुरके युद्धमे परास्त किया, तदुपरान्त औरगजेबसे जनवरी १६५९ ई०मे खजुआके युद्धमे पराजित होकर वह इधर-उधर फिरा और १६६० ई० मे अराकान (वर्मा) मे उसकी मृत्यु हो गयी। जो शाही सेना औरग-जेब और मुरादके विरुद्ध भेजी गयी थी, उसे इन राजकुमारोने अप्रैल १६५८ ई०मे धरमटके युद्धमे परा-जित किया। तदुपरान्त दारा स्वय सामूगढ़के युद्धमे मई १६५८ ई०मे औरगजेब तथा मुरादकी सम्मिलित सेनाओ द्वारा परास्त होकर भागनेपर विवश हुआ। इसके बाद औरगजेबने मुरादको बन्दी बना लिया, आगे बढकर सरलतासे आगरापर अधिकार कर लिया और जून १६५८ ई०मे शाहजहाँको भी प्राय बन्दी बना लिया। दूसरे ही महीने अनियमित रूपसे वह भारतका सम्राट् घोषित हुआ। अतत दारा भी अप्रैल १६५९ ई०मे देवरईके युद्धमे औरगजेब द्वारा पराजित हुआ। उसे धोखेसे बन्दी बनाया गया और १६५९ ई०मे ही उसे काफिर होनेके अभियोगमे मार डाला गया। तदुपरान्त जून १६५९ ई०मे औरगजेब विधिवत् आलमगीर की उपाधि धारण कर दिल्लीके सम्राट् रूपमे सिंहासनासीन हुआ।

मुनि अथवा तपस्वी, किन्तु इसका प्रयोग मुख्यतः गौतम बुद्धके लिए होता है।

शायस्ता खाँ—औरगजेबका मामा। १६६० ई०मे औरगजेबने उसे विशेष रूपसे शिवाजीका दमन करनेके लिए दक्षिणका सूबेदार नियुक्त किया। प्रारभमे शायस्ता खाँको कुछ सफलता मिली, किन्तु वर्षाकालमे जब वह पूना लौट गया तब शिवाजीने रात्रिमे अचानक उसपर आक्रमण कर दिया। बडी कठिनतामे शायस्ता खाँने अपने प्राणोकी रक्षा की, किन्तु उसे अपनी तीन अगुलियोसे हाथ धोना पडा तथा उसका पुत्र भी मारा गया। उपरान्त उसका तबादला बगालको कर दिया गया, जहाँ उसने ३० वर्षों तक विशेष सफलतापूर्वक शासन किया। उसने बगालके समुद्रतटवर्ती भू-भागोमे लूटमार करनेवाले पुर्तगाली समुद्री डाकुओका दमन किया और अराकानके राजासे चिरगाँव जिला भी छीन लिया। १६९४ ई०मे ९० वर्षसे भी अधिक आयुमे वह आगरेमे मर गया।

शारदा-कानून—राय साहब हरविलास शारदा द्वारा प्रस्तुत एक विधेयक। १९२९ ई०मे यह भारतीय विधान मडल द्वारा पारित किया गया। इस कानूनका उद्देश्य विवाहकी उम्र बढा करके बाल-विवाह रोकना था।

शालिवाहन—इसका उल्लेख परपरागत भारतीय लोककथाओमे विशेषरूपसे मिलता है, किन्तु मुद्राओ तथा अभिलेखीय प्रमाणोके अभावमे उसकी ऐतिहासिकता सिद्ध नही होती। दक्षिणके अनेक सातवाहन राजाओकी कृतियाँ उसके साथ सम्बद्ध हो गयी हैं और देशके कुछ भू भागोमे शक सवत् भी उन्हींके द्वारा चलाया हुआ माना जाता है।

शालिशुक—परवर्ती मौर्य शासकोमेसे एक, जो सम्राट् अशोकके पौत्र सम्प्रति (दे०)के उपरान्त सिंहासनारूढ हुआ। उसे अनाचारी और अत्याचारी शासक कहा गया है।

शास्त्री, लालबहादुर (१९०४–१९६६ ई०)—मई, १९६४ से ११ जनवरी १९६६ ई०को मृत्युपर्यन्त भारतके प्रधानमत्री। जन्म उत्तर प्रदेशके वाराणसी जिलेमे एक निर्धन परिवारमे। वे स्वावलम्बी व्यक्ति थे और अपनी योग्यता, गुण तथा चरित्रबलके आधारपर अध्यापकके निम्नपदसे उठकर पण्डित जवाहरलाल नेहरूके उपरान्त भारतके प्रधान-मंत्री पदपर आसीन हुए। मात्र १९ महीनोके कार्यकालमे उनकी उपलब्धियाँ कुछ कम न थी, जिनके प्रमाणस्वरूप उन्हे मरणोपरान्त 'भारतरत्न'की सर्वोच्च, उपाधि ससम्मान प्रदान की गयी। सीधे-सादे, शान्त प्रकृति एव पक्के गाधीवादी देशभक्त थे। यद्यपि वे कदमे छोटे थे, परन्तु उनका कृतित्त्व महान् था। उन्होने भारतकी खाद्य-समस्या एव विषम आर्थिक स्थितिको ही सुलझानेका प्रयास नही किया, अपितु चीनके साथ चल रही युद्ध जैसी स्थितिमे भी यथासभव सुधार किया। उन्हें पाकिस्तानके साथ दो युद्ध करने पडे। पहली बार पाकिस्तानने कच्छपर तथा दूसरी बार जम्मू और कश्मीरपर अधिकार करनेकी चेष्टा की।

जम्मू तथा कश्मीरपर पाकिस्तानी आक्रमणोके फलस्वरूप उन्होने बडी वीरता और दृढतापूर्वक भारतका नेतृत्व किया और इस युद्धमे पाकिस्तानको मुँहकी खानी पड़ी। इसके साथ ही उन्होने चीनी सेनाओको भी युद्धमे भाग लेनेसे रोक रखा। उन्होने कच्छ-विवादको अन्तर्राष्ट्रीय पचनिर्णयसे सुलझाना स्वीकार कर लिया तथा कश्मीरके मोर्चेपर भी सयुक्त राष्ट्रसघका युद्ध-विरामका अनुरोध स्वीकार कर लिया, हालाकि भारतका पलड़ा भारी था। तदुपरान्त रूसके आमत्रणपर पाकिस्तानके साथ शान्तिपूर्ण समझौतेकी सम्भावनाओपर विचार करनेके लिए ताशकन्द गये। वहाँ रूसकी मध्यस्थतासे पाकिस्तानके राष्ट्रपति अयूब खाँके साथ एक समझौता सम्पन्न हुआ जो 'ताशकन्द घोषणापत्र'के नामसे विख्यात है। अत्यधिक परिश्रम और मानसिक तनावके कारण ताशकन्दमे घोषणापत्रपर हस्ताक्षर करनेके कुछ ही घण्टोके उपरान्त ११ जनवरी १९६६ ई०को उनका देहान्त हो गया। भारत और पाकिस्तानके बीच स्थायी शाति स्थापित करनेके प्रयासमे लालबहादुर शास्त्रीने अपने प्राणोकी बलि चढ़ा दी।

शास्त्री, श्रीनिवास (१८६९–१९४९)—इस शताब्दीके दूसरे दशकमे उदार (लिबरल) दलके प्रमुख नेता और प्रगल्भ वक्ता। उन्होने अपना जीवन शिक्षक रूपमे प्रारम्भ किया और १९०७ ई०मे वे 'सर्वेन्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी'के सदस्य बन गये। १९१३ ई०मे उन्होने भारतके राजनीतिक क्षेत्रमे प्रवेश किया और मद्रासकी विधान परिषद्के सदस्य हुए। अपनी प्रभावशालिनी वक्तृत्वशक्तिके कारण वे शीघ्र ही काग्रेसी सदस्योमे अग्रगण्य हो गये और उन्होने रौलट ऐक्ट (दे०) का घोर विरोध किया। १९२० ई०मे वे तत्कालीन राज्य परिषद्के सदस्य बने और इम्पीरियल कान्फ्रेन्स तथा लीग आफ नेशन्सकी बैठकोमे भारतके प्रतिनिधि रहे। उन्होने अफ्रीकाके प्रवासी भारतीयोकी समस्याओको सुलझानेका गहन प्रयास किया और कुछ दिनोतक वे

भारतीय सरकार द्वारा वहाँ एजेन्ट जनरलके रूपमे भी नियुक्त रहे। १९३५ से १९४० ई०तक वे अन्नामलाइ विश्वविद्यालयके उपकुलपति रहे। शास्त्री जी महान् लेखक थे और उनके अग्रेजीमे रचित 'हिन्दू बालिकाओके यौवनोपरान्त विवाह' (Post-Puberty Marriage of Hindu girls) नामक ग्रथसे उनके समाज सुधार सबधी विचारोपर प्रकाश पडता है।

शाहजहाँ—दिल्लीके मुगल वशका पाँचवाँ बादशाह (१६२८–५८), जिसका मूल नाम शाहजादा खुर्रम था। वह अपने पिता जहाँगीरके राज्यकालके प्रारम्भिक वर्षोमे उसका विशेष कृपापात्र था, क्याकि उसके (शाहजहाँ) बडे भाई खुसरोसे जहाँगीर इस कारण अप्रसन्न था कि अकबरकी मृत्युके समय खुसरो दिल्लीकी गद्दीपर बैठनेके लिए उसका (जहाँगीरका) प्रतिद्वन्द्वी हो गया था। १६१२ ई०मे शाहजादा खुर्रमने नूरजहाँ (दे०) के भाई आसफ खाँकी, जो मुगल दरबारका सबसे धनी और शक्तिशाली सरदार था, पुत्री अर्जमन्द बानू बेगम (दे०) से विवाह कर लिया। किन्तु जब उसके सबसे छोटे भाई शहरयार-का विवाह नूरजहाँकी पहले पतिसे उत्पन्न पुत्रीसे हो गया तब शाहजहाँ (खुर्रम) सम्राज्ञीका कृपापात्र न रहा, क्योकि नूरजहाँ शहरयारको जहाँगीरका उत्तराधिकारी बनाना चाहती थी। अब शाहजादा खुर्रम और जहाँगीर-मे मनमुटाव हो गया। जब अक्तूबर १६२७ ई०मे जहाँगीरकी मृत्यु हुई तब खुर्रम दक्षिण भारतमे और प्राय विद्रोहकी स्थितिमे था। किन्तु उसके राजधानी आनेतक उसके श्वशुर आसफ खाँने उसके हितोकी रक्षा की। फरवरी १६२८ ई०को शाहजहाँकी उपाधि धारण करके वह गद्दीपर बैठा। उसने १६५८ ई० (जिस वर्ष उसके विद्रोही पुत्र औरगजेबने उसे सिंहासनसे च्युत कर दिया) तक राज्य किया। १६६६ ई०मे बन्दीकी स्थितिमे उसकी मृत्यु हुई।

शाहजहाँ समस्त मुगल सम्राटोमे सबसे अधिक वैभवशाली था। सिंहासनासीन होनेके शीघ्र ही बाद उसने १ करोड रुपयेकी लागतसे मयूर सिंहासन (दे०) बनवाया। उपरान्त उसने आगरमे, जो १६४८ ई०तक उसकी राजधानी थी, जुम्मा मस्जिद और मोती मस्जिद, लाल किला, दीवाने आम, दीवाने खास तथा ताजमहल-का निर्माण कराया। ताजमहलके निर्माणमे २२ वर्ष लगे। अपने ३० वर्षोके शासन-कालमे उसने दक्षिण भारतमे मुगल साम्राज्यका विस्तार किया। अहमदनगर पूर्ण रूपमे साम्राज्यमे मिला लिया गया और बीजापुर तथा गोलकुण्डाको अधीनता स्वीकार करनेपर होना पडा। साथ ही उसने १६३८ ई०मे कदहार प अधिकार कर लिया, किन्तु १६४९ ई०मे फारसने पुन अपने आधिपत्यमे कर लिया। यद्यपि शा तीन बार क्रमशः १६४९, १६५२ तथा १६५३ ई० पुन जीतनेका प्रयास किया, पर वह असफल रहा

१६४८ ई०मे शाहजहाँने आगराके बदले ि अपनी राजधानी बनाया और वहाँ भी दीवाने आ दीवाने खास सहित एक भव्य महलका निर्माण क दीवाने खास बेलबूटो आदिमे इतने सुन्दर रूपमे है कि उसपर अकित उक्ति "यदि पृथ्वीपर कही तो वह यही है, यही है, यही है।" पूर्ण रूपसे चा होती है। किन्तु शाहजहाँके अन्तिम दिन बडे ही दु थे। १६५७ ई०मे वह गभीर रूपसे अस्वस्थ हुआ ऐसा जान पडा कि अन्त निकट है। शीघ्र ही चार पुत्रो—दारा, शुजा, औरगजेब और मुरादमे धिकारका युद्ध प्रारम्भ हो गया। दाराको शाह साहाय्य प्राप्त था और उधर औरगजेब तथा मु समझौतेपर परस्पर एक हो गये कि साम्राज्यका बँटवारा हो जायगा। शुजा ही अकेला लडता पहले उसे शाही सेनाओने फरवरी १६५८ ई०मे ब पुरके युद्धमे परास्त किया, तदुपरान्त औ जनवरी १६५९ ई०मे खजुआके युद्धमे पराजित वह इधर-उधर फिरा और १६६० ई० मे अर (बर्मा) मे उसकी मृत्यु हो गयी। जो शाही सेना औ जेब और मुरादके विरुद्ध भेजी गयी थी, उ राजकुमारोने अप्रैल १६५८ ई०मे धरमटके युद्धमे जित किया। तदुपरान्त दारा स्वय सामूगढके युद्ध १६५८ ई०मे औरगजेब तथा मुरादकी सम्मिलित द्वारा परास्त होकर भागनेपर विवश हुआ। इसके औरगजेबने मुरादको बन्दी बना लिया, आगे सरलतासे आगरापर अधिकार कर लिया और १६५८ ई०मे शाहजहाँको भी प्राय बन्दी बना लि दूसरे ही महीने अनियमित रूपसे वह भारतका स घोषित हुआ। अतत दारा भी अप्रैल १६५९ देवराईके युद्धमे औरगजेब द्वारा पराजित हुआ। धोखेसे बन्दी बनाया गया और १६५९ ई०मे ही काफिर होनेके अभियोगमे मार डाला गया। तदुप जून १६५९ ई०मे औरगजेब विधिवत् आलमगीर उपाधि धारण कर दिल्लीके सम्राट् रूपमे सिंहासना हुआ।

मुनि अथवा तपस्वी, किन्तु इसका प्रयोग मुख्यतः गौतम बुद्धके लिए होता है।

शायस्ता खाँ–औरंगजेबका मामा। १६६० ई०मे औरंगजेबने उसे विशेष रूपसे शिवाजीका दमन करनेके लिए दक्षिणका सूबेदार नियुक्त किया। प्रारंभमे शायस्ता खाँको कुछ सफलता मिली, किन्तु वर्षाकालमें जब वह पूना लौट गया तब शिवाजीने रात्रिमे अचानक उसपर आक्रमण कर दिया। बडी कठिनतासे शायस्ता खाँने अपने प्राणोकी रक्षा की, किन्तु उसे अपनी तीन अंगुलियोसे हाथ धोना पडा तथा उसका पुत्र भी मारा गया। उपरान्त उसका तबादला बंगालको कर दिया गया, जहाँ उसने ३० वर्षो तक विशेष सफलतापूर्वक शासन किया। उसने बंगालके समुद्रतटवर्ती भू-भागोमे लूटमार करनेवाले पुर्तगाली समुद्री डाकुओका दमन किया और अराकानके राजासे चिरगाँव जिला भी छीन लिया। १६९४ ई०मे ९० वर्षसे भी अधिक आयुमे वह आगरेमे मर गया।

शारदा-कानून–राय साहब हरविलास शारदा द्वारा प्रस्तुत एक विधेयक। १९२९ ई०मे यह भारतीय विधान मंडल द्वारा पारित किया गया। इस कानूनका उद्देश्य विवाहकी उम्र बढा करके बाल-विवाह रोकना था।

शालिवाहन–इसका उल्लेख परंपरागत भारतीय लोककथाओमे विशेषरूपसे मिलता है, किन्तु मुद्राओ तथा अभिलेखीय प्रमाणोके अभावमे उसकी ऐतिहासिकता सिद्ध नही होती। दक्षिणके अनेक सातवाहन राजाओकी कृतियाँ उसके साथ सम्बद्ध हो गयी है और देशके कुछ भू भागोमे शक संवत् भी उन्हीके द्वारा चलाया हुआ माना जाता है।

शालिशुक–परवर्ती मौर्य शासकोमेसे एक, जो सम्राट् अशोकके पौत्र सम्प्रति (दे०)के उपरान्त सिंहासनारूढ हुआ। उसे अनाचारी और अत्याचारी शासक कहा गया है।

शास्त्री, लालबहादुर (१९०४–१९६६ ई०)–मई, १९६४ मे ११ जनवरी १९६६ ई०को मृत्युपर्यन्त भारतके प्रधानमंत्री। जन्म उत्तर प्रदेशके वाराणसी जिलेमे एक निर्धन परिवारमें। वे स्वावलम्बी व्यक्ति थे और अपनी योग्यता, गुण तथा चरित्रबलके आधारपर अध्यापकके निम्नपदसे उठकर पण्डित जवाहरलाल नेहरूके उपरान्त भारतके प्रधान-मंत्री पदपर आसीन हुए। मात्र १९ महीनोके कार्यकालमे उनकी उपलब्धियाँ कुछ कम न थीं, जिनके फलस्वरूप उन्हे मरणोपरान्त 'भारतरत्न'की सर्वोच्च, उपाधि सम्मान प्रदान की गयी। सीधे-सादे, शान्त प्रकृति एवं पक्के गांधीवादी देशभक्त थे। यद्यपि वे कदमे छोटे थे, परन्तु उनका कृतित्व महान् था। उन्होने भारतकी खाद्य-समस्या एवं विषम आर्थिक स्थितिको ही सुलझानेका प्रयास नही किया, अपितु चीनके साथ चल रही युद्ध जैसी स्थितिमे भी यथासंभव सुधार किया। उन्हें पाकिस्तानके साथ दो युद्ध करने पडे। पहली बार पाकिस्तानने कच्छपर तथा दूसरी बार जम्मू और कश्मीरपर अधिकार करनेकी चेष्टा की।

जम्मू तथा कश्मीरपर पाकिस्तानी आक्रमणोके फलस्वरूप उन्होने बडी वीरता और दृढतापूर्वक भारतका नेतृत्व किया और इस युद्धमे पाकिस्तानको मुँहकी खानी पडी। इसके साथ ही उन्होने चीनी सेनाओको भी युद्धमे भाग लेनेसे रोक रखा। उन्होने कच्छ-विवादको अन्तर्राष्ट्रीय पंचनिर्णयसे सुलझाना स्वीकार कर लिया तथा कश्मीरके मोर्चेपर भी संयुक्त राष्ट्रसंघका युद्ध-विरामका अनुरोध स्वीकार कर लिया, हालांकि भारतका पलडा भारी था। तदुपरान्त रूसके आमंत्रणपर पाकिस्तानके साथ शान्तिपूर्ण समझौतेकी सम्भावनाओपर विचार करनेके लिए ताशकन्द गये। वहाँ रूसकी मध्यस्थतासे पाकिस्तानके राष्ट्रपति अयूब खाँके साथ एक समझौता सम्पन्न हुआ जो 'ताशकन्द घोषणापत्र'के नामसे विख्यात है। अत्यधिक परिश्रम और मानसिक तनावके कारण ताशकन्दमे घोषणापत्रपर हस्ताक्षर करनेके कुछ ही घण्टोके उपरान्त ११ जनवरी १९६६ ई०को उनका देहान्त हो गया। भारत और पाकिस्तानके बीच स्थायी शांति स्थापित करनेके प्रयासमे लालबहादुर शास्त्रीने अपने प्राणोकी बलि चढा दी।

शास्त्री, श्रीनिवास (१८६९–१९४९)–इस शताब्दीके दूसरे दशकमे उदार (लिबरल) दलके प्रमुख नेता और प्रगल्भ वक्ता। उन्होने अपना जीवन शिक्षक रूपमे प्रारम्भ किया और १९०७ ई०मे वे 'सर्वेन्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी'के सदस्य बन गये। १९१३ ई०मे उन्होने भारतके राजनीतिक क्षेत्रमे प्रवेश किया और मद्रासकी विधान परिषद्के सदस्य हुए। अपनी प्रभावशालिनी वक्तृत्वशक्तिके कारण वे शीघ्र ही कांग्रेसी सदस्योमे अग्रगण्य हो गये और उन्होने रौलट ऐक्ट (दे०) का घोर विरोध किया। १९२० ई०मे वे तत्कालीन राज्य परिषद्के सदस्य बने और इम्पीरियल कान्फ्रेन्स तथा लीग आफ नेशन्सकी बैठकोमे भारतके प्रतिनिधि रहे। उन्होने अफ्रीकाके प्रवासी भारतीयोकी समस्याओको सुलझानेका गहन प्रयास किया और कुछ दिनोतक वे

भारतीय सरकार द्वारा वहाँ एजेन्ट जनरलके रूपमे भी नियुक्त रहे। १९३५ से १९४० ई०तक वे अन्नामलाइ विश्वविद्यालयके उपकुलपति रहे। शास्त्री जी महान् लेखक थे और उनके अंग्रेजीमे रचित 'हिन्दू बालिकाओके यौवनोपरान्त विवाह' (Post-Puberty Marriage of Hindu girls) नामक ग्रथसे उनके समाज सुधार सबधी विचारोपर प्रकाश पडता है।

शाहजहाँ—दिल्लीके मुगल वशका पाँचवाँ बादशाह (१६२८–५८), जिसका मूल नाम शाहजादा खुर्रम था। वह अपने पिता जहाँगीरके राज्यकालके प्रारम्भिक वर्षोंमे उसका विशेष कृपापात्र था, क्योंकि उसके (शाहजहाँ) बडे भाई खुसरोसे जहाँगीर इस कारण अप्रसन्न था कि अकबरकी मृत्युके समय खुसरो दिल्लीकी गद्दीपर बैठनेके लिए उसका (जहाँगीरका) प्रतिद्वन्द्वी हो गया था। १६१२ ई०मे शाहजादा खुर्रमने नूरजहाँ (दे०) के भाई आसफ खाँकी, जो मुगल दरबारका सबसे धनी और शक्तिशाली सरदार था, पुत्री अर्जमन्द बानू बेगम (दे०) से विवाह कर लिया। किन्तु जब उसके सबसे छोटे भाई शहरयार-का विवाह नूरजहाँकी पहले पतिसे उत्पन्न पुत्रीसे हो गया तब शाहजहाँ (खुर्रम) सम्राज्ञीका कृपापात्र न रहा, क्योकि नूरजहाँ शहरयारको जहाँगीरका उत्तराधिकारी बनाना चाहती थी। अब शाहजादा खुर्रम और जहाँगीर-मे मनमुटाव हो गया। जब अक्तूबर १६२७ ई०मे जहाँगीरकी मृत्यु हुई तब खुर्रम दक्षिण भारतमे और प्राय विद्रोहकी स्थितिमे था। किन्तु उसके राजधानी आनेतक उसके श्वसुर आसफ खाँने उसके हितोकी रक्षा की। फरवरी १६२८ ई०को शाहजहाँकी उपाधि धारण करके वह गद्दीपर बैठा। उसने १६५८ ई० (जिस वर्ष उसके विद्रोही पुत्र औरगजेबने उसे सिहासनसे च्युत कर दिया) तक राज्य किया। १६६६ ई०मे बन्दीकी स्थितिमे उसकी मृत्यु हुई।

शाहजहाँ समस्त मुगल सम्राटोमे सबसे अधिक वैभवशाली था। सिंहासनासीन होनेके शीघ्र ही बाद उसने १ करोड रुपयेकी लागतसे मयूर सिंहासन (दे०) बनवाया। उपरान्त उसने आगरमे, जो १६४८ ई०तक उसकी राजधानी थी, जुम्मा मस्जिद और मोती मस्जिद, लाल किला, दीवाने आम, दीवाने खास तथा ताजमहल-का निर्माण कराया। ताजमहलके निर्माणमे २२ वर्ष लगे। अपने ३० वर्षोंके शासन-कालमे उसने दक्षिण भारतमे मुगल साम्राज्यका विस्तार किया। अहमदनगर पूर्ण रूपमे साम्राज्यमे मिला लिया गया और बीजापुर तथा गोलकुण्डाको अधीनता स्वीकार करनेपर होना पडा। साथ ही उसने १६३८ ई०मे कदहार प अधिकार कर लिया, किन्तु १६४९ ई०मे फारसने पुन अपने आधिपत्यमे कर लिया। यद्यपि श तीन बार क्रमशः १६४९, १६५२ तथा १६५३ ई० पुन जीतनेका प्रयास किया, पर वह असफल रहा

१६४८ ई०मे शाहजहाँने आगराके बदले दि अपनी राजधानी बनाया और वहाँ भी दीवाने आ दीवाने खास सहित एक भव्य महलका निर्माण क दीवाने खास बेलबूटो आदिमे इतने सुन्दर रूपमे है कि उसपर अकित उक्ति "यदि पृथ्वीपर कही तो वह यही है, यही है, यही है।" पूर्ण रूपसे च होती है। किन्तु शाहजहाँके अन्तिम दिन बडे ही दु थे। १६५७ ई०मे वह गभीर रूपसे अस्वस्थ हुअ ऐसा जान पडा कि अन्त निकट है। शीघ्र ही चार पुत्रो—दारा, शुजा, औरगजेब और मुरादमे धिकारका युद्ध प्रारम्भ हो गया। दाराको शाह साहाय्य प्राप्त था और उधर औरगजेब तथा मुर समझौतेपर परस्पर एक हो गये कि साम्राज्यका बँटवारा हो जायगा। शुजा ही अकेला लडता पहले उसे शाही सेनाओने फरवरी १६५८ ई०मे ब पुरके युद्धमे परास्त किया, तदुपरान्त आर जनवरी १६५९ ई०मे खजुआके युद्धमे पराजित वह इधर-उधर फिरा और १६६० ई० मे अर (बर्मा) मे उसकी मृत्यु हो गयी। जो शाही सेना जेब और मुरादके विरुद्ध भेजी गयी थी, उ राजकुमारोने अप्रैल १६५८ ई०मे धरमटके युद्धमे जित किया। तदुपरान्त दारा स्वय सामूगढ़के युद्ध १६५८ ई०मे औरगजेब तथा मुरादकी सम्मिलित से द्वारा परास्त होकर भागनेपर विवश हुआ। इसके औरगजेबने मुरादको बन्दी बना लिया, आगे ब सरलतासे आगरापर अधिकार कर लिया और १६५८ ई०मे शाहजहाँको भी प्राय बन्दी बना दि दूसरे ही महीने अनियमित रूपसे वह भारतका स घोषित हुआ। अतत दारा भी अप्रैल १६५९ देवराईके युद्धमे औरगजेब द्वारा पराजित हुआ। धोखेसे बन्दी बनाया गया और १६५९ ई०मे ही काफिर होनेके अभियोगमे मार डाला गया। तदुप जून १६५९ ई०मे औरगजेब विधिवत् आल गीर उपाधि धारण कर दिल्लीके सम्राट् रूपमे सहासन हुआ।

मुनि अथवा तपस्वी, किन्तु इसका प्रयोग मुख्यत· गौतम बुद्धके लिए होता है।

शायस्ता खाँ—औरगजेबका मामा। १६६० ई०मे औरगजेबने उसे विशेष रूपसे शिवाजीका दमन करनेके लिए दक्षिणका सूबेदार नियुक्त किया। प्रारभमे शायस्ता खाँको कुछ सफलता मिली, किन्तु वर्षाकालमे जब वह पूना लौट गया तब शिवाजीने रात्रिमे अचानक उसपर आक्रमण कर दिया। बडी कठिनतासे शायस्ता खाँने अपने प्राणोकी रक्षा की, किन्तु उसे अपनी तीन अगुलियोसे हाथ धोना पडा तथा उसका पुत्र भी मारा गया। उपरान्त उसका तबादला बगालको कर दिया गया, जहाँ उसने ३० वर्षो तक विशेष सफलतापूर्वक शासन किया। उसने बगालके समुद्रतटवर्ती भू-भागोमे लूटमार करनेवाले पुर्तगाली समुद्री डाकुओका दमन किया और अराकानके राजासे चिरगाँव जिला भी छीन लिया। १६९४ ई०मे ६० वर्षसे भी अधिक आयुमे वह आगरेमे मर गया।

शारदा-कानून—राय साहब हरविलास शारदा द्वारा प्रस्तुत एक विधेयक। १९२९ ई०मे यह भारतीय विधान मडल द्वारा पारित किया गया। इस कानूनका उद्देश्य विवाहकी उम्र बढा करके बाल-विवाह रोकना था।

शालिवाहन—इसका उल्लेख परपरागत भारतीय लोककथाओमे विशेषरूपसे मिलता है, किन्तु मुद्राओ तथा अभिलेखीय प्रमाणोके अभावमे उसकी ऐतिहासिकता सिद्ध नही होती। दक्षिणके अनेक सातवाहन राजाओकी कृतियाँ उसके साथ सम्बद्ध हो गयी हैं और देशके कुछ भू भागोमे शक सवत् भी उन्हीके द्वारा चलाया हुआ माना जाता है।

शालिशुक—परवर्ती मौर्य शासकोमेसे एक, जो सम्राट् अशोकके पौत्र सम्प्रति (दे०)के उपरान्त सिंहासनारूढ हुआ। उसे अनाचारी और अत्याचारी शासक कहा गया है।

शास्त्री, लालबहादुर (१९०४–१९६६ ई०)—मई, १९६४ से ११ जनवरी १९६६ ई०को मृत्युपर्यन्त भारतके प्रधान-मत्री। जन्म उत्तर प्रदेशके वाराणसी जिलेमे एक निर्धन परिवारमे। वे स्वावलम्बी व्यक्ति थे और अपनी योग्यता, गुण तथा चरित्रबलके आधारपर अध्यापकके निम्नपदसे उठकर पण्डित जवाहरलाल नेहरूके उपरान्त भारतके प्रधान-मत्री पदपर आसीन हुए। मात्र १९ महीनोके कार्यकालमे उनकी उपलब्धियाँ कुछ कम न थी, जिनके प्रमाणस्वरूप उन्हे मरणोपरान्त 'भारतरत्न'की सर्वोच्च, उपाधि ससम्मान प्रदान की गयी। सीधे-सादे, शान्त प्रकृति एव पक्के गाधीवादी देशभक्त थे। यद्यपि वे कदमे छोटे थे, परन्तु उनका कृतित्त्व महान् था। उन्होने भारतकी खाद्य-समस्या एव विषम आर्थिक स्थितिको ही सुलझानेका प्रयास नही किया, अपितु चीनके साथ चल रही युद्ध जैसी स्थितिमे भी यथासभव सुधार किया। उन्हे पाकिस्तानके साथ दो युद्ध करने पडे। पहली बार पाकिस्तानने कच्छपर तथा दूसरी बार जम्मू और कश्मीरपर अधिकार करनेकी चेष्टा की।

जम्मू तथा कश्मीरपर पाकिस्तानी आक्रमणोके फलस्वरूप उन्होने बडी वीरता और दृढतापूर्वक भारतका नेतृत्व किया और इस युद्धमे पाकिस्तानको मुँहकी खानी पडी। इसके साथ ही उन्होने चीनी सेनाओको भी युद्धमे भाग लेनेसे रोक रखा। उन्होने कच्छ-विवादको अन्तर्राष्ट्रीय पचनिर्णयसे सुलझाना स्वीकार कर लिया तथा कश्मीरके मोर्चेपर भी सयुक्त राष्ट्रसघका युद्ध-विरामका अनुरोध स्वीकार कर लिया, हालाकि भारतका पलडा भारी था। तदुपरान्त रूसके आमत्रणपर पाकिस्तानके साथ शान्तिपूर्ण समझौतेकी सम्भावनाओपर विचार करनेके लिए ताशकन्द गये। वहाँ रूसकी मध्यस्थतासे पाकिस्तानके राष्ट्रपति अयूब खाँके साथ एक समझौता सम्पन्न हुआ जो 'ताशकन्द घोषणापत्र'के नामसे विख्यात है। अत्यधिक परिश्रम और मानसिक तनावके कारण ताशकन्दमे घोषणापत्रपर हस्ताक्षर करनेके कुछ ही घण्टोके उपरान्त ११ जनवरी १९६६ ई०को उनका देहान्त हो गया। भारत और पाकिस्तानके बीच स्थायी शाति स्थापित करनेके प्रयासमे लालबहादुर शास्त्रीने अपने प्राणोकी बलि चढा दी।

शास्त्री, श्रीनिवास (१८६९–१९४९)—इस शताब्दीके दूसरे दशकमे उदार (लिबरल) दलके प्रमुख नेता और प्रगल्भ वक्ता। उन्होने अपना जीवन शिक्षक रूपमे प्रारभ किया और १९०७ ई०मे वे 'सर्वेन्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी'के सदस्य बन गये। १९१३ ई०मे उन्होने भारतके राजनीतिक क्षेत्रमे प्रवेश किया और मद्रासकी विधान परिषद्के सदस्य हुए। अपनी प्रभावशालिनी वक्तृत्वशक्तिके कारण वे शीघ्र ही काग्रेसी सदस्योमे अग्रगण्य हो गये और उन्होने रौलट ऐक्ट (दे०) का घोर विरोध किया। १९२० ई०मे वे तत्कालीन राज्य परिषद्के सदस्य बने और इम्पीरियल कान्फ्रेन्स तथा लीग आफ नेशन्सकी बैठकोमे भारतके प्रतिनिधि रहे। उन्होने अफ्रीकाके प्रवासी भारतीयोकी समस्याओको सुलझानेका गहन प्रयास किया और कुछ दिनोतक वे

भारतीय सरकार द्वारा वहाँ एजेन्ट जनरलके रूपमे भी नियुक्त रहे। १९३५ से १९४० ई०तक वे अन्नामलाइ विश्वविद्यालयके उपकुलपति रहे। शास्त्री जी महान् लेखक थे और उनके अंग्रेजीमे रचित 'हिन्दू बालिकाओंके यौवनोपरान्त विवाह' (Post-Puberty Marriage of Hindu girls) नामक ग्रथसे उनके समाज सुधार संबधी विचारोंपर प्रकाश पड़ता है।

शाहजहाँ—दिल्लीके मुगल वशका पाँचवाँ बादशाह (१६२८–५८), जिसका मूल नाम शाहजादा खुर्रम था। वह अपने पिता जहाँगीरके राज्यकालके प्रारम्भिक वर्षोंमे उसका विशेष कृपापात्र था, क्योंकि उसके (शाहजहाँ) बडे भाई खुसरोसे जहाँगीर इस कारण अप्रसन्न था कि अकबरकी मृत्युके समय खुसरो दिल्लीकी गद्दीपर बैठनेके लिए उसका (जहाँगीरका) प्रतिद्वन्द्वी हो गया था। १६१२ ई०मे शाहजादा खुर्रमने नूरजहाँ (दे०) के भाई आसफ खाँकी, जो मुगल दरबारका सबसे धनी और शक्तिशाली सरदार था, पुत्री अर्जुमन्द बानू बेगम (दे०) से विवाह कर लिया। किन्तु जब उसके सबसे छोटे भाई शहरयार-का विवाह नूरजहाँकी पहले पतिसे उत्पन्न पुत्रीसे हो गया तब शाहजहाँ (खुर्रम) सम्राज्ञीका कृपापात्र न रहा, क्योंकि नूरजहाँ शहरयारको जहाँगीरका उत्तराधिकारी बनाना चाहती थी। अब शाहजादा खुर्रम और जहाँगीर-मे मनमुटाव हो गया। जब अक्तूबर १६२७ ई०मे जहाँगीरकी मृत्यु हुई तब खुर्रम दक्षिण भारतमे और प्राय विद्रोहकी स्थितिमे था। किन्तु उसके राजधानी आनेतक उसके श्वसुर आसफ खाँने उसके हितोंकी रक्षा की। फरवरी १६२८ ई०को शाहजहाँकी उपाधि धारण करके वह गद्दीपर बैठा। उसने १६५८ ई० (जिस वर्ष उसके विद्रोही पुत्र औरंगजेबने उसे सिंहासनसे च्युत कर दिया) तक राज्य किया। १६६६ ई०मे बन्दीकी स्थितिमे उसकी मृत्यु हुई।

शाहजहाँ समस्त मुगल सम्राटोंमे सबसे अधिक वैभवशाली था। सिंहासनासीन होनेके शीघ्र ही बाद उसने १ करोड रुपयेकी लागतसे मयूर सिंहासन (दे०) बनवाया। उपरान्त उसने आगरेमे, जो १६४८ ई०तक उसकी राजधानी थी, जुम्मा मस्जिद और मोती मस्जिद, लाल किला, दीवाने आम, दीवाने खास तथा ताजमहल-का निर्माण कराया। ताजमहलके निर्माणमे २२ वर्ष लगे। अपने ३० वर्षोंके शासन-कालमे उसने दक्षिण भारतमे मुगल साम्राज्यका विस्तार किया। अहमदनगर पूर्ण रूपसे साम्राज्यमे मिला लिया गया और बीजापुर तथा गोलकुण्डाको अधीनता स्वीकार करनेपर विवश होना पडा। साथ ही उसने १६३८ ई०मे कदहारपर पुनः अधिकार कर लिया, किन्तु १६४९ ई०मे फारसने उसको पुन अपने आधिपत्यमे कर लिया। यद्यपि शाहजहाँने तीन बार क्रमश १६४९, १६५२ तथा १६५३ ई०मे उसे पुन जीतनेका प्रयास किया, पर वह असफल रहा।

१६४८ ई०मे शाहजहाँने आगराके बदले दिल्लीको अपनी राजधानी बनाया और वहाँ भी दीवाने आम और दीवाने खास सहित एक भव्य महलका निर्माण कराया। दीवाने खास बेलबूटों आदिसे इतने सुन्दर रूपमे चित्रित है कि उसपर अकित उक्ति "यदि पृथ्वीपर कहीं स्वर्ग है तो वह यहीं है, यहीं है, यहीं है।" पूर्ण रूपसे चरितार्थ होती है। किन्तु शाहजहाँके अन्तिम दिन बडे ही दुःखमय थे। १६५७ ई०मे वह गभीर रूपसे अस्वस्थ हुआ और ऐसा जान पडा कि अन्त निकट है। शीघ्र ही उसके चार पुत्रों—दारा, शुजा, औरंगजेब और मुरादमे उत्तरा-धिकारका युद्ध प्रारम्भ हो गया। दाराको शाहजहाँका साहाय्य प्राप्त था और उधर औरंगजेब तथा मुराद इस समझौतेपर परस्पर एक हो गये कि साम्राज्यका दोनोंमे बँटवारा हो जायगा। शुजा ही अकेला लडता रहा। पहले उसे शाही सेनाओंने फरवरी १६५८ ई०मे बहादुर-पुरके युद्धमे परास्त किया, तदुपरान्त औरंगजेबसे जनवरी १६५९ ई०मे खजुआके युद्धमे पराजित होकर वह इधर-उधर फिरा और १६६० ई० मे अराकान (बर्मा) मे उसकी मृत्यु हो गयी। जो शाही सेना औरंग-जेब और मुरादके विरुद्ध भेजी गयी थी, उसे इन राजकुमारोंने अप्रैल १६५८ ई०मे धरमटके युद्धमे परा-जित किया। तदुपरान्त दारा स्वय सामूगढ़के युद्धमे मई १६५८ ई०मे औरंगजेब तथा मुरादकी सम्मिलित सेनाओं द्वारा परास्त होकर भागनेपर विवश हुआ। इसके बाद औरंगजेबने मुरादको बन्दी बना लिया, आगे बढकर सरलतासे आगरापर अधिकार कर लिया और जून १६५८ ई०मे शाहजहाँको भी प्राय बन्दी बना लिया। दूसरे ही महीने अनियमित रूपसे वह भारतका सम्राट् घोषित हुआ। अतत दारा भी अप्रैल १६५९ ई०मे देवराईके युद्धमे औरंगजेब द्वारा पराजित हुआ। उसे धोखेसे बन्दी बनाया गया और १६५९ ई०मे ही उसे काफिर होनेके अभियोगमे मार डाला गया। तदुपरान्त जून १६५९ ई०मे औरंगजेब विधिवत् आलमगीर की उपाधि धारण कर दिल्लीके सम्राट् रूपमे सिंहासनासीन हुआ।

मुनि अथवा तपस्वी, किन्तु इसका प्रयोग मुख्यत: गौतम बुद्धके लिए होता है।

शायस्ता खॉ—औरगजेबका मामा। १६६० ई०मे औरगजेबने उसे विशेष रूपसे शिवाजीका दमन करनेके लिए दक्षिणका सूबेदार नियुक्त किया। प्रारभमे शायस्ता खाँको कुछ सफलता मिली, किन्तु वर्षाकालमें जब वह पूना लौट गया तब शिवाजीने रात्रिमे अचानक उसपर आक्रमण कर दिया। बडी कठिनतासे शायस्ता खाँने अपने प्राणोकी रक्षा की, किन्तु उसे अपनी तीन अगुलियोसे हाथ धोना पडा तथा उसका पुत्र भी मारा गया। उपरान्त उसका तबादला बगालको कर दिया गया, जहाँ उसने ३० वर्षो तक विशेष सफलतापूर्वक शासन किया। *उसने बगालके समुद्रतटवर्ती भू-भागोमे लूटमार करनेवाले* पुर्तगाली समुद्री डाकुओका दमन किया और अराकानके राजासे चिरगांव जिला भी छीन लिया। १६९४ ई०मे ९० वर्षसे भी अधिक आयुमे वह आगरेमे मर गया।

शारदा-कानून—राय साहब हरविलास शारदा द्वारा प्रस्तुत एक विधेयक। १९२९ ई०मे यह भारतीय विधान मडल द्वारा पारित किया गया। इस कानूनका उद्देश्य विवाह्की उम्र बढ़ा करके बाल-विवाह रोकना था।

शालिवाहन—इसका उल्लेख परपरागत भारतीय लोककथाओमे विशेषरूपसे मिलता है, किन्तु मुद्राओ तथा अभिलेखीय प्रमाणोके अभावमे उसकी ऐतिहासिकता सिद्ध नही होती। दक्षिणके अनेक सातवाहन राजाओकी कृतियॉ उसके साथ सम्बद्ध हो गयी है और देशके कुछ भू भागोमें शक सवत् भी उन्हीके द्वारा चलाया हुआ माना जाता है।

शालिशुक—परवर्ती मौर्य शासकोमेसे एक, जो सम्राट् अशोकके पौत्र सम्प्रति (दे०)के उपरान्त सिहासनारूढ हुआ। उसे अनाचारी और अत्याचारी शासक कहा गया है।

शास्त्री, लालबहादुर (१९०४–१९६६ ई०)—मई, १९६४ से ११ जनवरी १९६६ ई०को मृत्युपर्यन्त भारतके प्रधानमत्री। जन्म उत्तर प्रदेशके वाराणसी जिलेमे एक निर्धन परिवारमे। वे स्वावलम्बी व्यक्ति थे और अपनी योग्यता, गुण तथा चरित्रबलके आधारपर अध्यापकके निम्नपदसे उठकर पण्डित जवाहरलाल नेहरूके उपरान्त भारतके प्रधान-मंत्री पदपर आसीन हुए। मात्र १९ महीनोके कार्यकालमे उनकी उपलब्धियॉ कुछ कम न थी, जिनके प्रमाणस्वरूप उन्हे मरणोपरान्त 'भारतरत्न'की सर्वोच्च, उपाधि ससम्मान प्रदान की गयी। सीधे-सादे, शान्त प्रकृति एव पक्के गाधीवादी देशभक्त थे। यद्यपि वे कदमे छोटे थे, परन्तु उनका कृतित्व महान् था। उन्होने भारतकी खाद्य-समस्या एव विषम आर्थिक स्थितिको ही सुलझानेका प्रयास नही किया, अपितु चीनके साथ चल रही युद्ध जैसी स्थितिमे भी यथासभव सुधार किया। उन्हें पाकिस्तानके साथ दो युद्ध करने पडे। पहली बार पाकिस्तानने कच्छपर तथा दूसरी बार जम्मू और कश्मीरपर अधिकार करनेकी चेष्टा की।

जम्मू तथा कश्मीरपर पाकिस्तानी आक्रमणोके फलस्वरूप उन्होने बडी वीरता और दृढतापूर्वक भारतका नेतृत्व किया और इस युद्धमें पाकिस्तानको मुँहकी खानी पड़ी। इसके साथ ही उन्होने चीनी सेनाओको भी युद्धमे *भाग लेनेसे रोक रखा। उन्होने कच्छ-विवादको अन्तर्राष्ट्रीय* पचनिर्णयसे सुलझाना स्वीकार कर लिया तथा कश्मीरके मोर्चेपर भी सयुक्त राष्ट्रसघका युद्ध-विरामका अनुरोध स्वीकार कर लिया, हालाकि भारतका पलडा भारी था। तदुपरान्त रूसके आमत्रणपर पाकिस्तानके साथ शान्तिपूर्ण समझौतेकी सम्भावनाओपर विचार करनेके लिए ताशकन्द गये। वहाँ रूसकी मध्यस्थतासे पाकिस्तानके राष्ट्रपति अयूब खाँके साथ एक समझौता सम्पन्न हुआ जो 'ताशकन्द घोषणापत्र'के नामसे विख्यात है। अत्यधिक परिश्रम और मानसिक तनावके कारण ताशकन्दमे घोषणापत्रपर हस्ताक्षर करनेके कुछ ही घण्टोके उपरान्त ११ जनवरी १९६६ ई०को उनका देहान्त हो गया। भारत और पाकिस्तानके बीच स्थायी शांति स्थापित करनेके प्रयासमे लालबहादुर शास्त्रीने अपने प्राणोकी बलि चढा दी।

शास्त्री, श्रीनिवास (१८६९–१९४९)—इस शताब्दीके दूसरे दशकमे उदार (लिबरल) दलके प्रमुख नेता और प्रगल्भ वक्ता। उन्होने अपना जीवन शिक्षक रूपमे प्रारभ किया और १९०७ ई०मे वे 'सर्वेन्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी'के सदस्य बन गये। १९१३ ई०मे उन्होने भारतके राजनीतिक क्षेत्रमे प्रवेश किया और मद्रासकी विधान परिषद्के सदस्य हुए। अपनी प्रभावशालिनी वक्तृत्वशक्तिके कारण वे शीघ्र ही काग्रेसी सदस्योमे अग्रगण्य हो गये और उन्होने रौलट ऐक्ट (दे०) का घोर विरोध किया। १९२० ई०मे वे तत्कालीन राज्य परिषद्के सदस्य बने और इम्पीरियल कान्फ्रेन्स तथा लीग आफ नेशन्सकी बैठकोमे भारतके प्रतिनिधि रहे। उन्होने अफ्रीकाके प्रवासी भारतीयोकी समस्याओको सुलझानेका गहन प्रयास किया और कुछ दिनोतक वे

भारतीय सरकार द्वारा वहाँ एजेन्ट जनरलके रूपमे भी नियुक्त रहे। १९३५ से १९४० ई०तक वे अन्नामलाइ विश्वविद्यालयके उपकुलपति रहे। शास्त्री जी महान् लेखक थे और उनके अंग्रेजीमे रचित 'हिन्दू बालिकाओंके यौवनोपरान्त विवाह' (Post-Puberty Marriage of Hindu girls) नामक ग्रथसे उनके समाज सुधार संबंधी विचारोंपर प्रकाश पड़ता है।

शाहजहाँ–दिल्लीके मुगल वंशका पाँचवाँ बादशाह (१६२८–५८), जिसका मूल नाम शाहजादा खुर्रम था। वह अपने पिता जहाँगीरके राज्यकालके प्रारम्भिक वर्षोंमे उसका विशेष कृपापात्र था, क्योंकि उसके (शाहजहाँ) बड़े भाई खुसरोसे जहाँगीर इस कारण अप्रसन्न था कि अकबरकी मृत्युके समय खुसरो दिल्लीकी गद्दीपर बैठनेके लिए उसका (जहाँगीरका) प्रतिद्वन्द्वी हो गया था। १६१२ ई०मे शाहजादा खुर्रमने नूरजहाँ (दे०) के भाई आसफ खाँकी, जो मुगल दरबारका सबसे धनी और शक्तिशाली सरदार था, पुत्री अर्जुमन्द बानू बेगम (दे०) से विवाह कर लिया। किन्तु जब उसके सबसे छोटे भाई शहरयारका विवाह नूरजहाँकी पहले पतिसे उत्पन्न पुत्रीसे हो गया तब शाहजहाँ (खुर्रम) सम्राज्ञीका कृपापात्र न रहा, क्योंकि नूरजहाँ शहरयारको जहाँगीरका उत्तराधिकारी बनाना चाहती थी। अब शाहजादा खुर्रम और जहाँगीरमे मनमुटाव हो गया। जब अक्तूबर १६२७ ई०मे जहाँगीरकी मृत्यु हुई तब खुर्रम दक्षिण भारतमे और प्राय विद्रोहकी स्थितिमे था। किन्तु उसके राजधानी आनेतक उसके श्वसुर आसफ खाँने उसके हितोंकी रक्षा की। फरवरी १६२८ ई०को शाहजहाँकी उपाधि धारण करके वह गद्दीपर बैठा। उसने १६५८ ई० (जिस वर्ष उसके विद्रोही पुत्र औरंगजेबने उसे सिंहासनसे च्युत कर दिया) तक राज्य किया। १६६६ ई०मे बन्दीकी स्थितिमे उसकी मृत्यु हुई।

शाहजहाँ समस्त मुगल सम्राटोंमे सबसे अधिक वैभवशाली था। सिंहासनासीन होनेके शीघ्र ही बाद उसने १ करोड रुपयेकी लागतसे मयूर सिंहासन (दे०) बनवाया। उपरान्त उसने आगरेमे, जो १६४८ ई०तक उसकी राजधानी थी, जुम्मा मस्जिद और मोती मस्जिद, लाल किला, दीवाने आम, दीवाने खास तथा ताजमहलका निर्माण कराया। ताजमहलके निर्माणमे २२ वर्ष लगे। अपने ३० वर्षोंके शासन-कालमे उसने दक्षिण भारतमे मुगल साम्राज्यका विस्तार किया। अहमदनगर पूर्ण रूपमे साम्राज्यमे मिला लिया गया और बीजापुर तथा गोलकुण्डाको अधीनता स्वीकार करनेपर विवश होना पडा। साथ ही उसने १६३८ ई०मे कदहारपर पुन. अधिकार कर लिया, किन्तु १६४९ ई०मे फारसने उसको पुन अपने आधिपत्यमे कर लिया। यद्यपि शाहजहाँने तीन बार क्रमशः १६४९, १६५२ तथा १६५३ ई०मे उसे पुन जीतनेका प्रयास किया, पर वह असफल रहा।

१६४८ ई०मे शाहजहाँने आगराके बदले दिल्लीको अपनी राजधानी बनाया और वहाँ भी दीवाने आम और दीवाने खास सहित एक भव्य महलका निर्माण कराया। दीवाने खास बेलबूटो आदिमे इतने सुन्दर रूपमे चित्रित है कि उसपर अकित उक्ति "यदि पृथ्वीपर कहीं स्वर्ग है तो वह यहीं है, यहीं है, यहीं है।" पूर्ण रूपसे चरितार्थ होती है। किन्तु शाहजहाँके अन्तिम दिन बडे ही दु.खमय थे। १६५७ ई०मे वह गभीर रूपसे अस्वस्थ हुआ और ऐसा जान पडा कि अन्त निकट है। शीघ्र ही उसके चार पुत्रों—दारा, शुजा, औरंगजेब और मुरादमे उत्तराधिकारका युद्ध प्रारम्भ हो गया। दाराको शाहजहाँका साहाय्य प्राप्त था और उधर औरंगजेब तथा मुराद इस समझौतेपर परस्पर एक हो गये कि साम्राज्यका दोनोंमे बँटवारा हो जायगा। शुजा ही अकेला लडता रहा। पहले उसे शाही सेनाओंने फरवरी १६५८ ई०मे बहादुरपुरके युद्धमे परास्त किया, तदुपरान्त औरंगजेबसे जनवरी १६५९ ई०मे खजुआके युद्धमे पराजित होकर वह इधर-उधर फिरा और १६६० ई० मे अराकान (बर्मा) मे उसकी मृत्यु हो गयी। जो शाही सेना औरंगजेब और मुरादके विरुद्ध भेजी गयी थी, उसे इन राजकुमारोंने अप्रैल १६५८ ई०मे धरमटके युद्धमे पराजित किया। तदुपरान्त दारा स्वयं सामूगढ़के युद्धमे मई १६५८ ई०मे औरंगजेब तथा मुरादकी सम्मिलित सेनाओं द्वारा परास्त होकर भागनेपर विवश हुआ। इसके बाद औरंगजेबने मुरादको बन्दी बना लिया, आगे बढकर सरलतासे आगरापर अधिकार कर लिया और जून १६५८ ई०मे शाहजहाँको भी प्राय बन्दी बना लिया। दूसरे ही महीने अनियमित रूपसे वह भारतका सम्राट् घोषित हुआ। अतत दारा भी अप्रैल १६५९ ई०मे देवरईके युद्धमे औरंगजेब द्वारा पराजित हुआ। उसे धोखेसे बन्दी बनाया गया और १६५९ ई०मे ही उसे काफिर होनेके अभियोगमे मार डाला गया। तदुपरान्त जून १६५९ ई०मे औरंगजेब विधिवत् आलमगीर की उपाधि धारण कर दिल्लीके सम्राट् रूपमे सिंहासनासीन हुआ।

स्थानपर राजपूतानेके इस्माइल वेगको, १७६१ ई० मे मिर्थाके युद्धमे राजपूत शासकोंके सम्मिलित दलको और १७६२ ई०मे लखेडीके युद्धमे होलकरको परास्त किया।

इसके पूर्व ही उसने नाम मात्रके सम्राट् शाह आलम द्वितीयसे पेशवाको 'वकीले मुतलक' अथवा साम्राज्यके उपप्रधानका खिताब दिलाया। १७६३ ई०मे महादजी-के सयोजनसे ही पूनामे एक विशेष समारोहमे विधिवत यह उपाधि पेशवाको दी गयी। यद्यपि इससे पेशवाका केवल प्रतीकात्मक लाभ हुआ, तथापि महादजीके जीवन-मे यह समारोह उसकी सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि थी। १७६४ ई० मे महादजीकी मृत्यु हो गयी। (ग्राण्ट डफ कृत मराठोंका इतिहास, जिल्द ३, (अग्रेजी)।

शिन्दे, रणोजी (१७२६–५०)–ग्वालियरके शिन्दे (सिन्धिया) वशका प्रवर्तक। उसका जन्म साधारण मराठा परिवार-मे हुआ, किन्तु पेशवा बाजीराव प्रथमके समयमे उसने इतनी योग्यता दिखायी कि मालवा प्रदेशको मराठा राज्यमे मिला लेनेके उपरात, उसका एक भाग पेशवाने उसको प्रदान कर दिया। शिन्देने इसके बाद ग्वालियर-को ही अपना मुख्य केन्द्र बनाया।

शितबराय–बिहारका एक प्रतिष्ठित व्यक्ति, जिसे राजाकी उपाधि मिली थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनीको दीवानी मिलनेके उपरान्त राजा शिताबराय दो उपनायबोमेसे एकके पदपर नियुक्त हुआ और उसे बिहारमे भूमिकर एकत्र करनेका कार्य-भार सौपा गया। कम्पनीके निर्दे-शकोकी आज्ञासे वारेन हेस्टिंग्सने १७७२ ई०मे उसे पद मुक्त कर दिया। उसे बन्दी बनाकर उसपर गबनके आरोपमे अभियोग भी चलाया गया, परन्तु निर्दोष सिद्ध होनेपर उसे छोड दिया गया।

शिमला–एक पर्वतीय मनोरम स्थल तथा ब्रिटिश शासन कालमे भारत सरकारकी ग्रीष्म-कालीन राजधानी। १८१५–१६ ई०के गोरखा-युद्ध उपरात यह स्थान आस-पासके भू-भागो सहित अग्रेजोके अधिकारमे आ गया। लार्ड एमहर्स्ट पहला गवर्नर-जनरल था, जिसने १८२७ ई० मे शिमलामे गर्मियाँ वितायी। स्वतत्रता-प्राप्तिके उपरात अब यह हिमाचल प्रदेशकी राजधानी है और भारत सरकारकी ग्रीष्म-कालीन राजधानी नही रहा है।

शिया सम्प्रदाय–मुसलमानोका एक सम्प्रदाय है। शियाओं-की मान्यता है कि हज़रतकी मृत्युके उपरात उनके दामाद अली को, जिन्होने हजरतकी एकमात्र पुत्री फातिमासे विवाह किया था, खलीफा होना चाहिए था। अतएव शिया लोग प्रथम दो खलीफाओको अनुचित उत्तराधि-कारी मानते तथा अपनी प्रार्थनाओमे उनके नाम नही लेते है। उनका यह भी विश्वास है कि अलीके दो पुत्र इस्लामके हितमे शहीद हो गये। इसीलिए मुहर्रमके महीने-मे उनकी शहादतपर शोक प्रकट करते है। इस सम्प्रदाय-का उद्भव फारसमे हुआ, जहाँ अब भी शिया लोगोकी अत्यधिक प्रधानता है। भारतमे अधिकाश मुसलमान सुन्नीमत (दे०) के ही अनुयायी है। दिल्लीके सभी शासकोको छोडकर बीजापुर और गोलकुण्डाके सुल्तान शिया थे और इसी कारण सुन्नी सम्राट् औरगजेबने धर्मान्धताके वशीभूत होकर इन दोनो राज्योको अपने साम्राज्यमे मिलाया। अवध और मुर्शिदाबादके नवाब भी शिया थे, यद्यपि अवध और बगालकी अधिकाश मुसलमान जन-सख्या सुन्नी है।

शिव–त्रिदेवो मे से एक। उनकी उपासना कई नामो तथा रूपोमे की जाती है जिनमे शिवलिंगका पूजन सर्वाधिक प्रचलित है। शिवोपासना कितनी प्राचीन है यह निश्चय-पूर्वक कहना कठिन है, क्योकि लिंगपूजनके प्रमाण मोहेन-जोदडो (दे०)के प्रागैतिहासिक सभ्यताके अवशेषोमे प्राप्त हुए है। ऋग्वेदमे उनका उल्लेख रुद्रके नामसे हुआ है और रुद्रकी आकृति कतिपय कुषाण वशी शासको (दे०) के सिक्कोपर पायी जाती है। गुप्तकालमे शैव मत निश्चय ही अत्यधिक प्रचलित था। मगधके पाल वशके पाँचवें शासक नारायण पालने एक सहस्र शैव मदिरोका निर्माण कराया था।

शिवाजी–स्वतत्र मराठा राज्यके सस्थापक। जन्म १६२७ ई० मे पूनामे। वे शाहजी (दे०) तथा उनकी प्रथम पत्नी जीजाबाईके पुत्र थे। शाहजी बीजापुर राज्य-मे पदाधिकारी थे। उन्होने शिवाजीके जन्मके उपरान्त ही अपनी पत्नीको प्राय. त्याग दिया था। बालक शिवाजीका लालन-पालन उनके स्थानीय सरक्षक दादाजी कोणदेव तथा जीजाबाईके गुरु समर्थ स्वामी रामदासकी देखरेखमे हुआ। माता जीजाबाई तथा गुरु रामदासने कोरे पुस्तकीय ज्ञानके प्रशिक्षणपर अधिक बल न देकर शिवाजीके मस्तिष्कमे यह भावना भर दी कि देश, समाज, गौ तथा ब्राह्मणोको मुसलमानोके उत्पीड़नसे मुक्त करना उनका परम कर्तव्य है। शिवाजी स्थानीय मवाली लोगोके बीच रहकर शीघ्र ही उनमे अत्यधिक सर्वप्रिय हो गये। उनके साथ आस-पासके क्षेत्रोमे भ्रमण करनेसे उनको स्थानीय दुर्गों और दर्रोकी भली प्रकार व्यक्तिगत जानकारी प्राप्त हो गयी। कुछ स्वामिभक्त मवाली लोगोका एक दल बनाकर उन्होने उन्नीस वर्ष

की आयुमें पूनाके निकट तोरणके दुर्गपर अधिकार करके अपना जीवन-क्रम आरम्भ किया।

बीजापुरके सुल्तानकी राज्य सीमाओंके अतर्गत रायगढ (१६४६ ई०) चाकन, सिंहगढ और पुरन्दर सरीखे दुर्ग भी शीघ्र उनके अधिकारमे आ गये। १६५५ ई० तक शिवाजीने कोकणमे कल्याण और जावलीके दुर्गपर भी अधिकार कर लिया। उन्होंने जावली-के राजा चद्रदेवका बलपूर्वक वध करवा दिया। शिवाजी-की राज्यविस्तारकी नीतिमे क्रुद्ध होकर बीजापुरके सुल्तानने १६५९ ई० मे अफजल खाँ नामक अपने एक वरिष्ठ सेनानायकको विशाल सैन्यबल सहित शिवाजी-का दमन करनेके लिए भेजा। दोनो पक्षोको अपनी विजयका पूर्ण विश्वास नही था, अत उन्होने सधिवार्ता प्रारभ कर दी। दोनोकी भेंटके अवसरपर अफजल खाँ-ने शिवाजीको दबोच कर मार डालनेका प्रयत्न किया। किन्तु वे इसके प्रति पहलेसे ही सजग थे। उन्होने अपने गुप्त शस्त्र बघनखाका प्रयोग करके मुसलमान सेनानीका पेट फाड डाला, जिससे उसकी तत्काल मृत्यु हो गयी। तदुपरान्त शिवाजीने एक विकट युद्धमे बीजापुरकी सेनाओको परास्त कर दिया। इसके बाद बीजापुरके सुल्तानने शिवाजीका सामना करनेका साहस नही किया।

अब उन्हें एक और प्रबल शत्रु मुगल सम्राट् औरग-जेबका सामना करना पडा। १६६० ई० मे औरगजेबने अपने मामा शायस्ता खाँ नामक सेनाध्यक्षको शिवाजीके विरुद्ध भेजा। शायस्ता खाँने शिवाजीके कुछ दुर्गोपर अधिकार करके उनके केन्द्र-स्थल पूनापर भी अधिकार कर लिया। किन्तु शीघ्र ही शिवाजीने अचानक रात्रिमे शायस्ता खाँपर आक्रमण कर दिया, जिससे उसको अपना एक पुत्र और अपने हाथकी तीन अँगुलियाँ गँवाकर अपने प्राण बचाने पड़े। शायस्ता खाँ वापस बुला लिया गया। फिर भी औरगजेबने शिवाजीके विरुद्ध नये सेनाध्यक्षोकी सरक्षामे नवीन सैन्यदल भेजकर युद्ध जारी रखा। शिवाजीने १६६४ ई० मे मुगलोके अधीनस्थ सूरतको लूट लिया, किंतु मुगल सेना-ध्यक्ष मिर्जा राजा जयसिंहने उनके अधिकाश दुर्गोपर अधिकार कर लिया, जिससे शिवाजीको १६६५ ई० मे पुरन्दरकी सधि करनी पडी। उसके अनुसार उन्होने केवल १२ दुर्ग अपने अधिकारमे रखकर २३ दुर्ग मुगलो-को दे दिये और राजा जयसिंह द्वारा अपनी सुरक्षाके प्रति आश्वस्त होकर आगरामे मुगल दरबारमे उपस्थित होनेके लिए प्रस्थान किया।

मई १६६६ ई० मे शाही दरबारमे उपस्थित होनेपर उनके साथ तृतीय श्रेणीके मनसबदारो सदृश व्यवहार किया गया और उन्हें नजरबन्द कर लिया गया। किन्तु शिवाजी चालाकीसे अपने अल्पवयस्क पुत्र शम्भूजी और अपने विश्वस्त अनुचरो सहित नजरबन्दीसे भाग निकले। सन्यासीके वेशमे द्रुतगामी अश्वोकी सहायतासे वे दिसम्बर १६६६ ई०मे अपने प्रदेशमे पहुँच गये। अगले वर्ष औरगजेबने निरुपाय होकर शिवाजीको राजाकी उपाधि प्रदान की, और इसके बाद दो वर्षो तक शिवाजी और मुगलोके बीच शान्ति रही। शिवाजीने इन वर्षोंमे अपनी शासन-व्यवस्था सगठित की। १६७० ई० मे उन्होने मुगलोसे पुन. सघर्ष प्रारभ किया और खानदेश-के कुछ भू-भागोके स्थानीय मुगल पदाधिकारियोको सुरक्षाका वचन देकर उनसे चौथ वसूल करनेका लिखित इकरारनामा ले लिया और दूसरी बार सूरतको लूटा। १६७४ ई० मे रायगढके दुर्गमे महाराष्ट्रके स्वा-धीन शासकके रूपमे उनका राज्याभिषेक हुआ।

इस प्रकार मुगलो, बीजापुरके सुल्तान, गोआके पुर्तगालियो और जजीरा स्थित अबीसीनियाके समुद्री डाकुओके प्रबल प्रतिरोधके बावजूद उन्होंने दक्षिणमे एक स्वतत्र हिन्दू राज्यकी स्थापना की। ६ वर्षोके उप-रान्त १६८० ई० मे जब उनकी मृत्यु हुई, उनका राज्य बेलगावमे लेकर तुगभद्रा नदीके तटतक समस्त पश्चिमी कर्नाटकमे विस्तृत था। इस प्रकार शिवाजी एक साधा-रण जागीरदारके उपेक्षित पुत्रकी स्थितिसे अपने पुरुषार्थ द्वारा ऐसे स्वाधीन राज्यके शासक बने, जिसका निर्माण स्वय उन्होंने ही किया था। उन्होने उसे एक सुगठित शासन-प्रणाली एव सैन्य सगठन द्वारा सुदृढ करके जन साधारणका भी विश्वास प्राप्त किया। जिस स्वतन्त्रता-की भावनासे वे स्वय प्रेरित हुए थे, उसे उन्होने अपने देशवासियोके हृदयमे भी इस प्रकार प्रज्वलित कर दिया कि उनके मरणोपरान्त औरगजेब द्वारा उनके पुत्रका वध कर देने, पौत्रको कारागारमे डाल देने तथा समस्त देश-को अपनी सैन्य-शक्ति द्वारा रौंद डालनेपर भी वे अपनी स्वतन्त्रता बनाये रखनेमे समर्थ हो सके। उसीसे भविष्य-मे विशाल मराठा साम्राज्यकी स्थापना हुई। शिवाजी यथार्थमे एक व्यावहारिक आदर्शवादी थे। वे शेरशाह और रणजीत सिंहसे भी महान थे तथा ओलिवर क्रामवेल एव नेपोलियनसे भी उनकी महानताकी तुलना नहीं की जा सकती, क्योकि वे दोनो क्षुद्र अह भावनासे प्रेरित थे। (यदुनाथ सरकार द्वारा

लिखित शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स तथा एस० एन० सेन कृत छत्रपति शिवाजी)

शिवि—एक प्राचीनगण, जो झग जिलेके रेचना दोग्रावमे निवास करता था। ग्रीक इतिहासकारोके अनुसार चमडे-के वस्त्र पहनते थे तथा गदासे युद्ध करते थे। जब मकदूनियाके राजा सिकन्दरने उनके देशपर आक्रमण किया, तो उन्होने यूनानियोकी अधीनता स्वीकार कर ली।

शिशुनाग—पुराणोके अनुसार मगधके उस राजवशका प्रवर्तक, जिसमे गौतम बुद्ध और वर्धमान महावीरका समकालीन बिम्बिसार (दे०)नामक शासक हुआ। शिशुनाग-का काल सातवी शताब्दी ई० पू० निर्धारित किया जाता है और इस राजवशमे नौ शासक हुए। उनके नाम काकवर्ण, क्षेमधर्म, क्षेमजित्, बिम्बिसार अथवा श्रेणिक, अजातशत्रु, दर्शक, उदयी, अथवा उदयन, नदिवर्द्धन और महानदी थे, जिनमेसे अतिमको प्राय: ४७० ई० पू०मे नदवशके सस्थापक महापद्म नदने गद्दीसे उतारकर मार डाला। किन्तु श्री सिंहली अनुश्रुतियोके अनुसार शिशुनागके वशजोने हर्यक वशके शासक बिम्बिसार और उसके उत्तराधिकारियोके उपरात शासन किया। (स्मिथ० तथा रायचौधरी०)

शिशु हत्याका उन्मूलन—*ब्रिटिश भारतमे* १७९५ ई०के बंगाल रेग्युलेशन द्वारा किया गया। इस आदेशके द्वारा कन्याओको जन्मते ही मार डालना, ताकि बादमे उनके विवाहकी झझट न पैदा हो, दडनीय अपराध घोषित कर दिया गया। इसी रीतिसे १८०२ ई०के रेग्युलेशन ६ के द्वारा किसी बाझ स्त्रीके दीर्घकालके वैवाहिक जीवनके बाद एकसे अधिक सताने उत्पन्न होनेपर पहली सतानको गगा मैयाकी भेट चढा देनेकी प्रथा बद कर दी गयी और इस कृत्यको दडनीय अपराध घोषित कर दिया गया। ये सामाजिक कुरीतियाँ, विशेष रूपसे कन्याओको जन्मते ही मार डालनेकी कुप्रथा देशी रियासतोमे इसके बाद भी प्रचलित रही और उसका अतिम रीतिसे उन्मूलन लार्ड हार्डिज प्रथम (१८४४-४८ ई०)के शासनकालमे हुआ।

शुग वश—इसका आरम्भ लगभग १८५ ई० पू० मे पुष्यमित्र (अथवा पुष्यमित्र) (दे०)से हुआ, जो अतिम मौर्य राजा बृहद्रथका प्रधान सेनापति था। उसने उसे मार कर सिंहासनपर अधिकार कर लिया। उसने १८५ ई० पू० से १५१ ई० पू० तक राज्य किया तथा उत्तरी भारतके मगध साम्राज्यको लगभग अखडित रखा। परन्तु उसे कई आक्रमणोका सामना करना पडा। यदि वह मत स्वीकार न किया जाय कि कलिगका राजा खारवेल उसका समसामयिक था और उसने उसे परास्त किया, तो भी यह निस्सदिग्ध है कि एक भारतीय यवन राजा, सभवत मिनाण्डर (दे०)ने उसके राज्यपर आक्रमण किया, किन्तु उसने उस आक्रमणको विफल कर दिया। उसने कई युद्धोमे विजय प्राप्त की और अपने राज्यकालमे दो बार अश्वमेध यज्ञ किया। इस प्रकार तीसरे मौर्य सम्राट् अशोक (दे०)के द्वारा बौद्ध धर्मके प्रचार-प्रसारके फलस्वरूप ह्रासको प्राप्त हुए हिन्दू धर्मको उसने पुनरुज्जीवित किया। विश्वास किया जाता है कि सुप्रसिद्ध सस्कृत वैयाकरण पतजलि अश्वमेध यज्ञमे उसके पुरोहित थे।

पुष्यमित्रके बाद शुगवशमे नौ राजा हुए, जिनके नाम थे—अग्निमित्र, ज्येष्ठमित्र, वसुमित्र, भद्रक (जिसकी पहचान बेसनगरमे हेलियोडोरस (दे०)के द्वारा स्थापित गरुडस्तम्भपर उल्लिखित काशीपुत्र भागभद्रसे की जाती है), तीन अज्ञातनामा राजा, फिर भागवत, जिसने बत्तीस वर्ष तक राज्य किया और अन्तमे देवभूति, जिसे उसके अमात्य वासुदेवने लगभग ७३ ई० पू०मे सिंहासनसे उतार दिया और मार डाला। इस प्रकार शुगवशने १२० वर्ष तक राज्य किया।

शुजाउद्दौला (१७५४-७५)—अवधका तृतीय स्वतत्र नवाब और वहाँके द्वितीय नवाब सफदर जगका पुत्र तथा उत्तराधिकारी। शुजाउद्दौलाको आलमगीर द्वितीय (१७५४-५९ ई०) (दे०) तथा शाह आलम द्वितीय (१७५९-१८०६ ई०) (दे०) नामक मुगल सम्राटोसे वजीरका ओहदा मिला। किन्तु उसने अहमद शाह अब्दालीके आक्रमणके समय सम्राट्की कोई सहायता नही की, जब अब्दालीने १७५६ ई०मे दिल्लीको लूटा, १७५९ ई०मे पजाबपर पूर्ण अधिकार कर लिया और मुगल सम्राट् तथा उसके सहायक मराठोको १७६१ ई०मे पानीपतके तृतीय युद्धमे परास्त किया। शुजाउद्दौलाने सदैव केवल अपने वशके ही हितोपर ध्यान दिया। १७६४ ई०मे उसने बंगालसे भागकर सहायतार्थ आनेवाले वहाँके नवाब मीर कासिम तथा शाह आलम द्वितीयसे कम्पनीके विरुद्ध एक सधि की, पर बक्सरके युद्धमे वह पराजित हुआ।

१७६५ ई०मे उसने कडा और इलाहाबादके जिलो सहित ५० लाख रुपयोकी धनराशि हरजानेके रूपमे देकर अग्रेजोसे सधि कर ली। साथ ही उसने अग्रेजोसे एक सुरक्षात्मक सधि भी की, जिसके अनुसार उसके राज्यकी सीमाओके रक्षार्थ कम्पनीने उसे इस करारके

अनुसार सहायता देना स्वीकार किया कि सेनाका सम्पूर्ण व्यय भार उसे वहन करना होगा। १७७२ ई०मे उसने रुहेलोसे इस आशयकी संधि की कि यदि मराठोंने उनपर आक्रमण किया तो वह मराठोको इधर न बढने देगा और इसके बदलेमे रुहेले ४० लाख रुपयोकी धनराशि देंगे।

१७७३ ई०मे मराठोने रुहेलखण्डपर आक्रमण किया किन्तु वे बिना किसी युद्धके ही वापस लौट गये। अब शुजाउद्दौलाने रुहेलोसे ४० लाख रुपयोकी निर्धारित धनराशिकी माग की और रुहेले उसे देनेमे आनाकानी करने लगे। अतएव शुजाउद्दौलाने कम्पनीके साथ बनारसकी प्रसिद्ध संधि कर ली, जिसकी शर्तोंके अनुसार ५० लाख रुपयोके बदले उन्हें कडा और इलाहाबादके जिले पुन प्राप्त हो गये तथा लखनऊमे कम्पनीकी एक पलटन रखनके बदले उन्हें निश्चित धनराशि भी प्राप्त हुई। बनारसमे ही उसे बगालके गवर्नर वारेन हेस्टिंग्स द्वारा यह आश्वासन मिला कि कम्पनी रुहेलोसे ४० लाख रुपये प्राप्त करनेमे शुजाउद्दौलाकी सहायता अंग्रेज पलटन द्वारा करेगी, क्योकि शुजाउद्दौलाकी दृष्टिमे रुहेलोसे वह धनराशि उसको मिलनी थी। अत. १७७४ ई०मे नवावने अंग्रेज पलटनकी सहायतासे रुहेलखण्डपर आक्रमण किया, वहाँके शासक हाफिज अहमद खाँको मीरनपुर कटराके युद्धमे पराजित किया और रुहेलखण्डको अपने राज्यमे सम्मिलित कर लिया। दूसरे ही वर्ष शुजाउद्दौलाकी मृत्यु हो गयी।

शुजात खाँ–औरगजेबका एक सेनापति, जिसकी नियुक्ति उत्तर-पश्चिमी सीमान्तपर हुई। १६७४ ई०मे विद्रोही अफ्रीदियोने कर्पा दर्रेके पास सेनाओ सहित उसका नाश कर दिया। इस दुर्घटनाके उपरात सम्राट् औरंगजेबने पेशावरके निकट अपनी स्थितिपर विशेष ध्यान दिया और ऐसी व्यवस्था की, जिसके फलस्वरूप सीमाओपर दीर्घकाल तक शाति स्थापित रही।

शुजा शाहजादा–शाहजहाँका द्वितीय पुत्र। वह विलासी प्रकृतिका था किन्तु अपने अन्य तीन भाइयोकी भाँति ही उसमे भी महत्त्वाकाक्षा थी। १६५७ ई०मे शाहजहाँके गभीर रूपमे अस्वस्थ होनेपर शुजाने, जो उस समय बगालका सूबेदार था, पिताका सिंहासन पानेके लिए सब भाइयोके बीच अपना अधिकार घोषित किया। तदनुसार बगालकी तत्कालीन राजधानी राजमहलमे अपनेको सम्राट् घोषितकर सेना सहित वह दिल्लीकी ओर चल पडा, पर फरवरी १६५८ ई०मे शाही सेना द्वारा बहादुरपुरके युद्धमे परास्त हो जानेपर वह पुन बगाल लौट आया। तदुपरात धर्मट और सामूगढके युद्धोमे दाराकी पराजयसे उसका साहस बढा और उसने पुनः युद्धकी ठानी। किन्तु औरंगजेबके सेनापति, मीर जुमलाने उसे पराजित किया और वह अराकानकी ओर भाग गया, जहाँ वह सपरिवार कालकवलित हुआ।

शूद्र–हिन्दुओके चार वर्णोंमे से अन्तिम वर्ण। (दे०, जाति व्यवस्था)

शेर अफगन–फारसका एक निवासी, जिसका प्रारंभिक नाम अलीकुलीबेग इस्तझी था। वह अपने भाग्य के परीक्षार्थ मुगल दरबारमे आया। उसने सत्रह वर्षीय मेहरुन्निसासे विवाह किया। जहाँगीरके राज्यकालके प्रारंभिक दिनोमे उसे बर्दवानकी जागीर तथा शेरअफगनकी उपाधि प्राप्त हुई। १६०७ ई०मे उसपर बगालके विद्रोही अफगानोका गुप्त रीतिसे साथ देनेका सन्देह हुआ। अतएव जहाँगीरने बगालके तत्कालीन सूबेदार कुतुबुद्दीन कोकाको शेर अफगनको बन्दी बनाकर दिल्ली भेजनेका आदेश दिया। किन्तु शेरअफगनने बन्दी बनाये जानेका प्रतिरोध किया। इस संघर्षमे कुतुबुद्दीन और शेरअफगन दोनो ही मारे गये। शेर अफगनकी विधवा पत्नी मेहरुन्निसा और उसकी एकमात्र पुत्रीको मुगल दरबारमे भेज दिया गया। चार वर्षोंके उपरान्त उसने जहाँगीरसे विवाह कर लिया तथा शेरअफगनसे उत्पन्न अपनी पुत्रीका विवाह जहाँगीर के सबसे छोटे पुत्र शहरमीरसे कर दिया।

शेरअली–दोस्त मुहम्मद (दे०) का पुत्र तथा उत्तराधिकारी, जो १८६३ ई०मे अफगानिस्तानका अमीर बना, किन्तु १८६६ ई० मे काबुल और १८६७ ई०मे कन्दहारसे खदेड़े जानेपर उसने हेरातमे शरण ली। इसी बीच रूसने अपने साम्राज्यकी सीमाएँ कैस्पियन सागरके निकटके खानोकी राज्यसीमाओ तक बढाकर १८६५ ई० मे ताशकन्द और १८६८ ई०मे समरकन्दपर अधिकार कर लिया। अफगानिस्तानकी ओर साम्राज्य विस्तारसे शेरअलीको रूसके भावी मनसूबोपर सदेह हुआ, फलतः १८६९ ई०मे उसने भारत सरकारके तत्कालीन वाइसराय लार्ड मेयोसे अम्बालामे भेंट की। उसने वाइसरायके सम्मुख कुछ ऐसे प्रस्ताव रखे जिनसे अफगानिस्तान मे स्वय अंग्रेजोकी स्थिति सुदृढ हो जाती और वे भविष्यमे अफगानिस्तानकी सीमाओकी ओर रूसी विस्तार रोकनेमे समर्थ होते। किन्तु लन्दनके आदेशपर उसने इस प्रकारकी कोई सन्धि करना स्वीकार न किया।

लगभग १८७० ई० से तुर्किस्तानमें नियुक्त रूसी गवर्नर-जनरल काउफमैनने शेरअलीसे पत्र व्यवहार प्रारम्भ कर दिया। रूसियों द्वारा १८७३ ई०में खीव (कीव) पर अधिकार कर लेनेपर शेरअलीने भारत सरकारसे पुनः एक निश्चित संधि करनेकी प्रार्थना की, किन्तु उसे पुनः अस्वीकार कर दिया गया। लेकिन १८७६ ई०में जब लार्ड लिटन (१८७६–८०) भारतका वाइसराय हुआ, तब भारत सरकारने अपनी अफगान नीतिमें अचानक परिवर्तन कर दिया और शेरअलीसे एक निश्चित सन्धि करनेका प्रस्ताव रखा, जिसमें प्रतिबन्ध यह था कि अमीर हेरातमें अंग्रेज रेजीडेण्ट रखना स्वीकार कर ले। शेरअली अफगानोंकी मनोवृत्तिसे भली-भाँति परिचित था। उसे पूरा विश्वास था कि अपने राज्यमें अंग्रेज रेजीडेण्ट रखनेका सुझाव मान लेनेसे अफगान प्रजा पूर्णतः असन्तुष्ट हो जायगी और उसकी अपनी गद्दी भी संकटमें पड़ जायगी। अतः उसने अंग्रेजोंका उक्त प्रस्ताव ठुकरा दिया।

इसी बीच १८७८ ई०में बर्लिन कांग्रेसमें अंग्रेजोंकी नीतिसे चिढ़कर रूसने जनरल स्टोलिटॉफ (स्तोलियताफ)-के नेतृत्वमें एक दूतमण्डल अफगानिस्तान भेजा। शेरअलीको विवश होकर उसका स्वागत करना पड़ा। अब लार्ड लिटन (प्रथम) की सरकारको एक और कारण मिल गया कि वह अंग्रेजोंके दूतमण्डलको भी अपने यहाँ बुलाये। किन्तु शेरअली द्वारा इसे अस्वीकार करनेपर नवम्बर १८७८ ई०में ब्रिटिश सरकारने उसके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी। शेरअली अंग्रेजोंकी विशाल सेनाको रोकनेमें असमर्थ रहा और वह रूसी तुर्किस्तानकी ओर भागा, जहाँ फरवरी १८७९ ई०में उसकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार शेरअली अपने दो प्रबल पड़ोसियों रूस और इंग्लैण्डकी निर्दय महत्त्वाकांक्षा एवं स्वार्थपूर्ण नीतियोंका शिकार बन गया।

शेर अली खाँ–अफगानिस्तानका एक सरदार। १८७९ ई०में भारतकी अंग्रेज सरकारने उसको पश्चिमी अफगानिस्तानका स्वतन्त्र शासक नियुक्त कर दिया। उसका मुख्यालय कन्दहार बना। वह १८८१ ई० तक वहाँका शासक रहा। उसी वर्ष भारत सरकारके दबावपूर्ण अनुरोधके कारण उसने गद्दी छोड़ दी और भारतमें आकर रहने लगा।

शेर खाँ सूर (१४७२–१५४५)–भारतीय इतिहासमें शेरशाह नामसे विख्यात। वह १५३९ से १५४५ ई० तक भारतका बादशाह रहा। उसने सूरवंशकी नींव डाली तथा १५५६ ई० तक उत्तर भारतपर राज्य किया। उसका प्रारम्भिक नाम फरीद खाँ था। वह बिहार प्रान्तमें सहसराम (सासाराम) के एक साधारण अफगान जागीरदारका पुत्र था। पिताकी जागीरमें ही उसे शासन-प्रबन्धका प्रशिक्षण मिला, किन्तु पिताके उदासीन व्यवहारके कारण शेर खाँ घर छोड़कर अपने भाग्यकी परीक्षाके लिए चल पड़ा। १५२२ ई०में उसने बहार खाँ लोहानीके यहाँ नौकरी कर ली और अकेले ही एक शेरको मार देनेके फलस्वरूप बहार खाँसे शेरखाँकी उपाधि प्राप्त की। इसके उपरान्त उसने बाबरके यहाँ सेवाकार्य प्रारम्भ किया। बाबरने उसे उसकी पैतृक सहसराम (सासाराम) की जागीरदारी देकर पुरस्कृत किया।

बिहार लौट कर शेर खाँने वहाँके तत्कालीन शासक जलाल खाँके यहाँ नौकरी कर ली तथा चुनारके शासक ताज खाँकी विधवासे विवाह करके चुनारका महत्त्वपूर्ण दुर्ग भी प्राप्त कर लिया। १५३१ ई०में जब हुमायूँने चुनारपर आक्रमण किया, शेर खाँने चतुरतासे अपनी रक्षा की और दुर्गका स्वामित्व भी सुरक्षित रखा। दो वर्षोंके बाद उसने बंगालके शासक महमूद शाहको सूरजगढ़के युद्धमें पराजित किया और इस प्रकार उसका बिहारपर एकच्छत्र अधिकार हो गया। उपरान्त शेरखाँने बंगालपर दो और आक्रमण किये। इसके फलस्वरूप १५३७ ई०में हुमायूँने उसपर आक्रमण कर दिया। शेर खाँने चतुराईसे हुमायूँको बंगाल तक अपना पीछा करने दिया और भारी रणकुशलताका परिचय देते हुए १५३९ ई०में बक्सरके निकट चौसा नामक स्थलपर हुमायूँको बुरी तरह परास्त किया।

हुमायूँने बड़ी कठिनतासे अपने प्राणोंकी रक्षा की और शेर खाँ कन्नौजसे लेकर आसाम तक पूर्वी भारतका वास्तविक शासक बन गया। अब उसने शेरशाहकी उपाधि धारण करके अपनी स्वतन्त्र सत्ताकी घोषणा कर दी। अगले वर्ष शेरशाहने हुमायूँको कन्नौजके निकट बिलग्राम नामक स्थलपर पुनः पराजित किया और दिल्लीकी ओर बढ़कर पंजाबपर भी अधिकार कर लिया। १५४२ ई०में मालवा और १५४३ ई०में रायसीनपर अधिकार करके उसने शीघ्र ही सिन्ध, मुल्तान और १५४४ ई०में मारवाड़पर भी आधिपत्य जमाया, किन्तु कालिंजरके दुर्गपर अधिकार करते समय बारूदमें विस्फोट हो जानेके फलस्वरूप उसकी मृत्यु हो गयी। यद्यपि दुर्गपर उसका अधिकार हो गया, इस प्रकार इतने थोड़े दिनोंमें ही शेरशाहने मुगलोंको दिल्लीसे खदेड़ बाहर किया और भारतका सम्राट् बन बैठा।

शेरशाह केवल वीर योद्धा ही नहीं, कुशल प्रशासक भी था। अपने केवल ५ वर्षोंके अल्प शासनकालमें उसने कई विवेकपूर्ण प्रशासकीय सुधार किये। उसने अपने समस्त साम्राज्यको ४७ सरकारों अथवा जिलोंमें बाँटा और इन सरकारोंका परगनोंमें उपविभाजन किया। उसने भूमि-सर्वेक्षणके उपरान्त करव्यवस्थामें सुधार किया और कृषकोंसे सीधे भूमि-कर वसूलनेकी व्यवस्था की। साथही कृषकोंसे सीधे भू-स्वामित्व सम्बन्धी सनदें (कबूलियात) दीं, जिनमें उनके अधिकारों और भूमि-कर सबंधी और दायित्वोंका विवरण रहता था।

उसने मुद्रा सम्बन्धी सुधार भी किये और टंक अथवा रुपयेका अनुपात ताँबेके ६४ पैसोंमें निर्धारित किया। चुंगी-व्यवस्थामें सुधार कर तथा अनेक अनुचित करोंको हटाकर उसने वाणिज्य एवं व्यवसायको प्रोत्साहन दिया तथा मुख्य सड़कोंके निर्माणसे यातायातकी सुविधाओंमें वृद्धि करके घोड़ों द्वारा डाक पहुँचानेकी व्यवस्था चलायी। उसने देशमें शान्ति और सुव्यवस्था सुदृढ़ करनेके लिए स्थानीय अपराधोंकी छानबीन करके अपराधियोंको दंडित करनेका भार गाँवोंपर छोड़ दिया। उसका न्याय पक्षपात रहित होता था तथा हिन्दुओंके प्रति उसकी नीति उदार थी। ब्रह्मजीत गौड़ नामक एक हिन्दू उसका सेनाध्यक्ष भी था। उसने सैन्य संगठनमें भी उसने कई महत्त्वपूर्ण सुधार किये, जिससे सैनिकोंकी सीधी भर्ती होने लगी और उन्हें नगदी वेतन दिया जाने लगा। फलतः सेनाका संगठन अयोग्य और निष्क्रिय जागीरदारोंपर आधारित न होकर सीधे सम्राट्के नियंत्रणमें आ गया। शेरशाह द्वारा किये गये अनेक प्रशासकीय सुधारोंको मुगल सम्राट् अकबरने भी अपनाया।

शेर सिंह—पंजाबके महाराज रणजीत सिंहका पुत्र। रणजीत सिंहके उपरान्त उसका ज्येष्ठ पुत्र खड़क सिंह और उसके बाद दूसरा पुत्र नौनिहाल सिंह शासक हुआ, जिसकी एक दुर्घटनामें मृत्यु हो जानेसे १८४० ई०में शेरसिंह सिंहासनासीन हुआ। उसने तीन वर्षोंतक राज्य किया। १८४३ ई०में उसकी हत्या कर दी गयी।

शेरसिंह—छत्तरसिंह नामक एक सिख सरदारका पुत्र। प्रथम सिख-युद्ध (दे०) में जब अंग्रेजोंने सिखोंको पराजित किया, वह अंग्रेजोंका विश्वासपात्र बन गया। मुलतानके शासक मूलराज द्वारा विद्रोह कर देनेपर १८४८ ई०में वह उसका दमन करनेके लिए भेजा गया, परन्तु मुलतान पहुँचकर वह विद्रोही सिखोंसे मिल गया। इस प्रकारके दलबदलसे कई सिख सरदार उसके पक्षमें हो गये और मूलराजका विद्रोह द्वितीय सिख-युद्ध (दे०) का कारण बना। १६ नवम्बर १८४८ ई०को शेरसिंह और अंग्रेजोंके मध्य रामनगर नामक स्थानपर अनिर्णीत युद्ध हुआ। जनवरी १८४९ ई०के चिलियानवालाके प्रसिद्ध युद्धमें भी शेरसिंहने भाग लिया, किन्तु वह सिख सेनाका सफल नेतृत्व न कर सका। परिणाम यह हुआ कि वह अनिर्णीत युद्ध अंग्रेजोंकी विजयमें परिणत हो गया। २१ फरवरी १८४९ ई०को गुजरातके युद्धमें सिखोंकी अंतिम बार पराजय होनेके उपरान्त शेरसिंहने अंग्रेजोंके सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया और उसके शेष दिन एक प्रकारसे अज्ञातवासमें कटे।

शैलेन्द्र वंश—इस वंशका आरम्भ दक्षिण-पूर्व एशियामें आठवीं शताब्दीमें हुआ और इस वंशके शासक तेरहवीं शताब्दी तक वहाँ राज्य करते रहे। इस वंशके शासक जो भारतीयोंकी सन्तान थे न केवल समस्त मलय प्रायद्वीपपर, वरन् सुमात्रा, जावा, बाली और बोर्नियो सहित समस्त मलय द्वीपसमूहपर राज्य करते थे। अरब यात्रियोंने उनकी शक्ति, सम्पत्ति और ऐश्वर्यका वर्णन करते हुए लिखा है कि उन्हें महाराज पुकारा जाता था। शैलेन्द्र शासक बौद्ध धर्मके महायान सम्प्रदायके अनुयायी थे। उनके द्वारा निर्मित स्तूपों और विहारोंमें जावामें स्थित बोरोबुदुरका महाचैत्य विशेष उल्लेखनीय है।

शैशुनाग वंश—पुराणोंके अनुसार शैशुनाग वंशका प्रवर्तक शिशुनाग था, जो सातवीं शताब्दी ई०पू० मगधमें राज्य करता था। आधुनिक विद्वानोंके अनुसार इस वंशमें दस राजा हुए जो क्रमशः शिशुनाग, काकवर्णी, क्षेमधर्मा, क्षेमजित्, बिम्बिसार अथवा श्रेणिक, अजातशत्रु अथवा कूणिक, दर्शक, उदयी अथवा उदयन, नन्दिवर्धन और महानन्दी नामसे विख्यात हुए। इनमेंसे प्रथम चार राजाओंका शासन काल प्रायः ६५० ई०पू०से ५२२ ई०तक था, किन्तु उनके शासन-कालकी किसी विशेष उल्लेखनीय घटनाका विवरण उपलब्ध नहीं है। पुराणोंकी सूचीके अनुसार पाँचवें शासक बिम्बिसार (५२२ ई० पू० से ४९४ ई० पू०) ने शैशुनाग वंशकी शक्ति एवं सत्तामें विशेष वृद्धि की। बिम्बिसार और उसके पुत्र अजातशत्रुके शासनकालमें मगध उत्तरी भारतका सबसे महत्त्वपूर्ण और शक्तिशाली राज्य बन गया। आठवें शासक उदयी अथवा उदयन (४४३ ई०पू०से ४१० ई०पू०) ने कुसुमपुर नामक नगरकी स्थापना की, जो आगे चलकर सुप्रसिद्ध पाटलिपुत्र नामसे विख्यात हुआ। दसवें शासक महानन्दीका लगभग ३६२ ई०पू० में महापद्मने वध कर

दिया तथा मगधमे नद वशकी नीव डाली।

किन्तु पुराणोका उपर्युक्त विवरण बौद्ध तथा जैन धर्मग्रथोके विवरणोके सर्वथा विपरीत है। उनके अनुसार शैशुनाग वशकी स्थापना हर्यंक वशके उपरान्त हुई और इसमे केवल शिशुनाग, कालाशोक तथा कालाशोकके दस पुत्र ही शासक हुए। कुछ बौद्ध ग्रथोमे शिशुनाग, कालाशोक, काकवर्ण, क्षेमधर्मा और क्षेमजित् नामक चार शासकोका उल्लेख विम्बिसारके उपरान्त आया है। इस मतके अनुसार शिशुनागके वशमे छः शासक हुए, यथा शिशुनाग (४१३–३९५ ई०पू०), काकवर्ण अथवा कालाशोक और कालाशोकके पुत्र (३९५–३४५ ई०पू०)। कालाशोकके राज्यकालमे ही महापद्मनन्दने उसकी हत्या करके शिशुनाग वशकी समाप्ति कर दी और नन्दवशकी स्थापना की। **(शिशुनाग वशकी स्थापना आधुनिक शोधोके अनुसार हर्यक वशके उपरान्त ही हुई और इस सबधमे जैन तथा बौद्ध ग्रथ अधिक प्रामाणिक जान पड़ते हैं।) –सं०**

शोर, सर जान–१७९३ से १७९८ ई० तक भारतका गवर्नर-जनरल। उसने सर्वप्रथम बगालमे कम्पनीकी सेवामे निम्न पदाधिकारीके रूपमे जीवन प्रारम्भ किया और जब लार्ड कार्नवालिस गवर्नर-जनरल था, तभी वह पदोन्नति करके कलकत्ता कौसिलका सदस्य बन गया। उसने शासन-सुधारमे कार्नवालिसकी विशेष सहायता की और गवर्नर-जनरल बननेपर उसने कार्नवालिसके प्रशासकीय सुधारोको कार्यान्वित किया। उसने साधारणतया देशी राज्योके आतरिक मामलोमे हस्तक्षेप न करनेकी नीति अपनायी। निजाम और मराठोके युद्धमे भी वह तटस्थ रहा, जिसके फलस्वरूप १७९५ ई०के कर्दलाके युद्ध (दे०) मे निजामकी पराजय हुई। अवधके मामलोमे उसने हस्तक्षेप करके, वहाँके नवाबको नयी सधि करनेपर विवश किया, जिसके फलस्वरूप कम्पनीका इलाहाबादपर अधिकार हो गया।

शौकत अली, मौलाना–भारतीय मुसलमानोके नेता और प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ। जन्म वाराणसीके निकट रामपुरमे १८७३ ई०मे। उन्होने अपना जीवन-क्रम भारतीय अग्रेज सरकारके आवकारी विभागसे प्रारम्भ किया। १५ वर्षोकी नौकरीके उपरान्त वे राजनीतिक क्षेत्रमे उतर आये और प्रथम महायुद्धमे सरकारने उन्हे नजरबन्द रखा। छूटनेपर अपने भाई मुहम्मद अलीके साथ उन्होने १९१९–२० ई०मे खिलाफत आन्दोलनका नेतृत्व किया। वे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके भी सदस्य हुए और असहयोग आन्दोलनमे भाग लिया। उपरान्त उन्होने काग्रेससे त्यागपत्र दे दिया और मुस्लिम लीगके सदस्य बनकर उसीके प्रतिनिधिके रूपमे गोलमेज सम्मेलन (दे०) मे भाग लिया। १९३४ ई०मे भारतीय केन्द्रीय असेम्बलीके सदस्य चुने गये, किन्तु इसके बाद ही मुहम्मद अली जिन्ना (दे०) मुस्लिम राजनीतिक क्षितिज पर छा गये।

शौकतजग–बगालके नवाब अलीवर्दी खाँका दौहित्र और अलीवर्दी खाँ (दे०) के उत्तराधिकारी सिराजुद्दौला (दे०) का चचेरा भाई। अप्रैल १७५६ ई०मे नवाब अलीवर्दी खाँकी मृत्युके समय वह पूर्णिया (पूर्निया) का सूबेदार (राज्यपाल) था। उसने बगालकी सूबेदारीपर सिराजुद्दौलाके हकको चुनौती देते हुए कुछ असतुष्ट सरदारोके समर्थनसे तत्कालीन मुगल सम्राट्से सूबेदारीकी सनद अपने नाम प्राप्त कर ली। किन्तु स्वत्व जमानेके पूर्व ही सिराजुद्दौलाने आक्रमण कर उसे परास्त किया और १७५६ ई०मे मार डाला।

श्रवण बेलगोला–मैसूरमे स्थित एक धार्मिक स्थल। जैन अनुश्रुतियोके अनुसार सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य (दे०) सिंहासन त्याग कर यहाँ चला आया और यही उसने सल्लेखना व्रत करके (जैन समाधिमरणकी विधिसे) प्राण त्याग दिये।

श्रावस्ती–प्राचीन कोशल राज्य (दे०) की राजधानी। गौतम बुद्ध यहाँ कई बार पधारे थे और नवी शताब्दी तक यह स्थान एक प्रसिद्ध नगर रहा। यह राप्ती नदीके तटपर स्थित था और आजकल इसकी पहचान उत्तर प्रदेशके आधुनिक सहेट-महेट ग्रामोसे की जाती है।

श्रीनगर–गढवालके भूतपूर्व राजाकी राजधानी। यहाँके राजाने १६५८ ई०मे दाराके सबसे बड़े पुत्र शाहजादा सुलेमान (दे०)को शरण दी थी।

श्रीनगर–कश्मीर राज्यकी राजधानी।

श्रीरगम्–त्रिचनापल्लीके निकट स्थित। प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य रामानुज (दे०)बीचमे कुछ समयको छोडकर मृत्युपर्यंत यही रहे।

श्रीराम वाजपेयी–गोपालकृष्ण गोखले (दे०) द्वारा स्थापित सर्वेन्ट्स आफ इडिया सोसाइटीके सदस्य। उन्होने १९१४ ई०मे 'सेवा समिति ब्वाय स्काउट एसोसियेशन' की स्थापना लार्ड बेडेन पावेल द्वारा इग्लैण्डमे सगठित ब्वाय स्काउट एसोसियेशनके आधारपर की। सेवा समितिका उद्देश्य ब्वाय स्काउट एसोसियेशनका पूरा भारतीयकरण करना था और उन्हे इस उद्देश्यको पूरा करनेमे सफलता मिली थी।

श्रीलंका–भूगर्भशास्त्रीय दृष्टिसे भारतीय प्रायद्वीपका दक्षिणी भाग, जो बादमें उससे अलग हो गया। भारतसे इसके घनिष्ठ सांस्कृतिक सम्बन्ध रहे हैं, किन्तु राजनीतिक अस्तित्व अलग रहा है। भारतीय साहित्यके विभिन्न कालोंमें इसका वर्णन विभिन्न नामोंसे हुआ है। पालि ग्रंथों और अशोकके अभिलेखोंमें इसका उल्लेख 'ताम्रपर्णी'के नामसे हुआ है। प्राचीन लेखकोंने इसे 'तपोवन' कहकर पुकारा है। रामायणमें इसे लंका कहा गया है, जिसका शासक राक्षसराज रावण था और आधुनिक यूरोप-वासियोंने इसे 'सीलोन'की संज्ञा दी, जो श्रीलंका शब्दका अपभ्रंश है। संस्कृतमें इसका एक नाम सिंहल है और बंगालमें प्रचलित अनुश्रुतिके अनुसार यह नाम विजयसिंह नामक एक निर्वासित बंगाली राजकुमारके आधारपर रखा गया है, जिसने इस द्वीपपर विजय प्राप्त की थी। इतिहासमें उस घटनाका कोई प्रमाण नहीं मिलता है।

श्रीलंका और भारतके बीच सदैव घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध रहे हैं। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दीमें इन दोनों देशोंमें उस समय सांस्कृतिक सम्बन्ध भी प्रगाढ़ हो गये जब मगध सम्राट् अशोकके पुत्र या भाई महेन्द्रने श्रीलंकाके नरेश देवानाम् प्रिय तिस्स (तिष्य)को सपरिवार बौद्ध धर्मकी दीक्षा दी। इसके बादसे श्रीलंका बौद्ध धर्मका प्रमुख केन्द्र बन गया। यहींपर ८० ई० पू०में नरेश वत्तगमणिके शासनकालमें बौद्धोंके धर्म-ग्रंथ 'त्रिपिटक'को पहली बार लिपिबद्ध किया गया। अनुरुद्धपुर (अनुराधापुर)से बौद्ध धर्मका प्रचार और प्रसार न केवल सम्पूर्ण श्रीलंकामें वरन् दक्षिण-पूर्व एशियाके विशाल भू-भागमें हुआ। यहाँ तक कि भारतके बौद्ध विद्वान् भी अपना अध्ययन पूरा करनेके लिए श्रीलंका जाया करते थे। राजनीतिक परिवर्तनोंके साथ स्थिति बदलती रही, ईसवी सन्की चौथी शताब्दीमें श्रीलंकाके नरेश मेघवर्मके भारतके समकालीन यशस्वी सम्राट् समुद्रगुप्त (गुप्तकाल)के साथ सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध थे। उसने बोध गयामें श्रीलंकाके तीर्थयात्रियोंके निवासार्थ एक विहार बनानेके लिए समुद्रगुप्तसे अनुमति प्राप्त की थी। छठी शताब्दीके आरम्भमें पल्लव नरेश सिंह विष्णु और उसके पौत्र नरसिंह वर्माने श्रीलंकापर शासन किया। इसके बाद फिर दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दियोंमें चोलवंशके नरेश राजराज और राजेन्द्र प्रथमने श्रीलंकापर शासन किया, लेकिन श्रीलंका शीघ्र ही पुनः स्वतंत्र हो गया। कुछ समय बाद श्रीविजय (दे०)के शैलेन्द्र राजाओंने इसपर हमला कर दिया, लेकिन श्रीलंकाने हमलेको विफल कर दिया।

श्रीलंकापर मुस्लिम शासकोंका आधिपत्य कभी नहीं रहा। ऐसा प्रतीत होता है पन्द्रहवीं शताब्दीके आरम्भमें उसपर विजयनगर नरेश देवराय द्वितीय (१४२५-४७ ई०) का शासन स्थापित हो गया था, किन्तु उसने शीघ्र ही फिर स्वतंत्रता प्राप्त कर ली। किन्तु सोलहवीं शताब्दीके मध्यमें श्रीलंकाके अधिकांश समुद्र तटवर्ती भू-भागपर पुर्तगालियोंका आधिपत्य हो गया, जो १५१० ई०में गोआमें अपने पैर जमा चुके थे। १६५८ ई०में पुर्तगालियोंको खदेड़ कर डच लोग श्रीलंकामें आ डटे। नेपोलियनसे युद्धके दौरान अंग्रेजोंने डचोंको वहाँसे भगा दिया। वियना-संधि (१८१५)के अन्तर्गत श्रीलंका ब्रिटिश साम्राज्यका अंग हो गया। उसका शासन भारतके अधीन रखा गया। १९४७ ई०में भारतके स्वाधीन हो जानेपर भी श्रीलंका ब्रिटिश साम्राज्यका अंग बना रहा। बादमें उसे भी स्वाधीनता प्रदान कर दी गयी।

श्रीविजय–मलय द्वीपपुंजमें भारतीयोंने जो राज्य स्थापित किया था, उसका भी नाम और उसके एक नगरका भी नाम। इसकी पहचान अब सुमात्राके पलेमबाग नगरसे की जाती है। (देखिये, 'प्रवासी भारतीय')।

श्रेणिक–मगधके सम्राट् बिम्बिसार (दे०)का दूसरा नाम।

श्वेत विद्रोह–भारतमें ईस्ट इंडिया कम्पनीके गोरे सैनिकोंके विद्रोहको इस नामसे पुकारा जाता है। राबर्ट क्लाइव जब दूसरी बार बंगालका गवर्नर बनकर आया तो उसने कम्पनीके डाइरेक्टरोंके आदेशसे भारतमें कम्पनीकी सेवामें नियुक्त अंग्रेज सैनिकोंका भत्ता घटा दिया। इसपर उन्होंने विद्रोह कर दिया। क्लाइवने बड़ी तत्परता और दृढ़तासे इस विद्रोहका दमन कर दिया।

श्वेत हूण–हूणोंकी एक शाखा, जो ५ वीं शताब्दीके मध्यमें वक्षु (आक्सस)नदीकी घाटीमें आ बसी थी। इन लोगोंने ४५५ई०में भारतके गुप्त साम्राज्यपर आक्रमण किया, लेकिन तत्कालीन सम्राट् स्कन्दगुप्त (४५५–६७ ई०) ने उन्हें खदेड़ दिया। ४८४ ई०में वे फारसको रौंदनेमें सफल हो गये और अगले वर्षोंमें उन्होंने काबुल और कंधारपर अधिकार कर लिया। इतना ही नहीं, वे तोरमाणके नेतृत्वमें आर्यावर्त तक घुस आये। उसके पुत्र मिहिरगुल (दे०)ने छठी शताब्दी ई०के आरम्भमें गुप्त साम्राज्यको उखाड़ फेंका और पंजाब स्थित शाकल (सियालकोट)को राजधानी बनाकर उत्तरी भारतके एक भागपर शासन करने लगा। हूणोंका शासन अत्यंत नृशंस और बर्बर था।

५२८ ई०मे मालवाके राजा यशोधर्मा (दे०) तथा गुप्त वशके सम्राट् बालादित्यके नेतृत्वमे कई राजाओने मिलकर मिहिरगुलको पराजित कर भारतमे हूण-शासनका अंत कर दिया। भारतीय राज्य हाथसे निकल जानेपर श्वेत हूणोकी शक्ति बहुत क्षीण हो गयी। अन्तमे फारसके शाह खुसरो नौशेरवाँने ५६३ ई० और ५६७ ई०के बीच हूणोकी रही-सही शक्तिको भी नष्ट कर दिया।

भारतमे हूणोकी शक्ति समाप्त हो जानेके बाद वे हिन्दुओमे घुल मिल गये। विश्वास किया जाता है कि आठवी शताब्दीमे तथा उसके बाद जिन राजपूत वशोका उत्कर्ष हुआ, उनके रक्तमे हूणोका रक्त मिश्रित था। (मैकगवर्न० पृ० १०९ नोट)

श्वेताम्बर जैन—जैनो (दे०)का एक सम्प्रदाय। वर्धमान महावीर (दे०)की शिक्षाओके बावजूद इस सम्प्रदायके साधु श्वेत वस्त्र धारण करते है।

ष

षड्दर्शन—हिन्दू दर्शनके छ दार्शनिक सिद्धान्त, जो न्याय, वैशेषिक, साख्य, योग, पूर्वमीमासा और उत्तर मीमासा अथवा वेदान्त कहलाते है। इन्हीको सम्मिलित रूपसे षड्दर्शन कहते है। इन दार्शनिक सिद्धान्तोके प्रतिपादक क्रमश गौतम, कणाद, कपिल, पतजलि, जैमिनि और बादरायण थे। (देखिये, स० राधाकृष्णन द्वारा अग्रेजीमे रचित 'भारतीय दर्शनका इतिहास')।

स

सगम—हरिहर और बुक्क (राय) का पिता। इन दोनो भाइयोने ही १३३६ई०मे विजयनगर राज्यकी स्थापना की थी। (दे० विजयनगर)

सग्राम सिंह (राणा साँगा)—रायमल्लका पुत्र और उत्तराधिकारी। इतिहासमे वह मेवाडका राजा साँगाके नामसे प्रसिद्ध था, जिसने १५०८ से १५२९ ई० तक शासन किया। सग्राम सिंह महान् योद्धा था और तत्कालीन भारतके समस्त राज्योमे ऐसा कोई भी उल्लेखनीय शासक न था जो उससे लोहा ले सके। बाबरके भारत आक्रमण के समय राणा साँगा को आशा थी कि वह भी तैमूरकी भाँति दिल्लीके लूट-पाट करनेके उपरान्त स्वदेश लौट जायेगा। किन्तु जब उसने देखा कि १५२६ ई० मे इब्राहीम लोदीको पानीपतके युद्धमे परास्त कर बाबर दिल्लीमे शासन करने लगा है तो वह अपने १२० सहायक सामन्तो, ८० हजार अश्वरोहियो और ५०० हाथियोकी विशाल सेना लेकर युद्धके लिए चल पडा। १६ मार्च १५२७ ई०को खनुआ नामक स्थानपर बाबरसे उसका घमासान युद्ध हुआ। यद्यपि इस युद्धमे राजपूतोने अत्यधिक वीरता दिखायी, तथापि वे बाबर द्वारा पराजित हुए। इस युद्ध मे राणा साँगा जीवित तो बच गये, किन्तु पराजयके आघातसे दो वर्ष उपरात ही उनकी मृत्यु हो गयी और भारतवर्षमे हिन्दू राज्य स्थापित करनेका उसका स्वप्न भग हो गया।

सघ—इस शब्दका प्रयोग बहुधा बौद्ध भिक्षु सघ के लिए होता है। भिक्षु सघकी गणना बौद्ध-धर्मके त्रिरत्नो (यथा बुद्ध, धर्म तथा सघ) मे होती है। गौतम बुद्धने भिक्षु सघका सगठन प्रजातान्त्रिक आदर्शो पर किया था।

सघमित्रा—राजकुमार महेन्द्र (दे०) की भगिनी। उत्तर भारतकी बुद्ध अनुश्रुतियोके आधारपर महेन्द्रको मौर्य सम्राट् अशोकका भाई माना गया है, यद्यपि सिंहली ग्रथो और अनुश्रुतियोमे सघमित्रा और महेन्द्र भाई-बहिन तथा अशोककी शाक्य रानी विदिशा देवीसे उत्पन्न कहे गये है। सिंहली ग्रथोके अनुसार महेन्द्र बौद्ध भिक्षुओके एक दलका नेतृत्व करता हुआ श्रीलका गया और वहाँके सभी निवासियोको बौद्ध धर्ममे दीक्षित किया। सघमित्रा भी महेन्द्रके साथ बौद्धधर्मके प्रचार कार्यमे सहयोग देनेके लिए श्रीलका गयी थी। उसने भी वहाँके राजा तिष्यसे समस्त परिवारके साथ ही अन्य स्त्रियोको बौद्ध धर्मकी दीक्षा दी। आज भी लका मे उसका नाम आदरके साथ लिया जाता है।

सप्रति—कुणालका पुत्र और सम्राट् अशोकका पौत्र। यद्यपि अभिलेखोमे उसका कही उल्लेख नही है परन्तु प्राचीन अनुश्रुतियोके अनुसार अपने पितामह अशोकके उपरान्त कुणालके अधे होनेके कारण वही सिंहासनासीन हुआ। वह जैनमतानुयायी था। कदाचित उसने सम्राट् अशोकके साम्राज्यके पश्चिमी भू-भागोपर ही राज्य किया। इस प्रदेशमे उसे अनेक जैन मन्दिरोका निर्माण करानेका श्रेय दिया जाता है।

सवत्, प्राचीन भारतीय—अनेक है, जिनमेसे कोई भी किसी भी कालमे सम्पूर्ण भारतमे प्रचलित नही रहा। बहुत-

मे राजाओने अपने राज्याभिषेकके उपलक्ष्यमे अपने नामसे नये संवत् प्रचलित किये। फलस्वरूप यह समझना कठिन है कि कौन संवत् ठीक-ठीक किस समय चला और किसने चलाया। फलत किसी भी भारतीय संवत्‌की वास्तविक गणना तब हो पाती है जब उसमे उल्लिखित किसी घटनाके सम्बन्धमे ईसवी सन्‌का भी कही उल्लेख मिल जाता है। प्राचीन मुख्य संवत् ये थे

(१) कलियुग अथवा युधिष्ठिर संवत्, जो ईसापूर्व ३१०२ से प्रारम्भ माना जाता है। यह संवत् प्रागैतिहासिक है और इसका प्रयोग केवल प्राचीन साहित्यमे मिलता है। (२) विक्रम संवत्, जिसे सानन्द विक्रम संवत् अथवा संवत् विक्रम अथवा श्रीनृप विक्रम संवत् अथवा मालव संवत् भी कहा गया है और इसका प्रारंभ ५० ईसापूर्वसे माना जाता है। इसका कौन प्रवर्तक था और किस घटनाकी स्मृतिमे चलाया गया, इस सम्बन्धमे निश्चित रूपसे कुछ नही कहा जा सकता। (३) आनन्द विक्रम संवत् ३३ ई०मे किसी अज्ञात शासक द्वारा चलाया गया। (४) शक संवत् अथवा शकाब्द संभवत. कुषाण वंशके राजा कनिष्क प्रथम द्वारा ७८ ई० मे चलाया गया। (५) लिच्छवि संवत् १११ ई० मे आरंभ किया गया। इसके प्रवर्तकका नाम भी अज्ञात है। (६) चेदि अथवा त्रैकूटक कलचुरि संवत् २४८ ई० मे शुरु किया गया। (७) गुप्त संवत्‌को गुप्त वंशके संस्थापक चन्द्रगुप्त प्रथमने अपने राज्याभिषेककी स्मृतिमे ३१९-२० ई० मे प्रचारित किया। (८) हूण संवत् तोरमाणने सन् ४४८ ई० मे प्रारम्भ किया और अपने सिक्कोमे प्रयुक्त किया। (९) हर्ष संवत्‌को महाराज हर्षवर्धनने अपने राज्याभिषेककी स्मृतिमे ६०६ ई० मे प्रचारित किया। (१०) कालम् अथवा मलाबार संवत्‌का आरम्भ ८२४ ई० से माना जाता है, जिसका प्रयोग चेर अथवा केरल के राजा करते थे। (११) नेपाली संवत् का आरम्भ ८७९ ई० से माना जाता है। (१२) विक्रमांक चालुक्य संवत्‌को चालुक्य नरेश विक्रमांक (दे०) ने अपने राज्याभिषेक की स्मृतिमे सन् १०७६ ई० मे चलाया था। (१३) लक्ष्मण संवत्‌को बंगालके राजा लक्ष्मणसेनने ११९० ई० मे प्रचलित किया था। (कनिंघम रचित बुक आफ इण्डियन एराज; ज० रा० ए० सो० १९१३, पृष्ठ ६२७, कीलहार्नका लेख, इ० ए०, खंड २०, (१८९१) तथा बनर्जी० पृष्ठ ४६५-७२)।

संविधान सभा—दे०, 'भारतीय संविधान सभा'।

संसदीय घोषणाएं—भारतके संवैधानिक विकासके विभिन्न चरणोकी सूचक, जिनकी अन्तिम परिणति स्वाधीनताके रूप मे हुई। प्रथम संसदीय घोषणा २० अगस्त १९१७ ई० को तत्कालीन भारत-मंत्री एडविन माण्टेगू द्वारा हुई, जिसमे कहा गया था कि ब्रिटिश सरकारकी नीति, जिससे भारत सरकार पूर्णतः सहमत है, यह है कि ब्रिटिश साम्राज्यके अखंड भागके रूपमे भारतमे उत्तरदायी शासनकी क्रमिक स्थापनाके उद्देश्यसे प्रशासनकी प्रत्येक शाखामे भारतीयोको अधिकाधिक स्थान दिया जाय और स्वशासी संस्थाओका क्रमिक विकास किया जाय। इस घोषणाके बाद १९१७-१८ ई० मे माण्टेगूने भारतका दौरा किया और १९१९ ई० मे ब्रिटिश सरकारने नया भारतीय शासन विधान पास कर दिया। इस संविधानके अन्तर्गत प्रान्तोमे द्वैध शासन (आंशिक उत्तरदायी सरकार तथा निर्वाचित विधानसभाएँ) और केन्द्रमे आंशिक निर्वाचित केन्द्रीय विधान सभाकी स्थापना की गयी। इस प्रकार भारतमे संसदीय शासन-प्रणाली की शुरुआत हुई।

दूसरी महत्त्वपूर्ण घोषणा अक्तूबर १९२९ ई० मे हुई, जिसमे कहा गया कि भारत की संवैधानिक प्रगतिका स्वाभाविक लक्ष्य देशमे औपनिवेशिक स्वराज्यकी स्थापना है। इस घोषणाके परिणामस्वरूप भारतीय शासन विधान, १९३५ ई० स्वीकृत किया गया, जिसमे केन्द्रमे संघीय उत्तरदायी शासन तथा प्रांतो मे पूर्ण उत्तरदायी शासनकी स्थापनाकी व्यवस्था की गयी।

तृतीय एवं अंतिम घोषणा ३ जून १९४७ ई० को तत्कालीन ब्रिटिश प्रधान-मंत्री क्लीमेंट एटलीने हाउस आफ कामन्समे की, जिसमे कहा गया था कि ब्रिटिश सरकारने भारतीय जनताको यथासम्भव शीघ्रातिशीघ्र सत्ता सौंप देने का निश्चय किया है। इस घोषणाके फलस्वरूप भारतीय स्वाधीनता अधिनियम (१९४७ ई०) बना जो १५ अगस्त १९४७ ई० से लागू हुआ और भारतीय स्वाधीनताका कानूनी आधार बना।

संस्कृत—हिन्दुओ की प्राचीन भाषा। इसका अपना विशाल साहित्य-भंडार है, जिसमे ज्ञानकी समस्त शाखाओपर रचना हुई है। इसका व्याकरण वैज्ञानिक आधारपर निर्मित है। संस्कृत प्राचीन भारतकी राजभाषा भी थी। यद्यपि अशोकने अपने अभिलेखोमे इसका प्रयोग नही किया, किन्तु बादके युगोमे संस्कृतकी प्रधानता पुनः स्थापित हो गयी और भारतके कई विदेशी शासकोने भी अपनी उपलब्धियोको उत्कीर्ण करानेमे इसी भाषाका प्रयोग किया। प्राचीन कालमे देशकी एकता बनाये

रखनेकी इस भाषामे महान् शक्ति थी । आज दिन भी सम्पूर्ण देशके हिन्दुओमे पूजा, उपासना और कर्म-काडोके मत्रोमे इसी देव-भाषाका प्रयोग होता है। साधारणतया इसे देव-नागरी लिपिमे लिखा जाता है, किन्तु इसे भारतकी अन्य क्षेत्रीय लिपियोमे भी लिखा और पढा जाता हे। भारतसे बाहर मलयद्वीप समूह, कम्बोडिया तथा अनाम आदि देशोमे उपनिवेश स्थापित करनेवाले भारतीयोने इसे समुद्रके पार भी प्रतिष्ठित किया, जहाँ स्थानीय शासकोकी यशोगाथाओको अकित करनेके हेतु अभिलेखोमे इसका प्रयोग हुआ है ।

संस्कृत कालेज–ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा सर्वप्रथम १७९४ ई० मे वाराणसीमे सस्कृत कालेजकी स्थापना हुई। इसके बाद १८२० ई० मे दूसरा सस्कृत कालेज कलकत्तामे स्थापित हुआ ।

सआदत अली–नवाब आसफउद्दौला (१७७५–१७९७ ई०)-का भाई । आसफउद्दौलाकी मृत्युके १ वर्ष बाद अग्रेजोने उसे अवधमे सिहासनासीन किया और वह १७९८ से १८१४ ई० तक अवधका नवाब रहा। तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड वेलेजलीने उसे नवाब बनानेके बाद ही जमान शाह (दे०) के आक्रमणका झूठा भय दिखाकर अपने राज्यमे अग्रेज पलटनोकी सख्या बढानेके लिए मजबूर किया। उसने उसका आधा राज्य यानी गगा और यमुनाका दोआब तथा रुहेलखड हडप लिया। अपने आधे राज्यसे ही उसे सतोष करना पडा । उसकी मृत्यु १८१४ ई०मे हुई । उसका पुत्र तथा उत्तराधिकारी गाजीउद्दीन हैदर था जिसने १८१४ से १८२७ ई० तक राज्य किया। गाजीउद्दीन हैदरको तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड हेस्टिग्सके अनुमोदनसे १८१९ ई० मे बादशाहका खिताब दिया गया, परन्तु इससे उसकी सत्ता अथवा शक्तिमे किसी प्रकारकी वृद्धि नही हुई ।

सआदत खाँ–प्रारभमे अवधमे मुगल सम्राट्का प्रान्तीय शासक अथवा सूबेदार था, किन्तु केन्द्रकी दुर्बलताका लाभ उठाकर उसने १७२४ ई०मे अपनेको स्वतत्र घोषित कर दिया। उसने अपनी मृत्यु (१७३९ ई०) तक अवधपर स्वतत्र रूपसे शासन किया ।

सचिव–प्राचीनकालमे इसका प्रयोग मत्री अथवा परामर्श-दाताके लिए होता था। शिवाजी प्रथम (दे०) की शासन-व्यवस्थामे जो अष्ट प्रधान अथवा आठ मत्री थे उनमे सचिवका स्थान चौथा था । उसका कार्य राजाके समस्त पत्र-व्यवहार और राज्यके प्रत्येक महाल और परगनेसे होनेवाली आयके लेखे-जोखेकी देखभाल करना था ।

सतलजके इस पारके राज्य–या सिक्ख राज्य सतलज और यमुना नदियोके बीचमे स्थित थे, जिनमे लगातार आपसी युद्ध होते रहते थे । उसकी फूट और कमजोरीका फायदा उठाकर १७८५ ई० के बाद महादजी शिन्देके नेतृत्वमे मराठोने उनपर अपना नियत्रण स्थापित कर लिया। बादमे अग्रेजोने मराठोको यहाँसे खदेड दिया और सतलजके इस पारके सिक्ख राज्योको अनौपचारिक रूपसे अपने सरक्षणमे ले लिया। महाराज रणजीतसिह-की शक्ति उस समय तेजीमे बढ रही थी । वह समस्त पजाबको अपने शासनके अन्तर्गत सगठित करना चाहता था। उसने कुछ सिक्ख सरदारोके अनुरोधपर १८०६ और १८०७ ई०मे सतलज क्षेत्रपर धावा बोल दिया और लुधियानापर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। रणजीतसिंहकी शक्ति और सत्ताके इस विस्तारका कुछ सिक्ख राज्योने विरोध किया तथा अग्रेजोने भी इसे चिन्ताकी दृष्टिसे देखा।

१८०९ ई०मे अग्रेजोने डेविड आक्टरलोनीके नेतृत्व-मे इन राज्योमे अपनी फौजे भेज दी। रणजीतसिंह अग्रेजोके साथ सशस्त्र सघर्षमे उलझना नही चाहता था, अतः उसने १८०९ ई०मे अग्रेजोके साथ अमृतसरमे शान्ति-सधि कर ली और वे सतलजके इसपारसे हट गये। इसके बाद ये राज्य निश्चित रूपसे भारतकी ब्रिटिश सरकारके सरक्षणमे आ गये। ब्रिटिश सरकारने शीघ्र ही लुधियानामे अपनी फौजे तैनात कर दी। इस प्रकार सिक्खोका कुछ क्षेत्र रणजीतसिह और कुछ अग्रेजोकी अधीनता मे आ गया ।

सतारा–बम्बई प्रेसीडेन्सी (वर्तमान महाराष्ट्र) का एक नगर, पहले यह एक राज्य (रियासत) भी था। सतारा शाहूजीके वशजोकी राजधानी रहा, यद्यपि मराठा राज्य-की सत्ता पेशवाओके हाथोमे जानेके फलस्वरूप यह उनके अधीन था। १८१८ ई० मे पेशवा बाजीराव द्वितीयकी पराजयके उपरान्त अग्रेजो ने इसे पुन आश्रित राज्य बना दिया। १८४८ ई०मे गोदप्रथाकी समाप्तिका सिद्धान्त लागू किये जानेके फलस्वरूप इसे अग्रेजोके भारतीय साम्राज्यमे मिला लिया गया ।

सतियपुत्र (सत्य पुत्र)–सम्राट् अशोकके द्वितीय शिलालेखमे उसके साम्राज्यकी दक्षिणी सीमाओपर सतियपुत्रोके राज्यका उल्लेख हुआ है। इसकी निश्चित पहचान नही हो पायी है, किन्तु यह निश्चय ही केरल अथवा चेर (दे०) राज्यके सन्निकट था ।

सती प्रथा–इसके अनुसार विधवा स्त्री अपने मृत पतिके

साथ चितापर जलकर भस्म हो जाती थी। यह प्रथा वैदिक युगमे अज्ञात थी, किन्तु उपरान्त इसका प्रचलन हुआ। महाभारतके अनुसार इसका प्रचलन प्राचीन राजपरिवारोमे था।

सिकन्दरके साथ आये हुए यूनानी लेखकोंने भी इसका उल्लेख किया है। सम्भवतः यह प्रथा राज-परिवारोसे सामान्य वर्गोंमे फैली और मुसलमानोके आक्रमणोंके कारण इसका प्रचलन व्यापक रूपसे हो गया। मुगल सम्राट् अकबरने इसे रोकनेका प्रयास किया किन्तु वह असफल रहा। १८२६ ई०मे भारतके तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड विलयम वेन्टिगने अग्रेजो द्वारा अधिकृत भारतीय क्षेत्रमे इस प्रथापर रोक लगा दी, किन्तु पजाबमे इसका प्रचलन रहा। वहाँ यह तभी समाप्त हो सकी जब १८४८ ई०मे पजाबपर अग्रेजोका अधिकार हो गया।

सत्याग्रह आन्दोलन–इसका सूत्रपात सर्व प्रथम महात्मा-गाधी (दे०) ने १८९४ ई०मे दक्षिण अफ्रीकामे किया। इसका अभिप्राय सामाजिक एव राजनीतिक अन्यायोको दूर करनेके लिए सत्य और अहिंसापर आधारित आत्मिक बलका प्रयोग था। यह एक प्रकारका निष्क्रिय प्रतिरोध था, जो व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूपसे कष्ट-सहन द्वारा विरोधीका हृदय परिवर्तन करनेमे सक्षम हो। दक्षिण अफ्रीकामे इस आन्दोलनको अत्यधिक सफलता मिली। जनरल स्मट्सको प्रवासी भारतीयोके आदोलनका औचित्य स्वीकार करना पडा और भारतके वाइसराय लार्ड-हार्डिग्जने भी उनके प्रति सहानुभूति प्रकट की, अन्ततः इस आन्दोलनसे दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोकी अनेक शिकायते दूर हुई।

१९२० ई० के राष्ट्रीय आन्दोलनमे इसका प्रयोग भारतमे अग्रेजी शासनके विरुद्ध अहिसात्मक असहयोग आन्दोलनके रूपमे हुआ। तत्पश्चात् इसका स्वरूप सविनय अवज्ञा आन्दोलनमे परिवर्तित हो गया। निश्चय ही इस आन्दोलनने भारतीयोको अग्रेजी शासनका अन्त करनेके लिए कृतसकल्प किया। इस प्रकार भारतकी स्वतत्रता प्राप्तिमे इसका ठोस योगदान रहा है।

सदर- मुगलकालीन शासन व्यवस्थाके अन्तर्गत एक पद। इस पदपर नियुक्त कर्मचारी परगनेमे समस्त धार्मिक अनुदानोका प्रबध करता था।

सदर दीवानी अदालत–इसकी स्थापना १७७२ ई० मे वारेन हेस्टिग्सने कलकत्तामे की। इसका कार्य नीचेकी सभी दीवानी अदालतो द्वारा किये गये मुकदमोके निर्णयोकी अपीलपर विचार करना था। इसकी अध्यक्षता बगाल कौंसिलका अध्यक्ष करता था और इसमे कौंसिलके दो अन्य सदस्य भी होते थे। १७७३ ई०मे रेग्यूलेटिंग ऐक्टके अनुसार जब कलकत्तामे उच्चतम न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) की भी स्थापना हो गयी, तब सदर दीवानी अदालत और उच्चतम न्यायालयके बीच अधिकार-क्षेत्र सम्बन्धी विवादोको दूर करनेके लिए गवर्नर-जनरलने उच्चतम न्यायालयके मुख्य न्यायाधीश सर एलिजा इम्पीको ही सदरदीवानी अदालतका अध्यक्ष नियुक्त किया। हेस्टिग्सके इस प्रबन्धकी तीव्र आलोचना हुई, फलतः उसे अपने इस निर्णयको निरस्त करना पडा।

दूसरी सदर दीवानी अदालतकी स्थापना उत्तरी भारतमे ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा अधिकृत भू-भागोमे उत्तरोत्तर वृद्धि होनेसे १८३१ ई०मे इलाहाबादमे हुई। १८६१ ई०मे कलकत्ता, बम्बई और मद्रासमे उच्च-न्यायालयो (हाईकोर्ट) की स्थापना हुई, तब सदर-दीवानी अदालत और उच्चतम न्यायालयको भी कलकत्ताके उच्च न्यायालयमे सम्मिलित कर दिया गया।

सदर निजामत अदालत–इसकी स्थापना १७७२ ई०मे वारेन हेस्टिंग्स द्वारा कलकत्तामे की गयी। इस न्यायालयका कार्य फौजदारीकी ऐसी अपीलोपर पुनर्विचार करना था, जिनपर नीचेकी अदालतें और निम्न अधिकारीगण अपना निर्णय दे चुके हो। इस अदालतमे भारतीय न्यायाधीश ही थे किन्तु उनपर कौसिलके अध्यक्ष और सदस्योका नियत्रण रहता था। १७७५ ई०मे सदर-निजामत अदालतका स्थानान्तरण कलकत्तासे मुर्शिदाबाद करके उसे नायबके अधीन रख दिया गया। १७९० ई०मे इसे पुन कलकत्ता ले जाकर गवर्नर-जनरलकी कौसिलके ही अधीन कर दिया गया। १८३१ ई०मे कलकत्ताकी सदर निजामत अदालतको भी सदर दीवानी अदालतकी भाँति वहाँके उच्चन्यायालयमे सम्मिलित कर दिया गया।

सदरुस्सदर–समस्त मुगल साम्राज्यके धार्मिक अनुदानोका मुख्य अधिकारी। उसका कार्यालय राजधानीमे स्थित था और अन्य स्थानोपर नियुक्त सदर उसके अधीन थे।

सदाशिव–विजयनगरके तृतीय राजवशका अतिम शासक। उसने १५४२ से १५७० ई० तक राज्य किया। वह कृष्णदेवरायका छोटा पुत्र था। उसके अल्पवयस्क होनेके कारण राज्यकी समस्त सत्ता रामराजाके (दे०) हाथोमे रही। रामराजाकी परस्पर भेद नीतिके फलस्वरूप पाचो बहमनी सल्तनतें एक हो गयी और उनके सम्मिलित आक्रमणके फलस्वरूप १५६५ ई०मे तालीकोटका प्रसिद्ध युद्ध हुआ। रामराजा पराजित हुआ और मारा गया।

सदाशिव विजयनगर छोड कर रामराजाके भाई तिरुमलके सरक्षणमे पेनुगोण्डा भाग गया, परन्तु १५७० ई० के लगभग तिरुमलने उसकी हत्या कर दी और स्वय सिंहासनासीन हुआ।

सदाशिव (राव) भाऊ–पेशवा वालाजी बाजीराव (दे०) (१७४०–६१ ई०) का चचेरा भाई। वह शासन-प्रबधसे पटु था और मराठा साम्राज्यका समस्त शासन भार पेशवाने उसीपर छोड दिया था। उसने मराठोकी विशाल सेनाको यूरोपियन सेनाके ढगपर व्यवस्थित किया। उसके पास इब्राहीम खाँ गर्दी नामक मुसलमान सेनानायकके अधीन विशाल तोपखाना भी था। इसी सैन्यबलके आधारपर सदाशिव भाऊने हैदराबादके निजाम सलावतजग (दे०) को उदरगीर (दे०) के युद्धमे हरा कर भारी सफलता प्राप्त की। इस विजयसे उसकी प्रतिष्ठा इतनी बढ गयी कि उसे शीघ्र ही पजाव प्रान्तमे अहमदशाह अब्दाली (दे०) की बढती हुई शक्तिको नष्ट कर मराठोकी सत्ता स्थापित करनेके लिए भेजा गया। किन्तु सदाशिव कूटनीति एव युद्ध-क्षेत्र दोनोमे विफल रहा। उसके दम्भी स्वभावके फलस्वरूप जाट लोग विमुख हो गये तथा राजपूतोने भी सक्रिय सहयोग नही दिया। वह नवाव शुजाउद्दोला (दे०) को भी अपने पक्षमे नही कर सका, हालाकि मुगल बादशाहने उसे अपना प्रतिनिधि बना रखा था। वह रणनीतिमे भी अब्दालीसे मात खा गया। उसने आगे बढकर अब्दालीकी फौजोपर हमला करनेके बजाय स्वय उसके हमलेका इतजार किया। इस प्रकार उसकी विशाल सेनाको पानीपतके मैदानमे, जहाँ उसने अपनी मोर्चेबदी कर रखी थी, अब्दालीकी फौजोने घेर लिया था। १५ जनवरी १७६१ ई०को सदाशिवने असाधारण वीरता दिखायी, किन्तु वह मारा गया। इस युद्धमे पराजयसे मराठा शक्तिको गहरा धक्का लगा और इसी आघातसे पेशवाकी भी मृत्यु हो गयी।

सप्रू, सर तेजबहादुर–बीसवी शताब्दीके पूर्वार्धमे उदार दल (लिबरल पार्टी) के ख्यातिलब्ध नेता। वे प्रयागनिवासी प्रतिष्ठित वकील थे और वाइसरायकी कार्यकारिणी समितिमे भी एक सत्र तक सदस्य रहे।

सफदर अली–कर्नाटकके नवाब दोस्त अलीका पुत्र एव उत्तराधिकारी। दोस्त अलीको मराठोने १७४१ ई०मे मार डाला। सफदर अली भी थोडे ही दिन नवाब रह सका, क्योकि १७४२ ई०मे चचेरे भाई मुर्तजा अलीने उसका वध कर दिया। सफदर अलीके बहनोई चन्दासाहब (दे०) की नवाबीमे द्वितीय कर्नाटक युद्ध (दे०) छिडा।

सफदर जग–अवधके प्रथम नवाब सआदत खाँकी बहिनका पुत्र। यह अपने मामाकी मृत्युके उपरान्त अवधका नवाब बना। तत्पश्चात् मुगल सम्राट्ने उसे वजीर नियुक्त किया किन्तु मराठोका सहायतासे गाजीउद्दीनने उसे अपदस्थ कर दिया। सफदरजग पुनः अवध लौट आया फिर भी गाजीउद्दीनकी शत्रुताने उसका पीछा न छोडा। १७५३ ई०मे गाजीउद्दीनने उसे पुनः परास्त किया और अगले ही वर्ष सफदर जगकी मृत्यु हो गयी।

सबातजग–फारसी भाषाकी एक उपाधि, जिसका अर्थ 'युद्धमे अनुभव-प्राप्त' अथवा 'युद्ध-निपुण' होता है। नवाब मीरजाफरने तत्कालीन मुगल सम्राट्से रावर्ट क्लाइवको १७५७–६० ई०के मध्य उक्त उपाधि प्रदान करायी थी।

समतट–प्रतापी गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त (दे०) के प्रयाग स्तम्भ लेखमे डवाकके साथ सीमावर्ती राज्यके रूपमे उल्लिखित। वहाँके तत्कालीन शासकको समुद्रगुप्तने कर-दान, आज्ञा-पालन और राजधानीमे आकर प्रणाम करनेके लिए वाध्य किया। साधारणतया समतट प्रदेशका निर्धारण पूर्वी बगाल अथवा बाँगला देशके समुद्रतटीय भू-भागोसे किया गया है। इसकी राजधानी कदाचित् कोमिल्लाके निकट बडकाभता नामक स्थानपर थी, जो अब बाँगला देशमे है।

समुद्रगुप्त–सम्राट चन्द्रगुप्त प्रथमका पुत्र, उत्तराधिकारी तथा गुप्त वशका द्वितीय सम्राट्। उसके राज्यकालका निश्चयपूर्वक निर्धारण करना कठिन है। सभवतः उसने ३३० से ३८० ई० तक राज्य किया। समुद्रगुप्त महान योद्धा और विजेता था। अशोक द्वारा स्थापित प्रयागके शिला-स्तम्भपर उसकी विजयगाथा उत्कीर्ण है। सर्वप्रथम उसने उत्तरी भारतमे आर्यावर्तके कई राजाओका उन्मूलन किया। उसने समतट (पूर्वी बगाल), डुवाक (नौगाव, आसाम), कामरूप, नेपाल, कर्तृपुर (गढवाल और जालन्धर), पूर्वी और मध्य पजाव, मालवा तथा पश्चिमी भारतके गणराज्यो तथा कुषाणो और शकोको अपनी प्रभुसत्ता स्वीकार करनेपर विवश किया। इसके उपरान्त एक विशाल सैन्यबल लेकर उसने दिग्विजयके लिए दक्षिणकी ओर प्रस्थान किया।

दक्षिणापथके जिन बारह राजाओको उसने परास्त किया, उनके नाम क्रमशः निम्न प्रकार थे—कोशल अथवा दक्षिण कोशलका महेन्द्र महाकान्तार अथवा

विन्ध्याका व्याघ्रराज, कोशल (पहचान नही हो सकी) का मन्टराज, पिष्टपुर (पीठापुरम्) का महेन्द्रगिरि, कोट्टूर (कोट्टूर, मद्रास) का स्वामिदत्त एरण्डपल्ल (सभवत मद्रास प्रातमे) का दमन, काचीका विष्णुगोप, अवमुक्तका नीलराज, वेगी (पेदु वेगी) का हस्तिवर्मा, पालक्क (नेल्लोर) का उग्रसेन, देवराष्ट्र (विजगापट्टम जिला) का कुबेर और कुस्थलपुर (सभवत उत्तरी अर्काट) का धनजय। समुद्रगुप्तने इन राजाओको परास्त करके उनकी श्री अथवा कोष-धन लेकर उन्हे पुन उनके राज्यपदपर आसीन किया।

इन विजयोके फलस्वरूप उसका साम्राज्य हिमालय-के पादभागमे लेकर दक्षिणमे नर्मदा नदीतक और पूर्वमे ब्रह्मपुत्रसे लेकर पश्चिममे यमुना और चम्बल नदियो तक विस्तृत हो गया। इतने विशाल साम्राज्यकी स्थापना उसकी महान् उपलब्धि थी। इसके उपलक्ष्यमे उसने अश्वमेध यज्ञ किया था। शीघ्र ही उसकी कीर्ति विदेशो तक फैल गयी। श्रीलकाके तत्कालीन शासक मेघवर्माने उसकी सेवामे दूतोके द्वारा उपहार भेजे तथा श्री लकासे भारत आनेवाले बौद्ध भिक्षुओके सुविधार्थ बोधगयामे एक विहार बनवानेकी अनुमति मॉगी। समुद्रगुप्तने श्रीलकाधिपतिका अनुरोध सहर्ष स्वीकार किया।

समुद्रगुप्त केवल महान् योद्धा और विजेता ही नही था बल्कि बहुमुखी प्रतिभाशाली व्यक्ति था। वह पराजित राजाओके प्रति दयालु, विद्वानोका आश्रयदाता, सभी धर्मोका सरक्षक, विद्वान, विद्यानुरागी, शास्त्रमर्मज्ञ, सगीतज्ञ एव महान कवि था। उसको भारतीय नेपोलियन-की उपाधि दी गयी है, किन्तु उसका व्यक्तित्व नेपो-लियनसे कही उच्च एव महत्त्वपूर्ण था, क्योकि पराक्रम-के साथ-साथ उसमे सुसस्कृत व्यक्तिके सभी उच्च गुणोका समावेश था।

सम्राज्ञी (भारतकी)–एक उपाधि, जो १८७६ ई०मे इगलैण्डकी महारानी विक्टोरियाको ब्रिटिश ससद (पार्लियामेण्ट) द्वारा प्रदान की गयी। १८५८ ई०मे ब्रिटिश सरकारने जब कम्पनीसे शासन-सत्ता ग्रहण की, तब भारतीय जनता और भारतीय राजाओको ब्रिटिश सिंहासनके प्रति राजभक्त बनानेके उद्देश्यसे इगलैण्डकी महारानीको यह पदवी प्रदान की गयी।

सयाजी राव प्रथम–१७७१ से १७७८ ई० तक बडौदा रियासतका शासक। बडौदाकी गद्दीके लिए उनके भाइयोने विरोध खडा किया और इस पारस्परिक सघर्षके फलस्व-रूप वहाँके शासन प्रबन्धमे अत्यधिक कुव्यवस्था फैल गयी।

सयाजी राव द्वितीय (गायकवाड)–१८१९ ई०से १८४७ ई० तक बडौदाका शासक।

सयाजी राव तृतीय (गायकवाड)–१८७५ से १९३९ ई० तक बडौदाका शासक रहा। जब वह नितान्त बालक था, तभी १८७५ ई०मे अग्रेजी सरकारने मल्हार राव गायकवाड़को गद्दीसे हटाकर उसको सिंहासनासीन किया। उसके शैशवकालमे सर टी० माधव रावने राज्यका शासन-भार सभाला। वयस्क होनेपर सयाजीरावने राज्यका सारा प्रबध अपने हाथोमे ले लिया। प्रशासकीय कुशलताके कारण उसकी गणना सबसे प्रतिभाशाली भारतीय नरेशके रूपमे की जाती है। उसके कुशल निर्देशनमे बडौदा समस्त देशी रियासतोमे सबसे अधिक प्रगतिशील राज्य बन गया। उसने कई विख्यात भार-तीयोको राज्यके सेवार्थ नियुक्त किया, जिनमे रमेशचन्द्र दत्त, जो कुछ वर्षों तक दीवान भी रहे, अरविन्द घोष, जो बडौदा कालेजके प्रधानाध्यापक थे, तथा सर कृष्णा-माचारी जैसोके नाम उल्लेखनीय हैं। १९३९ ई०मे सयाजी राव तृतीयकी मृत्यु हुई।

सरकार–शेरशाहके शासनकालकी सबसे छोटी प्रशासकीय इकाई। शेरशाहने अपने समस्त साम्राज्यको परगनोमें विभक्त किया। अनेक परगनोको मिलाकर सरकार (जिला) बनती थी, जहाँ सेना रहती थी। सम्राट अकबरने भी इस शासकीय इकाईको कायम रखा, किन्तु ऐसी कई इकाइयो अर्थात सरकारोको मिलाकर उसने सूबोका गठन किया। अग्रेजोकी शासकीय व्यवस्थामे इन्ही सरकारोको जिलोकी सज्ञा दी गयी।

सरकार उत्तरी–कर्नाटक प्रदेशके एक जिलेका नाम। निजाम सलाबतजगने इसे फ्रासीसियोके नियत्रणमे रख दिया था, पर १७५८ ई०मे अग्रेजोने इसपर अधिकार लिया।

सरकार, सर जदुनाथ (१८७०–१९६१ ई०)–सुप्रसिद्ध इतिहासकार। वे बगालमे पैदा हुए और उनकी शिक्षा कलकत्ताके प्रेसीडेन्सी कालेजमे हुई थी। उन्होने अध्यापन-को ही अपने जीवनका मार्ग चुना और अपने जीवनका अधिकाश भाग पटनामे इतिहासके प्राध्यापक पदपर आसीन रहकर व्यतीत किया। १९२६ ई०से एक सत्र तक वे कलकत्ता विश्वविद्यालयके उपकुलपति भी रहे। उनकी कृतियोमे शिवाजी, औरगजेबका जीवनचरित और मुगल साम्राज्यका पतन (सभी अग्रेजीमे) विद्वत्समाजमे प्रामाणिक ग्रथ माने जाते हैं। उनकी विद्वत्ता और पाण्डित्य-से प्रभावित होकर अग्रेज सरकारने उन्हें 'सर'की उपाधि

प्रदान की थी। उनकी मृत्यु कलकत्तेमे १६६१ ई० मे हुई।

सरगौली (सगौली) की संधि—द्वारा १८१६ ई० मे गोरखा अथवा नेपाल युद्ध (दे०) की समाप्ति हुई। इस संधिके अनुसार गोरखा दरबारने काठमाण्डूमे एक अंग्रेज रेजीडेन्ट रखना स्वीकार कर लिया और उन्हें कुमायूँ तथा गढवाल-के जिले अंग्रेजोको देना पडे।

सरदार वल्लभ भाई पटेल—देखिये, 'वल्लभ भाई'।

सर दिनकर राव—१९ वी शताब्दीमे हुए गवालियरके महाराज सिन्धियाका दीवान। सिपाही-विद्रोहके समय दिनकर रावने सिन्धिया और उसकी सेनाको अंग्रेजोका भक्त बनाये रखा। इससे अंग्रेजोको बहुत सुविधा प्राप्त हुई।

सर पियरे कवागनरी—ब्रिटिश भारतीय सरकारका राजदूत, जिसे दूसरे अफगान-युद्ध (१८७८–८० ई०) का पहला चरण समाप्त होनेपर कुर्रम संधि (१८७९ ई०) के बाद काबुलमे नियुक्त किया गया। वह जुलाई १८७९ ई०मे अपना पद सँभालने काबुल पहुँचा, लेकिन छः सप्ताह बादही अमीरकी विद्रोही अफगान फौजोने उसकी हत्या कर दी। इस कृत्यसे शत्रुता फिर भडक उठी और दूसरा अफगान-युद्ध एक वर्ष तक और चलता रहा।

सरफराज खाँ—नवाब मुर्शिदकुली खाँ (दे०) का दौहित्र, जो १७३९–४० ई०मे बगालका नवाब रहा। १७४०ई०मे वह अपने अधीनस्थ नायब अलीवर्दी खाँ द्वारा पराजित होकर मारा गया और अलीवर्दी खाँ (दे०) बगालका नवाब बना।

सरमैन, जान—ईस्ट इडिया कम्पनीकी सेवामे नियुक्त एक नवयुवक लिपिक। वह जुलाई १७१५ ई०मे बादशाह फर्रुखशियर (दे०)के दरबारमे दूतमडलको साथ लेकर गया, जिसमे एक आर्मीनियाई ख्वाजा सर्रहिद तथा एक अंग्रेज एडवर्ड स्टीफेन्सन सम्मिलित था। हयवार्कर मडलका सचिव था। ३० दिसम्बर १७१६ ई० को मुगल बादशाहने दूतमडलको तीन फरमान प्रदान किये, जो बगाल, हैदराबाद तथा अहमदाबादके मुगल सूबेदारोको सम्बोधित थे। इनके द्वारा कम्पनीको केवल तीन हजार रु० के वार्षिक खिराजपर नि.शुल्क व्यापार करनेका अधिकार दे दिया गया। इसके अतिरिक्त अन्य कई व्यापारिक सुविधाएँ भी प्रदान की गयी। सरमैनने बादशाह फर्रुखशियरसे जो फरमान प्राप्त किया, वह इतना महत्त्वपूर्ण था कि उसे भारतमे ब्रिटिश व्यापारका मैग्ना चार्टा (अधिकार पत्र) कहा जाता है।

सर विलियम जोन्स—(१७४६–९४)—एक प्रसिद्ध ब्रिटिश प्राच्यविद्याविद् तथा न्याय-मूर्ति। जन्म इंगलैंडमे। उन्होने आक्सफोर्डमे शिक्षा पायी तथा विविध यूरोपीय भाषाओं-के अतिरिक्त अरबी, फारसी, यहूदी तथा चीनी भाषाएँ भी सीखी। १७७० ई०मे ही फारसीमे लिखित नादिर-शाहकी जीवनीका अनुवाद फ्रेंच भाषामे किया। १७७४ ई०मे बैरिस्टरी पास की और इंग्लैडके कानूनके कुछ पहलुओंपर किताबें लिखी, जिनकी काफी चर्चा हुई। १७८३ ई०मे वे कलकत्तामे सुप्रीमकोर्टके जज नियुक्त हुए और 'सर' की उपाधिसे विभूषित किये गये।

बगाल पहुँचते ही उन्होने जनवरी १७८४ ई०मे बगाल एशियाटिक सोसाइटीकी स्थापना की और कलकत्तामे १७९४ ई०, जीवनान्ततक उसके अध्यक्ष रहे। सुप्रीमकोर्टके जजकी हैसियतसे वे शीघ्र इस बातकी आवश्यकता अनुभव करने लगे कि हिन्दुओके मामलोका निर्णय करनेके लिए हिन्दू कानूनोके ग्रथ देखने चाहिए। इसके लिए उन्होने सस्कृत सीखना शुरू किया और शीघ्र ही उस भाषापर इतना अधिकार कर लिया कि वे १७८९ ई०मे कालिदासके 'शकुतला' नाटकका अंग्रेजी अनुवाद करनेमे सफल हो गये और उन्होने मनु-सहिताका (स्मृति) का भी अंग्रेजीमे अनुवाद किया, जो १७९४ ई०मे प्रकाशित हुआ। हितोपदेश (दे०) तथा गीतगोविन्द (दे०) का भी अंग्रेजी अनुवाद किया। साथही उन्होने अंग्रेजीमे फारसी भाषाका व्याकरण (१७७१ ई०), मुसलिम उत्तराधिकार कानून तथा मुसलिम दायाधिकार कानून (१७८२)ई० नामक ग्रन्थोकी भी रचना की।

भारतमे फारसी भाषाके विद्वान् तो बहुतसे अंग्रेज हुए, परन्तु सर विलियम जोन्स पहले व्यक्ति थे जिन्होने बडी निष्ठाके साथ सस्कृत भाषा सीखी और हिन्दुओकी इस प्राचीन भाषा तथा साहित्यसे यूरोपीय विद्वानोको परिचित कराया। उन्होने इस कार्य द्वारा एक प्रकारसे तुलनात्मक भाषा-विज्ञानकी नीव डाली।

सरहिन्द—सिक्खोके इतिहासमे ख्याति-प्राप्त पजाबका एक नगर।

सर्वसेन—वाकाटक सम्राट् प्रवरसेन प्रथमका द्वितीय पुत्र। सम्राट्ने वत्सगुल्म अथवा वाशिम (आधुनिक बरार) का अधीनस्थ शासक नियुक्त किया और उसीके द्वारा वाकाटक राजवशकी वाशिम-शाखाकी नीव पडी।

सर्वेन्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी—का सगठन गोपाल कृष्ण गोखलेने १९०५ ई०मे किया। इसका उद्देश्य देश-सेवार्थ कर्मठ समाज-सेवियोको प्रशिक्षण देना तथा भारतीय जनसमुदायके यथार्थ हितोकी वैधानिक विधियोसे उन्नति

करना था। संस्थाके सदस्योंको किसी न किसी प्रकारकी निःस्वार्थ देशसेवा करनेका प्रशिक्षण देकर उन्हें उसके योग्य बनाया जाता था। इसके प्रथम अध्यक्ष गोखले और उनके उत्तराधिकारी श्रीनिवास शास्त्रीने पूरे मनोयोगसे अपने आपको भारतकी राजनीतिक प्रगतिको तीव्रतर करनेमें लगा दिया। इस संस्थाके तीसरे विशिष्ट सदस्य नारायण मल्हार जोशीने जनजीवनके सुधार एवं शिक्षा प्रसारार्थ १९१२ ई०में बम्बईमें सामाजिक सेवा संघकी स्थापना की।

जोशीने ही १९२० ई०में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेसकी नींव डाली, किन्तु इसका झुकाव धीरे-धीरे साम्यवादकी ओर होनेके कारण जोशीको सर्वेन्ट्स आफ इंडिया सोसाइटीसे अलग होना पड़ा।

सर्वेन्ट्स आफ इंडिया सोसाइटीके चौथे उल्लेखनीय सदस्य पंडित हृदयनाथ कुंजरू थे। उन्होंने प्रयागमें सेवासमितिकी स्थापना की। एक अन्य पाँचवें सदस्य श्रीराम बाजपेयीने १९१४ ई०में सेवासमिति बालचर संघका संगठन किया, जिसका उद्देश्य भारतमें बालचर आन्दोलनका श्रीगणेश करना था। सर्वेन्ट्स आफ इंडिया सोसाइटीके इन पाँचों उल्लेखनीय सदस्योंके कार्यकलापोंसे स्पष्ट है कि भारतमें राष्ट्रीय जीवनको विशिष्ट स्वरूप देनेमें इस संस्थाने महत्त्वपूर्ण योगदान किया है।

सर्वोच्च न्यायालय—१९४९ ई०के भारतीय संविधान अधिनियमके अन्तर्गत इसकी स्थापना की गयी तथा २६ जनवरी १९५० ई०को इसका कार्य प्रारम्भ हुआ। भारतका प्रधान न्यायाधीश (सर हरिलाल कानिया भारतका पहला प्रधान न्यायाधीश था) इसका अध्यक्ष होता है। इसकी सहायताके लिए कई अन्य न्यायाधीशोंकी नियुक्ति की जाती है जो ६५ वर्षकी अवस्थातक पदासीन रहते हैं। इस न्यायालयमें सीधे मुकदमे भी दायर होते हैं और अपीलें भी की जाती हैं। यह भारतकी सबसे बड़ी अपील अदालत है और इसके निर्णयोंपर कोई अपील नहीं की जा सकती। यह न्यायालय भारतीय संविधानमें निरूपित किसी मूलभूत अधिकारका परिपालन करानेके लिए भी आदेश जारी कर सकता है।

सलावतजंग—हैदराबादके शासक आसफजाह निजामुल मुल्कका तृतीय पुत्र। फ्रांसीसियोंकी सहायतासे १७५१ ई०में वह निजाम बना तथा दस वर्षोंतक शासन करता रहा। प्रारम्भमें उसकी सत्ता फ्रांसीसी सैनिकोंके बलपर टिकी रही और फ्रांसीसी सेना-नायक बुसी उसके दरबारमें रहने लगा। सलावतजंगने फ्रांसीसी सैनिकोंपर होनेवाले व्ययके बदले उत्तरी-सरकारका जिला बुसीको दे रखा था। किन्तु १७४८ ई०में जब बुसीको हैदराबादसे वापस बुला लिया गया और फोर्डके नेतृत्वमें अंग्रेजी सेनाने पूर्वी तटके मार्गमें आकर मसुलीपट्टमपर अधिकार कर लिया तब सलावतजंग अंग्रेजोंसे मिल गया और उनकी सहायताके आश्वासनपर उत्तरी सरकारका जिला उनको सैनिक व्ययके लिए दे दिया। फिर भी १७६० ई०में मराठोंने उद्गीरके युद्धमें सलावतजंगको बुरी तरह परास्त किया और उसे अपने राज्यके कई महत्त्वपूर्ण भू-भाग मराठोंको दे देने पड़े। इस घटनाके उपरान्त ही १७६१ में उसके भाई निजाम अलीने उसकी हत्या कर दी।

सलीम चिश्ती, शेख—प्रसिद्ध मुसलमान सूफी संत, जो आगराके निकट सीकरीकी सूखी चट्टानोंपर निवास करता था। बादशाह अकबर पुत्रकी लालसासे उसके चरणोंपर जा गिरा। शेखने उसको तीन पुत्रोंका आशीर्वाद दिया। यह भविष्य-वाणी सत्य सिद्ध हुई और अकबरने अपने ज्येष्ठ पुत्रका नाम शेखके नामपर सलीम रखा। अकबरको विश्वास हो गया कि शेखके चरणोंके निकटका स्थल उसके लिए भाग्यशाली सिद्ध होगा और इसी कारण उसने सीकरीमें एक भव्य मस्जिद तथा नये नगरका निर्माण कराया। उसने इस स्थलका नाम फतेहपुर सीकरी रखा और उसे ही अपनी राजधानी बनाया।

सलीम, शाहजादा—अकबरके ज्येष्ठ पुत्र और उत्तराधिकारीका प्रारम्भिक नाम। सिंहासनपर बैठनेके उपरान्त उसने जहाँगीर (दे०)की उपाधि ग्रहण की तथा इसी नामसे विख्यात भी हुआ।

सलीमा बेगम—बाबरकी पुत्री और अकबरकी फूफी। १५५७-५८ ई०में उसका विवाह पहले बैरम खाँके साथ हुआ था, किन्तु बैरम खाँके पतन और उसकी मृत्युके उपरान्त अकबरने स्वयं उससे विवाह कर लिया। वह अकबरकी मृत्युके बाद भी जीवित रही और उसका देहान्त १६१२ ई०में हुआ। वह सुसंस्कृत महिला थी तथा अकबरके हरममें उसका विशिष्ट स्थान था। अकबर और शाहजादा सलीमके प्रारम्भिक सम्बन्ध अच्छे न थे परन्तु उसके प्रयाससे दोनोंमें १६०३ ई०में मेल हो गया।

सलीवान, लारेंस—ईस्ट इण्डिया कम्पनीका एक डाइरेक्टर तथा राबर्ट क्लाइव (दे०)का विरोधी।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन—ब्रिटिश साम्राज्यवादके विरुद्ध भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा चलाये गये जन-आंदोलनों-

मेसे एक। १६२६ ई०तक भारतको ब्रिटेनके इरादेपर शक होने लगा कि वह औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान करनेकी अपनी घोषणापर अमल करेगा कि नही। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसने लाहौर अधिवेशन (१६२६)मे घोषणा कर दी कि उसका लक्ष्य भारतके लिए पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना है। महात्मा गाधीने अपनी इस मागपर जोर देनेके लिए ६ अप्रैल १६३० ई०को सविनय अवज्ञा आन्दोलन छेडा, जिसका उद्देश्य कुछ विशिष्ट प्रकारके गैरकानूनी कार्य सामूहिक रूपसे करके ब्रिटिश सरकारको झुका देना था।

कानूनोको जानबूझ कर तोडनेकी इस नीतिका कार्यान्वयन औपचारिक रूपसे उस समय हुआ जब महात्मा गाधीने अपने कुछ चुने हुए अनुयायियोके साथ 'साबरमती आश्रम' से समुद्र तटपर स्थित डाँडी नामक स्थान तक कूच किया और वहांपर लागू नमक कानूनको तोडा।

लिबरलो और मुसलमानोके बहुत बडे वर्गने इस आन्दोलनमे भाग नही लिया, किन्तु देशका सामान्य जन इस आदोलनमे कूद पडा। हजारो नर-नारी और आबाल-वृद्ध कानूनोको तोडनेके लिए सडकोपर आ गये। सपूर्ण देश गभीर रूपसे आदोलित हो उठा। ब्रिटिश सरकारने आदोलनको दबानेके लिए सख्त कदम उठाये और गाधीजी सहित अनेक काग्रेसी नेताओ व उनके समर्थकोको जेलमे डाल दिया। आन्दोलनकारियो और सरकारी सिपाहियोके बीच जगह-जगह जबरदस्त सघर्ष हुए। शोलापुर जैसे स्थानोपर औद्योगिक उपद्रव और कानपुर जैसे नगरोमे साम्प्रदायिक दगे भडक उठे। हिमाके इस विस्फोटसे गाधी जी चिन्तित हो गये। वे इस आन्दोलनको बिलकुल अहिंसक ढगसे चलाना चाहते थे। सरकारने भी गाधी जी व अन्य काग्रेसी नेताओको रिहा कर दिया और वाइसराय लार्ड इरविन और गाधी जीके बीच सीधी बातचीतका आयोजन करके समझौतेकी अभिलाषा प्रकट की। गाधी जी और लार्ड इरविनमे समझौता हुआ, जिसके अन्तर्गत सविनय अवज्ञा आन्दोलन वापस ले लिया गया। हिंसाके दोषी लोगोको छोडकर आदोलनमे भाग लेनेवाले सभी बदियोको रिहा कर दिया गया और काग्रेस गोलमेज सम्मेलनके दूसरे अधिवेशन (१६३१) मे भाग लेनेको सहमत हो गयी।

परन्तु गोलमेज सम्मेलनका यह अधिवेशन भारतीयोके लिए निराशाके साथ समाप्त हुआ। इग्लैण्डसे लौटनेके बाद तीन हफ्तोके अन्दर ही गाधीजीको गिरफ्तार कर जेलमे ठूँस दिया गया और काग्रेसपर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इस काररवाईसे १६३२ ई० मे सविनय अवज्ञा आन्दोलन फिर भडक उठा। आदोलनमे भाग लेनेके लिए हजारो लोग फिर निकल पडे, किंतु ब्रिटिश सरकारने सविनय अवज्ञा आन्दोलनोके इस दूसरे चरणको बर्बरतापूर्वक कुचल दिया। आदोलन तो कुचल दिया गया, लेकिन उसके पीछे छिपी विद्रोहकी भावना जीवित रही, जो १६४२ ई०मे तीसरी बार फिर भडक उठी।

इस बार गाधीजीने ब्रिटिश सरकारके विरुद्ध 'भारत छोडो'-आन्दोलन छेडा। सरकारने फिर ताकतका इस्तेमाल किया और गाधीजी सहित काग्रेस कार्यसमितिके सभी सदस्योको कैद कर लिया। इसके विरोध मे देश भरमे तोडफोड और हिंसक आन्दोलन भडक उठा। सरकारने गोलियाँ बरसायी, सैकडो व्यक्ति मारे गये और करोडो रुपयेकी सम्पत्ति नष्ट हुई। यह आन्दोलन फिर दबा दिया गया, लेकिन इस बार यह निष्फल नही रहा। इसने ब्रिटिश सरकारको यह दिखा दिया कि भारतकी जनता अब उसकी सत्ताको ठुकराने और उसकी अवज्ञाके लिए कमर कस चुकी है और उसपर काबू पाना अब मुश्किल है। सन् ४२ मे 'अग्रेजो', भारत छोडो'-का जो नारा गाधीजीने दिया था, उसके ठीक पाच वर्षो बाद अगस्त १६४७ मे ब्रिटेनको भारत छोडनेके लिए मजबूर होना पडा।

सहकारिता आन्दोलन—मद्रासके एक सिविलियन (असैनिक अधिकारी) फ्रेडरिक निकल्सनके प्रस्तावपर अपने देशमे इसका आरम्भ हुआ। निकल्सनकी सिफारिशपर सहकारिता प्रणालीकी सभावनाओ और उपयोगिताका पता लगानेके लिए १६०१ ई०मे एक समिति नियुक्त की गयी। १६०४ ई०मे एक कानून पास हुआ, जिसका उद्देश्य सूदखोर महाजनोके फदेसे बचाकर लोगोको उचित दरोपर रुपया उधार दिलानेके वास्ते शहर और गाँवोमे ऋण-समितियाँ गठित करना था। यहीसे भारतमे सहकारिता आदोलनका श्रीगणेश माना जाता है। शीघ्र ही इस आन्दोलनने हर प्रातमे उल्लेखनीय प्रगति की। १६१२ ई०मे आन्दोलनका विस्तार करनेके विचारसे सहकारिता कानूनमे सशोधन करके ऋण न देनेवाली सहकारी समितियो, केन्द्रीय वित्तीय समितियो और सघोको भी मान्यता दे दी गयी।

१६१६ ई०के शासन विधानके अन्तर्गत सहकारिता-

को प्रांतीय विषय बनाकर उसे भारतीय मन्त्रियोंके जिम्मे कर दिया गया। शनै-शनै सहकारिता आंदोलनकी जड़ें जमने लगीं और कृषि ऋण समितियों, केन्द्रीय वित्तीय एजेन्सियों और प्रांतीय बैंकोंका गठन किया गया। कुछ प्रांतोंमें भूमि-बंधक बैंकोंकी स्थापना हुई, जिनका उद्देश्य किसानोंको पुराने कर्ज चुकानेके लिए उनकी भूमि बंधक बनाकर दीर्घकालिक ऋण देना है। १९२५ ई०के बाद अनाजों तथा अन्य फसलोंके मूल्योंमें भारी गिरावट आ जानेसे सहकारिता आन्दोलनको गहरा धक्का लगा। दूसरे विश्वयुद्धके बाद यद्यपि कीमतें ऊपर चढ़ीं, लेकिन फिर भी यह आन्दोलन आशानुरूप प्रगति नहीं कर सका। यदि उपभोक्ता भण्डों, खासकर कृषि-उत्पादनोंकी खरीद-फरोख्त करने और मध्यमवर्गीय लोगोंको मकान बनानेकी सुविधाएँ प्रदान करनेकी दिशामें सहकारिता आंदोलनको अग्रसर किया जाय तो इसका काफी विस्तार हो सकता है। (जे० पी० नियोगी कृत हिस्ट्री आफ दि कोआपरेटिव मूवमेंट इन इंडिया)

साइमन कमीशन—इसकी नियुक्ति नवम्बर १९२७ ई०में हुई और अध्यक्ष सर जॉन (उपरांत वाईकाउंट) साइमनके नामपर उसका यह नाम पड़ा। इस कमीशनका उद्देश्य १९१९ ई०के भारतीय शासन-विधान की कार्य-प्रणालीकी जाँच करके उसपर एक रिपोर्ट देना था। इसके सभी सदस्य अंग्रेज होने तथा इसमें भारतीयोंको न सम्मिलित किये जानेका तीव्र विरोध हुआ। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने इसके बहिष्कारका निश्चय किया, फलतः जहाँ कहीं भी कमीशन गया वहाँ लोगोंने हड़ताल की। तत्कालीन अंग्रेज सरकारने इस अहिंसक आंदोलनको तोड़नेके लिए हिंसाका सहारा लिया, जिससे जन-रोष उबल पड़ा। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने १९२९ ई०के लाहौर अधिवेशनमें अपना लक्ष्य पूर्ण स्वतन्त्रता घोषित किया।

साइमन कमीशनकी रिपोर्ट मई १९३० ई०में प्रकाशित हुई। इससे अत्यधिक निराशा फैली, क्योंकि उसमें केवल प्रान्तोंमें ही पूर्ण उत्तरदायी सरकार बनानेकी संस्तुति की गयी थी तथा केन्द्रमें उस समयतक यथावत् अंग्रेज सरकारके नियन्त्रणमें शासन-व्यवस्था चालू रखनेकी सिफारिश की गयी थी, जब तक ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतोंका एक संघ नहीं बन जाता और जिसकी निकट भविष्यमें कोई आशा नहीं थी। राष्ट्रवादी भारतीयोंने कमीशनकी संस्तुतियोंको अस्वीकार कर दिया। इसका कुछ प्रभाव १९३५ ई०के भारतीय शासन-विधानपर पड़ा जिसमें ब्रिटिश भारत और देशी रियासतोंके एक संघका प्राविधान किया गया। संघीय संविधानकी यह परिकल्पना १९४७ ई०में देशके स्वतन्त्र होनेपर भारतीय गणतन्त्रके संविधानमें साकार हुई।

साइरस (कुरुष अथवा कुरु)—फारसका बादशाह (५५८ से ५३० ईसापूर्व) कहा जाता है कि उसने गदरोसिया या बलूचिस्तानके रास्ते भारतपर चढ़ाई की, किन्तु असफल रहा। बताया जाता है उसने प्राचीन नगर कपिशाको ध्वस्त किया था जो आधुनिक अफगानिस्तानमें स्थित है। यह भी कहा जाता है कि उस समय काबुल नदीकी घाटीमें बसे कुछ भारतीय गणराज्योंसे उसने कर वसूल किया।

सातकर्णि प्रथम—सातवाहन वंशका तीसरा शासक तथा कृष्णका पुत्र। कुछ विद्वान् उसे सिन्धुक अथवा सिमुकका पुत्र भी मानते हैं। उसने सम्पूर्ण दक्षिण तथा पूर्वी मालवाके भू-भागोंपर राज्य किया। यद्यपि उसकी शक्ति एवं सत्ताको एक बार खारवेल (दे०) ने चुनौती दी थी, फिर भी उसने अश्वमेध यज्ञ किया। इस प्रकार वह इतना प्रतापशाली शासक सिद्ध हुआ कि उसके उपरान्तके कई उत्तराधिकारी शासकोंने उसीके नाम (सातकर्णि) का विरुद धारण किया।

सातवाहन वंश—आंध्र (गोदावरी और कृष्णा नदियोंकी घाटी) में सिमुक अथवा सिन्धुक नामक व्यक्तिने लगभग ६० ई०पू०में प्रचलित किया। सिमुकका आदि निवास-स्थान मद्रास प्रान्तमें स्थित बेलारीके निकट था, जहाँ सातवाहनोंकी एक बस्ती थी। अतः यह राजवंश आंध्र वंश और सातवाहन वंशके दो नामोंसे विख्यात है। इसके आरम्भ होनेका सवत्, राजाओंकी संख्या तथा उनका कुल राज्यकाल आदि प्रश्न अत्यन्त विवादास्पद हैं। साधारणतया मान्य पौराणिक आख्यानोंके अनुसार सातवाहन वंशका आरम्भ सिमुकने शुंग कण्वों (दे०) की सत्ता नष्ट करनेके पश्चात् किया। उसके वंशमें प्रायः ३० शासक हुए, जिन्होंने लगभग ४०० वर्षोंतक राज्य किया।

सिमुकका राज्यकाल लगभग ६० ई०पू०से ३७ ई०पू० तक माना जाता है। उसके उपरान्त उसका भाई कृष्ण और कृष्णके उपरान्त उसका पुत्र सातकर्णि प्रथम शासक हुए। तीसरा शासक (सातकर्णि प्रथम) ही सातवाहन वंशकी शक्ति एवं सत्ताका मूल संस्थापक था। वह खारवेलका समकालीन था, जिसने सातकर्णि

शक्तिकी उपेक्षा की। किन्तु यह आघात अल्पकालिक सिद्ध हुआ होगा क्योंकि सातकर्णि (प्रथम) ने अश्वमेध यज्ञ किया और इसके द्वारा समस्त दक्षिण भारतपर अपनी सार्वभौम सत्ता स्थापित की। उसकी राजधानी गोदावरी नदीके तटपर प्रतिष्ठान (आधुनिक पैठन) नामक नगरी थी। उसकी महत्ता इसीसे स्पष्ट है कि उसके वशजोने सातकर्णिका विरुद धारण किया।

सातकर्णि प्रथमकी मृत्युके कुछ समय उपरान्त शकोके आक्रमणोके फलस्वरुप सातवाहनोकी शक्तिमे ह्रास होने लगा और महाराष्ट्रमे शक क्षत्रप वंशका शासन शुरू हुआ, जो साधारणतया पश्चिमी क्षत्रप वश कहा जाता है। किन्तु सातवाहन वशके तेईसवे शासक राजा गौतमी पुत्र श्रीसातकर्णि (दे०) ने पश्चिमी क्षत्रपो-की शक्तिको नष्ट करके पुन अपने वशकी शक्ति, समृद्धि और सत्ता दक्षिण भारतमे स्थापित की। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी राजा वासिष्ठी पुत्र पुलुमाविने उज्जैनके शक महाक्षत्रप रुद्रदामा प्रथमकी पुत्रीसे विवाह किया, किन्तु उसके श्वसुर रुद्रदामाने उससे वह समस्त भू-भाग छीन लिया जिसे उसने पश्चिमी क्षत्रपोको परा-जित करके जीता था। सातवाहन वशके सत्ताइसवे शासक यज्ञ श्री (सातकर्णि) ने उज्जयिनीके क्षत्रपोसे उन भू-भागोमेसे कुछको पुन अपने अधिकारमे करके अपनी वशकीर्ति पुन स्थापित की।

यज्ञश्रीने कई प्रकारकी मुद्राएँ (सिक्के) चलायी, जिनमेसे कुछपर जलपोत भी अकित है। इससे प्रतीत होता है कि उसका साम्राज्य समुद्रोतक विस्तृत था। सातवाहन वशका वह अतिम महान् शासक था। अतिम तीन शासक क्रमश विजय, चन्दश्री और पुलुमावि थे।

सातवाहन वशके पतनके कारण निश्चयपूर्वक ज्ञात नहीं हैं। इस वशके सभी शासक हिन्दू धर्मके कट्टर अनुयायी थे। उन्होने वैदिक यज्ञो और समाजमे वर्णा-श्रम व्यवस्थाको प्रतिष्ठित किया तथा विदेशी आक्रमक यवनो और शकोसे सघर्ष करते रहे। फिर भी उनका धार्मिक दृष्टिकोण उदार था और उन्होंने बौद्ध तथा जैन विहारो तथा उपाश्रयोको प्रभूत अनुदान दिये। उनके शासनकालमे वाणिज्य तथा व्यापार, कृषि एव अन्य उद्योगोको विशेष प्रोत्साहन मिला तथा सोने, चाँदी और ताँबेकी मुद्राओका उनके शासन-कालमे विशेष प्रचलन हुआ।

सादुल्ला खाँ—मुगल सम्राट् शाहजहाँ (दे०) का वजीर। शाहजादा औरगजेब (दे०) के साथ उसने कन्दहार दुर्ग-के पहले और दूसरे घेरेमे भाग लिया, पर दुर्गपर अधिकार करनेमे सफलता न मिली। १६५४ ई०मे उसकी मृत्यु हो गयी।

सामवेद—चार वेदोमेसे एक। ऋग्वेदके उपरान्त इसीकी रचना हुई मानी जाती है। इस वेदमे कुल १५४९ ऋचाएँ हैं, जिनमेसे ७५ को छोडकर सभी ऋग्वेद सहितासे उद्धृत हैं। सामवेदकी ऋचाओका गान विविध वैदिक यज्ञोके अवसरपर होता था। सामवेदसे सबधित पचविंश ब्राह्मण तथा जैमिनीय ब्राह्मण हैं। सामवेदकी उपनिषद् छान्दोग्य अति प्राचीन मानी जाती है और केन उपनिषद् जैमिनीय ब्राह्मणका एक भाग है।

सामूगढ़का युद्ध—आगरासे लगभग ८ मीलकी दूरीपर रोग-ग्रस्त सम्राट् शाहजहाँके पुत्र दाराशिकोह और उसके दो छोटे भाइयो, औरगजेब तथा मुरादकी समर्थक सेनाओमे २९ मई १६५८ ई०को सिंहासनके लिए हुआ। इस भाग्यनिर्णायक युद्धमे दाराकी पूर्णत पराजय हुई और विजयी औरगजेब तथा मुरादने युद्धक्षेत्रसे प्रयाण कर आगराके किलेपर अधिकार कर लिया। इस प्रकार दारा-की अपने पिताके सिंहासनको प्राप्त करनेकी समस्त आशाएँ धूलमे मिल गयी।

साम्प्रदायिक निर्णय (कम्यूनल एवार्ड)—४ अगस्त १९३२ ई० को ब्रिटिश प्रधानमन्त्री रेमजे मेकडोनाल्ड द्वारा दिया गया। इसी निर्णयके आधारपर नया भारतीय शासन-विधान बननेवाला था, जिसपर उस समय लदनमे गोलमेज सम्मेलनमे विचार-विमर्श चल रहा था और जो बादको १९३५ई०मे पास हुआ। साम्प्रदायिक निर्णय १९०९ई०के भारतीय शासन-विधानमे निहित साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वके सिद्धान्तपर आधारित था। १९०६ ई०मे जब यह स्पष्ट हो गया कि देशके प्रशासनमे भारतीयोको अधिक प्रतिनिधित्व देनेके लिए प्रचलित शासनविधानमे शीघ्र सशोधन किया जायगा, तब भारत स्थित कुछ अग्रेज अधिकारियोने वाइसराय लार्ड मिण्टो द्वितीयकी साठ गाँठसे मुसलमानोको प्रेरित किया कि वे हिज हाईनेस सर आगा खाँके नेतृत्वमे एक प्रतिनिधि-मण्डल वाइसरायके पास ले जाये।

इस प्रतिनिधिमण्डलने वाइसरायसे अनुरोध किया कि मुसलमानोके हितोकी रक्षा और उनके समुचित प्रतिनिधित्वके लिए उनके वास्ते खासतौरसे अलग निर्वाचनक्षेत्र बनाये जायँ। इन लोगोने अपनी माग-का कारण यह बताया कि भारतमे अधिकतर मुसलमान बहुत ज्यादा गरीब है, जिसकी वजहसे वे सम्पत्ति

सम्बन्धी अर्हताओंके आधारपर तैयार की गयी मतदाता सूचीमें पर्याप्त प्रतिनिधित्व नही पा सकेंगे। वाइसराय मिण्टो भारतमें, खासकर बंगालमें बढ़ती हुई राष्ट्रीयताकी लहरको दबानेके लिए कोई न कोई उपाय खोज रहा था। उसने सोचा हिन्दू और मुसलमानोंमें फूट पैदा कर देना सरकारके लिए लाभदायक होगा। इसी नियतसे लार्ड मिण्टो द्वितीयकी सरकारने मुसलमानोंकी माँग फौरन मान ली और १९०९ ई० के भारतीय शासन-विधानमें इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिलके निर्वाचनके लिए छह विशेष मुस्लिम जमींदार निर्वाचन क्षेत्रोंकी व्यवस्था की। प्रांतोंके लिए भी इसी तरह अलग निर्वाचन क्षेत्र बनाये गये।

अंग्रेजोंका यह कदम षड्यंत्रसे भरा हुआ था और इसे ठीक ही 'पाकिस्तानका बीजारोपण' कहा गया है। अंग्रेजोंका गुप्त समर्थन पाकर मुसलमानों की पृथक् साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वकी माँग आनेवाले वर्षोंमें जोर पकड़ती गयी और इसे स्वीकार कर लिया गया। तीसरे दशकमें भारतीय शासनविधानमें जब संशोधन किये जानेवाले थे साम्प्रदायिकताके आधारपर विशेष प्रतिनिधित्व देनेकी माँग न केवल मुसलमानों वरन् सिख, ईसाई, जैन, पारसी और जनजातियोंकी तरफसे भी उठायी गयी। भारतीयोंकी एकताको नष्ट करनेवाली यह फूट उस समय सामने आ गयी। भारतीय आपसमें कोई समझौता न कर सके।

लंदनमें इस प्रश्नपर विचार करनेके लिए लगातार तीन गोलमेज सम्मेलन हुए जिनका कोई नतीजा नही निकला। ऐसी स्थितिमें ब्रिटेनके प्रधानमन्त्री रैमजे-मैकडोनाल्डको 'फूट डालो और शासन करो'के सिद्धांतको कार्यरूपमें परिणत करनेका उत्तम अवसर मिल गया। उसने ४ अगस्त १९३२ ई० को "साम्प्रदायिक निर्णय" घोषित किया। यह पंच-फैसला नही, भारतीय जनतापर थोपा गया आदेश था, क्योंकि कांग्रेसने इसके लिए कभी माँग नही की थी। इस निर्णयमें भारतीयोंमें न केवल धर्म, वरन् जातिके आधारपर भी विभाजनको मान्यता दी गयी और हिन्दुओंके दलित वर्गोंको भी पृथक् प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। यह व्यवस्था अत्यन्त शरारतपूर्ण थी, क्योंकि इसका उद्देश्य हिन्दुओंको हमेशाके लिए दो टुकड़ों में बाँट देना था।

महात्मा गांधीने इस निर्णयके विरुद्ध जब आमरण अनशन किया तब २४ सितम्बर १९३२ ई० को पूना पैक्ट (समझौता) के द्वारा उसमें संशोधन किया गया। इसके अनुसार दलित वर्गोंको हिन्दुओंका अभिन्न अंग माना गया, लेकिन फिर भी देशके विधानमण्डलोंमें उन्हें सामान्य तथा विशिष्ट दोनों प्रकारका प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। साम्प्रदायिक निर्णयने जहाँ विभिन्न राज्य विधानमण्डलोंमें दलित वर्गोंके लिए ७१ सीटें आवंटित की, वहां पूना पैक्टने उन्हें केन्द्रीय विधानमण्डलमें १४८ विशिष्ट सीटें और १८ प्रतिशत सामान्य सीटें आवंटित की। मुसलमानोंकी सीटें अपरिवर्तित रही। इस प्रकार भारतीय निश्चित रूपसे दो समुदायोंमें बँट गये और उसका परिणाम अततः यह निकला कि १९४७ ई० में भारतका विभाजन करना पड़ा। (जे०मोर्ले कृत 'रिफलेक्शन्स', एस० एन० दास कृत "इंडिया अंडर मोर्ले एण्ड मिण्टो"–पांचवा अध्याय)

सायण–चारो वेदोंका सर्वाधिक प्रसिद्ध मध्यकालीन भाष्यकार। वह महान् राजनीतिज्ञ भी था और विजयनगरके शासक हरिहर द्वितीयका मन्त्री भी रहा। उसकी मृत्यु १३८७ ई० में हुई।

सारनाथ–वाराणसीके निकट स्थित बौद्धोंका पवित्र तीर्थस्थान। गौतम बुद्धने अपना धर्मचक्र प्रवर्तन सारनाथमें ही किया था। उपरान्त सम्राट् अशोकने उसी स्थलपर स्मारक रूपमें उस भव्य प्रस्तरस्तम्भकी स्थापना की जिसका प्रसिद्ध सिंह शीर्ष अशोक-कालीन कलाका अद्वितीय उदाहरण है और भारत सरकारने उसे ही अपने राजचिह्नके रूपमें अपनाया है। सारनाथमें अनेक बौद्ध विहारों तथा स्तूपोंके ध्वंसावशेष, विभिन्न देशोंके और धर्मोंके मन्दिर हैं और अनेक कलाकृतियाँ वहाँके संग्रहालयमें संगृहीत हैं।

सार्वजनिक निर्माण विभाग–इसकी स्थापना गवर्नर-जनरल लार्ड डलहौजी (१८४८–५६ ई०)ने की। उसने ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यके अन्दर सभी निर्माण कार्य और सड़कोंकी मरम्मतका कार्य इसके जिम्मे कर दिया।

सालवाईकी सन्धि–मई १७८२ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनी और महादजी शिन्देके बीच हुई। फरवरी १७८३ ई०में पेशवाकी सरकारने इसकी पुष्टि कर दी। इसके फलस्वरूप १७७५ ई० में चला आ रहा प्रथम मराठा-युद्ध समाप्त हो गया। सन्धिकी शर्तोंके अनुसार साष्टी टापू अंग्रेजोंके अधिकारमें ही रहा, परन्तु उन्होंने रघोबा (दे०)का पक्ष लेना छोड़ दिया और मराठा सरकारने इसे पेंशन देना स्वीकार कर लिया। अंग्रेजोंने माधवराव-नारायणको पेशवा मान लिया और यमुना नदीके पश्चिमका समस्त भू-भाग शिन्देको लौटा दिया। अंग्रेजों और

मराठोमे यह सन्धि २० वर्षो तक शान्तिपूर्वक चलती रही, पर इससे अग्रेजोको ही विशेष लाभ हुआ, क्योकि अब उन्हे टीपू सुलतान सदृश अन्य शत्रुओसे निश्चिन्ततापूर्वक निपटने तथा अपनी शक्ति एव स्थिति सुदृढ करनेका अवसर मिल गया।

सालारजग, सर (१८२९–८३)–१८५७ ई० के सिपाही-विद्रोहके दिनोमे हैदराबादके निजामका प्रधानमन्त्री, जो विद्रोहके कालमे अग्रेज सरकारका पूर्ण भक्त रहा। इसीके फलस्वरूप उसे सरकार द्वारा 'सर'की उपाधि प्रदान हुई। सालारजग कुशल प्रशासक भी था और उसने निजामकी शासन-व्यवस्थामे अनेक सुधार किये। हैदराबादमे 'सालारगज सग्रहालय' दर्शनीय है जिसमे विविध प्रकारकी प्राचीन वस्तुएँ सगहीत है।

सालुव तिम्म–विजयनगरके शासक कृष्णदेव राय (१५०३-३०)का मत्री और सेनापति। कृष्णदेव रायकी सफलतामे सालुव तिम्मकी नीति कुशलता और रणचातुरीका बडा हाथ था। वह रामराजा (रामराय) (दे०)का पिता था जो १५६५ ई०मे तालीकोटके युद्धमे मारा गया था। सालुव तिम्म विद्वान् और लेखक भी था। उसने बाल भारत (दे०) नामक महाकाव्यपर 'मनोहर' (दे०) नामक टीकाकी रचना की थी।

सालुव नरसिंह–विजयनगरके सालुव अथवा द्वितीय राजवशका सस्थापक तथा प्रथम शासक। नरसिंह विजयनगरके अधीनस्थ चन्द्रगिरिका अधिनायक था। वह सगम अथवा प्रथम राजवशके अतिम शासक प्रौढदेवके कालमे उच्च पदाधिकारी था। बहमनी वशके सुल्तान और उडीसाके शासककी सेनाओसे विजयनगर राज्यकी रक्षा करनेमे प्रौढदेवको असमर्थ देखकर नरसिंहने उसको अपदस्थ कर दिया और स्वय सिंहासनासीन हो गया। उसने उडीसाके राजा और बहमनी सुल्तान द्वारा विजयनगरके अधिकृत भू-भागोमेसे अधिकाशको पुन' जीत लिया। सालुव नरसिंह दो पुत्रोको अपने विश्वासपात्र सेनापति नरेश नायकके सरक्षणमे छोडकर १४९०–९१ ई०मे परलोकगामी हुआ।

सालुव वश–विजयनगरका द्वितीय राजवश। इसका शासनकाल अनुमानत १४८६ से १५०३ ई० तक रहा। इसका प्रारम्भ लगभग १४८६ ई०मे चन्द्रगिरिके नायक सालुव नरसिंहने तत्कालीन अयोग्य शासक प्रौढदेवको सिंहासनच्युत करके किया था। प्रौढदेवके साथ ही विजयनगरके प्रथम अथवा सगम राजवशका अन्त हो गया। सालुव नरसिंहके अतिरिक्त इस वशमे इम्मादी नरसिंह नामक केवल एक और शासक हुआ, जिसे लगभग १५०५ ई०मे तुलुवके नरसा नरेश नायकके पुत्र वीर नरसिंहने अपदस्थ कर दिया।

सावरकर, विनायक दामोदर (१८८३–१९६६)–अग्रेजी सत्ताके विरुद्ध भारतकी स्वतत्रताके लिए सघर्ष करनेवाले विनायक दामोदर सावरकर साधारणतया वीर सावरकरके नामसे विख्यात थे। १९४० ई०मे उन्होने पूनामे 'अभिनव भारती' नामक एक ऐसे क्रातिकारी सगठनकी स्थापना की, जिसका उद्देश्य आवश्यकता पडनेपर बल-प्रयोग द्वारा स्वतत्रता प्राप्त करना था। जब वे विलायतमे कानूनकी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, तभी १९१० ई०मे एक हत्याकाडमे सहयोग देनेके अभियोगमे बन्दी बना लिये गये और विचाराधीन कैदीके रूपमे एक जहाज द्वारा भारत रवाना कर दिये गये। परन्तु फ्रासके मार्सेलीज बन्दरगाहके समीप जहाजसे वे समुद्रमे कूदकर भाग निकले, किन्तु पुनः पकडे गये और भारत लाये गये। यहाँ एक विशेष न्यायालय द्वारा उनके अभियोगकी सुनवाई हुई और उन्हे आजीवन कालेपानीकी दुहरी सजा मिली। १९३७ ई०मे उन्हे मुक्त कर दिया गया, परन्तु भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसको उनका समर्थन न प्राप्त हो सका और १९४८ ई०मे महात्मा गाधीकी हत्यामे उनका हाथ होनेका सदेह किया गया। बादमे वे निर्दोष सिद्ध हुए और उन्होने राजनीतिसे सन्यास ले लिया। उन्होने अनेक ग्रथोकी रचना की, जिनमे 'भारतीय स्वातत्र्य युद्ध','मेरा आजीवन कारावास' और 'अण्डमानकी प्रतिध्वनियाँ' (सभी अग्रेजीमे) अधिक प्रसिद्ध हैं।

साष्टी–बम्बईके उत्तर एक द्वीप, जिसका क्षेत्रफल २४१ वर्गमील है। अब यह द्वीप बम्बई नगरसे पुल तथा सडको द्वारा पूर्ण रूपसे जुड गया है। साष्टीके प्राचीन गुहा-मन्दिर और भग्नावशेष दर्शनीय हैं। प्रथम मराठा-युद्ध प्रारम्भ होनेपर अग्रेजोने १७७५ ई०ने साष्टी (दे०) पर अधिकार कर लिया और १७८३ ई०की साल्वाईकी सधिके अनुसार यह द्वीप अग्रेजोको दे दिया गया।

सि–कुपाण सम्राट् कथफिश द्वितीय (दे०)का राज प्रतिनिधि। उसने पामीर पार करके चीनपर आक्रमण किया, किन्तु पराजित हो गया।

सिंघण–देवगिरिके यादव वशका सबसे शक्तिशाली शासक। १३ वी शताब्दीके प्रारभमे अपने पिता जैतुगी (जैत्रपाल) के उपरात वह शासक हुआ तथा १२४६ ई० मृत्युपर्यन्त राज्य किया। उसने चारो दिशाओमे विजय यात्राएँ की। उसके राज्यमे मध्य तथा पश्चिमी दक्षिणापथके

समस्त भू-भाग थे। वह साहित्य तथा कलाका भी महान् पोषक था। उसके आश्रित विद्वान् शार्ङ्गधरने संगीतपर 'संगीत रत्नाकर' नामक ग्रंथ लिखा, जिसपर स्वयं सिंघणने एक टीका लिखी। उसने भास्कराचार्य द्वारा रचित 'सिद्धान्तशिरोमणि' तथा ज्योतिष संबंधी अन्य ग्रंथोंके अध्ययनके लिए एक विद्यालयकी स्थापना की।

सिंह विष्णु, पल्लव—कांचीके पल्लव वंशका प्रारंभिक शासक। उसने छठी शताब्दी ई०के अंतिम चरणमें राज्य किया। अभिलेखोंके अनुसार उसने केवल पाड्य, चेर और चोल राजाओंको ही नहीं, बल्कि श्रीलंकाके शासकको भी पराजित किया।

सिकन्दर महान—मैसिडोनिया (मकदूनिया) का राजा (३५६–३२३ ई० पू०)। उसने अपने दिग्विजय अभियानमें फरवरी-मार्च ३२६ ई० पू० ओहिन्दके निकट नाँवोंके पुलसे सिन्धु नदी पारकर भारतपर आक्रमण किया। उस समय पंजाब और सिन्धमें अनेकानेक छोटे-छोटे राज्य थे जो आपसमें लड़ा करते थे। उनमें कुछ में राजतंत्र था और कुछ गण या नगर राज्य थे। उनमें केवल एकताका ही अभाव न था, वरन वे परस्पर शत्रुता और प्रतिस्पर्द्धा भी रखते थे। उनमेंसे कुछ राज्य विस्तार अथवा अपने पड़ोसी राज्यसे बदला लेनेकी आकांक्षासे विदेशी आक्रमणकारीसे भी मिल जानेमें संकोच नहीं करते थे। तक्षशिलाका राजा आम्भि भी इन्हींमेंसे एक था जो सिकन्दरसे मिल गया था। इससे सिकन्दरकी सेनाको एक तो विश्राम मिल गया, जिसकी उसे बड़ी आवश्यकता थी, इसके अलावा उसे हाथियोंके युद्धकी कला सीखनेका अवसर भी मिल गया, जिनसे यवन सैनिक बहुत डरते थे और जिसपर भारतीय सेनाकी रक्षा-व्यवस्था मुख्यतया निर्भर थी।

तक्षशिलाके राजा आम्भिने भारतके द्वार-रक्षकके रूपमें अपना कर्तव्य न निभाकर सिकन्दरको झेलमके तट तक पहुँचनेमें भारी मदद दी और इसीके फलस्वरूप उसने राजा पुरु (पोरस) को युद्धमें हरा दिया, जिसका राज्य झेलम और चनाव नदियोंके बीच था। इस लड़ाईमें सिकन्दरकी जीतका मुख्य कारण यह था कि उसकी सेना अधिक गतिशील थी। उसके घुड़सवार और अश्वारोही तीरन्दाज सैनिकोंने कम गतिशील हाथी, पदाति और पैदल तीरन्दाज सैनिकोंको हरा दिया। इसके बाद सिकन्दर पूर्वकी ओर आगे बढ़ा और चनाव और रावी नदियोंको पारकर व्यास (हाइफैसिस) नदीके किनारे पहुँचा, जिसके बाद प्रेसिआई (प्राच्य) अर्थात् मगधके नन्द राजाका राज्य शुरू हो जाता था। इसके पहले सिकन्दरने पंजाबके उन राज्यों और गणोंको पराजित कर दिया था जो सिन्धु और व्यास नदीके बीचमें बसे थे। यद्यपि इन राज्यों और गणोंने सिकन्दरके हमलेका मुकाबला संयुक्त होकर नहीं किया, तथापि इनमेंसे हर एक बड़ी वीरतासे लड़ा था।

पोरसके शरीरमें नौ घाव लगे थे, फिर भी वह लड़ाईके मैदानसे भागा नहीं और सिकन्दरने उसके साथ उदारताका व्यवहार किया। अस्सकेन लोगोंने अपने गढ़ मसग्गमें बड़ी वीरतासे सिकन्दरका सामना किया था। सिकन्दरको उनका मसग्ग दुर्ग जीतनेमें लोहेके चने चबाने पड़े थे। वह दगाबाजी करके ही उनका दुर्ग जीत सका। उसने वादा किया था कि वह मसग्ग दुर्ग छोड़नेपर सात हजार भारतीय सैनिकोंको सकुशल चला जाने देगा, लेकिन दुर्गसे उसने निकलनेपर उन सब सैनिकोंको मौतके घाट उतार दिया। दियोदोरसके अनुसार मसग्गमें औरतों तकने हथियार उठा लिये और पुरुषोंके साथ कंधेसे कंधा भिड़ाकर सिकन्दरकी सेनाका मुकाबला किया।

हिन्दुस्तानियोंकी वीरताके इस अनुभव और इस सूचनासे कि मगधका राजा बड़ा बलवान है, सिकन्दरके सैनिकोंमें आतंक फैल गया। प्लूटार्कने लिखा है कि सिकन्दरके सैनिकोंने आगे बढ़नेसे इन्कार कर दिया। इसीलिए सिकन्दर व्यासके तटपर रुक गया और वहाँसे झेलम तक लौटकर, नदी मार्गसे विशाल बेड़ेके द्वारा सिन्धु नदीके मुहाने तक पहुँचा। रास्तेमें अनेक राज्यों और दक्षिणी पंजाब और सिन्धके लोगोंसे उसका घोर युद्ध हुआ। इन लोगोंने सिकन्दरका कड़ा मुकाबला किया लेकिन वे विदेशी शत्रुके विरुद्ध, संयुक्त मोर्चा नहीं बना सके। सिकन्दरने मालव, क्षुद्रक, मूसिकनोई तथा ब्राह्मणक गणोंको पराजित किया। मालव (यूनानियोंके अनुसार मल्लोइ) लोग मुल्तानसे ८० मील पूर्वोत्तर दिशामें रहते थे। उन लोगोंने सिकन्दरको गम्भीर रूपसे घायल कर दिया।

सिकन्दरने प्रतिशोधमें उस गणके सभी लोगोंका संहार करा दिया, यहाँ तक कि औरतों और बच्चों तकको जीवित नहीं छोड़ा। सिन्धु नदीके मुहानेपर पहुँचकर सिकन्दरने अपनी सेनाको तीन हिस्सोंमें बाँटा। नौसेनाको एडमिरल नियार्कसके नेतृत्वमें फारसकी खाड़ीमें फरात नदीके मुहाने तक जानेका आदेश दिया गया। सेनाके दूसरे हिस्सेको क्रेटिरोसके नेतृत्वमें समुद्रके

किनारे-किनारे और तीसरे भागको सिकन्दरकी कमानमें गदरोसिया (मकरान) होकर फारस वापस लौटनेका आदेश दिया गया। सितम्बर ३२५ ई० पू०में सिकन्दर महान हिन्दुस्तानमें १९ महीनेके अभियानके बाद वापस लौटा। उसका भारतमें प्रवेश मार्च ३२६ ई० पू० में हुआ था। उसकी नौसेना और सेनाके दोनों हिस्से मई ३२४ ई० पू०में फारसके सूसानगर पहुँच गये। इसके एक वर्ष बाद जून ३२३ ई० पू०में सिकन्दरकी मृत्यु बेबीलोन नगरमें हो गयी।

भारतपर सिकन्दरके आक्रमणको कभी-कभी अतिरंजित महत्त्व दिया जाता है। सैनिक दृष्टिसे यह निःसंदेह एक बड़ी सफलता थी और समूचे पंजाब और सिन्धको सिकन्दरने १९ महीनेके अभियानमें जीत लिया। लेकिन इस बातको भी याद रखना चाहिए कि यह विजय इसलिए सम्भव हुई कि सिकन्दरके विरोधमें खड़े होनेवाले भारतीयोंमें एकता नहीं थी। इसके बाद भी उसकी विजय अस्थायी सिद्ध हुई। जब सिकन्दरकी सेना करमानिया होकर (३२४ ई० पू०) वापस लौट रही थी, उसी समय उत्तरी सिन्धमें उसके क्षत्रप फिलिप्पोसकी हत्या कर दी गयी। इसके कुछ समय बाद ही भारतीय क्षेत्रोंपर आधिपत्य करनेवाली यवन सेना पराजित कर दी गयी और ३२३ ई० पू०में अपनी मृत्यु होनेसे पूर्व स्वयं सिकन्दर उन क्षेत्रोंपर दुबारा अधिकार नहीं कर सका। उसकी मृत्युके बाद भारतमें उसके विजित क्षेत्र उसके उत्तराधिकारियोंके हाथसे निकल गये। उसने जहाँ-जहाँ यवन बस्तियाँ स्थापित की थी, वे भी समाप्त हो गयी। जैसा कि वी० ए० स्मिथने लिखा है—"सिकन्दरका अभियान एक सफल फौजी हमला मात्र था, जिसका भारतपर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। केवल युद्धकी बर्बरताकी एक याद बाकी रह गयी। भारतमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ और उसपर यवनोंकी कोई छाप नहीं पड़ी।" भारतके हिन्दू, बौद्ध, जैन सभी लेखकोंने सिकन्दरकी उपेक्षा की, क्योंकि भारतकी दृष्टिसे वह एक बर्बर लुटेरा मात्र था, जिसने दिग्विजयकी आकांक्षामें बहुतसे निर्दोष मर्द, औरतों और बच्चोंकी हत्या कर डाली। पर उसके आक्रमणसे भारत और यूनानके बीचका रास्ता खुल गया और जो यवन बस्तियाँ भारतके पश्चिमोत्तर सीमा-क्षेत्रमें स्थापित की गयी वे भारतीय और यवन संस्कृतिके बीच आदान-प्रदानका माध्यम बन गयी।

सिकन्दर शाह (१४८९–१५१७)—लोदी वंशके प्रवर्तक बहलोल लोदी (दे०) का पुत्र और उत्तराधिकारी। वह कुशल और कर्मठ शासक था। उसने चारों ओर फैली हुई अव्यवस्थाको दूर करके विद्रोही प्रान्तीय शासकों, सरदारों तथा जमींदारोंका दमन किया और इस प्रकार सुल्तान पदकी मर्यादा और शक्तिको पुनः स्थापित किया। प्रमुख अफगान जागीरदारोंके लेखे-जोखेकी जाँच करके राज्यके राजस्वमें वृद्धि की। बंगालकी सीमाओंतक अपनी सत्ताका विस्तार किया और वहाँके तत्कालीन शासक अलाउद्दीन हुसेन शाहसे इस आशयकी संधि की कि दोनों एक दूसरेके राज्यके भू-भागोंपर अधिकार करनेकी चेष्टा न करेंगे। धौलपुर और चन्देरीके शासकों-को अपनी अधीनता स्वीकार करनेपर विवश किया तथा १५०८ ई०में जहाँ आधुनिक आगरा स्थित है, वहीं एक नगरकी नींव डाली, जिससे निकटवर्ती शासकोंपर नियन्त्रण रखा जा सके। मृत्युपर्यन्त वह अपने राज्यकी अव्यवस्था दूर करनेका प्राणपण प्रयास करता रहा। १५१७ ई०में आगरामें उसकी मृत्यु हुई।

सिकन्दर शाह—शेरशाहका भतीजा और उसके द्वारा संस्थापित सूरवंशका पाँचवाँ तथा अन्तिम शासक। १५५५ ई०में जब वह पंजाबका सूबेदार था तब अफगानोंने उसे बादशाह घोषित कर दिया, किन्तु शीघ्र ही हुमायूँने उसे सरहिन्दके निकट एक युद्धमें परास्त कर दिया। पराजित होकर वह शिवालिककी पहाड़ियोंकी ओर चला गया, पर वहाँसे भी अकबरने १५५७ ई०में उसे भगा दिया। तब वह भागकर बंगालकी ओर गया, जहाँ १५५८–५९ ई०के बीच उसकी मृत्यु हो गयी।

सिक्ख—गुरु नानक (दे०) (१४६९–१५३८ ई०) के अनुयायी। मुख्यतया पंजाब ही उनका निवास-स्थान है। प्रारम्भमें वे शान्तिप्रिय थे और उनमें परस्पर जाति-पाँतिका कोई भेद-भाव न था, हालाँकि उनमेंसे अधिकांश हिन्दूसे सिक्ख बने थे। वे सभी धर्मोंमें निहित आधारभूत सत्यमें विश्वास करते हैं और उनका दृष्टिकोण धार्मिक अथवा सम्प्रदायिक पक्षपातसे रहित और उदार है। १५३८ ई०में गुरु नानककी मृत्युके उपरांत सिक्खोंका मुखिया गुरु कहलाने लगा। उनके नौ गुरु क्रमशः अंगद (१५३८–१५५२ ई०), अमरदास (१५५२–१५७४ ई०), रामदास (१५७४–१५८१), अर्जुन (१५८१–१६०६ ई०), हरगोविन्द (१६०६–४५ ई०) हरराय (१६४५–६१ ई०), हरकिशन (१६६१–६४ ई०), तेज बहादुर (१६६४–७५ ई०) और गोविन्द सिंह (१६७५–१७०८ ई०) हुए।

चौथे गुरु रामदास अत्यन्त साधु प्रकृतिके व्यक्ति थे, इसलिए बादशाह अकबर भी उनका आदर करता था। उसने अमृतसरमे एक जलाशयसे युक्त भू-भाग उन्हें दान दिया, जिसपर आगे चलकर सिक्ख-स्वर्णमदिरका निर्माण हुआ। पाँचवें गुरु अर्जुनने सिक्खोके 'आदि ग्रथ' नामक धर्म ग्रथका सकलन किया, जिसमे उनके पूर्वके चारो गुरुओ तथा कुछ हिन्दू और मुसलमान सतोकी वाणी सकलित है। उन्होने खालसा पथकी आर्थिक स्थितिको दृढता प्रदान करनेके लिए प्रत्येक सिक्खसे धार्मिक चदा वसूल करने की प्रथा चलायी। बादशाह जहाँगीरके आदेशपर गुरु अर्जुनका इस कारण वध कर दिया गया कि उन्होंने दयाके वशीभूत होकर बादशाहके विद्रोही पुत्र शाहजादा खुसरो (दे०) को शरण दी थी।

गुरु अर्जुनके पुत्र गुरु हरगोविन्दने सिक्खोका सैनिक संगठन किया, एक छोटी-सी सिक्खोकी सेना एकत्र की। उन्होने शाहजहाँके विरुद्ध विद्रोह करके एक युद्धमे शाही सेनाको परास्त भी कर दिया। किन्तु अतमे उन्हें भागकर कश्मीरके पर्वतीय प्रदेशमे शरण लेनी पडी। वही उनकी मृत्यु हुई। अगले दोनो गुरु हरराय और हरकिशनके कालमे कोई उल्लेखनीय घटना नही घटी। उन्होने गुरु अर्जुन द्वारा प्रचलित धार्मिक चन्देकी प्रथा एव उनके पुत्र हरगोविन्दकी सैनिक-सगठनकी नीतिका अनुसरण करके खालसा पथको और शक्तिशाली बनाया। नवें गुरु तेग बहादुरको औरगजेबका कोप-भाजन बनना पडा। उसने गुरुको बन्दी बनाकर उनके सम्मुख प्रस्ताव रखा कि या तो इस्लाम धर्म स्वीकार करो अथवा प्राण देनेके लिए तैयार हो जाओ। बादमे उनका सिर उतार लिया गया। उनकी शहादतका समस्त सिक्ख सम्प्रदाय, उनके पुत्र तथा अगले गुरु गोविन्दसिह (दे०) पर गभीर प्रभाव पड़ा।

गुरु गोविन्द सिंहने भली-भाँति विचार करके शातिप्रिय सिक्ख सम्प्रदायको सैनिक सगठनका रूप दिया, जो दृढतापूर्वक मुसलमानोके अतिक्रमण तथा अत्याचारोका सामना कर सके। साथ ही उन्होने सिक्खोमे ऐसी अनुशासनकी भावना भरी कि वे लड़ाकू शक्ति बन गये। उन्होने अपने पथका नाम खालसा (पवित्र) रखा। साथ ही समस्त सिक्ख समुदायको एकता-सूत्रमे आबद्ध करनेके विचारसे सिक्खोको केश, कच्छ, कडा, कृपाण और कंघा—पाँच वस्तुओको आवश्यक रूपमे धारण करने का आदेश दिया। उन्होने स्थानीय मुगल हाकिमोसे कई युद्ध किये, जिनमे उनके दो बालक पुत्र मारे गये, किन्तु वे हतोत्साहित न हुए। मृत्यु पर्यन्त वे सिक्खोका सगठन करते रहे। १७०८ ई०मे एक अफगानने उनकी हत्या कर दी।

आगे चलकर गुरु गोविन्द सिंहकी रचनाएं भी सकलित हुई और यह सकलन 'गुरु ग्रथ साहब'का परिशिष्ट बना। समस्त सिक्ख समुदाय उनका इतना आदर करता था कि उनकी मृत्युके उपरात गुरु पद ही समाप्त कर दिया गया, यद्यपि उनके उपरात ही बन्दा वीर (दे०) ने सिक्खोका नेतृत्व-भार सँभाल लिया। वीर बन्दाके नेतृत्वमे १७०८ ई०से लेकर १७१६ ई० तक सिक्ख निरन्तर मुगलोसे लोहा लेते रहे, पर १७१६ ई०मे बन्दा बन्दी बनाया गया और बादशाह फर्रुखशियर (दे०) (१७१३–१९ ई०) की आज्ञासे हाथियोसे रौदवाकर उसकी निर्मम हत्या कर दी गयी। सैकडो सिक्खोको घोर यातनाएँ दी गयी, फिर भी इन अत्याचारोसे खालसा पथकी सैनिक शक्तिको दबाया न जा सका। गुरुके अभावमे, व्यक्तिगत नेतृत्वके स्थानपर, सगठनका भार कई व्यक्तियोके एक समूहपर आ पडा, जिन्होने अपनी क्षमता और योग्यताके अनुसार अपने सहधर्मियोका सगठन किया।

फैजुल्लापुरके कपूर सिंहने खालसा दल अथवा सिक्ख राज्यकी नीव डाली। अन्य सिक्ख सरदारोने नादिरशाह के आक्रमणके उपरान्त पजाबमे फैली हुई अव्यवस्थाका लाभ उठाकर सिक्खोका सगठन किया और रावीके तटपर डालीवालमे एक दुर्गका निर्माण कराया तथा लाहौर तक धावे मारने शुरु कर दिये। अहमदशाह अब्दालीके बार-बारके आक्रमणो और विशेषकर १७६८ ई०के पानीपतके तृतीय युद्धने पजाबमे सिक्खोकी शक्ति बढानेमे विशेष योग दिया, क्योकि उनके प्रयाससे पजाबमे मुगल शासन समाप्त-प्राय हो गया था तथा सिक्खोमे नवीन आशा एव साहसका सचार हो रहा था। वे अब्दालीका पीछा करते रहे और छापामार युद्धकी नीति अपनाकर पजाबमे उसकी स्थितिको विषम बना दिया। अनत १७६७ ई०मे उसके भारतसे अफगानिस्तान लौट जानेपर सिक्खोने अपनी वीरता तथा अध्यवसायसे पजाबके समस्त मैदानी भागको अपने नियन्त्रणमे ले लिया।

१७७३ ई० तक उनका अधिकारक्षेत्र पूर्वमे सहारनपुरसे पश्चिममे अटक तक तथा उत्तरमे पहाड़ी भागसे लेकर दक्षिणमे मुलतान तक विस्तृत हो गया। इस प्रकार सिक्ख अपने लिए एक स्वतत्र राज्यकी स्थापना

करनेमे सफल हुए, किन्तु उनमे एक शासकीय ईकाईका अभाव था। वे बारह मिसलो (टुकडियो) मे विभक्त थे, जिनके नाम क्रमश अहलू वालिया, भाँगी, डल-वालिया, फैज्जुलापुरिया, कन्हैया, करोडा सिंहिया, नकाई, निहग, निशानवाला, फुलकिया, रामगढिया और सुकरचकिया थे। अहमदशाह अब्दाली और मुगलोकी सत्ताके पतनके उपरान्त सिक्ख किसी भी बाह्य शक्तिके भयसे रहित होकर परस्पर सघर्षरत हो गय। फलत: उपर्युक्त बारह मिसलोके छिन्न-भिन्न होनेकी स्थिति उत्पन्न हो गयी, किन्तु सुकरचकिया मिसलके नायक रणजीत सिंहने अपनी योग्यता और बुद्धिमत्तासे इस आशकाको दूर कर दिया।

रणजीत सिंह (दे०) का जन्म १७८० ई०मे हुआ और १७९९ ई०मे उसने अफगानिस्तानके शासक जमान-शाहसे लाहौरके प्रान्तीय शासकका पद प्राप्त कर लिया, जिससे पजाबके मुसलमानोको उसके आगे झुकना पडा। अगले छ वर्षोंमे उसने सतलज पार कर सभी मिसलो-पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। सतलजके इस पार अथवा पूर्वी क्षेत्रकी मिसलोपर अधिकार जमानेमे वह इस कारण असफल रहा कि भारतमे स्थित अग्रेज सरकार इन मिसलोके सरदारोको उसका विरोध करनेके लिए सहायता दे रही थी। फिर भी रणजीत सिंहने १८३९ ई०मे अपनी मृत्युके पूर्व सिक्खोको सगठित शक्तिमे परिवर्तित कर दिया, जिनके स्वतन्त्र राज्यकी सीमाएँ सतलजसे पेशावर तक और कश्मीरसे मुलतान तक विस्तृत थी। इसकी रक्षाके लिए यूरोपीय ढगसे प्रशिक्षित तथा शक्तिशाली तोपखानेसे सज्जित विपुल सैन्यबल भी था। किन्तु दुर्भाग्यवश रणजीत सिंहका कोई सुयोग्य तथा वयस्क पुत्र न था, जो सिक्खोका नेतृत्व कर उनके कार्यको आगे बढा सकता। फलत: उनके उत्तराधिकारीके रूपमे कई निर्बल और कठपुतली शासक हुए और कुचक्री राजनीतिज्ञो तथा महत्त्वाकाँक्षी सेनापतियोके षड्यन्त्रोके फलस्वरूप १८४५ से ४९ ई० के चार वर्षोंके अल्पकालमे ही सिक्खोको प्रथम तथा द्वितीय युद्धोमे फँसना पडा जिससे उस स्वतन्त्र सिक्ख राज्यका नाश हो गया, जिसका निर्माण दीर्घकालीन बलिदानोके आधारपर हुआ था।

सिक्ख युद्ध—क्रमश १८४५–४६ ई० और १८४८–४९ ई०में हुए। प्रथम सिक्ख युद्ध, जो १८३९ ई०मे रणजीत सिंहकी मृत्युके छः वर्षो बाद प्रारम्भ हुआ, उसका एक कारण १८४३ ई०मे अग्रेजो द्वारा सिधपर अधिकार करना था, जिससे उनकी आक्रामक नीति स्पष्ट हो गयी थी। दूसरा कारण सिक्ख सेनाका नियन्त्रणके बाहर हो जाना था, जिसने अल्पवयस्क सिक्ख राजा दलीप सिंहकी माता तथा सरक्षिका रानी जिन्दा कोर और उसके परामर्शदाताओको इस बातके लिए विवश किया कि वे दिसम्बर १८४५ ई०मे सतलज पार करके अग्रेजोके राज्यपर आक्रमण करनेकी आज्ञा दे। प्रथम युद्ध अल्प-कालिक तथा तीव्र हुआ और केवल तीन महीनोमे ही चार मुठभेडे क्रमश मुदकी (१८ दिसम्बर), फिरोज-शाह (२१-२२ दिसम्बर), अलीवाल (२८ जनवरी १८४६ ई०) और सुबराहान (१० फरवरी १८४६ ई०) मे हुईं और इन सभीमे सिक्ख पराजित हुए।

अन्तिम झडपमे सिक्खोकी पराजय होनेके फल-स्वरूप लाहौरका मार्ग खुल गया और तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड हार्डीजके नेतृत्वमे अग्रेजोने उसपर अधिकार भी कर लिया। हार्डिजने ही पराजित सिक्खो-के सम्मुख सधिकी शर्ते रखी। लाहौरको इस सधिके अनुसार सिक्खोने अग्रेजोको सतलज नदीके उस पारका समस्त भू-भाग तथा सतलज और व्यास नदियोंके बीचका जालधरका दोआब दे दिया और ५० लाख रुपयोकी नकद धनराशि हर्जानेके रूपमे दी। साथ ही एक करोड रुपयोके बदलेमे जम्मू-कश्मीरका इलाका भी अग्रेजोको दे दिया, क्योंकि सिक्ख सरकार उक्त धनराशि नकद देनेमे असमर्थ थी। अग्रेज सरकारने जम्मूके तत्कालीन सूबेदार गुलाब सिंहको वह इलाका एक करोड रुपयेमे बेच दिया। सिक्ख सेनाकी शक्ति घटाकर २० हजार पैदल और १२ हजार अश्वारोही तक सीमित कर दी गयी। एक अग्रेज रेजीडेण्ट (सर हेनरी लारेन्स) की भी लाहौरमे नियुक्ति की गयी, जिसपर १८४६ ई०के अन्त तक अधिकार रखनेके लिए अग्रेजोकी एक सेना तैनात थी। किन्तु वर्षका अत होनेके पूर्व ही लाहौरकी सधिमे सशोधन करके अग्रेज सेनाओका नगरपर ८ वर्षो तक अथवा महाराज दलीप सिंहके वयस्क होनेतक अधिकार बना रहनेकी व्यवस्था कर दी गयी।

तत्कालीन रेजीडेन्ट सर हेनरी लारेन्स, महाराज दलीप सिंहकी सरक्षक परिषद्का अध्यक्ष नियुक्त हुआ। सरक्षक परिषद्मे अन्य व्यक्तियोके साथ राजमाता जिंदा कौरको भी सम्मिलित किया गया। शीघ्र ही कई सिक्ख सरदारोमे सधिकी शर्तों तथा अग्रेजोके निर्देशनमे प्रान्तका शासन चलाये जानेपर तीव्र असतोष उत्पन्न हो गया। विशेषकर राजमाताको यह सधि बहुत अखरी,

उसने अंग्रेजोंके विरुद्ध षड्यंत्र प्रारम्भ कर दिया, फलतः इसे राज्यसे निष्कासित कर अन्यत्र भेज दिया गया। सेवामुक्त सिक्ख सैनिक भी राज्यमें गड़बड़ी उत्पन्न करते रहते थे। अंग्रेजोंके विरुद्ध असंतोष उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। यह असंतोष उस समय चरम सीमापर पहुँच गया, जब मुलतानके शासक मूलराजने आय-व्यय-का लेखा प्रस्तुत करनेमें असमर्थता प्रकट कर त्याग-पत्र दे दिया। शीघ्र ही मूलराजके स्थानपर एक सिक्ख उत्तराधिकारीकी नियुक्ति हुई और उसे दो अंग्रेज अधिकारियोंके संरक्षणमें मुलतान भेजा गया। पर मार्ग-में ही अचानक आक्रमण करके अप्रैल १८४८ ई०में दोनों अंग्रेजोंको मार डाला गया।

इस घटनाको अनुकूल अवसर मानकर मूलराजने मुलतान और उसके दुर्गपर अधिकार कर लिया। अंग्रेजोंने स्थानीय सेना खड़ी करके दुर्गको घेर लिया। शेरसिंहकी अधीनतामें लाहौरसे एक सिक्ख सेना भेजी गयी, किन्तु वह मूलराजसे मिल गयी। इस प्रकार एक स्थानीय विद्रोहने बृहत रूप ले लिया और द्वितीय सिक्ख-युद्ध प्रारम्भ हो गया।

प्रथम युद्धकी भाँति द्वितीय सिक्ख-युद्ध भी कुछ ही महीनों तक चला। १३ जनवरी १८४९ ई०को चिलियाँवाला नामक स्थानपर अंग्रेजों और सिक्खोंमें एक कठिन किन्तु अनिर्णीत युद्ध हुआ। ९ दिनोंके उपरान्त मुलतानने आत्मसमर्पण कर दिया तथा २१ फरवरी १८४९ ई०को गुजरातके युद्धमें सिक्खोंकी मुख्य सेना पूर्णरूपसे परास्त हुई। इस प्रकार सम्पूर्ण पंजाब अंग्रेजोंके सम्मुख नतमस्तक हो गया और तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड डलहौजीने शीघ्र ही पंजाबको अंग्रेजोंके भारतीय साम्राज्यमें मिला लेनेका आदेश दे दिया। अल्पवयस्क महाराज दलीप सिंहको ५० हजार पौण्डकी वार्षिक पेंशन स्वीकृत करके प्रशिक्षणार्थ इंग्लैंड भेज दिया गया और खालसाको भंग करके सिक्खोंको एक कृपाणके अतिरिक्त अन्य कोई हथियार रखनेपर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इस प्रकार भारतसे अंग्रेजोंका साम्राज्य अफगानिस्तानकी सीमातक विस्तृत हो गया। [गफ तथा इन्स कृत 'सिक्ख तथा सिक्ख युद्ध' (अंग्रेजीमें)]

सिनहा, सत्येन्द्र प्रसन्न, रायपुरका प्रथम लार्ड (१८६३–१९३०)—प्रथम भारतीय, जिनको ब्रिटिश सरकारने एक प्रान्तका गवर्नर नियुक्त किया। जन्म बंगालके वीरभूमि जिलेके एक मध्यम वर्गके परिवारमें। वकालतके पेशेमें उन्हें विशेष सफलता प्राप्त हुई। प्रौढावस्थामें उन्होंने राजनीतिमें प्रवेश किया और १९१५ ई०में बम्बईमें होनेवाली भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष हुए। वे पहले भारतीय थे, जो १९०९ ई०में वाइसरायकी कार्य-कारिणी परिषद्के सदस्य नियुक्त हुए तथा १९२० से १९२४ ई० तक बिहार और उड़ीसा प्रान्तके गवर्नर बनाये गये और उनको लार्डकी सम्मानित उपाधि प्राप्त हुई। भारतीय राजनीतिज्ञोंमें वे नरम दलके सदस्य थे। उन्होंने अपनी योग्यतासे सिद्ध कर दिया कि भारतीय सर्वोच्च पदोंपर नियुक्तिके अधिकारी हैं।

सिन्ध—सिन्धु नदीकी वह घाटी जो झेलम नदीके संगमसे दक्षिणमें पड़ती है। इस प्रदेशमें लगभग ३००० ई० पू० उस प्रागैतिहासिक सभ्यता (दे०) का जन्म और विनाश हुआ, जिसके अवशेष लरकाना जिलेके मोहन जोदड़ो नामक स्थलपर प्राप्त हुए हैं। सिकन्दर महान्‌के आक्रमण-के समय यहाँ मुचिकर्ण अथवा मुषिक, साम्ब अथवा सबर तथा ब्राह्मण आदि गण निवास करते थे। यूनानी विजेताने इन सभीको अपनी अधीनता स्वीकार करनेपर विवश किया और उसकी जल सेना सिंध नदीसे होकर तथा स्थल सेना नदीके किनारे-किनारे कूच करके पाटल (पातालप्रस्थ) पहुँची, जो सिन्ध नदीके मुहानेपर स्थित था। वहाँसे सिकन्दरने अपनी स्थल-सेनाओं सहित बल-चिस्तानके मार्गसे स्वदेशकी ओर प्रस्थान किया और उसकी जलसेना बेबीलोनकी ओर चल पड़ी।

सिन्ध, मौर्य साम्राज्यका एक भाग था और पाँचवीं शताब्दी ई० में यह चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्यके साम्राज्यमें भी सम्मिलित था। तदुपरान्त इस प्रदेशमें एक ब्राह्मण राजवंशका शासन रहा, जिसका अन्तिम राजा दाहिर था। ७११ ई०में मोहम्मद बिन कासिमके नेतृत्व-में अरब मुसलमानोंने सिन्धपर आक्रमण किया। उसने दाहिरको हराकर मौतके घाट उतार दिया और सिन्धकी राजधानी अलोरके दुर्गपर अधिकार करके सिन्धको अरब साम्राज्यमें मिला लिया। अरबोंका सिंधपर ११७६ ई० तक अधिकार रहा और उसी वर्ष शहाबुद्दीन गोरी (दे०) ने अरबोंसे इसे छीन लिया। इस प्रकार सिन्ध दिल्ली सल्तनतका एक अंग बन गया। सुल्तान मोहम्मद तुगलकके राज्यकालमें सिन्ध दिल्ली सल्तनतसे अलग हो गया, यद्यपि मुहम्मद तुगलक पुनः विजय प्राप्ति-की इच्छासे होनेवाले इस युद्धमें मारा गया। यद्यपि फिरोजशाह तुगलकने १३६१–६२ ई० में सिन्धको पुनः जीतनेके दो प्रयास किये, परन्तु यह स्वतन्त्र-प्राय रहा।

सिन्धका ऊपरी अथवा उत्तरी भाग बाबरकी मुलतान-विजयसे उसके अधिकारमें आ गया। यही अमरकोट नामक स्थानपर १५४२ ई० में अकबरका जन्म हुआ। सिन्धके निचले भाग अथवा दक्षिणी सिन्धको, जिसकी राजधानी ठट्ठा थी अकबरने १५९१ ई० में जीत लिया और इस प्रकार सम्पूर्ण सिन्ध पुनः दिल्ली साम्राज्यका एक भाग बन गया। १८ वीं शताब्दीके अन्तिम वर्षोंमें मुगलोंकी शक्तिमें ह्रास होनेके कारण सिन्धपर वहाँके अमीरोंका नियन्त्रण हो गया। किन्तु १९ वीं शताब्दीमें अंग्रेजी साम्राज्यके विस्तारके साथ-साथ सिन्ध और सिन्ध नदीकी महत्ताके कारण अंग्रेज सरकारकी लम्चायी दृष्टि उसपर पड़ी। १८३२ ई० में अंग्रेजोंने सिंधके अमीरों (दे०)के साथ एक संधि कर ली, जिसके अनुसार सिन्धु नदीसे अंग्रेजोंका जहाजी व्यापार मार्ग सुलभ हो गया। दस वर्षोंके उपरान्त तत्कालीन गवर्नर-जनरल एलेनबरो द्वारा प्रेरित किये जानेपर सर चार्ल्स नेपियर (दे०)ने अमीरोंसे युद्धका एक बहाना ढूँढ लिया। अमीरोंकी मियानी और डबोंके युद्धमें पराजय हुई और सिन्ध अंग्रेजोंके भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया गया।

अप्रैल १९३६ ई० तक सिन्ध बम्बई प्रेसीडेन्सीका ही भाग बना रहा, पर उसी वर्ष सिन्धका अलग प्रान्त बना दिया गया। १९४७ ई० में, भारतके विभाजनके उपरान्त सिन्ध पाकिस्तानका एक प्रान्त बन गया और उसकी राजधानी करांची ही पाकिस्तानकी राजधानी हुई, यद्यपि बादमें राजधानीका स्थानान्तरण रावलपिंडी हो गया।

सिन्धके अमीर—बलूचिस्तानके तालपुरा कबीलेके सरदार, जो ईसवी १८ वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें सिन्धके शासक बन बैठे थे। शीघ्र ही उसकी तीन मुख्य शाखाएँ हो गयीं—हैदराबाद, खैरपुर और मीरपुर। कानूनी तौरसे वे लोग अफगानिस्तानके शाहके अधीन थे। १९वीं शताब्दी ईसवीके शुरू होनेपर उन लोगोंने अफगानिस्तानी शाहोंके स्वामित्वकी अवहेलना शुरू कर दी, लेकिन उस समय उनको पंजाबके राजा रणजीत सिंह तथा अंग्रेजोंका सामना करना पड़ा, जो सिंधपर अपना प्रभुत्व जमाना चाहते थे। सिन्धके अमीर दोनोंको सिन्धसे बाहर रखना चाहते थे, लेकिन क्रमिक रीतिसे अंग्रेजोंने अपनी कूटनीतिसे उनको अपने अधीन कर लिया।

१८३१ ई० में सिन्धु नदीका सबसे पहला सर्वेक्षण अंग्रेजी दस्तेने एलेक्जेन्डर बर्न्सके नेतृत्वमें किया। भारतकी ब्रिटिश सरकारने सिन्ध और सिन्धु नदीके जलमार्गका महत्त्व केवल व्यापारके लिए ही नहीं वरन् साम्राज्य प्रसारके लिए भी अनुभव किया। १८३२ ई० में सिन्धके अमीरोंको अंग्रेज सरकारसे सन्धि करनेके लिए राजी कर लिया गया, जिसके द्वारा उन्होंने सिन्धकी नदियों और सड़कोंको हिन्दुस्तानके व्यापारियोंके लिए खोल दिया, लेकिन किसी प्रकारके फौजी सामान अथवा जंगी जहाजोंको वहाँ ले जानेपर पाबंदी लगा दी। इस सन्धिमें सिन्धके अमीरों और अंग्रेजों दोनोंको एक दूसरेकी भूमिपर लुब्ध दृष्टि डालनेसे रोक दिया गया। संधिका १८३४ ई० में अभिनवीकरण किया गया और १८३८ ई० में भारतकी ब्रिटिश सरकारने रणजीत सिंह द्वारा सिन्धपर कब्जा करनेके प्रयासको विफल कर दिया। अंग्रेजोंने सिन्धके अमीरोंको संरक्षण देनेके लिए उनसे काफी धन वसूला और सिन्धमें अंग्रेज रेजीडेण्ट रखनेका अधिकार प्राप्त कर लिया। प्रथम आंग्ल-अफगान युद्ध (१८३८—४२ ई०) शुरू होनेपर अंग्रेजोंने सिन्धके अमीरोंसे १८३२ ई० की सन्धिकी शर्तोंको तोड़कर अपनी सेना सिन्धके मार्गसे भेजी और अमीरोंसे अफगानिस्तानको दिये जानेवाली खिराजकी बकाया रकम वसूल की, १८३९ ई० में उन्होंने सन्धिके अमीरोंको नयी सन्धि करनेपर मजबूर किया, जिसमें १८३२ ई० की सन्धिकी अवहेलना की गयी।

नयी सन्धिके अमीरोंको तीन लाख रुपये वार्षिक नजराना देनेके द्वारा लिए बाध्य किया गया और सिन्धको बाजाब्ता अंग्रेजोंका संरक्षित राज्य बना दिया गया। सिन्धके अमीरोंको यह सन्धि नापसन्द थी लेकिन इसके बावजूद उन्होंने प्रथम आंग्ल-अफगान युद्धके संकट कालमें इसका ईमानदारीसे पालन किया और अंग्रेज सरकारने सिन्धका प्रयोग अपने फौजी अड्डेके रूपमें निर्बाध रीतिसे किया। लड़ाईके बाद लार्ड एलिनबरोके कार्यकालमें भारतकी ब्रिटिश सरकारने सिन्धके अमीरोंपर अंग्रेजोंके प्रति अमैत्री और शत्रुताका भाव रखनेका आरोप लगाया और सर चार्ल्स नेपियरको सिन्धका रेजीडेन्ट बनाकर भेजा, जो अपने इसी स्वभावके लिए बदनाम था। १८४२ई० में सर चार्ल्स नेपियरने सिन्धके अमीरोंको एक नयी सन्धि करनेपर मजबूर किया जिसके द्वारा उनके कुछ क्षेत्रोंको तीन लाख रुपया सालाना नजरानेके बदलेमें अंग्रेजोंने अपने अधिकारमें ले लिया। सिन्धु नदीमें अंग्रेजोंकी नावों और जहाजोंके आवागमनके लिए ईंधनका प्रबन्ध करनेका भार अमीरोंपर डाल

दिया गया। सिन्धके अमीरोसे अपने सिक्कोकी टकसाल चलानेका अधिकार छीन लिया गया।

नयी सन्धिका व्यावहारिक निष्कर्ष यह निकला कि अमीरोकी आजादी खत्म हो गयी। मर चार्ल्सने सन्धिकी शर्तोका इतनी कडाईसे पालन कराया कि अमीरोकी लडाकू बलूची जनताने हैदराबाद स्थित अग्रेजोकी रेजीडेन्सीपर हमला कर दिया। एलिनबरोकी हुकूमतको इससे सुनहरा मौका मिला और उसने फरवरी १८४३ ई० मे अमीरोके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी। यह युद्ध थोडे दिन चला। सिन्धके अमीर मियानी और डबोकी लडाइयो (फरवरी-मार्च १८४३ ई०) मे पराजित कर दिये गये और उनको सिन्धसे निष्कासित कर दिया गया। जून १८४३ ई० तक युद्ध समाप्त हो गया और पूरे सिन्ध क्षेत्रको भारतके ब्रिटिश साम्राज्यमे मिला लिया गया।

सिन्ध नदी—सिन्ध अथवा काली सिन्ध नदी टोक जिलेसे निकलकर मध्यप्रदेश और बुन्देलखण्डसे बहती हुई यमुना नदीमे मिलती है। पिण्डारी युद्धमे अग्रेजोकी रणनीति बहुत कुछ अशो तक इसी नदीपर आधारित थी।

सिन्धु घाटी-सभ्यता—इसका उद्‌घाटन सिंधु घाटीके विविध स्थानोमे, विशेष रूपसे सिंधके लरकाना जिलेमे मोहन जोदडो तथा पजाबके माटगोमरी जिलेमे हडप्पामे हालमे की गयी खुदाइयोसे हुआ। विश्वास किया जाता है कि यह सभ्यता २५०० ई० पू०से १५०० ई० पू०के बीच वर्तमान थी। हो सकता है कि यह इससे भी प्राचीन रही हो। यह सुसभ्य नागरिक सभ्यता थी और उस कालके लोग अनेक विकसित सुख-सुविधाओका उपभोग करते थे, जैसे चौडी सडकें, नालियोकी उत्तम व्यवस्था और सार्वजनिक स्नानागार। नगरोमे सभागार और पूजा-स्थान भी होते थे। मकान पक्की ईंटोसे बनाये जाते थे और उनमेसे कुछ दो खण्डे भी होते थे। उनमे पानी तथा नालियोकी व्यवस्था रहती थी। उस कालके लोग मूर्तियोकी पूजा करते थे। शिवलिंगसे मिलते-जुलते प्रस्तर भी मिले है। वे लोग ताँबा, कांसा, चाँदी, जस्ता और सोनेका उपयोग करना जानते थे। सोनेके आभूषण बनाये जाते थे। वे लोग सूती और ऊनी कपडा बुनना जानते थे, मिट्टीके अच्छे बरतन बनाते थे, जिनपर बहुधा अलकरण भी किया जाता था तथा खाने-पीनेमे दूध, गेहूँ, जौ, फल तथा मासका प्रयोग करते थे।

वे लेखन कला भी जानते थे, परतु उनकी लिपि अभी तक पढी नही जा सकी है। यह लिपि उस कालकी मिली बहुत-सी मुद्राओपर अकित है। लिपिके पढे न जानेसे यह अनुमान लगाना कठिन है कि उनकी भाषा किस वर्गकी थी। वे मृतकोको गाडते थे और उनका दाह सस्कार भी करते थे। विश्वास किया जाता है कि उनकी सभ्यता फरात (ईराक) घाटीकी सभ्यतासे मिलती-जुलती थी और वैदिक सभ्यताकी पूर्ववर्ती थी। प्रतीत होता है कि सिंधु घाटी सभ्यताके पतनके बाद आर्योने भारतमे प्रवेश किया। सिंधु घाटी सभ्यताके ह्रास और पतनका कारण ज्ञात नही है।

सिन्धु नदी—आधुनिक पाकिस्तानमे बहनेवाली नदी जो हिमालयके क्षेत्रमे तिब्बतसे निकलती है। काश्मीर और पजाबकी सोहन, झेलम, चिनाब, रावी, व्यास और सतलज नदियोका जल इसमे मिल जाता है और महा-नदके रूपमे यह समुद्रमे मिल जाती है। उपर्युक्त प्रदेशोकी, जिनके बीचसे यह १८००० मीलकी लम्बाईमे बहती है, आर्थिक दशा सँवारनेमे इसका बहुत बडा योगदान है। एक मतके अनुसार सिन्धु शब्दसे ही 'हिन्दू' शब्दकी उत्पत्ति हुई है। इसकी घाटीमे २५०० ई०पू०से १५०० ई० पू० एक उन्नत सभ्यता वर्तमान थी।

सिपहिर शिकोह, शाहजादा—दाराशिकोहका सबसे छोटा पुत्र और शाहजहाँका पौत्र। शिशु होनेके कारण औरग-जेबने उसके प्राण न लिये और बादमे अपनी तीसरी पुत्रीका उससे विवाह भी कर दिया।

सिपाही विद्रोह—यद्यपि इसका प्रारभ मेरठसे १० मई, १८५७ ई०को हुआ, परन्तु इसके पूर्व ही बरहामपुर और बैरकपुरकी छावनियोके सैनिकोमे असतोषके लक्षण प्रकट हो चुके थे। २८ मार्च १८५७ ई०को मगल पाडे नामक सैनिकने दिन-दहाडे एक अग्रेज पदाधिकारीको मार डाला था, परन्तु यह विद्रोह दबा दिया गया। फिर भी विद्रोहाग्नि भीतर ही भीतर धधकती रही और ग्रीष्म ऋतुके मध्यमे इसकी ज्वाला भडक उठी। इसके राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सैनिक कई कारण थे। डलहौजी द्वारा गोद प्रथाका अन्त तथा देशी राज्यो-को कुशासनके बहाने हडपनेकी नीतिसे भारतीय राज्योके शासकोको अपना सिंहासन बचानेकी चिन्ता पीडित करने लगी। दूसरी ओर गद्दीसे हटाये गये शासक तथा उनके आश्रित बेकारी तथा अर्थाभावमे पीडित होकर अग्रेजोसे द्वेष करने लगे। ऐसे अपदस्थ शासकोमेसे पेशवा बाजी-राव द्वितीयके दत्तक पुत्र नाना साहब (दे०) और झाँसीकी रानी लक्ष्मीबाई (दे०)ने विद्रोहको सगठित

शहर पूना विद्रोहियोंके हाथोंमे पड जानेके कारण ५ नवम्बरको उसपर अधिकार हो सका। इसी बीच सर कालिन कैम्पवेल, सेनाध्यक्ष और सर ह्यू रोज सदृश दो विशेष अनुभवी अफसरोंके नेतृत्वमे अंग्रेजोंकी नयी सेना भी आ गयी।

कैम्पवेलने अवध और रुहेलखण्डमे विद्रोहका दमन किया और सर ह्यू रोजने बुन्देलखण्डमे। उसने झाँसीकी रानीको लगातार कई युद्धोंमे परास्त किया, परन्तु रानी वीरतापूर्वक लडती हुई वीरगतिको प्राप्त हुई। तात्या टोपेको, जो नाना साहबका सेनापति था, बन्दी बनाकर फाँसी दे दी गयी। १४ सितम्बरको जब दिल्लीपर अंग्रेजोंका पुन अधिकार हुआ, बहादुरशाह द्वितीयको बन्दी बनाकर रगून भेज दिया गया, जहाँ उसकी मृत्यु हो गयी। उसके दो पुत्रों और पौत्रोंको कर्नल हाड्सनने बिना किसी न्यायिक जाँचके गोलीसे उडा दिया। नाना साहब नेपालकी तराईके जगलोंकी ओर भाग गया और फिर उसका पता न लगा। ८ जुलाई १८५८ ई० को तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड कैनिगने विद्रोहकी समाप्ति और शाति-स्थापनाकी घोषणा की।

विद्रोह कालमे दोनों ही पक्षोंकी ओरसे अत्यन्त अमानुषिक अत्याचार हुए। उस कालकी कटु स्मृतियोंने यूरोपियनों और भारतीयोंके बीच ऐसी खाई पैदा कर दी, जो दीर्घकाल तक पट नही सकी। इस विद्रोहके फलस्वरूप भारतमे कम्पनीका राज्य समाप्त हो गया और भारतका प्रशासन कम्पनीसे इग्लैण्डकी महारानीके हाथोंमे आ गया। महारानी विक्टोरियाने इस परिवर्तनकी घोषणा की और सभीको क्षमा करने तथा धार्मिक स्वतत्रता, देशी राजाओंके अधिकारोंकी रक्षा एव गोद प्रथाके अन्तकी नीतिको त्याग देनेका वचन दिया।

अंग्रेजोंकी सफलता और विद्रोहियोंकी विफलताके कई कारण थे। सर्वप्रथम, विद्रोह कुछ वर्गों तक सीमित था। इस विद्रोहका क्षेत्र पश्चिममे पजाब, पूर्वमे बगाल, उत्तरमे अवध और दक्षिणमे नर्मदा नदी तक ही सीमित था। यह विद्रोह केवल सैनिकों तक ही सीमित था, देशी नरेश और भारतकी साधारण जनता इससे अलग रही। दूसरे, विद्रोहियोंका कोई एक मूल उद्देश्य न था और न उन्हें किसी केन्द्रीभूत तथा कुशल नेतृत्वके सचालनका सुयोग प्राप्त था। तीसरे, वे भली प्रकार सगठित भी न थे। प्रत्येक दलका अपना नेता होता था, जो अपने ही बलपर युद्ध करता था। चौथे, सिक्खोंने अपनी थोडे दिन पूर्व हुई पराजयके लिए विद्रोही सिपाहियोंको कारण मानकर स्वामिभक्तिकी भावनासे अंग्रेजोंका पूरा साथ दिया। वस्तुत, यह उन्हींकी सहायताका परिणाम था कि दिल्लीपर अंग्रेजोंका पुनः अधिकार हुआ और विद्रोहकी रीढ टूट गयी। पाँचवे, यद्यपि विद्रोही अत्यधिक वीरतासे लडे, पर उन्होंने अपनेमे से कोई सुयोग्य सेनानायक न चुना। इसके विपरीत अंग्रेजोंमे अनुशासन तथा एक व्यक्तिके निर्देशनमे कार्य करनेके गुण थे। उन्हें हैवलाक, निकोल्सन, औट्रम तथा लारेन्स सदृश अनेक प्रतिभाशाली पदाधिकारियों और सेनानायकोंका निर्देशन प्राप्त था। अन्तमे एक कारण यह भी दिया जा सकता है कि विद्रोही लोग भारतीय समाजके एक अल्पाश मात्र थे। अंग्रेजोंकी विजय भारतीय जनताके बहुत भारी अशकी सक्रिय एव निष्क्रिय सहायताके फलस्वरूप हुई, क्योंकि उन्हें विद्रोही सिपाहियोंके कार्यों एव गतिविधियोंमे कोई ऐसी विशेषता नही दिखलाई दी, जिससे प्रेरित होकर सभी उनका साथ देते। (सिपाही विद्रोहपर अंग्रेजोंने अनेक ग्रथ रचे गये हैं। होम्स, मैलीसन, सेन, मजूमदार और वीर सावरकरके ग्रंथ उल्लेखनीय हैं।)

सिमुक (शिशुक)—सातवाहन वशका प्रवर्तक। पुराणोंके अनुसार वह शुग वशके अतिम शासकका समकालीन था, किन्तु उसकी तिथि अनिश्चित है। सभवत. वह दूसरी शताब्दी ई० पू०के प्रारभमे हुआ होगा। उसका राज्य मद्रास (तामिलनाडु) के बेलारी जिलेमे था और उसमे पश्चिमी दक्षिणापथके कुछ भू-भाग भी सम्मिलित थे। उसके उपरात उसका भाई कृष्ण सिंहासनासीन हुआ।

सिराजुद्दौला—अप्रैल १७५६ ई० से जून १७५७ ई० तक बगालका नवाब। वह अलीवर्दी खाँ (दे०) का प्रिय दौहता तथा उत्तराधिकारी था, किन्तु नानाकी गद्दीपर उसके दावेका उसके मौसेरे भाई शौकतजगने जो उन दिनों पूर्णियाका सूबेदार था, विरोध किया। सिंहासनासीन होनेके समय सिराजुद्दौलाकी उम्र केवल २० वर्षकी थी। उसकी बुद्धि अपरिपक्व थी, चरित्र भी निष्कलक न था तथा उसे स्वार्थी, महात्त्वाकाक्षी और षड्यन्त्रकारी दरबारी घेरे रहते थे। तो भी अंग्रेजों द्वारा उसे जैसा क्रूर तथा दुश्चरित्र चित्रित किया गया है, वैसा वह कदापि न था। वह बगालकी स्वाधीनताको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिए मर मिटनेवाले देशभक्तोंमे न था, जैसाकि कुछ राष्ट्रवादी इतिहासकारोंने सिद्ध करनेका प्रयास किया है।

सिराजुद्दौलाका उद्यम अपने व्यक्तिगत हितोंकी रक्षा

होता था, किन्तु चारित्रिक दृढताके अभावमे उसे लक्ष्य-प्राप्तिमे असफलता मिली। वास्तवमे वह न तो कायर था और न युद्धोसे घबराता ही था। अपने मौसेरे भाई शौकतजगसे युद्धमे उसे निर्णायक सफलता मिली और इसी युद्धमे शौकतजग मारा गया। उसके अग्रेजोसे अप्रसन्न रहनेके यथेष्ट कारण थे, क्योकि अग्रेजोने उसकी आज्ञाके विना कलकत्ताके दुर्गकी किलेबन्दी कर ली थी और उसके न्याय दडके भयसे भागे हुए राजा राजवल्लभके पुत्र कृष्णदासको शरण दे रखी थी। कलकत्तापर उसका आक्रमण पूर्णतः नियोजित रूपमे हुआ। फलतः केवल चार दिनोके घेरे (१६ जूनसे २० जून १७२६ ई०) के उपरात ही कलकत्तापर उसका अधिकार हो गया। कलकत्ता स्थित अधिकाश अग्रेज जहाजो द्वारा नदीके मार्गसे इसके पूर्व ही भाग चुके थे और जो थोडेसे भागनेमे असफल रहे, बन्दी बना लिये गये। उन्हे किलेके भीतर ही एक कोठरीमे रखा गया, जो कालकोठरीके नामसे विख्यात है और जिसके विषयमे नवाब पूर्णतया अनभिज्ञ था।

काल कोठरी (दे०)से जिन्दा निकले अग्रेज वदियोको सिराजुद्दौलाने मुक्त कर दिया। किन्तु कलकत्तापर अधिकार करनेके वादसे उसकी सफलताओका अन्त हो गया। वह फाल्टाकी ओर भागनेवाले अग्रेजोका पीछा करने और उनका वही नाश कर देनेके महत्त्वको न समझ सका, साथ ही उसने कलकत्ताकी रक्षाके लिए उपयुक्त प्रवन्ध न किया, ताकि अग्रेज उसपर दुबारा अधिकार न कर सके। परिणाम यह हुआ कि क्लाइव और वाटसनने नवावकी फौजकी ओरसे विना किसी विरोधके कलकत्तापर जनवरी १७५७ ई०मे पुन. अधिकार कर लिया। सिराजुद्दौलाने अग्रेजोसे समझौतेकी वार्त्ता प्रारम्भ की, पर अग्रेजोने मार्च १७५७ ई०मे पुन उसकी सार्वभौम सत्ताकी उपेक्षा की, और चन्द्रनगरपर, जहाँ फ्रासीसियोका अधिकार था, आक्रमण करके अपना अधिकार कर लिया। सिराजुद्दौलाने अग्रेजोके इस कुकृत्यपर कोई ध्यान नही दिया। उसने अग्रेजोके साथ अलीनगरकी सधि भी कर ली, किन्तु अग्रेजोने इस सधिकी पूर्ण अवहेलना करके नवावके विरुद्ध उसके असतुष्ट दरबारियोसे मिलकर षड्यत्र रचना प्रारभ किया और १२ जूनको क्लाइवके नेतृत्वमे एक सेना भेजी।

सिराजुद्दौलाने भी सेना एकत्र करके अग्रेजोका मार्ग रोकनेका प्रयास किया, किन्तु २३ जून १७५७ ई०को पलासीके युद्धमे अपने मुसलमान और हिन्दू सेनानायकोके विश्वासघातके फलस्वरूप वह पराजित हुआ। पलासीसे वह राजधानी मुर्शिदाबादको भागा और वहाँ भी किसीने उसके रक्षार्थ शस्त्र न उठाया। वह पुन भागनेपर विवश हुआ, पर शीघ्र ही पकडा गया और उसका वध कर दिया गया। सिराजुद्दौलाका पतन अवश्य हुआ किन्तु उसने क्लाइव, वाटसन, मीरजाफर और ईस्ट इडिया कम्पनीकी भाँति, जो उसके पतनके षड्यत्रमे सम्मिलित थे, न तो अपने किसी मित्रको ही कभी धोखा दिया और न शत्रु को।

सिविल सर्विस–देखिये, 'इडियन सिविल सर्विस'।

सीता–रामायणके कथा-नायक रामकी पत्नी। उन्होने हिन्दू स्त्रियोके सामने पतिव्रत धर्मका आदर्श प्रस्तुत किया।

सीताबल्डीका युद्ध–तृतीय मराठा-युद्ध (दे०)के दौरान नवम्बर १८१७ ई०मे भोसला शासक अप्पा साहब (दे०) तथा अग्रेजोके बीच हुआ। इस युद्धमे भोसलाके नेतृत्वमे मराठोकी सेना पूर्णतया पराजित हुई और अप्पा साहबने आत्मसमर्पण कर दिया।

सीथियन–मध्य एशियामे स्थित सीथियाके निवासी साधारणतया सीथियन कहे जाते हैं। किन्तु भारतीय ऐतिहासिक शब्दावलीमे सीथियन शब्दका प्रयोग शक एव कुषाण सरीखी उन विदेशी जातियोके लिए हुआ है, जो दूसरी शताब्दी ई० पू०से दूसरी शताब्दी ई० तक भारतमे आती रही।

सीदी–ये लोग भारतके पश्चिमी समुद्र तटपर स्थित जजीर नामक स्थलपर अबीसीनियाके समुद्री डाकुओके सरदार थे। फलतः शिवाजी (दे०)को उनका दमन करना पड़ा।

सुदास–एक वेदकालीन राजा, जिसका उल्लेख भारत और जनमेजयके साथ ऋग्वेदमे मिलता है।

सुन्नी–इस्लाम धर्मका एक सम्प्रदाय। भारतके अधिकाश मुसलमान सुन्नी है। शियाओ (दे०)के विपरीत सुन्नी पहलेके तीन खलीफाओको भी जायज तौरसे चुने गये पैगम्बरके उत्तराधिकारी मानते हैं, और जुमेके खुतबेमे उनका भी नाम लेते है। सुन्नी कट्टर मुसलमान होते हैं। दिल्लीके सभी सुल्तान तथा मुगल बादशाह सुन्नी थे और अक्सर शियाओके खिलाफ जग करते रहते थे, क्योकि वे उन्हें सच्चा मुसलमान नही मानते थे।

सुप्रीम कोर्ट–इसकी स्थापना कलकत्तामे १७७४ ई०के रेग्यूलेटिंग ऐक्ट (दे०)के द्वारा की गयी। ऐक्टमे सुप्रीम कोर्टके चीफ जस्टिस और अन्य तीन छोटे जजोके नाम और उनका वेतन भी निर्धारित कर दिया गया था। इस प्रकार ऐक्टका उद्देश्य भारतमे न्यायपालिकाको

कार्यपालिकासे बिलकुल स्वतन्त्र रखना था। ऐक्टमें निर्धारित कर दिया गया था कि समस्त ब्रिटिश प्रजा, जिसमें उच्चतम अधिकारी भी सम्मिलित थे तथा कलकत्ताके सभी निवासी, सुप्रीमकोर्टके न्याय क्षेत्रमें माने जायेंगे। ऐक्टमें यह उल्लेख नहीं किया गया था कि कोर्टमें जो फैसले दिये जायेंगे वे किस कानूनपर आधारित होंगे। अतएव चीफ जस्टिस सर एलिजा इम्पी (दे०) और अन्य तीन जजोंने निर्णय किया कि वे इंग्लैंडके कानूनोंके अनुसार फैसले करेंगे। सुप्रीम कोर्टके जज अपने अधिकारोंका दृढ़तासे प्रयोग करते थे और सभी व्यक्तियोंको अपने न्याय-क्षेत्रके अन्तर्गत मानते थे। वे कम्पनीकी अदालतोंकी पूर्ण अवहेलना करते थे। उनके आदेश बड़े क्लेशदायी और दम्भपूर्ण प्रतीत होते थे।

उन्होंने जब जालसाजीके आरोपमें नन्दकुमार (दे०) को फाँसीकी सजा दी, तो भारतीय लोग स्तम्भित रह गये, यद्यपि गवर्नर-जनरल और उसके मित्रोंको खुशी हुई। किन्तु १७७९–८० ई०में काशी जोड़ाके कोर्टने गवर्नर-जनरल तथा उसकी कौंसिलपर अदालतके अपमानके अभियोगमें मुकदमा चलानेकी धमकी दी तो वे लोग भी स्तम्भित रह गये। वारेन हेस्टिंग्सने सुप्रीम कोर्टके चीफ जस्टिस सर एलिजा इम्पीको ऊँचे वेतनपर सदर दीवानी अदालतका अध्यक्ष नियुक्त करके बड़ी युक्तिपूर्वक गवर्नर-जनरलकी कौंसिल और कोर्टके बीच खुला संघर्ष टाल दिया। इस व्यवस्थाके फलस्वरूप सदर दीवानी अदालतकी कार्य-प्रणालीमें भी सुधार हो गया। किन्तु इसमें एक दोष था। इसके फलस्वरूप न्यायपालिकाको कार्यपालिकाके अधीन बना दिया गया। १७९७ ई० में जजोंकी संख्या घटा कर तीन कर दी गयी तथा १७८१ ई०में उसके न्याय-क्षेत्रका स्पष्ट रीतिसे निर्धारण कर दिया।

१८०१ ई०में मद्रासमें तथा १८२३ ई०में बम्बईमें भी एक-एक सुप्रीम कोर्टकी स्थापना कर दी गयी। १८३३ ई०में तीनों सुप्रीम कोर्टोंका न्यायक्षेत्र स्पष्ट रीतिसे (१) समस्त ब्रिटिश प्रजा, (२) तीनों नगरोंमें रहनेवाले निवासियों तथा (३) कम्पनीकी परोक्ष अथवा अपरोक्ष रीतिसे नौकरी करनेवाले समस्त व्यक्तियों तक सीमित कर दिया गया। अंतमें, १८६१ ई०के इंडियन हाईकोर्ट ऐक्टके द्वारा सुप्रीमकोर्टको सदर दीवानी अदालतमें मिला दिया गया और दोनोंको मिला कर कलकत्ता हाईकोर्टकी स्थापना कर दी गयी, जिसके प्राथमिक न्याय-क्षेत्रमें समस्त कलकत्ता नगरको रख दिया गया तथा बंगाल बिहार तथा उड़ीसाकी समस्त अपीलें सुननेका उसे अधिकार प्रदान किया गया। इसी प्रकार मद्रास तथा बम्बई प्रेसीडेंसीके सुप्रीम कोर्टोंको भी अपने-अपने प्रान्तका हाईकोर्ट बना दिया गया।

सुबराहानका युद्ध—प्रथम सिक्ख युद्धके क्रममें सिक्खों तथा अंग्रेजोंकी सेनामें १० फरवरी १८४६ ई०को हुआ। इस युद्धमें अंग्रेज विजयी हुए और उनके लिए लाहौरका रास्ता खुल गया। अंग्रेजोंने शीघ्र ही लाहौर ले लिया और सिक्खोंको एक सन्धि करनेपर विवश किया, जो लाहौरकी सन्धिके नामसे विख्यात है।

सुभागसेन—एक भारतीय राजा, जो काबुलकी घाटीमें राज्य करता था। लगभग २०८ ई० पू०में एन्टियोकसने उसके राज्यपर आक्रमण किया। सुभागसेनने हर्जानेके तौरपर उसे बहुत-सा धन और बहुत-से हाथी भेंट करके उसकी अधीनता स्वीकार कर ली।

सुर्जी अर्जुन गाँवकी सन्धि—१८०३ ई०में अंग्रेजों और दौलतराव शिन्देके बीच हुई, जिसके फलस्वरूप दोनोंके बीच चलनेवाला युद्ध समाप्त हो गया। सन्धिके अनुसार शिन्देने अपने दरबारमें ब्रिटिश रेजीडेंट रखना मंजूर कर लिया, बसईकी सन्धि (दे०) स्वीकार कर ली, निजामके ऊपर अपने सारे दावे त्याग दिये और अंग्रेजोंकी सहमतिके बिना अपनी नौकरीमें किसी भी विदेशीको न रखनेका वचन दिया। इसके अलावा उसने गंगा और यमुनाके बीचका सारा दोआब, जिसमें दिल्ली और आगरा भी सम्मिलित था, अंग्रेजोंको सौंप दिया। इस प्रकार उत्तरी भारत, दक्षिण तथा गुजरातमें शिन्देके समस्त राज्यपर अंग्रेजोंका प्रभुत्व स्थापित हो गया। शिन्देने राजपूतानाके अधिकांश राज्योंकी राजनीतिमें भी कोई हस्तक्षेप न करनेका वचन दिया। इस प्रकार अर्जुन गाँवकी सन्धिसे द्वारा शिन्देकी स्वतंत्रता समाप्त हो गयी तथा उत्तरी भारतके अधिकांश भागमें ब्रिटिश साम्राज्यकी स्थापना साकार हुई।

सुलेमान—एक अरब व्यापारी (सौदागर)। वह राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष (दे०) (लगभग ८१५–८७७ ई०) की राजसभामें आया और राजाके धन एवं ऐश्वर्यसे बहुत प्रभावित हुआ। उसने नवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें भारतकी दशाका रोचक वर्णन किया है।

सुलेमान करानी—अकबर (दे०) के शासनके प्रारम्भिक कालमें वर्तमानमें बंगालका पठान शासक। उसने अकबरकी नाममात्रकी अधीनता स्वीकार कर ली और अपनी स्वतंत्रता कायम रखी। उसके पुत्र दाऊद (दे०) ने

अकबरके खिलाफ खुली बगावत की। उसे १५७५ ई० मे और पुन. १५७६ ई०मे पराजित किया गया और युद्ध-भूमिमे मार डाला गया।

सुलेमान शिकोह, शाहजादा—दारा शिकोहका पुत्र। १६५७-५८ ई०मे शाहजहाँके पुत्रोमे उत्तराधिकार युद्ध छिड जानेपर सुलेमानको पहले अपने चाचा शाहजादा शुजाके खिलाफ भेजा गया, जिसे उसने फरवरी १६५८ ई०मे बनारसके निकट बहादुरपुरकी लडाईमे हरा दिया। परन्तु वह अपने पितासे इतना दूर था कि उसे न तो धर्मट (दे०) और न सामूगढ (दे०) की लडाईमे कोई सहायता पहुँचा सका। अन्तमे उसे गढवालके पहाडोमे भाग जाना पडा। परन्तु शीघ्र उसे पकडवा दिया गया। औरगजेबने उसे १६६२ ई०मे खानेमे जहर देकर मरवा डाला।

सूजा, मैनुअल डी—१५३९ ई०मे दिव नामक बन्दरगाहका पुर्त्तगाली कप्तान। गुजरातका सुरतान बहादुर शाह (दे०), पुर्तगाली गवर्नर नूनो द कुन्हासे मिलने वहाँ गया। दोनोकी भेट बन्दरगाहमे खडे एक पुर्तगाली जलपोतपर हुई। वहाँ पुर्त्तगाली नाविकोने छलपूर्वक बहादुरशाहपर आक्रमण कर दिया और मार-धाडमे बहादुरशाह और डी सूजा दोनो ही मारे गये।

सूत्र-ग्रथो (कल्पशास्त्र) मे वैदिक कर्मकाण्ड तथा विविध लौकिक कर्त्तव्यो एव नियमोका निरूपण मिलता है। वे अत्यन्त सक्षिप्त एव सारवान् शैलीमे लिखे गये है और टीकाओ तथा भाष्योके बिना उनका अर्थ समझना कठिन हो जाता है। सूत्र तीन प्रकारके होते है—(१) श्रोतसूत्रोमे यज्ञादि विषयक, विधान और विवरण मिलता है। (२) गृह्यसूत्रोमे गृहस्थके कर्तव्यो तथा अनुष्ठानोका वर्णन मिलता है तथा (३) धर्मसूत्रोमे विविध सामाजिक कर्तव्यो तथा विधि-नियमो (कानूनो) का विवरण पाया जाता है।

सूफीमत—इस्लाम धर्मकी एक शाखा। इस मतमे दार्शनिक विचारोकी प्रधानता है, अतएव यह दूसरे धर्मोके प्रति इस्लामकी अपेक्षा अधिक सहिष्णु रहा है।

सूफ्रा, डी एडमिरल—एक फ्रासीसी नौसेनापति, जो १७८१ ई०मे भारत आया। ह्युजके नेतृत्ववाली ब्रिटिश नौसेनासे उसकी पाच समुद्री लडाइयाँ हुई। कुछ समयके लिए दक्षिण भारतके समुद्रोपर उसका प्रभुत्व स्थापित हो गया। उसने श्रीलकामे त्रिकोमलैपर अधिकार कर लिया। परन्तु आग्ल-फ्रासीसी युद्धपर उसका कोई निर्णयात्मक प्रभाव पडनेसे पूर्व ही १७८३ ई०मे इग्लैड और फ्रासके बीच वर्सेलीजकी सधि हो गयी।

सूरजमल—१७६१ ई० वाली पानीपतकी तीसरी लडाई (दे०) के समय विद्यमान भरतपुरका जाट राजा। वह बडा चतुर राजनीतिज्ञ था और उसके पास बहुत अधिक दौलत थी। मराठा तथा अहमदशाह अब्दाली (दे०) दोनो ही उसकी सहायता चाहते थे। पहले वह मराठोकी सहायता करनेके लिए राजी हो गया, परन्तु बादमे मराठोके दम्भपूर्ण व्यवहारके कारण उसने अपनेको लडाईसे अलग कर लिया और भारतकी उस भाग्य-निर्णायक लडाईमे कोई हिस्सा नही लिया। वह अपने ढगका एक बहुत ही सफल शासक था। वह जाट सरदार बदन सिंहका गोद लिया हुआ लडका तथा उत्तराधिकारी था। उसने १७५६ ई०से १७६३ ई०मे मृत्यु होनेतक जाटोका नेतृत्व और भरतपुर राज्यका विस्तार किया, जिसमे आगरा, धौलपुर, मैनपुरी, हाथरस, अलीगढ, इटावा, मेरठ, रोहतक, फर्रुखनगर, रेवाडी, गुडगाँव तथा मथुरा जिला सम्मिलित थे। मुगलोकी राजधानी दिल्लीके पडोसमे इतने बडे हिन्दू राज्यकी स्थापनासे प्रकट होता है कि वह कितना कुशाग्र-बुद्धि, विवेकशील, दूरदर्शी तथा योग्य शासक था।

सूर वश—इसका उद्भव शेरशाह सूरसे हुआ। उसने १५४० ई०मे दूसरे मुगल बादशाह हुमायूँकी पराजयसे लेकर १५५५ ई०मे हुमायूँ द्वारा दुबारा गद्दी प्राप्त किये जाने तक दिल्लीकी सल्तनतपर हुकूमत की। पन्द्रह साल की इस छोटी-सी अवधिमे इस वशके तीन बादशाहोने हुकूमत की—शेरशाह (दे०) (१५४०-४५ ई०), उसका लडका इस्लाम अथवा सलीमशाह (१५४५-५४ ई०) तथा उसका चचेरा भाई आदिलशाह (१५५४-५६ ई०), जिसके सेनापति हेमू (दे०) अथवा हेमचन्द्रको अकबरने १५५६ ई०मे पानीपतकी दूसरी लडाईमे हरा दिया तथा मार डाला। इस प्रकार सूर वशका अत हो गया।

सूर वश—इसका सम्बन्ध परम्परागत रीतिसे बगालसे, विशेष कर दक्षिण-पश्चिम बगालसे जोडा जाता है। अनुश्रुतियोके अनुसार इस वशका प्रवर्तक आदिसूर (दे०) था। कहा जाता है, उसने कन्नौजसे पाँच ब्राह्मणोको लाकर राढ (पश्चिमी बगाल) तथा वरेन्द्र (उत्तरी बगाल) मे बसाया। परन्तु उसके अस्तित्वको सिद्ध करनेवाला कोई पुरालेख या सिक्का उपलब्ध नही है। उसका काल अत्यत अनिश्चित है और आठवी शताब्दीसे लेकर ग्यारहवी शताब्दी तक माना जाता है। आदिसूरके ऐतिहासिक व्यक्ति होनेके सम्बन्धमे चाहे जो कुछ

जिसने प्रथम अफगान-युद्ध (दे०)मे भाग लिया। जब वह गण्डमकमे भारतीय और अग्रेज सेनाका नायकत्व कर रहा था, नवम्बर १८४१ ई०मे उसे काबुलकी ओर प्रस्थान करनेका आदेश मिला, किन्तु वह इसका पालन न कर सका। उसे पीछे हटकर जलालाबादमे शरण लेनी पडी, जहाँ शीघ्र ही अफगानोने घेर लिया। किन्तु उसने जलालाबादकी सफलतापूर्वक रक्षा की और अफगानोको पीछे हटनेपर विवश किया। सेलने प्रथम सिक्ख-युद्ध (दे०)मे भी भाग लिया। यद्यपि इस युद्धमे अग्रेजोकी विजय हुई, पर १८ दिसम्बर १८४५ ई०को मुदकीके युद्धमे वह मारा गया।

सेल्यूकस, नाइकेटर (निकेटर)—मक़दूनियाके शासक सिकन्दर महान्‌का सेनापति। सिकन्दरकी मृत्युके उपरान्त उसके विशाल साम्राज्यके पूर्वी भागोका वह स्वामी बना और ३०६ ई० पू० मे उसने राजाकी उपाधि धारण की। इसी बीच चन्द्रगुप्त मौर्य (दे०) ने सिकन्दर द्वारा विजित समस्त भारतीय प्रदेशोको यूनानी आधिपत्यसे मुक्त कर लिया। इन प्रदेशोपर पुनः अधिकारके लिए सेल्यूकसने ३०२ ई०के पूर्व भारतपर आक्रमण करना चाहा पर चन्द्रगुप्तने उसके प्रयासको विफल कर दिया और विवश होकर सेल्यूकसको सन्धि करनी पडी। इसके अनुसार सेल्यूकसने हिन्दूकुश पर्वतके पूर्वका समस्त भू-भाग, काबुल और आधुनिक बलूचिस्तानके प्रदेश चन्द्रगुप्तको दे दिये और चन्द्रगुप्तने सेल्यूकसको ५०० हाथी प्रदान किये। सेल्यूकसने अपनी पुत्रीका विवाह चन्द्रगुप्तसे कर दिया। उसने मेगस्थनीज (दे०) नामक अपना राजदूत चन्द्रगुप्तकी राजधानी पाटलिपुत्र भेजा। चन्द्रगुप्त मौर्यकी इस विजयसे भारत कुछ समयके लिए यवनो (ग्रीको)के आक्रमणसे बचा रहा।

सैयद अहमद खाँ, सर—भारतीय मुसलमानोके प्रमुख नेता। जन्म दिल्लीमे। उन्होने १८३७ ई० मे भारतमे स्थित अग्रेजोके अधीन सेवाकार्य प्रारम्भ किया और क्रमश सहायक न्यायाधीशके पद तक पहुँच गये। १८७६ ई० मे उन्होने सरकारी सेवासे अवकाश ग्रहण कर लिया और जीवनके शेष २२ वर्ष मुसलमानोकी सेवा और उन्नतिके प्रयासोमे व्यतीत किये। सिपाही-विद्रोहके दिनोमे वे अग्रेजोके स्वामिभक्त बने रहे। पाश्चात्य सस्कृतिके महत्त्वको वे भली-भाँति समझते तथा उसके प्रति आदरशील थे। इस कारण उन्होने अपने आपको पूर्ण मनोयोगसे भारतीय मुसलमानोके मध्य अग्रेजी शिक्षाके प्रचार कार्यमे लगा दिया। १८७५ ई०मे इन्होने अलीगढमे मुहम्मडन ऐंग्लो-ओरियन्टल कालेज (एम० ए० ओ० कालेज) की स्थापना की, जिसका मुख्य उद्देश्य इस्लामी और यूरोपीय विद्या तथा ज्ञानोपार्जनमे समन्वय स्थापित करना था। १९२० मे भारत सरकारने उक्त कालेजको विश्वविद्यालयके रूपमे मान्यता दी और उसका नाम अलीगढ मुस्लिम यूनीवर्सिटी पडा। इस विश्वविद्यालयसे कई योग्य एव विद्वान् नवयुवक मुसलमान निकले।

वास्तवमे सर सैयद मुसलमान पहले थे और भारतीय बादमे। उनका विचार था कि भारतीय मुसलमानोका हिन्दुओसे सर्वथा भिन्न और एक विशेष वर्ग है और उनका हिन्दुओसे कदापि मेलजोल न होना चाहिए। इसी कारण उन्होने देशके मुसलमानोको भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेससे अलग रहनेकी राय दी थी, क्योकि उसमे हिन्दू बहुसख्यक थे। यद्यपि सर सैयद अहमदने भारतीय मुसलमानोकी स्थिति सुधारनेका अत्यधिक प्रयास किया, पर सम्पूर्ण देशके हितमे उनका योगदान महत्त्वपूर्ण नही कहा जा सकता।

सैयद बन्धु—भारतीय इतिहासमे हुसैन अली और उसका भाई अब्दुल्ला सैयद बन्धुओके नामसे प्रसिद्ध है। वे अवधके एक उच्च परिवारमे उत्पन्न हुए और सम्राट् बहादुर शाह प्रथमके राज्यकालके अन्तिम वर्षोमे उच्च पदाधिकारी हो गये। वे दोनो बादशाह बनानेवालेके रूपमे प्रसिद्ध थे, क्योकि १७१३ और १७२० ई० के बीच उन्होने कई व्यक्तियोको दिल्लीका बादशाह बनाया तथा अपदस्थ भी किया। सर्वप्रथम उन्होने १७१३ ई०मे फर्रुखसियर (दे०)को सिहासन प्राप्त करनेमे सहायता की, तथा अब्दुल्ला उसका वजीर और हुसैन अली सेनापति बना। इस प्रकार दोनो भाई साम्राज्यकी शासन सत्तापर नियन्त्रण रखनेकी स्थितिमे रहे। जब फर्रुखसियरने उनके विरुद्ध षड्यन्त्र रचा, उन्होने उसे सिहासनसे उतार कर १७१९ ई० मे उसका वध कर दिया। उपरान्त उन्होने सिहासनपर अपने हाथोकी कठपुतली शासकोको आसीन करके स्वतः राज्य करनेका निश्चय किया। केवल १७१९ ई० मे ही उन्होने रफीउद्दाराजात, रफीउद्दौलत, नेकसियर और मुहम्मद इब्राहीमको दिल्लीके सिहासनपर बैठा कर उतार दिया तथा उनका वध कर दिया। उनका बनाया छठा शासक मुहम्मद शाह था। वह इन अत्यन्त महात्वाकाक्षी बधुओसे भी चतुर निकला। उसने सैयद बन्धुओके सभी शत्रुओको अपने पक्षमे मिला लिया, जिनमे मीर कमरुद्दीन, जो निजामुल मुल्क आसफजाहके नामसे विख्यात हुआ, प्रमुख था। उसकी सहायतासे

हुसैन अलीका वध उस समय करवा दिया गया, जब वह निजामको दण्ड देने मालवा जा रहा था। अब्दुल्लाका भी १७२० ई० मे एक कठिन युद्धमे पराजित करके वदी बनाया गया और १७२२ ई० मे विष देकर मार डाला गया।

सैयद वश–इसका आरम्भ तुगलक वशके अन्तिम शासक सुल्तान महमूद (दे०) की मृत्युके उपरान्त खिज्र खाँसे १४१४ ई०मे हुआ। इस वंशमे क्रमशः खिज्र खा (१४१४–१४२१ ई०), उनका पुत्र मुबारक शाह (१४२१–१४३४ ई०), उसका भतीजा मुहम्मद शाह (१४३४–१४४५ई०) और आलम शाह (१४४५ से १४५१ ई०) नामक चार सुल्तान हुए। अंतिम सुल्तान इतना अशक्त और अहदी था कि उसने १४५१ ई०मे वहलोल लोदीको सिंहासन समर्पित कर दिया। ३७ वर्षोके शासन कालमे सैयद वशके शासकोने कोई भी उल्लेखनीय कार्य नही किया।

सोटर मेगस–इसका शाब्दिक अर्थ महान् त्राता होता है। यह उपाधि कुछ ऐसे सिक्कोपर पायी जाती है जिन्हे किसी अज्ञातनामा शासकने चलाया था और जिसका राज्यकाल सम्भवतः कुषाण शासक कथफिश द्वितीय तथा कनिष्क (दे०) के बीचमे रहा होगा।

सोपारा–प्राचीन कालमे भारतके पश्चिमीतट पर स्थित एक प्रसिद्ध वन्दरगाह। इसके समुद्र मार्गसे अत्यधिक व्यापार होता था। इस शब्दका शुद्ध रूप शूर्पारक है।

सोमनाथका मन्दिर–हिन्दुओका सम्मान्य तीर्थ। यह सुप्रसिद्ध शिव मन्दिर, काठियावाड़के प्रभास पट्टन नामक समुद्र तटीय स्थलपर गुजरातके चालुक्यो द्वारा निर्मित कराया गया था। इस मन्दिरमे अपार धनसम्पत्ति थी, क्योकि दस सहस्र ग्रामोकी आय इस मन्दिरको प्राप्त होती थी। मन्दिरके उपास्य देवकी पूजाके लिए उत्तरी भारतसे प्रतिदिन गगाजल वहाँ ले जाया जाता था। इस मन्दिरमे दनिक पूजन कृत्य सम्पादनार्थ एक सहस्र ब्राह्मण पुजारी नियुक्त थे और ३५० गायको एव नर्तकियोकी सेवा मन्दिरको समर्पित थी। प्रतिदिन वहाँ इतने भक्त एव निष्ठावान् हिन्दू दर्शनार्थी आते थे कि तीन सौ नाई उनके क्षौर-कर्मके लिए नियुक्त थे।

इस प्रभूत धन-वैभव-सम्पन्न मन्दिरपर १०२४ ई० मे सुल्तान महमूद गजनवी (दे०) ने आक्रमण किया और उसे ध्वस्त कर डाला। कहा जाता है कि इस मन्दिरकी रक्षा करते हुए ५० सहस्र हिन्दू युद्धमे मारे गये। महमूदने मन्दिरपर अधिकार कर लिया और उसके विशाल शिवलिंगके टुकडे-टुकडे कर डाले। मन्दिरकी अपार सम्पत्ति लूट करके महमूद स्वदेश लौट गया। उपरान्त मन्दिरका पुनर्निर्माण हुआ। (यहाँ पुनर्निर्मित मन्दिर भी कई वार नष्ट किये गये और भारतके स्वतन्त्र होनेपर सरदार पटेलके प्रोत्साहनसे उसी स्थानपर पुनः एक मन्दिरका निर्माण हुआ है।)

सोमेश्वर प्रथम–उपनाम आहवमल्ल, कल्याणीके चालुक्य वंशका पाँचवाँ शासक, जिसने १०४१ से १०७२ ई० तक राज्य किया। उसने कल्याणीकी नींव डाली और उसे ही अपनी राजधानी बनाया। उसे चोल सम्राट् राजेन्द्र प्रथम (दे०) से संघर्ष करना पड़ा, जिसने उसे कोप्पम युद्ध (दे०) मे पराजित किया। राजेन्द्र प्रथमके उत्तराधिकारी वीर राजेन्द्रने भी उसे कूडल संगमके युद्धमे हराया। इन पराजयोंके वावजूद उसने चालुक्य वंशकी शक्तिको सुरक्षित रखा।

सोमेश्वर द्वितीय–कल्याणीके चालुक्य सम्राट सोमेश्वर प्रथमका पुत्र और उत्तराधिकारी। उसने केवल चार वर्ष (१०७२–७६ ई०) राज्य किया और तदुपरान्त उसके भाई विक्रमादित्य षष्ठ (दे०) ने उसको अपदस्थ कर दिया।

जब वह राजकुमार था, तभी उसने पुष्यमित्रोंके आक्रमणको विफल कर दिया और तदुपरान्त सिंहासनासीन होनेपर उसने हूण आक्रामकोंको भी मार भगाया। अपने १२ वर्षोंके शासन काल (४५५–६८ ई०) में वह निरन्तर युद्धोंमें व्यस्त रहा, क्योंकि हूणोंने बार-बार आक्रमण किये, जिन्हें विफल करनेमें राज्यकी आर्थिक स्थितिको भारी आघात पहुँचा।

अपने राज्य-कालके आरम्भिक दिनोंमें उसने कुमारगुप्त प्रथमके शासनकालके अन्तिम वर्षोंमें प्रचलित कम तौलके सिक्के गलवा करके प्रामाणिक भारके शुद्ध सोने, चाँदी तथा ताँबेके सिक्के प्रचलित किये। किन्तु हूणोंसे निरन्तर युद्ध करनेके कारण उसे भी राज्यकालके अन्तिम वर्षोंमें मुद्राओंमें भारी मात्रामें मिलावट करनी पडी। फिर भी उसने काठियावाडकी सुदर्शन झीलके विशाल बाँधको पुनः निर्मित करानेके लिए धन उपलब्ध किया। इस झीलका निर्माण सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त मौर्य (दे०) ने कराया था, उसके पौत्र अशोक (दे०) ने उस झीलसे सिंचाईके लिए नालियाँ बनवायी। तदुपरान्त शक महाक्षत्रप रुद्रदामन (दे०) ने इसका जीर्णोद्धार कराया। स्कन्द गुप्तके राज्यकालमें काठियावाडमें उसके प्रान्तीय शासक पर्णदत्तने ४५६ ई० में उक्त बाँधका जीर्णोद्धार कराकर उसे दृढतर किया और दो वर्षोंके उपरान्त पर्णदत्तके पुत्र चक्रपालितने इस बाँधपर एक विष्णु मन्दिरका निर्माण कराया। महान् गुप्त सम्राटोंमें स्कन्दगुप्त अन्तिम प्रतापी राजा था।

स्काटमान्क्रीफ कमीशन—इस आयोगकी स्थापना १९०० ई० में तत्कालीन वाइसराय लार्ड कर्जनने की। इनका उद्देश्य सम्पूर्ण भारतवर्षमें सिंचाईकी सुविधाके लिए योजना बनाना था। लार्ड कर्जनने आयोगके इस प्रस्तावपर स्वीकृति दे दी कि ३,००,००,००० पौण्ड (तीन करोड पौण्ड) के अनुमानित व्ययसे ६५ लाख एकड भूमिकी सिंचाई-व्यवस्था की जाय।

स्काटिश चर्च कालेज—कलकत्ता स्थित यह विद्यालय भारतीय शिक्षामें रेवरेन्ड डॉ० अलेक्जेन्डर डफ (दे०) नामक पादरीके प्रयासोंका स्मारक है। प्रारम्भमें इसका नाम डफ कालेज था और इसकी स्थापना १८३० ई० में हुई। बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें इसका नाम स्काटिश चर्च कालेज पडा। भारतमें पाश्चात्य शिक्षाके प्रसारार्थ ईसाई मिशनों और मिशनरियोंके महत्त्वपूर्ण योगदानके ज्वलन्त उदाहरणोंमें यह विद्यालय भी है।

स्कूल बुक सोसाइटी—इस समितिकी स्थापना १८१८ ई०में डेविड हेयर नामक अंग्रेजके प्रयाससे कलकत्तामें हुई। इस समितिका मुख्य उद्देश्य अंग्रेजी पुस्तकोंका भारतमें ही मुद्रण, प्रकाशन तथा अल्प मूल्यमें विक्रय करना था।

स्टीन, सर आरेल—एक विख्यात प्राचीन वस्तुओंका संग्रहकर्त्ता, पुरातत्त्वविद् तथा अन्वेषक। उसने मध्य एशियामें विस्तृत अन्वेषक कार्य किया और बहुतसे बौद्ध स्तूपों और मठोंके ध्वसावशेष, बुद्ध और हिन्दू देवताओंकी मूर्त्तियाँ तथा भारतीय भाषाओं और भारतीय लिपियोंमें लिखी हस्तलिखित पोथियाँ ढूँढ निकालीं। वह संस्कृत भाषाका प्रकाण्ड विद्वान् था और उसने कल्हण (दे०) की राजतरंगिणीका अंग्रेजी भाषामें अनुवाद किया है।

स्टीवर्ट, जनरल—दूसरे अफगान-युद्ध (१८७९–८० ई०) के समय अफगानिस्तान स्थित ब्रिटिश सेनाका कमाण्डर। काबुलमें ब्रिटिश दूत कावानरी (दे०) की २४ जुलाई १८७९ ई० को हत्या कर दिये जानेके बाद, जनरल स्टीवर्टने शीघ्रतासे कन्दहारपर अधिकार कर लिया, जो १८७९ ई० की गन्दमककी संधि (दे०) के द्वारा अमीरको लौटा दिया गया था। इस प्रकार बादमें ब्रिटिश सेनाने अफगानोंसे जो प्रतिशोध लिया, उसका पथ इस सफलताने प्रशस्त कर दिया।

स्टुअर्ट, चार्ल्स—एक वाणिज्य विशेषज्ञ। लार्ड कार्नवालिस (दे०) ने उसीकी सलाहपर भारतमें ईस्ट इंडिया कम्पनीके वाणिज्य-व्यापारका निर्देशन करनेवाले नियम बनाये।

स्टुअर्ट, जनरल—दूसरे मैसूर-युद्धके दौरान इसने १७८१ ई०में पोर्टो नोवोकी लडाईमें प्रशंसनीय योगदान दिया। बादमें सर आयरकूटके स्थानपर उसे ब्रिटिश सेनाका कमाण्डर बना दिया गया। किन्तु, १७८२ ई०में हैदर अलीकी मृत्युसे जो अवसर प्राप्त हुआ था, उसका लाभ उसने नहीं उठाया। बादमें मद्रासके गवर्नर लार्ड मैकार्टनीसे उसका झगडा हो गया। इस झगडेने अंग्रेजोंके युद्धसंचालनमें भारी बाधा पडी।

स्टोलटाफ, जनरल—१८७८ ई० में काबुल पहुँचनेवाले रूसी दूत-मण्डलका नेता। अमीर शेख अली (दे०) को पडोसीके नाते स्वाभाविक रीतिसे उसका स्वागत समारोह आयोजित करना पडा। वाइसराय लार्ड लिटन प्रथमने अनुचित रीतिसे इसी घटनाको बहाना बनाकर दूसरा अफगान-युद्ध (दे०) छेड दिया जो १८७८ से १८८० तक चला।

स्ट्राची, सर जान—इंडियन सिविल सर्विसका एक ख्यातिप्राप्त सदस्य। उसने तथा उसके भाई सर रिचर्डने वाइसराय लार्ड लैंसडौन (दे०), लार्ड मेयो (दे०) तथा लार्ड लिटन प्रथमके शासनकालमें उच्च पदोंपर कार्य किया।

सर जानने भारतमे केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारोके सम्बन्धोको निर्देशित करनेवाले नियमोका निर्धारण किया। सर रिचर्ड अकाल कमीशनका अध्यक्ष था, जिसने अकाल कोड (दे०) का निर्माण किया।

स्ट्राबो–एक यूनानी इतिहासकार। उसने सिकन्दरके आक्रमणके समयकी भारतकी दशाका वर्णन किया है और मेगस्थनीज (दे०) की 'इंडिका'से अनेक उद्धरण दिये है।

स्थानकवासी–श्वेताम्बर जैनोका एक सम्प्रदाय। इसकी उत्पत्ति आधुनिक कालमे हुई है। मूर्ति-पूजामे इसका विश्वास नही है।

स्थानीय स्वशासन–भारतमे किसी न किसी रूपमे सभी युगोमे वर्तमान था। प्राचीन कालमे गाँवोमे तथा नगरोमे, जो छोटे-छोटे राज्योके रूपमे थे, सफाई, सचार, न्याय तथा शाति-व्यवस्था पचायती संस्थाओके हाथमे थी। चोल राज्यमे इस व्यवस्थाकी सफलताके प्रमाण विशेष रूपसे पाये गये है। अठारहवी शताब्दीमे देशमे जो अव्यवस्था व्याप्त रही उसमे अधिकाश पचायत व्यवस्था नष्ट हो गयी तथा सारी सत्ता तथा कर्त्तव्य सरकारके हाथमे केन्द्रित हो गये। प्रारम्भमे सरकारने गाँवोके प्रशासनकी कोई सुनिश्चित व्यवस्था नही की। घाट-उतराई तथा सडको एव पुलोके निर्माणके लिए जो धन एकत्र किया जाता था, उसका प्रबन्ध जिला मजिस्ट्रेट स्थानीय कमेटियोकी सहायतासे करते थे।

स्थानीय स्वशासनकी दिशामे पहला प्रयत्न बम्बईमे हुआ। वहाँ १८६९ ई०मे एक ऐक्ट पास किया गया, जिसके द्वारा मालगुजारीपर उपकर लगाने तथा उसका खर्च एक अलग कमेटी द्वारा करनेका प्राविधान किया गया। यह कमेटी सारे जिलेके लिए भी होती थी और उसके सब-डिवीजनोके लिए भी। बम्बईमे इस व्यवस्थाकी सफलतासे प्रोत्साहित होकर १८७० ई०मे अन्य प्रातोके जिलोमे भी इसी प्रकारकी कमेटियाँ गठित कर दी गयी। इन कमेटियोने स्थानीय सुख-सुविधाओमे काफी सुधार किया, परन्तु इन कमेटियोपर अधिकारियोंका पूर्ण प्रभुत्व रहता था। फिर इनके अधीन पूरा जिला होता था, जो इतना बडा होता था कि उसकी सुचारु रीतिसे देखभाल सभव नही थी।

लार्ड रिपन (दे०) चाहता था कि स्थानीय सस्थाओंको लोगोको स्वशासनकी शिक्षा देनेका केन्द्र बनाया जाय। १८८२ ई०मे उसने आदेश दिया कि जिलेके प्रत्येक सब-डिवीजनमे स्थानीय सस्थाका गठन किया जाय, उनमे निर्वाचित गैर-सरकारी सदस्योका बहुमत रहे और उनकी अध्यक्षता एक गैर-सरकारी चेयरमैन करे। इस प्रकार स्थानीय स्वशासनकी दिशामे ठोस कदम उठाया गया, यद्यपि लार्ड रिपनने जो उदार सिद्धात निरूपित किये थे, उनको नौकरशाहीके विरोधके कारण अनेक वर्षो तक क्रियान्वित नही किया जा सका। १९२१ ई०के बाद जब स्थानीय स्वशासन हस्तातरित विषय बना दिया गया और एक उत्तरदायी मत्रीके अधीन कर दिया गया, तभी जिला बोर्डों तथा स्थानीय बोर्डोपर निर्वाचित गैर-सरकारी जन-प्रतिनिधियोका पूर्ण नियत्रण स्थापित हुआ।

लार्ड रिपनके ही प्रयाससे कस्बो तथा शहरोका म्युनिसिपल प्रशासन, जो जिला मजिस्ट्रेटोके अधीन था, म्युनिसपलटियोको सौपा गया, जिनमे नागरिकोके द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि होते थे। इन प्रतिनिधियोको म्युनिसिपल कौंसिलर कहते थे। उन्हे अपना अध्यक्ष चुननेका अधिकार था, जो गैरसरकारी व्यक्ति भी हो सकता था। म्युनिसपलटियोके जिम्मे सफाई, रोशनी, पेय जल, सडकोका निर्माण तथा शिक्षा आदि अन्य नागरिक सुविधाओकी व्यवस्थाका भार सौपा गया। नौकरशाहीके विरोधके कारण इस व्यवस्थाको १९२१ ई०से पूर्व तक पूर्ण रीतिसे क्रियान्वित नही किया जा सका।

कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रासके तीन प्रेसीडेंसी नगरोका म्युनिसिपल प्रशासन अलग ढगसे विकसित हुआ और ग्रामीण क्षेत्रोका म्युनिसिपल प्रशासन अलग ढगसे। उन्नीसवी शताब्दीके मध्य तक इन तीन नगरोका म्युनिसिपल प्रशासन गवर्नर-जनरल द्वारा जस्टिस आफ पीसकी उपाधिमे सम्मानित विशिष्ट नागरिकोकी कमेटियोके हाथमे रहता था। उनके जिम्मे सफाई तथा पुलिस-व्यवस्था थी। उन्हे नगरके भीतर मकानोके मालिको तथा निवासियोसे शुल्क लेकर धन सग्रह करनेका भी अधिकार था। १८५६ ई०मे इन तीन नगरोमे सफाईकी व्यवस्था बनाये रखने तथा सुधारके लिए तीन कमिश्नरोकी नियुक्ति की गयी।

कलकत्तामे गैसकी रोशनी करने तथा नालोका निर्माण करनेके लिए विशेष प्रबध किये गये। यह व्यवस्था अप्रभावशाली सिद्ध होनेपर १८७६ ई०मे कलकत्ता कारपोरेशनका पुनर्गठन किया गया। उसके ७२ सदस्योमेसे ४२ को करदाताओके निर्वाचित प्रतिनिधि बना दिया गया, किन्तु चेयरमैन सरकार द्वारा मनोनीत किया जाता था। १८८२ ई०मे निर्वाचित सदस्योकी सख्या बढाकर ५० कर दी गयी, परन्तु

जब वह राजकुमार था, तभी उसने पुष्यमित्रोंके आक्रमणको विफल कर दिया और तदुपरान्त सिंहासनासीन होनेपर उसने हूण आक्रामकोंको भी मार भगाया। अपने १३ वर्षोंके शासन काल (४५५–६८ ई०) में वह निरन्तर युद्धोंमें व्यस्त रहा, क्योंकि हूणोंने बार-बार आक्रमण किये, जिन्हें विफल करनेमें राज्यकी आर्थिक स्थितिको भारी आघात पहुँचा।

अपने राज्य-कालके आरम्भिक दिनोंमें उसने कुमारगुप्त प्रथमके शासनकालके अन्तिम वर्षोंमें प्रचलित कम तौलके सिक्के गलवा करके प्रामाणिक भारके शुद्ध सोने, चाँदी तथा ताँबेके सिक्के प्रचलित किये। किन्तु हूणोंसे निरन्तर युद्ध करनेके कारण उसे भी राज्यकालके अन्तिम वर्षोंमें मुद्राओंमें भारी मात्रामें गिरावट करनी पड़ी। फिर भी उसने काठियावाड़की सुदर्शन झीलके विशाल बाँधको पुनः निर्मित करानेके लिए धन उपलब्ध किया। इस झीलका निर्माण सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त मौर्य (दे०) ने कराया था, उसके पौत्र अशोक (दे०) ने उस झीलसे सिंचाईके लिए नालियाँ बनवायी। तदुपरान्त शक महाक्षत्रप रुद्रदामन (दे०) ने उसका जीर्णोद्धार कराया। स्कन्द गुप्तके राज्यकालमें काठियावाड़में उसके प्रान्तीय शासक पर्णदत्तने ४५६ ई० में उक्त बाँधका जीर्णोद्धार कराकर उसे दृढ़तर किया और दो वर्षोंके उपरान्त पर्णदत्तके पुत्र चक्रपालितने इस बाँधपर एक विष्णु मन्दिरका निर्माण कराया। महान् गुप्त सम्राटोंमें स्कन्दगुप्त अन्तिम प्रतापी राजा था।

स्काटमान्क्रीफ कमीशन–इस आयोगकी स्थापना १९०० ई० में तत्कालीन वाइसराय लार्ड कर्जनने की। इसका उद्देश्य सम्पूर्ण भारतवर्षमें सिंचाईकी सुविधाके लिए योजना बनाना था। लार्ड कर्जनने आयोगके इस प्रस्तावपर स्वीकृति दे दी कि ३,००,००,००० पौण्ड (तीन करोड़ पौण्ड) के अनुमानित व्ययसे ६५ लाख एकड़ भूमिकी सिंचाई-व्यवस्था की जाय।

स्काटिश चर्च कालेज–कलकत्ता स्थित यह विद्यालय भारतीय शिक्षामें रेवरेन्ड डॉ० अलेक्जेन्डर डफ (दे०) नामक पादरीके प्रयासोंका स्मारक है। प्रारम्भमें इसका नाम डफ कालेज था और इसकी स्थापना १८३० ई० में हुई। बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें इसका नाम स्काटिश चर्च कालेज पड़ा। भारतमें पाश्चात्य शिक्षाके प्रसारार्थ ईसाई मिशनों और मिशनरियोंके महत्त्वपूर्ण योगदानके ज्वलन्त उदाहरणोंमें यह विद्यालय भी है।

स्कूल बुक सोसाइटी–इस समितिकी स्थापना १८१९ ई० में डेविड हेयर नामक अंग्रेजके प्रयासमें कलकत्तामें हुई। इस समितिका मुख्य उद्देश्य अंग्रेजी पुस्तकोंका भारतमें ही मुद्रण, प्रकाशन तथा अल्प मूल्यमें विक्रय करना था।

स्टीन, सर आरेल–एक विख्यात प्राचीन वस्तुओंका संग्रहकर्ता, पुरातत्त्ववित् तथा अन्वेषक। उसने मध्य एशियामें विस्तृत अन्वेषण कार्य किया और बहुतसे बौद्ध स्तूपों और मठोंके ध्वंसावशेष, बुद्ध और हिन्दू देवताओंकी मूर्त्तियाँ तथा भारतीय भाषाओं और भारतीय लिपियोंमें लिखी हस्तलिखित पोथियाँ ढूँढ़ निकालीं। वह संस्कृत भाषाका प्रकाण्ड विद्वान् था और उसने कल्हण (दे०) की राजतरंगिणीका अंग्रेजी भाषामें अनुवाद किया है।

स्टीवर्ट, जनरल–दूसरे अफगान-युद्ध (१८७८–८० ई०) के समय अफगानिस्तान स्थित ब्रिटिश सेनाका कमाण्डर। काबुलमें ब्रिटिश दूत काकावरी (दे०) की २४ जुलाई १८७९ ई० को हत्या कर दिये जानेके बाद, जनरल स्टीवर्टने शीघ्रतासे कन्दहारपर अधिकार कर लिया, जो १८७९ ई० की गन्दमककी संधि (दे०) के द्वारा अमीरको लौटा दिया गया था। इस प्रकार बादमें ब्रिटिश सेनाने अफगानोंसे जो प्रतिशोध लिया, उसका पथ इस सफलताने प्रशस्त कर दिया।

स्टुअर्ट, चार्ल्स–एक वाणिज्य विशेषज्ञ। लार्ड कार्नवालिस (दे०) ने उसीकी सलाहपर भारतमें ईस्ट इण्डिया कम्पनीके वाणिज्य-व्यापारका निर्देशन करनेवाले नियम बनाये।

स्टुअर्ट, जनरल–दूसरे मैसूर-युद्धके दौरान इसने १७८१ ई० में पोर्टो नोवोकी लड़ाईमें प्रशंसनीय योगदान दिया। बादमें सर आयरकूटके स्थानपर उसे ब्रिटिश सेनाका कमाण्डर बना दिया गया। किन्तु, १७८२ ई० में हैदरअलीकी मृत्युसे जो अवसर प्राप्त हुआ था, उसका लाभ उसने नहीं उठाया। बादमें मद्रासके गवर्नर लार्ड मैकार्टनीसे उसका झगड़ा हो गया। इस झगड़ेने अंग्रेजोंके युद्धसंचालनमें भारी बाधा पड़ी।

स्टोलटाफ, जनरल–१८७८ ई० में काबुल पहुँचनेवाले रूसी दूत-मण्डलका नेता। अमीर शेर अली (दे०) को पड़ोसीके नाते स्वाभाविक रीतिसे उसका स्वागत समारोह आयोजित करना पड़ा। वाइसराय लार्ड लिटन प्रथमने अनुचित रीतिसे इसी घटनाको बहाना बनाकर दूसरा अफगान-युद्ध (दे०) छेड़ दिया जो १८७८ से १८८० तक चला।

स्ट्राची, सर जान–इण्डियन सिविल सर्विसका एक ख्यातिप्राप्त सदस्य। उसने तथा उसके भाई सर रिचर्डने वाइसराय लार्ड लमर्टीन (दे०), लार्ड मेयो (दे०) तथा लार्ड लिटन प्रथमके शासनकालमें उच्च पदोंपर कार्य किया।

सर जानने भारतमें केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारोंके सम्बन्धोंको निर्देशित करनेवाले नियमोंका निर्धारण किया। सर रिचर्ड अकाल कमीशनका अध्यक्ष था जिसने अकाल कोड (दे०) का निर्माण किया।

स्ट्राबो—एक यूनानी इतिहासकार। उसने सिकन्दरके आक्रमणके समयकी भारतकी दशाका वर्णन किया है और मेगस्थनीज (दे०) की 'इंडिका'से अनेक उद्धरण दिये हैं।

स्थानकवासी—श्वेताम्बर जैनोंका एक सम्प्रदाय। इसकी उत्पत्ति आधुनिक कालमें हुई है। मूर्ति-पूजामें इसका विश्वास नहीं है।

स्थानीय स्वशासन—भारतमें किसी न किसी रूपमें सभी युगोंमें वर्तमान था। प्राचीन कालमें गाँवोंमें तथा नगरोंमें, जो छोटे-छोटे राज्योंके रूपमें थे सफाई, सचार, न्याय तथा शांति-व्यवस्था पचायती सस्थाओंके हाथमें थी। चोल राज्यमें इस व्यवस्थाकी सफलताके प्रमाण विशेष रूपमें पाये गये हैं। अठारहवीं शताब्दीमें देशमें जो अव्यवस्था व्याप्त रही उसमें अधिकाश पचायत व्यवस्था नष्ट हो गयी तथा सारी सत्ता तथा कर्त्तव्य सरकारके हाथमें केन्द्रित हो गये। प्रारम्भमें सरकारने गाँवोंके प्रशासनकी कोई सुनिश्चित व्यवस्था नहीं की। घाट-उतराई तथा सडको एव पुलोंके निर्माणके लिए जो धन एकत्र किया जाता था, उसका प्रबन्ध जिला मजिस्ट्रेट स्थानीय कमेटियोंकी सहायतासे करते थे।

स्थानीय स्वशासनकी दिशामें पहला प्रयत्न बम्बईमें हुआ। वहाँ १८६९ ई०में एक ऐक्ट पास किया गया, जिसके द्वारा मालगुजारीपर उपकर लगाने तथा उसका खर्च एक अलग कमेटी द्वारा करनेका प्राविधान किया गया। यह कमेटी सारे जिलेके लिए भी होती थी और उसके सब-डिवीजनोंके लिए भी। बम्बईमें इस व्यवस्थाकी सफलतासे प्रोत्साहित होकर १८७० ई०में अन्य प्रातोंके जिलोंमें भी इसी प्रकारकी कमेटियाँ गठित कर दी गयी। इन कमेटियोंने स्थानीय सुख-सुविधाओंमें काफी सुधार किया, परन्तु इन कमेटियोंपर अधिकारियोंका पूर्ण प्रभुत्व रहता था। फिर इनके अधीन पूरा जिला होता था, जो इतना बडा होता था कि उसकी सुचारु रीतिसे देखभाल सभव नहीं थी।

लार्ड रिपन (दे०) चाहता था कि स्थानीय सस्थाओंको लोगोंको स्वशासनकी शिक्षा देनेका केन्द्र बनाया जाय। १८८२ ई०में उसने आदेश दिया कि जिलेके प्रत्येक सब-डिवीजनमें स्थानीय सस्थाका गठन किया जाय, उनमें निर्वाचित गैर-सरकारी सदस्योंका बहुमत रहे और उनकी अध्यक्षता एक गैर-सरकारी चेयरमैन करे। इस प्रकार स्थानीय स्वशासनकी दिशामें ठोस कदम उठाया गया यद्यपि लार्ड रिपनने जो उदार सिद्धान्त निरूपित किये थे, उनको नौकरशाहीके विरोधके कारण अनेक वर्षों तक क्रियान्वित नहीं किया जा सका। १९२१ ई०के बाद जब स्थानीय स्वशासन हस्तान्तरित विषय बना दिया गया और एक उत्तरदायी मंत्रीके अधीन कर दिया गया, तभी जिला बोर्डों तथा स्थानीय बोर्डोंपर निर्वाचित गैर-सरकारी जन-प्रतिनिधियोंका पूर्ण नियंत्रण स्थापित हुआ।

लार्ड रिपनके ही प्रयाससे कस्बों तथा शहरोंका म्युनिसिपल प्रशासन, जो जिला मजिस्ट्रेटोंके अधीन था, म्युनिसपलटियोंको सौंपा गया, जिनमें नागरिकोंके द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि होते थे। इन प्रतिनिधियोंको म्युनिसिपल कौंसिलर कहते थे। उन्हें अपना अध्यक्ष चुननेका अधिकार था, जो गैरसरकारी व्यक्ति भी हो सकता था। म्युनिसपलटियोंके जिम्मे सफाई, रोशनी, पेय जल, सडकोंका निर्माण तथा शिक्षा आदि अन्य नागरिक सुविधाओंकी व्यवस्थाका भार सौंपा गया। नौकरशाहीके विरोधके कारण इस व्यवस्थाको १९२१ ई०से पूर्व तक पूर्ण रीतिसे क्रियान्वित नहीं किया जा सका।

कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रासके तीन प्रेसीडेंसी नगरोंका म्युनिसिपल प्रशासन अलग ढगसे विकसित हुआ और ग्रामीण क्षेत्रोंका म्युनिसिपल प्रशासन अलग ढगसे। उन्नीसवीं शताब्दीके मध्य तक इन तीन नगरोंका म्युनिसिपल प्रशासन गवर्नर-जनरल द्वारा जस्टिस आफ पीसकी उपाधिसे सम्मानित विशिष्ट नागरिकोंकी कमेटियोंके हाथमें रहता था। उनके जिम्मे सफाई तथा पुलिस-व्यवस्था थी। उन्हें नगरके भीतर मकानोंके मालिकों तथा निवासियोंसे शुल्क लेकर धन सग्रह करनेका भी अधिकार था। १८५६ ई०में इन तीन नगरोंमें सफाईकी व्यवस्था बनाये रखने तथा सुधारके लिए तीन कमिश्नरोंकी नियुक्ति की गयी।

कलकत्तामें गैसकी रोशनी करने तथा नालोंका निर्माण करनेके लिए विशेष प्रबंध किये गये। यह व्यवस्था अप्रभावशाली सिद्ध होनेपर १८७६ ई०में कलकत्ता कारपोरेशनका पुनर्गठन किया गया। उसके ७२ सदस्योंमेंसे ४२ को करदाताओंके निर्वाचित प्रतिनिधि बना दिया गया, किन्तु चेयरमैन सरकार द्वारा मनोनीत किया जाता था। १८८२ ई०में निर्वाचित सदस्योंकी सख्या बढाकर ५० कर दी गयी, परन्तु

१८९९ ई०में उनकी संख्या घटाकर कारपोरेशनकी कुल सदस्य-संख्याकी आधी कर दी गयी और चेयरमैनको, जो सरकार द्वारा मनोनीत किया जाता था, विस्तृत अधिकार प्रदान कर दिये गये। निर्वाचित सदस्योंकी संख्या घटाये जानेका कलकत्ताकी जनता द्वारा तीव्र विरोध किया गया और विरोध-स्वरूप कलकत्ता कारपोरेशनके अट्ठाईस सदस्योंने सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके नेतृत्वमें इस्तीफा दे दिया। चौबीस साल बाद उन्हीं सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके नेतृत्वमें, जो उस समय बंगालके स्थानीय स्वशासन मंत्री थे, १८९९ ई० का प्रतिक्रियावादी कानून रद्द कर दिया गया और एक नया कानून बना, जिसके द्वारा कलकत्ता कारपोरेशनको नया रूप दिया गया। अब उसके लगभग सभी सदस्य करदाताओं द्वारा निर्वाचित किये जाते थे। इन सदस्योंको अपना मेयर (महापौर) चुनने तथा कारपोरेशनके एक्जीक्यूटिव अफसरोंको नियुक्त करनेका अधिकार होता था।

बम्बईमें १८७२ ई०में कारपोरेशनका नया संविधान बनाया गया, जिसके द्वारा उसका रूप बदल गया। अब उसमें सरकारी सदस्योंके बजाय, निर्वाचित सदस्योंकी बहुलता रहने लगी। उसके चौंसठ सदस्योंमें केवल एक-चौथाई सदस्य सरकारके द्वारा मनोनीत किये जाते थे। उसका चेयरमैन सरकारके द्वारा नियुक्त किया जाता था और उसे कमिश्नर कहते थे। उसका यह संविधान कुछ आवश्यक संशोधनोंके साथ, जिसके द्वारा निर्वाचित सदस्योंकी संख्या और बढ़ा दी गयी, तबसे आज तक कायम है। इसी प्रकार मद्रास कारपोरेशनमें १८८४ ई० में निर्वाचनका सिद्धान्त लागू किया गया। उसका चेयरमैन भी एक वैतनिक सरकारी अधिकारी होता है, जिसे सरकार नियुक्त करती है।

स्थायी बंदोबस्त—लार्ड कार्नवालिस (दे०) ने १७९३ ई०में बंगाल, बिहार तथा उड़ीसामें प्रचलित किया। यह भूमि-व्यवस्था तथा मालगुजारी वसूली (दे०) की एक प्रणाली थी। इसके अन्तर्गत जमींदारको इस शर्तपर जमीनका मालिक स्वीकार कर लिया गया कि वह वर्षकी एक नियत तिथिपर सरकारी खजानेमें वार्षिक मालगुजारी जमा कर दे। यह जमींदारको रैयतसे मिलनेवाले लगानका ९० प्रतिशत होती थी। इस प्रणालीके अन्तर्गत रैयतको जमींदार जब चाहे तब जमीनसे बेदखल कर सकता था।

इस प्रणालीके सम्बन्धमें परस्पर विरोधी मत प्रकट किये गये हैं। कुछ लोगोंके विचारसे यह व्यवस्था साहसपूर्ण तथा बुद्धिमत्तापूर्ण थी, जिसमें सरकार, जमींदार तथा जनता, तीनोंको लाभ हुआ। अन्य लोगोंके विचारमें यह एक भारी गलती थी जिससे काश्तकारोंको कोई लाभ नहीं हुआ। यह स्वीकार करना होगा कि स्थायी बन्दोबस्तके अन्तर्गत काश्तकारोंको पूरी तरहसे जमींदारोंकी कृपापर छोड़ दिया गया और इसके फलस्वरूप सरकारको मालगुजारीमें भविष्यमें होनेवाली वृद्धिको तिलांजलि दे देनी पड़ी। किंतु, इसके साथ ही यह भी सत्य है कि इस व्यवस्थासे ब्रिटिश सरकारको उस समय स्थायित्व प्राप्त हो गया, जब उसे उसकी सबसे अधिक आवश्यकता थी। किन्तु, इस व्यवस्थाके अन्तर्गत जमींदारोंको अनुचित रीतिसे जो लाभ प्रदान किये गये थे तथा काश्तकारोंको जो कठिनाइयां होती थीं, उनको ध्यानमें रखते हुए हालमें जमींदारोंको मुआवजा देकर यह व्यवस्था समाप्त कर दी गयी है।

स्रोङ्-ग्त्सन्-स्गम्-पो—तिब्बत (भोट देश) का सबसे प्रसिद्ध राजा, जिसने ६२९ ई० से ६५० ई० तक राज्य किया। इस प्रकार वह आंशिक रूपमें हर्षवर्धन (दे०) का समकालिक था। उसने ६४६–४७ ई०में हर्षवर्धनकी मृत्युके बाद उसकी गद्दीपर अधिकार कर लेनेवाले अर्जुनपर अधिकार कर लिया। उसने बौद्ध-धर्म ग्रहण कर लिया और तिब्बतमें उसका प्रचार किया। उसने ल्हासा नगरकी स्थापना की और भारतीय लिपिके आधारपर भोट लिपि निर्मित करायी, जो आज भी तिब्बतमें प्रचलित है।

स्लिम, सर विलियम—एक अंग्रेज सेनानायक, जो द्वितीय महायुद्धमें १४ वीं सेनाका कमाण्डर था। उक्त सेना दक्षिण-पूर्व एशिया तथा भारतमें जापानी आक्रमणको रोकनेमें लगी हुई थी। उसकी सेनाकी सातवीं टुकड़ीने १९४४ ई० में मणिपुरके निकट कोहिमा नामक स्थलपर जापानियोंको आगे बढ़नेसे रोका। इस प्रकार उसने भारतमें जापानियोंके बढ़ावको रोकनेमें पर्याप्त सफलता प्राप्त की।

स्लीमैन, सर विलियम—ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें नियुक्त एक पदाधिकारी। लार्ड विलियम बेंटिंकके प्रशासन-कालमें उसने ठगोंके दमनमें प्रमुख भाग लिया। उपरान्त वह अवधमें रेजीडेन्टके पदपर नियुक्त हुआ और इस पदपर १८४८ से १८५४ ई० तक रहा। अवधमें फैली हुई प्रशासकीय दुर्व्यवस्थाके सम्बन्धमें उसके द्वारा भेजी गयी रिपोर्टोंके आधारपर १८५६ ई० में अवध अंग्रेजोंके राज्यमें मिला लिया गया।

१८९९ ई०मे उनकी सख्या घटाकर कारपोरेशनकी कुल सदस्य-सख्याकी आधी कर दी गयी और चेयरमैनको, जो सरकार द्वारा मनोनीत किया जाता था, विस्तृत अधिकार प्रदान कर दिये गये। निर्वाचित सदस्योकी सख्या घटाये जानेका कलकत्ताकी जनता द्वारा तीव्र विरोध किया गया और विरोध-स्वरूप कलकत्ता कारपोरेशनके अट्ठाईस सदस्योने सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके नेतृत्वमे इस्तीफा दे दिया। चौबीस साल बाद उन्ही सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके नेतृत्वमे, जो उस समय बगालके स्थानीय स्वशासन मत्री थे, १८९९ ई० का प्रतिक्रियावादी कानून रद्द कर दिया गया और एक नया कानून बना, जिसके द्वारा कलकत्ता कारपोरेशनको नया रूप दिया गया। अब उसके लगभग सभी सदस्य करदाताओ द्वारा निर्वाचित किये जाते थे। इन सदस्योको अपना मेयर (महापौर) चुनने तथा कारपोरेशनके एक्जीक्यूटिव अफसरोको नियुक्त करनेका अधिकार होता था।

बम्बईमे १८७२ ई०मे कारपोरेशनका नया सविधान बनाया गया, जिसके द्वारा उसका रूप बदल गया। अब उसमे सरकारी सदस्योके बजाय, निर्वाचित सदस्योकी बहुलता रहने लगी। उसके चौसठ सदस्योमे केवल एक-चौथाई सदस्य सरकारके द्वारा मनोनीत किये जाते थे। उसका चेयरमैन सरकारके द्वारा नियुक्त किया जाता था और उसे कमिश्नर कहते थे। उसका यह सविधान कुछ आवश्यक सशोधनोके साथ, जिसके द्वारा निर्वाचित सदस्योकी सख्या और बढा दी गयी, तबसे आज तक कायम है। इसी प्रकार मद्रास कारपोरेशनमे १८८४ ई० मे निर्वाचनका सिद्धान्त लागू किया गया। उसका चेयरमैन भी एक वैतनिक सरकारी अधिकारी होता है, जिसे सरकार नियुक्त करती है।

स्थायी बदोबस्त—लार्ड कार्नवालिस (दे०) ने १७९३ ई०मे बगाल, बिहार तथा उडीसामे प्रचलित किया। यह भूमि-व्यवस्था तथा मालगुजारी वसूली (दे०) की एक प्रणाली थी। इसके अन्तर्गत जमीदारको इस शर्तपर जमीनका मालिक स्वीकार कर लिया गया कि यह वर्षकी एक नियत तिथिपर सरकारी खजानेमे वार्षिक मालगुजारी जमा कर दे। यह जमीदारको रैयतसे मिलनेवाले लगानका ९० प्रतिशत होती थी। इस प्रणालीके अन्तर्गत रैयतको जमीदार जब चाहे तब जमीनसे बेदखल कर सकता था।

इस प्रणालीके सम्बन्धमे परस्पर विरोधी मत प्रकट किये गये है। कुछ लोगोके विचारमे यह व्यवस्था साहसपूर्ण तथा बुद्धिमत्तापूर्ण थी, जिसमे सरकार, जमीदार तथा जनता, तीनोको लाभ हुआ। अन्य लोगोके विचारमे यह एक भारी गलती थी जिससे काश्तकारोको कोई लाभ नही हुआ। यह स्वीकार करना होगा कि स्थायी बन्दोबस्तके अन्तर्गत काश्तकारोको पूरी तरहसे जमीदारोकी कृपापर छोड़ दिया गया और इसके फलस्वरूप सरकारको मालगुजारीमे भविष्यमे होनेवाली वृद्धिको तिलाजलि दे देनी पडी। किंतु, इसके साथ ही यह भी सत्य है कि इस व्यवस्थासे ब्रिटिश सरकारको उस समय स्थायित्व प्राप्त हो गया, जब उसे इसकी सबसे अधिक आवश्यकता थी। किन्तु, इस व्यवस्थाके अन्तर्गत जमीदारोको अनुचित रीतिसे जो लाभ प्रदान किये गये थे तथा काश्तकारोको जो कठिनाइया होती थी, उनको ध्यानमे रखते हुए हालमे जमीदारोको मुआवजा देकर यह व्यवस्था समाप्त कर दी गयी है।

स्रोङ्-गम्पम्-स्गम्-पो—तिब्बत (भोट देश) का सबसे प्रसिद्ध राजा, जिसने ६२९ ई० से ६५० ई० तक राज्य किया। इस प्रकार वह आंशिक रूपमे हर्षवर्धन (दे०) का समसामयिक था। उसने ६४६–४७ ई०मे हर्षवर्धनकी मृत्युके बाद उसकी गद्दीपर अधिकार कर लेनेवाले अर्जुनपर अधिकार कर लिया। उसने बौद्ध-धर्म ग्रहण कर लिया और तिब्बतमे उसका प्रचार किया। उसने ल्हासा नगरकी स्थापना की और भारतीय लिपिके आधारपर भोट लिपि निर्मित करायी, जो आज भी तिब्बतमे प्रचलित है।

स्लिम, सर विलियम—एक अग्रेज सेनानायक, जो द्वितीय महायुद्धमे १४ वी सेनाका कमाण्डर था। उक्त सेना दक्षिण-पूर्व एशिया तथा भारतमे जापानी आक्रमणको रोकनेमे लगी हुई थी। उसकी सेनाकी सातवी टुकडीने १९४४ ई० मे मणिपुरके निकट कोहिमा नामक स्थलपर जापानियोको आगे बढनेसे रोका। इस प्रकार उसने भारतमे जापानियोके बढावको रोकनेमे पर्याप्त सफलता प्राप्त की।

स्लीमैन, सर विलियम—ईस्ट इडिया कम्पनीकी सेवामे नियुक्त एक पदाधिकारी। लार्ड विलियम बेन्टिकके प्रशासन-कालमे उसने ठगोके दमनमे प्रमुख भाग लिया। उपरान्त वह अवधमे रेजीडेन्टके पदपर नियुक्त हुआ और इस पदपर १८४८ से १८५४ ई० तक रहा। अवधमे फैली हुई प्रशासकीय दुर्व्यवस्थाके सम्बन्धमे उसके द्वारा भेजी गयी रिपोर्टोके आधारपर १८५६ ई० मे अवध अग्रेजोके राज्यमे मिला लिया गया।

१८९९ ई०मे उनकी सख्या घटाकर कारपोरेशनकी कुल सदस्य-सख्याकी आधी कर दी गयी और चेयरमैनको, जो सरकार द्वारा मनोनीत किया जाता था, विस्तृत अधिकार प्रदान कर दिये गये। निर्वाचित सदस्योकी सख्या घटाये जानेका कलकत्ताकी जनता द्वारा तीव्र विरोध किया गया और विरोध-स्वरूप कलकत्ता कारपोरेशनके अट्ठाईस सदस्योने सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके नेतृत्वमे इस्तीफा दे दिया। चौबीस साल बाद उन्ही सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके नेतृत्वमे, जो उस समय बगालके स्थानीय स्वशासन मत्री थे, १८९९ ई० का प्रतिक्रियावादी कानून रद्द कर दिया गया और एक नया कानून बना, जिसके द्वारा कलकत्ता कारपोरेशनको नया रूप दिया गया। अब उसके लगभग सभी सदस्य करदाताओ द्वारा निर्वाचित किये जाते थे। इन सदस्योको अपना मेयर (महापौर) चुनने तथा कारपोरेशनके एक्जीक्यूटिव अफसरोकी नियुक्त करनेका अधिकार होता था।

बम्बईमे १८७२ ई०मे कारपोरेशनका नया सविधान बनाया गया, जिसके द्वारा उसका रूप बदल गया। अब उसमे सरकारी सदस्योके बजाय, निर्वाचित सदस्योकी बहुलता रहने लगी। उसके चौसठ सदस्योमे केवल एक-चौथाई सदस्य सरकारके द्वारा मनोनीत किये जाते थे। उसका चेयरमैन सरकारके द्वारा नियुक्त किया जाता था और उसे कमिश्नर कहते थे। उसका यह सविधान कुछ आवश्यक सशोधनोके साथ, जिसके द्वारा निर्वाचित सदस्योकी सख्या और बढा दी गयी, तबसे आज तक कायम है। इसी प्रकार मद्रास कारपोरेशनमे १८८४ ई० मे निर्वाचनका सिद्धान्त लागू किया गया। उसका चेयरमैन भी एक वैतनिक सरकारी अधिकारी होता है, जिसे सरकार नियुक्त करती है।

स्थायी बदोबस्त—लार्ड कार्नवालिस (दे०) ने १७९३ ई०मे बगाल, बिहार तथा उडीसामे प्रचलित किया। यह भूमि-व्यवस्था तथा मालगुजारी वसूली (दे०) की एक प्रणाली थी। इसके अन्तर्गत जमीदारको इस शर्तपर जमीनका मालिक स्वीकार कर लिया गया कि वह वर्ष-की एक नियत तिथिपर सरकारी खजानेमे वार्षिक मालगुजारी जमा कर दे। यह जमीदारको रैयतसे मिलनेवाले लगानका ९० प्रतिशत होती थी। इस प्रणालीके अन्तर्गत रैयतको जमीदार जब चाहे तब जमीनसे बेदखल कर सकता था।

इस प्रणालीके सम्बन्धमे परस्पर विरोधी मत प्रकट किये गये हैं। कुछ लोगोके विचारमे यह व्यवस्था साहसपूर्ण तथा बुद्धिमत्तापूर्ण थी, जिससे सरकार, जमीदार तथा जनता, तीनोको लाभ हुआ। अन्य लोगोके विचारमे यह एक भारी गलती थी जिससे काश्तकारोको कोई लाभ नही हुआ। यह स्वीकार करना होगा कि स्थायी बन्दोबस्तके अन्तर्गत काश्तकारोको पूरी तरहसे जमीदारोकी कृपापर छोड दिया गया और इसके फलस्वरूप सरकारको मालगुजारीमे भविष्यमे होनेवाली वृद्धिको तिलाजलि दे देनी पडी। किंतु, इसके साथ ही यह भी सत्य है कि इस व्यवस्थासे ब्रिटिश सरकारको उस समय स्थायित्व प्राप्त हो गया, जब उसे इसकी सबसे अधिक आवश्यकता थी। किन्तु, इस व्यवस्थाके अन्तर्गत जमीदारोको अनुचित रीतिसे जो लाभ प्रदान किये गये थे तथा काश्तकारोको जो कठिनाइया होती थी, उनको ध्यानमे रखते हुए हालमे जमीदारोको मुआवजा देकर यह व्यवस्था समाप्त कर दी गयी है।

स्रोङ् ग्त्सम्-स्गम्-पो—तिब्बत (भोट देश) का सबसे प्रसिद्ध राजा, जिसने ६२९ ई० से ६५० ई० तक राज्य किया। इस प्रकार वह आशिक रूपमे हर्षवर्धन (दे०) का समसामयिक था। उसने ६४६–४७ ई०मे हर्षवर्धनकी मृत्युके बाद उसकी गद्दीपर अधिकार कर लेनेवाले अर्जुनपर अधिकार कर लिया। उसने बौद्ध-धर्म ग्रहण कर लिया और तिब्बतमे उसका प्रचार किया। उसने ल्हासा नगरकी स्थापना की और भारतीय लिपिके आधारपर भोट लिपि निर्मित करायी, जो आज भी तिब्बतमे प्रचलित है।

स्लिम, सर विलियम—एक अग्रेज सेनानायक, जो द्वितीय महायुद्धमे १४ वी सेनाका कमाण्डर था। उक्त सेना दक्षिण-पूर्व एशिया तथा भारतमे जापानी आक्रमणको रोकनेमे लगी हुई थी। उसकी सेनाकी सातवी टुकडीने १९४४ ई० मे मणिपुरके निकट कोहिमा नामक स्थलपर जापानियोको आगे बढनेसे रोका। इस प्रकार उसने भारतमे जापानियोके बढावको रोकनेमे पर्याप्त सफलता प्राप्त की।

स्लीमैन, सर विलियम—ईस्ट इडिया कम्पनीकी सेवामे नियुक्त एक पदाधिकारी। लार्ड विलियम बेन्टिकके प्रशासन-कालमे उसने ठगोके दमनमे प्रमुख भाग लिया। उपरान्त वह अवधमे रेजीडेन्टके पदपर नियुक्त हुआ और इस पदपर १८४८ से १८५४ ई० तक रहा। अवधमे फैली हुई प्रशासकीय दुर्व्यवस्थाके सम्बन्धमे उसके द्वारा भेजी गयी रिपोर्टोके आधारपर १८५६ ई० मे अवध अग्रेजोके राज्यमे मिला लिया गया।

१८६६ ई०में उनकी सख्या घटाकर कारपोरेशनकी कुल सदस्य-सख्याकी आधी कर दी गयी और चैयरमैनको, जो सरकार द्वारा मनोनीत किया जाता था, विस्तृत अधिकार प्रदान कर दिये गये। निर्वाचित सदस्योकी सख्या घटाये जानेका कलकत्ताकी जनता द्वारा तीव्र विरोध किया गया और विरोध-स्वरूप कलकत्ता कारपोरेशनके अट्ठाईस सदस्योने सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके नेतृत्वमे इस्तीफा दे दिया। चौबीस साल बाद उन्ही सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके नेतृत्वमे, जो उस समय बगालके स्थानीय स्वशासन मत्री थे, १८६६ ई० का प्रतिक्रियावादी कानून रद्द कर दिया गया और एक नया कानून बना, जिसके द्वारा कलकत्ता कारपोरेशनको नया रूप दिया गया। अब उसके लगभग सभी सदस्य करदाताओ द्वारा निर्वाचित किये जाते थे। इन सदस्योको अपना मेयर (महापौर) चुनने तथा कारपोरेशनके एक्जीक्यूटिव अफसरोको नियुक्त करनेका अधिकार होता था।

बम्बईमे १८७२ ई०मे कारपोरेशनका नया सविधान बनाया गया, जिसके द्वारा उसका रूप बदल गया। अब उसमे सरकारी सदस्योके बजाय, निर्वाचित सदस्योकी बहुलता रहने लगी। उसके चौसठ सदस्योमे केवल एक-चौथाई सदस्य सरकारके द्वारा मनोनीत किये जाते थे। उसका चेयरमैन सरकारके द्वारा नियुक्त किया जाता था और उसे कमिश्नर कहते थे। उसका यह सविधान कुछ आवश्यक सशोधनोके साथ, जिसके द्वारा निर्वाचित सदस्योकी सख्या और बढा दी गयी, तबसे आज तक कायम है। इसी प्रकार मद्रास कारपोरेशनमे १८८४ ई० मे निर्वाचनका सिद्धान्त लागू किया गया। उसका चेयरमैन भी एक वेतनिक सरकारी अधिकारी होता है, जिसे सरकार नियुक्त करती है।

स्थायी बदोबस्त–लार्ड कार्नवालिस (दे०) ने १७६३ ई०मे बगाल, बिहार तथा उड़ीसामे प्रचलित किया। यह भूमि-व्यवस्था तथा मालगुजारी वसूली (दे०) की एक प्रणाली थी। इसके अन्तर्गत जमीदारको इस शर्तपर जमीनका मालिक स्वीकार कर लिया गया कि वह वर्षकी एक नियत तिथिपर सरकारी खजानेमे वार्षिक मालगुजारी जमा कर दे। यह जमीदारको रैयतसे मिलनेवाले लगानका ६० प्रतिशत होती थी। इस प्रणालीके अन्तर्गत रैयतको जमीदार जब चाहे तब जमीनसे बेदखल कर सकता था।

इस प्रणालीके सम्बन्धमे परस्पर विरोधी मत प्रकट किये गये हैं। कुछ लोगोके विचारमे यह व्यवस्था साहसपूर्ण तथा बुद्धिमत्तापूर्ण थी, जिससे सरकार, जमीदार तथा जनता, तीनोको लाभ हुआ। अन्य लोगोके विचारमे यह एक भारी गलती थी जिसमे काश्तकारोको कोई लाभ नही हुआ। यह स्वीकार करना होगा कि स्थायी बन्दोबस्तके अन्तर्गत काश्तकारोको पूरी तरहसे जमीदारोकी कृपापर छोड दिया गया और इसके फलस्वरूप सरकारको मालगुजारीमे भविष्यमे होनेवाली वृद्धिको तिलाजलि दे देनी पडी। किंतु, इसके साथ ही यह भी सत्य है कि इस व्यवस्थासे ब्रिटिश सरकारको उस समय स्थायित्व प्राप्त हो गया, जब उसे इसकी सबसे अधिक आवश्यकता थी। किन्तु, इस व्यवस्थाके अन्तर्गत जमीदारोको अनुचित रीतिसे जो लाभ प्रदान किये गये थे तथा काश्तकारोको जो कठिनाइया होती थी, उनको ध्यानमे रखते हुए हालमे जमीदारोको मुआवजा देकर यह व्यवस्था समाप्त कर दी गयी है।

स्त्रोङ्‌ गम्पम्-स्गम्-पो–तिब्बत (भोट देश) का सबसे प्रसिद्ध राजा, जिसने ६२६ ई० से ६५० ई० तक राज्य किया। इस प्रकार वह आशिक रूपमे हर्षवर्धन (दे०) का समसामयिक था। उसने ६४६–४७ ई०मे हर्षवर्धनकी मृत्युके बाद उसकी गद्दीपर अधिकार कर लेनेवाले अर्जुनपर अधिकार कर लिया। उसने बौद्ध-धर्म ग्रहण कर लिया और तिब्बतमे उसका प्रचार किया। उसने ल्हासा नगरकी स्थापना की और भारतीय लिपिके आधारपर भोट लिपि निर्मित करायी, जो आज भी तिब्बतमे प्रचलित है।

स्लिम, सर विलियम–एक अग्रेज सेनानायक, जो द्वितीय महायुद्धमे १४ वी सेनाका कमाण्डर था। उक्त सेना दक्षिण-पूर्व एशिया तथा भारतमे जापानी आक्रमणको रोकनेमे लगी हुई थी। उसकी सेनाकी सातवी टुकडीने १९४४ ई० मे मणिपुरके निकट कोहिमा नामक स्थलपर जापानियोको आगे बढनेसे रोका। इस प्रकार उसने भारतमे जापानियोके बढावको रोकनेमे पर्याप्त सफलता प्राप्त की।

स्लीमैन, सर विलियम–ईस्ट इडिया कम्पनीकी सेवामे नियुक्त एक पदाधिकारी। लार्ड विलियम बेन्टिकके प्रशासन-कालमे उसने ठगोके दमनमे प्रमुख भाग लिया। उपरान्त वह अवधमे रेजीडेन्टके पदपर नियुक्त हुआ और इस पदपर १८४८ से १८५४ ई० तक रहा। अवधमे फैली हुई प्रशासकीय दुर्व्यवस्थाके सम्बन्धमे उसके द्वारा भेजी गयी रिपोर्टोके आधारपर १८५६ ई० मे अवध अग्रेजोके राज्यमे मिला लिया गया।

स्वेज नहर–१८६९ ई० मे तैयार की गयी, जिसमे भूमध्य-सागर लालसागरमे मिल गया। इसके फलस्वरूप भारत और यूरोपके बीच समुद्री मार्ग काफी छोटा हो गया। इससे पूर्व और पश्चिमके बीच व्यापारको ही नही, भारतमे यूरोपीय विचारोके प्रचार-प्रसारको भी प्रोत्साहन मिला। यह नहर लेसेप्स नामक फ्रासीसी इजीनियरने बनायी है।

स्वेन, क्लारा–पहली महिला डाक्टरके रूपमे १८७४ ई०मे भारत आयी। वह जन्मसे अमेरीकी थी। छ वर्ष बाद दूसरी महिला डाक्टरका आगमन हुआ। वह अग्रेज थी और उसका नाम फैनी बटलर था। पहली भारतीय महिला डाक्टर, एक बगाली महिला, श्रीमती कादम्बिनी गागुली थी।

ह

हटर शिक्षा कमीशन–लार्ड रिपन (१८८०–८४ ई०)के प्रशासनकालमे १८८२ ई०मे नियुक्त किया गया। कमीशनने भारतकी शिक्षा सम्बन्धी प्रगतिका सिहावलोकन किया और १८५४ ई०मे निर्धारित पश्चिमी शिक्षाका प्रसार करनेकी नीतिका पूरी तरहसे अनुमोदन किया। कमीशनकी सिफारिश थी कि जनतामे प्राथमिक शिक्षाका विस्तार तथा सुधार करनेके लिए विशेष उपाय किये जायँ। शिक्षा विभागमे अधिक अच्छे व्यक्तियोको आकर्षित करनेके उद्देश्यसे उसका पुन.सगठन किया जाय। उसने शिक्षण सस्थाओको अनुदान देनेकी प्रणालीका अनुमोदन किया और सिफारिश की कि सभी स्तरोकी शिक्षा अधिकाधिक निजी सस्थाओके हाथमे छोड देनी चाहिए और सरकारको अनुदान द्वारा उनकी सहायता करनी चाहिए। सरकारने रिपोर्ट स्वीकार कर ली और उसके फलस्वरूप देशमे शिक्षण सस्थाओकी सख्यामे स्थिर गतिसे वृद्धि होने लगी।

हंटर, सर विलियम विलसन–(१८४०–१९०० ई०)–एक परिष्कृत शिक्षाविद, ग्रन्थकार, सांख्यिकीविज्ञ अधिकारी, जिसने ग्लासगो, पेरिस तथा बानमे शिक्षा प्राप्त कर १८६२ ई०मे इडियन सिविल सर्विसमे प्रवेश किया और बगालमे नियुक्त हुआ। उसमे धारा-प्रवाह लिखनेकी शक्ति थी। १८६८ ई०मे उसने 'ग्रामीण बगालका क्रमानुसार इतिहास' लिखकर राजनेताके रूपमे अच्छा नाम कमाया। चार साल बाद 'भारतकी अनार्य भाषाओका तुलनात्मक कोश' प्रकाशित करके अपने पाण्डित्यका भी परिचय दिया। भारतके सांख्यिकीय सर्वेक्षणका प्रबन्ध किया और १८७५–७७ ई०मे 'बगालका सांख्यिकीय विवरण' २० खडोमे प्रकाशित किया। इम्पीरियल गजेटियर आफ इडिया भी २३ खण्डोमे तैयार किया, जिससे उसकी विद्वत्ता तथा परिश्रमशीलताका प्रमाण मिलता है। १८८२–८३मे शिक्षा कमीशन (दे०) की अध्यक्षता की। कमीशनकी रिपोर्टने देशकी शिक्षा-नीतिपर बहुत हद तक प्रभाव डाला। १८८७ ई०मे अवकाश ग्रहण करनेपर 'रूलर्स आफ इडिया' (भारतके शासक) पुस्तकमालाका सपादन किया और स्वय 'डलहौजी' और 'मेयो'-पर पुस्तके लिखी। उसकी लेखन-शैली अत्यत सुन्दर थी और उसकी पुस्तके रोचक होनेके साथ-साथ अत्यत ज्ञान-वर्द्धक थी। उसकी पुस्तकोने अग्रेजी भाषा-भाषी ससारको भारतसे परिचित करानेमे काफी योगदान किया।

हकीम दवाई–फारसीका एक विद्वान् तथा शाहजादा खुर्रम (बादमे बादशाह शाहजहाँ)का उस्ताद।

हकीम, शाहजादा मुहम्मद–बादशाह हुमायू (१५३०–३९ ई०)का दूसरा लडका और अकबरका भाई। अकबरने उसे अफगानिस्तानका हाकिम बना दिया और वह काबुलमे रहने लगा। १५८१ ई०मे उसने अकबरके खिलाफ बगावत कर दी परतु वह कुचल दी गयी। अकबरने उसे क्षमा कर दिया और वह अफगानिस्तानका हाकिम बना रहा। शाहजादा हकीम जबर्दस्त पियक्कड था। शराबखोरीकी वजहसे १५८४ ई०मे उसकी मृत्यु हो गयी।

हडप्पा–सिधु घाटी-सभ्यता (दे०)का एक प्राचीन केन्द्र, जो अब पश्चिमी पाकिस्तानके अन्तर्गत पजाबके माटगोमरी जिलेमे है। यह लगभग तीन मील परिधिका विशाल नगर था। पुरातत्त्व विभाग द्वारा की गयी खुदाईके फलस्वरूप यहाँ सुनियोजित ढगसे बने नगरके ध्वसावशेष मिले है। नगरमे अनाजके गोदाम, श्रमिकोके निवासस्थान परिखा-प्राकार और द्वारोसे युक्त दुर्ग तथा श्मशान भूमिके अवशेष मिले है। बहुत-सी मोहरे भी मिली है जिनपर अकित लिपिको अभी पढा नही जा सका है। खुदाईमे मिले अवशेषोसे प्रकट होता है कि यहाँपर उन्नत सभ्यता वर्तमान थी।

हबीबुल्ला खाँ अमीर–सन् १९०१ ई०मे अपने पिता अमीर अब्दुर्रहमानके मरनेपर अफगानिस्तानकी गद्दीपर बैठा। सन् १९१९ मे उसकी हत्या कर दी गयी। उसने

ब्रिटिश सरकारसे हिज मैजेस्टीकी उपाधि प्राप्त कर अफगानिस्तानकी स्वाधीनतापर व्यावहारिक स्वीकृति प्राप्त की। जब सन् १९०७ मे ब्रिटेन तथा रूसने अफगानिस्तानके सबन्धमे अमीरसे परामर्श किये बिना एक करारपर हस्ताक्षर किये, तो अमीरने उसपर अपनी स्वीकृति देनेसे इनकार कर दिया। अमीरकी नीति यह थी कि ब्रिटेन अथवा रूसकी अधीनता स्वीकार किये बिना स्वतत्रता कायम रखी जाय। प्रथम विश्वयुद्ध (१९१४–१८) मे अमीरने तटस्थ रहकर ब्रिटिश सरकारकी बडी सेवा की। अमीरकी हत्या हो जानेपर उसका बेटा अमानुल्ला खॉ गद्दीपर बैठा।

हमजा शाह, सैफुद्दीन—बगालका एक नवाब, जो इलियास शाही वश (दे०) का था। उसने केवल एक वर्ष और कुछ महीने (१४१०–१२ ई०) शासन किया और उसकी गद्दी राजा गणेश (दे०) ने छीन ली।

हमीद खॉ—सैयद वश (दे०) के अतिम सुलतान आलमशाह (१४४५–५३ ई०) का दीवान। उसने बहलोललोदीको दिल्लीकी गद्दीपर कब्जा करने मे मदद दी थी, परन्तु बहलोलने गद्दीपर बैठनेके बाद उसको जेलमे डाल दिया, ताकि वह नये सुलतानके मार्गका कॉटा न बन सके।

हमीदा बानू बेगम—बादशाह हुमायूँकी बेगम तथा उसके लडके अकबरकी माता। अकबरके राज्यकालके प्रारम्भिक वर्षोंमे प्रशासनपर उसका काफी प्रभाव था।

हम्मीर—मेवाड़का एक वीर राजपूत, जो राजवशसे सम्बन्धित था। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीके शासनके अतिम दिनोमे, १३१६ ई० के आसपास उसने दिल्लीके सुलतानसे चित्तौड वापस छीन लिया। उसका शासनकाल लम्बा और गौरवपूर्ण था। उसने १३६४ ई० तक अपनी मृत्युसे पूर्व पूर्वजोका सारा राज्य फिरसे जीत लिया था।

हम्मीर देव—रणथभौरका चौहान राजा, जिसने १२८२ से १३०१ ई० तक अपनी मृत्यु पर्यन्त राज्य किया। हम्मीरने बडी आनबानके साथ अपना शासन आरम्भ किया। उसने मालवाका एक भाग तथा गढमडल जीत लिया, अपने राज्यकी सीमा मालवामे उज्जैन तक तथा राजपूतानामे आबू पर्वत तक बढा ली। वह इतना शक्तिशाली था कि सुल्तान जलालुद्दीन खिलजीने १२९१ ई० मे रणथभोरका किला सर करनेका प्रयत्न त्याग दिया। बादमे उसने सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीकी सेनाके बगावत करनेवाले सरदारोको शरण देकर उसकी खुली अवहेलना की। उसने सुल्तानकी फौजके दो हमलोको विफल कर दिया। परतु अतमे १३०१ ई०मे सुल्तानने स्वय किला घेर लिया और उसे फतह कर लिया।

हरकिशन—सिक्खोके आठवे गुरु (१६६१–६४ ई०)। वे सातवे गुरु हररामके पुत्र और उत्तराधिकारी थे। उन्होने भी अपने पितामह गुरु हरगोविन्द सिंहकी भॉति सिक्खोको शस्त्र धारण करनेके लिए प्रोत्साहित किया।

हरगोविन्द—सिक्खोके छठे गुरु (१६०६–४५ ई०)। बादशाह जहॉगीरके आदेशसे पॉचवे गुरु अर्जुनको फॉसी दे दी जानेपर वे गद्दीपर बैठे। वे केवल धर्मोपदेशक ही नही, कुशल सगठनकर्ता भी थे और उन्होने अपने अनुयायियोको शस्त्र धारण करनेके लिए प्रेरित किया तथा छोटी-सी सेना इकट्ठा कर ली। इससे कुपित होकर बादशाह जहॉगीरने उनको बारह वर्ष तक कैदमे डाले रखा। रिहा होनेपर उन्होने शाहजहाँके खिलाफ बगावत कर दी, और १६२८ ई०मे अमृतसरके निकट सग्राममे शाही फौजको हरा दिया। अन्तमे उन्हे कश्मीरके पहाडोमे शरण लेनी पडी, जहाँ १६४५ ई० मे उनकी मृत्यु हो गयी।

हरदत्त—बुलदशहर अथवा बूरनका राजा, जिसपर सुल्तान महमूदने १०१८ ई० मे हमला किया। उसने सुल्तानकी अधीनता स्वीकार करके सुलह कर ली और इस्लाम धर्म कबूल कर लिया।

हरदयाल—एक सुशिक्षित भारतीय क्रातिकारी, जो दिल्लीके निवासी थे। पजाब विश्वविद्यालयसे ससम्मान बी० ए० पदवी प्राप्त करनेके बाद वे आक्सफोर्ड जाकर पढने लगे। वहाँ उनमे ब्रिटिश शासन-विरोधी तीव्र भावना उत्पन्न हो गयी। भारत लोटनेपर उन्होने अपने क्रातिकारी विचारोका प्रचार आरम्भ कर दिया। भारत सरकारने जब उनके मार्गमे रुकावट खडी कर दी, तब १९०८ ई० मे वे देशसे बाहर चले गये तथा यूरोपका विस्तृत भ्रमण करते हुए अतमे अमरीकामे जाकर बस गये। वहाँ उन्होने गदर पार्टीका सगठन किया एव भारत और जर्मनीके सहयोगकी जोरदार वकालत करने लगे। इस कारण उन्हे अमरीकासे निर्वासित कर दिया गया।

अन्तमे वे यूरोप चले गये और बर्लिनको अपना मुख्यालय बना लिया। वहाँसे उन्होने अफगानिस्तानमे अग्रेजोके खिलाफ बगावत करानेकी कोशिश की, परन्तु उनकी कोशिशे नाकाम रही। जर्मनीकी हारके बाद वे स्टाकहोममे बस गये और वहाँ भारतीय भाषाओके प्रोफेसर बना दिये गये। उनकी मृत्यु मध्य अमरीकामे

हुई, जहाँ वे व्याख्यान देने गये थे। वे भारतमें ब्रिटिश शासनके विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह सगठित करनेके समर्थक तथा उग्र समाजवादी थे।

हरद्वार–उत्तर प्रदेशमें हिन्दुओंका सबसे पवित्र तीर्थस्थान। यहाँपर गगा पहली बार पहाड़से मैदानमें उतरती है। यहाँपर गगा-स्नान अत्यत पुण्यकारी माना जाता है। इसके निकट काँगड़ीमें गुरुकुल विश्वविद्यालयकी स्थापना की गयी है।

हरपाल देव–देवगिरिका यादव राजा था। वह राजा रामचन्द्र देवका दामाद और उत्तराधिकारी था जिसे अलाउद्दीन खिलजीने १२९४ ई० में हराया था और खिराज देनेके लिए विवश किया था। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीका देहान्त हो जानेपर हरपाल देवने खिराज देना बन्द कर दिया, और अपनेको लगभग स्वतन्त्र कर लिया। परन्तु १३१७ ई०में सुल्तान मुबारक (दे०) ने उसे हरा दिया और कैद करनेके बाद फाँसी दे दी।

हर राय–सिक्खोंके सातवें गुरु (१६४६–६१ ई०) थे। उन्होंने अपने पितामह गुरु गोविन्द सिंहकी वित्तीय नीति जारी रखी।

हरविजय–कश्मीरी कवि द्वारा लिखित काव्य जिसमें पचास सर्ग हैं। रत्नकरनका समय नावीं शताब्दीका मध्य भाग माना जाता है। वह कश्मीरके राजा अवती-वर्मन (दे०) का समसामयिक था।

हरिनाथ–एक प्रसिद्ध हिन्दी लेखक था, जिसे बादशाह अकबर (१५५६–१६०५ ई०) का आश्रय प्राप्त था।

हरिपत फड़के–एक मराठा सेनापति, जिसने नाना फड़नवीसके आदेशसे दिसम्बर १७८५ ई० में मैसूरके टीपू सुल्तानके विरुद्ध मराठा सेनाका सेनापतित्व किया और टीपूको सुलहकी बातचीत शुरू करनेके लिए विवश किया। फलस्वरूप १७८७ ई० में सधि हुई, जिसके द्वारा टीपूने मराठोंको ४५ लाख रुपया और मराठों द्वारा अधिकृत इलाकोंके बदलेमें बदामी, किठूर और नारगुड जिले देना मजूर कर लिया।

हरि विजय सूरि–एक प्रमुख जैन मुनि थे, जो बादशाह अकबर (१५५६–१६०५ ई०) के समयमें हुए। बादशाह अकबरने फतेहपुर सीकरीके इबादतखानेमें धार्मिक विषयोंपर विचार-विनिमयके लिए जिन विद्वानोंको आमन्त्रित किया था, उनमें हरि विजय सूरि भी थे।

हरिषेण–वाकाटक वश (दे०) का अतिम राजा था, जिसने चौथीसे छठी शताब्दीतक मध्य प्रदेशपर शासन किया।

हरिषेण–गुप्तवशके द्वितीय सम्राट समुद्रगुप्त (लगभग ३३०–८० ई०) का एक सेनापति तथा दरबारी कवि था, जिसने इलाहाबादके स्तम्भपर उत्कीर्ण समुद्रगुप्तकी विजययात्राओंका वर्णन करनेवाली प्रशस्तिकी रचना की।

हरिसिंह–तिरहुतका राजा। उसने १३२१ ई० में नेपालपर हमला किया और वहाँके राजा जयसमुद्र मल्लको पराम्त करके तराईके सारे इलाकेपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। उसने सात गाँवको अपनी राजधानी बनाया और चीनसे दौत्य सम्बन्ध स्थापित किया। उसने स्थानीय राजाओंको अधिकारारूढ बनाये रखा। उसके उत्तराधिकारियोंने १४१८ ई० तक नेपालपर शासन किया।

हरिसिंह नवला (नलवा)– पजाबके महाराजा रणजीत सिंहका सिक्ख सेनापति, जिसने मई १८३४ ई० में पेशावरका किला फतह कर लिया और वह महाराज रणजीत सिंहके कब्जेमें आ गया। उसके पराक्रमका बड़ा दबदबा था।

हरिहर प्रथम–सगमका पुत्र था। उसने अपने चार भाइयोंकी सहायतासे, जिनमें बुक्काराय प्रथम सबसे मुख्य था, १३३६ ई० में तुगभद्राके दक्षिणी तटपर विजयनगरकी स्थापना की और इस प्रकार उस क्षेत्रमें विजयनगर साम्राज्य की नीव डाली। इस कार्यमें उसे दो ब्राह्मण आचार्यों, माधव विद्याराय और उनके ख्याततामा भाई, वेदोंके भाष्यकार सायणसे भी सहायता मिली। पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्र तटके बीचके सारे भू-भागपर अपना साम्राज्य स्थापित करनेके बाद हरिहर प्रथमकी १३५४–५५ ई०में मृत्यु हो गयी।

हरिहर द्वितीय–बुक्क प्रथमका पुत्र तथा उत्तराधिकारी, जो विजयनगर साम्राज्यका दूसरा राजा हुआ। उसने १३७७ से १४०४ ई० तक राज्य किया। उसने विजयनगर साम्राज्यकी सीमा दक्षिणमें त्रिचनापल्लीतक फैला दी।

हर्शेल कमेटी–ब्रिटिश भारतमें मुद्रा-सुधारपर विचार करनेके लिए १८९२ ई०में यह नियुक्त की गयी। उसकी सिफारिशोंके आधारपर भारत सरकारने टकसालोंमें सोना और चाँदी ले जाकर जनता द्वारा मनचाही मात्रामें सिक्के ढलवाना बद कर दिया। फिर भी टकसालोंमें १ शिलिंग ४ पेंसकी विनिमय दरपर चाँदीके रुपयोंके बदलेमें सोना ले लिया जाता था। सार्वजनिक ऋणोंकी अदायगीके रूपमें गिन्नियाँ स्वीकार कर ली जाती थीं। एक गिन्नी १५ रुपयेके बराबर मानी जाती थी। इन

सुधारोंके फलस्वरूप सोना विनिमय मूल्यका आधार बन गया, फिर भी तब तक उसे कानूनी मान्यता नही मिली थी।

हर्ष—कामरूपका सालसतम्ब-वंशी राजा। वह आठवी शताब्दीके मध्य भागमे राज्य करता था। उसने अपनी पुत्री राज्यमतीका विवाह नेपालके राजा जयदेवसे किया था।

हर्ष—कश्मीरका एक राजा, जिसने १०८९ से ११०१ ई० तक राज्य किया। वह बडा अत्याचारी था। क्रूरतामे उसकी तुलना रोमके सम्राट् नीरोसे की जाती है।

हर्ष चरित—हर्षवर्धनके राजकवि बाणकी रचना है। इसमे हर्षका प्रारम्भिक जीवन वृतान्त मिलता है जो विंध्या-चलके जगलोमे उसकी बहिन राज्यश्रीसे भेट होनेके साथ समाप्त हो जाता है। इसमे हर्षकी राज सभा, सेना और उस कालके समाजिक जीवनका विशद् चित्र मिलता है।

हर्षवर्धन—कन्नौज और थानेश्वरका राजा (६०६–४७ई०)। वह थानेश्वरके राजा प्रभाकरवर्धनका दूसरा पुत्र था। बड़े भाई राज्यवर्धनकी ६०६ ई० मे मृत्यु हो जानेपर उसने राज्यका शासन-भार सँभाला। जिस समय हर्ष सिंहासनपर बैठा, स्थिति अत्यन्त सकटपूर्ण थी। गौड (बगाल) के राजा शशाकने उसके बडे भाईका वध कर डाला था और उसकी छोटी बहिन राज्यश्री अपने प्राणो-की रक्षाके लिए किसी अज्ञात स्थानमे भाग गयी थी। इसके पति, कन्नौजके राजा ग्रहवर्माको मालवाके राजाने युद्धमे हरानेके बाद मार डाला था।

हर्षवर्धनने शीघ्र ही अपनी बहिनको ढूँढ निकाला और कामरूपके राजा भास्कर वर्मासे सधि करनेके बाद गौडके शशाकके विरुद्ध एक बडी सेना भेज दी। वह शायद शशाकको गद्दीसे उतार नही पाया, क्योकि शशाक ६१९ ई० तक तो निश्चित रूपसे राज्य करता रहा और उसके बाद भी शायद कई वर्ष तक जीवित रहा। फिर भी उसने एक बडी सेना एकत्र कर ली और सिंहासनपर बैठनेके बाद वह लगातार छह वर्ष तक युद्ध करता रहा, जैसाकि उसके समसामयिक चीनी यात्री ह्युएनसाग अथवा युवान च्वागने लिखा है, उसने 'पच-हिन्दू'को जीत लिया। 'पचहिन्दू'से युवान च्वाङ्गका आशय भारतके किन-किन भागोसे है, यह स्पष्ट नही है। फिर भी प्राचीन लेखोसे सिद्ध होता है कि हर्षवर्धनने वल्लभी, मगध, कश्मीर, गुजरात तथा सिंधको जीत लिया।

दक्षिणमे इसकी सेनाओको लगभग ६२० ई० मे चालुक्य राजा पुलकेशीय द्वितीयने नर्मदाके तटसे पीछे खदेड दिया, परन्तु वस्तुतः वह अपने लम्बे राज्यकालमे बराबर युद्ध करता रहा और उसके द्वारा अतिम लडाई ६४३ ई० मे गंजाममे छेडनेका उल्लेख मिलता है। इस प्रकार उसने विशाल साम्राज्यकी स्थापना की, जिसकी सीमाएँ उत्तरमे हिमाच्छादित पर्वतो तक, दक्षिणमे नर्मदा नदीके तट तक, पूर्वमे गजाम तथा पश्चिममे वल्लभी तक विस्तृत थी। कन्नौज इस विशाल साम्राज्य-की राजधानी थी।

हर्ष बडा योग्य शासक था और उसने महाराजा-धिराजकी पदवी धारण कर ली थी। उसने चीनी सम्राटसे दौत्य सम्बन्ध स्थापित कर रखा था। वह सभी धर्मोका आदर करता था, शिव और सूर्यके साथ-साथ बुद्धकी भी उपासना करता था। बादमे उसका झुकाव महायान बौद्ध धर्मकी ओर अधिक हो गया। सम्राट् अशोककी भाँति उसने भी अपने साम्राज्यमे यात्रियो, दीन-दुखियो तथा रोगियोकी सेवा-सुविधाके लिए स्थान-स्थानपर धर्मशाला, कुआँ, चिकित्सालय आदिका प्रबन्ध कर रखा था। वह प्रचुर मात्रामे दान देता था और पाँच वर्षोमे राज्यकोप-मे जो धन एकत्र होता था, उसे प्रयागमे गगा और यमुना-के सगमपर एक महोत्सव करके दान कर डालता था। चीनी यात्री ह्युएन-त्साग अथवा युवान च्वाङ्ग ६४३ ई० मे इस प्रकारके छठे महोत्सवमे सम्मिलित हुआ था। उसने महोत्सवका जो वर्णन किया है, उससे हर्षवर्धनके ऐश्वर्य और उसकी दानशीलताका स्पष्ट प्रमाण मिलता है।

हर्षवर्धन उच्च कोटिका कवि भी था। उसने सस्कृतमे नागानद, रत्नावली तथा प्रियदर्शिका नामसे तीन नाटकोकी रचना की है। वह कवियो और विद्वानोका आश्रयदाता था, कादम्बरी और हर्ष चरितके लेखक बाण, सुभाषितावलीके रचयिता मयूर और विद्वान चीनी यात्री ह्युएन-त्साग (दे०) को उसने आश्रय प्रदान किया था।

हर्ष-सवत्—थानेश्वर और कन्नौजके महाराजाधिराज हर्ष-वर्धनके सिंहासनारूढ होनेपर ६०६ ई० मे यह प्रचलित हुआ।

हलेबिड—होयसल नरेश द्वार समुद्रकी राजधानी, जहाँका होयसलेश्वर मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है। यह मदिर वास्तु-कलाकी अत्यन्त उल्लेखनीय कृति है और सारे एशियामे मानवीय उद्यमका इससे उत्तम उदाहरण दूसरा नही मिलता है।

हल्दीघाटकी लडाई–देखिये 'गोधूदाकी लडाई'।

हसन अली अब्दुल्ला–सैयद बन्धुओं (दे०)मे बडा भाई। छोटा भाई हुसेन अली (दे०) था।

हसन अली खाँ–बादशाह औरंगजेब (१६५८–१७०७ई०) का एक सेनापति। मथुराके फौजदारकी हैसियतसे उसने १६६९ ई० गोकुला (दे०) के नेतृत्वमे जाटोका बलवा दबाया था।

हसन-ए-देहलवी–शेख निजामुद्दीन हसनका नाम। सुलतान अलाउद्दीन खिलजी (१२९६–१३१६ ई०) के शासन-कालमे फारसीके एक कविके रूपमे उसकी ख्याति भारत-से बाहर तक फैल गयी थी।

हसन खाँ–बादशाह शेरशाह (१५४०–४५ ई०) का पिता। वह अपने पिता इब्राहीमके साथ पेशावरसे आया और पंजाबके एक जागीरदारकी सेवामे रहने लगा। वहीं उसका लडका फरीद पैदा हुआ जो बादमे शेरशाहके नामसे मशहूर हुआ। बादमे हसनको जौनपुरके सूबेदार-से बिहारके सासाराममे एक जागीर मिल गयी। वह अपनी पत्नीके प्रभावमे आकर जो शेरशाहकी विमाता थी, अपने लडकेके साथ अच्छा बर्ताव नही करता था। इसके फलस्वरूप शेरशाह अपने पितासे अलग हो गया। आगे चलकर उसने जो प्रसिद्धि प्राप्त की, उसमे उसके पिताका कोई हाथ नही था।

हसन खाँ मेवाती–एक अफगान सरदार, जिसने दिल्लीकी सल्तनतपर लोदी वंशका अधिकार बनाये रखनेकी कोशिश की। बाबरको हरानेके लिए वह मेवाडके राणा सांगासे जा मिला और १५२७ ई०मे खानवाके युद्धमे राणा सांगा-के साथ वह भी प्रथम मुगल बादशाह बाबर (१५२६–३० ई०)से पराजित हुआ।

हसन जफर खाँ–बहमनी राज्य तथा वंशका संस्थापक। (देखिये, अलाउद्दीन हसन बहमन शाह)।

हसनुन-निजामी–एक मुस्लिम इतिहासकार। उसने ताजुल-मासिरकी रचना की, जिसमे दिल्लीकी पहली सल्तनत (दे०)का प्रामाणिक विवरण मिलता है।

हस्तिवर्मा–वेङ्गीका राजा। द्वितीय सम्राट् समुद्र गुप्त (लगभग ३३०–३८० ई०) ने दक्षिण भारतके जिन राजाओको हरानेके बाद उनका राज्य लौटा दिया था, उनमे हस्ति-वर्मा भी था। विश्वास किया जाता है कि वह सालंकायन वंशका था जो उस समय कृष्णा और गोदावरी नदियोके बीच एल्लोरके सात मील उत्तरमे स्थित वेङ्गी अथवा पेद्दा-वेङ्गीमे राज्य करता था।

हाई कोर्ट–भारतमे हाईकोर्टोकी स्थापना १८६१ ई०के इंडियन हाईकोर्टस् ऐक्टके अंतर्गत की गयी। इससे पहले कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास मे दो-दो उच्च न्यायालय थे। एक तो सुप्रीम कोर्ट, जिसकी स्थापना ब्रिटिश सरकारने की थी, दूसरे सदर दीवानी अदालत तथा सदर निजामत अदालत, जिसकी स्थापना ईस्ट इंडिया कम्पनीने की थी। यह दोहरी न्याय व्यवस्था न्यायमे बाधक सिद्ध हो रही थी। इसलिए १८६१ ई० मे तीनो नगरोमे उनके स्थानपर एक-एक उच्च न्यायालयकी स्थापना की गयी। बादमे एक उच्च न्यायालयकी स्थापना इलाहाबादमे तथा १८६६ ई० मे एक चीफ कोर्टकी स्थापना पंजाबमे की गयी। इन न्यायालयोमे एक ही जाब्ता दीवानी, जाब्ता फौजदारी तथा भारतीय दंड विधानके अनुसार न्याय किया जाता था। इन सब कानूनोका निर्माण १८५९ मे १८६१ ई०के बीच किया गया। अब भारतके सभी मुख्य राज्योमे एक-एक उच्च न्यायालय है।

हाकिन्स, कैप्टेन विलियम–'हेक्टर' नामक जहाजपर पूर्व-की ओर ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी तीसरी यात्राका सचालक। बादशाह जहाँगीरके नाम इंग्लैडके राजा जेम्स प्रथमका पत्र लेकर वह १६०८ ई०मे सूरत पहुँचा। हाकिन्स स्थल मार्गसे मुगल दरबारमे गया और जहाँगीर-से भेंट की। वह मुगल दरबामे १६११ ई० तक रहा। जहाँगीर उससे अक्सर मिलता था और उसे ४०० सवारोका मनसबदार बना दिया। बादशाहके कहनेसे उसने एक आरमेनियाई ईसाई लडकीसे विवाह कर लिया। उसने अंग्रेजोको व्यापार सम्बन्धी कुछ सुविधाएँ देनेके लिए बादशाहको अनुकूल कर लिया, परंतु पुर्त-गालियोके विरोधके कारण इनपर अमल नही हो सका। हाकिन्स १६११ ई० मे मुगल दरबारसे चला गया और १६१२ ई० मे इंग्लैण्ड वापस हुआ। उसने भारतकी अपनी यात्राका वर्णन लिखा है।

हाग, सर स्टुअर्ट साण्डर्स–बीस वर्षकी अवस्थामे १८५३ ई० मे इंडियन सिविल सर्विसमे प्रवेश। वह पुराने पश्चिमोत्तर प्रांतके राजनीतिक विभागमे नियुक्त हुआ और गदरके समय पंजाबमे अच्छा कार्य किया। बादमे उसका तबादला बंगाल कर दिया गया, जहाँ वह कल-कत्ताका पुलिस कमिश्नर तथा १८६३ से १८७७ ई० तक म्युनिसपल बोर्डका चेयरमैन रहा। उसने कलकत्ता नगरके प्रबन्धमे सुधारकी नीति चालू की और उसकी स्मृतिमे कलकत्तामे चोरंगीके निकट हाग मार्केट स्थापित किया गया।

हाजसन, ब्रायन हगटन (१८००–९४ ई०)–रेजीडेंसी

कालेजमे शिक्षा प्राप्त की और १८१८ ई० मे इडियन सिविल सर्विसमे प्रवेश किया। उसका अधिकाश समय नेपालमे बीता जहाँ वह १८२० से १८३३ ई० तक असिस्टेण्ट रेजीडेण्ट रहा और उसके बाद मुख्य रेजीडेण्ट बना दिया गया। इस पदपर वह १८४४ ई० तक रहा। उसने नेपालके धर्म, साहित्य तथा भाषाका अध्ययन किया एव नेपालकी विविध जातियो, वहाँके वन्य जीवो तथा भूगोलका भी अध्ययन किया। उसने नेपालमे उत्तरी भारतके बौद्ध ग्रथोका अनुसधान किया और उनके अध्ययनमे इतना महत्त्वपूर्ण योग दिया कि महान् फ्रेंच प्राच्यविद्याविद् बरनाफने उसे "बौद्ध धर्मके वास्तविक अध्ययनका सूत्रपात करनेवाला" बताया है।

हाजी अहमद—बगालके नवाब अलीवर्दी खाँ (१७४०–५६ ई०) (दे०) का भाई। १७४० ई०मे गिरियाके युद्धमे सरफराज खाँ (दे०) को पराजित करनेमे अहमदने अपने भाई अलीवर्दीकी बडी मदद की और उसे बगालका नवाब बनाया। अहमदकी सबसे छोटी लडकी ही नवाब सिराजुद्दौला (१७५६–५७) (दे०) की माँ थी।

हाजी इब्राहीम सरहिन्दी—एक बहुत बडा विद्वान् तथा सस्कृतका मर्मज्ञ। उसने सम्राट् अकबरकी छत्रछायामे अपना जीवन व्यतीत किया। उसने अथर्ववेदका अनुवाद फारसीमे किया।

हाजी इलियास—लगभग १३४५–५७ ई० मे बगालका सुलतान। उसने शम्सुद्दीन इलियास शाहकी उपाधि ग्रहण की और पूर्वी बगालपर अधिकार करके उडीसा एव तिरहुतसे कर वसूल किया। फिर वह बनारस तक बढ आया। फलत दिल्लीका सुलतान फीरोजशाह तुगलक (१३५७ ई०) उसका मुकाबला करनेके लिए आगे बढा। लेकिन इलियासने प्रतिरक्षाकी ऐसी सुन्दर व्यवस्था की थी कि फीरोजशाह उसे पराजित किये बिना ही दिल्ली लौट गया। इलियास १३५७ ई० मे पाण्डुआमे मृत्युको प्राप्त हुआ। उसके वशजोने पश्चिमी बगालपर १४९० ई० तक शासन किया।

हाजी मौला—सुल्तान अलाउद्दीन (१२९६–१३१६ ई०) का एक असतुष्ट राज्याधिकारी। कोतवालके चुनावमे अपनी उपेक्षा किये जानेमे वह आक्रोशसे भर गया। जिस समय अलाउद्दीन रणथम्भोरकी लडाईमे लगा हुआ था, उसने दिल्लीमे बगावत कर दी, कोतवालको मार डाला, लाल महलपर कब्जा कर लिया, खजानेमे घुस गया और वहाँकी दौलत लूटकर अपने समर्थकोमे बाँट दी। उसने सुल्तान इल्तुतमिशके एक वशजको दिल्लीका सुल्तान घोषित कर दिया। परन्तु बगावतका यह झडा केवल चार दिन तक बुलद रह सका। सुल्तान अलाउद्दीनके समर्थकोने लाल महलपर फिरसे कब्जा कर लिया और हाजी मौला और उसके द्वारा बैठाये गये शहजादेको मार डाला। इस बगावतके फलस्वरूप अलाउद्दीनका ध्यान अपने प्रशासनकी त्रुटियोकी ओर गया और उसने ऐसी व्यवस्था कर दी कि भविष्यमे इस प्रकारकी बगावते न होने पाये। (देखिये, 'अलाउद्दीन खिलजी')

हाडसन, मेजर विलियम स्टीफेन रेकेस (१८२१–५८ ई०)—कैम्ब्रिजका स्नातक, जो १८४५ ई० मे ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी सेवामे आया। उसने प्रथम सिक्ख-युद्ध (१८४५ ई०) मे भाग लिया और १८४९ ई० मे पजाब दखल कर लिये जानेपर असिस्टेट कमिश्नर नियुक्त हुआ। किन्तु वह शीघ्र बेईमानीके आरोपमे नौकरीमे हटा दिया गया, बादमे उसे आरोपोसे मुक्त कर दिया गया और नौकरीमे फिर ले लिया गया। गदर शुरू होनेके समय वह फौजमे अफसर नियुक्त हुआ। उसने घुडसवारोकी एक पलटन तैयार की, जो हाडसनकी घुडसवार पलटन कहलाती थी। दिल्लीपर घेरा डाले जानेके समय वह भी अपनी पलटनके साथ मौजूद था। दिल्लीपर अधिकार होनेके बाद वह हुमायूँके मकबरे पहुँचा और वहाँ बूढे मुगल बादशाह बहादुर शाहको गिरफ्तार कर लिया। उसने शाहजादाको भी गिरफ्तार किया और वही मार डाला। फिर उसने कानपुरके निकट होनेवाली लडाईमे भाग लिया। लखनऊपर फिरसे दखल करनेके लिए जो लडाई हुई, उसमे वह १२ मार्च १८५८ ई० को मारा गया। गदरके दौरान भारतीयोके प्रति अपने प्रतिहिंसापूर्ण व्यवहारके लिए वह कुख्यात है।

हाथीगुम्फा लेख—देखिये, 'खारवेल'।

हाफिज रहमत खाँ—१८वी शताब्दीके ७वे दशकके प्रारभमे रुहेलखण्डपर शासन करनेवाले रुहेला सरदारोका मुखिया। वह सरदार अली मुहम्मदके मरनेपर उसके बेटोका सरक्षक बना, लेकिन बादमे स्वय राज्यका मालिक बन बैठा। १७७२ ई० मे रुहेलखडपर मराठोके हमलेकी आशका हुई। रहमत खाँने अवधके नवाब शुजाउद्दौलासे समझौता किया कि वह मराठोको भगानेकी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले, इसके बदलेमे रहमत खाँ ४० लाख रुपया नवाबको देगा। यह समझौता ब्रिटिश सेनापति सर राबर्ट बार्करकी मध्यस्थतामे हुआ था। उस

समय तो मराठे रुहेलखण्डकी सीमासे दूर चले गये, लेकिन १७७३ ई०मे वे फिर आ धमके और गगा पार करके रुहेलखण्डमे रामघाट तक आ पहुँचे। अवधका नवाब अग्रेजी फौजकी सहायता लेकर, जिसका नेतृत्व सर रावर्ट वार्कर कर रहा था, आगे वढा। मराठे लडनेके पहले ही भाग खडे हुए। नवावने रहमत खाँसे समझौतेके अनुसार ४० लाख रुपयोकी माँग की। रहमत खाँने रुपये नही दिये और यह वहाना किया कि नवावने कोई लडाई नही लडी। नतीजा यह हुआ कि १७७४ ई०मे नवावकी सेनाओने अग्रेजी सेनाको साथ लेकर रुहेलखण्डपर धावा वोल दिया। मीरनपुर कटराके युद्धमे रहमत खाँ वहादुरीसे लडा, लेकिन मारा गया। वह योग्य, वहादुर और सुसस्कृत शासक था, जो अपनी हिन्दू प्रजाका वहुत ध्यान रखता था। उसके शासन कालमे रुहेलखण्डने वहुत उन्नति की।

हारमाओस—भारतके उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रमे राज्य करनेवाला अतिम यवन राजा। वह ईसवी सन्की प्रथम शताब्दीमे राज्य करता था। भारतमे कुषाण साम्राज्यके सस्थापक कदफिसस प्रथमने उसका राज्य छीन लिया।

हारीतिपुत्र—अर्थात् हारीति ऋषिके वशज। सातकर्णि (दे०) और चालुक्य राजा अपनेको हारीतिपुत्र कहते थे।

हार्डिज, चार्ल्स, पेन्सहर्स्टका वैरन—१९१० से १९१६ ई० तक भारतका वाइसराय। वह लार्ड हार्डिजका पौत्र था जो १८४४ से १८४८ ई० तक भारतका गवर्नर-जनरल रहा। उसके प्रशासन कालमे १९११ ई० मे जार्ज पचम सम्राज्ञीके साथ भारत आया और दिल्लीमे एक शानदार दरवारमे उसकी ताजपोशी हुई। उसी समय भारतकी राजधानी कलकत्तासे दिल्ली स्थानातरित किये जानेकी घोषणा की गयी। इसके साथ ही पूर्वी वगालको फिरसे पश्चिमी वगालमे मिलाने और उसका शासन सपरिषद् गवर्नर द्वारा किये जाने, विहारको उडीसासे मिलाकर लेफ्टिनेण्ट-गवर्नरके अधीन एक नया प्रान्त वनाये जाने तथा चीफ कमिश्नरके अधीन आसामको पुन. अलग प्रात वनानेकी भी घोषणा की गयी।

१९१२ ई०मे जव लार्ड हार्डिज औपचारिक रीतिसे नयी राजधानी (नयी दिल्ली) मे प्रवेश कर रहा था, उसपर वम फेंका गया, जिससे वह गम्भीर रूपसे घायल हो गया। इस काण्डके वाद भी उसने अपनेको शान्त रखा और प्रतिशोधकी वैसी कोई नीति नही चलायी जैसी १९१९ ई० के उपद्रवोके वाद लार्ड चेम्सफोर्डने चलायी थी। १९१३ ई० मे लार्ड हार्डिजने मद्रासमे एक सार्वजनिक सभामे भाषण करते हुए दक्षिण अफ्रीकाकी सरकार द्वारा पास किये गये भारतीय-विरोधी इमिग्रेशन ऐक्ट (भारतीय प्रवास कानून) की तीव्र आलोचना की और उसे द्वेषपूर्ण एव अनुचित वताया। साथ ही गाधीजीने इस सम्वन्धमे जो सत्याग्रह-आन्दोलन चला रखा था उससे सहानुभूति व्यक्त की और एक ऐसी जाँच कमेटीकी नियुक्तिकी माँग की जिसमे भारतीयोको भी सम्मिलित होनेकी अनुमति दी जाय। अन्तमे दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारको झुकना पडा और उसने एक कमीशनकी नियुक्ति कर दी, जिसकी रिपोर्टके आधारपर भारतीय प्रवास कानूनमे इस प्रकारके सशोधन कर दिये गये कि गाधीने उसे दक्षिण अफ्रीकामे भारतीयोकी स्वाधीनताका मैग्ना चार्टा (घोषणापत्र) वताया।

लार्ड हार्डिजके प्रशासन-कालकी सवसे महत्त्वपूर्ण घटना थी अगस्त १९१४ ई० मे प्रथम विश्व-युद्धका छिड जाना तथा उसमे भारतको भी शामिल कर दिया जाना। लार्ड हार्डिजने वडे साहसका परिचय दिया और भारतमे जितने भी ब्रिटिश सैनिक उपलव्ध थे उन्हे तथा वडी सख्यामे भारतीय सैनिकोके दस्तोको लडनेके लिए भेज दिया। लार्ड हार्डिजकी लोकप्रियता तथा ब्रिटेनके प्रति भारतकी निष्ठाका परिचय इस वातसे मिलता है कि इसके प्रशासनके प्रारम्भिक वर्षोमे राजनीतिक आन्दोलनो तथा आतकवादी गतिविधियोका प्रावल्य होनेके वावजूद भारत पूर्ण रूपसे राजभक्त वना रहा और उसने १९१९ ई० की ब्रिटिश विजयमे यथेष्ट योग दिया।

हार्डिज, हेनरी, वाइकाउण्ट—१८४४ से १८४८ ई० तक भारतका गवर्नर-जनरल। नियुक्तिके समय उसकी उम्र ५९ साल थी और उसने यूरोपके दक्षिण पश्चिममे स्थित आइवेरियन प्रायद्वीपमे नेपोलियनकी फौजोसे होनेवाली लडाइयोमे हिस्सा लिया। उसने अपने प्रशासनके शुरूके डेढ वर्षोमे भारतमे रेल पथ वनानेकी दिशामे प्रारम्भिक कदम उठाये, गगा नहरकी योजनाको आगे वढाया, सती-प्रथा (दे०), उडीसाके पर्वतीय क्षेत्रोमे प्रचलित शिशुहत्या तथा मानव-वलिकी सामाजिक कुरीतियोको मिटानेके लिए प्रभावशाली काररवाइयाँ की।

उसके प्रशासन कालकी सवसे मुख्य घटना पहला सिक्ख-युद्ध (दे०) (१८४५-४६ ई०) था, जिसमे सुवराहानकी लडाईमे अग्रेजोकी विजय हुई और लाहोर-

की संधिके द्वारा सतलजके उस पारकी सारी भूमि तथा सतलज-व्यासके बीचका जलधरका सारा दोआबा अंग्रेजोको सौप दिया गया। इसके साथ ही सिक्खोने अंग्रेजोको १५ लाख पौंड (डेढ करोड रुपया) हर्जाना अथवा कश्मीरका इलाका और पाँच लाख पौंड नकद हर्जाना देना मंजूर कर लिया। सिक्खोने कश्मीरका इलाका सौंप देना पसंद किया और वह १० लाख पौंडमे जम्मूके राजा गुलाब सिंहके हाथ बेच दिया गया। पहले सिक्ख-युद्धकी विजयके उपलक्ष्यमे गवर्नर-जनरलको वाइकाउण्टका पदक दिया गया। १८४८ ई०मे भारतके गवर्नर-जनरलके पदसे अवकाश ग्रहण करनेपर लार्ड हार्डिंज ब्रिटेनमे ऊँचे पदोपर रहा। वह पहले ब्रिटिश सेनामे तोपखानेका प्रधान और फिर प्रधान सेनापति हुआ। उसने ब्रिटिश सेनामे कई सुधार किये। उसकी मृत्यु १८५६ ई० मे हुई।

हाल—सातवाहन वंश (दे०) का सत्रहवाँ राजा। उसके राजकीय जीवनके बारेमे कुछ पता नही है, परन्तु उसका नाम महाराष्ट्री प्राकृतमे लिखी शृंगार रसकी कविताओंके संग्रह 'गाथा सप्तशती'के साथ जुडा हुआ है।

हालवेल, जान जेफानिया—(१७११–९८ ई०)—यह एक सर्जनका सहायक बनकर ईस्ट इण्डिया कम्पनीके जहाजसे १७३२ ई०मे कलकत्ता आया और कम्पनीके जहाजोमे सर्जन नियुक्त हो गया। वह पटना, ढाका और कलकत्तामे रहा। कलकत्तामे वह प्रधान सर्जन बना दिया गया। बंगालके नवाब सिराजुद्दौलाने जब १८ जून १७५६ ई०मे कलकत्तापर हमला किया, वह कौंसिलका सातवाँ सदस्य था। गवर्नर ड्रेक और कौंसिलके सभी ज्येष्ठ सदस्य कलकत्तासे भाग गये और गंगाके मुहानेपर स्थित फुल्टामे शरण ली। किलेकी रक्षाका भार हालवेलपर आ पड़ा। वह केवल एक दिन डटा रह सका।

२० जून, १७५६ ई०को नवाबकी फौजोने किलेपर कब्जा कर लिया। हालवेलके वर्णनके अनुसार १४६ अंग्रेज स्त्री और पुरुष, जिनमे वह भी सम्मिलित था, किलेके अन्दर एक तंग अंधेरी कोठरीमे, जिसमे हवा और पानीका कोई इंतजाम नही था, कैद कर दिये गये। दूसरे दिन सुबह उसमे केवल २३ कैदी, जिसमे वह भी था, जिंदा बचे। बाकी दम घुटने और प्याससे मर गये। हालवेल कैदीके रूपमे मुर्शिदाबाद भेज दिया गया और १७ जुलाई, १७५६ ई० को छोडा गया। अगले वर्ष फरवरीमे वह छुट्टीपर इंग्लैंड चला गया और थोड़े समय बाद बंगाल कौंसिलका सदस्य बनकर वापस लौटा। २८ जनवरीसे २७ जुलाई, १७६० ई० तक उसने गवर्नरकी हैसियतसे भी कार्य किया और वैन्सीटार्ट उसका उत्तराधिकारी बना। इसके बाद उसने कम्पनीकी नौकरीसे अवकाश ले लिया। १७६१ ई० मे वैन्सीटार्टके गवर्नर नियुक्त होनेपर कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सको एक विरोध-पत्र भेजा गया जिसपर उसने भी हस्ताक्षर किया था। इसीपर उसे कम्पनीकी नौकरीसे निकाल दिया गया। हालवेलमे लेखन प्रतिभा थी, परन्तु उसने 'अंधेरी कोठरी'की दुखद कहानीका जो विवरण दिया है, उसकी सत्यतापर बहुत अधिक संदेह किया जाता है। (देखिये, 'अंधेरी कोठरीकी दुखद घटना')

हालहेडका हिन्दू कानून—यह गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्सके संरक्षणमे तैयार किया गया। दस पंडितोके द्वारा स्मृतियोके आधारपर हिन्दू व्यवहार (कानून) पर एक ग्रंथ तैयार किया गया था और यह ग्रंथ उसीके फारसी रूपान्तरका अंग्रेजोमे अनुवाद था।

हिकी, जेम्स आगस्टस—भारतके प्रथम अंग्रेजी समाचार-पत्र, बंगाल गजटका सम्पादक। यह पत्र १७८० ई० मे प्रकाशित हुआ, परन्तु वारेन हेस्टिंग्सने १७८२ ई० मे उसे बन्द कर दिया, क्योकि उसमे सरकार और उसके अधिकारियोपर बराबर तीव्र आक्षेप किये जाते थे।

हिकी, थामस—एक चित्रकार, जो भारत चला आया। १७८८ ई० मे उसने कलकत्तासे अंग्रेजीमे 'चित्रकला और मूर्तिकलाका इतिहास प्राचीन वर्णनोके आधारपर' शीर्षक ग्रंथ प्रकाशित कराया। उसने १७९९ ई० मे श्री रंगपट्टमके ऐतिहासिक चित्र भी छापे। १८२२ ई० तक उसने बहुतसे कलमी चित्र बनाये जो कलकत्ताके राजभवनमे टँगे है।

हिजरी सन्—मुसलमानी संवत्सर, जिसका प्रारम्भ ६२२ ई० मे मुहम्मद साहबकी हिज्रतसे हुआ, जब वे मक्का छोडकर मदीना जा बसे थे। यह चान्द्र वर्षपर आधारित है जो ३५४ दिनका होता है और इसमे सौर वर्षसे ११ दिन कम होते है।

हिण्डाल, मिर्जा—मुगल बादशाह हुमायूँ (१५३०–३५ ई०) के तीन छोटे भाइयोमेसे एक। हुमायूँ उसके साथ उदारताका व्यवहार करता था, परन्तु वह अक्सर एहसान-फरामोश बन जाता था। जब हुमायूँ बंगालमे युद्ध कर रहा था, उसपर संचार मार्ग खुले रखनेका भार डाला गया। परन्तु हिंडालने अपना दायित्व पूरा नही किया। इस प्रकार १५३९ ई० मे चौसाकी लडाईमे हुमायूँकी हारमे उसका भी योगदान था। इसके बाद

भी हुमायूने उसे क्षमा कर दिया, परन्तु वह जब विपत्तिमे पडा तो हिण्डालने उसकी मदद नही की। वह अपने बडे भाई कामरानमे मिल गया और हुमायूँ-की सहायता करनेसे इनकार कर दिया। शीघ्र ही कामरानसे भी वह झगडा कर बैठा और फिर हुमायूँसे आ मिला। हुमायूँ द्वारा दिल्लीकी सल्तनत फिरसे प्राप्त करनेसे पूर्व ही एक अफगानने रातमे हमला करके उसे मार डाला।

हिन्दी–भारतीय गणराज्यके सविधानमे राष्ट्रभाषा घोषित और सर्वाधिक प्रचलित भारतीय भाषा। यह सस्कृतसे निकली है और सस्कृतकी तरह देवनागरी लिपिमे लिखी जाती है, परन्तु व्यवहार रूपमे विभिन्न हिन्दी-भाषी क्षेत्रोमे इसका अलग-अलग रूप प्रचलित है। यह बगाल और आसामको छोडकर सारे उत्तरी भारतकी बोलचाल-की भाषा है। दक्षिण भारतमे यह लोक-प्रचलित भाषा नही है, परन्तु वहाँ भी इसका शीघ्रतासे प्रसार हो रहा है। इसका विशाल साहित्य है और हिन्दीका सबसे लोकप्रिय ग्रथ तुलसीदास रचित 'रामचरितमानस' है। तुलसीदास सोलहवी शताब्दीमे हुए थे और बादशाह अकबर (१५५६–१६०५ ई०) के समकालीन थे।

हिन्दी लेखकोमे प्रेमचद (१८८०–१९३६) ने सबसे अधिक कथा-साहित्य लिखा है। हिन्दीके दो रूप हैं—एक पूर्वी हिन्दी, जो अवध तथा बघेलखडमे बोली जाती है, दूसरी पश्चिमी हिन्दी, जो गगाके दोआबके मध्यवर्ती तथा उत्तरी भागमे बोली जाती है। भारतीय भाषा-भाषियोमे हिन्दी-भाषियोकी सख्या सबसे अधिक है।

हिन्दुस्तान–इसका अर्थ है हिन्दुओका स्थान। इस शब्दका व्यवहार पेशावरसे लेकर आसामतक समस्त उत्तरी भारतके लिए किया जाता है। उत्तरी भारतपर मुसलमानोकी विजयके बाद इसका प्रचलन हुआ। कभी-कभी इस शब्दका व्यवहार व्यापक अर्थमे सारे भारतके लिए भी किया जाता है।

हिन्दू–इसका अर्थ है हिन्दू धर्मको जाननेवाला। उसके लिए यह आवश्यक नही है कि वह किसी विशेष मत-मतान्तरका माननेवाला हो। सामाजिक जीवनमे हिन्दू-की बाहरी पहचान सिर्फ इस बातसे होती है कि वह जाति-व्यवस्थाको मानता है। परन्तु जाति-व्यवस्थाकी कडियाँ भी शीघ्रतासे कमजोर पडती जा रही हैं।

हिन्दू कालेज–१८१६ ई० मे कलकत्तामे राजा राममोहन राय और डेविड हेयर सदृश लोगोके प्रयत्नसे इसकी स्थापना हुई। इसका उद्देश्य देशके लोगोमे अग्रेजी शिक्षाका प्रसार करना था। यद्यपि लार्ड हेस्टिंग्सने, जो उस समय गवर्नर-जनरल था, इस कालेजका सरक्षक होना स्वीकार कर लिया था, तथापि शुरूसे इसकी स्थापना स्वदेशके लोगोके प्रयत्नसे हुई थी। बादमे इसे सरकारने ले लिया और आगे चलकर यही प्रेसीडेंसी कालेज, बन गया।

हिन्दूकुश–हिमालयके पश्चिममे एक लम्बी और ऊँची पर्वतमाला। इसके उस पार मध्य एशियाका मैदान स्थित है। इसलिए इसे बहुधा भारतकी प्राकृतिक सीमा माना जाता है, परन्तु ईसा पूर्व चौथी-तीसरी शताब्दीके थोडेसे कालको छोडकर यह कभी भारतीय साम्राज्यके अतर्गत नही रहा।

हिन्दू धर्म–एक अनुपम धर्म। यह 'अपौरुषेय' कहा जाता है, अर्थात् किसी पुरुष विशेषने इसकी स्थापना नही की। यह सनातन कालसे चला आ रहा है। इसके मानने-वालोके लिए किसी विशेष मतमे विश्वास करना आव-श्यक नही है। मूलतः यह एक ब्रह्ममे विश्वास करता है जो सारे ब्रह्माडमे व्याप्त है। परन्तु यह अपने अकमे उन लोगोको भी समेटे हुए है जो अनेक देवी-देवताओमे विश्वास करते है और उन लोगोको भी जो नास्तिक है। यह ईश्वरको निराकार मानता है, फिर भी मूर्त्ति-पूजाको स्वीकार करता है। यह आत्मामे विश्वास करता है और मानता है कि कर्मके अनुसार उसका पुनर्जन्म होता रहता है। यह मोक्ष अथवा पुनर्जन्मसे मुक्ति पा जानेमे विश्वास करता है। यह मानता है कि ज्ञान तथा सत्कर्मसे सभी दुःखोका अत तथा मोक्षकी प्राप्ति होती है। मोक्षका अर्थ है आत्माका परमात्मासे मिल जाना। यह मानता है कि यज्ञसे देवताओको प्रसन्न करके उनका अनुग्रह प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु यह यज्ञसे ज्ञान तथा भक्तिको श्रेष्ठ मानता है। यह सोऽह (जो वह है, मैं हूँ) की घोषणा करता है, परन्तु इसके साथ ही मनुष्य और ईश्वरके द्वैत भावको भी स्वीकार करता है। हिन्दू धर्मकी निष्ठाका बाह्य लक्षण जाति-व्यवस्थाको स्वीकार करना तथा वेदोको अपौरुषेय मानना है। यद्यपि आधु-निक हिन्दू धर्म और प्राचीन वैदिक धर्ममे बहुत अधिक अतर है।

यह प्रचलित धारणा ऐतिहासिक दृष्टिसे गलत है कि हिन्दू धर्म दूसरे धर्मावलम्बियोको अपनेमे अगीकृत नही करता। प्राचीन पुरातत्त्व-परक और साहित्यिक सामग्रीसे प्रकट होता है कि प्राचीन कालमे भारतपर

आक्रमण करनेवाले और यहाँ वस जानेवाले वहुतसे यवनो, शको, गुर्जरो तथा हूणोको हिन्दू धर्ममे दीक्षित कर लिया गया। इधर हालमे अहोम लोगोको, जो तेरहवी शताब्दीके आरम्भमे भारत आये और आसाममे वस गये, सोलहवी शताब्दीमे सामूहिक रूपसे हिन्दू धर्म-मे अगीकृत कर लिया गया। ऐतिहासिक दृष्टिसे यह कहना भी गलत है कि हिन्दू धर्म सदैव भारतवर्षके भीतर सीमित रहा। अकाट्य प्रमाणोसे सिद्ध होता है कि इस्लामके आगमनसे पूर्व हिन्दू धर्म पश्चिममे मैडा-गास्कर तक तथा पूर्वमे मलय प्रायद्वीप, जावा, सुमात्रा, चम्पा (अनाम) तथा कम्वोडिया तक फैल गया था। इन देशोमे हिन्दू प्रवासियोने जाकर अपना राज्य स्थापित किया, और वहाँ अपने धर्म, अपने दर्शन, अपनी पवित्र सस्कृत भाषा और अपनी कलाका प्रसार किया। जावासे लेकर कम्वोडिया तक भारतीय वास्तुकलाके सुन्दर नमूने मिलते हैं।

हिन्दू धर्म अपने अकमे कई मतोको समेटे हुए है, जिनमे शैव, शाक्त और वैष्णव मुख्य है। ये सभी मता-वलम्वी वेदोको प्रमाण मानते हैं। हिन्दू दर्शनका आधार उपनिषद् (दे०) हैं। भगवद्गीतामे सभी-दर्शनोका सार मिल जाता है और षड्दर्शनो (दे०) मे उसका विस्तार मिलता है। रामायण तथा महाभारत, इन दो महाकाव्यो-मे हिन्दू धर्मके धार्मिक और सामाजिक विचारो तथा आदर्शोका वर्णन मिलता है और प्रत्येक हिन्दू इन ग्रथोका वडा आदर करता है।

हिन्दू धर्मकी सवसे महत्त्वपूर्ण विशेषता उसकी सहिष्णुता है। वह हर धर्मके प्रति सहिष्णुताका भाव रखता है और ईसाई धर्मके अतगत रोमन कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेण्ट लोगो तथा इस्लाम धर्म और दूसरे धर्म-के अनुयायियोके वीच जिस प्रकारकी खूनी लडाइयाँ हुई, वह हिन्दू धर्मकी भावनाके विपरीत है। हिन्दू देवी-देवताओकी उपासनाके लिए सारे भारतवर्षमे अनेकानेक मदिर निर्मित किये गये है, परन्तु हिन्दू धर्ममे उपासनाके लिए मदिरकी खास आवश्यकता नही है। हिन्दू धर्ममे उपासनाका आधार वैयक्तिक है, यद्यपि सामूहिक उपा-सना भी प्रचलित है। वस्तुतः हिन्दू धर्म अपने अनुयायियो-को इस वातकी वहुत अधिक छूट देता है कि चाहे जिस रूपमे और चाहे जिस स्थानपर उपासना और प्रार्थना की जाय।

हिन्दू पद पादशाही—दूसरे पेशवा वाजीराव प्रथम (१७२०–४० ई०) का लक्ष्य इसकी स्थापना करना था। इसका अर्थ था भारतपर मुसलमानी शासन समाप्त करनेके लिए सभी हिन्दू राजाओका एक हो जाना। इस लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए आवश्यक था कि मराठे, जो उस समय धीरे-धीरे प्रमुखता प्राप्त करते जा रहे थे, अन्य सभी हिन्दू राजाओके साथ मैत्रीपूर्ण, उदारतापूर्ण तथा वरा-वरीका व्यवहार करते ताकि स्वराज्यकी स्थापनामे सभी हिन्दू भागीदार वन सकते। परन्तु तीसरे पेशवा वालाजी वाजीराव (१७४०–६१ ई०) ने इस नीतिको जान-वूझ कर त्याग दिया और उसने केवल मराठोकी प्रमुखता स्थापित करनेका प्रयास किया। उसने हिन्दू राजाओ और उनकी हिन्दू प्रजाको भी उसी प्रकार लूटना और उनके साथ निर्दयताका व्यवहार करना शुरू कर दिया, जिस प्रकार मुसलमान शासकोके साथ वर्ताव किया जाता था। फल यह हुआ कि हिन्दू पद-पादशाहीकी स्थापनाका विचार समाप्त हो गया।

हिन्दू विश्वविद्यालय, वनारस—पंडित मदन मोहन मालवीयके प्रयत्नोसे इसकी स्थापना १९१५ ई० मे हुई। उन्होने कुछ समय पूर्व एनी वेसेन्ट द्वारा स्थापित सेण्ट्रल हिन्दू कालेजको ही विश्वविद्यालयका रूप दे दिया। मालवीय-जीने विश्वविद्यालयके निर्माणार्थ रुपया इकट्ठा करनेके लिए सारे भारतका भ्रमण किया और देशी नरेशोसे भी काफी आर्थिक सहायता प्राप्त की। यह भारतमे गैर-सरकारी प्रयत्नोसे स्थापित पहला विश्वविद्यालय था जिसका नाम एक सम्प्रदायसे जुडा था। अव इसे केन्द्रीय सरकारने अपने हाथमे ले लिया है।

हिमालय—भारत और तिव्वतके वीचकी पर्वत्-श्रृखलाओका नाम है। इसके पश्चिमी वाजूपर सिंधु नद और पूर्वी वाजूपर ब्रह्मपुत्र नद है। इन पर्वत्-श्रृखलाओकी लम्वाई १५०० मील और चौडाई १०० से १५० मील है। सवसे ऊँचा इसका शिखर एवरेस्ट (या सागरमाथा) है। इसका कुछ भाग वर्षके वारहो महीने हिमाच्छादित रहता है। हिमालय कई नदियोका उद्गम-स्थल है, जिनमे सिन्धु, सतलज, गगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र, कोसी, गडक तथा सुवर्णश्री मुख्य है। हिमालय प्रदेशमे अत्यधिक गर्म-जल-वायुसे लेकर अत्यधिक ठडी जलवायु मिलती है। यहाँ-पर अनेक प्रकारके पशु और अनेक प्रकारकी वनस्पत्तियाँ मिलती हैं। हिमालयने भारतीय राजनीति, भारतीय दर्शन तथा भारतीय धर्मको सर्वाधिक प्रभावित किया है। उत्तरमे इसने एक प्रकारसे भारतकी दुर्लंध्य रक्षापक्तिका निर्माण कर दिया है। इसकी धूसरता, गरिमा तथा विशालताके कारण हिन्दू लोग इसको देवताओका वास-

स्थान मानने लगे और इसने हिन्दू दर्शन और धर्मको विशिष्ट दिशा प्रदान की। इसने सभी युगोके हिन्दू साहित्यको प्रभावित किया है।

हिम्मत बहादुर–शस्त्रधारी दशनामी गोसांइयोके एक सम्प्रदायका नेता, जिसने महादजी शिन्देकी सहायता की।

हिसलप, सर थामस–मद्रासी सेनाका प्रधान सेनापति (१८१४–२० ई०) होकर भारत आया और पेंढारियो-के युद्ध (१८१७–१८ ई०) मे दक्षिणमे अग्रेजी सेनाका सेनापतित्व किया। इस युद्धमे पेंढारियोको कुचल दिया गया। उसने महीदपुरकी लडाई (१८१७ ई०) मे होल्कर को भी हराया। वह चाहता था कि युद्धमे जो लूट-पाटकी गयी थी, उसका सारा हिस्सा दक्खिनी सेना-को मिले। इसके फलस्वरूप मुकदमेबाजी हुई और उसे लूट-पाट की सामग्रीमे उत्तरी भारतकी सेनाको भी हिस्सा देना पडा।

हीनयान–बौद्ध धर्मके पश्चात्यकालीन महायान सम्प्रदायसे अन्तर दिखानेके लिए उसके प्रारम्भिक रूपको हीनयान कहते है। हीनयानके अनुसार बौद्धधर्मके सस्थापक गौतम बुद्ध महामानव थे, जो हमारे आदर और सम्मान-के पात्र है। परन्तु महायानकी तरह वह उन्हे अलौकिक व अमानव रूप नही प्रदान करता। हीनयानमे भिक्षुका चरम लक्ष्य निर्वाणकी प्राप्ति माना जाता है और अष्टागिक मार्गपर आरूढ होकर चार आर्य सत्योमे विश्वास करते हुए उसकी प्राप्तिका प्रयत्न करना होता है। ('बौद्ध धर्म' के अंतर्गत भी देखिये)

हुगली–कलकत्तासे कुछ मील उत्तर, हुगली नदीके तटपर स्थित एक कसबा। इसके उत्तरमे सतगाँव (सप्तग्राम) स्थित था जो सोलहवी शताब्दीमे बगालकी एक मडी थी। पुर्तगाली लोग १५५९ ई० के आसपास हुगलीमे आकर बस गये। १६३२ ई० मे मुगलोने हुगलीकी पुर्तगाली बस्तीको घेर कर उसपर कब्जा कर लिया। इसके बाद हुगली नगरकी अवनति होने लगी। इसीके पासमे बादमे डेनमार्कवालोने श्रीरामपुर, डच लोगोने चिनसुरा तथा फ्रेच लोगोने चन्द्रनगरकी बस्तियाँ बनायी।

हुगली–गगाको बगालकी खाडीसे जोड़नेवाली नदी। इसे भागीरथी भी कहते है। इसके तटपर कलकत्ता, हुगली, चिनसुरा जैसे महत्त्वपूर्ण नगर स्थित हैं। इस नदीके दोनो तटोपर अब बहुतसे कारखाने, विशेष रूप-से जूट मिलें स्थापित हो गयी है।

हुमायूँ, बहमनी–बहमनी वश (दे०)का ग्यारहवाँ सुलतान। उसने १४५७ से १४६१ ई० के बीच राज्य किया। वह इतना अत्याचारी था कि उसका उपनाम ही 'जालिम' पड गया।

हुमायूँ, बादशाह–मुगल वशके प्रवर्तक बाबरका लडका और उत्तराधिकारी। हुमायूँने १५३० ई० से १५४० ई० तक और फिर १५५५ से १५५६ ई० तक शासन किया। वह इतना बली और दृढ-सकल्प नही था कि उसके पिताने भारतमे जो साम्राज्य जीता था, उसपर वह अपना अधिकार मजबूत बना सकता। उसने अपना शासन अच्छे ढगसे प्रारम्भ किया और १५३५ ई० मे मालवा और गुजरातपर स्वय चढाई करके उसे जीत लिया। परन्तु उसने मेवाडके राजपूतोका सुलहका प्रस्ताव नामजूर करके बुद्धिमानीका कार्य नही किया। इतना ही नही, नये जीते हुए राज्योपर अपना आधिपत्य मजबूतीसे स्थापित करनेसे पूर्व ही वह आगरा जाकर रगरेलियोमे डूब गया। इसका फल यह हुआ कि मालवा और गुजरात अगले ही साल उसके हाथसे निकल गये।

इस बीच बिहार और बगालमे एक अफगान सरदार, शेर खाँ (दे०) प्रबल हो गया और १५३७ ई०मे हुमायूँ-ने उसपर हमला बोल दिया। परन्तु रणचातुरी तथा युद्धकी पैतरेबाजीमे उसने पूरी तरह मात खायी और शेर खाँने १५३९ ई०मे गगाके तटपर चौसाकी लडाईमे हुमायूँको हरा दिया। फलस्वरूप बगाल और बिहार हुमायूँके हाथसे निकल गये। १५४० ई०मे हुमायूँने शेर खाँकी ताकतको कुचलनेका दूसरा प्रयत्न किया, परन्तु कन्नौजकी लडाईमे फिर उसकी हार हुई। हुमायूँ-को अपनी राजधानी और गद्दी दोनोसे हाथ धोकर भागना पडा। विजयी शेर खाँकी फौजे उसका पीछा करती रही। उसने अब उसने शेरशाहके नामसे अपनेको दिल्लीका बादशाह घोषित कर दिया।

हुमायूँ खानाबदोशोकी तरह पहले सिंधकी तरफ भागा और वहाँ समर्थन प्राप्त करनेका प्रयास किया, फिर मेवाडकी तरफ भागा और जब वहाँ भी समर्थन न मिला तो दुबारा सिंधकी तरफ भागा। विपत्तिके इन्ही दिनोमे उसने हमीदा बानू बेगमसे शादी की, और उसीके गर्भसे १५४२ ई०मे उसका प्रसिद्ध पुत्र अकबर पैदा हुआ।

हुमायूँ बडी कठिनाईसे १५४४ ई०मे फारस पहुँचा और वहाँके शाह ताहमस्पने उसको शरण दी। हुमायूँने अपनेको शिया (दे०) घोषित कर दिया और शाह ताहमस्पने उसे फौजी सहायता प्रदान की। इस मददसे हुमायूने १५४५ ई०मे अपने बेवफा भाई कामरानसे

कन्दहार और काबुल छीन लिया। इस प्रकार अफगानिस्तान फिरसे उसके आधिपत्यमे आ गया। वह वहाँ उपयुक्त समयकी प्रतीक्षा करता रहा। १५५५ ई०मे, जब शेरशाहके उत्तराधिकारी आपसमे लड रहे थे, उसने भारतपर चढाई कर दी और फरवरीमे लाहौरपर कब्जा कर लिया। इसके बाद सरहिन्दकी लडाईमे पजाबके बागी सूबेदार सिकन्दर सूरको हरानेके बाद उसने उसी साल जुलाईमे दिल्ली और आगरा ले लिया। परन्तु दिल्लीमे अपने कुतुबखाने (पुस्तकालय)की सीढियोसे अकस्मात् गिर पडनेसे जनवरी १५५६ ई०मे उसकी मृत्यु हो गयी।

हुलागू—एक मगोल सरदार, जिसका सुल्तान मुहम्मद तुगलक (१३२५–५१ ई०)ने पहले स्वागत किया और पजाबमे लाहौरमे उसे एक जागीर प्रदान की। १३३५ ई०मे जब सुल्तान दिल्लीसे बाहर था, उसने बगावत कर दी और अपनेको स्वतत्र घोषित कर दिया। परन्तु शीघ्र ही सुल्तानकी फौजने, जिसका नेतृत्व उसका वजीर ख्वाजा जहाँ कर रहा था, उसे हरा दिया। हुलागू देशसे बाहर भाग गया और उसके समर्थक निर्दयतापूर्वक मार डाले गये। यह बगावत मुहम्मद तुगलककी सल्तनतके टूटनेकी पहली निशानी थी।

हुविष्क—कुषाण राजा कनिष्क (लगभग १२०–६२ ई०)का लडका और उत्तराधिकारी। उसने लगभग १६२–१८० ई० तक राज्य किया। उसके सिक्के बहुत अधिक सख्यामे और विविध प्रकारके मिलते हैं। इससे मालूम पडता है, वह कनिष्क द्वारा जीते गये विस्तृत साम्राज्यपर राज्य करता था। उसके सिक्कोपर यूनानी, ईरानी तथा भारतीय देवताओके चित्र मिलते है। इससे सकेत मिलता है कि वह सभी धर्मोके प्रति आदरभाव रखता था। उसके राज्यकालकी घटनाओका कोई विवरण प्राप्त नही है।

हुशग शाह—मालवाका सुल्तान (१४०६–३५ ई०)। उसका मूल नाम अलपशाह (दे०) था। उसने अपनी राजधानी मांडूमे कई सुन्दर भवन बनवाये।

हुसेन, अमीर—मिस्रके उस बेडेका कमाडर जो पुर्तगालियोसे लोहा लेनेमे गुजरातके सुल्तान महमूद बेगडा (१४५९-१५११ ई०)की मदद करनेके लिए आया। उसने सुल्तानके बेडेके साथ मिलकर १५०८ ई०मे चौलकी लडाईमे पुर्तगाली बेडेको हरा दिया। परन्तु अगले साल उसे पराजयका मुह देखना पडा और ड्यूके निकट समुद्री लडाईमे पुर्तगालियोने उसका बेड़ा नष्ट कर दिया।

हुसेन अली—सैयद बधुओमे छोटे भाईका नाम हुसेन अली और बडे भाईका नाम हसन अली अब्दुल्ला था। उसने अपने चाचा जहाँदार शाहको हराकर उसके स्थानपर बादशाह फर्रुखशियर (१७१२–१३ ई०)को गद्दीपर बैठानेमे मदद दी। दिल्लीकी बादशाहतपर दोनो भाइयोका भारी प्रभाव था। हुसेन अली मीर बख्शी बना दिया गया। उसने मारवाडके विद्रोहका दमन किया और दक्खिनका सूबेदार नियुक्त हुआ। १७१८ ई०मे यह सुनकर कि बादशाह उसे तथा उसके भाईको मरवा डालनेकी साजिश कर रहा है, वह दिल्ली लौट आया। सैयद बधुओने फर्रुखशियरकी आँखे फोड दी और उसे गद्दीसे हटा दिया (१७१९)। अगले सात महीनोमे सैयद बधुने एकके बाद एक, चार कठपुतली शासकोको दिल्लीकी गद्दीपर बैठाया और थोडे समय बाद उन्हे गद्दीसे उतार दिया और मार डाला। इस तरह दिल्लीके बादशाह बनाना या बिगाडना वस्तुत उनके हाथमे था। अन्तमे जैसेको तैसा मिला। १७१९ ई०मे हुसेन अलीने मुहम्मदशाहको बादशाह बनाया और उसने १७२० ई०मे उसे मरवा डाला।

हुसेन निजाम शाह—अहमद नगरके निजाम शाही वश (दे०) का तीसरा सुल्तान। उसने १५५३ से १५६५ ई० तक राज्य किया तथा विजय नगर साम्राज्यके विरुद्ध गोलकोडा और बीजापुरके सुल्तानोसे सुलह कर ली और १५६५ ई०मे तालीकोट की लडाईमे हिस्सा लिया। इस लडाईमे मुसलमानी सेनाकी विजय हुई। परतु हुसेन निजाम शाहकी उसी साल मृत्यु हो गयी और वह इस विजयसे कोई लाभ न उठा सका।

हुसेन शाह—अहमद नगरका एक शाहजादा, जिसे विश्वासघाती वजीर फतह खाँने १६३० ई० मे अहमद नगरकी गद्दी पर बैठाया। परन्तु १६३१ ई०मे मुगलोने अहमद नगर पर कब्जा कर लिया और उसे मुगल साम्राज्यमे सम्मिलित कर लिया। शाहजादा हुसेन शाह ग्वालियरके किलेमे कैद कर दिया गया और उसके पतनके बाद अहमद नगरके स्वतत्र राज्यका अत हो गया।

हुसेन शाह—बगालका सुल्तान, जिसने १४९३से१५१९ई०तक शासन किया। वह पहले बगालके सुल्तान शम्सुद्दीन (दे०) का बडा वजीर था। शम्सुद्दीन बडा जालिम था, इसलिए सरदारोने उसे मार डाला और हुसेन शाहको बगालकी गद्दीपर बैठाया। उसने अपना नाम सुल्तान अलाउद्दीन हुसेन शाह रखा तथा हुसेन शाह वशका आरभ किया, जो १४९३ से १५३९ ई० तक बगालपर शासन करता रहा।

हुसेन शाह—जौनपुरके शर्की वंशका अंतिम सुल्तान (१४५७–७६ ई०)। उसने गद्दीपर बैठनेके बाद ही दिल्लीके सुल्तान बहलोल लोदी (दे०) से सुलह कर ली। इसके बाद उसने तिरहुतके जमींदारोंका दमन किया, उड़ीसामें घुस कर लूटमार की और ग्वालियरके राजा मान सिंहपर चढ़ाई कर दी और उससे भारी हर्जाना वसूल किया। परंतु १४७६ ई०में सुल्तान बहलोल लोदीने उसे हरा दिया और जौनपुरसे खदेड़ दिया। उसने बंगालके सुल्तान हुसेन शाहकी शरण ली और अपने अंतिम दिन बिहारमें भागलपुरके निकट कोलगांवमें बिताये। उसकी मृत्यु १५०० ई०में हुई।

हूगेल, बैरन कार्ल वान—एक जर्मन यात्री, जो १८३५ ई०में पंजाबके महाराज रणजीत सिंह (दे०) के दरबारमें आया। वह रणजीत सिंहको एक शक्तिशाली राजा मानता था, क्योंकि अपने राज्यपर उसका पूरा नियंत्रण था और उसने आपसी लड़ाई झगड़ोंको समाप्त कर दिया था।

हूण—मध्य एशियाके यायावर (खानाबदोश), जिन्होंने पाँचवीं शताब्दी ईसवीमें भारतपर आक्रमण आरंभ किये। हूणोंका पहला बड़ा आक्रमण पांचवीं शताब्दीके मध्यमें हुआ। स्कन्द गुप्त (४५५–६७ ई०) ने ४५५ ई० में उन्हें पीछे ढकेल दिया। परंतु बादके वर्षोंमें उन्होंने और बड़ी संख्यामें आक्रमण किया और गुप्त सम्राट्को इतने संकटमें डाल दिया कि उसे अपने सिक्कोंमें मिलावट करनी पड़ी। हूणोंके आक्रमणने दुर्धर्ष रूप ले लिया और उनका नेता तोरमाण ५०० ई० के आसपास मालवाका स्वतंत्र शासक बन गया। उसका लड़का तथा उत्तराधिकारी एक पापाचारी कराल सेनापति था। उसने पंजाबमें साकल अथवा स्यालकोट को अपनी राजधानी बनाया। उसने चारों ओर आतंक फैला दिया और सभी लोग उसे घृणाकी दृष्टिसे देखने लगे। अंतमें मालवाके राजा यशोधर्मा और बालादित्य (जिसकी पहचान मगध-के गुप्त राजा नरसिंहसे की जाती है) के संयुक्त प्रयत्नसे ५२८ ई० के आसपास उसे परास्त कर दिया गया। पराजित हूण भारतमें बस गये और भारतीय बन कर हिन्दू धर्ममें दीक्षित हो गये। आठवीं शताब्दी और उसके बाद जिन बहुत-सी राजपूत जातियोंने प्रमुखता प्राप्त की, उनके बारेमें विश्वास किया जाता है कि उनकी उत्पत्ति हूणोंसे हुई थी।

हेमंत सेन—बंगालके सेन वंशका दूसरा राजा। वह ग्यारहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें राज्य करता था। उसने 'महाराजाधिराज'की उपाधि धारण कर रखी थी, परंतु वह उतना शक्तिशाली नहीं था जितना इस उपाधिसे सूचित होता है। उसकी गतिविधियोंके बारेमें हमें बहुत थोड़ी जानकारी प्राप्त है।

हेमचन्द्र—एक विशिष्ट विद्वान् और जैन आचार्य (१०८८–११७२ ई०), जिसके ग्रंथ 'त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र' में तिरसठ महापुरुषोंकी जीवनी दी गयी है। इसके परिशिष्ट भागका नाम 'परिशिष्ट पर्व' है। इसमें जिन स्थविरोंके नाम आये हैं, उन्हें कुछ हद तक ऐतिहासिक व्यक्ति माना जाता है।

हेमाद्रि—प्रसिद्ध धर्मशास्त्रकार, जो दक्षिण भारतमें हुआ। उसे वारंगलके यादव राजाओंका आश्रय प्राप्त था। १२६० और १३०९ ई० के बीच किसी समय उसने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ 'चतुर्वर्गचिंतामणि' लिखा जिसमें व्रत, दान, तीर्थयात्रा, मोक्ष-प्राप्ति, श्राद्ध आदिके विशद नियम वर्णित हैं।

हेमू—बादमें राजा विक्रमाजीत—मेवातके रेवाड़ी नामक स्थानमें एक वैश्य परिवारमें उत्पन्न हुआ। अपनी योग्यताके कारण वह शेर शाह द्वारा स्थापित सूर वंशके तीसरे राजा आदिल शाह (१५५४–५६ ई०) का दीवान बन गया गया। हुमायूँने जब १५५५ ई०में दिल्लीपर फिरसे दखल कर लिया, आदिलशाह चुनारमें था और उसने उत्तरी भारतका सारा भार हेमूपर छोड़ रखा था। १५५५ ई०में हुमायूँकी मृत्यु हो जानेपर हेमूने ग्वालियर-से आगे बढ़ कर आगरा और दिल्लीपर कब्जा कर लिया। इससे उसकी महत्त्वाकांक्षा जाग्रत हो उठी और उसने राजा विक्रमाजीतके नामसे अपनेको स्वतंत्र राजा घोषित कर दिया। इस प्रकार वह अकबरका सबसे बड़ा प्रतिद्वन्द्वी बन गया।

५ नवम्बर १५५६ ई० को पानीपतका दूसरा-युद्ध हुआ। हेमू बड़ी बहादुरीसे लड़ा और उसने अपनी सेनाका नायकत्व बड़ी कुशलतासे किया। परंतु एक घटनाके कारण अकबर विजयी हो गया। एक तीर हेमूकी आँखमें घुस गया और वह अचेत हो गया। उसके गिरते ही उसकी सेनामें, जिसमें अफगान, पठान, और हिन्दू सैनिक थे और जिनको उसने अपने कुशल नेतृत्व तथा धनके बलपर संयुक्त कर रखा था, भगदड़ मच गयी और हेमू बंदी बना लिया गया। उसे किशोर अकबरके सम्मुख ले जाया गया, जिसने अपने संरक्षक बैराम खांके कहनेसे तलवारसे उसका सिर धड़से उड़ा कर उसे मार डाला।

हेयर, डेविड (१७७५–१८४२ ई०)—भारतमें रहनेवाले जिन मुट्ठी भर अंग्रेजोंने भारतीयोंकी भलाईमें अपना

समय और शक्ति लगायी, उनमेसे एक था। उसने भारत-मे पश्चिमी शिक्षाका प्रसार करनेके लिए विशेष उद्योग किया। वह स्काटलैंडका निवासी घडीसाज था, जो १८०० ई० मे कलकत्ता आया और घडियोकी मरम्मत के काममे दक्षता प्राप्त कर ली। १८१६ ई० मे उसने अपना कारोबार एक सम्बन्धीको सौप दिया और स्वय अपना सारा समय कलकत्तामे रहनेवाले भारतीयोके बीच परोपकारमे बिताने लगा। उसने एक अग्रेजी स्कूल-की स्थापनाके लिए विशेष उद्यम किया और मुख्य रूपसे उसीके प्रयत्नोसे २० जनवरी १८१७ ई०को हिन्दू कालेज-की स्थापना हुई। अगले साल उसने अग्रेजी तथा बगला पुस्तकोके मुद्रण तथा प्रकाशनके लिए 'स्कूल बुक सोसाइटी'-की स्थापना की।

उसने समाचारपत्रोकी स्वाधीनताके विरुद्ध बनाये गये नियमोको रद्द करानेके लिए भारी दौडधूप की और १८३५ ई०मे सर चार्ल्स मेटकाफके प्रशासन-कालमे उसे इस कार्यमे सफलता मिली। उसने सुप्रीम कोर्टमे जूरियो-की सहायतासे मुकदमेकी सुनवाईकी प्रथा चलानेके लिए भी भारी प्रयत्न किया और उसका यह प्रयत्न भी बादमे सफल हुआ। १८४२ ई० मे कलकत्तामे हैजेसे उसकी मृत्यु हुई। उसकी परोपकारिता, दयालुता और उदारताने कलकत्ताके लोगोको इस सीमा तक प्रभावित किया कि उन्होने चदा करके उसकी सगमरमरकी एक मूर्ति बनवायी, जो कलकत्ताके एक केन्द्रीय स्थानमे स्थापित है। उसकी स्मृतिमे उसके नामसे एक स्कूलकी भी स्थापना की गयी है।

हेरात—अफगानिस्तानका एक प्रान्तीय नगर। यह जिस प्रान्तकी राजधानी था, उसे ग्रीक लोग एरिया कहते थे। यह प्रदेश हिन्दूकुशके ठीक पूर्वमे है और सामरिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उत्तर-पश्चिममे इसे भारतवर्षकी प्राकृतिक सीमा माना जाता है। ईसवी पूर्व छठी शताब्दी-मे यह फारसके साम्राज्यके अन्तर्गत था। ईसवी पूर्व चौथी शताब्दीमे सेलेउकसने यह प्रदेश चन्द्रगुप्त मौर्यको दे दिया और मौर्य साम्राज्यके अन्ततक उसके अधीन रहा। इसके बाद ईसवी सन्‌की प्रारम्भिक शताब्दियोमे इस उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रपर यवन और पार्थियन राजाओ-का राज्य हो गया। इसके बाद हेरात कभी भारतीय साम्राज्यके अन्तर्गत नही रहा। फारस और अफगानि-स्तानके बीच इस प्रदेशके लिए बराबर लडाइयाँ होती रही। अन्तमे १८६३ ई०मे दोस्त मुहम्मदने इसे अपने राज्यमे मिला लिया। अग्रेज राजनीतिज्ञो और युद्ध-विशारदोका अग्रसर नीतिका पोषक दल शुरूसे इस पक्षमे रहा कि इस भू-भागको अपने अधिकारमे कर लेना चाहिए। इसी उद्देश्यसे पहला और दूसरा अफगान-युद्ध (दे०) हुआ, परन्तु इस नीतिमे सफलता न मिल सकी। उत्तर-पश्चिममे प्राकृतिक सीमाकी नीतिके पोषकोका मनोरथ कभी पूरा नही हो सका।

हेलिओक्लीज—बैक्ट्रियाका अन्तिम यवन राजा। उसका काल लगभग १४०–१३० ई० पू० माना जाता है।

हेलियोडोरस—दिया (दियोन)का पुत्र और तक्षशिलाका निवासी। पाँचवें शुङ्ग राजा काशीपुत भागभद्रके राज्य-कालके चौदहवें वर्षमे तक्षशिलाके यवन राजा एण्टि-आल्कीडस (लगभग १४०–१३० ई०पू०)का दूत बनकर वह विदिशा आया। हेलियोडोरस यवन होते हुए भी भागवत धर्मका अनुयायी हो गया था। उसने देवाधिदेव वासुदेव (विष्णु)का एक गरुड-स्तम्भ बनवाया। यह सारी सूचना उक्त स्तम्भ पर अकित है, जिससे प्रकट होता है कि हेलियोडोरसको महाभारतका परिचय था। यह स्तम्भ-लेख महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इससे प्रकट होता है कि ईसा पूर्व दूसरी शताब्दीमे यवनोने हिन्दू धर्म अगीकार कर लिया था। इससे वैष्णव धर्मके क्रमिक विकासपर भी प्रकाश पडता है।

हेविट, जनरल—मई १८५७ ई०मे जब गदर शुरू हुआ, मेरठकी छावनीमे भारतीय और ब्रिटिश सेनाओका कमाण्डर। यद्यपि उसके आधीन २,२०० यूरोपीय सैनिक थे, फिर भी उसने विप्लवियोका दमन करनेका कोई प्रयत्न नही किया। विप्लवी पलटनोने दिल्लीकी ओर कूचकर उसपर कब्जा कर लिया।

हेस्टिंग्स—फ्रासिस रावडन, अर्ल आफ मोयरा, मार्क्विस आफ हेस्टिंग्स, जो लार्ड हेस्टिंग्सके नामसे विख्यात है। लार्ड मिण्टो प्रथमके बाद १८१३ से १८२३ ई०तक वह भारत-का गवर्नर-जनरल रहा। ५९ वर्षकी उम्रमे उसने यह पद ग्रहण किया। वारेन हेस्टिंग्स (१७७४–१७८५ ई०) के बाद उसने सबसे दीर्घ कालतक शासन किया। उसके प्रशासन-कालमे भारतमे ब्रिटिश साम्राज्यका विस्तार दक्षिणमे केप कमोरिनसे लेकर उत्तर-पश्चिममे सतलज नदी तक हो गया, अर्थात् पूर्वमे आसाम तथा पश्चिममे सिंध तथा पजाबको छोडकर सारे भारतमे वह विस्तृत हो गया। यह साम्राज्य-विस्तार तीन बडी लडाइयो—नेपाल-युद्ध (१८१४–१६ ई०), पेढारी-युद्ध (१८१७–१९ ई०) तथा तीसरे मराठा-युद्ध (१८१७–१९ ई०) की सफलताके फलस्वरूप हुआ। वह गवर्नर-जनरल होने-के साथ-साथ भारतकी ब्रिटिश सेनाका प्रधान सेनापति

भी था। उसने तीनो लडाइयोका सचालन वडी कुशलता-से किया, जिससे उनमे भारी सफलता मिली।

नेपाल-युद्ध (दे०)का अन्त सगौलीकी सन्धिसे हुआ, जिसके फलस्वरूप शिमला तथा उसके आस-पासका क्षेत्र व्रिटिश साम्राज्यका अग वन गया। इस सन्धिके वाद नेपालके साथ जिन मैत्रीपूर्ण सम्बन्धोकी स्थापना हुई, वे भारतमे व्रिटिश साम्राज्यके अत तक वने रहे। पेढारी-युद्ध (दे०)के फलस्वरूप तीसरा मराठा-युद्ध (दे०) हुआ, जिसमे शिन्देकी सेनाओको दूसरी मराठा सेनाओसे मिलनेसे रोककर शक्तिहीन वना दिया गया। पेशवा वाजीरावको १८१७ ई०मे खडकी और १८१८ ई०मे आष्टीकी लडाइयोमे, भोसले राजा अप्पा साहवको १८१७ ई०मे सीतावल्डी और नागपुरकी लडाइयोमे तथा शिन्देको १८१७ ई०मे महीदपुरकी लडाइयोमे हरा दिया गया तथा १८१८ ई०मे असीरगढ सर कर लिया गया। इस युद्धके फलस्वरूप पेढारियोकी शक्ति समाप्त हो गयी, पेशवाशाहीका अन्त हो गया, शिवाजीके एक वशजको सताराका राजा तथा अग्रेजो द्वारा मनोनीत एक वालकको भोसलेकी गद्दीपर विठा दिया गया, होल्कर तथा शिन्देके राज्योका वहुत-सा हिस्सा उनके आधिपत्यसे ले लिया गया, उन्हे आदेश दिया गया कि वे राजपूत राज्योमे कोई हस्तक्षेप न करे और उन सभी राज्योको अग्रेजोसे आश्रित सधियाँ करनेपर विवश किया गया। इन घटनाओके फलस्वरूप सतलज तथा सिन्धके पूर्वमे अग्रेजोका पूर्ण प्रभुत्व स्थापित हो गया। भारतमे अग्रेजोको जो नया रुतवा हासिल हो गया था, उसका पता इस वातसे लगता है कि लार्ड हेस्टिग्सने दिल्लीके नाममात्रके मुगल सम्राटको नजर पेश करनेकी प्रथा वन्द कर दी। लार्ड हेस्टिग्ससे पहलेके सभी गवर्नर-जनरल दिल्लीके मुगल सम्राटको नजर पेश करते थे। लार्ड हेस्टिग्सने समुद्री डाकुओका भी दमन किया, जो भारतके पश्चिमी समुद्र तटपर तथा फारसकी खाडी तथा लाल सागरमे लूट-पाट किया करते थे। अन्तमे १८१९ ई०मे लार्ड हेस्टिग्सने मलय प्रायद्वीपके छोरपर स्थित सिंगापुर द्वीपपर कब्जा कर लिया, जिससे पूर्वी एशियाका सामरिक दृष्टिसे एक महत्त्वपूर्ण प्रवेश-द्वार व्रिटिश साम्राज्यके अधीन हो गया।

लार्ड हेस्टिग्सने कलकत्तामे अनेक सुधार किये, दिल्लीमे पानीकी उत्तम व्यवस्था की, सडको और पुलोको दुरुस्त कराया, भारतीयोको शिक्षाके लिए प्रोत्साहित किया, लार्ड कार्नवालिस (दे०)ने मालगुजारी वसूलीको न्याय कार्यसे अलग करनेके लिए कलक्टर और न्यायाधीशके पदोको जो अलग-अलग कर दिया था उसे समाप्त कर दिया, न्यायालयोकी सख्या वढा दी, मद्रासमे मालगुजारीकी वसूलीके लिए रैयतवारी प्रथा चलायी, वगालमे जहाँ स्थायी वन्दोवस्तके फलस्वरूप किसान पूरी तरहसे जमीदारोकी दयापर आश्रित थे, उन्हें कुछ सीमा तक सुरक्षा प्रदान की तथा १७९९ ई०मे समाचार-पत्रोपर लागूकी गयी सेंसर प्रथा समाप्त कर दी। लार्ड हेस्टिंग्सका प्रशासन-काल वडा गौरवपूर्ण रहा, परन्तु अन्तमे उसपर कलकका एक धव्वा लग गया। लार्ड हेस्टिग्सकी साहूकारीका काम करनेवाली पामर एण्ड कम्पनीपर वडी कृपादृष्टि रहती थी। उसके एक साझीदारकी शादी जिस रमणीसे हुई थी, गवर्नर-जनरल उसका अभिभावक था। यद्यपि कम्पनीके सचालकोने निर्णय दिया कि लार्ड हेस्टिग्सने भ्रष्टाचारकी नीयतसे कोई कार्य नही किया तथापि उन्होने उसके कार्योकी निन्दा अवश्य की। लार्ड हेस्टिग्सने इस्तीफा दे दिया और वह १८२३ ई०मे इग्लैंड वापस लौट गया। १८२६ ई०मे उसकी मृत्यु हो गयी।

हेस्टिग्स, वारेन (१७३२–१८१८ ई०)—वगालका पहला गवर्नर-जनरल था। उसका जन्म एक साधारण घरानेमे हुआ था। अपने चाचाकी सहायतासे उसने शिक्षा प्राप्त की। १८ सालकी उम्रमे एक लिपिककी हैसियतसे ईस्ट इडिया कम्पनीकी नौकरी कर ली और १७५० ई०मे कलकत्ता पहुँचा। कम्पनीकी एक फैक्टरीमे तीन वर्षतक प्रशिक्षण प्राप्त करनेके वाद उसकी नियुक्ति कासिम वाजार (दे०)मे कर दी गयी। १७५६ ई०मे जव नवाव सिराजुद्दौला (दे०)ने कासिम वाजारपर कब्जा किया तो उसे भी वन्दी वना लिया। वादमे उसे छोड दिया गया और दूसरे अग्रेज भगोडोके साथ वह भी फुल्टा चला गया। १७५७ ई०मे क्लाइव और वाटसनने कलकत्तापर फिरसे कब्जा करनेके लिए जो हमला किया, उसमे वह भी शामिल था। क्लाइवने उसे मुर्शिदावादके दरवारमे रेजिडेट नियुक्त कर दिया। १७६१ ई०मे वह वैन्सीटार्टकी अध्यक्षतामे वगाल कौसिलका सदस्य नियुक्त किया गया। हेस्टिंग्स कम्पनीके नौकरोको खानगी व्यापारकी छूट देनेकी नीतिके विरुद्ध था। उसने उस नीतिका भी विरोध किया जिसके फलस्वरूप नवाव मीरकासिम (दे०)से कम्पनीकी लडाई हुई। १७६४ ई०मे वक्सरकी लडाईके वाद उसने इस्तीफा दे दिया और वगालमे उसने दलालोके मार्फत लकडीका व्यापार

करके जो दौलत इकट्ठी की थी, उसे लेकर इग्लैंड वापस चला गया। १७६९ ई०मे वह मद्रास कौंसिलका दूसरा प्रधान सदस्य बनकर पुन भारत लौट ग्राया। हेस्टिंग्स जिस जहाजसे भारत आ रहा था उसमे बैरन इमहोफकी पत्नी मेरिया भी सवार थी। दोनोका परिचय हो गया। हेस्टिंग्स विधुर हो चुका था। बादमें उसने मेरियासे शादी कर ली। मद्रासमे हेस्टिंग्सने बडी योग्यताके साथ कार्य किया और १७७२ ई०मे वह बगाल कौंसिलका प्रेसीडेट नियुक्त कर दिया गया। इस तरह ४० वर्षकी अवस्थामे वारेन हेस्टिंग्स बगालका गवर्नर बन गया। १७७३ ई०का रेग्यूलेटिंग ऐक्ट पास होनेपर वह बगालमे फोर्ट विलियमका गवर्नर-जनरल अर्थात् भारतमे ब्रिटिश राज्यका पहला गवर्नर-जनरल बन गया।

१७७२ ई०मे बगालका गवर्नर बनाते समय कम्पनीके सचालकोने वारेन हेस्टिंग्सको पहला काम यह सौंपा था कि वह उस दोहरी शासन व्यवस्था (दे०)को समाप्त कर दे जिसकी स्थापना क्लाइवने की थी और कम्पनीको प्रत्यक्ष रीतिसे दीवान बना दे अर्थात् कम्पनी मालगुजारीकी वसूलीके लिए सीधे अपने आदमियोकी नियुक्ति करे। अभी तक नायब दीवानकी हैसियतसे मालगुजारीकी वसूली मुहम्मद रजा खाँ और राजा शिताब रायके हाथमे थी। उन्हे उनके पदसे अलग करके उनपर मुकदमा चलाया गया, परतु अतमे उन्हे बरी कर दिया गया। कलकत्तामे बोर्ड आफ रेवेन्यू (दे०)की स्थापना की गयी, जिसे मालगुजारीकी वसूलीका सारा कार्य सौंप दिया गया। खजाना मुर्शिदाबादसे कलकत्ता ले आया गया। इस रीतिसे कलकत्ता एक प्रकारसे ब्रिटिश भारतकी राजधानी बन गया। नवाब मीर जाफर (दे०)के एक पोतेको बगालका नया नवाब बनाया गया था। वह अभी बालक था। उसका भत्ता घटाकर आधा (१६ लाख रुपया) कर दिया गया और मुन्नी बेगमको उसका अभिभावक नियुक्त कर दिया गया। १७७१ ई०के बाद सम्राट् शाह आलम पूरी तरह मराठोका आश्रित हो गया था। क्लाइवने उसे २६ लाख रुपया वार्षिक नजराना देना स्वीकार किया था। वारेन हेस्टिंग्सने उसे भी बद कर दिया। क्लाइवने उसके खर्चके लिए कोडा और इलाहाबादके जो जिले दिये थे वे भी वापस ले लिये गये और पचास लाख रुपयेमे अवधके नवाबके हाथ बेच दिये गये। हेस्टिंग्सने अवधके नवाबके साथ दोस्तीकी जो नीति बरती, उसके फलस्वरूप १७७४ ई०मे उसे रुहेला-युद्ध (दे०) मे उतरना पड़ा। रुहेलोको हरानेमे कोई कठिनाई नही हुई, परन्तु जिस नीतिके फलस्वरूप रुहेला युद्ध हुआ और अग्रेजी सेनाने रुहेलखडमे जो अत्याचार किये उसकी बादमे तीव्र आलोचना हुई और ब्रिटिश पार्लियामेटमे हेस्टिंग्सपर तीव्र आक्षेप किये गये।

हेस्टिंग्सने बगालमे मालगुजारीका बंदोबस्त शुरूमे पाच सालके ठेकेपर किया, बादमे वार्षिक ठेका दिया जाने लगा। उसने बगालमे पुलिस और फौजकी नयी व्यवस्था की। उसने जिलोका प्रबध करने तथा दीवानी मुकदमे सुननेके लिए अग्रेज कलक्टर नियुक्त किये और उनके सहायकके रूपमे भारतीयोकी नियुक्ति की। उसने कलकत्तामे दो अपील अदालतें स्थापित की। एक सदर दीवानी अदालत कहलाती थी, जिसका काम दीवानी मुकदमोको सुनना था। इसकी अध्यक्षता गवर्नर-जनरल करता था और उसकी कौंसिलके चारो सदस्य उसके साथ बैठते थे। दूसरी सदर निजामत अदालत कहलाती थी, जिसकी अध्यक्षता नायब नाजिम करता था और वह फौजदारीके मामलोकी अपील सुनती थी। इस प्रकार वारेन हेस्टिंग्सने नागरिक प्रशासनकी एक सुदृढ नीव रखी। बादमे लार्ड कार्नवालिस (दे०) ने उस नीवपर नागरिक प्रशासनकी एक बुलन्द इमारत तैयार की।

रुहेला-युद्धके बाद ही रेग्यूलेटिंग ऐक्ट (दे०) लागू हो गया और वारेन हेस्टिंग्स पहला गवर्नर-जनरल बन गया। उसकी कौंसिलमे चार सदस्य थे, जिनमे तीन सदस्य—जनरल जान क्लेवरिंग, जार्ज मोनसन तथा सर फिलिप फासिस शुरूसे उसके विरोधी थे। कौंसिलका चौथा सदस्य रिचर्ड बारवेल ही उसका एकमात्र समर्थक था। चूँकि कौंसिलके निर्णय बहुमतसे लिये जाते थे, इसलिए वारेन हेस्टिंग्सको कौंसिलसे बराबर सघर्ष करना पडता था। यह सघर्ष छह साल तक चलता रहा। इससे उसके लिए प्रशासन चलाना बडा कठिन हो गया था। यदि हेस्टिंग्सको छोड कर दूसरा आदमी होता तो वह अपना पद छोड कर भाग जाता। परन्तु हेस्टिंग्स असाधारण रूपसे कर्मठ तथा धैर्यवान व्यक्ति था। अक्सर कौंसिलका बहुमत उसके विरुद्ध रहता था और उसे उन निर्णयोको स्वीकार करना पडता था जिन्हे वह उचित नही समझता था। फिर भी हेस्टिंग्सने हार नही मानी। अतमे उसके दो विरोधियो—मोनसन और क्लेवरिंगको मौतने हरा दिया और तीसरे विरोधी फासिसको उसने एक द्वन्द्व-युद्धमे घायल कर दिया और वह १७८० ई०मे भारतसे चला गया। इसके बाद प्रशासनपर पूर्ण रूपसे हेस्टिंग्सका नियत्रण स्थापित हो

गया। हेस्टिंग्सको दीर्घकाल तक कौंसिलके सदस्योंसे जो संघर्ष करना पड़ा, उसके फलस्वरूप उसके चरित्रकी अच्छाइयाँ और बुराइयाँ दोनों उभड़ कर सामने आयीं। महाराजा नन्दकुमार, बनारसके राजा चेतसिंह, अवधकी बेगमों सदृश्य जिन-जिन लोगोंने उसके विरोधी सदस्योंका समर्थन प्राप्त करनेका प्रयत्न किया, उन सबका वह घोर शत्रु हो गया और उन्हें उसकी प्रतिहिंसाका शिकार बनना पड़ा। नंदकुमार (दे०)को फांसी दे दी गयी, राजा चेतसिंहको पहले गैरकानूनी तथा अनुचित रीतिसे दंडित करके उससे विपुल धन और फौजोंकी मांग की गयी और अंतमें उससे उसका राज्य छीन लिया गया, अवधकी बेगमें (दे०) अपमानित की गयीं और बर्बादीसे बचनेके लिए उन्हें अनुचित रीतिसे अपनी निजी जायदादसे बहुत-सा धन देनेके लिए विवश किया गया। इन सभी घटनाओंको बादमें हेस्टिंग्सके विरुद्ध महाभियोगमें लगाये गये आरोपोंका आधार बनाया गया। यद्यपि वह सभी आरोपोंसे बरी कर दिया गया और उसके विरुद्ध महाभियोगकी कार्रवाई सफल नहीं हो सकी, तथापि ब्रिटिश सरकारने उसे 'पिअर' की पदवी नहीं प्रदान की, जिसके लिए वह अत्यन्त लालायित था। इससे मालूम पड़ता है कि ब्रिटिश जनमत उक्त घटनाओंके सम्बन्धमें वारेन हेस्टिंग्सका आचरण औचित्यपूर्ण नहीं मानता था।

यदि वारेन हेस्टिंग्सके चरित्रमें धनलोलुपता और प्रतिहिंसात्मकताके रूपमें दो बड़ी बुराइयाँ थीं तो उसमें दो बड़ी अच्छाइयाँ भी थीं। उसमें अदम्य मानसिक दृढ़ता थी। इसके साथ ही उसमें कार्यसाधक उपाय ढूंढ़ निकालनेकी गजबकी सूझबूझ थी। उसके इन्हीं दोनों गुणोंके कारण भारतमें नवस्थापित ब्रिटिश साम्राज्यके अस्तित्वके लिए १७७५ से १७८२ ई०के बीच जो भयंकर खतरा उपस्थित हो गया था, वह टल गया। १७७५ ई०में मराठोंसे युद्ध शुरू हो गया, अगले वर्ष अमरीकाका स्वाधीनता-संग्राम आरम्भ हो गया और उसके बाद ही फ्रांस, स्पेन तथा हालैण्डसे संघर्ष छिड़ गया। तीन साल बाद १७७९ ई०में निजामने मैसूरके हैदर अली तथा मराठोंके साथ मिलकर अंग्रेजोंको निकाल बाहर करनेके लिए एक शक्तिशाली संघ बना लिया। १७७९ ई०में मराठोंने कर्नल कैमककी फौजोंको इस तरह दबोच लिया कि उसे बड़गांवका समझौता (दे०) करना पड़ा। अगले साल हैदर अलीने कर्नाटकपर हमला बोल दिया, बेलीके नेतृत्वमें एक ब्रिटिश सैनिक टुकड़ी काट डाली, कर्नाटकमें जबर्दस्त लूटपाट की और आर्काटपर कब्जा कर लिया। हैदर अलीकी फौजको १७८१ ई०में पोर्टो नोवोमें हार खानी पड़ी, परन्तु उसके बदलेमें हैदर अलीके लड़के टीपू सुलतानने १७८२ ई०में तंजौरमें ब्रेथवेटके नेतृत्वमें एक अंग्रेजी फौजका सफाया कर दिया। उसी समय एडमिरल डी सूफ्रांके नेतृत्वमें एक फ्रेंच जंगी बेड़ा भारतीय तटपर आ धमका। इन सब घटनाओंके कारण भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यका अस्तित्व खतरेमें पड़ गया था, परन्तु हेस्टिंग्स तनिक भी विचलित नहीं हुआ। उसने अदम्य पुरुषार्थका परिचय दिया। उसने गोडार्ड (दे०)के नेतृत्वमें एक फौज भेजी, जिसने १७८० ई०में मध्य भारतको पार करके बसईपर कब्जा कर लिया। उसने एक दूसरी फौज पौफमके नेतृत्वमें भेजी, जिसने ग्वालियरका किला सर कर लिया। इससे अंग्रेजोंकी खोयी हुई प्रतिष्ठा फिरसे मिल गयी। हेस्टिंग्सने चतुरतापूर्ण कूटनीतिके द्वारा भोंसले और शिंदेको अंग्रेजोंके विरुद्ध संगठित मराठा संघसे फोड़ लिया और शिन्देकी मध्यस्थतासे मराठोंके साथ सालबाईकी संधि कर ली। इस प्रकार पहला मराठा-युद्ध समाप्त हो गया और उसके फलस्वरूप साष्टी अंग्रेजोंके कब्जेमें आ गया।

हेस्टिंग्सने दक्षिण भारतमें भी इसी प्रकारका पुरुषार्थ दिखाया। उसने मद्रासके गवर्नरको निलम्बित कर दिया और सारे अपयशको धो डालनेके लिए सर आयर कूटके नेतृत्वमें एक कुमुक बंगालसे भेजी। उसने पियर्सके नेतृत्वमें एक दूसरी फौज स्थल-मार्गसे बंगालसे मद्रास भेजी। उसने १७८० ई०में निजामको गुन्टूरका इलाका देकर फोड़ लिया था। १७८२ ई० में मराठोंके साथ सालबाईकी संधि करके उसने अंग्रेजोंको निकाल बाहर करनेके लिए निजाम द्वारा १७७९ ई० में बनाये गये संघको एक प्रकारसे समाप्त कर दिया। इस प्रकार अंग्रेजी फौजोंको अकेले मैसूरकी फौजोंसे लोहा लेना पड़ा। १७८२ ई० में हैदर अलीकी मृत्यु हो गयी और उसके उत्तराधिकारी टीपू सुलतानने १७८४ ई० तक अंग्रेजोंसे लड़ाई जारी रखी। १७८४ ई०में उसके साथ मंगलूरकी संधि हो गयी, जिसके द्वारा दोनों पक्षोंने एक दूसरेके जीते हुए इलाके लौटा दिये। मंगलूरकी संधिमें हेस्टिंग्सका हाथ नहीं था और उसकी शर्तें उसे मंजूर नहीं थीं। यह संधि मद्रास सरकारके प्रयाससे हुई थी, जो शांति स्थापनाके लिए अत्यधिक उत्सुक थी। इसलिए हेस्टिंग्सने संधिका विरोध नहीं किया। यह मिलाकर हेस्टिंग्सने युद्धकालमें जो कूटनीति तथा सैनिक

सफलताएँ प्राप्त की, उनपर कोई भी प्रशासक उचित रीतिसे गर्व कर सकता था और इसीके आधारपर उसकी गणना भारतके सबसे महान गवर्नर-जनरलोमे की जाती है।

हेस्टिंग्सको पिटका इण्डिया ऐक्ट (१७८४ ई०) पसद नही था, इसलिए उसके पास होनेके बाद उसने १७८५ ई० मे गवर्नर-जनरलके पदसे इस्तीफा दे दिया और इग्लैण्ड वापस लौट गया। तीन साल बाद वारेन हेस्टिंग्सपर बीस आरोपोके आधारपर महाभियोग चलाया गया। इनमेसे मुख्य आरोप बनारसके राजा चेतसिंह तथा अवधकी बेगमोके साथ उसका दुर्व्यवहार तथा उपहार तथा घूस लेना था। महाभियोगकी काररवाई सात वर्ष तक चली और अन्तमे वारेन हेस्टिंग्सको सभी आरोपोसे बरी कर दिया गया। उसकी मृत्यु १८१८ ई० मे ८६ वर्षकी आयुमे इग्लैण्डमे हुई।

हैदर अली खा—१८ वी शताब्दीके मध्यका एक वीर योद्धा, जो अपनी योग्यताके बलपर मैसूरका शासक बन गया। वह मैसूरके शक्तिहीन हिन्दू राजाके प्रधानमन्त्री (दलवाई) नानराजकी सेवामे नियुक्त था। बादमे हैदरअलीने दलवाईसे शासनसत्ता अपने हाथमे ले ली। कुछ समय बाद उसने राजाको भी अपदस्थ कर दिया और १७६१ ई० मे स्वय मैसूरकी गद्दीपर बैठ गया। उसने बहुत जल्दी ही बदनौर, कनारा तथा दक्षिण भारतकी छोटी-छोटी रियासतोको जीत कर अपने राज्यमे मिला लिया। यद्यपि वह अनपढ था, तथापि बहुत कुशल शासक और योग्य सेनापति सिद्ध हुआ। वह राज्यके सारे काम अपने सामने बहुत द्रुत गतिसे निबटाता था। सभी लोग बडी आसानीसे उससे भेट कर सकते थे। उस जमानेके मुस्लिम शासकोमे हैदरअली सबसे सहिष्णु शासक माना जाता था।

उसे बडी कठिन स्थितिका सामना करना पडा। हैदराबादका निजाम, मराठे और अग्रेज सभी उसके शत्रु हो गये। इन तीनोने १७६६ ई० मे इसके विरुद्ध सधि कर ली। किन्तु हैदरअली कठिनाइयोसे घबडाता न था। उसने जल्द ही मराठोको अपनी ओर मिला लिया और फिर अंग्रेजो और निजामसे जम कर लोहा लिया। उसने मगलौरपर पुनः कब्जा कर लिया, बम्बई स्थित अग्रेजी सेनाको पराजित किया, १७६८ ई० मे मद्रासके पाँच मील निकट पहुँच गया तथा अग्रेजोको अपने अनुकूल सधि करनेपर बाध्य कर दिया। इस सधिके अनुसार अग्रेजोने हैदरअलीके विजित प्रदेशोपर उसके आधिपत्यको मान लिया और यह वायदा किया कि जब कभी मैसूरपर हमला होगा, अग्रेज हैदरअलीकी मदद करेगे। इस प्रकार अग्रेजोपर पहली विजय प्राप्त करनेसे हैदरअलीकी प्रतिष्ठा बहुत बढ गयी। १७७१ ई० मे मराठोने मैसूर राज्यपर हमला बोल दिया। अग्रेजोने अपना वायदा पूरा नही किया और हैदरअलीकी कोई सहायता नही की। हैदरअली और मराठोमे सधि हो गयी। बादमे उसने मराठो और निजामसे समझौता किया कि ये तीनो मिलकर अग्रेजोको मार भगाये। इस बीच अग्रेजोने फासीसी बस्ती माहीपर भी कब्जा कर लिया था, जो हैदरअलीके राज्यके अन्तर्गत था।

हैदरअली तूफानकी भाँति कर्नाटकपर चढ बैठा, कर्नल बेलीकी सेनाको चीर दिया और अर्काटपर कब्जा कर लिया। लेकिन मराठो और निजामने हैदरअलीको धोखा दिया और अग्रेजोके लालचमे आ गये। फलत हैदरअली अकेला पड गया और १७८१ ई० मे पोर्टो नोवोके युद्धमे अग्रेज जनरल सर आयरकूटसे पराजित हुआ। लेकिन इसके बाद भी हैदरअलीने कर्नल बैथवेटकी सेनाको पराजित किया। हैदरअली कैंसर रोगसे पीडित था। जब युद्ध चल रहा था, तभी ७ दिसम्बर १७८२ ई० को उसका देहान्त हो गया। उसके लडके टीपू सुल्तानने युद्ध जारी रखा और द्वितीय मैसूर-युद्धमे भी अग्रेजोपर विजय प्राप्त की। हैदरअलीको उसके देशवासियोने सहायता नही दी, फिर भी उसने अकेले ही अग्रेजोसे डटकर लोहा लिया। (बाउरिंग लिखित हैदर-अली और टीपू सुल्तान; एम० विलक्स लिखित दक्षिण भारतके ऐतिहासिक रेखाचित्र, अंग्रेजीमे)

हैदरशाह—कश्मीरके शासक जैनुल आब्दीनका द्वितीय पुत्र, जिसने १४७० से १४७२ ई०तक शासन किया। उसने कोई उल्लेखनीय कार्य नही किया। वह अपने ही महलमे शराबके नशेमे गिरकर मर गया।

हैदराबाद—सप्रति आन्ध्र प्रदेशकी राजधानी। यह पहले निजामके राज्यकी राजधानी था, जो भारतकी सबसे बडी मुसलमानी रियासत थी। इस नगरकी स्थापना १५८९ ई० मे कुतुबशाही सुल्तानोमे पाँचवे सुल्तान मुहम्मद कुलीने की। यह नगर कृष्णा नदीकी एक शाखा मूसीके दाहिने तटपर स्थित है। नगर रमणीक स्थानपर बसा हुआ है। नगरमे बहुत सी शानदार इमारते हैं, जिनमे निजामकी कोठी, रेजीडेंसी और मक्का मसजिद उल्लेखनीय है। उस्मानिया विश्वविद्यालय, जिसकी स्थापना

१९१८ ई० मे हुई, यहीं स्थित है। यह पहला विश्व-विद्यालय है, जिसमे किसी भारतीय भाषा अर्थात् उर्दूको शिक्षाका माध्यम बनाया गया। यहाँपर अंग्रेजी द्वितीय भाषाके रूपमे पढाई जाती है।

निजामके राज्यकी स्थापना १७१३ ई० मे आसफ-जाहने की। वह दक्खिनका सूबेदार होकर हैदराबाद आया और १७४७ ई० के आसपास स्वतंत्र शासक बन बैठा। १७४८ ई० मे उसकी मृत्यु हो जानेपर इस रियासतको विपत्तियोके दौरसे गुजरना पड़ा। अंग्रेजो और फ्रांसीसियोने इस स्थितिसे लाभ उठानेकी चेष्टा की। निजामको दक्षिणमे हैदर अली तथा पश्चिम एवं उत्तरमे मराठोकी शक्तिका सामना करना पड रहा था। राज्यकी अधिकांश प्रजा हिन्दू थी। ऐसी स्थितिमे उसका शासन काफी डावाडोल था। निजाम भारतीय राजाओंमे पहला शासक था, जिसने लार्ड वेलजली (१७९८-१८०५ई०) के प्रशासन-कालमे आश्रित सेना रखना स्वीकार कर लिया और इस प्रकार अपनी स्वतंत्रताका अंत कर दिया।

भारतके स्वाधीन होनेपर निजामने कुछ समय तक अपनेको स्वतन्त्र शासक बनाये रखनेकी कोशिश की, परन्तु इसमे उसे सफलता न मिली। १९४८ ई० मे रियासतका भारतीय गणराज्यमे विलयन कर लिया गया और १९५२ ई० मे वहाँ लोकप्रिय सरकारकी स्थापना हो गयी। निजामको राजप्रमुख बना दिया गया और भत्तेके रूपमे एक लम्बी रकम मिलने लगी।

हैदराबाद–सिंधका एक नगर तथा छावनी, जो अब पश्चिमी पाकिस्तानमे है। इस नगरकी स्थापना १७६८ ई० मे हुई और १८४३ ई० तक और फिर १९४८ से १९५५ ई० तक यह सिंधकी राजधानी रहा। यह अब हैदराबाद कमिश्नरीका मुख्यालय है। उद्योग धंधोका महत्त्वपूर्ण केन्द्र हैं। यहाँ पुराना किला और एक आधुनिक विश्व-विद्यालय स्थित है।

हैमिल्टन, विलियम–कलकत्तामे ईस्ट इण्डिया कम्पनीका मातहत एक डाक्टर। १७१५ ई० मे जान सरमैन जब मुगल राजदरबारमे दूत नियुक्त हुआ, वह उसके साथ दिल्ली आया। उसने बादशाह फर्रुखशियरको एक दुखदायी बीमारीसे छुटकारा दिलाया। इसपर बादशाहने कृतज्ञतावश उसकी प्रार्थनापर १७१६ ई० मे एक फरमान जारी करके उसकी मालिक ईस्ट इण्डिया कम्पनीको वाणिज्य-व्यापारकी महत्त्वपूर्ण सुविधाएँ प्रदान कर दी।

हैरिस, लार्ड जार्ज–ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामे लग्न एक सेनापति। चौथे मैसूर-युद्ध (१७९७ ई०) मे उसने टीपू सुलतानको मलवल्लीकी लड़ाईमे मार्च १७९९ ई० मे पराजित कर श्रीरंगपट्टमकी ओर खदेड दिया। ४ मई १७९९ ई० को उसने श्रीरंगपट्टमको भी जीत लिया। युद्ध मे विजय पानेके उपलक्ष्यमे उसे १८१५ ई०मे 'पीअर' का पद प्रदान किया गया।

हैलीडे, सर एफ० जे०–बंगाल, बिहार, उडीसा और आसामका पहला लेफ्टिनेण्ट-गवर्नर। इन प्रान्तोका प्रशासन पहले सीधे सपरिषद् गवर्नर-जनरलके अधीन था। १८५३ ई० के चार्टर ऐक्टमे उसे एक लेफ्टिनेण्ट-गवर्नरके अधीन कर दिया गया।

हैलीफैक्स, लार्ड–देखिये, 'लार्ड इरविन'।

हैलीबरी कालेज– इंग्लैण्डमे १८०५ मे स्थापित। इसमे इंडियन सिविल सर्विसमे भर्ती किये गये छात्र शिक्षा पाते थे। इसमे विधि शास्त्र, अर्थशास्त्र, प्रशासन तथा एक भारतीय भाषा सीखना अनिवार्य होता था। आरम्भमे ईस्ट इंडिया कम्पनीके डाइरेक्टरो द्वारा मनोनीत अभ्यर्थी ही भर्ती किये जाते थे, अतएव इसमे प्रतिभाशाली लोगो-का अभाव था। १८५५ ई०मे यह कालेज बंद कर दिया गया। उसी समयसे आई० सी० एस०के लिए प्रतियो-गिता परीक्षा होने लगी। हैलीबरी कालेजके शिक्षितोमे जान लारेंस जान कालविन, जेम्स टाम्सन और रिचर्ड सेम्पिल आदिके नाम प्रमुख हैं। (एन० सी० राय लिखित 'सिविल सर्विस इन इंडिया')।

हैवलक, जनरल सर हेनरी (१७९५–१८५७ ई०)–१८१६ ई०मे सेनामे भर्ती हुआ और १८२३ ई०मे कलकत्ता आया। उसने १८२४ ई०मे बर्मा-युद्धमे भाग लिया और १८२८ ई० मे आवाकी लडाइयोपर अपनी पुस्तक प्रका-शित की। १८३८ से १८४२ ई० तक वह अफगानिस्तान-मे रहा और सर हग गफके नेतृत्त्वमे प्रथम सिक्ख-युद्ध (१८४५–४६ ई०)मे भाग लिया। १८५६–५७ ई०मे वह फारसमे युद्ध कर रहा था। जून १८५७ ई०मे उसे वहींसे इलाहाबादमे विप्लवी सैनिकोंका मुकाबला करनेके लिए भेज दिया गया। उसने कई लडाइयोंका नायकत्व किया, नाना साहबको पराजित करके जुलाई १८५७ ई०-मे कानपुर ले लिया। इसके बाद वह लखनऊमे घिरी हुई ब्रिटिश फौजोकी सहायताके लिए रवाना हुआ। तीन विफल प्रयत्नोके बाद सितम्बर १८५७ ई०मे वह घेरा तोडनेमे सफल हुआ। दो महीने बाद बीमारीके कारण युद्ध-भूमिमे ही उसकी मृत्यु हो गयी। ब्रिटिश सरकारने उसे मरणोपरांत बैरनकी पदवी प्रदान की और उसकी पेंशन बाँध दी।

होम रूल लीग–इसकी स्थापना बाल गगाधर तिलक (दे०)ने अप्रैल १९१६ ई०मे पूनामे की। अगले सितम्बर-मे इसी नामसे एक दूसरी सस्था एनी बेसेट (दे०)ने कलकत्तामे स्थापित की। भारतीयोको लीग-काग्रेस योजना (दे०)के आधारपर, जो १९१६ ई०मे लखनऊमे तैयार की गयी थी, होमरूल (स्वराज्य) दिलानेके लिए दोनो लीगोने सयुक्त रीतिसे आदोलन किया। होमरूल लीग बहुत थोडे दिन चली, क्योकि उसके नेतागण भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके समर्थक थे और काग्रेसने जब तत्काल स्वराज्यकी स्थापना को अपना ध्येय बना लिया, दोनो लीगोका काग्रेसमे विलयन हो गया।

होयसल वश–११११ ई०के आसपास मैसूरके प्रदेशमे विट्टिग अथवा विट्टिदेवसे इसका प्रारम्भ हुआ। उसने अपना नाम विष्णुवर्धन (दे०) रख लिया और ११४१ ई० तक राज्य किया। उसने द्वार समुद्र (आधुनिक हलेबिड) को अपनी राजधानी बनाया। वह पहले जैन धर्मानुयायी था, बादमे वैष्णव मतावलम्बी हो गया। उसने बहुतसे राजाओको जीता और हलेबिडमे सुन्दर विशाल मन्दिरोका निर्माण कराया। उसके पौत्र वीर बल्लाल (११७३–१२२० ई०)-ने देवगिरिके यादवोको परास्त किया और होयसलोको दक्षिण भारतका सबसे शक्तिशाली राजा बना दिया, जो १३१० ई० तक शक्तिशाली बने रहे। १३१० ई०मे सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (दे०)के सेनापति मलिक काफूरके नेतृत्वमे मुसलमानोने उनके राज्यपर हमला किया, राजधानीपर कब्जा कर लिया और राजाको बदी बना लिया। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीने अतमे १३२६ ई०मे इस वशका अत कर दिया।

होल्कर वंश तथा राज्य–इसकी स्थापना मल्हार रावने की, जिसने दूसरे पेशवा बाजीराव प्रथम (१७२०–४० ई०)के सेनापतिकी हैसियतसे अनेक लडाइयाँ जीती। मालवाका दक्षिण-पश्चिमी भाग उसके कब्जेमे आ गया और उसने इन्दौरको अपनी राजधानी बनाया। उसकी मृत्यु १७६४ ई०मे हुई। उसका एकमात्र पुत्र खाँडेराव दस साल पहले मर चुका था, इसलिए उसका पौत्र मल्लेराव (१७६४–६६ ई०) उत्तराधिकारी हुआ। परन्तु वह बहुत अयोग्य शासक सिद्ध हुआ और प्रशासन-का भार खाडे रावकी विधवा महारानी अहिल्या बाई (दे०)ने सँभाल लिया।

अहिल्या बाईने १७६५ से १७९५ ई० तक राज्य-का शासन बडी सफलताके साथ चलाया। १७९५ ई०मे उसकी मृत्यु होनेपर, एक दूरके सम्बन्धी तुकोजी होल्कर-को, जिसे अहिल्याबाईने १७६७ ई०मे सेनापति नियुक्त किया था, राज्य प्राप्त हुआ। तुकोजीने केवल दो साल राज्य किया और उसकी मृत्युके बाद उसका तीसरा लडका जसवन्तराव प्रथम गद्दीपर बैठा, जिसने १७९८से १८११ ई० तक राज्य किया। दौलत राव शिन्देसे प्रतिद्वन्द्विताके कारण, जसवतराव होल्कर पहले तो दूसरे मराठा-युद्धसे अलग रहा, फिर अप्रैल १८०४ ई०मे, जब पेशवा और शिन्दे हार चुके थे, उसने अबुद्धिमत्तापूर्वक अग्रेजोके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। शुरूमे उसने कर्नल मौन्सनके नेतृत्ववाली अग्रेजी सेनापर विजय पायी, परन्तु वह दिल्लीपर कब्जा करनेमे विफल रहा। उसकी सेना दीगकी लडाईमे हार गयी और चार दिन बाद वह भी परास्त हुआ। परन्तु अग्रेज सेना भरतपुरका किला सर न कर सकी। उधर लार्ड वेलेजलीको भारतसे वापस बुला लिया गया। इससे जसवतराव अग्रेजोके साथ अत्यत अनुकूल शर्तोपर सधि कर लेनेमे सफल हो गया। उसे अपने राज्यका कोई हिस्सा गँवाना नही पड़ा और उसकी स्वतत्रता बनी रही। परतु, इसके बाद ही जसवतराव पागल हो गया और १८११ ई०मे उसकी मृत्यु हो गयी।

उसका पुत्र एव उत्तराधिकारी मल्हार राव होल्कर द्वितीय (१८११–३३ ई०) तीसरे मराठा-युद्ध (१८१७-ई०) मे सम्मिलित हुआ और दिसम्बर १८१७ ई० मे महीदपुरकी लडाईमे अग्रेजोसे हार गया। उसे विवश होकर मदसोरकी सधि (जनवरी १८१८ ई०) करनी पडी, जिसके द्वारा उसने अपने राज्यमे आश्रित सेना तथा राजधानी इदौरमे स्थायी रूपसे ब्रिटिश रेजीडेंट रखना मजूर कर लिया, राजपूतानेके राज्यपर अपना सारा आधिपत्य छोड दिया तथा नर्मदाके दक्षिणका सारा प्रदेश अग्रेजोको सौंप दिया। इस प्रकार होल्कर सारी स्वतन्त्रता खोकर एक रक्षित राजा बन गया। बादमे इदौरकी गद्दीपर जो होल्कर वशज जा बैठे, वे सिर्फ अपने राग-रगमे डूबे रहते थे और उन्हे अपनी प्रजाकी भलाईकी कोई चिन्ता नही थी। उनमेसे एक राजा कुख्यात हत्याकाड-सम्बन्धित हो गया और उसे अपनी गद्दी छोडनी पडी। होल्कर वशके राजा लोग १९४८ ई० तक शासन अथवा कुशासन करते रहे, जब उनके राज्यका भारतीय गणराज्यमे विलयन हो गया।

ह्युएनत्सांग अथवा युवानच्वाङ (६००–६४ ई०)–एक चीनी बौद्ध भिक्षु और विद्वान्, जो बौद्ध धर्मके ग्रथोकी खोजमे ६३० ई० मे भारत आया। वह चीनसे गोबी रेगिस्तानके उत्तरसे होकर आनेवाले ३००० मील लम्बे

अत्यन्त दुर्गम मार्गको पार कर काबुल पहुँचा जो भारतका प्रवेश-द्वार है। उसने अपनी वापसी की यात्रा दक्षिणी मार्गसे की, जो पामीरको पार करके काशगर, यारकद, खोतान तथा लोप-नोर जाता है। उसने यात्रामे जिस प्रकारके खतरे उठाये, उनसे उसके साहस, धैर्य और दृढ़-सकल्पका परिचय मिलता है।

वह भारतमे ६३० से ६४३ ई० तक रहा। उसने सारे भारतका भ्रमण किया और यहांके लगभग सभी राज्योको देखा। वह हर्षवर्धन (दे०) के राज्यमे आठ साल (६३५–४३ ई०) रहा। हर्षवर्धनका साम्राज्य उस समय सारे उत्तरी भारतमे विस्तृत था। हर्षने उसका खुले हृदयमे स्वागत किया और उसके प्रति अत्यधिक आदर भाव प्रकट किया। वह हर्षसे राजमहलके निकट मिला और उसके साथ कन्नौज और फिर प्रयाग गया। दोनो स्थानोपर उसने विराट धार्मिक महोत्सवोमे भाग लिया। प्रयागमे महाराजाधिराज हर्षवर्धन हर पाँचवे वर्ष एक महोत्सव करता था। युवान च्वाडने प्रयागके जिस महोत्सवमे भाग लिया, वह इस प्रकारका छठा महोत्सव था।

ह्युएन त्साग वौद्धधर्मके महायान सम्प्रदायका अनुयायी था। उसका वौद्ध-धर्मका ज्ञान अत्यत विशद था। उसने अपनी यात्राका वृत्तात लिखा है जो बारह खडोमे है। भारतकी लम्बी यात्राके दौरान उसने जो कुछ देखा उसका अत्यन्त विशद वर्णन किया है। उसकी पुस्तकसे हमे सातवी शताब्दीके पूर्वार्धमे विद्यमान भारतकी राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक अवस्थाके बारेमे बहुमूल्य सूचनाएं मिलती हैं। ह्युएन-त्साग कई साल तक नालदा विश्वविद्यालयका विद्यार्थी रहा और उसने विश्वविद्यालयके जीवनका अत्यत रोचक वर्णन किया है। हर्षवर्धनने ह्यु एन-त्सांगको स्वदेश वापस लौटनेके लिए विपुल धन दिया और सैनिकोकी एक टुकडी साथ कर दी। ह्यु एन-त्साग भगवान् बुद्धके शरीरकी १५० धातुएँ, उनकी सोने, चाँदी तथा चंदनकी बहुत-सी मूर्त्तियाँ और ६५७ हस्तलिखित ग्रथ लेकर, जिनको ढोनेके लिए बीस खच्चरोकी आवश्यकता पड़ी थी, ६४५ ई० मे चीन वापस लौटा। चीनमे उसका शेष जीवन इन वौद्ध ग्रथोका चीनी भाषामे अनुवाद करनेमे बीता। वह ६६४ ई० के आसपास अपनी मृत्युसे पूर्व इनमे से ७४ ग्रथोका अनुवाद पूरा कर चुका था।

ह्यूजेस, एडमिरल सर एडवर्ड (१७२०–९४ ई०)–ब्रिटिश नौसेनाका एक अफसर। वह भारतके पूर्वी तटपर १७७३ से १७७७ ई० तक और पुन १७७९ से १७८३ ई० तक ब्रिटिश नौसेनाका कमाण्डर रहा। उसने १७८० ई० मे मगलूरमे हैदर अलीकी नौसेना नष्ट कर दी। १७८१ ई० मे उसने डच लोगोसे नागपट्टम् छीन लेनेमे मदद दी, १७८२ ई० मे उसने डच लोगोसे त्रिकोमली छीन लिया। परन्तु फ्रेंच लोगोके खिलाफ उसे कोई उल्लेखनीय सफलता नही मिली। १७८२से८३ ई० मे उसने मद्रास और त्रिकोमलीके बीच एडमिरल डी सूफ्राके नेतृत्ववाले फ्रेंच बेडेसे पाँच बार युद्ध किया, परन्तु उसका कोई निर्णयात्मक फल नही निकला। इसके बाद वह भारतमे इकट्ठी की गयी बहुत बडी दौलत लेकर इग्लैण्ड वापस लौट गया। उसने फिर किसी नौसैनिक बेडेका नायकत्व नही किया।

ह्यूम, एलन आक्टेवियन (१८२९–१९१२ ई०)–हेलीवरीमे शिक्षा प्राप्त की और १८४९ ई० मे बगालमे इडियन सिविल सर्विसमे प्रवेश किया। पदोन्नति करते हुए पश्चिमोत्तर प्रातमे वह रेवेन्यू बोर्डका सदस्य नियुक्त हुआ। गदरके समय इटावामे मजिस्ट्रेट था। १८८२ ई० मे इडियन सिविल सर्विससे अवकाश ग्रहण किया, किन्तु भारतीय मामलोमे दिलचस्पी लेता रहा। उसने भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके सगठनका प्रयास किया। बम्बईमे १८८५ ई० होनेवाले काग्रेसके प्रथम अधिवेशनका वह सयोजक था तथा जीवन भर भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके कार्योमे दिलचस्पी लेता रहा। उसकी गणना काग्रेसके सस्थापकोमे की जाती है। पहले बीस वर्षो तक (१८८५–१९०६ ई०) भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसका वह प्रधान-मन्त्री रहा। उसको तेईसवे अधिवेशनमे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसका पिता और सस्थापक घोषित किया गया। पक्षी-विज्ञानका वह बहुत अच्छा जानकार था। इस विषयपर उसने कई पुस्तके लिखी है।

संकेताक्षरोंकी सूची

1 A H. D.–डुबरनिल
2 A. M. A. I–हावेल
3 C. H. I.–कैम्ब्रि०
4 D H I–राय०
5. C T I–फर्गुसन व वर्गेस
6 E. D. B. O E.–नीलीस०
7 E E. C. A.–मैकगवर्न०
8 E. H I.–स्मिथ०
9. E I–इ० इ०
10. E. R E.–इन०
11. F M. R. I.–हबीबुल्लाह०
12 H. B.–हि० ब०
13. H. I E A.–फर्गुसन
14. H. U–हि० ग्रो०
15 H. I I. A–कुमारस्वामी
16 H. S. S I.–विल्कीन
17. I. C. D.–इ० का० डा०
18 Ind. Ant.–इ० ए०
19. I S B–भट्टसाली
20 J B. O R S.–ज. वि उ रि सो.
21. J R A S–ज० रा० ए० सो०
22 P. A. & H I–बनर्जी०
23 P. H. A. I–राय चौधरी०
24 R A. S W. I–वर्गेस
25. R S. A. E I C–राज० ईस्ट०
26. S. A. E.–भट्टाचार्यजी०
27. S. O. S.–सरकार०

परिशिष्ट

महत्त्वपूर्ण तिथियाँ

ईसा पूर्व	लगभग	३१०२—	कलियुग सवतका प्रारम्भ, कुरुओं और पाण्डवोंके बीच महाभारत युद्ध।
”	”	२७००	किशमे प्राप्त सिंधु घाटीकी मुहरोंकी तिथि।
”	”	८१७	पार्श्वनाथकी परम्परागत जन्म-तिथि।
”	”	५४४	सिंहली परपराके अनुसार बुद्धकी निर्वाण तिथि।
”	”	५२७	महावीरके निर्वाणकी परम्परागत तिथि।
”	”	५१६	डेरियस प्रथमका बहिस्तून अभिलेख।
”	”	४८६	चीनी परपराके अनुसार बुद्धकी निर्वाण तिथि।
”		३२७–३२६	सिकन्दर द्वारा भारतपर आक्रमण।
”		३२५	भारतसे सिकन्दरका प्रस्थान।
”		३२३	बेबीलोनियामे सिकन्दरकी मृत्यु।
”	लगभग	३२२	चन्द्रगुप्त मौर्यका सिंहासनारोहण।
”	”	३०५	सेल्यूकस निकेटरका भारतीय अभियान।
”	”	२९८	बिन्दुसारका सिंहासनारोहण।
”		२७३-२३२	अशोकका शासन काल।
”	”	१८७	मौर्यों वशका उच्छेदन तथा शुग वंशका प्रवर्तन होना।
”	”	७३	शुग वशका पतन और कण्व वशका उदय।
”	”	५८	विक्रम सवत्‌का प्रारम्भ।
”	”	५०	खारवेल-कलिगका राजा।
”	”	५०	सातवाहन वशका प्रारम्भ।
”	”	२०	कण्व वशका पतन।
”	”	२	बैक्ट्रिया (बाख्त्री) के दरबारसे चीनी सम्राट्‌के पास जानेके लिए बौद्ध भिक्षुओंका प्रस्थान।

लगभग	४७	ईसवी—	गोंडोफारस (गुदफर) का ऐतिहासिक प्रलेख।
	६४	”	चीनी सम्राट् मिग-ती द्वारा भारतसे बौद्ध धर्मग्रंथोंको लानेके लिए अपने दूत भेजना।
”	६६	”	*भारतीय बौद्ध भिक्षु काश्यप मातग* और गोभरणका चीन पहुँचना।
	७७	”	प्लिनीकी 'नेचुरल हिस्ट्री'।
	७८	”	शक सवत्‌का प्रारम्भ। पजाबमे कुषाण वशका प्रारम्भ।
”	७८–११०	”	कथाफिश द्वितीयका शासनकाल।
”	११०–१२०	”	नाम-रहित राजाका काल।
”	११९–१२४	”	नहयान।
”	१२०–१६२	”	कनिष्कका शासनकाल।
”	१६२–१८२	”	हुविष्कका शासनकाल।
”	१८२–२२०	”	वासुदेवका शासनकाल।
	२२६	”	फारसमे सासानी वशका प्रारम्भ।
	३२०	”	गुप्त युगका प्रारम्भ।
”	३६०	”	समुद्रगुप्तके पास सिंहली दूत मडलका आगमन।
	४०५–४११	”	फाहियानका भारत भ्रमण।
”	४१५–४५५	”	कुमारगुप्त प्रथमका शासनकाल।
	४५५–४६७	”	स्कन्दगुप्तका शासनकाल।
”	४७६	”	खगोलवेत्ता आर्यभट्टका जन्म।
”	५३३	”	यशोधर्माने मिहिरकुलको पराजित किया।
	५४७	”	कोस्मस इण्डीकोपल्यूसटस।
”	५६६	”	चालुक्य राजा कीर्तिवर्मा प्रथमका सिंहासनारोहण।
	६०६	”	हर्षवर्धनका सिंहासनारोहण।
	६०९	”	पुलकेशी द्वितीयका राज्याभिषेक।
	६१९–६२०	”	पूर्वी भारतमे शशाक।
	६२२	”	हिजरी सन्‌का प्रारम्भ।
	६२९	”	ह्युएन सागकी भारत-यात्रा प्रारभ।

६३४ ईसवी—ऐहोल अभिलेखमें कालिदास और भारविका उल्लेख।
६३७ ,, अरबोंका सिंधमें थानापर आक्रमण।
६३९ ,, स्रोङ्ग ग्चन्-स्गम्-पो द्वारा ल्हासा नगरकी स्थापना।
लगभग ६४२ ,, पुलकेशी द्वितीयकी मृत्यु।
,, ६४२–६६८ ,, पल्लव नरेश नरसिंहवर्मा का शासनकाल।
६४३ ,, हर्षकी ह्युएन सांगसे भेंट-प्रयागमें हर्षका छठां पंचवर्षीय सम्मेलन—ह्युएन सांगका प्रस्थान।
६४५ ,, ह्युएन सांगका चीन वापस पहुँचना।
लगभग ६४६–६४७ ,, हर्षवर्धनकी मृत्यु।
,, ६४७–६४८ ,, कामरूपके राजा भास्करवर्मा द्वारा वांग ह्युएन-त्सेकी सहायता।
६६४ ,, चीनमें ह्युएन सांगकी मृत्यु।
६७४ ,, विक्रमादित्य प्रथम चालुक्य और परमेश्वरवर्मा प्रथम पल्लव।
६७५–६८५ ,, नालन्दामें इत्सिंग।
७१०–७११ ,, मुहम्मद बिन कासिम द्वारा सिंध पर आक्रमण।
७१२ ,, अरब द्वारा विजय—निरुन और अलोरकी विजय—सिंधके राजा दाहिरकी पराजय और मृत्यु।
७१३ ,, मुसलमानों द्वारा मुलतानपर अधिकार।
७४३–७८९ ,, तिब्बतमें शांतरक्षित और पद्म सम्भव।
७५३ ,, राष्ट्रकूट वंशका प्रारम्भ।
७८३ ,, वत्सराज द्वारा प्रतिहार वंशका प्रवर्तन।
८१५–८७७ ,, अमोघवर्षका शासनकाल।
८२९ ,, हर्जरका कामरूपका राजा होना।
८७१–९०७ ,, आदित्य प्रथम चोल।
९०७ ,, चोल राज परान्तक प्रथमका सिंहासनारोहण।
लगभग ९६२ ,, गजनी साम्राज्यका संस्थापन।
९७३ ,, कल्याणीके चालुक्य वंशका प्रारंभ।
९७७ ,, सुबुक्तगीनका सिंहासनारोहण।
९८५ ,, चोल राजराज महानका सिंहासनारोहण।
९८६–९८७ ईसवी—सुबुक्तगीनका प्रथम आक्रमण।
९९७ ,, सुबुक्तगीनकी मृत्यु।
९९८ ,, सुल्तान महमूदका सिंहासनारोहण।
१००१ ,, जयपालकी पराजय एवं बलिदान।
१०१२–४४ ,, राजेन्द्र चोल प्रथमका राज्यकाल।
१०१८ , सुल्तान महमूद द्वारा कन्नौजपर आक्रमण।
१०२६ ,, सुल्तान महमूद द्वारा सोमनाथ मन्दिरकी लूटमार।
लगभग १०७६-११४१,, उड़ीसाका राजा, अनन्तवर्मा चोडगंग—पुरीमें जगन्नाथके मन्दिरका निर्माण।
,, ११०६-११४१,, विष्णुवर्धन होयसलका राज्यकाल रामानुजका धर्म-प्रचार।
११७५ शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीका पंजाबपर आक्रमण और अधिकार।
११७८ गुजरातके राजा भीमके हाथों शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीकी पराजय।
लगभग ११८५–१२०५,, बंगालमें लक्ष्मणसेनका शासन।
११९१,, पृथ्वीराजके हाथों तराइनके प्रथम युद्धमें शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीकी पराजय।
११९२,, तराइनका द्वितीय युद्ध—शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी द्वारा पृथ्वीराजकी पराजय और प्राणदण्ड।
११९२– ९३ ,, कुतुबुद्दीन द्वारा दिल्लीपर आधिपत्य।
११९४,, चन्दावरके युद्धमें मुसलमानों द्वारा कन्नौजके गहडवाल राजा जयचन्द्रकी पराजय।
लगभग १२०० ई० इख्तियारुद्दीन (बख्तियार खिलजी के नामसे प्रसिद्ध) के नेतृत्वमें मुसलमानों द्वारा बंगाल और बिहारकी विजय।
१२०६ ,, शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीकी मृत्यु और दिल्लीके सुल्तानके रूपमें कुतुबुद्दीनका सिंहासनारोहण—दिल्ली सल्तनतका आरम्भ।
१२१० ,, कुतुबुद्दीनकी मृत्यु।
१२१०–११ ,, इल्तुतमिशका सिंहासनारोहण।
१२२१ ,, चंगेज खांका आक्रमण।

१२२८ ईसवी प्रथम ग्रहोम राजा सुखप द्वारा कामरूपकी विजय।
१२३१ ,, कुतुब मीनारकी स्थापना।
१२३६ ,, इल्तुतमिशकी मृत्यु–फीरोजका सिंहासनारोहण और सिंहासन-च्युति–रज़ियाका सिंहासनारोहण।
१२४० ,, रज़ियाकी सिंहासन-च्युति और हत्या ?
१२४६–६६ ,, सुल्तान नासिरुद्दीनका राज्य-काल।
१२६६–८७ ,, गयासुद्दीन बल्बनका राज्यकाल।
१२८८ ,, कायालमे मार्को पोलो।
१२९० ,, गुलाम वंशका पतन–जलालुद्दीन खिलजीका सिंहासनारोहण।
१२९२ ,, अलाउद्दीन खिलजीका भेलसापर अधिकार–मगोल आक्रमण।
१२९४ ,, अलाउद्दीन खिलजी द्वारा देवगिरिकी लूटमार।
१२९६-१३१६,, अलाउद्दीन खिलजीका राज्य-काल।
१२९७ ,, गुजरातकी विजय।
१३०१ ,, अलाउद्दीन खिलजी द्वारा रणथम्भौरपर अधिकार।
१३०२–०३ ,, अलाउद्दीन द्वारा चित्तौडपर अधिकार–मगोल आक्रमण।
१३०५ ,, अलाउद्दीनकी मालवा, उज्जैन, मन्डेर, चन्देरी और धार-विजय।
१३०६–०७ ,, मलिक काफूरका देवगिरिपर अभियान।
१३०८ ,, अलाउद्दीनकी सेना द्वारा वारगल-पर चढाई।
१३१० ,, दक्षिण भारतमे मलिक काफूरका अभियान।
१३१६ ,, अलाउद्दीनकी मृत्यु–मलिक काफूर-की मृत्यु।
१३१७–१८ ,, यादव वंशका उच्छेद।
१३२० ,, गयासुद्दीन तुगलकका सिंहासनारोहण।
१३२५ ,, गयासुद्दीनकी मृत्यु–मुहम्मद तुगलकका सिंहासनारोहण।

लगभग १३२७ ईसवी दिल्लीमे दौलताबादको राजधानी ले जाना।
१३२९ ,, सोनेके स्थानपर ताँबेके सिक्कोका प्रचलन।
१३३४ ,, मदुराका विद्रोह।
१३३६ ,, विजयनगर राज्यकी स्थापना।
लगभग १३३७–३८ ,, काराजाल अभियान।
१३३८–३९ ,, बंगालमे स्वतन्त्र सल्तनतकी स्थापना।
१३३९ ,, शाहमीरकी अधीनतामे काश्मीरका स्वतन्त्र होना।
१३४२ ,, इब्नबतूताका चीनकी ओर प्रयाण।
१३४३ ,, बंगालमे शम्शुद्दीन इलियासका सिंहासनारोहण।
१३४७ ,, बहमनी राज्यकी स्थापना।
१३५१ ,, मुहम्मद तुगलककी मृत्यु।
१३५१–८८ ,, फीरोज शाह तुगलकका राज्य-काल।
१३९३ ,, जौनपुरकी स्वतन्त्र सल्तनतकी स्थापना।
१३९८ ,, तैमूरकी चढाई।
१४१४ ,, बंगालका राजा गणेश।
१४२० ,, निकोलो कोण्टीका विजयनगर भ्रमण।
१४२९ ,, बहमनी राजधानीका गुल्बर्गसे बीदरको स्थानान्तरण।
लगभग १४३०–६९ ,, मेवाड़मे राणा कुम्भका राज्यकाल।
१४३४–३५ ,, उडीसाका राजा कपिलेन्द्र।
१४४३ ,, अब्दुर्रज्जाककी भारत यात्रा।
१४५१ ,, तुगलक वंशका पतन–बहलोल लोदीका सिंहासनारोहण।
१४६९ ,, गुरु नानकका जन्म।
१४७२ ,, शेरशाहका जन्म।
१४८१ ,, मुहम्मद गवाँकी हत्या।
१४८४ ,, बहमनी सल्तनतसे बरारका पृथक् होना।
१४८९ ,, सिकन्दर लोदीका सिंहासनारोहण–बीजापुरकी स्वतन्त्र सल्तनतकी स्थापना।
१४९० ,, अहमदगरकी स्वतन्त्र सल्तनतकी स्थापना।

१४६३ ईसवी—हुसेन शाहका बंगालका बादशाह होना।
१४६४ ,, बाबरका फरगानाके सिंहासनपर आरूढ़ होना।
१४६७–६८ ,, वास्कोडीगामाकी प्रथम समुद्र-यात्रा।
१५०६ ,, कृष्णदेवरायका सिंहासनारोहण-भारतमे पुर्तगाली गवर्नर, अल्बुकर्क।
लगभग १५०६–२७ ,, मेवाडमे राणा साँगाका राज्यकाल।
१५१० ,, पुर्तगालियो द्वारा गोवापर अधिकार।
१५१२–१८ ,, गोलकुण्डामे स्वतन्त्र सल्तनतकी स्थापना।
१५२६ ,, पानीपतका प्रथम युद्ध—बाबरका दिल्लीमे सिंहासनारोहण—भारतमे मुगल साम्राज्यका प्रारम्भ।
१५२७ ,, खनुआका युद्ध और राणा साँगाकी पराजय।
१५२६ ,, गोगराका युद्ध और अफगानोकी पराजय।
१५३० ,, कृष्णदेव रायकी मृत्यु-बाबरकी मृत्यु—हुमायूँका सिंहासनारोहण।
१५३३ ,, गुजरातके बहादुर शाह द्वारा चित्तौडपर अधिकार।
१५३४ ,, हुमायूँका मालवाको प्रस्थान।
१५३५ ,, हुमायूँसे पराजित होकर बहादुर शाहका भागना।
१५३८ ,, शेर खाँका बंगालके मुहम्मद शाहको परास्त करना—हुमायूँका बंगालपर आक्रमण—गुरुनानककी मृत्यु।
१५३६ ,, शेर खाँका चौसामे हुमायूँको परास्त कर सत्ता ग्रहण करना।
१५४० ,, हुमायूँका कन्नौजमें परास्त होना और शरणार्थी बनना।
१५४२ ,, उमरकोटमे अकबरका जन्म।
१५४४ ,, फारसमे हुमायूँ।
१५४५ ,, शेरशाहकी मृत्यु—इस्लाम शाहका सिंहासनारोहण।
१५५५ ,, हुमायूँ द्वारा दिल्लीके सिंहासनपर अधिकार।
१५५६ ईसवी—हुमायूँकी मृत्यु-अकबरका सिंहासनारोहण—पानीपतका द्वितीय युद्ध।
१५५८ ,, सूरवंशका अन्त।
१५६० ,, बैरम खाँका पतन।
१५६१ ,, अकबरकी मालवा-विजय।
१५६२ ,, अकबरका आमेरकी राजकुमारीसे विवाह—बेगमोके प्रभावसे मुक्ति।
१५६४ ,, अकबर द्वारा जजिया उठा लेना, रानी दुर्गावतीको परास्त कर उसका राज्य अपने राज्यमे मिला लेना।
१५६५ ,, तालीकोटका युद्ध और विजयनगरका विध्वंस।
१५६८ ,, अकबरका चित्तौडपर अधिकार।
१५६९ ,, रणथम्भौर और कालंजरपर अकबरका अधिकार—उसके पुत्र सलीमका जन्म।
१५७१ ,, फतेहपुर सीकरीकी स्थापना।
१५७२ ,, अकबर द्वारा गुजरातपर आधिपत्य।
१५७३ ,, अकबरके सामने सूरत द्वारा आत्मसमर्पण।
१५७५ ,, ठुकरोईका युद्ध—अकबर द्वारा दाऊद खाँकी पराजय।
१५७६ ,, अकबरका बंगालको पराभूत करना—दाऊद खाँकी मृत्यु—हल्दीघाट अथवा गोगुण्डाका युद्ध।
१५७७ ,, अकबर द्वारा खानदेशपर आक्रमण।
१५७९ ,, अकबरको मुज्तहिद बनानेकी घोषणा।
१५८० ,, बंगाल और बिहारमे विद्रोह।
१५८१ ,, अकबरका अपने भाई हकीमके विरुद्ध अभियान और उसके साथ समझौता करना।
१५८२ ,, अकबर द्वारा "दीन इलाही" की घोषणा।
१५८६ ,, अकबर द्वारा कश्मीरपर आधिपत्य।
१५८९ ,, टोडरमल और भगवानदासकी मृत्यु।

१५९१ ईसवी—अकबर द्वारा सिंधकी विजय ।

१५९२ ,, अकबरके साम्राज्यमे उडीसाका शामिल होना ।

१५९५ ,, मुगलो द्वारा अहमदनगरका घेरा—अकबर द्वारा कन्धार-विजय—मुगल साम्राज्यमे बलूचिस्तानका सम्मिलन—फैजीकी मृत्यु ।

१५९७ ,, राणा प्रतापकी मृत्यु ।

१६०० ,, लन्दनमे ईस्ट इण्डिया कम्पनीको अधिकार-पत्र—मुगलो द्वारा अहमदनगरपर आक्रमण ।

१६०१ ,, अकबर द्वारा असीरगढपर अधिकार ।

१६०२ ,, अबुलफजलकी मृत्यु—हालैंडकी यूनाइटेड ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी स्थापना ।

१६०५ ,, अकबरकी मृत्यु—जहाँगीरका सिंहासनारोहण ।

१६०६ ,, शाहजादा खुसरोका विद्रोह—ईरानियो द्वारा कन्धारका घेरा—जहाँगीरके आदेशसे पाँचवें सिक्ख गुरु अर्जुन सिंहको प्राण-दण्ड ।

१६०७ ,, मुगलो द्वारा कन्धारको मुक्त करना—शेर अफगनकी मृत्यु—विधवा नूरजहाँका मुगल हरममे लाया जाना ।

१६०८ ,, मलिक अम्बर द्वारा अहमदनगरकी पुन. प्राप्ति ।

१६०९ ,, आगरामे हाकिन्सका आगमन—पुलीकैटमे डच कोठीकी स्थापना।

१६११ ,, जहाँगीरका नूरजहाँसे विवाह—हाकिंसका आगरासे प्रस्थान—मसुलीपत्तममे अग्रेजी कोठी ।

१६१२ ,, शाहजादा खुर्रमका मुमताजमहलमे विवाह—सूरतमे अग्रेजी कोठी—कच्छ हाजोका मुगलसाम्राज्यमे शामिल किया जाना ।

१६१३ ,, जहाँगीर द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनीको फरमान ।

१६१५ ,, जहाँगीरका मेवाड़पर अधिकार—भारतमे थामस रोका आगमन ।

१६१६ ईसवी—जहाँगीरका रोसे भेंट करना—सूरतमे डच कोठी ।

१६१८ ,, मुगल दरबारसे रोका प्रस्थान ।

१६१९ ,, भारतसे रोका प्रस्थान ।

१६२० ,, मुगलोका काँगडापर अधिकार, नूरजहाँकी पुत्रीके साथ शहरयारकी सगाई—मलिक अम्बरका विद्रोह।

१६२२ ,, शाहजादा खुसरोकी मृत्यु—कन्धारपर फारसका अधिकार—शाहजहाँका विद्रोह ।

१६२४ ,, शाहजहाँके विद्रोहका दमन ।

१६२५ ,, चिनसुरामे डच कोठी ।

१६२६ ,, मलिक अम्बरकी मृत्यु—महाबतखाँका विद्रोह ।

१६२७ ,, जहाँगीरकी मृत्यु—शिवाजीका जन्म (?)

१६२८ ,, शाहजहाँका बादशाह बनना ।

१६३० ,, शिवाजीका जन्म (?)

१६३१ ,, मुमताज महलकी मृत्यु ।

१६३२ ,, बीजापुरपर मुगलोका आक्रमण—हुगलीकी लूट-मार ।

१६३३ ,, अहमदनगरके निजामशाही वशका अत ।

१६३४ ,, अग्रेजोको बगालमे व्यापार करनेका फरमान ।

१६३६ ,, बीजापुर और गोलकुण्डासे मुगलोकी सधि—दक्षिणमे औरगजेबकी सूबेदारके रूपमे नियुक्ति।

१६३८ ,, मुगलो द्वारा कन्धारपर पुन अधिकार ।

१६३९ ,, मद्रासमे अग्रेजो द्वारा सेंट जार्ज किलेकी स्थापना ।

१६४६ ,, शिवाजीका तोर्णापर अधिकार ।

१६४९ ,, कन्धारका मुगलोके हाथसे निकलना और फारस द्वारा उसे पुन हस्तगत करना ।

१६५१ ,, हुगलीमे अग्रेजोकी कोठी ।

१६५३ ,, चिनसुरामे डच कोठी ।

१६५६ ,, शिवाजी द्वारा जावलीपर आधिपत्य ।

१६५७ ,, शाहजहाँकी अस्वस्थता—उत्तराधिकार युद्धका प्रारम्भ ।

१६५८ ईसवी—धर्मट (अप्रैल) और सामूगढ़ (मई) के युद्ध—औरंगजेबका राज्याभिषेक।

१६५९ ,, खजवा और देवराईके युद्ध—दाराको प्राणदण्ड—मुराद और शाहजहांको बंदी बनाना—औरंगजेबका द्वितीय राज्याभिषेक—शिवाजीके हाथो अफजल खांकी मृत्यु।

१६६० ,, शाहजादा शुजाका बंगालसे अराकानको भागना—बंगालका सूबेदार मीर जुमला।

१६६१ ,, अंग्रेजोको बम्बई उपहारमे मिलना—मुरादको प्राणदण्ड—मुगलो द्वारा कूचविहारपर अधिकार करके आसामपर आक्रमण।

१६६२ ,, मीर जुमलाकी आसामपर चढाई और अहोम लोगोको सुलहके लिए बाध्य करना।

१६६३ ,, मीर जुमलाकी मृत्यु—बंगालके सूबेदारके पदपर शायस्ता खांकी नियुक्ति।

१६६४ ,, शिवाजी द्वारा सूरतका आक्रमण—फ्रासीसी ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी स्थापना—शिवाजीका राज्याभिषेक।

१६६६ ,, शाहजहांकी मृत्यु—शिवाजीका आगरा आगमन और नजर-बन्दीसे मुक्ति।

१६६८ ,, औरंगजेब द्वारा हिंदुओके विरुद्ध नये धार्मिक समादेश (फरमान) निकालना—ईस्ट इण्डिया कम्पनीके नाम बम्बईका पट्टा—सूरतमे प्रथम फ्रासीसी कोठी।

१६६९ ,, जाट सरदार गोकुलका विद्रोह।

१६७० ,, शिवाजी द्वारा सूरतपर दूसरी बार आक्रमण।

१६७१ ,, छत्रसाल बुन्देलाका विद्रोह।

१६७२ ,, सतनामी विद्रोह—अफ्रीदियोका विद्रोह।

१६७४ ,, पांडिचेरीकी स्थापना—शिवाजी द्वारा छत्रपतिका विरुद धारण करना।

१६७५ ईसवी—सिक्ख गुरु तेगबहादुरको प्राणदड।

१६७७ ,, कर्नाटकमे शिवाजीकी विजय।

१६७८ ,, जसवन्त सिंहकी मृत्यु—औरंगजेबकी आज्ञासे मारवाड़पर मुगलोका अधिकार।

१६७९ ,, औरंगजेब द्वारा जजिया फिरसे लगाना-औरंगजेब द्वारा मारवाडपर आक्रमण करनेकी आज्ञा।

१६८० ,, शिवाजीकी मृत्यु—शाहजादा अकबरका विद्रोह।

१६८१ ,, आसामका पुन स्वतन्त्र होना—औरंगजेब का दक्षिण अभियान।

१६८६ ,, औरंगजेब द्वारा बीजापुरकी विजय और उसे अपने राज्यमे मिलाना।

१६८७ ,, औरंगजेब द्वारा गोलकुण्डाकी विजय और उसे अपने राज्यमे मिलाना।

१६८९ ,, शम्भूजीको प्राणदण्ड—राजारामका सिंहासनारोहण और जिन्जीमे डेरा डालना।

१६९० ,, जाब चारनाक द्वारा कलकत्ताकी स्थापना।

१६९१ ,, मुगलो द्वारा जाटोको परास्त करके उन्हे अपने अधीन करना—औरंगजेबकी शक्ति चरम सीमापर।

१६९२ ,, मराठो द्वारा मुगल साम्राज्यपर हमले पुनः आरम्भ।

१६९८ ,, ईस्ट इण्डीजके लिए नयी अंग्रेजी व्यापारिक कम्पनीकी स्थापना—सूतानट्टी, कालीकोठा और गोविन्द नगरकी जमीदारी ईस्ट इण्डिया कम्पनीको प्राप्त।

१६९९ ,, मालवापर प्रथम मराठा आक्रमण।

१७०० ,, राजारामकी मृत्यु—ताराबाईका अभिभावक नियुक्त होना।

१७०२ ,, दोनो ईस्ट इण्डिया कम्पनियोका एकीकरण।

१७०३ ,, मराठो द्वारा बरारपर आक्रमण।

१७०६ ,, मराठो द्वारा गुजरातपर आक्रणम-

वड़ोदाको ध्वस करना।

१७०७ ईसवी—औरंगजेबकी मृत्यु—जाजऊका युद्ध—वहादुर शाह प्रथमका सिंहासनारोहण।

१७०८ ,, शाहूका दिल्लीसे पूना लौटकर मराठोका शासक बनना—गुरु गोविन्द सिंहकी मृत्यु।

१७१२ ,, वहादुर शाह प्रथमकी मृत्यु—जहाँदार शाहका सिंहासनारोहण।

१७१३ ,, फर्रुखशियरका सिंहासनारोहण—जहाँदार शाहकी हत्या।

१७१४ ,, वालाजी विश्वनाथ पेशवा—दक्षिणका सूबेदार हुसैन अली—हुसैन अली और मराठोके वीच सधि।

१७१६ ,, बदा वीरको प्राणदण्ड—मुगल दरवारमे सुरमैनके नेतृत्वमे दूत-मडलका आगमन।

१७१७ ,, ईस्ट इडिया कम्पनीको वादशाह फर्रुखशियरका फरमान।

१७१९ ,, फर्रुखशियरकी हत्या—कठपुतली शासकोका सिंहासनारोहण और पदच्युति—महमूद शाहका सिंहासनारोहण।

१७२० ,, वाजीराव प्रथमका पेशवा होना—सैयद वन्धुओका पतन।

१७२४ ,, सआदतखाँकी अवधके सूबेदारके पदपर नियुक्ति—दक्षिणमे निजामका स्वतन्त्र होना—कमरुद्दीनकी वजीरके पदपर नियुक्ति।

१७२५ ,, शुजाउद्दीनकी वगालके सूबेदारके रूपमे नियुक्ति।

१७३५ ,, मुगल वादशाह द्वारा पेशवा वाजीराव प्रथमकी मालवाके शासकके रूपमे स्वीकृति।

१७३९ ,, नादिरशाहका दिल्लीपर आक्रमण और उसे लूटना—शुजाउद्दीनकी मृत्यु और उसके पुत्र सरफराजकी वगालके सूबेदारके रूपमे नियुक्ति—वसई और साष्टीपर मराठोका अधिकार।

१७४० ईसवी—अलीवर्दी खाँ द्वारा सरफराज खाँको परास्त कर मार डालना और स्वय वगालका नवाव वन जाना—वालाजी वाजीरावका पेशवा वनना—मराठो द्वारा आरकाँट पर आक्रमण और उसके नवाव दोस्त अलीकी पराजय एव मृत्यु।

१७४२ ,, मराठोका वगालपर आक्रमण—पाण्डिचेरीके गवर्नरके रूपमे डूप्लेकी नियुक्ति।

१७४४-४८ ,, प्रथम कर्नाटक (आंग्ल-फ्रांसीसी) युद्ध।

१७४५ ,, रुहिल्लोके अधिकारमे रुहेलखण्ड।

१७४६ ,, ला वूरदोने द्वारा मद्रासपर अधिकार।

१७४७ ,, अहमदशाह अब्दाली द्वारा आक्रमण।

१७४८ ,, निजाम चिनकिलिच खानकी मृत्यु—वादशाह मुहम्मद शाहकी मृत्यु—अहमदशाहका सिंहासनारोहण।

१७४९ ,, शाहूकी मृत्यु—मद्रासपर अंग्रेजोका पुनः अधिकार।

१७५०-५४ ,, द्वितीय कर्नाटक युद्ध।

१७५० ,, निजाम नासिर जगकी पराजय और मृत्यु—मुजफ्फर जंगका निजाम वनना।

१७५१ ,, रावर्ट क्लाइव द्वारा आरकाँटपर अधिकार और उसकी सुरक्षा—मुजफ्फर जगकी मृत्यु—सलावत जगका निजाम वनना—कटकको सोपकर नवाव अलीवर्दी खाँका मराठोके साथ सन्धि कर लेना।

१७५४ ,, डूप्लेकी वापसी—गोदेहूकी गवर्नरके रूपमे नियुक्ति और अंग्रेजोके साथ उसकी सन्धि—आलमगीर द्वितीयका सिंहासनारोहण।

१७५६ ,, अलीवर्दी खाँकी मृत्यु (२१ अप्रैल)—सिराजुद्दौलाका सिंहासनारोहण, उसके द्वारा कलकत्ता पर अधिकार (२० जून)—सप्त

वर्षीय युद्ध (१७५६-६३)-तृतीय कर्नाटक युद्ध।

१७५७ ईसवी-अंग्रेजो द्वारा कलकत्तापर पुनः अधिकार (२ जनवरी)-अहमद शाह अब्दाली द्वारा मथुरा और दिल्लीको विध्वस करना (जनवरी)-सिराज और अंग्रेजोके बीचमे अलीनगरकी संधि (९ फरवरी)-अंग्रेजो द्वारा चन्द्रनगरपर अधिकार (मार्च)-पलासीका युद्ध (२३ जून)-मीरजाफर का नवाब बनाया जाना (२८ जून)-सिराजुद्दौलाका बन्दी बनना और प्राणदण्ड (२ जुलाई)।

१७५८ ,, भारतमे लालीका आगमन-मराठो द्वारा पजाबपर अधिकार-फोर्ड द्वारा मुसलीपट्टम्पर अधिकार।

१७५९ ,, बीदरका युद्ध-शाहजादा अली गौहर द्वारा बिहारपर विफल आक्रमण-गाजीउद्दीन द्वारा आलमगीर द्वितीयकी हत्या।

१७६० ,, विन्दवासका युद्ध-उद्गीरका युद्ध-नवाबकी गद्दीपर मीर कासिमका बैठना-वासिटार्टकी बगालमे गवर्नरके पदपर नियुक्ति।

१७६१ ,, पानीपतका तृतीय युद्ध (१४ जनवरी)-पाण्डिचेरीका अंग्रेजोके आगे आत्म-समर्पण-शाहआलम द्वितीयके नामसे अलीगौहरका सिंहासनारोहण-वजीरके रूपमे शुजाउद्दौलाकी नियुक्ति-पेशवा बालाजी बाजीरावकी मृत्यु (२३ जून)-माधवरावका सिंहासनारोहण-मैसूरका नवाब हैदर अली।

१७६३ ,, पैरिसकी सन्धि-मीर कासिमका बगाल और बिहारसे खदेड दिया जाना।

१७६४ ,, बक्सरका युद्ध।

१७६५ ,, मीर जाफरकी मृत्यु-बगालमे क्लाइवकी गवर्नरीका दूसरा कार्यकाल-इलाहाबादकी सधि-शाह आलम द्वारा कम्पनीको बगाल, बिहार और उड़ीसाकी दीवानी सौंपा जाना।

१७६६ ईसवी-कम्पनी द्वारा उत्तरी सरकारको हस्तगत करना।

१७६७ ,, क्लाइवका प्रस्थान—वेरेलेस्ट बगालका गवर्नर-प्रथम मैसूर युद्ध (१७६७-६९)

१७७० ,, बगालका भीषण दुर्भिक्ष।

१७७२ ,, वारेन हेस्टिंग्स बगालका गवर्नर नियुक्त-माधवराव पेशवाकी मृत्यु-पेशवा नारायणरावका सिंहासनारोहण और मृत्यु।

१७७३ ,, रेगुलेटिंग ऐक्टका पास होना-रघुनाथराव अथवा राघोबाका पेशवा बनना।

१७७४ ,, पेशवाकी गद्दीपर नारायणरावका बैठना-रुहिल्ला युद्ध-गवर्नर-जनरलके रूपमे वारेन हेस्टिंग्स द्वारा पदग्रहण—कलकत्तामे सर्वोच्च न्यायालयकी स्थापना।

१७७५ ,, नन्दकुमारका मुकदमा और फाँसी—प्रथम मराठा युद्धका प्रारम्भ जो १७८२ ईसवी तक चलता रहा।

१७७६ ,, पुरन्दरकी सधि।

१७७९ ,, बडगाँवका समझौता।

१७८० ,, सेनापति पोफम द्वारा ग्वालियरपर अधिकार-द्वितीय मैसूर युद्ध (१७८०-८४)

१७८१ ,, चेतसिंहका सिंहासनसे उतार दिया जाना-रेगुलेटिंग ऐक्टमे सशोधन।

१७८२ ,, अवधकी बेगमोका मामला-साल्वाईकी सधि-हैदर अलीकी मृत्यु।

१७८३ ,, फाक्सका इण्डिया बिल।

१७८४ ,, मगलोरकी सधि द्वारा द्वितीय मैसूर युद्धकी समाप्ति-पिटका इण्डिया ऐक्ट।

१७८५ ईसवी–वारेन हेस्टिंग्सका गवर्नर-जनरल-के पदसे त्यागपत्र ।

१७८६ ,, गवर्नर-जनरलके पदपर लार्ड कार्नवालिसकी नियुक्ति ।

१७९० ,, तृतीय मैसूर युद्धका प्रारम्भ (१७९०–९२) ।

१७९२ ,, श्रीरंगपट्टनकी संधि द्वारा तृतीय मैसूर युद्धकी समाप्ति–रणजीत सिंहका सिक्ख मिसलका मुखिया बनना ।

१७९३ ,, बंगालमें भू-राजस्वका स्थायी बन्दोबस्त–कम्पनीके चार्टरका नवीनीकरण–लार्ड कार्नवालिस-की अवकाश-प्राप्ति–गवर्नर-जनरल सर जॉन शोर ।

१७९४ ,, महादजी शिन्देकी मृत्यु ।

१७९५ ,, खरदा अथवा खरद्रलाका युद्ध–अहल्याबाईकी मृत्यु ।

१७९६ ,, पेशवा माधवराव नारायणकी मृत्यु–बाजीराव द्वितीय पेशवा ।

१७९७ ,, पंजाबमें जमान शाह–अवधके नवाब आसफुद्दौलाकी मृत्यु ।

१७९८ ,, गवर्नर-जनरल लार्ड वेलेजली–निजाम द्वारा आश्रित संधिपर हस्ताक्षर ।

१७९९ ,, चतुर्थ मैसूर युद्ध–टीपूकी मृत्यु–श्रीरंगपट्टनका पतन–मैसूरका विभाजन–मैसूरकी गद्दीपर हिन्दू राजाका अधिष्ठापन–जमान शाह द्वारा रणजीत सिंह-की लाहौरके सूबेदारके पदपर नियुक्ति–माल्कमके नेतृत्वमें अंग्रेज दूत-मण्डलका फारस पहुँचना–विलियम कैरे द्वारा श्रीरामपुरमें बेप्टिस्ट मिशनकी स्थापना ।

१८०० ,, नाना फड़नवीसकी मृत्यु ।

१८०१ ,, कर्नाटकका ब्रिटिश साम्राज्यमें मिलाया जाना ।

१८०२ ,, पूनाका युद्ध–बसईकी संधि ।

१८०३ ,, द्वितीय मराठा युद्ध (१८०३–१८०५)–अलीगढ़पर अधिकार–दिल्ली, असई, लासवाड़ी आर-गाँवके युद्ध–देवगाँवकी संधि तथा कटकका समर्पण–सुर्जी-अर्जुन गाँवकी संधि ।

१८०४ ईसवी–होल्करके साथ युद्ध–मोन्सनकी पराजय–डीगका युद्ध ।

१८०५ ,, भरतपुरकी घेराबन्दीमें अंग्रेजोंकी असफलता–लार्ड वेलेजलीका वापस बुलाया जाना–गवर्नर-जनरलके रूपमें लार्ड कार्नवालिस-का दूसरा कार्यकाल–गवर्नर-जनरल सर जार्ज बारलो–होल्कर-के साथ सन्धि ।

१८०६ ,, वेल्लोरमें विप्लव तथा उसका दमन ।

१८०७ ,, लार्ड मिण्टो प्रथम गवर्नर-जनरल नियुक्त (१८०७–१३ ई०) ।

१८०८ ,, माल्कमके नेतृत्वमें फारस और एलफिन्सटनके नेतृत्वमें काबुल-को अंग्रेज दूतमण्डलोंका जाना ।

१८०९ ,, अंग्रेजों और रणजीत सिंहके बीच अमृतसरकी संधि ।

१८११ ,, जावाकी विजय ।

१८१२ ,, मिर्जापुरपर पेंढारियोंका हमला–पाँचवीं रिपोर्ट ।

१८१३ ,, कम्पनीके चार्टरका नवीनीकरण–लार्ड मिण्टो प्रथमका अवकाश-ग्रहण–गवर्नर-जनरलके रूपमें लार्ड हेस्टिंग्सकी नियुक्ति (१८१३–२३ ई०)

१८१४ ,, नेपालके साथ युद्धारम्भ (१८१४-१६ ई०) ।

१८१६ ,, सगौलीकी संधिके द्वारा नेपाल युद्धकी समाप्ति ।

१८१७–१८ ,, पेंढारी तथा तृतीय मराठा युद्ध-खड़की और सीताबल्डीके युद्ध-अप्पा साहब भोंसलाकी पद-च्युति–महीदपुरका युद्ध–होल्कर-के साथ संधि ।

१८१८ ,, आस्टीका युद्ध–कोरेगाँवकी रक्षा

—पेशवा बाजीराव द्वितीयका समर्पण।

१८१९ ईसवी—असीरगढका आत्म-समर्पण—पेशवापदकी समाप्ति, ब्रिटिश वृत्तिभोगीकी हैसियतसे पेशवा बाजीराव द्वितीयका विठूरमे अवकाश-ग्रहण—राजपूताना के राज्योके साथ सुरक्षात्मक सधि—भूकम्प—सिंगापुरपर आधिपत्य।

१८२० ,, प्रथम बगला समाचार-पत्र 'समाचार दर्पण'का प्रकाशन—मद्रासके गवर्नरके रूपमे सर थामस मुनरोकी नियुक्ति (१८२०—२७ ई०)

१८२३ ,, लार्ड हेस्टिंग्सका प्रस्थान—कार्यवाहक गवर्नर-जनरल एडम्स-पत्रकार बकिंघमका देश-निर्वासन —लार्ड अमहर्स्ट गवर्नर-जनरल।

१८२४ ,, प्रथम वर्मा युद्ध (१८२४—२६ ई०)—बैरकपुरका विद्रोह।

१८२६ ,, भरतपुरका पतन—यन्दबूकी सधि—आसाम, अराकान और तेनासरीमका ब्रिटिश साम्राज्यमे सम्मिलित किया जाना।

१८२७ ,, मद्रासमे भाप द्वारा चालित युद्धपोत 'इण्टरप्राइज'।

१८२८ ,, लार्ड विलियम वेंटिंक गवर्नर-जनरल नियुक्त (१८२८—३६ ई०)।

१८२९ ,, सती प्रथाका उन्मूलन।

१८२९-३७ ,, ठगोका दमन।

१८३० ,, कछारपर अधिपत्य— राजा राम मोहन रायका इग्लैण्ड-भ्रमण।

१८३१ ,, मैसूरके राजाकी पद-च्युति और उसके शासनका भार अग्रेजो द्वारा सम्भालना—वर्न्स द्वारा सिंधुकी यात्रा—रणजीत सिंह और लार्ड विलियम वेंटिंककी रूपडमे भेट।

१८३२ ,, जयन्तियापर आधिपत्य।

१८३३ ,, कम्पनीके चार्टरका नवीनीकरण—विभिन्न सुधार।

१८३४ ,, कुर्गपर आधिपत्य—सुप्रीम कौंसिलमे कानून-सदस्यकी नियुक्ति—लार्ड मेकाले प्रथम कानून-सदस्य।

१८३५ ईसवी—कलकत्ता मेडिकल कालेजकी स्थापना—शिक्षा-सम्बन्धी प्रस्ताव-लार्ड विलियम बेंटिकका अवकाश-ग्रहण—सर चार्ल्स मेटकाफ कार्यकारी गवर्नर-जनरल—समाचार पत्रोपर प्रतिबन्धोकी समाप्ति।

१८३६ ,, गवर्नर जनरलके पदपर लार्ड आकलैंडकी नियुक्ति (१८३६-४२ ई०)।

१८३७—३८ ,, उत्तरी भारतमे दुर्भिक्ष।

१८३८ ,, अग्रेजोके साथ शाह शुजा और रणजीत सिंहकी त्रिपक्षीय सधि।

१८३९ ,, नयी सधिके लिए सिंधके अमीरोका बाध्य किया जाना—रणजीत सिंहकी मृत्यु—प्रथम अफगान युद्ध (१८३९—४२ ई०)—गजनीपर अधिकार और काबुलपर स्वामित्व।

१८४० ,, अफगान कबीलोका विद्रोह—दोस्त मुहम्मदकी पदच्युति।

१८४१ ,, अफगानो द्वारा बर्न्स और मैकनाटनकी हत्या।

१८४२ ,, अफगानिस्तानमे अग्रेजी फौजोका संहार—डा० ब्राइडनका अकेले जलालाबाद पहुँचना—लार्ड एलिनबरोका गवर्नर-जनरल होना (१८४२—४४ ई०)—जलालाबादको सहायता—काबुलपर पुन आधिपत्य—दोस्त मुहम्मदका पुनः अमीर बनाया जाना—अफगानिस्तानसे अग्रेज फौजोका हटना।

१८४३ ,, सिंधके अमीरोके साथ युद्ध—मियानी और द्राबोके युद्ध—सिन्धपर आधिपत्य — महाराजपुरका युद्ध—दास प्रथाकी समाप्ति।

१८४४ ,, लार्ड एलिनबरोका वापस बुलाया जाना—लार्ड हार्डिंज गवर्नर-

जनरल (१८४४–४८ ई०)।

१८४५ ईसवी–प्रथम सिक्ख युद्ध (१८४५–४६)–मुद्की और फीरोजशाहके युद्ध।

१८४६ ,, अलीवाल और सुबराहानका युद्ध–लाहौरकी सन्धियाँ।

१८४८ ,, लार्ड डलहौजीका गवर्नर-जनरल होना (१८४८–५६ ई०)–मूलराजका विद्रोह–द्वितीय सिक्ख युद्ध (१८४८–४९)–गोद प्रथाकी समाप्ति और इस घोषणाके अनुसार सताराका ब्रिटिश साम्राज्यमे मिला लिया जाना।

१८४९ ,, चिलियाँवाला और गुजराजके युद्ध–पजावका ब्रिटिश साम्राज्यमे मिलाया जाना–कलकत्तामे लडकियोके लिए वेथून स्कूलका खुलना–जैतपुरा और सम्बलपुरका ब्रिटिश साम्राज्यमे मिलाया जाना।

१८५० ,, सिक्किमके एक भागका दण्डस्वरूप ब्रिटिश साम्राज्यमे मिलाया जाना।

१८५२ ,, द्वितीय वर्मा युद्ध–पेगूपर आधिपत्य–भूतपूर्व पेशवा वाजीराव द्वितीयकी मृत्यु और उसकी पेंशनका समाप्त किया जाना।

१८५३ ,, भारतमे वम्बईसे थाना तक प्रथम रेलवे लाइनका उद्घाटन–कलकत्तासे आगरा तक तारकी लाइनका विछाया जाना–झाँसी और नागपुरका ब्रिटिश साम्राज्यमे मिलाना–निजाम द्वारा वरारका समर्पण–कम्पनीके चार्टरका नवीनीकरण–आई० सी० एस०के लिए प्रवेश-परीक्षाका श्रीगणेश।

१८५४ ,, सर चार्ल्स वुडका शिक्षा सम्बन्धी खरीता।

१८५५ ,, सथालोका विद्रोह।

१८५६ ,, अवधका ब्रिटिश साम्राज्यमे मिलाया जाना–भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम–हिंदू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम–लार्ड डलहौजीका प्रस्थान और गवर्नर-जनरलके रूपमे लार्ड केनिंगकी नियुक्ति–क्रीमियाके युद्धका अन्त–फारसका युद्ध–चीनमे युद्ध (१८५६–६० ई०)–इन्फील्ड रायफलो और चर्वी-युक्त कारतूसोका प्रचलन।

१८५७ ईसवी–वगालमे वैरकपुर और वरहामपुरमे विद्रोह (जनवरी–अप्रैल)–१० मई १८५७ को मेरठमे सिपाही-विद्रोहका-सूत्रपात–विद्रोही सिपाहियो द्वारा दिल्लीपर अधिकार और दिल्लीके मुगल वादशाह वहादुर शाह द्वारा स्वतन्त्रताकी घोषणा (मई)–लखनऊ और वरेलीमे विद्रोह (मई)–अंग्रेज फौजोका दिल्लीकी पहाडीपर अधिकार (जून)–कानपुरमे कत्ले आम (जुलाई)–दिल्लीपर पुन अधिकार और शाहजादाकी हत्या (सितम्बर)–लखनऊ रेजिडेंसीमे घिरी अंग्रेज फौजोकी मुक्ति और कानपुरमे विण्डमकी पराजय (नवम्बर)-कानपुरपर पुनः आधिपत्य (दिसम्बर)–कलकत्ता, वम्बई और मद्रास विश्वविद्यालयोकी स्थापना।

१८५८ ,, वादशाह वहादुर शाहका मुकदमा (जनवरी-मार्च)–लखनऊपर पुन आधिपत्य (मार्च)–झासीपर पुन आधिपत्य–वरेली और कालपीपर पुन आधिपत्य–झाँसीकी रानी और तात्या टोपे द्वारा ग्वालियर-पर अधिकार और नाना साहवका पेशवा घोषित किया जाना (मई)–झाँसीकी रानीकी पराजय और मृत्यु (जून)–ग्वालियर और झासीपर पुनः अधिकार–लार्ड कैनिंग द्वारा क्षमादानकी घोषणा (जुलाई)–भारतके लिए नया

शासन विधान (अगस्त)—महारानी विक्टोरियाकी घोषणा (नवम्बर)—लार्ड कैनिंग वाइसराय नियुक्त (नवम्बर)।

१८५९ ईसवी—तात्या टोपेका धोखेसे गिरफ्तार कर लिया जाना—गोद-प्रथाकी समाप्तिकी घोषणा रद्द—शांति और व्यवस्थाकी क्रमिक स्थापना—बंगालमे नीलकी खेतीके प्रश्नपर झगडे (१८५९–६०)।

१८६० „ भारतीय दंड संहिता।

१८६१ „ इण्डियन कौंसिल ऐक्ट—हाईकोर्टोंकी स्थापना—लोक सेवा अधिनियम—उत्तर-पश्चिमी भारतमे दुर्भिक्ष—जाब्ता फौजदारी।

१८६२ „ लार्ड कैनिंगका अवकाश-ग्रहण—लार्ड एल्गिन प्रथम वाइसराय नियुक्त (१८६२-६३ ई०)—सुप्रीमका और सदर न्यायालयोंका हाईकोर्टोंमे एकीकरण।

१८६३ „ दोस्त मुहम्मदकी मृत्यु।

१८६४ „ सर जॉन लारेन्स वाइसराय नियुक्त (१८६४-६८)—भूटान युद्ध।

१८६५ „ उडीसाका दुर्भिक्ष (१८६५–६७ ई०)—यूरोपके साथ तार संचार व्यवस्थाका उद्घाटन।

१८६८ „ अम्बालासे दिल्लीतक रेल लाइनका उद्घाटन—शेरअलीको अफगानिस्तानका अमीर बनाया जाना।

१८६९ „ लार्ड मेयो वाइसराय (१८६९-७२ ई०)—अम्बालामे शेर अलीसे भेट—ड्यूक आफ एडिनबराँकी यात्रा।

१८७२ „ लार्ड मेयोकी हत्या—लार्ड नार्थब्रुक वाइसराय नियुक्त (१८७२-७६ ई०)।

१८७३ „ रूसियोंका खीवपर अधिकार—बिहारमे दुर्भिक्ष (१८७३-७४ ई०)।

१८७४ „ डिजरैली ब्रिटेनका प्रधानमन्त्री।

१८७५ „ मल्हारराव गायकवाडकी पदच्युति—प्रिंस आफ वेल्स, एडवर्डकी यात्रा।

१८७६ ईसवी—लार्ड नार्थब्रुकका अवकाश-ग्रहण—लार्ड लिटन प्रथम वाइसराय (१८७६–८० ई०)—क्वेटापर अधिकार—दक्षिणमे दुर्भिक्ष।

१८७७ „ दिल्ली दरबार (१ जुलाई)—महारानी विक्टोरिया भारतकी सम्राज्ञी घोषित।

१८७८ „ वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट—द्वितीय अफगान युद्ध (१८७८–८० ई०)।

१८७९ „ चुंगीके लिए लगायी गयी नागफलीकी झाडियोंका उखाड दिया जाना।

१८८० ई०—लार्ड लिटन प्रथमका त्यागपत्र—लार्ड रिपन वाइसराय (१८८०-८४)—माईवन्दीका युद्ध (जुलाई)—कंधारकी ओर रावर्ट्सका प्रस्थान—अब्दुर्रहमानकी अफगानिस्तानके अमीरके रूपमे मान्यता—अफगानिस्तानके प्रति ब्रिटिश नीतिमे परिवर्तन।

१८८१ „ फैक्टरी अधिनियम—प्रथम जनगणना।

१८८२ „ वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्टका निरस्त किया जाना—हण्टर आयोग।

१८८३ „ भारतमे स्वायत्त शासनका सूत्रपात—इल्बर्ट विधेयक।

१८८४ „ लार्ड रिपनका त्यागपत्र—लार्ड डफरिन वाइसराय।

१८८५ „ पंजदेह कांड—तृतीय बर्मा युद्ध—भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका प्रथम अधिवेशन—बंगालका स्वायत्त शासन अधिनियम।

१८८६ „ उत्तरी बर्माका ब्रिटिश साम्राज्यमे मिलाया जाना—ग्वालियरका किला शिन्देको लौटा दिया जाना—अफगानिस्तानकी उत्तरी सीमाका निर्धारण।

१८८७ „ महारानी विक्टोरियाके शासनकालकी स्वर्ण-जयन्ती।

१८८८ ईसवी–लार्ड डफरिनका त्यागपत्र और लार्ड लैन्सडाउन वाइसराय (१८८८-९४ ई०)।
१८८९ ,, वेल्सके प्रिंस एडवर्डकी दूसरी यात्रा।
१८९१ ,, द्वितीय फैक्टरी अधिनियम–सहवास वय अधिनियम–मनीपुरमें विद्रोह।
१८९२ ,, इंडियन कौंसिल एक्ट।
१८९३ ,, काबुलको डूरैण्ड आयोग–स्वामी विवेकानन्द अमेरिकामें।
१८९४ ,, लार्ड एल्गिन द्वितीय वाइसराय (१८९४-९९ ई०)।
१८९५ ,, चित्राल अभियान।
१८९६ ,, बम्बईमें प्लेगकी महामारी (१८९६–१९०० ई०)–दुर्भिक्ष (१८९६–९७ ई०)।
१८९७ ,, तीराह अभियान–दुर्भिक्ष आयोग।
१८९९ ,, लार्ड कर्जन वाइसराय (१८९९-१९०५ ई०)।
१९०० ,, दुर्भिक्ष–भूमि स्वामित्व-परिवर्तन अधिनियम।
१९०१ ,, महारानी विक्टोरियाकी मृत्यु और एडवर्ड सप्तमका सिंहासनारोहण–उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्तका गठन।
१९०३ ,, तिब्बती अभियान (१९०३-०४ ई०)।
१९०४ ,, भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम–को-आपरेटिव सोसायटी अधिनियम–रूसी-जापानी युद्ध (१९०४-०५ ई०)।
१९०५ ,, बंगालका विभाजन–लार्ड मिण्टो द्वितीय वाइसराय (१९०५–१० ई०)–लार्ड मार्ले भारत-मंत्री–स्वदेशी प्रचार तथा विदेशी मालका बहिष्कार आन्दोलन।
१९०६ ,, मुस्लिम लीगकी स्थापना–कलकत्ता कांग्रेसमें अध्यक्ष दादा भाई नौरोजीकी घोषणा कि स्वराज्य कांग्रेस लक्ष्य है।
१९०७ ,, आंग्ल-रूसी समझौता–सूरत कांग्रेसमें फूट।
१९०८ ईसवी–समाचार-पत्र अधिनियम।
१९०९ ,, इण्डियन कौंसिल ऐक्ट (मोर्ले-मिण्टो सुधार)–आतंकवादियोंकी कारवाइयाँ–प्रथम भारतीय (एस पी सिन्हा) की वाइसरायकी कार्यकारी परिषदमें नियुक्ति।
१९१० ,, लार्ड हार्डिंज वाइसराय (१९१०-१६ ई०)।
१९११ ,, सम्राट् जार्ज पंचमकी सम्राज्ञी सहित भारत-यात्रा–दिल्ली दरबार–बंगालका विभाजन रद्द–कलकत्तासे दिल्लीको राजधानी परिवर्तनकी घोषणा।
१९१२ ,, राजधानीका कलकत्तासे दिल्लीको स्थानान्तरण–बिहार और उड़ीसाके पृथक् प्रान्तोंकी स्थापना–बंगालका गवर्नर लार्ड कारमाइकेल–लार्ड हार्डिंज दिल्लीमें बम-विस्फोटमें घायल।
१९१३ ,, रवीन्द्रनाथ ठाकुरको नोबेल पुरस्कार।
१९१४ ,, प्रथम विश्वयुद्ध–युद्धकी घोषणा (४ अगस्त)–फ्रांसमें भारतीय सैनिक टुकड़ियोंका उतरना (२६ सितम्बर)–ब्रिटेन द्वारा तुर्कीके विरुद्ध युद्धकी घोषणा (५ नवम्बर)।
१९१५ ,, मेसोपोटामियामें अंग्रेजी सेनाका पीछे हटना–जनरल टाउनशेंडके नेतृत्वमें भारतीय ब्रिटिश सेनाका कुट–एल आमारामें प्रवेश–भारत सुरक्षा अधिनियम।
१९१६ ,, वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्ड (१९१६–२१ ई०)–तुर्कोंका कुट-एल आमारापर अधिकार और टाउनशेंडका बंदी बनाया जाना–सैण्डलर आयोग–कांग्रेस और लीगके बीच लखनऊ समझौता–होम रूल लीगकी स्थापना–पूनामें महिला विश्वविद्यालयकी स्थापना।

—भारतमें जनगणना—गोल मेज सम्मेलनका दूसरा अधिवेशन, जिसमें गांधीजीने भी भाग लिया (सितम्बर-दिसम्बर)—वाइसराय लार्ड विलिंगडन (१९३१—३६ ई०)।

१९३२ ईसवी—गांधीजीको कारावास (जनवरी)—कांग्रेस गैरकानूनी घोषित—कठोर दमनचक्र—साम्प्रदायिक पंच निर्णय—गांधीजीका अनशन—पूना समझौता—देहरादूनमें भारतीय मिलिटरी अकादमीकी स्थापना।

१९३३ ,, प्रस्तावित शासन सुधारोंपर श्वेतपत्र प्रकाशित—संयुक्त प्रवर समिति।

१९३४ ,, सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित—बिहार भूकम्प—फैक्टरी अधिनियम—भारतीय नौसेनाका गठन—अफगानिस्तानके अमीर नादिर शाहकी हत्या और जहीर शाह-का सिंहासनारोहण।

१९३५ ,, गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया अधिनियम १९३५।

१९३६ ,, सम्राट् जार्ज पंचमकी मृत्यु—एडवर्ड अष्टमका सिंहासनारोहण और सिंहासन-त्याग—लार्ड लिनलिथगो वाइसराय (१९३६)।

१९३७ ,, प्रान्तीय स्वशासनका उद्घाटन (१ अप्रैल)—अन्तरिम मंत्रिमंडल—वाइसरायका वक्तव्य (जून)—छः प्रान्तोंमें कांग्रेस मंत्रिमंडलका गठन—संघीय न्यायालयका निर्माण—लार्ड लिनलिथगो वाइसराय और गवर्नर-जनरल (१९३७—४२)।

१९३९ ,, द्वितीय विश्वयुद्ध (३ सितम्बर)—वाइसरायकी भारतीय नेताओंसे मंत्रणा—कांग्रेस द्वारा युद्धके उद्देश्योंके तुरन्त स्पष्टीकरण-की मांग—वाइसरायकी घोषणा (१८ अक्तूबर) कि युद्धोपरान्त

१९१७ ईसवी—अंग्रेजोका कुट-एल आमारापर पुनः अधिकार—रूसमे क्रान्तिके फलस्वरूप जारशाहीका पतन—अमेरिका द्वारा जर्मनीके विरुद्ध युद्धकी घोषणा—ब्रिटिश कामन्स सभामे भारत-मन्त्री माटेगूकी घोषणा कि ब्रिटिश सरकारका लक्ष्य भारतमे स्वायत्तशासी सस्थाओका क्रमिक विकास करना है ताकि वहाँ क्रमिक रीतिसे उत्तरदायी सरकारकी स्थापना हो सके (२७ अगस्त)—माटेगूकी भारत-यात्रा।

१९१८ ,, भारतीय सेनामे अफसरोके पद-पर नियुक्तिके लिए भारतीयोको योग्य घोषित किया जाना—इण्डियन नेशनल लिबरल फेड-रेशन—रूसकी पराजय—मेसोपोटा-मियामे अग्रेज फौजोका बढाव और फ्रासमे जर्मन फौजोका पीछे हटना—माण्टेगू-चेम्सफोर्ड रिपोर्टका प्रकाशन और उसपर पार्लियामेण्टमे वाद-विवाद—प्रथम विश्वयुद्ध (१९१४–१८ ई०) की समाप्ति।

१९१९ ,, गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, १९१९—पजाबमे उपद्रव—शाही घोषणा—खलीफा पदकी समाप्ति।

१९२० ,, खिलाफत आन्दोलन—बाल गगा-धर तिलककी मृत्यु—महात्मा गाधीके नेतृत्वमे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस द्वारा असहयोग आदोलन-का श्रीगणेश—लार्ड सिन्हा बिहार और उडीसाके गवर्नर नियुक्त।

१९२१ ,, असहयोग आदोलन जारी (१९२०–२४ ई०)—देशी नरेशोके नरेन्द्र मण्डलका गठन—मोपला विद्रोह—प्रिस ऑफ वेल्स, एडवर्ड की यात्रा—जनगणना—वाइसराय लार्ड रीडिंग (१९२१–२६ ई०)।

१९२२ ,, माण्टेगूका त्यागपत्र।

१९२३ ईसवी—स्वराज्य पार्टीकी स्थापना—वाइ-सराय द्वारा अपने विशेषाधिकारसे नमक-कर कानूनको पास करना—भारतीय सेनाकी कुछ पलटनो-की कमानका भारतीयकरण।

१९२४ ,, असहयोग आन्दोलनका शिथिल पडना।

१९२५ ,, चित्तरजनदासकी मृत्यु—अन्त-विश्वविद्यालय बोर्डका गठन—लार्ड लिटन द्वितीय स्थानापन्न वाइसराय।

१९२६ ,, वाइसराय लार्ड इर्विन (१९२६–३१ ई०)—रुपयेका अवमूल्यन।

१९२७ ,, साइमन कमीशनकी नियुक्ति—भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके मद्रास अधिवेशनमे स्वतन्त्रताके लक्ष्यकी घोषणा।

१९२८ ,, अफगानिस्तानके अमीर अमा-नुल्लाका अपदस्थ किया जाना—सर्वदलीय सम्मेलन—नेहरू रिपोर्ट—काग्रेसके अन्दर इण्डिपेण्डेस लीगकी स्थापना, जिसने इस शर्त-पर औपनिवेशिक राज्य स्वीकार कर लिया कि उसकी घोषणा १९२९ ई० के वर्षका अन्त होनेसे पूर्व कर दी जाय—नादिरशाह अफ-गानिस्तानका अमीर (१९२८–३४ ई०)।

१९२९ ,, लार्ड इर्विनकी घोषणा (३१ अक्तूबर) कि भारतकी सवै-धानिक प्रगतिका अन्तिम लक्ष्य औपनिवेशिक राज्यकी स्थापना है—भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके लाहौर अधिवेशनमे पूर्ण स्वाधी-नताके प्रस्तावको पारित किया जाना (दिसम्बर)।

१९३० ,, ६ अप्रैलको सविनय अवज्ञा आन्दोलनका श्रीगणेश—साइमन कमीशनकी रिपोर्ट—बर्मामे विद्रोह—गोल मेज सम्मेलनका प्रथम अधिवेशन (नवम्बर-जनवरी)।

१९३१ ,, इर्विन-गाधी समझौता (५ मार्च)

—भारतमें जनगणना—गोल मेज सम्मेलनका दूसरा अधिवेशन, जिसमें गांधीजीने भी भाग लिया (सितम्बर-दिसम्बर)—वाइसराय लार्ड विलिंगटन (१९३१—३६ ई०)।

१९३२ ईसवी—गांधीजीको कारावास (जनवरी)—कांग्रेस गैरकानूनी घोषित—कठोर दमनचक्र—साम्प्रदायिक पंच निर्णय—गांधीजीका अनशन—पूना समझौता—देहरादूनमें भारतीय मिलिटरी अकादमीकी स्थापना।

१९३३ „ प्रस्तावित शासन सुधारोंपर श्वेतपत्र प्रकाशित—संयुक्त प्रवर समिति।

१९३४ „ सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित—बिहार भूकम्प—फैक्टरी अधिनियम—भारतीय नौसेनाका गठन—अफगानिस्तानके अमीर नादिर शाहकी हत्या और जहीर शाहका सिंहासनारोहण।

१९३५ „ गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया अधिनियम १९३५।

१९३६ „ सम्राट् जार्ज पंचमकी मृत्यु—एडवर्ड अष्टमका सिंहासनारोहण और सिंहासन-त्याग—लार्ड लिनलिथगो वाइसराय (१९३६)।

१९३७ „ प्रान्तीय स्वशासनका उद्घाटन (१ अप्रैल)—अन्तरिम मन्त्रिमंडल—वाइसरायका वक्तव्य (जून)—छ प्रान्तोंमें कांग्रेस मन्त्रिमंडलका गठन—संघीय न्यायालयका निर्माण—लार्ड लिनलिथगो वाइसराय और गवर्नर-जनरल (१९३७—४३)।

१९३९ „ द्वितीय विश्वयुद्ध (३ सितम्बर)—वाइसरायकी भारतीय नेताओंसे मन्त्रणा—कांग्रेस द्वारा युद्धके उद्देश्योंके तुरन्त स्पष्टीकरणकी मांग—वाइसरायकी घोषणा (१७ अक्तूबर) कि युद्धोपरान्त संवैधानिक विधानसभा तथा औपनिवेशिक स्वराज्यकी स्थापना है—प्रान्तीय कांग्रेस मन्त्रिमण्डलोंका त्यागपत्र।

१९४० ईसवी—मुस्लिमलीग द्वारा पाकिस्तानकी मांग—फ्रांसका पतन।

१९४१ „ जापान द्वारा युद्धकी घोषणा—सुभाषचंद्र नजरबंदीसे भागकर स्थल मार्गसे जर्मनी पहुँचे।

१९४२ „ बर्मामें अंग्रेजोंका आत्म-समर्पण और अपने पीछे ९०,००० भारतीय सैनिकोंको छोड़कर वहांसे भाग आना—जापान द्वारा विजगापट्टमपर बम वर्षा (अप्रैल)—क्रिप्स मिशन—'भारत छोड़ो' आन्दोलनका प्रारम्भ—सविनय अवज्ञा आन्दोलन—देश-व्यापी उपद्रव और दमन चक्र—बंगालका दुर्भिक्ष—कांग्रेसी नेताओंकी गिरफ्तारी।

१९४३ „ बंगालका दुर्भिक्ष—गवर्नर-जनरल लार्ड वावेल (१९४३—४७)।

१९४४ „ आसामपर जापानी आक्रमण—आजाद हिन्द फौज—मणिपुरमें कोहिमाके निकट जापानी फौजों और आजाद हिन्द फौजोंका पीछे खदेड़ा जाना।

१९४५ „ जापानका आत्मसमर्पण—भारतमें आम चुनाव—उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्तको छोड़कर सभी प्रान्तोंमें अधिकांश मुस्लिम सीटों-पर मुस्लिमलीगका अधिकार, जबकि कांग्रेसका सभी प्रान्तों और केन्द्रमें अधिकांश जनरल सीटोंपर अधिकार।

१९४६ „ भारतीय नौसेनाका विद्रोह (१८ फरवरी)—कैबिनेट मिशन भारतमें—मुस्लिमलीग द्वारा प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस मनाया गया (१६ अगस्त)—कलकत्तामें भयानक साम्प्रदायिक दंगे—[illegible]

दायिक दगे (२० अगस्त)—अन्तरिम सरकारका गठन (२सितम्बर)-नोआखाली और टिपरामे साम्प्रदायिक दगे (१४ अक्तूबर)—विहारमे साम्प्रदायिक दगे (२५ अक्तूबर)—मुस्लिमलीगका अन्तरिम सरकारमे शामिल होना (२६ अक्तूबर)—सविधान सभाका प्रथम अधिवेशन (६ सितम्बर)।

१६४७ ईसवी—लार्ड माउण्टवैटन गवर्नर-जनरल—पजाबमे साम्प्रदायिक दगे—माउण्टवैटन द्वारा भारत और पाकिस्तानके रूपमे देशके विभाजनके आधारपर स्वतत्रताकी घोषणा (३ जून)—भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम (१५ अगस्त)—पाकिस्तानका जन्म—पाकिस्तानका कश्मीरपर आक्रमण—कश्मीरका भारतीय सघमे सम्मिलित होना (अक्तूबर)—भारतीय हस्तक्षेप।

१६४८ ,, महात्मा गाधीकी हत्या (३० जनवरी)—राजगोपालाचारी भारतके प्रथम गवर्नर-जनरल (२१ जून)—भारत द्वारा कश्मीर विवाद सयुक्त राष्ट्रसघमे प्रस्तुत (जुलाई)-जिन्नाकी मृत्यु (११ सितम्बर)—हैदराबादमे पुलिस काररवाई—हैदराबादका भारतीय गणतत्रमे विलयन।

१६४९ ,, भारतीय सविधान अधिनियम पारित।

१६५० ,, भारतमे लोकतात्रिक गणराज्यकी घोषणा (२६ जनवरी)—डॉ० राजेन्द्र प्रसाद राष्ट्रपति निर्वाचित और पण्डित जवाहरलाल नेहरू प्रधान-मन्त्री नियुक्त—चीनके साथ कूटनीतिक सम्बन्धोकी स्थापना—भारत सयुक्तराष्ट्र सुरक्षा परिषद्‌का दो वर्षके लिए सदस्य निर्वाचित—देशी रियासतोके विलयनका कार्य पूर्ण।

१६५१ ईसवी—चन्द्रनगरके समर्पणकी सधि—२०६६ करोड रु० की प्रथम पंचवर्षीय योजना—जनगणना।

१६५२ ,, वयस्क मताधिकारके आधारपर प्रथम आम चुनाव।

१६५३ ,, भाषाई आधारपर आध्र राज्यका गठन—पुर्तगालमे भारतीय दूतावासका बन्द होना।

१६५४ ,, पचशील समझौतेपर हस्ताक्षर—चाऊ-इन-लाईकी भारत-यात्रा (जून)—पं० जवाहरलाल नेहरूकी चीन-यात्रा (अक्तूबर)।

१६५५ ,, वाडुग सम्मेलन—नेहरूकी रूस-यात्रा (जून)—ख्रुश्चेव और बुल्गानिनकी भारत-यात्रा (नवम्बर)।

१६५६ ,, ४८००० करोड़ रुपयेकी द्वितीय पचवर्षीय योजना—राज्य पुनर्गठन अधिनियम—मिस्रसे विदेशी सेनाओको हटानेकी माँग करनेमे भारत भी वर्मा, श्रीलका और इण्डोनेशियाके साथ सम्मिलित—फ्रास द्वारा पाडिचेरी, करिकल, माहे और युन्नानके समर्पणके लिए सधिपर हस्ताक्षर।

१६५७ ,, दूसरा आम चुनाव—केरलको छोडकर सभी राज्योमे काग्रेसका बहुमत—दशमलव प्रणालीके सिक्कोका प्रचलन (१ अप्रैल)—केरलमे कम्युनिस्टोके नेतृत्वमे मन्त्रिमडल।

१६५८ ,, कश्मीरपर ग्राहमकी रिपोर्ट—आयल इण्डिया लिमिटेड और इडियन रिफायनरीज लिमिटेडका गठन—भारतमे प्रथम आणविक रिएक्टर चालू।

१६५९ ,, चीनी आक्रमणके फलस्वरूप दलाई लामा और १४००० तिब्बती शरणार्थियोका भारतमे आगमन—चीनियो द्वारा लागजू और

लद्दाखमे तैनात १३ भारतीय सैनिकोकी हत्या–केरलका कम्युनिस्ट मत्रिमण्डल वर्खास्त ।

१९६० ईसवी–प० नेहरूकी पाकिस्तान यात्रा–सिन्धु-जल सधिपर हस्ताक्षर–भारत और सोवियत रूसके राष्ट्राध्यक्षो द्वारा एक दूसरेके देशकी यात्रा–बम्बई राज्यका महाराष्ट्र और गुजरातमे विभाजन–केन्द्रीय शासनके चार लाख कर्मचारियोकी निष्फल हड़ताल ।

१९६१ ,, जनगणना जिसमे जम्मू और कश्मीरको भी सर्वप्रथम सम्मिलित किया गया–भारतकी जनसख्या ४३६ करोड–तृतीय पचवर्षीय योजना–दहेज निवारक अधिनियम–भारतीय सेना द्वारा १७ दिसम्बरकी अर्धरात्रिको गोवाको मुक्ति प्रदान करना ।

१९६२ ,, तृतीय आम चुनाव–केन्द्रमे और प्रत्येक राज्यमे काग्रेसका वहुमत–नागालैडको आसामसे पृथक् कर पृथक् राज्य निर्मित–गोवा केन्द्र-शासित प्रदेश–बाट, माप, और तौलमे दाशमिक प्रणालीका प्रचलन–नूनमाटी (आसाम) तेलशोधक कारखानेका उद्घाटन–चीन द्वारा भारतकी उत्तरी और उत्तर-पूर्वी सीमापर आक्रमण, जिसका अन्त चीन द्वारा आरोपित एकपक्षीय युद्ध-विरामसे हुआ ।

१९६३ ईसवी–हवाई जहाजोके निर्माणके लिए ऐरोनाटिक्स इण्डिया लिमिटेडकी स्थापना–कोलम्बो प्रस्ताव भारत द्वारा स्वीकृत, किन्तु चीन द्वारा अस्वीकृत–कामराज योजना और केन्द्रीय मत्रिमण्डलका पुनर्गठन–ससद द्वारा १९६५ के बाद भी अग्रेजीको राजभाषाके रूपमे प्रयोगका अनुमोदन ।

१९६४ ,, पूर्वी पाकिस्तानमे साम्प्रदायिक दगोके फलस्वरूप कलकत्ता, जमशेदपुर और राउरकेलामे साम्प्रदायिक दगे–गृह-मत्री गुलजारीलाल नन्दाका भ्रष्टाचार-विरोधी अभियान–शेख अब्दुल्लाकी रिहाई–महालनवीस समितिकी रिपोर्टमे आर्थिक शक्तिके केन्द्रीयकरणके विरुद्ध चेतावनी–२७ मईको प० जवाहरलाल नेहरूका स्वर्गवास–लालबहादुर शास्त्री प्रधान-मत्री नियुक्त ।

૧૫ દિવસ : આ પુસ્તક વધુમાં વધુ ૧૫ દિવસ માટે રાખી શકાશે.